प्रकाशकः—
रामस्वरूपदासजी।
काशी।

दोहाः— परख साधु गुरु परख कबीर। पारख पद पहिचान॥
पारखके परतापते। सब भ्रम जाला मान॥
॥ निर्णयसारके दोहा—५८॥

दोहाः— परकाशी प्रकाशते। सबको परखनहार॥
ना काहू सो काम है। ताको समुझ विचार॥
॥ वैराग्यशतकके दोहा—१२६॥

दोहाः— नीर क्षीर सामिल रहै। राजहंस विलगाव॥
एकता कैसे मानिये। याहिं करो तुम न्याव॥
॥ एकईस प्रश्नके प्रश्न १७, दोहा—२७॥

साखीः— पारख पारखी एक है। भिन्न भेद कछु नाहिं॥
देह विलास करि भेद है। सो गुरु दियो दरशाहि॥
॥ पारख विचार मूलमें अन्तकी साखी—१॥

साखीः— अजर अमर अखण्ड स्वयं। नित्य रहे अविनाशी॥
निराधार इक आप ही। अचल स्वरूप रहाशी॥
॥ पारख विचार अनुवादका साखी—५९॥

साखीः— जमा अघट निघटै नहीं। वर्तै शब्द प्रमान॥
जीव जमा जानै विना। सवै खर्चमें जान॥
॥ श्रीकबीरपरिचयके साखी—३४९॥

शब्दः— "हंसा! परख शब्द टकसार॥" एकादश शब्द—११॥

[दिनाङ्क ६।६।१६५४ई० को यह ग्रन्थ छपके पूर्ण हुआ है।]

मुद्रकः— सहादुरराम।
हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, नीचीबाग, बनारस।

॥ ❀ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥ अथ संयुक्त निर्णयसारादि षट् ग्रन्थोंका भूमिका वर्णन ॥

दोहाः—दया गुरुकी चाहिये । बन्दौ पद त्रयबार ॥
रामस्वरूपदास अब । भूमिका लिखौं विचार ॥ १ ॥
साधु सद्गुरु इष्ट मम । सरण बन्दगी साथ ॥
हितकर सन्त सहायक । कीन्हों दास सनाथ ॥ २ ॥
कबीर गुरु महिमा अमित । जानै पारखी सन्त ॥
पारख ज्ञान महान है । जगमें जीव अनन्त ॥ ३ ॥
निज स्वरूप चीन्है नहीं । मन मानन्दि भुलान ॥
सो अज्ञान कहावई । चौरासी बन्धमान ॥ ४ ॥
विषय जाल संसारमें । संसारी आसक्त ॥
वाणी कल्पित जालमें । योगी ज्ञानी भक्त ॥ ५ ॥
उभय बन्धनमें सकल । फँसे फँसाय रहाय ॥
रामस्वरूप पारखी गुरु । मिले सो बन्दि छुड़ाय ॥ ६ ॥
परखायो सब जालको । सद्गुरु देव कृपाल ॥
जिज्ञासुन हित ग्रन्थ लिखि । काल कल्पना टाल ॥ ७ ॥
यथानाम गुणयुत तथा । निर्णयसार सद् ग्रन्थ ॥
वैराग्यशतक विराग कहा । गुरु पूरण सत पन्थ ॥ ८ ॥
पारख विचार पारखी गुरु । कहि निर्णय परमान ॥
साहेब राम परखायकै । एकईस प्रश्न बखान ॥ ९ ॥

दोहाः— श्रीगुरुदयाल साहेब । पारखी सन्त सुजान ॥
कबीरपरिचय साखी अरु । ग्यारह शब्द बखान ॥ १० ॥
सो सब मूल लिखा हुता । साधु सन्त महन्त ॥
पढ़त पढ़ावत ताहिको । परम्परा प्रचलन्त ॥ ११ ॥

बुरहानपुर शुभ नागझिरी । कबीर मन्दिर माँहिं ॥
गुरुमुख अर्थ पढ़ाइ विधि । प्रथमैंते चलि ताँहिं ॥ १२ ॥
केते आये सन्त जन । पढ़ि गुनि लिखि चलि जाय ॥
शब्द रटै अपरोक्ष नहीं । बिरले कोइ ठहराय ॥ १३ ॥

नाशवान तन अन्तमें । मुक्त पारखी सन्त ॥
अधिकारी भूमिका रही । गुरुमुख सार कहन्त ॥ १४ ॥
परिणामी तन मन सकल । एकरस रहे न कोय ॥
भूल प्रबल वशि जीव सदा । पारख भये स्थिति होय ॥ १५ ॥

पारखी गुरु शरणागत । पाया पारख बोध ॥
गुरुमुख पढ़ि सद्ग्रन्थको । सकलो मर्मको शोध ॥ १६ ॥
बुद्धि भेदते समझमें । भिन्न भाव हो जाय ॥
अधिकारी मिलना कठिन । हिय समग्र ठहराय ॥ १७ ॥

प्रचलित हो गुरुज्ञान सो । ग्रन्थनके आधार ॥
रामस्वरूप टीका किया । बोध गुरुका सार ॥ १८ ॥
टीकामें सब भाव प्रगट । लिखि दीन्हा या माहिं ॥
पढ़ैं पढ़ावैं सन्त जन । सार असार बिलगाहिं ॥ १९ ॥

पक्षपातको छोड़िके । पारख लिजे सार ॥
पारख बिनु धोखा महा । बहै घोर अन्धार ॥ २० ॥
विषय पञ्च मनके सहित । इहै ग्रन्थि षट बन्ध ॥
खानी वाणी जालमें । भूलि भटकि रहे अन्ध ॥ २१ ॥
सो षट् ग्रन्थि नाशको । युक्ति मिले या माहिं ॥
पारखी गुरुसे बूझिके । नित प्रति पढ़िये ताहिं ॥ २२ ॥

दोहाः— पारख रत्न अमित भरा। गुरु ज्ञान भण्डार ॥
रामस्वरूप जो लेवई। नाशै दरिद्रता भार ॥ २३ ॥
हंस रहनि आरूढ़ हो। निजस्वरूपमें शान्त ॥
जीवन्मुक्त प्रत्यक्षमें। लेश रहै नहिं भ्रान्त ॥ २४ ॥
साहेब बन्दगी सद्गुरु ! तीन बार हो खाश ॥
रामस्वरूप दास सदा। दया गुरुकी आश ॥ २५ ॥
कर्म भूमिका नर तन। हंस भूमि ठहराव ॥
पारख भूमि मुक्त स्थिति। सोई सार कहाव ॥ २६ ॥

विवेकी सन्त-महात्माओ ! तथा जिज्ञासु सज्जन सेवक वर्गः ! आप लोग सत्यन्यायसे सत्य और असत्यका यथार्थ विवेक दृष्टिसे देखके निर्णयसे बिलछान कीजिये ! प्राचीन-कालसे संसारमें सत्य-शोधनके लिये नाना प्रयत्न मानव समाजमें हुआ और अभी हो रहा है। तहाँ बुद्धि भेदसे वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि अनेकों वाणीकी कल्पना विस्तार करके अनेकों सिद्धान्त स्थापित किया गया है। उनके समझसे तो उन-उनके मानन्दी ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा आदि जगत्कर्ताके रूपमें कल्पना करके उसे सत्य ही माने हैं, और मान रहे हैं। परन्तु, पारखी सद्गुरुकी परीक्षा दृष्टिसे वे मिथ्या मानन्दीसे भ्रमिक हो करके भूलमें पड़े हैं। ऐसी वह आदिकी भूल बड़ी जबरदस्त है, वह छूटनेको अत्यन्त कठिन हो रही है। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहा हैः—

॥ ❀ ॥ बीजक मूल, शब्द—११५ ॥ ❀ ॥

४ सन्तो ! ऐसी भूल जग माहीं। जाते जीव मिथ्यामें जाहीं ॥ १ ॥
पहिले भूले ब्रह्म अखण्डित। झाँईं आपुहि मानी ॥ २ ॥
झाँईंमें भूलत इच्छा कीन्ही। इच्छाते अभिमानी ॥ ३ ॥
अभिमानी कर्ता ह्वै बैठे। नाना ग्रन्थ चलाया ॥ ४ ॥
वो ही भूलमें सब जग भूला। भूलका मर्म न पाया ॥ ५ ॥
लख चौरासी भूलते कहिये। भूलते जग बिटमाया ॥ ६ ॥

जो है सनातन सोई भूला। अब सो भूलहिं खाया ॥ ७ ॥
भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी ! पारख देहिं लखाई ॥ ८ ॥
कहहिं कबीर भूलकी औषध ! पारख सबकी भाई ! ॥ ९ ॥

— हे सन्तो ! जगत्में भूल ऐसी प्रचण्ड हुई है कि— जिससे नरजीव बिना विचारे मिथ्या धोखामें ही चले गये, और चले जा रहे हैं ॥ पहिले मनुष्य जीवने ही अपने सत्य स्वरूपको भूला, तहाँ एक अखण्डित ब्रह्म बना। आप ही जीवने, झाँई = गाफिलीमें पड़के भ्रमसे अपनेको ब्रह्म मान लिया ॥ और ब्रह्म-भ्रमकी झाँईमें भूलनेसे जगत् उत्पत्ति करनेकी इच्छा किया। उसी इच्छासे जगत्के अभिमानी, देहाभिमानी होता भया ॥ फिर वही अभिमानी कल्पनासे जगत्-कर्ता होयके बैठा। तहाँ वाणीसे वेद, शास्त्रादि नाना ग्रन्थ बनायके संसारमें चलाया ॥ उसी महाभूलमें सब जगत्के नरजीव भूले, परन्तु, उस भूलका मर्म या भेद पारख बिना किसीने भी नहीं जान पाये ॥ और चारखानी चौरासी योनियोंकी उत्पत्ति भी जीवके भूलसे ही हुई, ऐसा कहा जाता है। भूलसे ही अध्यास वश जगत्में सब जीवोंका शरीर बना है ॥ जो सनातन जीव है, सोई आदिमें कर्म-भूमिकारूप-नरदेहमें, अपनेको भूला। अब सो उसी भूलको फिर भी नरजीवोंने ग्रहण कर रखा है। सो भूलने ही अब सबको खाया वा खा रहा है ॥ हे सन्तो ! वह भूल तो मिट सकती है, परन्तु, जब पारखी सद्गुरु मिलेंगे, नरजीव श्रद्धा भक्ति पूर्वक उनके शरणागत होंगे, तब सद्गुरुदेव दया करके यथार्थ पारखबोध लखा देवेंगे, तभी वह भूल भ्रम समूल मिटेगी ॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं— हे भाई ! सब नरजीवोंकी भूलकी मुख्य औषधि एक पारख बोधका पक्का होना ही है। जिससे सबोंकी पारख होके सबोंकी कसर-खोट पहिचाननेमें आ जाती है। तभी सब भूल-भ्रम एकदम मिट जाती है। अतः पारख बोधको अपरोक्ष करना चाहिये, इत्यादि भाव शब्दमें बताया हुआ है ॥

इस प्रकार भूल और उस भूलके निवृत्तिके उपायके बारेमें सद्गुरुने स्पष्ट कहा है। पारखके बिना तो वह भूल मिट सकती ही नहीं। जैसे अन्धकार अन्य कोटि उपाय करनेपर भी मिट नहीं सकती है, जब प्रकाश उदय हो जाता है, तब तुरन्त ही वह मिट जाता है। तैसे ही बिना पारखके भूल, भ्रम, अज्ञान, जो है, सो अनन्त उपाय करनेपर भी नाश नहीं होता है, और पारखबोध होनेपर वह तुरन्त ही विनाश हो जाता है। फिर पारखी सन्तसे ही पारख ज्ञान हो सकता है, अन्य लोगोंसे वह प्राप्त हो नहीं सकता है, यह बात ऊपर कहा जा चुका हैं। और बीजकमें कहा है:—

साखी:—४ संशय सब जग खण्डिया। संशय खण्डे न कोय ॥
संशय खण्डे सो जना। जो शब्द विवेकी होय ॥ ८८ ॥
४ मानुष तैं बड़ पापिया। अक्षर गुरुहि न मान ॥
बार-बार बन कुकुही। गर्भ धरे औ ध्यान ॥ ११० ॥
४ बड़े गये बड़ापने। रोम-रोम हङ्कार ॥
सतगुरुके परचै बिना। चारों वरण चमार ॥ १३९ ॥
४ जाका गुरु है आँधरा। चेला काह कराय ? ॥
अन्धे-अन्धा पेलिया। दोऊ कूप पराय ॥ १५४ ॥
४ गुरु सिकलीगर कीजिये। मनहिं मस्कला देय ॥
शब्द छोलना छोलिके। चित दर्पण करि लेय ॥ १६० ॥

इस प्रमाणसे खुलासा होता है कि— संशयको मिटानेवाले शब्दविवेकी पारखीको ही गुरु करना चाहिये। उन्हींसे सत्य वस्तुका यथार्थ बोध हो सकता है ॥ और सत्य सिद्धान्तको परीक्षा करके जाननेके बारेमें सद्गुरुने कहा है:—

साखी:—४ हीरा सोई सराहिये। सहै घननकी चोट ॥
कपट कुरङ्गी मानवा। परखत निकरा खोट ॥ बी० सा० १६८ ॥

— अर्थात् सोई हीरा सराहने योग्य सच्चा है, जो घनोंकी चोट सहै, परन्तु फूटै नहीं, सदा अखण्ड बना रहै। तैसे ही यहाँ हीरा-

रूपी चैतन्य जीवकी पारख सिद्धान्त है, जिसपर अनेकों तर्क, वितर्क, शङ्का, समाधान, खण्डन, मण्डन, कथन, वर्णन, इत्यादि नाना वाणीरूपी घनोंकी चोट प्रहार चले, परन्तु, वह ज्योंका-त्यों बना रहै, सब चोट व्यर्थ हो जाय, सोई अखण्ड, सच्चा-पक्का पारख सिद्धान्त है। और जो निर्णय करनेपर मिथ्या ठहरे, खण्डन हो जाय, सो कल्पनाकी सिद्धान्त असत्य है। और वेपारखी गुरुवा लोग कपटी, कुरङ्गी, धूर्त बनके मनुष्योंको भुला, भ्रमा रहे हैं। मिथ्या कुरङ्गमें रङ्गे हैं। इसीसे उन्होंकी वेद, कुरान आदिकी समस्त सिद्धान्त, पारख करतेमें खोटा, झूटा निकल गया। अतः वह खोटा मत मानने योग्य नहीं है, पारख ही सत्य सिद्धान्त हैं, उसे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-विचार द्वारा ठीकसे जान-बूझ, समझके मानना चाहिये। तभी हित-कल्याण होयगी॥

इस प्रकार पारख सिद्धान्तके बोध दाता, बीजक ज्ञान प्रकाशक आदि गुरु सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब प्रख्यात हुये। पारखबोध आपको स्वयं अनुभवसे प्रकाश हुआ। इसीसे आपने स्वयं स्वरूपके पारख-बोध बलसे बन्धनोंसे छूटके जीवन्मुक्त होनेकी बात कहा हैः—

साखीः—४ बहु बन्धनसे बाँधिया। एक विचारा जीव॥
की बल छूटै आपने। कीरे छुड़ावे पीव॥बी०,सा०२११॥

अर्थात् एक विचारा जीव संसारमें बहुतेक बन्धनोंमें मानन्दी टेकायके बन्धा पड़ा है। तो इसे बन्धनोंसे छूटनेका दो रास्ता है— या तो जैसे मैं अपने स्वयं पारख ज्ञान बलसे सबका यथार्थ पारख किया हूँ, तैसे मेरे वह पारखबोधको जो प्राप्त करेगा, तो वह जीव बन्धनोंसे छूटेगा। अथवा उतना स्वयं शक्ति न होय, तो पिवरूप पारखी सद्गुरुकी शरणागत होके उनके उपदेशके अनुसार भी यदि जो चलेंगे, तो वे भी बन्धनोंसे छूट जायेंगे। पारखी सद्गुरु खानी, वाणीके बन्धनोंसे जिज्ञासु जीवोंको छुड़ा देवेंगे। इत्यादि॥

साखीः— ४ जो तू चाहै मुझको । छाड़ सकलकी आश ॥
मुझही ऐसा होय रहो । सब सुख तेरे पास ॥बी०,सा०२९८॥

— अर्थात् हे नरजीव ! जो तुम मुझको वा मेरे पारख स्थिति जीवन्मुक्ति पदको पाना चाहते हो, तो सकल विजातीय खानी, वाणीकी आशा, वासा, कल्पनाओंको छोड़ दो । मेरे समान ही पूर्ण त्यागी, ऐसा निराश, निर्बन्ध होयके निज स्वरूपमें ही स्थित हो रहो । फिर सब सुखसे बड़ा निवृत्ति शान्ति स्थिति जीवन्मुक्ति तेरे पासमें ही प्रगट हो रहेगा । उसके लिये तुम पहिले जगत्से निराश हो जाओ । इत्यादि ॥

ऐसे निष्पक्ष, न्याय, निर्णयकी उपदेश सद्गुरुने जो दिये हैं, सो मूल बीजक ग्रन्थमें लिखा हुआ है । मूलपदमें आपने सब मतवादियोंकी मानन्दीको भली-भाँतिसे परखाया है । अज्ञानी, ज्ञानी, और विज्ञानियोंकी सिद्धान्त उन्होंके मानन्दीरूप कथन पदोंमें रचना करके दरशाये हैं । हंस पारखी ही उसको निर्णय करके भेद समझ सकते हैं । नहीं तो बेपारखी बगुलेवत् गुरुवा लोग उसके यथार्थ मर्मको कुछ भी समझ ही नहीं पाते हैं । विद्याभिमानमें उनके बुद्धि कुण्ठित, निकम्मी हो जाती है । इसीसे बीजकके सब वाक्योंको साहबके ही खास सिद्धान्त मानके भूलके धोखेमें पड़ जाते हैं । अतः आपको कितनेक मूर्ख लोग तो रामोपासक भक्त मानते हैं । कई लोग श्रीकबीरसाहेब योगी थे, आप ऋद्धि-सिद्धिवाले रहे, ऐसा कहते हैं; कपोल कल्पित सिद्धि, चमत्कारका कथा भी बना रखे हैं, और कोई आपको आत्मज्ञानी वा ब्रह्मज्ञानी परमहंस रहे, ऐसा बताते हैं । तहाँ संन्यासीवत् काषाय वस्त्रधारी 'कबीर परमहंस' पन्थ भी उन्होंने एक नवीन पन्थ आगरा तरफ चला रखे हैं । इस प्रकार श्रीकबीरसाहेबको ज्ञानी, योगी, भक्त, ईश्वर, ब्रह्म, खुदाको माननेवाले समझके बहुतेरे पारखहीन कबीरपन्थी, अन्यायी, अविचारी, पक्षपाती ही बने हैं । वे सार-असारका कुछ

भी विचार करते ही नहीं। कितनेक लोग तो बीजक ज्ञानको वा बीजक ग्रन्थको भी नहीं मानते हैं। और बहुतेरे लोग तो बीजक ग्रन्थमात्रको तो मानते हैं, परन्तु उसमेंकी गुरुमुख निर्णय सारशब्दके भेदको कुछ भी जानते ही नहीं हैं। अन्धेके समान अन्धाधुन्धसे गोलमाल करके मिथ्या कल्पनाको ही मानते हैं और मनाते जाते हैं, बिना पारख॥

जैसे रत्नोंकी परीक्षा जौहरी लोग ही करते हैं; वे ही उसके सब भेदोंको जान सकते हैं, और दूसरे लोगोंके लिये तो काँच और रत्न एक समान ही मालूम पड़ता है।

तैसे ही शब्द विवेकी पारखी सन्त बहुत ही थोड़े होते हैं। यानी कोई-कोई, कभी-कभी बिरले ही होते हैं। वे निःस्वार्थी, परोपकारी वा यथार्थ परमार्थी होते हैं। ऐसे सत्यन्यायी अपरोक्ष पारखी, सत्यवक्ता सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब प्रख्यात हुए हैं। आप बुरहानपुर नामक नगरके नागझिरी स्थानपर कुटीमें विशेषरूपसे रहते रहे। आप सच्चे त्यागी, परम वैराग्यवान्, धीर, वीर, गम्भीर श्रीसद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके अपरोक्ष पारखबोध रहनी-रहस्यमें स्थिर रहे, और सद्गुरुके भक्तिमें भी आप विशेष निष्ठावान् प्रवीण रहे। आपने शुरू-शुरूमें शब्दावली आदिके पद-शब्द तथा अष्टक स्तुति आदि बनाये थे। तदनन्तर दोहोंमें वैराग्यशतक ग्रन्थ रचना किये, जो दोहा १ से १२७ तकमें कहिके समाप्त किया है। इसमें सब प्रकारके वैराग्यका भेद खुलासा करके बतलाया है। पश्चात् निर्णयसार ग्रन्थ दोहा, चौपाई, छन्द आदि पदोंमें रचना किये हैं। वि० सं० १८९२ चैत्रशुक्ल १० को निर्णयसार बनके समाप्त हुआ। इस बीचमें आप बीजकके त्रीजारूप टीका भी लिखते रहे। आपके रुग्णावस्थामें वि० सं० १८९४ कार्तिक १५ में बीजकका टीका बनके समाप्ति हुई। उसके तीन दिन बादमें ही आपके देहान्त भी हो गया। अतः टीका फिर दुबारा आपसे संशोधन होने नहीं पाया।

आपके देहान्त होनेका लगभग ७३ वर्ष बाद वि० सं० १९६७ में उसी पूर्वरूपमें ही श्रीकाशीसाहेबने त्रीजा छपाने दिये थे, सो बम्बईमें खेमराजके प्रेसमें छपके प्रकाशित हुआ। अस्तु ! ॥

सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने गुरु पारख बलसे बीजक मूलकी टीका अपरोक्ष पारख अनुभवसे किये। अतः आप प्रथम पारखी आचार्य-वर्य हुये। तहाँ त्रीजामें— आपने चार मुखकी मुख्यवाणीका भेद खोल्के यथार्थ दरशाये हैं:—

१. जीवमुखमें— स्तुति, विनयके साथ "दासकबीर" संज्ञा आता है।

२. मायामुखमें— रोचक, भयानक, वाणीके साथ "कहैं कबीर" की इशारा आया है।

३. ब्रह्ममुखमें— अद्वैत कथन हङ्कारके साथ "हाँ कबीर" की झलक हुआ है। और—

४. गुरुमुखमें— यथार्थ निर्णय सारशब्द उपदेशके साथ "कहहिं कबीर" वा "हंस कबीर" की छाप लगा हुआ रहता है। जिससे स्पष्ट कथन मालूम हो जाता है। वैसे ही बीजक मूलमें सद्गुरुके कथन-रचना भी भयी है। जीवमुख सोई अज्ञानी जीवोंकी मुख्य कथनका उनके ही शब्दोंमें वर्णन है। मायामुख सोई भ्रमिक गुरुवा लोगोंकी मुख्य-मुख्य, उपदेश वर्णन है। ब्रह्ममुख सोई वेदान्ती ब्रह्मज्ञानियोंका मुख्य मानन्दीरूप कथन है। और गुरुमुख सोई सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबकी स्वयंका निर्णय मुख्य-मुख्य सार वचन हैं। ऐसे इसका यथार्थ भेदका खुलासा है। उसी रीतिसे उन पदोंकी अर्थ भी बराबर बैठ जाता है। अन्यथा सब पदोंके कथनको सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सिद्धान्त मानना, तो सरासर अन्याय ही होगा।

परन्तु, कितनेक अविवेकी-अविचारी, पक्षपाती नाम मात्रके कबीर-पन्थी लोग चार-मुखके वाणीके बारेमें निम्नप्रकारसे तर्क, उपस्थितकर

हँसी करते हैं कि— क्या श्रीकबीरसाहेब चार मुखवाले रहे ?, जो कि, चारमुखकी वाणी कहे ? यदि एक मुख था, तो चार प्रकारके बात कैसे कहते ? बीजकमें आया हुआ सब वाणी साहेबके ही खास अपना सिद्धान्त है, इत्यादि प्रकारसे अविवेककी बात कहते हैं। तहाँ उन लोगोंसे यही कहना है कि—

हे भूले हुए मनुष्यो ! जैसे आप लोग समझते हैं, वैसे बात तो नहीं है। अब जरा कान लगायके मेरी बात सुनिये ! जैसे कोई चारवेद पढ़के चार तरहकी बात कहिदेवे, तो क्या उसका चार मुख हो जाता है ? कभी नहीं, और षट्शास्त्र पढ़के छै तरहकी बात वर्णन करनेवालोंका भी क्या छै मुख हो जाते हैं ? किन्तु होते नहीं। तैसे ही अठारह पुराणकी कथा १८ तरहसे कहनेवालोंका भी क्या अठारह मुख ही हो जाते हैं ? कभी नहीं। किन्तु, उन्होंकी बाहर मुख तो एक ही रहता है, अन्य-अन्य लोगोंकी बात कहनेसे नाना तरहके वाणी मात्र हो जाता है। जैसे— व्यासने महाभारत बनाया, तहाँ कृष्ण, पाण्डव, कौरवादि सबोंके वचन कथन करके श्लोकोंमें लिख दिया है। तो क्या व्यासके अनेक मुख हो गये थे ? किन्तु, नहीं हुए थे। और आप लोग भी कभी दो, चार जनोंकी कही हुई बातें दूसरोंसे कहीं दूसरे जगहमें बताने लगते हैं, तो भिन्न-भिन्न तरीकेसे अलग-अलग भावसे ही बात कहते हो, उसने ऐसा कहा, तो मैंने ऐसा कहा, इत्यादि कहा जाता है। तहाँ आपके अनेक मुख भी नहीं हो जाते हैं, और सब आपके खुदके बात भी नहीं होते हैं। तैसे ही बीजकमेंके वचनोंको भी समझना चाहिये। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने प्रसङ्ग-प्रसङ्गमें उपरोक्त प्रकारसे उन तीनोंके बातोंको दरशाकर फिर निर्णयसे परखाये हैं। सो स्पष्ट साफ शब्दोंमें जाहिर ही हैं। अर्थात् कहीं तो अज्ञानी लोगोंके मानन्दीका कथन बतलाये हैं। कहीं पर पण्डित वा ज्ञानी गुरुवा लोगोंकी कथन दरशाये हैं, और कहीं-कहीं प्रसङ्गके अनुसार विज्ञानी वा ब्रह्मज्ञानियोंकी कथन भी

दरशा दिये हैं। फिर अपना निर्णय गुरुमुखसे फैसला करके अन्तमें परखाये हैं। जैसे न्यायाधीश (जज) पहिले वादी-प्रतिवादीके बातोंको ही विस्तारसे दरशाकर फिर अपना फैसला अन्तमें थोड़ेसे शब्दोंमें कह देता वा लिख देता है। तहाँ सब वादी-प्रतिवादीके बात उसका सिद्धान्त नहीं होता है, क्योंकि, वह सब बात उसे मान्य नहीं होता है। तैसे ही बीजकमें भी सद्गुरुने खानी-वाणीके मानन्दीका वाणी जाल दिखलाकर फिर थोड़ेसेमें अपना सत्य निर्णय कहे हैं। सो रहस्य पारखी विवेकी सन्त ही समझ सकते हैं, और सबके समझनेमें वह नहीं आ सकती है। तहाँ सद्गुरुका वचन है किः—

साखीः— जो मोहि जानै, ताहि मैं जानौं ॥
लोक वेदका कहा न मानौं ॥ बीजक, साखी २०० ॥

देखिये ! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब, लोक = खानी जाल, और वेद = वाणी जालकी कहा हुआ कथनको तो मानते ही नहीं थे। जो उन्हें वा उनके पारखबोधको जानते वा मानते थे, उन्हीं लोगोंको आप भी मुमुक्षु अधिकारी जानते वा मानते थे, सो साखीमें स्पष्ट ही कहा है। कोई उसका यह अर्थ ही न समझे, तो क्या करना ? ॥ क्योंकिः—

साखीः— ४ राह विचारी क्या करे ? । जो पन्थि न चले विचार ॥
आपन मारग छोड़िके । फिरे उजार-उजार ॥ बीजक, १६१ ॥

—सद्गुरु कहते हैंः— मैंने तो विचार करके पारख सिद्धान्तका सच्चा मार्ग बताया है, परन्तु जो, पन्थि = पथिक वा राहगीरके समान कबीरपन्थी शिष्य लोग विचारपूर्वक न चलें, अपने-अपने समझसे भिन्न-भिन्नरूपमें मत, पन्थ, बनायके चलें, तो राह विचारनेवाले गुरुने क्या करना ? सब दोष तो उसी पन्थीका ही भया है। क्योंकि, अपना सच्चा मार्ग, हमारा सत्य सिद्धान्त हंसपद, पारख पदको छोड़-छाड़ करके भ्रमिक हो आशा, वासना, कल्पनामें

लगकर उजार-उजारमें फिरते हैं, अर्थात् जहाँ कुछ नहीं, शून्य मिथ्या धोखा है, तहाँ आकाशवत् व्यापक, निराकार, निर्गुण ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा आदि मान करके शून्य समाधि लगाकर धोखेमें पड़के भटकते फिरते हैं। अर्थात् अनेक मत-पन्थोंमें भटकते फिरते हैं। इसीसे जड़ाध्यासी होके चौरासी योनियोंके चक्रमें ही गिर पड़ते हैं, बिना पारख ॥ और भी बीजकमें कहा है:—

साखी:— गुरु विचारा क्या करे? शिष्यहि माँहै चूक ॥
४ भावै त्यों परमोधिये। बाँस बजाये फूँक ॥बीजक,३२१॥

४ शब्द-शब्द बहु अन्तरे। सारशब्द मथि लीजै ॥
कहहिं कबीर जहाँ सारशब्द नहिं। धृग जीवन सो जीजै ॥बी० सा० ५॥

४ जो जानहु जीव आपना। करहु जीवको सार ॥
जियरा ऐसा पाहुना। मिले न दूजी बार ॥बी०सा० १०॥

४ जो जानहु जग जीवना। जो जानहु सो जीव ॥
पानि पचावहु आपना। तो पानी माँगि न पीव ॥बी०सा० ११॥

इत्यादि सद्गुरुके उपदेश जाहिर ही है, तो भी कितनेक भ्रमिक कबीरपन्थी लोग उसके मतलबको कुछ भी नहीं समझते हैं, और पढ़-लिखके विद्वान् कहलानेवालोंकी समझ तो और भी उल्टी हो गई है। बीजकके तात्पर्यको न समझ करके कोई आत्मा, ब्रह्म, ईश्वरादिके निरूपण कर, उन्हें जगत्कर्ता मानकर वे अपने भी धोखेमें पड़े हैं, और अन्य अबोध मनुष्योंको भी भ्रमा-भुला करके उन्होंके अहित ही कर रहे हैं। सद्गुरुके न्यायसे वे प्रत्यक्षमें यम वा काल ही बने हैं ॥

और कितनेक अविवेकी कबीरपन्थी लोग यह कहते हैं कि— श्रीपूरणसाहेबने बीजक टीका किये, तहाँ पारख सिद्धान्त बतलाये हैं, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदिका खण्डन किये हैं, सो तो उनके अपना अलग सिद्धान्त है। किन्तु, सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके वह सिद्धान्त

नहीं है। आप श्रीकबीरसाहेब तो ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा आदि सबको मानते रहे, इत्यादि अनर्गल बात बकते-झकते हैं। किन्तु, तहाँ बीजकमें ही कहा है, सुनियेः—

४ झगरा एक बढ़ो राजाराम! जो निरुवारे सो निर्वान्॥ १ ॥
ब्रह्म बड़ाकि? जहाँसे आया। वेद बड़ाकि? जिन्ह उपजाया॥ २ ॥
ई मन बड़ाकि? जेहि मन माना। राम बड़ा कि? रामहिं जाना॥ ३ ॥
भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरे उदास। तीर्थ बड़ा कि? तीर्थका दास!॥ ४ ॥
॥ बीजक, शब्द ११२ ॥

"झूठेहि जनि पतियाउ हो! सुनु सन्त सुजाना" ॥इत्यादि॥शब्द ११३॥

इन सब बीजक वाक्योंके ऊपर तो, वे लोग कुछ भी ख्याल ही नहीं करते हैं। तभी तो मनमाने ऐसे अनुचित बकवाद करते हैं। इसमें मुख्य कारण उनके भ्रम पक्षपातका पुष्ट होना ही है। नहीं तो विचारवान् लोग कभी ऐसा कह नहीं सकते हैं। बीजकका सत्य सिद्धान्त खास पारख निर्णय ज्ञान ही है। यदि ऐसा न होता, तो पारखी सन्त उस निर्णयको कैसे ग्रहण करते? सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके सत्य बोध गुरुमुख निर्णय पारखबोध ही हैं। तभी तो श्रीकबीरसाहेबके देहान्त होनेके पश्चात् भी शिष्य परम्परासे पारख ज्ञानका प्रचार होता चला आया है। इधर हमारे यहाँ स्थान नागझिरी बुरहानपुरमें सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब जैसे परम पारखी सत्यन्यायी सन्त महात्मा हुए, तैसे ही लगभग उसी समयमें, अथवा उससे भी पहले उधर गया निवासी श्रीरामरहससाहेब भी एक उच्च कोटीके पारखी सन्त महात्मा भये थे। आपने पञ्चग्रन्थी नामक श्रेष्ठ ग्रन्थ रचना किया है। सो अभीतक पारख सिद्धान्त बतानेका साक्षी दे रहा है, और उनसे भी पहिले श्रीरामरहस-साहेबके सद्गुरु पारखी सन्त श्रीगुरुदयालसाहेब फतुहा स्थानमें हो गये थे। आपने श्रीकबीरपरिचयकी ३४६ साखी और ग्यारह शब्द नामके दो ग्रन्थ बना दिये हैं। जो कि— डङ्का बजा-बजाकर

पारख ज्ञानकों सत्य होनेका प्रमाण दे रहा है। इस तरहसे पारखी सन्त पारख ज्ञानका बोध देते ही चले आ रहे हैं।

यद्यपि सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब सत्सङ्गवार्ताके लिये उधरके सन्त श्रीगुरुदयालसाहेब, और श्रीरामरहससाहेबसे मिल नहीं सके, वा आपका उन्होंसे मुलाकात नहीं हुआ, ऐसा ज्ञात होता है। तथापि सद्गुरुका सत्य निर्णय पारख सिद्धान्तकी कथन, बोध सारशब्द आप तीनों पारखी सन्तोंकी एक समान है, सिर्फ प्रकरणमात्र अलग-अलग हैं, किन्तु, सिद्धान्तकी स्थिति-ठहराव एक ही पारख ज्ञान है। सो खुलासासे यह संयुक्त निर्णयसारादि षट् ग्रन्थोंको पढ़के आप लोगोंको भी मालूम हो जायगा। अतएव पारख सिद्धान्तको ही सर्वोपरि सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका सत्यज्ञान माना जाता है॥

अब यहाँ संक्षेपमें ग्रन्थोंका प्रमाण भी लिख देता हूँ, सुनिये!

बीजकका प्रमाण :—

"जीवरूप एक अन्तर बासा॥" बीजक, रमैनी २॥

इसमें नरजीवको सत्य बताया है॥

"जीव शीव सब प्रगटे॥" बीजक, रमैनी ३ के साखी॥

इसमें जीवकी कल्पनासे शिव प्रगट होनेको कहा है॥

"प्रथम चरण गुरु कीन्ह विचारा॥" बीजक, रमैनी ४॥

इसमें ब्रह्माका भूल बताया गया है॥

"भूले ब्रह्म न चीन्हैं बाटा॥" बीजक, रमैनी ५॥

इसमें ब्रह्म मानन्दीमें जो मनुष्य भूले, सो कहा गया है॥

"अनहद अनुभवके करि आशा॥" बीजक, रमैनी १९॥

इसमें बुद्धिकी विपरीतता बताया है॥

"औ भूले षट् दर्शन भाई!॥" बीजक, रमैनी ३०॥

इसमें षट् दर्शनोंके भूल दरशाया है॥

"अन्ध सो दर्पण वेद पुराना॥" बीजक, रमैनी ३२॥

इसमें वेद, पुराणोंको अन्धा दर्पणके सदृश कहा है॥

"परखत खरी परखावत खोटी ॥" बीजक, रमैनी ७९ ॥
— इसमें परीक्षाके बारेमें कहा है ॥
"खरा खोट जिन नहिं परखाया ॥" बीजक, रमैनी ८० ॥
— इसमें पारखी और बेपारखीके बारेमें कहा है ॥
"हंसा ! हो चित्त चेतु सकेरा ॥" बीजक, शब्द ३२ ॥
— इसमें चेतावनी दिया है ॥
"पण्डित ! बाद वदे सो झूठा ॥" बीजक, शब्द ४० ॥
— इसमें पण्डितोंके मतवादको झूठा कहा है ॥
"ऐसो भरम बिगुर्चन भारी ! ॥" बीजक, शब्द ७५ ॥
— इसमें भारी भ्रान्ति धोखाके बारेमें कहा है ॥
"बन्दे ! करिले आपु निवेरा ! ॥ बीजक, शब्द ८० ॥
— इसमें जीवको अपने स्वरूपका निवेरा करनेको कहा है ॥
"सारशब्दसे बाँचि हो ! ॥" बीजक, शब्द ११४ ॥
— इसमें सारशब्दसे बचाव होनेको कहा है ॥
"भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी ! पारख देहिं लखाई ॥ ८ ॥
कहहिं कबीर भूलकी औषध ! पारखसबकी भाई ! ॥"बी० श० ११५॥
— इसमें पारखी सद्गुरुकी विशेषता और पारख बोधसे भूल मिटनेका खुलासासे कहा है कि, भूलकी औषध एक पारख ही है ॥
"मत सुनु मानिक ! मत सुनु मानिक ! ॥" बीजक, कहरा २ ॥
— इसमें गुरुवा लोगोंकी झूठी बात न सुननेको कहा है ॥
"ऐसो दुर्लभ जात शरीर ॥" बीजक, वसन्त ९ ॥
— इसमें नरदेहकी दुर्लभता बताया है ॥
"जारो जगका नेहरा ! मन बौरा हो ! ॥" बीजक, चाचर २ ॥
— इसमें जगत्के नेह, आसक्ति ही बन्धन कहा है ॥
"भरम हिण्डोला झूलै सब जग आय ॥" बीजक, हिण्डोला १ ॥
— इसमें भ्रम-वश आवागमन होना कहा है ॥

"जो चाहो निज तत्त्वको । तो शब्दहि लेहु परख ! ॥" बी० साखी २ ॥ इत्यादि ॥

और बीजकके साखी सबोंमें तो विशेष करके गुरुमुख निर्णय ही साक्षीरूपमें कहा गया है। तो भी पारखी साधु गुरुके सत्सङ्गमें रहि करके पढ़, सुन, गुनके विवेक करनेपर ही यथार्थ रहस्यका बोध हो सकता है। अन्यथा पारखबोध होना अति कठिन है ॥

और निर्णयसारका प्रमाणः— प्रथम शिष्य प्रश्नमें कहा हैः—

"कौन जमा है जगत मँझारा । जापर होत सकल बैपारा ॥
बिना जमा बैपार न होई । यह तो विदित जाने सब कोई ।।" इत्यादि ॥

इसके उत्तरमें सद्गुरुने कहा हैः—

"कहहिं कबीर सुनु शिष्य ! सयाना । यह सब भरम जाल विधि नाना ॥
जीव जमा एक साँच है भाई ! औरों सबै खर्च ठहराई ॥"इत्यादि॥

दोहाः— "कहहिं कबीर विचारिके, ये निर्णय परमान ॥
जीव जमा जाने बिना, सबै खर्चमें जान ॥" ४ ॥

फिर इसके बाद जीवके स्वरूपका निर्णय किया गया है। तहाँ कहा गया हैः—

दोहाः— "पाँच तत्त्व यह जगत सब, जानै सो जिव जान ॥
कल्पै सोई कल्पना, मानै सो अनुमान ॥" ६ ॥

प्रमाण साखीः-जागृतरूपी जीव है। शब्द सोहागा सेत ॥
जर्द बुन्द जल कुकुही। कहहिं कबीर कोइ देख ॥बी०-२५॥

फिर आगे उसीका निर्णय करते गये हैं। तहाँ तीन प्रकारके मानन्दी तत्, त्वं, असि, ये ही जीवको बन्धन बतलायके उसकी प्रश्नोत्तरमें विस्तार निर्णय किया है। ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान भी दो-दो प्रकारका कहा है। सामान्य, विशेष और सहउपाधि तथा निरउपाधिका भी भेद बताया है। परोक्ष तथा अपरोक्ष दो तरहकी अज्ञानके लक्षण वर्णन किया है। फिर जीव और अज्ञानको भिन्न-भिन्न ठहराया है। तैसे ही परोक्ष-अपरोक्ष ज्ञानके लक्षण भी दिखलाया है। ज्ञान और जानमें जो भेद है, सो भी दरशाया है।

तब विज्ञानका भेद बताया है। अद्वैत आत्मज्ञानियोंके सिद्धान्त कथन किया है। तहाँ सब जगत्को भ्रान्ति कहा है। इसी बीचमें स्थिति न पाके शिष्य उदास हो गया था, फिर सद्गुरुने उसे धैर्य देके समझाते गये। तीन पदके भासीक जीवको चौथा पारख पदमें ठहरनेको बतलाये हैं, फिर शिष्यने शङ्का करता गया, उसका समाधान सद्गुरुने किये हैं। ज्ञान सुषुप्ति और अज्ञान सुषुप्तिके भेद भी दिखलाये हैं। इस तरह अन्तमें शिष्यको पारखबोध प्रकाश किये हैं। फिर सद्गुरुके पूछनेपर शिष्यने कहाः— चौपाईः—

"अनजाने बन्धन गहि लीन्हा। जानि बूझि त्यागन सब कीन्हा॥"

फिर सद्गुरुने पूछे किः— चौपाईः—

"बन्धन सकल त्याग भौ भाई! पाछे बाकी काह रहाई? ॥
सो बाकीका करो विचारा। पावो सारशब्द टकसारा॥"

दोहाः— "जाते तीहुँ पद परखिया, परखा सब संसार॥
[५६] सो पारख ढिग है की नहीं, मो प्रति कहु निरुवार॥"

इसके उत्तरमें शिष्यने निश्चय पूर्वक कहा है किः—

"पारख मोंमें रहि गुरुराई! मोते नहिं कछु भिन्न देखाई॥
जो पारख मोंमें नहिं होखा। तो केहि भाँति परखतेउँ धोखा॥" इत्यादि॥

दोहाः— "मैं पारखमें होय रहा, पारख मोरे माहिं॥
भास अध्यास औ कल्पना, मोको पावत नाहिं॥" ५७॥

फिर सद्गुरुने उसी बोधको समझाके परिपुष्ट कर दिये हैं। तहाँ कहा हैः— चौपाईः—

"सो पारख तव रूप कहाई। जाते धोखा भरम नशाई॥
पारख भूमि अटल अविनाशी। सबके परे भिन्न नहिं भासी॥
पारख विचार अतिशय है झीना। जो जानै सो परख प्रवीना॥
पारखमा जो होय गयो थीरा। तिन पायो गुरु सन्त कबीरा॥
सर्वोपर गुरु परख रहाई। पारख पर कोई भूमि न झाँई॥" इत्यादि॥

अन्तमें रहनी-रहस्य धारण करनेको बताते हुए कहा है:—

"सदा विचार करहु तुम भाई ! ज्यों लों देह बिखरि नहिं जाई ॥
पारख ऊपर थिर होय रहना । सकल परखना ना कछु गहना ॥
वर्तमानमें वर्तो भाई ! भूत भविष्य सब देउ बहाई ॥
सब निर्णयको जो है सारा । सोई जानो परख विचारा ॥
सो अब सकलों तोहि बतावा । करु विचार जो तुम मन भावा ॥" इत्यादि ॥

ऐसे निर्णय वर्णन करके निर्णयसार ग्रन्थ समाप्त किया है। उसका संक्षेपमें यही उपरोक्त सार है ॥

और द्वितीय ग्रन्थ वैराग्य शतकका प्रमाण:—

पहिला दोहा गुरु वन्दनाका है:—

दोहा:— "पूरण परख प्रकाश गुरु, सुख स्वरूप कबीर ॥
बन्दत हौं तब चरण युग, हरण कालकी पीर ॥" १ ॥

दोहा २ से २३ तक गुरुमुख निर्णय यथार्थ वैराग्यका वर्णन भया है ॥ जैसे कि:—

"काल पीर तिनकी मिटी, जिनको दृढ़ वैराग ॥
तेहि बिन जीव सब दुःखित अति, पचि-पचि मरहिं अभाग ॥ २ ॥
बिन वैराग्य न मुक्ति है, बिन वैराग्य न ज्ञान ॥ ८ ॥
बिन वैराग्य न भक्ति है, बिन वैराग्य न-ध्यान ॥" इत्यादि ॥

और दोहा २४ से २८ तक शास्त्रोक्त वैराग्य कहा है। जैसे:—

दोहा:— "बसवो भलो एकान्तको, छाड़ि सकलकी आश ॥
जित अविवेकी नर सकल, कोई न आवै पास ॥" २४ ॥

दोहा २९ × ३० में गुरुमुख निर्णय वैराग्य वर्णन है:—

दोहा:— "अनइच्छा सो मिलत है, भोजन वस्त्र विहार ॥
सोई लेत है सुखित होय, राखत कछु न अधार ॥" २९ ॥

फिर दोहा ३१ से ४३ तक शास्त्रोक्त वैराग्यका कथन भया है। और ४४ से ४५ तक वेदान्तके वैराग्य बताया गया है। दोहा ४६ से ५१ तक मन-मानन्दीका निर्णय है। फिर ५२ से १०२ तक गुरुमुखसे वैराग्यका निर्णय भया है। और १०३ से १२१ तक

शास्त्रोक्त वैराग्यमें वर्षा-ऋतु, शरद्-ऋतु, वसन्त-ऋतु आदिका व्यवहार कहा गया है । जैसेः—

दोहाः— "कहा मन्दिर सम्पति कहा, कहा त्रियनके भोग ॥
ये सबहीं छिन्न भङ्ग हैं, अचल समाधी योग ॥"१२१॥

और दोहा १२२ से १२७ तक गुरुमुखसे निर्णय कहिके ग्रन्थ समाप्त किया गया है । यथाः—

दोहाः—"ना काहू सो माँगना, ना काहूको देन ॥
अनइच्छा जो कछु मिलै, सो भोजन करि लेन ॥"१२२॥
"पूरण अगम अगाधको, थाह लहै नहिं कोय ॥
सो गुरु पारखते निकट, बिन गुरु कछु नहिं होय ॥"१२७॥

इस प्रकारसे वैराग्यशतकमें सब तरहके वैराग्यका भेद दरशाया गया है ॥

और तृतीय ग्रन्थ एकईस प्रश्न श्रीरामसाहेबकृत मूल भाषामें था, सो गुरुवा लोगोंके ऊपर सिद्धान्त पकड़के प्रश्न किया गया है । उसका उत्तर गुरुवा लोग दे नहीं सकते हैं। अर्थ पढ़ानेकी सुभिताके लिये मूलका भाव कायम रखके हमने दोहामें रचना कर दिया है । तहाँः—

प्रथम बन्दनामें ३ साखी अलग है, फिर दोहा १ से ४० तक, तथा चौपाई ४१ से ६१, छन्द १ सोरठा २, अन्तकी दोहा ५ समेत् ६९ तक पद रचना करके २१ प्रश्न ग्रन्थ समाप्त किया गया है ॥

इसमेंका आदि-अन्तके प्रश्नके नमूना सुनिये !:—

"ईश ज्ञान बिन जीव नहीं, ईश बिना जीव ज्ञान ॥
उभय सम्बन्ध वर्णन किया, एकता कैसे मान ? ॥ २ ॥
निराबेब निरीह विभु, परब्रह्म कहु आप ॥ ३२ ॥
इच्छा अविद्या ताहिं पुनि, वर्णन कबसे थाप ? ॥" इत्यादि ॥

चतुर्थ ग्रन्थ "पारख विचार" किसी पारखी सन्तने शिष्यकी परीक्षा करके वह गुरु-शिष्य सम्वाद, वार्ताको भाषामें लिखके

रखा था। सो उसे भी सन्तोंको पढ़ानेकी अनुकूलताके लिये मूल भाषाके भावको कायम रखके हमने साखीमें पद रचना करके खुलासा अर्थ समेत् लिख दिया है। उसमें प्रथम वन्दना आदिमें ९ साखी अलग ही कहा है। फिर ग्रन्थ शुरू हुआ है। सो उसका नमूना ऐसा है किः—

सोरठाः— "तुम हो शिष्य सुजान, जो पूछूँ मों प्रति कहो ॥
तूँ है कौन पिछान, को है याहि देहमें ? ॥ ३ ॥
पारख सबके मैं करौं, पारखी है मम नाम ॥
परख हंस यहि देहमें, पारखी मैं तन ठाम ॥" ६ ॥

फिर परीक्षक सद्गुरु जैसा-जैसा पूछते गये, तैसा-तैसा बोधवान् शिष्यने बताता गया। और अन्तमें सातवाँ प्रश्नोत्तर यह हुआ किः—

साखीः— "हे शिष्य ! जब चोला नशै, तुम बासा किहिं ठौर ॥
भू जल तेज पवन नभ, अन्तरिक्ष कर गौर ॥ ४४ ॥
पारख प्रकाशी सद्गुरु ! साहेब सत्य कबीर ॥
दया दृष्टि प्रभुकी भई, टूटी जन्मृति पीर ॥ ४६ ॥
पाँच तत्त्व जड़ भिन्न हैं, जाति मिले नहिं एक ॥
याते उनमें रहत नहीं, मुक्त जीव सविवेक ॥"५३॥

इत्यादि निर्णय वर्णन करके साखी १ से ११२ तकमें पारख विचार ग्रन्थ समाप्त हो गया है॥ इसके अन्तमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब और प्राचीन पारखीसद्गुरुकी विशेषता वर्णनमें साखी १ से ३२ तक कहा गया है ॥

पञ्चम ग्रन्थ श्रीकबीरपरिचय साखी है। उसके प्रथम साखीमें कहा हैः—

साखीः— "कबीर काहू अस कही, कान काग लिये जाय ॥
कान न टोवै बावरा, खोजै दहुँ दिश धाय ॥" १ ॥

इस ग्रन्थमें विविधि प्रसङ्गोंके ऊपर प्रकाश डाला गया है। मत-मतान्तरोंका कसर-खोट दरशाकर निर्णय किया गया है। उसमेंका बीच-बीचके चुनी हुई बारह साखी निम्न प्रकारसे कहा हैः—

साखीः—"कोटि साधना करि मरे, ब्रह्म आप जो होय ॥
शब्दके मारे सब मरे, शून्यमें गये बिगोय ॥ १० ॥
कबीर व्यापक पद्मिनी, व्याप रही संसार ॥
ते सुत जाये ब्रह्म एक, ताहि कहै कर्तार ॥ १८ ॥
झूठ जवाहिरको बनिज, परै सो तबलग पूर ॥
जबलग मिलै न पारखी, घनपै चढ़ै न कूर ॥ ४९ ॥
अन्धा हगै पहाड़ चढ़ि, मोहि न कोई देख ॥
कहहिं कबीर पुकारिके, आप सरीखे लेख ॥ ८० ॥
कबीर ब्रह्म पिशाच यह, जब्बर बड़ा मुँह जोर ॥
बड़े-बड़े ओझा झारन लगे, बकन लागे तेहि ओर ॥ ८६ ॥
एकोहं दुतिया नहीं, महापुरुष कहैं बाक ॥
जो दिलमें दुतिया नहीं, कासों बोलतहिं ताक ॥ ११९ ॥
कबीर शङ्कर औ व्यासको, खतरा भयो नसल ॥
जगत प्रतिष्ठा कारणे, आतम कहा असल ॥ २११ ॥
सुनै गुनै देखै कहै, चीन्है नहिं गुण रूप ॥
कहहिं कबीर पारख बिना, परा प्रकाश भ्रम कूप ॥ २१४ ॥
सबकी उतपति जीव सो, जीव सबनकी आदि ॥
निर्जिवते कछु होत नहीं, जीव हैं पुरुष अनादि ॥ २५४ ॥
जीव बिना नहिं आतमा, जीव बिना नहिं ब्रह्म ॥
जीव बिना शिवो नहीं, जीव बिना सब भर्म ॥ २५६ ॥
आतम औ परमातमा, ईश ब्रह्मलों जोय ॥
जीव बिना मुरदा सकल, बूझे बिरला कोय ॥ २५७ ॥
जीव जमा सत्य साँच है, कहहिं कबीर पुकार ! ॥
जीव जमा जानै बिना, महा कठिन जन्म जार ॥ ३४६ ॥

यहाँ आके श्रीकबीरपरिचय साखी ग्रन्थ समाप्त हो जाता है ॥

और अन्तमें छठवाँ ग्रन्थ ग्यारह शब्द है। एक-एक बात एक-एक शब्द प्रकरणमें दरशायके ग्यारह बात ग्यारह प्रकरणके

अनुसार कहकर निर्णयसे वर्णन किया है। सब प्रकारसे पारख सिद्धान्तको ही स्थापित किया है। इस तरह यह ग्रन्थ आदिसे अन्ततक पूर्ण हुआ है ॥

पञ्चकोश। समष्टिसार। मानुष विचार। गुरुबोध। सारशब्द निर्णय। सत्यशब्द टकसार। सत्ताईस रमैनी। निर्णयसार। वैराग्यशतक। श्रीकबीरपरिचय साखी। ग्यारह शब्द। एकईस प्रश्न। और पारख विचार। इतने सब ग्रन्थ मूलमें एकत्र मिलायके पञ्चग्रन्थी नामसे श्रीकाशीसाहेबने बम्बईमें छपाने दिये थे। सो वि० सं० १९६५ में बम्बईमें खेमराजके प्रेसमें छपके पुस्तक प्रथम प्रकाशित हुआ था। उसी मूलको लेके हमने सद्गुरुकी दयासे उपरोक्त सब ग्रन्थोंका विस्तारयुक्त टीका लिखके समाप्त किया। तहाँ हमने सबोंके लिये सुभिताकी दृष्टिसे उसको दो जिल्दोंमें विभक्त किया है। प्रथम जिल्दमें टीका सहित २७ रमैनी तक पञ्चग्रन्थी मात्र पूरा रखा गया है। तथा द्वितीय जिल्दमें टीका सहित यह संयुक्त निर्णयसारादि षट् ग्रन्थोंको अलग ही एकत्र रखा गया है। फिर षट् ग्रन्थोंको भी चार जिल्दोंमें पृथक्-पृथक् भी बनाने लगा दिया गया है। जिसमें पाठकगण रुचिके अनुसार ग्रन्थ लेके पठन, मनन कर सकेंगे ॥

(१) वि० सं० २००८ ज्येष्ठ-शुक्ल १२, शनिवार, ता० १६।६।१९५१ ई० सन्‌के रोज प्रातःकालमें प्रथम ग्रन्थ— "निर्णयसार" मूल पदोंके टीका लिखना प्रारम्भः किया था, सो वि० सं० २००८ श्रावण-कृष्ण अमावास्या गुरुवार, ता० २। ८। १९५१ ई० सन्‌के रोज सन्ध्या समयमें इसका टीका लिखना सम्पूर्ण हुआ है ॥

(२) वि० सं० २००८ श्रावण-शुक्ल ५, मङ्गलवार, ता० ७।८।१९५१ ई० सन्‌के दिन प्रातः समयमें द्वितीय ग्रन्थ— "वैराग्यशतक" मूलपदोंके टीका अन्य ग्रन्थोंके प्रमाण सहित लिखना शुरू किया था, सो वि० सं० २००८ आश्विन-कृष्ण ९, सोमवार, ता० २४।९।१९५१

ई० सन्‌के रोज सायं सममें टीका लिखना सम्पूर्ण हुआ ॥

(३) वि० सं० २००८ आश्विन-कृष्ण १०, मङ्गलवार, ता० २५।९।१९५१ ई० सन्‌को तृतीय ग्रन्थ— "एकईस प्रश्न" की टीका पद्य संशोधन आदि लिखने लगा था, सो वि० सं० २००८ आश्विन कृष्णाके १४, ता० २९। ९। १९५१ ई० सन्‌को टीका लिखके २१ प्रश्न भागको समाप्त किया ॥

(४) वि० सं० २००८ आश्विन-कृष्ण अमावास्या रविवार, ता० ३०। ९। १९५१ ई० सन्‌के रोजसे चतुर्थ ग्रन्थ—"पारख विचार" के टीका पद्य सुधार आदि लिखना शुरू किया था, सो वि० सं० २००८ आश्विन-शुक्ल ४, गुरुवार, ता० ४। १०। १९५१ ई० को यह ग्रन्थकी लिखाई समाप्त हुई ॥

(५) वि० सं० २००८ आश्विन-शुक्ल ६, शनिवार, ता० ६। १०। १९५१ ई० को प्रातःकालमें—पञ्चम ग्रन्थ— "श्रीकबीरपरिचयकी साखी" मूल पदोंकी टीका लिखना प्रारम्भः किया था, सो वि० सं० २००८ कार्तिक-शुक्ल १०, गुरुवार, ता० ८। ११। १९५१ ई० को जाके टीका लिखना समाप्त किया ॥

फिर उसी बीचमें वार्षिकोत्सव तिथी-मेला आदिके विशेष कार्य सन्मुख आ जानेसे बाकीके टीका लिखना बन्द किया गया था। पश्चात् अन्य-अन्य कार्यमें ही समय बीतता गया। तथा कुछ दिनके लिये बाहर प्रवासमें भी जाना पड़ा। तहाँ चार महीने दश दिन व्यतीत होनेपर फिरसे बाकीके टीका लिखनेकी मौका मिल गया। तब फिर—

(६) वि० सं० २००८ चैत्र-कृष्ण ८, बुधवार, ता० १९। ३। १९५२ ई० सन्‌के रोज प्रातःकालमें अवशिष्ट—षट्ग्रन्थ— "ग्यारह शब्द" मूल पदोंकी टीका भी लिखना प्रारम्भः किया गया था, सो सद्गुरुकी पूर्ण दयासे— वि० सं० २००९ चैत्र-शुक्ल १०, शनिचार, ता० ५। ४। १९५२ ई० सन्‌के दिन सन्ध्या समयमें जाके टीका लिखना सम्पूर्ण-समाप्त

हो गया है। इस प्रकारसे इन षट्ग्रन्थोंका टीका लिखना अथक परिश्रम उठा करके समाप्त हुई हैं, सो जानिये ! ॥

यह सब साधु सद्गुरुके ही कृपा दृष्टिका अमृत फल है। गुरुमुखसे जो बोध प्रकाश मुझे हुआ, सोई मूलके भाव सुरक्षित रखके टीकामें निर्णयको खुलासा करके दरशा दिया गया है। हमने इन सब ग्रन्थोंको "स्थान बुरहानपुर श्रीकबीर निर्णय मन्दिर, नागझिरीमें आकरके आजसे दश-ग्यारह वर्ष पूर्व ई० सन् १९४२ में परमपूज्य आचार्य सद्गुरु श्रीलालसाहेबजीसे अकेले ही भली-भाँति सन्ता पाठ लेते हुए अर्थ पढ़ा था। गुरुमुखसे उपदेश भाव श्रवण कर मनन करके ग्रन्थोंके समस्त भावको हृदयङ्गम किया था। सोई आज लेखरूपमें प्रगट करके आप लोगोंके समक्ष धर दिया हूँ ! निर्णयसार और वैराग्यशतकमें जहाँ-जहाँपर उपयुक्त श्लोकोंका प्रमाण आता हुआ मिला, तहाँ-तहाँपर यथा-स्थानमें श्लोक आदि भी उद्धृत करके रख दिया गया है। जिससे पाठकोंको अन्य स्थानोंके उपयुक्त बात भी मालूम हो जायगा। और पदोंमें आया हुआ दृष्टान्तोंका भी सम्पूर्ण परिचय खुलासा कर दिया गया है। जिससे सबोंको भाव समझनेमें आ जायगा ॥

और श्रीकबीरपरिचयकी साखी ३४६, तथा ११ शब्द, समग्र मूल हिन्दी पदोंमें श्रीगुरुदयालसाहेबने स्वयं रचना किये थे। वह उनके अनुभविक निर्णय वाणी हैं। उसके पूर्व कहीं संस्कृत श्लोकोंमें कोई कबीरपरिचय बना नहीं था। यह वार्ता विवेकी सन्त-महात्मा तथा बड़े-बूढ़े साधु वर्ग अच्छी तरहसे जानते ही हैं। किन्तु, पश्चात् कुछ लोगोंने उस बातपर आवरण डालनेका प्रयत्न भी किये हैं। उसके लिये प्रमाण यह मिलता है कि—

"अथ कबीरकृत कबीर-परिचय। जिसको फतुहा स्थान, जिला—पटना निवासी श्रीमहन्त ज्ञानीदासजीने श्रीपण्डित रामरूप पाण्डेयसे संशोधित कराकर छपवाया, और प्रकाशित किया ॥ १९०६ ॥"

इस प्रकार छपा हुआ ग्रन्थ मिलता है। जिसमें पहिले ऊपरमें "ॐ" लिखा है। फिर "नमः परमात्मने ॥" "श्रीगणेशाय नमः ॥" कबीरकृत – कबीरपरिचय। ऐसा लिखके तब मूलमें श्लोक और मूल साखीको टीकारूपमें उल्टायके नीचे रख दिया है। जैसे कि:— उसका नमूना देखिये ! निम्न प्रकारसे है:—

मूल— कश्चित्कर्णं गृहीत्वा ते काकोयातीद मब्रवीत्।
प्रमादी कर्णमस्पृष्ट्वा दिक्षु धावति वीक्षितुम् ॥ १ ॥

टीका—कबीर काहू अस कह्यो, कान काग लिये जाय ॥
कान न टोवै बावरा, खोजे दहुँ दिशि धाय ॥ १ ॥

मूल— आत्मा नास्ति विना जीवं नापि ब्रह्म ततोबिना।
बिना जीवं शिवो नास्ति सर्वंजीवं विनाभ्रमः ॥ २५० ॥

टीका—जीव बिना नहिं आतमा, जीव बिना नहिं ब्रह्म ॥
जीव बिना शीवो नहीं, जीव बिना सब भ्रम ॥ २५० ॥

मूल— एकं तु वपनं कर्म वहुवीजं भवेद्यतः।
एकं च भर्ज्जनं कर्म न यत्राऽप्यङ्कुरोदयः ॥ ३२५ ॥

टीका—एक कर्म है बोवना, उपजै बीज बहूत ॥
एक कर्म भूजना जहाँ, उदय न अंकूर सूत ॥ ३२५ ॥

बस, यहाँ ही साखी खतम करके बाकीके साखी भी गायब कर दिया है। और तहाँ शब्द भी ९ तक ही रखा है। भाषाके शब्द नं० ९ और ११ इन दोनोंको निकाल दिया है। तथा संस्कृत श्लोकोंमें शब्दोंका भी उल्था किया है। उसमेंका एक नमूनारूपमें सुनिये !—

॥ ❀ ॥ मूल ॥ ❀ ॥

यदा रामादीनां करहतजनोमोक्षमयते। महाकोपं कृत्वा परशुधर-रामेण वहुशः ॥ निहत्याजौ राजोऽनृपमिदमकारित्रिभुवनं, श्रुतो-नैषां मोक्षो जगदिति च मोक्षं निगदति ॥ १ ॥

बिना कोपात्कोऽपि म्रियतइह नापि प्रतिहतोयदाकोपान्मुक्तिः कथयति तदादेः किमुशमम्। त्यजन्तुक्रोधादीनिति वदति रामादि-

सुजनो, मृते घातान्मुक्तिर्यदि ननु दयां किं द्रढयति ॥ २ ॥

विनेशं जन्माद्यं जगति न भवेत्कस्यचिदपि, नकोऽप्यत्रामुक्तो-जननमरणे चेद्भगवतः। अहो मोक्षं ब्रूते निहननतएवं तु विषयाधि-कारी जानीते जगदपि तथा किन्न तरति ॥ ३ ॥ इति ॥ ८ ॥

॥ ❀ ॥ टीका ॥ ❀ ॥

सन्तो ! मुक्ति इहे सब गावै।
राम कृष्ण अवतार आदिके, हाथ मरे सो पावै ॥
परशुराम बहुबार क्रोधकरि, क्षत्रिन्ह माय्यो सबहीं।
क्षत्री मारि निक्षत्री कीन्हों, मुक्ति सुना नहिं कबहीं ॥
क्रोध बिना कोउ मरै न मारै, मुक्ति क्रोधते पावै।
तो काहे यह काम क्रोधको, त्यागन ईश बतावै ॥
अपने मुखते राम कृष्ण कहे, काम क्रोध तजु भाई !
मारे मरे मुक्ति होवै तो, काहेको दया दृढाई ॥
बिना ईश जगमें काहूके, जन्म मरण नहिं होई।
जो जग उतपति प्रलय ईशते, तो अमुक्त नहिं कोई ॥
मारे पारे मुक्ति बतावे, विषयाके अधिकारी।
मारे पारे सब जग जानै, कहहिं कबीर पुकारी ॥ ८ ॥

॥ इति टीका शब्द ८ ॥

अब विचार दृष्टिसे देखिये ! जिसको टीकारूपमें साखी वा शब्द लिखा है, वही प्रथमका बना हुआ सच्चा मूल है; और मूलरूपमें लिखा हुआ संस्कृतके श्लोक जो हैं, सोई उल्था टीकारूपमें पीछेका बना हुआ अनुवाद है। उसे पं० रामरूप पाण्डेयने बनाया है, ऐसा मालूम पड़ता है; और ग्रन्थकर्ता श्रीगुरुदयालसाहेबके असली नामको भी उन्होंने ग्रन्थमें प्रगट किया ही नहीं। खाली "कबीरकृत कबीरपरिचय" नामसे ग्रन्थ छपाया है। ऐसा उलट-फेर कर दिया है। तो उनको यह बताना चाहिये कि— कौन कबीरने कब कहाँपर कबीरपरिचय ग्रन्थ संस्कृत श्लोकोंमें बनाये थे ? और

उसमें साखीरूप टीका कब, किसने किया ? इसका पूरा सबूत या प्रमाण दीजिये ! नहीं तो यह आपके छिपानेसे छिप नहीं सकता है, आप लोग और उन पण्डितका ही यह विपरीत कर्तव्य है । सो इस बातको तो वह उसरूपमें छपा हुआ ग्रन्थ ही जाहिर कर रहा है । जिज्ञासु सन्त समाजोंके हित-लाभ तो असली हिन्दी मूल साखी, शब्दोंसे ही होगा । और नकली उक्त संस्कृत श्लोकोंसे तो कुछ भी लाभ होनेकी आशा नहीं है । अतः उसे व्यर्थका अनुचित प्रयास समझकर त्यागने योग्य है ॥

अक्सर पण्डित लोग छली, कपटी, धूर्त ही होते हैं । उन्होंके करनीसे तो ऐसे ही जहाँ-तहाँ मालूम पड़ता है । उसके लिये कुछ बातका घटनाएँ घट चुकी हैं । एकने तो उपरोक्त प्रकारसे कबीर-परिचय ग्रन्थमें विपरीत कर डाला है । दूसरे, साधु महाराजदासजीने भी वैसे ही विपरीत बर्ताव किया है । स्थान बुरहानपुर गद्दीमें आके वि० सं० १९८६—८७ में सद्गुरु आचार्य श्रीलालसाहेबजीसे तथा श्रीभगवान् साहेबजीसे बीजक और पञ्चग्रन्थीका अर्थ गुरुमुखसे श्रवण करके पढ़ा-गुना था । जिसके प्रतापसे पञ्चग्रन्थी, और निर्णयसार, वैराग्यशतक, श्रीकबीरपरिचय साखी तथा शब्द आदिमें संक्षेपमें टीका किया और अपने मनमतिसे ले जाके बड़ौदामें छपा भी दिया । परन्तु, सच्ची बातको तो उन्होंने बिलकुल छिपा ही दिया है । पञ्चग्रन्थीका टीका छपाया उसमें तो बुरहानपुरमें जिन साहेबसे अर्थ पढ़ा था, उनके किञ्चित् भी नामों-निशानतक भी रखा नहीं है । और निर्णयसारादिके टीका भूमिकामें भी बात गुप्त ही रखा है । और श्रीकबीरपरिचयकी भूमिकामें यत्किञ्चित् सूचना लिखा है, सो भी अधूरा ही है । "मैंने श्रीलालसाहेबजी, तथा श्रीभगवान् साहेबके आश्रय-शरणमें रहिके गुरुमुखसे अर्थ पढ़ाई करके फिर वही भाव लेकर टीका लिखा हूँ", ऐसा खुलासा न लिख करके वास्तविकताको छिपाके अपने आप जानकार होनेका

अभिमान लेकर उक्त "साहेब दोनोंके सम्मति, सत्सङ्गादि सहायतासे मैंने सरल व्याख्या की है ॥" इत्यादि थोड़ासा लिखा है, जो सब कोई भाव समझ नहीं पाते हैं। और गया निवासी श्रीरामरहससाहेबको भी स्वार्थ बुद्धिसे काशीनिवासी लिखके बात उलटाया है। ऐसे मिथ्यावादी और अकृतज्ञ होनेका उन पं० जीने परिचय दिया है ॥

बम्बई जोगेश्वरी गुफा निवासी श्रीनारायणसाहेबके शिष्य, साधु गरीबदासजी जिन्हें धन्यवाद देके तीनों ग्रन्थोंमें राघवदासजीने धन्यवाद प्रकाश किया है। वे सन्त उनके साथमें बुरहानपुरमें सहपाठी रहे, उनकी पूरा हाल तो वे ही जानते हैं। यहाँ इतने परसे जिज्ञासु-जन गुप्त बातकी यथार्थ हालको समझ सकेंगे। और अपने कर्तव्य पालन करनेमें कभी चूक नहीं करेंगे, अतः सदा सावधान रहना चाहिये ॥

और तीसरे, चौथे, पाँचवें इत्यादि वर्तमानके वे कबीरपन्थी कहलानेवाले पण्डित, शास्त्री वर्ग हैं, जो विद्या वा अविद्याके मदमें विवेकहीन हो करके बीजक ज्ञानको हंसवत् न्यारा-न्यारा निर्णय न करके गोलमाल कर वेदान्त आदिके सिद्धान्तमें मिश्रण वा समावेश करके अन्यायी, अविचारी, भ्रमिक, पक्षपाती ही बने पड़े हैं ॥

जैसे कि मदके बारेमें सद्गुरुने कहा भी है:—

बसन्तः—सबहीं मदमाते कोई न जाग। सङ्गहि चोर घर मूसन लाग ॥१॥
योगी माते योग ध्यान। पण्डित माते पढ़ि पुरान ॥२॥
तपसी माते तपके भेव। संन्यासी माते करि हँमेव ॥३॥
मोलना माते पढ़ि मुसाफ। काजी माते दै निसाफ ॥४॥
संसारी माते मायाके धार। राजा माते करि हङ्कार ॥५॥
माते शुकदेव उद्धव अक्रूर। हनुमन्त माते ले लंगूर ॥६॥
शिव माते हरि चरण सेव। कलि माते नामा जैदेव ॥७॥
सत्य-सत्य कहैं सुमृति वेद। जस रावण मारेउ घरके भेद ॥८॥

चञ्चल मनके अधम काम । कहहिं कबीर भजु राम नाम ॥९॥
॥ बीजक, वसन्त १० ॥

इस प्रमाणसे चञ्चल मनके अधम काम जीवोंको खानी-वाणोमें ही भटकानेका हो रहा है। बिना पारख मनके फन्दासे कोई छूटे नहीं, और छूट सकते भी नहीं। उसीमें अरुझे ही पड़े रहते हैं॥

॥ ❀ ॥ बीजकके सार शिक्षा संक्षिप्त वर्णन ॥ ❀ ॥

पाँच तत्त्व जड़ और देहधारी अनन्त चैतन्य जीव यह स्वयं सिद्ध अनादि नित्य पदार्थ हैं। परन्तु गुरुवा लोगोंने कल्पनासे जो जगत्की उत्पत्ति माने हैं, सो भ्रममात्र है। तहाँ बीजकमें कर्तावादीसे सद्गुरुने पूछा है कि:—

"प्रथम आरम्भ कौनको भयऊ ? दूसर प्रगट कीन्ह सो ठयऊ ? ॥" बी० र० ३ ॥

— जो तुम लोग जगत्के उत्पत्ति मानते हो, तो यह बतलाओ कि— सबसे पहले वा प्रथम किस वस्तुका आरम्भ हुआ ? शुरूमें क्या वस्तु बनी ? जड़ और चैतन्य दोनों नहीं थे, तो वह कर्ता ही कैसा था ? कहाँ था ? दूसरा जगत्कर्ता कहाँ पर ठहरा था ? और फिर दूसरा जगत्को लाके उसने कहाँसे कैसे प्रगट किया ? फिर उसे कहाँ पर ठहराया ? और फिर प्रथमारम्भमें जगत् नहीं था, ईश्वरादि कर्ताने ही इसे उत्पन्न किया है, ऐसा तुमने कैसे जाना ? इन शङ्काओंका समाधान ठीक-ठीकसे तुम लोग कर नहीं सकते हो। इसीसे तुम लोग सब भूल-भ्रमसे धोखेमें ही पड़े हो। जगत् अनादि है, इसका कर्ता कोई नहीं है। परन्तु, कर्ता ब्रह्म, ईश्वर, खुदादिका पक्ष कर्तावादी लोगोंको बहुत दृढ़ हो रहा है॥

"वर्णहु कौन रूप औ रेखा ? दूसर कौन आहि जो देखा ? ॥" बी०र० ६ ॥

— अरे भाई ! तुम लोग जो जगत् कर्ताको मानते हो, तो कहो— उसका रूप और रेखा-चिह्न कौन है ? कैसा है ? सो वर्णन करो। और ईश्वर, ब्रह्म, खुदादिको जो— जिसने देखा है, सो दूसरा

कौन है ? इसका विचार करो। जो प्रथम देखनेवाला भी नहीं था, तो उसने बिना देखे जगत्कर्ता कोई है, ऐसा कैसे बताया ? यदि देखनेवाला वह कोई था, तो फिर जगत् नहीं था, कहना गलत हो गया। यदि जगत् नहीं था, तो वह कहाँपर रहिके देखता था ? यदि बिना देखे ही कल्पनासे कहा, तो फिर सरासर झूठी बात हो गई ॥

साखीः—"यह जग जब ना हता, तब रहा एक भगवान ॥
जिन देखा यह नजर भरी, सो रहेऊ कौन मकान ? ॥
कबीर जब दुनिया नहीं, तब था एक खुदाय ॥
जिन यह पेखा नजरसे, सो केहि ठौर रहाय ॥"
॥ श्रीकबीरपरिचय साखी १११ । ११२ ॥

और कहा हैः—

साखीः— जहिया कितम ना हता । धरती हती न नीर ॥
उत्पति-परलय ना हती । तबकी कहैं कबीर ॥बी०सा०२०३॥

— अर्थात् जब पृथ्वी, जलादि जगत् कुछ नहीं था, उत्पत्ति-प्रलय भी नहीं था, तब परब्रह्म-परमात्मा एक निर्गुण, निराकार था, उसीकी इच्छासे जगत्की उत्पत्ति-प्रलय हुई और होती है, इत्यादि तबकी कल्पित वाणी, कहैं कबीर = भ्रमिक गुरुवा लोगोंने ऐसे-ऐसे कहा है। सो नरजीवोंने अपने मन-मानन्दीसे कल्पना बढ़ा करके जब-तबके वाणी कहे हैं और कह रहे हैं। अतः वह भ्रम कल्पना मिथ्या है, जीव ही सत्य है, ऐसा जानना चाहिये ॥

"तहिया होते पवन नहिं पानी । तहिया सृष्टि कौन उत्पानी ॥"बी०,र०७॥

— तब प्रथम पवन, पानी आदि पाँच तत्त्व जगत् नहीं था, तब कहो भला ! उस वक्त यह संसारकी चराचर सृष्टिको कौन, किसने, कैसे, कहाँसे, कहाँपर उत्पन्न किया ? उपादान कारणके हुए बिना तो कोई कार्य बन ही नहीं सकता है। पाँच तत्त्वके बिना वह कर्ता रहता भी कहाँ पर था ? फिर साकार जगत्को निराकारसे

कैसे उत्पन्न किया ? बिना विचारे असम्भव मिथ्या कल्पनामें ही गाफिल पड़े हैं ॥

"प्रथम चरण गुरु कीन्ह विचारा। कर्ता गावैं सिरजनहारा ॥
कर्महि कै कै जग बौराया। सक्ति भक्तिकै बाँधेनि माया ॥" बी० र० ४ ॥

— अर्थात् ब्रह्मादि गुरुवा लोगोंने प्रथम चरणरूप नरदेहमें आयके बिना पारख मन-कल्पनासे ऐसा विचार किये कि— जो यह चराचर जगत् दिख रहा है, तो इसका सिर्जनहार कोई कर्ता पुरुष परमेश्वर-परमात्मा अवश्य होगा, ऐसा मानके फिर उसीको महिमा करके अनुमानकी वाणी गाये, और वैसे ही अभी गा रहे हैं ॥ फिर उसी कल्पित कर्ताका दर्शन प्राप्तिके लिये नाना कर्म-कुकर्मोंको ही कर-करके जगत्के नरजीव बौराय गये। मायारूपी गुरुवा लोगोंने और स्त्रियोंने अपने-अपने शक्ति अनुसार भक्तिरूपी वाणी जालोंमें और भग-भोगादि खानी जालोंमें फँसाके शक्तिमान् नरजीवोंको खूब बाँध दिये वा अरुझा दिये। बिना विवेक उसी जालोंमें सब फँसे और फँस रहे हैं ॥

"कहाँलों कहौं युगनकी बाता। भूले ब्रह्म न चीन्हैं बाटा ॥" बी० र० ५ ॥

—सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं:— हे सन्तो ! युगानयुगकी भ्रम-भूलकी बात मैं कहाँतक कहूँ ! जगत् अनादि कालका है। परन्तु, युगानयुग वा परम्परासे ही जगत्कर्ताकी कल्पना सबोंको दृढ़ होता ही चला आ रहा है। और "अहंब्रह्म, त्वं ब्रह्म, तत्त्वमसि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म" इत्यादि प्रकारसे ब्रह्म बनके वा ब्रह्म कहलायके निज सत्स्वरूपको भूले पड़े हैं। इसीसे बन्धनोंका मार्ग और हंस पारख स्थितिमें पहुँचानेका मार्गको यथार्थ रीतिसे चीन्हते, पहिचानते नहीं। अतः चक्कर खायके भ्रम-भूलके कुमार्गमें जाके भवबन्धनोंमें ही भटक रहे हैं, बिना पारख ॥

"झूठेहि जनि पतियाउ हो ! सुनु सन्त सुजाना ॥" बी०, श० ११३ ॥

—सद्गुरु कहते हैं:— हे सुजान सन्तो ! मेरे कहा हुआ सत्य

निर्णयकी वचनको श्रवण, मनेन करो। झूठे गुरुवा लोगोंकी कही हुयी झूठी वाणीको ही बिना विचारे विश्वास वा प्रतीत मत करो। हे मनुष्यो! मिथ्या मानन्दीके प्रतीति त्याग करके पारखी सन्त सुजानकी सत्य उपदेशको ध्यानसे सुनो, गुनो, वैसे चलो, तब तुम्हारे हित-कल्याण होगा, ऐसा जानो!॥

"सार शब्दसे बाँचिहो! मानहु इतबारा हो!॥
अमल मिटावो तासुका पठवों भवपारा हो!॥
कहहिं कबीर तोहिं निर्भय करों॥
परखो टकसारा हो!॥" बीजक, शब्द ११७॥

—सद्गुरु कहते हैं:—हे मुमुक्षुओ! सारशब्दसे पारखबोध ग्रहण करो, उसीसे तुम लोग यम फन्दोंसे बचोगे। सारशब्दको विश्वासपूर्वक दृढ़ निश्चयसे मान लो, और पारख बलसे खानी-वाणीकी अमल = आदत, आसक्ति, स्त्री और गुरुवा लोगोंकी मोह, उसका सब विकार अभी नरदेहमें हो, तबतक परख करके मिटाओ। तब मैं तुम्हें, भवपार = आत्मा कल्पना और विषयादिसे परे पारख-स्थितिमें भेज देता हूँ, जहाँ पहुँचनेपर नित्य जीवन्मुक्त हो जाता है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—हे सन्तो! सब मोटी-झीनी भय, भूल, बन्धनोंसे छुड़ाकर मैं तुम्हें गुरुपदमें ठहरा करके निर्भय कर देता हूँ! मेरे उपदेशरूप टकसार = बीजकको सत्सङ्गमें ठहर करके पढ़ो, सुनो, गुनो, कण्ठ करो, और बीजकके रीतिसे हंस पारखी होके सकल खानी-वाणी जालोंको परखो और उसके विकारको हटाओ, जिससे तुम निर्भय हंस जीवन्मुक्त हो जाओगे। तब तुम्हारा सदाके लिये भव-दुःखका अन्त हो जायगा, सो जानो॥

पारखी सद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेबका सत्य निर्णयका उपदेश, सो इस प्रकारसे हुआ है। सबके सिद्धान्त कसर-खोटको परखा करके आपने बीजक मूलमें दरशा दिया है। श्रीसद्गुरुश्रीपूरण-साहेबकृत टीका (त्रीजा) से बीजकका भाव विस्तारसे खुलासा

जाना जा सकता है। तथा निर्णयसारको ध्यानपूर्वक पढ़ने-सुननेसे भी तत्त्वमस्यादिका निर्णय और अन्तमें पारख स्वरूपका बोध हो जावेगा। तैसे ही वैराग्यशतकके पठन-पाठन करते रहनेसे सब किसिमके वैराग्यका भेद जाननेमें आ जायगा। उसमें भी गुरुमुख निर्णय वैराग्यका सार ग्रहण करनेसे ही मनुष्योंका कल्याण होगा। फिर २१ प्रश्नोंको पढ़ने-गुननेसे गुरुवा लोगोंके भूल मालूम हो जायगा। शङ्का-समाधानके लिये वह काममें आयेगा। वैसे ही पारख विचार ग्रन्थका श्रवण-मनन और पढ़ाई करते रहनेसे अपरोक्ष पारखबोध दृढ़ करनेमें बड़ी सहायता मिलेगी। तथा श्रीकबीरपरिचय साखी और ग्यारह शब्दोंके पठन-पाठन करके अर्थ विचार करनेसे सब मानन्दी वाणी कल्पनाकी भ्रम-भूल निवृत्त हो जायेगी। इस प्रकार यह षट् सद्ग्रन्थोंका रहस्य बोध प्राप्त कर हंस रहनीमें स्थिति ठहराव करनेसे हंसजीव सब बन्धनोंसे छूटकर नरदेहमें जीवन्मुक्त हो सकेंगे। अतः मुमुक्षुओंने प्रयत्न करके उसीको बनाना चाहिये॥

पञ्चग्रन्थी तथा षट्ग्रन्थोंका समस्त भागका अर्थ-पढ़ाईके अनुसार खुलासा टीका लिखना अब सद्गुरुकी दयासे आज सम्पूर्ण हो गया है। इससे सर्व साधारण सत्सङ्गी मनुष्य भी ग्रन्थोंके भावको अच्छी तरहसे जान, बूझ, समझ सकेंगे, यह निश्चय होता है। अन्तमें जिज्ञासु सन्तोंको यही सलाह दिया जाता है कि— यह सद्ग्रन्थ छपके प्रकाशित भी हुआ, तो भी गुरुमुखसे श्रवण करके विधिपूर्वक पढ़ाई किये बिना पूरा सब भेद स्वयं ग्रन्थ पढ़ने मात्रसे सबके समझमें नहीं आयेगा। अतएव जिज्ञासु साधुओंने स्थान बुरहानपुरमें आकर विद्यार्थीरूपसे निवास करके नियम पूर्वक साधु गुरुकी सेवा करते हुए बीजक मूल तथा पञ्चग्रन्थी, और इन षट्ग्रन्थोंको भी ध्यानपूर्वक गुरुमुखसे श्रवण करके पाठ लेके यादकर फिर दूसरे दिन पाठ सुनाकर नित्य-प्रति इसी क्रमसे सम्पूर्ण

आदिसे अन्ततक पढ़ लेना चाहिये। बीच-बीचमें फुरसतके समयमें सन्ध्या पाठके बाद प्रश्नोत्तर वा शङ्का-समाधान करते हुए समस्त संशयोंको सत्सङ्ग द्वारा मिटा लेना चाहिये। नागझिरी श्रीकबीर निर्णय मन्दिर निवासी सन्त समाजमें जो सन्त वा महन्त विशेष बोधवान् हों, वे शिक्षक गुरुके रूपमें नियुक्त होवें, वे बीजक और पञ्चग्रन्थी आदिके अर्थको टीकाके अनुकूल ही कहें, पढ़ावें। यदि पूरा अर्थभाव याद न रहता हो, तो इस टीका ग्रन्थको ही सन्मुखमें रखके पढ़ानेवालेने लेख पढ़ते हुए पढ़ावें। परन्तु, पढ़नेवाले सब मूर्तियोंने तो मूलमात्रका पुस्तक लेके ही पढ़ना-गुनना चाहिये। इस तरहसे पठन-पाठन कर लेनेसे अच्छी तरह बोध परिपुष्ट हो जाती है। सो इस प्रकार नियमानुसार पढ़ाई करनेसे सब सन्तोंको लाभ ही होगा। और भक्तजन गृहस्थ लोगोंके लिये यह नियम लागू नहीं है। वे ग्रन्थको पासमें रखके अपने घरमें ही पढ़ते रहें। और फुर्सतके समयमें स्थानमें आकर पढ़ाई और सत्सङ्ग सुनके जीवन सुधार करें। इस तरह सबोंने पारख ज्ञानको लेके उसे हृदयङ्गमकर अभी अपना-अपना कल्याण कर लेना चाहिये, यही मनुष्योंका मुख्य कर्तव्य है, सो जानिये! ॥

साखीः— "कबीर पूरण साहेब! पद बन्दगी त्रयबार ॥
रामस्वरूपदास अब! गुरुभक्ति मनधार ॥"

॥ ❀ ॥ इति भूमिका समाप्तम् ॥ ❀ ॥

स्थान—श्रीकबीर निर्णय मन्दिर,
नागझिरी, बुरहानपुर।
दि० १८। ४। १९५२ ई० सन् ॥

लेखकः—
—रामस्वरूपदास।

॥ ✻ ॥ ग्रन्थ छपाईका किञ्चित् वक्तव्य ॥ ✻ ॥

["ईसवी सन् १९५४ के वर्तमान सालमें इन षट् सद्ग्रन्थोंको छपाकर प्रकाशित करानेमें आधार विशेषतः साधु गुरुकी दया दृष्टि ही हुयी। साथ ही हमारे वर्तमानके समस्त बीजक-पाठी सन्त विद्यार्थियोंका उत्साह भी ग्रन्थ प्रकाश करानेमें सहायक हुयी। वैसे ही शान्तिसाहेबजीका तथा परम प्रेमी, गुरुपद निष्ठावन्त सेवक, छोटेरामजीका ज्यादातर आग्रह तथा उपयुक्त सहायता होनेसे यह ग्रन्थ छप सका। अतः उन सबोंको धन्यवाद देना हमारे व्यक्तिगत दृष्टिसे उचित ही होगा। तथा हमारे साथमें रहके सेवा करनेवाले शिष्य-साधुओंको हार्दिक शुभ आशीर्वाद दिया जाता है।

विस्तृत टीकासे ग्रन्थका कलेवर बढ़ गया था, अतः छोटे अक्षरोंमें ही ग्रन्थ छपाया जा सका। शीघ्रतापूर्वक पाँच महीनोंमें समस्त षट्ग्रन्थोंकी छपाई पूर्ण किया गया। उसमें हमारे निवास-स्थानसे प्रेस कोशों दूर होनेसे, तथा समय अल्प होनेसे, कार्याधिक्यसे, अवकाश न मिलनेसे, प्रथम निर्णयसार आदि ग्रन्थोंके प्रूफ एक-एक बार देख करके ही छापनेका आज्ञा दिया गया था। तहाँ कम्पोजिटर, प्रूफरीडर (प्रूफमें मिलाके शुद्धाशुद्ध देखनेवाले), मशीनमैन, कापी शोधक, प्रेसके अध्यक्ष और प्रूफ लाने-ले-जानेवालेकी अशावधानी, समझकी कमी, दृष्टिदोष, भूल, मशीनकी खराबी इत्यादि कई कारणोंसे जहाँ-तहाँ अक्षर-मात्राओंकी त्रुटि, अनुत्थित और कहीं-कहीं अदल-बदल भी हो गया होगा, सो हमारे शक्तिके बाहर जाके हुआ, ऐसा जानना चाहिये। प्रेसमें छपाईके कार्यमें अक्सर ऐसा होता ही है, यह बात प्रेसोंके हाल जाननेवालोंको विदित ही है। और इसका शुद्धाशुद्धि पत्र बनानेका समय मुझे नहीं मिला, अतः सुज्ञ पाठकोंके लिये ही वह कार्य छोड़ दिया गया है। जहाँ कहीं अक्षर-मात्राओंकी त्रुटि दृष्टिगोचर हो, उसे विवेकी पाठकगण सुधार लेनेका कष्ट करें। सार सत्यज्ञान

पारखबोधको ग्रहण करके जीवन सफल करें। जो बात ग्रन्थोंमें समझनेमें न आवे, और छपा न हो, वैसे सब बातोंको सत्सङ्ग-विचार द्वारा समझ-बूझ लेवें। सब भेदोंको जानकर निःसन्देह हो रहैं ॥"]

संसारमें यावत् पदार्थ तथा प्राणियोंमें गुण-दोष दोनों ही मिश्रण-रूपसे रहा हुआ होता है, फरक इतना ही होता है कि, कहीं दोष विशेष, गुण सामान्य होता है, तथा कहीं गुण विशेष, दोष सामान्य होता है। उसमें गुण-ग्राही लोग, गुणोंको ही छानके ग्रहण कर लेते हैं और दोष-ग्राही लोग दोषोंको ही चुन लेते हैं; तहाँ वे अपने स्वभावके अनुसार ही लाभ वा हानि उठाते हैं। मनुष्योंमें हितेच्छुक सज्जन, जिज्ञासु लोग एवं सच्चे सन्तोंका स्वभाव भ्रमरवत् सारग्राही, सर्व हितैषी होता है। अतः वे अपना भलाई करके अन्य सम्बन्धित लोगोंके भी हित ही हो, ऐसे बर्ताव करते हैं। कोई कार्य विशेष बर्तावमें कदाचित् अपनेसे भूल, कुछ त्रुटि हो गई हो, यदि उसे किसीने स्मृति करा दिया, तो उसे सहर्ष अङ्गीकार करके निवारण कर लेते हैं, वे "आप सुखी औरे सुखी, साधु कहिये सोय ॥" इस उक्तिसे प्रसंशनीय, स्तुत्य होते हैं। इसके विपरीत बर्तनेवाले लोग सदा "आप दुःखी औरे दुःखी" होते रहते हैं। अतः सुख तथा भलाई चाहनेवाले मनुष्योंको हरहालतमें सद्गुणधारी, सर्वहितैषी होना चाहिये ॥ यह षट् सद्ग्रन्थ प्राचीन पारखी सन्त सद्गुरुका उपदेश लेखरूपमें मूल प्राप्त था, हमने टीकासहित लिखके इसे छपा दिया है। विवेकी सन्तोंको यदि कहीं टीकामें त्रुटि दृष्टिगोचर हो, तो दया करके मुझे सूचित कर देवें। तथा अक्षर-मात्राओंकी साधारण त्रुटियोंको सुधारके पढ़नेका कष्ट करें। हंसके समान सद्ग्रन्थोंका सार पारख-बोध ग्रहण करें ॥❀॥ इति ग्रन्थ छपाईका किञ्चित् वक्तव्य समाप्तः ॥❀॥

हाल निवास—महमूरगञ्ज, काशी।
दिनाङ्क ५। ९। १९५४ ईसवी। } —रामस्वरूपदास।

॥ भजन ॥ पारख प्रकाशी सद्गुरुको महिमा, सर्वश्रेष्ठता वर्णन ॥ १ ॥

सद्गुरु कबीर साहेब !, पारख प्रकाशी धन्य हो ! ॥
बन्धन छुड़ाये जीवके, आदि गुरु महा मान्य हों ! ॥ टेक ॥
कठिन जाल संसारके, खानि वाणि विस्तार ॥
भ्रम मानन्दि भूल वश, आवागमन मँझार ॥
स्वयं बोध प्रकाश किये, पारख गुरु कबीर हो ! ॥ १ ॥
गुरु कबीर सर्वोपरि, सन्त शिरोमणि आप ॥
मुक्ति मार्ग चालू कियो, स्वयं मुक्त परताप ॥
सन्तनके आधार इक, सद्गुरु सत्य कबीर हो ! ॥ २ ॥
उपदेश बीजक ज्ञानके, सत्य शब्द टकसार ॥
काल सन्धि झाँई सकल, परखाय सार असार ॥
सत्यन्यायी निर्णई, शूर वीर कबीर हो ! ॥ ३ ॥
बीजक निर्णय लखि सुनी, गुण जाना सो विशेष ॥
भेद मिला सत्सङ्गते, गुरुकी दया विशेष ॥
रामस्वरूप गुण गाइये, पारखि गुरुवर धन्य हो ! ॥ ४ ॥

॥ ❀ ॥ भजन ॥ पारखी सद्गुरुकी विशेषता वर्णन ॥ २ ॥ ❀ ॥

बीजक ज्ञान बतानेवाले, सद्गुरु सम कोइ और नहीं ॥
पारख बोध लखानेवाले, पारखि सम कोइ और नहीं ॥ टेक ॥
चार वेद ब्रह्मै कहा, ऋषि उपनिषद् विस्तार ॥
श्रुतिमें ब्राह्मण भाग लहा, कर्म ज्ञान परचार ॥
धोखामें भटकानेवाले, निर्णय उनमें कोइ नहीं ॥ १ ॥
मनु औ ऋषि मुनियोंने कहा, स्मृति नीतिका ज्ञान ॥
आश्रम वर्ण आचार रहा, लोक वेदके ज्ञान ॥
द्वैत अद्वैत लखानेवाले, धोखा छुड़ाया कोइ नहीं ॥ २ ॥
पुराणके विस्तार अमित, बहुविधि जाल कुरान ॥
वाणि कल्पना पार नहीं, जहाँ-तहाँ बन्धान ॥
ईश्वर खुदा मनानेवाले, बन्धन छुड़ाया कोइ नहीं ॥ ३ ॥

खानि वाणि बन्धन बड़ा, फँसे फँसाय जहान ॥
भेद न पावे मुक्तिकी, उलट-पलट जहँड़ान ॥
रामस्वरूप परखानेवाले, पारखि गुरु सम कोइ नहीं ॥ ४ ॥

॥ ❀ ॥ भजन ॥ सद्गुरुकी महिमा-गुण कीर्तन ॥ ३ ॥ ❀ ॥

पूरण साहेब ! पूरण पारख रूप ! ॥ टेक ॥

काल सन्धि झाँई सब जाना, तत्त्वमसीके स्वरूप ॥
खानि-वाणिकी भेद पिछाना, बन्धनके सब रूप ॥ १ ॥
निर्णय ज्ञान टीका बीजकके, भेद कह्यो सब रूप ॥
मोटी झिनी जाल लखाकर, दरशायो भ्रम कूप ॥ २ ॥
सब ही सार समेटी साहेब !, निर्णयसार स्वरूप ॥
बीजक निष्ठा ज्ञान गुरुका, सन्त शिरोमणि भूप ॥ ३ ॥
बन्दीछोर जीवन सुखदाई, पारख बोध अनूप ॥
रामस्वरूपदास गुरुवरके, शिशु शरणागत रूप ॥ ४ ॥

॥ ❀ ॥ भजन ॥ षट् सद्ग्रन्थोंका विशेषता वर्णन ॥ ४ ॥ ❀ ॥

बीजकके सिद्धान्त बताकर, पारख ज्ञान कहै षट् ग्रन्थ ॥ टेक ॥
जीव जमा समझाय सकल विधि, तत्त्वमसी बन्धन विस्तारा ॥
ज्ञान अज्ञान विज्ञान लखाकर, पारख हंस स्थिति आधारा ॥
सारशब्द कहि पूरण साहेब, निर्णयसार बन्यो सद्ग्रन्थ ॥ १ ॥
राग विरागकी भेद बताकर, निर्णय गुरु विराग सो सारा ॥
शास्त्र उक्ति वैराग्य लखाकर, विषय जालते जीव उबारा ॥
वैराग्यशतक निर्माण किये सो, उत्तम विराग कहा सद्ग्रन्थ ॥ २ ॥
एकइस प्रश्न मतवादिन पर है, साहेबराम तिसे परचारा ॥
पारखि सन्त विचार परीक्षा, पारख विचार ग्रन्थ लिख डारा ॥
उभय ग्रन्थ संक्षिप्त कहा पर, सार समग्र अहै सद्ग्रन्थ ॥ ३ ॥
साहेब कबीरके पारख परिचय, गुरुमुख बोध समग्र इशारा ॥
जीवहीं परिचय सार सो कीन्हा, दूसर ग्यारह शब्द सुधारा ॥
रामस्वरूपदास गुरु किरपा, छौ निर्णय पायो सद्ग्रन्थ ॥ ४ ॥

॥ ※ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥

॥ ※ ॥ अथ संयुक्त निर्णयसारादि षट् सद्ग्रन्थोंकी सूचीपत्र वर्णन ॥ ※ ॥

॥ ※ ॥ विषयानुक्रमणिका, प्रारम्भः ॥ ※ ॥

॥ ※ ॥ अथ निर्णयसार ग्रन्थः १, प्रारम्भः ॥ ※ ॥

निर्णयसार सद्ग्रन्थमें पद संख्या सब निम्न प्रकारसे पृथक्-पृथक् हैं:— ॥ दोहा ५८ ॥ चौपाई ५१६ ॥ ॥साखी ३ ॥ सोरठा १४ ॥ छन्द दोनों भागमें ४ हैं; उनमें १६ पंक्तियाँ हैं ॥ सब एकत्र जोड़नेसे ६०७ योग होता है॥

॥❋॥ इति श्रीनिर्णयसार सद्ग्रन्थकी सूचीपत्र वा विषयानुक्रमणिका समाप्तम् ॥❋॥

साखीः— निर्णयसारकी भूमिका। स्वयं स्वरूप चैतन्य ॥
द्रष्टा जीव साक्षी सही। मानुष श्रेष्ठ न अन्य ॥ १ ॥
कोई विषय विलासमें। भूले बहु अज्ञान ॥
निजस्वरूप ठहराव नहीं। नाना विधि मनमान ॥ २ ॥
परोक्ष औ अपरोक्षते। ज्ञान-अज्ञान विज्ञान ॥
समान-विशेष अधिकरणते। दृढ़ फन्दा अहँज्ञान ॥ ३ ॥
सो परखाये सद्गुरु। जीव जमा ठहराय ॥
खर्च सबै बिलगायके। पारख भूमि लखाय ॥ ४ ॥
मुक्ति कर्मकी भूमिका। तन मानुषहि लखाय ॥
रामस्वरूप सब भूमिका। मानुषते प्रगटाय ॥ ५ ॥
पारखी गुरु सतसङ्ग करि। सकलो भेद पिछान ॥
रामस्वरूप ठहराव करु। जा ते हो कल्यान ॥ ६ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥※॥ अथ संयुक्त निर्णयसारादि षट् सद्ग्रन्थोंकी सूचीपत्र वर्णन ॥※॥

॥ ※ ॥ विषयानुक्रमणिका ॥ ※ ॥

॥ ※ ॥ अथ वैराग्यशतक, द्वितीय ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ २ ॥ ※ ॥

॥❀॥ इति श्रीवैराग्यशतक ग्रन्थकी–सूचीपत्र–विषयानुक्रमणिका वर्णन समाप्तः ॥❀॥

॥ ❀ ॥ अथ एकईस प्रश्न, तृतीय ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ ३ ॥ ❀ ॥

॥ग्रन्थकर्ताके स्थानका परिचय आदि वर्णन॥

॥❀॥ इति तृतीय ग्रन्थः समाप्तः ॥❀॥

॥ ❀ ॥ अथ पारख विचार, चतुर्थ ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ ४ ॥ ❀ ॥

॥ टीकाकारकृत मङ्गलाचरणम्— ॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थ निर्माण वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ अथ लिख्यते पारख विचार ग्रन्थः ॥

॥❀॥ इति चतुर्थ ग्रन्थः समाप्तः॥❀॥

॥❀॥ इति एकईस प्रश्न तथा पारख विचार सद्ग्रन्थकी सूचीपत्र समाप्तम् ॥❀॥

॥❀॥ अथ श्रीकबीरपरिचय साखी, पञ्चम ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ ५ ॥❀॥

॥ ❀ ॥ अथ एकादश शब्द, षष्ठ ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ ६ ॥ ❀ ॥

॥❀॥ इति एकादश शब्द ग्रन्थः समाप्तः ॥ ६ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ इति श्रीसंयुक्त निर्णयसारादि षट् सद्ग्रन्थोंकी सूचीपत्र— विषयानुक्रमणिका वर्णन पद्याङ्क सहित सम्पूर्णम् समाप्तम् ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरो अर्पणमस्तु ! ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

(आद्य मूल सर्व शिरोमणि परमाऽचार्य्य सद्गुरु बन्दीछोर स्वयं अनुभवी प्रथम पारखबोध प्रकाशी श्रीकबीरसाहेबजीके सच्चे नैष्ठिक अनुयायी, मूल बीजकके— पारखबोध दर्शक टीकाकार, बुरहानपुर— नागझिरी कबीरपन्थ गद्दीके प्रथम आचार्य्य पूज्यपाद पारखनिष्ठ सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजीके सिद्धान्त अनुसार इस ग्रन्थमें अन्तिम निर्णय-सिद्धान्त दरशाया गया है।)

॥ ❀ ॥ दयागुरुकी ॥ ❀ ॥

॥ अथ लिख्यते संयुक्त निर्णयसारादि षट् ग्रन्थः ॥

परमपारखी परमपूज्य पारखनिष्ठ इष्ट सद्गुरु सत्यसिद्धान्त प्रकाशक प्रथमाऽचार्य्यवर्य साधु शिरोमणि—

श्रीपूरणसाहेब विरचित—

निर्णयसार नामक प्रथम ग्रन्थ प्रारम्भः ॥१॥

[पारखसिद्धान्त दर्शिनी भ्रम विध्वंशिनी सरल टीका सहित।]

॥ टीकाकार कृत मङ्गलाचरण—श्रीसद्गुरुस्तुति ॥

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

पारखरूप कबीर गुरु ! पूरण प्रथमाऽचार्य्य ॥
रामस्वरूप बन्दन करौं। सार बोध हिय धार्य ॥ १ ॥

ज्ञान ध्यान साधु सकल । पारखी वर शिर मौर ॥
रामस्वरूप पारख स्थिति । सोई मुक्तिको ठौर ॥ २ ॥
बन्दीछोर कबीर प्रभु ! पारख प्रगट जगमाहिं ॥
श्रीगुरु पूरणसाहेब ! कियो प्रचार सो ताहिं ॥ ३ ॥

॥ * ॥ छन्दः—(सवैया) ॥ * ॥

करि याद बड़ उपकारको । त्रय बन्दगी गुरु चरणमें ॥
त्रयताप जन्मृति शमन हो । यहि हेतु हूँ प्रभु शरणमें ॥
संशय निवारण तरण तारण । हंस पारखी घरणमें ॥
रामस्वरूप हो काम सब विधि । सतसङ्ग निष्ठा परणमें ॥ ४ ॥

॥ * ॥ छन्दः— ॥ * ॥

भेद बताये जमा खर्चके । बन्ध मुक्ति बतलाय दिये ॥
सार असार लखाकर जनको । मिथ्या भर्म मिटाय दिये ॥
आदि मध्य पुनि अन्त ठिकाना । एक-एक परखाय दिये ॥
रामस्वरूप जो गये शरणमें । सद्गुरु तिन्हें अपनाय लिये ॥५॥

॥ * ॥ छन्दः— ॥ * ॥

निज-पर सकल सिद्धान्तको । चुनि सार निर्णय सो कियो ॥
मानन्दि धोखा भ्रम लखाकर । जीव सत ठहरा दियो ॥
योग भक्ति ज्ञानमें । विज्ञान कर्म भटका कियो ॥
ब्रह्म भ्रम बिलगायके । पारख रामस्वरूप दियो ॥६॥

॥ * ॥ चौपाईः— ॥ * ॥

काल कराल कीन्ह बहुजाला। फैल फैलाय गड़ायो भाला ॥ ७ ॥
सो उरमें शाल्यो बहुभाँती। बिनु चीन्हे व्याकुल दिन राती ॥ ८ ॥
खानि वाणिके फन्दा भारी। पारख बिन अरुझे नर-नारी ॥ ९ ॥
जो जन गुरुसे लखे ते छूटे। माया मोह कि फन्दा टूटे ॥१०॥
रामस्वरूप जो पारख पाये। सो निज पदमें स्थिति ठहराये ॥११॥

॥ * ॥ सोरठाः— ॥ * ॥

तत्त्वमसि त्रय फन्द। काल सन्धि झाँई सोई ॥
परख मिटाय स्वच्छन्द। पारखि सद्गुरुने कियो ॥१२॥
गुरु निर्णयके सार। ग्रन्थ रच्यो गुरु पूरण ॥
भ्रम मानन्दि संहार। सारशब्द यथार्थ कही ॥१३॥
बीजक वित्त बताय। सोई निर्णयसारमें ॥
भेद सकल दरशाय। रचि पदमें संग्रह कियो ॥१४॥
साहेब कबीर समान। बोधवान पूरण भये ॥
सत्यमता परमान। गुरु अधिकारी पारखी ॥१५॥

॥ * ॥ दोहाः— ॥ * ॥

निर्णयसार यहि ग्रन्थमें। है सब मतनके सार ॥
निर्णयसे बिलछान करी। सार मता परचार ॥१६॥
जीव जमा ठहरायके। और खर्च निरधार ॥
खर्च सबै बिलगाय करि। बाकी स्थिति ठहार ॥१७॥

तत्त्वमसि त्रय जालमें । समान विशेष दो भाग ॥
ज्ञान अज्ञान विज्ञानकी । कहि युग लक्ष विभाग ॥१८॥
अवशिष्ट पारख भूमिका । सो सब दिये बताय ॥
रामस्वरूप अमोल निधि । ग्रन्थ रत्न प्रगटाय ॥१९॥
बीजक टीका पूर्व यही । ग्रन्थ बनायो सार ॥
पारख ज्ञान प्रकाश करि । ध्वंस कियो अन्धार ॥२०॥
बुरहानपुर यहि नगरमें । नागझिरी शुभ स्थान ॥
नदि तट कुटिया बैठिके । ग्रन्थ यही निरमान ॥२१॥
त्रीजा पुनि यहिं पूर्ण कियो । हमरे प्रथमाऽचार्य ॥
सद्गुरु पूरणसाहेब । पारख ज्ञान विस्तार्य ॥२२॥
तबसे अबतक समयमें । पीढ़ी सात खपान ॥
रामस्वरूपदास अब । गुरु गुण गाऊँ ज्ञान ॥२३॥
परख सिद्धान्त दर्शिनी । भ्रम ध्वंशिनी परचण्ड ॥
टीका सरल यामें करूँ । छिन्न-भिन्न पाखण्ड ॥२४॥
भेष बोध दाता गुरु । साधु परख समाज ॥
त्रय बन्दगी श्रद्धा सहित । पूर्ण करो मम काज ॥२५॥
युग सहस्र वसु सम्वत । जेष्ठ शुक्ल द्वादश तिथी ॥
एक नौ पञ्च एक सन् । जून शनि शुरू सोरह मिती ॥२६॥

॥ * ॥ इति टीकाकार कृत मङ्गलाचरणम् समाप्तम् ॥ * ॥

॥ ✻ ॥ ग्रन्थकर्ताकृत मङ्गलाचरण ॥ ✻ ॥

दोहाः--बन्दनिये गुरु परखको। बार बार कर जोर॥
दया करण संशय हरण। सन्तरूप प्रभु तोर! ॥१॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब निर्णयसार ग्रन्थको प्रारम्भ करते हुये सर्व प्रथम सद्गुरुके बन्दनामें उपरोक्त दोहा लिखे हैं। वस्तुनिर्देश, नमस्कार और आशीर्वादरूपसे तीन प्रकारके मङ्गलाचरण होते हैं। उसमें यहाँपर नमस्कार या बन्दनारूपमें मङ्गलाचरणका प्रयोग हुआ है। तहाँ कहते हैं कि— मैं प्रारम्भमें अपने इष्टदेवको श्रद्धा-भक्तिपूर्वक शिर नमायके बन्दना करता हूँ! किनको कि— गुरु परखको = जो, गु = तमरूप अज्ञान, अविद्या-अन्धकारको मिटानेके लिये, रु = सूर्यके प्रकाशके समान तीव्र पारख ज्ञानका प्रकाश करके हृदयगत अबोधको सर्वथा मिटा देनेवाले ऐसे पारख प्रकाशी बन्दीछोर सद्गुरुको मैं विनयपूर्वक दोनों हाथोंको जोड़कर बारम्बार चरणोंमें शिर झुकायके, बन्दना = साष्टाङ्ग दण्डवत् वा त्रिबार "साहेब बन्दगी" करता हूँ! उक्त पदमें दो दफे बार-बार आया है, सो उसका माने वा मतलब ऐसा है कि—प्रथम तो मैं पारखी सद्गुरुके चरण कमलोंमें प्रत्यक्ष देहसे स्थूल कर्तव्य भावसे ही बन्दना करता हूँ। फिर बोध होनेके अनन्तर पारख पदके श्रेष्ठताको मानके सूक्ष्म देहरूप मन-अन्तःकरणसे गुरुपद पारखकी बन्दना करता हुआ धन्यवाद मानता हूँ! क्योंकि, सद्गुरुने काल, सन्धि, झाँई, तत्त्वमसि,

भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना, खानी-वाणी इत्यादि विकट जालोंकी सम्पूर्ण कसर-खोटोंको परखायके छुड़ाय दिये हैं, और निज पारख स्वरूपकी स्थितिमें मुझ जीवको कायम कर दिये हैं। इसवास्ते, बार-बार = दिन-प्रतिदिन बराबर तन, मन, वचनोंको एकाग्र करके करजोरके निज कर्तव्यको गुरुमार्गमें लगा करके इसी नर जन्ममें सब भवबन्धनोंसे छूट जानेके लिये अब मैं गुरुपद पारखको श्रेष्ठ समझकर दो-बार या त्रय-बार बोधदाता श्रीसद्गुरुदेवको बन्दना, नमस्कार या 'साहेब बन्दगी' करता हूँ ! हे प्रभु! आपके सत्-शिक्षाको मैं दोनों हाथोंको जोड़के शिरोधार्य करता हूँ ! बार-बार हृदयङ्गम करके स्मरण करता जाता हूँ। आप तो दयाके सागर हो ! दया करके हमारे सब संशय, दुविधा, भ्रम, धोखादि विकारोंको हरण करनेवाले हो ! और अभीतक भ्रमको हरण भी कर लिये हो ! और जो कुछ भी सन्देह बाकी है, उसे भी दया-दृष्टि करके हरण कर दीजिये ! हे प्रभो ! आपकी स्वरूप शान्त-शीतल सुखदाई है। तन, मन, वचन, इन्द्रियोंको स्ववश करके दमन-शमन करके शान्त किये हुये साधु भेषधारी आप सच्चे त्यागी-विरागी हो ! निज-पर दयाको पूर्णतासे पालन करनेवाले शरणागत रक्षक, सत्य-शिक्षक, पारख—बोधदाता आप हो ! अहैतुकी दया करके जिज्ञासुके सब संशयोंको हरण करनेवाले ऐसे आप साधुरूपमें श्रेष्ठ सद्गुरु हो ! इस प्रकार आपके ही कृपासे हमने भी अब आपको पहिचान पाये हैं ॥ १ ॥

दोहा:— बन्दीछोर कृपाल प्रभु ! । विघ्न विनाशक नाम ॥
अशरण शरण बन्दौं चरण । सब विधि मङ्गलधाम ॥ २ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे बन्दीछोर ! कृपालु प्रभो ! आपके सिवाय हमारे महाबन्धनोंको छुड़ानेवाले और दूसरे कोई नहीं हैं। हमने अच्छी तरहसे सब तरफ देख लिया, आप ही एक बन्धन छुड़ानेवाले पारखी सत्पुरुष हो। जो कोई मुमुक्षु मनुष्य आपके शरणमें आते हैं, उनपर आप अत्यन्त कृपालु होकर दया करके यथार्थ सत्य निर्णयसे सारासारको लखायकर खानी-वाणीके सब जालोंको एक-एक करके दिखलायके उस बन्धनरूप जालोंसे जीवोंको छुड़ाकर जन्म-मरणादिसे मुक्त करनेवाले हो, ऐसे आप कृपालु बन्दीछोर हम लोगोंके मालिक = स्वामी या प्रभू हो ! और आपका शुभ नाम भी समस्त मुक्ति-मार्गके विघ्न उपाधियोंको विनाश करनेवाला है। अर्थात्, सद्गुरु नाम = यह सत्य पारख बोधका लक्षांश प्रगट करता है। जब सारशब्द टकसारका यथार्थ बोध हो जाता है, तब उस जीवको मुक्तिके लिये होनेवाला समस्त विघ्न = रुकावट, अन्तराय, खण्ड-बण्ड, उपाधि, झंझट इत्यादि विकार सब विनाश हो जाते हैं। इसवास्ते सद्गुरुकी नाम = पारख बोधको विघ्न विनाशक कहते हैं। और, अशरण = उसको कहते हैं कि, कोई नरजीव महापातकी भया है, इसवास्ते तीन लोक = योगी, ज्ञानी, भक्तोंमें भी उसे शरण लेके बचानेवाले कोई नहीं होते हैं। अतएव वह असहाय, शरण, रक्षारहित होके मारा-मारा जहाँ-तहाँ डोला करता है। ऐसे नरजीव भी यदि पारखी सद्गुरुके शरणमें आके दृढ़-प्रतिज्ञ होके कर्तव्यका सुधार कर सत शिक्षाओंको धारण करेंगे, तो उनकी भी शुभ-संकार टिकनेसे सुगति हो जायगी। ऐसे अशरणको भी शरण ले करके रक्षा करनेवाले हे प्रभो ! मैं अब विनम्र श्रद्धायुक्त भक्ति-भावसे आपके पवित्र चरण-

कमलोंको वा शुभ आचरणको वा गुरुपदको या पारखपदको भीतर-बाहरसे झुक-झुक करके शिर नमायके बन्दना करता हूँ ! त्रयबार साहेब बन्दगी करता हूँ ! आप सब प्रकारसे मङ्गलके धाम = पुण्यक्षेत्र, कल्याणके भूमिका, साक्षात् जीवन्मुक्त भवनमें विराजमान हो। शरणागत जीवोंको भी स्वरूपबोध लखाकरके मङ्गलमय मुक्त कर देनेवाले हो, हे प्रभो ! कृपा करके अब आप मुझे भी सब बन्धनोंसे छुड़ाइये। सत्य बोध देके मेरे सब विघ्नोंको भी विनाश कर दीजिये। सब प्रकारसे आपके पारखपद मङ्गलका धाम है। मुझ अशरणको अब अपने शरणमें लेकर उस धाममें विश्राम कराइये ! मैं आपको बारम्बार बन्दना करता हूँ ! ॥ इस प्रकारसे मङ्गलरूप शुभ आचरण करके अनुयायी लोगोंको अनुकरणीय पथ-प्रदर्शन कर इस तरहसे प्रारम्भमें गुरुस्तुति विनय करके कार्य शुरू करना चाहिये। तभी शुभ कार्य अच्छी तरहसे निर्विघ्न समाप्त हो जायगा। यह बतला-कर ग्रन्थकर्ताने पूर्वोक्त रीतिसे इस ग्रन्थमें मङ्गलाचरण सम्पन्न किये हैं। सो उसके भावार्थ भी यहाँपर पूर्ण हो गया है। अब यहाँसे ग्रन्थ प्रारम्भ होता है, ऐसा जानिये ! ॥ २ ॥

॥ ❀ ॥ अथ ग्रन्थोत्थानम् ॥ ❀ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—१ ॥ चौ० १ से ६ तक है ॥

१. शरण शरण कबीर कृपाला ! भक्त सहायक दीनदयाला ! ॥३॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे बन्दीछोर ! पारख स्वरूप श्रीकबीरसाहेब ! आप कृपालु दयाके सागर, आला = अच्छे प्रथम दर्जेकी सुखधाम, जीवन्मुक्त स्थितिमें विश्राम किये हुए

हो! आपके शरणमें जो कोई मनुष्य सद्भावसे जाते हैं, उन्हें भी अपने समान निर्बन्ध सुखी कर देते हो। इस बारेमें आपने स्वयं दृढ़तापूर्वक निज मुखसे बीजकमें कहे भी हो कि:—

साखी:—"जो तू चाहै मुझको। छाड़ सकलकी आश ॥
मुझ ही ऐसा होय रहो। सब सुख तेरे पास ॥"
॥ बीजक, साखी २६८ ॥

साखी:— "बहु बन्धनसे बाँधिया। एक विचारा जीव! ॥
की बल छूटै आपने। कीरे छुड़ावै पीव! ॥"
॥ बीजक, साखी २११ ॥

"गुरुकी दया साधुकी सङ्गति। निकरि आव यहि द्वार ॥"
॥ बीजक, साखी ३०४ ॥

यही सत्य वचनोंको हृदयङ्गमकर स्मरण करके मैं आपके दयाके भिक्षुक आपके द्वारमें आके शरणमें पड़ा हूँ। यद्यपि आपके पर्खानेसे अब मैंने सब तरफके आशारूप आसक्तिको छोड़ दिया हूँ। तथापि यह एक विचारा जीव बहुत ही कठिन बन्धनोंमें बँधा है। अपने बलसे छूटनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। आप ही एक ऐसे महापुरुष हो, जो स्वयं शक्ति वा निज बलसे समस्त मोटी-झीनी काल जालोंसे छूटके मुक्त हो गये हो। ऐसे आपके समान स्वयं पारख दृष्टि प्राप्त करके मुक्त होनेवाले और कोई है नहीं और कोई ऐसे हुए हों, सो मुझे ज्ञात नहीं है। अतएव यहाँ सरा मार्ग—पारखी सद्गुरुके शरणागत होना,

इसीको मैंने पकड़ा हूँ। हे प्रभो! अब मैं बारम्बार गुरुपदके ही शरण हूँ! शरण हूँ! त्रयबार गुरु चरणके शरण हूँ! इस तरह बाह्य स्थूल देहसे काया वीर कबीर स्वरूप श्रीसद्गुरुके चरण कमलोंकी शरण ग्रहण करता हूँ! और मन-वचनसे भी पारख गुरु ज्ञानके शरण वा आश्रय पकड़ता हूँ। इसीको सूचना करके बतानेके लिये "शरण शरण कबीर कृपाला"— इसका प्रयोग किया गया है। संक्षेपतः हे कृपालु श्रीकबीरसाहेब सद्गुरु! आपके गुरुपदमें ही मैं शरण हूँ! शरण हूँ! मेरे रक्षा कीजिये! हे दीनदयालो! निज शरणागत, भक्त = शिष्य-सेवकोंके आप सब प्रकारसे सहायक मुक्तिके दाता आधार होते हो। अतएव मेरे लिये भी वैसे ही आप सहायक होइये! और संसारी अबोध भ्रमिक भक्त जन नाना प्रकारसे खानी-वाणियोंके बहुत भावनाओंमें पड़े हुए गुरुवा लोगोंकी और जड़ मूर्तियोंकी सेवा, अर्चा, पूजादि करके कल्पित ईश्वरादिकी मानन्दी पकड़-पकड़के भक्त कहलायके भूल रहे हैं। यदि ऐसे भूले हुये भक्त-वर्ग भी जब पारखी श्रीसद्गुरुके शरणमें आ जाते हैं, तो उन्हें दीन, हीन, मलीन, गरीब जीव जानके उनपर भी दयादृष्टि करके पारखबोध देनेमें प्रभु सहायक हो जाते हैं। ऐसे आप दीन-दयालु भक्त-सहायक, महामहीम सद्गुरु हो! ॥ ३ ॥

२. जीव उद्धारण नाम तुम्हारा। याहिते आपु सन्त तन धारा ॥४॥

टीकाः— श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— और अनादिकालके संसारमें सब जीव जड़ाध्यासी होके भवबन्धनोंमें बद्ध होकर आवागमनोंके महा चक्रमें घुम-फिर रहे हैं। खानी-वाणियोंके भवधारोंमें बहे ही आ रहे हैं। ऐसे जिज्ञासु नरजीवोंको शरणमें लेके सुदृढ़ पारख जहाजमें

बैठा करके भव पार उतारके मुक्ति स्थितिमें ले जानेवाले आप महान कर्णधार हो! आपका नाम = कहिये सत्य निर्णय गुरुमुख सारशब्द पारखबोध जीवोंको भवधारसे उद्धार करनेवाला है, स्वरूप स्थितिमें ठहरानेवाला है। अतएव जीवोद्धारक! वन्दीछोर! यह आपकी शुभ नाम भी सार्थक है, पूर्णतः अर्थ घटित होनेसे सत्य है। इसीवास्ते निज-पर हित-कल्याणके लिये ही आपने पारखी सन्तोंको शोभा देनेवाला त्यागी साधुका भेष, हंसरहनी, रहस्य, सद्गुण जीवन्मुक्तिकी ठहरावके लिये भीतर-बाहरसे भली-भाँति तन-मनादिकोंमें रहनी धारण किये हो! और नरदेह धारियोंको साधु बनाय, रहनी रखनेके उपदेश देते हो। तहाँ गृहस्थ जीवनसे मुक्ति हो नहीं सकती है, घर-गृहस्थीमें खट-पट, महान उपाधि सदा लगी ही रहती है। विषयाशक्ति बनी ही रहती है। इस हालतमें मुक्ति प्राप्त करना सम्भव नहीं है। ऐसा यथार्थ हेतुको देखकर रागको बन्धनका कारण-घर ठहराकर इसीलिये आपने उसे परित्याग करके तनमें, सन्त = साधु पारखीके शुद्ध भेष, त्याग-वैराग्यके चिन्ह गुण लक्षणोंको सर्वाङ्ग सम्पूर्ण धारण किये हो। और निज अनुयायी लोगोंको भी वैसे ही सच्चा त्यागी साधु भेष धारण करनेके लिये आप कह रहे हो! शिक्षा दे रहे हो। स्वयं सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने इस बारेमें बीजकमें कहा है, सुनियेः—

साखीः— साधु होना चाहिये। पक्का होयके खेल ॥
कच्चा सरसों पेरिके। खरी भया नहिं तेल ॥"

॥ बीजक, साखी २८० ॥

—अर्थात् संसारमें विषय भोगते हुए कोई भी मुक्त हो सकते नहीं। मुक्ति प्राप्तिके इच्छुक पुरुषोंने साधु तो अवश्य होना ही चाहिये। परन्तु टकसारी, सत्यन्यायी पारखी गुरु द्वारा ही प्रदत्त शुभ भेष लेना चाहिये। और सद्गुण, रहनी बोध-विचारमें पक्का होयके सत्सङ्गके खेलमें बर्तना चाहिये। तभी पूरा लाभ मिलेगी। नहीं तो कच्चा सरसों पेरनेवालेकी जैसी गति होती है, न तेल ही उसमेंसे निकलती है और न खली ही होती है, तो सब प्रयत्न व्यर्थ ही हो जाती है। तैसे ही मनमुखी लोगोंकी भी दुर्दशा ही होती है। वे न साधु ही होते हैं और न गृहस्थिमें ही ठीकसे रहते हैं। अधबीचके ठग, पाखण्डी, धूर्त होके फिरते हैं। ऐसा कभी करना न चाहिये, इत्यादि सत-शिक्षा देकर आपने, याहिते = इसीसे देह रहेतक साधुका त्याग-भेष सद्गुणादि धारण किये थे। सोई परम्परा पारखी सन्तोंमें आजतक चला ही आ रहा है। सो ऐसे आप जीवोंके सच्चे उद्धारक हो! ॥४॥

३. काल जालके फन्दा भारी। मेटि कियेहु निज दास सुखारी ॥५॥

टीकाः— श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— और इस जगत्में जीवोंको फँसानेवाले कालके महाजालका फन्दा जबरदस्त बड़ा भारी फैलाया हो रहा है। इधर खानीमें कालरूप स्त्रियोंके सम्बन्धसे पुत्र, बन्धु, बान्धव, धन, घर इत्यादि खानी जालोंके फन्दा, अरुझावनी बड़ा दूरतक फैला हुआ है। उसमें नाना भारसे जीव दबे पड़े हैं। उससे निकलना अत्यन्त कठिन हो गया है। और कोई किसी तरह निकला भी तो उधर वाणीमें काल बने हुए गुरुवा लोगोंके गाल = महाजालोंमें फँसके भक्ति, योग, ज्ञानादिमें अहँकाय

जाते हैं। दशों दिशामें वाणी फन्दोंका विस्तार कर रखे हैं। उससे निकलना बड़ा कठिनाइके काम है। क्योंकि, तीसरा मनरूपी कालने जीवको घेर-घारके उन्हीं जाल-फाँसोंमें फँसाके रोक रखा है। जालोंका विस्तार अति भारी है। आप ही एक परम पुरुषार्थी समर्थ सत्पुरुष हो, जो कि, स्वयं काल जालोंसे निकलके मुक्ति मार्गको साफ कर लिये हो, अपने मण्डलमें स्वतन्त्र मुक्ति क्षेत्र स्थापित कर-करा लिये हो! और जो कोई मुमुक्षु नरजीव दासातन भावसे आपके शरणको ग्रहण करते हैं। ऐसे निजदास = सत शिष्योंको काल जालोंसे निकालके भ्रम, भूलोंको परखायके उसे मेट-मिटायके निर्बन्ध, स्वच्छन्द, जीवन्मुक्तिमें स्थित, सुखी कर देनेवाले आप ही एक सद्गुरु पारखी सुखदाई वा मुक्तिदाई हो। ऐसे बड़ाभारी काल जालके सब फन्दोंको मेटिके निजदासको आपने सुखी निर्बन्ध किये हो या कर रहे हो! ॥ ५ ॥

४. तुम सब लायक अन्तरयामी! हम नालायक जीव बेकामी ॥६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे सद्गुरो! आप सर्व सद्गुण सम्पन्न, विवेक, वैराग्यादि सुशोभित समर्थ, जीवन्मुक्त, अच्छे श्रेष्ठ सत्पुरुष हो, आप ऐसे सब लायक हो! कहा हैः—"जेते उपमा जगतमें, वर्णि गये सब सन्त ॥ सो सब लायक आप हो, मैं कर जोरि कहन्त ॥" सत्य ज्ञानके प्रतिभा सम्पन्न, सन्त शिरोमणि श्रीकबीरसाहेबके समान सत्यन्यायी, परीक्षक, आप पारखी साधु स्वरूपी सद्गुरु हो! आपकी योग्यता मैं कहाँतक वर्णन करूँ। क्योंकि, अन्तर = भीतर, ओट, आड़, पर्दा, दूरी, फरक,

जो कुछ भी जीवोंमें पारख बिना पड़ा हुआ है, सो सकलका भेद जानने, पहिचाननेवाले आप सच्चे परीक्षक हो। अथवा बद्ध और मुमुक्षु मनुष्योंके हृदयोंकी भाव, स्वभाव, उनके चाल-चलन, शब्द श्रवणादिसे ही ठीक-ठीक जान लेनेवाले "उर अन्तरयामी" हो! "अन्तर घटकी करनी, निकरे मुखकी बाट ॥" बी० साखी ३३० ॥ ऐसा आपने कहा भी है। इस प्रकार आप निज-पर अन्तःकरणके हालका पूर्ण मर्मज्ञ होनेसे सब तरहसे लायक, सत्यन्यायी हो। और हम = अहङ्कार, मद-मत्सरादिमें फँसे हुये बद्ध जीव नालायक, निकम्मे हो रहे हैं। क्योंकि, कल्याणकारी ज्ञान मार्ग साधु गुरुकी सत्सङ्ग गुरुभक्तिकी सत्कर्म सेवा, बन्दगी, सद्भावोंको छोड़ करके संसार जञ्जालोंमें फँसे हुये, बेकामी = बे = दो, सो भुक्ति-मुक्ति दोनोंका चाहना वा कामना करनेवाले हम खानी-वाणी दोनों तरफके आसक्तिमें खूब जकड़े हुये मुक्तिमार्गसे पतित हो, भवबन्धनोंमें ही ग्रसित हो रहे हैं। जीव अमर होनेसे इसी प्रकार अभ्यास वश दुःख भोग रहे हैं। यहाँपर जीव कहना अज्ञान संयुक्त बन्धनका वाचक पद है। और गुरुपद पारख सोई मुक्तिका श्रेष्ठ पद है। यही भाव दिखलाया गया है, सो जानिये! ॥ ६ ॥

५. बन्दौं गुरुपद दोउ कर जोरी । सब संशय मेटहु प्रभु मोरी ॥७॥

टीकाः—श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—अब मैं दोनों हाथोंको जोड़कर श्रद्धा, भक्ति सहित विनम्र भावसे सच्चा जिज्ञासुके शुभ लक्षणोंको धारणकर, गुरुपद = गुरुकी चरण कमलोंमें और श्रेष्ठ पारखपदमें दोनों-कोही बन्दना, नमस्कार या स्वमतानुसार त्रयबार "साहेब बन्दगी ३"

करता हूँ ! हे पारखी सद्गुरो प्रभो ! आप मुझे शरणागत जिज्ञासु शिष्य जान करके निज चरणोंके शरणमें आश्रय दीजिये ! और मेरे मनकी संशय, दुविधा, भ्रान्ति आदि विकारोंको तथा अबोधपनाको क्रमानुसार एक-एक करके यथार्थ परखाकर पारखबोध लखाकरके मेट दीजिये या निवारण कर दीजिये। जिससे आपकी कृपासे निःसन्देह होकर सत्य भूमिकामें ठहरकर मैं भी मुक्ति प्राप्ति कर सकूँ ! दयादृष्टि करके अब सोई युक्ति करिये । मेरे सब सन्देहोंको मेट दीजिये! यही करबद्ध बन्दना करके मैं विनय करता हूँ! (सद्गुरुके समक्षमें कोई भी जिज्ञासु को प्रश्न–शङ्कादि करके कोई बात पूछना होय, तो पहले त्रयबार बन्दगी करके दोनों हाथोंको जोड़कर फिर पूछते हुये कहना चाहिये । और सद्गुरुके उत्तर पूरा होके समाधान होनेपर पश्चात् भी त्रयबार बन्दगी करके विसर्जन करना चाहिये । यही नियमको ग्रन्थकर्ताने यहाँ पूर्णतासे पालन किये हैं, सो जानना चाहिये) ॥ ७ ॥

६. निर्णसार ग्रन्थको भाऊ । कहहु यथा उपदेश प्रभाऊ ॥ ८ ॥

टीकाः— श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— पारख प्रकाशी हे सद्गुरो ! अब पूछना यही है कि—संसारमें मुख्य सारनिर्णय कौन है ? जड़—चैतन्यकी ग्रन्थी कैसे पड़ी है ? उस ग्रन्थीकी भाव या भेद कैसे जाना जायगा ? किस कारणसे जड़ ग्रन्थीमें जीव अरुझे पड़े हैं ? इत्यादि बातोंकी खुलासा बीजक सद्ग्रन्थके सार सत्य निर्णयका भावार्थ जैसा हो, वैसा ही विस्तारपूर्वक प्रगट करके कहिये ! जिससे आपके उपदेशके प्रभावसे एक उत्तम निर्णयसार नामक—सार-सार

निर्णय दरशानेवाला सद्ग्रन्थ भी तैयार हो जावे। जिसे पढ़के जिज्ञासु जनोंको गुरुनिर्णयकी सत्यसार सुगमतासे बोध हो जावे। सो हे प्रभो ! हमारे संशय निवारण, सद्गुण धारण कर, पारखबोध प्राप्तिके लिये उक्त वा निम्न शिष्य प्रश्नोंका यथार्थ गुरु उपदेशके प्रभावसे समाधान कर शब्दार्थ-भावार्थ आदिकी पूर्ण मर्म समझाकर निर्णयसार ग्रन्थको आदिसे अन्ततक कहिके पूर्णकर दीजिये ! अर्थात् निर्णय करनेपर जो सार हो, ऐसे सद्ग्रन्थके भाव और गुरु उपदेश देने, कहने-सुननेकी जैसा प्रभाव वा नियम हो, तैसा यथार्थ मुझे समझायके कहिये। इस प्रकार विनय कहिके ग्रन्थका शुरूआत या प्रारम्भः यहाँसे किया गया है। अब और यहाँसे प्रश्नोत्तरकी शिलशिला चालू होती है। जिज्ञासु शिष्य प्रश्न करता जाता है, उसका पारखी सद्गुरु भली प्रकारसे समाधान करते जाते हैं। वह पूरा होनेपर एक उत्तम ग्रन्थ तैयार हो जाता है। यहाँपर ग्रन्थके उत्थानका भावार्थ सम्पूर्ण हो गया है ॥ ८ ॥

॥१॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक १ । खण्ड १ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—२ ॥ (चौ० १ से ६ तक है)॥

१. कौन जमा है जगत मँझारा । जापर होत सकल बैपारा ॥९॥

टीकाः— श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— यह जिज्ञासु शिष्यका प्रथम प्रश्न है। सत-शिष्य सविनय पूछता है कि— सत्य बोधदाता हे सद्गुरो ! जगत् या समस्त संसारके बीचमें नित्य, सत्य, अखण्ड, जमा-पद या मूल धन, द्रव्यके समान सार कौन वस्तु है ? यह

सम्पूर्ण जगत्को जमा करनेवाला जगत्कर्ता मालिक कौन है? और कहाँ पर है? जिसके शक्तिसे संसारके सारा कारोबार चला आ चल रहा है, सो कौन है? और जिसके ऊपर या जिस चीजको पानेके लिये संसारमें सकल मनुष्य लोग योग, ध्यान, ज्ञान, कर्मादि साधनोंका बैपार लेन-देन कर रहे हैं। मत मतान्तरोंका विस्तार हो रहा है, गुरु-शिष्योंका सम्बन्ध चला रहे हैं। अनेक सिद्धान्त प्रगट किये और कर रहे हैं। जिसपर इतना सारा कार्यक्रम हो रहा है। वास्तवमें सो सत्य वस्तु कौनसा या क्या चीज है? यह मैं कुछ जान नहीं पाया हूँ। हे प्रभो! इस भेद्को अब आप ही दया दृष्टि करके बतलाइये? ॥ ९ ॥

२. बिना जमा बैपार न होई। यह तो विदित जाने सब कोई ॥१०

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और गाठीमें मूल धन-पूँजी-जमा, तिल्लक बाकी हुये बिना सौदाके खरीद-बिक्री आदिका व्यापार हेर-फेर, लेन-देन, हो सकती नहीं। जमाके बिना व्यापार व्यवहारके कारोबार ही कैसे होगा? नहीं होगा। यह बात तो सब कोई जानते ही हैं, क्योंकि संसारमें वह सबोंको विदित प्रचार या जग जाहिर है कि—व्यापार करनेवालेके पासमें कुछ जमा अवश्य रहता है। तैसे ही संसारमें किस जमाके ऊपर मत, पन्थ, ग्रन्थ, षट्दर्शन, ९६-पाखण्ड आदिकोंकी व्यापार वा साधना प्रचार हो रहा है? अवशिष्ट-विशिष्ट मूल सार जमा कोई हुये बिना इतना सारा बैपार = नाना कर्म, उपासनादि हो भी नहीं सकती है? यह गुरुवा लोगोंने जाहिर कर रखे हैं कि—संसारके मालिक विश्वपति

एक परमेश्वर जगत् कर्ता, धर्ता, हर्ता है। यही बात सब कोई कह-सुनके जानते हैं। असलमें वह सत्य वा झूठ क्या है? सो भेद कोई नहीं जानते हैं। इसवास्ते मैं आपसे विनय करता हूँ कि—इसका असली भेद कृपा करके मुझे बतला दीजिये ॥ १० ॥

३. कोई ब्रह्मज्ञान बतलावै। कोई योग समाधि लगावै ॥११॥

टीकाः—शिष्य कहता है:—क्योंकि विभिन्न मतवादी गुरुवा लोगोंके प्रपंचकी विचित्र-विचित्र बात सुन करके मैं तो चकरा गया हूँ। घबरा गया हूँ। कुछ ठहर—स्थितिको पकड़ नहीं पा रहा हूँ। कारण—सुनिये! कोई ब्रह्मज्ञानी तो सबको खण्डन करके एक ब्रह्मज्ञानको ही सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं। तहा वेद-वेदान्त प्रमाणसे अद्वैत सिद्धान्तको ही सिद्ध करके केवल ब्रह्म चराचरमें परिपूर्ण व्यापक सर्वाधिष्ठान प्रतिपादन करते हैं। 'अहं ब्रह्मास्मि' को दृढ़कर द्वैत भावको त्यागके विधि-निषेधसे रहित परमहंस होनेको बतला रहे हैं। और वैसे ही चाल-कुचालसे भी चल रहे हैं। ब्रह्मज्ञानीको पाप-पुण्य कुछ लगता नहीं, कहिके निडर होके मनमाने वैसे पशुवत् अनाचार अविचारका बर्ताव कर रहे हैं। इसवास्ते सो मुझे ठीक नहीं जँचा। और कोई योगी लोग अष्टाङ्ग योगमार्गको साधना करते-कराते हैं। षट् क्रियाको सीखकर षट्चक्र भेदन करते हैं, दशमुद्रा लगाते हैं। लम्बिकायोग करके दशों वायुको ऊपर ब्रह्मांडमें चढ़ाय कुम्भक लगाकर ऊर्ध्वद्वार बन्दकर शून्य समाधि लगाय, गरगाफ हो रहते हैं। उसी योग समाधिसे ही सच्चिदानन्द ब्रह्म प्राप्ति होनेको बतलाते हैं। ज्योतिस्वरूपको ही ईश्वरका दर्शन कहते हैं? यह क्या

बात है कुछ समझनेमें आता नहीं। हे गुरो ! ब्रह्मज्ञान तथा योग समाधिकी जमा क्या है ? सो दया करके समझा दीजिये ! ॥ ११ ॥

४. कोई तीरथ बरत अचारा। कोई काल कर्म विस्तारा ॥१२॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—शिष्य कहता हैः—उतना ही नहीं, कर्म, उपासनादिकी और भी विस्तार किये हैं। कोई गुरुवा लोग अरसठ तीर्थ गंगा, यमुना, गोदावरी, कावेरी, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा, आदि नदियोंके स्नान, परिक्रमा, आचमन, मार्चनादि करनेसे पाप कटके मुक्ति होनेको मानते हैं। उसके लिये धूमधामसे तीर्थयात्रा करते-कराते हैं। चारधामोंमें फिरते-फिराते हैं। प्रयागमें ले जाके माघ महीना भर कल्पवास कराते हैं। काशी करवतमें कूदके मरनेसे मुक्ति बताते हैं, इत्यादि नाना तरहसे तीर्थके नामसे काशी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन, हरिद्वारादिमें भटकाते हैं। और कोई नाना तरहसे व्रत कराते हैंः—चान्द्रायण व्रत, अनुष्ठान, कृष्णाष्टमी, रामनवमी, निर्जला एकादशी, शिव चौदश, पूर्णिमा, अमावस, प्रदोष, व्यतिपात, इत्यादिक दिनोंमें पर्व ठहराकर व्रत रखाते हैं। उससे मनोकामना पूर्ण होगी, स्वर्गादि मिलेगी, कहते हैं। कोई कुलाचार, लोकाचार, मत-पन्थोंके भिन्न-भिन्न आचार-विचार, देह, पात्र, भूमि शुद्धि आदि कृया करते-कराते हैं। और कोई काल कर्म = जिसमें कल्पना, धोखा मिथ्या प्रपंच लगा हुआ है, उसी कर्मकाण्डके जाल-जंजालका ही बहुविधिसे विस्तार किये और कर रहे हैं। अथवा जैमिनीके शिष्यगण मीमांसक लोग कर्ममार्गको ही मुक्तिदाई बतलाते हैं। और कोई कणादके मतानुयाई वैशेषिक शास्त्रको माननेवाले काल वा समयक

ही ब्रह्मस्वरूप ठहराते हैं। इसी सब मतवादका संसारमें नाना प्रकारसे विस्तार हुआ और हो रहा है ॥ १२ ॥

५. कोई जप तप संयम करई । कोई मूरति पूजा धरई ॥१३॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और कोई उपासक लोग विविध प्रकारसे भक्तिभावना करते-कराते हैं। उनमें कोई गायत्रीका जाप करते हैं, कोई ॐ, श्रीं, ररं, सौं, ऐं, ह्रीं, क्लीं,—ये सप्त महा बीज-मन्त्रोंका जाप करते हैं। कोई ॐ रामाय नमः, ॐ शिवाय नमः, ॐ नमोभगवते वासुदेवाय, इत्यादि प्रकारसे तैंतीस कोटि देवतोंके कल्पित नामोंका जाप करनेमें लगे हैं। तुलसी, रुद्राक्षादिके माला हाथमें लेके १०८ बार वा पाँच सौ, हजारसे लेकरके लाख, करोड़, आदि बहुसंख्यक जापके प्रपंचोंमें लगा रखे हैं। कोई जपके साथ-साथमें नाना तरहके तपश्या भी करते-कराते हैं। जैसे पञ्चाग्नि तापना, जलशयन, अरण्य निवास, ऊर्ध्वबाहु, ठाड़ेश्वरी, धूम्रपान, खाकी, फलाहारी, पत्र-पुष्पाहारी, दूबाहारी, दूधाहारी, निराहारी, निर्जली, दिगंबरी, तितिक्षासहन करनेवाले इत्यादि होते हैं। उससे चार फल और चार मुक्ति आदि प्राप्तिकी आशा लगाते हैं। और कोई विधिपूर्वक संयम पालन करते हैं। तहाँ थोड़ा खाना, थोड़ा बोलना, थोड़ा सोना, सब दैनिक, दैहिक कार्य अल्प मात्रामें करना और निरन्तर जप-तपमें वा ध्यानादिमें ही लगे रहना, ऐसे संयम करते हैं, और कोई मूर्तिपूजक लोग गणेश, शिव, विष्णु, सूर्य, भगवती, राम, कृष्ण, इन्द्र, चन्द्र, देवी, नवदुर्गा, लक्ष्मी, इत्यादिकोंके नामसे जड़मूर्तियोंकी आकार-प्रकार गढ़न करके अष्टप्रतिमाः-धातु,

पाषाण, काष्ठ, मिट्टी, काँच, रेती, चित्र, और भीतपर वा पीढ़ापर चन्दनसे लिखी हुई मूर्तिके, चित्र-विचित्ररूप बनायके उसे इष्ट देवता सुखदाता ईश्वर ठहराय कर षोड़शोपचारसे नित्यप्रति पूजा, अर्चा, बन्दना, ध्यान, धारणादि करते हैं। छोटे-बड़े मन्दिरादि स्थान बनायके उन्हीं जड़मूर्तियोंको धरे हैं, या स्थापना किये हैं। इस प्रकार बहुतेक लोगोंने जड़मूर्तिके पूजाको ही हितकारी समझके ग्रहण किये हैं या उसे ही दृढ़तासे पकड़ रखे हैं ॥ १३ ॥

६. नाना पन्थ नाना गुरुवाई । कौन जमापर राह चलाई ॥१४॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—ऐसे संसारमें षट्दर्शन, ९६ पाखण्डोंके नाना तरहके मत, पन्थ, ग्रन्थादिका प्रचार कर नाना प्रकारसे गुरुवाई = उपदेश देनेकी परिपाटी-शैली, विधि-विधान फैला रखे हैं। सब तरफ गुरुवा लोगोंका ही भरमार हो रहा है। हे सद्गुरो! इतने सब रास्ता किस जमाके आधारपर चले या चल रहे हैं। वह जमा कौनसा है? जिसपर इतने मार्ग, बहुमत चलाये और चला रहे हैं। किस पूँजीके बलसे राहगीर उन सब रास्तोंमें चल रहे हैं? सो कृपादृष्टि करके यथार्थ निर्णयसे समझा दीजिये! ॥ १४ ॥

दोहाः—काल कर्म औ कर्ता। कौन जमापर ठहार? ॥
(३) योग सांख्य वेदान्त मत। कहहु सकल निरुवार ॥१५॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—शिष्यने जिज्ञासा करके फिर यह भी पूछा कि—हे सत्यन्याई प्रभो! यह षट्शास्त्र, चार वेद, चार कितेब आदि किसके आधारसे बने हैं? और किसने बनाया? मीमांसा

शास्त्रमें जैमिनीने कर्मको ही सर्वश्रेष्ठ प्रधान ठहराया है। वैशेषिक शास्त्रमें कणादने काल वा समयको ही सब कुछ करनेवाला ठहराके समयकी प्रतिक्षा करनेको बतलाया है। और न्यायशास्त्रमें गौतमने जगत्कर्ता एक ईश्वरको मानके उसकी महिमा खूब गाया है। ईश्वरकी भक्तिसे मुक्ति आदि फल बताया है। तथा योगशास्त्रमें पतंजलिने अष्टांगयोग साधनोंकी विशेषता वर्णन किया है। योग द्वारा ही ज्योतिस्वरूप परमात्माका साक्षात्कार होगा; ध्यान, धारणा, समाधि लगाके परमानन्द प्राप्ति भी योगसे ही होगा, ऐसा बतलाया है। सांख्यशास्त्रमें कपिल मुनिने प्रकृति-पुरुषकी विवेकसे मुक्ति होनेको कहे हैं। प्रकृति जड़, अनित्य, परिणामिनी है, और पुरुष असंग, चैतन्य, नित्य, अखंड, विभु कहा है। और वेदान्तशास्त्रमें व्यासने अद्वैत ब्रह्मसिद्धान्तका कथन किया है। निराकार-निर्गुण, निरंजन आकाशवत् ब्रह्मको सर्वाधिष्ठान ठहराया है। इन षट्शास्त्रोंके सिद्धान्तमें बहुत ही बैर-विरोध लगा है। एक-दूसरेका खण्डन करके निजमतको ही प्रतिपादन किये हैं, हे सद्गुरो ! उन षट्शास्त्रवादियों-का मुख्य ठहराव किस जमापर हुआ है ? सबको ठहरानेवाला सत्य वस्तु क्या हुआ ? जहाँ-जहाँपर वे ठहरे वहाँ-वहाँपर जमा कौन हुआ ? उन सब मतवादको निर्णय करके कसर खोट परखाकर बील-छानकर मुझपर दया करके अब आप सत्य पारख बोधको कहिये, गुरुनिर्णयको परखाइये ! मैं आपके ही शरणागत हूँ ॥ इस प्रकार सन्देहको दरशाकर जिज्ञासु शिष्यने अपना प्रश्न पूरा कर मौन हुआ ॥ १५ ॥

॥ १ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर १ ॥ खण्ड २ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—३ ॥ [चौ० १ से ७ तक है] ॥

१. कहहिं कबीर सुनु शिष्य सयाना। यह सब भरम जाल विधि नाना ॥१६॥

टीकाः—उपरोक्त शिष्यका प्रश्न श्रवण करके सद्गुरु श्रीपूरण साहेब यहाँपर यथार्थ सत्य निर्णयको बतलाते हैं। श्रीकबीर साहेबके अनुयायी पारखी सद्गुरु कहते हैं कि—हे सत्‌शिष्य! तुम अच्छे समझदार बुद्धिमान्, सयान्, चतुर हो। तुम्हारे प्रश्नके कथनसे सो बात प्रस्ट मालूम पड़ा। जो बात तुमने पूछा है, उसके सम्पूर्ण भेद अब मैं कहता हूँ। चित्तको एकाग्र करके सुनो! तुमने प्रश्नमें ब्रह्मज्ञान, योगादि जिन-जिनका जिकर किया है, सो यह सब नाना प्रकारके भ्रमजाल, मिथ्या धोखा ही गुरुवा लोगोंने संसारमें फैलाये हैं। उसमें साँच जमापद कहीं भी कुछ नहीं हैं। सद्गुरु श्रीकबीर साहेबने बीजकमें जो कहे हैं, सो सुनो!—"झूठेहि जनि पतियाउ हो! सुनु सन्त सुजाना! ॥ योग जप तप संयमा। तीरथ व्रत दाना ॥ नौधावेद कितेब हैं। झूठेका बाना ॥ कहहिं कबीर कासों कहौं। सकलो जग अन्धा ॥ साँचेसे भागा फिरै। झूठेका बन्दा ॥ बीजक शब्द ११३ ॥" और भी—"आसन पवन योग श्रुति सुमृति। जोतिष पढ़ि बैलाना ॥ छौ दर्शन पाखण्ड छयानबे। ये कल काहु न जाना ॥ आलम दुनियाँ सकल फिरि आये। ये कल उहै न आना ॥ शब्द २६ ॥

॥ शब्द ॥

हंसा हो! चित्त चेतु सकेरा। इन्ह परपञ्च कैल बहुतेरा ॥१॥
पाखण्डरूप रचो इन्ह त्रिगुण। तेहि पाखण्ड भूलल संसारा ॥२॥
घरके खसम बधिक वै राजा। परजा क्या धों करें विचारा ॥३॥

भक्ति न जाने भक्त कहावै । तजि अमृत विष कैलिन सारा ॥४॥
आगे बड़े ऐसेहि बूडे । तिनहुँ न मानल कहा हमारा ॥५॥
कहा हमार गाँठि दृढ़ बाँधो । निशिवासर रहियो हुशियारा ॥६॥
ये कलिगुरु बड़े परपञ्ची । डारि ठगोरी सब जग मारा ॥७॥
वेद् किताब दोउ फन्द पसारा । तेहि फन्दे परु आप विचारा ॥८॥
कहहिं कबीर ते हंस न बिसरे । जेहिमा मिले छुड़ावनहारा ॥९॥
॥ बीजक शब्द ३२ ॥

इत्यादि प्रकारसे समझाय कर सद्गुरुने साफ-साफ बतलाय दिये हैं कि—नाना विधिके मत, पन्थ, ग्रन्थोंकी मानन्दी यह सब ही भ्रम भूलका जाल-जंजाल ही है। क्योंकि उनमें ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि कर्ता भिन्न-भिन्न प्रकारसे ठहरायके जीवोंको धोखेमें डालके फँसा रखे हैं। जीवके सत्स्वरूपका पहिचान पारख वहाँ कहीं भी नहीं है ॥ १६ ॥

२. जीव जमा एक साँच है भाई ! औरों सबै खर्च ठहराई ॥ १७ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—हे भाई! जिज्ञासु शिष्य! सारे संसारमें नित्य, सत्य, अखण्ड, अविनाशी, एकरस, साँचपद जो है, सो निज जीव यह एक ही जमापद है। चैतन्य जीव कभी त्रिकालमें नाश न होनेवाला होनेसे यही एक सत्य जमापद है। जीवको छोड़कर और सब मानन्दी ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, देवी, देवता, भूत, प्रेत, खुदा, रिद्धि-सिद्धि आदि सकल सिद्धान्त मिथ्या भ्रममात्र अनुमान, कल्पनाका धोखा है। सो पारख निर्णयमें न ठहरनेवाला खर्च = व्यय, विकारी, परिणामी विनश्वर या नाशमान्, नष्टरूप है। उन सबोंको भी नाना तरहसे ठहरानेवाले चैतन्य जीव

यही खास वास्तविक जमा है। अतएव जीव जमा सत्य, और सब खर्च मिथ्या ठहरता है ॥ १७ ॥

३. जीवहि ब्रह्म आतमा होई । जीवहिं योग करै सब कोई ॥१८॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—क्योंकि-नर जीव हो भ्रमिक होके वेद-वेदान्तका कथन श्रवण, मनन कर स्वयं ब्रह्म या आत्मा होते हैं। तहाँ "अयमात्मा ब्रह्म" "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा कहते हैं। यदि नर जीव न होते, तो ब्रह्म और आत्माका कथन कौन करता? क्योंकि पण्डितोंने "बृहत्वाद् बृहणत्वात् स ब्रह्मः" "आतति सर्वत्र व्याप्नोतीति आत्मा" यह लक्षणा ब्रह्म तथा आत्माका लगाये हैं। अर्थात् बड़ा होनेसे व्यापक और शरीर वृद्धि आदि हेतुत्वयुक्त सो वही ब्रह्म है॥ सबमें परिपूर्ण सर्वत्र व्यापक सोई आत्मा है॥ अब विचार करिये निर्गुण-निराकार, व्यापक माना हुआ ब्रह्म-आत्मा अपने आपको कैसे कहाँ प्रगट कर सकता है? इसलिये नर-जीव बिना ऐसा मिथ्या मानन्दी तो भी और कौन करेगा? तहाँ कहा भी है:—

साखीः—

सबको उतपति जीव सो। जीव सबनको आदि ॥
निर्जिवने कछु होत नहीं। जीव हैं पुरुष अनादि ॥२५४॥
जीव बिना नहीं आतमा जीव बिना नहिं ब्रह्म ॥
जीव बिना शिवो नहीं। जीव बिना सब भर्म ॥२५६॥
आतमा औ परमातमा। ईश ब्रह्मलों जोय ॥
जीव बिना मुरदा सकल। बूझै बिरला कोय ॥२५७॥

॥ कबीर परिचय ॥

विवेक करके देखिये ! पारखी गुरुने कितना सुन्दर रीतिसे प्रष्ट करके कहे हैं। वेद-वेदान्त शास्त्रोंको कल्पनासे बनायके मनुष्य जीव ही ब्रह्म, आत्मा होते हैं, यानी भ्रमसे मिथ्या आरोपण करके ऐसा अपने विषे मान लेते हैं।

और अष्टांग योगादि साधना करनेवाले सब कोई भी मनुष्य जीव ही भये और हैं। महादेव, मछन्दरनाथ, गोरखनाथादि नवनाथ योगी सब भी नर जीव ही भये थे। तथा सूत्ररूपमें योगशास्त्रको बनानेवाले पतंजलि मुनि भी एक देहधारी जीव ही थे। और योग मार्गावलम्बी लोग जो-जो योगाभ्यास करनेवाले हैं, वे सब भी मनुष्य जीव ही हैं। अतएव जीव ही सत्यसार है। और सब असार है ॥१८॥

४. जीवहि कर्ता कर्म बनावै । जीवहि काल समय ठहरावै ॥१९॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और तैसे ही ईश्वरकर्ता प्रतिपादन करनेवाले न्यायशास्त्रका रचइता गौतम मुनि भी एक देहधारी भ्रमिक जीव ही थे। वाणी प्रपंचका कर्ता जीव निज सत्य स्वरूपको न जानकरके अनुमानसे चराचर जगत्के कर्ता कोई ब्रह्म, ईश्वरादि मान-मानके भ्रम चक्रमें पड़े हैं। उसके प्राप्तिके लिये नाना कर्म साधनोंमें लगे पड़े हैं। और मीमांसा शास्त्रको बनायके कर्मकाण्डका प्रतिपादन करनेवाले जैमिनी मुनि भी नर देहधारी एक जीव ही थे। जीव ही शुभाशुभ या पाप-पुण्य, विधि-निषेधादि नाना कर्म-कुकर्मोंको बनाते हैं वा करते हैं। कहीं यज्ञ-यागादिमें बलिदान दे करके जीव हिंसा करते हैं। कहीं पालन-पोषण रक्षण भी कोई करते हैं। इत्यादि प्रकारसे कर्माध्यासको बनानेवाले सब मनुष्य जीव ही हैं। और काल वा

समयको कर्ता ठहरानेवाले वैशेषिक शास्त्रके रचयिता कणाद मुनि भी एक मनुष्य जीव ही थे। कल्पनासे काल वा महाकाल उपस्थित होके एक समयमें महाप्रलय होगा, तव सारी सृष्टि विनाश हो जायगो, इत्यादि भ्रमकी वाणी कथनकर मनमाने सो उसे ठहराने वाले भी सब मनुष्य जीव ही हैं। बिना जीवके ऐसे-ऐसे सम्भव वा असम्भ बातको और कौन ठहरायेंगे? इस कारणसे चैतन्य जीव ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥

५. चारि वेद औ नाना बानी। कल्पि कल्पि सब जीव उरानी ॥२०॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता, सद्गुरु कहते हैंः—हे शिष्य! तुम सत्यन्यायसे परखो! भ्रमिक होके भूलो मत। जड़-चैतन्यरूप संसार अनादि कालका यह स्वयं ही है। अतएव जगत्के कर्ता, धर्ता, हर्ता मानना मनुष्योंकी मिथ्या कल्पना ही मात्र है। प्राचीन समयमें ब्रह्मा, अङ्गिरा, आदित्यादि जो मनुष्य भये, उन्होंने मनमानन्दी-कल्पनासे ऋग्, यजुः, साम, और अथर्वण नामके चार वेद बनाये, लोकमें उसीका प्रचार किये, वही वेदको पढ़-गुनके षट्मुनियोंने षट्शास्त्र अलग-अलग ही रचना किये। तथा मनु आदिकोंने १०८ स्मृति बनाये हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, १०८ उपनिषद्, १४ विद्या, ६४ कला, १८ पुराण इत्यादि हिन्दुओंमें एवं चारकिताब—कुरान, बाईबिल, आदि वाणी मुस्लिम और ईसाईयोंमें बनाये हैं। और भी नाना प्रकारके असंख्यों वाणी जाल लेख, ग्रन्थ, इत्यादिक सब नर जीवोंने ही निज-निज मति अनुसार कल्पना कर-करके रचनाकर उत्पन्न किये हैं। जो कि आज सब तरफ वाणी

जालका विस्तारसे पसारा हो रहा है। सो सब समय-समयपर मनुष्य जीवोंने ही कल्पि-कल्पिके उत्पन्न किये हैं। कोई ईश्वर वा खुदाने वेद और कुरानादिको बनाया नहीं, देह सम्बन्ध बिना वाणी बन नहीं सकती है, इसीसे तमाम वाणी-खानीकी जाल जीवोंसे ही बनी हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ २० ॥

६. जेते सिद्धान्त भये जग सोई। सो सब भास जीवको होई ॥ २१ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और उपरोक्त सोई वाणी वेद-कुरानादिके आधारसे संसारमें द्वैत, अद्वैत, विसिष्टाद्वैतादिसे लेकरके जितने भी अनेकों सिद्धान्त, निश्चय, ठहराव, मत, पन्थ, ग्रन्थोंकी सार कायम भये हैं या निकले हैं, सो सब भास, अध्यास, अनुमान, कल्पनाकी निचोड़ नर जीवोंके द्वारा ही उत्पन्न या प्रगट हुये हैं। उस भाससे भासिक जीव सदा न्यारा ही रहता है। यानी जगत्में जितने भी सिद्धान्त खड़े भये या हो रहे हैं, सो सब भास मनुष्य जीवोंको ही हुआ या हो रहा है। पारख बिना भासिक जीव भ्रमसे मिथ्या भासमें ही भूले और भूल रहे हैं। सो सब भास मिथ्या और भासिक जीव सत्य हैं, ऐसा जानो ॥ २१ ॥

७. जीव जमा नहिं होइ रे भाई ! सब सिद्धान्त कौन ठहराई ? ॥ २२ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—हे भाई ! जिज्ञासु शिष्य ! अब इतने इशारापरसे तुम निष्पक्ष होके विवेक करो ! यदि सबको जाननेवाला, माननेवाला, स्थापना करनेवाला, ज्ञानस्वरूप, चैतन्य जीव नित्य-सत्य, जमापद सबसे न्यारा न होता, तो फिर यह सब सिद्धान्तोंको और मत, पन्थ, ग्रन्थोंको कौन ठहराता ? कौन निश्चय कर-करायके प्रचार करता ?

क्योंकि जड़में तो कोई ज्ञान गुणका लक्षण है नहीं। पाँचो तत्त्व जड़ होनेसे उनसे ऐसे-ऐसे वाणीके सिद्धान्त प्रगट होना सम्भव नहीं। और ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदादि माना हुआ भ्रममात्र है। फिर उन्हें निराकार व्यापक माना है। तो निराकार-व्यापकसे साकार एकदेशी वस्तु उत्पन्न हो ही नहीं सकती है। और वह निर्जीव वाणीके कल्पना मात्र है। अतएव देहधारी मानव जीवके बिना उपरोक्त सकल सिद्धान्तको ठहरानेवाला और कोई भी कहीं नहीं है। इससे यह अच्छी तरहसे निश्चय हो गया कि—सकल मतवाद, ग्रन्थ, पन्थ, सिद्धान्तोंको मनुष्य जीवोंने ही ठहराये हैं। सो मिथ्या भास है। और जमा बाकी अविनाशी सार स्वयं प्रत्यक्ष चैतन्य जीव हैं। स्वरूपसे अखण्ड, असंख्य, चैतन्य जीव कर्मानुसार जड़ाध्यासी हो चार खानियोंमें भ्रमण कर रहे हैं। मनुष्य खानी कर्म भूमिका है। यहाँ ही नवीन कर्म बनते हैं, वाणी-खानीकी विशेष रचना कर अध्यास संग्रह होता है, सोई अन्य योनिको प्राप्त होके भोग-भोगा करते हैं। इस तरह जीव जमा ही मुख्य सार नित्य सत्य है, ऐसा जानकर निश्चय करो ॥ २२ ॥

दोहाः—कहहिं कबीर विचारिके। ये निर्णय परमान ॥
(४) जीव जमा जाने बिना। सबै खर्चमें जान ॥ २३ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—हे शिष्य ! सद्गुरु श्रीकबीर साहेबने विवेक-विचारसे छानबीन करके यही सत्यन्याय निर्णयको बीजक सद्ग्रन्थमें कहे हैं। सोई पारख निर्णय मैं तुम्हें बतला रहा हूँ। यही निर्णय प्रमाण करके यथार्थ मानने योग्य है। पारख

सिद्धान्त यही एक सत्य-सिद्धान्त है। चैतन्य जीव यही अखण्ड अविनाशी नित्य सत्य जमापद है। सो निज स्वरूप जीव जमाको जाने-पहिचाने बिना, पारख बोध हुये बिना जीवको कहीं स्थिति मुक्ति होती नहीं। इसीवास्ते सत्यको न जानके और सब कोई खर्च, नाशमान् देहके मिथ्या भास अध्यासादिमें ही लगके नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं, ऐसा पारख करके जान लो। क्योंकि ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा-परमात्मा, खुदा, देवतादि सब निर्जीव, कपोलकल्पित हैं। उन्हींको सत्य मान-मानके जो भी साधनोंमें लगे वा लगा रहे हैं—सो सबके सब खर्वमें या बिनाशमें ही लगे हैं, ऐसा जानो। पारखी सद्गुरु श्रीकबीर साहेबने यही निर्णय खूब सोच-विचार करके ठहरायके प्रमाण किये हैं। सो उसे पुष्टीको प्रमाणके लिये बीजकका साखी बताता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो—॥ २३ ॥

सत्य शब्द टकसार ॥ प्रमाण बीजक मूल साखी नं० ११

साखीः—जो जानहु जग जीवना। जो जानहु सो जीव ॥
(१) पानी पचावहु आपना। तो पानी माँगि न पीव ॥२४॥

टीकाः—गुरुमुख—सद्‌गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—हे मनुष्यो! जो तुम जमा जानो, सो आप अपने स्वयं स्वरूप जीवको ही जानो। जीवसे परे कोई सत्य जमापद नहीं है। ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मादि ये सब मनके कल्पना हैं, वह कुछ सत्य वस्तु नहीं, और देह, गेह, शब्दादि पंच विषय नाशमान् विकारी हैं, ये सब तुम्हारेसे ही संचारित होते हैं और तुरन्त नाश भी हो जाते हैं। इसवास्ते वह सब खर्व ही हैं। जो कुछ सत्य जानो, सो जीवको ही जानो। और

पानी सोई वाणी है, सो वेद-वेदान्त, शास्त्र, पुराण, कुरानादि नाना प्रकारके सब वाणी और उससे निकले हुए सब सिद्धान्त, वह तो तुम्हारी यानो जीवकी कल्पनासे ही उत्पन्न भई है। सो कल्पना, अध्यासादिको पचावो, परख करके निवारण करो, हटावो, देह रहते ही परख-परखके उसे जलावो, और तुम पारख पदपर दृढ़तासे स्थिर होओ। जब यह देह ही नाशमान् है, तब देह सम्बन्धी विकार सो अविनाशी कैसे होगा ? कभी नहीं होगा। अतएव भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना, तथा आनन्दादि विकार सब भी न ठहरनेवाला नाशमान् ही हैं। इसीसे जीव जमा एक सत्य है, और सब खर्च असत्य है। ऐसा यथार्थ पहिचान लो, फिर गुरुवा लोगोंके पासमें जाके नाना वाणीके उपदेश लेनेकी तुम्हें कोई आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि तुम्हारेपर दूसरे कोई कर्ता ईश्वरादि मालिक है नहीं। इससे गुरुवा लोगोंसे कल्पित वाणीकी और ही और उपदेश माँगो मत, भ्रम-भूलमें जावो मत ॥ संक्षेपतः हे भाई! जगत्में जीवन जीव चिरंजीव चैतन्य कला नित्य, सत्य, अखण्ड, जमा वस्तुको जो तुम जानना चाहते हो, तो स्वयं स्वरूप जीवको ही जान लो। जीवके बिना और कोई भी सत्य पदार्थ है नहीं। जो तुम सबको जानते हो, मानते हो, इसवास्ते सो जनैया जीव तुम ही सत्य हाजीर—हजूर हो, ऐसा जानो, विवेक करो। और निर्जीव पानी, वाणी, काम, आदत, अध्यासादिको अभी नर देहमें ही पचावो, गलाओ, मिटावो, नाश करो, तथा अपना निज स्वरूपमें स्थिर हो रहो। माना हुआ पीव = परमात्मादि कोई कुछ है ही नहीं। अतएव भ्रमिक गुरुवा लोगोंके पास जाके कल्पित वाणी उपदेशको माँगके

ग्रहण मत करो। विष मिला हुवा पानीके समान समझके धोखेके वाणीको भी परित्याग करो। गुरुमुख निर्णय सारशब्दको ही ग्रहण करो ॥ १ ॥

हे शिष्य ! इस प्रकार तुम अब जीवको ही सत्य सार जमापद जान लो, जीव करके ही संसारमें सारा व्यापार खानी-वाणी आदिकी कार्य चल रही है, सो प्रत्यक्ष ही है ॥ २४ ॥

॥२॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक २ । खण्ड ३ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—४ ॥ [चौ० १ से ७ तक है] ॥

१. जीव जमा जो कहेउ गोसाँई। यह निश्चय हमरे चित्त आई ॥२५

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—उपरोक्त गुरुउत्तर निर्णय सुनके पूरा समाधान नहीं भया, इसवास्ते जिज्ञासु शिष्यने अपना शंका इस दूसरा प्रश्नमें व्यक्त किया है। सो ऐसा है कि—शिष्य कहता है—हे सद्गुरो ! आप, गो = दश इन्द्रियादि तन-मनको शमन-दमन करके निज वशमें किये हुए सच्चे इन्द्रिय निग्रही, साँई = स्वामी, मालिक सर्वश्रेष्ठ हो। इसवास्ते गोस्वामी पदका सर्वांग अर्थ आपमें ही घटता है। हे साहेब ! आपने जीवको ही सब प्रकारसे जमा ठहराके निर्णय वचन जो कहे हो, सो आपके कृपासे हमारे चित्तमें भी अब यही निश्चय होता है कि--जीव-जमा ही सत्य है। बाकी सब मत-मतान्तरोंकी मानन्दी, सिद्धान्त, भ्रमरूप असत्य खर्च ही हैं। आपके समझानेसे यह मैंने जान लिया हूँ। इन सबोंको स्थापना करनेवाला जीव श्रेष्ठ चैतन्य है। ऐसा निश्चय मेरे मनमें भी हो गया है ॥ २५ ॥

२. जो तुम कहेउ सोइ है साँची। जीव जमा चाहौं प्रभु जाँची ॥२६

टीकाः—शिष्य कहता हैः—हे साहेब! आपने जो कुछ सत्य निर्णयका उपदेश अभी कहे हैं, सो सब यथार्थ वा सत्य है। हे प्रभु! अब मैं उस जीव-जमाका असली पहिचान करना चाहता हूँ। इसलिये मैं आपसे पुनः याचना करता हूँ कि—जीव ही जमा है, यह जाननेके लिये पूर्ण परीक्षा किस प्रकारसे होवै? मैं जीव-जमाको जाच करना, समझना, बूझना, परखना, स्वरूपका पहिचान करना, चाहता हूँ! जिससे अपरोक्ष बोध दृढ़ होवै। किसीके तर्क कियेसे विचलै नहीं, खण्डित होवै नहीं, हे प्रभु! कृपा करिये सोई युक्तिसे दरशाइये ॥ २६ ॥

३. हम अजान है शिष्य तुम्हारा। कहि समुझावो सकल निरुवारा ॥२७

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और हम प्रथमसे असली स्वरूपको जानते नहीं, इसलिये अज्ञान हैं, उस अज्ञानको मिटायके सत्यज्ञान प्राप्ति करनेके लिये आपके शरणमें आके शिष्य भये हैं। अतएव हम अज्ञानी शिष्यके ऊपर दया-दृष्टि करके सकल भेदको निर्णय करके कहिके समझाइये। आपके वचनपर हम पूर्ण श्रद्धा-विश्वास रखते हैं। और हम आपके शिष्य अभी नादान बालकवत् हैं। सत्यासत्यको भलीभाँति अभी हम ठीकसे जानते भी नहीं हैं। मतवाद, पन्थ, ग्रन्थोंका सिद्धान्त कौन-सा ठीक वा बे-ठीक है, यह भी हम जानते नहीं हैं। सो सकल निरुवार करके आप ही अब हमें समझा दीजिये ॥ २७ ॥

४. जीव जमा काहे सो कहिये? । याकी समुझ कौन विधि लहिये ॥२८

टीकाः—शिष्य कहता हैः—हे गुरो! और सबको छोड़कर जीव

जो है, सो यह ही जमा है, यह कैसे कहना ? और किस वस्तुको जीव ठहराना ? जीव जमा कैसे भया ? सो भी निर्णय करके कहिये ! इसके लिये प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है ? जिसके आधारसे जीव-जमाका बोध हमें भी होवै। इसकी समुझ, पहिचान, लक्षण, बोध, किस प्रकारसे प्राप्त करना चाहिये ? जिस विधिसे पक्का निश्चय होवै, सो उपाय कहिये ॥ २८ ॥

५. पाँच तत्त्व गुण तीन शरीरा । यामें जीव कौन गुण धीरा ॥२९

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—शिष्य अपने प्रश्नके शिलशिलाको चालू रखते हुये कह रहा है कि—धीरा = धीर, वीर, गंभीर, वैराग्य-वान् सद्गुणोंसे सुशोभित हे सद्गुरो ! इस शरीरमें पाँच तत्त्व तथा तीन गुणके भाग ही प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। और उक्त अष्टधा प्रकृतिके सम्मेलन-सम्बन्धसे यह स्थूल-देह कायम बना भी है। यावत् प्राणीके शरीर बननेमें पाँच तत्त्व और तीन गुण लगा है। सो तत्त्व-गुण सबके लिये प्रत्यक्ष ही हैं। अब यह बतलाइये कि— उक्त प्रकृतिके आठ भागमेंसे जीव कौन है ? क्या आकाश जीव है ? कि वायु जीव है ? कि अग्नि जीव है ? कि जल जीव है ? कि पृथ्वी जीव है ? कि उन्हींके गुण रूप पंच विषय जीव है ? कि रज, सत्त्व, और तम ये तीन गुण जीव हैं ? जीवका स्वरूप क्या कैसा है ? सो निर्णय करके बतलाइये ! तथा जीवका गुण कौन है ? लक्षण क्या है ? तत्त्व-प्रकृतिके समान जीवके गुण भी खण्डित है कि—अखण्ड है। मुख्यतया शरीरमें जीव कौन है ? यह दर्शाइये ॥ २९ ॥

६. कोई वीर्य जीव ठहरावै । कोई रक्त कोई तेज बतावै ॥३०॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—हे गुरो ! मैंने कितनेक मतवादियोंसे जीवके बारेमें अनेक तरहकी बातें सुना हूँ, सो यह है कि—कोई मतवादी तो वीर्यको ही जीव ठहराते हैं। वे कहते हैं—बिन्दु ही वीर्यरूप ब्रह्म है, उसीका अंश जीव है। और महावाक्य उपनिषद्में परमात्माको स्वयं शुक्ररूप बताया है, तथा गीतामें—"तेजवान् पदार्थोंमें मैं तेज हूँ", कहा है। देहमें मुख्य तेज वीर्यका ही दिखाई देता है। और चारवाकमें एकने वीर्यको ही युक्तिपूर्वक सार ब्रह्म सिद्ध किया है। एवं कोई कहते हैं कि—जैसे बीजोंकी अंकुरोंमेंसे प्रथम दो पत्र निकलते हैं, तैसे ही वीर्यसे देह और जीव दोनों उत्पन्न होते हैं। कोई वृक्षोंके फलवत् एक जीवसे अनेकों जीवोंकी उत्पत्ति मानते हैं। देह उत्पन्न होनेमें कारण वीर्य होनेसे वीर्यको ही नाना युक्तिसे जीव ठहराये हैं और ठहरा रहे हैं। और कोई स्थूल देहको, कोई इन्द्रियोंको, कोई त्रिगुणादिको ही जीव करके मान रहे हैं। और कोई रक्तको ही जीव बतलाते हैं, मृत्यु होनेपर देहमें रक्त रहता नहीं, अतः रक्त ही जीव है कहते हैं। कोई तेज तत्त्वके प्रकाशको ही ज्योतिस्वरूप जीव बतलाये हैं, मुर्दामें कोई तेज रहता नहीं, अतः तेज ही जीव है, ऐसा बताये हैं। यह अन्य मतवादियोंके कथन हैं ॥ ३० ॥

७. कोई श्वासा कोई शून्यहि कहई। नाना वाणी जगमें बहई ॥३१

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और कोई प्राणरूप श्वास वायुको ही जीव मानते हैं। तहाँ कहा हैः—"प्राण ही मनुष्य, पशु आदि सर्व जीवोंकी आयु है। इसलिये जीवोंको प्राणी कहते हैं। प्राणके

रहनेसे शरीर जिन्दा रहता है और प्राण निकल जानेसे देह मृतक हो जाता है। सभी कोई अपने-अपने प्राणकी रक्षा करना चाहते हैं। इसवास्ते योगी लोग ब्रह्माण्डमें श्वासको चढ़ायके समाधि लगाये रहते हैं।" इस तरह बहुत लोगोंने विश्वास करके श्वासको ही जीव माने हैं। और कोई कहते हैं कि—शून्य ही जीव है। चारवाकमें शून्यवादी कहता है कि—"तत्त्व और चैतन्य दोनोंका अधिष्ठान शून्य है। जब नींद लगती है, तब तत्त्व और चैतन्य शून्यमें ही समाय जाते हैं, फिर शून्यसे ही प्रगट होते हैं। इससे शून्य सच्चा और सब झूठा है इत्यादि" "चौपाईः—शून्य आवै शून्यै जाई। शून्य-शून्यमें रहा समाई ॥ ताते सर्वं शून्यै जान। शून्य बिना नहिं दूसर मान ॥ सबते अधिक शून्य जानिये। शून्यते अधिक न कोई मानिये ॥" इस प्रकार शून्यकी विशेषता वर्णन करके कितनेक लोगोंने शून्यको ही जीव या ब्रह्म आदि वर्णन किये हैं। ऐसे-ऐसे नाना प्रकारके वाणी, मत, पन्थ, ग्रन्थोंकी विभिन्न सिद्धान्त जगत्‌में जोर-शोरसे बह रही हैं, प्रचार होके चल रही हैं। जिसे पढ़-सुन-गुनके प्रतीत कर बहुत सारे मनुष्य उधर ही बहते चले जा रहे हैं। इसमें सत्य क्या है? असत्य कौन है? सो पहिचान पड़ा नहीं। उसे आप यथार्थ निर्णय करके अब परखाइये, यही विनय है ॥ ३१ ॥

दोहाः—यह तो जानि परे नहीं। जीव कहा धौं आय ॥
(५) यह संशय प्रभु मेंटिके। सतगुरु होहु सहाय ॥३२॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—पूर्व चौपाइयोंमें नाना मतवादियोंके नाना मानन्दी बताके यहाँपर शिष्य प्रश्नका खास मतलब कहता है

कि—हे साहेब! अनेकों मतवादोंमें लक्ष बट जानेसे मुझे यह कुछ भी जान पड़ा नहीं कि—कौन-सा मत-सिद्धान्त ठीक सच्चा है। भला! जीव क्या वस्तु है? कहाँ है? कैसा है? यह बात तो उपरोक्त मतवादमें कहीं भी कुछ मतलब जाननेमें आया नहीं, ५ तत्त्व, तीन गुण, वीर्य, रक्त, तेज, श्वासा और शून्य इनमें किसको जीव मानना और किसको नहीं मानना? और जिस जीवको आपने जमा बतलाये हो, सो क्या पदार्थ है? इस वक्त मैं बड़ा संशय ग्रसित हो रहा हूँ! मेरी मति डावाँडोल हो रही है। अतएव हे प्रभो! यह कठिन संशय—जन्य-शूलको मिटाय करके मुझे सुखी करिये। हे सद्गुरो! मैं आपके शरणागत हूँ! भवधारसे पार उतारनेमें आप सहायक होइये! आपके सहायता बिना इस दुस्तर वाणी जालसे पार उतरनेमें मैं असमर्थ हूँ! मैं आपके महान पारख बलका सहायता चाहता हूँ। कृपा-दृष्टि करके सहायक होइये। मेरे सब भ्रम सन्देहोंको मिटाइये! मेरे प्रार्थनाको सुनिये! मैं शिर नवायके बन्दना करता हूँ ॥ ३२ ॥

॥२॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर-२ ॥ खण्ड ४ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—॥ ५ ॥ चौ० १ से १० तक है ॥

१. ये सब नाशमान हैं भाई! जीव जमा ये कैसे कहाई ॥३३॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे जिज्ञासु शिष्य! तुम घबराओ नहीं, धैर्य धारण करके विवेक करो। मैं जो कहता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो, फिर सोचो-विचारो। हे भाई! तुमने अन्य मतोंके भावना करके शरीरमें पाँच तत्त्व, तीन गुण, वीर्य,

रक्तादि जिन-जिनको जीव बताया, सो मिथ्या भ्रम है। क्योंकि ये सब पदार्थ शरीरादि तो क्षणभंगुर-विनश्वर या नाशमान् हैं। और जड़का कार्य-विकार हैं। फिर कहो, वह जीव जमा नित्य-सत्यस्वरूप करके कैसे कहला सकता है या वे जमा कैसे कहायेंगे? इन सबोंका लक्षण बनने-बिगड़नेवाला है, सो तो सभी कोई जानते हैं, तब अखण्ड जीव जो कभी बनता-बिगड़ता नहीं, सदा सत्य जमापद है, फिर ये जड़ कार्य पदार्थ भी वही जीव ही है, ऐसा कैसे कहलावेगा? ऐसा कदापि हो सकता नहीं ॥ ३३ ॥

२. जो नाशे सो जीव न होई। जीव सदा अविनाशी सोई॥ ३४॥

टीका:—सद्गुरु कहते हैं:—क्योंकि जो चीज बनके समय पायके बिगड़ जाता है, परिणाम बदल जाता है, या विनाश हो जाता है, सो वह जीव कभी भी हो सकता नहीं। क्योंकि—जीव तो सदा-सर्वदा अनादिकालसे एकरस, अखण्ड, स्वयं स्वरूप है, सोई अविनाशी कहलाता है। तीन कालमें कदापि कभी जीवका परिणाम बदलता नहीं। त्रिकाल अबाध होवै, सो सत्य कहलावै। सत्य सोई जीव है, सोई खास जमापद भी है। अतएव सदोदित अविनाशी रहनेवाला सोई जीव है। जो नाशवान् है, सो जीव नहीं है, ऐसा जानो ॥ ३४ ॥

३. चिरञ्जीव जीव कहि दीन्हा। यह सब नाशमान तुम चीन्हा॥ ३५॥

टीका:—सद्गुरु कहते हैं:—और कभी किसी वक्त भी जिसका नाश होता नहीं, सो चिरंजीव अर्थात् चिरकाल या अनादिकालसे हमेशा जीते ही रहनेवाल, सनातन, पुराणपुरुष, अज, नित्य, सत्य, अखण्ड, ऐसे लक्षणवाला वही चैतन्य जीव है। तहाँ कहा भी

है:—"न जीवोम्रियते" छा० उ० ६।११।३॥—चेतन जीवका नाशरूप लय होता नहीं। वह अखण्ड अमर है, अर्थात् जीव किसीके कारण-कार्य नहीं, स्वरूपसे अनादि अनन्त हैं॥—"सद्कारणवन्नित्यम्" वैशे० सू० १।४।१॥—जो प्रत्यक्ष हो, जिसका कारण कोई भी न हो, वह नित्य पदार्थ है॥ "जीवितितिजीवः" जो सदा जीता रहता है, सोई अमर जीव है॥

तीन काल, तीन अवस्थाओंमें नित्य रहनेवाले षट्पन और अनेकों देह धारण करते-छोड़ते हुये भी जो सदा एकरस, अखण्ड, ज्योंका त्यों स्वरूपसे सत्य बना रहता है, सोई चिरंजीव, ज्ञान गुण-वाले जीव हैं। सो अन्य शास्त्रोंके प्रमाणसे भी दिखलाके कह दिया है। और भी कहा है—"अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः॥" गीता २।१८॥—इस नाशरहित अप्रमेय नित्यस्वरूप जीवात्माके यह सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं॥ "वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणिविहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ गीता अ० २।२२॥"—जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करते हैं। वैसे ही जीवात्मा भी पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होते हैं॥

देहादि पदार्थ सब यह नाशमान् हैं, तुम इसको अच्छी तरहसे चीन्हों-पहिचानो, जीवको चिरंजीव, अमर कहके प्रमाण सहित बतला दिया हूँ। अब जीवसे भिन्न यह सब कार्य पदार्थ और मानन्दी नाशमान् है, ऐसा तुम भी विवेक करके चीन्ह सकते हो, सो विचार करके पहिचान कर लो॥ ३५॥

४. पाँच तत्त्वंका जाननहारा । तीनों गुणका करत विचारा ॥ ३६ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और पाँच तत्त्वोंका जाननेवाला, तथा तीनों गुणोंका पृथक्-पृथक् विचार करनेवाला, जनैया जीव द्रष्टा साक्षीरूपसे सदा उससे न्यारा ही रहता है। तभी तो उन्हें जानता है। यदि गुण और तत्त्वरूप ही वह होता, तो फिर कैसे जान सकता। विवेक दृष्टि खोलके देखो! वीर्य, रक्त, तेज, श्वास, और शून्य ये क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश इन तत्त्वोंके ही कार्य भाग हैं। जीव न्यारा रहिके ही उन्हें जानता-मानता है॥ और जड़ तत्त्व अपने आपको जान नहीं सकते हैं। यदि तत्त्वमें भी जानपना होता, तो फिर वे जड़ ही न कहलाते। यह पृथ्वी हैः—घट, मठ, पट है, ऐसा कहनेवाला उससे न्यारा ही रहता है। यह जल हैः—नदी, नाला, तालाब, बावड़ी, कुवाँ है, ऐसा न्यारा ही होके देखता और जानता है। यह अग्नि हैः—दीया, ज्योति-लपट, चिनगारी और बिजली, सूर्य, तारागण हैं, ऐसा जाननेवाला न्यारा ही होता है। यह वायु हैः—आँधि-बौंडर-झोंका, धक्का लगना, वस्तु उड़ाना, इत्यादिका द्रष्टा, ज्ञाता उससे न्यारा ही रहता है। और यह आकाश हैः—शून्य, पोल, छिद्र, खाली जगह पड़ा है, अवकाश दे रहा है, उसका जनैया जीव सदा उससे न्यारा ही रहता है। और शरीर, अन्तःकरणके सम्बन्धमें अभी रजोगुणका दौरा हो रहा है, राग, रंग, खेल, कूद, तमाशा, पंचविषय भोगोंमें विशेष प्रीति बढ़ी है, यह भी जाननेमें आता है। तथा तमोगुणका लहर चल रहा है, क्रोध, हिंसा, घात, बैर-बिरोध, झगड़ा, नशा-सेवन, निद्रा, आलस्यादिमें प्रवृत्ति हो रही

है, सो भी माल्रूम पड़ता है। और सत्त्वगुणका उदय होनेपर शीतल, शान्त-स्वभाव, धर्म कार्यमें लगाव, दान, पुण्य, पूजा-पाठ, सत्संगत, शुभ विचार इत्यादि जो होता है, सो सब भी जाननेमें आता है। इस प्रकार पाँच तत्त्वोंका जाननेवाला तथा तीनों गुणोंका विचार करनेवाला सत्य चैतन्य जीव सदा उनसे भिन्न ही रहता है। विजाती होनेसे उनमें कभी एक होता नहीं, ऐसा विवेक करके जानो ॥ ३६ ॥

५. वीर्य रक्त तेज तम श्वासा। सबको जानि करत विश्वासा ॥ ३७ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य! जनैया जीव, द्रष्टा-साक्षी, दृश्य पदार्थसे सदा न्यारा ही बना रहता है। वीर्यादिको जीव माननेवाले निर्बुद्धि नास्तिक मतवादी विषय लम्पट बने हैं। उन्हें जड़-चैतन्यका कुछ भी विवेक नहीं है, इसलिये जिसको जो भाया, सोई मान लिये हैं। तुम सत्यन्याय निर्णयसे विचार करके देखो! तभी पूरा भेद मालूम पड़ेगा। संक्षेपमें निर्णय वाक्य बताता हूँ सो सुनो!

१. प्रथम—स्त्री-पुरुषोंने खाया हुआ अन्न-जल उदरमें जाके औंटकर अँतड़ियोंमें पेरायके नाभिस्थानमें समान वायु द्वारा रस बनता है, सो परिपक्व होनेपर रक्त बनके फिर उसीसे मांस तथा त्वचा तैयार होते हैं। उधर भीतरमें उसीसे नाड़ी, हाड़, और मज्जा बनते हैं। जिसे सप्त धातुका स्थूल शरीर कहते हैं। उसी सप्त धातुके अन्तिम सार भाग पुरुषोंका वीर्य बनता है, और स्त्रियोंकी शरीरमें रज तैयार होते हैं। इस प्रकारसे बना हुआ वीर्य धातु जड़ कार्य है। वह कदापि चैतन्य जीव हो सकता नहीं। इस वारेमें कहा भी हैः—

साखीः—बिन्दहि होवै जीव जो । तजि क्यों जात शरीर ? ॥
संगति करते शक्तिसे । तबहीं तजत शरीर ॥२४१

॥ कबीर परिचय ॥

—यदि वीर्यही जीव होता,तो देहमें वीर्य रहते ही जवानीमें भी देह छोड़कर मृत्युको प्राप्त हो, जीव क्यों निकल जाते हैं ? इसका क्या कारण है ? और वीर्यसे भिन्न कोई जीव न होता, तो स्त्रीसे मैथुन करते ही पुरुष मर जाता, क्योंकि तब सम्भोगमें वीर्यपात होता है, फिर शरीर कैसे रह सकता ? वीर्यको जीव मानने पर वीर्य तो लिङ्गसे निकलता जाय और पुरुष जीता रहे, यह कैसे सम्भव होता ? एक ही वारके वीर्य निकलते ही पुरुष फटाफट मर जाते, ऐसा तो होता नहीं ।

इस कारणसे वीर्य जड़ है, वीर्य जीवका स्वरूप नहीं है । उससे न्यारा जीव चैतन्य है । प्रश्नमें अंकुर और पत्रका जो दृष्टान्त दिये हो, उसमें बीजोंके अंकुरोंमें प्रथम जो दो पत्र निकलते हैं, वे एक ही जातिके समान गुणवाले रहते हैं । परन्तु यहाँ नाशमान् जड़ शरीर और अविनाशी चैतन्य जीव, वे दोनों बिजाती केवल जड़वीर्यसे कैसे उत्पन्न होवेंगे ? ऐसा कदापि हो सकता नहीं, और जड़ वृक्षके फलवत् भी एक चैतन्य जीवसे अनेक अविनाशी चेतन जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती हैं । क्योंकि वृक्ष और वृक्षके बीज सहित फल, दोनों ही सड़-गलके मिट्टीमें मिल जाते हैं । तैसी अविनाशी जीवोंकी स्थिति है नहीं । यदि जीव भी सड़ने-गलनेवाला होता, तो नाना प्रकारसे कर्मोंकी फल भोग ही न होता, परन्तु कर्मोंके फल भोग सब

जीवोंको भोगना ही पड़ रहा है। अतः जड़ तत्त्वोंके कार्य-कारण भागसे चैतन्य जीव सदैव न्यारा है, सो जानो।

अतएव जड़ अन्न-जलके रससे बननेवाला वीर्य सरासर जड़ है। अविनाशी अखण्ड चैतन्य जीव वह कदापि हो सकता नहीं। नास्तिक चार्वाक मतमें पहिला यही वीर्यवाद माना है। सो त्याज्य है। विवेक करके उस मिथ्या भ्रमको हटावो॥

२. दूसरा—रक्तको जीव माना हुआ भी अन्याय-अविचार ही है। क्योंकि ऊपर कहा जा चुका है कि, अन्न-जलके रस द्वारा ही नाभिमें साफ होके रक्त बनता है, सो व्यान वायुसे सर्वांग शरीरमें फैलता है। और जैसे वीर्य जड़ है, तैसे स्त्रीके शरीरमें बननेवाला रजरूप धातु भी जड़ हैं। शरीरमें रक्त कम-ज्यादा होता रहता है, बनता-बिगड़ता है। रक्तमें नाना दोष भी उत्पन्न होते हैं। पिचकारीसे डाक्टर लोग एकके शरीरका रक्त दूसरेके देहमें भर भी देते हैं। परन्तु ऐसे जीवको एक देहसे निकालके दूसरे देहमें कोई भी डाल नहीं सकते हैं। परकाया प्रवेश होनेकी जो बात कहे हैं, सो तो सरासर मिथ्या गपोड़ा ही है। अतएव किसी तरहसे भी रक्त जीव ठहर सकता नहीं। यह रक्तको जीव मानना चार्वाकका दूसरा देहवादमें आ जाता है।

यदि देहको ही सत्य मानते हो, तो फिर शरीरका नाश क्यों होती है? सत्य वस्तुका तो त्रिकालमें कभी किसी कारणसे भी नाश होता नहीं। मुर्दा शरीरमें पूर्ववत् चैतन्यता आदि क्रया क्यों होती नहीं? सड़ने-गलने क्यों लग जाता है? शरीरमें पूरा रक्त होते हुये

भी क्यों बीचमें ही मर जाते हैं ? इन सब बातोंसे जाहिर है कि— जड़ देह कभी भी चैतन्य जीव हो सकता नहीं। जड़ सप्त धातुको सत्ता देनेवाला उससे भिन्न जीव और है। ज्ञान गुणवाला ही जीव होता है, और देहमें जीव रहनेसे ही देह व्यवहार नाना तरहसे होते रहते हैं। देह तो विकारवान् है, तथा स्वरूपसे जीव निर्विकारी है। अतएव देह-रक्तादि निर्जिव जड़ हैं। सो उनको ही जीव मानना महा अज्ञानता है॥

३. तीसरा—तेज अग्नितत्त्वके प्रकाशरूप विषयको कहते हैं। वह किसी प्रकारसे भी जीव ठहर सकता नहीं। अग्नितत्त्वके कार्य-कारण पदार्थोंमें कहीं चेतनता दिखाई देती नहीं। परन्तु योगी लोग ध्यानमें दिखाई देनेवाला ज्योति प्रकाशको ही परमात्मा मानके भूलमें पड़े हैं। और संसारी विषई जन देहकी सुन्दरतामें ही मोहित आसक्त होके बन्धे पड़े हैं। और चारवाकके तीसरे तत्त्ववादमें पंचतत्त्वके प्रकाशको ही सत्य माना है, पाँच तत्त्वके संयोगसे चराचरकी उत्पत्ति और वियोगसे नाश होना, मानके पामर-विषयी लोग महा जालमें बन्धायमान हुये हैं। सिर्फ तत्त्वोंके सम्बन्धमेंसे ही चेतनता होना मानते हो, तो सब ठिकाने पाँचों तत्त्वाका सम्बन्ध है, फिर पहाड़, पाषाण, वृक्ष, वनस्पति, घड़े, घरादिमें सुख-दुःख, ज्ञान, जाग्रत, स्वप्नादि ३ अवस्था, चलना-फिरना, श्वास-लेना, हानी-लाभको जानना, इत्यादि चैतन्यत्त्व लक्षण कुछ भी क्यों दिखाई नहीं देते हैं ? मुर्दा होनेपर वह तेज कहाँ चली जाती है। वैसे तो पाँच तत्त्व मृतक देहमें भी कायम ही रहते हैं। सो कैसे कि—पृथ्वीके भाग—हाड़, मांस आदि है। जलके भाग—पेटके थैलीमें एकत्रित पानी या गीला भाग है। अग्निके भाग—पित्तके थैली

या रूप विषय जो दिखता है, सो है। वायुके भाग—मुर्दा, फुलानेवाला वायु धनंजय है, और दशों द्वार नलियोंमेंका छिद्र खाली पोल शून्य भाग सो आकाश है, शून्यमें वायुका आना-जाना होता ही है। इस प्रकार पाँच तत्त्व और उसके प्रकाश यह तो मृत्यु होनेपर भी देहमें रहती है। फिर काया मर क्यों गई? इसीसे सावित हुआ कि—पाँचों तत्त्वोंसे न्यारा विजाती कोई और ही चैतन्य जीव है। जिसके सत्ता सम्बन्ध रहनेसे देह सुन्दर-सुशोभित होता है और जिसके निकल जानेपर निकम्मा बिरूप होके विनाश हो जाता है। अतएव तेज, पाँच तत्त्वोंमें एक तत्त्व है, सो वह जड़ है, जीव नहीं है॥ अतः तेजको जीव मानना बड़ा भारी भूल है॥

४. चौथा—तमरूप अन्धकार, अविद्या या अज्ञानरूपी माया, यह भी कुछ जीव ठहर सकती नहीं। "न जाना जाय ऐसा यह जगत् तमरूप अज्ञानमें या मायामें लीन रहा॥"—ऐसा मनुस्मृति (१।५) में कहा है। परन्तु उसमें चेतनताके लक्षण कुछ भी घटता नहीं। जगत् अनादि कालका है। यहाँ मुख्य माया जड़ तत्त्वोंका कार्यरूप यह देह ही है। पाँच तत्त्व जड़ हैं, उनमें कहीं ज्ञान गुण है नहीं। जो बात कारणमें नहीं, सो कार्यमें कहाँसे आवैगा? और देह सम्बन्धमें इन्द्रियोंके साथ संस्कार दोषोंसे उत्पन्न जीवोंकी जड़ासक्ति वही अज्ञान या अविद्या है। इसलिये जीव उससे न्यारा ही सिद्ध हुआ। और देहादिकी प्रीति, आसक्ति, ममता, अहंकार, यही नर जीवोंकी दृढ़ माना हुआ अज्ञान कहा जाता है। इस अज्ञानका आकारयुक्त कोई स्वतन्त्र स्वरूप नहीं है। अर्थात् तम = अन्धकार-अज्ञान यह परमाणु संयुक्त साकार पदार्थ नहीं है। यदि साकार पदार्थ होता, तो कभी

ज्ञान होनेपर भी अज्ञान नाश न होता। परन्तु प्रकाश होते ही जैसे अन्धकार नाश हो जाता है। तैसे सत्त्वगुण उदय होते ही तमोगुण विलय हो जाता है। और ज्ञान होते ही अज्ञानका विलय या विनाश हो जाता है। प्रकाशका अभावरूप अन्धकारवत् बोधका अभाव तमरूप अज्ञान है। सो सत्यज्ञान पारखका बोध होते ही मिट जाता है। तम-अज्ञान, जड़ भास, अध्यास है, उसे जीव मानना महा मूढ़ता है। इसे परखके छोड़ना चाहिये॥

५. और पाँचवा—श्वासवायुको जीव मानना भी बड़ी भारी भूल है। क्योंकि श्वास जड़ है, वह जीव नहीं है, उसको सत्ता देनेवाला जीव उससे सदा न्यारा ही रहता है। कहा है—"ज्यों लोहारकी धौंकनी, श्वास लेत बिन प्राण॥ त्यों सत्ता बिनु चेतन, चले श्वास कस त्राण॥" जैसे लोहारके चलाये बिना चमड़ेकी धौंकनी आप ही आप चलके वायु निकाल नहीं सकती है। तैसे ही चैतन्य जीवकी सत्ता बिना श्वास भी कैसे चलेगी? श्वासरूप प्राण यह वायुतत्त्वका सूक्ष्म भाग है। वह नासिका द्वारा भीतर-बाहर जाते-आते श्वास-उच्छ्वास लेने-छोड़नेकी क्रया करता रहता है। पंच वायुमें प्राणका वासस्थान हृदयमें माना है। नाभिसे नासिकातक उसके दौड़ होता रहता है। और योगी लोग प्राणको कुम्भकादि क्रयासे ब्रह्माण्डमें चढ़ायके समाधि लगाके शून्य ही में टिके रहते हैं। इसलिये प्राण-वायु परतन्त्र है। सुषुप्ति अवस्थामें प्राण चलते रहते हुये भी किसीको कुछ ज्ञान होता नहीं। यह सबको मालूम ही है। क्योंकि लोगोंको सोते हुये देखके चोर लोग वस्तु चुरायके ले जाते हैं। और कोई हानि हो जाती है। तो भी पता नहीं होता है। इसीसे शरीर रहेतक

चैतन्य जीवोंकी सत्ता-संयोगसे ही प्राण वायुकी कृया लोहारके भाँतीवत् बराबर हुआ करती है। और मृत्युके पीछे वह स्थूल भाग बाहरके वायुतत्त्वमें मिल जाती है।

और जैसे मनुष्य लोग घड़ीमें चाबी देके देख-रेख करते हैं, तो वह चलती ही रहती है। और अवधि पूरा होनेपर आप ही बन्द हो जाती है। तैसे ही जीवोंने पूर्वके नर जन्ममें किया हुआ कर्म संस्कारके वेगसे अभी वह प्रारब्ध बनके आयुरूप प्राण वायुकी चलन गति चालू हो रही है। कर्म भोग पूरा होनेपर जीव देह त्यागकर निकल जाता है, तब फिर हृदयकी गति रुकके प्राण चलना भी आप ही बन्द हो जाता है॥

इस प्रकारसे श्वास यह वायुतत्त्वरूप जड़ है, जड़ वायुके कार्य भाग वह भी जड़है। नित्य-सत्य चैतन्य जीव श्वाससे अलग ही है। श्वासको जोव मानना भ्रम भूलमें पड़े हुए अविवेकियोंका ही काम है। ये सव नास्तिक मतको ही परिपुष्ट करनेवाले भये हैं। परिक्षा करके उस भूलको मिटाना चाहिये॥

ऊपर कहे अनुसार वीर्य, रक्त, तेज, तम और श्वासा इन सबोंको जाननेवाला जनैया साक्षी जीव इन सबोंसे सदैव न्यारा रहता है। तभी अबोध जीव उन्हींको जान-जानके रुचीके अनुसार मनमानन्दीको पकड़के जिसमें मानन्दी टिकी, उसीका विश्वास कर लेते हैं। जो भास हुआ, उसीको अपना स्वरूप मान लेते हैं। सद्गुरुने कहा भी हैः—

"आपन पौ आप ही बिसर्यो॥ जैसे श्वान काँच मन्दिरमें। भरमित भूसि मर्यो॥"

बीजक शब्द ७६॥

"ज्यों मोंदाद समशान शिल । सबै रूप समसान ॥
कहहिं कबीर वह सावजकी गति । तबकी देखि भुकान ॥" ३६ ॥ बीजक साखी ॥

—जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्ब देखा, सो उसे ही अपना स्वरूप मानके विश्वास कर लिया। परन्तु द्रष्टा जीव तो उस दृश्यसे न्यारा ही रहता है। दृश्यको निजरूप मानके विश्वास करनेपर भी द्रष्टा कभी दृश्य हो सकता नहीं। तैसे ही वह सबको जानके विश्वास करनेवाला जीव उनसे पृथक् रहता है, ऐसा समझना चाहिये। जो कोई पारखी सद्गुरुके सत्संगसे सारासारको पहिचान जाते हैं, फिर उनको धोखेका विश्वास छूट जाता है ॥ ३७ ॥

६. शून्यहि जानै शून्य न होई। जाननहार जीव है सोई॥ ३८ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और हे शिष्य! विचार करो, जो लोग शून्यको ही जीव वा ब्रह्म अथवा परमपद बताते हैं, अथवा निर्वाणरूप मानते हैं, जो शून्यको ही सर्वोपरि समझते हैं, वे महा-मूढ़ पारखहीन अन्धे ही बने हैं। क्योंकि, शून्य = पोल, खाली जगहका नाम है। जहा कुछ भी नहीं, अभाव, अवस्तु, निराकार, निर्गुण, केवल निषेधमात्र किया है। सो सत्य वस्तु जीवका स्वरूप कदापि हो सकता नहीं। क्योंकि शून्यको जाननेवाला शून्यका ज्ञाता कभी शून्य हो सकता ही नहीं। यह शून्य है, अभाव है, यह स्थिर वृत्ति है, समाधि है, ऐसा जाननेवाला जानीव साक्षी जो है, सोई चैतन्य जीव है। जीव सगुण-साकार सत्य वस्तु है, तो भला! वह निर्गुण, शून्य क्यों होगा? कभी हो सकता नहीं॥

तहाँ ग्रन्थकर्ता सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने स्वयं बीजकटीकामें इसके

बारेमें खुलासा लिखे हैं—सो भी सुनिये! "श्रुति नेति-नेति कहके स्थिर रह गई, सो शून्य माना है। श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार करके रह गया, सो शून्य माना है। योग धारणा करके लय हुआ, सो शून्य। नित्य-अनित्यका विचार करके स्थिर रह गया, सो शून्य। बोलते-बोलते चुप हो गया, सो शून्य। और नींदमें गया वा चोला छूटा बाकी रहा, सो शून्य माना है।" शून्य एक लयरूप कल्पना रहित निर्विकल्प स्थिति है। परन्तु शून्यको जाननेवाला नर देहधारी जीव अलग नहीं होवै, तो शून्यका वर्णन कौन करै? । कोई भी नहीं। इस कारणसे शून्य स्थिति तो एक जड़ भावना मात्र भास ठहरा, इसीसे वह कुछ जनैया चैतन्य जीव नहीं है। शून्यको शून्यने ही जानके वर्णन नहीं कर सकता है, तथा जो शून्यको जानता है, उसका गुण-लक्षण, अनुभव, बयान करता है, वह तो शून्यसे भिन्न ही रहता है, फिर शून्यमें मिलके वह भी शून्य स्वरूप ही हो नहीं सकता है। शून्यको जानने, पहिचाननेवाला चैतन्य जो है, सो उसीका नाम जीव है; ऐसा निश्चय करके समझो ॥

"सन्तो! ऐसी भूल जगमाहीं। जाते जीव मिथ्यामें जाहीं ॥"

॥ बीजक, शब्द ११५ ॥

इसकी टीकामें और "निर्पक्ष सत्य ज्ञान दर्शन" ग्रन्थकी नास्तिक मत दर्शनमें उपरोक्त बातोंके बारेमें विशेषरूपसे प्रकाश किया है। यहाँपर तो संक्षेपमें सार मात्र ही दर्शा दिया गया है। विस्तार उक्त ग्रन्थोंसे जान लीजियेगा ॥ ३८ ॥

७. जानहिं आप जीव कहलाई। सबको जाने सब नहिं होई ॥ ३९ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और आप अपना स्वयं स्वरूप ज्ञान स्वरूप जनैया या ज्ञाता सोई जीव नामसे कहलाता है या पुकारा जाता है, वा कहा जाता है। जिसको जीव कहते हैं, सो अपने आपको और

समस्त दृश्य पदार्थ, जो उसके सन्मुख सम्बन्धित होते हैं, उन सबको भी जान लेता है, तथा अपना चैतन्य सत्ताको प्रगट करता है। तन, दश इन्द्रियाँ, चित्त चतुष्टय, प्राणादि पंचक, विषयादि पंचक, एवं रोम-रोमसे सुख-दुःखादि ज्ञानको प्रगट करनेवाला, सो उसे ही चैतन्य जीव कहते हैं। तहाँ कहा भी है:—"पन्द्रह तत्त्व स्थूल है। नौ तत्त्व लिंग शरीर॥ चौबीस मृतुक जेहि सों जिये। सो जिन्दा जीव कबीर॥" कबीर परिचय साखी १६७॥—स्थूल देहकी दश इन्द्रियाँ, और पंच प्राण, ये १५ तथा सूक्ष्मकी पंच विषय, और चित्त चतुष्टय ये ९ दोनों मिलायके २४ जड़ प्रकृतियाँ चेतन जीवकी सत्तासे चल रही हैं। वही जिन्दा या अमर, देहधारी, सर्व चेतन जीव कबीर हैं। इस प्रकारसे आप चेतन होनेसे सबको जानता है, इसीसे जीव कहलाता है। और समस्त दृश्य पदार्थोंको तथा तन, मन, शून्य, प्राणादिकोंको जानने-जनाने, चेतानेवाला जीव स्वयं वह सर्वरूप जड़ कदापि हो सकता नहीं। तथा जितने भी भीतर-बाहर जाननेमें आया, सो तो अलग हुआ, जड़ हुआ। फिर वह सब जीव कैसे होगा? जीव चैतन्य सबका जनैया सदा सबसे न्यारा ही रहता है, सो जानिये॥ ३९॥

८. जो पाँचों तत्त्व जानै भाई! सो कहाँ आपु तत्त्व होय जाई?॥ ४०॥

टीका:—ग्रन्थकर्ता सद्गुरु कहते हैं:—हे भाई! जिज्ञासु शिष्य! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और समान वायुरूप आकाश, ये पाँचों तत्त्वोंको जो जानता है और ये फलाने तत्त्व हैं, करके मानता, समझता है, सो जीव आप स्वयं भी उसी तत्त्वरूप हो जाता है? या तत्त्वोंसे न्यारा रहता है, इसका विचार करो। तत्त्वोंका जनैया जीव आप भी तत्त्व ही हो जावै, ऐसा कहाँ होता है? भिन्न-भिन्न भावनायें करके जीवोंने पाँच तत्त्वोंके नाना पदार्थोंको जाने या जानते हैं। सो ज्ञाता कहाँ आप भी वही तत्त्व ही हो जाता है? ऐसा तो कहीं होता नहीं॥ ४०॥

९. तत्त्वहि होयके तत्त्व समावत। तो पुनि तत्त्वहि कौन बतावत ? ॥ ४१

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—यदि जनैया जीव भी तत्त्वोंके कारण-कार्यके समान जड़ होयके उन्हीं तत्त्वोंमें कार्य-बिगड़के कारणमें लय होनेके तद्वत् पाँचों तत्त्वोंमें समाता, घुलता, मिलता, परिणाम बदलके लय हो जाता, तब तो पृथक् जनैयाके अभावमें यह अमुक-अमुक तत्त्व है, इनके गुण लक्षण ये ये हैं, कहके फिर ऐसा कौन बतलाता ? जड़ अपने आपको जानता नहीं, और दूसरेको भी जना सकता नहीं। क्योंकि—जड़ पाँच तत्त्वोंमें ज्ञान गुण नहीं है। शब्द, स्पर्श, ये दुइ गुण वायुमें हैं। रूपगुण मुख्य अग्निका है। उसमें शब्द, स्पर्श भी सम्बन्धमें शामिल रहते हैं। रसगुण मुख्य जलका है। उक्त तीन गुण भी जलमें मिलित रहते हैं। गंधगुण मुख्य पृथ्वीका है। पहिलके चार गुणोंका मिलान भी पृथ्वीमें रहता है। इस तरह पञ्चविषयरूप पाँच गुण मुख्य, चार तत्त्वोंमें पाया जाता है, सो सबोंको प्रत्यक्ष होता है। आकाशमें कोई गुण है ही नहीं, वह निर्गुण है। अब बताइये ! तत्त्वोंमें ज्ञानगुण कहाँ, किस ठिकाने, कैसे दिखाई देता है ? कहीं भी नहीं। फिर पाँचों तत्त्वोंको जाननेवाला चैतन्य जीव पाँचोंसे न्यारा साबित हुआ कि नहीं ? अवश्य ही साबित हुआ। इसीलिये तो जीवकी अखण्डता पृथकताका प्रत्यक्ष प्रमाण है। तत्त्व-रूप होयके जीव भी तत्त्वोंमें समानेवाला होता, तो फिर तत्त्वोंको भिन्न-भिन्न परिक्षा करके कोई भी न बताता। पाचों तत्त्वोंके भेद जब नर जीव भिन्न-भिन्न बतला रहे हैं, तो जीव कभी जड़ तत्त्व स्वरूप हो सकते नहीं, यह निश्चय है ॥ ४१ ॥

१०. जानहि मात्र जीव है सोई। जानते अधिक और नहिं कोई ॥ ४२ ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य ! जीवका स्वयं स्वरूप नित्य, सत्य, अखण्ड, अमर, जान या जनैया ज्ञान ही मात्र चेतन, ज्ञान स्वरूपके सिवाय और दूसरा कोई स्वरूप नहीं,

जिसमें कुछ मिश्रित न होय, ऐसा शुद्ध ज्ञानाकार स्वरूपवाला जो है, सोई सत्य चैतन्य जीव है। ज्ञानस्वरूप या जानमात्र इससे विशेष या अधिक और कोई भी जीवका स्वरूप नहीं है। अन्य मतवादियोंने प्रश्नमें कहा हुआ जितने भी जीवका स्वरूप कहे हैं, सो सब अज्ञान, अजान, और जड़ तत्त्वोंकी ही भाग हैं। अतएव उनमें एक भी जीवका लक्षण घटता नहीं। और जीवके लक्षण विषय कहा है:—

"इच्छा क्रया अवस्था, ज्ञान अमरता होय। ये लक्षण जहाँ पाइये, जीव जानिये सोय॥"

अर्थात् देहधारी जीवोंमें १ इच्छाशक्ति रहती है। २ चलने-फिरनेकी क्रया होती है। ३ जाग्रतादि तीन अवस्थाएँ होते हैं। ४ सुख दुःखादि जाननेकी ज्ञान होता है। और ५ अखण्ड, अविनाशी, एकरस, अमर स्वरूप होता है। जहाँ ये लक्षण सम्पूर्ण पाये जाते हैं, तहाँपर उन्हें ही जीव जानके सत्य मान कर दया रखना चाहिये॥

अतएव जानमात्र वा ज्ञानस्वरूप सोई चेतन जीव हैं। जीवसे बढ़ करके ब्रह्म-ईश्वर, आत्मा, खुदादि और कोई भी श्रेष्ठ सत्य नहीं हैं। तथा जगत्में भी जीवसे उत्तम और कोई भी पदार्थ नहीं है। और मनुष्य जीवोंकी तहाँ सबसे विशेषता-श्रेष्ठता है। इस तरह परिक्षा करके जीवको ही सत्य जानके निज-पर हितके कार्य तथा कल्याण मार्गमें लगे रहना चाहिये॥ ४२॥

दोहा:—पाँच तत्त्व यह जगत सब। जानै सो जिव ज़ान॥
(६) कल्पै सोई कल्पना। मानै सो अनुमान॥ ४३॥

टीका:—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—यह सारा जगत् कार्य-कारणरूप जड़ पाँच तत्त्वोंका ही विस्तार है। पिण्ड—ब्रह्माण्डादि सम्पूर्ण जगत् पदार्थादिको जो जानता, जनाता है, सो उसीको ही ज्ञानस्वरूप, अखण्ड, सत्य-चैतन्य, जीव, जानिये। सो वही नर देहधारी जीव पारख बोध न होनेसे नाना प्रकारसे संकल्प-विकल्प करके भ्रमसे पाँच तत्त्व और तीन गुण इत्यादिको ही निज स्वरूप

ठहराके और कोई दूसरा ही श्रेष्ठकर्ता ठहराके, वेद-कुरानादि अनेकों वाणी विचारादिको कल्पते हैं, बनाते हैं, सोई बात ही तो सरासर कल्पना है। और ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि कोई विश्वपति मानके उन्हें सृष्टि कर्ता ठहराये हैं, सो अनुमान मिथ्या भ्रम है। जनैया जीव जो सबसे पृथक् है, सो यही सत्य पदार्थ है, जो कि संसारमें पाँच तत्त्वोंके सकल भागोंको जानता है। जीवसे परे शीव कोई जो कल्पते हैं, सो मिथ्या कल्पना है। जो पदार्थ होता है, सो प्रत्यक्ष ही होता है, और उसमें परमाणु-समूह सहित जड़ पदार्थ होता है। परन्तु कल्पना, अनुमान, तो कोई वस्तु ही नहीं, मिथ्या भ्रम भूलकी भावना मात्र है। अतएव जड़ तत्त्वोंमें जो चेतन मानके कल्पता है, सो कल्पना है, और भिन्न-भिन्न मानन्दी जो करते हैं, सो अनुमान हैं, उन सबको भी जानने, मानने, ठहराने, प्रतीत करनेवाला, द्रष्टा, साक्षी, चैतन्य, स्वयं स्वरूप जमापद जीव है। सो इसे पारख-विवेकसे यथार्थ समझके भ्रम-भूलको एकदम हटाना चाहिये ॥ ४३ ॥

अब यहाँपर सोई बातकी परिपुष्टिके लिये ग्रन्थकर्ता ने सद्ग्रन्थ बीजक मूलकी साखीका प्रमाण दिये हैं, सो सुनियेः—

॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नं० ५२ ॥

साखीः—जाग्रतरूपी जीव है। शब्द सोहागा सेत ।
(२) जर्द बुन्द जल कुकुही। कहहिं कबीर कोइ देख ॥ ४४ ॥

टीकाः—गुरुमुखः—सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैंः—यह जीव जो है, सो जाग्रत् = ज्ञान स्वरूप है। वही चैतन्य स्वरूप है, जो ५ तत्त्व, २५ प्रकृति, ३ गुण, पंचप्राण, पंच उपप्राण, १० इन्द्रियाँ, पंचविषय, स्थूल-सूक्ष्म देह आदि अन्तःकरण पंचक, तीन अवस्था, सुख-दुःखादि सबोंको जाननेवाला, चलानेवाला, सोई चैतन्य जीव जाग्रत् है। सदा काल सो जाग्रत् ही बना रहता है। चैतन्यके ज्ञान

स्वरूपमें कुछ भी कभी फरक पड़ता नहीं, त्रिकालमें एकरस रहता है। ऐसा जाग्रत्‌रूपी जीव है। परन्तु पारख स्वरूपके स्थिति न होनेसे बद्ध पड़ा है। कारण, "शब्द सोहागा मेत" अर्थात् जैसे सोनाको अग्निकी आच लगाय-गर्मायके सोहाग डाल देनेसे वह शीघ्र ही पिघल जाता है, पानीवत् पतला हो जाता है। तैसा ही शब्द, स्पर्शादि पंचविषयों-की, सोहाग = सुहावनी, प्रियता, आसक्ति, मोहादिमें मन लग जानेसे शुद्धस्वरूप स्थितिसे बिचलित हो, पतित हो जाते भये। तहाँ स्थूल देहको ही अपना स्वरूप मान लिया, सोई आदिमें अर्थात् मनुष्य देहमें जीव भूला। तब देह सम्बन्धसे विषयोंकी इच्छा उठी, स्त्रीकी चाहना भई, अनेक प्रपंच रचके स्त्रीको घरमें लाया, और स्त्रीकी रूपको देखके तथा कामोत्पादक वाणीको सुनके पुरुषका मन पिघला, जैसे किसीने सुवर्णको तपाय, उसमें सोहागा डाल दिया, तैसा हाल भया। नर-नारी दोनोंमें प्रेम आकर्षण बढ़ी, तब विषय सम्बन्ध हुआ। तहाँ स्त्रीकी रज, जर्द = पीला, तथा पुरुषका बुन्दरूप वीर्य श्वेत रंगका है, सो ये दोनों स्त्रीके गर्भवासमें जायके मिले, तिससे जल कुकुही = पानीके बुद्‌बुदाके नाईं जलरूप रज-वीर्यका गोला पिण्ड बँधके कुकुही = यह कायाकी रचना जीवकी सत्तासे होती भई। जैसे आगे देह रचना भई थी, तैसे अब भी होती है और हो ही रही है। जीवको छोड़कर चारखानीमें देह बनानेवाला और दूसरा कर्ता कोई नहीं है। सद्गुरु श्रीकवीरसाहेब कहते हैं कि—ऐसा विवेक-विचार करके कोई बिरले पारखी ही देखते हैं। सो तुम भी ऐसे ही विचार करके देखो! तथा चौरासी योनिमें ले जानेका कारण माया-मोह-विषय वासनावोंको मिटावो, तभी स्थिति होगी॥

अब दूसरा अर्थ वाणी भागमें सुनिये! जीव तो जाग्रत् ज्ञान स्वरूप चैतन्य ही है। परन्तु बिना पारख नानामानन्दी करके अज्ञानी जड़ाध्यासी भये हैं। प्रथम नरदेहमें हंसजीव अपने आपको भूलके सच्चिदानन्द ब्रह्म बना, यानी ऐसी मनसे ब्रह्मकी मानन्दी

किया। तब शून्में निर्विकल्प अवस्थामें पहुँचनेसे शून्यमें इच्छा लय हो गई थी। जब होश भई, तो 'एकोहं ब्रह्म' यह स्फुरणा उठाया। वह परावाचाका 'शब्द ब्रह्म' कहलाया। उसी शब्दको ज्ञान, महा-कारण भी कहते भये। उस ज्ञानसे अपनेको ब्रह्म माना, तो दूसरी इच्छासे वाणी विषय खड़ी भई। उसीको सोहाग, अज्ञान, कारण भी कहते हैं। उस कारणसे इच्छारूपी नारी द्वारा वेदादि वाणी बनी, और सूक्ष्मरूपसे चौरासी योनिकी चित्र भास भई। उसीको कल्पना, श्वेत, सूक्ष्म कहते हैं। जैसे जीव स्वप्नमें वासनासे नाना चित्र-विचित्र देखते या बनते वा बनाते हैं। तो भी निज करतूतको वे जानते नहीं। तैसे श्वेतरूप सूक्ष्मदेहकी संस्कार-इच्छा-वासना मात्रसे अनेक योनिमें जाके अनेकरूपमें देह उत्पन्न होते भये। फिर स्त्री-पुरुषने परस्पर विषयभावको दृढ़ करके माने, तो विषय भोगमें प्रेम बढ़ी। तहा सूक्ष्मदेहको किसीने निज स्वरूप करके माने, सोई सूक्ष्मसे स्थूलदेह पैदा भया, तो सूक्ष्म, भीतर और स्थूल बाहर भया। सूक्ष्ममें जलरूप कामके रंगमें मस्त होके नर-नारी मिले, तहाँ मैथुन भया, तो जर्द वुन्द = रज-वीर्य वा पृथ्वी, जलका भाग जमा, सोई स्थूल स्वरूप भया। जल कुकुही = सोई जलका वुद्बुदारूप यह देह बना है। इस प्रकार जीवसे ब्रह्म-जगत्, खानी-वाणी, चौरासी योनियाँ नर-नारियोंके देह, गेह, इत्यादि सब विस्तार होते भये। उन सबको जानने-माननेवाला जीव तो सदा सर्वदा जाग्रत् चैतन्य ही है। परन्तु संसारमें सब मतवादी लोग सिर्फ वाणी विलासमें ही भूले पड़े हैं। सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं,—कोई बिरले ही हंस-पारखी पारखपदमें लक्ष लगाके देखते हैं। वही भवबन्धनोंसे छूटकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं। अतएव हे जिज्ञासुओ! ऐसे पारखी साधु-गुरुके सत्संगमें सत्यासत्यका निर्णय करके देखो! अपना कल्याण करो॥ इस प्रमाणसे ज्ञानस्वरूप चैतन्य जीव सबसे न्यारा स्वयं प्रत्यक्ष, नित्य, सत्य है, ऐसा जानना चाहिये॥ ४४॥

॥ ३ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—३ ॥ खण्ड ५ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—६ ॥ चौपाई १ से ४ तक है ॥

१. हे प्रभु ! जान सबनपर होई। जानते अधिक और नहिं कोई॥ ४५ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता शिष्यका तीसरा प्रश्नरूप शंका कहते हैंः—सद्गुरुका उपरोक्त निर्णयके उत्तर सुनके पश्चात् शिष्य पुनः विनय सहित कहता है कि—हे प्रभो ! गुरुदेव ! अभी आपने कहा है कि, जान = सबको जाननेवाला जनैया चैतन्य जीव, सर्वश्रेष्ठ सबोंके ऊपर हैं, और उस ज्ञानस्वरूप चैतन्य जोवसे बढ़कर श्रेष्ठ-विशेष, अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सत्य वस्तु और कोई भी नहीं है। जीव ही सर्व शिरोमणि सबसे ऊपरका पद है, सो आपका कहना वस्तुतः ठीक ही है ॥ ४५ ॥

२. सो कैसे बन्धन तर आवा। ठौर-ठौर कस आपु बन्धावा ॥ ४६ ॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—परन्तु इसमें मुझे यह शंका उत्पन्न होती है कि; सो चैतन्य जोव तो स्वयं स्वरूप सर्वश्रेष्ठ सर्वोपरि हुआ, उसके ऊपर ईश्वरादि कोई कर्ता तो कतई ठहरा ही नहीं, स्वतन्त्र स्वरूप साबित हुआ। फिर वह कैसे नीचे गिरके जगत् बन्धनोंमें आया ? और ठौर-ठौर या जगह-जगहमें अपने आप कैसे बन्धायमान हुआ ? खानी-वाणीके जालोंमें क्यों कैसा आ पड़ा ? किसी स्वतन्त्र व्यक्तिको किसी प्रकार भी परतन्त्र होनेमें कभी भी खुशी होती नहीं । चोर-चोरी करते हैं, तो वे छिपते हैं, कभी प्रशन्नतासे प्रगट होके दण्ड भोगना नहीं चाहते हैं । किन्तु राजाके सिपाही लोग उन्हें पकड़के अपने अधीन कर दण्ड भोगाते हैं। यह जाहिर है। इसीसे मैं बड़ा सन्देहमें पड़ गया हूँ कि—सो स्वयं स्वरूपी जीव बन्धनके नीचे गिरके कैसे आया होगा ? चौरासीके ठौर-ठौरमें जाके कैसे आप ही बन्धाया होगा ? ॥ ४६ ॥

३. यह तो धर्म जानके नाहीं । बगरे पकरि बन्धावत बाँहीं ॥ ४७ ॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और जाननेवाले जनैया चैतन्यके तो यह विपरीत धर्म हो सकता नहीं । यह बन्धन है, हानी है, ऐसे जान-जानके भी क्यों कोई उसे पकड़ेगा ? हाँ प्रथमसे कोई अनजान हो, तो वह बन्धनोंमें पड़ भी सकता हैं । जैसे बगरे = एक विशेष जातके पक्षीगण वा बटेर आदिको बहेलिया या चिड़िमार आसानीसे पकड़ लेते हैं । जमीनमें चारा छिड़क करके बड़ी जाल बिछा देते हैं, तहाँ चाराके लोभ-लालचसे जालको न जानके पक्षी आ-आके फँस जाते हैं । तहाँ अज्ञान ही कारण हुआ । और बन्दर पकड़नेके लिये मदारी लोग, पेंद चौड़ा और मुँह सकरा, ऐसी मटका आदि कोई बर्तन जमीनमें गाड़के मजबूत बिठा देते हैं । उसमें आधा चनोंसे भर देते हैं । तथा थोड़ा-बहुत बाहर जमीनमें भी छितरा देते हैं । जब बन्दर आये, तो चना बिखरा देखे, सो खाते-खाते वहाँ गये, झाँके तो भीतर चना रखा देखे, हाथ डाले, मुट्ठी भरके निकालने लगे, तो हाथ निकले नहीं । मुँख छोटा था वर्तनका, सीधा हात तो गया, मुट्ठीमें अटकता था । उसी धुनमें वन्दर लगा रहा, इधर मदारी आके युक्तिसे उसे पकड़के पिंजड़ामें डाल लिया । इस प्रकार एक मुट्ठी चनाके लालचसे बन्दर पकड़ा गया । वहाँपर बन्दर अज्ञान था, वन्धनका उसे पता नहीं था । यदि वह पहलेसे बन्धन जानता, तो कभी न पकड़ता । परन्तु यहाँपर जीव तो स्वयं ज्ञानस्वरूप है, फिर उसने बन्धनको क्यों पकड़ा ? तथा पक्षी और वन्दरके नाई अपने हाथसे स्वयं वन्धनको पकड़के क्यों अपने आपको भवबन्धनोंमें डाला ? जनैयाका ऐसा धर्म-कर्म तो होता नहीं है, फिर यहाँ कैसे भया ? ॥ ४७ ॥

४. जान जीव अविनाशी होई । तेहि जड़बन्धन कैसे समोई ? ॥ ४८॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और जीव ज्ञानस्वरूप चैतन्य अजर, अमर, अविनाशी है, तो फिर वह ही जड़ बन्धनोंको कैसे करके

समायेगा ? कैसे पकड़ेगा ? यह दुःख है, ऐसा जान-जानके कोई उसे क्यों ग्रहण करेगा ? अग्निको जानके कोई उसे पकड़ते नहीं। जबकि अविनाशी जीव सबका जनैया है, तब वह जड़ बन्धनके घेरा, परतन्तत्रा, दुःखमें कैसे खुशीसे घुसेगा ? या कैसे बद्ध हुआ ? सो समझा करके कहिये ॥ ४८ ॥

दोहाः— काहुका किया जीव है । कि है आपुहि आप ॥
(७) कैसे बन्धनमें परो । याहि कौन मा बाप ॥ ४९ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता शिष्यके प्रश्नका सारांश दिखलाते हैंः— शिष्य कहता हैः—हे सद्गुरुदेव ! विशेष खुलाशा करके यह बतलाइये कि—किसी ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मादिकर्ताका बनाया हुआ अंश, कार्य पदार्थरूप कारणसे उत्पन्न हुआ यह देहधारी जीव है ? कि = अथवा आप ही आप स्वयंकर्ता-कारणरूप या नित्य, सत्य, अखण्ड, एकरस, कोई ऐसा पदार्थ जीव है, जो स्वयं स्वरूप हो, सो इन दोनोंमें जीवको कैसा मानना ? यह जीव बन्धनोंमें तो भी कैसे आ पड़ा ? नित्य स्वतन्त्र होता, तो भवबन्धनोंमें क्यों पड़ता ? यदि जीव प्रथम अपने आप था, तो पीछे बन्धनोंमें क्यों कैसे आय पड़ा ? स्वतन्त्रताको छोड़के चौरासी योनि जन्म-मरणादि दुःख भोगके पराधीनमें कैसे आ पड़ा ? और जीवके आदि कारण, वा कर्ता कोई है या नहीं ? किसी वक्त जीवको किसीने बनाया है, तो इस चैतन्य जीवका निमित्तोपादान कारणरूप मा = माया, जननी, मूलप्रकृति, परमेश्वरी और बाप = पिता, मूलपुरुष, परमेश्वर कौन है ? जिन्होंने जीवोंको उत्पन्न किया । क्योंकि संसारमें माता-पिता द्वारा ही बाल-बच्चे उत्पन्न होते हैं, ऐसे ही जीवको उत्पन्न करनेवाले भी कोई होना चाहिये। वे माँ-बाप कौन हैं ? उन्होंने जीवको भवबन्धनोंमें क्यों डाल दिया है ? । हे प्रभो ! यह बात जैसा हो, वैसा ही यथार्थ निर्णयसे दरशाकर मेरे सन्देहको दूर कर दीजिये ! यही मैं विनम्र-

भावसे प्रार्थना करता हूँ ! जबतक पूर्ण समाधान नहीं हो जायगा, तबतक बीच-बीचमें भी शंका प्रदर्शित करके आपको समाधान करनेकी तकलीफ देता जाऊँगा । हे दीनदयालु ! मैं आपके शरणागत हूँ ! मुझे निःसन्देह कीजिये ॥ ४९ ॥

॥ ३ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—३ ॥ खण्ड ६ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग— ७ ॥ चौ० १ से ४ तक है ॥

१. याको माय न याको बापा । यह तो स्वतः आपुहि आपा ॥५०॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे जिज्ञासु शिष्य ! तुमने जो शंका प्रगट किया है, सो मैंने सुन लिया हूँ ! पूरा बोध न होनेके कारणसे ही तुमको ऐसी शंका हुई । सत्संग विचारके प्रतापसे सो भी मिट जायगा । जीवके माता-पितादि कारण कर्ताके विषयमें जो तुमने पूछा है, पहले उसीका निर्णयसे फैसला सुनो !

इस नित्य, सत्य, अखण्ड, चैतन्य-जीवको उत्पन्न करनेवाले कर्ता-कारण कोई भी नहीं हैं । जगत् अनादिकालसे ऐसे ही स्वयं बना है । चारों तत्त्व जड़, कारण-कार्यरूप स्वयं शक्तियुक्त वरत रहे हैं । और यह चैतन्य जीव तो स्वरूपसे अखण्ड, अनन्त या असंख्य स्वतः आप ही आप स्वयं स्वरूप है, जिसका 'नहिं माता नहिं बाप ।' अर्थात् नित्य वस्तु किसीसे बनके उत्पन्न होता नहीं, वह तो स्वयं सदा नित्य ही रहता है । इसलिये, माय = इच्छारूप माया, आदि-शक्ति, अष्टांगी, मूलप्रकृतिसे कार्यरूपमें कदापि कोई जीव उत्पन्न हुये नहीं हैं, और उत्पन्न हो सकते भी नहीं । देह सम्बन्धमें ही इच्छा होती है, जीवके स्वरूपमात्रमें तो कोई इच्छा भी है नहीं । और बापा = माना हुआ ब्रह्म परमात्मा जगत् कर्ता परमेश्वरका अंश भी जीव नहीं है । क्योंकि ब्रह्म, ईश्वरादि तो मिथ्या कल्पनामात्र है ! फिर वह कल्पना, कर्ता जीवका बाप श्रेष्ठ कैसे हो सकता है ? कभी नहीं हो सकता है । माया, ब्रह्म, पुरुष-प्रकृति, आदिमें जीवकी उत्पत्ति

भया नहीं। इससे जीवके कोई पिता-मातादि नहीं हैं। क्योंकि जीव स्वयं स्वरूप अनादि-अखण्ड, सनातन हैं ॥ ५० ॥

२. याको कोई नहिं कर्तारा। यह तो सबका सिरजनहारा ॥५१॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और जड़-चैतन्यरूप जगत्का रचइता कर्ता कोई है नहीं। यह तो स्वतः सिद्ध अनादि है। अब कहो इस जीवका कर्ता कौन हो सकता है? कोई नहीं। जगत् कर्ता जो माने हैं, सो तो मिथ्या भ्रममात्र है। और ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, देवी, देवता, भूत, प्रेत, स्वर्गादि लोक, खुदा आदिको कल्पना करनेवाले तथा वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाईबिल आदि नाना प्रकारकी वाणी जाल, मत, पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्तादि और नाना तरहके खानी जाल इन सबको सिरजना, रचना, उत्पत्ति, विकाश, करनेवाले यही प्रत्यक्ष नर जीव या मनुष्य ही तो हैं। मनुष्योंके बिना इन सबोंका वर्णन तो भी कौन करेगा? कोई नहीं। इस तरहसे जीवका कर्ता कोई नहीं। बल्कि जीव ही सबोंके सिरजनहार सत्स्वरूप सबसे न्यारा है ॥ ५१ ॥

३. माया पुरुष याहि निर्माये। भरम भूलि निज तन विसराये ॥५२

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और इसी नर-देहधारी जीवने भ्रमसे अनुमान-कल्पना करके, माया = प्रकृति, आदिमाया, जगदम्बा तथा पुरुष = परमेश्वर, परमपुरुष, परमात्मा कोई है, ऐसा मानके वाणी कल्पनाको निर्माये = बनाये, सो रचनाको जगत्में फैलाये। षट् शास्त्रोंके मतवादको बढ़ाये हैं। अर्थात् जीवने ही माया, पुरुष, ब्रह्म-जगत्के भिन्न-भिन्न भावनाको मनमानन्दीसे कल्पना करके बनाये हैं। और सोई भ्रममें जब वे लगे, तो भ्रमिक भये, तहाँपर हंस जीव भूले, सो निज सत्स्वरूप हंसदेहको भी विसराय दिये, भुलाय गये। तब तो निज गुण लक्षणको भूले, भुलायके काल-जालमें जकड़ गये। इस प्रकार भ्रममें भूलके निज

स्वरूपतकको भी विस्मृत कर दिये । इसीसे मुक्ति-मार्गसे पतित होके बन्धनोंमें ही जकड़े पड़े हैं ॥ ५२ ॥

४. मानि मानि बन्धनमें आवा । निज करतबमें आपु बन्धावा ॥५३॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे शिष्य जीव भवबन्धनोंमें क्यों आया? इसका कारण सुनो! देह, गेह, स्त्री, पुत्र, धन, कुल, कुटुम्ब, राज, काज, जात, पाँत, वर्ण, आश्रम, मत, पन्थ, ग्रन्थ, नाना सिद्धान्त, ईश्वर, खुदादि कर्ता, षट् दर्शन—९६ पाखण्ड झीनी, मोटी माया जाल विजातीयसे ही सम्बन्ध कायम करके उन्हें अपना हित-सुखदाता या अपना वही स्वरूप मान-मानके मिथ्या भ्रम मानन्दीमें ही पड़-पड़के सब तरफसे मन मायाके घेरोंमें घिर घिरके जीव स्वयं ही मोह—आशक्तिवश भव बन्धनोंके महाजालोंमें आके खुशीसे जकड़ गये हैं। और अभ्यास वश आवागमनोंमें पड़ रहे हैं। सो निजकृत कर्तव्य कर्मके बन्धनोंमें जीव स्वयं ही बन्धायमान हुये और वद्ध हो रहे हैं। सब जीव चारखानीके अनन्तों योनियोंमें पड़के अपने-अपने कर्मभोगका ही दण्ड भोग रहे हैं। मनुष्य जन्म कर्म भूमिका है, यहाँपर जैसे-जैसे शुभाशुभ कर्मोंका अभ्यास बनाते हैं, वैसी ही सब योनियोंमें भोग भोगते हैं। जीव पहले मुक्त थे, पीछे बन्धनमें आये, ऐसी बात नहीं है, सदाकालसे ऐसे ही जीव देह बन्धनोंमें पड़ते ही चले आ रहे हैं। मनुष्य जन्म मुक्ति होनेकी भूमिका है, परन्तु यहाँ ही नाना प्रकारकी मानन्दी करके अभ्यास टिका लेते हैं। जिससे उलट-पुलटके बन्धनोंके बीचमें ही आ जाते हैं। सो अपने कर्तव्यसे जीव आप ही महा बन्धनमें पड़े और पड़ रहे हैं। बिना पारख बन्धन छूटती नहीं ॥ ५३ ॥

दोहाः—जस सुवना नलिनी फँदो । कीट कुस्यारी माँझ ॥
(८) ऐसी गति या जीवकी । भई दिवसते साँझ ॥५४॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य ! जीवके

स्वयमेव बन्धनोंमें पड़ जानेके बारेमें अब मैं दृष्टान्त देके तुम्हें समझाता हूँ ! सो सुनोः—

जैसे शुग्गा या तोताका आहार फल होता है। सुरस फल खानेमें तोता बड़ा प्रेम रखता है। तहाँ पक्षी पकड़नेवाले बहेलिया लोग दो-तीन हाथ ऊँचो और कापवाला लकड़ी हिंडोलाके सरीखी जमीनमें दो-ढ़ाई हाथ चौढ़ाईमें गाड़ देते हैं। ऊपर कापमें डण्डा नलिका तिरछी रखके उसमें कोई फल, लालमिरची आदि बाँध देते हैं। उसीके नीचे एक गहिरी-चौड़ी बर्तनमें पानी भी भरके रख देते हैं। बश इतना जोड़के बहेलिया लोग छिपे रहते हैं। उधर शुग्गाने देखा कि—वहाँ कोई सुन्दर फल है, तो बड़ा मजेदार रस होगा, उसमें चलो खाय लें। यह शोचके उड़कर उसी नलिकामें आकर बैठ गया, और पञ्जोंसे उसे मजबूत पकड़ लिया, वहाँ तो डण्डा ढीला था, उसके शरीरके भारसे फिर गया या घुम गया, इससे उसका शिर नीचा और पैर ऊपर हुआ, लटक गया। नीचे देखा, तो पानी दिखा; तब शुग्गा घबराया, उसने शोचा, इस डण्डाको छोड़ूँगा, तो नीचे पानीमें डूबके मर जाऊँगा, ऐसा समझके नलिकाको और मजबूतीसे पकड़ा, पंख फड़-फड़ायके ठ्याँय-ठ्याँय करने लगा। वह अपने उड़नेकी शक्तिको भूल ही गया। इतनेमें बहेलियाने आकर उसे पकड़के पिंजड़ामें डाल लिया, सो कैद हो गया। अब देखिये! वहाँ उसके भ्रमका ही तो बन्धन था, यदि नलिकाको छोड़के तोता उड़ जाता, तो काहेको पिंजड़ामें पड़ता? भ्रमने ही तो उसे फँसाया, लोभ, लालचने मदत किया। तैसे ही सुवनारूप नर जीव, मनुष्य जन्ममें स्वतन्त्र कर्म भूमिकामें था। इसने घर-गृहस्थीरूपी नलिकामें— "ललना च नितम्बिनी" यानी नितम्बवाली स्त्रीकी सुन्दर रूपको देखा, तब विषय भोगके प्रेमके मारे आके घर-गृहस्थीमें बैठा। परन्तु वहाँ कुछ सुख तो मन चाहे मिला नहीं। गृहस्थीके बोझाके मारे लटक गया, आशा-तृष्णादिमें अटक गया; काम, क्रोध, लोभ,

मोहादिमें और घर-गृहस्थीके बाहर नीचे देखा, तो भूखों मरूँगा, दुःख पाऊँगा, ऐसा समझके घबरा गया, और दृढ़तासे स्त्री-पुत्रादि विषयाशक्तिको ही पकड़ा, अण्ट-सण्ट बकवाद करने लगा। इतनेमें आयु पूर्ण हुई मर गया, तो वासनावश चौरासी योनिमें गर्भवासादिके पिंजड़ामें जाके बँधुवा हुआ; अपना ही बनाया हुआ अध्यासने जीवको कैदमें डाल दिया। और स्त्रीरूपी यमने मोहक वचन सुनाय, सुन्दर रूप देखाय, पुरुषरूपी तोताको भोगमें फँसाय, घरके पिंजड़ामें डाल दी। और मरनेपर स्त्रीके गर्भमें ही नौ महीनोंतक उल्टा टँगता रहा; इसी तरह जन्म-मरणके चक्रमें ही फिरता रहा॥

और दूसरा दृष्टान्त भी सुनिये! "कीट कुस्यारी माँभ"—जैसे कीट = कुशवारीमें रहनेवाला कीड़ाको, कोशा भी कहते हैं। वह वहीं कहीं कोशाका घर बनायके रहता है। अथवा अण्डाकार एक प्रकारके रेशमका घर बनायके रहनेवाला कीड़ाको भी कुस्यारी कीट कहते हैं। वह पहले तो अपना घर कुछ गोल-गोल लम्बा-लम्बा-सा बनाय लेता है, फिर सब घर बन जानेपर उसके भीतर घुसके द्वारके छेदको भी बन्द कर देता है। तदनन्तर कुछ देर भीतर रहके फिर घबरा जाता है। निकलनेका मार्ग न मिलनेसे छटपटाने लग जाता है। मूर्ख कीड़ा यह कुछ सोचता ही नहीं कि, द्वार तो मैंने ही बन्द किया था, अब उसे खोलके बाहर क्यों न निकल जाऊँ। परन्तु ऐसी बुद्धि उसको वहाँ उस वक्त कहाँ सूझती? इसीसे तलमलाय-तलमलायके उसी कुस्यारी घरके भीतर ही मर जाता है। और रसके लोभी भँवरा कमलमें बैठके रस लेते-लेते सुधि बुद्धि भूल जाता है। रात्रिमें कमल पत्रके सम्पुट लगनेसे फूलके भीतर ही बन्द हो जाता है। बाँसको छेद करनेमें समर्थ ऐसा भँवरा उस नरमपत्तीवाली कमलको छेद करके भी नहीं निकलता। प्रभात होनेपर बाहर निकलनेकी आशा लगाये रहता है। परन्तु प्रभातमें मस्तहाथी आके कमल पुष्प सहित उस भौंरेको भी चबाके खा जाता

है । मोहसे ही वह ऐसे मारा जाता है ॥

इसी तरह कीटवत् अविवेकी पुरुष आप ही घर-गृहस्थीको जोड़-कर वासना बढ़ाय, मुक्ति मार्गको स्वयं ही बन्दकर, नाना दुःख पाय, तलमलाय-तलमलायके मरके चौरासी योनिमें चले जाते हैं। और मनुष्योंने ही वेद-कुरानादि नानावाणी कल्पनासे, बनाय, अनेक सिद्धान्त स्थापित किये हैं, सोई वाणीके घर बनाये हैं। उस मत-पक्षके घरमें प्रवेश करके स्वयं ही पारख विचार करनेका मार्गको भी बन्द किये हैं। ज्ञानी, योगी, भक्त, बनके नाना साधनोंमें लगे वा लगाये हैं। और जड़ाध्यासी होके मरे, तो पुनः चौरासी योनिको ही प्राप्त भये। जीव समर्थ होते हुये भी भौंरेवत् भावुक लुब्ध होके खानी और वाणी जालोंमें फँस-फँसके नष्ट-भ्रष्ट भये और हो रहे हैं ॥

ऊपरकी दोनों दृष्टान्तोंसे दिखा दिये कि—जीव स्वयं ही अपना कर्तव्यसे भूले हैं, भ्रममें पड़ करके आप ही फँसके भवबन्धनोंमें पड़ जाते हैं। उसे जबरदस्ती कोई बन्धनोंमें डाले नहीं है। परन्तु आप ही आप लोभ-लालच, मोह, कामके वश होके बन्धे पड़े हैं ॥ सिद्धान्तमें इस चैतन्य जीवकी भी ऐसे ही गति या चाल होती भई। नर जीव श्रेष्ठ ज्ञान खानी कर्म भूमिका मुक्ति द्वार, मनुष्य जन्ममें होके भी निजस्वरूपको भूलके खानी-वाणी जालोंकी महा घेरामें स्वयं ही खुशीसे घिरा पड़ा है। स्त्री और गुरुवा लोगोंके दास होकर महा भव-बन्धनोंमें बन्धे पड़े हैं। जैसे दिनके प्रकाश सूर्यास्त होते ही सन्ध्याके पश्चात् अन्धकार छा जाता है। दिनसे विपरीत साँझ हो जाता है। अथवा सूर्यमें ग्रहण लग जानेपर दिनहीमें भी साँझके नाईं अँधियारा हो जाता है। बादल घनघोर छा जानेपर भी प्रकाश मन्द पड़ जाता है। इसी तरह दिवस = ज्ञानस्वरूप जीव है, उसके चैतन्य प्रकाश निर्मल रहते, हुये भी देह सन्बन्धमें भ्रम-भूल आसक्तिसे अज्ञानताकी अँधियारा छा जाता है। ज्ञान, अज्ञान, तथा विज्ञानकी आनन्दी दृढ़ हो जाती है। अविद्या, अहंताका ग्रहण लग जाता है।

ज्ञानसे अज्ञानता हो जाता है। काम-क्रोधादिके घटा फैल जातो है, जिससे बोधका प्रकाश मन्द पड़ जाता है। इसतरह इस जीवकी ऐसी गति भई कि—जैसे नशेबाजकी तरह। अपने खुशीसे प्रयत्न करके नशा खाया-पीया, खुमारी चढ़ी, तो कर्म-कुकर्म करके पतित भया। समझ नशायके बेसमझ मूढ़ होता भया। बोधसे अबोध, ज्ञानसे अज्ञान, स्वतन्त्रसे परतन्त्र, सो ऐसे जीव अपने ही कर्तव्यके अधीन हुआ या हो रहा है, बिना पारख जोव अपने आप बन्धनोंमें पड़े हैं। इस वारेमें सद्गुरु श्रीकबीर साहेबने बीजक शब्द ७६ में खुलाशा करके सुन्दर रीतिसे दर्शाये हैं। सो भी सुनियेः—

शब्दः—आपन पौ आपही बिसर्‍यो ॥ १ ॥
जैसे श्वान काँच मन्दिरमें। भरमित भूसि मर्‍यो ॥ २ ॥
ज्यों केहरि बपु निरखि कूप जल। प्रतिमा देखि पर्‍यो ॥ ३ ॥
वैसे ही गज फटिक शिलामें। दशनन आनि अर्‍यो ॥ ४ ॥
कर्कट मूँठि स्वाद नहिं बिहुरे। घर-घर रटत फिर्‍यो ॥ ५ ॥
कहहिं कबीर नलिनीके सुवना। तोहिं कौने पकर्‍यो ? ॥ ६ ॥
॥ बीजक, शब्द ७६ ॥

—इसमें पाँच दृष्टान्त देके सिद्धान्त दर्शाया गया है। इस प्रकारसे जीव स्वयं ही निज कर्तव्यमें भूलके जड़ाध्यासी होके आवागमन चक्रमें पड़ रहे हैं। जब पारख दृष्टि उघाड़कर सब मानन्दीको छोड़के निजस्वरूपमें स्थिति कायम करेंगे, तभी बन्धनोंसे छूटके मुक्त होवेंगे। ऐसा विवेक करके जानलो ॥ ५४ ॥

॥ ४ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—४ ॥ खण्ड ७ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—८ ॥ चौ० १ से ४ तक है ॥

१. माय-बाप याके कोइ नाहीं। स्वतः आपु कस बन्धन माहीं ॥५५

टीकाः—ग्रन्थकर्ता शिष्यके चौथा प्रश्न बतलाते हैं :—उपरोक्त गुरु उत्तर सुनके शिष्य बड़ा आश्चर्यमें पड़के कहने लगा कि—हे

सद्गुरो ! आपने कहा कि—चैतन्य जीवका स्वयं स्वरूप है, इसको उत्पन्न करनेवाला कोई नहीं। माय = इच्छा शक्तिरूप आदिमाया तथा बाप = परब्रह्म परमात्मा सो यह भी कोई पदार्थ नहीं है, सिर्फ मानन्दी मात्र होनेसे मिथ्या है। जीवके आदि कारण पिता-मातारूप माया—ब्रह्म भी कोई नहीं है। जब ऐसा है, तो यहाँ शंका यह होती है कि—स्वतः आप ही आप जीव बन्धनोंमें कैसे और क्यों आ पड़ा? फिर स्वयं समर्थ है, तो बन्धनोंसे निकलता क्यों नहीं? काहेको दुःख भोगता हुआ चौरासीमें पड़ा है? यह बात मेरे समझमें अभीतक नहीं आई है। आप स्वतः होते हुये भी बन्धनोंमें कैसे आया? और मुक्त कैसे होगा? ॥ ५५ ॥

२. कैसे निज तन आपु विसारा। भरम भूलका कौन इशारा? ॥५६

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और अपने स्वरूप स्थिति एवं शुद्ध हंसदेहको जीवने कैसे आप ही विसारा या भूला है? कौनसे इशारासे भ्रम-भूल पैदा हुआ? उसके लक्षण, हेतु, पहिचान आदि ये सारो बातें मेरे समझमें आवै, वैसा दया करके कहिये ॥ ५६ ॥

३. कौन मानन्दी इन प्रभु कीन्हा? । भिन्न-भिन्न बतलावहु चीन्हा ॥५७

टीकाः—शिष्य कहता हैः—हे पारखी सद्गुरु प्रभो! इस हंस जीवने ऐसा कौन-सा मानन्दी किया? जिससे निजपदसे पतित होके भव बन्धनोंमें आ पड़ा है। प्रथम इसने कौन मानन्दी किया? और फिर क्या गति भया? कहाँ गया? सो इसके चिह्न वा गुण लक्षणादि भी भिन्न-भिन्न निर्णय करके बतलाइये। जिससे हमें भी यथार्थ बातका पहिचान होवै। इस बातसे तो हम बिलकुल अपरिचित हैं। आपके कृपासे एक-एक करके उसका निर्णय करके समझना चाहते हैं। सोई गुरु निर्णय बतलाइये, समझाइये ॥ ५७ ॥

४. प्रथमें कौन देह हंसाकी? जाहि देहते झाँई झाँकी ॥ ५८ ॥

टीकाः—हे गुरो! प्रथमारम्भ या पूर्वमें सबसे पहिले जीवकी

हंसदेह कौन-सी थी? कौन-सी आकार-प्रकार उस देहकी थी? हंसकी चाल क्या थी? जिस देहकी सम्बन्धसे हंसने झाँईको झाँका, सो वह देह कौन सामग्रिसे बनी थी? उस देहमें ऐसा कौन-सा विशिष्ट भाग था? जिससे झाँई = गाफिली, विज्ञान, बेहोशीको, झाँकी = देखा, निहारा, तदाकार हुआ या अनुभव किया? और कैसे भूलमें पड़ गया, सो इसका भेद खुलाशा करके बतला दीजिये! ॥ ५८ ॥

दोहाः—कौन देह प्रथमें हती। का मानन्दी कीन्ह ॥
(६) कैसे भ्रमवश जीव परो। भई सकल मति छीन ॥ ५९ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता दोहामें प्रश्नका सारांश दिखलाते हैं:— शिष्यने कहा कि—हे सद्गुरो! जगत् सृष्टिके पूर्वमें जीव कौन-भूमिकामें था? और प्रथम उसकी देह कौन थी? या स्वरूप कौन सा था? और क्या मानन्दी किया? कैसे किया? मानन्दी करनेके लिये क्या सम्बन्ध हुआ? तथा शुद्ध स्वरूप हंस जीव होते हुये भी फिर वह भ्रम-भूल-झाँईके वशमें कैसे आके पड़ गया? सारासार, हिताहित देखनेकी सद्बुद्धि तथा हंसकी सद्गुण लक्षणादि सकल बोध विचार कैसे क्षीण, हीन, मलीन हो गई? यानी सकल जीवकी बुद्धि नष्ट-भ्रष्ट कैसे हो गई? इसका पूरा निर्णय करके कृपाकर मुझे समझा दीजिये, दर्शा दीजिये ॥ ५९ ॥

॥ ४ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—४ ॥ खण्ड ८ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—९ ॥ चौ० १ से १८ तक है ॥

१. हे शिष्य! तुम पूछेउ भल बाता। तोसे सकल कहौं विख्याता ॥ ६०

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरण साहेब कहते हैं:—हे जिज्ञासु प्रेमि शिष्य तुमने अच्छी हितकारी या भलाईकी भली वार्ता पूछे हो, यह तुम्हारा प्रश्न जिज्ञासुके अनुरूप है। अब मैं तुमसे इसके मर्म विख्यात या प्रख्यात = जाहिर करके सकल मर्मको सत्य निर्णयसे

समझायके कहता हूँ ! सावधान होके सुनो ! यह जगत् किसी समय नहीं थी, ऐसी बात सम्भवती नहीं । पहले जड़—चेतनरूप जगत् नहीं थी, पीछे किसी कर्तासे उत्पन्न भई, ऐसा कहना, सो महा भूलकी कथन है । तुम्हारे मनमें भी वही भ्रम घुसी हैं, इसीसे बार-बार वही शंका प्रगट होती है । अब तुम ठीकसे समझो कि—जगत् अनादि है । पाँचतत्त्व जड़ और अनन्त देहधारी चैतन्य जीव स्वयं सिद्ध सत्य प्रत्यक्ष ही हैं । अब जीवको बन्धनका कारण तथा हंसदेहके रहस्यको कहता हूँ ! ध्यानसे सुनो— ॥ ६० ॥

२. पकी देह प्रथम हंसाकी । बीजक टीकामें सब भाखी ॥६१॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हंसजीवकी प्रथम कर्मभूमिका-रूप मनुष्य जन्ममें नरदेह सोई हंसदेह भी कहा जाता है । उसे पकी देह भी कहते हैं । क्योंकि मनुष्य देहमें किये हुये सब कर्म पके फल भुगानेवाले होते हैं । बनाया हुआ कर्मका संस्कार भोग विना कदापि मिटती नहीं । अतएव प्रथम पकीदेह मनुष्य जन्ममें हंसजीवकी बासा थी, सो वहाँ कर्म चाहे वैसा करनेमें स्वतन्त्रता थी और सत्य, विचारादि सद्गुणोंको धारण करनेवाला ही पक्का हंस कहलाता है । इसके बारेमें विशेष विस्तारसे दृष्टान्त-सिद्धान्त घटायके बीजक टीका त्रिज्ञा बुझार्थ (श्रीपूरणसाहेबकृत—) में सब वर्णन किया गया है । हंसके पकी देह कैसी थी ? तत्त्व-प्रकृति इन्द्रियादि सहित पलटके फिर कैसे कची भई, इस बारेमें बीजकमें प्रथम साखीके टीकामें ही विशेष प्रकाश डाला गया है । चाहे वहाँसे भी देख लीजिये । परन्तु पारखी सद्गुरुके गुरुमुख द्वारा ही उसका पूरा भेद समझनेमें आवेगा । खाली अपने ही खुद टीका पढ़नेसे रहस्य मालूम नहीं होयगा, अतः गुरुमुखसे निर्णयको समझना चाहिये ॥ ६१ ॥

३. वह जो यहाँ अब कहौं बुझाई । तो यह ग्रन्थ बहुत बढ़ि जाई ॥६२

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे शिष्य ! हंसदेहके

बारेमें बीजक टीकामें लिखा हुआ विस्तार वह सब ही जो यहाँपर अब फिर भी तुम्हें बुझाय, समझाय, दर्शायके कहने लगूँ, तब तो यह प्रकरण निर्णयसार ग्रन्थकी लेख भी बहुत बढ़ जायगा, और कहने-सुननेमें भी बहुत समय लग जायगा। इसवास्ते वह सब विस्तार तो यहाँ पर मैं कहता नहीं। सिर्फ संक्षेपमें उस निर्णयका भी सारांश मात्र ही यहाँपर दर्शाय देता हूँ ॥ ६२ ॥

४. दया क्षमा सत्य धीर विचारा । पाँच तत्त्व हंसाके सारा ॥६३॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—ध्यानसे सुनो! १. दयाः—चंचलवायु तत्त्वके शुद्ध गुण हैं। अपनेको विषयाशक्तिसे अलग करके कल्याण मार्गमें दृढ़तासे कटिबद्ध होके लगाये रखना, सो निजदया कहलाता है। और परदया = छोटे-बड़े देहधारी जीवोंको शक्ति रहे तक रक्षा, बचाव करना; सबका हित हो, वैसा कार्य करना। निर्दयाको छोड़के ऐसे दयाधारण करना चाहिये। यही वायुतत्त्वके शुद्ध गुणका भाग दया ग्रहण करना है। यह हंसदेहके प्रथम तत्त्व है।

२. क्षमाः—तेज तत्त्वकी शुद्ध गुण शील या क्षमा करना है। नम्र, मृदु, कोमल स्वभावका होना, सो शील है। और अपना अपराध करनेवालेको दण्ड देनेकी शक्ति होते हुये भी माफ कर देना, सो क्षमा कहलाता है; यही दूसरा सद्गुण हंसदेहकी शील तत्त्व कहलाता है।

३. सत्यः—पृथ्वी तत्त्वकी शुद्ध गुण है। सत्यतामें रहना, सत्य बोलना, व्यवहार भी सचाईसे करना। रहनी, गहनी, वाणी, सबमें सत्य ही सत्यका प्रकाश होना, सद्गुणी होना, इत्यादि यही सत्यका लक्षण है। सो हंसदेहकी तीसरा तत्त्व है।

४. धीरः—आकाश तत्त्वरूप समानवायुका शुद्ध गुण है। इसे धैर्य या धीरज भी कहते हैं। दृढ़ता-साहश लेके मुक्ति मार्गमें आगे बढ़ना, कल्याण पथपर चलनेमें कैसे भी आपत्ति, कष्ट, विघ्न, उपाधि, आनेपर

भी धैर्य धारण करके बढ़ते चले ही जाना । कभी घबराना नहीं; धीर, वीर, गम्भीर स्वभाव बनाना । सो यह हंसदेहकी चौथा तत्त्व है ।

५. विचारः—जल तत्त्वकी शुद्ध गुण है । हित-अहितकी सोच-विचार करना, विचारके ही सब कार्य करना, विना विचारे कुछ भी न करना, जड़-चेतनके स्वरूपका निर्णयसे विचार करना, जड़ा-शक्तिको त्याग करना, इत्यादि विचारका अंग है । सो यही हंसदेहकी यहाँपर क्रममें पाँचवाँ तत्त्व है। यह मूलपदका क्रम मिलानके अनुसार बैठाया गया है। वैसे सीधी क्रम इस प्रकार होता है कि—सत्य, विचार, शील, दया और धीरज, येही शुद्ध पाँचतत्त्व रहनीके लिये हंसदेहकी मुख्य सार भाग है। सब हंस पारखीयोंने इसे स्वयं धारण करके मुमुक्षुओंके लिय भी इस सार भागको धारण-ग्रहण करनेको कहा है। सो यही सत्यादि पाँचतत्त्व नरदेहमें हंस जीवका सार भाग है ॥ ६३ ॥

५. याहीकी देह हंसाकी भाई ! याहीको ब्रह्माण्ड रहाई ॥ ६४ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई ! जिज्ञासु शिष्य ! पुरुष विशेष, मनुष्यरूप हंस जीवकी यही पक्की देह सद्गुणोंकी धारणा थी, इसीको हंसकी देह, आकार-प्रकार, वाह्य स्वरूप भी कहते हैं। स्थूल देहके सम्बन्धमें ही दया, क्षमादि शुद्ध ५ तत्त्व भी नरजीवके पासमें थी। और बिना शरीरके वह दया, क्षमादि गुण-लक्षण प्रगट हो ही नहीं सकता है। अतः जीव नरदेहमें था। सो वही हंसदेहकी पिण्ड या पिण्डमें ही हंसदेह संयुक्त स्वभाव साबित हुआ। और उसी शुद्ध गुण शुद्ध तत्त्वादिकी बाहर व्यवहारके लिये, ब्रह्माण्ड=शुद्ध निर्णयकी वाणी भी रहता है, वा निर्णयकी वाणी हंसदेहमें रही। सोई यथार्थ वचन कहना-सुनना, उपदेश देना-लेना, सत्संगमें शंका, समाधान करना-कराना, ऐसे बाह्य ब्रह्माण्डमें भी वाणी सम्बन्धी सुधार, सार ग्रहणका कार्य होता रहता है। इसी प्रकारकी

पिण्ड-ब्रह्माण्ड हंसजीवकी अभी जो है, तैसे ही प्रथमके नरदेहमें भी था । मनुष्य गुणवान् भी होते ही हैं, सो तैसे अभी भी हैं ॥६४॥

६. याही देह हंसाने देखी । उपजो हर्ष निज प्रेम विशेखी ॥६५॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—इसी सद्गुण-लक्षण सम्पन्न हंसदेह या मनुष्य देहको देहधारी हंसरूप नर जीवने भीतर-बाहरसे देखा या अनुभव किया । विचार दृष्टिसे सद्गुण रहनी, त्याग-वैराग्य आदि विशेषण अपनेमें धारण—ग्रहण हुआ ऐसा देखे, तो प्रफुल्लित हुये । पारख न होनेसे तहाँ सूक्ष्म अहन्ता-ममताका प्रवेश हुआ । तब अपने गुण-स्वभावमें विशेष प्रेम और हर्ष, प्रसन्नताका भाव जाग्रत् होके मद उत्पन्न होती भई । अर्थात् जीवने यही सद्गुणरूप हंस-देहको देखके उसीमें प्रेम बढ़ाया, तो हर्ष या खुशियाली मनाया, जिससे अपनेको सबसे विशेष श्रेष्ठ माननेका सूक्ष्म अभिमान हृदयमें उत्पन्न हो गया । उसीसे स्वरूप स्थिति मुक्तिका मार्ग पारखपद वहाँ छूट गया, ऐसा जानो ॥ ६५ ॥

७. प्रेम आनन्द उठा घहराई । ता आनन्दमें हंस समाई ॥६६॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—हे शिष्य ! हंस जीवने जब नरदेहमें निज सद्गुणोंकी विशेषताको लखके स्नेह प्रगट किया, तो एक प्रकारसे मदोन्मत्त हुआ । उसी स्थिर वृत्तिकी आनन्दमें अधिकतर प्रेम लगाया, तहाँ तत्त्वोंके देह भासका अहंकार पकड़के मगनमस्त भया, तो आनन्दका प्रवाह प्रेम उमड़-घुमड़के घहराई उठा । जैसे बाढ़में'नदीकी प्रवाह होती है, तद्वत् हुआ । मनमानन्दी गड़गड़ायके उठी । सो उसी आनन्दमें हंस जीव समाय गया, वृत्ति लय हुई । मन उन्मुन हुई, शून्य समाधि लग गई । जिसे वेद-शास्त्रमें मतवादियोंने परमानन्द, सच्चिदानन्द, परमोत्कृष्ट आनन्द वर्णन करके बहुविधिसे महिमा गाये हैं । सो देहकी भास, शून्य-स्थिर वृत्तिका आनन्द है । उसीमें हंस समायके गाफिल हो गया, तनो-

बदनकी कुछ सुधि न रही । जाग्रत् स्थिति छोड़के शून्य सुषुप्तिवत् धोखामें जाके समा गया, वहीं जहँड़ा गया ॥ ६६ ॥

८. गयो समाय भयो आनन्दा । बिसरी देह परो भ्रम फन्दा ॥६७॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और हे शिष्य ! जब हंस जीवकी शून्यमें स्थिर वृत्ति होनेसे झाँईंमें समा गया, उसीको ब्रह्मसमाधि कहा । चित्त चतुष्टय सहित, जीव शून्यमें समाय गया, तब बड़ा आनन्दका अनुभव भास होता भया । सहविकल्प, निर्विकल्प स्थिति होनेसे महदानन्द मानता भया । उसीमें जीव समा गया, बेभान हो गया । ऐसी हालत होनेसे तहाँ हंस देहकी शुद्धता, साक्षी दशा, सद्गुण-लक्षण, विवेक-विचार सबही भूल गया, निज स्वरूपको भी भूल गया । जाग्रत् अवस्थामें आवर्ण पड़ी, भ्रम भूलसे कुछका कुछ दूसरा ही भाव मान लिया । "अहं ब्रह्मास्मि, सच्चिदानन्द, शिवोऽहं" कहिके महाजाल भ्रम फन्दामें पड़ गया । वाणी कल्पना जगत् जालमें भूल गया, तब तो हंस देह तर्फकी सब स्वभाव ही बिसर गया । इसतरह महाजालमें अरुझ गया ॥ ६७ ॥

९. पकीते कच्ची भई भाई ! भई स्फूर्ति हंसा सुधि आई ॥ ६८ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई ! जिज्ञासु शिष्य ! तदनन्तर कुछ कालतक शून्यमें धुन्द गाफिल रहा, जब हंस जीवको हृदयमें स्फूर्ति = स्फुरणा, इच्छासंचालित होके सुधि = होश आई, जाग्रत् भाव हुई, तबतक तो उलट-पुलट हो चुका था । सारा कारोबार ही बदल चुका था । क्योंकि उस शून्य भावनाने स्थिति-स्वभाव ही पलट दिया था । इसलिये पक्की हंसदेहः—दया, क्षमा, सत्य, धीर, विचारादिसे गिरके या छूटके जीवकी कच्ची देहः—निर्दया, अक्षमा, असत्य, अधीर, अविचार वा काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदिमें ठहराव होती भई । इस तरह भ्रम-भूलसे फिसल करके, पक्की = मज-बूत, पुख्ता, दृढ़ता, असली, हंस पदसे पतित होनेसे कच्ची = कमजोर,

नादान, दुर्बल, नकली, मूर्ख होके स्वयं ही पलटके जड़ाध्यासी हो गया, महामायाके जाल-जंजालोंमें घिर गया। जैसे शराब पीनेवाला नशा चढ़ायके अपने आप ही दुर्दशाको प्राप्त होता है। तहाँ कहा है:—"जैसे मदपी गाँठि अर्थ दै। घरहु कि अकिल गमाई हो॥

स्वादे ओद्र भरे धौं कैसे? ओसै प्यास न जाई हो!॥ बीजक, कहरा ६॥"

—और फिर नशा उतरके होश आनेपर पीछे पछताता है। परन्तु आदत छूटती नहीं, फिर भी नशा पी-पीके ऐसे ही दुर्दशामें पड़ा करता है। तैसे ही हंसको भी जब स्फूर्ति होके सुधि आई, तो विषयानन्द तर्फकी ही इच्छा प्रबल होके उठती भई। फिर वह इच्छा बढ़ती ही गई, कुछ रुकी नहीं॥ ६८॥

१०. ई न जाना मैं भरम भुलाना। पकीते हंसा विलगाना॥६९॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—हे शिष्य! इतना सब कुछ हुआ, स्थिति छूट गई, बन्धनोंमें पड़ गया, खानी-वाणीमें अरुझ गया। परन्तु यह कुछ भी हंस जीवके ख्यालमें नहीं आया कि, मैं भ्रान्तिमें पड़के निजपद, निज स्वरूपको भूल गया हूँ। ऐसा तो कुछ जाना-समझा ही नहीं; यदि ऐसा समझ लेता, तो फिरसे अपने सुधार न कर लेता। परन्तु इस तर्फ लक्ष ही नहीं जाता। जीव तो सब अवस्था, सब ठिकाने अपनेको उत्तम ही समझता रहता है, चाहे उत्तम गुण-लक्षण पासमें हो, या न हो, तथापि न्यूनता न मानके अहंता ही धारण किये रहते हैं। इस तरह मैं भ्रममें पड़के महान् भूलमें पड़ गया हूँ। यह न जानके हंस जीव पकी हंस देहकी रहनि-रहस्य, स्थितिसे विलगाय गया, या भिन्न होके छूट गया। माया-मोहादिमें भूलके त्याग-वैराग्य, बोध-विचारादिसे रहित जड़ाध्यासी हो गया। अतएव अपने कर्तव्यके चूकसे स्वयं बन्धायमान हुआ॥ ६९॥

११. पिण्ड ब्रह्माण्ड सबै भौ काँचा। तामें आपु रहा जिव साँचा॥७०

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और हे शिष्य! इधर स्थूदेह व्यवहार विषयादिमें विशेष प्रवृत्ति होनेसे, पिण्ड = शरीर और मनमें भी

काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेषादिकी विकार विशेष व्यापने लगी। और ब्रह्माण्डमें वाणी बोल-चाल, लेन-देन बाहर पञ्चविषयों-का उपभोग पशुवत् कर्म-कुकर्ममें प्रवृत्ति मनमाने वर्ताव होने लगी। ऐसे पिण्ड-ब्रह्माण्डमें सब ही कार्य कच्चा ही कच्चा विकारी, खानी-वाणी जालमें अरुझानेवाले भये। परन्तु उस असत्य नाशमान् विषय, देह-गेहादिके बीचमें आप स्वयं जीव चैतन्यस्वरूपमात्र एक सच्चा, अविनाशी, अखण्ड, नित्य बना रहा। किन्तु जड़ाध्यास वश होनेसे त्रिविधि ताप आवागमनादिके दुःख ही भोगता रहा या भोग रहे हैं। कच्चा पिण्ड-ब्रह्माण्डमें सच्चा जीव रह रहा है। स्वरूप स्थिति न होनेसे जन्म-मरणादि दुःख चक्रमें ही घुम रहा है। तहाँ खाली बोध-विचारका ही पलटाव या फरक हुआ, जीवका नहीं, वह तो सदा एकरस ही रहता है ॥ ७० ॥

१२. कच्चीके प्रतापते भाई ! दूसरी इच्छा उठी बनाई ॥ ७१ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई ! प्रेमी शिष्य ! मनुष्योंका जैसा सङ्गत होता है, तैसे रङ्ग भी लग जाता है. वैसे ही रुची, स्वभाव, आदत, प्रियता भी हो जातो है। इस कारणसे कच्चो देह, विषई लोगोंके सङ्गत काम, लोभ, मोहादि बढ़ानेवाले ऐसे दृश्य देखनेसे और वैसा ही वाणी सुननेसे उस कुसङ्गतके प्रताप या प्रभावके बलसे प्रभावित होके नाना भावना, नाना चाहना, कामना, आशा, तृष्णादिकी लहरी उठ-उठके बहने लगी, और अपने समान स्थूल देह धारी स्त्रीरूपसे भोग-विलास, क्रीड़ा, करनेकी तथा दूसरी स्त्री प्राप्ति-की इच्छा प्रबल होके उठी, खड़ी भई। प्रथम मानसिक संकल्पसे ही सूक्ष्म इच्छारूप स्त्रीकी आकार-फोटो मनमें बनाया। सो वासना परिपुष्ट होनेसे बाहर देहसे भी नाना कर्तव्य कर्म करके विषय भोगोंको ही दृढ़ करता भया। इस तरह कच्चीके प्रतापसे भावना अनुसार दूसरी स्त्री प्राप्तिकी इच्छा उठायके विषय-वासना जड़ा-ध्यासको ही जीवने मजबूत बनाया, आप उसीमें फँस गया ॥ ७१ ॥

१३. ताते नारिरूप निर्मावा । सब कछु कीन्हा जो मन आवा ॥ ७२ ॥

टीका:—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—हे शिष्य ! जब पुरुष विशेष-विषयासक्त हो गया, इसवास्ते स्त्रीरूपको अपना साथी बनाता भया । "नारि विशेषन मोहिनी, भग ताके विस्तार । वाहीमें मन रत भयो, याते नहिं निस्तार ॥"—जवानीमें विषयविकार बढ़नेसे स्त्री-संसर्ग भोगकी इच्छा प्रबल भई, प्रथम वासनासे ही नारिकी रूप निर्माण करके फिर बाहर खोज-तलाश करके पञ्चाइत जोड़के कोई एक स्त्रीसे लगन लगाया, गठबन्धन बाँधा । फिर विवाह, पुनर्विवाह या अन्य उपाय करके स्त्रीको घरमें लाया । इस प्रकार नारिरूपको सङ्गिनी बनायके फिर उसके साथ विषय भग-भोगादि कर्म-कुकर्म, खेल-क्रीड़ा जो-जो तरंगें मनमें आया, सो-सो सब कुछ करता भया । इससे स्त्रीमें पुरुषका लक्ष और पुरुषमें स्त्रीकी लक्ष दृढ़ होयके लगी । तहाँ कहा है:—

"नारि रचन्तै पुरुषा, पुरुष रचन्तै नार" बीजक रमैनी ५० ॥ "नारि समानी पुरुषमें पुरुष समाना नारि" पंचग्रन्थी ८० ॥ इस तरहसे स्त्रीको साथी बनायके जो कुछ मनमें आया, सो सब प्रकारसे भोग किया ॥ ७२ ॥

१४. तेहि नारिके पुत्र तीनि भयऊ । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नाऊँ ॥ ७३ ॥

टीका:—सद्गुरु कहते हैं:—उसी अष्टाङ्गी आदिमाया स्त्रीके समागमसे निरञ्जन नामक पुरुषके द्वारा वीर्य स्थापित होनेसे गर्भ रहा । सो अवधी पूरा होनेपर उस स्त्रीके गर्भसे तीन पुत्र जन्म लेकर उत्पन्न होते भये । जिनका नाम उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर रखा । बड़ा लड़का ब्रह्मा रजोगुण प्रधान कर्मकाण्डी भया । मझोला लड़का विष्णु सत्त्वगुण प्रधान भक्तिमार्गी भया । और छोटा लड़का महादेव तमोगुण प्रधान योगमार्गी भया ।

अथवा मनरूपी पुरुषके इच्छारूपी नारीसे त्रिगुण सोई तीन पुत्र या उनके कार्य उत्पन्न भ,ये गुणके अनुसार उनका नाम भी

पड़ा, वैसे काम भी होता गया। अर्थात् नर-नारीके समागमसे राजसी, तामसी, और सात्त्विकी ऐसे त्रिगुणी सन्तान पैदा भये वा पैदा हो रहे हैं ॥ ७३ ॥

१५. तबहिं कल्पि बहु वाणि उपाई । कर्ता कारण इच्छा आई ॥ ७४ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—तत्पश्चात् समयान्तरमें किसी वक्त चराचर दृश्य जगत्को देखते-देखते ऐसी इच्छा या स्फुरणा मनमें हो आई कि—इस समस्त जगत् जड़-चैतन्यादिको उत्पन्न करनेवाला जगत्कर्ता विश्वात्मा-परमात्मादि कोई एक मूल कारण अवश्य होगा? बिनाकर्ताके ऐसा विशाल जगत् आता कहाँसे? कर्ता तो कोई न कोई जरूर होगा, परन्तु वह *कहाँ कैसे होगा? उनको कैसे जाने? कर्तासे मिले बिना भव दुःख छूटेगा नहीं। ऐसी शोच-विचारसे कल्पना करते-करते तबही मन मानन्दीकी कल्पनासे वेद, शास्त्रादि बहुत प्रकारकी वाणी, नानामत, नानासिद्धान्त, कर्मादि ५ मार्गोंके विधान वाणी बनायके उत्पन्न किये। और अनेकों साधनाएँ भी कर्ता प्राप्तिके इच्छासे किये। परन्तु वह कर्ता आयके किसीसे भी मिला नहीं, मिथ्या धोखामें ही पड़ गये ॥ ७४ ॥

१६. पुन्हि सो रूप छूटिके गयऊ । एक अनन्त आपुहि भयऊ ॥ ७५ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—इस प्रकार यह मनुष्य जीव आप स्वयं ही पूर्वमें वाणी कल्पनाके दृढ़तासे एक आदि कारण ब्रह्म बना, तथा अनेक जगत् जालमें नाना रूपधारी होता भया। फिर समय पायके उन्होंके वह देहादिकी रूप, आकार-प्रकारादि भी छूट गयी, काया विनाश हो गया। अर्थात् निरञ्जन नामके पुरुष भी मर गया, और उसकी स्त्री आदिमाया भी मर गई। उनके पुत्र ब्रह्मादि तीनों भाई भी एक-एक करके मर गये। जड़ाध्यासी होनेसे वे चौरासी योनिको ही प्राप्त भये। एक जीव अध्यासवश चारखानीमें जाके क्रमशः अनन्त देहधारी होता भया। देहकी स्थूलरूप तो छूटी, परन्तु

सूक्ष्म अभ्यास किसीके छूटी नहीं। इसीसे एकसे अनेक देहधारी होते रहते हैं। अथवा वाणी प्रमाणसे पहिले जो एक ब्रह्मका निश्चय किया था, सो भी फिर पीछेसे बहुमत नाना ग्रन्थ देखने-सुननेसे छूट गया। तब एक-अनन्त, कारण-कार्य, ब्रह्म-जगत् आप ही बनता भया, महा धोखामें गिर पड़ा ॥ ७५ ॥

१७. यह प्रकार जग भया तमाशा। एक अनेक बँध्यो सोइ आशा ॥७६॥

टीकाः—सद्‌गुरु कहते हैंः—हे शिष्य! इस प्रकारसे जगत् जालमें वाणी-खानीकी तमाशा विस्तार हुआ और हो रहा है। विवेक करके देखो! तो सो तमाशा भूठी है और तमाशा करनेवाला जीव ही सच्चा है। परन्तु पारख विना जीव सोई भूठी आशा, एक ब्रह्मकी वा ईश्वरादिकी और अनेक—चारफल, चार मुक्ति, सात स्वर्गादि देवी, देवता, भूत, प्रेतादि, ऋद्धि-सिद्धि, करामात मन्त्र सामर्थ्य इत्यादि अनेकों आशारूपी डोरी यमपासमें अचेत होके बन्धे पड़े हैं। सोई निज कर्तव्यमें नाना तरहसे फँसे और फँसही रहे हैं ॥७६॥

१८. सोई जीवरूप यह भाई! आपन बन्धन आप बनाई ॥७७॥

टीकाः—सद्‌गुरु कहते हैंः—हे भाई! जिज्ञासु शिष्य! सोई जीव-रूप कहिये नरदेहधारी यही मानुषरूप ही है। और दूसरा कोई नहीं है। क्योंकि, जीव = चैतन्य, रूप = जड़देहसंयुक्त, मनुष्य ही ने मनकी भावनाके अनुसार परिणामका विचार न करके अपनेको बाँधनेवाला नाना बन्धन जाल खानी-वाणी आदिकोंको अपने स्वयं ही बना लिया है, और बना रहे हैं। अपने कर्तव्यमें आपही बद्ध हो रहे हैं। जीवको बन्धनोंमें डालनेवाले ईश्वरादि कोई नहीं है। मनुष्य देहमें स्वत-न्त्रतासे नाना कर्म अभ्यासको टिका करके स्वयमेव बन्धनोंमें पड़ जाते हैं। अर्थात्—नित्य, सत्य, अखण्ड, अमर, अविनाशी, सो यही जीवका असली स्वरूप है। हे भाई! यह जीवरूप तो सोई स्वयं स्वरूप है, जिसने प्रथम भी नरदेहमें निज हंसदेहको विस्मृत करके

भ्रम भूलमे अपना बन्धन आपही बनाया था, और अभी मनुष्य जन्म पायके भी वैसे ही भवबन्धनोंमें पड़ रहे हैं। विना पारख उसी प्रवाहमें बहते रहते हैं । सद्गुरु श्रीकबीर साहेबने जो कहा है, सो इस वारेमें बीजककी प्रथम साखीके प्रमाण देते हैं, सो सुनिये ! ॥ ७७ ॥

॥ सत्यशब्द टकसार ॥ प्रमाण, बीजक मूल, साखी नं० १ ॥

साखीः—जहिया जन्म मुक्ता हता । तहिया हता न कोय ॥
(३) छठी तुम्हारी हौं जगा । तू कहाँ चला बिगोय ? ॥७८॥

टीकाः—गुरुमुखः—सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैंः—जहिया = जिसवक्त, जिस समय या जब-जब चैतन्य जीव मनुष्य खानीमें नरदेह धारण कर जन्म लेके आते हैं, तहिया = तिससमयमें या तब-तब, मुक्ता हता = मुक्ति होनेके ठिकानेमें या मुक्तिका द्वाररूप ज्ञानखानी कर्मभूमिकामें रहते हैं । और अभी हैं । पहिले भी जीव जिसवक्त नरजन्म पायके मनुष्य देहमें था, उस वक्त भी कर्मभूमिका मनुष्य खानीको छोड़कर और पशु आदि तीन खानी वा त्रयरासोकी बन्धन, परवशता, परतन्त्रता, अशक्तता, मूढता इत्यादि भोग भूमिका की रुकावट, जाल, अरुझावन नर जीवके सन्मुखमें यह सब, हता न कोय = कोई कुछ भी नहीं था, तब भी मुक्ति होनेके जगहमें ही जीव था । परन्तु कर्मकी चूक होनेसे नरदेह छूटनेपर चौरासी भोगनेको जाना पड़ा, और अब चौरासी योनियाँ भोगकर फिर भी मनुष्य जन्म लेके आये हो, सो अभी भी मुक्ति होनेको उसी जगहपर हो, अब तो सावधान होओ । पूर्ववत् भ्रम-भूल करके इस औसरको भी व्यर्थ मत गमाओ । साहेब कहते हैं—हे जीव ! पाँच तत्त्व और छठवाँ मन संयुक्त स्थूल-सूक्ष्म देहके सम्बन्धमें प्रथम भी तुम्हारे अशावधानीमे, हौं = हंकार, अभिमान, काम, क्रोध, लोभ, मोहादि करके जड़ाध्यास जाग्रत् परिपुष्ट हुआ था, जिससे मुक्ति स्थितिसे पतित होके तुम चौरासी चक्रमें पड़े थे । अब फिर भी तुम वही रास्ताको

अपना रहे हो। चौरासीयोनिके दुःख भूल गये हो, क्या तुम्हारी बुद्धि मारी गई है कि— पञ्च तत्त्वोंके पञ्च विषयोंमें छठवाँ मनको आशक्तिमें लगाके फिर भी तुम अभिमान, अध्यासादि विकारके हंकारको प्रज्ज्वलित करके जगा रहे हो। पाँचतत्त्व छठवाँ मन संयुक्त नरदेह यही छठी कर्मभूमिका है। इसमें पञ्चविषयोंकी सूक्ष्म हंकार मनमें जाग्रत् होते रहते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय और मद यही विषई लोगोंके मनमें चिपके रहते हैं। और स्थूलदेह, सूक्ष्मदेह, कारणदेह, महाकारणदेह, कैवल्यदेह और हंसदेह इन छहों देहोंमें क्रमशः विश्व, तैजस, प्राज्ञ, प्रत्यगात्म, निरञ्जन और तामस अभिमानको जगायके अध्यासी हो जीव मुक्तिपदसे बिगड़ जाते हैं। तहाँ कर्म, उपासना, योग, ज्ञान, विज्ञान और शुद्धज्ञान मार्गके साधनासे आगे बढ़ते चले जाते हैं। परन्तु पारख स्थिति बिना सूक्ष्म अहंभावको जागृत करके नष्ट-भ्रष्ट होते हैं।

अतएव सद्गुरु जिज्ञासु जीवोंको चेतावनी देते हुये कहते हैं कि—हे नरजीवो! प्रथम जिस प्रकारसे गाफिल हो चूक करके फन्दोंमें पड़े हो, सो वैसे अभी मत करो। सो तुम इस मनुष्य देह-रूप हंसदेहको भी हंकार जगायके नष्ट-भ्रष्ट मत करो। यदि फिर भी कर्तव्यको बिगाड़ोगे, तो तुम कहाँ चले जाओगे? चौरासी योनियोंमें ही तो जाओगे। अरे भाई! तुम बिगड़के कहाँ चले जाना चाहते हो? और जानेके जगह ही कहाँ है? शून्य आकाशमें तो ठहराव होनेकी ही नहीं। अध्यास वश चौरासी गर्भवासको ही तो जावोगे। इस कारणसे मैं तुम्हें समझाता हूँ! तुम अभी चेतकरो। इसी मनुष्य देहमें रहते हुये पारखी सद्गुरुके शरणागत होओ, सत्संग विचारके द्वारा सत्यासत्यको यथार्थ जानकर सत्य, विचार, शील, दया, धीरज, विवेक, गुरुभक्ति, और दृढ़ वैराग्य, ये सद्गुणोंकी रहनी देह रहे तक निरअभिमान होके धारण करो, पक्का हंस बनके कच्ची तत्त्व-प्रकृतिके विकार स्वभावको सुधार करो, निजस्वरूप पारख

पदको यथार्थ जानो, स्थिर हो रहो, तभी आवागमनसे रहित हो जाओगे।

सारांश—यह नर जन्म मनुष्यदेह मुक्ति होनेकी स्थान है। यहाँ चौरासी योनियोंका बन्धन परवशतादि कुछ भी नहीं है, जीव कर्तव्य करनेमें स्वतन्त्र है। हे मनुष्यो! छठी हंसदेह तो तुम्हारे स्थिति होनेकी जगह है। और उसमें भी पञ्चविषय, पञ्चदेह, पञ्चकोशादिके ही हंकार पकड़के मनमलीन किये रहोगे, तो फिर तुम बिगड़के कहाँ चले जाओगे, वहीं चौरासी योनिमें ही चले जाओगे। इसवास्ते अभी चेत करो, सम्हलो, भास, अध्यास, कल्पनादिको त्यागके पारख स्वरूपमें ठहरकर जीवन्मुक्त हो जाओ॥

बीजकटीकामें सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने इस साखीके अर्थ दृष्टान्त-सिद्धान्तसहित विस्तारपूर्वक लिखे हैं। यहाँपर उसके अन्तिम भाव और गुरुमुख अर्थ पढ़ाईके अनुसार सिद्धान्तिक मुख्य अर्थमात्र ही लिखा गया है। जिससे अल्पबुद्धिवाले मनुष्य भी सरलतासे समझ सकेंगे, वैसा सारांश अर्थ दिखला दिया है, सो जानिये॥७८॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—१० ॥ चौ० २ मात्र है ॥

१. मानन्दी है तीन प्रकारा। तत्त्वमसि वेद पद सारा॥ ७९॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—हे शिष्य! तुमने प्रश्नमें "कौन मानन्दी इन प्रभु कीन्हा?" "कामानन्दी कीन्ह?" ऐसा जो पूछे हो, उसका उत्तर अब बताता हूँ, सुनो! संसारमें मुख्य तीन प्रकारके मानन्दी परिपुष्ट हो रही हैं। सो अज्ञान, ज्ञान और विज्ञान कहलाता है। और वेद-वेदान्तके मुख्य सार सिद्धान्तका पद तत्, त्वं, और असिपद, माने हैं। सो जीव, ईश्वर, तथा ब्रह्मवाचक शब्द कहे हैं। सारा वेदमें तत्त्वमसिको महावाक्य ठहरायके प्रधान माने हैं। और उसी वेदमेंसे द्वैत, अद्वैत, और विशिष्टाद्वैत मतवादका सिद्धान्त भी निकाले हैं। ज्ञानी, योगी, और भक्त लोग, कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड, तथा ज्ञानकाण्डमें लगके दूसरोंको भी उसीमें लगा रहे हैं। परन्तु वहाँ कहीं भी जीवको स्थिति मिलती नहीं॥ ७९॥

२. ये तीनिहुँ पद्के माने भाई! आवागमनमें जीव रहाई ॥ ८० ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे भाई! जिज्ञासु शिष्य! ब्रह्म, ईश्वरादिकी भावना करके तत्त्वमसि ये तीनों पद्के मानन्दी दृढ़ करके काल, सन्धि, झाँईके महाजालका घेरामें घिरे रहनेसे ही आवागमन-रूप जन्म, मरण, गर्भवासके घनचक्रमें जीव पड़े रहते हैं। कर्मानुसार त्रिविधितापके दुःख वहाँ सहा करते हैं। अतएव इसे सत्य निर्णयसे परख करके त्याग करना चाहिये। ये तीनों पद्की मानन्दीको बिलकुल छोड़ देना चाहिये। तभी जीव आवागमनसे छूट सकेंगे, ऐसा जानना चाहिये ॥ ८० ॥

दोहाः—तत्त्वमसि पद् तीन सो। आवागमनको मूल ॥
(१०) सो भासो पद् जीवको। सहै घनेरी शूल ॥ ८१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे शिष्य! तत्पद् ज्ञान, त्वंपद् अज्ञान, असिपद् विज्ञान, यही तीन पद् वेद्का महावाक्यरूप सार सिद्धान्त ठहराये हैं। उसमें, तत्त्वमसि = वह तू ही ब्रह्म है, ऐसा अर्थ कहा गया है। सोई तो भ्रम भूल होनेसे मुख्य आवागमनका मूल कारण है। सो तीनों पद् चैतन्य जीवका भासमात्र ही है। जीवकी सामिलतासे ही सो भासरूप तीनों पद् प्रकाशित होते हैं। परन्तु, विवेक बिना भासिक जीव उसी भासमें मिलके गरगाफ हो जाते हैं। जड़ाध्यासी बन जाते हैं। इसी कारण चारखानी चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़के दुस्सह दुःख, त्रिताप, जन्म-मरणादिकी पीड़ा, कष्ट-क्लेश, शूल, घनेरी या बहुतेक बारम्बार सहा करते हैं। अतएव वह मानन्दीको सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये, ऐसा समझ लो ॥ ८१ ॥

॥ ५ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द् दीपक—५ ॥ खण्ड ६ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—११ ॥ चौ० १ से ५ तक है ॥

१. हो प्रभु! जीवनके सुख दाता। मेटेउ मोर भरम सब ताता ॥ ८२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता शिष्यका कथन पाँचवाँ प्रश्नमें दरशाते हैं।

सद्गुरुका उत्तर सुनके फिर शिष्यने इस प्रकार कहा कि— हे सद्गुरु प्रभो ! आप शरणागत नरजीवोंको नित्य सुख देनेवाले जीवन्मुक्त करानेवाले समर्थ महापुरुष हो ! हे तात ! हे गुरुदेव ! आपने कृपा करके मेरे सन्देह बड़ा भारी भ्रान्तिको भी सत्य बोधसे निवारण करके अभी मिटाय दिये हो ! इसवास्ते मैंने भी जाना कि— आप जीवोंको सुखदाता हो। पूर्वके सब भ्रम आपने मेरे मिटा दिये हो। धन्य-धन्य है ! आपके सत्य ज्ञानकी ! ॥ ८२ ॥

२. हम जाना कर्ता कोइ दूजा । ताते भरम बढ़ो बहु पूजा ॥८३॥

टीकाः— और शिष्य कहता हैः— अबोध अज्ञानवश पहिले हम तो ऐसा जानते या समझते रहे कि— चराचर जगत्‌को उत्पन्न करनेवाला सर्वशक्तिमान् कोई दूसरा ही जगत् कर्ता ब्रह्म, ईश्वरादि होंगे, उसीने हम सब जीव और जड़ पदार्थोंको बनाया होगा, ऐसा निश्चय करके मानते थे। इसीवास्ते भ्रान्ति बढ़ते-बढ़ते भ्रमकी पूँजी बहुत ही इकट्ठी हो गई थी। हमने उस कर्ताको मनसे बहुत पूजा या महत्त्व करके श्रेष्ठ मान रखा था, उसके लिये ध्यान, धारणा, पूजा, अर्चा, बन्दनादि भी हमने बहुत किये। उस भ्रमकी पूजासे सन्देह ही बढ़ी, और कुछ लाभ नहीं हुआ। अब आपके कृपासे यथार्थ जाननेमें आया कि— वह मिथ्या कल्पना-भूल ही थी। जगत्‌का कर्ता कोई नहीं, यह अनादि है ॥ ८३ ॥

३. कर्ता कारण जग बेहाला। अब मोहिं ज़ानि परो सब जाला ॥८४॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः— हे सद्गुरो ! मैं अकेला ही भ्रममें पड़ा था, यह बात नहीं। बल्कि सारा जगत् या संसारके मनुष्य सब ही उस कर्ता ब्रह्म-परमात्मादिके प्राप्ति करनेके लिये नाना भावना कर बेहाल वा परम दुःखी हो रहे हैं। जप, तप, व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, मूर्ति-पूजा, पाठ, होम, कर्म, उपासना, यम-नियमादि सहित अष्टाङ्ग योग, और ज्ञान इत्यादि

नाना साधनाएँ कर्ता परमेश्वरसे मिलनेके लिये ही हो रहे हैं या कर रहे हैं। उसी प्रकार मैं भी प्रथम जगत्‌में कर्ताके मानन्दीमें पड़के बेहाल था, तो अति दुःख पा रहा था। और आपके शरणमें आकर निर्णय न्यायकी सत्योपदेश सुनके उसे विचार किया, सो आपके कृपाके प्रतापसे अब मुझे वह सब मिथ्या भ्रम जाल, वाणी कल्पनाकी विस्तार भूल धोखा ही जान पड़ी है, यानी असार भ्रमकी जञ्जाल ही समझनेमें आई है कि, उसमें लगके जीवोंका कोई कल्याण नहीं है। अब ऐसा समझके कर्ता प्राप्तिके इच्छा मैंने छोड़ दिया है। व्यर्थ ही वाणीके मोह जालमें हम सब भूले पड़े थे। आपकी कृपा हुई, इसीसे वह भ्रम छूटी है ॥ ८४ ॥

४. तत्त्वमसिपद तीन कहाई। केहि विधि सो मोहिं देहु लखाई ॥८५॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः— और अब विनय यह है कि— तत्, त्वं, असि, को आपने वेद-वेदान्तकी सार तथा वही तीन पदोंकी मानन्दी जीवोंको बन्धन है, ऐसा कहे थे। सो तीन पद किस प्रकारसे है? उसके मानन्दी कैसे हुई? या कैसे होती है? किस तरहसे तत्त्वमसि बना? इसका भेद भी यथार्थ निर्णय करके मुझे लखा दीजिये! बतलायके समझा दीजिये! जिससे वह बन्धन भी मेरा छूट जाय ॥ ८५ ॥

५. कौनरूप तिहुँपदको कहिये। कौन नाम वाणीमों लहिये? ॥८६॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः— हे गुरो! तत्त्वमसि ये तीनों पदका रूप = आकार, प्रकार, चिह्न, स्वरूप, लक्षण कौन है? कैसा कहलाता है? सो कृपा करके कहिये? और वाणीमें किस प्रकारसे उसका वर्णन बोध होता है, वाणीमें कौनसा नामसे मिलता है? उसी तीनों पदोंका नाम-रूप वाणी-खानीमें कौन-कौनसा है? सो दया करके दरशाइये ॥ ८६ ॥

दोहाः—तत्त्वमसि पद तीन सो । केहि विधि जानी जाय ? ॥
(११) हौं अजान जानों नहीं । सतगुरु देहु लखाय ! ॥ ८७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता, शिष्य-प्रश्नका सारांश दिखलाते हैं:— शिष्य कहता है:— हे पारखी गुरुदेव ! तत्त्वमसि इसमें तीन पद हैं, सो क्या है ? कैसा है ? किस प्रकारसे वह बना ? किसने बनाया ? इसका पूरा भेद किस प्रकारसे मैं जानूँ ? कैसे जाना जायगा ? इसके बारेमें मैं बिलकुल अनजान हूँ, असली मर्मको मैं कुछ नहीं जानता । इसलिये हे सद्गुरु ! मुझ अज्ञ शिष्यपर दया करके आप अब और इसका रहस्य भी लखा दीजिये । तीनों पदोंके गुण-लक्षण एक एक करके समझा दीजिये, यही मेरी प्रार्थना है ॥ ८७ ॥

॥ ५ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—५ ॥ खण्ड १० ॥

॥ चौपाई— मण्डल भाग—१२ ॥ चौ० १ से ८ तक है ॥

१. हे शिष्य ! तुम बड़ भागी होई । कहौं विचार सकल विधि सोई ॥८८॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—हे प्रेमी शिष्य ! तुम बड़े भाग्यवान् जिज्ञासु हो । पुण्य प्रतापसे ही ऐसी सुबुद्धि कल्याणकी चाहना उदय होती है । तत्त्वमस्यादि बन्धनोंको परखके त्याग करनेकी तुम्हारेमें जिज्ञासा हुई है, सो सराहनीय है । सत्यनिर्णयको समझनेकी श्रद्धा सबको नहीं होती है । इसीवास्ते मैं तुम्हारी तारीफ करता हूँ । अब मैं तुम्हें गुरु-विचारको विधिपूर्वक सब प्रकारसे निर्णय करके कहता हूँ, जो तुमने पूछा है, सोई बातका विचार सब तरहसे कहके समझाऊँगा ॥ ८८ ॥

२. मोहिं बोलनकी सरधा नाहीं । तोर प्रेमवश बोलों भाई ! ॥८९॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— हे शिष्य ! वैसे तो स्वरूपस्थितिको छोड़कर प्रवृत्तिमें आके कुछ कहने-सुनने, बोलनेकी मुझे, श्रद्धा = चाह, इच्छा, प्रसन्नतादि नहीं है । परन्तु, तुम्हारे प्रेम भक्ति, सद्भाव,

आज्ञाकारिता देखके बस, तुम्हारे हित, कल्याणकी शुभ भावनासे ही हे भाई शिष्य! अब मैं कुछ बोलूँगा, तुम्हारा समाधान करूँगा। अर्थात् प्रवृत्तिमें झुकाव न होते हुये भी हे भाई! तुम्हारे प्रेमवश ही मैं कुछ बोल रहा हूँ। जिसमें तुम्हारा कल्याण हो, यही भाव है। नहीं तो मुझे बोलनेकी भी कुछ श्रद्धा वा चाह नहीं है। सिर्फ जीवोंका हित हो, यह सोचके ही बोलता हूँ ॥ ८६ ॥

३. कविता होउँ न भाँड़ कहाऊँ। बकवादीके निकट न जाऊँ॥ ९० ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— इसमें भी अन्य प्रपञ्चके भावका लेशमात्र भी मुझमें नहीं है। मैं पद रचना करके या कवित्तादि छन्द-प्रबन्धादि जोड़के कवीश्वर भी होना नहीं चाहता हूँ, और बड़ाभारी लेखक, व्याख्यान-वाचस्पति, पण्डित, शास्त्री, महामहोपाध्याय इत्यादि उपाधिवाला बड़ा भी होनेकी इच्छा नहीं है, और दूसरेकी मिथ्या प्रशंसा, स्तुति, बड़ाई, महत्त्व आदि वर्णन करके स्वार्थ सिद्ध करनेवाले भाट, चारण, किन्नर, गन्धर्व और भाँड़ ऐसे वाक्चतुर भी मैं कहलाना नहीं चाहता हूँ। उस तरफ मेरा लक्ष ही नहीं है और बकवादी, पक्षपाती, हठी, शठी, अविचारी जो कि, वेद, शास्त्र, पुराण, कुरानादि किसी एक मतवादको पकड़ करके वाद-विवाद करते हैं। विद्वत्ताके अभिमानसे झूठ ही बकवाद करते हैं, अण्ट-सण्ट बकते-झकते चकपक करते रहते हैं। ऐसे धूर्त बकवादी मतवादियोंके तो मैं नजदीकमें भी नहीं जाता। और अपने समीप साथमें भी उन्हें मैं नहीं रखता। मताभिमानी उन्मत्त जनोंके निकटमें तो मैं कभी भी जाता नहीं। क्योंकि, मुझको वैसोंसे कुछ प्रयोजन ही नहीं रहती। निराश वर्तमानमें निवृत्ति पूर्वक ही हमारा रहना होता है ॥ ९० ॥

४. गुरुवाई औ मान बड़ाई। ऋद्धि सिद्धि सब जात नशाई ॥ ९१ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— और उपदेशक, महोपदेशक, मण्ड-

लेश्वर, महामण्डलेश्वर गुरु, जगत्गुरु बनके गुरुवाई करके बहुत सारे शिष्य-शाखा बनायके संसारमें प्रख्यात होनेकी और बहुत प्रकारसे दुनियाँमें मान, सम्मान, बड़ाई, महिमा, महात्म्य आदि जोर-शोरसे फैलानेकी, महान् कहलानेकी इस तरफ भी मेरी किञ्चित् भी अभिलाषा नहीं है । यह सब तो गुरुवा लोगोंका काम है । और नव-निद्धि, अष्ट-सिद्धि, जो माने हैं, मन्त्र-सामर्थ्य, करामात आदि सो सब तो मिथ्या भ्रम कल्पनामात्र है । उसमें जो-जो योगी, ज्ञानी भक्त आदि लगे-लगाये, सो सब मुक्तिपदसे नशाय गये, नष्ट-भ्रष्ट, पतित हो गये । गुरुवा लोगोंने उस ऋद्धि-सिद्धिकी बड़ा मानन्दी करके खूब बड़ाई प्रशंसा किये हैं । परन्तु वे भ्रमसे मिथ्या सिद्धान्तको मानके विनाश हो गये । जो उसमें लगते हैं, वे विनाशके मार्गमें ही पड़के बह जाते हैं । यह हमारा सिद्धान्त नहीं है, अतएव तुम उसमें कभी नहीं लगना । पारखी साधु-गुरुने उसे त्याज्य बताया है । बीजकमें कहा है:—

साखीः— "सिद्ध भया तो क्या भया ? चहुँदिश फूटी वाश ॥
अन्तर वाके बीज है । फिर जामनकी आश ॥" बीजक, सा० २२२ ॥
"कथनी कथै अगाधकी । ज्यों अकाशको गिद्ध ॥
चारा वाके भूमिपर । उड़ै भया क्या सिद्ध ? ॥" पं० प्र० टक० सा० ३१६॥

इसवास्ते गुरुवाई और मान, बड़ाई, ऋद्धि-सिद्धि इन कल्पनामें लगनेवाले सब मनुष्य-पदसे नशायके चौरासी योनियोंमें जाते हैं । हम तो इससे सदा न्यारे ही रहते हैं । हे जिज्ञासुओ ! तुम लोग भी इसमें कदापि नहीं लगना ॥ ६१ ॥

५. इनमें सकल जगत अरुझाना । कालकलाको मर्म न जाना ॥ ६२ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:— हे शिष्य ! जगत्के सकल नरजीव जो अबोध हैं, वे सब तो इन्हींमें अर्थात् कविताई, भाँड़, बकवाद, गुरुवाई, मान, बड़ाई, ऋद्धि-सिद्धिके और अनेकों

आशा-भरोसादि मानन्दीके महाजालोंमें ही बिना पारख अरुझ गये और अरुझ रहे हैं। काल गुरुवा लोगोंके कला-कौशल मन कल्पनाका भेद और काल स्त्रीकी विषय कलाका मर्म कि, यही जीवोंको प्रबल दुःख भोगानेवाला बन्धन है। सो पहिचान किसीने भी जाना ही नहीं। इसलिये काल जालोंमें ही सब योगी-भोगी आदि फँस गये। बिना विचार ऐसे ही दुर्दशामें पड़े हैं। इसी मोटी, झीनी माया जालोंमें ज्ञानी, अज्ञानी, विज्ञानी, सब कोई अरुझाये हैं। कालके कल्पनादि फन्दा उस कलाका मर्म गुरु पारख बिना कोई नहीं जानते हैं॥ ९२॥

६. मोको नहिं इन सबते काजा। तुम्हरी भक्तिवश कहौं उपराजा॥९३॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और मैं तो गुरुबोध पारखपदमें स्थिर रहता हूँ! इसलिये मुझे तो इन सब प्रपञ्चोंसे कोई काम-काज, वा मतलब, प्रयोज़न या आवश्यकता नहीं है। मैं तो सदा इससे दूर ही रहता हूँ! और उपराजा = हे शिष्य! तुम्हारे गुरुभक्ति, सद्भाव, प्रेम निष्ठाको देख करके भक्तिके वश होके मैं तुम्हें सत-शिक्षा कहता हूँ! अब मैं तुम्हें प्रश्नका उत्तरमें यथार्थ भेद दरशायके सत्य उपदेश कहता हूँ, सो ध्यानपूर्वक सुनो!॥ ९३॥

७. तत्पद सो ईश्वर कहलाई। त्वंपद नाम जगत जिव पाई॥९४॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— तत्त्वमसिका भेद ऐसा है कि— प्रथम तो तत्पद सोई ईश्वर, षट्गुण ऐश्वर्य संयुक्त सर्वशक्तिमान् कहलाता है। अर्थात् 'तत्' का यह अर्थ हुआ। और दूसरा 'त्वंपद' यह नाम जगत्के अज्ञानी जीवोंने पाये हैं। जीवको अल्पशक्तिमान् त्वं, एकदेशी बद्ध माने हैं। यानी तत्पद ईश्वरके नाममें पड़ा, त्वंपद ज़गत् जीवोंके नाम पड़ा है॥ ९४॥

८. असिपद नाम ब्रह्म अविनाशी। आतम अचल सहज सुखराशी॥९५॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और ब्रह्मको अविनाशी मानके उसे 'असिपद' इस नामसे जाहिर किये हैं। और उसीको जड़-चेतनमें

सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक आत्मा-परमात्माका मिलाप सहजे-सहज आकाशवत् निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, अचल, आनन्दके समुद्र समान सुखराशी सच्चिदानन्दघन परब्रह्म माने हैं। यह तत्, त्वं, दोनोंके मिलान महासन्धि है। इसीको ही असिपदार्थ माने हैं ॥९५॥

दोहाः—तत्पद सोई ज्ञान है। त्वंपद है अज्ञान ॥
(१२) असिपद एकता ब्रह्म है। जासों कहत विज्ञान ॥ ९६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता, सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य! तत्पदवाच्य ईश्वर सोई ज्ञानस्वरूप महाचैतन्य माने हैं। तथा त्वंपदवाच्य जीव सोई अज्ञान, अविद्या वेष्टित नानात्व विकार-युक्त अंश अल्प-चेतन देहोपाधि संयुक्त एकदेशी माने हैं। और उन दोनोंके एकता असिपद लक्षांश ग्रहीत अद्वैत एक ब्रह्म आकाशा-वत् माने हैं। जिसको वेदान्ती लोग विज्ञान, निर्गुण, निरञ्जन, निरा-कार कहते हैं। यही तत्त्वमसि तीनपदोंका मोटा-मोटी नाम, रूप एवं लक्षण कहलाता है। ऐसे ही गुरुवा लोगोंने मानन्दी किये हैं, सो जानो ॥ ९६ ॥

॥ ६ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—६ ॥ खण्ड ११ ॥
॥ चौपाई—मण्डल भाग—१३ ॥ चौ० १ से ४ तक है ॥

१. हे गुरु! तुम हो दीनदयाला! मेटेउ सकल मोर उरशाला ॥९७॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता शिष्यका छठवाँ प्रश्न दिखलाते हैं। सद्गुरुने तत्त्वमसिके संक्षिप्त भेद बतानेके पश्चात् और भी पूरा भेद जाननेकी इच्छा हुई, तब विनयपूर्वक शिष्यने यह प्रश्न किया कि— हे सद्गुरु देव! आप सर्वश्रेष्ठ दीनदयालु कृपालु हो। हमारे समान दीन, हीन, मलीन, गरीब जीवोंपर महान् दया दृष्टि करनेवाले दीनजन-रक्षक आप हो। मेरे हृदयमें जो सन्देह शूलके समान चुभके दुःख दे रहा था। उसे बोधरूपी चिमटासे पकड़के उखाड़कर संशय जनित दुःखको मिटायकर मुझे सुखी किये हो। पूर्वके मेरे सकल

उरके शूल मिटा दिये हो। बलिहारी है आपके बोधकी ! ॥ ९७ ॥

२. इनके नाम-रूप दिखलाओ। ठौर ठिकाना मोहिं बताओ ॥९८॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः—हे गुरो ! अब मुझे इन तीनों पदोंका पूरा ही सर्वाङ्ग नाम, रूप, गुण, ठीक-ठीक जाननेकी अभिलाषा हो रही है, सो भी आप मुझपर ऐसे ही कृपा करके दिखला दीजिये ! और नाम-रूपके साथ-साथ उन तीनों पदोंकी ठौर, स्थिति, ठिकाना या ठहराव कहाँ-कहाँपर है ? सो भेद भी मुझे बता दीजिये ! लखा दीजिये ! ॥ ९८ ॥

३. कौन ठाम ईश्वरको कहिये ?। कौन ठाम जगत जिव लहिये ? ॥९९॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः— उस परमेश्वरको किस ठिकाने या किस जगहपर रहनेवाला कहते हैं। ईश्वर किस भूमिकामें सदा रहता है ? और संसारी अज्ञानी जगत् जीवको ठहरनेकी भूमिकारूप ठाव, गाँव, मुकाम किस जगहपर है ? यानी कौन ठिकानेमें जीव जगत्में प्राप्त होते हैं ? अर्थात् जीव कहाँ ठहरते हैं ? तथा ईश्वर कहाँपर ठहरता है ? इसका भेद आप कहिये ! ॥ ९९ ॥

४. कौन ठाम आतम कहलाई ?। सकल भेद मोहिं देहु बताई ॥१००॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः— और आत्मा वा ब्रह्म किस ठिकाने रहनेवाला कहलाता है ? आत्माका निवास-स्थान कहाँपर है ? कौन ठाममें आत्माका बासा कहा जाता है। इन सबोंका सकल या सम्पूर्ण भेद खोल-खोलके एक-एक करके मुझे बता दीजिये ! जिससे मुझे सत्यासत्यका बोध यथार्थ होवे, सोई कृपादृष्टि कीजिये ! ॥ १०० ॥

दोहाः—तुम सब लायक परमगुरु ! मैं अजान मतिहीन ॥
(१३) शरण आयेके लाज है। सकल बतावहु चीन्ह ॥१०१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता, शिष्य प्रश्नका सारांश दोहामें बतलाते हैं। शिष्य कहता हैः—हे परम पारखी सद्गुरो ! आप सब प्रकारसे सद्गुण

सम्पन्न जीवन्मुक्तिके योग्य अधिकारी हो। इसवास्ते सब विधि पूजा करने लायक, इष्ट-श्रेष्ठ, महान् सत्यज्ञानी पारख बोधदाता, गुरुदेव हो! और हम नालायक सत्य-झूठको ठीक-ठीकसे न जानने-वाले अजान, अज्ञान, सद्बुद्धिसे रहित मतिहीन, मनमलीन, अति-दीन बने हैं। सत्यबोध प्राप्तिकी चाहनासे बुद्धिकी हीनताको मिटानेके लिये सब प्रकारसे एक आपके ही आधार पकड़के चरण-शरणमें आयके पड़े हैं। अब हमारी लज्जा रखना आपके ही हाथमें है। जैसे आप समझावेंगे, वैसे ही हमें बोध प्राप्त होगा। अतएव भेषकी लाज शिष्यकी पत रखना आपके ऊपर ही निर्भर है। हे प्रभु! तत्त्वमसिके पूर्ण खुलासायुक्त सकल चिह्न, लक्षण, अब दया करके और भी बता दीजिये! अबोधपनाको मिटाकर मुझ शरणागत-की लाज-रक्षा कर दीजिये! ॥ १०१ ॥

॥ ६ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—६ ॥ खण्ड १२ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—१४ ॥ चौ० १ से १७ तक है ॥

१. सुनहु बाल तुम सकल विचारा। एक-एक सब कहौं निरुवारा ॥१०२॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे बालक! अबोध शिष्य! तुम्हारे पूछे हुए बातका एक-एक निर्णय करके मैं सब कह देता हूँ! सो सकल विचारको अब तुम ध्यानपूर्वक सुनो! और साथ ही मनमें गुनते या मनन करते भी जाओ, तब तुम्हें पूरा बोध हो जायगा। जैसा-जैसा मैं एक-एकका निर्णय करता जाता हूँ! तैसा-तैसा तुम भी विचार करते जाओ। इस तरह सम्पूर्ण तुम्हें समझ हो जायगी ॥ १०२ ॥

२. ब्रह्माण्ड बास ब्रह्माण्ड अभिमानी। ताको ईश सब कहत बखानी ॥१०३॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और बाहर पञ्चतत्त्वरूप ब्रह्माण्डमें निवास करनेवाला और सम्पूर्ण चराचर ब्रह्माण्डका मैं अधिपति या सर्वेसर्वा मालिक हूँ! मेरेसे बढ़के दूसरा कोई नहीं है। मैं सर्व-

शक्तिमान् विराट पुरुष हूँ, वाणीके प्रमाणसे ऐसे ब्रह्माण्डके अभिमानी होनेवाला उस पुरुष विशेषको सब कोई पण्डित लोग सर्वेश्वर नामसे कहते हैं। यही बात वेद-वेदान्तमें भी वर्णन किया है, और ज्ञानी लोग सबोंने भी ब्रह्माण्ड निवासी, ब्रह्माण्डके अभिमानीको ही ईश्वर कहके वर्णन किये हैं ॥ १०३ ॥

३. पिण्डबास पिण्ड अभिमानी । ताको जीव कहत सब ज्ञानी ॥१०४॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और पिण्डरूप तत्त्वोंके कार्यसे बना हुआ स्थूल शरीरमें निवास करनेवाले तथा पिण्ड = देह, गेह, स्त्री, पुत्र, धन, धरादि पञ्चविषयोंके अभिमानी, विषयासक्त, मैं वर्ण, आश्रमी, जातिविशेष हूँ, बड़ा आदमी हूँ। ऐसे-ऐसे हङ्कार करनेवाले देहधारी उसीको सब ज्ञानी लोग अल्पज्ञ जीव नामसे कहते-पुकारते हैं। और अमर-ज्ञानस्वरूप चैतन्य जीव होनेसे वासनावश पिण्डमें ही निवास करके पिण्डका ही अभिमान करते रहते हैं। इसलिये ज्ञानियोंने सर्वसम्मतिसे उसे जीव नामसे कहा है ॥ १०४ ॥

४. दोऊका वाचांश मिटावै । गहि लक्षांश एकता पावै ॥ १०५ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— फिर ईश्वर और जीव, ब्रह्माण्ड और पिण्ड इन दोनोंका नाम, रूपकी, वाच्यांश = वाणीसे जाननेमें आनेवाला भाग, स्थूल भागको मिटाय देवे, या उसे हटायके छोड़ देवे। और उन दोनोंके बीचमें लक्षांशको ग्रहण करै कि— ब्रह्माण्डका अभिमानी है, सो भी चैतन्य है, तथा पिण्डका अभिमानी है, सो भी चैतन्य है, ऐसे दोनोंके चैतन्यत्त्वमें लक्ष करनेसे सारांशमें एकता प्राप्त हो जाती है। वहाँ भिन्न भाव कुछ भी दिखाई नहीं देता है। वाच्यांशका द्वैत मिटनेसे लक्षांशका एक अद्वैत अभेद दृष्टिमात्र ही रह जाती है ॥ १०५ ॥

५. सोई असिपद ब्रह्मानन्दा । जहाँ नहिं द्वैत अद्वैतको फन्दा ॥१०६॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और जीव-ईश्वरका भेद-भाव

जहाँपर मिट गया, सोई असिपदको ब्रह्म सच्चिदानन्दघन, निराकार, निर्विकार, निरञ्जन कहते हैं। असिपद कैवल्य ब्रह्मानन्दकी नित्य स्थिति है। वह मन, बुद्धि, वाणीसे परे अवाच्य है। जहाँपर द्वैत, अद्वैत कथन वाणीका विलास कुछ भी नहीं है। और मायाका कोई भी फन्दा वहाँपर नहीं रहता है। सब जगत् बन्धन त्रिगुण घेरासे रहित ब्रह्म रहता है। तहाँ कहा हैः— "गुणातीतं त्रिगुण रहितं तत्त्वमस्यादि लक्षम्"— ऐसे असिपदका महत्त्व वर्णन किये हैं। ब्रह्मकी विशेषता दरशाया है, सो जानो ॥ १०६ ॥

६. ब्रह्माण्ड ठौर ईश्वरको कहिये। पिण्ड ठौर जीवको लहिये॥१०७॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे शिष्य! ईश्वरका ठौर— स्थिति या ठहरनेकी भूमिका बाहर ब्रह्माण्डमें कहा है कि— ईश्वर सदा ब्रह्माण्डमें ही ठहरा रहता है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि, ईश्वरको महान् विराट कथन करके उसके भूमिका भी बड़ा ही बताये हैं, और जीवकी स्थितिरूप, ठौर पिण्ड=देहमें संकुचित, सीमित करके बतलाये हैं। जीवको वासना करके रहनेकी भूमिका सदा शरीर ही प्राप्त होता रहता है। जीव पिण्डमें ही ठहरता है, ऐसा वर्णन किये हैं ॥ १०७ ॥

७. असिपद ठौर आनन्द बखानी। जहाँ कछु कहत बनै नहिं बानी॥१०८॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और पिण्ड-ब्रह्माण्डमें जहाँ कहीं भी आनन्द प्रगट होता है, उसी ठौरमें असिपद ब्रह्मका ठहराव या स्थिति होता रहता है, ऐसा वर्णन किये हैं कि— आनन्दको छोड़कर ब्रह्म और कहीं भी ठहरता नहीं। सच्चिदानन्द ब्रह्मको असिपदमें सुख स्वरूप ठहराये हैं। वाणी द्वारा वह सुखका वर्णन कुछ कहते बनता ही नहीं, तो वह अनुभवगम्य है, अकथनीय है, और विशेष वहाँका हाल कुछ भी वाणीसे कहा नहीं जा सकता है; क्योंकि, वाणीका वहाँतक पहुँच ही नहीं। ब्रह्म निर्विकल्प है। ऐसा महिमा बढ़ाये हैं ॥ १०८ ॥

८. अब इनके तोहिं रूप बताऊँ। व्यष्टि समष्टि सकलौं समझाऊँ ॥१०९॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— हे शिष्य ! अब इन तीन पदोंके स्वरूप गुरुवा लोगोंने जैसा कायम किया है, वैसा ही यहाँपर मैं तुम्हें बतलाता हूँ। और इनके स्वरूपके भीतर ही जो-जो बात है, उन्हें एवं व्यष्टि=न्यारे-न्यारे भाग विभागोंको तथा समष्टि=सबको समेटके एक बनाया हुआ ब्रह्म इसका सकल भेद भी तुम्हें समझा देता हूँ ! व्यष्टि-समष्टिका माना हुआ रूप भी दरशा देता हूँ ! जिससे तुम्हें पूरा ही हाल मालूम हो जायगा। सो चित्त लगाके श्रवण करते जाओ ॥ १०९ ॥

९. ज्ञानी सो तत्पद कहलावै। अज्ञानी त्वंपद मन भावै ॥ ११० ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— ज्ञानी=सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, सर्वशक्तिमान्, महा चैतन्य सोई तत्पदमें ईश्वर कहलाता है। वेद वाणीरूप ब्रह्माण्डमें उसका ठहराव होता है। षट्गुण ऐश्वर्य संयुक्त होनेसे ही उसे ईश्वर कहते हैं। तत्पदका अभिमानी ज्ञानी कहलाता है। और अज्ञानी, अल्पज्ञ, अल्पद्रष्टा, शक्तिहीन, परिछिन्न, अंश, चैतन्य सोई त्वंपदमें जीव होता है। उसके मनमें अज्ञान करके नाना विकारी भाव-कुभाव उत्पन्न होते रहते हैं। पिण्डमें ठहरके विषयादिका अभिमान किया करता है। ऐश्वर्यहीन दरिद्र रहता है। उसे अज्ञानका कार्य ही अच्छा लगता है। यही त्वंपदका लक्षण है ॥ ११० ॥

१०. विज्ञानीको असिपद कहिये। परमहंस ऊँचा पद लहिये ॥१११॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— और जिसने ज्ञान-अज्ञान दोनों मार्गोंको छोड़के तीसरा विज्ञान मार्गको ग्रहण किया, उस विज्ञानी या ब्रह्मज्ञानीको असिपदमें सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप ही कहते हैं। क्योंकि, "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"— अर्थात् ब्रह्मको जाननेवाला स्वयं ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है, ऐसा कहा है। अतएव कोई ब्रह्म-

ज्ञानी विज्ञानपदको धारणा करते-करते बाल, पिशाच, मूक, जड़ और उन्मत्त दशाको बनाके परमहंस हो जाते हैं। तनोबदनकी सुधि-बुधि भुलाके गरगाफ होते हैं। उन्हें सबसे ऊँचापदको प्राप्त किये हुये मुक्त, सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ, महान-आत्मा बताके गुरुवा लोगोंने उनका खूब विशेष गुण गाया है। असिपदमें परमहंस नामक उच्चपद प्राप्त होनेको कहा है ॥ १११ ॥

११. तत्पद जैसा सिन्धु बखाना। त्वंपद कूप तड़ाग विधि नाना ॥११२॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:— हे शिष्य! तीनों पदके स्वरूप दृष्टान्त सहित जैसा बताये हैं, सो सुनो! जैसा समुद्रके आकार-प्रकार बड़ा विस्तारवाला महान होता है। उसके गहराईकी थाह भी नहीं मिलती है, अथाह रहता है। समुद्रमें कितना पानी है, इसका कुछ पार पाया नहीं जा सकता है, तो अपार होता है। गहीर-गम्भीर महासागरके समान ही तत्पदवाच्य ईश्वरका भी स्वरूप अगम, अपार, अथाह, महान है। वेदान्तमें ऐसा वर्णन किया गया है। और कूप = जमीनके नीचे सीधी गहराईमें खोदके पानी निकाला हुआ कुआँको कहते हैं। तड़ाग = लम्बी-चौड़ी जमीन खोदके गड्ढा बनाय, पानी जमा किया हुआ तालाब, सरोवर, कुण्ड, झीलको कहते हैं। बावड़ी = सीढ़ीदार बनाया हुआ कुआँ, श्रोत, पोखरी, छोटे-छोटे गड्ढे, नदी, नाला, खोला, महानदी, ताल, इत्यादि बहुविधि प्रकारसे नाना स्थानोंमें कम-ज्यादा पानी एकत्रित रहता है। उनके आकार-प्रकारमें विभिन्नता अल्प देशमें सीमित रहता है, सब कोई उसके हदको जान पाते हैं। तैसे ही त्वंपदवाच्य जीवका स्वरूप भी नाना, एकदेशी, छोटा, देह बन्धनयुक्त विकारवान् माने हैं ॥ ११२ ॥

१२. असिपद जैसा दुनहुमें पानी। यह सिद्धान्त करत विज्ञानी ॥११३॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:—और समुद्र, नदी, नाला, कुआँ तालाबके

मध्य भागमें दृष्टि करिये, सो उन दोनोंमें पानी तो एक समान ही अवस्थित है। बाहरी छोटा-बड़ा आकार मात्रमें देखनेमें फरक है, किन्तु, पानीमें कुछ भी फरक नहीं है। द्रवत्त्व, शीतलत्त्व, मधुरत्त्व, ये मुख्य गुण पानीमें एक समान वर्तमान रहता है। तैसे ही असिपदका भी स्वरूप है। ईश्वरकी महानता, सर्वज्ञता, पूर्णताको भी छोड़ देना, तथा जीवकी क्षुद्रता, अल्पज्ञता, अपूर्णताको भी छोड़ देना, दोनोंके मध्य भागमें लक्ष करना, तो चेतन एक समान ही जीव-ईश्वरमें मौजूद है। सोई चेतन असिपद ब्रह्म है। पानीवत् उन दोनोंमें आत्मा एक समान ही व्यापक है। सो असङ्ग, निर्विकार भावसे सर्वत्र रह रहा है। यही एकता अद्वैत सिद्धान्तको वेदान्ती लोग कथन करके कहते और मानते हैं ॥ ११३ ॥

१३. नाम रूप मिथ्या कर जानी। आतम एक निश्चय जस पानी ॥११४॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और नाम-रूपको मिथ्या करके जाननेमें वेदान्तियोंने भाग, त्याग, लक्षणाका प्रयोग किया है। इसमें एक छोटासा दृष्टान्त आया है, सो सुनिये !—

दृष्टान्तः— कोई एक महा भाग्यवान् धनपति महा सेठ देवदत्त नामवाला मनुष्य काशी नगरीमें रहता था। और वह बड़ा दानी, धर्मात्मा, यशस्वी, पुण्य-भागी था। जो कोई मनुष्य उसके पासमें जाकर जो कुछ भी माँगते थे, तो देवदत्त उन्हें यथेच्छ यानी इच्छानुसार वस्तु देकर विदा करता था। इस प्रकार कईएक वर्ष व्यतीय हुये। इस कारण उसके सुयस, कीर्ति, चारों दिशाओंमें दूर-दूर तक फैल गई थी। फिर कालान्तरमें ऐसा समय उपस्थित हुआ कि— उसका दिवाला उठ गया, धन-सम्पत्ति-ऐश्वर्य सब नाश हो गया। आग लग गया, तो भस्मसात् हो गई, परिवार भी बहुतेरे विनाश हुये। तब उसको बड़ा वैराग्य उत्पन्न हुआ। तब वह देवदत्त संन्यासी-साधु होकर देश-देशान्तरोंमें घूमने-फिरने लगा। घर-घरमें भिक्षा माँगके खाने लगा। कोई एक दूर देशमें वह किसी वक्त भ्रमण करते-करते

जा पहुँचा। वहाँके लोगोंने उससे पूछा कि, तू कौन है ? कहाँका रहनेवाला है ? उत्तरमें उसने कहा कि, मैं काशी निवासी देवदत्त हूँ ! तब सब लोगोंने उसके मजाक उड़ाये, हँसी करके थप्पड़ भी लगा दिये। वे बोले कि— अरे ! वह देवदत्त तो महाधनवान् काशी नगरीका महासेठ धर्मात्मा है। वह तो स्वयं याचकोंको इच्छापूर्ति करता है, फिर भला ! ऐसा दरिद्र बनके काहेको भीख माँगता फिरेगा ? तू कोई दूसरा ही बहुरूपिया होगा, जा-जा रास्ता नाप, इत्यादि प्रकारसे कहके तुच्छता किये। उनमेंसे कोई एक बुद्धिमान् सज्जनने उसके स्वरूपको देखा और पूर्वके देश, काल, सुख-सम्पत्ति वैभवको भी छोड़ा, तथा अब पश्चात् वर्तमानकी देश, काल, दुःख, विपत्ति, दरिद्रतादिको भी छोड़ा, फिर उसके देहके स्वरूपपर लक्ष किया, गौरसे देखा, फिर तो वह ही देवदत्त निश्चय करके ठहरा ॥ तैसे ही ब्रह्मस्वरूपके ज्ञानमें इसका सिद्धान्त घटाया है। तालाब, कूआँ, बावली आदि छोटे जलशयोंके नाम रूप, और बड़ा विस्तारका जलाशय समुद्रके नाम-रूप जो हैं, सो छोटे-बड़े आकार-प्रकाररूप एवं तालाब, समुद्र कहना, यह नाम मध्यस्थ कल्पित मिथ्या करके जानो। नाम-रूप भागको त्याग करके उन दोनोंमें अवस्थित पानीपर लक्ष लगाओ, तो पानी दोनोंमें एक है, उसमें भिन्न-भाव तो कुछ है नहीं। इसी प्रकार ईश्वरकी सर्वज्ञता, महानता, निर्विकार, व्यापकता-की विशेष-भावका जो भाग है, उसे भी त्याग देना। और जीवोंकी अल्पज्ञता, लघुता, सहविकार, एकदेशी, नानात्त्व भावकी जो भाग है, इसे भी त्याग देना, फिर दोनोंके मध्यस्वरूपमें लक्षणा घटाना, तहाँ पानीवत् चैतन्य आत्मा जीव-ईश्वर इन दोनोंमें एक ही है, यह निश्चय हो जायगा। नाम-रूप मिथ्या, एक आत्मा सत्य; यही ब्रह्म-ज्ञानियोंने दृढ़ निश्चय किये हैं। जैसे सुवर्णके विकार आभूषण सब सुवर्ण ही हैं। मिट्टीके विकार घड़े आदि सब मिट्टी ही हैं, तैसे ही ब्रह्मके विकार सर्व जगत् भी ब्रह्मस्वरूप ही है। नाम-रूप उपाधि

मिथ्या, सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप ये सत्य "सर्वंखल्विदं ब्रह्म नेहनानास्ति-किञ्चन", ऐसा जानके या मानके वेदान्तियोंने निश्चय किये हैं और कराते हैं ॥ ११४ ॥

१४. यामें दोयें विधि परमाना। एक परोक्ष विशेषहि ज्ञाना ॥११५॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और इन तीन पदोंमें भी विधिपूर्वक दो-दो प्रकारसे विभाग करके प्रमाण किये हैं। परोक्ष-अपरोक्ष ऐसे दो तरहसे ज्ञानादिका प्रकाश होता है। तहाँ दूसरे या पराये लोगोंके तरफसे कह सुनके होनेवाला ज्ञान, गुरुमुखसे उपदेश श्रवण करके हुआ ज्ञान, और शास्त्रोंको पठन-पाठन करके बाह्य साधना द्वारा प्राप्त किया हुआ ज्ञान-बोध जो है, सो पहला परोक्षमें विशेष प्रकारका ज्ञान कहलाता है। क्योंकि बाहर पढ़-सुनकर ही विशेष बातें जानने-समझनेमें आती हैं। अतएव एक तो परोक्ष ज्ञान ही विशेष होता है ॥११५॥

१५. दूजा सो अपरोक्ष कहाई। सो समान ज्ञान है भाई! ॥११६॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और दूसरा अपरोक्ष ज्ञान जो है, सो स्वयं अनुभव जनित, स्वतः ही हृदयमें प्रकाश होनेवाला ज्ञान, अपने आप होनेवाला स्फुरणा, कल्पना, कामना, चाहना, दूसरेके सम्बन्ध बिना स्वयमेव उदय होनेवाला ज्ञान वही 'अपरोक्ष' नामक शब्दसे कहलाता है या ऐसा कहा जाता है। हे भाई शिष्य! सो एक सामान्य साधारण ज्ञान है। उसमें विशेष भाव कुछ रहता नहीं। इसीसे सामान्य कहलाता है। अर्थात् दूसरा जो अपरोक्ष ज्ञान कहलाता है, सो समानज्ञान है। उसमें एक समान साक्षी भाव ही सदा बना रहता है ॥ ११६ ॥

१६. द्वै विधि ज्ञान द्वै विधि अज्ञाना। द्वै विधिको विज्ञान बखाना॥११७॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और फिर समान-विशेष या अपरोक्ष-परोक्ष, यही दुइ प्रकारसे तत्पदकी ज्ञान मार्गका भी दो तरफ विकाश हुआ है। तथा त्वंपदके अज्ञान मार्गका भी समान-विशेष दो तरहसे

ही विस्तार भया है। और तैसेही परोक्ष-अपरोक्ष ये दुई तरहसे असिपदके विज्ञान मार्गका भी वर्णन किये हैं। अर्थात् ज्ञान, अज्ञान और विज्ञान ये तीनों ही अपरोक्ष-समान भाग, और परोक्ष-विशेष भाग, यही दो-दो प्रकारसे विस्तार भये हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ११७ ॥

१७. निरउपाधि सो अपरोक्षहि ज्ञाना। सहउपाधि सो परोक्ष बखाना ११८

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और अपरोक्ष ज्ञान जो है, सो समान अनुभवसे प्रकाशित होनेसे वह निरउपाधि = सब तरहके उपाधि, चञ्चलता, झंझटसे रहित रहता है। वहाँ सिर्फ जानना मात्र होता है, बाहर कहना-सुनना होता नहीं। तैसेही परोक्ष ज्ञानको उपाधि सहित वर्णन किये हैं। क्योंकि बहिर्वृत्ति करके कहना, सुनना, रटना, याद करना-कराना, यह कार्य विशेष चञ्चलता लेके ही होती है। इसीसे उसमें उपाधि लगी रहती है। इस तरह त्रिपदमें दो-दो प्रकारके भेद उपाधियुक्त परोक्ष, और उपाधि रहित अपरोक्ष ज्ञानका भिन्न-भिन्न दर्जा, श्रेणी वेदान्ती गुरुवा लोगोंने जो माने हैं, सो तुम्हें यहाँ संक्षेपमें बता दिया हूँ। सो इसे तुम भी अच्छी तरहसे जान लो ॥ ११८ ॥

दोहाः—वेद प्रमाण महावाक्यको। कहेउँ सकल परमान ॥
(१४) अब जो शंका करो शिष्य ! सो सब कहौं बखान ॥११९॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता श्रीसद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे जिज्ञासु शिष्य ! तत्त्वमसि महावाक्य यह जो है, सो वेद प्रमाणसे वर्णन भया है। इसका अर्थ नामरूपादि सकल भेद संक्षेपमें वेद, वेदान्तादिके प्रमाणसे मैंने कह दिया हूँ। "तत् = वह-ईश्वर, त्वं = तू-जीव, असि = है", अर्थात् हे जीव ! तू वही ईश्वर वा ब्रह्मरूप ही है, ऐसा तू जान ! सोई संक्षेपमें—"तू वह ब्रह्म है" यह बतानेके लिये बहुत प्रक्रिया बाँधे हैं। महावाक्यके अर्थका सार तो मैं बता चुका

हूँ। अब हे शिष्य ! इसमें तुम्हें जो बात समझनेमें नहीं आई हो, अथवा जो भी शङ्का करना हो, सो प्रशन्नतापूर्वक करो ! अब जो सङ्का तुम करोगे, सो सबका समाधान भी यथार्थ गुरु-निर्णयसे वर्णन करके कहूँगा ! तुम्हारे सन्देहको मिटानेका प्रयत्न करूँगा। अतएव निस्सङ्कोच भावसे जो पूछना है, सो पूछ लो ॥ ११९ ॥

॥ ७ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—७ ॥ खण्ड १३ ॥

चौपाई—मण्डल भाग—१५ ॥ चौ० १ से ४ तक है ॥

१. द्वै प्रकार कैसो अज्ञाना ?। कौन प्रकार द्वै विधि है ज्ञाना ? ॥१२०॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता शिष्यका सातवाँ प्रश्न दर्शाते हैंः—शिष्य कहता है :—हे सद्गुरु देव ! आपने अभी ज्ञान, अज्ञान और विज्ञानको दो-दो प्रकारके हैं, ऐसा कहा है। उसका भेद मेरे समझनेमें कुछ नहीं आया, मैं मन्दमति हूँ, विस्तारसे खुलासा करके बतायेंगे, तभी समझ सकूँगा। शङ्का मुझे यही होता है कि—दो प्रकारके अज्ञान कैसे होते हैं ? सो कौनसे हैं ? और दो तरहके ज्ञान कौन-कौनसे हैं ? एक ज्ञानमें दो प्रकारके भेद किस तरहसे हुआ ? ॥ १२० ॥

२. द्वै प्रकार विज्ञान बताई । सो कैसे गुरु ! मोहिं लखाई ? ॥१२१॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और विज्ञानको भी दो प्रकारके आपने बताया था, सो भी कैसे है ? या कैसे हुआ ? हे सद्गुरो ! सो मुझे एक-एक करके लखा दीजिये ! किस प्रकारसे विज्ञान दो तरहका हुआ ? सो मेरे समझनेमें कुछ आता नहीं, सो उसका भी भेद बतलाकर समझा दीजिये ? ॥ १२१ ॥

३. प्रथम बतावहु द्वै अज्ञाना । पाछे पूछब ज्ञान निधाना ॥१२२॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—हे प्रभो ! प्रथम तो दो तरहके अज्ञानका भेद बतलाइये ? कि, कैसे-कैसे बर्तावसे दो तरहके अज्ञान

भिन्न-भिन्न प्रगट होते हैं ? उसके विवरण पूर्ण होनेके पश्चात् हे ज्ञानके भण्डारवत् गुरुदेव ! फिर दो तरहके ज्ञान, जो मैंने पूछा है, सो बतलाइयेगा ? ॥ १२२ ॥

४. कौन अज्ञान अपरोक्ष कहाई ? सो मोहिं सकल कहो गुरुराई ! ॥१२३

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और हे साहेब ! अपरोक्ष अज्ञान कौन कहलाता है ? तथाही परोक्ष अज्ञान कौन होता है ? । कैसे-कैसे चाल वर्ताव होनेपर यह परोक्ष वा अपरोक्ष अज्ञानका वर्ताव है, करके जानना ? हे श्रेष्ठ शिरोमणि गुरु महाराज ! सो सम्पूर्ण भेद बतलाके मुझे समझा दीजिये । निर्णयसे जो ठहरता है, सो कहिये ? ॥ १२३ ॥

दोहाः—तुम निज सतगुरु सत्य हो ! अब हम चीन्हा तोय ॥
(१५) सकलों भेद बतावहु । संशय रहै न कोय ॥१२४

टीकाः—ग्रन्थकर्ता शिष्य प्रश्नके विराम-सार बतलाते हैंः—शिष्य कहता हैः—हे सद्गुरुदेव ! आप निज चैतन्य पारख स्वरूपमें स्थित सत्य ज्ञानके प्रकाशी, तम-अविद्या भ्रम विनाशी, सत्य बोधदाता, सर्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हो । सत्य उपदेश श्रवण कर भ्रम आवर्ण पर्दा हट जानेसे अब हमने आपको असली रूपमें चीन्हें या पहिचाने हैं कि—आपही पारखी गुरुदेव हैं । अतएव मैं विनयपूर्वक हाथ जोड़के कहता हूँ कि—मैंने अभी जो-जो पूछा है, त्रिपदोंके द्विविधि भेदके बारेमें, सो उसके सकल भेद सत्य निर्णय करके बतलाइये ! समझा दीजिये ! जिससे कोई भी संशय मेरेमें किसी प्रकार भी रहने न पावे, ऐसी कृपादृष्टि कीजिये । यही श्रद्धायुत विनय है ॥ १२४ ॥

॥ ७ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—७ ॥ खण्ड—१४ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—१६ ॥ चौ० १ से ३१ तक है ॥

१. जो विशेष अज्ञान कहाई । सो अपरोक्ष कहावत भाई ! ॥१२५॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे जिज्ञासु शिष्य !

तुम्हारे प्रश्नका उत्तर यहाँ अब मैं भली-भाँति बतलाता हूँ ! सावधान रहो। तहाँ ज्यादा ही मूढ़तासे होनेवाला कर्म-कुकर्म जो है, सोई विशेष अज्ञान कहलाता है। हे भाई शिष्य ! दूसरेके सिखाये बिना मनके भावनासे अपने आप निकलनेवाला मनमाने कुकर्म सोई अपरोक्ष अज्ञान कहलाता है। उसमें तमोगुणके विशेष घनी छाया आवर्ण लगा रहता है ॥ १२५ ॥

२. ताको विधिवत करों बखाना। सुनु शिष्य ! जो अपरोक्ष अज्ञाना ॥१२६

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—मैं अब उसी विशेष अज्ञानके लक्षणको यहाँपर विधिपूर्वक जैसा है, वैसा ही अच्छी तरहसे वर्णन करके बता देता हूँ। हे शिष्य ! अपरोक्ष अज्ञान जाननेके बारेमें तुमने जो मुझसे पूछा है, सो प्रथम उसीका वर्णन मैं करता हूँ, चित्त लगाके सुनो और विचार करते जाओ ॥ १२६ ॥

३. विषयनमें आसक्त रहाहीं। जाति-पाँति कछु समझत नाहीं ॥ १२७

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— महा अज्ञानी, मूर्ख, पामर लोग नररूपमें पशुवत् ही वर्तते हैं। कुमार्गको छोड़कर वे नरपशु कभी सुमार्गमें लगते ही नहीं। सदाकाल शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पंच विषयोंको भोगनेमें ही आसक्त = तल्लीन हो रहते हैं। कहा हैः—

"नरक रचे नरकका कीड़ा, चन्दन ताहिं न भावै जू !" सु० वि० ॥ और भीः—
"नीम कीट जस नीम पियारा ! विषको अमृत कहत गँवारा !" बोजक र० ११ ॥

जैसे नर्क, मल-मूत्रमें उत्पन्न होनेवाला कीड़ा उसीमें ही सुख मानके उसको ही सदा चिन्तवन करके रचा करता है। उसे चन्दन आदि सुगन्ध कदापि अच्छा नहीं लगता और नीमके कीड़ेको नीमका कड़ुवापना ही प्रिय लगता है, तथा अमृतका मिठास उसको प्रिय नहीं लगता। वैसे ही विषयासक्त पुरुषोंको महामलीन नर्क-मूत्रादिका निकृष्ट विषय-भोग ही अच्छा लगता है।

वे नरपशु मूर्ख गँवार लोग विषयोंको ही अमृतमय सुखदाई कहते हैं और उसीमें ही आसक्त हो रहते हैं। अतएव मरने पर वहीं कीट आदि योनियोंको प्राप्त होते हैं ॥ और पामर, विषयासक्त लोग तो लोकाचार वा कुलाचारसे भी विरुद्ध रहते हैं। क्योंकि वे लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण तथा ३६ जात एवं हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी इत्यादिकोंका कुछ भेद समझते ही नहीं। सबके साथ खान-पानादिमें समान व्यवहार रखते हैं। जहाँ-तहाँ होटलोंमें जा-जाके सबका बनाया भोजन वा खाना खा लेते हैं। जातिके पंक्ति, पंगतका नियम, ऊँच-नीचका हिसाब वे कुछ भी नहीं रखते। इसीसे ऐसे लोग जात-पाँतको कुछ भी उचित नहीं समझते। जाति-भेद मिटा देना ही वे अच्छा समझते हैं ॥ १२७ ॥

४. वेद मर्यादा कबहुँ न जाने। पंडित जनकी आन न माने ॥१२८॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और आसुरी प्रकृतिवाले आसुरी विद्याको ही पढ़के पाश्चात्य रंग-ढंगके पक्षपाती हो जाते हैं। वेद, शास्त्रोंमें वर्णाश्रमके मर्यादा, नियमका हद्द, कायम किया है। परन्तु वे लोग उस वेद मर्यादाको कभी भी जानते या मानते भी नहीं। कई लोग तो जानते ही नहीं, कितने अंग्रेजी पढ़नेवाले तो कुल-धर्म जानके भी उसे मानते नहीं। और भारतीय अच्छे आर्य-पण्डित जनोंके आन = धर्म नीतिके वाणीका कथन, उपदेश, व्याख्यान, प्रवचन, शिक्षादि सुधारकी बातोंको वे लोग कुछ भी नहीं मानते। अर्थात् वेदमर्यादाको कभी ठीकसे नहीं जानते और पण्डितोंके उपदेशोंको भी वे नहीं मानते और न ग्रहण करते ॥ १२८ ॥

५. कौनको कुल ? कौनकी जाती ?। अस कहि विषयारत उतपाती ॥१२९॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—इतना ही नहीं, वे मन्दमति पामर लोग तो बड़े उद्दण्ड होते हैं। वेदाचारको छोड़कर फिर कुलाचार,

लोकाचारको भी वे कुछ मानते नहीं। किसका-काहेका कुल? किसकी-कौनसी जाती? यह सब सामाजिक बन्धन ढकोसला-मात्र व्यर्थ है। जिसमें जिसका प्रेम लगे, सो उसीमें लगेगा। इसमें किसीके जात-पाँत, कुलके रुकावट काहेको होना? हम इसको कुछ नहीं मानते। हमारे मनमें आवे सो वैसे करेंगे, इत्यादि प्रकारसे ऐसे-ऐसे बातें कहके समाजमें उत्पात, उपाधि, झंझट, झगड़ा मचायके विषय भोगनेमें ही पशुवत् रत मस्त पड़े रहते हैं। कहीं बाममार्गी होते हैं, कहीं नास्तिक भगलंपट होते हैं। एक प्रकारके दैत्य, राक्षस, पिशाचके समान ही वे होते हैं। कुल-जातीकी व्यवस्थाको न मानके अनाचार-व्यभिचार करके विषयोन्मत्त हो सदा उपद्रव किया करते हैं ॥ १२९ ॥

६. खाय कबाब शराब सो रोजा। निशि-दिन परनारिनको खोजा १३०

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और जीव हिंसा करवायके कबाब = मांसके नाना पदार्थ, नाना व्यंजन बनवायके रोज ही ठूँस-ठूँसके भरपेट मांस खाते हैं, और खूब शराब भी पीते हैं। अतएव वे बाघ, कुत्तोंके समान हिंसकी क्रूर होते हैं। तहाँ कहा हैः—

"अंकुरज भखै सो मानवा, मांस भखै सो श्वान। जीव बधै सो काल है, सदा नर्क परवान ॥ जीयत जीव मुर्दा करै, कर्महि भया कसाय। मरीखाय चमार भया, अधम कर्मके दाय ॥" ॥ पं० ग्र० मानुष० सा० ५।६ ॥

ऐसे मदिरा, मांस, खाने-पीनेवाले नीच राक्षस ही होते हैं। नशा सेवन करके वे पामर विषयासक्त पुरुष दिन-रात परस्त्रियोंको भोगनेके लिये मारा-मारा ढूँढ़ते फिरते हैं। जैसा कामी कुत्ता-कुत्तीको खोजता रहता है, तैसे ही परनारियोंको खोजना, भगाना, कुकर्म करना यही उनके दिन-रातका काम होता है ॥ १३० ॥

७. गावैं रस सिंगार बनाई। वेश्यनके घर निशि-दिन जाई ॥१३१॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं—और वे गुण्डे लोग शृंगार सजाके,

विषयोंकी महिमा बढ़ाके, स्त्रियोंके सर्वाङ्ग सुन्दरताकी वाणीमें कथन करके, गीत बनाके वही खूब राग-रागिनियोंमें साज-बाजके सहित गाते, तान अलापते हैं। इसे शृंगाररस कहते हैं; सो अनेक तालसे गीतें बना-बनाके गाते, नाचते, नटक, मटक, चटक करते हैं। खेल-कूद तमाशोंमें लगे रहते हैं। और वेश्याओंके घरोंमें दिन-रात जाया करते हैं। रण्डियोंसे दोस्ती किया करते हैं। रंडीबाजीमें प्रवीण होते हैं। वेश्याके तो वे दास समान ही बने रहते हैं ॥ १३१ ॥

८. पर नारिनपर तन-मन वारै। द्रव्य होय सो सबै बिगारैं ॥१३२॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं—विषयान्ध, कामान्ध, पामर नर, पराई घरकी स्त्रियोंको लुभाने, भगाने, फुसलाने, निजवश करनेके लिये अपने तन, मन, धन, सर्वस्व सब लगा देते हैं। परस्त्रियोंको ही इष्ट सुखदाई, समझ करके उनके लिये सब कुछ निछावर कर देते हैं। राड़ोंके पीछे सर्वस्व समर्पणकरके पागल समान भटकते रहते हैं। और बाप-दादाओंकी कमाईकी जो कुछ द्रव्य = धन-सम्पत्ति रकम घरमें है, उसको भी बदमाशीमें फजूल खर्चा करके सब उड़ा देते हैं, बिगाड़के बर्बाद कर देते हैं। द्रव्य नष्ट हो जानेके पीछे एक नम्बरके बदमाश हो जाते हैं। इस प्रकार कुसङ्गतमें पड़के उनकी बुद्धि नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है ॥ १३२ ॥

९. विषयिनके संग निशि-दिन करई। बाममता इष्ट आचरई ॥ १३३ ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य! मैं तुम्हें अपरोक्ष अज्ञानके विशेष गुण, लक्षण, बर्ताव एवं उन्हींका कथन बता रहा हूँ! सो ध्यान रखना, भला! महा अज्ञानी पामर लोग नर-जीवनमें सदा-सर्वदा रात-दिन विषई गुण्डे लोगोंके ही संग-साथ किये रहते हैं। धूर्त, भाँड़, जुआरी, गवैये, तबलची, चोर, डाकू, नशेबाज इत्यादि प्रकारके गये बीते बदमाश लोग ही उनके दिन-रातके दोस्त, यार होते हैं। और बाममार्गको इष्ट-श्रेष्ठ मानकर

उसीके कुआचरणसे चलते हैं। तहाँ मीन, मांस, मद्य, मुद्रा और मैथुन ये पञ्चमकारको प्रिय मानकर सेवन करते हैं। स्त्रीके वश होके स्त्रीके कहे मुताविक गुलाम बनके चलते हैं। कहीं भैरव-भैरवी बनके नंगे होकर एक-दूसरेके इन्द्रीकी पूजाकर चाटके पशुसे भी गये बीते कुकर्म करते हैं। वे बड़े पाजी दैत्य ही होते हैं ॥ १३३ ॥

१०. कोइ ज्ञानी तेहि ज्ञान सुनावै। ताहि उलटिके झगरन धावै ॥१३४

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और उनकी ऐसी दुर्दशा पतित अवस्थाको देखके कोई ज्ञानी, दयालु, विवेकी-परोपकारी पुरुषोंने कभी उन्हें सतशिक्षा देके ज्ञान विचारके वार्ता सुनाया, उनके हितके लिये उपदेश देके सुधारका मार्ग बताया कि, भाई! तुम अपने ऐसे उत्तम नर-जन्मको व्यर्थ ही बर्बाद क्यों कर रहे हो, कुसंगतको त्यागके अब भी तो सत्संगमें लगो। और अब भी तो सत्कर्ममें लगो, नहीं तो पीछे पछताओगे, यह सब कोई काममें नहीं आवेंगे, चेत करो, इत्यादि प्रकारसे किसी वक्त मौकेमें कोई ज्ञानीने यदि ज्ञानकी कथा सुना दिया, तब तो लाल तावामें पानीकी बून्द पड़नेके नाईं चिटकने, चिड़चिड़ा होके झिटकने, बकवाद करने लग जाते हैं। उलटके उन ज्ञानीसे ही लड़ने-झगड़ने लग जाते हैं। ज्यादा क्रोध उठा, तो दण्डा लेके पीटने-मारनेतकके लिये भी दौड़ पड़ते हैं, ऐसे अधम होते हैं। तहाँ कहा हैः—"ठोंकत उठे भभूका" बी० श० ५७ ॥ "भला कहत उलटा जीव खीजै" पं० ग्र० ॥ "शब्द न मानै कथै ज्ञाना। ताते यम दियो है थाना ॥" बीजक, रमैनी ॥ १८ ॥ ऐसे हितकारी ज्ञानीकी बात न मानके उल्टा झगड़ा करके लड़नेको उतारू हो जाते हैं ॥ १३४ ॥

११. बाद अन्यथा निशि-दिन करई। साँचहि झूठ, झूठ निज धरई १३५

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और गप्प, शप्प, बकवाद, मिथ्यावाद-विवाद, तकरार, झूठी अपनी बड़ाई, करके इत्यादि प्रकारसे अन्यथा-

बाद = और ही तौरके अण्ट-सण्टकी वाणी दिन-रात जहाँ गये, वहीं बका-झका करते हैं। कामकी सच्ची वार्ता तो कभी बोलते ही नहीं। और सत्य जीव जो है, उसको झूठा बताते हैं। तथा सत्यवक्ता, सत्पुरुष सन्त-महात्माओंको भी झूठा ही कलंक लगाते हैं। और झूठा—वीर्यवाद, देहवाद, तत्त्ववाद, शून्यवाद आदिको अपने हृदयमें धारण किये रहते हैं। स्थूल शरीरको ही अपना सत्य स्वरूप सब कुछ समझते हैं। इसलिये खान, पान, विषय-विलासादिसे देह सुखी रखना चाहते हैं। ऐसा सत्यको मिथ्या, तथा मिथ्याको सत्य मानके वही निश्चय करके महा धोखामें पड़े हैं ॥ १२५ ॥

१२. कहै ज्ञानी सब ज्ञान भुलाना। विषय स्वाद कोई नहिं जाना ॥१२६

टीकाः—ग्रन्थकर्ता दर्शाते हैंः—और पामर लोग कहते हैं कि, देखो! ये ज्ञानी बने हुये साधु-संन्यासी लोग विवेक, वैराग्य, मुमुक्षुता, शमादि षट् सम्पत्ति प्राप्ति, यही चतुष्टय ज्ञान साधनोंमें एवं सप्त ज्ञान भूमिकाके विचारमें और त्याग-वैराग्य, तितिक्षादि करनेमें लगके अरे! ये सब ज्ञानी लोग तो ज्ञानमार्गमें ही भुलाय गये हैं। नाहक ज्ञानमें लगके देह सुखानेसे क्या काम? संसारमें सर्वश्रेष्ठ पञ्चविषय भोगोंके स्वाद = मजा लेना, यही तो परम पुरुषार्थ है। इस विषयानन्दके स्वादको ये अभागे ज्ञानी लोग कोई किसीने भी नहीं जाना है। धिक्कार है, इन लोगोंको! प्रत्यक्ष सुखको छोड़के नाहक व्यर्थके दुःखमें लगे हैं। अंजन, मंजन, व्यंजनोंका सेवन करके मनरंजन करना छोड़के जनम भर दुःख भोगते ही रहना, ये कौन-सी बुद्धिमानी है? इसलिये हे भाइयो! इन मूर्खज्ञानी लोगोंके संगतमें मत लगो। हमारे समान यथेष्ट विषय स्वादको लेके तुम भी सुखी होओ। इत्यादि प्रकारसे पामर लोग कथन कर वैसे ही बर्ताव करते हैं ॥ १२६ ॥

१३. जगमें नारी संपति भोगा। इन सम और नहीं कछु योगा ॥१२७

टीकाः—और ग्रन्थकर्ता दर्शाते हैंः—विशेष अज्ञान ग्रसित

महा अज्ञानी लोग कहते हैंः—जगत्‌में धन-सम्पत्ति कमायके स्त्रीके साथमें विषयानन्दका भोग भोगना यही सबसे बढ़ करके सुख और भाग्य है। और स्त्री, पुत्र, धन, भोगादिक संग-साथके सुख इससे बढ़करके वा इनके समान बरोबरी करनेवाला भी और संसारमें कुछ नहीं है। इसलिये योग, ज्ञान, भक्ति, जप, तपादि करना तुच्छ है। क्योंकि—विषय भोगोंके समान प्रत्यक्ष ही फल दिखाई देनेवाला और कोई भी संयोग नहीं है। इसलिये कुछ योगादि करनेका काम नहीं है। धन कमाओ और स्त्रीके साथ विलास करो, वश यही सार है, सब कुछ है, ऐसा कहते हैं ॥ १३७ ॥

१४. मृगनयनी सब सुखको खानी। ताहि त्यागि भये ब्रह्मज्ञानी ॥१३८॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता दर्शाते हैंः—क्योंकि—संसारमें मृगनयनी = मृग या हरिणीके समान बड़ी-बड़ी सुन्दर आकर्षक नेत्रवाली स्त्रीकी रूप सुन्दरी यही सब प्रकारसे सम्पूर्ण जगत्‌में सारे सुखकी खानी या अक्षय सुखोंकी भण्डारके समान है। अमृततुल्य सुखकर जिसका भोग-विलास है। ऐसे स्त्री-भोगादिको त्यागके जो ब्रह्मज्ञानी भये या होते हैं, उनका भाग्य ही फूट गया समझो। वह तो विधाताने उन्हें अपराधका दण्ड ही भोगाया है, ऐसा जानो ॥ १३८ ॥

१५. इनकी मति बुद्धि सबै हेराई। साधुनके संग गये बौराई ॥१३९॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता दर्शाते हैंः—और वे कहते हैं कि—देखो तो सही! योगी, ज्ञानी, भक्त और कर्मकाण्डी इन लोगोंकी सुमति = अच्छी बुद्धि यह तो सब हेरा गई या खो गई वा गायब हो गई है। व्यवहार कुशलता इनमें कुछ भी नहीं है। साधुओंके संग-साथ कर-करके ये लोग सब कोई मानो पागल हो गये हैं। तभी तो बौरायके वैराग्य धारण किये हैं। कुछ भी अकिल होती, तो ऐसा क्यों करते? माता, पिता, स्त्री, पुत्रादि परिवारोंका संग-साथ छोड़के निठल्ले उल्लू बने हैं। सचमुच साधुओंके संगत करनेवाले न मालूम क्यों बौराय जाते हैं? और तो कुछ नहीं, सिर्फ उन्होंकी मूर्खता ही है ॥ १३९ ॥

१६. बहु विधि रंग नाना विधि रागा। इनको त्यागि करत वैरागा १४०

टीकाः—ग्रन्थकर्ता और उनके कथन दर्शाते हैंः—नहीं तो, देखो संसारमें बहुत प्रकारसे रंग-विरंग, चित्र-विचित्र रूप सौन्दर्यकी झाँकी है, खेल-कूद, तमाशा, नाटक, चाटक, करनेमें बेतहाशा रंग या मजा आता है। और छैः रागके ३६ रागिनियोंमें मिलायके गीत गानेमें अनेक प्रकारके बाजाओंमें स्वर लहरी मिलायके बजाने-गानेमें मनमस्त होके दिल खुश हो जाता है। यही तो साक्षात् परमानन्द है। ऐसे नाना प्रकारके रंग-रागके साधन मौजूद होते हुये भी उन सबोंको परित्याग करके वैराग्य साधना करते हैं। अरे! देखो तो सही, राग-रंगकी चाहना तो पशु आदि भी करते हैं, मृगादि जानवर बाजोंके शब्द मधुर ध्वनिमें कितना प्रेम करते हैं। परन्तु ये निठल्ले लोग तो उन पशुओंसे भी गये बीते होते हैं। हकनाहक रागको छोड़के वैराग्य करते हैं। सब तरहसे दुःख ही भोगते रहते हैं और कुछ नहीं, ये सब लोग खास मूर्ख मण्डलीवाले हैं ॥१४०॥

१७. कर्महीन दारिद्री अहहीं। घर-घर भीख सो माँगत जाहीं ॥१४१।

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब अपरोक्ष अज्ञानके प्रकरण ही बता रहे हैंः—हे शिष्य! विशेष अज्ञानी पामर लोग और ऐसा कहते हैं कि—ये साधु, संन्यासी, त्यागी, वैरागी, योगी, ज्ञानी, आदि लोग सब, कर्महीन = भाग्य फूट गया है जो कि वे अभागे और महानदरिद्री ही बने हैं। तभी तो—"नारि मुई घर सम्पति नाशी। मूड़ मुड़ाय भये संन्यासी ।।" इन दरिद्रोंके कर्ममें सुख भोगना लिखा ही नहीं है, तो सुख पावैं कहाँसे? इनसे उद्योग, धन्धा, मेहनत, मजूरी तो कुछ होता ही नहीं है, पहले नम्बरके आलसी बने हैं। परन्तु पेटका गड्ढा तो भरना ही पड़ता है, जिसके लिये घरोंघरमें जाके भिक्षा माँगते-फिरते हैं। इन भिखमंगोंने तो भाई! सबके नाकों दम कर दिया है। धरना दे-देके भीख माँग लेते हैं, जैसे कि, उनके बाप

दादाका ही रखा हो। सरकार इन सबोंको कड़ी दण्ड देवें, तभी इनका ठिकाना लगे। देखो न, रोज ही रोज घर-घरमें भीख माँगते जाते हैं और हरामके खाके सण्ड-मुसण्ड बने हैं, साँड़के समान गली-गली भटकते फिरते हैं, इत्यादि कहते हैं ॥ १४१ ॥

१८. इनको कहिये परम अभागी। हमहिं जगतमें हैं बड़ भागी ॥१४२॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता उनके कथन दर्शाते हैंः—अब कहिये! इन साधु-संन्यासी लोगोंको परम अभागी न कहें, तो किसको कहें? इन्हींको सब प्रकारसे बड़े अभागी कहना चाहिये। क्योंकि जगत्में दृश्य विषय सुखोंको छोड़कर अदृश्य मिथ्या सुखकी आशा लगाय, जनम भर दुःख हीं भोगते रहते हैं। इनका जन्म तो एक प्रकारसे भाररूप व्यर्थ ही है। अपना देह गुजारा करनेमें ही ये असमर्थ, परावलम्बी हैं, तो दूसरोंके ये क्या भलाई करेंगे? अतएव मित्रो! जगत्में सचमुच बड़े भाग्यवान्, धर्मात्मा, श्रीमान् तो हम लोग ही हैं। क्योंकि—हम लोग घर-गृहस्थीमें सम्पूर्ण संसारके सुख भोगते हैं। कोई एक उद्योगसे धन कमाय अपने खाते, और परिवारोंको खिलाते हैं। बड़े सुख-चैनसे हमारे दिन कटते हैं। इसीसे हम दुनियामें बड़े भाग्यशाली हैं और इन्हींको तो हम बड़े अभागी ही कहेंगे। हमारे सुखको ये लोग क्या जानें? ॥ १४२ ॥

१६. हम ज्ञानी ये सब अज्ञाना। बहुमत योग ज्ञान जिन ठाना ॥१४३॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता अज्ञानीके कथन दर्शाते हैंः—पामर महा अज्ञानी लोग ही अपने बात कह रहे हैं कि—प्यारे दोस्तो! असली ज्ञानी तो हम लोग ही हैं, क्योंकि हम सम्पूर्ण विषय भोगनेकी कलाओंको जानते हैं। हम बड़े भारी विषयानन्दके ज्ञाता हैं। व्यवहार कुशल हैं, भौतिकवादमें हमारी बराबरी कोई भी नहीं कर सकते हैं और ये साधु-संन्यासी लोग सब तो बड़े अज्ञानी हैं। इन्हें विषयानन्दका रहस्य कुछ भी खबर नहीं है। जिस आनन्दसे सारे

संसारकी उत्पत्ति—स्थिति हो रही है, उसे ये अज्ञानी ब्रह्मचारी, संन्यासी लोग क्या जाने? इसीवास्ते मैंने कहा—हम ज्ञानी हैं, ये सब लोग सरासर अज्ञानी हैं। उन्होंने तो बहुत प्रकारके मत, मतान्तर निकालके ज्ञान, योग, भक्ति आदिको ही अपनाये, उसी मार्गको अपना हितकारी निश्चयकरके कायम किये ठहराये हैं और उसीमें लगके दुष्कर तपस्यादि कर-करा रहे हैं। वाहियातमें दुःख भोग रहे हैं॥ १४३॥

२०. मूयेपर सब मुक्तिहि होई। नाहक पचि-पचि मरैं सब कोई ॥१४४

टीकाः—ग्रन्थकर्ता और अज्ञानीके कथन दर्शाते हैंः—यदि कहोगे कि—योगादि सब साधना मुक्तिके लिये किया जाता है। विषय भोगते रहनेसे मुक्ति होती नहीं, तो यह झूठी बात है। क्योंकि—जीतेजी कोई मुक्ति भये, ऐसा तो कहीं देखनेमें आता नहीं। और मृत्यु हो जानेपर शरीर नाश होके तो सब प्राणीमात्रकी मुक्ति हो ही जाती है। फिर हकनाहकमें योग, वैराग्य, तपस्यादिमें लगके पचि-पचिके असह्य साधनोंका दुःख भोगके सबकोईने फजूलमें दुःख क्यों भोगना? ऐसा करनेका क्या काम? मरना, यही तो मुक्त होना है। जीते तक विषय सुख भोगना, मरके मुक्त होना, यह तो सीधी ही बात है। परन्तु नाहकमें ये साधु लोग साधनोंमें पच-पचके सब कोई क्यों मरते हैं, सो फजूलका ही काम कर रहे हैं॥ १४४॥

२१. जो कछु है सो देह रे भाई! ताका सेवन करो बनाई ॥१४५॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता दर्शाते हैंः—पामरोंका कथन है कि—अतएव हे मेरे प्यारे भाइयो! संसारमें प्रत्यक्ष सच्चा जो कुछ भी सार वस्तु है, सो यह स्थूलदेह ही है। स्थूलदेहसे बढ़ करके दूसरा और कोई श्रेष्ठ वस्तु नहीं है। इस कारण इस अमूल्य मानव शरीरका हर तरहसे रक्षा करके खूब बनाय-ठनायके इस देहके साथमें सम्पूर्ण

विषय भोगोंकी सेवन करो, यथेष्ट भोग बनाय-बनायके भोगो ! जो कुछ भी तुमसे बन सके, वैसे विषय-भोग इच्छानुसार सेवन करो। मृत्यु होनेपर तो सबोंकी मुक्ति अवश्यंभावी है। इसलिये निश्चिन्त होके जीते तक सुख भोगते रहो ॥ १४५ ॥

२२ इन्द्रिन भोग भली विधि दीजै। बहुत विचार काहेको कीजै? ।१४६

टीकाः—ग्रन्थकर्ता अज्ञानीके कथन दर्शाते हैंः—और देखो ! देहमें पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ हैं। सो दशों इन्द्रियोंका सुख भोग भली प्रकारसे होने दीजिये। कानको मधुर-मधुर ध्वनिके शब्द, मीठी-मीठी वाणी सुनाइये। त्वचाको नरम-नरम कोमल स्पर्श कराइये। नेत्रको सुन्दर-सुन्दर रूप देखाइये। जिभ्योंको षट्रस व्यञ्जनोंका स्वाद चखाइये। नासिकाको पुष्प और इत्र आदिकी सुगन्ध लेने दीजिये। मुखको अच्छे-अच्छे भोजन खाने दीजिये। हाथको लेन-देन और आलिंगन करनेमें लगाइये ! पाँवको मनोरञ्जनके स्थानोंमें ले जाइये। लिंगको भग-भोगने दीजिये। और गुदाको मल त्याग करनेमें चाहे जब खुला कर दीजिये। इस प्रकार अच्छी तरहसे दशों इन्द्रियोंको विधिपूर्वक उन्हींके विषय-सुख भोगने दीजिये। उसमें रुकावट मत कीजिये। और विषय भोगनेमें पाप वा दोष होगा, बदला देना पड़ेगा, आवागमन चौरासी चक्रमें जाना पड़ेगा, इत्यादि बहुत विचार बारीकीसे काहेको करना? इसमें भ्रमके सिवाय और क्या रखा है? शुभ-अशुभ, पाप, पुण्य, लोक-परलोक, जन्म, गर्भ, ईश्वर, जीव, इत्यादिके बारेमें बहुत तर्क-वितर्कका विचार काहेको करते हो? इसमें क्या फायदा? इन सबका विचार छोड़ो ! इन्द्रियोंको भलीविधि भोगोंमें लगादो, वश यही कर्त्तव्य है ॥ १४६ ॥

२३ मरै फेरको जन्मै आई। जन्मेको कोइ देखा भाई ! ॥१४७॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता अज्ञानीके कथन दर्शाते हैंः—अरे भाई !

जब मृत्यु होके शरीर छूट जाता है, तब तो मामला खतम हो ही जाता है। जो मरा, सो मुक्त भया, यह तो पहले कहा ही जा चुका है। जब एक दफे मर गया, तो फिर उलट करके वह जन्म लेनेको क्यों आयेगा? मरण माने नाश होना, जब कायाका सम्बन्ध ही नाश हुआ, तो कौन जन्म लेनेको आयेगा? हे भाई! यह तो बताओ पहले जो मरा था, वही फिर भी जन्म लेकरके आया, ऐसा कोईको किसीने अपने आँखोंसे देखा है? ऐसा तो आजतक किसीने देखा भी नहीं। यदि ऐसा होता, तो वृद्ध शरीर मरा, सो फिर वही वृद्ध काया ही उत्पन्न होके आना था, बल्कि शिशु देह लेके जन्मता है। इसलिये पुनर्जन्म मानना असत्य है। मरे हुयेको ही फिर जन्म लेकर आया हुआ किसीने देखा नहीं, इसीसे आवागमन होना भी किसीका ठहरता नहीं ॥ तहाँ कहा भी है:—

"यदिगच्छेत्परं लोकं देहा देषविनिर्गतः। कस्माद्भूयो न चायाति बन्धुस्नेह समाकुलः ॥" स० चा० द० २६ ॥— अर्थात् यदि कोई इस देहसे निकलकर परलोक जा सके, तो बन्धुवर्गके स्नेहमें आकुल होकर पुनः क्यों नहीं उसी देहमें वापस आता? जो देहसे चलकर जा सकता है, फिर उसके प्रत्यागमनमें आपत्ति ही क्या है? इसलिये देहसे भिन्न और कुछ नहीं है ॥

इस प्रमाणसे मरनेपर फिर किसीकी जन्म होती नहीं ॥ १४७ ॥

२४ बहुरि जन्मना मिथ्या जानो। जीव ब्रह्म सब मिथ्या मानो ॥१४८

टीकाः—ग्रन्थकर्ता अज्ञानीके और कथन दर्शाते हैं:—हे भाई! मरण होनेके उपरान्त फिर भी जन्म लेना पड़ेगा, कर्मफल भोगना पड़ेगा, इत्यादि कथनको मिथ्या ही जानो। धूर्त पण्डित, ज्ञानी, योगी लोगोंने जीव, ईश्वर, ब्रह्म आदि नित्य पदार्थ जो ठहराये हैं, सो भी सब मिथ्या जाल वाक्विलास ही मान लो। कहा है:—
"तदेतत् सर्वं बृहस्पतिनाप्युक्तम् ।—न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः। नैववर्णाश्रमादीनांक्रियाश्च फलदाइकाः ॥" स० चा० द० २० ॥—अर्थात् बृहस्पतिने भी यह सब कहा है कि—न स्वर्ग है, न मोक्ष है, न

आत्मा और न पारलौकिक कोई फल ही है। और वर्ण तथा आश्रम भेदमें क्रिया करनेसे उत्तर कालमें उस क्रियाका फल हो, सो भी सम्भव नहीं है ॥ इत्यादि।

इसीसे कहता हूँ कि—मर गया, तो फिर जन्म होता नहीं। जन्म होना जो मानते हैं, सो झूठा ही जानो। देहमें रहनेवाला जीव, ब्रह्माण्डमें रहनेवाला ब्रह्म, यह सब भी कुछ नहीं। झूठा कथनमात्र ही है, ऐसा मान लो। प्रत्यक्ष दृश्यका ही प्रमाण करना चाहिये, ऐसा कथन करते हैं ॥ १४८ ॥

२५. पाँच तत्त्वकी देह बनाई। अन्त पाँचमें पाँच समाई ॥ १४९ ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब! विशेष अज्ञान-विवरणके प्रकरणको ही समझा रहे हैं। हे शिष्य! पामर अज्ञानी लोगोंका कथन ऐसा है कि—मुख्य पाँच तत्त्वोंकी स्वाभाविक सम्बन्धसे ही यह सुन्दर मानव देह भी अपने आप ही बन गया है। कहा हैः—"अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवाय्वनलानिलाः। चतुर्भ्यः खलु भूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते ॥" स० चा० द० १३ ॥—अर्थात् इस जगत्में भूमि, जल, वायु और अग्नि ये ही केवल चार भूत हैं। इन्हीं चार भूतोंसे चैतन्य उत्पन्न होता है ॥ और "तेषु विनष्टेषु सत्सुस्वयं विनश्यति"—उन्हीं सब भूतोंके विनाश होनेसे मनुष्य स्वयं विनष्ट हो जाता है ॥ अतएव केवल पाँच तत्त्वोंके संयोग मात्रसे मनुष्यादिकी स्थूल शरीर बनी हुई है। कालान्तरमें उक्त तत्त्वोंमें विकार-विषमता उत्पन्न हो जानेसे मृत्यु उपस्थित होके शरीरका विनाश हो जाता है। तब अन्त्यमें कारणरूप बाह्य ब्रह्माण्डके पाँच तत्त्वमें कार्यरूप शरीरके पाँच तत्त्व एक-एक करके जाके समा जाते हैं। ऐसे ही सर्वदा होता रहता है, ऐसा ही माने हैं ॥ १४९ ॥

२६. जैसे वृक्षसे पत्र झराई। बहुरि न वृक्षसे लागे जाई ॥ १५० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता और अज्ञानीका कथन दर्शाते हैंः—इसमें दृष्टान्त देके बताते हैं कि—देखिये! जैसे वृक्षमें अनेकों पत्र होते

हैं, समय पाके वृक्षमेंसे जब पत्र झड़ जाते हैं या नीचे टूट-टूटके गिर पड़ते हैं, तो वह गिरा हुआ पत्र फिर भी उस वृक्षमें जाके डालियोंमें कदापि लगते या चिपकते नहीं, बल्कि सड़-गलके मिट्टीमें ही मिल जाते हैं। इसी प्रकार जगत् वृक्षमें चार तत्त्वोंके अनन्त सङ्घात जुट करके चराचरकी रचना हुई है। उन्हीं पाँच तत्त्वोंके योगसे यह हमारा तुम्हारा भी शरीर बना है। मृत्यु होनेपर अन्तमें बाहरके पाँचों तत्त्वोंमें शरीर भी सड़-गलके मिल जाता है। इसलिये उस देह विशिष्टका फिर जन्म नहीं होता। वृक्षके पत्रवत् मृत्यु होनेपर फिर दुबारा शरीर धारण वा जन्म उसका नहीं होता। बल्कि तत्त्वोंके सम्बन्ध द्वारा नित्य नया ही शरीर बनता जाता है, सो कैसे? सुनो!—॥ १५० ॥

२७. और पत्र वृक्षासे उपजै। ऐसेहि जगतयोनि बहु निपजै॥ १५१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता अज्ञानीका कथन दर्शाते हैंः—यह बात तो तुम सब कोई जानते ही हो और अपने घरके समीपस्थ वृक्षोंमें ऋतु परिवर्तन होनेके वक्त प्रत्यक्ष देखते ही हो कि—वृक्षकी पुरानी पत्र झड़ जानेपर और ही नयी-नयी पत्तियाँ उस वृक्षमेंसे उत्पन्न हो जाती हैं। फिर पूर्ववत् हरा-भरा हो जाता है। तैसे ही संसाररूप महावृक्षमें भी प्राणियोंके मृत्यु हो जानेपर तत्त्वोंके शक्ति सम्बन्धसे और नया ही पत्रवत् देहें उत्पन्न होती जाती हैं। जगत्के अनन्त योनियोंमें असंख्य प्राणधारी शरीर बहुत प्रकारके आकार-प्रकारके रूपवाले निर्माण होते रहते हैं। अर्थात् तत्त्वोंसे ही बहुविधि योनियोंमें नाना शरीर बनता-बिगड़ता रहता है। फल सृष्टिके समान ही देहकी उत्पत्ति भी होती है, ऐसा जान लो। मौसमपर फल लगते हैं, समय आनेपर पकके गिर पड़ते हैं। इस कारणसे अपनेको बन्धन मानना फजूल है, ऐसा जानो ॥ १५१ ॥

२८. पाँच तत्त्वको वृक्ष अनादी। तामें उपजत विनशत सादी॥ १५२॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता, अज्ञानीका कथन दर्शाते हैंः—और यह पाच

तत्त्वोंका महावृक्ष स्वयं सिद्ध अनादि कालका है । उस पञ्चतत्त्वोंके ब्रह्माण्डमें चराचर, असंख्य-पदार्थ देह, गेह, नगर, बगीचा, उपवन इत्यादि सादी=तत्त्वोंके सहज स्वभाव शक्तिसे आप ही उत्पन्न होकर कुछ दिन, कुछ वर्षोंतक ठहरकर अवधि पूर्ण होनेपर फिर विनाशको प्राप्त हो जाते हैं । तहाँ कहा है:—"जगद्वैचित्र्य माकस्मिकं" —जगत्की विचित्रता आकस्मिक-अचानक या स्वाभाविक रीतिसे होती है ॥ "अग्निरुष्णो जलंशीतं शीतस्पर्शस्तथानिलः । केनेदं चित्रितं तस्मात् स्वभावात्तद्व्यवस्थिति ॥"—अर्थात् जिस प्रकार अग्निकी उष्णता, जलकी शीतलता, एवं वायुका शीतल स्वाभाविक है, अर्थात् इस प्रकार विचित्रताका कोई कारण नहीं, उसी प्रकार स्वभावसे ही जगत्को विचित्रता और अवस्थित अनादि हो जाती है ॥ स० चा० द० १९ ॥ ऐसे अनादि पाँच तत्त्वोंसे स्वयं समय-समयपर पदार्थ और शरीर बनते ही बिगड़ते रहते हैं । और जीव-ईश्वरादि कोई नहीं, ऐसा जानो ॥ १५२ ॥

२६. ताते कहा हमारा मानो । बोध विचार संशय करि जानो ॥ १५३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता अज्ञानीका कथन दर्शाते हैं:—इसवास्ते हे प्यारे बन्धुओ ! हमारे कहे हुए बातको सच्ची मानो । हम प्रत्यक्ष दृश्य प्रमाणको ही मानते हैं, अदृश्यको नहीं मानते । हमने सब बात तुमको प्रत्यक्ष ही कहा, सो हमारे मतको तुम लोग भी दृढ़तासे मान लो। और पण्डितोंका कथन वेद-शास्त्रादिका बोध-विचार जोकि, जगत् कर्ता, पुनर्जन्म, कर्मभोग, स्वर्ग, नर्क, देवतादि, इनके वर्णनको भ्रम, संशय, धोखा, असत्य करके ही जान लो, उसमें कुछ सार नहीं । स्वार्थी लोगोंने ही वेदादिकोंको बनाया है, तहाँ कहा है:— "त्रयो वेदस्यकर्तारो भण्डधूर्त निशाचरः । जर्फरी तुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम् ॥"—अर्थात् भाँड़, धूर्त और निशाचर ये लोग वेदके कर्ता हैं । इनके नाना प्रकारके जर्फरी, तुर्फरी इत्यादि वाक्योंसे ही वेद भरा है । इन सब वाक्योंसे ही वेद कहाँतक सत्य है, सो जानो

जाता है। "अग्निहोत्रं त्रयोवेदास्त्रिदण्डं भस्म गुण्ठनम्। बुद्धि पौरुष हीनानां जीविकेति वृहस्पतिः ॥"—अर्थात् वृहस्पति कहता है कि, तीन वेद, यज्ञोपवीत और भस्म लेपन ये सब बुद्धि और पौरुषहीन व्यक्तियोंकी जीविका मात्र है ॥ स० सं० चा० द० २८।११ ॥

इसलिये वेद, शास्त्र, पुराणादिकी वार्ता सुन-सुनके जो बोध तुम्हें हुआ है, सो संशय वा भ्रमसे भरा हुआ है। हमारी बातपर विचार करो, तो तुमको भी जाननेमें आ जायगा। हमारा कहा मानो, पूर्व बोधको छोड़ो, अब नवीन बोधको ले लो ॥ १५३ ॥

३०. ताते ज्योंलों तन है भाई! विषय भोन सब करो बनाई ॥ १५४ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता अज्ञानीका कथन दर्शाते हैंः-इसवास्ते हे मेरे भाइयो ! यदि सुख चाहते हो, तो हमारे कहे अनुसार चलो। जबतक शरीर साबुत है, जवानी चढ़ी है, तबतक खा-पीके मौज करो। शरीर इन्द्रियोंको पोषण करके हृष्ट, पुष्ट, बलिष्ट करके अच्छी तरहसे सब कोई विषय भोगोंको बनाय-बनायके खूब भोग भोगो। सुखपूर्वक जीवन बितावो। तहाँ कहा है सुनोः—"यावज्जीवेत् सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिवेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥"—अर्थात् इस समय जो कुछ सुख भोग कर सकते हो, उसीको करो। जबतक जीवन तुम्हारा रहेगा, सुखपूर्वक समयको बितावो। जिससे शारीरिक पुष्टि साधन हो सके वही कर्तव्य है, उसीको करो। यदि घरमें धन-सम्पत्ति न हो, तो ऋण या कर्जा लेकरके भी नित्य प्रति दूध, घी पीओ, यह अवश्य करना चाहिये। इसमें तुम्हें ऋण न चुकानेसे फिर जन्म लेके बदला देनेका डर-भ्रम होय, तो सुनो! मृत्यु होनेपर शरीर भस्मीभूत हो जायगा, शरीर भस्म होनेपर पुनः इसका लौटके आना किसी प्रकार भी हो नहीं सकता, फिर आवागमन या उसीका जन्म कहाँसे होगा ? ॥ स० सं० चा० द० २।१ ॥

अतएव जबतक शरीर जिन्दा है, तबतक मनभावनी विषय

भोगोंको सुन्दर बनाय-बनायके सब कोई भोगा करो। और किसी बातकी शङ्का मत करो, ऐसा कहते हैं ॥ १५४ ॥

३१. इनका कहा कोई मति मानो। वृद्ध बूढ़ भरमिक करि जानो ॥ १५५

टीकाः—ग्रन्थकर्ता अज्ञानीका कथन दर्शाते हैंः—अरे भाई! ये वेदवादी, शास्त्री, पौराणिक, सनातनी, और पुनर्जन्म माननेवाले अन्य मतवादी इन लोगोंका कहा हुआ बात तुम लोग कोई भी मानो ही मत। क्योंकि कहावत है कि—"साठी बुद्धि नाठी" "बूढ़ भये सो मूढ़" "वृद्ध भये गृद्ध ॥" और—"तन मन शक्ति घट गई, बुद्धि विवेक हेराय। वृद्ध मूढ़ सो भर्मिक, तरुणनको डरवाय ॥" ऐसे वृद्ध = प्रथमके अनुभवी माने गये महात्मा, महानुभाव, महापुरुष लोग, आचार्य गण, मतस्थापक लोग, इत्यादि जो कि ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध, बलवृद्ध, कहलाये और बूढ़ = अभी वर्तमानके बड़े-बूढ़े ज्ञानी, पण्डित, सयाने, चतुर, विभिन्न मतवादी जो बने हैं, इन सबोंको अविचारी, अन्धविश्वासी, भ्रमिक, धोखेबाज करके ही जानो। क्योंकि वे सब प्रत्यक्ष प्रमाणको छोड़कर झूठे ही अनुमानादि प्रमाणको मानते हैं। पाप-पुण्य मानकर कर्मादिके पचड़ेमें पड़े हैं। इसलिये उनके कथनको मत मानो, उनके अनुयायी मत बनो। फिर चाहे जैसा सुख भोग करो। इत्यादि प्रकारसे नास्तिक चारवाक मतमें मिलता-जुलता बात महा अज्ञानी पामर लोगोंने कहा है। सो मूर्खताके कथन होनेसे ग्राह्य नहीं, त्याज्य है। यहाँ परखानेके लिये ही दर्शा दिया है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १५५ ॥

दोहाः—यह अपरोक्ष अज्ञान गति। तोहि कहेउँ समुझाय ॥
(१६) बहिके विषयी बावरे। अन्त महा दुःख पाय ॥ १५६ ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य! उपरोक्त चौपाई नं० १२७ से १५५ तक जो वक्तव्य वर्णन हुआ, सो यही अपरोक्ष अज्ञानके गति-मति, चाल-चलन, कथन, वर्ताव, लक्षणादि

है। सो जीवोंमें आप ही मन खुशीसे निकलता है। नरपशुओंके चाल ही विचित्र होती है। उसके रूप-रेखा अभी मैंने तुमको समझाय करके कह दिया हूँ। वे पामर-विषयी लोग विषयोन्मत्त हो पागलके नाईं बौराये रहते हैं। मन-माने विषय भोगनेमें कर्म-कुकर्म कर नष्ट-भ्रष्ट हो भवधारमें बहि-बहिके चौरासी चक्रमें चले जाते हैं। अन्त्यमें शरीर छूटनेपर गर्भवास, जन्म-मरणमें पड़ करके त्रयतापादि महान् दुस्सह दुःख ही पाते रहते हैं। विषयमें ही सुख मानके वे नरपिशाच, नरपशु, बड़े बदमाश होते हैं। पाप-पुण्य कुछ भी न मानकर दुराचार, अधम व्यभिचारादिमें लगके आयु बिताते हैं। देहान्तमें और पश्चात् कर्म फल भोगनेमें महा दुःख पाते हैं। ऐसे दुष्टोंसे सदा दूर हो पृथक् ही रहना चाहिये ॥ १५६ ॥

॥ चौपाई–मण्डल भाग–१७ ॥ चौ० १ से ५ तक है ॥

१. अब अज्ञान परोक्ष बताऊँ। ताकी रीति सबै समुझाऊँ ॥ १५७ ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे जिज्ञासु शिष्य ! अब मैं तुम्हें दूसरे प्रकारका परोक्ष अज्ञानका भेद भी बतला देता हूँ। उसके रीति, भाँति, प्रकार, लक्षण भी तुम्हें सब समझा देता हूँ। जिससे सब भेदको तुम भली-भाँति जान सकोगे ॥ १५७ ॥

२. पहिले अपरोक्ष अज्ञान बताई। तामें दोय प्रकार है भाई ! ॥ १५८ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—अभी थोड़ी देर पहिले अपरोक्ष अज्ञानका लक्षण वर्णन करके जो मैंने तुम्हें बतलाया हूँ, हे भाई शिष्य ! उसमें दुई प्रकारका भेद है। वह अज्ञानकी भावना या विशेष भाव दो तरहसे प्रगट होती है। एक सामान्य गतिसे और दूसरा विशेष गतिसे वर्तता है। उसका लक्षण निम्नप्रकारसे जान लेना चाहिये ॥ १५८ ॥

३. परइच्छाते होय अज्ञाना। समानाधिकरण सोई जाना ॥ १५९ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—उसमें प्रथम भाग यह है कि-अपने

खुदका इच्छा, प्रशन्नता या दिलचस्पी न होते हुये भी पराये लोग, मित्र मण्डली, स्वामी, स्नेही जनोंके परतन्त्र इच्छासे उन्हें प्रशन्न रखनेके वास्ते जो अज्ञानका वर्ताव ग्रहण होता है, यानी परइच्छासे ही उदय, टिकाव होनेवाला ऐसा अज्ञान जो है, सोई 'समानाधिकरण' है। अर्थात् समान= सामान्य, साधारण, मामूली प्रकारका, अधिकरण = स्थान, भूमिका जगह, टिकाव, ठहराव होना है। तो यहाँ दूसरेके इच्छासे होनेवाला अज्ञानका स्थान सामान्य कहलाता है। सोई समान अज्ञानका स्थान, पात्र होता है, ऐसा जानो ॥ १५९ ॥

४. स्वइच्छा अज्ञान जो होई। विशेषाधिकरण कहावै सोई ॥१६०॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और फिर दूसरे भागमें पराये व्यक्तियोंके दबाव न होते हुये, स्वतन्त्रतासे स्वयं ही मनमाने चाल-कुचाल कर्म-कुकर्म करना, ऐसा स्वतःकी इच्छासे जो अज्ञान प्रगट तथा परिपुष्ट होता है, सोई 'विशेषाधिकरण' कहलाता है। अर्थात् विशेष = ज्यादा, अतियन्त, बहुतमात्रमें अधिकरण = स्थान, घर, करके जमनेवाला सोई विशेष अज्ञानका स्थान कहा जाता है। सो हमेशा स्वयंकी इच्छासे विशेष अज्ञान घेरा डाले रहता है। वह सहजमें नहीं छूटती ॥ १६० ॥

५. विशेषाधिकरण जे अज्ञाना। गीतामें भाख्यो भगवाना ॥१६१

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं—जीवोंके अन्तःकरणमें विशेषरूपसे ठहरा हुआ जो विशेषाधिकरण महा अज्ञान है, उसके बारेमें लक्षण बताकर कृष्णजीने अर्जुनके प्रति वर्णन किया है, सो श्रीमद्भगवद्-गीतामें अध्याय १४ श्लोक ८ में लिखा है। सो प्रमाण यहाँपर ग्रन्थकर्तानें ही दिया है। वह नीचे लिखे अनुसार जानिये ॥ १६१ ॥

श्लोकः—"तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ॥
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥"
॥ भगवद् गीता अ० १४।८ ॥

॥ पद्यमें टीका ॥

दोहाः—हो तमोयुत अज्ञानते । मोहित सबको हीय ॥
(१७) आलस निद्रा विकलता । इनसो बाँधत जीय ॥ १६२ ॥

भाषा टीकाः—कृष्णजी कहते हैंः—हे अर्जुन ! सर्व देहाभिमानियोंको मोहनेवाला तमोगुणको अज्ञानसे उत्पन्न हुआ जान। वह तमोगुण इस जीवात्माको प्रमाद = (इन्द्रियाँ और अन्तःकरणकी व्यर्थ चेष्टायें), आलस्य = (कर्तव्य कर्ममें अप्रवृत्तिरूप निरुद्यमता) और निद्राके द्वारा बाँधता है ॥

—अज्ञानसे तमोगुण उत्पन्न होकर, उसके सहित सब जीवोंके हृदय विमोहित आच्छादित हो जाता है। तब शरीरमें विशेष आलस्य, निद्रा, व्याकुलता, घबराहट, चिन्ता, शोक, हिंसादिमें प्रवृत्ति हो जाती है। इन्हीं कुवृत्ति कुकर्मोंसे जीव बद्ध हो जाते हैं। अपने कर्तव्यमें आपही बाँधे जाते हैं ॥

"ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥"—तमोगुण तो ज्ञानको आच्छादन करके या ढकके प्रमादमें भी लगाता है ॥ गीता० १४।९ ॥

"अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च। तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥" गीता १४।१३ ॥—हे अर्जुन ! तमोगुणके बढ़नेपर अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें अप्रकाश एवं अकर्तव्य कर्मोंमें प्रवृत्ति तथा कर्त्तव्य कर्मोंमें अप्रवृत्ति और प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा और निद्रादि, अन्तःकरणकी मोहिनी वृत्तियाँ यह सब ही उत्पन्न होते हैं ॥

"तथा प्रलीनस्तमसि मूढ़ योनिषु जायते ॥" गीता १४।१५ ॥—तमोगुणके बढ़नेपर मरा हुआ पुरुष, कीट, पशु आदि मूढ़ योनियोंमें उत्पन्न होता है ॥

"अज्ञानं तमसः फलम्" १४।१६ ॥—तामस कर्मका फल अज्ञान कहा है ॥

"प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥" १४।१७ ॥—**तमोगुणसे प्रमाद, और मोह उत्पन्न होते हैं, और अज्ञान भी होता है ॥**

"अधो गच्छन्तितामसाः ॥" १४।१८ ॥—**तमोगुणके कार्यरूप निद्रा, प्रमाद, और आलस्यादिमें स्थित हुये तामस पुरुष, अधोगतिको अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियोंको प्राप्त होते हैं ॥**

इस प्रकार गोताके प्रमाणसे तमोगुणके स्वरूप, और उसके कार्य, गति आदि वर्णन कर यहाँपर दिखला दिया गया है। यह सब विशेषाधिकरण अज्ञान, अपरोक्ष भागमें प्रगट होते हैं। जिसके कारण जड़ाध्यासी होनेसे नरजीव सब पतित होके वासनामें बद्ध होकर चौरासीयोनियोंमें भी नीच, क्रूर योनिको प्राप्त होते हैं। उसे परखकर हटाना चाहिये। ऐसा इसका विस्तारसे भेद जान लो ॥१६२॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—१८ ॥ चौ० १ से ३१ तक है ॥

१. अब परोक्ष अज्ञान बताऊँ । समानाधिकरण जेहि नाऊँ ॥१६३

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे जिज्ञासु शिष्य ! अब मैं तुम्हें यहाँपर परोक्ष अज्ञानका विवरण खुलासा करके बतलाता हूँ ! सो उसे भी ध्यानपूर्वक श्रवण करो। पराये या दूसरेके तर्फसे प्रेरित हो करके और पुस्तकादि पढ़-सुन करके मालूम होनेवाली बातको परोक्ष कहते हैं। यह दूसरा परोक्ष अज्ञान भी उसी प्रकार दूसरेके सम्बन्ध वा सहवास, प्रेरणासे ही उत्पन्न होती है। जिसका नाम 'समानाधिकरण' पड़ा है। अर्थात् वह समान अज्ञानका मुख्य निवासस्थान है। वहाँ सब अज्ञान समानरूपसे समाये रहते हैं। समय पायके तदनुसार कार्य प्रगट होते हैं। सो उन कार्योंके रूप-रेखा भी बता देता हूँ, सुनते जाओ ॥ १६३ ॥

२. कर्ता कोइ दूजा अनुमाना। तेहिते कर्म करहिं विधि नाना ॥१६४

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—जगत्में विचित्र विचित्र कार्य पदार्थोंको देखके उसके यथार्थ भेद न जानकर भ्रमिक अज्ञानी

मनुष्योंने चराचर सृष्टिको पैदा करनेवाला कोई एक ब्रह्म, ईश्वरादि दूसरा जगत् कर्ता अनुमान करके मानते भये कि—उसी सर्वशक्तिमान् परमात्माने अपनी इच्छा मात्रसे कभी यह जगत्को बनाया होगा। अब उसीकी प्राप्ति होवे, तभी संसारके दुःख बन्धनादि छूटेगा, इत्यादि प्रकारसे अनुमान करके उसको निश्चय किये हैं। इसी-वास्ते पीछेसे उसी कर्ता परमात्मादिकी प्राप्ति होनेके लिये नाना प्रकारसे विधिपूर्वक अनेकों कर्मकाण्डकी साधना करने लगे। यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह, ये षट् कर्मोंका नियम बन्धान किये, कोई दूसरा कर्ताका अनुमान पक्का हुआ, उसीसे नाना विधि-विधानसे कर्म शुभाशुभ करनेमें प्रवृत्त हुये। ऐसे ही नाना तरहके कर्म साधना किये और कर ही रहे हैं ॥ १६४ ॥

३. मन्त्र-तन्त्र औ देवी-देवा। बहुत प्रकार करहिं सो सेवा ॥१६५

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और तैंतीस कोटि देवता और उनकी अर्धांगिनी उतने ही देवियाँ कल्पना करके उन्हें इष्ट-देवता वा इष्ट देवियाँ मानकर उन्हें प्रसन्न करके मनचाही फल सिद्धि आदि पानेकी आशासे कोई तो तैंतीस करोड़ मन्त्रोंका जाप, गायत्री पुरश्चरण करनेमें लगे हैं। कोई सप्त महाबीज मन्त्र—ॐ "ह्रूँ, ह्रीं, क्लीं चं चामुण्डाय फट् स्वाहा", इत्यादि जपने-जपानेमें लगे हैं। और कोई तांत्रिक बनके तन्त्र साधनोंमें लगे हैं। उन्होंने विष्णुयामल तन्त्र, शिवयामल तन्त्र, महाकाली तन्त्र, भैरव तन्त्र, नवयोगिनी तन्त्र, वेताल तन्त्र, इत्यादि तन्त्र शास्त्र भी बनाये हैं। उसी प्रमाणसे तामसी सब तांत्रिक लोग चलते-चलाते हैं। मन्त्र जपके तन्त्रोंके कपट जाल फैलाके देवी, भगवती, नवदुर्गा, अष्टमात्रिका, त्रिशक्ति, आदिककी तथा गणेश, कुमार, महादेव, विष्णु, इन्द्र, सूर्यादि देवताओंकी मानन्दी करके बहुत प्रकारसे सो उन्हींकी सेवा, पूजा, अर्चना, बन्दना, आराधना इत्यादि करनेमें अपने लगके और दूसरोंको भी उसीमें लगा रहे हैं। वे यही सब कर्म करते हैं ॥ १६५ ॥

४. तीर्थ व्रत अरु मूर्ति अचारा। उपासना काण्डको बहु विस्तारा॥१६६

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और काशी, प्रयाग, मथुरा, हरिद्वारादिमें जाके गंगा, यमुना, सरस्वतीकी भिन्न-भिन्न स्नान एवं त्रिवेणी स्नान करते हैं। और चार धाम सहित अरसठ तीर्थोंका स्नान, परिक्रमा, मार्च्चन, आचमनादि करके तीर्थयात्री होते हैं। फिर एकादशी, प्रदोष, व्यतिपात, रामनवमी, कृष्णाष्टमी, शिवरात्रि, अमावास्या, पूर्णिमादिके अनेकों व्रत रखते हैं। और चान्द्रायणादि कठोर व्रत भी करते-कराते हैं। और अष्टप्रतिमादिके बहुविधि जड़मूर्ति बनवाय, बड़े-बड़े मन्दिरोंमें स्थापित करके महिमा बढ़ाय, जड़मूर्तिकी पूजा करनेमें लगे, और लगाय रहे हैं। "मूर्खस्यप्रतिमापूजा" हो रहो है। "मूर्तिपूजा धमाधमा"—मूर्ति पूजा करना महा अधम कर्म है, यह जानते नहीं। तथा आचार=नित्य स्नान, सन्ध्या बन्दनादि करना। अछूतोंका स्पर्श न करना, स्वयंपाकी होना, वा ब्राह्मणादिका ही भोजन बनाया खाना, अन्यका नहीं, इत्यादि आचार-विचारका पालन करना। और साकार-निराकार मूर्ति मानके और उसीका ध्यान धारण करना। सगुण—निर्गुण उपासना नवधा भक्तिको विधिपूर्वक करना, इत्यादि प्रकारसे कर्मकाण्डके पश्चात् उपासना काण्डका विस्तार बहुत प्रकारसे किये और कर ही रहे हैं। यह सब परोक्ष अज्ञानमें लगे हुये लोगोंका कर्तव्य है, सो जानो॥ १६६॥

५. छौ शास्त्रन विधि बहुविधि जाने। वेद प्रमाण कर्म मन माने॥१६७

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और ऐसे लोग वेद, शास्त्रोंको पढ़-गुनके वेदपाठी, शास्त्री, आदि होते हैं। तहाँ वे षट् शास्त्रोंके विधि-विधानको बहुत प्रकारसे जानते हैं। वेद प्रमाणके अनुसार कर्म करनेमें ही उनका मन राजी रहता है। अर्थात् मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, पातञ्जल, सांख्य और वेदान्त ये षट् शास्त्रोंके सिद्धान्त

और विधि-विधानको बहुत प्रकारसे अच्छी तरह जानते-जनाते हैं। और वेद प्रमाणसे विहित कर्म नित्यकर्मः—स्नान, सन्ध्या, पूजा, पाठ, होम। नैमित्तिक कर्मः—श्राद्ध, व्रतबन्ध, विवाह, प्रेत-कर्म, जन्मोत्सव इत्यादि। काम्य कर्म = अनुष्ठान, पुरश्चरण, मनौती, यज्ञ, यागादि। निषिद्ध कर्मः— चोरी, हिंसा, व्यभिचार स्वधर्मत्याग, पापाचरण इत्यादि। प्रायश्चित कर्मः—उपवास, चान्द्रायण, दण्डसहन, गलतीपर पछताके प्रतीज्ञा करके कष्ट सहन करना, इत्यादि पञ्च कर्म, पञ्च महायज्ञ, बलि-वैश्वदेवादि कर्मकाण्डको ही मनमें बड़ा अच्छा मानके जीवनपर्यन्त करते रहते हैं। कर्ममें ही निपुण रहते हैं॥ १६७॥

६. जाति-पाँतिको जो व्यवहारा। करहिं भली विधि वृद्धाचारा॥१६८॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चार वर्णोंमें छत्तीस जाति मानके उसके पाँति = पंक्ति, नियम, लाइन, मर्यादा, जैसे ठहरा रखे हैं, उसीके मुताबिक जो कुछ व्यवहारका कर्म करनेको होता है, सो भली प्रकारसे पालन करते हैं। और वृद्धाचार = प्राचीन कालसे चला आया हुआ, रीति-रिवाज, आचार-विचार, कुल मर्यादा, वृद्ध पुरुषोंका चलाया हुआ, प्रतिपादन किया हुआ आचरणको अच्छी तरहसे करते जाते हैं। कुल परम्पराको कायम रखके चलाते जाते हैं॥ १६८॥

७. कुलाचारमें निपुण गोसाँई। मानहिं अपनी मान बड़ाई॥१६९॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और जाति, कुल, गोत्र, मत, पन्थोंके अभिमानी लोग कुलके समस्त आचार पालन करनेमें निपुण या प्रवीण होते हैं। गाय-गोरू आदि पालन करके गोशाला स्थापन कर उनके अधिपति होते हैं। और गोसाँई, भक्ताई, वैरागी आदि पन्थोंको भी उन्होंने चला रखा है। और अपने वर्ण आश्रमादि तथा पदवियोंकी मान-बड़ाई, महिमाको खूब विशेष महत्त्व करके मानते

हैं वा मनाते हैं। अथवा वेदादिके प्रमाणसे ईश्वर, ब्रह्म, देवतादि मानके उनके महात्म्यको खूब ही बढ़ा-चढ़ाके मानते हैं। अन्ध-विश्वासी होते हैं॥ १६९॥

८. वेद पुराण कहानी सुनहीं। सो सब मनमें बहुविधि गुनहीं॥१७०॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और वेद-शास्त्रोंके, स्मृतियोंके उपदेश गुरुवा लोगोंसे सुनते हैं। तथा अठारह पुराण—ब्रह्म, विष्णु, शिव, मार्कण्डेय, नारद, भविष्य, स्कन्द पुराणादि, भागवत, गीता, बाल्मीकीय रामायण, देवी भागवत इत्यादि वेदसे पुराण तक अनेकों ग्रन्थोंकी कहानी = कथा, इतिहास, जीवनी, घटना, आदिके प्रसंगोंको पण्डितोंसे कहवायके प्रेमसे सुनते हैं। और गुरुवा लोग भी वही सब बात सुनाते जाते हैं। सोई सब पूर्ववृत्त रोचक, भयानकादि वाणियोंको बहुत प्रकारसे दृढ़ प्रतीति करके मनमें नाना तरहसे गुनते, मनन करते, निश्चय करते जाते हैं। उसीसे ही अपना हित-कल्याण मानते हैं। कोई तो सप्ताह भर भागवतादिके कथा सुननेसे मुक्ति भी मान बैठे हैं। बिना विचार धोखामें ही पड़े हैं। वही कहानी सुनके उसे गुनके हित समझ रहे हैं, बिना पारख॥ १७०॥

९. वर्ण आश्रमके कर्म अपारा। सो सब जानि करै निर्धारा॥१७१॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य! यह सब परोक्ष अज्ञानका ही प्रकरण मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सो ध्यान रखना। इसमें चार वर्ण और चार आश्रमोंके अनेकों ठहराये हुये कर्म हैं, सो सबको अच्छी तरहसे जान करके नियमपूर्वक निश्चय करके पालन करते हैं। अर्थात् यजन-यजनादि षट् कर्मोंका पूर्ण अधिकार ब्राह्मणोंका माने हैं। गुरु-पुरोहित, कथावाचक, व्यासादि होनेको भी ब्राह्मणके अधिकारमें रखे हैं। फिर क्षत्रियोंको तीन कर्मोंका अधिकार राज्यशासनादिमें रखे हैं। वैश्योंको भी तीन कर्म करते हुये कृषि, वाणिज्यादिमें लगाये हैं और शूद्रोंको तीन वर्णोंका सेवा करना ही कहे हैं॥ चारों वर्णोंके स्वाभाविक गुण कर्मः—

श्लोकः—ब्राह्मण क्षत्रिय विशां शूद्राणांच परं तप। कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभाव प्रभवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥ शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च । ज्ञानं विज्ञान-मास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥ ४२ ॥ शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्य-पलायनम् । दान मीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥ कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभावजम् । परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥४४॥

॥ भगवद् गीता अ० १८ ॥

अर्थः—हे परंतप ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके तथा शूद्रोंके भी कर्म, स्वभावसे उत्पन्न हुये गुणोंकरके विभक्त किये गये हैं । अर्थात् पूर्वकृत कर्मोंके संस्काररूप स्वभावसे उत्पन्न हुये गुणोंके अनुसार विभक्त किये गये हैं ॥ ४१ ॥ उनमें अन्तःकरणका निग्रह, इन्द्रियोंका दमन, बाहर-भीतरकी शुद्धि, धर्मके लिये कष्ट सहन करना और क्षमाभाव एवं मन, इन्द्रियाँ और शरीरकी सरलता, आस्तिक बुद्धि, शास्त्र-विषय ज्ञान और परमात्मतत्त्वका अनुभव भी ये तो ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं ॥ ४२ ॥ और शूर-वीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्धमें भी न भागनेका स्वभाव एवं दान और स्वामीभाव अर्थात् निःस्वार्थभावसे सबका हित सोचकर, शास्त्राज्ञानुसार शासनद्वारा, प्रेमके सहित पुत्र तुल्य प्रजाको पालन करनेका भाव ये सब क्षत्रियके स्वाभाविक कर्म हैं ॥ ४३ ॥ तथा खेती, गोपालन, और क्रय-विक्रयरूप सत्य व्यवहार, ये वैश्यके स्वाभाविक कर्म हैं और सब वर्णोंकी सेवा करना, यह शूद्रका भी स्वाभाविक कर्म है ॥ ४४ ॥ इत्यादि प्रकारसे गीता आदि शास्त्रोंमें वर्णन किये हैं, सो जानिये ॥ और ब्रह्मचारियोंने गुरुकुलमें रहके चारों वेद पढ़ना, फिर समावर्तन करके विवाह कर गृहस्थ होना, तो कुल धर्मको पालन करना, पञ्चयज्ञ, तर्पण, श्राद्धादि किया करना । पीछे पुत्रको घर-बार सौंपकर वानप्रस्थ होना, और जंगलमें निवासकर तपस्या करना तथा बादमें संन्यासी हो परमात्मामें मन लगाये रहना, इत्यादि वर्णाश्रमोंके नाना कर्म अपार कोई एक ईश्वर कर्ता

मानके सो सबको सच्चा हितकारी जानके किये और करते-कराते हैं। वही सब निर्णयको निश्चय कर गये हैं ॥ १७१ ॥

१०. विधि निषेधमा बहुविधि राचे । क्रिया कर्म सब मानत साँचे ॥ १७२

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और ऐसे भ्रमिक कर्मी, उपासक लोग, गुरुवा लोगोंने वेद-शास्त्रादिमें जो विधि-निषेधकी वाक्य कथन किये हैं, जैसे कि—अमुक-अमुक धर्म कर्म करना, जप, तप, व्रत, दान, पुण्यादि करना कहे हैं, इसे विधि कहते हैं। इसके विपरीत कोई कर्म नहीं करना, सबने स्वधर्म पालन करना, पर-धर्ममें कभी नहीं जाना। तहाँ कहा भी हैः—"श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् । स्वधर्मे निधनं श्रेयः परमधर्मो भयावहः ।।" गी० ३।३५।।— अर्थात् अच्छी प्रकार आचरण किये हुये दूसरेके धर्मसे गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्ममें मरना भी कल्याण-कारक है और दूसरेका धर्म भयको देनेवाला है ॥ इस प्रकार मना किया हुआ मार्गको निषेध कहे हैं। इन दोनोंमें बहुत प्रकारसे रत, प्रफुल्लित होके प्रशन्नतापूर्वक लगते-लगाते हैं। समस्त क्रिया, कर्मोंको सच्चा समझके मानते जाते हैं। वही क्रिया-कर्म नित्य-प्रति करते जाते हैं ॥ यानी वाह्य कर्मकाण्डके क्रिया, कर्मादिको ही सच्चा सुखदाई जानके या ऐसा मानकर नाना तरहसे विधि-निषेधादि मार्गोंमें ही सदा लगे रहते हैं ॥ १७२ ॥

११. गऊ ब्राह्मणका पूजन करहीं । नीति जानि जगकी आचरहीं ॥ १७३

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और वे लोग गायको गोमाता कहके उसे कामधेनु-गौ, पृथ्वीकी चेतनस्वरूप समझते हैं, कोई लक्ष्मी मानके भी पूजा करते हैं। गो-ग्रास निकाला हुआ भोजन चढ़ाके खिलाते हैं। गायके पूँछकी पूजा होती है, मुखकी नहीं। और ब्राह्मणोंको ब्रह्माका सन्तान समझके भूदेव, महिसुर, ब्रह्मदेव, इत्यादि विशेषणोंसे सम्मानित करके गुरु, कुलगुरु, दीक्षागुरु,

विद्यागुरु, पुरोहित, उपाध्याय, आचार्य, अग्निहोत्रि, त्रिवेदी, चतुर्वेदी, दीक्षित, याज्ञिक, पौराणिक इत्यादि प्रकारसे सम्बोधित करके उन्हें मान-पान, अर्घ, पाद्य, दान, दक्षिणा देके समय-समयपर ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं। उनके वचनोंको प्रमाणिक मानते हैं। "ब्रह्मवाक्यं जनार्दन"—अर्थात् ब्राह्मणोंका वचन साक्षात् नारायणके उपदेश समान है। ऐसे उनके महिमा किये हैं। और कहा हैः—"नमो ब्रह्मण्य-देवाय गोब्राह्मणहिताय च। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः॥"—अर्थात् गौ और ब्राह्मणोंके हित करनेवाले ब्रह्मदेव और जगत्के हित-कारी श्रीकृष्ण-गोविन्दको नमस्कार-नमस्कार है॥ इस तरह गाय और ब्राह्मणोंको श्रेष्ठ समझके पर्व-पर्वमें उन्हींकी पूजा करते रहते हैं। और शास्त्र नीति, चाणक्य नीति, विदुर नीति, लोक नीति आदिको भलीभाँति जान करके जगत्की व्यवहारमें संसारी लोग सोल्हों कर्मोंका आचरण धर्म जानके किया करते हैं। यानी लोक-वेदकी नीति जानके वैसे ही आचरण पालन करते हैं॥ १७३॥

१२. यह अज्ञान परोक्ष बखाना। औरों कर्म करत विधि नाना॥१७४

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे शिष्य! यह परोक्ष अज्ञानका लक्षण, चाल, बर्तावका नमूना थोड़ा-बहुत वर्णन कर दिया हूँ। इसमें वे लोग और भी नाना प्रकारके कर्मोंको विधिपूर्वक करते ही रहते हैं। वह सब कहाँतक कहूँ! इतनेमेंसे तुम समझ जाओ कि—परोक्ष अज्ञान कैसा होता है? तहाँ गुरुसे सुनके वेद-शास्त्रादि पढ़के ही यह समझ-बोध उन्हें बाहर दूसरेके द्वारा होता है। परन्तु वहाँ सत्स्वरूप पारखका ज्ञान कुछ भी रहता नहीं, इसलिये इसे परोक्ष अज्ञानमें कहा गया है। ऐसा जान लो॥ १७४॥

१३. कर्महुमें है दोय प्रकारा। समान विशेष कहत निर्धारा॥१७५॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य! परोक्ष अज्ञानके कर्ममें भी दो प्रकारके विभेद या भिन्न-भिन्न दो खण्ड हैं।

सामान्य और विशेषरूपसे दो तरहके कर्म कहके निश्चित किये हैं। सो गुरुवा लोगोंका ठहराया हुआ दोनों कर्मोंका भेद अब यहाँपर मैं तुम्हें निर्णय करके कह देता हूँ! सो भी चित्त लगायके सुनते जाओ! प्रथम विशेष कर्मका लक्षण बतलायके फिर सामान्य कर्मका भेद कहूँगा ॥ १७५ ॥

१४. योग ध्यान समाधि लगाई। ऋद्धि-सिद्धि करामात मनाई ॥ १७६

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—योगी लोग योगाभ्यास करते हैं। तहाँ नेति, धोति, वस्ती, कपाली, कुञ्जल, त्राटक, ये ही षट् क्रियाओंको पहिले साधते हैं। फिर यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये अष्टाङ्गको पूर्ण रूपसे अभ्यास करते हैं। कोई षट्चक्र भेदन करके, लम्बिका योग सिद्ध करते हैं। कोई लय, तारक, अमनस्क, सांख्य, लम्बिका, राज, कुण्डलिनी और हठ ये अष्ट योगोंकी साधनाएँ करते हैं। सब प्रकारसे चित्त-वृत्तिको एकाग्रकर रूप-अरूपका ध्यान करते-करते अन्तमें शून्य समाधि लगाके गाफिल हो रहते हैं। ऐसे ही बहुल दिनतक योग साधनायें करते-करते उसका फल ऋद्धि, सिद्धि, करामात करनेकी शक्ति प्राप्त होवेगी, यही इच्छा रखके कल्पित ईश्वरादिसे उसीको पानेको मनाते वा मनौती करते रहते हैं। ऋद्धि = थोड़ा भी पदार्थ हो, चाहे जितना खर्च करो, तो भी खतम होवे नहीं, अखण्ड भण्डार भरपूर हो रहे, ऐसा माने हैं। अथवा नवनिद्धि कहे हैं:—महापद्म, पद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व, ऐसा गिनतीके नाम कहे हैं। और अष्ट सिद्धिः = अणिमा, महिमा, गिरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व तथा वशित्व, ये नाम गिनाये हैं। करामात = इन्द्रजाल, बाजीगरी तमाशाको कहते हैं। वही सब झूठी चमत्कार करके लोगोंको ठगनेकी शक्ति, चतुराई बढ़ाना चाहते हैं। उसीके लिये दिन-रात मनाते हुये कष्टकर साधनोंमें लगे रहते हैं ॥ १७६ ॥

१५. धन अरु धान्य लक्ष्मीके काजा । मन्त्र-तन्त्र साधन महाराजा ॥१७७॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और कोई भक्त, वैरागी, उदासी, बनवासी इत्यादि साधु, बावा, महाराज, वनके भी ये लोग लोक-परलोकके विषयादि सुख प्राप्तिके लिये ही नाना साधनोंमें लगे-लगा रहे हैं। उसके फल, धन, सम्पत्ति, सोना, चाँदी, हीरा, लाल, पन्नादि, जवाहरात, मणि, माणिक्य, चिन्तामणि, कल्पतरु, कामधेनु, पारस और मृत सञ्जीवनी बूटी इत्यादि पाना चाहते हैं। कोई धनके साथ-साथ धान्य=अनाज सब प्रकारके अन्न और लक्ष्मी समान सुन्दर स्त्री पानेके लिये, मनोकामना पूर्ण हो, जिस काममें लगे, सो सफल हो। राजा, महाराजा, सम्राट् या चक्रवर्ती हो जावें, इत्यादि इहलोककी आशा-तृष्णादि बढ़ाते हैं, तो कोई इन्द्रासनादि पानेकी चाह, कल्पना बढ़ायके सप्तकोटि महा मन्त्रोंका जाप, मुख्य सप्त बीज मन्त्रोंका जाप करते हैं। संख्या जापका—एकसौ, एक सौ आठ, पाँच सौ, हजार, दश हजार, लाखों, करोड़ोंतक बढ़ाते ले जाते हैं। और कोई मन्त्र जापके साथ साथ तन्त्र साधना करना, मुद्रा लगाना, विधिपूर्वक षोडशोपचारसे तान्त्रिक रीतिसे पूजा करना, इत्यादि बहुविधिसे नाना साधना करते-कराते रहते हैं ॥ १७७ ॥

१६. यन्त्र लिखे औ पूजा करई । स्त्री पुत्रादिक वासना धरई ॥१७८॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और स्वस्तिक यन्त्र, सिद्धिदात्रियन्त्र, त्रिकोण, षट्कोण, अष्टकोण, दशकोण, सौकोण, सहस्रकोण, इत्यादि प्रकारके चक्र, षट्चक्र आदि यन्त्र लिखके मानते हैं। सो यन्त्र कोई भोजपत्रमें चन्दनसे लिखते हैं। कोई ताड़पत्रमें, कागजमें, कपड़ोंमें, स्याही, गोरोचन आदिसे लिखके यन्त्र बनाते हैं। कोई तामा आदि धातुपात्रमें छोटी थालीमें यन्त्रके आकार कारीगरोंसे खुदवाय लेते हैं। उसी लिखित यन्त्रोंकी पूजा नाना भावनासे करते

हैं। कोई तो भग या योनिके यन्त्र, लिङ्ग यन्त्र और मैथुन यन्त्रतक बनायके वाममार्गी लोग पूजा करते हैं। उसीकी नकल शिवलिङ्ग स्थापनामें दिखाये हैं। उसमें लिङ्ग तो खड़ा रखते ही हैं, नीचेकी जलहरी भगस्थानापन्न यन्त्र हुआ, दोनोंका सम्बन्ध मैथुनका नमूना ही दर्शाये हैं। अविचारी मूर्ख लोग उसीको बड़े महादेवका दर्शन मानके पूजा कर रहे हैं। और अण्डाकार शालिग्राम सोई अण्ड यन्त्र है। उसे विष्णु मानके पूजा करा रहे हैं। संसारमें जिस असली आकारको लज्जासे गुप्त करके वस्त्रादिसे ढाकके छिपाये रखते हैं। उसीकी नकल बनायके बाहर पूजा कर करा रहे हैं। और कोई वाममार्गी लोग तो भैरवी चक्र करके प्रत्यक्ष ही स्त्री-पुरुषोंके भग, लिङ्गको भी यन्त्र समझकर सब कोई मिलके उसीकी ही पूजा करते हैं। फिर मांस, मदिरादि खा-पोकरके उन्मत्त महापशु ही बन जाते हैं। इस प्रकारसे मूढ़ लोग अनेकों यन्त्र लिखके पूजा करते हैं। और उसके फलमें स्त्री, पुत्र, धन, राज-काज आदि मिलनेकी मनो-कामना पूर्ण होनेकी, ऐसे नाना प्रकारको वासना मनमें धारण किये रहते हैं। वे दुर्वासनामें बन्धे रहते हैं ॥ १७८ ॥

१७. देवी देवताको औराधे। आप अनुग्रह साधन साधे ॥१७९॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—फिर आकाशकी देवी, पातालकी देवी, स्वर्ग और मृत्यु लोककी देवी, सप्त मातृकाः—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा इन्हें माने हैं। और कमला, तारा, धूमा, छिन्नमस्ता, काली, गौरी, शीतला इत्यादि नव-दुर्गा माने हैं। फिर अष्टभुजी, सोलह भुजी भगवती, ६४ योगिनी, इत्यादि देवियोंकी और तैंतीस करोड़ देवतोंकी कल्पना करके उनकी आराधना नाना तरहसे पूजा, उपासनादि भावना कर-करा रहे हैं। कोई तामसी लोग भूत गण, प्रेत गण, वीर-वैताल, मरी मशान जगाते, झूठी भावना करते—पूजते फिरते हैं। यह सब साधना करके उसका फल यह चाहते हैं कि—काया सिद्धि = पर-

काया प्रवेश करनेकी शक्ति, वाचासिद्धि=कहा हुआ बात पूर्ण होनेकी शक्ति, मनसासिद्धि=मनसे संकल्प किया हुआ बात सफल होना इत्यादि महाशक्ति पानेकी इच्छा करते हैं। जिससे किसीको शाप देनेपर लग जाय, उसका सत्यानाश हो जाय, लोग वशमें होवें, फिर किसीसे प्रसन्न होके उसे अनुग्रह=कृपा करके शुभ आशीर्वाद, वरदान देनेपर भी सो पूरा हो जाय। स्त्री, पुत्र, धन, सम्पत्ति, राज्यादि सब कुछ देनेकी शक्ति सामर्थ्य होवे, अर्थात् मनोकामना पूर्ण करनेकी अभिलाषासे कर्म-कुकर्म करके भली-बुरी झूठी साधनाएँ साधनेमें लगे हैं ॥ १७९ ॥

१८. काया-कल्प करे मन लाई । जगमें चाहत बहुत बड़ाई ॥ १८० ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और धोखेमें मन लगायके कि—कभी मरें नहीं, सदा तन्दुरुस्त जवान होके जीते रहें, सुख भोगते रहें, ऐसी इच्छासे कोई योगी लोग खूब मन लगायके सावधानीसे कायाकल्प करते हैं। तहाँ वे लोग कहीं गुफा, कन्दरामें अथवा कहीं गाँव-शहर घरके कोठरीमें ही, जिसमें प्रकाश तथा हवा विशेष न जाता हो, वैसे जगह चुनके भीतर बैठ जाते हैं। सिर्फ दूधका आहार रखते हैं, वनौषधि, जड़ी, बूटी आदिकी नित्य सेवन, लेपन, पान, करते हैं। साथमें योगाभ्यास प्राणायामादि भी किया करते हैं। विशेषतः औषधि ही खा-पीके नियम पूर्वक पत्थ्य, परहेजमें लगे रहते हैं। फिर उसके अवधि एक महीना या दो-तीन महीना जैसा निश्चित करते हैं, सो पूरा होनेतक साँपके केंचुलीके नाईं पुरानी चमड़ी उखड़ जाती है, बाल सफेदसे बदलके काला होते हैं, दाँत भी नया आ जाते हैं। सब इन्द्रियोंमें नवीन स्फूर्ति होके तरुणवत् वृद्ध भी शक्ति सम्पन्न हो जाता है, ऐसा कहे हैं। उसीके लिये कोई-कोई मन लगायके कायाकल्प करते हैं। संसारमें वे बहुत ही मान-बड़ाई पाना चाहते हैं। उसके लिये बहुत-बहुत कष्ट क्लेश भी भोगते हैं। परन्तु

कितना भी कायाकल्प करो, नाशवान् शरीर तो एक दिन अवश्य ही छूट जायगा, यह तो समझते ही नहीं ॥ १८० ॥

१९. स्वर्गादिककी इच्छा माने। करहिं तपस्या औ अस्नाने ॥१८१॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और कोई ऊपर आकाशमें भूर्लोकादि सात स्वर्ग, वैकुण्ठ, सत्यलोकादिकी कल्पना करके उन्हें सत्य मानकर वहाँकी इच्छा करते हैं। अमृतपान, पुष्प शैय्या, अप्सराओंसे भोग-विलास इत्यादि स्वर्गीय सुख पाना चाहते हैं। उसके लिये नित्य गङ्गास्नान, सन्ध्या, पूजा, पाठ, होम, हवनादि करते हैं। कोई कठोरतासे तीव्र तपश्चर्या करते हैं। तहाँ ठण्डोमें रातभर नदी आदिके जलमें डूबना या सोते रहना। वर्षामें बिना छप्पर मैदानमें बैठे रहना। गर्मीमें दोपहरको घाममें बैठके चौरासी धुनी या पञ्चाग्नि तापना। निराहार, दूधाहार, फलाहार करना; ठाढ़ेश्वरी, दिगम्बर, मौनी, इत्यादि होना। इस तरह तपस्या और स्नान आदि नाना कर्म मार्गमें साधना कर रहे हैं या करते हैं ॥१८१ ॥

२०. यह प्रकार कर्म विधि नाना। विशेषादि कर्म सो जाना ॥१८२॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे शिष्य ! इस प्रकार कर्मी, उपासक, योगी लोगोंने नाना विधिसे कर्म, उपासना, योगका विस्तार किये हैं। उसमें नाना तरहके कर्मादिके साधना करते-कराते रहते हैं। अनेकों प्रकारसे कर्मके विधान किये हैं। सो परोक्ष अज्ञानमें विशेषादिकरण कर्म है, अर्थात् यही इसमें विशेष कर्मका स्थान कहलाता है, ऐसा जानना चाहिये। विशेष कर्मोंके साधनोंमें ज्यादा ही कष्ट-क्लेश भी सहते हैं। इसलिये सो विशेषादि कर्म जनाया गया है, ऐसा समझो ॥ १८२ ॥

२१. अब समान कर्म बतलाऊँ। एक-एक सब कहि समुझाऊँ ॥१८३॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य! परोक्ष अज्ञानमें होनेवाला विशेष कर्म तो पहले तुम्हें सुना ही चुका हूँ! अब

सामान्य कर्म परोक्ष अज्ञानका जो है, सो बतलाता हूँ! उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग भी सब एक-एक वर्णन करके कहके तुम्हें भलीभाँति समझा देता हूँ! चित्त एकाग्र करके सावधानीसे सुनो, और विचार करते जाओ ॥ १८३ ॥

२२. कर्ता निमित्त कर्म जो करहीं। मुक्ति वासना चित्तमें धरहीं ॥१८४॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—भक्त लोग जो कुछ भी कर्म करते हैं, सो कल्पनासे अपने सहित सारा जगत् चराचरका कर्ता विश्वपति कोई एक परमेश्वर-परमात्माको मानकर उसके प्राप्तिके निमित्त ही उपासना मार्गके साधनोंका कर्म सर्वदा किया करते हैं। और वेद प्रमाणसे सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य ये चार मुक्ति मान करके उन्हीं मुक्तिमें पहुँचनेको शुभ वासना सदाकाल चित्तमें धारण किये रहते हैं। कब हमारी मुक्ति होवे? कब जगत् बन्धनोंसे छूटें? यही वासना मनमें धरके चिन्तवन किये रहते हैं। मुक्तिके लिये ईश्वरके आशा-भरोशा लगाये रहते हैं। ईश्वर कर्तासे मिलनेके लिये ही नाना उपायसे नाना कर्म करते रहते हैं ॥ १८४ ॥

२३. मुक्ति हेतु बड़े अनुरागी। कर्म सुकर्म करे कोइ भागी ॥१८५॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और वे साधक लोग मुक्ति प्राप्तिके लिये ही बड़े अनुरागी, स्नेही, प्रेमी, लौलीन, उत्साही, होते हैं। नित्य, नैमित्तिक कर्ममें शुद्ध शुभ कर्म, पुण्य कर्म ही करते हैं। कोई कोई तो उसका चिन्तवन करते-करते बड़े उदास विरक्त होकर घर-द्वार, राज-पाट, ठाट, गाँव, शहर, बस्तीको छोड़-छाड़के भागके जङ्गलमें चले जाते हैं। उनके समाजमें वे ऐसे लोग बड़े भाग्यशाली कहलाते हैं। श्रद्धा-भक्ति विश्वास पूर्वक शुभ कर्मादि साधना करते हुये मुक्तिकी आशामें बड़ा प्रेम लगाये रहते हैं। ऐसे लोग कोई-कोई ही होते हैं ॥ १८५ ॥

२४. इह अमुत्र फल भोग विरागा। शमदमादि साधनमें जागा ॥१८६॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और कोई मुमुक्षु जन बड़े वैराग्यवान्

होते हैं। वे इह = इस लोकके पञ्चविषयादिकी सुख भोग, स्त्री, पुत्र, धन, घर, राज्य, साम्राज्य इत्यादिकोंकी भोग इच्छाओंका परित्याग करके और अमुत्र = परलोक, सातस्वर्ग, इन्द्रासन, वैकुण्ठ, सत्यलोकादिका माना हुआ महान् सुख फल भोगोंकी भी चाहना, वासना, छोड़कर परम विरक्त दृढ़ वैराग्यधारी हो जाते हैं। कहा भी हैः—"ब्रह्म लोकलौं भोग जो, चहै सबन्को त्याग। वेद अर्थ ज्ञाता मुनी, कहत ताहि वैराग ॥" (वि० सा० १), **यह वैराग्यका लक्षण कहा गया। अब विवेकादिके लक्षण भी सुनिये!** "अविनाशी आतम अचल, जग ताते प्रतिकूल। ऐसो ज्ञान विवेक है, सब साधनको मूल ॥" **और शमादि षट् सम्पत्तिमेंः— शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, और समाधान, ये छहों भाग मिलायके एक तीसरा साधन माने हैं। इसके लणण नीचे दोहादिमें वर्णन हैः—**

"श्रम दम श्रद्धा तीसरी, समाधान उपराम।
छठी तितिक्षा जानिये, भिन्न-भिन्न यह नाम ॥
मन विषयन ते रोकनो, शमतिहिं कहत सुधीर।
इंद्रियगणको रोकनो, दम भाषत बुधबीर ॥
सत्य वेद गुरु वाक्य है, श्रद्धा अस विश्वास।
समाधानताको कहत, मन विक्षेपको नाश ॥
साधन सहित कर्म सब त्यागे। लखि विषसम विषयनते भागे ॥
दृग नारी लखि ह्वै जिय ग्लाना। यह लक्षण उपराम बखाना ॥
आतप शीत क्षुधा तृषा, इनको सहन स्वभाव।
ताहि तितिक्षा कहत हैं, कोविद मुनिवर राव ॥
ब्रह्म प्राप्ति अरु बन्धकी, हानी मोक्षको रूप।
ताकी चाह मुमुक्षुता, भाषत मुनिवर भूप ॥
प्रथम विवेक विराग पुनि, षट् शमादि सम्पत्ति।
कही चतुर्थ मुमुक्षुता, ये चव साधन सत्ति ॥"

ये सब दोहे विचार सागरके प्रथमस्तरङ्गकी १२ से २१ तक

लिखे हैं। आप लोगोंकी जानकारीके लिये ही यहाँ उतारके रख दिया है, सो जान लीजिये ॥

इसलोक और परलोकादिके सकल विषयफल भोगनेकी इच्छासे रहित होकर बड़ी दृढ़तासे वैराग्यको धारण करते हैं, और शम, दमादि षट् सम्पत्ति सहित साधन चतुष्टयमें सदा जाग्रत्, सचेत, होशियार हो रहते हैं। आत्माको अविनाशी तथा जगत्को विनाशी समझना यही, प्रथम 'विवेक' है। लोक, परलोकके सम्पूर्ण भोगोंके इच्छाका न होना, दूसरा 'वैराग्य' है। विषयोंसे मनको रोके रखना, सो शम है। इन्द्रियोंको रोककर अपने वशमें रखना, सो दम है। गुरु और वेद वाक्यको सत्य मानके विश्वास करना, सो श्रद्धा कहा है। मनका सन्देह, चञ्चलता, छूटना, सो समाधान है। स्त्री-विषयादिसे ग्लानि विषवत् विषयोंको जानके उदास होना, सो उपराम है। शीतोष्ण, भूख-प्यासादिको सहन शक्ति, सो तितिक्षा कहा है। चौथा साधन मुक्ति प्राप्तिकी तीव्र इच्छाका होना, सोई 'मुमुक्षुता' है। कितनेक साधक लोग यही चार साधनोंमें जाके लगे रहते हैं ॥ १८६ ॥

२५. यही कर्म सामान्य कहावै। मुक्ति वासना मनमें आवै॥ १८७ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—उपरोक्त सो यही परोक्ष अज्ञानमें सामान्य कर्म कहलाता है। उसमें खाली मुक्ति प्राप्तिकी वासना ही साधकोंके मनमें बारम्वार उठ-उठकर आती रहती है। कब इष्टदेव प्रसन्न होंगे? कब मैं सारूप्य, सामीप्यादि मुक्तिको पाऊँगा? यही मनमें सङ्कल्प-विकल्प होता रहता है। मुक्तिकी वासना तीव्र गतिसे आ-आके मनमें विलय होती रहती है। उसके लिये वे जो कुछ क्रिया करते हैं, वही सामान्य कर्ममें कहा जाता है ॥ १८७ ॥

२६. परोक्ष कर्म कहा विस्तारा। याहि मता भक्तन मन धारा॥ १८८॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे शिष्य! परोक्ष अज्ञानके अङ्गमें

विशेष और सामान्य कर्मोंका बर्ताव-लक्षण, सम्पूर्ण विस्तारपूर्वक मैंने तुमसे अभी जो कहा, सो यही मत-पन्थ और सिद्धान्त, चाल-चलनको भक्त लोगोंने दृढ़तापूर्वक अपने मनमें धारण किया है, और उसी प्रकार नवीन भक्तजन भी धारण कर रहे हैं, अर्थात् परोक्ष कर्मका विस्तार कह चुका हूँ, सो इसी मत मन्तव्यको भक्तोंने भी मनमें धारण कर रखे हैं, ऐसा जान लो। इसी धारा प्रवाहमें सब भक्तादि बह गये, और बह रहे हैं ॥ १८८ ॥

२७. परोक्ष कर्म प्रथम जो कहेऊ। सो सब मत कर्मिष्ठिनगहेऊ ॥ १८९

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य! मैंने प्रथम परोक्ष अज्ञान वर्णन करतेमें पहिलेके जो-जो कर्म लक्षणाको कहा था, सोई मतमानन्दीको सव कर्मिष्ठि=कर्मकाण्डमें निष्ठा, श्रद्धा, प्रेम, दृढ़ता, रखनेवालोंने यानी कर्ममार्गी ब्राह्मणादिकोंने अच्छी तरहसे पकड़के ग्रहण किये हैं. सो सब कर्मिष्ठियोंका ग्रहण किया हुआ कर्ममार्गका ही वर्णन कह दिया गया है, अर्थात् प्रथम जो परोक्ष कर्म कहा हूँ, सो सब मतोंको कर्मिष्ठियोंने ही ग्रहण किये हैं ॥ १८९ ॥

२८. कर्मरूप कर्मिष्ठिहि जानो। अकर्मरूप अकर्मी मानो ॥ १९० ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और कर्मके प्रत्यक्ष स्वरूप स्थूल आकारवाले कर्मरूपी देहधारी कर्मनिष्ठ, कर्मकाण्डी, ब्राह्मणादिक मनुष्योंको ही जान लो। तैसे ही अकर्म=कुकर्म, नीच कर्मोंके प्रत्यक्ष दृश्य स्वरूप भी अकर्मी या कुकर्मी नरपशु लोगोंको ही मान लो। अर्थात् कर्मिष्ठिको ही कर्मका मुख्यरूप करके जानो। और कुकर्मीको ही अकर्मके मुख्यरूपमें मानो, इनके सिवाय दूसरेसे कर्म और कुकर्म प्रगट होता नहीं। अतएव जिससे जो विशेष होता है, उसको उसी रूपमें कहा और माना जाता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १९० ॥

२९. परइच्छा कर्म अकर्म जो होई। समानाधिकरण कहावै सोई ॥ १९१

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—उन कर्मोंके स्थान, ठिकान भी समान और विशेषरूपसे दो तरहके ही होते हैं। परइच्छा = दूसरेकी इच्छा वा अन्यका दबाव, अनुशासन, प्रेम, भय, परवशतादिसे जो कुछ भी कर्म = अच्छा कर्म, शुभ धर्म-कर्म तथा अकर्म = बुराकर्म, अशुभ पापकर्म, जघन्य, भयंकर-कुकृत्यादि कुकर्म होते हैं, सोई समानाधिकरण कहलाता है। अर्थात् वही अज्ञानके सामान्यरूपसे ठहरनेका स्थान कहा जाता है। अपनी इच्छा न होते हुये भी परायेकी इच्छासे सङ्ग दोषसे किया जानेवाला सुकर्म-कुकर्म जो कुछ है, सो सब समान भावसे उसी स्थान या उन्हींमें ठहरा रहता है ॥ १९१ ॥

३०. स्वइच्छा जो कर्म अकर्मा। विशेषाधिकरणको धर्मा ॥ १९२ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और स्वयं अपने आपकी स्वइच्छासे जो कुछ भी प्रत्यक्ष कर्म वा अकर्म होता है, या किया जाता है, सोई विशेषाधिकरणका धर्म या गुण कहलाता है। अर्थात् दूसरेके संसर्ग बिना ही अपने ही मन खुशीसे किया जानेवाला समस्त कर्म, कुकर्मका स्थान या दर्जा विशेष या अत्यन्त प्रभावशाली होता है। यह बड़ा दृढ़तासे मनमें ठसा रहता है। यह जीवको विशेष करके ढाके रहता है। इसमें रजोगुणकी मात्रा अत्यधिक होती है। सो प्राणियोंको मोहित किये रहता है। इसीसे जीव बन्धनोंमें ही पड़े रहते हैं ॥ १९२ ॥

३१. याकी साख गीतामें भाई! पारथसे भाखी यदुराई ॥ १९३ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई! जिज्ञासु शिष्य! इसबारेमें साक्षी या प्रमाण चाहिये, तो इसके लिये गीतामें लिखा है। यदुराई = यदुपति कृष्णजीने, पारथ = पृथापुत्र अर्जुनसे जो बात वर्णन करके कहा है, सो श्रीमद्भगवत् गीता अध्याय १४ के श्लोक ७ में लिखा है, सो भी प्रमाणके लिये मैं तुमसे अब कह देता हूँ,

सुनो ! ऐसा कहके नीचेके श्लोक ग्रन्थकर्ताने प्रमाण दिये हैं-॥ १९३ ॥

श्लोकः—रजो रागात्मकं विद्धि, तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ॥
तन्निबध्नाति कौन्तेय । कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥
॥ भगवद् गीता अ० १४।७ ॥

॥ पद्य टीका ॥

दोहाः—रजगुण राजसरूप हैं । तृष्णा सङ्गके हेत ॥
(१८) कर्म सङ्ग करि जीवको । ऐसे बन्धन देत ॥ १९४ ॥

भाषा टीकाः—कृष्णजी कहते हैं:—हे अर्जुन ! रागरूप रजोगुणको, तृष्णा या कामना और आसक्तिसे उत्पन्न हुआ जान । वह रजोगुण इस जीवात्माको कर्मोंकी और उनके फलकी आसक्तिसे बाँधता है ॥

और रजोगुण जो है, सो रागका मूल स्वरूप ही है । वह तृष्णादि विकारके सङ्ग साथमें ही प्रेम लगायके बढ़ता है । फिर नाना कर्म-कुकर्मोंका सङ्ग करके जीवको ऐसे ही वह बन्धन देता रहता है । "त्रैलोक्यं कर्मबन्धनात्"—तीनों लोक कर्मबन्धनमें बँधे पड़े हैं ॥ "रजः कर्मणि भारत !"—हे अर्जुन ! रजोगुण कर्ममें लगाता है ॥ गीता १४।९ ॥ "तमः सत्त्वं रजस्तथा ।"—तमोगुण और सत्त्वगुणको दबाकर रजोगुण बढ़ता है ॥ १४।१० ॥ "लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा । रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥"१४।१२॥—अर्थात् हे अर्जुन ! रजोगुणके बढ़नेपर लोभ और प्रवृत्ति अर्थात् सांसारिक चेष्टा, तथा सब प्रकारके कर्मोंका स्वार्थ वुद्धिसे आरम्भ एवं अशान्ति अर्थात् मनकी चञ्चलता और विषय भोगोंकी लालसा, यह सब उत्पन्न होते हैं ॥ गीता १४।१२ ॥ "रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।"—रजोगुणके बढ़नेपर, अर्थात् जिस कालमें रजोगुण बढ़ता है, उस कालमें मृत्युको प्राप्त होकर, कर्मोंकी आसक्तिवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होता है ॥ "रजसस्तु फलं दुःख"—राजस कर्मका फल दुःख कहा है ॥ "रजसो लोभ एव च"—और रजोगुणसे निःसन्देह लोभ उत्पन्न होता है ॥ "मध्ये

तिष्ठन्ति राजसाः"—रजोगुणमें स्थित राजस पुरुष, मध्यमें अर्थात् मनुष्य लोकमें ही रहते हैं। रागी ही बने रहते हैं॥ गीता अध्याय १४+श्लोक १५।१६।१७।१८ ॥

इस प्रकार रजोगुणका स्वरूप, कर्म और गति, बताया गया है। यह राग ही सब प्रकारसे सब जीवको बन्धनोंमें डाल देनेवाला है। अतएव मुमुक्षुको रागसे सदा बचे रहना चाहिये। दृढ़ वैराग्यको धारण करके आशा-तृष्णादिमें कभी पड़ना नहीं चाहिये ॥ १९४ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—१९ ॥ चौपाई दो मात्र है ॥

१. यह विशेषादि कर्म परोक्षा। साख सुनाई तोहिं सब लक्षा ॥ १९५ ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य! परोक्ष अज्ञानमें विशेषाधिकरण परोक्ष कर्म रजोगुणसे ही उत्पन्न होता है। उसमें संसारकी विषयादि सुख भोगनेकी तृष्णा और स्वर्गादि सुख, चार फल, चार मुक्ति आदि पानेकी आशा लगी रहती है। उसके लिये विशेष-विशेष कर्म साधना परोक्षमें होते रहते हैं। वह मुख्यतः विशेष कर्मोंका स्थान ही बना रहता है। सो यही विशेषादि परोक्ष कर्मके बारेमें गीताके श्लोकका साक्षी या प्रमाण देकर उसके सब लक्षण सहित वर्णन करके अभी थोड़ी देर पहिले मैंने तुम्हें सुना दिया, बता दिया, वा समझा दिया है, सो ऊपर लिखा जा चुका है ॥ १९५ ॥

२. अब सुनु साख परोक्ष समाना। समानाधिकरण जेहि माना ॥ १९६ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—अब परोक्ष अज्ञानके अन्तर्गत रहा हुआ, सामान्य परोक्ष कर्म जिसे 'समानाधिकरण' माना है। जो सत्त्वगुणसे प्रगट होके विस्तार होता है। जिसको सात्त्विक कर्म साधना भी कहते हैं। समानरूपसे सत्त्वगुण ही उसका स्थान होता है। परन्तु वह भी जीवको बाँधनेवाला ही होता है। अबोध लोगोंने तो उसे यानी भक्ति आदिकको हितकारी मुक्तिदाई माने हैं,

परन्तु वह ऐसा नहीं है। सामान्य अज्ञानका स्थान परोक्ष समान अज्ञानके बारेमें भी कहा है। अब उसके लिये गीता अध्याय १४ श्लोक ६ का प्रमाण देता हूँ सुनो! ऐसा उपदेश कहके नीचेका श्लोक ग्रन्थकर्ताने ही प्रमाण देकर यहाँ लिखे हैं, सो जानिये ॥१९६॥

श्लोकः—तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्, प्रकाशकमनामयम् ॥
सुखसङ्गेन बध्नाति, ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥

॥ भगवद् गीता अ० १४।६ ॥

॥ पद्य टीका ॥

दोहाः—निर्मलअरु प्रकाशकरि। सतगुण शान्त सुभाय ॥
(१६) ज्ञानसङ्ग सुखसङ्गसे। बाँधत जीवहि जाय ॥१९७॥

भाषा टीकाः—कृष्णजी कहते हैंः—हे निष्पाप अर्जुन! उन तीनों गुणोंमें प्रकाश करनेवाला, निर्विकार सत्त्वगुण तो निर्मल होनेके कारण, सुखकी आसक्तिसे और ज्ञानकी आसक्तिसे अर्थात् ज्ञानके अभिमानसे बाँधता है ॥ ६ ॥

और सत्त्वगुण शान्त स्वभाव, शुद्ध भाव, निर्मल और प्रकाश करनेवाला है। परन्तु ज्ञान गुणके सङ्गमें सुखकी आसक्ति ले लेनेसे वही अभिमान और आसक्ति जीवको बाँधके चौरासीमें ले जाता है। सद्गुणोंका हंकार भी जीवको बन्धन ही देता है ॥

"सत्त्वं सुखे संजयति"—सत्त्वगुण सुखमें लगाता है ॥ गीता १४।९ ॥ "रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।"—हे अर्जुन! रजोगुण और तमोगुणको दबाकर, सत्त्वगुण होता है, अर्थात् बढ़ता है ॥

"सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते। ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्वमित्युत ॥"—जिस कालमें इस देहमें तथा अन्तःकरण और इन्द्रियोंमें, चेतनता और बोधशक्ति उत्पन्न होती है, उस कालमें ऐसा जानना चाहिये कि सत्त्वगुण बढ़ा है ॥ गीता १४।११ ॥

"यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् । तदोत्तमविदां लोकानमलान्—प्रतिपद्यते ॥"—हे अर्जुन ! जब यह जीवात्मा सत्त्वगुणकी वृद्धिमें मृत्युको प्राप्त होता है, तब तो उत्तम कर्म करनेवालोंके मलरहित या दिव्य, स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त होता है ॥ गीता १४।१४ ॥ "कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।"—सात्त्विक कर्मका तो सात्त्विक अर्थात् सुख, ज्ञान और वैराग्यादि निर्मल फल कहा है ॥ गीता १४।१६ ॥ "सत्त्वात्संजायते ज्ञानं"—सत्त्वगुणसे ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ १४।१७ ॥ "ऊर्ध्वंगच्छन्ति सत्त्वस्था" १४।१८ ॥—सत्त्वगुणमें स्थित हुये पुरुष, उच्च लोकोंको जाते हैं । अर्थात् मनुष्योंमें ज्ञानी होते हैं ॥ "सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः । निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥"—हे अर्जुन ! सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ऐसे यह प्रकृतिसे उत्पन्न हुये तीनों गुण, इस अविनाशी जीवात्माको शरीरमें ही बाँधते हैं, ऐसा तू जान ॥ गीता १४।५ ॥

इस प्रकार सत्त्वगुणका स्वरूप, गुण और गति आदि बताया है । उसमें सुखाध्यास आसक्ति, ज्ञानादिका अभिमान् ऐसे सूक्ष्म विकारका बीज बने रहनेसे जीव ज्ञानादि साधना करके भी बद्ध हो आवागमनोंमें हो पड़े रहते हैं । तीनों गुणोंके कर्म अध्यास बन्धनका ही स्वरूप है । अतएव योगी, ज्ञानी, भक्त, और कर्मी लोग उक्त त्रिगुणी माया जाल खानी-वाणीमें अरुझ-अरुझकर बिना पारख आवागमन चौरासी योनिमें जानेके अधिकारी भये हैं और हो रहे हैं । मुमुक्षुओंने पारखी सद्गुरुके सत्संग द्वारा उन सब रहस्योंको समझकर त्रिगुण मायाके जालोंसे बाहर निकल जाना चाहिये, तभी मुक्ति होगी, ऐसा जानो ॥ १९७ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—२० ॥ चौ० १ से ५ तक है ॥

१. यहि विधि द्वै प्रकार अज्ञाना । परोक्ष औ अपरोक्ष बखाना ॥१९८

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—हे शिष्य ! इस

प्रकारसे अज्ञान दो प्रकारके हैं। जिसको परोक्ष अज्ञान और अपरोक्ष अज्ञान कहते हैं। उसका विस्तार मर्म प्रथम दिखाकर बता ही चुका हूँ। संक्षेपमें अर्थ यह है—बाहर दूसरेके सम्बन्धसे पुष्ट होनेवाला अज्ञान ही 'परोक्ष' है। और भीतर अपने-आपही प्रगट होके फैलनेवाला अज्ञान, सो 'अपरोक्ष' है। इसका व्याख्या वर्णन विशेषरूपसे ऊपर हुआ है। यही दो तरहके अज्ञान हैं, ऐसा कहा जाता है ॥ १९८ ॥

२. याहीको त्वंपद है नाऊँ। वेद प्रमाण सकल समझाऊँ ॥१९९॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—परोक्ष और अपरोक्ष यही दो प्रकारके अज्ञानको त्वंपद नामसे कहते हैं; अर्थात् त्वंपद उसी अज्ञानका ही नाम धरे हैं। उसके विवरण वेद और शास्त्रोंके कथन प्रमाणसे सम्पूर्ण तुम्हें समझा दिया हूँ! और भी जो कुछ बाकी है, सो सकलको भी वेद प्रमाणसे वर्णन करके समझाऊँगा! परन्तु उसमें सत्यासत्यका यथार्थ निर्णय करना और समझना चाहिये। परखनेके लिये और भूल मिटानेके लिये ही मैं यहाँ तुम्हें इस प्रकरणको विस्तारसे कह रहा हूँ। सो तुम भी विवेक करते जाओ ॥ १९९ ॥

३. द्वै प्रकार अज्ञान कहावा। तामें विशेष कला दुइ पावा ॥२००॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—दो प्रकारका मुख्य अज्ञान जो कहा गया या ऐसा कहलाया, सो उसमें भी विशेष करके दो कला या दो भाग भिन्न-भिन्न दो खण्डमें पाया गया है। अर्थात् विशेष अपरोक्ष अज्ञान और विशेष परोक्ष अज्ञान, यही दो कला उसमेंसे प्राप्त हुई। तहाँ नास्तिक, चार्वाक, भौतिक मतवादी, बाममार्गी, मूढ़ विषयी, इत्यादि लोग अपरोक्ष अज्ञानके विशेष भागमें आते हैं। और कर्मकाण्डी, तपस्वी, योगी, भक्तादि लोग, सब परोक्ष अज्ञानके विशेष कलामें लगे रहते हैं। उनमें विशेष अज्ञानी तमोगुण ग्रसित होते हैं। और परोक्ष अज्ञान विशेषवाले रजोगुण ग्रसित होते हैं।

विशेष करके यही दो कला उसमें है ॥ २०० ॥

४. औ पुनि द्वै समान बखाना। यामें बँधे जीव विधि नाना ॥२०१

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और फिर सामान अज्ञान भी दो प्रकारसे ही वर्णन किया गया है। अर्थात् सामान्य अपरोक्ष अज्ञान और सामान्य परोक्ष अज्ञान, यह दो कला और भी उसमें विभक्त हुई है। भौतिकवाद और नास्तिकमतादिमें परइच्छासे प्रवृत्त होनेवाले विषयासक्त मन्दमतिके लोग सामान्य अपरोक्ष अज्ञानी कहलाते हैं। और ईश्वर उपासक, त्यागी-वैरागी, साधक, उदासी, इत्यादि लोग सामान्य परोक्ष अज्ञानमें ठहरे हुये होते हैं। ऐसे लोग ज्यादातर सत्त्वगुणी होते हैं। और अपरोक्ष सामान्य अज्ञानवालोंमें रजोगुण-तमोगुण मिश्रित रहता है। इस प्रकार दो तरहके सामान्य अज्ञान और दो तरहके विशेष अज्ञान यही चार भागमें मनुष्यादि सब जीव नाना प्रकारके शुभाशुभ कर्म-कुकर्म कर-करके बँधे पड़े हैं। उसी अध्यास वश चारखानी चौरासी योनियोंकी कैदमें घिरे पड़े हैं। भव बन्धनोंमें अच्छी तरहसे अरुझ-अरुझके जकड़े पड़े हैं। अनेक तरहसे अब भी जीव सब उसी बन्धनोंमें बद्ध हो रहे हैं ॥२०१॥

५. सोई जीव अज्ञानी होई। द्वै विधि जेहि अज्ञान समोई ॥२०२॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—जो कोई उपरोक्त दो प्रकारके अज्ञानमें अर्थात् अपरोक्ष, परोक्ष; विशेष, सामान्य; इन दो-दो प्रकारके अज्ञान जालमें स्वेच्छा, वा परइच्छा करके उनमें सम्मिलित होते हैं, आसक्ति दृढ़ करके उसीमें चिपके रहते हैं; अथवा जिसमें संगदोषसे आके उक्त दो तरहके अज्ञान समाते हैं, जो अविद्या ग्रसित हो रहते हैं, सोई अज्ञानी जीव हैं या इसी कारणसे जीव अज्ञानी, अबुद्ध, अल्पज्ञ, होते हैं या वैसा कहे जाते हैं। यानी सोई अज्ञानी जीव हैं, जो उन दो प्रकारके अज्ञानोंमें समाते हैं, ऐसा जान लेना चाहिये ॥ २०२ ॥

दोहाः—अज्ञानी जिव याहिते । नाम परो है जान ॥
(२०) दुइ प्रकार अज्ञानको । दृढ़कै लीन्हों मान ॥ २०३ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य ! संक्षेपमें उत्तरका सार यही है, कि—स्वरूपसे तो जीव नित्य, सत्य, अखण्ड, शुद्ध है । परन्तु देहादि बन्धनोंमें घिरा पड़ा है । और दो प्रकारके अज्ञान=अपरोक्ष समान और विशेष अज्ञान और परोक्ष समान और विशेष अज्ञान जो कि—निज इच्छा तथा परइच्छासे विस्तार होता है । सो यही दो तरहके अज्ञान, अविद्या, भूलको मनुष्योंने दृढ़ करके भ्रमसे अच्छा मान लिया है, और उसे ही परिपुष्ट करके मान ही रहे हैं । इस कारणसे अज्ञानी जीव, त्वंपद, अल्पज्ञ, देहाभिमानी, ऐसे उस जीवके नाम पड़े हैं । तथापि जानपना या चैतन्यपना उसमें ज्योंकी त्यों मौजूद रहती है ! तभी तो जान-जानके नाना मत, पन्थ, और विषयादिको मानता है । यदि उसके जानपना या ज्ञान गुण भी नाश होता, तो फिर अज्ञानके मानन्दी कर-करके बन्धनोंमें कैसे पड़ा रह सकता था ? अतएव जीवका स्वरूप तो कुछ भी बदला नहीं है । जीव तो एकरस ही है । परन्तु उन दो तरहके अज्ञानको अपनेमें दृढ़ करके मान लिया है, इसीसे उसको अज्ञानी जीव कहते हैं, यह नाम संज्ञा कामको देखके ऊपरसे पड़ा है, अर्थात् ऐसा नाम पीछेसे कार्यके साथमें रखा गया है, सो उसका भेद तुम भी अब जान लो । कहो तुमको यह प्रकरण कैसे समझमें आया है ? क्या समझे हो, सो बताओ ॥ २०३ ॥

॥ ८ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्ददीपक—८ ॥ खण्ड—१५ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—२१ ॥ चौ० १ से ६ तक हैं ॥

१. हे प्रभु ! अहु जीवन सुखदाता । मेटेउ मोर संशय भ्रमघाता ॥२०४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता शिष्यकृत प्रसस्ति और शंकारूप आठवें प्रश्नको दर्शाते हैं । शिष्य कहता है—अहो हे सद्गुरो प्रभो ! आपको

धन्य-धन्य है ! सब जीवोंको हर तरहसे सुख देनेवाले हे सुखदाता ! आप तो साक्षात् सुखस्वरूप ही हो ! मेरा भाग खुला, जो मैं आपके शरणमें आया, उसका प्रत्यक्ष ही सुखफल मिल गया। मुक्ति पदको घात या विनाशकारी ऐसे भ्रम, संशय, दुविधा जो मेरे मनमें लगी थी, सो उसे निवारण, मारण करके भ्रम मिटाय, मुझे निःसन्देह सुखी कर दिये हो। अर्थात् घातक मेरे भ्रम सन्देहको आपने मिटा दिया है। हे प्रभु ! आप जीवोंके सुखदाता हो। मैंने अभी आपको ठीकसे पहचाना हूँ ॥ २०४ ॥

२. तुम समानको आहि दयाला। हतेउ भरम बसि कियेउ निहाला ॥२०५

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और हे प्रभो ! आपके समान परम दयालु, कृपालु, दीनबन्धु ! और कौन है ? कोई नहीं। सारे संसार भरमें ढूँढनेपर भी आप पारखी गुरुके समान कल्याणकारी और दूसरे कोई मिलनेके नहीं। यानी मुझे तो कहीं कोई ऐसा हितकारी यथार्थ परखानेवाले मिले नहीं। मैं तो अबोध हो भ्रम-भूलके वशीभूत हो, नाना तरहसे भटकना खाकर दुःखमें पड़ा था, यानी भ्रमवश बेहाल हो रहा था, आप कृपालुने पूर्वका सब सन्देह-भ्रम मिटाकर मुझे निहाल वा परमसुखी कर दिया है। अतएव आपसे बढ़के तो कैसे कहूँ, परन्तु आपके समान भी अहेतुकी दया करनेवाला सच्चा दयालु और कोई नहीं है। हम दीन दुःखी जीवोंका दुःख हरण करके बड़ा सुखी कर दिया है ! बलिहारी है आपकी ॥ २०५ ॥

३. दोय प्रकार अज्ञान बतावा। तामें चारि कला समुझावा ॥ २०६ ॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—हे गुरुदेव ! आपने दो प्रकारका अज्ञान बता दिया, परोक्ष और अपरोक्ष, फिर उसमें एक-एकमें समान विशेष दो-दो भाग करके दोनोंमें मिलाके चार कला या चार तरहके भेद समझाया है, सो सब आपके कृपा-प्रसादसे मेरे समझमें आ गया है, कि—अज्ञान दो प्रकारके होते हैं। उनमें समानाधिकरण

और विशेषाधिकरण, परोक्ष अज्ञानमें दो कला हुए हैं। तथा अपरोक्ष अज्ञानमें भी वैसी ही दो कलायें होती हैं, ऐसे आपने कहा है, सो तो समझमें आ गया है ॥ १०६ ॥

४. यामें बँधे जीव अज्ञानी । यह विचार हमरे मन मानी ।।२०७

टीकाः—शिष्य कहता हैः—उसी अज्ञानकी चार कलायें एवं नाना कार्योंमें अज्ञानी जीव घिरे पड़े हैं। इसलिये जीवको अज्ञानी कहा जाता है। ऐसा आपने जो कहा है, यह बात भी विचार करनेसे हमारे मनमें भी वही निश्चय होती है। इसीसे मैंने उसको उसी तरह मनमें मानलिया है। सो विचार मनमें जँच गया कि ठीक है ॥२०७॥

५. अब जो विनय करों प्रभुराई ! तौन भेद गुरु देहु बताई ।।२०८

टीकाः—शिष्य कहता हैः—ज्ञानियोंमें राजाके समान सन्त शिरोमणि हे प्रभो ! अब मेरे हृदयमें जो कुछ सन्देह उठा है, सो विनय करता हूँ ! हे गुरुदेव ! हृदयान्धकारको विनाश करके सत्यज्ञान प्रकाश करके उसके भेदको भी बता दीजिये ! आपके दर्शाये बिना मैं उस बातको जान नहीं पा रहा हूँ ! अतएव दया करके समाधान कर दीजिये ॥ २०८ ॥

६. जीव अज्ञान एक ही कहिये ? । की कछु भिन्न भाव करि लहिये ? ॥२०९

टीकाः—शिष्य कहता हैः—हे साहेब ! शङ्का यह है कि—जीव और अज्ञान यह स्वरूपसे एक ही कहलाते हैं ? की = अथवा भिन्न-भिन्न भाव उनमें लिया जाता है ? एक है, तो कैसे ? किस प्रकारसे होता है ? और अलग-अलग है, तो किस तरह माना जाता है ? अज्ञान तथा जीवमें क्या फरक है ? जीवमें ही वह अज्ञान प्रगट होता है, तो यह जीवका ही गुण है कि—क्या कैसा है ? कहिये जीव और अज्ञान न्यारे-न्यारे हैं ? कि—एक है ? इसका यथार्थ बोध जिस प्रकारसे मुझे प्राप्त होवे, तैसा कृपा करके बता दीजिये ! यहा शङ्कारूप मेरा प्रश्न है ? ॥ २०९ ॥

दोहाः—जीव अज्ञान सो भिन्न है। की धौं एकै होय ? ॥
(२१) यह शंका प्रभु मेटिके। देहु सकल भ्रम खोय ॥ २१०॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता शिष्यके प्रश्नका सारांश बतलाते हैंः—शिष्य कहता हैः—हे सद्गुरो! फिर भी मैं उसी प्रश्नको दोहराके खुलासेवार प्रस्तुत करता हूँ! क्योंकि मैं उसका पूरा-पूरा खुलासा उत्तर चाहता हूँ! चैतन्य जीव और उसका अज्ञान सो दोनों गुण-गुणीके नाईं वस्तुतः एक ही है? कि भला! वे दोनों भिन्न-भिन्न ही दो वस्तु हैं? उनके संयोग सम्बन्ध वा समवाय सम्बन्ध कैसा सम्बन्ध है? अज्ञान तथा जीवको कैसे मानना? और जीवके लक्षण तो आपने पहले बतलाया था, परन्तु अज्ञानका गुण लक्षण कैसा होता है, यह मैं पूरा नहीं जानता हूँ, इसलिये यह सन्देह उत्पन्न होके भ्रमा रही है। अतएव हे सद्गुरो प्रभो! यह मेरे कठिन शंकाको मेट-मिटाय करके सम्पूर्ण भ्रम भूलको खोयके विनाश कर दीजिये! पारख ज्ञानका प्रकाश कीजिये ॥ २१० ॥

॥ ८ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—८ ॥ खण्ड—१६ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—२२ ॥ चौ० १ से ८ तक है ॥

१. हे शिष्य! सुनहु कहौं विधि सोई। जीव अज्ञान एक नहिं होई ॥२११

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे जिज्ञासु शिष्य! तुम्हारे शङ्काका समाधान सत्यन्याय निर्णयसे विधिपूर्वक मैं अब कहता हूँ! सो ध्यान देकरके सुनो! जो विधि-विधान दृष्टान्त सहित सिद्धान्त कहता हूँ! सोई लक्षपूर्वक सुननेसे तुम्हारा भ्रम निवारण होगा। इसलिये चित्त एकाग्र करके मेरे वचनको सुनो! जीव और अज्ञान यह दो हैं, सो कदापि एक नहीं है, न एक हो सकते हैं। क्योंकि जीव सत्य पदार्थ है और अज्ञान कोई पदार्थ नहीं, भ्रम-भूल मात्र है। फिर कहो वह कैसे एक हो सकता है? इसीलिये मैं कहता हूँ कि—जीवसे अज्ञान भिन्न है ॥ २११ ॥

२. रोगी रोग एक नहिं भाई ! । ये तो विदित सब जगत् जनाई ॥२१२॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई शिष्य ! उसके लिये प्रथम दृष्टान्त सुनो ! फिर सिद्धान्तका बोध होगा । रोगी मनुष्य और रोग-व्याधि विकार वात, पित्त, कफजनित जो होता है, सो यह दोनों कभी भी एक नहीं होते । त्रिकालमें रोगसे रोगी जीव न्यारा ही रहता है । यह बात तो जग जाहिर है, संसारमें सब कोई जानते हैं और सबको ऐसा ही मालूम भी स्वयं होता है कि—रोग तथा रोगी एक नहीं है, किन्तु दो हैं । इसी प्रकार अज्ञान सो रोग विकारवत् है, जीवको रोगके जनैया रोगीके ठिकाने जानना चाहिये । जीव तो जगत्के सारे वस्तु, अवस्तुओंको समेत् जानने-जनानेवाला, जाहिर हाजिर-हजूर है ॥ २१२ ॥

३. रोगी रोग एक जो होता । तो बिकल रोग वशि काहेक रोता ? ॥२१३॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और इस बातको सोचो और समझो कि—रोगी प्राणी और रोग विकार यदि कदाचित् दोनों दो न हो करके एक ही जो होता, तो बतलाओ रोगके वश पीड़ित, व्याकुल, होकरके वह क्यों रोता ? एकमें समान गुण सदोदित रहनेसे कदापि उसमें सुख-दुःखका प्रकाश हो सकता नहीं । हाँ विजातीय दूसरेका सम्बन्ध होनेपर जरूर दुःखादि होते हैं । एक वस्तुमें नाम-रूप, गुण सदा एक समान रहता है, कभी विपरीत नहीं होता । अपने आपमें दुःखका अनुभव कभी कोई करता नहीं । अपनेसे भिन्न देहादिके सम्बन्धमें ही वह भास होता है । इसी तरह जीव और अज्ञान दोनों एक ही होते, तो फिर अज्ञान करके जीव कभी दुःखी न होता । बल्कि परम सुखी हो जाता । अज्ञानसे छूट करके ज्ञान प्राप्त करनेकी, मुक्त होनेकी इच्छा भी किसीको न होती । परन्तु बात ऐसा नहीं है । अज्ञानको अपनेसे भिन्न सब कोई तुच्छ, त्याज्य मानते हैं । तैसे जीवको श्रेष्ठ ग्राह्य ही समझते हैं ॥ २१३ ॥

४. रोगी भिन्न रोग है भिन्ना । तिमि ये जीव अज्ञानहि चिह्ना ॥२१४॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—इस कारणसे रोगी भिन्न है, और देहके रोग विकार त्रिदोष सर्वदा भिन्न हैं और भिन्न ही बने रहते हैं। देहके मध्य सम्बन्धसे दोष उत्पन्न होनेपर रोग प्रगट होके पीड़ा, शूल, ताप भोगाता है। फिर अच्छी औषधि सेवन करके परहेजमें रहनेसे वा समय पूरा होनेसे रोग मिट भी जाता है। फिर वह प्राणी निरोगी कहलाता है। यदि रोग ही उसका स्वरूप होता, तो रोग कभी किसी प्रकार भी न छूटता, सदा रोगसे सब कोई पीड़ित ही बने रहते। परन्तु ऐसी बात नहीं है। रोग आता-जाता रहता है। प्राणी रोगी-निरोगी होते रहते हैं। अतएव इसीसे साबित हो गया कि—रोग और रोगी दोनों भिन्न-भिन्न हैं। और न्यारा-न्यारा ही बने रहते हैं। सम्बन्ध मध्यमें होता है। उसी प्रकार यहाँ जीव और अज्ञानके भी चिह्न = लक्षणसे पहचान होता है। रोगी-निरोगी होनेवाला देहधारी जीव ही मानन्दी दृढ़ कर-करके अज्ञानी, ज्ञानी होता रहता है। अगर अज्ञान ही जीवका स्वरूप होता, तो उसमें ज्ञानका प्रकाश उदय कभी न होता। जैसे सूर्यके स्वरूपमें अन्धकार नहीं है, परन्तु प्रकाशके अभावमें ही वह अन्धकार प्रगट होता है। तैसे चैतन्य जीवके स्वतः स्वरूपमें अज्ञानका कहीं नामों-निशान भी नहीं है। देह सम्बन्धमें भूल करके ही अज्ञान भास होता है, ऐसा विवेक करके जानलो ॥ २१४ ॥

५. जीव चैतन्य सदा अविनाशी। जड़ आसक्त अज्ञान सो नाशी ॥२१५

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य ! इसका और भी खुलाशा मैं कहता हूँ ! सुनो ! सदा जीते रहनेवाला अमर स्वरूप जीव चैतन्य ज्ञानकार नित्य, सत्य, अखण्ड, अविनाशी सदाकाल एकरस रहता है। जीवके स्वरूपमें कभी घट-बढ़ वा विवर्त होता नहीं। तीनकालमें ज्योंका त्यों नित्य शुद्ध बना रहता

है । उसका ही नाम जीव है ।—"ज्ञानस्वरूप चैतन्य सो, ताहि कहत है जीव । नित्य-अखण्ड अविनाशी रहै, सत्य जीव सुयीव ॥" और उसके विपरीत सदा कायम न रहनेवाला, परिणामी, जड़, अचेत, अज्ञान, अनित्य, असत्य, विनाशी घट-बढ़ होनेवाला होता है । अर्थात् नाशवान् देहोंके सम्बन्धमें विषयानन्दादिके सूक्ष्मादि हंकार नाना भास, अनुमान, कल्पना, काम, क्रोधादि एवं जड़देहोंके विकार इत्यादि जीवोंकी मानी हुई जड़ाशक्ति यही अज्ञान है । क्योंकि इन्द्रियोंके संस्कार दोषोंको अविद्या कहते हैं । इसलिये अज्ञानका आकारयुक्त कोई स्वतन्त्र स्वरूप ठहरता नहीं । किन्तु मनुष्य जीवोंकी जड़ विषयाशक्ति वही अज्ञान है । अतएव अज्ञान जो है, सो जड़ देहादिकी आशक्ति—अध्यासमात्र स्वयं शक्तिहीन नष्टरूप या नाश होनेवाला अस्थाई भ्रमके पकड़मात्र ही है । ऐसा जानलो ॥ २१५ ॥

६. नास्ति अज्ञान सम्बन्धी भयेऊ । ताते नाम अज्ञानी कहेऊ ॥२१६॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और जीवोंने नाशवान् जड़देहादिकी सम्बन्धमें जड़ाशक्तिसे अध्यास टिकाय, जड़को दृढ़ करके प्रियतासे जो मानन्दी किया, वहीं अज्ञान है । नास्ति अध्यास, भासमात्र अज्ञानसे घनिष्ठ सम्वन्धित होता भया, इसवास्ते चैतन्य जीवको अज्ञानी कहा गया, यानी मिथ्या मानन्दीरूप अज्ञानके सम्बन्धित होनेसे जीवका नाम अज्ञानी पड़ा, या अज्ञ कहलाया । जैसे रोगके सम्बन्धसे रोगी, भोगके साथसे भोगी, योगके साथसे योगी, शराब पीनेसे शराबी, जूआ खेलनेसे जूआरी इत्यादि प्रकारसे कर्ता व्यक्तिको कार्यके विशेषणसे ही तदनुरूप नाम पड़ जाता है । नामसे उसका काम भी जाहिर होता है । तोभी कर्ता कर्मसे, भोक्ता भोगसे सदैव न्यारा ही रहते हैं । तभी वह कर्म और भोगादिमें प्रवृत्त हो सकते हैं । तैसे ही अज्ञान नास्ति भी है, तो भी मानन्दी मात्रका सम्बन्ध तो हो गया है न, इसीसे जीव अज्ञानी कहलाया है या इसी कारणसे उसे अज्ञानी नामसे कहते हैं, ऐसा जानो ॥ २१६ ॥

७. अज्ञानके सम्बन्ध ते भाई ! अज्ञानी नाम जीव कहाई ॥२१७॥

टीकाः—और सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई शिष्य ! प्रेम पूर्वक विपरीत भावसे मानन्दीरूप अज्ञानके साथमें सम्बन्ध स्थापित करनेसे ही 'अज्ञानी' ऐसा विशेष नाम जीवका कहलाया। जैसे प्रेम करने वाले प्रेमी, रागी, और द्वेष करनेवाले द्वेषी, विरागी, कहलाते हैं। तैसे अज्ञानके कार्य करनेवाले नरजीवादि भी अज्ञानी नामसे कहे जाते हैं। सम्बन्ध विशेष तथा तदनुरूप कार्यको देख करके ही बुद्धिमान् मनुष्य ज्ञानी लोगोंने उसी प्रकार नाम भी रखे हैं। नहीं तो नाम कल्पित होता है, व्यवहारके लिये ही गुण लक्षणको लखके वैसे नाम रखा जाता है। क्योंकि नाम सम्बोधनके विना व्यवहार चलेगा नहीं। अतएव नाम-रूपको स्थापन करनेवाला चैतन्य जीव सदा उससे न्यारा परिक्षक-द्रष्टा ही बना रहता है। अज्ञान करके जीव अज्ञानी नामसे कहाया। फिर ज्ञान प्रकाश होनेपर वह नाम मिटके ज्ञानी ऐसा दूसरा ही नामसे कहलाता है। वहाँ जीवके स्वरूपका तो कुछ बदलाव होता नहीं। सिर्फ ऊपरी स्वभावमें फरक पड़ जाता है, ऐसा जानो ॥ २१७ ॥

८. अज्ञान भिन्न अज्ञानी भिन्ना। इमि जाने सो ज्ञानकी चिह्ना ॥२१८॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—इन सब कारणोंसे विवेक करनेपर यही निर्णयसे निश्चय ठहरता है कि—जड़देह विषयादिके आसक्ति मिथ्यामानन्दी यह अज्ञान, भ्रम, भूल, अविद्या, भिन्न हैं, और अज्ञानी चैतन्य जीव उसे माननेवाला सर्वथा भिन्न है। इस प्रकारसे जाने-पहिचाने, समझे-बूझे, सोई ज्ञान = बोध, विवेक, होनेकी चिह्न = लक्षण, परिचय होना है। अर्थात् अज्ञान और अज्ञानीके गुण-लक्षण, रूप-सम्बन्धादिको भिन्न-भिन्न निर्णय करके जो यथार्थ हंसे भेदको जानते हैं, सोई ज्ञानी जीवके ज्ञान गुणको पारखसे चिह्नते हैं। यही ज्ञानका चिह्न है, जिससे सब अज्ञान समूल नाश हो जाता है, ऐसा जानो ॥ २१८ ॥

दोहाः—जीव और अज्ञान सो । कभी सम्बन्ध न होय ॥
(२२) वह आसक्त जड़ नास्ति है । यह अविनाशी सोय ॥२१९

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य ! जीव और अज्ञान दोनों भिन्न-भिन्न हैं । जीव सत्य पदार्थ है, परन्तु अज्ञान कोई पदार्थ नहीं । जड़ चारतत्त्व कारण-कार्यरूपसे अनन्तों परमाणु समूह संयुक्त पदार्थ हैं । तथा अखण्ड चैतन्य सद्वस्तु ही जीव है । ऐसे अज्ञानका स्वतन्त्र कोई स्वरूप है नहीं । इसलिये अज्ञान परमाणु संयुक्त कोई पदार्थ-द्रव्य नहीं । केवल जड़ देह और चैतन्य जीवकी अध्यासरूप सम्बन्धमें अज्ञान प्रतिभास होता है, सो अन्धकारवत् विकार मात्र है । इस कारणसे सत्य जीवका, असत्य अज्ञानसे स्वतन्त्र सम्बन्ध स्थापित कभी भी हुआ नहीं । और होनेवाला भी नहीं । अज्ञानसे जीवका मिलान कभी हो सकता नहीं । साकार-साकारका सम्बन्ध होता है । परन्तु वस्तु और अवस्तुका सम्बन्ध कैसे होगा भला ? कहा हैः—

"साकारसाकार सम्बन्ध होता । निराकार साकारका क्या नियन्ता" ॥ न्यायनामा ॥

—साकार जड़ चारतत्त्व और साकार चैतन्य जीव इन दोनोंका तो संयोग सम्बन्ध हो सकता है । परन्तु निराकार अज्ञान और उसके विकार कल्पना ब्रह्म, ईश्वरादि इनसे जीवका कैसे किस प्रकारसे पृथक् सम्बन्ध होवेगा ? कभी होता नहीं ।

सम्बन्ध कितने प्रकारके होते हैं ? उस बारेमें कहा है; सो भी सुनिये !—

१. संयोग सम्बन्ध तीन प्रकारके होते हैंः—अन्यतरकर्मज, उभयकर्मज, और संयोगजसंयोग ऐसे कहे हैं । उनके अर्थ ऐसा है कि—एकमें ही क्रिया होवे, जैसे-क्रियावान् पक्षीका वृक्षसे संयोग, वह 'अन्यतरकर्मज' संयोग है । दोनोंमें क्रियायें होवे, जैसे—दो पहलवानोंका लड़नेमें परस्पर संयोग, वह 'उभयकर्मज' संयोग है ।

और एकका संयोग रहकर अन्यके साथ संयोग होवे, जैसे—हाथ सहित देहका वृक्षके साथ संयोग होनेसे डालियाँ, पत्रादि सबोंके साथ संयोग होना, सो 'संयोगजसंयोग' है ।

२. और कार्य-कारणका सम्बन्ध समवाय होता है। घटादि कार्योंका अपने कारण कपाल आदिकोंके साथ सम्बन्ध, और द्रव्योंके साथ गुण और कर्मोंका सम्बन्ध, वह 'समवाय सम्बन्ध' है। जैसे, गुण-गुणीका, धर्म-धर्मीका, क्रिया—क्रियावान्का, अवयव-अवयवीका, जाति और प्रत्येक व्यक्तिका, समवाय सम्बन्ध रहता है। यहाँ प्रत्यक्ष अनुभवमें आता हुआ नित्य सम्बन्ध ही समवाय सम्बन्ध है, जैसे, अग्निमें उष्णता। तादात्म्य सम्बन्ध, आधार—आधेय सम्बन्ध, व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध, इत्यादि कइयेक सम्बन्ध शास्त्रकारोंने माने हैं। उन सब सम्बन्धोंमें संयोग और समवाय ये दो सम्बन्ध ही मुख्य हैं। इस बारेमें विशेष वर्णन "निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन" में लिखा है। उसीका सारांश नाम मात्र यहाँ दर्शा दिया गया है।

वास्तवमें जीव और अज्ञानसे कभी नित्य सम्बन्ध और अनित्य संयोग सम्बन्ध भी होता नहीं। सिर्फ देहके साथमें वह भास होता है। जीव और जड़ देहका अध्यास, सुखाशक्ति मात्र सम्बन्ध मुख्य है। वह अज्ञान जड़के आशक्ति नास्ति मिथ्या धोखा है। बोध होने पर नाश होनेवाला भ्रम मात्र है। और यह जीव तो अविनाशी स्वयं सत्य स्वरूप अखण्ड, नित्य, एकरस है। अतएव जीवसे हर हालतमें अज्ञान भिन्न है। प्रत्यक्ष युक्ति प्रमाणसे यह बात सिद्ध है। अब इस बारेमें अच्छी तरहसे तुम भेद जान लो ॥ २१९ ॥

॥ ९ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक ९ ॥ खण्ड—१७ ॥

सोरठाः—हे गुरु दीनदयाल ! । जीव रहत अज्ञान वश ॥
(१) ताते सदा बेहाल । बहुरि-बहुरि जग तन धरै ॥ २२० ॥

। टीकाः— ग्रन्थकर्ता, शिष्यके नवें प्रश्नको बतला रहे हैं—प्रथम

पूछा हुआ प्रश्नका पूरा उत्तर हो जानेपर जिज्ञासु शिष्यने इस प्रकार कहा है कि,– हे सद्गुरो ! आप दीनदयालु, कृपालु हो । हमारे समान दीन-हीन जीवोंपर दया करके सत्य उपदेश देते हैं । जीव और अज्ञान दोनों भिन्न-भिन्न हैं, यह तो मैंने आपकी कृपासे अब समझा हूँ । परन्तु सब जीव अध्यासी होनेसे देहके बन्धनोंमें ही पड़े रहते हैं । और शरीरके साथ ही अज्ञान-अविद्या, भ्रम-भूलके वश ही हो रहते हैं । इस कारणसे सदा काल बेहाल, परम दुःखी, कष्टित, त्रिविधि तापोंमें सन्तप्त हो रहे हैं । उसी अज्ञान अध्यास वश फिर-फिर उलट-पुलटके बारम्बार जगत्में शरीर धारण करते-छोड़ते, जन्मते-मरते, गर्भवासमें जाते-आते शरीर धारण करके नाना तरहके कष्ट-क्लेश भोगते रहते हैं ॥ २२० ॥

सोरठाः–किमि अज्ञान होय नाश ? । कैसे ज्ञान प्रकाश होय ? ॥
(२) जीव पावै सुख वास । सोई युक्ति बताइये ? ॥ २२१ ॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—अतएव हे प्रभो ! मेरा प्रश्न तो यह है कि–वह अज्ञान जड़ाध्यास कैसे नाश होगा ? किस तरहसे छूटेगा ? कैसे करनेसे अज्ञानका मूल विनाश होगा ? और सत्य ज्ञान स्वस्वरूपका ज्ञान कैसे हृदयमें प्रकाश होगा ? सत्यका बोध कैसे होगा ? और किस प्रकारसे जीव मुक्ति सुखमें निवास कर पावेगा ? जीवकी सब वासनायें कैसे छूटेंगी ? जीवन्मुक्त सुखकी अटल स्थिति जीवको कैसे प्राप्त होगी ? सोई सबका समाधान सत्यन्याय निर्णयसे कहिये । हे गुरुदेव ! वही युक्ति-प्रयुक्तिसे बतलाइये, जिस तरह मुझे बोध हो, वैसे ही युक्ति पूर्वक दरशा दीजिये, यही मैं नम्रतापूर्वक विनय करता हूँ ॥ २२१ ॥

सोरठाः–कै प्रकार है ज्ञान ? । सोई विधि समुझाइये ॥
(३) एक कि द्वै परमान ? । निर्णय सत्य लखाइये ॥ २२२ ॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—हे श्रीसद्गुरु साहेब ! ज्ञान कितने

प्रकारके हैं ? या कितने होते हैं ? ज्ञान जो है, सो एक ही तरहका होता है ? अथवा ज्ञान भी अज्ञानके समान ही दो प्रकारका होता है ? सो एक है कि–दुई है ? इसमें क्या प्रमाण है ? कैसे माना जाता है ? और कैसे मानना चाहिये ? अब आप कृपा करके सोई तरीका प्रकरण विधिपूर्वक उसी तरह मुझे समझाइये । सत्यासत्यका यथार्थ निर्णय बोधको हे गुरुदेव ! लखा दीजिये, परखा दीजिये, भ्रम मिटा दीजिये ॥ २२२ ॥

॥ ६ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—६ ॥ खण्ड १८ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—२३ ॥ चौ० १ से ९ तक है ॥

१. हे शिष्य ! तोहि त्वंपद समुझावा । द्वै प्रकार अज्ञान बतावा ॥ २२३ ॥

टीकाः—शिष्यके ऐसे प्रश्नको सुनकर सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब फिर उसे समझाके कहते हैं—हे जिज्ञासु शिष्य ! तुम्हें मैंने पहिले त्वंपदका प्रकरण समझाया था । उसमें परोक्ष और अपरोक्ष भेदसे दो प्रकारका अज्ञान बतलाया हूँ । उसके भीतर भी समान, विशेष, स्वइच्छा, परइच्छासे होनेवाला दो-दो भेद दरशा दिया हूँ, सो तो तुमने भली-भाँति समझ ही लिया है ॥ २२३ ॥

२. कर्म उपासना और उपाधी । त्वंपद भयेउ वेदकी आधी ॥ २२४ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और बाकीके भेद सुनो ! ज्ञानमार्ग प्रगट होनेके पहिले ही त्वंपदका अज्ञान मार्ग फैला था । क्योंकि जगत् अनादिकालका है । इसीसे प्रथम अज्ञान हुआ, पीछे ज्ञानका विकाश हुआ । जैसे बालक पहिले अज्ञान दशामें होता है, पश्चात् बड़ा होनेपर कह-सुन, पढ़-गुनके ज्ञानी, बुद्धिमान् होता है । इसीसे पहिले दर्जामें अज्ञानका स्थान है । अज्ञानी मनुष्यादि प्राणि तो सब दिन या सर्वदासे ही रहे । पीछेसे किसी मनुष्यने ही कल्पना करके वेद-शास्त्रादि ग्रन्थ बनाये हैं । वहाँ वेदके आधा भागमें त्वंपदका और आधा भागमें तत्पदका वर्णन किया है । कर्ममार्ग, उपासना-

मार्ग, योगमार्ग और तपस्यादि अनेक-साधनोंकी उपाधि, झंझट, परोक्ष अज्ञानका कार्य व्यवहार सब त्वंपदमें ही होते हैं। सो वेदके आधारसे ही प्रगट होके विस्तार भया है। इस प्रकार वेदकी आधीनमें त्वंपदका वृद्धि हुआ। अज्ञानके कारणसे ही वेदादिका भी निर्माण हुआ। नानाप्रकारके कर्म, उपासना और नानातरहकी उपाधियाँ भी उसी कारणसे होती हैं। ऐसे इस त्वंपदको प्रथमपद कर्म भूमिका ही जानो। परन्तु विना पारख वह सब जीवोंको बन्धन ही में फँसाता है ॥ २२४ ॥

३. अब तत्पदको भेद बताऊँ। द्वै प्रकार ज्ञानको भाऊँ ॥ २२५ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं—अब हे शिष्य ! यहाँपर मैं तुम्हें तत्पद ज्ञानमार्गका भेद बतलाता हूँ। ज्ञानमार्गकी भावना या स्वभाव भी दो प्रकारके ही होते हैं। त्वंपदके समान ही तत्पदका भी भेद है। अज्ञानवत् ज्ञान भी दो तरहसे ही होते हैं। दो प्रकारसे ही ज्ञानकी भावना भी करते हैं ॥ २२५ ॥

४. एक समान ज्ञान है भाई ! । एक विशेष ज्ञान कहलाई ॥ २२६ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई ! जिज्ञासु शिष्य ! उनमेंसे एक तो समान ज्ञानकी भावना होती है और एक, दूसरा विशेष ज्ञान कहलाता है। सामान्य ज्ञान अनुभवसे विकसित होता है और विशेष ज्ञान पठन-पाठन, शास्त्रादि श्रवण, सत्सङ्ग द्वारा होता है। इस प्रकार समान और विशेष दो भाव ज्ञानमें भी लगे हैं ॥ २२६ ॥

५. विशेषाधिकरण न्याय जेहि गावै। सोई ज्ञान परोक्ष कहावै ॥ २२७ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—विशेषाधिकरण = विशेष, अधिक या ज्यादा करके ज्ञान जिस स्थान वा ठिकान, भूमिका या आश्रयमें रहता है, अर्थात् विशेषतः ज्ञानका स्थान स्थापित हुआ हो, सो ज्ञानकी भूमिका है। ऐसे नैयायिक लोगोंने न्यायशास्त्रमें विशेषरूपसे वर्णन किये हैं या गाये हैं, अथवा वेदान्तियोंका न्याय निश्चयका जो

कथन है, सोई परोक्ष ज्ञान, पढ़, सुन, गुन करके गुरु, शास्त्रादि द्वारा प्राप्त करके बढ़ाया हुआ ज्ञान, सो विशेष होनेसे परोक्ष कहलाता है ॥ २२७ ॥

६. समानाधिकरण है ज्ञाना। सो अपरोक्ष वेद मत जाना ॥२२८॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—समानाधिकरण = जिसका स्थान समानरूपसे रहता है, स्थिर होता है। स्थिति-टिकाव होती है, सदा एक समान होता है, ऐसा जो ज्ञान है, अर्थात् समान ज्ञानका स्थान सोई अपरोक्ष ज्ञान, अनुभव गम्य, सर्वश्रेष्ठ, ठहरावके जगा है, ऐसा वेद-वेदान्तका मुख्य सिद्धान्तमें जनायके बताया है। यानी अपरोक्ष ज्ञान सोई सामान्य स्थिति है, यह वेदमतका कथन है। ऐसा जानो ॥ २२८ ॥

७. विशेष ज्ञान उपाधि युक्ता। निरुपाधि समान सो मुक्ता ॥ २२९ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—फिर विशेष ज्ञानका प्रकाश परोक्ष करके होता है। इसलिये वह उपाधि सहित होता है। उसमें चञ्चलता, सङ्कल्प-विकल्प, तर्क-वितर्क, खण्डन-मण्डन, राग-द्वेष, कहना, सुनना, विधि-निषेध, इत्यादि उपाधि, झंझट, झगड़ा, विकार, लगा ही रहता है। और सामान्य ज्ञान अपरोक्ष अनुभव करके होता है। इससे इसमें उपरोक्त सब उपाधियोंकी निवृत्ति रहती है। इससे निरुपाधि सामान्य ज्ञान सो स्वयं स्वरूपमें स्थिति कराके जीवको भवबन्धनोंसे मुक्त करानेवाला होता है। अथवा निरुपाधि स्वयं ब्रह्मका ज्ञान समान आकाशवत् व्यापक मानन्दी मुक्तिकारक होता है, ऐसा कल्पना किये हैं ॥ २२९ ॥

८. विशेष ज्ञानयुत जो जीव होई। वेद ईश कहि गावत सोई ॥ २३० ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—जो नर जीव समग्र वेद-शास्त्रादि कण्ठाग्र करके योग समाधि और ज्ञान साधनोंसे परिपक होकर

विशेष ज्ञान सहित सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा हो जाते हैं, सोई साक्षात् ईश्वरके स्वरूप सर्वशक्तिमान् होते हैं, ऐसा कथन करके वेद-वादियोंने वेद प्रमाणसे गुणगान किये हैं। यानो विशेष ज्ञानयुक्त जीवको ही शिव, ईश्वर कहके वेदोंने गुण गाया है, महिमा बढ़ाया है। अर्थात् जो चैतन्य षट्गुण ऐश्वर्य संयुक्त विशेष ज्ञानवान् होता है, सोई जीवसे ईश्वर हो जाता है, ऐसा कहके वेदोंमें गुण गाया है, सोई गुरुवा लोग कहते हैं या कह रहे हैं, ऐसा जानो ॥ २३० ॥

९. समान ज्ञानरत सोइ ज्ञानी। यह निश्चय वेदान्त बखानी ॥ २३१ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—जो कोई समान ज्ञानके निष्ठावन्त प्रेमी हैं, सो अपरोक्ष अनुभवरूप सामान्य ज्ञानमें ही रत, सम्मिलित तद्रूप, या तदाकार रहते हैं, सोई ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मज्ञानी, आत्मनिष्ठ आत्मज्ञानी कहलाते हैं। यही बात निश्चय करके वेदके अन्तिम भाग सार वेदान्त शास्त्रमें वर्णन किया गया है। अर्थात् एक समान सदोदित ज्ञान विचारमें लगे रहनेवाले सोई ज्ञानी, सर्वश्रेष्ठ होते हैं। यह वेदान्तका निश्चयका वर्णन है। ऐसा जानना चाहिये। कहो, अब तुम्हें क्या समझनेमें नहीं आया? जो पूछना चाहते हो, सो कहो। अभी मैं सब बात तुम्हें समझा दूँगा। ऐसा सद्गुरुने उत्तर देते हुये कहते भये ॥ २३१ ॥

॥ १० ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—१० ॥ खण्ड—१९ ॥

दोहाः—विशेषाधिकरण है। जो ज्ञान परोक्ष बखान ॥
(२३) सोई प्रथम समुझाइये। ईश लक्ष सहिदान ॥ २३२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता, शिष्यके दशवें प्रश्नको बताते हैं। सद्गुरुके पूर्वोक्त उत्तर श्रवण करनेके पश्चात् फिर शिष्यने इस प्रकार जिज्ञासा प्रगट किया कि—हे सद्गुरो! आपके सत् शिक्षाको मैं ग्रहण करता जा रहा हूँ। आपके बोधसे सन्देह निवृत्त होती जा रही है। और बात तो मैंने समझा, परन्तु उनमेंसे परोक्ष ज्ञानमें विशेषाधिकरण =

विशेष ज्ञानके आश्रयवाला स्थान है, ऐसा वर्णन करके जो आपने कहा है, सो वात कुछ भी मेरे समझनेमें नहीं आया। अव प्रथम सोई वात परोक्ष ज्ञानके विशेष लक्षण, ईश्वरके गुण लक्षण, सहिदान=पहिचान या चिन्हारीका चिह्न भेद सहित सव खुलासा करके कृपया समझाइये। निर्णय करके बताइये ॥ २३२ ॥

॥ १० ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—१० ॥ खण्ड—२० ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—२४ ॥ चौ० १ से ३८ तक है ॥

१. हे शिष्य ! तोहि कहौं समुझाई। जाते संशय सकल नशाई ॥ २३३ ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—हे जिज्ञासु प्रेमी शिष्य ! अब मैं तुम्हारे प्रश्नके उत्तरमें परोक्ष ज्ञानका विशेषाधिकरण-प्रकरणको विस्तार पूर्वक समझायके तुमको कहता हूँ, जिससे सम्पूर्ण संशय तुम्हारा नाश हो जावेगा, अर्थात् जो निर्णयको मैं समझाऊँगा, उसे मनन करनेसे तुम्हारे सारे सन्देह निवारण हो जावेंगे। मेरे वचनोंमें लक्ष लगा करके तुम भेदको समझते जावो, तो शङ्का भी मिटती जायगी, अतएव ध्यान लगाकर समाधानको श्रवण करो ॥ २३३ ॥

२. निज तन केर उपाधि जानै। पर उपाधि सकलौं पहिचानै ॥२३४॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—वह विशेष ज्ञानी जो है, सो अपने शरीर करके होनेवाले उपाधि, विघ्नबाधा, आधि, व्याधि, इत्यादि सारे विकारोंको जानता है, यानी अपने शरीरको ही उपाधिका घर समझता है। इससे देहसे बड़ा उदास रहता है। राग-रंग उसे कुछ नहीं भाता। लोगोंसे सम्बन्ध भी बहुत कम रखता है। देहके सारे कार्यको वड़ी उपाधि-झंझट जानता या मानता है। और वैसे ही, पर-उपाधि=दूसरेके देहका उपाधि अथवा दूसरेके तरफसे होनेवाला प्रपञ्च, गड़बड़घोटाला, गचर-पचर तथा उसके इन सम्पूर्ण परिणामको भी उपाधिरूप ही पहिचानता है। इससे उपाधिसे दूर रहनेका प्रयत्न करता रहता है ॥ २३४ ॥

३. दुःख-सुख सहित अवस्था तीनी। सब व्यवहार जाने परबीनी ॥२३५

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और वह ज्ञानी स्थूल, सूक्ष्म, कारण, यें तीनों देह सम्बन्धमें होनेवाले दुःख, सुख, राग-द्वेष, शितोष्ण, भूख-प्यास, हानि-लाभ, प्रवृत्ति-निवृत्ति इत्यादिको भी ठीक-ठीकसे जानता है। और उसके सहित तीनों अवस्थाः—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, इन सबका भी व्यवहार कार्यको भलीभाँति जानता है। लोक-वेदके जानकारी ज्ञानमें वह विशेष प्रवीण = चतुर, बुद्धिमान् होता है। सब प्रकारसे वह व्यवहार कुशल चालाक भी होता है॥२३५॥

४.तन इन्द्री इन्द्रिन व्यवहारा। खानि वाणि सकलों निरुवारा ॥२३६

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—फिर तीनों देहमें भीतरी सूक्ष्म इन्द्रियाँ—अन्तःकरण, चित्त, बुद्धि, मन, हंकार इन्हींको और उनके व्यवहारको तथा बाहरी स्थूल देहकी दश इन्द्रियाँ एवं उनके व्यवहारोंको और विषय पंचकोंको भी जानता है। फिर उसके सहित खानि = शरीर, चारखानी, अथवा पिता-माता, स्त्री, पुत्र, धन, इत्यादि लोक भागको और वाणी = चार वाचा, चार वेद, शास्त्रादि नाना शब्द जाल इन सकलका निरुवार या निर्णय, छानबीन भी करता है॥ अर्थात् परोक्ष ज्ञानमें स्थूल-सूक्ष्म शरीर, सूक्ष्म इन्द्रियाँ, चित्त चतुष्टय, बाह्याभ्यन्तर इन्द्रियोंके व्यवहार खानी और वाणी इन सकलोंका निर्णय पहिचान होता है॥ २३६॥

५. ये सब मिथ्या जाने रे भाई!। इन्द्र जालवत् देत लखाई॥ २३७॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई शिष्य! वे ज्ञानी लोग शरीर इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण पंचक, विषय पंचक, खानी, वाणी, कथनी-बदनी इत्यादि इन सबोंको मिथ्या, भ्रममात्र, जानते या मानते हैं। उन्हें तो सारा जगत्के कारोबार पसारा इन्द्रजाल = बाजीगरी तमाशाके समान झूठा, व्यर्थका धोखा ही लखाई देता है, वा वैसा दिखाई देता है, या दूसरेको भी ऐसे ही लखा देते हैं कि—

इन्द्रजालवत् जगत् मनः कल्पित है, इसीसे परमार्थमें जगत्के कुछ अस्तित्त्व नहीं है। यह सब मिथ्याका ही पसारा है, ऐसा कथन करते हैं ॥ २३७ ॥

६. सर्व साक्षि मैं आदि स्वरूपा। ये सब मृगजलवत भ्रम कूपा ॥२३८॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और घट-मठ-पट-तट, दृश्यादृश्य सर्वका मैं साक्षी हूँ! आदि = प्रथम, मूल कारण ऐसा मेरा स्वरूप है। सर्वद्रष्टा असंग, नित्य शुद्ध-बुद्ध मैं हूँ! मैं सर्वप्रथम आदिस्वरूपवाला हूँ। और चराचर जगत् ये सब तो मृगतृष्णाके मिथ्या भास मात्र है, मृगजलवत् भ्रमका कूआँ अँधियारी गड्ढा ही है। अर्थात् गर्मीके दिनोंमें मृगा प्यासे होके जल ढूँढ़ने लगते हैं, कदाचित् मरुभूमिके कान्तार दृश्य हुआ, तहाँ वालू या रेतीके मैदानमें सूर्यके किरण पड़नेसे दूरसे नदीमें जल बह रही हो, ऐसा उन्हें भासता है, तो पानी पीनेकी आशासे उधर ही भागता हुआ चला जाता है। परन्तु अभागेको वहाँ कहीं पानी मिलता नहीं, जितना भी बढ़ता जावे, उतना ही आगे वैसे ही दृश्य नजर आता है! आखीरमें कोशों दूर जाके थकके तलमलाता हुआ मृग वहीं मर जाता है। "प्यासे दौरत मृग मुआ, करि मृग जलकी आश ॥" मरुभूमिमें सैकड़ों कोशोंतक कहीं पानीकी नामोंनिशान होती नहीं। व्यर्थ ही भ्रमकी दौड़में मृग मारा जाता है। तैसे ही जगत्को असत्य बतानेमें यह दृष्टान्त दिया है। मतलब ऐसा है कि—यह सारा जगत् मृगजलवत् भ्रमकूप, धोखामात्र ही है। एक आत्मा ही सर्वव्यापक सत्य है, ऐसा ज्ञानी लोगोंने माने हैं ॥ २३८ ॥

७. ये सब नाशमान अनित्या। मैं अविनाशी चैतन नित्या ॥२३९॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—फिर ज्ञानी जन कहते हैं कि—स्थावर, जंगम, जितना दृश्य पदार्थ है, देह, गेह, धन-धान्य, लोक-परलोक, इत्यादि ये सब जगत् नाशवान् क्षणभंगुर, अनित्य, अस्थाई,

परिणामी, विनश्वर है। इससे इसके कोई अस्तित्त्व ही नहीं। और मैं इन सबसे भिन्न सर्वद्रष्टा, नित्य, सत्य, चैतन्य आत्मा अविनाशी हूँ! एकरस सर्वव्यापक होनेसे सर्वत्र भरा हुआ पूर्ण हूँ! ऐसा कहते हैं ॥ २३९ ॥

८. सब असत्य मैं सत्य त्रिकाला। तीनि देह मायाको जाला ॥२४०

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और स्थूल देह, सूक्ष्म देह, कारण देह। रज, सत्त्व, तम। स्त्री, पुरुष, नपुंसक। और तीन लोक, इत्यादि ये सब असत्य, नाशवान्, अचिन्त्यशक्ति महामायाके जाल है। मायाकृत काया यह भ्रमका ही जंजाल है। त्रिकालाबाध्य सत्य तो मैं ही एक अकेला आत्मा हूँ। भूत, भविष्य, वर्तमान, ये त्रिकालमें सदा-सर्वदा मैं चैतन्य ज्योंका-त्यों सत्य बना रहता हूँ! मुझमें माया जालका लवलेशमात्र भी नहीं है, ऐसा कहते हैं ॥ २४० ॥

९. बारम्बार स्फुरण अस होई। ज्ञान परोक्ष कहावत सोई ॥२४१॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—हे शिष्य! ऐसे ही ऊपर कहे अनुसार भावना, बारम्बार स्फुरणा, कल्पना, संकल्प-विकल्प, इच्छा, चिन्तन या मनन उसी तरह हुआ करे या ऐसे स्फुरणा जब बार-बार होता रहता है, तब सोई विशेष परोक्ष ज्ञान कहलाता है। ये परोक्ष ज्ञानके मुख्य-मुख्य लक्षण वर्तावका वर्णन किया गया है॥ और सब प्रपंच मिथ्या है, मैं एक आत्मा ही तीनों कालमें सत्य हूँ! ऐसे चिन्तन बराबर होते रहना, इसको ही परोक्ष ज्ञान कहा है। ऐसा तुम भी जान लो ॥ २४१ ॥

१०. ज्ञान परोक्ष दोय प्रकारा। ताको सकल करों निरुवारा ॥२४२॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—हे शिष्य! वह परोक्ष ज्ञान भी दो प्रकारके हैं। उसके दोनों लक्षणोंको भी विधिपूर्वक सम्पूर्ण निर्णय करके भेद बताता हूँ। उस निरुवारको भी तुम ध्यान दे करके सुनो! उपाधि सहितके परोक्ष ज्ञान, और उपाधि रहितके

परोक्ष ज्ञान ऐसे दो तरहके ज्ञान माने जाते हैं। नीचे उसका निर्णय बताया गया है ॥ २४२ ॥

११. सब सत्ता औ सब सामर्थी। ऋद्धि-सिद्धि सहित जेहि बर्ती ॥२४३॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—सम्पूर्ण सत्ता और सकल सामर्थ्य जिसमें होवे। अर्थात् सर्वशक्तिमान् हो, जिसके वशमें सारे त्रिलोक रहें, जिसके शक्ति-सामर्थ्यके आगे सब कोई दब जायँ। सारे धन-सम्पत्ति ऋद्धि या नवनिद्धिसे जिसके घरका भण्डार परिपूर्ण हो, और अष्टसिद्धि सहित जिसके बर्ताव चमत्कारपूर्ण हो, इस प्रकारके बर्ताववालेका प्रभाव संसारमें ज्यादा पड़ता है। उसे विशेष ज्ञानी, ध्यानी, महात्मा, योगेश्वर, अवतारी पुरुष मान लेते हैं ॥ अब यहाँ पर अष्टसिद्धियोंके अर्थ भी सुनिये! १. बड़ासे छोटा शरीर बना लेना 'अणिमा' कहा है। २. छोटे शरीरसे फिर अत्यन्त बड़ा शरीर बना लेना 'महिमा' कहा है। ३. भारी देहको भी रुईवत् हलका बनान 'लघिमा' है। ४. इन्द्रियोंके सब विषय भोगोंकी प्राप्ति। ५. गुप्त, प्रगट सब विषय भोगोंको देखनेकी शक्ति 'प्राकाश्य' है। ६. ईश्वरीय शक्ति सर्वशक्तिमान् 'ईशिता' है। ७. विषयोंसे असंग रहना 'वशिता' कहा है। और ८. इच्छापूर्ण करनेकी उत्कट शक्ति 'प्राकाम्य' माना है। इसके अतिरिक्त क्षुधा, तृषा न होना। दूर श्रवण, दूर दर्शन, मन जाय, वहाँ शरीर सहित पहुँचना। मन चाहे रूप धर लेना। परकाया प्रवेश करना। इच्छा मरण, संकल्प सिद्धि, आज्ञा अभंग रहना। त्रिकालज्ञ, अद्वन्द, पराये मनकी बात जानना, शरीरको किसी प्रकार हानी न होने देना, कभी न हारना, इत्यादि प्रकारसे अनेकों सिद्धियाँ माने हैं, सो सब भ्रम कल्पनामात्र है। तथापि गुरुवा लोगोंने ऋद्धि-सिद्धि, करामात, मन्त्र सामर्थ्यकी महिमा बढ़ाके उसके सहितकी विशेष बर्तावका कथन किये हैं ॥ २४३ ॥

१२. होनी अनहोनी सब करहीं। षट् गुण ऐश्वर्य चित्तमों धरहीं ॥२४४॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और कहा है कि—वे ज्ञानी लोग

होनी = कर्म नियमके अनुसार होनेवाले बातको और अनहोनी = न होनेवाली बात कर्म नियमके विरुद्ध, प्रारब्धसे विपरीत बात सम्भवको असम्भव और असम्भवको भी सम्भव उलट-पुलट भी कर सकते हैं । जो चाहे, सो सब कुछ कर सकते हैं, ऐसा माने हैं, परन्तु सो मिथ्या गपोड़ाकी कथन है । तथापि होनी-अनहोनी सबको चाह करके चित्तमें षट्गुण ऐश्वर्यको धारण किये रहते हैं । तहाँ कहा हैः— "ज्ञान श्री ब्रह्माण्डता, यश विद्या बल होय ॥
ये षट्गुण जहाँ पाइये, ईश जानिये सोय ॥"

—सर्वज्ञता, श्रीमान् या लक्ष्मी सम्पन्न, विज्ञानयुक्त ब्रह्माण्डमें अवाधगति, चौतर्फ सुयश फैलना, सकल विद्यामें पारङ्गत, सर्वशक्तिमान् महाबली, ये षट्गुण ऐश्वर्यकी पूर्णतासे जहाँ जिस नर जीवमें प्राप्ति होती है, उसीको लोकमें ईश्वर, भगवान् करके जानते या मानते-मनाते हैं । षट्गुणोंको ही षट्भग भी कहा है ॥

इस तरह षट्गुण ऐश्वर्य प्राप्ति करनेकी आशा या महत्वाकांक्षा, चित्तमें टिकाकर सम्भव तथा असम्भव सब कार्य करना चाहते हैं, उसीके लिये महासाधनाएँ, नाना तरहसे प्रयत्न करते रहते हैं ॥ २४४ ॥

१३. सोई जीव सिद्ध रे भाई ! सोई जगत्में ईश कहाई ॥ २४५ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई शिष्य ! संसारमें मनुष्य समाजमें सोई नर जीव चालाकी धूर्तताईसे सिद्ध, महासिद्ध, महान पराक्रमी, अजीत कहलाते हैं । और सिद्ध पुरुष ही संसारमें ईश्वर, साकार अवतारी, अलौकिक सगुण परमात्मा, महात्मा कहलाते हैं । अविवेकी मूर्ख लोग ही दलाल बन-बनके सब जगह महिमा उनकी कीर्ति फैलाते हैं । सोई विशेष ज्ञान कलाधारी नरजीव ही कहीं सिद्ध बनते हैं, कहीं ईश्वर कहलाते हैं । यह परोक्ष ज्ञानकी विशेषतामें होती हैं । ऐसा तुम जान लो ॥ २४५ ॥

१४. दूजे निरुपाधि है भाई ! ऋद्धि सिद्धि कछु मानत नाहीं ॥२४६॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई शिष्य ! और दूसरा इसी परोक्ष ज्ञानमें निरुपाधि भाग भी है। उसमें कोई उपाधि नहीं रखते, विशेष करके कोई भी कार्य करते नहीं। एक समान साधारण स्थितिमें रहते हैं। ऋद्धि = नवोंनिद्धि, तथा आठोंसिद्धि इनमेंकी कोई कुछ भी भागको वे समान ज्ञानी नहीं मानते। सदा निष्काम शान्त, स्थिर होके आत्म विचारमें ही लगे रहते हैं ॥ २४६ ॥

१५. ऋद्धि सिद्धि ऐश्वर्य औ देवा । ईश्वर माया नास्ति है भेवा ॥२४७

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और ऋद्धि, सिद्धि, षट्गुण ऐश्वर्य और मान-बड़ाई नाना प्रकारके कर्म प्रपञ्च, देवी, देवता, भूत, प्रेत, ईश्वर, आदि माया इत्यादि इन सबका भेदभाव भिन्न-भिन्नता नास्ति = असत्य, असिद्ध, भ्रम-भूलमात्र है। एक आत्मा सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है, फिर ये नानात्त्व विकार कहाँसे आयगी? अतएव इन नास्ति-मतसे मुझे कोई वास्ता नहीं। मैं तो निर्विकार, निराधार, आत्मा हूँ ! ऐसा कथन वे ज्ञानी लोग करते या कहते हैं ॥ २४७ ॥

१६. जगत् जाल मृगजल सम आहीं। करन करावन नहिं मनमाहीं ॥२४८॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और भी वे कहते हैं कि—देखो ! यह जगत् सरासर मिथ्या मायाका जाल है, तथा मृगतृष्णाकी जलके समान जगत् मिथ्या प्रतीतिमात्र असत्य भ्रमका भासमात्र है। वास्तवमें जगत् कोई चीज ही नहीं। नाम, रूप, उपाधि मिथ्या है, अधिष्ठान आत्मा सत्य है। इसलिये कुछ करने-करानेकी चाहना हमारे मनमें बिलकुल भी नहीं है। कर्तव्य करना-कराना यह सब त्रिगुणकी उपाधि ही है। मिथ्या प्रपञ्चके कर्तव्य करना, यह भावना हमारे मनमें नहीं है और होना भी नहीं चाहिये, ऐसा कहते हैं ॥ २४८ ॥

१७. मन माया कृत नास्ति उपाधी । मैं अस्ति सबहिनके आदी ॥२४९॥

टीका:—सद्गुरु कहते हैं:—क्योंकि मन-मायाका कार्य कर्तव्य स्थूल, सूक्ष्म देह, इन्द्रियाँ, पञ्च विषय, पञ्चकोश तथा सर्व जगत् मिथ्या मायाका प्रपञ्चमात्र जाल-जंजाल उपाधिका घेरा पसारा होनेसे नास्ति, असत्य है । इन सबसे परे सबके आदि-अनादि सर्व प्रथम मैं अस्ति, भाँति, प्रियरूप सच्चिदानन्द परब्रह्म हूँ ! जगत्के आदि-अन्त मध्यमें स्थित मैं ही सर्वाधिष्ठान हूँ ! अतएव सकलके आदि कारण सत्य अस्ति ब्रह्म मैं ही हूँ, ऐसा कहते हैं ॥ २४९ ॥

१८. त्रिगुण उपाधि नास्ति व्यवहारा । मैं साक्षी सब जाननहारा ॥२५०

टीका:—सद्गुरु कहते हैं:—और रज, सत्त्व, तम, ये त्रिगुणोंके काम, क्रोध, मोह, एवं कर्म, भक्ति, योगादि व्यवहार साधना नाना कर्म ये सब उपाधि नास्ति-असत्य भ्रममात्र है । मैं तो गुणातीत सबको एक समान जाननेवाला प्रकाशक सकलके द्रष्टा या साक्षी मात्र होके निर्विकार रहता हूँ । इससे सबका जनैया—साक्षी मैं हूँ ! ॥

अर्थात् त्रिगुणके व्यवहार सकल कर्तव्य उपाधिमय नास्ति है । और मैं तो सबको जाननेवाला असङ्ग साक्षीमात्र हूँ ! ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं । यह निरुपाधि ज्ञान कहलाता है ॥ २५० ॥

१९. मोंकहँ जानि सकै नहिं कोई । जो पै विधि हरि शङ्कर होई ॥२५१॥

टीका:—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—हे शिष्य ! परोक्ष ज्ञानके दूसरा भागका ही वर्णन यहाँपर हो रहा है, ऐसा समझे रखो । कट्टर ज्ञानी लोग कहते हैं कि, देखो ! मुझ आत्माके पूरा भेद वा रहस्यको कोई भी प्राणी ठीक-ठीक जान नहीं सकते हैं । क्योंकि मैं अगम्य, अगोचर, अपार, अथाह हूँ । चाहे कैसा ही महान् बलवान् श्रेष्ठ विचक्षण कोई क्यों न होवे, तो भी मुझको कोई किसी प्रकारसे भी जान नहीं सकते हैं । अन्य साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या कहना ? । जो कोई ब्रह्माके समान बुद्धिमान्, चारों वेदोंका

जाननेवाला कर्मकाण्डमें निपुण हो, तथा विष्णुके समान सर्व-शक्तिमान्, लोकपूज्य, उपासना मार्गमें पारङ्गत हो गया हो, और महादेवके समान सिद्ध योगी, समर्थ, अष्टाङ्गयोग मार्गमें प्रवीण होवे, परन्तु वे लोग भी मेरे स्वरूपको यथार्थ जान नहीं सकते हैं, कारण प्रथमारम्भमें जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश हुये थे, स्वयं उन्होंने भी तो मेरे ब्रह्म स्वरूपको ठीक-ठीकसे जान नहीं पाये। तब कहो भला! और कोई कैसे जान सकेगा? इसीसे मैं कहता हूँ कि—मुझको कोई जान नहीं सकता। मैं सबको जानता रहता हूँ ॥ २५१ ॥

२०. त्रिगुणातीत सर्वको द्रष्टा। अद्वैत अखण्ड वेदको इष्टा॥ २५२॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और रजोगुणके राग-रङ्ग-तान-तृष्णादि, तमोगुणके प्रमाद, आलस्य, निद्रादि, सत्त्वगुणके प्रकाश, शान्त, सुखादि व्यवहार होता है। परन्तु मैं तो त्रिगुणातीत हूँ। अर्थात् त्रिगुण क्रियासे रहित वा न्यारा सबसे परे हूँ। तथापि सर्वका द्रष्टा = भिन्न रहके सकल तत्त्व, प्रकृति, गुण, इन्द्रिय, विषयादिको देखा करता हूँ! मैं केवल द्रष्टा-साक्षीमात्र हो रहता हूँ। व्यापक होनेसे मैं अद्वैत हूँ। आकाशवत् मैं अखण्ड हूँ। चारों वेदोंका सार सिद्धान्तमें इष्ट = मान्य सर्वश्रेष्ठ या सर्वोपरि मैं आत्मा ज्ञानस्वरूप हूँ। इस तरह त्रिगुणसे रहित, सर्वद्रष्टा, अखण्ड, अद्वैत, वेदका इष्ट, निर्गुण-निरञ्जन ब्रह्म मैं ही हूँ! ऐसा कहते हैं ॥ २५२ ॥

२१. व्यष्टि समष्टि मिथ्या भाई! मैं चैतन्य शुद्ध अधिकाई॥२५३॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई शिष्य! वे ज्ञानी लोग और ऐसी भी भावना करते हैं कि, व्यष्टि = नानात्त्व, पाँचतत्त्व, तथा अनेकों भिन्न-भिन्न जीव समूह और समष्टि = सबको समेटा, लपेटा हुआ एकत्त्व एक ही ईश्वर कर्ता—कारण मानना, यह भी सब मिथ्या है। क्योंकि व्यष्टि-समष्टि या एक-अनेक तो द्वैत उपाधिमें ही होता है, अद्वैतमें यह कुछ सम्भवता नहीं। और मैं तो शुद्ध चैतन्य ब्रह्म

हूँ। इसीसे मेरेसे बढ़के दूसरा कोई है नहीं। सबसे बढ़के विशेषता, अधिकता तो मेरा ही है। सबपर मेरा अधिकार है। मुझपर किसीकी अधिकार नहीं। अतएव हे भाई! व्यष्टि-समष्टि सरासर मिथ्या है। मैं चैतन्य ब्रह्म शुद्ध-बुद्ध, सर्वोच्च हूँ! ऐसा कहते हैं ॥ २५३ ॥

२२. यहि विधि स्फुरै काल त्रय भाई! सकल अविद्या जात नशाई २५४

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई शिष्य! इस प्रकारसे ऊपर कहे अनुसार उन ज्ञानियोंके मनमें स्फुरणा, सङ्कल्प-विकल्प, चिन्तन, मनन, यादगिरी, भूत, भविष्य, वर्तमान, इन तीनों कालमें होता रहता है। उसी विधिसे स्फुरणा उठता ही रहता है। जिससे सारे अविद्या अज्ञानका कार्य विकार नाश हो जाता है। अर्थात् त्रिकालमें ज्ञानका स्फुरणा होते रहनेसे सम्पूर्ण अविद्याका लक्षण विनाश हो जाता है ॥ २५४ ॥

२३. यह प्रकार जाको होय ज्ञाना। सो ज्ञानी है ज्ञान निधाना ॥२५५॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे शिष्य! जिस मनुष्यको इस प्रकारसे पूर्वोक्त कथन प्रमाण निरुपाधि परोक्ष ज्ञानका दृढ़ता हो जाती है, सो ज्ञानी ज्ञानके अक्षय भण्डार समान ज्ञानगुण सम्पन्न, रत्नाकरवत् ज्ञानमें भरपूर, महाज्ञानी सर्वश्रेष्ठ होते हैं। ऐसा गुरुवा लोगोंने माने हैं॥ अर्थात् जिसको इस तरहका ज्ञान भया, सो उन्हें उच्चकोटिके ज्ञानी माने हैं ॥ २५५ ॥

२४. यह प्रकार दोय ज्ञान परोक्षा। अब तेहि कहौं ज्ञान अपरोक्षा ॥ २५६

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं—इस प्रकारसे हे शिष्य! परोक्ष ज्ञानमें सहउपाधि और निरुपाधि नामसे दो तरहके भेद ज्ञानमें जो माने हैं, सो उसका सम्पूर्ण लक्षण मैंने तुमको बता दिया हूँ। अब यहाँ तुम्हें दूसरा प्रकरण अपरोक्ष ज्ञानको बतलाता हूँ। तेहि = आत्म-ज्ञानियोंने अपरोक्ष ज्ञानको जिस तरहसे माने हैं, उसी प्रकार कहता

हूँ। सो उसे भी ध्यानसे सुनते जावो। जिससे तुम्हें पूरा रहस्य समझनेमें आयेगा ॥ २५६ ॥

२५. तीन काल भासे नहिं कोई। सदा एकरस आपै सोई ॥ २५७ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—इस श्रेणिके ज्ञानीको साधारण मनुष्योंके सरीखा होश नहीं रहता। एकदम बेहोश ही हो जाते हैं। इसलिये उन्हें, तीन काल = भूत, भविष्य, वर्तमान, यह कुछ भास होता ही नहीं। अर्थात् तीनकालका समय व्यतीत हो रहा है, सो भी नहीं जानते। और तीनों अवस्थाकी भी भान नहीं रखते, तो बेभान ही हो जाते हैं। परन्तु अपने आप स्वयं ही सदाकाल एक-रस, एक समान, जैसाका तैसा बने रहते हैं। सोई ब्रह्मज्ञानकी स्थिति कहलाती है। वहाँ जगत् है, यह भाव ही नहीं रहता है, अभावमें ही सदा सर्वदा गुम होके स्थित रहते हैं ॥ २५७ ॥

२६. बिसरे सकल सुषुप्ति समाना। द्वैत स्फुरण त्रिकाल न जाना ॥२५८

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—हे शिष्य ! गाढ़ी निद्रा लगनेपर सुषुप्ति अवस्थामें जैसे जाग्रत्, स्वप्नादिकी कुछ भी खबर रहती नहीं। सब भीतर-बाहरकी इन्द्रियाँ अन्तःकरणमें लय हो रहती हैं। शून्य स्थिति होती है। तैसे ही अपरोक्ष ज्ञानी भी ज्ञान साधनाके विशेपतासे भीतर-बाहरकी सब बातोंको भूलते-भूलते विसराते-विसराते सुषुप्तिके समान ही समाधिस्थ अवस्था कर लेते हैं। जिसे तुर्यातीत अवस्था कहते हैं। वहाँ निर्विकल्प शून्य स्थिति रहती है। इससे तनोबदनकी गतिको भी भूल जाते हैं। द्वैतकी स्फुरणा = अपनेसे भिन्न कोई दूसरा है, वह भान, सङ्कल्प-विकल्प भी नहीं होती। त्रिकालमें द्वैत है, ऐसी भावना होती ही नहीं, यानी वे कुछ भी जानते नहीं। साक्षीपनाका वहाँ अभाव हो जाता है। विधि-निषेधका उन्हें कुछ ज्ञान ही नहीं रहता। पागलके समान ही उनकी चाल रहती है। इस तरह वे सब बातोंको बिसारे रहते हैं। उन्हें अद्वैत ज्ञानी कहते हैं ॥ २५८ ॥

२७. ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय नहिं भाई ! ध्याता ध्यान न ताहि समाई ॥२५९

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य ! मैं तुम्हें अपरोक्ष ज्ञानका ही प्रकरण समझा रहा हूँ, सो ध्यान रखना। यहाँ त्रिपुटीसे रहित ब्रह्मज्ञान कथनका दर्शाव किया जाता है। त्रिपुटी नाश होनेपर ही ब्रह्मकी प्राप्ति होती है, ऐसा वेदान्त शास्त्रमें कहा है। तहाँ ध्याता, ध्यान और ध्येय ये तीन जीवकी त्रिपुटी बताये हैं। अर्थः—ध्याता = स्थूल, अथवा जीव जो स्थूल पदार्थको ध्यावता है। ध्यान = सूक्ष्म वा पदार्थोंका चिन्तवन, किसी विषयमें चित्तकी एकाग्रता करना, लक्ष स्थिर करना। ध्येय = कारण वा इष्ट वस्तु जिसकोकी जीव प्राप्त करना चाहता है, सो मतलबकी चीज है। ये तीनों भो अपरोक्ष ज्ञानमें समा नहीं सकते। तब अद्वैत एकत्त्व भावमें ये त्रिपुटियोंको उड़ा देते हैं। फिर जीव-ईश्वरकी एकता भई, तब तुरिया अवस्था महाकारणरूप हुआ ! वहाँ ईश्वरकी त्रिपुटीः—ज्ञाता, ज्ञान, और ज्ञेय प्रगट हुआ। इसे भी उड़ाने लगे। ज्ञाता = सर्वज्ञ ईश्वरको कहा है। ज्ञान = मूलप्रकृति तुरियाको महाज्ञान माने हैं। ज्ञेय = अव्याकृत सोई ईश्वरका कारण देह है। हिरण्यगर्भ ईश्वरका सूक्ष्म देह हुआ और विराट ईश्वरका स्थूल देह माने हैं। ये सम्पूर्ण ज्ञेय ईश्वरीय ज्ञानके भीतर जाननेमें आ गये। परन्तु यह भी द्वैत उपाधि है, ऐसा जानके उक्त छैः पुटीके भाव छोड़े, तब एक अद्वैत ब्रह्म या आत्माका अभेद अखण्ड दशाको प्राप्त होगा। हे भाई शिष्य ! वहाँपर ईश्वर और उसके त्रिपुटीका भी ठहराव नहीं है, तथा जीव और उसके त्रिपुटीका भी प्रवेश नहीं होता। इसी प्रकार द्रष्टा, दृश्य, दर्शन आदि कोई कुछ भी वहाँ समा नहीं सकते। ऐसे ब्रह्मज्ञानकी स्थिति माने हैं ॥ २५९ ॥

२८. सकलों त्रिपुटी जाय नशाई। अखण्ड एकरस वृत्ति रहाई ॥२६०॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—तीन-तीन भागोंकी सम्पूर्ण त्रिपुटियाँ

वहाँ नाश हो जाती है । अथवा नशाय देते हैं ! तीन देह, ३ अवस्था, ३ गुण इत्यादि सबको विनाश करके ब्रह्म बनते हैं । कभी खण्ड न होनेवाला अखण्ड एकरस बने रहते हैं। सब वृत्तिको भी लय करके निवृत्ति हो रहते हैं। सदा लक्ष एकसा बनाये रखते हैं। अर्थात् सकल त्रिपुटियाँ नाश हो जानेसे वृत्ति अखण्ड एकरस ब्रह्माकार ही बनी रहती है, ऐसा माने हैं ॥ २६० ॥

२९. आपन भाव काल त्रय माहीं । द्वैत उपाधि न ताहि समाहीं ॥२६१

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—तीनों कालमें केवल अपना ब्रह्मभाव ही बना रहता है। उसके अलावा अपनेसे भिन्न द्वैतभावकी उपाधि वहाँपर कभी भी समा नहीं सकती। अर्थात् मैं ब्रह्म नित्य, सत्य, व्यापक, अद्वैत हूँ। यही भावना प्रथममें, पश्चात्में, बीचमें भी बनी रहती है। और जगत्, तत्त्व, जड़, चैतन्य, जीव, ईश्वर, माया इत्यादि द्वैत उपाधिमें होनेवाले मिथ्या प्रपञ्च उस अद्वैत समसमान ब्रह्ममें किसी प्रकार भी समा नहीं सकता। यानी अपनेसे पृथक् किसीकी भी भावना नहीं होती, ऐसा कहते हैं ॥ २६१ ॥

३०. चिन्मय वृत्ति सदा आनन्दा । पूरण ब्रह्म सच्चिदानन्दा ॥ २६२ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और सदा-सर्वदा आनन्दमें ही मगन-मस्त होनेसे चिन्मयवृत्ति = वृत्ति चैतन्यमय, तदाकार हो जाती है। अर्थात् चैतन्य ब्रह्मका प्रकाश सर्वव्यापक रूपमें निश्चय कर हमेशा परमानन्दमें तल्लीन रहते हैं। तब स्वयं पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द बन जाते हैं या ऐसा मान लेते हैं। "सत् सोई अस्ति, चित् सोई भाति, आनन्द सोई प्रिय", ऐसे कहे हैं, तहाँ नाम-रूप मिथ्या और अस्ति, भाति, प्रियरूप ब्रह्म सत्य, ऐसा ठहराये हैं। उसके अर्थमें सत्य चैतन्य सुखस्वरूप करके ब्रह्मको माने हैं। वही चराचरमें परिपूर्ण व्यापक असन्धि भरा है। अतएव ब्रह्म ही सर्वाधिष्ठान कूटस्थ है। ऐसा मानन्दो करके उसीमें वृत्ति ठहराकर सर्वदा शून्य आनन्दमें डूबे रहते हैं ॥ २६२ ॥

३१. यहि विधि ज्ञान होय जेहि ज्ञानी । सो अपरोक्षहि ज्ञान बखानी २६३

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—इस प्रकारसे विधिपूर्वक जिसको दृढ़-निश्चयसे ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान पक्का हो जाता है, सो महाज्ञानी अपरोक्ष बोधवाला कहलाता है । वह जब कुछ कहता है, तो उपरोक्त अपरोक्ष ज्ञानके अनुभवका ही वर्णन करता है । इस तरह अपरोक्ष ज्ञानियोंकी स्थिति बर्ताव तथा अपरोक्ष ज्ञानका लक्षण खुलासेवार बताके वर्णन किया गया है, सो जान लो ॥ २६३ ॥

३२. याहूमें है दोय प्रकारा । हे शिष्य ! तोहि कहौं निरुवारा ॥ २६४ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—इसमें भी दो प्रकारसे दो भाग या दो तरहके भेद हैं । सो हे शिष्य ! उसको भी निर्णय करके भिन्न-भिन्न कहके तुझे सुना देता हूँ । अर्थात् हे शिष्य ! अपरोक्ष ज्ञानका मुख्य वार्ता तो उपरोक्त प्रकारसे तुझें सुना चुका हूँ ! अब अपरोक्ष ज्ञानमें भी जो दो खण्ड हैं, उसका निरुवार करके तुम्हें कहता हूँ, सो भी सुन लो ॥ २६४ ॥

३३. योग धारणा करि मन मारै । अखण्ड वृत्ति एकरस धारै ॥ २६५ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:— प्रथम भागमें योगाभ्यास करके राजयोग, हठयोगादि अष्टाङ्गयोगकी विधिसे साधना करके दशों मुद्रा लगाय, षट्क्रियाएँ पूराकर एवं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि लगाकर इस तरहसे विशेष प्रयत्न करके मनको मारकर वा वशाकर, लयकर जो कोई ज्ञानी वृत्ति को अखण्ड स्थिर बनाकर एकरस ब्रह्मज्ञानकी धारणा करते हैं, सदा समाधि लगाय रहते हैं। कभी भी वृत्तिको चञ्चल होने नहीं देते । वृत्तिको एकाग्र करके एकरस ज्ञानमें ही लक्ष लगाये रहते हैं ॥ २६५ ॥

३४. ज्ञान सो मध्यमपक्ष कहाई । आगम निगम कहैं गोहराई ॥२६६॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—सो यह ज्ञान मध्यम पक्षमें कहलाता

है । अर्थात् योगाभ्याससे प्राप्त किया हुआ अपरोक्ष अनुभवका ज्ञान दूसरे दर्जेका मध्यम, यानी बीचका है ऊपरका नहीं, ऐसा दूसरा भाग कहा जाता है । उसके लिये प्रमाण निगम = वेद-श्रुति, उपनिषदादिमें, और आगम = षट्शास्त्र, मनुस्मृति आदिमें एवं पुराणादिके कर्ताओंने भी पुकार-पुकारके ढिंढोरा पीट-पीटके कहे हैं, प्रचार-प्रख्यात् किये हैं, सो वेद-शास्त्रादिकोंमें विस्तार खुलासासे कहा है । उस बातको उन्हीं ग्रन्थोंके प्रमाणसे अभी पण्डित लोग भी गोहरा-गोहराके ऊँचे स्वरसे कह रहे हैं या कहते जाते हैं । अतएव सो मध्यम पक्षका ज्ञान कहलाता है ॥ २६६ ॥

३५. श्रवण मनन निदिध्यास जो करहीं । साक्षात्कार वृत्ति निज धरहीं ॥२६७

टीका:—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—हे शिष्य ! द्वितीय भागमें अपरोक्षज्ञानका लक्षण ऐसा है कि, प्रथम आत्मनिष्ठ-ब्रह्मनिष्ठ गुरुसे वेद-वेदान्त वाक्यका उपदेश लक्षपूर्वक श्रवण करके साधन चतुष्टय सम्पन्न होके श्रवण किया हुआ शब्दके अर्थको एकान्तमें बैठके मनन करै, मनमें विचार करै, चिन्तन किया करै, फिर आत्मज्ञानमें ही लक्ष टिकाकरके, निदिध्यासन = हमेशा निज आत्मतत्त्वका ही चिन्तवन करता रहै ! गुरु-शास्त्रके वाक्यमें अपने अनुभव निश्चयका मिलान करै । इस प्रकार तीनों साधनोंको जो विधिपूर्वक पूरा करते हैं, सो फिर आत्म साक्षात्कार करके उसी अनुभवमें तदाकार हो अपने सब वृत्तियोंको लय कर निजरूपमें ही स्थापित करते हैं । अर्थात् श्रवणादि चारों साधनोंको पूर्ण करके सब वृत्तियोंको शून्यकर स्वयं आत्मसाक्षात्कारमें स्थित रहते हैं ॥ २६७ ॥

३६. ऐसे करत स्थिर होय जाई । द्वैत भाव कबहूँ नहिं आई ॥२६८

टीका:—सद्गुरु कहते हैं:—ऐसे करते-करते अभ्यासको बढ़ाते-बढ़ाते, लय-चिन्तन करते-करते जब मन स्थिर हो जाता है, तो अद्वैत भावना परिपुष्ट हो जाती है । फिर द्वैत भावना उसके मनमें कभी

भी आने नहीं पाती, यानी दूसरा कोई है, जगत् है, ऐसी द्वैतकी विचार उसमें कभी नहीं आती। इसीसे हमेंशा अद्वैत दर्शन ही होता रहता है। तत्त्वमसि, अहंब्रह्मास्मिका ही निश्चय बना रहता है। कदापि उसमें फरक नहीं पड़ सकता। ब्रह्म निश्चयसे कभी वह ज्ञानी विचलित होता नहीं। अपने आपमें सदाके लिये स्थिर हो जाता है ॥ २६८ ॥

३७. ये प्रकार जो कोइ रहि जावै। उत्तम पक्ष वेद तेहि गावै ॥२६९॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—इस प्रकारसे जो कोई बड़ भागी महाज्ञानी अपरोक्ष अनुभव गम्य ब्रह्मज्ञानकी स्थितिमें रहि जाते हैं, या ठहर जाते हैं, या पहुँच जाते हैं, सो निर्विकार ब्रह्मस्वरूप ही बन जाते हैं। तो अचल-अटल, अखण्ड, महाकाशवत् शान्त हो जाते हैं। इस तरहके ज्ञानीको उत्तमपक्षके ठहरायके वेदमें गुण गाया है या वर्णन किया है। विधि पूर्वक ज्ञान मार्गको तै करके ठिकानेमें पहुँचने वाले सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ, प्रथम दर्जेके अग्रगण्य, उच्चपद, सर्वोपरि कहलाता है। यह वेद प्रमाणसे वर्णन करके कहा गया है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २६९ ॥

३८. यहि विधि ज्ञानयुक्त जो जीवू। सो अविनाशी ज्ञानी शीवू ॥२७०

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे जिज्ञासु शिष्य! इस प्रकारसे उत्तम पक्षवाले अपरोक्ष ज्ञान अनुभव संयुक्त जो कोई महान् नर जीव होते हैं, सो महाज्ञानी कल्याण स्वरूप कभी नाश न होनेवाले अविनाशी, अखण्ड, निर्विकार, निराधार, निरञ्जन, निर्गुण, स्वयमेव परब्रह्म स्वरूप ही हो जाते हैं। अर्थात् आत्मज्ञानमें विधिपूर्वक स्थिति हो जानेपर वह जीव ही शिव=सच्चिदानन्द ब्रह्म हो जाता है। फिर उसमें अन्य भावकी लवलेश मात्र भी नहीं रहती। उसका फिर कभी विनाश नहीं होता। नित्य मुक्त, नित्य तृप्त, हो जाता है। इस प्रकारसे वेद-वेदान्तमें ज्ञान अनुभव कथन किया गया है। सो मैंने

तुम्हें प्रमाण सहित बता दिया हूँ । इसमें सार-असारका निर्णय करके सार ग्रहण करना हंस जीवका कर्तव्य है । तुम्हारे पूर्व प्रश्नका उत्तर यहाँ समाप्त हो गया है ॥ २७० ॥

॥११॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—११ ॥ खण्ड—२१ ॥

दोहाः—जानहि ज्ञानहि भेद कस ? कहो गुरु दीनदयाल ! ॥
(२४) बार-बार बन्दन करौं । जीवनके रक्षपाल ॥२७१॥

टीकाः—सद्गुरुका सम्पूर्ण उत्तर सुनकरके शिष्य बड़ा प्रसन्न हुआ । फिर शिष्यने ग्यारहवें प्रश्नमें जो कहा, सो ग्रन्थकर्ता दर्शाते हैं । बड़ी नम्रतापूर्वक दोनों हाथोंको जोड़के वह बोला—हे दीन-दयालु सद्गुरो ! आपको कोटिशः धन्यवाद है । हमारे शरीखे दीन, हीन जनोंपर आपने बड़ी भारी दया दृष्टि किये हो, ज्ञान-अज्ञानके सकल भेद बता दिये हो ! आप शरणागत नरजीवोंके सब प्रकारसे रक्षक, प्रतिपालक, उद्धार करनेवाले हो । मैं आपके उपकारको महान् मानकर चरण कमलोंमें शिर नवायके बारम्बार बन्दना करता हूँ ! या त्रयबार बन्दगी प्रेमपूर्वक करता हूँ ! हे गुरुदेव ! थोड़ी-सी बात उसमें मैं समझ नहीं पाया—सो यह कि, जान जनैया वा जानीवमें और ज्ञान प्रकाशमें सो यही—यहाँपर भेद कैसा है ? यानी जान और ज्ञानमें क्या अन्तर है ? उसमें कौन-सा फरक है ? अथवा एक ही बात है ? या दो है, यह कैसे समझना ? इसे भी कृपा करके यथार्थ समझा दीजिये ! मैं पुनः पुनः आपको बन्दना करता हूँ ! ॥ २७१ ॥

॥११॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—११ ॥ खण्ड—२२ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—२५ ॥ चौ० १ से १० तक है ॥

१. ज्ञान जान अन्तर कछु नाहीं । तदपि सन्त कछु भेद बताहीं ॥२७२॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे जिज्ञासु शिष्य !

तुम्हारे इस प्रश्नका भी उत्तर मैं कहता हूँ, सुनो! ज्ञान = समझ, बोध, अकिलकलामें और जान = जनैया चैतन्य जीव इन दोनोंमें ऐसा कुछ विशेष अन्तर या फरक विरुद्धता, विजातीय भाव तो नहीं है। क्योंकि जीवके बिना किसो प्रकारके भी ज्ञान कहीं किसीको नहीं हो सकता। यह तो निश्चित बात है। वास्तवमें ज्ञानस्वरूप ही जीव है। जीव गुणी, ज्ञान उसका गुण नित्य सम्बन्ध है। जनैया, जानीब, चेतन, जान, हंस, साक्षी, द्रष्टा ये सब जीवके ही पर्यायवाची नाम है। स्वरूपमें लक्षकरो, तो कई एक नाम होनेपर भी वस्तुमें कुछ फरक नहीं पड़ता। अवस्थामें लक्ष करो, तो कुछ न कुछ फरक दिखाई देता ही है। इसलिये जान-ज्ञानमें भी कुछ अन्तर मुख्य तो नहीं है। तो भी विवेकी सन्त-महात्मा न्याय निर्णयके विचारसे जो कुछ साधारण अन्तर दिखता है, सोई कुछेक भेद बताये हैं, या बताते हैं। निर्णय करके जितना कसर निकले, उतना तो हटाया जाय, साफ-शुद्ध किया जाय, उतना ही अच्छा है, हितकारी है ॥२७२॥

२. जान सबनमें बन्ध रहाई। ज्ञानके उदय मुक्त होय जाई ॥२७३॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—वह भेद कौन-सी है? सो यहाँ कहता हूँ सुनो! जान = जो चैतन्य जीव है, सो जान-जानके या मान-मानके ही सब ठिकानेमें बन्धनमें पड़के बद्ध हो रहता है। यानी मनुष्य, पशु, अण्डज, और उष्मज, इन चारों खानिके सब योनियोंमें जनैया जीव हैं, परन्तु बन्धनमें ही पड़े हुये हैं। सब जगहमें देखो, जीव बन्धनोंमें ही पड़े हुये हैं। सो अनादिकालसे ही सब जीव जड़ाध्यासी होके भवजालोंमें पड़े हैं, इसीसे खुशीसे बन्धनोंमें ही पड़े रहते हैं। और नरदेहमें आकर जब गुरुज्ञानसे स्वरूपज्ञानका अपूर्व बोध उदय हो जाता है, तब ज्ञान प्रकाश होनेसे सकल तम अविद्या अन्धकारका भी विनाश हो जाता है, जड़ाध्याससे रहित होकर फिर जीव सदाके लिये मुक्त हो जाता है। देह रहते ही पारखनिष्ठ सन्त जीवन्मुक्त हो जाते हैं, फिर देह उपाधि छूटनेपर विदेह मुक्तिमें

स्थित हो जाते हैं। अर्थात् स्वरूपज्ञान पारख बोधरहित जीव सब बन्धनोंमें ही पड़े रहते हैं। फिर जब मनुष्योंको पारख स्वरूपका ज्ञान प्रकाश हो जाता है, तब वह मुक्त हो जाता है, ऐसा जानो ॥ २७३ ॥

३. जानबे माहीं होय विशेषा। तबहीं ज्ञानको पावैं लेखा ॥२७४॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—मनुष्य खानीमें आनेपर जीवोंको विशेष अधिकार प्राप्त होता है। क्योंकि यह ज्ञान खानी कर्म भूमिका है। जब नरजीवोंमें जानीब दशाकी विशेषता होती है, विवेक, विचार, निर्णय, परीक्षा कर लेता है, तब ही स्वरूप ज्ञानका समग्र हिसाब जानकर स्थिति कर पाता है। अर्थात् पुरुषोंमें विवेककी विशेषता होनेपर ही सत्य ज्ञानको लख पाते हैं। और पारख ज्ञानकी प्राप्ति होनेपर ही जीवोंकी मुक्ति होती है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २७४ ॥

४. जस मलीन दर्पणको भाऊ। ऐसो जीवको आहि स्वभाऊ ॥२७५

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—दृष्टान्तमें जैसे दर्पण = शीशा, आइना या आरसी तो साफ शुद्ध ही होता है। परन्तु जब दर्पणमें धूर, गर्दा या कीचड़, मैल ऊपरसे लग जाता है, तब तो कुछ भी दिखाई देता नहीं, अथवा धुँधला-सा ही दिखता है। जिस प्रकार वह मलीन दर्पणका भाव या स्थिति रहती है, तैसे ही जीवके भी अध्यासवश ऐसा चंचल स्वभाव हो गया है। जीवके स्वरूप तो शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल ही है। परन्तु देह सम्बन्धमें मनमें मल, विक्षेप और आवर्ण-का दोष लगा हुआ है॥ दर्पणके जगहमें अन्तःकरण है, उसमें जड़ाध्यासकी कालिमा—मैल लग गई है, इसलिये मन मलीन हो गया है। जिससे द्रष्टा जीवके ज्ञान स्वरूपका उसमें दर्शन या बोध नहीं होता, प्रत्युत भाव-कुभाव, विषय तृष्णा, आशा, काम, क्रोधादि उठा करते हैं। इसीसे जीवके प्रकृति-स्वभावमें भी चञ्चलता,

विकार आ गया है। इस कारण निजस्वरूपका बोधसे सब जीव बञ्चित हैं। गुरुज्ञानके प्रतापसे ही वह भूल छूटती है ॥२७५॥

५. मैल निकरि दर्पणको जाई। तबहीं मुकुर निजरूप देखाई॥२७६॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और दर्पणमें यदि बहुत वर्षोंसे भी मैला-कुचैला, गर्दा छाया हुआ पड़ा हो, तो भी कोई उसे झाड़-पोंछके पानी लगाय कपड़ेसे रगड़-रगड़के साफ करेंगे, तो वह अवश्य स्वच्छ हो जायगा। फिर दर्पणके मैल निकल जानेपर यदि कोई उसमें अपना मुख देखे, तो उसे तब तुरन्त ही या देखते ही उस मुकुररूप दर्पणमें अपनी देहकी स्वरूप प्रतिबिम्ब साक्षात् वैसे ही दिखाई देगा, जैसा कि है। फिर कोई सन्देह वहाँ बाकी रह ही नहीं सकती है। इसी तरह यहाँ अनादिकालसे प्रवाहरूपसे जड़ाध्यास मल, विक्षेप, आवर्णकी विकार देह सम्बन्धमें अन्तःकरणमें लगा ही आ रहा है। जिससे किसीको स्वरूप बोधका प्रकाश नहीं है। तथापि महत् पुरुषार्थ करके त्याग-वैराग्यादि सद्गुणोंको धारणकर, जो कोई मनुष्य पारखी सद्गुरुके शरण-ग्रहण करके विवेकसे भ्रमको हटायेंगे, तभी निज साक्षात् स्वयं स्वरूपको वे देख पायेंगे, या समझ पायेंगे। यानी जड़ाध्यास भ्रम-भूलके मैल निकल जानेसे ही निजस्वरूपका दर्शन या अपरोक्ष बोध प्राप्त होगा॥ २७६ ॥

६. जैसे दीपक आहि उजेरा। ढाकन परे होत अँधियारा॥२७७॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य! इस बारेमें और भी दृष्टान्त देके सिद्धान्तमें घटा देता हूँ! सो सुनते समझते जाओ। जैसे दीपक जला देनेसे उस स्थानमें प्रकाश होनेसे सब वस्तु उजेलामें दीखने लग जाता है। यद्यपि दियाकी ज्योति तेज तत्त्वका कार्य प्रकाशस्वरूप ही है। तथापि उस दीपकको किसी वर्तन आदिसे ढाक देनेसे या ढक्कन-आवर्ण पड़ जानेसे उसी वक्त वहाँ अँधियारा हो जाता है, परन्तु दीपकके प्रकाशमें नहीं होता।

उसके अभावमें ही अन्धकार छाया रहता है। तैसे ही जीव तो ज्ञान प्रकाशक चैतन्यस्वरूप ही है। परन्तु यहाँ आवर्ण पर्दा जड़ाध्यासका ढाकन लगा पड़ा है। इसलिये अबोधपनाका अँधियारा हो रहा है, सो मध्यकी सन्धिमें है। पुरुषार्थ करनेपर वह छूट भी जाता है ॥ २७७ ॥

७. यहि विधि जानहि ढाकु अविद्या। सो नाशत जब पाय सुविद्या ॥२७८

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य ! ऊपर कहे हुये दोनों दृष्टान्तोंके समान सिद्धान्तमें भी इसी प्रकारसे जनैया-चैतन्य जीवको भी अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश ये पञ्चक्लेशोंने ढाँक रखा है। मुख्यतया देहाभिमान अज्ञानने ढाँक रखा है वा लपेटके छिपा रखा है। इसीसे अपने स्वरूपको कोई जानते नहीं। और सबको जानते, मानते, समझते, बूझते हैं, परन्तु अपने आपको पहिचानते नहीं, स्वरूपको भूल रहे हैं। यही महान् अज्ञानरूप अविद्या है। सद्गुरुके शरणागत होकर जब कोई नरजीव गुरुकृपासे, सुविद्या = सद्विद्या, सत्यबोध, सत्यज्ञान, अच्छी तरहसे समझके प्राप्त करेंगे, सो अज्ञान तभी नाश हो जायगा, छूट जायगा, निवृत्त हो जायगा। गुरुज्ञानके बिना, वह अन्य किसी उपायसे भी नाश होती नहीं। जैसे सूर्योदय होते ही रात्रिके अन्धकारका कहीं लवलेश मात्र भी रहता नहीं। तैसे पारख ज्ञानका बोध प्रकाश होते ही सकल भ्रम-भूल, अविद्यादिका सदाके लिये विनाश हो जाता है ॥ २७८ ॥

८. जैसे सूर्य मेघने ढाँका। पाय बयारी बादर फाँका ॥ २७९ ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—और जैसे संसारी लोग यहाँ घना बादल छा जानेसे मेघने सूर्यको ढाँक लिया कहते हैं। परन्तु वास्तवमें उस प्रदेशमें पड़नेवाला सूर्यका किरणको मेघमण्डल छा जानेसे ऊपर-बीचमें ही रुकावट हो जाती है। इसलिये तीव्र

प्रकाश नीचे आने नहीं पाता है। तबतकके लिये प्रकाश मन्द होके कुछ अँधियारासा छा जाता है। और जब प्रचण्ड वेगसे वायु बहता है, तो वायुका धक्का पायके बादल छिन्न-भिन्न होके फेंके जाते हैं, टुकड़े-टुकड़े होके उड़ जाते हैं, बिलाय जाते हैं। तैसे ही सूर्यरूप चैतन्य जीवके ज्ञान प्रकाशको बादलरूप काम, क्रोध, लोभ, मोह, आशा, तृष्णा, ममता, भ्रम-भूल, अविद्यादिने आवर्ण कर रखे हैं। इसीसे जीव अज्ञानी अबोध दिखाई दे रहा है। वायुवत् विवेक, विचारका बहाव वेगसे चलनेपर वह भ्रम-अविद्यादिके बादल छिन्न-भिन्न होके नष्ट हो जाते हैं, चित्त चतुष्टयसे हट जाते हैं, सब विकार मिट जाता है ॥ २७९ ॥

६. स्वतः भानु प्रगटै उजियारा। यहि विधि जानहि ज्ञान विचारा॥२८०

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—बादल हट जानेपर फिर जैसे स्वयंस्वरूपी सूर्य स्वतः या स्वयमेव पूर्ववत् ज्योंका-त्यों ही प्रगट हो जाता है, जिससे उसके प्रकाशसे उजियाला हो जाता है। सो सब जानते ही हैं। उसी प्रकार गुरुबोधके विचारसे भूल-भ्रम, धोखा मिट जानेपर फिर स्वतः निजस्वरूप सूर्यवत् जीवमेंसे पारख बोधका उजियाला प्रगट हो जाता है। जिसमें सकल सारासार, सत्यासत्य यथार्थ रूपमें दिखाई देता है। इस प्रकारसे जान और ज्ञानके बारेमें विचार करो कि, जान यही चैतन्य जीव जनैया है, निजस्वरूपके अबोधसे आवागमनके चक्रमें पड़ा हुआ है। नरदेहमें आकर जब उसे पारख गुरुका ज्ञान-बोध दृढ़ हो जाता है, तब जन्म-मरणके चक्रसे छूटके मुक्त हो जाता है। जान = अबोध जीव है और ज्ञान = निज स्वरूपके बोधको कहते हैं। अबोध प्रवाहरूप अनादि-कालसे हो रहा है। और बोध मनुष्य देहके आदिकालमें ही होता है। परन्तु सद्गुरु कृपासे किसी बिरले पुरुषको ही पारखका बोध होता है, ऐसे ज्ञान वा जानके सम्पूर्ण भेद तुम अच्छी तरहसे समझो ॥ २८० ॥

१०. ज्ञान जान जो कछु अन्तर होई। हे शिष्य! तोहि कहा अब सोई ॥२८१

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य! प्रथम मैंने कहा था कि, विशेष अन्तर न होते हुये भी विवेकी सन्तोंने कुछ अन्तर अवस्थाको लेकरके ज्ञान और जानमें बताये हैं। सो उसमें जो कुछ अन्तर था, ज्ञान तथा जानके लक्षणका फरक, फल, गति, चाल, रहनि-रहस्य आदि खुलासेवार वर्णन करके मैंने तुम्हें समझा दिया हूँ। अब तुमको सो प्रकरण पूरा बोध हुआ कि, नहीं? ठीक-ठीक समझनेमें आया कि नहीं? कहो बतावो? तो मालुम पड़ेगा। यदि समझनेमें कोई कसर होगी, तो फिर निर्णय करके निवृत्तकर दिया जायगा! सो जानो ॥ २८१ ॥

॥ १२ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—१२ ॥ खण्ड—२३ ॥

दोहाः—ज्ञानहि जानहि भेद नहिं। एक जाति दोउ आहिं ॥
(२५) तव प्रसादते जानेउँ। यहमा संशय नाहिं ॥ २८२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता शिष्यके बारहवें प्रश्नरूप वचनको दर्शाते हैंः—सद्गुरुके उपरोक्त उत्तर-समाधान और जाँचके प्रश्नको सुनकर जिज्ञासु शिष्यने कहा कि—हे सद्गुरुदेव! मेरे समझनेमें ऐसे आया कि, ज्ञान = समझ, बोध, अकिलकला, इसमें और जान = सबको जाननेवाला जनैया चैतन्य जीव इसमें वा उसमें यानी उन दोनोंमें विशेष भेद-भाव विभिन्नता, विजातीयपना कुछ भी नहीं है। ज्ञान वा जान दोनों ही एक जातिके समान गुण-लक्षणवाले हैं। जीवके बिना ज्ञान नहीं होता, तो जीव ही ज्ञानस्वरूप है। परन्तु अवस्था भेदसे ज्ञानी-अज्ञानी होते हैं। अबोध होनेसे बद्ध हैं, और स्वरूपज्ञानका बोध होनेसे मुक्त होते हैं। समान अवस्थाको 'जान' कहते हैं, तथा विशेष अवस्थाको 'ज्ञान' कहते हैं। इस तरह वस्तु वही है, विरोधी भेद कुछ नहीं, नाममात्र कामसे दो भया है, किन्तु पदार्थ एक है। यही बात आपकी कृपा-प्रसादसे शिक्षाको मनन करके मैंने

जान पाया हूँ। अब इस प्रकरणमें मुझे कोई संशय नहीं रही। गुरु कृपासे ज्ञान वा जानका भेद मैंने जान लिया हूँ। यदि हमारी समझनेमें कोई त्रुटि हो गई होवे, तो आप दया करके उसे भी समझाके सुधार दीजिये, यही विनय है ॥ २८२ ॥

॥१२॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—१२ ॥ खण्ड—२४ ॥

सोरठाः—ज्ञान सजाति होय। औ अज्ञान विजाति है ॥
(४) कहेउँ सकल विधि सोय। तुमहू जानेउ नीकि विधि ॥ २८३ ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य! इतनी बात और जान लो कि, चारों खानियोंके असंख्य जीवमात्र सब स्वजाति हैं। उनमें गुण-लक्षण, धर्म, शक्ति, आदि एक समान विद्यमान् हैं। जीव एकरस—अखण्ड है। ज्ञानाकार या ज्ञान ही उनका स्वयं स्वरूप है। इसलिये देहधारी जीव ज्ञानी, अज्ञानी, विज्ञानी, सब कोई जीवभावसे तो स्वजाति ही हैं। सिर्फ उनके समझके अनुसार बर्ताव-कर्ममें फरक है, और ज्ञान तथा जान ये दोनों वास्तवमें स्वजाति हैं, यह बात तो ठीक है। परन्तु अज्ञानमात्रको उनमें लाके नहीं मिलाना। क्योंकि जड़-चैतन्य स्वरूपसे विजातीय भिन्न-भिन्न हैं। इससे अज्ञान और ही चीज है, ज्ञानका अभाव सो अज्ञान है, एक तो जड़ है, दूसरा तमरूप अन्धकार, अविद्या भ्रम है, तीसरा मनके मानन्दीमात्र है। अतएव अज्ञान सब प्रकारसे जीवसे भिन्न विजातीय है। उसका जीवके साथ समानता नहीं हो सकती। जैसे अन्धकार और प्रकाशमें विरोध है। तैसे जीव और अज्ञानके रूपको विरोधी समझो। इसके बारेमें सम्पूर्ण विवरण विधिपूर्वक मैंने प्रथम ही कह चुका हूँ! इसवास्ते फिर यहाँ मैं उसे नहीं कहता। और सब बात तो तुमने भी अच्छी तरहसे जान ही लिया है, सो उसी प्रकार है। ठीक है। तुम भी उसे अच्छी तरहसे जानके रखो।

अब यदि और भी कुछ सन्देह मनमें रही हो, समझना चाहते हो, तो उसे भी कहो ॥ २८३ ॥

॥ १३ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—१३ ॥ खण्ड—२५ ॥

सोरठाः—हे गुरु ! दीनदयाल ! । ज्ञान भयो जब जीवको ॥
(५) ताकी स्थिति विशाल । काह कसर तामें रही ॥२८४

टीकाः—ग्रन्थकर्ता शिष्यके तेरहवें प्रश्नको बताते हैंः—सद्गुरुका बोध, सान्त्वना एवं आज्ञा पाकर जिज्ञासु शिष्य पुनः अपना सन्देह प्रगट करके कहता है कि, हे दीनदयालु सद्गुरुदेव ! मुझे इस बातमें कुछ शङ्का हो गयी है कि, जब कोई भाग्यवान् नरजीवको गुरु उपदेश और वेद-वेदान्त शास्त्रादिके पठन-पाठन, श्रवणादि साधनोंसे जब पूर्ण ब्रह्मज्ञान हो गया, तो उस ज्ञानीकी स्थिति तो विशाल या महान् होती है । अर्थात् सब अज्ञान अल्पज्ञत्त्व त्वंपदका विनाश होकरके ही तत्पदवाच्य महाचैतन्य ईश्वरीयज्ञान सर्वज्ञत्त्व, सर्वद्रष्टा या साक्षी होके जब जीवको मैं ही ब्रह्म हूँ वा आत्मा हूँ ! ऐसा बोध होके आत्मज्ञानमें दृढ़ निष्ठा हो गया, फिर ऐसे ज्ञान होनेवाले ज्ञानीके तो स्थिति ठहराव सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ, शुद्ध-बुद्ध, निर्विकार, निर्मल हो जाता है, ऐसा सब ज्ञानियोंने माना है । परन्तु आपने तो उसमें भी कसर, फन्दा बतलाये हो, बड़ी आश्चर्यकी बात है, मैं इसका भेद कैसे समझूँ ? उन ज्ञानियोंके स्थितिमें क्या कसर रही ? कौन-सी चूक उनसे भई ? कैसे वे भूले ? भूलनेमें क्या कारण हुई ? इसका पूर्ण मर्म भी खुलासा करके हे प्रभु ! अब आप मुझे समझा दीजिये ! अयबार बन्दगी करके मैं इसीबारेमें जानना चाहता हूँ ॥ २८४ ॥

॥ १३ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—१३ ॥ खण्ड—२६ ॥

चौपाई—मण्डल भाग—२६ ॥ चौ० १ से १३ तक हैं ॥

१. हे शिष्य ! सुनहु तासु निरुवारा । सब ज्ञानिन मिलि कीन्ह विचारा ॥२८५

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे जिज्ञासु शिष्य !

उसके बारेमें निर्णय भी मैं कहता हूँ! सो ध्यानपूर्वक सुनो! सन्त समाजमें एकत्रित सब ज्ञानियोंने परस्पर मेल-मिलाप करके अनुमानमें मिलके विचार करते-करते जो निरुवार करके निश्चय किये हैं, वही बात अब तुम्हें बता देता हूँ! उन सकल ज्ञानियोंने जो विचार किया है, सो तुम भी सुनलो! जितने आत्मज्ञानी हैं, वे सब एक ही आत्म निश्चयमें सहमत या शामिल भये हैं। सबका विचार एक-सा अनुमानमें मिला हुआ है। उसीका विवरण नीचे किया है ॥ २८५ ॥

२. तीन देह विस्मृति होय जाई। जानीब दशा शेष रहि जाई ॥२८६॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—ज्ञानियोंकी स्थिति ऐसी होती है कि, साधनासे वृत्ति एकाग्र करते-करते स्थूल, सूक्ष्म और कारण ये तीन देह बिलकुल विस्मृति = बेभान, बेखबर हो जाता है, यानी सबको एकदमसे भूल जाते हैं। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिका कोई कार्य होती नहीं, ये तीनों अवस्थोंसे परे चतुर्थ तुरिया अवस्थामें पहुँच जाते हैं। अतएव वहाँ, जानीब दशा = सबको जानतेमात्र रहना, विश्वके साक्षी, सामान्य ज्ञानके साधारण स्थितिमात्र ही ऐसी दशा या रहनी शेष बाकी अवशिष्ट अन्तिममें रह जाता है। अर्थात् तीन देहोंका भाव विस्मृत हो जानेपर केवल साक्षी दशा तुर्या अवस्था ही बाकी रह जाता है। उसीमें ज्ञानी लोग टिके रहते हैं ॥ २८६ ॥

३. तामें कसर बतावत वेदू। ताते ज्ञानिन कीन्ह निषेधू ॥२८७॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और उस साक्षी दशामें भी कसर विकार रहता है, ऐसा वेदमें बताया है। वेद, वेदान्तके ज्ञाता विज्ञानी लोग बताते हैं कि, अद्वैत ब्रह्ममें निर्विकल्प, अभाव रहता है। कहा हैः—"साक्ष नहीं इमि साक्षीस्वरूप न, दृश्य नहीं दृक काहि जनावै ॥" वि० सा०॥ —अतएव वहाँ साक्षी रहता ही नहीं। जबतक साक्षी होता रहेगा, तबतक कसर-विकार ही बना रहेगा! इत्यादि वेद वचन देख,

सुन करके इसकारणसे ब्रह्मज्ञानियोंने जानीव दशाको निषेध= खण्डन, परित्याग, किये हैं। जब उन्हीं लोगोंने उसे दोष लगा करके निषेध किया है, फिर उसमें बड़ाभारी कसर ठहर गया कि नहीं? जरूर ठहर गया॥ २८७॥

४. केहि विधि कसर सुनो अब सोई। एकोहं जानीवमें होई॥ २८८॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—किस प्रकारसे उसमें कसर-विकार हुआ? कैसे हुआ? अब सोई प्रकरण खुलासा करके बतलाता हूँ! मन लगाकर सुनो! और गुनते भी जाओ! साक्षीदशामें एकोहं= मैं एक ही ब्रह्म सर्वाधिष्ठान हूँ! यह भाव बना रहता है। अर्थात् मैं एक हूँ! मेरेसे भिन्न दूसरा कोई नहीं। यही स्फुरणा हरवक्त वहाँ हुआ करता है। जानीव=तुरिया अवस्थामें यही भाव दृढ़ रहता है॥ २८८॥

५. बहुस्यामि ताते विस्तारा। परो अविद्याको अधिकारा॥२८९॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—इस कारणसे उसी एकोहंसे ही बहुस्यामका विस्तार हुआ। तहाँ कहा भी हैः—"सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय।" ब्र० व० उ० ६॥ अथवा—"एकोऽहं बहुस्यामेति प्रजायेय॥" अर्थात् अति आनन्दवान् तथा नित्य मुक्त पुरुष "मैं एक हूँ! एकसे. अनेक रूप हो जाऊँ" ऐसा सङ्कल्प करके जगत्की रचना किया॥

पहिले मैं एक हूँ! ऐसा अहङ्कार लिया, फिर मैं एकसे अनेक हो जाऊँ! यह महत् इच्छा-वासना प्रगट किया, उसीसे जगत् जालका विस्तार हुआ। फिर जड़ाध्यासी होके पतित हो चौरासी योनियोंमें जाके समाया वा समायेगा। एक इच्छासे अनेक इच्छा बढ़ाय विस्तार करके अविद्या अन्धकाररूप अज्ञानके अधिकार या विशेष घेरामें घिर पड़ा। जैसे बीजसे वृक्ष होता है, फिर बहुतसे फल-बीज उसमें लगते हैं। तैसे 'एकोहं' बीजसे 'बहुस्याम्' जगत् वृक्ष उत्पन्न हुआ, तहाँ चौरासी योनियोंकी दुःखफल लगा। अतएव विशेष करके महा

अज्ञानरूप अविद्याकी आवर्ण उसमें पड़ गया। फिर तुर्या साक्षी दशा भी छूट जाती है, सुषुप्ति अवस्थामें गिरके संस्कारके अनुसार सुगति-कुगति, आवागमनको प्राप्त होते हैं। इसलिये वह स्थिति भी गिरानेकी ही जगह है, ऐसा जानो ॥ २८९ ॥

६. यहि विधि कसर जानीबमैं होई। सब सिद्धान्त कहत है सोई ॥२९०

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—हे शिष्य! इसी प्रकारसे जानीब = सर्व-द्रष्टा साक्षी, सब विश्वको जाननेवाला सर्वज्ञ पदमें कसर-विकार, भूल, धोखा लगा रहता है। फिर उसीमेंसे सब प्रपञ्च प्रगट होते हैं। इसलिये जानीबमें विकारका मूल महाकारण रहता है। जान करके जनैयाको न्यारा करते नहीं, दृश्यसे द्रष्टाको भिन्न भी समझते नहीं। बल्कि सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक आत्मा मैं हूँ! यही सिद्धान्त सब आत्मज्ञानी लोग कहते हैं। यहाँ सब उनके मुख्य सिद्धान्तोंमें विशेष कमी है। और उसमें बड़ा कसर है। अतएव वह त्याज्य है। अर्थात् सब प्रकारसे सोई सिद्धान्त ज्ञानी लोग कहते हैं। परन्तु उसमें पूर्वोक्त प्रकारसे बड़ी कसर ही ठहरती है ॥ २९० ॥

७. सोई जानीब स्फुरतिको नाऊँ। सबल ब्रह्म कोई बतलाऊँ ॥२९१

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:— हे शिष्य! सो जानिब क्या है? कौन चीज है? ऐसी जिज्ञासा हो, तो सुनो—मैं उसीका भेद बता देता हूँ! स्फुरति = स्फुरणा, इच्छा, उद्वेग, सङ्कल्प, स्मृति, पहिचान, सोई जानिबका नाम विभिन्न कामके अनुसार पड़ा है। अर्थात् मुख्य करके स्फुरतिका नाम ही जानीब या साक्षी है। कोई उसीको सबल ब्रह्म = माया संयुक्त सर्वशक्तिमान् परमात्मा भी बतलाते हैं। क्योंकि मायाके संयोग करके ही ब्रह्ममें महान्‌बल आता है। फिर चाहे सो कर सकता है, ऐसा कहते हैं ॥ २९१ ॥

८. कोई मूल माया तेहि कहई। सब माया जाहीते लहई ॥२९२॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और कोई-कोई तो उस जानीब तुर्या

साक्षीको ही, मूल माया = कारणरूप मूल प्रकृति, कहते हैं। जिससे अन्य कार्यरूप माया, काया, जगत्, त्रिगुण जाल, सब मायाका प्रपञ्च अनन्त जाल उत्पन्न होकर विस्तारको प्राप्त होते हैं। सबका सम्बन्ध भवबन्धन उसीसे होता है। इसीसे उसको, मूल = मुख्य, जड़, बीज, कारण, माना गया है। ऐसा वही मूल माया है ॥ २९.२ ॥

९. सकल करतूत जानीबके माहीं। ताते जानीब कसर रहाहीं ॥२९३॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— इसवास्ते सम्पूर्ण करतूत = कर्तव्य, अहं-करतूत, सूक्ष्म हङ्कारके कार्य जगत् जालका मूल बीज मुख्य जड़ाध्यासकी खानी, जानीब = साक्षी, महामाया, महाकारणके मध्यमें ही छिपा हुआ गुप्त रहता है। यानो सकल कर्तव्यके बीज उसीमें टिके रहते हैं। इस कारणसे हे शिष्य! जानीबमें बड़ा भारी कसर रहा हुआ है। सो दोष उसमें बना ही रहता है। पश्चात् विकृतिको प्राप्त होकर वही जगत्रूप हो जाता है। अतएव सम्पूर्ण दोष, विकार, उपाधि, जन्मृति आदि जानीबमें बना ही रहता है, ऐसा जानो ॥२९.३॥

१०. स्वजाति विजाति स्वगतको भेदा। तीनों त्रिपुटी होय निषेधा २९४

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और कोई-कोई तो तुर्या साक्षी दशाको भी छोड़के तुर्यातीत अवस्थामें परमहंस दशाको प्राप्त हो जाते हैं। वे विज्ञानी कहलाते हैं। उनके स्थितिके बारेमें कहते हैं—वे त्रिविधि भेदसे रहित होते हैं, तथा ब्रह्मको भेदाभेद विवर्जित मानते हैं। स्वजाति भेद = अपने समान एक जाति वालेको कहते हैं। जैसे भाई, बान्धव, कुटुम्ब, एवं सब मनुष्य मात्र आकार-प्रकारमें एक समान हैं। तहाँ मनुष्य जातिके व्यौहार सम्बन्धमें मिलान हो जाता है। ऐसे ब्रह्म एक होनेसे उसके सादृश्य जातिवाला कोई भी नहीं। फिर विजाति भेद = मनुष्य जातिसे भिन्न पशु, पक्षी, उष्मजादि अन्य जातिवाले हैं, उनमें गुण, स्वभाव, अनमिलित होते हैं, उन्हें विशेष विरोधी दूसरे जातिवाले कहते हैं। वैसे अद्वैत ब्रह्मके सिवाय

दूसरा द्वैत कुछ है ही नहीं। इससे विजातीय भेदका उसमें अभाव है। और स्वगत भेद = अपने शरीरमेंके अवयव स्थूल, सूक्ष्म इन्द्रियाँ, प्रकृति आदियोंके भिन्न-भिन्न भेद रहते हैं। देह सम्बन्धमें मेल रहते हुये भी गुण वा विषयोंमें अनमेल रहता है, यही भेद भाव यहाँपर लगा रहता है। किन्तु ब्रह्मको निर्गुण-निराकार, देहातीत माना है, इससे उसमें स्वगतकी भी कोई भेद ही नहीं है। द्वैतमें ही ऐसा भेद-विभेद होते हैं। परन्तु अद्वैत ब्रह्ममें उपरोक्त कोई भी भेद सम्भवता नहीं, और ध्याता, ध्यान, ध्येय, ये जीवकी त्रिपुटी है। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, ये ईश्वरकी त्रिपुटी है। ये तीनों त्रिपुटी, तीनों भेद, तीन देह, तीन अवस्था, इत्यादि सबोंकी विज्ञान दशामें निषेध = त्याज्य, अभाव, हो जाता है, यानी उन सबोंको निषेध करके भ्रम ठहराकर उनको छोड़ देते हैं, केवल ब्रह्मका ही निश्चय रखते हैं ॥ २९४ ॥

११. मैं अरु मोरी भावना छूटै। जगत अविद्या चित्तसे टूटै ॥२९५॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—फिर उन्होंकी मैं और मेरा = मैं-ममता, जाति, वर्ण, कुल, आश्रम, चिह्न, आचार-विचार, शुद्ध-अशुद्ध, पाप-पुण्य, इत्यादिकी सब भावनाएँ, प्रतीति, दृढ़ता भी छूट जाती है। और जगत्‌की अविद्या यानी जगत् है, यह द्वैत भासकी अज्ञानता भी उनके चित्तसे टूट जाती है, या छूट गई। अर्थात् उन्हें तीनकालमें ब्रह्मके सिवाय जगत् भासता ही नहीं। मैं कुछ हूँ! मेरा कुछ नाता-गोता है, यह भावना विलकुल रहती ही नहीं। अविद्या करके जगत्‌की निर्माण भयी थी, परन्तु विज्ञानीके मनसे वह अविद्या टूट-फूटके स्वयं नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है, तो वे निर्द्वन्द्व, निर्विकार रहते हैं, ऐसा माने हैं ॥ २९५ ॥

१२. कहाँ आहि कहाँ धौं नाहीं। अस विज्ञान होय जेहि माहीं ॥२९६

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और फिर यह चराचर दृश्य जगत् क्या है? मैं कहाँ हूँ? कहाँपर नहीं हूँ? मैं कौन हूँ? जगत् और

मैं एक है ? कि दो हैं ? भला ! इत्यादि बातोंकी खबर या विवेक, विचार भी उनमें कुछ भी नहीं रहती, तो जड़-जाड़-मूढ़ ही हो जाते हैं। जैसे कोई मूर्छामें पड़ा हो, और पागल हो गया हो, वैसे ही उनकी भी चाल हो जाती है ! जिसमें ऐसे चाल विज्ञानकी दृढ़ता हो गई होवे, उन्हें विज्ञानी—ब्रह्मस्वरूप, परमहंस कहते हैं। उन्हें ही गुरुवा लोग सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, महिमा बढ़ाते ही जाते हैं ॥ २९६ ॥

१३. सोई जीवन्मुक्त कहावै । वेद प्रमाण शास्त्र अस गावै ॥ २९७ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—ऐसे ऊपर कहे अनुसार विज्ञान जिस पुरुषमें धारण होता है, तो वह बालक, पिशाच, मूक, जड़, उन्मत्त, ऐसी दशाको धारण कर लेता है, यानी वैसी ही वृत्ति बना लेता है। परन्तु संसारमें सोई विज्ञानी परमहंस जीवन्मुक्त = जीते ही ब्रह्म होनेसे या ब्रह्ममें मिलके एक हो बन्धनोंसे रहित मुक्त हो गया है, ऐसा मुक्त पुरुष कहलाता है। इस प्रकार वेदके प्रमाणसे वेदान्त शास्त्रमें उसके ऐसी-ऐसी महिमा बढ़ाके गुणानुवाद गाये हैं, वर्णन किये हैं। कहा हैः—"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"—ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्म-स्वरूप ही हो जाता है ॥ जीवन्मुक्त विज्ञानी, नित्यमुक्त, नित्यतृप्त, स्वच्छन्द गतिवाला होता है, ऐसा कहा है। वेद-शास्त्रोंमें ऐसा ही कथन किया है—ब्रह्मज्ञानीकी विशेषताका बहुत ही गुण गाया है। सो वही प्रमाण यहाँ मैंने संक्षेपमें तुम्हें बता दिया हूँ, ऐसा जान लो। अब तुम्हें क्या समझनेकी जिज्ञासा है ? सो कहो ॥ २९७ ॥

|| १४ || शिष्य प्रश्न || शब्द दीपक—१४ || खण्ड—२७ ||

दोहाः—कृपा करो शिष्य जानिके । मैं सेवक मतिमन्द ॥
(२६) निज विज्ञान बताइये । काटो भ्रमको फन्द ||२९८||

टीकाः—सद्गुरुके उपदेशको सुनकर, शिष्यने चौदहवाँ प्रश्न सविनय कहते हुये पूछा कि, हे सद्गुरुदेव ! आपने मुझे सिखारु शिष्य

जानकर मुझपर बड़ी कृपा किया है! आपकी कृपासे मैंने पूर्वोक्त बहुत-सी बातोंका रहस्य तो समझ चुका हूँ! परन्तु आपका सेवक चरणका दास मैं ऐसा मतिमन्द बुद्धिहीन, मूढ़ हूँ कि, अभी बहुत-सी वार्ता मुझे बोध नहीं हुआ है, सो समझना बाकी है। हे प्रभो! अब भी वैसे ही नादान शिष्य जानके मुझपर कृपादृष्टि ही करिये! आपकी दया हुई, इसलिये मैं सहर्ष फिर भी अज्ञात बात पूछता हूँ! सो यह कि, ऊपर आपने विज्ञान पदकी विशेषता वेद प्रमाणसे बताये हैं। परन्तु उतने मात्रसे मुझे पूरा बोध नहीं हुआ। अब फिर विस्तारसे निजविज्ञानको भलीभाँति बतलाइये। वह प्रकरण भी पूरा ही दर्शा दीजिये। अभी भ्रम-सन्देहके जालमें जो मैं अरुझ रहा हूँ! उस भ्रम फन्दाको भी काट-छाँटके हटा दीजिये। यह मेरा विनय स्वीकार कीजिये। जिससे मैं सन्देह रहित हो जाऊँ!॥ २९८ ॥

॥१४॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—१४ ॥ खण्ड—२८ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—२७ ॥ चौ० १ से १६ तक है ॥

१. जानि बूझि जड़वत होय जाई। जानीब नेनीब कछु न रहाई ॥२९९॥

टीका:— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—हे जिज्ञासु शिष्य! तुम्हारे बोधके वास्ते विज्ञानका प्रकरण भी खुलासा करके मैं बता देता हूँ! सो चित्त लगाके सुनो! प्रथम तो वेदान्ती ब्रह्मज्ञानी लोग साधन चतुष्टय सम्पन्न होके गुरुद्वारा महावाक्यको श्रवण करते हैं, बातको जानते, समझते, बूझते, बुझाते भी हैं। फिर मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार करके तदाकार हो जाते हैं। जान-बूझके ही वृत्तिको शून्य कर गरगाफ हो, जड़वत् अचल हो जाते हैं। तहाँ निर्विकल्प अवस्थाको प्राप्त होते हैं। इसलिये जानीब = तुरिया साक्षी दशाका जानपना तथा नेनीब = अन्य त्रय अवस्थाओंका ज्ञान, होश, चैतन्यत्त्वका कुछ भी लक्षण, बोध, विवेक, विचारादि भी वहाँ रञ्चक मात्र भी रहता नहीं। बिलकुल महान् मूढ़ अचेत ही हो जाते हैं ॥ २९९ ॥

२. जैसे उनमत अति मतवारा । नेकु न रहै शरीर सम्भारा ॥ ३०० ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—और जैसे नशा खाने-पीनेवाले नशेबाज लोग या शराबी लोग बहुत नशा खा-पीके नशा चढ़ जानेपर अत्यन्त उन्मत्त बेकाबू हो जाते हैं। कुछ भी शरीरकी सम्भार, बचाव उसवक्त उनसे नहीं होती। क्योंकि उनके होश ठिकाने रहता ही नहीं, इसलिये मैले-कुचैले जगहमें नाली, मोरीमें भी गिरे-पड़े अचेत हो रहते हैं। और सुध-बुध उनकी खो जाती है, अत्यन्त उन्मत्त, मदमत्त हो जाते हैं, तब उपद्रव भी करते हैं, बड़बड़ायके बकते-झकते भी हैं, फिर लस्त होके गिर पड़ते हैं, देहकी रक्षा भी उनसे नहीं होती, कपड़े खुल गये हैं, कीचड़-मल-मूत्रसे लथपथ हो गये हैं, मक्खी भिनभिना रही हैं, इत्यादि दुर्दशाग्रस्त हो जाते हैं। वैसे ही विज्ञानी लोगोंकी भी कुदशा होती है। बालक सरीखे असक्त होके मल-मूत्रमें भी सने रहते हैं। देहकी शुद्धि-स्नानादि भी वे कुछ करते नहीं। उजड्ड जङ्गली पशुवत् ही आचरण करते हैं। कभी तो कुछ बोलते ही नहीं, गूँगे सरीखे हो जाते हैं। कभी बड़ा उन्मत्त होके मनमाने सो कर्म-कुकर्म करते हैं, चिल्लाते दौड़ते हैं। कभी अजगरकी तरह एक ही जगहमें कई दिनतक बैठे ही रहते हैं। उनकी सुध-बुध हेराय जाती है, बेहोश होनेसे कुछ भी शरीरमें सम्भारनेकी शक्ति नहीं रहती, गाफिल रहते हैं ॥ ३०० ॥

३. यहि विधि सहज दशा होय जाई । महदानन्द मगनता पाई ॥ ३०१ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—इस प्रकारसे उन्होंकी सहज दशा = सहज ही सहज दुर्दशा शून्य स्थिति, निवृत्ति, पशुवत् वृत्ति हो जाती है। अर्थात् धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते अन्त्यमें ऐसे महामूढ़ बन जाते हैं। परन्तु ऐसी स्थितिको ही महदानन्द = महानसुख, परमानन्द, बड़ा भारी आराम मिला हुआ समझके उसीमें मगन, तल्लीन, लवलीन, हो जाते हैं। यानी शून्य दशा हो जानेपर महान् आनन्द होके मगनताको प्राप्त करते हैं, ऐसा मानते हैं ॥ ३०१ ॥

४. भावातीत भाव पहिचाना। कलातीत बर्तें वर्तमाना ॥ ३०२ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—ऐसे विज्ञानी लोगोंके लक्षण-चाल होनेसे उनमें भावातीत = भाव-शुभभावना, होश, जागृति भी वहाँ कुछ नहीं रहती, इसीसे भावसे अतीत कहिये अत्यन्त परे जिनसे भावका त्याग हो गया है। प्रध्वंसा, प्राग, अन्योऽन्य, अत्यन्ता, ये चारों अभावसे भी परे भावातीत नामक पाँचवाँ अभावमें वे रहते हैं, ऐसा पहिचानो, यानी उन्हें किसीकी भी पहिचान नहीं रहती। और कलातीत = सब कला-कल्पना, सङ्कल्प-विकल्पोंसे भी रहित हो जाते हैं। तहाँ ऊर्मी, धूर्मी, ज्योति, ईश्वर, इन चारों कलाओंके व्यवहार-का कुछ भी भाग नहीं रहता, तो निराकार, निर्गुणको ही यहाँ कलातीत कहे हैं, ऐसे विचित्र अवस्था वर्तमानमें देह रहतेतक वे वर्तते हैं, या ऐसे ही आयु व्यतीत करते हैं ॥ ३०२ ॥

५. अवस्थातीत अवस्था रहई। दशातीत दशा निरबहई ॥ ३०३ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं—और उनके अवस्थाकी भी कुछ ठेकान रहती नहीं, तो अवस्थातीत = सब अवस्थाओंसे परे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, और तुरिया ये चारों अवस्थाओंसे रहित तुर्यातीत या उन्मुनि अवस्थामें रहते हैं, इसी तरह समय बिताते हैं। वैसे ही अच्छी दशाको भी त्यागके दुर्दशामें पड़े रहते हैं। दशातीत = बाल, पिशाच, उन्मत्त, और मूक ये चारों दशाओंकी चालसे भी रहित होके अन्तिममें जड़ अजगरवत् दशाको धारण कर लेते हैं, अजगर वृत्तिको ग्रहण करके देह निर्वाह या गुजारा चलाते हैं। अर्थात् इसी तरह गूंगे, बावले, जड़-मूढ़ बनके व्यर्थमें नर जन्मके आयुको बिता देते हैं। परन्तु वे लोग इसे ही परमोत्तम समझते हैं ॥ ३०३ ॥

६. आतम ज्योंका त्योंहि विराजै। एक अनेक सबै भ्रम भाजै ॥ ३०४ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—वेद-वेदान्तके प्रमाणसे यही बात

उन्होंको दृढ़ निश्चयसे ठसा हुआ होता है कि—आत्मा जैसेका तैसा ही यानी ज्योंका-त्यों ही सर्वत्र परिपूर्ण, व्यापक, ओत-प्रोत, जहाँ-तहाँ सब ठिकाने विराजमान है, यानी सब तर्फ भरा हुआ है। आत्माके बिना अणु-रेणु-परमाणु मात्र भी जगह खाली नहीं है। एक-अनेक मानना सब भ्रम है। अखण्ड आत्मा स्वयं-स्वरूपकी दृढ़ प्रतीति हो जानेपर एक ईश्वर तथा अनेक जगत्की सकल भ्रम आप ही भाग जाता है। ऐसा निश्चय पहिले साधनकालसे ही कर रखते हैं। इसलिये वे निश्चिन्त हो रहते हैं, चाहे जैसा वर्ताव भी कर लेते हैं। पाप-पुण्यको भी मानते नहीं, ऐसे विज्ञानी लोग मूढ़ होते हैं॥ ३०४॥

७. सजाति विजाति स्वगत नहिं भेदा। एकतामें को करत निषेधा॥३०५

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—फिर ऐसा कथन किये हैं कि—स्वजाति = ब्रह्मके समान गुण-लक्षण, स्वभाववाला बराबरीका जाति भी कोई नहीं हैं। विजाति = ब्रह्मसे भिन्न अन्य विरोधी असमान अनमिलित दूसरा कोई जाति विशेष भी नहीं है। और स्वगत = निराकार, निर्गुण, ब्रह्मके देह इन्द्रियादि अवयव न होनेसे स्वगत भेद भी उसमें लगता नहीं। यह तीनों भेद तो द्वैत उपाधिमें भ्रमसे ही होता है। परन्तु यहाँ तो भिन्नभाव कुछ है ही नहीं। एकत्त्व अद्वैत ठहराव है। फिर जीव-ब्रह्मकी एकता हो जानेपर उसमें कौन विधि करे? कौन निषेध करे? जहाँ भेद-भाव हो, वहाँ विधि, निषेध होते हैं। जहाँ किसी प्रकारके भेद ही नहीं; एकता है, फिर वहाँ कौन किसका कैसे निषेध करेगा? इसलिये वह तो अवाच्य है, अलक्ष है, ऐसा माने हैं॥ ३०५॥

८. याहूमें है दोय प्रकारा। सुनु शिष्य! तोहिं कहों निरुवारा॥३०६॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—हे जिज्ञासु शिष्य! इस विज्ञानके मार्गमें भी दो प्रकारके भाग या विभेद हैं। यानी दो तरहके विज्ञानी होते हैं। उनके पहिचान गुण, लक्षण भी तुमसे मैं कहता हूँ। सो

सुनो ! अर्थात् विज्ञानका वर्ताव ऊपर जो कहा गया है, उसमें भी दो प्रकारके भेद हैं, सो निर्णय सहित तुम्हें कह देता हूँ । वह निरुवारको भी अब श्रवण करो ॥ ३०६ ॥

९. एकै कहबे मात्र विचारा । एकै दशा भई निर्धारा ॥ ३०७ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—एक तो कहनेमात्रका ही विज्ञानका विचार करते हैं, परन्तु वैसी स्थिति धारण किये नहीं रहते हैं, वे बाचक ज्ञानी होते हैं, बात तो बड़ी लम्बी-चौड़ी बनाते हैं, जैसे कि, वे ब्रह्म ही हो गये । केवल कथन मात्रका ही विचार करके फूले नहीं समाते हैं, तथापि, उससे विरुद्ध आचरण करते हैं । प्रवृत्तिमें मन लगा रहता है, ऐसा लक्षण उनमें रहता है । और एक यानी बाकीके जो है, सो दूसरे उपरोक्त वर्णनमें निश्चित किया हुआ विज्ञान-दशाको ही प्राप्त करके उसी धारणामें लवलीन हो रहते हैं । उनके एक ब्रह्म-स्थितिकी दशा ही सचमुच हो गई रहती है । यानी जड़वत् दशामें स्थिति किये रहते हैं । इस प्रकार एक तो वाणीमात्रका विचार कथन करता है, एक उसी दशामें अपनेको वैसे ही बना लेता है, यही उनमें दो भेद हैं ॥ ३०७ ॥

१०. जहाँ विज्ञान दशा रहि आई । सो विज्ञानी हंस कहाई ॥ ३०८ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और जहाँपर जिसमें पूर्णरूपसे विज्ञान दशाकी धारणामें वे रह जाते हैं, वे ऊपर वर्णन किये हुये सब चालमें वा सिद्धान्तमें आ जाते हैं । वैसे ही उनके वर्ताव लक्षणादि हो जाते हैं । विज्ञान दशामें दृढ़तासे रहते ही बेहोशी, पागलवत् गुण आ जाते हैं । गुरुवा लोगोंके सम्प्रदायमें सोई विज्ञानी हंस कहलाते हैं, कोई उन्हें ही परमहंस भी कहते हैं । उनकी महिमा बड़ी भारी बढ़ा रखे हैं । परमहंस विज्ञानी सर्वश्रेष्ठ कहलाते हैं ॥ ३०८ ॥

११. कहबे मात्र वाणीको ज्ञाना । सो मिथ्या विज्ञान बखाना ॥ ३०९ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और जिसको कहने-सुनने मात्रके

लिये ही वेद-वेदान्तादि अद्वैत प्रतिपादक वाणीका ज्ञान हो गया है, वह कथन मात्रसे ही विज्ञानी बने हैं, परन्तु उन्हें परमहंस दशा धारण नहीं भया है। विज्ञान मार्गका वाणीसे तो बहुत वर्णन करते हैं। व्याख्यान-उपदेश भी देते हैं, तो कहते हैं कि—मित्रो! सब जगत् झूठा है, एक अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है। कहने-सुनने मात्रके लिये ही वाणीका ज्ञान लेना-देना है। नहीं तो वास्तवमें वाणी, वेद, शास्त्र, गुरु भी मिथ्या हैं। मिथ्या बन्धनको मिथ्या वेद-गुरुसे ही हटाया जाता है। मैं तो शुद्ध ब्रह्म हूँ। मुझे बन्धन, मोक्ष, नहीं है, इत्यादि कथन-वर्णन करके मिथ्यावादी झूठे ही विज्ञानी बनते हैं। वे ढोंगी होते हैं। कहने मात्रके लिये उन्हें वाणीका ज्ञान होना है, स्थितिमें कुछ परिवर्तन नहीं होता। अतएव उनका बखान किया हुआ विज्ञान सो तो मिथ्या आडम्बर मात्र होता है। ऐसे झूठे सरासर ठग होते हैं। लोगोंको झाँसा देके ठगते ही फिरते हैं ॥ ३०९ ॥

१२. द्वैत भाव कबहुँ नहिं आई। एक भाव निशि-दिन बर्ताई ॥ ३१० ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— अब वास्तविक वा असली विज्ञानीका लक्षण बताता हूँ। सो भी सुन लो! द्वैत भाव = जड़-चैतन्यकी भिन्न-भिन्न प्रतीति तथा भावना यह जड़ है, यह चैतन्य है, ऐसा पहिचान होवे ही नहीं। दूसरा और भी कोई कुछ है। ऐसा विचार कभी किसी वक्त भी जिन्हें नहीं आवे। द्वैत भावनासे रहित, एक अद्वैत भावनाका ही दृढ़ निश्चय हो गया है। 'अहं-ब्रह्मास्मि' यही एक भावमात्र दिन-रात उनमें बर्तता रहता है। अर्थात् आठों प्रहर एकाग्र शून्यवृत्ति होनेसे बेहोशीमें ही उनका सब समय निकल जाता है ॥ ३१० ॥

१३. हे शिष्य! अचरज कहो न जाई। कारण कारज आपु रहाई ॥ ३११ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— हे शिष्य! यह तो आश्चर्यमय बात है, कुछ भी वहाँपर कहा जाता नहीं, कहने लायक भी कोई बात है

नहीं, और कहनेवाला वहाँ जा सकता भी नहीं। क्योंकि तहाँ कहा है—"यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह ॥" ब्र० उ० ६ ॥—परब्रह्म वाचा, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ इत्यादिकोंसे जाना नहीं जाता ॥ अब बताओ उसके बारेमें कैसे क्या कहा जायगा? कुछ नहीं। या तो अवाच्य बताके मौन रहेंगे। नहीं तो सब कुछ वही है, कहके गबर-गुण्ड करेंगे। सो कैसे कि, कारण, कार्य, कर्ता, ये तीनों स्वयं एक हो रहते हैं। अर्थात् आप ब्रह्म ही कारण सबलब्रह्म है, तथा कार्य रूप जगत्में मिलके सर्वव्यापक हो रहा है। ब्रह्ममें कारण, कार्य दोनों ही बना रहता है। वही जगत्का कर्ता भी है। अब कहो, यह आश्चर्यो-त्पादक बात है कि नहीं? धोखासे आप स्वयं ही कारण—कार्यरूप हो रहते हैं ॥ ३११ ॥

१४. आपुहि बोले आपु बोलावै। आपुहि खेले आपु खेलावै ॥ ३१२ ॥

टीका:—सद्गुरु कहते हैं:—और उतना ही नहीं "सर्वरूप जग रहा समाई" जगत्के सब विभिन्न नानारूप, नानाव्यवहार आदिमें भी वह ब्रह्म समाया हुआ है। अजी! उसके सिवाय तो दूसरा कुछ है ही नहीं। इसलिये वह आप अपने ही गुरुरूप होके वेद-वेदा-न्तादिकी वाणी बोलता या कहता है, और आप ही शिष्यरूप होके बोलाता या प्रश्नकर्ता है। अथवा संसार भरकी वाणी, वचन, भाषाओंको भी बोलने-बोलानेवाला आप ही परमात्मा है। पिता-माता एवं बालकरूप भी सो आप ही परमात्मा है। तहाँ पुत्ररूप होके बोलता है, तो माता-पितारूप होके बोलाता है। तैसे ही बच्चोंसे खेलने-खेलानेवाला भी वही है, नारि-नरोंसे खेलवाड़ करनेवाला भी आप ही परमात्मा है। और सारे संसारमें अनेकों आकार-प्रकारसे बहुरूपिया बनके नाना खेल-खेलानेवाला सूत्रधार, नाटकका पात्र एवं साधना कर्ता करने-करानेवाला भी वही परब्रह्म है, ऐसा मानते हैं ॥ ३१२ ॥

१५. करै करावै आपुहि आपा । द्वैतभाव मिथ्या सन्तापा ॥ ३१३ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और संसारमें पैदा होके नानाप्रकारके शुभाशुभ कर्म-कुकर्म करने-करानेवाला भी वही आप-ही-आप स्वयं ब्रह्म है। पुरोहित, गुरु होके कर्म कराता है, तो यजमान-शिष्य होके आप ही कर्म करता जाता है। अच्छा-बुरा करने-करानेवाला कर्ता-करतूत भी वही है। कर्ता, कर्म, क्रिया भी वही है। जीव, ईश्वर, ब्रह्म भी वही एक है। इसमें उससे कुछ भिन्न भी है, ऐसा द्वैतका भाव करना या अपनेसे कोई दूसरा मानना, यह मिथ्या है। यानी झूठा ही सन्ताप देनेवाला द्वैत-भ्रमजनित दुःख है। नहीं तो वास्तवमें एक ही परमानन्द ब्रह्म विराट स्वरूप पूर्ण व्यापक है। उसमें द्वैत भावके मिथ्या सन्ताप कहीं ठहर ही नहीं सकता है। वह तो अभाव-अद्वैत है, ऐसा निश्चय किये रहते हैं ॥ ३१३ ॥

१६. देखे देखावै आतमा आपू। विविधि भरम सकलौ जग तापू ॥३१४॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और देखनेवाला जीवात्मा, देखानेवाला परमात्मा, दिखनेवाला जगत् ऐसे द्रष्टा, दृश्य, दर्शन, भी स्वयं आत्मा अपने आप है। अथवा देखनेका साधन नेत्र, देखानेवाला चैतन्य भी आत्मा ही है। अथवा देखनेवाला दर्शक-शिष्य, दर्शानेवाला गुरु, दोनों भी एक ही आत्मा है। अर्थात् सब कुछ वही स्वयं आत्मा ही है। और इसके अलावा नानात्त्व करके मानना, सो सम्पूर्ण भ्रममात्र ही मिथ्या है। जगत्के सब ताप, भ्रम करके ही होता है। एक आत्माके सिवाय दूसरा कुछ है ही नहीं। नाना भ्रम ही सकल जगत्में तापरूप दुःख भोगानेका कारण है। आत्मा सर्वाधिष्ठान है। ऐसा निश्चय करके फिर विज्ञानी लोग परमहंस हो जाते हैं, तब फिर किसी बातका विचार वे करते ही नहीं। प्रथम जो कुछ विचार दृढ़कर लिये हैं, उसीमें मगन रहते हैं। यही विज्ञानके भेद है, ऐसा तुम अब जान लो, कहो अब तुम्हें पूरा समझमें आया कि नहीं ? ॥ ३१४ ॥

॥ १५ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—१५ ॥ खण्ड २६ ॥

दोहाः—कछु दृष्टान्त बताइये । आतमको समुझाय ॥
(२७) जाते मोहिं निश्चय परे । मैं प्रभु लागत पाँय ॥ ३१५ ॥

टीकाः—विज्ञान मार्गका वर्णन सुननेके उपरान्त शिष्यने पन्द्रहवाँ प्रश्न कहा कि, हे सद्गुरुदेव ! आपके उपदेशको मैंने ध्यान-पूर्वक सुना है; परन्तु मेरी बुद्धि स्थूल है, एकाएकी सूक्ष्म रहस्यमयी बातोंको समझ नहीं सकता । इसलिये विज्ञान वर्णनको भी मैं पूरा-पूरा समझ नहीं पाया हूँ । क्योंकि सब आत्मा ही आत्मा है, ऐसा आपने वर्णन किये । फिर उसमें जगत्तापके नाना भ्रम भी होते हैं, सो यह कैसी क्या बात है ? अतएव कुछ दृष्टान्त देके सिद्धान्त बतलाइये । आत्मज्ञानको मुझे भली-भाँति समझा दीजिये । दृष्टान्तसे आत्मतत्त्वको मैं जरूर समझ लूँगा । अतः कुछ दृष्टान्त ही पहिले बतलाइये, आत्माको कैसे मानना ? सो समझाइये । जिससे मुझे आत्मज्ञानका पक्का निश्चय हो जाय, भ्रम छूट जाय, एक आत्मा ही सत्य है, यह मुझे कैसे निश्चयसे जान पड़ेगा ? सोई युक्ति दया-दृष्टि करके कहिये । हे प्रभो ! मैं अब आपके चरणोंमें शिर टिकायकर शरणागत होके यह विनय कर रहा हूँ । मेरे सन्देहका निवारण कीजिये ! ॥ ३१५ ॥

॥ १५ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर–१५ ॥ खण्ड–३० ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—२८ ॥ चौपाई १ से १४ तक है ॥

१. आतमसे कछु भिन्न जो होही । तो दृष्टान्त कहों मैं तोही ॥ ३१६ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— तुम्हें अब मैं आत्म-ज्ञानियोंका कथन ब्रह्ममुखसे बताता हूँ । सो भी सुनो ! हे शिष्य ! पूर्ण ब्रह्मज्ञान होनेपर ब्रह्म या आत्माके सिवाय और कुछ भासता ही नहीं । फिर आत्मासे भिन्न कोई जो कुछ चीज होवे, तभी तो मैं

तुम्हें दृष्टान्त देकर कहूँगा। परन्तु यहाँ तो एक आत्माको छोड़के दूसरा कोई वस्तु है ही नहीं। फिर तुझे दृष्टान्त देकर मैं कैसे कहूँ। अर्थात् आत्मा सदृश वा उससे भिन्न कोई पदार्थ होवे, तो दृष्टान्त देकर कहते भी बने, ऐसी कोई यहाँ बात ही नहीं। तब दृष्टान्त कैसे कहा जा सकेगा? आत्माके बारेमें दृष्टान्त मिलना असम्भव है, ऐसा मानते हैं ॥ ३१६ ॥

२ ये तो सब दृष्टान्त अतीता। ना कछुनित्य न कछू अनीता ॥ ३१७॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—क्योंकि, यह आत्मा तो एक अद्वैत सर्वाधिष्ठान होनेसे सम्पूर्ण दृष्टान्तोंसे अत्यन्त परे है। उसमेंसे सब घटनायें परित्यक्त होते हैं। कथा, उपमादि कुछ भी आत्मामें लगती ही नहीं। इसवास्ते आत्मासे भिन्न न कोई कुछ चीज ही नित्य सत्य पदार्थ है। और न कोई कुछ अनित्य कहनेको जगह ही है। नित्य-अनित्य कोई कुछ भी नहीं है। नीति-अनीति भी वहाँ नहीं है। सर्वात्मा सम ब्रह्म एक ही है। यह तो अकथ कहानी है, ऐसा माने हैं ॥ ३१७ ॥

३ द्रष्टा दृश्य दर्शन कछु नाहीं। सब कछु आमतरूप कहाहीं ॥ ३१८ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और उस आत्म तत्त्वमें द्रष्टा-जीव, दृश्य-जगत्, दर्शन-दिखाई देना, दोनोंका सम्बन्ध यह उपाधि भी कुछ है ही नहीं। वह तो उपाधिसे रहित है। कहा भी हैः—

"द्रष्टृदर्शन दृश्यादि भावशून्यैकवस्तुनि ॥
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः ॥" ४०१ ॥ वि० चू० ॥

—उस द्रष्टा, दृश्य और दर्शन आदि भावोंसे शून्य, निर्विकार, निराकार और निर्विशेष एक वस्तुमें भला भेद कहाँसे आया? ॥ परन्तु वह त्रिपुटी और सब कुछ एक आत्मरूपमें ही कल्पित कहलाता है। क्योंकि, उपनिषद्में कहा है कि—

"पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ॥" श्वेता० उप० ३।१५ ॥

—अर्थात् जो कुछ पूर्वमें दृष्टिसे देखा है, अब दिख रहा है और

आगे दिखाई देगा, सो सब परमात्मा अधिष्ठानका ही स्वरूप है ॥

"सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।" श्वे० उ० ६।११ ॥

—परमात्मा सर्वव्यापक सर्वभूतोंके अन्तरात्मा है ॥

"स ओतः प्रोतश्चविभुः प्रजासु।" नारा० उ० १।३ ॥

—परमात्मा चराचरमें सर्वत्र भरा है, भीतर-बाहर पूर्ण है, इसलिये घनवत् व्यापक है ॥ "सर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेहनानास्ति किञ्चन।"

—सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म स्वरूप ही है और नानात्त्व कुछ नहीं ॥ अतएव द्रष्टा, दृश्य, दर्शनका अस्तित्त्व भिन्न कुछ न होते हुये भी परमार्थमें सब कुछ वा सर्वरूप अधिष्ठानरूपसे एक आत्मा ही सत्य कहलाता है। कहा है:—

"त्रिया पुरुष कछु कथ्यो न जाई। सर्वरूप जग रहा समाई ॥" बी० र० ७७ ॥

इस प्रकार आत्माको ही सब कुछ कहा गया है ॥ ३१८ ॥

४. नाम रूप सब मिथ्या जानो। कहना सुनना मिथ्या मानो ॥ ३१९ ॥

टीका:—सद्गुरु कहते हैं:—और परमात्मा-विश्वात्माका विराट स्वरूप होते हुए भी जगत् और उसके नाम-रूपको मिथ्या ही है, ऐसा जान लो। कहा है :—

"परिपूर्णमनाद्यन्तमप्रमेयमविक्रियम् ॥
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेहनानास्ति किञ्चन ॥" विवे० चू० ४६५ ॥

—(श्रुति कहती है—) वास्तवमें सर्वत्र परिपूर्ण, अनादि, अनन्त, अप्रमेय, और अविकारी एक अद्वितीय ब्रह्म ही है। उसमें और कोई नाना पदार्थ नहीं है ॥ इस कारणसे जगत्, देह, घट, पटादि यह कल्पित नाम और उनके रूप आकार-प्रकार सो कल्पितरूप है। उसे रज्जू—सर्पवत् मिथ्या ही जानो, वहाँ सत्यताका लेशमात्र भी नहीं है। इसलिये कुछ कहना और सुनना, यह प्रपञ्च भी मिथ्या ही मान लो। कहा भी है :—

"वाचारम्भणं विकारो नाम धेयम् ॥" छान्दोग्य उ० ६।१।६ ॥

—सर्वनाम-रूप विकारयुक्त माया कहनेमात्र कल्पित या मिथ्या है॥

"ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ॥" ईश० उ० १ ॥

—जहाँतक स्थूल-सूक्ष्म आकारवान् जगत् है, वह सर्व विराट पुरुष ईश्वरका ही स्वरूप है ॥ उसके बारेमें और कुछ विशेष बात कहना-सुनना मिथ्या ही माना जाता है। क्योंकि वह मन, बुद्धि, वाणीसे परे है। फिर कहना कैसे? और सुनना कैसे? वह तो अवाच्य, अलक्ष ज्योंका-त्यों जहाँका तहाँ है। क्योंकि :—

"अपरं परं रूप मगु रंगी। आगे रूप निरूप न भाय ॥
बहुत ध्यान कै खोजिया। नहिं तेहि संख्या आय ॥" बी० र० ७७ ॥

ऐसा जानके मौन हो रहना चाहिये। मिथ्या बोल-चालमें लगना नहीं चाहिये, ऐसा माने हैं ॥ ३१९ ॥

५. जस सुवर्ण भूषण है एका। ऐसो जगत आतमा देखा ॥ ३२० ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—अगर इतनेपरसे भी तुम्हें समझनेमें न आया, और दृष्टान्त ही चाहिये तभी समझोगे, तो उपयुक्त दृष्टान्त भी मैं तुम्हें कह देता हूँ। सुनो! जैसे सुवर्ण और आभूषणोंके स्वरूप तो एक ही है, उसमें रत्तीमात्र भी फरक नहीं है। सिर्फ आकार-प्रकारकी विभिन्नता, गहनोंमें हुई है, सो कल्पित मिथ्या है। कड़ा, कुण्डल, नथ, फूल, मुद्रिका, करधनी, कण्ठमाल, दुलरी, तिलरी, बाजूबन्द, ताबीज, नूपुर, कल्ली, कर्णफूल इत्यादि सुवर्णसे अनेकों गहनाएँ बनाते हैं। उसमें विचार करके चारों तरफसे देखो, सब प्रकारसे सुवर्ण रहता है कि नहीं?। बीचके नाम-रूप उपाधि मिथ्या हैं, अधिष्ठान सुवर्ण सत्य है। तहा कहा भी है :—

"सुवर्णाज्जायमानस्य सुवर्णत्वं च शाश्वतम् ॥
ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मत्वं च तथा भवेत् ॥" अप० ५१ ॥

—शङ्कराचार्य कहते हैं:—जैसे एक सुवर्णके अनेक आभूषण बने, वह सब सुवर्ण ही हैं। वैसे ही ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ सम्पूर्ण संसार भी

ब्रह्मरूप ही है और आकाररूप होकर जगत् फिर प्रलयमें निराकार ब्रह्मस्वरूपमें मिल करके वैसे ही हो जाता है ॥

अतएव "सुवर्ण भूषण न्याय" से वैसे ही जगत् तथा आत्मामें एकत्त्व देखा जाता है। आत्माको सुवर्णवत् कारण समझो और चराचर जगत् आभूषणके समान है। वहाँ विवेक करके देखो, तो जगत्के नाम-रूपमात्र मिथ्या है, और अधिष्ठान आत्मा तो अखण्ड सत्य ही है। निर्विकार-नित्य निरंजन आत्माको जगत्में ही परिपूर्ण देखो। इस प्रकार जगत् आत्मासे भिन्न नहीं, एकता करके देखना चाहिये, ऐसा माने हैं ॥ ३२० ॥

६. मृत विकार सब मृत्तिका जानो। जल विकार सब जल पहिचानो॥३२१

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और भी दृष्टान्त कहता हूँ! सुनो! जिससे तुम्हें पक्का ही आत्मज्ञान हो जावेगा। मिट्टीसे बने हुये कार्य पदार्थ—घट, मठ, पट, तट, मटकी, सुराही, चिलम, ईंटा, एवं अन्य पात्र सब भी सब भाँतिसे मिट्टीके विकार, पृथ्वीके भाग मिट्टी ही तो होते हैं। यह तो सब कोई जानते हो हैं कि, मिट्टीके बर्तनोंके स्वरूप मिट्टीके सिवाय और कुछ होता नहीं। तहाँ कहा भी हैः—

श्लोकः—मृत्कार्यं सकलं घटादि सततं, मृन्मात्रमेवाभितस्तद्वत्सज्जनितं सदात्मक मिदं, सन्मात्रमेवाखिलम्। यस्मान्नास्ति सतः परं किमपि तत्सत्यं स आत्मा स्वयं, तस्मात्त्वमसि प्रशान्तममलं ब्रह्माद्वयं यत्परम् ॥२५३॥ वि० चू० ॥

—शंकराचार्य कहते हैंः—जिस प्रकार मृत्तिकाके कार्य घट आदि हर तरहसे मृत्तिका ही है। उसी प्रकार सत्से उत्पन्न हुआ यह सत्स्वरूप सम्पूर्ण जगत् सन्मात्र ही है। क्योंकि सतसे परे और कुछ भी नहीं है, तथा वही सत्य और स्वयम् आत्मा भी है। इसलिये जो शान्त, निर्मल और अद्वितीय परब्रह्म है, वह तुम्हीं हो ॥

"मृत्कार्यं भूतोऽपि मृदो न भिन्नः, कुम्भोऽस्ति सर्वत्र तु मृत्स्वरूपात् ॥
न कुम्भरूपं पृथगस्ति कुम्भः, कुतो मृषा कल्पितनाममात्रः ॥" २३०॥ वि० चू० ॥

—मिट्टीका कार्य होनेपर भी घड़ा उससे पृथक् नहीं होता। क्योंकि सब ओरसे मृत्तिकारूप होनेके कारण घड़ेका रूप मृत्तिकासे पृथक् नहीं है। अतः मिट्टीमें मिथ्या ही कल्पित नाममात्र घड़ेकी सत्ता ही कहाँ है ?॥

"केनापि मृद्भिन्नतया स्वरूपं, घटस्य संदर्शयितुं न शक्यते ॥
अतो घटः कल्पित एव मोहान्मृदेव सत्यं परमार्थ भूतम् ॥२३१॥ वि० चू० ॥

—मिट्टीसे अलग घड़ेका रूप कोई भी नहीं दिखा सकता है। इसलिये घड़ा तो मोहसे ही कल्पित है। वास्तवमें सत्य तो तत्त्व-स्वरूपा मृत्तिका ही है। इसी प्रकार सिद्धान्तमें—

"सद्ब्रह्म कार्यं सकलं सदैव, तन्मात्रमेतन्न ततोऽन्यदस्ति ॥
अस्तीति यो वक्ति न तस्य मोहो, विनिर्गतो निद्रितवत्प्रजल्पः ॥" २३२॥वि० चू०॥

—सत् ब्रह्मका कार्य यह सकल प्रपञ्च सत्स्वरूप ही है। क्योंकि यह सम्पूर्ण वही तो है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। जो कहता है कि (उससे पृथक् भी कुछ) है, उसका मोह दूर नहीं हुआ। उसका यह कथन सोये हुये पुरुषके बर्डानेका प्रलापके समान है॥

इन सब प्रमाणोंसे यह सिद्ध हो गया कि, मिट्टीके बने कार्यरूप बर्तन विकाररूपको प्राप्त होकर भी सब तरहसे मिट्टी ही जाने जाते हैं। तद्वत् जगत् सब ब्रह्मरूप ही है। और जलके विकार— ओला, पाला, बर्फ, तुषार, हिम, फेन, बुद्बुदा, तरङ्ग, बुन्द, बौछार, वर्षा, इत्यादि सब प्रकारसे जलके स्वरूपके अन्तर्गत ही तो होते हैं। वे जलसे अभिन्न होते हैं, ऐसा ही पहिचान होता है। उन सब रूपामें जल ही अवस्थित है। इसी प्रकार नानात्वरूप जगत्में भी आत्मा एक ही सर्वत्र व्यापक परिपूर्ण है, तहाँ कहा है:—

"तरंगफेन भ्रम बुद्बुदादि, सर्वं स्वरूपेण जलं यथा तथा ॥
चिदेव देहाद्यहमन्तमेतत्, सर्वं चिदेवैकरसं विशुद्धम् ॥ ३९१ ॥ वि० चू० ॥

—जैसे तरङ्ग, फेन, भँवर, और बुद्बुदा आदि स्वरूपसे सब

जल ही हैं। वैसे ही देहसे लेकर अहङ्कार पर्यन्त यह सारा विश्व भी अखण्ड शुद्ध चैतन्य आत्मा ही है ॥

"सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥" भगवद्गीता ६।२६ ॥

—हे अर्जुन ! सर्वव्यापक अनन्त चेतनमें एकीभावसे स्थिति-रूप योगसे युक्त हुए आत्मावाला तथा सबमें समभावसे देखने-वाला योगी आत्माको सम्पूर्ण भूतोंमें बर्फमें जलके सदृश व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें देखता है। अर्थात् जैसे स्वप्नसे जगा हुआ पुरुष स्वप्नके संसारको अपने अन्तर्गत सङ्कल्पके आधारसे देखता है, वैसे ही वह पुरुष सम्पूर्ण भूतोंको अपने सर्वव्यापी अनन्त चेतन आत्माके अन्तर्गत सङ्कल्पके आधारसे देखता है ॥

जैसे जलके अणुओंके समूहका जमघट ही मेघ-मण्डल होते हैं और छोटे-छोटे झरनोंसे लेकर नदी, महानदी, समुद्र पर्यन्त सर्वत्र जल ही रहता है। वैसे ही नानारूपमें दिखाई देनेवाला सब संसार भी एक आत्मतत्त्व ही जलवत् है, ऐसा पहिचान करो।

"यथा जलंजलेन्यस्तं सलिलं भेदवर्जितम् ॥
प्रकृतिं पुरुषं तद्वद्ऽभिन्नं प्रतिभातिमे ॥" अव० गीता १।५० ॥

—दत्तात्रेयजी कहते हैं:—जैसे जलमें डाला हुआ अन्य जल भेदसे रहित एक स्वरूप हो जाता है। वैसे ही प्रकृति और पुरुष मुझे अभिन्न (एकरूप) प्रतीत होते हैं ॥ यह तो जलका दृष्टान्त हुआ, अब अग्निका दृष्टान्त सुनिये—

"अग्निसङ्गाद्यथालोह—मग्नित्व मुपगच्छति ॥" योगवासिष्ठ ॥

—अग्निके संयोगसे लोहा भी अग्निरूप तेजमय हो जाता है ॥

"अयोऽग्नियोगादिव सत्समन्वयान्मात्रादिरूपेण विजृम्भते धीः ॥
तत्कार्यमेतद्द्वितयंयतोमृषा, दृष्टं भ्रमस्वप्नमनोरथेषु ॥" ३५० वि० चू० ॥

—अग्निके संयोगसे जैसे लोहा (कुदाल आदि नाना प्रकारके रूपोंको धारण करता है) उसी प्रकार आत्माके संयोगसे बुद्धि नाना प्रकारके पञ्चविषयोंमें प्रकाशित होती है। यह द्वैत-प्रपञ्च उस बुद्धिका ही कार्य है, इसलिये मिथ्या है। क्योंकि भ्रम, स्वप्न और मनोरथके समय इसकी प्रतीतिका मिथ्यात्त्व स्पष्ट दीखता है ॥

अग्निका विकार दीया, ज्योति, लपट, आगकी स्फुलिङ्ग या चिनगारियाँ, बिजली, प्रकाश, भौम, दिव्य, उदर्य और आकरज ऐसे चार प्रकारके तेज इत्यादि सब अग्निरूप ही हैं, वे अग्निसे कदापि भिन्न नहीं होते। वैसे ही विश्वमें भी एक आत्माका प्रकाश व्यापक है, सो जानो। वहाँ कहा है:—

"अग्निर्मूर्धा चक्षुसी चन्द्रसूर्यौ, दिशः श्रोत्रे वाग्विवृत्ताश्च वेदाः ॥
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥
॥ मुण्डक उ० २।१।४ ॥

—अग्नि, मूर्धा (तालूके जरा ऊपरका भाग), नेत्र, चन्द्र, सूर्य, दिशा, कान, वाचासे प्रगट हुये वेद, वायु, प्राण, चराचर जीवोंका हृदय, पग, पृथ्वी आदि सर्वके भीतर परमात्मा अति सूक्ष्म प्रकाशरूप है ॥ सब विश्व परमात्मासे ही प्रकाशित हो रहा है। और वायुका विकार भी सब तरह वायुरूप ही रहता है। कहा है:—

"चालनं व्यूहनं प्राति—नेतृत्त्वं द्रव्यशब्दयोः ॥
सर्वेन्द्रियाणामात्मत्त्वं, वायोः कर्माभि लक्षणम् ॥" भागवत कं० ३।२७।३६ ॥

—कपिल मुनि कहते हैं:—वृक्षकी डालियाँ, पत्र, पताकादिकोंको हिलाना, तृण, झीनेकण, झीने पदार्थ आदिकोंको परस्पर मिला देना, मुख्य पृथ्वी तत्त्वयुक्त गन्धवाले पदार्थोंकी गन्धोंको नासिका इन्द्रियके पास ले आना, मुख्य जल तत्त्वयुक्त शीतगुणवाले पदार्थोंके शीतको त्वचाके पास ले आना, और मुख्य वायुतत्त्वयुक्त शब्दोंको कर्ण इन्द्रियके पास ले आना, सर्व इन्द्रियोंको बल देना, इन कर्मों द्वारा वायुका लक्षण जानिये। यह सब वायु करके ही होता है ॥

और आकाशकी उपमा भी यहाँ दिये हैं । कहा है:—

"आकाश एव तदोतश्च प्रोतश्चेति ।।" बृहदा० उ० ३।८।७ ।।

—आकाशवत् निराकार सर्वत्र अन्तर-बाहर व्यापक परमात्मा है ॥

"स पर्यगाच्छुक्रमकायम् ।" ईश उ० ८ ।।

—परमात्मा सर्वव्यापक निराकार है ॥

"यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ।।" भगवद् गीता १३।३२ ॥

—जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त हुआ भी आकाश, सूक्ष्म होनेके कारण लिपायमान नहीं होता है। वैसे ही सर्वत्र देहमें स्थित हुआ भी आत्मा, गुणातीत होनेके कारण देहके गुणोंसे लिपायमान नहीं होता है ॥

"अन्तः स्वयं चापि बहिः स्वयं च, स्वयं पुरस्तात्स्वयमेव पश्चात् ।।
स्वयं ह्यवाच्यां स्वयमप्युदीच्यां, तथोपरिष्टात्स्वयमप्यधस्तात् ।।" ३९० ।।वि० चू०॥

—आप ही भीतर है, आप ही बाहर है, आप ही आगे है, आप ही पीछे है, आप ही दायें है, आप ही बायें है, और आप ही ऊपर है, आप ही नीचे है ॥

"आकाशवन्निर्मलनिर्विकल्प, निःसीमनिष्पन्दन निर्विकारम् ।।
अन्तर्बहिः शून्यमनन्यमद्वयं, स्वयंपरंब्रह्म किमस्ति बोध्यम् ।।" ३९४ ।।वि० चू०॥

—जो परब्रह्म स्वयं आकाशके समान निर्मल, निर्विकल्प, निःसीम, निश्चल, निर्विकार, बाहर-भीतर सब ओरसे शून्य, अनन्य और अद्वितीय है, वह क्या ज्ञानका विषय हो सकता है ? नहीं ॥

"घटाकाशं महाकाश इवात्मानं परात्मनि ।।
विलाप्याखण्डभावेन तूष्णींभवसदा मुने" ॥ २८९ ।। वि० चू० ॥

—हे मुने ! (घटका नाश होनेपर) जैसे घटाकाश, महाकाशमें मिल जाता है । वैसे ही जीवात्माको परमात्मामें लीन करके सर्वदा अखण्ड भावसे मौन होकर स्थित रहो ।।

अब आकाशके भी चार भेद कहा है । सो सुनिये !

विचार सागरके स्तरङ्ग ४ में लिखा है:—

"घटाकाश इक जल आकाशा, मेघाकाश महा आकाशा ॥
चारि भेद ये नभके जानहु, पुनि चेतनके तथा पिछानहु ॥
इक कूटस्थ जीव पुनि कहिये, ईश ब्रह्म हिय जाने रहिये ॥"
"जल पूरित घटकूँ जु दे, जितनो नभ अवकाश ।
युक्ति निपुण पण्डित कहैं, ताकूँ घट आकाश ॥
जल पूरित घटमैं जु पुनि, है नभका आभास ।
घटाकाश युत विज्ञ जन, भाषत जल आकाश ॥
जो मेघहि अवकाश दे, पुनि तामैं आभास ।
तिन दोनों कूँ कहत हैं, बुध जन मेघाकाश ॥
बाहिर भीतर एक रस, व्यापक जो नभरूप ।
महाकाश ताकूँ कहैं, कोविद बुद्धि अनूप ॥"

—उपाधि भेदसे आकाशके भी ऐसे चार प्रकारके भेद माने हैं। अथवा;—घटाकाश, मठाकाश, महदाकाश, चिदाकाश और निजाकाश ये पाँच आकाश पञ्चदेहमें माने हैं। कहनेका मतलब अनेक भेद होके भी आकाश जैसे एक ही हैं, तैसे ही दृश्य जगत् अनन्त होके भी आत्मा सबमें एक है, ऐसा ब्रह्मज्ञानियोंने माना है ॥

इस प्रकार मिट्टीके विकार सब मिट्टी ही होते हैं। जलका विकार सब जल ही होते हैं। अग्निके विकार सब अग्नि ही हैं। वायुके विकार सब वायु ही हैं। और आकाशके विभाग भी सब शून्यरूप आकाशके ही नाम हैं, ऐसे अच्छी तरहसे जानके तुम पहिचान लो ॥ ३२१ ॥

७. तैसा जग है आतम विकारू । तो सब आत्मा है निरधारू ॥३२२॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं.—हे शिष्य ! उपर्युक्त प्रमाण सहित जो दृष्टान्त दिया गया है, तैसे ही यह सम्पूर्ण चराचर दृश्य-अदृश्य जगत् विकाररूप विभिन्नता होते हुये भी सब प्रकारसे आत्मा परमात्माके ही विकार है। इसीसे तो वेदान्ती लोग कहते हैं कि,

निश्चयसे सारा जगत् आत्मा ही है। मैं ही सर्वरूप एक आत्मा हूँ। यही दृढ़ निश्चय उन्हें हो रहता है। यह पाँच तत्त्व घट-मठ-पटादि भी आत्माके ही विकारसे रूपान्तर होके प्रगट हुये हैं। तो निर्णयसे आत्मा ही सब कुछ ठहरता है। यही बात निश्चय करके धारण करो, ऐसा ब्रह्मज्ञानियोंका कथन है। आत्माको सर्वाधार जगत्के अधिष्ठान माने हैं, इसलिये सब कुछ उसीसे होता है।

"यत्रैष जगदाभासो दर्पणान्तः पुरं यथा ॥
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा कृतकृत्यो भविष्यसि ॥" २६२ ॥ वि० चू० ॥

—जिसमें यह जगत्का आभास दर्पणमें प्रतिविम्बित नगरके समान प्रतीत हो रहा है, वह ब्रह्म ही मैं हूँ, ऐसा जान लेनेपर तुम कृतकृत्य = संतुष्ट हो जावोगे ॥ ऐसा कहते और मानते हैं ॥ ३२२ ॥

८. सबै ब्रह्म कछु न्यारा नाहीं। जो देखो सो ब्रह्म समाहीं ॥ ३२३ ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब ब्रह्ममुख वाणीसे विज्ञान स्थितिको बता रहे हैंः—हे शिष्य! वेदान्तियोंका कथन ऐसा है कि—"सर्वखल्विदं ब्रह्म" सम्पूर्ण विश्व एक ब्रह्म ही है। वही विराट स्वरूप है, ब्रह्मसे चराचर यानी जड़-चैतन्य कोई कुछ भी वस्तु न्यारा नहीं है। तू ब्रह्म, मैं ब्रह्म, वह ब्रह्म, यह ब्रह्म, सूर्य, चन्द्र, तारागण, अन्तरिक्षादि खगोल, भूमण्डलादि भूगोल, समुद्रादि जलराशि, जङ्गल, महाअरण्य, गिरि गह्वर, सातद्वीप, नौ खण्ड, २१ ब्रह्माण्ड, सुमेरु, हिमालय, देव, दैत्य, यक्ष, राक्षस, किन्नर, भूत-प्रेत, पिशाच, मनुष्य, पशु, अण्डज, और उष्मज इत्यादि सकल विस्तार जो हुआ है, सो सब भी ब्रह्म ही है। ब्रह्मसे अणु-प्रमाणु मात्र भी कुछ भिन्न नहीं है। जहाँतक दृष्टिगोचर, अगोचर है और जो तुम अभी देखते-सुनते हो, सो सम्पूर्ण एक ब्रह्ममें ही समाया हुआ है। विचार करके देखो, ब्रह्म व्यापक होनेसे आकाशवत् सम-समान सर्वत्र भरा पड़ा है। इसीसे सबमें ब्रह्म समाया हुआ है। इस बारेमें कहा भी है, तहाँ प्रमाण सुनो!

सं० नि० षट्० १४—

श्लोकः—"ब्रह्मैवेदं विश्वमित्येव वाणी, श्रौती श्रुतेऽथर्वनिष्ठा वरिष्ठा ॥
तस्मादेतद् ब्रह्ममात्रं हि विश्वं, नाधिष्ठानाद्भिन्नतारोपितस्य ॥ २३३ ॥
॥ विवेक चूड़ामणि ॥

—शङ्कराचार्य कहते हैं:—"ब्रह्मैवेदं सर्वम्"—यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म ही है—ऐसा अतिश्रेष्ठ अथर्ववेद या श्रुति कहती है। अर्थात् अधिष्ठान ब्रह्म सर्व जगत्का मूल आधार है, इसलिये यह जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं। जैसे अधिष्ठानरूप रज्जु आरोपित सर्पका आधार है, यानी वस्तु न होते हुये भी कथन होता है। परन्तु रज्जूसे भिन्न वह होता नहीं। तैसे ही ब्रह्म-जगत्से भिन्न नहीं, तो जगत्रूप ही है। इसलिये यह सारा विश्व ब्रह्ममात्र ही है। क्योंकि अधिष्ठानसे आरोपित वस्तुकी पृथक् सत्ता हुआ ही नहीं करती ॥

अतएव ब्रह्म ही सब कुछ है। ब्रह्मसे कुछ भी न्यारा नहीं है, जो कुछ भी जहातक देखो, सो सब ब्रह्ममें ही समाया हुआ है। इसलिये—"एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति"—एक ही ब्रह्म है, दूसरा कुछ नहीं, ऐसा कहा गया है, सो जानो ॥ ३२३ ॥

९. ब्रह्महि कहै और कहलावै। ब्रह्महिं बोधै और बोधावै ॥ ३२४ ॥

टीका:—सद्गुरु कहते हैं:—और गुरुरूपसे स्वयं ब्रह्म ही ब्रह्मज्ञानको कहता है, फिर शिष्यरूपसे ब्रह्म ही प्रश्न करके पूछता है, उपदेश कहलाने लगता है। ब्रह्म ही अखण्ड, निर्मल-निर्विकार, सच्चिदानन्द कहलाता है। और ब्रह्म स्वयं बोधस्वरूप है, वही बोध देता है और बोधायके ब्रह्मज्ञानकी बोध लेनेवाला भी ब्रह्म ही है। इस प्रकार सब कुछ ब्रह्म ही है। कहा है:—

"ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ॥
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्मसमाधिना ॥ भगवद् गीता ४।२४ ॥

—स्रुवादिक अर्पण भी ब्रह्म है और हवि = हवन करने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है। और ब्रह्मरूप अग्निमें ब्रह्मरूप कर्ताकेद्वारा जो

हवन किया गया है, वह भी ब्रह्म ही है। इसलिये ब्रह्मरूप कर्ममें समाधिस्थ हुये उस पुरुषद्वारा जो प्राप्त होने योग्य है, वह भी ब्रह्म ही है ॥

इस प्रमाणसे तो कर्ता, क्रिया, कर्म, वस्तु सब कुछ वही ब्रह्म ही ठहर गया। कहने-सुननेवाला, बोध देने-लेनेवाला, ज्ञानी-अज्ञानी, सब कुछ ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही बहुत प्रकारसे एक-अनेकरूपमें कहलाता है ॥ ३२४ ॥

१०. इतनो कहत बनें नहिं भाई ! जो अनुभव विज्ञान कहाई ॥ ३२५ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— हे भाई शिष्य ! आखिरी फैसला तो यह है कि, भावना करके इतना भी कहते बनता नहीं कि, सब कुछ ब्रह्म ही है। ब्रह्मसे ही सब कुछ हो रहा है। ब्रह्म ही कहता है, और ब्रह्म ही कहलाता है, फिर ब्रह्म ही बोध देता-लेता है, ऐसा कुछ भी कहते नहीं बनता है। इस प्रकार जो है, सोई विज्ञानका अनुभव कहलाता है। अर्थात् विज्ञानके अनुभवमें पहुँच जानेपर फिर कुछ कहा-सुना जाता नहीं। इतना बारीक रास्ता है यह, अनुभवगम्य है, अवाच्य है, ऐसा समझो ॥ ३२५ ॥

११. आतम एक अखण्डहि होई। ऐसेहि कहत बने नहिं कोई ॥ ३२६ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— और एक अखण्ड आत्मा ही सत्य है और सब मिथ्या है, ऐसा भी कुछ कहते बनता नहीं। अखण्ड कहनेपर खण्ड भी साबित होता है। इसलिये आत्माके बारेमें वचनसे तो कुछ भी कहते बनता नहीं। क्योंकि वह सबसे परे है। कहा है:—

"इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥" ॥ भगवद् गीता ३।४२ ॥

—इस शरीरसे तो इन्द्रियोंको परे (श्रेष्ठ बलवान् और सूक्ष्म)

कहते हैं। और इन्द्रियोंसे परे मन है और मनसे परे बुद्धि है और जो बुद्धिसे भी अत्यन्त परे है, वह आत्मा है ॥

"अतः परं ब्रह्म सदद्वितीयं, विशुद्धविज्ञानघनं निरञ्जनम् ॥
प्रशान्तमाद्यन्तविहीनमक्रियं, निरन्तरानन्दरसस्वरूपम् ॥२३९॥ वि० चू० ॥

—इसलिये परब्रह्म सत्, अद्वितीय, शुद्ध, विज्ञानघन, निर्मल, शान्त, आदि-अन्त-रहित, अक्रिय और सदैव आनन्द-रस-स्वरूप है ॥

"निरस्तमायाकृतसर्वभेदं, नित्यं सुखं निष्कलमप्रमेयम् ॥
अरूपमव्यक्तमनाख्यमव्ययं, ज्योतिः स्वयं किञ्चिदिदं चकास्ति" ॥ २४० ॥ वि० चू० ॥

—वह समस्त मायिक भेदोंसे रहित है। नित्य सुख-स्वरूप, कला रहित और प्रमाणादिका अविषय है तथा वह कोई अरूप, अव्यक्त, अनाम, और अक्षय तेज है। जो स्वयं ही प्रकाशित हो रहा है ॥

वास्तवमें तो ऐसा भी कहते बनता नहीं कि, और कोई नहीं है, आत्मा ही एक अखण्ड है ॥ ३२६ ॥

१२. एक कहौं तो दूसर होई । कहनहार न्यारा नहिं कोई ॥३२७॥

टीका:— सद्गुरु कहते हैं:—क्योंकि कारण ऐसा है, यदि मैं एक ही आत्मा अखण्ड सत्य है, ऐसा शब्द कहूँगा, तब तो दूसरा भी सिद्ध होगा। एक कहनेवाला, एक सुननेवाला, एक सत्य, एक असत्य, खण्ड, अखण्ड, भेद, अभेद, इस तरह तो द्वैत ही बन जायगा। परन्तु ब्रह्म सिद्धान्तमें तो सुननेवालासे कहनेवाला कोई न्यारा है ही नहीं। फिर एक या दो कौन कहे? किससे कहे? श्रोता-वक्ता भी तो ब्रह्म ही है। ब्रह्मसे न्यारा कोई भी नहीं ॥ कहा है :—

ज्ञातृज्ञेयज्ञानशून्यमनन्तं निर्विकल्पकम् ।
केवलाखण्डचिन्मात्रं परं तत्त्वं विदुर्बुधाः ॥ वि० चू० २४१ ॥

—बुधजन उस परमतत्त्वको ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय इस त्रिपुटीसे रहित, अनन्त, निर्विकल्प, केवल, और अखण्ड-चैतन्यमात्र जानते

हैं। कहते कुछ नहीं। देखिये सुन्दर विलासमें और कहा है :—

"एक कहूँ तु अनेक सु दीसत, एक अनेक नहीं कछु ऐसो ।
आदि कहूँ तहाँ अन्तहु आवत, आदि न अन्त न मध्य सु कैसो ॥
गोप्य कहूँ तु अगोप्य कहाँ यह, गोप्य अगोप्य न ऊभो न बैसो ।
जोइ कहूँ सोइ है नहिं सुन्दर, है तु सही परि जैसेको तैसो ॥"

अतएव एक और अनेक कुछ कहा ही नहीं जाता। कहनेवाला पृथक् कोई नहीं है ॥ ३२७ ॥

१३. सबै संभवे आतम माहीं । विधि निषेध करना कछु नाहीं ॥३२८॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:— और आत्मा एक ऐसी वस्तु है कि, उसमें सब कुछ सम्भवता है। सर्वाधिष्ठानको ही आत्मा कहते हैं। जड़-चैतन्य, प्रकृति-पुरुष, उत्पत्ति-प्रलय, दिन-रात, हानि-लाभ, पाप-पुण्य, जीव-शिव, जन्म-मरण, सुख-दुःख, सम्भव, असम्भव, इत्यादि सकल बात आत्माके मध्यमें ही हुआ करते हैं। नाम-रूप मिथ्या है, आत्मा सत्य है। इसलिये आत्मामें सब कुछ हो सकता है। अशक्य असम्भवका तो वहाँ स्थान ही नहीं। कहा है :—

"ऐक्यं तयोर्लक्षितयोर्न वाच्योर्निगद्यतेऽन्योन्यविरुद्धधर्मिणोः ॥
खद्योतभान्वोरिव राजभृत्ययोः, कूपाम्बुराश्योः परमाणुमेर्वोः ॥" २४४ ॥वि० चू० ॥

—उन सूर्य और खद्योत (जुगनू), राजा और सेवक, समुद्र और कूप, तथा सुमेरु और परमाणुके समान परस्पर विरुद्ध धर्म-वालोंका एकत्व लक्ष्यार्थमें ही कहा गया है, वाच्यार्थमें नहीं ॥

इसलिये सब बातका सम्भव आत्मामें होता है। वहाँ विधि-विधान प्रतिपादन करना, और किसी बातको निषेध करके खण्डन, अस्वीकार्य, अग्रहण या त्याग करना-कराना भी कुछ बनता नहीं। अर्थात् आत्मामें विधि, निषेध करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती। तहाँ कहा भी है :—

"अहेयमनुपादेयं मनोवाचामगोचरम् ॥
अप्रमेयमनाद्यन्तं ब्रह्मपूर्णं महन्महः ॥" ॥ २४२ वि० चू० ॥

—वह ब्रह्म त्याग अथवा ग्रहणके अयोग्य, मन-वाणीका अविषय, अप्रमेय, आदि-अन्त रहित, परिपूर्ण तथा महान् तेजोमय है ॥

"अनादान विसर्गाभ्यामीषन्नास्ति क्रिया मुनेः ॥"—२८३ ॥ वि० चू० ॥

—बोधवान् मुनिको कोई भी वस्तु ग्राह्य अथवा त्याज्य न होनेसे कुछ भी कर्तव्य नहीं है, द्वैतमें ही त्याग-ग्रहणरूप विधि-निषेध करना होता है। जब कि आत्मा एक ही है, तब उसमें विधि, निषेध करना कहाँ हो सकता है? वह अकर्तव्य है, ऐसा जानो ॥३२८॥

१४. कहत सुनत कछु बनै न भाई ! जस गूँगा लीन्हों गुड़ खाई ॥३२९॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे भाई! जिज्ञासु शिष्य ! जैसे मूक या गूँगा पुरुषने गुड़, शक्कर वा मिश्री खा लिया, तो उसके बारेमें वह कुछ भी कह-सुन नहीं सकता है। क्योंकि उसमें वाणीका अभाव है, इससे कुछ कहते ही नहीं बनता है, यानी वह शब्द बोल नहीं सकता है, स्वादको जानके मस्त रहता है। तैसे ही विज्ञानियोंकी भी स्थिति रहती है। विज्ञान दशाको प्राप्त होनेपर फिर कुछ बात कहना और किसीकी बात सुनना, यह प्रवृत्तिका कार्य उनसे कुछ भी बनता नहीं। परमानन्द अनुभवको खाके उसे ग्रहण कर या प्राप्त करके मौन-निश्चल हो जाते हैं। निर्विकल्प स्थितिका अनुभव वही गुड़स्वादवत् है, सो अकथनीय है, अनुभव गम्य है। कहा है :—

"यत्परं सकलवागगोचरं, गोचरं विमलबोधचक्षुषः ॥
शुद्धचिद्घनमनादिवस्तु यद्, ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥" २५६ ॥ वि० चू० ॥

—जो प्रकृतिसे परे और वाणीका अविषय है, निर्मल ज्ञान चक्षुओंसे जाना जा सकता है। तथा शुद्ध चिद्घन अनादि वस्तु है, तुम वही ब्रह्म हो—ऐसी अपने अन्तः करणमें भावना करो ॥

और सुन्दर दासजीने भी कहा है :—

"स्वाद निवेर निवेखो न जात सु, मानहुँ गूड़ गुँगे नित खैये।
क्या कहिये कहते न बनै कछु, जो कहिये कहते हि लजैये॥"
॥ आत्म अ० अंग ३३ ॥

अतएव कहना, सुनना तो वहाँ कुछ बनता ही नहीं, अब खाली भावना ही करो कि, मैं ही ब्रह्म हूँ। गूँगाने गुड़खानेके समान, विज्ञानी अपने आपमें मगन मस्त रहते हैं। विज्ञानके बारेमें जो तुमने स्पष्टीकरण जानना चाहा था, सो शास्त्रोंके प्रमाणयुक्त कथन करके मैंने तुम्हें सम्पूर्ण मर्म बतला दिया है। अब तो विज्ञानके रहस्यको तुमने समझ ही लिया होगा, अब तुम्हें क्या बात कहना है, सो कहो? ॥ ३२९ ॥

॥ १६ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—१६ ॥ खण्ड ३१ ॥

सोरठा:—आतम होय बे काज। येता करना चाहिये॥
(६) हो प्रभु! तुम गुरुराज! भेद यथार्थ बताइये॥३३०॥

टीका:— सद्गुरुके समझा चुकनेके बाद फिर शिष्यने शङ्का प्रगट करके सोलहवाँ प्रश्न किया, और कहा कि, हे सद्गुरु प्रभो! आपकी शिक्षा सुनके अभी मैंने यही समझा कि, आत्मस्थितिमें दृढ़तासे कायम होनेके लिये जीव-ब्रह्मकी एकता करना, त्वंपद, तत्पदकी भेद मिटाना, द्वैतको छोड़के अद्वैत मानना और कहना-सुनना दोनों कार्य मिटा देना पड़ेगा। यदि इतना सब ही प्रयत्न आत्मा होनेके लिये जीवको करना चाहिये, गूँगेके गुड़ खानेके समान मूक होना, विधि-निषेध छोड़ देना चाहिये, तब तो मैं समझता हूँ कि, ऐसे करके तो जीवात्माका बेकाज=अकाज, अकल्याण, अनर्थ ही हो जायगा। क्योंकि बे=दो तरहकी बिरोधि, काज=कार्यका येता=इतना एकता कैसे करना? अगर जगत्—ब्रह्मका एकता करके ही आत्मा होता है, तो प्रथम आत्मसिद्धि भी न हुई। मैं तो बड़ा संशयमें

पड़ गया हूँ! मतलब कुछ भी समझ ही नहीं सका। हे गुरुमहाराज! आप तो ज्ञान शिरोमणि हो, सर्वश्रेष्ठ हमारे सद्गुरु हो! अब संक्षेपमें इतना ही बताइये कि, मुझे क्या करना चाहिये? इतना ही साधन मुझे करना चाहिये, ऐसा स्पष्ट बताइये कि, जिसमें मेरा कल्याण हो, आत्म तत्त्वमें स्थिर हो सकूँ। आत्मज्ञान दृढ़ होयके मेरा कार्य सिद्ध होवे। अब इसीका यथार्थ भेद कृपा करके बतलाइये ॥ ३३० ॥

॥१६॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—१६ ॥ खण्ड— ॥३२॥

दोहाः—आतम होनो कहाँ है ? सदा आतमा आहि ॥
(२८) अखण्ड निरन्तर एकरस। कहो शिष्य! तुम काहि ?॥ ३३१॥

टीकाः—सद्गुरु ब्रह्ममुख वाणी बता रहे हैं :—हे शिष्य! तुमने बातको बराबर समझा नहीं, तभी ऐसी शङ्का हुई। अरे भाई! आत्मा होना ही कहाँ है? यहाँ आत्मा होने-हानेका कोई प्रयोजन नहीं है। एक आत्माके सिवाय अन्य भी कोई वस्तु होता, तब आत्मा होना कहा भी जा सकता था, परन्तु यहाँ तो आत्मा सदा सर्वदासे ज्योंका-त्यों सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक हैं। यानी सदा कालसे आत्मा मोजूद ही है। वह नित्य निरन्तर एकरस, अखण्ड, सर्व-रूप, सर्वाधार, अपार, अगम, अगोचर हैं, सर्वदासे ऐसा ही आत्मा है। हे शिष्य! कहो, तुम और किसको आत्मा मानते हो? अभी तुमने क्या कहा? आत्मा कैसे होना? आत्मा होनेका कार्य कैसे होय? ऐसा तुम क्या कहते हो? भूले हुये बात करते हो। वास्तवमें आत्मा तो एक अखण्ड, नित्य, अवाच्य ही रहता है। शेष सब बीचकी उपाधियाँ मिथ्या हैं; वही उपाधिके भाव छोड़ना है और कुछ करना नहीं है। कहा है:—

"येतावुपाधी परजीवयोस्तयोः सम्यङ्निरासे न परो न जीवः ॥
राज्यं नरेन्द्रस्य भटस्य खेटकस्तयोरपोहे न भटो न राजाः ॥" २४६ ॥ वि० चू० ॥

—ये परमात्मा और जीवात्माकी उपाधियाँ हैं। इनका भली

प्रकार बोध हो जानेपर न परमात्मा ही रहता है और न जीवात्मा ही। जिस प्रकार राज्य राजाकी उपाधि है तथा ढाल सैनिककी। इन दोनों उपाधियोंके न रहनेपर न कोई राजा है और न योद्धा ही है॥

"अस्थूलमित्येतदसन्निरस्य, सिद्धं स्वतो व्योमवदप्रतर्क्यम्॥
अतो मृषामात्रमिदं प्रतीतं, जहीहि यत्स्वात्मतया गृहीतम्॥
ब्रह्माह मित्येव विशुद्धबुद्ध्या, विद्धि स्वमात्मानमखण्ड बोधम्" ॥२५२॥वि० चू०॥

—"अस्थूल मनण्वह्रस्वमदीर्घम्" (बृह० ३।८।७) इत्यादि श्रुतिसे असत् स्थूलता आदिका निरास करनेसे आकाशके समान व्यापक अतर्क्य वस्तु स्वयं ही सिद्ध हो जाती है। इसलिये आत्मरूपसे गृहीत ये देह आदि मिथ्या ही प्रतीत होते हैं। इनमें आत्म बुद्धिको छोड़; और मैं 'ब्रह्म हूँ' इस शुद्ध बुद्धिसे अखण्ड बोध स्वरूप अपने आत्माको जान॥

इसप्रकार आत्मा तो जैसेका तैसा सदासे है ही। फिर आत्मा होना या बनना ऐसी बात कहा हो सकती है? आकाशवत् घट-बढ़ न होनेवाला आत्मा तो सर्वत्र है। फिर कहो शिष्य! तुम आत्मा नहीं हो, तो कौन हो? अगर तुम्हारी बुद्धिमें और ही कुछ भास चढ़ी हो, तो उसे भी प्रगट करके मिटा डालो। संशय-को निवारण करलो। प्रथम-अभी वेद प्रमाणसे आत्मज्ञानको विशेष रूपसे परिपुष्टिसे कथनको दरशा करके फिर उसके भी कसर-खोट परखाकर पश्चात् गुरुज्ञान पारखका बोध करेंगे। अभी तो आत्मज्ञानके बारेमें ही प्रकरण चलाके समझाते जायेंगे, सो जानो॥ ३३१॥

॥ १७ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक–१७ ॥ खण्ड–३३ ॥

सोरठाः–हे गुरु दीनदयाल ! । ज्ञान विज्ञान जब ना हतो ॥
(७) तबहुँ आतम कृपाल । विज्ञान पाय अबहीं भयो॥३३२॥

टीकाः—शिष्यने फिर सत्रहवाँ प्रश्न कहा कि,—हे दीनदयालु!

सद्गुरु देव ! ज्ञान और विज्ञान पूर्वमें जब प्रकाश नहीं हुआ था, तब आत्मा शुद्ध बुद्ध था कि, नहीं ? अथवा अभी विज्ञान प्राप्ति करके ही आत्मा सिद्ध भया है कि, क्या कैसा है ? सो हे कृपालु कृपा करके समझाइये। अथवा हे गुरो ! जब कि ज्ञान,—विज्ञान मैं जानता नहीं था, तब भी आत्मा वैसे ही था कि नहीं ? और विज्ञान की प्राप्ति तो अभी आपके कृपासे हुआ। फिर भी पूर्ववत् आत्मा ही रहा, तो क्या फायदा हुआ ? अब आप ही बताइये कि—पहले अज्ञान दशामें आत्मा था कि नहीं ? तब भी आत्मा था कि, अभी विज्ञान पायके ही आत्मा भया है ? । यह समस्या मेरे समझनेमें कुछ भी नहीं आई। अज्ञान, ज्ञान, और विज्ञान ये तीन अवस्थोंमें मैं आत्माको कैसे मानूँ ? क्योंकि, प्रथम अज्ञान था, तो जीव था, मध्यमें ज्ञान भया तो ईश्वर हुआ, और अब अन्तिममें विज्ञान प्राप्त हुआ, तो आत्मा या ब्रह्म भया, ऐसे तीन भेद हुआ। फिर उसे एक ही कैसे मानना ? हे प्रभो ! यह बात भी कृपा करके दरशा दीजिये ! ॥ ३३२ ॥

॥ १७ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर–१७ ॥ खण्ड–३४ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—२९ ॥ चौ० १ से ५ तक है ॥

१. अचरज बात पूछो शिष्य मोहीं। सब वृत्तान्त बतावहुँ तोहीं ॥३३३

टीकाः—सद्गुरु-ब्रह्ममुखसे-शिष्यको आत्मबोध कर रहे हैं:— हे शिष्य ! अबकी तो तुमने बड़ी आश्चर्योत्पादक बात मुझसे पूछे हो ! तुम्हारी उल्टी समझ देखके मुझे तो हँसी आती है कि, ऐसे-ऐसे विपरीत संशय भी उत्पन्न हो जाते हैं। बड़े विलक्षण समझ-वाले हो तुम। कोई हर्जा नहीं, जो बात पूछे हो, उसके सब वृत्तान्त कहिके मैं तुम्हें बता देता हूँ ! सब प्रकारसे परिपक्क होना अच्छा ही है। वेदमें प्रमाण करके ठहराई हुई बात ही सम्पूर्णरूपसे आत्मसिद्धान्त कथन करके बताता हूँ। सो श्रवण करो— ॥ ३३३ ॥

२. ज्ञान विज्ञान भयो जब नाहीं। तबहूँ आतम स्वयं रहाहीं ॥३३४॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—जिस वक्त तुमको ज्ञान और विज्ञानका कुछ भी बोध नहीं भया था, तब भी आत्मा तो स्वयं अखण्ड एकरस पूर्ण ही रह रहा था। अर्थात् यह निश्चय करके समझ लो कि,—ज्ञानका प्रकाश और विज्ञानकी स्थिति जब जिस वक्त जीवोंमें रहता नहीं, या होता नहीं, आत्मा तो तब भी स्वयं स्वरूप जैसेका तैसा ही रहता है। उसमें कुछ फरक पड़ता नहीं। क्योंकि आत्मा सर्वव्यापक सनातन है। अतएव आत्मामें कभी परिवर्तन नहीं होता ॥ ३३४ ॥

३. ज्ञान विज्ञान भयो जब भारी। तबहूँ आतम सकल विहारी ॥३३५॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—और बीचमें उपाधि करके जीवोंको भ्रमसे अविद्या पड़ी, फिर साधन चतुष्टय सम्पन्न हो करके तुर्या अवस्था ज्ञानमार्ग साक्षी अवस्थाको प्राप्त भये। तदनन्तर अनुभव प्रकाश हो करके जब बड़ा भारी विज्ञानका बोध उदय भया, तब भी आत्मा तो पूर्ववत् सम्पूर्ण विश्वमें परिपूर्ण व्यापकरूपमें ही रहा। आत्माके सच्चिदानन्दघन गुण लक्षणमें कभी फरक नहीं पड़ता है। अनेकरूप भास होके भी वह एक ही है। कहा हैः—

"उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ॥
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥"॥ भगवद् गीता० १३।२१ ॥

—वास्तवमें तो यह पुरुष इस देहमें स्थित हुआ भी पर अर्थात् त्रिगुणमयी मायासे सर्वथा अतीत ही है। केवल साक्षी होनेसे उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देनेवाला होनेसे अनुमन्ता एवं सबको धारण करनेवाला होनेसे भर्ता, जीवरूपसे भोक्ता तथा ब्रह्मादिकोंका भी स्वामी होनेसे महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानन्दघन होनेसे परमात्मा, ऐसा कहा गया है ॥

अनन्त नाम-रूप-गुण होते हुये भी आत्मा एक ही है। और ज्ञान-विज्ञान होवे या न होवे, तब भी आत्मा तो सकल विहारी ही रहता है, ऐसा जान लो ॥ ३३५ ॥

४. ज्ञान विज्ञान होय औ जाई । अज्ञानहुँ बहु बार नशाई ॥३३६॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—हे शिष्य ! ज्ञान और विज्ञान प्रकाश तो हो-होके मिट जाता है। इसलिये वह, अस्थाई, अवस्था विशेष है। आता ही जाता रहता है, बीचमें हुआ, फिर बीचही में मिट गया, सो अनित्य—क्षणिक कहलाता है। और अज्ञान, अविद्या माया भी बहुत बार प्रगट हुई, फिर अनेकों वार जब-जब प्रगट हुई, तब-तब नाश हुई। जैसे वादल आया, फिर नाश होके विलाया, परन्तु सूर्य ज्योंका-त्यों है। बादलके बनने—बिगड़नेसे सूर्यका कोई हानी, लाभ नहीं होता। तैसे ही ज्ञान-अज्ञान-विज्ञान, कारण विशेषसे होते और मिटते रहते हैं। उससे आत्माका हानि-लाभका कोई सम्बन्ध नहीं। वह सब तो भ्रम करके होता है। ज्ञान-विज्ञान रहो या न रहो, आत्मा तो अचल ही है, ऐसा समझो ॥ ३३६ ॥

५. आतम जैसा व्योम स्वरूपा। उपजै खपै न इस्थिर रूपा ॥३३७॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और जैसे आकाश सर्वत्र रहते हुये भी सबसे निर्लिप्त निर्गुण है। वैसे ही आत्मा भी व्योम= आकाशवत् ही व्यापक स्वरूप है। उसकी उत्पत्ति और विनाश होता नहीं, वह तो स्थिर-अटल, अचलरूप ही है। कहा है:—

दोहाः—अन्तर बाहिर एकरस, जो चेतन भरपूर ॥
विभु नभ सम सो ब्रह्म है, नहिं नेरे नहिं दूर ॥ विचारसा० ४।६० ॥

"निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ॥" श्वेता० उ० ॥ ६।१६ ॥

—इच्छा, क्रिया, गुण, जाति, सम्बन्ध तथा अवयव रहित, शान्तस्वरूप परमात्मा है।

"अखण्डित घनाकारो, वर्त्तते केवलं शिवः ॥ अव० गी० ७।१३॥

—व्यापक घनाकार अखण्ड, केवल, कल्याणस्वरूप परमात्मा वर्तता है ॥

"आकाश एव तदोतश्चप्रोतश्चेति ॥" बृह० उ० ३।८।७॥

—आकाशवत् निराकार सर्वत्र अन्तर-बाहर व्यापक परमात्मा है ॥

"आकाश शरीरं ब्रह्म ।" तैत्ति० उ० ६।२॥

—आकाशवत् चेतन ब्रह्म भी व्यापक और क्रियारहित है ॥ इस प्रकार आत्माके स्वरूप भी आकाशके तरह ही है। बल्कि आत्मा तो आकाशादि पाँचों तत्त्वोंके भीतर-बाहर सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है। इसलिये बनना, बिगड़ना या उत्पत्ति-प्रलय कभी उसका होता नहीं। महाशून्यके नाईं सदा शान्त, स्थिर ऐसा उसका स्वरूप है। तुम-हम सब कोई एक ही आत्मा स्वरूप हैं। ऐसा निश्चय करके जानलो। यही ब्रह्मज्ञानियोंका मुख्य सिद्धान्तका कथन है, सो परखानेके लिये ही विधिपूर्वक यहाँ दर्शा रहे हैं, सो जानो ॥ ३३७ ॥

॥ १८ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—१८ ॥ खण्ड—३५ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—३० ॥ चौ० दो मात्र है ॥

१. अहो गुरुजी! कहो समुझाई। ज्ञान-विज्ञान काहेको चाही ? ॥३३८॥

टीकाः—ऐसा गुरु उत्तर सुनके शिष्य अठारहवाँ प्रश्न कहने लगा कि, अहो! सद्गुरुजी! अब तो मैं भी बड़ा आश्चर्यमें पड़ गया हूँ कि, अभी आपने शास्त्रोक्त प्रमाण सहित समझायके कहे कि, आत्मा एक आकाशके समान है, किसी प्रकार भी उसका बनाव-बिगड़ाव होता नहीं, अचल स्वरूप है इत्यादि, फिर तब तो यदि कोई अज्ञानी मूढ़ भी बना रहा, तहाँ भी उसके कोई हानि नहीं। और ज्ञान, विज्ञान भी किसीको हुआ, तब भी उसे कोई लाभ नहीं, क्योंकि-आत्मा तो ज्योंका-त्यों आकाशवत् ही है। फिर अब यह समझाके कहिये कि, ज्ञान और विज्ञानका बोध किसको चाहिये ? और क्यों

होना चाहिये ? ज्ञान, विज्ञान लिया-दिया भी तो उससे सार क्या निकलेगा ? क्या लाभ होगा ? किसके लिये उक्त ज्ञान-विज्ञान होना चाहिये ? मैं यहा कैसे समझूँ ! सो बतलाइये ? ॥ ३३८ ॥

२. ज्ञान विज्ञानको कारण कौना ? सदा आत्मा है मन भौना ॥ ३३९ ॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः— और आत्मा तो मनके भावनाके अनुसार जैसाका तैसा निर्गुण, निराकार, एकरस ही है । अथवा मनभावनी बात युक्ति प्रमाणसे सिद्ध करके आपने आत्माको पूर्ण ठहरा ही दिये हो । फिर एक आत्मासे दूसरा कोई नहीं, ऐसा दृढ़ निश्चयका अद्वैत बोध होके भी आपने कैसे ज्ञान-विज्ञानको प्रगट किया ? किस कारणसे ज्ञानमार्ग, और विज्ञान मार्गको कथन किया गया ? किसके लिये क्यों, कैसी, उसकी आवश्यकता पड़ी ? ज्ञान, विज्ञानके बिना किसकी क्या हानि हो रही थी ? फिर उससे फायदा भी तो क्या निकला ? क्योंकि आत्मा तो सदाकाल देह, मनादि भवनमें भरा ही पड़ा है । उसमें होना-जाना तो कुछ है ही नहीं । अहो ! गुरुजी ! अब तो मैं बड़े घनचक्करमें पड़ गया हूँ, कृपा करके इस संशयको मिटा दीजिये ! ॥ ३३९ ॥

॥ १८ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—१८ ॥ खण्ड—३६ ॥

दोहाः—भ्रान्ति मिटनके कारणे । सुन शिष्य ! तू चित्त देय ॥

(२९) ज्ञान विज्ञान प्रकाशिया । यामें नहीं सन्देह ॥ ३४० ॥

टीकाः—सद्गुरु वेदान्तोक्त सार कथन बतलाते हैंः—हे शिष्य ! मेरे वाक्यको अब तुम चित्त लगाके सुनो ! अज्ञान-अविद्याके आवर्णसे द्वैतको मिथ्या भ्रान्ति फैल गई है । अधिष्ठान सत्य ब्रह्ममें जगत्की मिथ्या आरोपण हो रही है । अपनेको आत्मा न जानकर जीव मानकर मिथ्या मायोपाधिके बन्धनोंमें पड़े हुये हैं । सो सब भ्रान्ति करके ही हो रहा है । अतएव इन्हीं सब भ्रमको मिटानेके लिये, इसी कारणसे प्रथम साधन चतुष्टययुक्त श्रवणादि कर-कराके

ज्ञानमार्ग और विज्ञान मार्गको प्रकाश किया जाता है। जिससे हृदयमें प्रकाश होकर सब भ्रान्ति मिट जाती है। फिर ऐसे कोई सन्देहोंका लवलेश मात्र भी नहीं रहता। सिर्फ भ्रान्ति मिटानेके कारणसे ही मैंने ज्ञान-विज्ञानको प्रकाश करके तुझे सुनाया, बताया है। हे शिष्य ! तू उसे चित्त दे करके सुन ! और ठीक तरहसे मनमें गुन, यानी मनन कर। इसमें सन्देह करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं। तुझे सन्देह क्यों हुआ कि=तूने आत्मज्ञानको ठीक तरहसे मनन नहीं किया। नहीं तो इसमें सन्देह कहाँ रह सकता है। इसमें ऐसा उल्टा सन्देह करनेका तो कोई काम ही नहीं। अब एकात्मका निश्चय करके निःसन्देह हो जाओ ॥ ३४० ॥

॥ १९ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक–१९ ॥ खण्ड–३७ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—३१ ॥ चौ० १ से ५ तक है ॥

१. भ्रान्ति मिटी कि मिटी न जाहीं। तो यह आत्मा है कि नाहीं ॥ ३४१ ॥

टीकाः—गुरुके समाधान कर चुकनेके बाद फिर शिष्य उन्नीसवाँ प्रश्न कहने लगा कि, हे सद्गुरु देव ! भ्रान्ति मिटानेके लिये ही आपने इस ज्ञान-विज्ञानको विस्तारपूर्वक कहे, सो बात तो समझा। परन्तु इसमें शङ्का यह होती है कि—भ्रान्ति मिटती है कि, मिटती नहीं ? अथवा मेरी भ्रान्ति मिटी कि, अभी नहीं मिटी ? यानी भ्रम मिट जाती है कि नहीं ? और यह भ्रम आया तो कहाँसे आया ? फिर मिटके कहाँपर जायगी ?। तो फिर भ्रम रहते हुयेमें आत्मा वैसे ही रहता है कि नहीं ? यह आत्मा कौन है ? उसमें भ्रम रहता है कि नहीं ? और भ्रम आत्मासे भिन्न है कि नहीं ? इसमें कैसे समझना चाहिये ॥ ३४१ ॥

२. कहो भ्रान्ति मिटी नहिं जौ लों। आतमा यह कहलाय न तौ लों ॥ ३४२ ॥

टीकाः—और शिष्य कहता हैः—अगर इसके उत्तरमें आप ऐसा कहेंगे कि, जबतक भ्रान्ति, दुविधा मिटती नहीं, या मिटेगी नहीं,

तबतक यह शुद्ध आत्मा या केवल परमात्मा कहलाता नहीं है या कहलायेगा नहीं। तब तो वहाँ द्वैत साबित ही हो गया। क्योंकि एक भ्रम, दूसरा जीव, तीसरा आत्मा, यह त्रिपुटि खड़ी हो गई। और अपनेसे भिन्न दूसरा कोई पदार्थ हुये बिना भ्रम हो ही नहीं सकता। एक अकेलामें भ्रम काहेका? कैसे होगा? इससे तो अद्वैत-मत सरासर ही खण्डन हो गया। अब कहियेकि, जबतक वह भ्रान्ति मिटती नहीं, तबतक क्या यह आत्मा कहलाता नहीं? अगर वैसा नहीं, तो फिर क्या कहलाता है? सो कहिये ॥ ३४२ ॥

३. तो एकता दृष्टान्त बताये। औ अखण्ड कहिके समुझाये ॥ ३४३॥

टीकाः— शिष्य कहता है:— और पहिले तो आपने जीव-ब्रह्मकी एकता करनेके लिये तथा आत्मा-जगत्को एक बतानेके लिये जो दृष्टान्त दिये सो कनक-कुण्डलन्याय, सुवर्ण-भूषणन्याय, घट मृत्तिकान्याय, जल-गारान्याय, अग्नि, वायु, आकाशवत्, ठहराके उक्त उपमा देके आत्मसिद्धान्तको बताया था। तहाँ आत्माको अखण्ड, अपरिछिन्न, एकरस, सर्वव्यापक इत्यादि विशेषण-युक्त युक्ति-प्रयुक्ति प्रमाणसे कहके अद्वैत आत्मसिद्धान्तको समझाये थे। परन्तु तहाँपर एकता = एक तरफी या एकदेशी पाँचों तत्त्वोंके कार्य-कारण संयुक्त खण्ड-खण्ड दृष्टान्त बताके फिर सिद्धान्तमें आत्माको एक अखण्ड कहे। अब विचार करनेकी बात है कि, पाँचों तत्त्व तो जड़, एकदेशी होनेसे उनके कार्य-कारणके गुणमें समता रहती है, सो प्रत्यक्ष दीख भी रहा है। किन्तु तद्वत् अखण्ड सर्वदेशी माना हुआ आत्माका साक्षात्कार कहाँपर होता है? कहीं भी नहीं। खाली वाणी मात्र ही कहा-सुना जाता है। फिर हम असल सार क्या समझें? सो कहिये! ॥ ३४३ ॥

४. अधिष्ठान आतमा कहिया। सो विचार प्रभु! कहवाँ रहिया॥ ३४४॥

टीकाः—शिष्य कहता है:— और आत्माको आपने सर्वाधिष्ठान कहा है, अर्थात् सब चराचरके आधार, सकल जगत्के मूल भूमिका,

महाकारण, सबमें भरा हुआ एक परमात्मा सिद्ध किये हैं। अब फिर आपने उसपर भ्रान्ति उत्पन्न होनेका कथन किया, और भ्रान्ति मिटानेके लिये ज्ञान-विज्ञान प्रकाश किया, ऐसा बताये। अब तो हे प्रभु ! सो अखण्ड, अद्वैत, आत्माका विवेक-विचार कहा रहा? यानी सो आत्मविचार अब कहाँपर रह गया या रहेगा?। अब तो सब उपरोक्त विचारको छोड़-छाड़के बिलकुल अविचारी होना ही दीखता है। क्योंकि सर्वाधिष्ठान आत्मा तो स्वयंसिद्ध ही है। फिर उसके बारेमें कुछ विचार करना ही बेकार है। जब आत्मासे भिन्न कोई कुछ भी नहीं; फिर विचार करनेवाला कहाँ रहके क्या विचार करेगा? ॥ ३४४ ॥

'१. सब दृष्टान्त दोषित होय तबहीं। कछु सम विषम बतावहु जबहीं ॥ ३४'१

टीकाः— शिष्य कहता हैः—और आपने प्रथम जो-जो दृष्टान्त बताये, सो सब तो दूषित = दोषके सहित, खराब, अनुपयुक्त, निकम्मे ही हो गये। क्योंकि दृष्टान्त, कथा, कहावत, उदाहरण, मसलन, उपमा ये सब द्वैतमें ही साबित होते हैं। जब आपने एक ही आत्मा बताये, तभी सब दृष्टान्तमें दोष-कसर आ गया। अब यदि आप फिर भी सम = बराबर, एक समान, आकाशवत् इत्यादि कह करके और विषम = अनमिल, ऊँच, नीच, घट-बढ़, भिन्न-भिन्न पृथ्वी आदि चार तत्त्वोंके कार्य, कारणादिवत् कुछ भी दृष्टान्त-सिद्धान्त वा उपमा-उपमेय जब बतायेंगे, ठीक-बेठीक तरहसे वाणी कथन करेंगे, तब भी वहाँपर अद्वैत दृष्टिसे दोष देखनेमें ही आ जायगा। अर्थात् युक्ति-प्रयुक्तिसे सम-विषम, घटित-अघटित, योग्य-अयोग्य इत्यादि प्रकारसे जो कुछ भी दृष्टान्त, समाधान करनेके लिये जब आप अब बतायेंगे, तभी वे सब एकात्म विचारसे दोषयुक्त, अनुपयुक्त हो जायेंगे। अतएव अब मेरा भ्रम कैसे छूटेगा? भ्रम छूटे विना तो आत्मस्थिति होनेकी नहीं। हे प्रभो ! मुझे तो ठीक-ठीकसे समझाइये। क्या ऐसी अनसमझसे मैं मुक्त होऊँगा या नहीं? मेरी भ्रान्ति मिटेगी कि नहीं? कब मिटेगी? आत्मस्थितिमें मैं कब पहुँचूँगा?

सो यही सब कृपा करके कहिये ॥ ३४५ ॥

॥ १६ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर— १६ ॥ खण्ड ३८ ॥

दोहाः— भ्रान्ति मिटी वा ना मिटी । आतम मिटै न कोय ॥
(३०) आतम अनादि अखण्ड है । मानि लेहु शिष्य सोय ॥ ३४६ ॥

टीकाः— ब्रह्ममुख वाणीको परिपुष्ट करके सद्गुरु बता रहे हैं कि, हे शिष्य ! खास मतलबकी बात मैं तुझे बता देता हूँ, तू सुन ! भ्रान्ति, संशय, दुविधा, यह कोई चीज तो है नहीं, उसे मिटाना ही चाहिये, ऐसी भी कोई बात नहीं । चाहे भ्रान्ति मिट जाय, अथवा बनी रहै, न मिटै, तब भी कोई हानि-लाभ नहीं है । क्योंकि, आत्मा तो अमिट, अचल है । उसे तो कोई किसी प्रकारसे भी तीनकालमें मिटा नहीं सकता है । अगर भ्रान्ति मिटानेमें भी द्वैत मालूम पड़ता हो, तो उसे मत मिटाओ । भ्रान्ति किसे कहते हैं, सो सुनो ! कहा हैः— दोहा ।

"जन्म मरण गमनागमन, पुण्य पाप सुख खेद ॥
निज स्वरूपमें भान है । भ्रान्ति बखानी वेद ॥" विचार सा० ४।१०१ ॥

भ्रान्ति नाश वर्णनः— दोहा ।

"जन्म मरण मोमें नहीं, नहिं सुख दुःखको लेश ॥
किन्तु अजन्य कूटस्थमें, भ्रान्ति नाश यह वेश ॥" वि० सा० ४।१०४॥

इस प्रकार विचार करके चाहे तो भ्रान्ति मिटाओ, चाहे मत मिटाओ । परन्तु आत्मा तो किसी कालमें भी नहीं मिट सकता है । क्योंकि परमात्मा या परब्रह्म जो है, सो अनादि अखण्ड, अचिन्त्य, अजन्मा, निर्विकार, निराधार, सर्वव्यापक है । उसके लिये भगवद्गीताका प्रमाण देता हूँ । सुनो ! कहा हैः—

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥" भ० गीता २।२३ ॥

—हे अर्जुन ! इस आत्माको शस्त्रादि नहीं काट सकते हैं और इसको

आग नहीं जला सकती है, तथा इसको जल गीला नहीं कर सकते हैं और वायु सुखा नहीं सकता है ॥

"अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ॥
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥" भ० गीता २।२४ ॥

— क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है तथा यह आत्मा निःसन्देह नित्य, सर्वव्यापक, अचल, स्थिर, रहनेवाला और सनातन है ॥

"अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ॥
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥" भ० गीता २।२५ ॥

— और यह आत्मा अव्यक्त अर्थात् इन्द्रियोंका अविषय और यह आत्मा अचिन्त्य = मनका अविषय और यह आत्मा विकार रहित न बदलनेवाला कहा जाता है। इससे हे अर्जुन ! इस आत्माको ऐसा जानकर तूँ शोक करनेको योग्य नहीं है, अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है ॥

इस कारण उक्त प्रमाणपर लक्ष देकर हे शिष्य ! तुम भी चिन्ता, संशय, तर्क, भ्रमादिको दिलसे छोड़ दो। मैं आत्मा अनादि अखण्ड हूँ ! ऐसा तुम भी दृढ़ निश्चयसे मान लो, सोई सुखका धाम है, ऐसा समझो ॥ वास्तवमें तो भ्रम भी मिथ्या है, मिथ्या वेद प्रमाणसे मिथ्या गुरु उसे नाश कर देते हैं । मिथ्यासे मिथ्याका नाश हो जाता है। यह विचारसागरका प्रमाण है। तहाँ पञ्चमस्तरङ्गमें लिखा है :—

"वेद रु गुरु जो मिथ्या कहिये। तिनते भव दुःख नश्यो न चहिये ॥
जैसे मिथ्या मरु थलको जल। प्यास नाशको नहिं तामैं बल ॥
सत्य वेद गुरु कहैं तु द्वैत। भयो गयो सिद्धान्त अद्वैत ॥"
"जो द्वितीया कूँ मतिमैं धारै। भय ताकूँ यह वेद पुकारै ॥"

—तहाँपर भर्छू मन्त्री और राजाका दृष्टान्त दिया है।

॥ ❀ ॥ इन्द्व छन्द ॥ ❀ ॥

"भर्त्तु मर्यो रु परेत भयो यह, वाक्य असत्यहु सत्य पिछाना ।
देखि लियो निज आँखिन जीवत, तोहु परेतहु मानि भगाना ॥
वंचकते सुनि द्वैत तथा, मतिमें विसवास करै जु अजाना ।
ब्रह्म अद्वैत लखै परतच्छहु, तौहु न ताहि हिये ठहराना ॥
जो मिथ्या है दैशिक वेदा । कैसे करहीं भव दुःख छेदा ॥
वेद रु गुरु सत्य जो होवै । तौ मिथ्या भव दुःख नहिं खोवै ॥"

यहाँ पर राजाके पैरमें सियारने स्वप्नमें काटा, तो स्वप्नके मिथ्या उपायसे ही वह अच्छा भी हो गया, ऐसे दृष्टान्त दिया है। और "विषय हेतुहि दृष्टान्त प्रकाश्यो । लखि मिथ्या तैं मिथ्या नाश्यो ॥"

—"संसाररूप दुःख मिथ्या है, याते तिसके दूरि करनेके साधन वेद, गुरु मिथ्या ही चाहिये हैं । मिथ्याके नाशमें सत्य साधनकी अपेक्षा नहीं । मिथ्या जो संसार दुःख, ताका नाश मिथ्या वेद-गुरुसे होवे है, साँचे वेद-गुरु अपेक्षित नहीं ॥"

इत्यादि कथन विचारसागर ग्रन्थमें विस्तारसे लिखा है ॥

अतएव जगत् भ्रान्ति मिटै वा कदाचित् न मिटै, उससे परम-तत्त्वकी कोई हानि नहीं । आत्मा मिटता है, ऐसा तो कोई नहीं कह सकता । सबका कारण आत्मा स्वयं स्वरूप अखण्ड अनादि है । हे शिष्य ! अब तुम भी उपरोक्त प्रमाणसे आत्माको ऐसा ही मान लो ! सब तर्क-वितर्क, सन्देह, छोड़के शान्त हो जाओ । कहो अब तुम्हें कैसा समझनेमें आया ? क्या बोध हुआ ? सो बताओ ॥ ३४६ ॥

॥ २० ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—२० ॥ खण्ड—३६ ॥

दोहा:—वेद वचन उपदेश अरु । मिथ्या सब गुरुवाई ॥
(३१) आतम तो मैं एकरस । नीकी बात बताई ॥ ३४७ ॥

टीकाः—गुरु उपदेश और जाँच-पूछ सुन करके शिष्यने सविनय

बीसवाँ प्रश्न कहने लगा कि,— हे गुरुदेव ! अभी तो मैंने यही समझा कि, वेद-शास्त्रादिकोंके समस्त वचन भी झूठे ही हैं। उपदेश देना—लेना यह दोनों भी झूठा है। गुरु उपदेश भी मिथ्या है, और गुरु-चेले भी झूठे हैं। सम्पूर्ण गुरुवाई-सिखाई भी मिथ्या है। जगत्‌में द्वैत भासना भी मिथ्या है। अर्थात् रोग, रोगी, वैद्य, औषधवत् जीव, जन्म-मरण, गुरु, और उनके उपदेश वेदादिके प्रमाण यावत् मिथ्या प्रपञ्चमात्र है। मिथ्या बन्धनोंको मिथ्या वेदके आधारसे मिथ्या गुरुने निवारण किया, सो भी मिथ्या ही है। कथनी, बदनी, श्रवण-मननादि सब मिथ्याकी पसारा है। और एक अविचल सर्वाधिष्ठान, एकरस, नित्य-निरञ्जन, परमात्मा तो स्वयं मैं ही सत्यस्वरूप हूँ ! यही आपके उपदेशसे मुझे बोध हुआ है। सो आपने बहुत अच्छी परमोत्तम बात बतलाई है। इससे तो मेरा सर्वाधिक मान बढ़ गया है। क्योंकि सब झूठे ठहरे और मैं सच्चा, मैं सबसे बढ़के हूँ ! यह बड़ी खुशीकी बात है। परन्तु सत्य और मिथ्या ये दो बातें तो यहाँ भी ठहर गई, तो द्वैत ही सिद्ध हुई, अद्वैतकी सिद्धि तो कुछ भी नहीं भई। फिर अद्वैतकी कथन क्या ढकोसलामात्र है ? या वास्तवमें अद्वैतकी लक्षण साबित भी हो सकता है वा नहीं ? यही मैं जानना चाहता हूँ ! यह बात जैसा हो, तैसा दया करके जनाइये ॥ ३४७ ॥

॥ २० ॥ सद्‌गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—२० ॥ खण्ड-४० ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—३२ ॥ चौ० १ से ६ तक है ॥

१. अरे बाल ! मैं तोहिं बताई। मिथ्या सत्य कछु नहिं भाई ! ॥३४८

टीकाः—फिर ब्रह्ममुखसे गुरुने आत्मज्ञानको दृढ़ करनेवाली वार्ताको बताना आरम्भ किया। सद्गुरु कहते हैं:— हे शिष्य ! तुम तो बिलकुल ही छोटे-छोटे बालकोंके समान ही अल्प बुद्धिवाले अनसमझसे हो रहे हो ? अरे बालक ! मैंने तो बहुत बार आत्मज्ञान-

के रहस्यको तुम्हें खोल-खोलके बताया हूँ, फिर भी अभीतक तुमने ठीकसे समझा ही नहीं। बड़ी मोटी बुद्धि है तुम्हारी, अच्छा! अभी और भी खुलासा करके मैं तुम्हें असली भेद बता देता हूँ! सो ध्यान पूर्वक सुनो! हे भाई! शिष्य! मिथ्या = असत्य या झूठ कहा जा सके, ऐसी कोई वस्तु और सत्य = सच्चा, असली कहने लायक ऐसा कोई पदार्थ भी कुछ नहीं है। अर्थात् आत्मामें सत्य वा मिथ्याकी कुछ भी भावना करनेकी जरूरत नहीं है। सत्य-मिथ्यासे परे विलक्षण ऐसी आत्मा आश्चर्यमय मानी गयी है। इस बारेमें गीतामें प्रमाण आया है, सो श्रवण करो। कहा है:—

"आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ॥
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति, श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्" ॥ भ० गीता २।२९॥

—हे अर्जुन! यह आत्मतत्त्व बड़ा गहन है। इसलिये कोई महापुरुष ही इस आत्माको आश्चर्यकी ज्यों देखता है। और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही आश्चर्यकी ज्यों इसके तत्त्वको कहता है। और दूसरा कोई ही इस आत्माको आश्चर्यकी ज्यों सुनता है। और कोई-कोई सुनकर भी इस आत्माको नहीं जानता है।

अतएव अब तुम मिथ्या वा सत्यकी कुछ भी भावना मत करो। क्योंकि परमतत्त्व आत्माको मिथ्या वा सत्य कुछ भी कहा जा सकता नहीं। और आत्माके सिवाय दूसरा कुछ है ही नहीं ॥ ३४८ ॥

२. जो कछु होय तो द्रष्टा कहिये। द्रष्टा दृश्य न एकौ लहिये ॥३४९॥

टीका:—सद्गुरु कहते हैं:—क्योंकि आत्मासे भिन्न कोई कुछ कहीं अनात्मा होवे, वा दृश्य वस्तुकी अस्तित्त्व होवे, तभी तो द्रष्टा, साक्षीको भिन्न कहते बनेगा न। परन्तु यहाँ तो ऐसी कोई बात ही नहीं। तीन कालमें दृश्यका कुछ भी भाव है नहीं, अत्यन्त अभाव है। फिर कहो भला! द्रष्टाको न्यारा कैसे कहना?। इसलिये आत्मामें द्रष्टा, दृश्य, और दर्शनकी एक भी सम्भावना एवं प्रतीति

नहीं होती, द्रष्टा-जीव और दृश्य-जगत् चराचरके पदार्थ एक भी वहाँपर प्राप्त नहीं हो सकते। इससे आत्मा अग्राह्य, अकथनीय है। आत्मा तो नित्यमुक्त-नित्य तृप्त है। जो तुम ऐसा कहो कि—आत्मा सदा ही नित्यमुक्त ब्रह्मस्वरूप है, तो श्रवणादिक ज्ञानके साधन निष्फल होवेंगे। तो उसके समाधान विचारसागर तरङ्ग ५ में कहा है, सुनो!

॥ ❀ ॥ इन्द्व छन्द ॥ ❀ ॥

नाहिं खपुष्प समान प्रपञ्च तु, ईश कहा करता जु कहावै।
साध्य नहीं इम साक्षि स्वरूप न, दृश्य नहीं इक काहि जनावै॥
बन्धहु होय तो मोक्ष बनैं अरु, होय अज्ञान तो ज्ञान नशावै।
जानि यही करतव्य तजै सब, निश्चल होतहि निश्चल पावै॥ वि० सा० १६०॥
एक अखण्डित ब्रह्म असङ्ग, अजन्य अदृश्य अरूप अनामैं।
मूल अज्ञान न सूक्ष्म स्थूल, समष्टि न व्यष्टिपनो नहिं तामैं॥
ईश न सूत्र विराट न प्राज्ञ, न तैजस विश्वस्वरूप न जामैं।
भोग न योग न बन्ध न मोक्ष, नहीं कछु वामैं रु है सब वामै॥ वि० सा० १६२॥

अतएव आत्मतत्त्वमें कुछ भी प्रपञ्चके विकार नहीं है! जो कुछ है, सो तो आत्मा ही है। और द्रष्टा, दृश्य, दर्शन, ये त्रिपुटीके उपाधि एक भी वहाँ नहीं मिल सकते। और भी विवेक चूड़ामणिमें शंकराचार्यने कहा है, सुनो—

"कर्तृत्व भोक्तृत्व खलत्व मत्तता, जड़त्वबद्धत्वविमुक्तता दयः॥
बुद्धेर्विकल्पा न तु सन्ति वस्तुत, स्वस्मिन्परे ब्रह्मणि केवलेऽद्वये"॥ ५११॥

—कर्त्तापन, भोक्तापन, दुष्टता, उन्मत्तता, जड़ता, बन्धन, और मोक्ष—ये सब बुद्धिकी ही कल्पनायें हैं। ये प्रकृति आदिसे अतीत केवल अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप स्वात्मामें वस्तुतः नहीं हैं॥

"सन्तु विकाराः प्रकृतेर्दशधा शतधा सहस्रधा वापि॥
किंमेऽसंगचितेस्तैनघर्नः क्वचिदम्बरं स्पृशति॥ ५१२॥ वि० चू०॥

—प्रकृतिमें दशों, सैकड़ों और हजारों विकार क्यों न हों, उनसे मुझ असङ्ग चेतन आत्माका क्या सम्बन्ध? मेघ कभी भी आकाशको

नहीं छू सकता ॥

इस प्रकारसे सबसे परे आत्मतत्त्वको तू अपनेमें जान ले ॥३४९॥

३. सब विलास आतम कर भाई! आपुहि खेले आपु खेलाई ॥३५०॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई शिष्य ! आत्मा स्वयं सुख स्वरूप है। इसलिये सम्पूर्ण विलास, आनन्द आत्मा करके ही होता है। यानी सब सुख विलास आत्मा ही है, आत्म क्रीड़ामें ही सब जगत् समाया हुआ है। वह आत्मा अपने आप विविध प्रकारके रूप धारण करके स्वयं ही बहुविधि खेल-खेलता है, फिर खेल करानेवाला खेलाड़ी भी आप ही आत्मा है। वह अपना खेल आपही खेलता-खेलाता रहता है। कहा हैः—

"अहमात्मा गुडाकेशः सर्वभूताशयस्थितः ॥
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ भ० गीता १०।२० ॥

—हे अर्जुन ! मैं सब भूतोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा हूँ ! तथा सम्पूर्ण भूतोंका आदि, मध्य, और अन्त भी मैं ही हूँ।

"सुन्दर और कछू मत जानहु, ब्रह्महि देखत ब्रह्म तमासै ॥
ब्रह्महि माहिं विराजत ब्रह्महि, ब्रह्म बिना जनि औरहि जानौ ॥ सु० वि० ॥

अतएव यह जगत् सब आत्माका विलासमात्र ही है। इसमें अन्य विपरीत भावना करनेकी जरूरत ही नहीं। सर्वशक्तिमान् आत्मा आपही खेल और खिलाड़ी होके खेलता-खेलाता हुआ विहार कर रहा है। अतः सब कुछ आत्मा ही आत्मा है, ऐसा जानो ॥३५०॥

४. यामें घटै बढै कछु नाहीं। चूपचाप रहिये निज ठाहीं ॥३५१

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और उस आत्मामें घटना-बढ़ना तो कुछ होता ही नहीं; एकरस, अखण्ड, आकाशवत् है। कहा हैः—

"व्योमको व्योम अनन्त अखण्डित, आदि न अन्त सु मध्य कहाँ है ? ॥
को परमान करै परिपूरण, द्वैत अद्वैत कछू न जहाँ है ॥

कारण कारज भेद नहीं कछु, आपमें आपहि आप तहाँ है ॥
सुन्दर दीसत सुन्दर माहिं सु, सुन्दरता कहि कौन उहाँ है" ॥ सु० वि० ॥

अतएव इस आत्मामें रञ्चकमात्र भी कभी घटना और बढ़ना हो सकता नहीं । जैसे शून्यका क्षय वा वृद्धि होती नहीं, तैसे ही आत्मा भी अक्षय—अविनाशी, एक समान है। ऐसा जान करके कि, सोई आत्मा मैं हूँ ! फिर तुम चुपचाप निर्विकल्प हो, निज आत्मतत्त्वमें ही स्थित रहो, ऐसे ही सदा रहना चाहिये । कहा है:—

"असङ्गोऽहमनङ्गोऽहमलिंगोऽहमभंगुरः ॥
प्रशान्तोऽहमनन्तोऽहमतान्तोऽहं चिरन्तनः ॥" वि० चू० ४९० ॥

—मैं असङ्ग हूँ, अशरीर हूँ, अलिङ्ग हूँ, और अक्षय हूँ तथा अत्यन्त शान्त हूँ, अनन्त हूँ, अतान्त = निरीह और पुरातन हूँ ! ॥

इस प्रकार समझके एकरस आत्मस्वरूपमें मौन होके निज ठौरमें ही ठहरे रहना चाहिये ॥ ३५१ ॥

५. सब बानीको होय गयो अन्ता । आपु आपन आत्म अनन्ता ॥ ३५२

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—आप अपने ही अनन्त आत्मस्वरूपका निश्चय हो जानेपर सब वाणीः— वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती, और परा, इनका महान् अन्त्य हो जाता है। जब सम्पूर्ण मन, बुद्धि, वाणी आदिकी अन्त्य हो गयी, तो अपने आप आत्मा अनन्त, बेअन्त, असीम, अथाह, अपार ही रह जाता है। वहाँ पहुँचनेपर बोल-चाल मिट जाती है, वाच्य, लक्षकी इति श्री होती है अर्थात् वचन विचारको भी समाप्ति वा अन्त्य हो जाता है ॥ ३५२ ॥

६. ज्योंका त्यों ही ब्रह्म विराजै । मुक्त बन्ध एको नहिं छाजै ॥ ३५३ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—इसलिये हे शिष्य ! परब्रह्म जो है सो, ज्योंका त्यों, जहाँका तहाँ. जैसेका तैसा, अकथनीय या अवाच्य, सर्वत्र परिपूर्णरूपसे विराजमान व्यापक है। उसमें कभी बन्धन और मुक्ति होनेकी बातकी कल्पना करना एक भी शोभा नहीं देता।

क्योंकि बन्धन और मुक्ति तो द्वैत उपाधिका ही कथन है। परन्तु ब्रह्म एक अद्वैत अखण्ड ओत-प्रोत है। फिर तहाँ बन्धन वा मुक्ति आदिका वर्णन कुछ भी नहीं हो सकता। सुनिये इस बारेमें कहा भी हैः—

"बन्धहु होय तो मोक्ष बनै अरु, होय अज्ञान तो ज्ञान नशावै ।
जानि यही करतव्य तजै सब, निश्चल होतहि निश्चल पावै ॥" वि० सा० ५।१६०॥

"पाप न पुण्य न स्थूल न शून्य न, बोलै न मौन न सोवै न जागै ।
एक न दोइ न पुर्ष न जोइ, कहै कहाँ कोइ न पीछे न आगै ॥
वृद्ध न बाल न कर्म न काल, न ह्रस्व विशाल न जूझै न भागै ।
बन्ध न मोक्ष अप्रोक्ष न प्रोक्ष न, सुन्दर है न असुन्दर लागै ॥" सु० वि० ॥
ब्रह्म निरीह निरामय निर्गुण, नित्य निरञ्जन और न भासै ।
ब्रह्म अखण्डित है अध ऊरध बाहिर भीतर ब्रह्म प्रकाशै ॥
ब्रह्महि सूक्ष्म स्थूल जहाँ लगि, ब्रह्म हि साहिब ब्रह्महि दासै ॥" सु० वि० ॥

— इस प्रकार ब्रह्म ज्योंका त्यों है, सर्वत्र विराजमान है। अतएव उसमें मुक्ति और बन्धनका छायामात्र भी लवलेश नहीं है। ऐसा दृढ़ निश्चय करके तुम अब शान्त हो जाओ। वाणी-विलाससे होनेवाला यावत् भ्रम-संशयको छोड़ दो। कहो, अब तो तुम्हें कुछ परमतत्त्व समझनेमें आया कि, नहीं ? ॥ ३५३ ॥

॥ २१ ॥ शिष्य प्रश्न । शब्द दीपक—२१ ॥ खण्ड—४१ ॥

दोहाः—बोलन तो कछु ना रह्यो। दुगदुग रही मन माहिं ॥
(३२) मैं जैसेको तैसा रहा। स्थिति प्राप्त कछु नाहिं ॥ ३५४ ॥

टीकाः—तत्पश्चात् जिज्ञासु शिष्य उदास, हतोत्साह होके इक्कीसवाँ प्रश्न बोलता भया कि, हे गुरुदेव ! अब मैं क्या बोलूँ ! बोलनेके लिये तो कुछ भी जगह नहीं रहा। क्योंकि आपने एक आत्मा बताके चुपचाप या गुमसुम हो रहनेको इशारा कर चुके हैं, शङ्का करनेको मना कर चुके हैं; और मन, बुद्धि, वाणीसे परे एक

आत्मापूर्ण बता चुके हैं । परन्तु जब मुझे भी ऐसा बोध हो तब न ? सङ्कोचके मारे बोलनेके लिये तो कुछ बाकी रहा नहीं, तो भी मेरा भ्रम छूटा नहीं। मनमें तो दुगदुगी = संशय, दुविधा, खुटका वा शङ्का यह पूर्ववत् वैसे ही वन रही है। आत्मा एक ही है, तो मुझे नानात्त्व दिखाई क्यों देता है ? आत्मसाक्षात्कार अभीतक भी क्यों नहीं भया ? मैं देखा हुआ जगत्को सच्चा मानूँ कि, आपसे सुना हुआ ब्रह्मको सत्य मानूँ ! मैं क्या पकड़के निश्चय करूँ। आपके अद्वैतवादमें बोलके अब कुछ सार निकलेगा, ऐसा तो आशा कुछ रही नहीं। परन्तु दुगदुगी मेरे मनकी मनमें ही रह गई है। क्योंकि, मैं तो आपके शरणमें आनेके प्रथम जैसा अबोध था, अभी आपके शरणमें आके भी वैसाका वैसा ही अज्ञानी बना रहा। मेरे मनमें तर्क-वितर्क, सङ्कल्प-विकल्प, भ्रम-भूल, दुविधा, जैसाका-तैसा ही बना हुआ है और व्यापक आत्मा बनकरके भी मुझे अभीतक कुछ भी स्थिति प्राप्ति नहीं हुई है। स्वरूप स्थिति प्राप्ति होनेके लक्षण शान्ति, सन्तोष, गम्भीरता भी मुझे प्राप्त नहीं हुआ ॥ ३५४ ॥

दोहाः—कौन दुःख छूटा अबै ? । का उपाधि गइ मोर ? ॥
(३३) मैं जैसाका तैसा रहा । अब का विशेषता तोर ? ॥ ३५५ ॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः— हे गुरो ! मैं पहिले जीवभावमें था, तो नाना तरहकी उपाधि दुःख भोग रहा था। सो दुःख निवृत्तिके लिये मैं आपके शरणमें आया, तो आपने ज्ञान-विज्ञानका मार्ग विवरण करके मुझे अद्वैत बोध कह दिये, ब्रह्म वा सर्वाधिष्ठान आत्मा बनाये, वही बात दृढ़ाये हैं। आपके कथनसे मैं परमात्मा स्वयं ही हो गया। अब यह तो बताइये कि, इस प्रकार ब्रह्म या आत्मा बनके भी अब मेरा कौन-सा दुःख छूट गया ? कौनसी उपाधि मेरी मिट गई ? आधि, व्याधि, उपाधि एवं त्रिविधितापके कठिन दुःखोंमें तो मैं पीड़ित पड़ा ही हुआ हूँ। फिर चौरासी योनिके दुःखोंसे बच

जाऊँगा, यह भी सम्भव नहीं दीखता। जब अभी मेरे मनसे वासना कुछ मिटी नहीं, तब पीछे सुख मिलेगा, यह भी कैसे मानूँ ? मैं तो आत्मज्ञानको जान करके भी जैसे अज्ञान अवस्थामें स्थित, गति थी, वैसे ही अभी भी बनी ही है। जैसेका तैसा बद्ध ही बना हुआ हूँ। फिर अब आपके शरणमें आनेकी तो विशेषता मुझे क्या प्राप्त हुई ? अब आपके ब्रह्मज्ञानकी विशेषता भी क्या हुई ? मैं तो बड़ाभारी धोखेमें पड़ गया हूँ। ज्ञान-विज्ञानमें आत्मज्ञानी गुरुमें भी कुछ अधिकाई देखनेमें नहीं आई ॥ ३५५ ॥

दोहाः—सकलों मोर विलास भौ। जो तुम्हार उपदेश ॥
(३४) आवागवन कैसे मिटै ?। कैसे छुटै कलेश ? ॥३५६॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः— हे गुरो ! उसका कारण यही है कि, मैंने आपके उपदेशको श्रवण करके जो सार जान पाया, सो यह कि, सम्पूर्ण जगत् मेरा विलास, क्रीड़ास्थल सिद्ध भया। अर्थात् मुझ आत्माके सहज लीला विलाससे ही चराचर जगत् सृष्टिका प्रसार हुआ। फिर मैं आत्मा ही सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक हूँ ! जगत् क्या है ? सो मेरा विलासमात्र है। मैं सर्वरूपसे आत्मा एक हूँ। मन, बुद्धि, वाणीसे परे आकाशवत् शून्य हूँ, अकर्ता, अभोक्ता, अविकारी, अक्रिय, शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जन हूँ। ऐसा समझके फिर मनमें आवे, वैसा पशुवत् बर्ताव करूँ। यही तो आपके उपदेशका सार निकला है। परन्तु उस तरहकी समझ तथा बर्तावसे मेरा आवागमन कैसे मिटेगा ? त्रितापादि कष्ट-क्लेश अज्ञान वा अविद्याका महादुःख कैसे छूटेगा ? मेरी असली मुक्ति कैसे होगी ? अब भी दया करके उसका भेद बताइये ! यही मेरी आपसे विनय है। अर्थात् आपके उपदेशसे जब यही ठहरा कि, सारा जगत् जाल, भवसागर मेरा ही विलास भया। मैं आत्मा ही एक-अनेक सर्वरूप भया। तब फिर कहिये पञ्चक्लेश कैसे छूटेगा ? आवागमन कैसे मिटेगा ? कभी नहीं मिटेगा। अतः दया करके अब तो भी समाधान कीजिये ॥ ३५६ ॥

॥ २१ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर–२१ ॥ खण्ड–४२ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—३३ ॥ चौ० १ से ४ तक है ॥

१. आवागवन दोय बिना न होई। आतम एक सदा है सोई॥ ३५७॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब ब्रह्ममुख वाणीको बता रहे हैं:— हे शिष्य! आवागवन कैसे मिटेगा, यह संशय तुम्हें जो लगा है, सो मिथ्या भ्रममात्र है। क्योंकि जाना और आना, जन्मना और मरना, उत्पत्ति-प्रलय, यह तो दो हुए बिना होता ही नहीं। परन्तु यहाँ तो सदाकालसे सर्वत्र आत्मा एक अद्वैत ही है। फिर आवागवन किसको, कैसे होगा? जो चीज सत्य है ही नहीं, उसको मिटाना ही कैसा? आत्मा वा ब्रह्म एक है, तहाँ कहा है सुनो!—

एक हि ब्रह्म रह्यो भरपूर तु, दूसर कौन बतावनहारो।
जो कहि जीव करै परमान तु, जीव कहा कछु ब्रह्मते न्यारो॥
जो कहि जीव भयो जगदीशते, तौ रवि माहिं कहाँको अँध्यारो।
सुन्दर मौन गहि यह जानिकै, कौनहु भाँति न ह्वै निरधारो॥ सु० वि०॥

ब्रह्म है ठौरको ठौर, दूसरो न कोउ और।
वस्तुको विचार किये, वस्तु पहिचानिये॥
न तौ कछु उरभ्यो, न सुरभ्यो कहूँ सो कौन?।
सुन्दर सकल यह, उहावाही जानिये॥
तोहिमें जगत् यह, तूहि है जगत् माहिं।
तोमें अरु जगत्में, भिन्नता कहाँ रही?॥
सुन्दर कहत एक, ब्रह्म बिना और नाहिं।
आपहिमें आप व्यापि, रह्यो सब ठौर है॥ सुन्दर विलास॥

कहो अब तो समझा न? आत्मा एक सदा सर्वदासे है, सोई तू है, और दूसरा कोई नहीं। अब बताओ, आवागवन किसका होगा? कैसे होगा? आत्मासे भिन्न दूसरा है ही कौन?॥ ३५७॥

२. आवागवन काहेको भाई ! मिथ्या भ्रम सब देउ उड़ाई ॥ ३५८ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई शिष्य ! तू अच्छी तरहसे विचार करके देख कि, आवागवन काहेका ? क्यों होगा ? एकमें कहीं आवागवन होता है ? कभी किसी प्रकारसे भी हो सकता नहीं। क्योंकि, जन्म, मरण, गर्भवासमें जाना-आना यह सब तो मिथ्या भ्रान्ति है । भ्रम करके ही यह भासता है । उन सब मिथ्या भ्रमोंको उड़ा दो, हटा दो, मानो ही मत, फिर कहाँ आवागवन है ? और कष्ट, क्लेश, दुःख और सुख इत्यादि सब भी भ्रम करके ही भासता है । आत्मा तो निर्विकल्प, निर्विकार है । अतएव पुनर्जन्म होनेके झूठे भ्रमको उड़ाके विलीन कर दो ॥ ३५८ ॥

३. आतम सदा एकरस जानो । दूजा धोखा कबहुँ न मानो ॥ ३५९ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—सदा-सर्वदा त्रयकालमें आत्माको एकरस, अखण्ड, नित्य, सनातन, अनादि, अनन्त, पूर्ण व्यापक ही जान लो । और आत्माके सिवाय दूसरा कोई कुछ सत्य मानना यह सरासर धोखा है । उस द्वैत, भ्रम, धोखाको कभी भी मानो ही मत । माननेसे ही दूसरा धोखा खड़ा हो जाता है, पाप-पुण्य, बन्ध-मुक्त, स्वर्ग-नर्क, सुख-दुःखादि, सब द्वैत प्रपञ्च माननेसे ही होता है, न मानो तो ब्रह्मके सिवाय और कोई कुछ नहीं है । इसवास्ते आत्माको सदा एकरस जानके दूसरे धोखाको मत मानो ॥ ३५९ ॥

४. भरम वार्ता सब परमाना । विधि निषेध एकौ नहिं जाना ॥ ३६० ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—आत्मा जो है, सो प्रमा, प्रमाण, और प्रमेयसे रहित है । इसलिये भ्रम, तर्क, वितर्कादि वार्ताका प्रमाण आत्मा विषे लगता नहीं । क्योंकि वेद-शास्त्रादि कथन एवं वार्ता वह सब मिथ्या भ्रमरूप है । उसी भ्रमकी वाणीसे द्वैतमें सब कोई भिन्न-भिन्न मत-पन्थोंका सिद्धान्त स्थापित करके प्रमाण करते हैं, उसे सत्य मानके विधि-निषेध प्रतिपादन करते हैं, सो मानने योग्य नहीं ।

क्योंकि वे भ्रमिक लोग आत्मासे भिन्न भी नानात्त्व मानते हैं, सो धोखेमें पड़े हैं। अतएव भ्रम वार्ताके प्रमाणको एक भी मत मानो। आत्मामें विधि-निषेधकी उपाधि एक भी नहीं है, ऐसा जानो। शुभाशुभ, कर्ताव्याकर्तव्यसे रहित केवल आत्मस्थितिमें लवलीन हो रहो। इस प्रकारसे शिष्योंको ब्रह्मज्ञानी लोग दृढ़ाते हैं। सोई यहाँ दर्शा दिया है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ३६० ॥

॥ २२ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—२२ ॥ खण्ड—४३ ॥

॥ चौपाई-मण्डल भाग—३४ ॥ चौ० १ से ३ तक है ॥

१. मैं तो केवल आतम एका। दूजा भरम कहाँसे देखा? ॥ ३६१ ॥

टीकाः— तदनन्तर शिष्य बाईसवाँ प्रश्न कहने लगा कि, हे सद्गुरो! आपके उपदेश तथा वेद-वेदान्तकी सिद्धान्तके प्रमाणसे मैं तो केवल एक आत्मा, अद्वैत, विधि-निषेधसे रहित, असीम, अपार, निर्मल, निराकार, अखण्डपूर्ण ठहरा, सर्वोपरि कहलाया, अर्थात् कैवल्य सच्चिदानन्द एक ही आत्मा मैं कहलाया या ऐसा मैं होता भया। इस तरह तो मेरे सिवाय अन्य कोई कुछ भी ठहरे नहीं। फिर यह दूसरा जगत्का भ्रम द्वैत भास कहाँसे उठके आया? और उस भ्रमको मैंने भी कहाँसे कैसे देखा? फिर मुझे भ्रम ही क्यों हुआ? क्या एकमें भी भ्रम होना सम्भवता है? बड़ी गजबकी बात है, मैं इसे कैसे समझूँ ॥ ३६१ ॥

२. मैं तो अजर अखण्ड कहलाया। मिथ्या भरम कहाँसे आया? ॥ ३६२ ॥

टीकाः—शिष्य कहता है:—और मैं आत्मा तो परिपूर्ण अजर, अमर, अखण्ड, नित्य, सत्य, एक-अद्वैत, सर्वाधिष्ठान, अबाध, अगाध, निरीह, परात्पर, ऐसे-ऐसे गुण लक्षणवाला एक ही कहलाया। फिर यह तो कहिये कि, मेरे स्वरूपके मध्यमें मिथ्या भ्रम-भूल कहाँसे टपकके आया? क्यों आया? जब कि मुझे इच्छा ही नहीं थी, तब भ्रम कहासे कैसे आया? अगर बाहर कहींसे भ्रम

आया कहियेगा, तो द्वैत हो जायगा । और बाहरसे भ्रम आता नहीं, बताइयेगा, तो एकमें भ्रम हो सकता हो नहीं । तब मुझ आत्मामें अकारण ही मिथ्या भ्रम कैसे आया ? मैं तो यह बात कुछ भी समझ नहीं सका । मुझे इसकी खुशी तो नहीं थी, कि मैं भ्रममें पड़ जाऊँ, फिर क्यों भ्रम खड़ा हुआ ? सो कहिये ॥ ३६२ ॥

३. जाके मारे मैं बेहाला । सर्व देशमा दुःखकी ज्वाला ॥ ३६३ ॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और जिस भ्रम-भूलके मारे पीड़ित हो करके मैं जीवात्मा बेहाल = परम दुःखी, आकुल-व्याकुल, परेशान हो रहा हूँ ! नाना तरहसे कष्ट-क्लेश भोग रहा हूँ ! असह्य दुःखके मारे छटपटा रहा हूँ ! सो मुझ अकेलाको ही दुःख हुआ हो, ऐसी बात भी नहीं, मैं अनुभव करके देख रहा हूँ कि, सर्व देशमें = सकल दुनियाँमें या सारे संसारमें सब ठिकाने जहाँ देखो वहाँ ही दुःख, सन्ताप, कष्टकी प्रचण्ड धधकती हुई ज्वाला सुलग रही है । अर्थात् सर्व देशमें सब कोई प्राणी अनेक प्रकारसे दुःख-ही-दुःख भोग रहे हैं । ये भ्रम-दुःख, सन्ताप, भी मेरा ही अपना आत्मा स्वरूप ही है, क्या ऐसा समझूँ ? हे गुरो ! अब तो इसका निराकरण करके समझाके कहिये ॥ ३६३ ॥

॥२२॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—२२ ॥ खण्ड—४४ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—३५ ॥ चौ० १ से ३ तक है ॥

१. भ्रमको और न अधिष्ठाना । भ्रम तेरा तुझहीमें जाना ॥३६४॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब यहाँ भी ब्रह्म मुखसे ही समझा रहे हैंः— हे शिष्य ! ध्यानपूर्वक सुनो—तो तुम्हें बात समझनेमें आयेगी । भ्रम होनेके लिये और अधिष्ठान = आधाररूप जगा होनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं । इसलिये भ्रम-भूलकी और कोई अधिष्ठान नहीं है । तेरा भ्रम तुझ ही मेंसे या तेरे स्वरूपमेंसे ही होता है, और मिटता है, ऐसा जानो । क्योंकि तूँ आत्मा सर्वाधिष्ठान है, फिर वह

भ्रम तेरेसे कहाँ भिन्न हो सकती है? कभी नहीं। इसलिये भ्रम जिसमें हुआ, सो उसीका स्वरूप जानना चाहिये। एक वक्त तेरे समान संशय ग्रसित शिष्यने कोई ब्रह्मज्ञानी गुरुसे ऐसा ही प्रश्न किया था, उसका उत्तर सुन्दर विलासमें लिखा है, सो भी बता देता हूँ! तू सुन, और मनमें गुन, फिर कुछ ठीकसे समझ पावोगे। कहा है :—

"शिष्य पूछै गुरुदेव! गुरु कहै पूछै शिष्य!
मेरे एक संशय है, क्यूँ न पूछै अब ही ॥
तुम कहो एक ब्रह्म, अजहूँ मैं कहूँ एक॰।
एकता अनेकताको, यह भ्रम सब ही ॥
भ्रम यह कौन कूँ है? भ्रमहि कूँ भ्रम भयो।
भ्रमहि कूँ भ्रम कैसे? तू न जानै कबहीं ॥
कैसे करि जानूँ प्रभु! गुरु कहै निश्चै धरि।
निश्चै ऐसे जान्यो अब, एक ब्रह्म तबही ॥"

हौ तुम कौन? हूँ ब्रह्म अखण्डित, देहमें क्यूँ नहिं,? देहके नेरे ॥
बोलत कैसे? कहूँ नहीं बोलत, जानिये कैसे? अज्ञान है तेरे ॥
दूर करौ भ्रम? निश्चयधारि, कहौ गुरुदेव! कहूँ नित टेरे ॥
हौ तुम ऐसे? तुहूँ पुनि ऐसेहि, दोइ नहीं, नहिं द्वैतहि मेरे ॥
॥ सुन्दरविलास—सुन्दरदासजी ॥

देखो! भ्रमहीको भ्रम होता है, पद्यमें कैसा कहा है, सुना न। अब तू ही सोच ले, भ्रम होनेको और कोई अधिष्ठान है क्या? भ्रम भी तो तेरा विलास ही है, सो तुझही में है और रहता भी है, ऐसा जान लेना चाहिये। जाना कि नहीं? ॥ ३६४ ॥

२, तेरा भ्रम तुझहीमें होई। रज्जू-सर्प न्यायवत जोई ॥ ३६५ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— अभी नहीं समझा, तो और सुनो! कोई जगत् है, दुःख है, हानि है, लाभ है, इत्यादि तेरा भ्रम-भूल

तुझहीमें होता है। आत्माके बिना भ्रम किसको होगा, भला! जो वस्तु जिसमेंसे निकलै, सो उसीके अन्तर्गत भाग होता है। भिन्न होते हुये भी कारणसे कार्य न्यारा नहीं रहता। तहाँ कहा है :—

"आदि हुतो सुहि अन्तहि है पुनि, मध्य कहा कछु और कहावै।
कारण कारज नाम धरै पुनि, कारज कारण माहिं समावै॥
कारज देखि भयो बिच विभ्रम, कारण देखि विभर्म समावै।
सुन्दर निश्चय ये अभिअन्तर, द्वैत गये फिर द्वैत न आवै॥"

॥ सुन्दर विलास ॥

इसी तरह भ्रमका कारण तू आत्मा ही है, सो सदा तेरेमें ही समाये रहता है। जैसे कहींपर रस्सी आड़ी-टेढ़ी, गिरी-पड़ी है, मन्द प्रकाशमें द्रष्टाको सो दृश्य सर्पवत् भासता है। जिससे उद्वेग, भय, कंपादि विकार खड़े हो जाते हैं। क्योंकि सर्प समझके हानिकी आशङ्कासे मनुष्य भयभीत हो जाते हैं। अब यहाँ विचार करो कि, सर्प न होते हुये भी रज्जूमें भ्रमसे, मिथ्या दृष्टिसे ही सर्प भासता भया। तहाँ भ्रमका मूल अधिष्ठान रज्जू सत्य ठहरा। भ्रमनिवृत्ति होनेपर भी रज्जू ज्योंका-त्यों सत्य ही रहा। रज्जू आदि, अन्त, मध्यमें भी अधिष्ठान सत्य है। उसमें भासता हुआ सर्प त्रिकालमें असत्य है। इसी प्रकार रज्जू-सर्प न्यायवत् विवेक करके देखो! जगत् भ्रम आदिका अधिष्ठान आत्मा तू सत्य है, मध्यका जगत् भ्रम-भास मिथ्या है। ऐसे रज्जूमें सर्प शदृश तेरा सकल भ्रम तेरेमेंसे उत्पन्न होके तुझहीमें ठहरा रहता है या विलाय जाता है, ऐसा जानो ॥३६५॥

३. ज्ञान अज्ञान सम्भवै तुझहीमें। रूपा शुक्तिवत् उपजै जन्मैं ॥३६६

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:— हे शिष्य! तुझ आत्मामें ज्ञान-अज्ञान दोनों ही सम्भवता है। कोई बातकी असम्भवता नहीं है। जैसे निर्मल आकाशमें प्रकाश और अन्धकार दोनों ही रहते हैं। परन्तु उससे आकाशका कुछ भी हानि-लाभ नहीं होता। तैसे ही अज्ञान, अविद्या, तम, तामस और ज्ञान, सुविद्या, सत्त्व-सात्विक निर्विरोध

आत्मामें समावेश हो सकते हैं। परन्तु उससे आत्माका कुछ भी बनाव-बिगड़ाव नहीं होता। जैसे शुक्ति = शीपी विषै, रूपा = चाँदीकी भ्रान्ति उत्पन्न होती है कि, यह चाँदी पड़ा होगा। फिर हाथमें लेकर उस सफेद शीपीको देखनेपर भ्रम मिट जाती है। तथापि कारण शीपी तो वैसे ही बना रहता है। भ्रम करके ही शीपीमें चाँदी भासता है, चाहे कैसा भी उलट-पुलट भासो, तथापि शीपी तो वैसे ही बना रहता है। तद्वत् अधिष्ठान आत्मामें जगत्की सत्यता भासती है, जगत् उत्पन्न और विनाश होता रहता है। जन्म और मृत्यु भी होता हुआ दिखाई देता रहता है, परन्तु सो भ्रम ही है। सो ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान, भ्रम, भूल, सन्देह, इत्यादि सब कुछ तुझ आत्मासे ही निकलते हैं, और तेरे ही में रहते हैं। तू ही एकसे अनेक और अनेकसे एक होता रहता है; ऐसा समझके तू अब निश्चल हो जा, समझा कि नहीं? सो कहो ॥ ३६६ ॥

॥ २३ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—२३ ॥ खण्ड—४५ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—३६ ॥ चौ० १ से ४ तक है ॥

१. हे गुरु! तुम मोहि नीकि सुनाई। जानेउँ तव प्रसाद मन लाई ॥३६७

टीकाः—रज्जू-सर्पके दृष्टान्त-सिद्धान्त सुनके शिष्य प्रसन्न होकर तेईसवाँ प्रश्न कहने लगा कि, हे सद्गुरो! आपने मुझे दृष्टान्त सहित अच्छा उपदेश सुनाये हैं। मैं भी ऐसा विधिपूर्वक ही समझना चाहता था। मन लगाके ध्यानपूर्वक मैंने आपके उपदेशको श्रवण किया। उसे मनन करके आपके कृपा-प्रसादसे आत्म-सिद्धान्तको भलीभाँतिसे अब जान लिया हूँ कि, सर्वाधिष्ठान एक ही आत्मा है ॥ ३६७ ॥

२. सर्प भ्रान्तिको अधिष्ठाना। रसरी भई सकल विधि जाना ॥३६८

टीकाः—शिष्य कहता हैः— और आपने जो दृष्टान्त—"रज्जू-सर्प न्याय" की उपमा बताई है, उसमें मिथ्या सर्पको भ्रान्ति अधिष्ठान-

रूप रज्जूमें भई, इसलिये रस्सी ही सब प्रकारसे सत्य ठहरी। सो इसी तरहसे मैंने भी जान लिया कि, सर्प भ्रान्तिकी अधिष्ठान रज्जू ही सकल विधिसे सत्य होती भई। क्योंकि रस्सी पहिले भी थी और पीछे भी बनी रहती है, उसमें मिथ्या भ्रमसे ही बीचमें कल्पित सर्प भासता है, पश्चात् वह निवृत्त हो जाता है। मन्द प्रकाशमें सर्पवत् प्रतीत होता है, फिर पूर्ण प्रकाशमें वस्तुका निश्चय होता है। यह मैंने जाना है ॥ ३६८ ॥

३. तैसेहि आतम अधिष्ठाना। जगत् आदि भ्रान्ति विधि नाना ॥३६९

टीकाः—शिष्य कहता हैः— तैसे ही सिद्धान्तमें सम्पूर्ण विश्वका एक आत्मा ही अधिष्ठान = सर्वाधार, सबके ठहरावका जगह भूमिकारूप 'भूमा' है। स्थावर, जङ्गम, चारखानी चौरासी योनि पाँच तत्त्वका विस्ताररूप जगत् उत्पत्ति-प्रलय आदि-अनादि नानात्त्व विकार इत्यादि अनेक प्रकारसे जो भासता है, सो सम्पूर्ण पसारा खाली भ्रान्तिमात्र है, जगत् आदि भ्रान्ति नानाविधिसे आत्मा अधिष्ठानमें हो-होके विलय हो जाते हैं। आत्मा एक समान बना रहता है, ऐसा तो मैंने समझा है ॥ ३६९ ॥

४. सो भ्रान्ति किमि छूटि गोसाँई। बिना अधिष्ठान भ्रान्ति नहिं आई ॥३७०

टीकाः—शिष्य कहता हैः— परन्तु हे इन्द्रिय निग्रही सद्गुरो! आप, गो = दशों इन्द्रियोंको, साँई = स्वाधीन रखनेवाले श्रेष्ठ मालिक हो। उसमें मुझे यही संशय होता है कि, सो वह आत्म-अधिष्ठानकी भ्रान्ति कैसे छूटेगी? कि नहीं छूटैगी? दृष्टान्तमेंकी—सर्प भ्रान्ति तो पूर्ण प्रकाश होनेपर छूट जाती है, सो प्रत्यक्ष वस्तु है, और सिद्धान्तमें वैसा पूर्णप्रकाश क्या कैसा होगा? रज्जूवत् आत्मा तो दृश्य है नहीं। फिर किस प्रकारसे मेरा भ्रम निवारण होगा। क्योंकि अधिष्ठान या आधारकी जगह एवं सर्प पूर्व दृश्य सत्य हुये बिना रस्सीमें भ्रान्ति कहाँसे आयेगी, अर्थात् अधिष्ठानके बिना भ्रान्ति

आ नहीं सकती। वह पदार्थ पूर्व दृष्ट, श्रुत, भोग्य न होवे, तो भ्रम आवे ही कैसे ? कहा भी है कि :—

साखीः—"जो अहि कबहुँ देखा नहीं। तेहि रज्जूमें नहिं दर्शाय ॥
सर्प ज्ञान जाको भयो। जहाँ-तहाँ देख भयाय ॥७६॥
॥ कबीर परिचय ॥

सर्प और रस्सीको देखनेवाला मनुष्य, सारा संसार प्रत्यक्ष भिन्न-भिन्न रहते हुये भी एक आत्माके सिवाय दूसरा कुछ नहीं, ऐसा मैं कैसे निश्चय करूँ ? अब तो मुझे ऐसा लगता है कि, सर्पवत् आत्मा ही भ्रम-भूत मिथ्या धोखा हो, और जगत् ही अधिष्ठानरूप सत्य हो, तो क्या आश्चर्य ? क्योंकि जड़-चैतन्यरूप जगत् तो सबको प्रत्यक्ष ही दीख रहा है। तैसा आत्माका प्रत्यक्ष तो है नहीं। अधिष्ठानके बिना भ्रम आता नहीं, यदि आत्मा ही सत्य और जगत् ही मिथ्या है, तो जगत् भ्रान्ति समूल नष्ट होके कैसे छूटैगी ? कृपा करके सोई युक्ति बताइये ॥ ३७० ॥

॥ २३ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर--२३ ॥ खण्ड--४६ ॥

दोहाः-तौलों भ्रान्ति रहत है। ज्यों लों कहिये तू अज्ञ ॥
(३५) ज्ञान भयो भ्रान्ति मिटी। आतम अज्ञ न तज्ञ ॥ ३७१ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब ब्रह्ममुखी वाणी ही बता रहे हैं:— हे शिष्य ! मिथ्या भ्रान्ति जो है, सो तभीतक कायम रहती है, जबतक कि, तू अज्ञानी कहलाता है। और तू कहता है कि, मैं कुछ नहीं जानता, मैं अज्ञानी हूँ, सुखी, दुखी हूँ, देहधारी हूँ, जन्म, मरणादिमें पड़ा हूँ, कर्ता हूँ, भोक्ता हूँ, मुझे शङ्का है, भ्रम-भूल है, जीव हूँ, हीन-दीन, मलीन हूँ—इत्यादि प्रकारसे जबतलक तू अपनेमें मिथ्या आरोपण करके मानता रहता है, अज्ञानीके समान वार्ता कहता जाता है, अज्ञान अविद्यामें ग्रसित द्वैतवादी होता रहता है,

तबतलक तेरेमें दृढ़तासे भ्रान्ति बनी ही रहेगी । कहा भी है:—

"तौंलौं तारा जगमगे, जौंलौं उगै न सूर ॥
तौंलौं जीव कर्मवश डोलै । जौंलौं ज्ञान न पूर ॥" बीजक साखी २०५ ॥

—जैसे अन्धकारमें तारे जगमगाते हैं, सूर्यके प्रचण्ड प्रकाशमें लुप्त हो जाते हैं । तैसे ही पूर्णज्ञान न होनेतक जीव कर्मवश डोलते हुये भटका करते हैं ॥ अतएव जबतक अज्ञान अवस्थामें रहोगे, तबतक तो भ्रम रहेगा ही, और जब आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान दृढ़तासे हृदयमें परिपुष्ट हो जायगा, सहविकल्प वा निर्विकल्प ज्ञान समाधि लग जायगी, तदाकार वृत्ति हो जायगी, तब सकल भ्रान्ति-भूल, द्वैत भास आप ही मिट जायगी । ज्ञान प्रकाश हुआ कि, भ्रान्ति मिट गई । आत्मज्ञानसे समाधिस्थ हो जानेपर सकल भ्रम सदाके लिये निवृत्त हो जाते हैं । फिर आत्मा ज्योंका-त्यों ही रहता है । आत्मा अज्ञ = अज्ञान, अविद्या संयुक्त अज्ञानी भी नहीं रहता और तज्ञ = ज्ञान-विद्या बुद्धियुक्त ज्ञानी, पण्डित, बुद्धिमान् भी नहीं होता । अर्थात् भ्रम मिट जानेपर आत्मा ज्ञानी-अज्ञानी नहीं होता । तब तो विज्ञान प्रकाशमें स्वयं प्रकाशित रहता है । इसलिये आत्मज्ञानको निश्चय करके भ्रमरूप अज्ञानको मिटाओ, सदा ज्ञान समाधिमें स्थित हो रहो । अज्ञ-तज्ञ दोनों ही आत्मा नहीं होता, ऐसा जानो । और अब तुम्हें क्या कहना है, सो कहो ? ॥ ३७१ ॥

॥ २४ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—२४ ॥ खण्ड—४७ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—३७ ॥ चौ० १ से ५ तक है ॥

१. सुनिये गुरुराये सुखदाई । ज्ञान समाधि एकदेशि आई ॥ ३७२ ॥

टीकाः— सद्गुरुके वचन सुननेके उपरान्त जिज्ञासु शिष्य चौबीसवाँ प्रश्न कहने लगा कि, हे सद्गुरु महाराज ! ज्ञानियोंमें सर्वश्रेष्ठ गुरुदेव ! शरणागत नरजीवोंको हर तरहसे सुख देनेवाले, आप सुखदाई हो । मङ्गलकारी, आप मङ्गलरूप हो । आपने जो कुछ

आत्मज्ञानकी शिक्षा कहे हैं, सो मैंने ध्यानपूर्वक सुना है। अब आप मेरी विनय भी सुन लीजिये। जैसा विचार मुझे हुआ, सो बतलाता हूँ। आपने ज्ञान समाधि लगाके निर्विकल्प स्थितिमें रहनेके लिये कहा है। परन्तु ज्ञान समाधि तो एकदेशी है; एकदेश, एक जगह, एक घटमें ही ज्ञान समाधि हो आता है, सो तो एक तरफ एक जीवमें ही कहीं-कहीं हो आया, यह प्रत्यक्ष मालूम होता है ॥ ३७२ ॥

२. औ सर्वदेशी भ्रान्ति निहारो । सर्वदेशि आतमहु विचारो ।। ३७३ ।।

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और भ्रान्ति तो सर्वदेशी देखनेमें आती है, क्योंकि जहाँ देखो, वहाँ सब ठिकानेपर सब लोग भ्रान्तिमें पड़े हुये ही दिखाई देते हैं। फिर आत्मा भी सर्वदेशी व्यापक है, ऐसा विचार आपने बताये हैं। इस प्रकार भ्रान्ति और आत्मा दोनों ही सर्वदेशी होनेका विचार यहाँपर दृढ़ होता है ॥ ३७३ ॥

३. एकदेशि है ज्ञान समाधी । सहस्रनमें कोइ-कोइ जिव साधी ।।३७४।।

टीकाः— शिष्य कहता हैः—परन्तु ज्ञान समाधि जो आपने बताया है, सो एकदेशी है। कहिये तो सर्वदेशी भ्रान्तिको वह एकदेशी ज्ञान समाधि कैसे निवारण करेगा ? फिर सो भी सैकड़ों, हजारों, लाखों साधकोंमेंसे कोई-कोई बिरले ही नरजीव साधना करके सफल होते हैं। अर्थात् हजारोंमें कोई बिरले ही साधक ज्ञान समाधिको एक देशमें प्राप्त करते हैं। सर्वदेशमें ज्ञान समाधिका दर्शन होता ही नहीं ॥ ३७४ ॥

४. भ्रान्ति तो सर्वदेशि कहाई । सकल जीवको प्राप्ति गोसाँई ।। ३७५ ।।

टीकाः— शिष्य कहता हैः—और भ्रान्ति तो सब ठिकाने सब प्राणियोंमें होनेसे सर्वदेशी कहलाता है। हे इन्द्रिय निग्रही गुरो ! भ्रान्ति तो सकल जीवोंको स्वयमेव प्राप्त ही है। अर्थात् सम्पूर्ण जीव भ्रान्तिमें आप-ही-आप पड़े ही हैं। तैसे ज्ञान समाधि सबको सहज प्राप्ति नहीं है ॥ ३७५ ॥

५. अधिष्ठान बिन भ्रान्ति न होई। अधिष्ठानमें रहत समोई ॥ ३७६ ॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः— फिर अधिष्ठान = आधाररूप जगह हुये बिना भ्रान्ति कभी किसीको हो ही नहीं सकती है। सर्वदा भ्रान्ति अधिष्ठानमें ही समाई रहती है। इसी प्रकार सब जगत्के अधिष्ठान आत्मा ठहरनेसे सम्पूर्ण भ्रान्ति भी उसी आत्मामें ही समाई रहती है, फिर ज्ञान समाधि लगाया तो भी भ्रान्ति कैसे मिटेगी? भ्रान्तिका मूल कारण आत्मा ही हुआ। हे दयालु! अब बतलाइये कि, भ्रान्ति कैसे छूटेगी? ॥ ३७६ ॥

॥ २४ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर–२४ ॥ खण्ड–४८ ॥

॥ चौपाई–मण्डल भाग–३८ ॥ चौ० १ से ६ तक ॥

१. ज्ञान समाधि भ्रान्ति रे भाई! जगत ब्रह्म भ्रान्ति ठहराई ॥ ३७७ ॥

टीकाः— ब्रह्ममुखसे सबको निषेध करके भ्रम बताकर सद्गुरु यहाँपर एक आत्माका ही प्रतिपादन कर रहे हैं। हे भाई शिष्य! तुझे मैं वास्तविक आत्मसिद्धान्त बतलाता हूँ, सुन! अरे! तू व्यर्थ ही ज्ञान समाधि, एकदेशी, सर्वदेशी कहके उस चक्करमें क्या पड़ा है? क्योंकि, ज्ञान समाधि लगाना, योग समाधि करना, सो भी भ्रान्ति ही है। भ्रमके बिना कोई कर्तव्य होता ही नहीं। तहाँ कहा है, सो सुनो :—

> "भर्म सेवा भर्म पूजा, भर्म जप तप ध्यान।
> भर्म करि-करि भर्म बन्धा, नहीं साँच पहिचान ॥
> भर्म इन्द्रिय करी निग्रह, भर्म गुफामें वास।
> भर्म तो तहाँ तीन लोक जहाँ, जीवन्मुक्तिको आश ॥"

इस कारण ज्ञान समाधिकी भावना भी भ्रान्ति है। उतना ही नहीं, जगत् और ब्रह्म, द्वैत और अद्वैत, ठहराना भी भ्रान्ति ही है। क्योंकि, कहा है:—

"को परमान करै परिपूरण द्वैत अद्वैत कछू न जहाँ है ॥" सुन्दर विलास ॥

एक ब्रह्म और अनेक जगत् कहना, यह भी भ्रान्ति ही ठहरता है। जो मन, बुद्धि, वाणीसे अत्यन्त परे है, उसको फिर क्या कहना? जो कहा जायगा, सो भ्रान्ति ही होगी। इसलिये जगत्से ब्रह्म पर्यन्त वाच्यज्ञानको अन्तमें भ्रान्ति ठहराया गया है, सो जानो ॥ ३७७ ॥

२. अध्यारोप और अपवादा । ई सब भ्रान्तिकेर विषादा ॥ ३७८॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—और इस बारेमें कहा है, सो सुनो—

साखीः—"अध्यारोप जाके जवन, ताहि गले अपवाद ॥
अध्यारोप अज्ञानकी, कोइ न जाने आद ॥ ५८ ॥
अध्यारोपी ब्रह्मको, करे ब्रह्म अपवाद ॥
वाणी ब्रह्म न लखि परे, मिथ्या किन्हों बाद ॥ ५९ ॥ कबीर परिचय ॥

अध्यारोप = वाणीके प्रमाणसे विधिपूर्वक ब्रह्म अद्वैत आदि कोई एक सिद्धान्त स्थापन, प्रतिपादन, करना; और अपवाद = फिर स्थापन किया हुआ सिद्धान्तको भी तोड़-ताड़के खण्डन कर निषेध कर देना, परात्पर अवाच्य हो जाना; ब्रह्म ही ब्रह्मको विधि तथा निषेध करनेवाला ठहराना। इस प्रकारसे अध्यारोपसे ले करके अपवाद पर्यन्त जितने भी कथन हैं, ये सब ही भ्रान्ति करके होनेवाला, एक प्रकारका विषाद = दुःख, चिन्ता-शोकका घर ही है, अर्थात् वह सब भी भ्रममात्र ही है ॥ ३७८ ॥

३. कहना सुनना भ्रान्तिहि जानो। पूछनहू भ्रान्ति अनुमानो ॥३७९॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—इसलिये ब्रह्म सिद्धान्त कथन करके कुछ कहना, ठहराना, वेद-शास्त्रादिके उपदेश वर्णन करना और वाणी-वचनको सुनना, सुनाना, कथन करना, व्याख्यान देना, यह सब भी भ्रान्तिका ही व्यवहार है, ऐसा जान लो। फिर कोई बात पूछना, प्रश्न वा शङ्का करना, तर्क-वितर्क उठाना, वाद-विवाद करना,

गुरु-शिष्य होना, ज्ञानी-अज्ञानी बनना, मैं नहीं समझा कहके बार-बार पूछते जाना, इत्यादि सब अनुमान-कल्पना भ्रान्तिका ही विस्तार है। अर्थात् कहना, सुनना, पूछना, इन सब कार्योंको भ्रान्ति ही समझो ॥ ३७९ ॥

४. कल्प विकल्प भ्रान्ति सब होई । आतम सदा एकरस सोई ॥ ३८० ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और सङ्कल्प-विकल्प, चित्त-चिन्तन, अहंकर्तृत, इत्यादि सब भी भ्रान्तिमें ही होते हैं। अथवा नाना कल्पना करना, फिर विकल्प होना, सन्देहमें पड़ना, कोई बात भी निश्चय न कर पाना, सो सब भ्रान्ति ही है। इससे परे जो कभी घटे-बढ़े नहीं, सदा एकरस, अखण्ड, अपरिमित बना रहे, सोई आत्मा अधिष्ठान है। आत्माको भ्रान्तिसे वा और किसीसे भी कुछ हानि, लाभ नहीं होता है। आत्मा सर्वदा एकसा ही बना रहता है ॥ ३८० ॥

५. ज्योंका त्यों तू ब्रह्म आनन्दा । पूर्ण समुद्र आनन्दको कन्दा ॥ ३८१ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे शिष्य ! तू तो ज्योंका-त्यों बना रहनेवाला सच्चिदानन्दघन परब्रह्म स्वरूप है। जो कि समुद्रके समान पूर्ण लबालब भरा हुआ, ऐसा आनन्दको कन्दा = अतिशय या अत्यन्त आनन्दस्वरूप सदा सुखी परमानन्द है, सो तू ही है॥ कहा हैः—

"अक्षय अखण्ड एक,—रस परिपूर्ण है ।
ताहिते पूरणानन्द, अनुभौ ते पायो है ॥
याहिके अन्तर भूत, आनन्द जहाँ लौं ओर ।
सुन्दर समुद्र माहिं, सर्व जल आयो है ॥" सु० वि० ॥

आनन्दके पूर्ण समुद्र, कन्द समान मीठा महदानन्द तू ही जैसाका-तैसा ब्रह्म है, ऐसा निश्चय करके जानो या ऐसा ही अब मान लो ॥ ३८१ ॥

६. कल्प-विकल्प औ जगत तरंगा। मिथ्या उठत होत सब भंगा॥ ३८२

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— जैसे अगाध महासागरमें वायुके वेगसे तरंगें अनेकों बार उठ-उठके फिर उसीमें हो विलाय जाती हैं। तरङ्ग उठना और नाश होना, सदैव होता ही रहता है। वैसे ही आनन्दकन्द पूर्ण ब्रह्मरूपी समुद्रमेंसे सङ्कल्प, विकल्पादि विषय और नानातरहके जगत् तरङ्ग या लहरी उमड़-उमड़के बड़े वेगसे उठा करते हैं, परन्तु वास्तवमें असत्य या मिथ्या होनेसे समस्त विश्व छिन्न-भिन्न हो भंग होके महाप्रलयमें विनाश हो जाते हैं। अर्थात् महासागरवत् ब्रह्ममें स्वाभाविक इच्छासे सङ्कल्प-विकल्पद्वारा जगत् तरङ्गोंका प्रवाह चला ही करता है, यानी उत्पत्ति-प्रलय हुआ ही करता है। सृष्टि बनती हो बिगड़ती रहती है, तथापि जगत् मिथ्या है, अधिष्ठान ब्रह्म ही सत्य है, ऐसा अच्छी तरहसे जान लो॥ ३८२॥

॥ २५ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—२५ ॥ खण्ड—४६ ॥

दोहाः—प्रलय अम्बुवत मैं भया। बहु तरङ्ग मोहिं माहिं॥
(३६) मैं हुँ स्वभाविक रहत हौं। सो तरङ्गमों पाहिं॥ ३८३॥

टीकाः— उपरोक्त गुरु उत्तरको सुन करके शिष्य हताश होके पचीसवाँ प्रश्न बोला कि, हे गुरुदेव! आपके कथनसे तो मैं अब ऐसा भया कि, महाप्रलयमें महासागरको जैसी स्थिति होती है, तैसे ही मेरी भी हाल हुई, यानो प्रलय = विनाश, अन्त्य, सत्यानाश होनेवाला, अम्बुवत = समुद्रके पानीके समान मैं भी पूर्ण सर्वव्यापक आत्मा होके वैसे ही अस्थिर या चञ्चल होता भया। ओत-प्रोत मुझ आत्मामें भी बहुतेक तरङ्ग या लहरी सङ्कल्प-विकल्पका विकार होते रहना, साबित हो गया। अर्थात् प्रलयकालमें नाश होनेवाला जलवत् मैं आत्मा होता भया। फिर तो बहुत अपार तरंगें मुझमें हुईं। मैं आत्मा भी सागरवत् हो स्वाभाविक सदा उत्पत्ति-प्रलयके अधिष्ठान बना रहता हूँ। सो जगत् विकारोंकी नाना तरंगें, जन्म,

मरण, गर्भ, त्रिविधिताप, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, राग, सुख, दुःख, आशा, तृष्णादि लहरियाँ भी सदा मुझमें वा मेरे आश्रयमें ही बनी रहती हैं। जैसे जलको छोड़के तरंगोंके अस्तित्त्व कहीं नहीं है। जल बिना तरंगें, हो सकती भी नहीं, और जलका तरंग जल ही में सदा टिकी रहती है। तैसे ही आत्मा बिना जगत्का भी अस्तित्त्व नहीं। अनात्मामें इच्छादि विकार होता ही नहीं। आत्मामें ही सब कुछ होता रहता है। मैं स्वतः सबका कारण बना रहता हूँ। सारे कार्य मुझमें से ही होके मेरे पासमें रहते हैं ॥ ३८३ ॥

दोहाः—मम तरंग जगरूप सब। केहि विधि होवै शान्त ॥
(३७) तरंग शान्त हुये बिना। मोको कहाँ निरान्त ॥३८४॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और सर्वाधिष्ठान आत्मा होनेसे चराचर या जड़-चेतन, गुप्त-प्रगट, स्थूल-सूक्ष्म, पाँचों तत्त्व, चारखानी चौरासी योनियाँ इत्यादि विराट जगत्के समस्तरूप वे सब तो मेरे ही तरङ्ग, प्रवाह, हिलोरें या लहरियाँ ठहरीं। अर्थात् जगत्के सबरूप मेरे ही कार्य ठहरे, मैं आत्मा कारणरूप हुआ। अब बताइये वह तरङ्गरूप प्रवाह किस प्रकारसे शान्त होगा? संकल्प-विकल्प, आशा-तृष्णा, इच्छादि प्रचण्ड तरंगें शान्त या स्थिर हुये बिना वा आवागवनसे छुटकारा पाये बिना, भवचक्रसे मुझे निरान्त = केवल मुक्ति स्थितिकी निवृत्ति, स्थिरताका सुख तो भी कहाँसे मिलेगा? या कैसे पाऊँगा? अच्छा, जो कुछ भी हो, यदि जगत्का सबरूप मेरा ही तरङ्ग हुआ, तो वह किस तरहसे शान्त या निवृत्त होगा? क्योंकि वे सब तरङ्ग सर्वथा शान्त हुये बिना, तो मुझे परमानन्द मुक्ति सुख कहाँसे मिलेगी? कहीं नहीं मिलेगी। अतएव अब वही युक्ति बताइये, जिससे मेरी मुक्ति हो, सब तरंगें शांत हो जायँ। यह रहट-घड़ीके दुःखोंसे छूट जाऊँ। दया दृष्टि करके अब कोई युक्ति बताइये, जिससे मैं अभी शान्त-निरान्त हो जाऊँ ॥३८४॥

॥ २५ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर–२५ ॥ खण्ड-५० ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—३९ ॥ चौ० दो मात्र है ॥

१. चित्त बात शान्त जब होई। सकल तरंग शान्त होय सोई ॥३८५॥

टीकाः—शिष्यका कथन सुनके कुछ थोड़ा-बहुत इशारा देके सद्गुरु कहते हैं कि—हे जिज्ञासु शिष्य! तुमने जो समुद्र तरङ्गोंके समान जगत् आत्माकी लहरी बताया, और उसके शान्त होनेका उपाय पूछा, तो सुनो! उसमें प्रबलयुक्ति तो यही है कि—

जैसे वायुके झकझोर शान्त होनेपर तालाब, सरोवर, और समुद्रमें भी तरंगें उठना रुकके स्थिर निश्चल हो जाती हैं। केवल निर्मल जल शान्त रह जाता है। तैसे ही चञ्चल होनेवाला चित्त-रूपी वायु यहाँ हृदयमें भी जब शान्त, स्थिर, शून्य, निश्चिन्त, लय हो जाता है, तब सम्पूर्ण इन्द्रिय, मन, बुद्धि, हंकार, सूक्ष्म, स्थूलके सारे विकार तरङ्ग-चञ्चलतादि भी उसीके साथ ही शान्त या लय होके स्थिर हो जाते हैं। इस तरह सम्पूर्ण जगत्के महातरङ्ग चित्तरूपी पवनके रुकते ही आप ही फिर शान्त हो जावेंगे। यह अनुभव किया हुआ अटल-अकाट्य बात है, ऐसा जानो ॥ ३८५ ॥

२. बिना पौन नहिं तरंग उठाहीं। यह तो विदित आहि जगमाहीं ॥३८६

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और चञ्चल पवन प्रवाहित होके बार-बार जलमें ठोकर लगे बिना कभी भी समुद्र, तालाब आदिके एकत्रित जलाशयोंमेंसे तरङ्ग, लहरियाँ उठ-उठके झकझोर होकर चञ्चल हो नहीं सकती हैं। जबतक पवन नहीं चलता, तबतक जल स्थिर ही रहती है। वायुके चपेटा लगते ही जल भी पतलारूप होने-से हिल उठते हैं। वायुके विशेष बहाव होनेसे तरङ्ग भी उमड़-घुमड़के जोर-जोर उसी तरफसे उठने लगती है। फिर वायुके रुकते ही जलमें भी स्थिरता आ जाती है। यह बात तो जगत्में जाहिर ही है, संसारमें सब कोई जानते हैं कि—वायुके लगे बिना तरंगें नहीं

उठती। सो जगजाहिर प्रसिद्ध बात है, विशेष इसमें कहनेकी आवश्यकता भी नहीं। इसी तरह कूटस्थ चेतन और जीवात्मा-के बीचमें चित्तका सम्बन्ध लगा है। चित्त सोई यहाँ पवनका रूप है, वासना-वेग उसमें भरे हैं। सो चित्तके शान्त होतें ही सकल दुःख तरङ्ग समाप्त होके शान्त होते हैं, ऐसा जानो ॥ ३८६ ॥

॥ २६ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—२६ ॥ खण्ड—५१ ॥

दोहाः—चित्त बात कहाँते उठै ? । कौन थान यहि केर ? ॥
(३८) सतगुरु मोहि बताइये । मिटे चित्तको फेर ॥ ३८७ ॥

टीकाः—फिर शिष्यने छब्बीसवाँ प्रश्न इस प्रकारसे पूछा कि—हे सद्गुरु देव ! चित्त बातके शान्त होनेसे सकल तरंगें शान्त होती हैं, ऐसा आपने जो कहा है, सो ठीक है। परन्तु वह चित्तरूपी वायु उठता कहाँसे है ? इस चित्तके रहनेका स्थान, कौन ठिकाने-पर है ? यह तो मैं जानता ही नहीं, फिर उसे शान्त मैं कैसे करूँ ? अतएव कृपा करके अब आपही बता दीजिये कि—पवनरूप चित्त कहाँसे उठता है ? उसका निवास स्थान कहाँपर है ? जिस प्रकार-से इस चित्तका फेरा, चक्कर, चञ्चलता, उद्वेग, मिट जाय, फिर कभी वह उठे नहीं, स्थिर शून्य हो जाय, वह युक्ति या उपाय हे सद्गुरो ! अब मुझे दया करके बता दीजिये। वही युक्ति मैं जानना चाहता हूँ ! बतलाइये ॥ ३८७ ॥

॥ २६ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—२६ ॥ खण्ड—५२ ॥

दोहाः—सबको अधिष्ठान तू । तुझ बिन और न कोय ॥
(३९) तोहिते दूजा होय तो । शिष्य ! बताहूँ तोय ॥ ३८८ ॥

टीकाः— उपरोक्त शिष्यकी जिज्ञासा सुन करके सद्गुरु ब्रह्ममुख वाणीको दर्शाते हैं:— हे शिष्य ! चित्तके स्थान आदिके बारेमें तुमने पूछा, तो सही। परन्तु तुमने अभीतक यह नहीं समझा कि, तुम

आत्मा सर्वाधिष्ठान है। अच्छा तो ध्यान लगायके अभी सुनो! तू आत्मा है। चित्त, बुद्धि, मन, हंकार, अन्तःकरण, दश इन्द्रियाँ, २५ प्रकृति, तीन देह, तीन अवस्था, पंचकोश, पंच विषय, पाँच तत्त्व, स्थावर, जङ्गम इत्यादि यावत् विश्वके अधिष्ठान-आधाररूप आत्मा परमतत्त्व जो है, सो तू ही है, समझा! तुझ आत्माके बिना और द्वैत कहीं कोई है ही नहीं, तू तो अद्वैत व्यापक है। हे शिष्य! तुझ आत्माके सिवाय दूसरा और कोई हो या होवे, तभी तो तुम्हें मैं बताऊँ कि—चित्त अलग है, वह यहाँपर रहता है, इस प्रकार उठता है। अभी तो तुझे एकात्मवादका कथन उसी तरह बतला रहा हूँ, जैसा कि, वेदान्ती गुरुवा लोग बतलाते हैं। यद्यपि यह मेरा खास सिद्धान्त नहीं है। तथापि तेरे मनको थकानेके लिये और कसर-खोट परखानेके लिये ही यह प्रकरणकी परिपुष्टि कर रहा हूँ। अतः तू सर्वाधिष्ठान आत्मा होनेसे तेरे बिना और कोई कुछ भी नहीं है। अगर आत्मासे चित्त भिन्न होता, तो मैं तुझे उसके स्थान वगैरह बताता। किन्तु यहाँ तो ऐसी बात है ही नहीं। चित्त भी तूहीं है, स्फुरणा, चिन्तनादि भी तेरेसे ही उठते हैं। अब चाहे तू उसे बन्द करदे, चाहे चालू रख। यह तेरी खुशीकी बात है॥ अब समझमें आया कि नहीं? सो कहो॥ ३८८॥

॥ २७ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक-२७ ॥ खण्ड-५३ ॥

॥ चौपाई-मण्डल भाग— ४० ॥ चौ० १ से ४ तक है ॥

१. सबको अधिष्ठान मैं आपू। मोहिमें रोग सकल सन्तापू॥ ३८९॥

टीकाः— तब शिष्य उद्विग्न होके सत्ताइसवाँ प्रश्न कहने लगा कि— हे गुरुदेव! आपके कथनसे तो मैं आत्मा आपही आप स्वयं ही सकल चराचर जगत्का आधार या आश्रयरूप भूमिका सर्वाधिष्ठान ही ठहर गया। जब मैं आपही सबका अधिष्ठान हुआ, तब मुझ आत्मामें ही रोग, आधि-व्याधि, उपाधि, त्रिविधताप, जन्म,

मरण, गर्भवास, तीनपन, षट् उर्मी, इत्यादि सकल सन्तापसहित नाना रोगोंके घर या खदान तो हमही हुये। सारे विकारका भण्डार तो मेरे में ही साबित भया। बड़े अफशोसकी बात है, मैं ऐसा क्या अधिष्ठान हो गया? सकल रोग-सन्ताप मेरेमें हों, ऐसी मुझे क्या खुशी थी? ॥ ३८९ ॥

२. सकल रोगके हमहीं मूला। मम स्वभावते मोहि अनुकूला ॥३९०॥

टीकाः—शिष्य कहता है:—और सकल रोग = त्रयताप, जन्म, मरणादि त्रय दुःख, चारखानी चौरासी योनियोंके नाना कष्ट-क्लेश इत्यादि सम्पूर्ण रोग, शोग, भोग आदिकके मूल कारण बीजरूप हम आत्मा ही हुये, हमारे स्वाभाविक इच्छासे ही यह सारा जगत् और दुःख-सन्ताप उत्पन्न भये, तो मुझे अनुकूल-प्रिय होना चाहिये था न? फिर कष्ट-क्लेशादि दुःख मुझे अप्रिय-प्रतिकूल क्यों होते हैं? क्या कारण है कि—सकल रोगके मूल होते हुये भी मुझे मेरे स्वभावसे उत्पन्न रोगादि दुःख अनुकूल नहीं होते हैं। यदि रोग मेरे इच्छानुकूल होता, तो फिर दुःखही क्यों मानता ॥ ३९० ॥

३. आतम जगत सनातन ऐसा। रोग स्वभाविक छूटै कैसा? ॥३९१॥

टीकाः—शिष्य कहता है:—यदि "एकोऽहं बहुस्याम्" के प्रमाणसे परमात्माकी इच्छा या स्फुरणासे ही सारा जड़-चैतन्यरूप जगत् उत्पन्न भया है। फिर अनिच्छा वा प्रलय करनेकी इच्छासे अन्तमें सकल जगत् मिट-मिटायके आत्मा या ब्रह्ममें समा जाता है। ऐसा कहा है, यदि ऐसी ही बात है, तो आत्मासे जगत्, और जगत्से आत्मा उलट-पुलटके होते रहना, ऐसा सनातन = सदाकाल अनादिसे ही हो रहा है; तब कहिये स्वाभाविक रोग, सन्ताप, दुःख फिर कैसे छूटेगा। गुणीसे गुण कभी भिन्न नहीं होता; परन्तु तत्त्वोंके गुण, गुणीमें कहीं भी सुख-दुःख मालूम नहीं पड़ता। तैसे ही जीवात्मामें भी होना चाहिये था, सो होता क्यों नहीं? अगर जगत् वा आत्मा

कहनेको नाममात्र दो, किन्तु वस्तु एक, ऐसा ही सनातनसे है, तो जन्म-मरणादि, उत्पत्ति-प्रलयादिके रोग स्वाभाविक होनेसे कैसे छूटेंगे ? क्योंकि स्वाभाविक क्रियाका कभी अभाव नहीं होता ॥३९१॥

४. छूटे बिना न होइहै काजा। रोग विवश व्याकुल महराजा ॥३९२॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और जगत् वासना, विषयासक्ति, जड़ाध्यास सर्वथा छूटे बिना मेरा कल्याण या मुक्ति प्राप्तिका मुख्य कार्य भी पूरा नहीं होवेगा। अर्थात् आवागमनरूप कठिन रोग सर्वथा छूटे बिना कार्य सिद्ध भी होनेका नहीं। इसवास्ते हे गुरु महाराज ! मैं आपसे बार-बार विनय कर रहा हूँ। क्योंकि—मैं जन्म-मरण, त्रयतापादि रोगोंसे विवश = परवश, लाचार, असमर्थ होकर कष्ट, क्लेश भोगते हुये घबराया हुआ, आकुल-व्याकुल हो रहा हूँ। मुझे भूल-भुलैयाके घनचक्रमें मत डालिये। यथार्थ मुक्तिमार्गको बतलाइये। जब सर्वोपरि आत्मा ही रोग-विवश व्याकुल है, तब रोग छूटे बिना कल्याणका काज कैसे होवेगा ? प्रथम "रोगी भिन्न रोग है भिन्ना" ऐसा आप कह चुके हैं ! फिर आत्मा होनेपर रोग-रोगी कैसे एक हो जायगा ? अगर एक है, तो हम रोगसे व्याकुल क्यों होते हैं ? कृपा करके आप इसका समाधान कर दीजिये ॥ ३९२ ॥

॥ २७ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—२७ ॥ खण्ड—५४ ॥

दोहाः—रोग स्वभाविक कौन विधि। छूटत है यह भाय ॥

(४०) ऐसा समुझि विचारिके। चूपचाप रहि जाय ॥३९३॥

टीकाः—ब्रह्ममुख वाणीसे सद्गुरु कहते हैं कि—हे शिष्य ! तुम अच्छी तरहसे विचार करो कि—जो स्वाभाविक रोग है, वह किस प्रकारसे छूटेगा ? अर्थात् स्वाभाविक रोगका धर्म जो है, सो कदापि छूट नहीं सकता है। क्योंकि जो बात अनादि स्वतः सिद्ध होती है, वह किसी प्रकारसे भी बदल नहीं सकती है। जैसे अग्निमें उष्णता, जलमें शीतलता, पृथ्वीमें कठिनता, धर्म एवं रूप, रस, गन्ध,

गुण उनमें स्वाभाविक स्वयं है, सो त्रिकालमें गुणीसे गुण भिन्न हो नहीं सकता है। तैसे ही आत्मामें स्फुरणा, चिन्तन होना, स्थूल, सूक्ष्म, सृष्टि बनते-बिगड़ते रहना, उत्पत्ति-प्रलय होते रहना, यह स्वाभाविक अनादि स्वयं सिद्ध रोग है। फिर कहो भला! यह किस तरहसे, कैसे किस भावसे छूट सकेगा, वास्तवमें छूटना-छुटाना कुछ भी नहीं, सब भ्रम ही है, ऐसा सोच-समझके मौन हो रहो। क्योंकि, आत्मामें बन्ध-मुक्ति कुछ भी नहीं, वह तो ज्योंका-त्यों है। रोग, शोग, भोग, वह सब तो भ्रममात्र है, ऐसा विचार करके चुपचाप रह जाना चाहिये। कुछ बोलनेका अब काम ही नहीं। बोलना, कहना, सुनना, पूछना, यह सब भ्रान्ति है, ऐसा पहिले कहा जा चुका है। अतएव एक आत्माके सिवाय दूसरा कुछ नहीं है, यही निश्चय करके चुपचाप रह जाओ, बोलो ही मत ॥ ३९३ ॥

दोहाः—रोग असाध्य कहाँ जाइहै। तुम बिन नाहीं ठाँव ॥
(४१) तुम्हें छाड़ि फिर रोग सब। काह धरावत नाँव ॥३९४॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— हे शिष्य! तुम ठीक तरहसे सोच लो कि—आत्मस्वरूप तुम्हारे बिना, कोई अणु-परमाणुमात्र भी जगह खाली है? नहीं है। और उत्पत्ति-प्रलय या जन्म-मरणादिका रोग असाध्य है। अर्थात् जो किसी प्रकारसे भी छूटनेवाला नहीं है, कोई उपचार औषधि भी जिसमें लगते नहीं, जो कि निवारण करनेके लिये साध्य या सम्भव नहीं हो, उसे असाध्य कहते हैं। ऐसा असाध्य अनादिका रोग कहाँ जायेगा? तुम आत्माके बिना उसको जानेका और ठाँव=जगह है ही नहीं। क्योंकि जिसको असाध्य रोग होता है, सो रोग उसीके पासही रहता है और किसीके पास वह नहीं जाता। और तुम आत्मा अधिष्ठानको छोड़ करके फिर यह सारे रोग कहाँ पर क्या नाम धरायेंगे? जैसे तुम्हारे शरीर न हो तो रोग शोक और भोग फिर कहाँपर हो सकते हैं। तैसे

सम्पूर्ण पिण्ड-ब्रह्माण्ड आत्माका शरीर है। वही विराट-पुरुष है। उसमें रोगादि होते रहते हैं; तथापि उससे आत्माका कोई हानि-लाभ नहीं है। अधिष्ठानको छोड़के जगत् विकार कहाँ जायगा? तैसे ही तुमको छोड़के फिर रोग सब भी कहाँ क्या नाम धरायेंगे? जैसे कारणको छोड़के कार्यका ठहराव और नाम-रूप भी पृथक् कुछ हो सकते नहीं। क्योंकि बिना कारणके कार्य कैसे बनेगा? वैसे आत्माके बिना जगत् सुख-दुःखादि भी कहीं नामोंनिशानमात्र भी नहीं हो सकते, ऐसा जान लो॥ ३९४॥

दोहाः—ताते सब विधि तुमहीं हो। और न कछू विचार॥
(४२) बोलन चालन थकित भौ। मन चक्कर दै डार॥३९५॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं— इसवास्ते हे शिष्य! तुम ही सर्वाधिष्ठान एक आत्मा हो; सब प्रकारसे नित्य, सत्य, सब कुछ तुम्हीं हो; परमतत्त्व परमात्मा सर्वाधार तुमही हो; "तत्त्वमसि" यह वेदका महावाक्य भी बतलाता है कि, तुमही परब्रह्म हो! और तुमसे भिन्न कुछ भी नहीं, आत्मासे कुछ भिन्न है, ऐसा विचार करो ही मत। यह अद्वैत आत्मसिद्धान्तका पक्का विचार है। अब आत्मतत्त्वके विचारमें रहके बोलना-चालना, छोड़के मनको मननके चक्करमें डाल दो, मन थकित हो जानेपर स्वयमेव आत्म-स्थिति हो जायगी। अतएव सब तरहसे मैं एक आत्मा ही सत्य हूँ। इसीका निरन्तर विचार करो और द्वैतभासका कुछ भी विचार न करो। मनकी चञ्चलतासे ही बोल-चाल करना, तर्क-वितर्क, प्रश्न, शंकादि होते हैं। तहाँ—"संशयात्मा विनश्यति" अर्थात् संशय करनेवाला विनाशको प्राप्त होता है, ऐसा गीतामें कहा है। इसलिये मनके घनचक्कको निकाल डालो, तोड़ दो, उन्मुन कर दो, मन थकके स्थिर होते ही तद्रूप आत्मसाक्षात्कार हो जायगा। फिर गुमसुम हो मौन धारण करके अवाच्य, अलक्ष होके उसीमें शान्त हो रहो। इससे

अधिक आगे शंका करनेकी भी जगह नहीं है। यह मैंने तुम्हें आत्मज्ञानकी अन्तिम स्थिति बता दिया है। अब तुम भी चुपचाप आत्मानुभवकी निज स्थितिमें रह जाओ। अब सिद्धान्त समझा कि नहीं, सो कहो ? ॥ ३९५ ॥

॥ २८ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—२८ ॥ खण्ड—५५ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—४१ ॥ चौ० १ से १४ तक है ॥

१. हे प्रभु ! मोपै कह्यो न जाई। जानि परी नहिं कछु अधिकाई॥३९६॥

टीका:— उपरोक्त गुरु उत्तरको श्रवण करके शिष्य आश्चर्यचकित होके कुछ देर तक तो मौन होके सोचता-विचारता ही रहके शान्त हो गया। फिर हतोत्साहसे उदास होके नीचे लिखे अनुसार अट्ठाईसवाँ प्रश्न कहने लगा कि— हे सद्गुरु प्रभो ! मुझसे तो अब सत्य-असत्य, अच्छा-बुरा कुछ भी कहा नहीं जाता। एक कहावतमें कहा है कि—

"काह कहूँ कछु कह्यो न जाय। बिन कहे मोसे रही न जाय॥
एक बात अचरजकी भई। सात गाँव बकरी चर गई॥"

तैसे ही अब क्या कहूँ। कहाँ मैं मुक्ति हासिल करना चाहता था, और यहाँ आत्मा बनके अनादिका असाध्य रोग शिरपर चढ़ गया। मैं निर्णयसे सत्यासत्य जानना चाहता था, यहाँ गोलमाल हो गया, और आपके शरणमें आके इतना साराशंका-समाधान करके सत्संग विचार किया। परन्तु अभी अन्तिम सिद्धान्त ठहरनेसे तो आपके उपदेश तथा आत्मज्ञानमें कुछ रत्ती भर भी विशेषताई जान नहीं पड़ी, यानी आत्मज्ञानकी अधिकता कुछ जाननेमें नहीं आई। अब मैं क्या कहूँ ! शंका करना भी आपने मना कर दिया है। मन, बुद्धि, वाणीसे परे आत्मा बताके चुपचाप होनेको कह दिये हैं। यदि समाधान होता, तो मैं स्वयं ही चुप रह जाता। परन्तु अभीतक मेरा समाधान, सन्तोषपूर्वक नहीं हुआ। कहा तो कुछ जाता नहीं,

कहे बिना भी मुझसे रहा जाता नहीं। इसीसे आपके समक्ष मैं अपना दुःखड़ा रोयके कहता हूँ! कृपा करके सुन लीजिये। अभी-तक आपके कथनसे जो आत्मज्ञान वर्णन हुआ, उसमें मुझे कुछ भी अधिकाई जान नहीं पड़ती है ॥ ३९६ ॥

२. प्रथम प्रश्न मैं कीन्ह गोसाँई। आवागवन कस जानहि आई ॥३९७॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—उसका कारण भी मैं बताता हूँ। इन्द्रिय निग्रही हे गुरुदेव! सर्वप्रथम मैंने आपसे यही प्रश्न किया था कि—जीव आवागमनमें कैसे आया? और जन्ममरणादि दुःखोंसे जीव कैसे छूटेगा? सो कैसे जानना? निजस्वरूप और बन्धन कैसे जाननेमें आयेगा? ॥ ३९७ ॥

३. केहि कारण यह ज्ञान प्रकाशा। आवागवनमें कीन्ह निवासा॥३९८॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—अज्ञान किस कारणसे हुआ? यह ज्ञानका प्रकाश किस कारणसे हुआ? जन्म, मरण, गर्भवासरूप आवागमनमें जीव किस लिये निवाश किया? यही सब बातें मैंने पूछा था। अगर आत्मा अधिष्ठान होके फिर भी आवागमनमें ही सदैव निवाश होनेका था, वह जन्म-मृत्युसे जीव नहीं छूटता है, तो फिर आपने यह ज्ञान-विज्ञान आदि किस वास्ते प्रकाश किये? इससे क्या सार निकला? किस कारणसे यह आत्मज्ञानका प्रकाश हुआ? जीव जन्म-मरणादिमें पड़े हैं, सो कैसे छूटेंगे? यह मेरा पूर्वका प्रश्न था ॥ ३९८ ॥

४. तब तुम कहा सकल मानेते। तत्त्वमसि आदि बन्धन जेते॥३९९॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—तब उसके उत्तरमें आपने यही कहा था कि—तत्, त्वं, असि। ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान। काल, सन्धि, झाँई, इत्यादि जितने बन्धन हैं, उन सकलको माननेसे या मानन्दी करनेसे जीव जन्म-मरणादिमें पड़े हैं। "मानि-मानि बन्धन तर आवा" इत्यादि वचन प्रकाश करके मानन्दी ही मुख्य भवबन्धनोंका कारण ठहराये

थे । तत्त्वमसि आदि बन्धनके कारणरूप सम्पूर्ण मानन्दीको परित्याग करनेके लिये आप बताये थे । परन्तु अभी अधिष्ठान आत्मा एक है, ऐसा दृढ़ निश्चय करके माननेके लिये प्रेरणा कर रहे हैं । यह कैसी बात है ? इसे मैं क्या समझूँ, बताइये ! ॥ ३९९ ॥

५. तब मैं पूछा अहो गोसाँई ! बन्धन सकल बतावहु साँई ! ॥४००

टीका:—शिष्य कहता है:—तदनन्तर मैंने आपसे पूछा था कि— अहो सद्गुरो ! गो-मनादिके विजई स्वामी ! विस्तारपूर्वक सकल बन्धनोंको बताइये । किस-किस बन्धनमें कैसे-कैसे जीव अरुझे पड़े हैं, सो भेद खोलके दरशाइये । जीवके ऊपरमें कोई शिव, मालिक है कि, नहीं है ? जीवको किसीने बनाया कि—आप ही आप है ? बन्धनमें किसीने डाल दिया कि,—आपही पड़ा हैं ? कैसे पड़ा है ? हे स्वामी ! सो सम्पूर्ण बन्धनोंके कारण, लक्षण बताइये, यही मेरा प्रश्न भया था, यानी वही बात मैंने पूछा था ॥ ४०० ॥

६. तब तुम करत चले निरुवारा । तत्त्वमसि आदि सकल विचारा ॥४०१

टीका:—शिष्य कहता है—तब उस प्रश्नके उत्तरमें आप एक-एक करके निर्णय करते चले गये थे ! तत्त्वमसि आदिको बन्धन ठहराकर उसके सकल विचार भिन्न-भिन्न बतलाये थे । तहाँ तत्पद ईश्वर ज्ञान, त्वंपद जीव अज्ञान, इन दोनोंका भेदभाव मिट जानेपर जीव-ईश्वरकी समता या एकतारूप असिपद विज्ञान ब्रह्म कहे थे । वेद प्रमाणसे तत्त्वमस्यादिका सम्पूर्ण विवेक-विचार दर्शाय करके निर्णय करते-करते यहाँ तक चले आये हैं ॥ ४०१ ॥

७. हम प्रभु ! श्रवण मनन सब कीन्हा । निदिध्यास साक्षातहु चीन्हा ॥४०२

टीका:—शिष्य कहता है:—और जिस प्रकार आप निर्णय करते गये, उसी प्रकार हे गुरुदेव प्रभो ! हमने भी श्रद्धा भक्तिपूर्वक साधन चतुष्टय सम्पन्न हो करके जिज्ञासु शिष्यके पूर्ण लक्षण धारणकर अत्यन्त आदर निष्ठासहित गुरुवाक्यरूप उपदेशको प्रेमपूर्वक

एकाग्र चित्तसे श्रवण किया। फिर एकान्त प्रदेशमें बैठके उसे विधिपूर्वक मनन करके हृदयङ्गम भी किया। यानी सब शिक्षा-उपदेश को ग्रहण करके धारण भी किया। फिर हमेशा आत्मा-परमात्माका चिन्तनरूप निदिध्यासन-एकता कार्यान्वित भी किया। जिससे आपके कहे अनुसार आत्म-साक्षात्कार करके मैं आत्मा सर्वाधिष्ठान हूँ, ऐसा भी चीह्न लिया या ऐसा शब्द प्रमाणसे मानके पहिचान लिया। इस प्रकार निर्विघ्न साधना भी समाप्त हो गया। साधना करनेमें और समझने-बूझनेमें तो कोई कसर रही नहीं ॥ ४०२ ॥

८. चीन्हत चीन्हत हो प्रभुराई ! जानते अजान भयो मैं आई ॥४०३॥

टीकाः—स्थिति न मिलनेसे उदास होके शिष्य अपनी दशा वर्णन कर रहा हैः—शिष्य कहता है— हे प्रभु गुरु महाराज ! आपके कथनसे त्रिपदको चोन्हते-चीन्हते निश्चय करके पहिचानते-पहिचानते पहले मैं जीव ठहरा, फिर ईश्वर बना, अन्तमें ब्रह्म या आत्मा कहाया, तो यहाँ आकर मैं जानसे अजान = ज्ञानसे अज्ञान, जीवसे ब्रह्म और ब्रह्मसे भ्रमके अधिष्ठानरूप आत्मा हो गया। अब कहिये क्या इसी दुर्दशाकी स्थितिमें मैं पड़ा रहूँ ! चीन्हते-चोन्हते अब तो अनचीन्ह हो गया, जानते-जानते अनजान बना, पढ़ते-पढ़ते मूर्ख हुआ, ज्ञान करते-करते महाअज्ञानी हो गया। ऐसा ही आत्मज्ञान मुझे मालूम हो रहा है। गुरुके शरणमें मैं आया तो था मुक्ति पानेके लिये, परन्तु आत्मा बनके अब तो मैं महान बन्धनमें पड़ गया हूँ, अब क्या करूँ ? ॥ ४०३ ॥

९. कहत कहत तुमहूँ गुरुराई ! गुरुते आतम आपु कहाई ॥४०४॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और हे गुरु श्रेष्ठ ! गुरुराज ! उपदेश कहते-कहते तत्त्वमसिका भेद लखाते-लखाते आपने भी गुरुसे भी बढ़के आत्माको बताया है। बल्कि गुरुपदको भी छोड़के उससे आगे आप स्वयं ही एक परिपूर्ण व्यापक आत्मा कहलाये। कहते-कहते

तो आपने ऐसा कह दिया कि, आत्मा एक अद्वैत है, दूसरा कुछ है नहीं। इस प्रकार आप गुरुसे पलटके आत्मा कहाते भये ॥ ४०४ ॥

१०. तुमहूँ आतम हमहूँ आतम। ये जग सबहीं आत्मसनातन ॥४०५॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—अब तो आपके ही वचन प्रमाणसे आप भी आत्मा हुए, तथा मैं भो आत्मा हुआ, और यह सारा जगत्, जड़ पाँचतत्त्व, उनके सम्पूर्ण कार्य, अन्तरिक्ष, सूर्य, चन्द्र, तारागण, सागर, पहाड़, वन, महाअरण्य, हिमालय, समस्त विश्व, एवं चारों-खानीके सारे देहधारी चैतन्य जीव, चराचर सबही सनातन आत्माके ही स्वरूप ठहरे। अर्थात् मैं ब्रह्म, तू ब्रह्म, ए ब्रह्म, ओ ब्रह्म, दशों-दिशामें परिपूर्ण व्यापक गवरगुण्ड एक ब्रह्म ओतप्रोत वही ब्रह्म, यही सिद्धान्त कायम हुआ। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "एकोब्रह्म द्वितियो नास्ति" इस प्रकार अनादि, अनन्त, व्यापक, ब्रह्म या आत्मा सनातनसे तुम, हम और ये सारा जगत् भी एक आत्मा ही हुए, यही ठहरा ॥ ४०५ ॥

११. अब प्रभु ! कौन मुक्ति ठहराई ? कौन दुःख छूटा गुरुराई ! ॥४०६॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—अब हे प्रभु ! हे गुरो ! अब कहिये कौनसी मुक्ति ठहरी ? तथा कोनसा बन्धन ठहरा ? और मुक्तिको तो भी कौन ठहरायेगा ? कहाँ ठहरायेगा ? क्योंकि एक आत्माके सिवाय दूसरा जगह तो खाली कहीं है ही नहीं ! फिर हे गुरुराज ! ऐसा गोल-मालके आत्मज्ञानसे मेरा कौनसा दुःख छूटा या छूटेगा ? त्रिताप, जन्म-मरणादि कठिन दुःखोंमेंसे एक भी 'दुःख छूटता हुआ या छूटनेवाला मुझे दिखाई दे नहीं रहा है ॥ ४०६ ॥

१२. यह तो अनादि सिद्धको रोगू। ज्योंका-त्योंहि बना है भोगू ॥४०७

टीकाः—शिष्य कहता हैः— क्योंकि आपके अभीतकके आत्म-ज्ञानके उपदेशका सारांश विचार करनेसे यही निश्चय हुआ कि, उत्पत्ति-प्रलय वा जन्म-मरणादि होना, यह तो अनादिकालका

स्वयंसिद्ध, अप्रतिहार्य, अच्छेद्य, अमिट, नित्य होते रहनेवाला असाध्य रोग है। कारण ब्रह्मसे कार्य जगत् होना-मिटना, सदा लगा ही हुआ है। सो कभी किसो प्रकारसे भी रुक नहीं सकता है, स्वयं ब्रह्मके स्फुरणाको कौन रोके ? यानी ब्रह्मकी इच्छाको रोकनेमें कोई समर्थ नहीं। इसलिये संसारका कष्ट चौरासीयोनिका दुःख भोग त्रयताप, जन्म, मरण, गर्भवासादिका कर्मभोग ज्योंका-त्यों हो बना हुआ है, उसका विनाश कुछ भी हुआ नहीं, और न होगा, न हो रहा है। चाहे ब्रह्म बनके दुःख मानो या न मानो, पूर्ववत् आवागमनका दुःख भोगना ही पड़ेगा। ऐसे जो अनादिका रोग है, वह छूटेगा कैसे ? मुक्ति होनेकी आशा भी निराशा हो गई। जैसा अज्ञानी लोग चौरासी दुःखभोगमें पड़ते रहते हैं, तैसे ही ब्रह्मज्ञानी भी चौरासी योनिका दुःख भोगा करेंगे। भवबन्धनोंसे छूटना दुःस्साध्य हो गया, ऐसा मालूम पड़ता है ॥ ४०७ ॥

१३. एक विशेषता यामें पाई। कहत-कहत आपुहि थकि जाई ॥४०८

टीकाः— शिष्य कहता हैः— हे गुरुदेव ! अभीतकके प्रश्नोत्तरमें सिर्फ एक बातकी विशेषता प्राप्त हुई है। सो यही कि, उत्तर, समाधान करनेमें युक्ति-प्रयुक्तिसे दृष्टान्त-सिद्धान्तकी उपदेश कहते-कहते आप भी अपनेआप ही थकित हो गये। क्योंकि ज्यादा कहना पड़ा, तो कहनेवाला कहते-कहते आप ही थक जाता है। इसीसे उपदेश देनेमें ज्यादाबोलनेसे आप कथ गये, हैरान, सुस्त, हो गये हो, यही विशेषता इसमें मिली है ॥ ४०८ ॥

१४. सुनत-सुनत हमहूँ थकि गयऊँ। अब गुरु ! चूपचाप होय रहेऊँ ॥४०९

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और आपके शिक्षा, उपदेश, समाधानको मन लगायके सुनते-सुनते अब तो मैं भी अत्यन्त थकित हो गया हूँ, चित्त उपराम, उचाट, हो गया है। इससे तन-मनमें ज्यादा थकावट आ गई है। अब तो हे गुरुवर ! गुरु-शिष्य दोनोंको ही चुपचाप या गुमसुम हो करके तैं चुप, मैं चुप, होनेके सिवाय

और दूसरा कोई चारा वा रास्ता ही नहीं दीखता है। लाभ तो कुछ हुआ नहीं, सार भी कुछ नहीं निकला, ज्योंका-त्यों आत्मा जगत्‌रूप ही सिद्ध हुआ। आखिरमें चुपचाप हो रहनेके लिये अभी पहले आप भी कह चुके हैं। इससे आप कहते-कहते थक गये हैं, यह मालूम पड़ा। क्षमा करिये! अब मैं आपको बोलनेमें लगाके वा बोलनेके लिये दुःख देना नहीं चाहता हूँ। अब मैं मुख बन्द करके चुपचाप, गुमसुम हो, गूँगेकी नाईं मौन हो रहूँगा! आपके इजाजत वा आज्ञा मिले बिना मैं कुछ बोलूँगा ही नहीं। ऐसा कहके जिज्ञासु शिष्य नीचे दृष्टि करके मौन हो रहा ॥ ४०९ ॥

॥२८॥ सद्‌गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—२८ ॥ खण्ड—५६ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—४२ ॥ चौ० १ से १६ तक है ॥

१. अब तुम जिन घबरावहु भाई! पुनि विचार तोहिं देहुँ बताई ॥४१०॥

टीकाः— गुरुमुखः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:— यहाँसे अब त्रिपदसे भिन्न पारखपदके बोधका यथार्थ रहस्य बतलाकर शिष्यको निजस्वरूपकी स्थितिमें ठहराते हैं। हे प्रेमी शिष्य! तुम्हारे वचनसे जाहिर होता है कि, तुम बहुत घबरा गया है, तलमला गया है। हे भाई! अब तुम मत घबराओ, धैर्य धारण करो। तुम्हारे परिपुष्टिके वास्ते ही परिक्षाके तौरपर कसर-खोट परखानेके लिये, देखें, तुम्हारी समझ कहाँतक जाती है, यह जाननेके लिये ही अभी तक मैंने अन्य मतवादीयोंका कथन तद्वत् होके बतलाया था, परन्तु तुम तो वेदान्त सिद्धान्त सुन-सुनके हताश होके घबरा गया; खैर, अब सम्हलो, शान्त चित्त करके सुनो! फिरसे मैं तुम्हें गुरु विचारका इशारा बतलाय देता हूँ! जिससे तुम्हें निज स्वरूपका बोध हो जायगा, सब कसर-खोट भी जाननेमें आ जायगा ॥ ४१० ॥

२. जौन बात हम तुमसे कहिया। तौन बात हृदया नहिं रहिया ॥४११

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— हे शिष्य! जौन-जौन बात हमने तुमसे

पहले कहा था, तौन-तौन बातके रहस्य तुम्हारे हृदयमें याद नहीं रहा । अर्थात् हमने उत्तरमें तुम्हें किस-किस प्रकारका लक्ष-लक्षण बतलाया था, किधर समझने-पकड़नेका संकेत किया था, सो अन्तःकरणमें स्मृति तुमने रखा ही नहीं । इसलिये तुम विचलित, भ्रमित, हो गया । अन्य-अन्यमें ही लक्ष लगाके भूल गया । जिस बातको ग्रहण धारण करना था, सो तो हृदयमें धारण हुआ ही नहीं ॥ ४११ ॥

३. सुनि निर्णय तुमहूँ घबराया । अन्तर कछु थिति नहिं पाया ॥४१२॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— और तुम्हारे प्रश्नके मुताविक ही मैंने भी मत-मतान्तरोंका निर्णय गुरुवा लोगोंके मान्यताके अनुसार ही वतला दिया था । वह कुछ मेरा अपना सिद्धान्त नहीं है । अभीतक विशेषतः गुरुवा लोगोंका ही मानन्दी सिद्धान्तका कथन वेद, वेदान्तादि शास्त्रोंके प्रमाणसे कह दिया हूँ । परन्तु वेदान्तके निर्णय आत्मसिद्धान्तको श्रवण करके तो तुम भी बहुत घबरा गया और अन्तर = भीतर-हृदयमें निज स्थिति ठहरावको बिना पारख कुछ भी नहीं पाया । इसी तरह ब्रह्मज्ञानियोंकी भी डामाँडोल दशा होती है, अब तुम अपनी गति देखके समझ सकते हो । विवेक बिना अन्तः-करणमें कुछ भी स्थिति नहीं मिलती है । भ्रम-भूलमें ही ब्रह्मज्ञानी लोग भटकते रहते हैं । जगत् ब्रह्मके फेरामें नाचा करते हैं । कोई गाफिलीमें ही पशुवत् वृत्ति बनायके व्यर्थ नर-जन्मको बिताय देते हैं ॥ ४१२ ॥

४. तुम जनि शङ्का मानहु भाई ! पुनि अब तोहि कहौं समुझाई ॥४१३॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे भाई ! जिज्ञासु शिष्य ! अब तुम कोई बातकी किसी प्रकार भी शङ्का = दुविधा, सन्देह मत मानो । इतना ही बात नहीं, अभी अन्तिम फैसला हो गया, ऐसा मत समझो । पारख सिद्धान्त गुरुपद तो इससे बहुत दूर न्यारा है । मैं गोलमाल करके सन्देहमें डालके छोड़ दूँगा, ऐसी बात नहीं हो सकती है ।

सद्गुरुकी दयासे निजस्वरूप पारखका पूरा बोध मुझे है। और अन्य मत-मतान्तरोंका सिद्धान्त भी भलीभाँति जानता हूँ! वेदान्त आदिकी मुख्य-मुख्य बातें तो मैं तुझे बता ही चुका हूँ! अब फिर तुझे उसका सार-असार, सत्यासत्य समझाके कह देता हूँ! जड़-चैतन्यका भेद लखा देता हूँ! परन्तु निर्णयको ठीक तरहसे समझते जाना, तो गुरुमुख सत्यनिर्णयका सत्य-रहस्य तुम भी समझ पाओगे ॥४१३॥

५. प्रथम शिष्य! तुम पूछा मोही। केहि प्रकार मानन्दी होही ॥४१४

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— हे जिज्ञासु शिष्य! तुमने प्रथम मुझसे यही पूछा था कि, किस प्रकारसे मानन्दी होती है और वह मानन्दी कितने प्रकारके हैं? कौन मानन्दी जीवने किया, उसका भिन्न-भिन्न चिह्न बतलाइये? जिसका गुण-लक्षण जानके त्याग किया जायगा, इत्यादि शुरूमें तुम्हारा प्रश्न हुआ था ॥ ४१४ ॥

६. सो तुमको हम प्रथम सुनावा। तत्त्वमसिका भेद बतावा ॥४१५॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— सो उसके उत्तर नं० ४ में तत्त्वमसिकी मानन्दी हो सकल बन्धनोंका कारण बतलाके उसके भिन्न-भिन्न भेद भी हमने तुमको प्रथमके उत्तरमें ही सुना दिया था। अर्थात् प्रश्न ४ से प्रश्न २७ तकके उत्तरमें विस्तारपूर्वक त्वंपद, तत्पद, और असिपदका भेद बताया गया है। कैसे-कैसे त्रिविधि मानन्दी भया, जीव उसमें कैसे फँसा, सो विधिपूर्वक प्रथम ही हम तुमको सुना चुके हैं ॥ ४१५ ॥

७. द्वै प्रकार त्वंपद बतलावा। कर्म उपासना अज्ञ सुनावा ॥४१६॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— और प्रश्न ७ के उत्तरमें त्वंपदमें दो प्रकारके अज्ञान बतलाये गये हैं। तहाँ विशेष अज्ञान, अपरोक्ष स्वइच्छासे होनेवाला है। सामान्य अज्ञान परोक्ष, परइच्छासे होनेवाला है। और परोक्ष अज्ञानमें पड़े हुये अज्ञानी लोग किस तरह कर्म मार्ग—उपासना मार्गमें अरुझे हैं। सो भेद भी प्रश्न ७ के उत्तरके

मध्य भागमें विस्तारसे बतलाके सुना चुका हूँ ! अर्थात् दो प्रकारके त्वंपद जो बतलाया, उसीमें कर्म और उपासना भी अज्ञानके श्रेणीमें ही सुनाया गया है ॥ ४१६ ॥

८. सबमें द्वै-द्वै भाँति बताई । पुनि तत्पदकी बात जनाई ॥४१७॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— और परोक्ष-अपरोक्ष अज्ञानके कार्य सबोंमें दो-दो प्रकारके भेद सुनाये गये हैं। अर्थात् अपरोक्ष अज्ञान स्वइच्छासे हो, तो विशेषाधिकरण नाम होता है। यदि परइच्छासे अपरोक्ष अज्ञानके कार्य होवे, तो वह समानाधिकरण कहा जाता है। वैसे ही परोक्ष अज्ञानमें भी दो भेद जानना चाहिये। यही त्वंपद नामसे प्रख्यात हुआ है। तत्पश्चात् फिर तुमको तत्पदकी बात भी प्रश्न ९×१० के उत्तरमें जना चुके हैं। यानी समझा चुके हैं। उक्त प्रकरणमें सो बात विस्तारपूर्वक वर्णन हो गया है ॥ ४१७ ॥

९. ईश्वर औ ज्ञानीको लेखा । समान ज्ञान औ कह्यों विशेषा ॥४१८॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे शिष्य ! और प्रश्न १० के उत्तरमें परोक्ष ज्ञानके विशेषाधिकरण बतलाया हूँ ! वहाँ ईश्वरका लक्षण, ऋद्धि-सिद्धि, षट् गुणादियुक्त दरशाया और ज्ञानीका लक्षण रूप-रेखा, लेखा-जोखा भी कहा गया है। और परोक्ष ज्ञानमें भी सामान्य ज्ञान और विशेष ज्ञानका रहस्य विधि-विधानसे कह चुका हूँ। सो उपरोक्त प्रकरणसे विशेष करके जाना जायगा, यहाँ संक्षेपसे नाममात्र जनाया है ॥ ४१८ ॥

१०. ता पीछे असिपद दरशावा । परमहंस मत सब समुझावा ॥४१९॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— हे शिष्य ! उसके पीछे मैंने तुम्हें प्रश्न १३ के उत्तरमें असिपद = ब्रह्म-अद्वैत सिद्धान्तका वर्णन करके विधिपूर्वक दरशाया है। तुर्यातीत अवस्थावाले विज्ञानी परमहंसका मत, मानन्दी, चाल, चलन, लक्षण, दशादि सब एक-एक बताके

तुम्हें समझाया हूँ ! असिपदके सारे भेद भी कह चुका हूँ ॥ ४१९ ॥

११. परोक्ष औ अपरोक्ष विज्ञाना। ताके भेद सुनायेउँ नाना ॥४२०

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:— और प्रश्न १४ के उत्तरमें परोक्ष विज्ञान, कहनेमात्र वाणीका कथन, और अपरोक्ष विज्ञान बाल, पिशाच, मूक, उन्मत्त, और जड़वत् दशाको ही प्राप्त हुए परमहंस कहलाते हैं। उस असिपदका भी भेद नाना प्रकारसे वर्णन करके अभी प्रश्न २७ के उत्तरतकमें कहकर तुम्हें मैंने सुना दिया है! अद्वैत आत्मज्ञानके सिद्धान्त सब उसी असिपदके मानन्दीमें आ जाते हैं। एक-अनेकका वहाँपर समावेश हो जाता है। सर्वाधिष्ठान मान करके विज्ञानी लोग आप ही जगत्रूप हो जाते हैं, वहाँ उनकी सत्या-सत्य विचारणीय बुद्धि कुण्ठित हो जाती है। यही मानन्दी बड़ी जबरदस्त भई है। गुरुपारखके बोध बिना किसीको दोष लखनेमें नहीं आता है ॥ ४२० ॥

१२. सुनत भेद तुम भूलेहु भाई ! आप अपनपौ गये हेराई ॥४२१॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:— हे भाई शिष्य ! तत्, त्वं, असि इन तीन पदोंके भेद विधिपूर्वक सुनते-सुनते ब्रह्म भावनामें पहुँचके तुम तो बिलकुल ही अपनेको भूल गया। उसीमें लीन होके डूब गया। मैंने क्या पूछा था ? उसका उत्तर किस प्रकारसे मिल रहा है, यह तो मानन्दी बन्धनोंकी बातें परखाया जा रहा है, मैं उसे अपना स्वरूप क्यों मानूँ ? यह कुछ भी ख्याल तुम्हें नहीं रहा। आप अपने स्थितिके हंसपद या चैतन्य जीवपदको भी भूल गया। पहले हंस भूलनेकी बात कही थी, सो इसी तरह समझ लो। तुमने तो अपनी सुध-बुध, विवेकको भी हेरायके खो दिया। मैं द्रष्टा तीनोंपदसे भिन्न हूँ ! यह खबर तुम्हें रही ही नहीं। आत्मज्ञानके भेद सुन-सुनके तुम तो उसीमें भूल गया। इससे स्वयं अपने पदके तरफसे हेराय गया ॥ ४२१ ॥

१३. तीनिहुँ पदका जाननहारा। तूहि जान अब करु निरुवारा ॥४२२

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— अब सम्हल जाओ, उस भ्रम-भूलको मिटा डालो। हे शिष्य! अब मैं तुम्हें पारखनिर्णयका उपदेश देता हूँ, सो ध्यानपूर्वक सुनो—तत्त्वमसि यह तीनों ही पदको जाननेवाला तू ही जनैया चैतन्य हंस जीव द्रष्टा-साक्षी उन तीनों पदोंसे न्यारा नित्य-सत्य है, ऐसा जानो या उस प्रकार पहिचान करो। अगर तू जाननेवाला पृथक् न होता, तो तत्त्वमसिको कौन कहता? कौन मानता? यह त्रिपुटीरूप त्रिगुण, त्रिपदको माननेवाला तू ही हंस सत्य है। अब परीक्षादृष्टिसे देखके सार, असारका यथार्थ निर्णय करो और सारको ग्रहण करके असारको परित्याग करो ॥ ४२२ ॥

१४. तेरो भास तोहिको खावै। तीनों पद ये जीव भरमावै ॥४२३॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे जिज्ञासु नर-जीव! भास, अध्यासादि तुम्हींसे खड़ा होते हैं। और तेरा भास तुझको ही खराब करता है। विवेक-बुद्धिको खाके नष्ट-भ्रष्ट करता है। और सब नर-जीवोंको भ्रमाने, भुलाने, भटकानेवाला ज्ञान, अज्ञान, और विज्ञान यही तीन पद हैं। सो हे शिष्य! वह तो तेरा भासमात्र है, कोई सत्य वस्तु नहीं। परन्तु बिना पारख वही भास तेरेसे निकलके तेरेको ही खाय-खायके भ्रमाता है। यही तीनों पदने जीवोंको भ्रमा रखा है। यानी उसी त्रिपदको मान-मानके वा मना-मनाके नर-जीव एक-दूसरेको भ्रमा रहे हैं ॥४२३॥

१५. आवागवनको कारण भाई! तत्त्वमसि पद तीन बताई॥४२४॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे भाई शिष्य! प्रश्न ४ के उत्तरमें मैंने पहिले ही तुम्हें बता दिया था किः—

दोहाः— "तत्त्वमसि पद तीन सो, आवागवनको मूल ॥
(१०) सो भासो पद जीवको, सहै घनेरी शूल ॥"

उस वक्त तुम्हें बराबर समझनेमें आया नहीं; तो अब अच्छी

तरहसे समझो कि—"तत्त्वमसि" त्वंपद, तत्पद, और असिपद; अज्ञान, ज्ञान, और विज्ञान; काल, सन्धि, और झाँईं; इन तीनों पदोंके मानन्दी, भास, जड़ाध्यास यही जीवोंको आवागमन = जन्म, मरण, गर्भवास चौरासी योनियोंमें ले जानेका मुख्य कारण हैं। उन्हींकी भावना, वासना, आसक्तिसे जीव भव-बन्धनोंमें पड़े रहते हैं, ऐसा तुम जान लो। पारखी सद्गुरुने यही सत्य निर्णयका उपदेश बताये हैं। सो उन तीनों पदोंका विस्तार तुम्हें मैंने पहिले ही बता चुका हूँ ॥ ४२४ ॥

१६. तुम जिन इनको मानहु लेखा। तीनों त्यागो करो विवेका॥४२५॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— हे शिष्य! अब तुम पारख विवेक करके जड़-चैतन्य, सत्य-असत्य, सार-असार, इसका छानबीन करो, तीनों पदोंकी मानन्दीको सर्वथा परित्याग करो। अपने सत्पद के भूमिकामें उन तीनों पदकी लेखा-जोखा कुछ मत करो। यानी उसको किसी सच्ची गिनतीमें मत गिनो, वह कोई सत्य वस्तु नहीं। मिथ्या मानन्दी जीवके भासमात्र है। अतएव तत्त्वमसिके मानन्दीमें तुम लक्ष मत लगाओ, अपने स्वरूप करके उसे गिनो मत। उन तीनोंकी मानन्दी परित्याग करके तुम सत्य स्वरूपमें स्थिर हो रहो। उसके लिये विवेक-विचार करो। कहो सुबुद्धि शिष्य! अब तुम्हें कैसे समझनेमें आया? प्रथम आत्मज्ञानका कथन था, इसलिये "चुपचाप रहि जाय" ऐसा कहा गया था। परन्तु अब वह प्रकरण समाप्त हो गया है, अब ऐसी बात नहीं है। अब तो तुम समय देखके चाहे उतना प्रश्न या शङ्का करके पूछ सकते हो, मैं बोलनेका तुम्हें आज्ञा देता हूँ, बोलो! जो बात समझनेमें न आवे, सो अब खुशीसे पूछ लो! गुरुकी दयासे निजस्वरूप पारखका बोध भी तुम्हें हो जायगा, ऐसा जानो ॥ ४२५ ॥

॥ २६ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक–२६ ॥ खण्ड–५७ ॥

सोरठाः–तुम गुरु दीनदयाल ! मैं अजान जानों नहीं ॥
(८) तीनों पदको टाल । चौथा पद मैं कौन हूँ ? ॥४२६॥

टीकाः—सद्गुरुकी आज्ञा पायके शिष्य सहर्ष सविनय उनतीसवाँ प्रश्न कहने लगा कि— हे सद्गुरो ! आप दीनदयालु हो, दयासागर, करुणामय हो, स्वाभाविक दया आपमें विद्यमान है ! हम सरीखे दीन-गरीब जीवोंके ऊपर आपकी सदा दया दृष्टि बनी ही रहती है। मैं अनजान पारखहीन हूँ। पारखका भेद मैं कुछ अभी जानता नहीं हूँ, अभी जो आपने गूढ़ रहस्य कहा, सो मैंने बराबर समझा नहीं। तत्त्वमसि ये तीनों पदको हटाकर या छोड़ करके फिर चौथा पद मैं कौन हूँ? यह मैं नहीं जानता हूँ। अभीतक तो मैं उसी तीन पदको ही अपना स्वरूप समझे बैठा था, आपके कहनेसे मालूम पड़ा कि—मैं उन त्रिपदसे भिन्न हूँ। परन्तु अभीतक मैं इस बारेमें अनजान हूँ, मैं कौनसा चौथा पद हूँ, यह तो मैं जानता ही नहीं। कृपा करके अब आप ही बताके लखा दीजिये, मैं शरणागत हूँ ! ॥ ४२६ ॥

॥ २६ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर–२६ ॥ खण्ड–५८ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—४३ ॥ चौ० १ से ४ तक है ॥

१ हे शिष्य ! तू तिहुँ पदको भासिक । चौथापद तू परख विलासिक॥४२७

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे जिज्ञासु शिष्य ! त्वंपद, तत्पद और असिपद; ये तीनों पदका तूँ भासिक = जनैया, ज्ञाता, द्रष्टा, वा भास करनेवाला है। और इन तीनों पदोंसे भिन्न चौथा-पदमें तू पारख विलासी है। अर्थात् तत्त्वमस्यादि तीनों पदको जाननेवाला हे शिष्य ! तू तो पारख स्वरूप चैतन्य है। अतएव सत्सङ्गमें विवेकमें ही विलास करके तू पारख स्वरूपमें ही स्थित

रहो। वही तेरा चौथा पद जीवन्मुक्तिकी भूमिका है, ऐसा तू जान ले ॥ ४२७ ॥

२. तत्त्वमसि पद तेरो भासू । तू हंस सदा अजर अविनासू॥४२८॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और तत्त्वमसिमें अज्ञान, ज्ञान, और विज्ञानकी जो तीन पद हैं, सो तो तुम्हारा भास, अध्यास, प्रतिबिम्ब स्वप्नवत् मिथ्या प्रतीति, मानन्दी मात्र है। वह त्रिकालमें भी सत्य हो नहीं सकता है। और तूँ हंस शुद्ध ज्ञानाकार चैतन्य स्वरूप सदा एकरस, अखण्ड रहनेवाला स्वयं प्रत्यक्ष अजर, अमर, अविनाशी है, त्रिकालमें तेरा स्वरूपका कोई भी नाश नहीं कर सकता। नीर-क्षीररूप जड़-चेतन विभेदक हंस जीव तू ही है। सदा तू भाससे पृथक् ही रहता है, ऐसा लखो ॥ ४२८ ॥

३. याको यह प्रमाण है भाई! बिन भासे कछु कह्यो न जाई॥४२९॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:— हे भाई शिष्य ! उसके लिये यह प्रत्यक्ष प्रमाण ही मौजूद है कि—कोई भी चीज भासे बिना, देख, सुन, अनुभव करके जाने बिना तो कुछ भी वर्णन करके कहा नहीं जाता है। जैसे रज्जू-सर्प, मृगजल आदि असत्य हैं, तथापि विपरीत भास तो होता ही है। तभी तो भय, और आशादि वहाँ होते हैं। यदि द्रष्टा–दृश्य एक ही होते, तो फिर उसका कथन करके कहा ही कैसे जाता ? हंस जीव यदि स्वरूपसे जड़–अज्ञान होता, तो किसी पदार्थको न जानता, और मैं अज्ञानी हूँ, ऐसा भी कह नहीं सकता। तथा ईश्वर, ब्रह्म, आत्माके अंश ही जीव होता, तो कभी देहधारी एकदेशी न रहता। जब जीव देहधारी है, तब वह ब्रह्म, आत्मादि एवं उसके अंश भी हो नहीं सकता है। जीव तो अखण्ड-नित्य-सत्य चैतन्यस्वरूप ही है। देह सम्बन्धमें जो-जो भासता है, सो-सो कहता है, और अबोधसे अपनेको भी वैसे ही मान लेता है। अतएव भासे बिना कुछ कहा जाता नहीं, यह

प्रमाणसे सिद्ध है ॥ ४२९ ॥

४. जो तीनों पद मैं बतावा तोहीं। सो तोहिं भास भयो कि नाहीं॥४३०॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और हे शिष्य! प्रथम मैंने त्वंपद, तत्पद और असिपद, यह तीन पदोंका क्रमशः विवरण करके जो तुझे समझाया, तीनोंके सकल भेदको बतलाया गया था, सो तुमको भास हुआ कि नहीं? अर्थात् तीनों पद एक-एक करके तुम्हें जाननेमें आया कि नहीं? यह निष्पक्ष वा तटस्थ होके विवेक करके कहो। मैं तो पारखसे अच्छी तरहसे पहिचानता हूँ। यह तीनों पद तेरा भास है; तू उन तीनोंको जाननेवाला तीनोंसे सदैव न्यारा ही रहता है। तथापि तुम्हारे विचार बताओ, तुमको तीनों पद भास हुआ कि नहीं? सो कहो ॥ ४३० ॥

॥ ३० ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक–३० ॥ खण्ड–५६ ॥

दोहाः—जेहि विधि आप बतायेऊ। समुझेउँ सब गुरुदेव!॥
(४३) तीनों पद मोहिं भासिया। परोक्ष अपरोक्ष सो भेव॥४३१॥

टीकाः—सद्गुरुके पूछनेपर अपना अनुभवको शिष्य तीसवाँ प्रश्नमें बतलाता है। हे सद्गुरु देव! जिस प्रकारसे आपने विधिपूर्वक उपदेश देके मत-मतान्तरोंका भेद बताये हो, सो आपकी कृपासे उसी प्रकारसे मैंने भी लक्षपूर्वक सब समझ लिया हूँ। और परोक्ष, अपरोक्ष दोनों भेदसे तत्त्वमसि यह तीनों पद भी निश्चयसे मुझे भास भया है। आपके कहे मुताविक वैसे ही भास हुआ है। अगर न भासता, तो मैं उन तीन पदोंको समझ-बूझ ही न पाता। इसलिये बराबर भास भया है, जाननेमें आया है। अब हे दयालु! बतलाइये, मैं किसमें कैसे ठहरूँ! निजरूपको कैसे जानूँ? ऐसा शिष्यने पूछा ॥ ४३१ ॥

॥ ३० ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—३० ॥ खण्ड—६० ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—४४ ॥ चौ० १ से ८ तक है ॥

१. अब तू परखि देखु रे भाई ! तीनों पदसे न्यारा रहाई ॥४३२॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे भाई ! जिज्ञासु शिष्य ! मेरे वचनोंमें लक्ष लगा करके अब तूँ ही ठीक तरहसे परीक्षा करके देखले। 'तत्त्वमसि' इन तीन पदको जाननेवाला तूँ उससे न्यारा रहा कि नहीं ? पारख करके देखनेसे तो तुम जनैया त्रिपद-से अवश्य ही न्यारा रहा हो। अर्थात् भावनाकर्ता तूँ त्रिपद, तीन देह, त्रिगुण आदिसे सदैव न्यारा हो बना रहता है; जैसे घट-द्रष्टा, घटसे भिन्न रहता है, तैसे तीन पदके द्रष्टा चैतन्य जीव भी उन तीनोंसे न्यारा ही रहता है, ऐसा तू निश्चयसे जान ले ॥ ४३२ ॥

२. तीनिउ पद जेहि अनुभव भयेऊ। सो अनुभवसे न्यारा रहेऊ॥४३३॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान ये तीनों पद जिसको अनुभव भया, मालूम हुआ, लखने, पहिचाननेमें आया, सो अनुभवकर्ता-ज्ञाता, द्रष्टा-चैतन्य जीव उस अनुभव या अनुभूतसे न्यारा ही हो रहता है। जल-द्रष्टा जलसे जैसे न्यारा ही रहता है, तैसे जनैया हंस जाननेमें आया, उस त्रयपदसे सर्वोदित न्यारा ही बना रहता है। पृथक् हुये बिना तो कुछ भी मालूम हो ही नहीं सकता है। द्रष्टा-दृश्य एक होवे, तो दर्शन होना ही असंभव हो जावे। अतएव अनुभवकर्ता अनुभवसे न्यारा होता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ४३३ ॥

३. तत्त्वमसिको अनुभव कर्ता। तत्त्वमसिसे न्यारा वर्ता ॥४३४॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—इसी प्रकार तत्त्वमसि इस महावाक्य-का अनुभव करनेवाला चैतन्य जीव उस तत्पद, त्वंपद, असिपदसे

हमेशा न्यारा होके ही बर्तता है। अर्थात् जिसने त्रिपद्का अनुमान, कल्पना किया, उसे भिन्न-भिन्न रूपसे माना, उसके गुण-लक्षणादिकका पहिचान किया। कहीं अज्ञानी-अल्पज्ञ बना, कहीं ज्ञानी-सर्वज्ञ ईश्वर बना, और कहीं विज्ञानी-ब्रह्म अधिष्ठान बना, व्यापक कथन किया। सो चैतन्य जीव तो एकदेशमें न्यारा होके ही वर्तमान व्यवहार चलाता है। वह कभी किसी तरह भी त्रिपद्के स्वरूप हो सकता नहीं। खाली ऊपरसे मानन्दी भर टिका लेता है॥ ४३४॥

४. जो तुम्हरे अनुभवमें आवा। सोई रूप आपन ठहरावा ॥४३५॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और हे शिष्य! तुम जनैया, साक्षी, हंस जीव पृथक् होते हुये भी बिना पारख जो-जो बात तुम्हारे अनुभवमें जाननेमें आई, सोई-सोई भासको अपना स्वरूप ही तुमने ठहरा लिया, सोई वड़ा भारी भूल धोखामें पड़ा। इसी प्रकार सभी बेपारखी मनुष्य भ्रम-भूलमें पड़े हैं। जैसे अनुभवमें भिन्न आते हुये भी उसीको निजरूप करके तुमने ठहराया। वैसे ही योगी, ज्ञानी, भक्त लोग भी अनुभव भासको ही निजरूप मान-मानके गाफिलीमें पड़े हैं या ऐसे ही भूलमें पड़ जाते हैं। दर्पणमें प्रतिबिम्बको देखके उसे ही निजरूप मानके भूलनेके सरीखी ही त्रिपद्के मानन्दीकी भी भूल है। जो अनुभवमें आया, उसीको तुमने निजरूप ठहराया है, बिना पारख॥ ४३५॥

५. तामें मगन भये तुम भाई! न्यारा मैं ये परख न आई॥ ४३६॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— और हे भाई! तुमने स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, और कैवल्य ये पाँचों देहोंको देखा, फिर उसे ही अपना स्वरूप निश्चय करके देह सम्बन्धमें विषयानन्द, प्रेमानन्द, योगानन्द, ज्ञानानन्द, और ब्रह्मानन्द प्रगट कर उसीमें तुम मगन हो गया। पञ्चदेह, पञ्चकोश, पञ्च आनन्दादि भासमें ही तदाकार गरगाफ हो गये हो। उसीमें भावना टिकाके मस्त हो गये हो। परन्तु

उन सबोंके जनैया मैं उन सबोंसे न्यारा हूँ, और सदा न्यारा ही रहूँगा, यह पारख दृष्टि तुम्हारेमें कुछ भी नहीं आई। इसीसे बिना पारख तुम महान् भ्रम-भूलमें पड़े हो। भासमें मगन होनेसे ही मैं भासिक न्यारा हूँ, यह पारख नहीं आई थी ॥ ४३६ ॥

६. जो भासे सो मोर स्वरूपा। यह बन्धन अँधियारी कूपा ॥ ४३७ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— और हे शिष्य ! स्थूलमें सुन्दर हूँ, मोटा-पतला हूँ, स्त्री-पुरुष हूँ, बाल, युवा, वृद्ध हूँ, रोगी-निरोगी हूँ, राजा-रङ्क हूँ, चार वर्ण, चार आश्रमवाला हूँ इत्यादि मानना। तथा सूक्ष्ममें ध्यानी, तपस्वी, यति, जपी, तीर्थवासी, व्रती हूँ, मानना। ध्यानमें दीखनेवाला कल्पित मूर्ति आदिको निजरूप मानना। कारणमें योगी, सिद्ध बनना, ज्योति-प्रकाश, अनहदनाद, अमृतपान, कमलका सुगन्ध, समाधिकी आनन्दको ही अपना स्वरूप मानना। महाकारणमें ज्ञानी बनना, तुरिया-सहविकल्प समाधिकी भास, अव्यक्त सबल ब्रह्म मानना। और कैवल्यमें निर्विकल्प, निर्गुण व्यापक ब्रह्म बनना, इत्यादि प्रकारसे तत्, त्वं, असि ये तीन पदमें जो-जो भास जीवके सन्मुख खड़ा हुआ, सो उसीको ही मेरा स्वरूप है, करके निश्चयसे मान लेना, यही महान् बन्धन, आवर्ण, महा अज्ञान-अँधियारी भ्रम-कूपमें गिर पड़ना है। इसी अध्याससे सब जीव अन्धकाररूप गर्भ-कूपको प्राप्त होते हैं, ऐसा जान लो ॥ ४३७ ॥

७. भिन्न अक्षत अरु जानत नाहीं। मानि-मानि बन्धनके माहीं ॥ ४३८ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—भासिक जीव सर्वदा सब प्रकारके भाससे भिन्न अक्षत = कभी क्षत-विक्षत न होनेवाला अक्षय या अविनाशी है। अजर, अमर, अखण्ड, नित्य, सत्य भी तुम चैतन्य जीव ही हो। तुम कभी जड़ भासरूप ही नहीं हो सकते हो। ऐसे निज स्वरूप सबसे भिन्न द्रष्टामात्र होते हुये भी और ही और तरहसे आपनेको मानते हो। नाना प्रकारके मानन्दी कर-करके या मान-

मानके उलट-पुलटके बन्धनोंके मध्यमें ही जकड़े पड़े हैं। अर्थात् जीव सबका जनैया सबसे भिन्न ही है, और पारख बिना निज स्वरूपको जानता नहीं। इसी कारण अनेक प्रकारकी बाह्य मानन्दीमें लग-लगके कठिन भवबन्धनोंमें ही जकड़े पड़े हैं, सो उसीका अब पारख करो ॥ ४३८ ॥

८. याते आवागवन रहाई। बहुप्रकार दुःख भुगतहु भाई! ॥ ४३९ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई जिज्ञासु! इसी कारणसे आवागमन = आना-जाना, जन्मना-मरना, गर्भवासमें रहके पीड़ित होना, नाना तरहके कष्ट-कलेश, बहुत प्रकारके दुःख, त्रिविध ताप आदि भोगते हो, यों दुःख भोग ही रहे हो। यह सब खानी-वाणीके मानन्दी भावना जड़ाध्यासके कारणसे ही होता है। अतएव उपरोक्त तीनों पदको सकल मानन्दी परित्याग करके निज पारख स्वरूपमें स्थिति कायम करो, तभी यथार्थ रीतिसे मुक्ति होगी, सो जानो। अब तुम्हें क्या समझनेमें नहीं आया? सो कहो? ॥ ४३९ ॥

॥ ३१ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—३१ ॥ खण्ड—६१ ॥

दोहाः—बार-बार बन्दन करौं। हो गुरु! परख प्रवीन ॥
(४४) मोंकहँ भेद बताइये। संशय डारो बीन ॥ ४४० ॥

टीकाः— तब शिष्य एकतीसवाँ प्रश्नमें इस प्रकार कहने लगा कि— हे सद्गुरु देव! मैं आपके पवित्र चरणकमलोंको तथा गुरुपदको बारम्बार शिर झुका-झुकाकरके त्रयबार बन्दनारूप बन्दगी करता हूँ! अब मैंने आपके ही कृपासे जाना कि, आप पारख प्रवीण सच्चे गुरु मुक्तिदाता हो। इसलिये "पल-पल गुरुको बन्दगी, चरण नवाऊँ शीश ॥" यही मेरा सद्भाव है। आप पारख प्रकाशी हो, आपको धन्य-धन्य है! आपने मुझे अपनाकर बन्धनोंके भेद बताये, सो बड़ी कृपा किये। मैं आपका आभारी, कृतज्ञ हूँ। और बाकी रहे हुये सब भेद भी मुझको एक-एक करके बताइये! और संशय = भ्रम, भूल, सन्देह,

दुविधादि, कसर-कचरा-विकार सब भी बीन-बीनके या छान-बीनके निकाल दीजिये। यानी जो-जो कसर है, सो भेद बताके दीखा दीजिये, तो मैं संशयको चुन-बीनके निकाल डालूँगा। फिर सद्गुरुकी दयासे निज स्वरूप स्थितिको प्राप्त हो जाऊँगा, यही मेरी अभिलाषा है ॥ ४४० ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग–४५ ॥ चौ० १ से ४ तक है ॥

१. असिपद् माँहि काह मैं माना ? । वहाँ न मान न सम्भवै ज्ञाना ॥ ४४१ ॥

टीकाः—शिष्य यहाँपर अपना संशय जाहिर करता है कि, हे सद्गुरो ! आपने तत्, त्वं, असि ये तीनों पदोंको मानन्दी और बन्धन-रूप बतलाया है। उसे मैंने अच्छी तरहसे सोच-विचार लिया है। तहाँ तत्, त्वं, में तो कुछ मानन्दी जरूर दिखाई देता है, परन्तु तीसरा असिपद् ब्रह्म निर्विकल्प स्थितिमें मुझे तो कुछ भी मानन्दी दिखाई नहीं देता है। भला ! बतलाइये तो जहाँपर जीव-ईश्वरकी भी एकता हो गई, दोनों पद मिट-मिटा गया, उस असि पदमें मैंने क्या माना ? वहाँपर तो मान = जगत्की, अमान = ईश्वरकी, दोनों ही मानन्दी नहीं; तथा ज्ञान-अज्ञानकी भी सम्भवना नहीं हो सकती। यानी अज्ञान तो वहाँ है नहीं, और ज्ञानका भी वहाँ अभाव रहता है। फिर कैसे वहाँपर कोई मानन्दी रहेगा ? मेरे समझमें तो नहीं आता कि, कैसे असिपदमें मानन्दी भया ? या होता है ? मान, अपमानका भी जहाँ ज्ञान ही नहीं रहता, तो और बातका सम्भव कैसे होवे ? ॥ ४४१ ॥

२. एक दोय जहाँ कछू न बानी । भेद अभेद न तहाँ बखानी ॥ ४४२ ॥

टीकाः—शिष्य कहता है:—और जहाँपर एक = अद्वैत या एक ईश्वरका कथन, दोय = द्वैत या जगत्में जड़-चेतन, सेव्य, सेवक, कारण-कार्य, प्रकृति-पुरुष, इत्यादि दो-दोका विचार भी नहीं रहता। वाणीका लवलेश मात्र भी जहाँपर कुछ रहता नहीं, अवाच्य है।

और भेदाभेद विवर्जित है। इससे स्वजाति, विजाति, स्वगत भेदसे भी वह रहित है, परन्तु तहाँपर तो अभेद भी वर्णन नहीं किया जाता है। एक कहनेपर दूसरा भी साबित होता है और अभेद कहनेपर भेद भी सिद्ध होता है। अतएव असिपदमें तो मुखसे वाणी उच्चारण करके कुछ भी कहा नहीं जा सकता है ॥ ४४२ ॥

३. निर्गुण-सर्गुण नहीं विचारा । नाहिं जहाँ अवस्था चारा ॥ ४४३ ॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और निर्गुण-निराकार शून्यकी तरह भी उसके विचार नहीं होते, तथा सगुण-साकार पृथ्वी-जलादि स्थूलाकारका भी विचार नहीं होता, जहाँपर जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति, और तुरिया ये चार अवस्थाओंका बिलकुल ठहराव नहीं है, इसलिये उसे सगुण-निर्गुण कुछ भी कहते नहीं बनता है। ऐसा अकथनीय परात्पर असिपदकी स्थिति है। उससे बढ़के दूसरा कोई कुछ भी नहीं है ॥ ४४३ ॥

४. तहाँ मानन्दी काह बतावा । जहाँ न मन वाणीको भावा ॥ ४४४ ॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—फिर हे गुरुदेव ! तहाँ अन्तिम ब्रह्म-पदपर कौन-सी मानन्दी आपने बताया है, सो कहिये तो भला ! वहाँ कौन मानन्दी भई, या होती है ? क्योंकि जहाँपर मन, बुद्धि, चित्त, लक्ष, वाणीके भावकी पहुँच तो कुछ भी नहीं है, वा कुछ भाव हो सकता ही नहीं, फिर मानन्दी भी तो कैसे क्या होगा ? मानना तो जाग्रत्, स्वप्न अवस्थामें ही होता है, परन्तु ऊपर कहा जा चुका है कि, असिपद चारों अवस्थाओंसे परे है। मन और वाणीका जरा-सा भावमात्र भी जहाँपर नहीं है, तहाँ भी मानन्दी है, ऐसा कैसे मानना, कैसे बताना ? सब मानन्दी छोड़के होश-हवासको भी उड़ाके तब कहीं ब्रह्म बना जाता है, फिर वहाँ कुछ भी भाव शेष नहीं रहता, वह तो ऐसा विज्ञानपद है। हे प्रभु ! अब आप ही कृपा करके बतलाइये कि, मैंने वहाँ कैसे क्या माना था ? इसीकेवास्ते

तो गुरु करना पड़ता है। यदि मेरी कुछ भूल बाकी है, तो दया करके वह मिटा दीजिये ॥ ४४४ ॥

॥ ३१ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—३१ ॥ खण्ड— ॥ ६२ ॥

दोहाः—हे शिष्य ! परखो नीकि विधि । मैं सब देहुँ बताय ॥
(४५) असिपदका निश्चय तोहीं । केहि विधि परिया आय ॥४४५

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—हे मुमुक्षु शिष्य ! तुम अब अच्छी तरहसे सार-असारको परखो। परीक्षा करनेपर जो सत्य ठहरे, उसे ही मानना उचित है। पक्षपातको तुम बिलकुल ही छोड़ दो, निष्पक्ष होके पारख दृष्टिसे परखो। मैं तुमको विधिपूर्वक सब रहस्य बता देता हूँ। कसर-खोट परखा देता हूँ। तात्पर्य समझके तुम भी उसी प्रकार निर्णय करते जाओ। फिर वस्तु-अवस्तुका बोध होगा। अच्छा, तो यह बताओ कि, मान, ज्ञान, भेदा-भेद, एक, दो आदि कथनसे रहित, सबसे परे माना हुआ जीव, ईश्वर, ब्रह्मकी एकतारूप असिपदका तुम्हें किस प्रकारसे निश्चय हो आया ? यानी ऐसो निश्चय मानन्दी किये बिना तुमने किस तरह, किस आधारसे प्राप्त किया ? अर्थात् असिपद ब्रह्म विज्ञानका पक्का विश्वास तुमको किस विधिसे प्राप्त हुआ ? सो अपना मुख्य अनुभव हमसे बताओ ॥ ४४५ ॥

दोहाः—मन बुद्धि वाणी जहाँ नहीं । निर्गुण सर्गुण नाहिं ॥
(४६) सो तुम कैसे जानिया ? । मोहि कहो समुझाहिं ॥४४६॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और जिसको तुम मन, बुद्धि, वाणीसे परे परात्पर माने हो, तो उसे निश्चय कैसे किया ? क्योंकि जहाँपर मनको पहुँच ही नहीं, सङ्कल्प-विकल्प, मनन करनेमें भी वह आता ही नहीं। तथा आत्माको बुद्धिसे अत्यन्त परे माना है, इससे बुद्धि भो उसे कुछ निश्चय नहीं कर सकती है। और वाणीका

भी वहाँपर गम्य नहीं, अवाच्य-अगम्य कहा है। वह निर्गुण = आकाश भी नहीं, सगुण = पृथ्वी, जल, तेज, और वायु भी नहीं, स्थूलाकार, सूक्ष्माकार, निराकार भी वह नहीं, फिर कहो मिथ्या धोखाके सिवाय और क्या है ? हे शिष्य ! ऐसे लक्षणवाला विलक्षण असिपद ब्रह्मको तुमने जाना, तो कैसे जाना ? सो इशारासे समझाके अब तुम मुझे सच्ची-सच्ची अपने दिलकी बात कहो। जिस प्रकार तुम्हें भास भया है, जिस विधिसे तुमने मानकर पकड़ रखा है, सो खुलासा करके मेरेसे कहो ? फिर मैं उसमेंका कसर-खोट तुम्हें परखाऊँगा। इस प्रकार सद्गुरुने शिष्यके मानन्दीका मूल पकड़ करके काबू किये। तहाँ उसके मानन्दी उसीके मुखसे कहलवायके धोखा परखावेंगे। इसीवास्ते शिष्यसे पूछा गया है, सो जानिये ॥४४६॥

॥ ३२ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक–३२ ॥ खण्ड–६३ ॥

दोहाः—जिमि गूँगा गुड़ खात है। स्वाद न कहै बखान॥
(४७) तेहि प्रकार मोको भया। आतम निश्चय मान ॥४४७॥

टीकाः—सद्गुरुने असिपदका निश्चय तुम्हें जैसा हुआ हो, वैसा कहो, कहके जब पूछते भये, तब उसके प्रत्युत्तरमें शिष्यने बत्तीसवाँ प्रश्नमें इस प्रकार अपना अनुभव कह सुनाया कि, हे प्रभो ! आप तो सब रहस्यको जानते ही हो, तथापि मेरे हितके लिये निर्णय करनेको जो आपने सवाल रखे हैं, सो मैं भी अपना निश्चय आपके समक्ष पेश कर देता हूँ ! जैसे कोई गूँगा पुरुषको गुड़ खिलाया गया, फिर उससे स्वाद पूछा गया, तहाँ वह गूँगा आदमी गुड़, शक्कर वा मिश्री आदि मिलनेपर खानेको तो मजेमें खा लेता है, परन्तु पूछनेपर वह किसी प्रकार भी स्वाद वर्णन नहीं कर सकता है। क्योंकि उसमें वाणीका अभाव है, खाली स्वाद ही मात्र जान सकता है, बता नहीं सकता है। उसी प्रकारसे यहाँ मेरी भी वैसी ही हाल परिस्थिति है। पूर्वमें साधन चतुष्टय सम्पन्न होकरके परिपूर्ण आत्मा ही ज्योंका-

त्यों सत्य है, ऐसा निश्चय करके मैंने मान लिया है, बस उसी आत्मानुभवमें मैं सदा मगन हो रहता हूँ। गूँगेके गुड़ स्वादवत् मुझे भी आत्मज्ञानके निश्चयसे परमानन्दका स्वाद अनुभव भया है, सो आत्म निश्चयका स्वाद कुछ वाणी द्वारा कहनेमें नहीं आता। वह अनुभवगम्य है, यही आत्मज्ञानियोंका निश्चय है। उस बारेमें इससे अधिक और मैं कुछ भी नहीं कह सकता हूँ, सो लक्षणासे जानिये ॥ ४४७ ॥

॥ ३२ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—३२ ॥ खण्ड—६४ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—४६ ॥ चौ० १ से ८ तक हैं ॥

१. हे शिष्य ! तुम भल मोहिं सुनाई। जेहि प्रकार तोहि भास्यो भाई! ॥४४८

टीका:—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:— हे प्रेमी शिष्य! शाबास! निष्कपट होनेसे तुम सच्चे मुमुक्षु हो! हे भाई! ब्रह्मभावनाका दृढ़ निश्चय करनेसे जिस प्रकार तुमको भास खड़ा भया, जैसा प्रतीति भया, सो अनुभव वार्ता तुमने मुझे अच्छी तरहसे कहके सुनाया। मैं समझ गया, ठीक वैसे ही तुम्हें भी भास हुआ है। अथवा हे शिष्य! तुम अच्छे भले विचारके सुपात्र दिखाई देते हो। असिपदका अनुभव तुमने भलीभाँति कहके मुझे सुनाया, तुम्हारी सच्चाई देखके मैं प्रसन्न हुआ हूँ! हे भाई! जिस प्रकारसे अनुभव तुमको भास भया, भावना दृढ़ हुई है, सो उसी प्रकार सब ब्रह्मज्ञानियोंको भी निश्चय हुई और होती है, सो वाणीका ही निश्चय है, ऐसा जानो ॥ ४४८ ॥

२. जिमि गूँगा गुड़ खाय अघाई। सकल स्वाद वह जानै भाई! ॥४४९

टीका:—सद्गुरु कहते हैं:— परन्तु सोई धोखेका भास है। अब उसपर पारखी सद्गुरुके सत्य निर्णय न्यायका विचार कहता हूँ! ध्यानपूर्वक सुनो! दृष्टान्तमें जैसे गूँगा मनुष्यने भर पेट गुड़ खाया, और खाके अघा भी गया, गुड़ खाके तृप्त, सन्तुष्ट भया, तो हे भाई शिष्य!

यहाँपर विचार करो कि—गुड़ खाया हुआ सम्पूर्ण स्वादको वह मूक आदमी जानता है कि नहीं? अवश्य ही जानता रहता है। षट् रस व्यञ्जन जो कुछ भी खायेगा, उन सकलकी भी स्वाद गूँगा मनुष्य जानता ही जाता है। क्योंकि वह षट् रसोंके स्वादोंसे सदा पृथक् रहिके ही स्वाद लेता रहता है। तैसे ही आत्मानुभवी ज्ञानी ब्रह्मानन्दरूप गुड़को खाके तृप्त होता है, तहाँपर भी ध्यान-समाधि, योगसमाधि, ज्ञानसमाधि आदिके आनन्द सुख-स्वादको वे जानते ही रहते हैं, उसीकी भावना किया ही करते हैं। निवृत्ति-प्रवृत्तिका ज्ञान होता ही रहता है ॥ ४४९ ॥

३. पर कछु कहत बने नहिं बानी। तो कहँ स्वाद भयो वह जानी ॥४५०

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— गूँगेने गुड़ खाके स्वादको जान तो लिया, परन्तु वहाँ वाणीका अभाव होनेसे या वैखरीद्वारा व्यक्त करनेको वह असमर्थ वाक्यहीन होनेसे उससे वाणीद्वारा कुछ कहते नहीं बनता है। कहनेको तो वह चाहता है कि, गुड़ बहुत उमदा, बढ़िया मीठा है, ऐसा कह दूँ! ऐसा उमंग उसे होता है; परन्तु कण्ठमें शब्द रुक जानेसे लाचार होके रह जाता है। इससे क्या हुआ? तो क्या वह स्वाद नहीं कहना जानता? ऐसी बात नहीं, वह गूँगा भी है, तो भी स्वादको तो वाचालके समान ही जानता है। इसी तरह निर्विकल्प समाधि, विज्ञानपदके परमानन्दमें पहुँचनेपर सुषुप्ति वत् इन्द्रियोंका लयरूप निवृत्ति अवस्था होती है। जैसे सुषुप्तिमें जगत् व्यवहारका अभाव और अपना भाव बना रहता है। जाग्रत्में भी सो वह स्मृति प्रगट होती है। वैसे ही ब्रह्मानन्दमें भी सुखका भाव तथा दुःखका अभाव प्रतीति रहता है, ज्ञाता-चैतन्य जीव भिन्न ही रहके विज्ञान अनुभवके आनन्दको जानता रहता है। परन्तु लय अवस्था होनेसे उस वक्त वाणीसे कुछ बोलते-कहते नहीं बनता है। तो भी जाग्रत् होनेपर उसी ब्रह्मानन्दका विशेष महत्त्व वर्णन करते ही हैं। उसी प्रकार तुमको भी परमानन्दका अनुभवरूप स्वाद मालूम भया, यह

मैंने तेरे कथनसे जानके समझ लिया है, परन्तु तू उस सुख-स्वादका जनैया तो तब भी भिन्न ही रहा, क्या तुम यह नहीं जानते हो, वा ऐसा मानते नहीं हो? दुराग्रहको छोड़के विवेक करो, तो तुम भी उस रहस्यको अभी जानोगे ॥ ४५० ॥

४. स्वादी सदा स्वादसे न्यारा। अहो शिष्य! तुम करो विचारा ॥४५१

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—अहो, ब्रह्मानुभवी चतुर शिष्य! तुम कैसे जान-बूझके अजान हो रहे हो। सदा-सर्वदा सकल स्वादसे स्वादी जीव तो न्यारा ही हो रहता है। कभी भी स्वादी और स्वाद एक नहीं होते हैं। इसको तुम भलीभाँति विवेक-विचार करो। नाना पकान्नको खाके स्वाद लेनेवाला मनुष्य स्वयं अपना कभी किसी तरह भी पकान्न ही नहीं हो जाता है। यदि ऐसा होता, तो स्वाद ही कैसे लेता? दशों इन्द्रियाँ, अन्तःकरण चतुष्टयद्वारा पञ्च विषयोंका भोक्ता जीव भोग्य विषयोंसे सदैव न्यारा ही रहता है। तद्वत् अनहद नादको सुननेवाला, अमृत रसको चखनेवाला, कमल गंधको सूँघनेवाला, ज्योति-प्रकाशको देखनेवाला और ब्रह्मानन्द आदिके अनुभवसे स्वाद लेनेवाला, जीव सदा उन भासरूप स्वादसे न्यारा द्रष्टा स्वादी होता है। हे शिष्य! तुम तो बुद्धिमान् हो, अब इस बारेमें तटस्थ होके विचार करो, जिससे तुम्हें भी वास्तविकताका बोध होगा ॥ ४५१ ॥

५. तेहि प्रकार असि अनुभववारा। तू अनुभविता सदा निन्यारा ॥४५२॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— हे शिष्य! उक्त दृष्टान्तानुसार उसी प्रकारसे असिपद विज्ञान सच्चिदानन्दघन, परमानन्द तुर्यातीत अवस्थाका अनुभव करनेवाला तू सत्य चैतन्य जीव अनुभविक उस ब्रह्मानन्दादि अनुभव या अनुभूत सूक्ष्म विषयोंसे सदा-सर्वदा निश्चयसे न्यारा ही बना रहता है। त्रिकालमें भी ब्रह्म, आत्मादिके धोखामें तू एक होके मिल नहीं सकता है। अगर तू ही ब्रह्म हो जाता, तो तुझे

फिर भ्रम, दुःख, सुखादिका भास न होता। नित्य मुक्त, नित्य तृप्त माना हुआ ब्रह्म फिर नित्य बन्ध, नित्य अतृप्त, दुःखरूप जगदाकार आप ही कैसे हो गया ? ये तो मिथ्या भ्रममात्र है। माना हुआ असिपद ब्रह्म या आत्मासे तू सर्वदा पृथक् अनुभवकर्ता, द्रष्टा, स्वतः चैतन्य हंसरूप हो, ऐसा समझके भ्रम मानन्दीको परित्याग करो, पारख बोधको ग्रहण करो ॥ ४५२ ॥

६. हे शिष्य ! परखि देख रे भाई ! क्या गूँगा गुड़ ही होय जाई ॥४५३॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे जिज्ञासु शिष्य ! तू यथार्थ विचार करके देख, परीक्षादृष्टिको खोल करके देखो ! हे भाई ! गूँगाने गुड़ खाया, तो वह गूँगा क्या आप स्वयं ही गुड़ हो जाता है ? ऐसा तो कभी नहीं होता है। यदि गूँगा मनुष्य तथा गुड़ दोनों एक ही होते, तो खाता ही कौन ? यानी फिर किसको कौन खा सकता था ? अपने-आपको तो कोई खाता ही नहीं, और खाद्य-पदार्थ ही अपने हो जायें, ऐसा भी कहीं नहीं होता है। इसीवास्ते मैंने कहा कि—क्या गूँगा ही गुड़ हो जाता है ? नहीं, ऐसा कभी नहीं होता है। गूँगा चैतन्य देहधारी जीव अलग ही है, और जड़ बनाया हुआ गुड़ भिन्न ही होता है। तभी गुड़ खाके गूँगा भी स्वाद लेता है। वैसे ही सिद्धान्तमें तूँ चैतन्य जीव और तेरा भास, मानन्दी न्यारा-न्यारा ही होते हैं। परन्तु तूँ ही उस मानन्दीको बीचमें ही पकड़ लेता है, और बद्ध होता है। अपने कर्तव्यमें तूँ आप ही फँसता है ॥ ४५३ ॥

७. तिमि अनुभविता सदा निन्यारा। मानि-मानि लिन्हों शिरभारा ॥४५४

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—"गूँगा गुड़न्याय"— उसी प्रकारसे तत् , त्वं और असि ये तीनों पदके सम्पूर्ण भागको अनुभव करने-वाला तू अनुभविता उन त्रिपदसे सदा-सर्वदा न्यारा ही रहता है। पञ्च-विषय, पञ्चकोश, चारखानी, चारवाणी, पाँच देह, पाँचों अवस्था, पञ्चअभिमान, ब्रह्म, आत्मा, कूटस्थ, सच्चिदानन्द,

परमानन्द, योगानन्दादि सुख, दुःख, कार्य-कारण, व्याप्य-व्यापक, इत्यादि अनुभूत तेरे स्वरूपसे भिन्न हैं। और सदा न्यारा रहके ही तू उन सबका अनुभव करता है। अनुभविक, भासिक, ज्ञाता, द्रष्टा, साक्षी, कर्ता तू सर्वदा अनुभवभाससे न्यारा ही हो रहता है। और उन सबोंको अपना स्वरूप या सुखरूप मान-मानके अर्थात् मानन्दी, दृढ़ता, मोह, आसक्ति, कर-करके तूने जड़ाध्यास-का बोझा अपने शिरपर उठा लिया है। यदि अब भी मुक्ति चाहता है, तो शीघ्र ही उस मानन्दीरूप बोझ या भारको शिरसे उतारके नीचे पटक दे, फेंक दे, तो फिर तू जीते ही मुक्त हो जायगा। अनुभविता जीव सदा न्यारा ही होता है, परन्तु नाना प्रकारके मानन्दीसे भासको ही निजरूप मान-मानके शिरपर भार उठा लिया है और उठा रहा है। इसीसे चौरासी योनिके घनचक्रमें सब जीव पड़े हैं ॥ ४५४ ॥

८. माने सो बन्धन सब भाई ! । ताते जीव बहुत दुःख पाई ॥ ४५५ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— इसवास्ते हे भाई ! शिष्य ! जितने मानन्दी हैं, सो सब जीवको बन्धन हैं। चाहे वह जगत् विषयोंकी हो, चाहे आत्मा या ब्रह्म विषयकी हो, जितने भी भावना करके मानन्दी करोगे, सो सब तुम्हें बन्धन ही दृढ़ होगा। खानी-वाणी, मोटी—झीनीके समस्त मानन्दी भव-बन्धनका मजबूत घेरा है। उसीमें उलट-पुलटके अरुझे रहनेसे—इसी कारण जीवोंने अनादि-कालसे अनेकों देह धारण करके अनेकों जन्म-जन्मान्तरमें बहुत-बहुत दुःख पाये, कष्ट-क्लेश भोगे, आधि, व्याधि, उपाधिके जंजालमें पड़े; दैहिक, दैविक, भौतिक, ये तीनों तापोंको सहन किये; जन्म, मरण, गर्भवासमें असह्य वेदना सहे। इस प्रकार अपनेसे भिन्न कल्पना, भास, अध्यासादि टिकाके मनमाने कर्तव्यमें सब जीव पड़े हैं, इसवास्ते जीवोंने बहुत-बहुत दुःख पाये और उसी प्रकार अभी भी दुःख पा ही रहे हैं। जब पारख करके सब कुछ मानन्दियोंको

छोड़ देओगे, तभी निर्बन्ध-सुखी होके मुक्त होओगे, अब ऐसा यथार्थ जानो। तुमको अब कैसे समझनेमें आया, सो कहो? ॥ ४५५ ॥

॥ ३३ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक— ३३ ॥ खण्ड— ६५ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—४७ ॥ चौ० १ से ४ तक है ॥

१. काह संयोग वियोग कहाई। न्यारा मिला कछु न गोसाँई ॥४५६॥

टीकाः— सद्गुरुके समझा चुकनेपर शिष्य फिर अपने ठसा हुआ आत्मज्ञानके सिद्धान्तका ही परिपुष्टि करके तैंतीसवाँ प्रश्नमें कहता है कि— हे गुरुदेव! जब कि सर्वदेशो आत्मा एक ही है, दूसरा कुछ है ही नहीं, फिर उसमें क्या संयोग = मिलाप; सम्बन्ध होगा, और वियोग = अलगाव, विच्छिन्न भी कैसे कहना? यानी उसमें संयोग-वियोग हो ही नहीं सकता है, फिर कैसे संयोग-वियोगमें कहलायेगा? वह तो एकदेशीका काम है, परन्तु आत्मामें ऐसा हो ही नहीं सकता है। मन, इन्द्रिय विजयी हे स्वामी! इसलिये मुझ आत्मामें न्यारा = सबसे भिन्न तथा मिला = एकमें सना हुआ यह कुछ भी नहीं है। अर्थात् परमतत्त्व आत्मा न्यारा है, वा सबमें मिला हुआ है, ऐसा कुछ भी कह नहीं सकते हैं। फिर उसे उपाधि-विशेषके नामसे तो भी कैसे कहना? इसीसे संयोग-वियोग आत्मामें कहाता नहीं ॥ ४५६ ॥

२. मैं आत्मा जैसेका तैसा। प्रलय अम्बु लघु दीर्घ न कैसा ॥४५७॥

टीकाः— शिष्य कहता है:— और मैं तो जैसेका-तैसा आत्मा हूँ! घटना-बढ़ना मुझमें कभी होता नहीं, मैं अनूपम हूँ! मेरेमें उत्पत्ति-प्रलय भी होती नहीं, पृथ्वी, जलादि पञ्चतत्त्व भी मेरेमें नहीं, छोटा-बड़ा भी मैं नहीं। और महाप्रलयके अम्बु = जलकी राशिके समान महान् स्थूलाकारवाला भी मैं नहीं, तथा ओस बुन्दके समान छोटा-छोटा आकारवाला भी मैं नहीं। फिर मैं ऐसा

हूँ, करके क्या कहना? इसीवास्ते आत्माके लिये जैसाका-तैसा, जहाँका-तहाँ, ज्योंका-त्यों, यह शब्द प्रयोगमें लाया जाता है। और कैसा कहा जाय? लघु = छोटा, दीर्घ = बड़ा, यह कैसा भी वह नहीं। शब्दातीत, भावातीत, निरञ्जन, निर्गुण, निरीह, ऐसा ही मैं आत्मा हूँ! सबका विलय मेरेमें ही हो जाता है। अतः मैं सर्वाधिष्ठान ब्रह्म हूँ, ऐसा शिष्यने कहा ॥ ४५७ ॥

३. एक दोय मोमें कछु नाहीं। व्यापिक व्याप्य कहों अब काहीं ॥४५८॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः— और मुझ आत्मामें एक = अद्वैत तथा दोय = द्वैत भी कुछ नहीं हैं। अथवा एक ईश्वरकर्ता, दो— माया और जीव जगत् है कहना, मेरेमें ये कुछ है ही नहीं। इस कारण व्याप्य = एकदेशी तत्त्व, प्रकृति और व्यापक = सर्वदेशी परमतत्त्व परमेश्वर पुरुष तो भी अब किसको कहना? क्योंकि यह भेद तो आत्मामें है ही नहीं। अतएव द्वैत-अद्वैत, स्थूल-सूक्ष्म, कार्य-कारण, व्याप्य-व्यापक, सेव्य-सेवक, अंश-अंशी, प्रकृति-पुरुष, इत्यादि अब किसको कहाँपर कहूँ? मेरेमें तो ये कुछ है ही नहीं। फिर मैं ऐसे भिन्न-भिन्न नामसे किसको कहूँ? अतएव असिपदमें कुछ कहा जा सकता नहीं ॥ ४५८ ॥

४. मैं चैतन्य सब देश उजारा। ऐसहु कछु कहत बने नहिं सारा ॥४५९॥

टीकाः—शिष्य कहता हैः—और मैं चैतन्य सर्वव्यापक, सर्व-देशोंका प्रकाशी हूँ! मेरे बिना तो सब देश उजाड़, बिरान, सुनशान है। मैं आत्मा ही सबका प्राण हूँ। सबको चैतन्य करनेवाला विश्वका प्रकाशक मैं हूँ। सारांशमें ऐसे भी सार सिद्धान्त निश्चय करके कुछ भी कहते नहीं बनता। इसके बारेमें उपनिषद्में भी कहा हैः—

"यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह ॥"

तैत्तिरीय०। ब्रह्मानन्द वल्ली अ० ४ ॥—अर्थात् आत्मा-मन, बुद्धि, वाणी, इन्द्रियाँ, इत्यादिकोंसे जाना जाता नहीं, और प्राप्त

हो सकता नहीं ॥ अतएव अकथनीय या अवाच्य आत्मा मैं हूँ! इससे आगे और कुछ सार नहीं है। क्योंकि वहाँ कुछ कहते बनता नहीं। इस प्रकारके स्वानुभवमें तल्लीन समरस मैं हो रहा हूँ! अब मेरे लिये कुछ त्याग-ग्रहण करना रहा नहीं। आप सद्गुरुकी कृपासे ही मुझे आत्म-स्थिति मिल गई है, मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। अब आगे कुछ कहा नहीं जाता, ऐसा कहके शिष्य चुप हो गया ॥ ४५९ ॥

॥ ३३ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—३३ ॥ खण्ड—६६ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—४८ ॥ चौ० १ से ३ तक है ॥

१. ऐसेहि भास शिष्य! तोहि भयऊ। बिन भासे कस निश्चय ठयऊ ॥४६०॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—हे शिष्य! जैसा तुमने अभी कहा—आत्माके बारेमें, कुछ कहा जाता नहीं; संयोग, वियोग, न्यारा वा मिलापसे रहित, लघु, दीर्घसे परे, एक—दो, व्याप्य-व्यापक कथनसे रहित है— ऐसे ही मानन्दी भास तुमको दृढ़ हो गया है, उसे मैं पारख दृष्टिसे अच्छी तरह जानता हूँ। वेदान्तकी वाणी सुन-सुनके तुमने उसी प्रकार विश्वास कर लिया है। सो तो तुम्हारा भास है; क्योंकि भासे बिना निश्चय करके तुम कैसे ठहरा सकते कि—आत्मा ऐसा ही है। जो बात जाननेमें नहीं आती, सो कही भी नहीं जाती। जिसके बारेमें उपक्रम बाँधके कुछ विशेषणरूपसे कहा-सुना जाता है, यह आत्मा है, वह नहीं, ऐसा है, वैसा नहीं वा आत्मा सर्वरूप है, ऐसा निश्चयसे ठहराया गया, सो भास होनेपर ही हुआ, या होता है। अर्थात् वैसे ही तुमको भास भया है, जैसा कि तुम कहते हो। अगर भास नहीं भया, ऐसा कहोगे, तो भासे बिना या जाने-बूझे, समझे बिना, आत्मसिद्धान्त-को तुमने कैसे ठहराया, निश्चय भी किस प्रकारसे किया? इस बारेमें लक्ष लगाके सोचो, समझो। मेरी कृपासे तुम्हें आत्मज्ञानका बोध मिला कहते हो, तो मैं उसमें अब कसर बतलाता हूँ। चेत

करके तुम परखते जाओ। जिससे तुम्हें सत्यका बोध होवेगा ॥ ४६० ॥

२. अति सूक्ष्म दृष्टि करि देखो । भास मेटि निज परख विशेखो॥४६१॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— हे चतुर शिष्य ! अब तुम अत्यन्त सूक्ष्म पारख दृष्टि खोल करके अपने मानन्दीकी कसर-खोटको देखो ! फिर उक्त भास, अध्यास, अनुमान, कल्पनादि विकारको मेंट मिटायके यानी भासादिका सत्यानाश करके शुद्ध पारख निजस्वरूप-में ही विशेषरूपसे स्थिति कायम करो । अर्थात् मोटी दृष्टिसे तो तुमको एक आत्मा ही सर्वत्र भास रहा है । स्थूल दृष्टिसे सो धोखा कुछ छूटनेके नहीं। इस कारण अब तुम अपने दृष्टिको अत्यन्त सूक्ष्म या बारीक करो। पारख निर्णयमें लक्ष लगाओ, भास और भासिक भिन्न-भिन्न हैं कि— नहीं, उसे देखो। विशेष पारखमें लक्ष होनेपर भास मिट जायगी, फिर निज पारख स्थितिमें ही ठहराव हो जायगा, सो जानो ॥ ४६१ ॥

३. ज्योंका त्यों परिपूरण जोई । ऐसो भास कौनको होई ? ॥४६२॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः—और हे शिष्य ! खूब सोच-विचारके मेरे सवालका जवाब दो, सो यह कि—ज्योंका-त्यों आत्मा सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है, असन्धि भरा है, ऐसा तुमने देखा, जाना, माना, वा निश्चय किया, तो अब यह बताओ कि— ऐसा भास किसको हुआ ? भास कौन है ? भासिक कौन है ? किसको—कैसे भास होना है ? क्यों होता है ? भास कौनको हुआ ? काहेका हुआ ? चराचरमें परिपूर्ण भरा हुआ परब्रह्म है, ऐसा तुमने जोया वा देखा, तो तुम देखनेवाले द्रष्टा उससे भिन्न हुये कि— नहीं ? फिर तुमने सो दृश्य भास ही रूप अपनेको कैसे माना ? यानी भास किसको हुआ ? सो खुलासा बतलाओ । अब मूक होनेसे काम नहीं चलेगा ॥ ४६२ ॥

॥ ३४ ॥ शिष्य प्रश्न कथन ॥ शब्द दीपक–३४ ॥ खण्ड–६७॥

दोहाः—ज्योंका त्यों ही आतमा । मोंको भासत देव ॥
(४८) मों बिनु भासिक को अहै ? कहो ताहिको भेव ? ॥४६३॥

टीकाः— गुरुकी परीक्षा सूचक सवाल सुन करके शिष्य चौंतीसवाँ प्रश्न विनय पूर्वक कहने लगा कि— हे सद्गुरु देव ! आत्मा ज्योंका-त्यों, जहाँका-तहाँ भरा है, ऐसा मुझको ही भासता है या प्रतीत होता है । और किसको भासेगा ? मेरे बिना और भासिक होगा ही कौन ? मुझे तो अपनेसे भिन्न दूसरा कोई है, ऐसा द्वैत भ्रम नहीं है । इसलिये मैं ही भास-भासिक आत्मा ज्योंका-त्यों आकाशवत् पूर्ण हूँ ! मैं अपने आपको जो जानता, समझता, और मानता हूँ ! इसलिये मैं कहता हूँ कि— मैं आत्मा हूँ ! ब्रह्म हूँ ! और क्या कहूँ ? मेरे बिना भासिक और भी कोई है, ऐसा विश्वास तो मुझे अब होता नहीं । यदि कोई और ही भासिक है, सो वास्तवमें वह सत्य है, तो कृपा करके आपही उसका पूरा भेद दर्शा करके कहिये । फिर मैं उस बारेमें विचार करूँगा कि— क्या कैसा है ? सो दया करके कहिये ॥ ४६३ ॥

॥ ३४ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर–३४ ॥ खण्ड–६८ ॥

सोरठाः–हे शिष्य ! तू है कौन ? । भास काहेते परखहू ॥
(९) कहो यथा विधि तौन ? । जाते आगे सूझि है ॥ ४६४ ॥

टीकाः—शिष्यके भ्रमपूर्ण कथन सुन करके सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— तुम्हारे प्रश्नका पूरा उत्तर तो मैं फिर बादमें बतलाऊँगा । अभी पहिले हे शिष्य ! मैं तुमसे ही कुछ समस्या खुलासा करनेके लिये पूछता हूँ, उसमें जो तुम्हें निश्चय हो, सो कहना । सवाल यह है कि—हे शिष्य ! तू खुद स्वयं स्वरूपसे

कौन है ? तुम बार-बार आत्मा-आत्मा कहता रहता है, तो वह आत्मा क्या चीज है ? कौन-सा वस्तु है ? आत्माको तूने कैसे जाना ? कहाँ-पर जाना ? जो कुछ तुझे भासा, सो भास क्या है ? उस भासको तुम किसद्वारा कैसे जानते हो ? अच्छी तरहसे पहले इन बातोंका पारख करो । और फिर उन सब बातोंका उत्तर यथार्थ विधिपूर्वक जैसा तुम्हें निश्चय हो, वैसा खुलासा करके कहो । जिससे आगे तुम्हें पारखरूपी दिव्यदृष्टिसे सत्यासत्यका मर्म सूझेगा, यानी धोखा दिखाई देगा, सारासारका विवेक होगा । श्रेष्ठ पद अपना स्वरूप कौन है ? यह मालूम पड़ेगा । पहिले तुम मेरे सवालका जवाब दो, फिर मैं तुम्हें कसर-खोट परखाके दिखलाऊँगा । आगे तुम्हें भी प्रत्यक्ष दिखाई देगा, ऐसा जानो ॥ ४६४ ॥

॥ ३५ ॥ शिष्य प्रश्न कथन ॥ शब्द दीपक—३५ ॥ खण्ड—६९॥

दोहाः—जो मेरो अनुभव अहै । सोई मेरो रूप ॥
(४८) सोई मैं अरु जगत सब । और सबै अन्धकूप ॥४६५॥

टीकाः— सद्गुरुके पूछनेपर शिष्यने पैंतीसवाँ प्रश्नमें इस प्रकार अपना, अन्तिम दृढ़ निश्चय बताया कि— हे गुरुदेव ! वैसे तो वह अकथ कहानी है, तथापि मैं अपना पूर्णविश्वासकी बात संक्षेपमें आपको बता देता हूँ ! "मेरा जो अनुभव है, सोई मेरा स्वयं स्वरूप है" तभी तो मैं अनुभव करता हूँ ! नहीं तो कैसे अनुभव कर सकता था ? तो देखिये ! मैं ब्रह्म ज्योतिस्वरूप हूँ ! ध्यानमें मैं महाज्योतिको देखता हूँ ! मैं सच्चिदानन्द हूँ ! समाधिमें निर्विकल्प स्थिति, परमानन्दका अनुभव करता हूँ ! मैं शब्द ब्रह्म भी होनेसे दशनाद अनहदको सुनता हूँ ! मैं रस ब्रह्म हूँ ! तो प्रेमरस-अमृत रसको चाखता हूँ ! इत्यादि प्रकारसे योग, ध्यान, ज्ञान साधनोंद्वारा ब्रह्मानन्द, ज्योतिप्रकाश, अमृत पान, नाद श्रवण, कमल-सुगन्ध ग्रहण, और निर्विकल्प स्थितिकी धारणादि

जो-जो मेरा अनुभव है, या मुझे जो कुछ अनुभूत होते हैं, सोई मेरा अधिष्ठान आत्मस्वरूपकी झाँकी है। ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, परात्पर और निरञ्जन मेरा नाम है। इस बारेमें कहा भी हैः—

"मैं सिरजौं मैं मारौं, मैं जारौं मैं खाँव ॥
जल थल महियाँ रमि रहौं, मोर निरंजन नाँव ॥" बी० र० २१ साखी॥

सोई अनुभव स्वरूप मैं परब्रह्म हूँ और सम्पूर्ण जगत् चराचर विराट स्वरूप भी मैं ही हूँ। मेरा दो रूप है,—एक दृश्य स्थूलाकार विराट संसार और दूसरा अदृश्य आकाशवत् निर्गुण-निराकार परब्रह्म—सो मैं ही हूँ। इस प्रकारसे सर्वविश्व मेरा स्वरूप है। मैं अनुभवगम्य हूँ. सबसे परे हूँ, इससे आगे और सब कथन अन्धकूपकी तरह है। अर्थात् और कुछ भेदभाव करके द्वैत मानना सो अज्ञान-अविद्याजनित भ्रमका ही कूआ या गड्ढा है, उसमें गिर पड़ना है। अतः द्वैत माना जाता नहीं। सारांश—अनुभव ही मेरा निजरूप है, और सर्व जगत् भी मेरे अन्तरभूत है। मैं सर्वाधिष्ठान हूँ! मुझसे परे और कोई कुछ है नहीं। यही मेरा मुख्य दृढ़ निश्चय है। अब आप कहिये मेरी समझसे वेद-वेदान्तका सार कितना अच्छा है—ठीक है न? ॥ ४६५ ॥

॥ ३५ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर–३५ ॥ खण्ड—७० ॥

दोहाः—सब अनुभव तोहि भासिया। तू तो रहा निन्यार ॥
(५०) सो अनुभव तू किमि भयो?। हे शिष्य! करहु विचार॥४६६॥

टीकाः—शिष्यका भ्रमपूर्ण कथन सुन करके सद्गुरु श्रीपूरण-साहेब कहते हैंः— हे शिष्य! तू खाली भावनामें वहता हुआ भ्रम चक्रमें चला मत जा। मेरे वचनको लक्ष देकरके अब सुनो, और हृदयमें गुनो, तब असली भेद तेरे समझनेमें आयेगा। तूने जितनी अनुभूत बातें बताया, सो सब तो अनुभव होकरके तुझे भास हुआ,

जिससे तेरे जाननेमें भी आया कि—यह आनन्द हुआ, यह ज्योति दिखाई दिया, वह अनहद नाद सुनाई दिया, यह अमृतका स्वाद आया, यह कमलका सुगन्ध भया इत्यादि भास तुमको भया, तो उसका जनैया, भासिक तुम तो उस भाससे न्यारे ही हो रहा। यदि न्यारा तू न होता, तो कदापि वह भास ही तुझे न भासता। जनैया हमेशा भिन्न रहता है—तभी कुछ जान सकता है, इसलिये सो अनुभव भास ब्रह्म, आत्मा, जगत्-समष्टि स्वरूप ही तू कैसे भया? यानी भास ही रूप तू कैसे हो जायगा? द्रष्टा स्वयं ही दृश्य भी कैसे बन जायगा? कभी नहीं बन सकता। अतएव हे शिष्य! तू अच्छी तरह विचार करके देख! हठ और पक्षपातको छोड़कर सत्यासत्य का विवेक करो, मेरे कहे अनुसार तुम भी परीक्षा करो, फिर तुम्हें भी भाससे भासिक न्यारा ही मालुम पड़ेगा। जब कि सारे अनुभव तुझे भासा, तो तू उससे पृथक् ही रहा; फिर तू ही वह दृश्य भास अनुभव ही कैसे करके एक भया? तहाँ पारख विचार करो, अपनेको अनुभव भास आदिसे न्यारा जानो, ऐसा भेद खोलके सद्गुरुने दर्शाते भये ॥ ४६६ ॥

॥ ३६ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—३६ ॥ खण्ड—७१ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—४९ ॥ चौ० १ से ७ तक है ॥

१. हे गुरु! तुम हो दीनदयाला। हरहु कठिन मोर उरशाला॥४६७॥

टीकाः—उस तरह सद्गुरुके समझानेपर जिज्ञासु शिष्यने नीचे लिखे अनुसार छत्तीसवाँ प्रश्न कहा कि— हे सद्गुरो! हम सरीखे दीन, हीन, जीवोंके ऊपर दयादृष्टि करनेवाले आप दीनदयालु बन्दीछोर हो! प्रश्नोत्तरके सिलसिलेमें अभी तो मैं बड़ी मुश्किल की दुविधा, संशयमें पड़ गया हूँ। सो मेरे अन्तःकरणमें कठिन आन्दोलन मच रहा है, जिससे मेरा हृदय व्यथित हो रहा है। हे प्रभो! मेरे हृदयमें गड़ा हुआ उस कठिन सन्देह शूलको

भी अब कृपा करके हरणकर दीजिये, मिटा दीजिये, यही विनय है ॥ ४६७ ॥

२. मैं हौं कौन मोहिं नहिं जानत । अनुभव भास सोई मैं मानत ॥ ४६८॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः— वास्तवमें मैं कौन हूँ ? क्या हूँ ? कहाँ हूँ ? सो अपने आपको मैं अभी ठीक तरहसे जानता नहीं हूँ । मैं हूँ, यह तो मालूम पड़ता है, परन्तु कौन वस्तु हूँ, सो तो मैं जानता नहीं हूँ, इसलिये जो-जो अनुभव मुझे भासता है, सोई-सोईको मैं अपना स्वरूप निश्चय करके ही मान लेता हूँ । इसीसे आत्मा, ब्रह्म, ज्योति आदि अनुभूत भासको ही निजस्वरूप समझके मान लेता हूँ । उसके सिवाय मुझे दूसरा रास्ता सूझता ही नहीं था, अतः जो देखा उसीको अपना स्वरूप मान लिया था ॥ ४६८ ॥

३. तुम जो कहा अनुभवते न्यारा । सो मैं आपन कीन्ह विचारा ॥ ४६९॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः— और हे गुरुदेव ! आपने पर्खा करके जो कहा कि—अनुभवसे तू न्यारा है, सो मैंने भी अपने हृदयमें अच्छी तरहसे विवेक-विचार करके देख लिया, तो आपका वचन सोलहों आना सत्य पाया गया । सो मैंने अपनेको और अनुभवको दोनों तरफ ठीकसे विचार किया, तो अपनेको अनुभवसे भिन्न ही पाया । आपने जो कहा सो यथार्थतः सत्य है ॥ ४६९ ॥

४. मैं अनुभविता न्यार गोसाँई ! कौन आहुँ ये नाहिं लखाई ॥ ४७० ॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः— और मन-इन्द्रिय विजई हे स्वामी ! मैं अनुभविता = अनुभविक, अनुभवकर्ता, सम्पूर्ण अनुभव भासादिसे न्यारा हूँ । यह तो आपके दयासे अब ठीकसे समझनेमें आया, परन्तु मैं ऐसा कौन वस्तु हूँ ? मेरा स्वरूप क्या है ? यह मुझे अभी लखनेमें नहीं आया है । इसीसे मैं बड़े उधेड़बुनमें पड़ा हुआ हूँ । मैं कौन हूँ ? यह तो लखाता ही नहीं । अब कहिये फिर निजस्वरूपका ज्ञान मुझे कैसे हो ? ॥ ४७० ॥

५. जौन दिसे सो दूसर होई । निज स्वरूप किमि जानब सोई ॥ ४७१ ॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः— और गुरु विचारसे मुझे ऐसा बोध होता है कि, जौन-जौन पदार्थ वा दृश्यभास दिखाई देता है, सो तो देखनेवालेसे भिन्न दूसरा ही होता है । द्रष्टा अलग, और दृश्य अलग दोनों भिन्न-भिन्न होते हैं, फिर सो उसी दृश्यभासको निजस्वरूप करके कैसे जानना ? या कैसे जानूँ ? वा मानूँ ? ऐसी अवस्थामें मेरा यह स्वरूप है, करके ठहरा कर कैसे जानूँ ? फिर स्वरूपको कैसे मानूँ ? कुछ भी निश्चय होता ही नहीं ॥ ४७१ ॥

६. निजस्वरूप करि मानों सोको । तब वह भास परत है मोको ॥ ४७२ ॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः— और जब मैं उसी अनुभवको ही निज स्वयंस्वरूप निश्चय करके मान लेता हूँ । तब वह भी मुझे प्रत्यक्ष ही भास सन्मुख पड़ता है, या दिखाई देता है । जबतक मैं उसे निजस्वरूप नहीं मानता, तबतक वह अनुभूत दृश्य भी मुझे दिखाई नहीं देता । हैरान होके जब निजस्वरूप ही करके उसको मैं मान लेता हूँ, तब बराबर भास सन्मुख आ पड़ता है । अतएव मैं भी ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, परमानन्दादिको अपना स्वयं स्वरूप ही निश्चय करके मानता रहता हूँ । इस प्रकार वह दृढ़ होके परिपुष्ट हो रहा है ॥ ४७२ ॥

७. काहेते भासे सो नहिं जानों । ताते अनुभव सत्य करि मानों ॥४७३॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः— परन्तु सो क्या वस्तु है ? क्यों भासता है ? कैसे भासता है ? किसलिये भासता है ? वह भास होनेका कारण क्या है ? सो गूढ़ बात तो अगम्य ही है । क्योंकि उसका पूर्णभेद तो मैं जानता ही नहीं हूँ । इसीवास्ते सब तर्क-वितर्कको छोड़ कर मैं तो निश्चयसे ही आत्मा, ब्रह्मके अनुभवको ही सत्य ठहरा करके मान लेता हूँ । इसके सिवाय मेरेको दूसरा मार्ग

दिखाई देता ही नहीं। तब कहिये ऐसी हालतमें मैं अनुभव भासको ही सत्य न मानूँ, तो क्या कैसा मानूँ? अतएव अनुभवको मैं सब प्रकारसे सत्य मानता हूँ। यह मैंने अपना दृढ़ निश्चय आपको बतला दिया हूँ॥ ४७३॥

दोहाः—तुम सब लायक परम गुरु! हम अजान शिष्य तोर॥

(५१) काहेते भासे कौन मैं?। सोइ बतावहु ठौर॥ ४७४॥

टीकाः— शिष्य अपने प्रश्नका सारांश दोहामें दर्शा करके कहता हैः—परमपूज्य हे सद्गुरुदेव! आप सब प्रकारसे लायक, सर्वश्रेष्ठ, हमारे परमगुरु हो, साधु शिरोमणि हो, और हम आपका शिष्य! अजान-अज्ञान सत्यको न जाननेवाला अबोध हूँ। आप सत्यके परीक्षक, सर्वसुयोग्य हैं, हम अपरीक्षक अयोग्य ही हैं। मैंने कितना भी जाना, तो भी आपके सामने अधूरा, कसर संयुक्त ही हूँ। अतएव हम विनम्र भावसे अब आपसे ही पूछता हूँ कि, मैं वास्तवमें कौन हूँ? मेरा असली स्वरूप क्या है? वह भास ब्रह्म-आत्मादिका क्यों भासता है? कैसे भासता है? वह जो भासता है, सो क्या है? किसलिये भासता है? और मैं भासिक कौन हूँ? सोई सबका यथार्थ भेद बता करके मुख्य स्थिति ठहरावकी भूमिका दया करके बतलाइये, दर्शा दीजिये, यही जिज्ञासा है॥ ४७४॥

॥ ३६॥ सद्गुरु उत्तर॥ वचन भास्कर-३६॥ खण्ड--७२॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—५०॥ चौपाई १ से ५ तक है॥

१. याको झाँईं जानहु भाई! जानि बूझि अचेत कहाई॥ ४७५॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:— हे शिष्य! अभी तुमने जो पूछा हैः— उसका यथार्थ भेद मैं तुम्हें बतला देता हूँ। सो चित्त लगाकर सुनो! हे भाई! तुम चैतन्य सत्य जीव हो, तुम्हारा असली स्वरूप पारख है। और तुम्हें जो अनुभव भास भया, आत्मा-ब्रह्मका

सो इसको झाँई-महागाफिली भ्रम-भूल, धोखा, लय अवस्था, आवागमनका मूल कारण, बीजरूप ही जान लो। जो कि पहिले श्रवण-मननादिसे जान-बूझ, समझ, करके फिर 'अहं ब्रह्मास्मि' कहके या कहलायके अचेत, गरगाफ, बेभान हो जाते हैं। समझ-बूझके आत्माकी भावना करके जो अचेत होते हैं, सोई झाँईका फन्दा कहलाता है, ऐसा जानो ॥ ४७५ ॥

२. या झाँईका परिया ओटा। ताते सत्य भासत सब खोटा ॥ ४७६ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं—और इसी झाँईरूप महा गाफिलीकी ओट = आड़, आवर्ण पर्दामें पड़के जीव जब भूल जाता है, तब इसी-वास्ते सत्य चैतन्य जीवको सब खोटा ही खोटा असत्य भास भी सत्यके समान ही उलटा भासता है या विपरीत मालूम पड़ता है। जैसे मरुभूमिकामें मृगको भ्रम करके ही जल भासता है। तैसे ही विज्ञानका पर्दा पड़नेपर मिथ्या शून्य स्थिति आदि भी सत्य करके भासता है। परन्तु सो खास सत्य नहीं है, भासमात्र ही होनेसे मिथ्या है। तू भासिक हंस ही सत्य है। झाँईके आड़में सत्य भासनेवाला सब अनुभव खोटा-भूल है ॥ ४७६ ॥

३. यामें सुर नर मुनि सब अरुझे। बिन पारख याते नहिं सुरझे ॥ ४७७

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:—परन्तु इस महाभूल रूप झाँई = गाफिलीमें, सुर = देवता कहलानेवाले सत्त्वगुणी मनुष्य, और भक्त लोग, नर = रजोगुणी मध्यम वर्गके मनुष्य, कर्मी लोग और मुनि = मननशील तपस्वी लोग, तमोगुणी मनुष्य, योगी लोग एवं ऋषि, मुनि, उपासक, ज्ञानी, विज्ञानी सब कोई अन्तिममें उसीमें जाके अरुझ गये, फँस गये। निज स्वरूपका यथार्थ गुरु पारख बोध जान पाये बिना इस झाँईके महाजालसे सुरझ नहीं पाये। अर्थात् धोखा, भूलसे छूट नहीं पाये, इसीसे भवबन्धनोंमें ही जकड़े गये, और अभी वैसे ही फँसते जा रहे हैं। पारखी सद्गुरुकी शरण-सत्संग पाये बिना

ब्रह्म-भ्रमसे कोई छूटे नहीं, और छूट भी नहीं सकते हैं। ऐसी यह कठिन फन्दा है। अतः तू उसे परख करके जान ॥ ४७७ ॥

४. यह सुषुप्ति ज्ञान कहाई। जानि बूझि अजान रहाई ॥ ४७८ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे शिष्य ! यह जो जान-बूझ करके अजान, अज्ञानके समान रह जाते हैं। मूढ़के समान ही बर्ताव करने लग जाते हैं। प्रथम विवेक-वैराग्य, मुमुक्षुता और शमादि षट् सम्पत्तियुक्त हो करके भाग, त्याग, लक्षणासे समझ-बूझके एक आत्मा ही सत्य और जगत् असत्य जान जाते हैं। फिर बूझते-बूझते अपनेको सर्वत्र व्यापक आत्मा मान करके सब वृत्तियोंको लय कर निर्विकल्प दशाको धारणकर लेते हैं, यही ज्ञान सुषुप्ति कहलाता है। क्योंकि ज्ञानी लोग जान-बूझके ही शून्यवृत्ति कर लेते हैं, इसीसे वहाँ बेभान रहनेसे एक प्रकारका वह भी सुषुप्ति ही कहा जाता है ॥ ४७८ ॥

५. जाको सब विज्ञान बतावै। ज्ञान सुषुप्ति सोई कहावै ॥ ४७९ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और वेद-वेदान्तके प्रमाणसे जिसको ब्रह्मज्ञानी पण्डित लोग विज्ञान, आनन्दघन, कैवल्य, निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, परमतत्त्व, इत्यादि नामोंसे विशेष महिमा बतलाते हैं, सोई पारखी गुरु निर्णयसे ज्ञानसुषुप्ति, झाँई, महा गाफिली, महा अज्ञान दशा, कहलाता है। क्योंकि वहाँपर शुद्धाशुद्ध सारासार, सत्यासत्य, निर्णय करनेकी बुद्धि-विचार कुछ भी नहीं रहती। गरगाफ सुषुप्तिके समान ही शून्य स्थिति रहती है, और कोई तो पागलके समान हो हो जाते हैं। यह सब ज्ञान साधना करनेके पश्चात् ही होता है, इसीसे उसे 'ज्ञान सुषुप्ति' कहा गया या कहा जाता है, ऐसा तुम जान लो। इस प्रकार तुम हंस जीव हो, तुम्हारा अनुभव तत्त्वोंका भास, तत्त्वोंका प्रकाश, तत्त्वोंका आनन्द, मिथ्या धोखा है, सो तुम्हारा स्वरूप नहीं। तुम्हारा मानन्दी भ्रम भूल है,

वृत्तिलय करनेसे ही वह भास होता है, सोई झाँई है। तुम प्रथमसे वैसे ही मानन्दी दृढ़ कर लेते हो, इसीसे वह भास भी स्वप्नवत् तुम्हारे सन्मुख हो जाता है। तुम द्रष्टा चैतन्य उससे न्यारे ही रहते हो। परन्तु भासको ही निज स्वरूप मान करके भूल जाते हो, गरगाफ हो जाते हो, जान-बूझके अजान हो रहते हो, सो यही ज्ञान सुषुप्ति बन्धनका मूल कारण है। इसे परख करके परित्याग करो, परीक्षा करके सब मर्मोंको समझो। अब तुम्हें क्या पूछना है? सो कहो ॥ ४७९ ॥

॥ ३७ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—३७ ॥ खण्ड ७३ ॥

दोहाः—मैं नहिं जानों भेद कछु । तुम दयाल गुरुदेव ! ॥
(५२) कै प्रकारकी सुषुप्ती ? । मोको कहिये भेव ? ॥४८०॥

टीकाः— सद्गुरुके समझा चुकनेपर फिर शिष्यने शङ्कारूपमें यह तैंतीसवाँ प्रश्न किया कि, हे सद्गुरु देव ! आप तो परम कृपालु, दीन-दयालु हो। सत्यके पूर्ण परीक्षक ज्ञाता हो। आप सबोंका भेद जानते हैं, परन्तु मैं इन सब बातोंका भेद अभी कुछ भी नहीं जानता, इसलिये मैं तो "भेदा-भेद विवर्जित सर्वात्मासमं ब्रह्म" ही बन रहा था, परन्तु आपने उसमें भी भ्रम-भूलका कसर बतलाये हैं। इस कारणसे इन सबोंका सारा भेद जान लेनेकी उत्सुकता जिज्ञासा मुझे चढ़ गई है। अतएव मैं आपसे विनम्र भावसे पूछता हूँ कि—सुषुप्ति सब कितने प्रकारकी होती है? इसका भेद कहके मुझे बतलाइये। क्योंकि मैं तो अभीतक सुषुप्ति एक ही जानता और मानता था। किन्तु अभी आपने ज्ञान सुषुप्तिका कथन किये हैं, इसीसे मुझे भी जाननेकी इच्छा हुई कि, कितने प्रकारकी सुषुप्ति हैं? या होती हैं? सो उसीका भेद समझा करके कहिये, मेरा भ्रम मिटा दीजिये ॥ ४८० ॥

॥ ३७ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर–३७ ॥ खण्ड–७४ ॥

॥ चौपाई–मण्डल भाग–५१ ॥ चौ० १ से १२ तक है ॥

१. द्वै विधि आहि सुषुप्ति विचारा। सोई शिष्य! तुम करु निरुवारा॥४८१

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे शिष्य! उसका भेद भी मैं तुम्हें बतलाता हूँ। चित्त लगाके सुनो। दो प्रकारकी सुषुप्ति हैं या होती हैं। उनके गुण-लक्षणोंका विचार करके तुम निर्णय कर लो। विचार करनेसे तुम्हें भी दो तरहकी सुषुप्ति मालूम पड़ेगी। सोई उन दोनोंके लक्षण मैं तुम्हें अब बतला देता हूँ। हे शिष्य! उसे श्रवण करके तुम भी सारासारका यथार्थ निर्णय करो, और असारको त्यागके सारको ग्रहण करो॥ ४८१ ॥

२. एक अज्ञान सुषुप्ति कहाई। दूसर ज्ञान सुषुप्ति भाई!॥ ४८२॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— पहिले उन दोनोंके नाम सुनो! फिर पीछे गुण-लक्षणकी व्याख्या बतलाऊँगा। एक अज्ञान सुषुप्ति कहलाता है और दूसरा ज्ञान सुषुप्ति कहा जाता है। हे भाई शिष्य! सब साधारण मनुष्योंको भी सहज ही प्राप्त होनेवाला अज्ञान दशामें मस्त सो जाना, संक्षेपमें सोई अज्ञानकी सुषुप्ति है। और योग, ज्ञानादिकी साधनायें करके विशेष भावनाके परिपक्व होनेपर वृत्ति शून्य हो जाना, ज्ञान करके कठिनाईसे प्राप्त होनेवाला सोई ज्ञानकी सुषुप्ति है, ऐसा जानना चाहिये॥ ४८२ ॥

३. गाढ़ मूढ़ जब निद्रा आवै। सो अज्ञान सुषुप्ति कहावै॥४८३॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— अब उसके विस्तारसे स्पष्टीकरण कर देता हूँ! सुनो—निद्रा लगनेपर जब मनुष्य सो जाते हैं, तब गाढ़ी निद्रा आके मूढ़ अवस्था हो जाती है, तब कुछ भी होश-हवास नहीं रहता। "शून्य निर्विकल्पवत् स्थिति होके सर्व स्थूल और सूक्ष्म देहोंके व्यवहारोंकी सूक्ष्म बीजरूप वासना या अध्यास

अन्तःकरणमें रह जाता है। ऐसा बीजरूप अध्यास सोई कारणदेह 'अज्ञान सुषुप्ति' कहलाता है।" तब ज्ञानका अभाव रहता है, ऐसा जानो ॥ ४८३ ॥

४. तत्त्व प्रकृति बिलय होय जाई। सकलों इन्द्री ठौर बिलाई ॥४८४

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और अत्यन्त गाढ़ी निद्रा लग जानेपर पाँचों तत्त्वोंमें पचीसों प्रकृतियाँ, विशेष करके लय या विलय हो जाती हैं। और "अपान वायु गन्धमें मिली, गन्ध पृथ्वी तत्त्वमें समाय रहा। प्राणवायु रसमें मिली, रस जलतत्त्वमें समाय रहा। उदान वायु रूपमें मिली, रूप तेजतत्त्वमें समाय रहा। समान वायु स्पर्शमें मिली, स्पर्श चञ्चल वायुतत्त्वमें समाय रहा। और व्यान वायु शब्दमें मिली, शब्द आकाश तत्त्वरूप समान वायुमें समाय रहा। ऐसे दश भाग हृदयमें बीजरूपसे रहे, तब गाढ़ी निद्रा वा सुषुप्ति अवस्था होती है।" शब्द सहित कर्ण, अपनी गोलकमें लय हुआ, स्पर्श सहित त्वचा निज गोलकमें लय हुई, रूप सहित नेत्र निज गोलकमें लय हुआ, रस सहित जिभ्या निज गोलकमें समायीः और गन्ध सहित नासिका निज गोलकमें लय हुई और पाँचों कर्मेन्द्रियाँ भी अपने-अपने स्थानमें समाये। चित्त, बुद्धि, मन, हंकार, ये चारों भी अन्तःकरणमें बिलाये। इसी प्रकार स्थूल-सूक्ष्म देहोंकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ निज-निज ठौरमें बिलाय जाती हैं।

"यहाँ इन्द्रियोंको विश्रान्ति मिलनेसे देहकी सब थकावट दूर हो जाती है। अकेली श्वासवायु चल रही है, उसमें सर्व स्थूल-सूक्ष्म देहोंके कर्मोंका लय हो रहा है। कोई समय श्वास वायुका घनघोर आवाज होता है या हो रहा है, सोभी खबर उस सोनेवाले मनुष्यों-को नहीं रहती है। शून्य आनन्दमें सबोंका बीज गुप्तरूपसे रहके सर्व जीव अज्ञान दशामें धुन्द पड़े रहते हैं ॥"

इसी तरह पाँच तत्त्व, स्थूल देहकी २५ प्रकृतियाँ, तथा सूक्ष्म-देहकी २५ प्रकृतियाँ, पञ्चप्राण, पञ्च उपप्राण, पञ्चविषय और सकल इन्द्रियाँ जब बिलाय जाती हैं, तब निज-निज ठिकाने, निष्क्रिय, शून्य पड़ी रहती हैं, सोई मूढ़ता, अज्ञान सुषुप्ति है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ४८४ ॥

५. कछु ना खबरि रहि कहै ताता । सुखमें सोय गयो सब राता ॥४८५॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और हे शिष्य ! निद्रा भंग होनेपर नेत्र खुलके जाग्रत् अवस्था हो जाती है, तब वह मनुष्य अन्य निकट सम्बन्धी मनुष्योंसे कहता है कि—हे तात ! तब मुझे निद्रामें कुछ भी खबर या जानकारी नहीं रही । सारी रात मैं सुखमें मस्त होके आनन्दपूर्वक सो गया था । ऐसी गाढ़ी निद्रा लगी थी कि, मैंने स्वप्नतक भी नहीं देखा । बाहर क्या भया ? सो कुछ भी मैंने नहीं जाना, इत्यादि कथन निद्रासे उठनेपर कहता है । जगत् व्यवहारका अभाव और अपना भाव, इतना ही सुषुप्तिकी स्मृति जागृतिमें होती है । सिर्फ सुखाध्यास ही टिका रहता है, ऐसा जानो ॥ ४८५ ॥

६. ये अज्ञान सुषुप्ति बताई । अब सुनु ज्ञान सुषुप्तिको भाई !॥४८६॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे शिष्य ! यह मैंने अज्ञान सुषुप्ति-का लक्षण तुम्हें भलीभाँतिसे बतला दिया हूँ । जो कि— सब अज्ञानी देहधारी जीवोंको स्वयमेव प्राप्त होता ही रहता है । उसे नित्य-प्रलय वा दैनन्दिन प्रलय भी कहा है । क्योंकि रोज ही सुषुप्ति अवस्थामें कारण देहमें स्थूल-सूक्ष्म देहके सारे व्यापार विलय हो जाते हैं और जाग्रत् होनेपर फिर पूर्ववत् कार्य प्रगट होते हैं । इस तरह अज्ञान सुषुप्ति विवरण प्रथम प्रकरण बता चुका हूँ । हे भाई शिष्य ! अब दूसरा प्रकरण ज्ञान सुषुप्तिका भी लक्षण वर्णन करके तुम्हें मैं समझा देता हूँ, सो भी ठीक तरहसे श्रवण करो ! जिससे पूरा भेद तुम्हें मालूम

पड़ जायगा ॥ ४८६ ॥

७. स्थूल सूक्ष्म कारणको जाने। तीनि अवस्था तीन अभिमाने॥४८७॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे जिज्ञासु शिष्य! ज्ञान सुषुप्ति कैसा होता है? उसीके बारेमें मैं यहाँ कह रहा हूँ, सो ध्यान रखना। स्थूलदेह, सूक्ष्मदेह, कारणदेहको महाकारण नामक चतुर्थ देहमें रहके प्रथम उन तीनोंको जानते हैं। तथा जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओंको भी तुरिया अवस्थामें रहके जानते हैं, और विश्व, तैजस, प्राज्ञ, यह तीनों अभिमानोंको भी प्रत्यगात्मा अभिमानमें टिककर पहिचानते हैं। फिर तुरिया अवस्थाकी उत्तरकला विज्ञानदशा, कैवल्यदेह, तुर्यातीत अवस्था, निरंजन अभिमानको धारण कर ज्ञान सुषुप्तिमें पहुँचते हैं ॥ ४८७ ॥

८. सबको जानि बिसारे आपू। जागृति माँहि सुषुप्ति थापू॥४८८॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—और पहिले तो विवेक-विचार करके सबको भिन्न-भिन्न जानते हैं, गुण-दोषोंका भी वर्णन करते हैं, परन्तु पीछेसे अपने आपही सबको बिसारके भुला देते हैं। कुछ भी खबर नहीं रखते। जागृति अवस्थामें ही सुषुप्ति अवस्थावत् शून्य, अचेत-मूढ़ भावना स्थापित कर लेते हैं। उसीमें बाल, पिशाच, उन्मत्त, मूक, और जड़ अजगरवत् ऐसी परमहंस दशा ब्रह्मज्ञानी लोग धारण कर लेते हैं। हम अक्रिय ब्रह्मस्वरूप हैं, ऐसा मानकर विधि-निषेधसे रहित हो, मनमाने पशुवत् अनाचार-अविचारके कर्म, कुकर्म भी कर लेते हैं। महा-गाफिली वा महा अज्ञान दशा वे धारण किये रहते हैं। इस प्रकारसे सबको जान करके फिर आपही भूल भालके विसराय कर होशको उड़ाकर जागृतिमें ही सुषुप्तिको थाप लेते हैं। एक ब्रह्म-भावना करके अन्धाधुन्द गरगाफ हो रहते हैं ॥ ४८८ ॥

९. आपन आप भाव मिटि जाई। ज्ञान सुषुप्ति सोई कहाई॥४८९॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और अपने आप चैतन्य जीवकी

भावना मिटा करके अद्वैत ब्रह्म, आत्माकी भावना दृढ़ कर लेते हैं। फिर अन्तमें तुरियासाक्षीकी भावना भी अपने आपही मिटाके शून्य हो जाती है, अभाव हो जाता है, सोई ज्ञान सुषुप्ति कहलाता है। यानी ज्ञान करते-करते आगे विज्ञानमें पहुँचकर सुषुप्तिमें सरीखी शून्य हो जाती है। अर्थात् मैं हूँ, तूँ है, जगत् है, इत्यादि नानात्त्व भावना मिट जानेपर वहाँ अभेद, भावना रहित हो जाती है। अपने आपकी प्रतीति भी जाती रहती है। एक तरहसे महामूढ़ ही हो जाते हैं। ऐसी विलक्षण अवस्था ही को ज्ञान-सुषुप्ति कहा गया है, सो जानो ॥ ४८९ ॥

१०. जानि बूझि सबको बिसरावै। आपन भाव रहन नहिं पावै ॥४९०॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—और वे विज्ञानी लोग बड़े दुर्बुद्धि धोखा ग्रसित होते हैं। क्योंकि जान-बूझ करके ही ऐसे भूलभुलैयाके घनचक्रमें पड़ जाते हैं। अज्ञानमें भूलनेवालेको तो चेताके जगाकर सुधारा भी जा सकता है। परन्तु जान-बूझके भूल कर ढोंग करने-वालेका तो कभी भी सुधार नहीं हो सकता। इस बारेमें सद्गुरु श्रीकबीर साहेबने बीजकमें कहा है, सो सुनियेः—

"जानि बूझि जो कपट करतु हैं। तेहि अस मन्द न कोई ॥
कहहिं कबीर तेहि मूढ़को। भला कौन विधि होई ॥" बी० शब्द ५८ ॥

—जानते हैं कि, जड़-चैतन्य भिन्न-भिन्न हैं, तो भी कपट करते हैं, एक अद्वैत ब्रह्म कहते और मानते हैं। उसके समान मन्दमति और कोई नहीं है। उस महामूढ़का भला वा कल्याण—मुक्ति किस प्रकार होवे। वे ब्रह्मज्ञानी प्रथम तो वेद-वेदान्तादि ग्रन्थ पढ़के श्रवणादि साधन कर सबको जानते, समझते, बूझते हैं। परन्तु पीछेसे सबको भुलायके बिसराय देते हैं। अपने चैतन्य जीवकी भावना ज्ञान गुण तक भी बाकी नहीं रहने देते। सब होश-हवासको मिट-मिटायके निर्विकल्प, मूर्छावत् स्थिति कर लेते हैं। अपने हैता, स्वरूपकी सच्ची भावना तक भी वहाँ रहने नहीं पाती। बिलकुल अभाव ही

कर लेते हैं। यह सब जान-बूझ करके ही किया जाता है। ज्ञानको छोड़के महाभ्रम-भूलमें पड़के विज्ञानी लोग ऐसे हो जाते हैं ॥ ४९० ॥

११. निज सुख माँझ गयो गफिलाई। सोई ज्ञान सुषुप्ति कहाई ॥४९१॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— और अपनेको सुखस्वरूप आत्मा या ब्रह्म मानकर वृत्तिको लय करते-करते शून्य समाधि या निर्विकल्प स्थितिको प्राप्त होते हैं। होश आनेपर उसीको परमानन्द, ब्रह्मानन्द, महदानन्द, निज ब्रह्मस्वरूपका सुख मान करके फिर भी उसी प्रकार वृत्ति लय करके अपने आपको उसी सुखके मध्यमें मिलाकर तदाकार या तद्रूप होके गफिलाय जाते हैं। इस प्रकारकी गाफिली झाँई जो है, सोई ज्ञान सुषुप्ति कहलाता है। यह सिर्फ ज्ञानी-विज्ञानी लोगोंको ही होता है। सर्वसाधारण लोग यहाँ तक पहुँच सकते नहीं। जगत्में ऐसे परमहंस दशावालेको लोग विज्ञानी, ब्रह्मस्वरूप कहते हैं। सर्वश्रेष्ठ समझ करके मानते हैं, परन्तु वे बेपारखी सत्यज्ञानसे हीन नष्ट-भ्रष्ट, पतित ही होते हैं। व्यर्थ ही मनुष्य जन्मको वे बर्बाद करते हैं। अज्ञानी लोगोंके समान ही वैसे विज्ञानी लोगोंकी भी दुर्गति ही होती है। क्योंकि निजस्वरूपकी जागृति पारख स्थितिको छोड़कर शून्य सुख मध्यमें ही धसके गाफिल हो गये। अर्थात् जड़वत् अचेत महामूढ़ जड़ाध्यासी ही हो जाते हैं। प्रथम जान-बूझके ही यह सब तैयारी किया जाता है, पीछे ऐसे ही वृत्ति भी हो जाती है। अतएव सो ज्ञान सुषुप्ति कहलाता है, ऐसा अब तुम भी जान लो ॥ ४९१ ॥

१२. अजान पनामें जो गफिलाई। सो अज्ञान सुषुप्ति कहाई ॥४९२

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— और कुछ साधना विशेष किये बिना ही आपही अनजान, अज्ञान, अबोधपनमें जो गफिलाते हैं, यानी निद्रा गाढ़ी लग जानेपर गाफिल, अचेत हो जाना, सो अज्ञान सुषुप्ति कहलाता है। यह तो अन्न-जलके नशा देह इन्द्रिय आदिकी

थकावटसे रोज ही सो जानेपर होता ही रहता है। फिर जाग जानेपर मिट भी जाता है। अज्ञान सुषुप्ति अल्पस्थाई या क्षणिक होता है। अथवा मानन्दीरूपसे पञ्चविषय भोगोंमें गाफिल होना, और कर्म, उपासना, योगादि, साधनोंद्वारा वृत्तिको शून्य करना, नशामें चूर होके बेभान पड़े रहना, बुद्धिमें आवर्ण पर्दा पड़ जाना, जीवको गाफिल करनेकी सब कला, वह सब भी सोई अज्ञान दशाके सहायक अज्ञान सुषुप्तिके भीतर ही कहलाते हैं। इस प्रकार अज्ञान सुषुप्तिमें दो भाग है, एक तो जीवमात्रको सहज ही प्राप्त होनेवाला सुषुप्ति अवस्था है। दूसरा कर्म, भक्ति, योग आदिसे पड़नेवाला आवर्ण शून्य आनन्द है! और इससे भिन्न ज्ञान सुषुप्ति ब्रह्मज्ञानी परमहंस विज्ञानी लोगोंको ही प्राप्त होता है। परन्तु यह दोनों भी जीवोंको भव बन्धनोंमें ही अटकानेवाले हैं, अतएव पारख करके उसको त्याग करके जीवन सुधार करना चाहिये। अब तो तुमने दोनों प्रकारके सुषुप्तिका भेद ठीकसे समझा होगा। यदि इसमें और कुछ पूछना चाहते हो, तो पूछ लो! ऐसा कहते भये ॥ ४९२ ॥

॥ ३८ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—३८ ॥ खण्ड—७५ ॥

दोहा—ज्ञान सुषुप्ति तुम कही। मैं समुझेउँ गुरुदेव! ॥

(५३) काह विकार तामें अहै? मोहिं बतावहु भेव ॥४९३॥

टीकाः— सद्गुरुके उत्तरको श्रवण करके फिर शिष्यने अड़तीसवाँ प्रश्नमें इस प्रकार कहा कि— हे सद्गुरु देव! आपने अज्ञान-सुषुप्तिका लक्षण दर्शाकर फिर ज्ञान-सुषुप्तिका भेद भी भलीभाँति बतलाकर कहे हैं, सो मैंने भी अच्छी तरह श्रवण करके सब बात समझ लिया हूँ। ज्ञान साधना करके अन्तमें शून्य सुषुप्तिवत् स्थिति हो जाना, सोई ज्ञान सुषुप्ति है, ऐसा जान लिया हूँ। वह तो अच्छी ही बात है कि— सब उपाधिसे रहित होके निर्विकल्प हो जाना, परमानन्दमें मगन हो रहना, मुझे तो उसमें कुछ दोष दिखाई नहीं

देता है। परन्तु उस ज्ञान सुषुप्तिमें विकार कौनसा है ? या क्या कसर होता है ? सो उसका भेद भी मुझे अच्छी तरहसे बतलाइये। फिर मैं निर्णयसे विचार करके देखूँगा, त्याज्य होगा, तो उसे भी त्याग दूँगा। अब मुझे उसके यथार्थ भेद बतलाइये, उसमें क्या दोष है ? ॥ ४९३ ॥

॥ ३८ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—३८ ॥ खण्ड—७६ ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—५२ ॥ चौ० १ से २० तक है ॥

१. हे शिष्य ! सुनहु यथार्थ विचारा। ज्ञान सुषुप्तिमें सकल विकारा ॥४९४

टीकाः— शिष्यका पूर्वोक्त शंका श्रवण करके उसीका समाधान यहाँपर खुलासा उत्तरमें कहते हैं ! सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:— हे शिष्य ! ज्ञान सुषुप्तिमें सम्पूर्ण विकार भरा पड़ा है। तुम उसे जानते नहीं हो, इसलिये तुम्हारी उल्टी समझ हो रही है। जब भेद जान जाओगे, तब पता लगेगा कि, कितना विकार ज्ञान सुषुप्तिमें भरा है। अब उसका यथार्थ सत्यन्याय निर्णयका पारख विचार मैं तुम्हें बतलाता हूँ ! उसे तुम ध्यान लगा करके सुनो ! और मनमें गुनते भी जाओ। यथार्थ विचार करनेपर ज्ञान सुषुप्तिमेंकी सकल विकार तुमको भी मालूम पड़ जायगा ॥ ४९४ ॥

२. जिमि अज्ञान सुषुप्तिमें ताता !। कछु विकार नजर नहिं आता ॥४९५॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:—प्रथम दृष्टान्तरूपमें अज्ञान सुषुप्तिकी घटनाको ही विचार दृष्टिसे देख लो, फिर उसे भी आसानीसे समझ सकोगे। हे तात ! जिज्ञासु शिष्य ! जैसे गाढ़ी निद्रा लगके होनेवाली अज्ञान सुषुप्तिमें स्थूल दृष्टिसे ताजा विकार, दोष, उपाधि कुछ भी नजरसे देखनेमें नहीं आती है। क्योंकि वहाँ सब कारण बीजरूपसे ही विकार छिपे रहते हैं। इसीसे बाहर देखनेमें तो कुछ नहीं दिखता है, परन्तु भीतरमें ही सारे बीज जमा हो रहते हैं ॥ ४९५ ॥

३. पुनि जागृत स्वप्नादिक भाई ! । यह व्यवहार कहाँते आई ? ॥४९६॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे भाई शिष्य ! तूँ विचार करके देख कि, सुषुप्ति अवस्था यदि निर्विकार शुद्ध होता, तो फिर उलटके जागृति, स्वप्न आदि अन्य अवस्थाएँ होना ही नहीं चाहिये था, परन्तु सो होता है । पुनः जागृति, स्वप्नादिकोंके यह सारा व्यवहार, उपाधि, चञ्चलता आया, तो कहाँसे आया ? उसी सुषुप्तिसे ही प्रस्फुटित होके आया है । इसलिये जागृतादिमें होनेवाले सारे विकार उसीमें लय होके समाये रहते हैं, फिर उपयुक्त समय पाके प्रगट हो आते हैं । ऐसा वह दोनों अवस्थोंके मूल कारण ही बना रहता है ॥ ४९६ ॥

४. जो विकार वहाँ जड़ते खोता । तो जागृत स्वप्नादि ना होता ॥४९७

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— अब विवेक करो, वहाँ सुषुप्ति अवस्थामें जोकि, यदि सम्पूर्ण विकार जड़-मूलसे ही खो जाता, नष्ट, भ्रष्ट होके बीज ही नाश हो जाता, तो कदापि फिर उलटके पूर्ववत् जागृतिका व्यवहार, स्वप्नादिका भास न होता । इसीसे तुम जान सकते हो कि, कारणके बिना कार्य उत्पन्न नहीं हो सकते हैं । वहाँ जड़से विकार ही जो खो जाता, तो जागृति, स्वप्नादि भी कभी न होते । जब स्वप्न और जागृतिके व्यवहारमें विकारकी विशेषता पाई जाती है, तब सुषुप्तिमें विकार नहीं, ऐसे कैसे कहना ? वहाँ अवश्य ही ज्यादा विकार भरा रहता है, ऐसा जानो ॥ ४९७ ॥

५. सो तुम देखु सुषुप्ति माहीं । कछु विकार नाहिं दरशाहीं ॥ ४९८ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे शिष्य ! सो यह बातको तो तुम अपनी दृष्टिसे प्रत्यक्ष ही देखो, या देखते भी हो कि, सुषुप्ति अवस्था-में वैसे तो ऊपरसे कुछ भी कसर, विकार, दोष, देखनेमें नहीं आती, परन्तु गुप्तरूपसे सकल विकार उसीमें ही छिपे रहते हैं । एक प्रकारसे काम-क्रोधादि तन-मनके सब विषय विकार ठहरनेका वह घर ही है । अथवा विकारके खदान ही वह अवस्था है, ऐसा समझ

लो। खानीमें उस चीजकी क्या कमी होती है? नहीं। विवेक दृष्टिसे तुम भी देखो कि, सो अज्ञान सुषुप्तिमें कुछ विकार प्रगटमें न दिखते हुये भी विकारका कारण ही बना रहता है ॥ ४९८ ॥

६. बीजरूप ये सकल रहावै। शाखा पल्लव सबै नशावै ॥ ४९९ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— सो कैसे कि? जैसे 'बीज-वृक्ष न्याय', वृक्षके समक्षमें बीजका स्वरूप अत्यन्त छोटा या बारीक रहता है। परन्तु वैसे ही वृक्ष तैयार होनेका मसाला उसी सूक्ष्म बीजमें बना रहता है। "क्षीणेमूले नैव शाखा न पत्रम्" जड़ कट जानेपर डालियाँ, पत्तियाँ भी कायम नहीं रह सकती हैं, नाश हो जाती हैं। यद्यपि बीजमें शाखा, प्रशाखा, पत्र, पुष्पादि दृष्ट रहते नहीं, तथापि सूक्ष्म, कारणरूपसे वह सब भी बीजमें स्थित रहते हैं। तभी मृत्तिका जलके सम्बन्ध पाके उसमेंसे अंकुर फूट पड़ते हैं, समयमें वृद्धिको प्राप्त होकर शाखा-पत्रादियुक्त हो जाते हैं। तैसे ही बीजरूप सुषुप्ति अवस्थामें ये सम्पूर्ण विकार अंकुररूपसे बने ही रहते हैं। सिर्फ शाखा = जाग्रत् अवस्थाके स्थूल व्यवहार साक्षी भाव और पल्लव = स्वप्न अवस्थाके विषयोंकी सूक्ष्म भासका व्यवहार यह सब नाश होके विलीन हो रहते हैं। कारणमें छिपे रहते हैं ॥ ४९९ ॥

७. ताते फिर-फिर उपजे भाई! फिर-फिर जाय सुषुप्ति समाई ॥ ५०० ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे भाई शिष्य! इसी कारणसे जैसे बीजसे वृक्ष और वृक्षसे अनेकों बीज उलट-पुलटके बारम्बार समय पाके उत्पन्न होते ही रहते हैं और बिगड़ते भी रहते हैं। इसी प्रकार पूर्वके अध्यास वेगसे फिर-फिर उलट-उलटके बराबर स्वप्न और जाग्रत् अवस्था उत्पन्न होते रहते हैं। तब चञ्चलताका बहुत व्यवहार होता रहता है, और शरीर-इन्द्रियादिकी सुस्ती, थकावट, एवं अन्नादि खुराककी उष्णतादिसे फिर-फिर नित्यप्रति आलस्यसे निद्रा गाढ़ी लग जानेसे स्थूल-सूक्ष्मादिका सकल कार्य सुषुप्ति

अवस्थामें जाके समा जाता है, यानी कारणमें लय होके शून्य हो जाता है। इस तरह बारम्बार जागृति, स्वप्न लय होके सुषुप्ति होकर फिर उलटके जाग्रत्-स्वप्नादि उत्पन्न एवं विलय होते रहते हैं। यह मैंने तुम्हें प्रथम अज्ञान सुषुप्तिके कसर विवरण करके सुना दिया है, सो जानो ॥ ५०० ॥

८. तेहि प्रकार तोहिं नजर न आवै। ज्ञान सुषुप्ति सोई कहावै ॥५०१॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे शिष्य! अब द्वितीय भागमें ज्ञान सुषुप्तिके विवरण कहता हूँ! सो इसे भी ध्यान लगाके सुनो। जिस प्रकार गाढ़-मूढ़ निद्रामें बेभान, अचेत रहता है। उसी प्रकार झाँईंमें भी तुझे ऊपरसे तो कुछ नजर नहीं आता है। मोटी दृष्टिसे तो वहाँ कुछ भी विकार तुम्हें दिखाई नहीं देगा, परन्तु जब बारीकीसे गुरुनिर्णयद्वारा देखोगे, तब तो सम्पूर्ण विकार उसीमेंसे निकलता हुआ दिखाई देगा। विज्ञानपदकी धारणा, ब्रह्म झाँईंकी गाफिली, सोई यहाँ ज्ञान सुषुप्ति कहलाता है। जान-बूझके गाफिल होना, सो ज्ञानियोंकी ज्ञान सुषुप्ति कहा जाता है। अर्थात् अज्ञान करके होनेवाला शून्य सुषुप्तिके समान ही स्थिति ज्ञान-सुषुप्तिमें भी प्रगट होते हैं। बिना पारख तुझे उसमें दोष नजर नहीं आता है, तो श्रवण करो, मैं उसमें कसर बतला देता हूँ ॥ ५०१ ॥

९. तामें कछु न दिखै विकारा। फिर कहाँते प्रगट भयो जगसारा? ॥५०२

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और उस विज्ञानपद झाँईंरूप ज्ञान सुषुप्तिमें स्थूल दृष्टिसे कुछ विकार दिखता नहीं, इसलिये तुम उसे निर्विकार ठहराके मान लोगे, तो यह तुम्हारी सरासर भूल होगी। क्योंकि यदि उसमें विकार न होता, तो यह सारा विकारमय जगत् कहाँसे प्रगट भया है? यद्यपि जगत् जड़-चैतन्य, स्वतः सिद्ध अनादि वस्तु है, तथापि वेदान्ति ब्रह्मज्ञानी भ्रमिक लोगोंने चराचर जगत्की उत्पत्ति उसी ब्रह्मकी इच्छामात्रसे माने हैं। अतएव पूर्वपक्षीके मत खण्डन करनेके वास्ते उन्हींके मन्तव्यसे यहाँपर कहा गया है,

ऐसा जानना चाहिये। अच्छा ! तुमहीं बताओ ! फिर यह सम्पूर्ण जगत् कहाँसे प्रगट हुआ ? यदि अनादि कहोगे, तो कारण ब्रह्म माना हुआ ही नास्ति हो जायगा। यदि ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति बताओगे, तो ब्रह्म ही सारा विकारका मूल ठहर जायगा ॥ ५०२ ॥

१०. सकल विकार ब्रह्ममें होई । बीज स्वरूपी रहत समोई ॥५०३॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— क्योंकि वेद-प्रमाणसे भी यह सिद्ध है कि— जगत्के सम्पूर्ण विकार उसी ब्रह्मसे ही उत्पन्न हुआ है, उसीमें रहता है, उसे सर्वाधिष्ठान कहते हैं। इसीसे सकल विकार ब्रह्ममें ही होता है। "सर्वरूप जग रहा समाई"— कहा है, इसलिये बीज-कारणस्वरूप होनेसे सब कार्य विकार उसीमें ही समाये रहते हैं। जैसे बीजमें वृक्षके विकार सब सूक्ष्मरूपसे समाये रहता है। तैसे बीजस्वरूपी ब्रह्म होनेसे सारे सृष्टिका विकार, दोष, उपाधि भी उसीमें ही समाये रहते हैं ॥ ५०३ ॥

११. ब्रह्ममें सबै विकार नशावत । तो ये जगत् कहाँते आवत ? ॥५०४

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— हे शिष्य ! तुम अब निष्पक्ष होके विचार करो कि, जिसको सच्चिदानन्दघन ब्रह्म, अद्वैत सर्वव्यापक माने हैं, यदि उस ब्रह्ममें सम्पूर्ण जगत् विकारका विनाश हो जाता, सचमुच निर्विकार, निरामय, निरीह, निरञ्जन होता, तो फिर यह जगत् विकार चारखानी, देह धारणा, जन्म, मरण, गर्भवास आदि दुःख गमनागमन कहाँसे आता? इस बारेमें ब्रह्ममुख वाणी सुनियेः—

साखीः—"मैं सिरजौं मैं मारौं, मैं जारौं मैं खाँव ॥
जलथल महियाँ रमि रहौं, मोर निरञ्जन नाँव ॥" बीजक रमैनी २१ ॥

"मय्येव सकलं जातं मइ सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
मइ सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम् ॥"

कैवल्य उपनिषद् । खण्ड १।१ मन्त्र १९ ॥

— ब्रह्मवेत्ता पुरुष कहते हैं कि— जिससे यह सर्वभूत जगत् मेरेसे उत्पन्न होता है, पालन होता है, और महाप्रलयमें जो मेरेमें ही लय होता है, वही अद्वैत ब्रह्म मैं हूँ ॥

इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी अपने मुखसे खुल्लमखुल्ला सरासर गवाही दे रहे हैं कि, जगत्‌की उत्पत्ति-प्रलयादि ब्रह्मसे होता है। फिर कहो ब्रह्ममें विकार कहाँ नाश हुआ? यदि ब्रह्ममें विकार न होता, तो इच्छा करके जगत्-देहादि बनके आता ही कहाँसे? इसमें विवेक करो ॥ ५०४ ॥

१२. सब विकारका मूल गोसाँई। आपहि आप ब्रह्म कहलाई ॥ ५०५ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— अतएव सकल विकारका मूल, खानी, जड़, कारण, ब्रह्म-परमात्मा ही ठहरता है। इन्द्रिय मनादिके मालिक जीव भ्रम-भूलमे पड़के आप-ही-आप धोखेमें पड़ा, तो स्वयं ब्रह्म कहलाया, झाँईमें पड़ा, गाफिल हुआ, ज्ञान सुषुप्तिमें पहुँचके सब विकारका मूल कारणरूप हो गया। जड़ाध्यासके सब बीजको हृदयमें टिकाया, फिर भवबन्धनोंमें बद्ध होकर आवागमनके चक्रमें गिर पड़ा है ॥ ५०५ ॥

१३. जौन बीज जहवाँ ते होई। तौन वस्तु तहाँ जानहु सोई ॥ ५०६

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— हे शिष्य! जहाँ जिस वृक्षसे जौन तरहका बीज उत्पन्न होता है, उसी बीजमें तौन वस्तु फल-फूल पत्र, डालियाँयुक्त तद्वत् वृक्ष भी स्थित रहता है, सो कारणरूपसे रहता है, ऐसा जानो। तैसे ही संसारमें जहाँ जिस मनुष्यके अन्तःकरणसे ब्रह्म, आत्मादि वासना, भास आदि बीज पुष्ट होते हैं। तौन अध्यासी वस्तुरूप चैतन्य जीव भी अध्यासवश तहाँ जगत्‌में ही ब्रह्म बनके चौरासी योनिके जन्मृति चक्रमें ही पड़े रहते हैं, ऐसा यथार्थ निर्णयसे जानो ॥ ५०६ ॥

१४. बीज बिना नहिं वृक्ष रहाई। वृक्षके बिना बीज कहाँ पाई ॥ ५०७ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— जैसे बीज हुये बिना पृथ्वीमें अंकुर

फूटके वृक्ष होना, टिके रहना, यह हो नहीं सकता है। और अगर वृक्ष ही न होवे, तो भी बीज कहाँसे प्राप्त होगा? इस कारण बीज, वृक्ष दोनोंका उभय सम्बन्ध प्रवाह लगा ही है। यानी बीज बिना वृक्ष नहीं, तथा वृक्ष बिना बीज नहीं। एक दूसरेमें उलट-फेर लगा रहता है। सिर्फ रूपान्तर होके परिणाम मात्र बदलता रहता है, नहीं तो एकत्त्व ही सम्बन्ध रहता है। वृक्षसे बीज उत्पन्न भया, फिर बीजसे भी वृक्ष ही उपजा। बीज है, सो सूक्ष्म, वृक्ष है, सो स्थूल। इसे कारण-कार्यका सम्बन्ध भी कहते हैं। इसी प्रकार सिद्धान्तमें बीजरूप ब्रह्मके विना वृक्षरूप जगत्‌के अस्तित्त्व ही रहता नहीं। और चराचर जगत्‌को छोड़के और कहीं ब्रह्मके प्रतीति प्राप्त होता ही नहीं। क्योंकि जगत्‌का ही तो नाम ब्रह्म है। फिर जगत् वृक्षके बिना वीजरूप ब्रह्म कहाँ फलेगा? कहाँ मिलेगा? जड़-चेतनसे रहित और ब्रह्म मानना, सो धोखाके सिवाय क्या होगा? अतएव ब्रह्म-जगत्‌का तादात्म्य सम्बन्ध ठहरा। इसलिये नाम ब्रह्म, रूप जगत् एक ही वस्तु साबित भया। तहाँ ब्रह्मको कारण और जगत्‌को कार्य माने हैं। क्योंकि जगत्‌के बिना ब्रह्मको और कहीं ढूँढ़ो, तो भी वह नहीं मिलता। अतएव ब्रह्म मिथ्या भ्रम-भूलके अतिरिक्त और कुछ सत्य वस्तु नहीं, ऐसा जानके परख कर उसे त्यागो ॥ ५०७ ॥

१५. तैसा जगमें ब्रह्म विराजै। ब्रह्म बिना जगत् कहाँ छाजै ॥ ५०८ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे जिज्ञासु शिष्य! जैसे बिना बीजके वृक्ष, और बिना वृक्षके बीज रहना, होना, ऐसा पाना असम्भव है। क्योंकि ऐसा हो ही नहीं सकता है। तैसे ही ब्रह्मज्ञानियोंके कथनानुसार इसी चराचर जगत्‌में ही ब्रह्म परिपूर्ण व्यापक होके विराजमान हो रहा है। इस कारण ब्रह्मके बिना विकार संयुक्त जगत् और कहाँपर जाके रहेगा? क्योंकि ब्रह्म न हो, ऐसी कोई जगह खाली ही नहीं। तहाँ कहा भी है, सुनियेः—

"एक अखण्डित ब्रह्म विराजत, नाम जुदो करि विश्व कहावै ॥
एकहि ग्रन्थ पुराण बखानत, एकहि दत्त वशिष्ठ सुनावै ॥
एकहि अर्जुन उद्धव सूँ कहि, कृष्ण कृपा करिके समुझावै ॥
सुन्दर द्वैत कछू मति जानहु, एकहि व्यापक वेद बतावै ॥" सु० वि० २६॥

इस तरह जगत्में ही एकरूप होके ब्रह्म विराज रहा है। ब्रह्मके बिना जगत्की शोभा ही नहीं, फिर बिना ब्रह्मके जगत् कहाँ खड़ा रहेगा? कहाँ टिकेगा? इसलिये ब्रह्म, जगत् अभिन्न है, ऐसे वेदान्तियोंने माने हैं ॥ ५०८ ॥

१६. बीज वृक्षको जैसा लेखा। तैसा ब्रह्म अरु जगत् विवेका ॥ ५०९ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और बीज-वृक्षका जैसा या जिस प्रकारसे लेखा-जोखा, हिसाब व्यवस्था रहता है कि, बीजसे अंकुर फूटके समयान्तरमें वृक्षाकारमें परिणत हो जाना, फिर वृक्षसे अनेकों बीज उत्पन्न होते रहना, और उन बीजोंसे भी तदनुरूप नाना-वृक्ष उत्पन्न होना, तथा बीज फलते रहना, इसी प्रकार अनादिकालसे ही बीज-वृक्षका नित्य सम्बन्ध लगा हुआ है। कहा हैः—

"वृक्ष सु बीजहि बीज सु वृक्षहि, पूत सु बापहि बाप सु पूता ॥
वस्तु विचारत एकहि सुन्दर, तान रु बान तु देखिय सूता ॥" सु० वि० ॥

तैसे ही ब्रह्मज्ञानियोंने वेद-वेदान्तका विवेक करके ब्रह्म और जगत्को एक रूपमें ठहराये हैं। तहाँ बीजरूप कारण ब्रह्म तथा वृक्षरूप कार्य जगत्को माने हैं। व्यष्टि नामसे जगत् बोध होता है, और समष्टि नामसे ब्रह्म माना जाता है, तहाँ कहा हैः—

"ज्यूँ वन एक अनेक भये द्रुम, नाम अनन्तनि जातिहु न्यारी ।
वापि तड़ाग रु कूप नदी सब, है जल एक सु देखु निहारी ॥
पावक एक प्रकाश बहू विधि, दीप चिराग मसालहु बारी ।
सुन्दर ब्रह्म विलास अखण्डित, भेद अभेद कि बुद्धि सु टारी ॥" सु० वि० ॥

दृष्टान्तमें बीज-वृक्षके हिसाबके सरीखी सिद्धान्तमें ब्रह्म-जगत्को एकत्व करके माने हैं। विवेक करके देखो! यही बड़ा भारी भ्रम

धोखा है । क्योंकि, ब्रह्मका साक्षात्कार न होते हुये भी कल्पनासे दृढ़ करके उसे मानकर बिना पारख झाँईमें पड़ जाते हैं ॥ ५०९ ॥

१७. बीज वृक्ष पृथिवीमें लहिये । ब्रह्म जगत आतममें कहिये ॥ ५१० ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और हे शिष्य ! बीज और वृक्ष यह दोनों ही पृथ्वीरूप खेत, बाड़ी-बगीचादि भूमिका या जमीनमें हो प्राप्त होते हैं ! अर्थात् मुख्य करके पृथ्वी तत्त्व हो बीज-वृक्षोंके आधार या अधिष्ठान है । इसीसे पृथ्वीमें ही बीज-वृक्ष टिके रहते हैं, उत्पन्न होके बढ़ते, फलते-फूलते और पृथ्वीमें ही समाये रहते हैं । पृथ्वीको छोड़कर अन्यत्र उनका टिकाव हो सकती नहीं । उसी प्रकार अधिष्ठान आत्मा कूटस्थमें ही ब्रह्म-जगत् आदि नाम-रूप कहलाते हैं । आत्मा भूमिकाके बिना बीज = ब्रह्म, वृक्ष = जगत् अन्यत्र कहीं पर भी ठहर ही नहीं सकते । इसीसे परमात्मा सर्वाधार कहलाता है । जीवात्मा, परमात्मा, विश्वात्मा, सर्वात्मा इत्यादि कई भेद आत्माके माने हैं । परन्तु यहाँपर जीवात्मा स्वयं ही भ्रमिक होकर अपनेको ब्रह्म-जगत्का मूल कारण मान लेता है । "अयमात्मा ब्रह्म" यह आत्मा ही ब्रह्म है । ऐसा वेदमें कहा है । इसलिये ब्रह्म-जगत् दोनों ही सम्मिलित करके एक आत्मा सर्वाधिष्ठान, सर्वव्यापक कहते हैं । और जीव, ईश्वर, ब्रह्म एवं सर्वरूप जगत् भी एक आत्मामें मैं स्वयं अपने आप हूँ । ऐसा कहते या कहलाते हैं, सोई भ्रम कल्पना है ॥ ५१०

१८. ताते मिथ्या है सब भासू । छाड़ि देहु तुम परख प्रकासू ॥ ५११ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— इसवास्ते हे शिष्य ! ऐसी-ऐसी मानन्दी कल्पना किया हुआ सो सब तुम्हारा मिथ्या भास, अध्यास, झूठा अनुमान मात्र है । उससे भिन्न मानन्दी कर्ता तुम जीव ही सत्य हो । अब तो भी गुरु पारखको हृदयमें अपरोक्ष प्रकाश करके उसे परखो । और मिथ्या धोखाको एकदम छोड़ दो । क्योंकि तुम्हारे कल्पनासे ही ब्रह्म-आत्माका भास खड़ा होता है, उसे ही अपना

स्वरूप मानकर तुम बड़ी भूलमें पड़ रहे हो, परन्तु तुम भासिक उस भाससे भिन्न हो। तुम पारख प्रकाश करके उस महा अज्ञान, अन्धकारमय झाँई, ज्ञान सुषुप्तिको परित्याग करो। और द्रष्टाको दृश्यसे हटाकर निज स्व-स्वरूप पारखपदमें स्थित करो ॥ ५११ ॥

१९. ज्ञान अज्ञान सुषुप्ति विचारा। तोर भास तू इनते न्यारा ॥ ५१२ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और हे शिष्य ! प्रथम अज्ञान सुषुप्तिका भेद दृष्टान्तरूपमें बतलाकर फिर ज्ञान सुषुप्तिका सिद्धान्त-रूपमें विचार तथा सम्पूर्ण भेद भी मैंने तुमको बतला दिया है, सो ज्ञान, और अज्ञानसे होनेवाला दोनों प्रकारकी सुषुप्ति तेरा भासमात्र है। इन दोनों भाससे तू सर्वदा न्यारा रहता है। तभी तुझे वह भास भी भासता है। हे शिष्य ! तू अपने आपको चैतन्य पारख स्वरूप जान; अखण्ड, नित्य, सत्य, जनैया जीव तू ही है। अब तू उन दोनों सुषुप्तियोंका यथार्थ विचार कर, तुझसे वह न्यारे हैं कि नहीं ? और वह भास, अध्यासादिको परख करके तोड़ डाल, विनाश करके हटा दे, फेंक दे, फिर निजपदमें कायम हो रहो ॥ ५१२ ॥

२०. परखिके त्यागि देहु सब भासा। हे शिष्य ! दुःख सुख मिथ्या आशा॥५१३

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे शिष्य ! और गुरुबोध अपरोक्ष पारख बोधके प्रतापसे सार-असार, सत्य, असत्य, जड़, चैतन्य, ग्राह्य, अग्राह्य, इत्यादि सकलको पहिले तो अच्छी तरहसे पारख करो, उनके भेद, गुण-लक्षणोंको ठीक-ठीकसे पहिचान लो। फिर परख-परख करके सम्पूर्ण विकाररूप ब्रह्म-आत्मा आदिकी मानन्दी तथा भास, अध्यास वगैरहको भी त्याग कर दो। अन्तःकरणसे भासको हटाकर पारख बोधका प्रकाश करो। हे शिष्य ! दुःखमय माना हुआ जगत्की विषयानन्दादिकी आशा, तृष्णा, चाहना, करना यह भी मिथ्या धोखा है, अध्यासको बढ़ानेवाला बन्धनका ही रूप है। और सच्चिदानन्दनघन सुखमय माना हुआ ब्रह्म, परमात्मा, परमा-नन्द प्राप्तिकी आशा, भरोशा किया हुआ, सो भी मिथ्या धोखा ही है।

अर्थात् सुख-दुःखरूप ब्रह्म-जगत्की आशा, भ्रमरूप मिथ्या तमाशा कठिन बन्धनरूप है। अतएव मनको मानन्दी मिथ्या आशा, अध्यास, भास, भूल, इन सबोंको परखकर मेट-मिटाय करके परित्याग कर दो और निज स्वरूपमें शान्त, स्थिर हो रहो ! अब तुम्हें क्या कहना है, सो कहो ? ॥ ५१३ ॥

॥ ३९ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—३९ ॥ खण्ड—७७ ॥

दोहाः—ये सब छोड़ा परखिके। हे गुरु! कृपानिधान! ॥

(५४) मोर रूप फिर क्या रह्यो ?। सो भाखहु परमान ॥ ५१४ ॥

टीकाः— पूर्वोक्त सद्गुरुके उत्तरको श्रवण करके फिर इस प्रकार शिष्यने उनतालीसवाँ प्रश्न कहा कि, हे सद्गुरु देव ! आप तो कृपाके भण्डार, दयाके खानी समान हो। और दयाके समुद्रवत् गहिर-गम्भीर हो! आपके अमृतमय उपदेशको श्रवण करके मैंने विचार भी किया। परन्तु अभी मैंने निज स्वरूपको ठीकसे समझ नहीं सका हूँ। क्योंकि जिस-जिसको मैंने निजस्वरूप करके मान रखा था, उस-उसको आपने मिथ्या भास बतला करके हटा दिये हो। इसीसे मैं दुविधामें पड़ गया हूँ, कि, तत्, त्वं, असि; काल, सन्धि, झाँई; सच्चिदानन्द, ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, ज्योतिप्रकाश, अनहदनाद, महदानन्द, अमृतपान, दिव्य सुगन्ध, ध्यान, धारणा, समाधि, निर्विकल्प स्थिति, और जगत्के पञ्चविषयादि भोग, इत्यादिमें कसर-विकार बतलाकर उन्हें परित्याग कर देनेको आपने कहे हैं। अगर परख करके आपके कहे प्रमाण इन सबोंको छोड़ भी दिया, तो फिर मेरा स्वरूप क्या बाकी रहा? यह भी तो मुझे मालूम होना चाहिये, जिससे निश्चिन्त हो, उन्हें छोड़ते भी बने। हे गुरो! परीक्षा करके मैंने उन सब मानन्दीको अब छोड़ दिया, क्योंकि वे मुझसे भिन्न भासमात्र थे। अब कृपा करके बतलाइये ! मेरा स्वतः स्वरूप फिर क्या शेष रहा ? सो प्रत्यक्ष प्रमाणसे समझा कर कहिये ! वर्णन करिये। अब

तो केवल आपका ही अवलम्ब है। अतः मुझे सत्यज्ञानका बोध कीजिये ॥ ५१४ ॥

॥३९॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—३९ ॥ खण्ड—७८ ॥

दोहाः—काहेते तुम छाड़ेहु। काहेते घर लीन्ह ॥
(५५) ये तो चिह्न बतावहु। तुम शिष्य परख प्रवीन ! ॥५१५॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे जिज्ञासु शिष्य ! तुम बुद्धिमान् हो। अब मैं दो बात तुमसे पूछता हूँ। उसका उत्तर खुलाशा बतलाओ ! फिर तुम्हें समझाऊँगा। भास, अध्यास, अनुमान, और कल्पनाको मानन्दी करके तुमने पहिले किसलिये पकड़ा या धारण किया था? और फिर पीछे किसलिये तुमने उन्हें छोड़ दिया है? अर्थात् भास आदिको किस कारणसे, कैसे, किस तरह, किसद्वारा तुमने परित्याग कर दिया है? और किस कारणसे उसे पकड़ रखा था? प्रथम इसका तो चिह्न = लक्षण, निशानी, पहिचानी, परीक्षा, स्पष्ट करके बतलाओ! फिर पीछेसे हे शिष्य ! तुम स्वयं ही पारख बोधमें प्रवीण = चतुर, जानकार या समझदार हो जाओगे। तुम्हारा स्वरूप बाकी क्या रहा? सो तुम्हें पारखके प्रतापसे स्वयमेव मालूम हो जायगा। इसलिये मानन्दीका त्याग, ग्रहण, किसद्वारा कैसे किया था? सो इसका चिह्न ठीक तरहसे बतलाओ ! जिससे मैं बाकीके भेद बतला दूँगा, फिर हे शिष्य ! तुम भी पारखमें प्रवीण हो जाओगे, तो सकल भ्रमका भी अन्त हो जायगा, सो जानो ॥ ५१५ ॥

॥ ४० ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक—४० ॥ खण्ड—७९ ॥

॥ चौपाई-मण्डल भाग—५३ ॥ चौ० १ से ५ तक है ॥

१. नाजाना तत्त्वमसि बन्धन। ताते अरुझि रह्यों बहु फन्दन ॥ ५१६ ॥

टीकाः— सद्गुरुके परीक्षासूचक प्रश्न श्रवण करके शिष्यने चालीसवाँ प्रश्नमें नीचे लिखे अनुसार निज मन्तव्य वर्णन किया।

हे सद्गुरु प्रभो ! तत्त्वमसिके ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान यह तीनों ही पद हमें बन्धन हैं, ऐसा पूर्णरीतिसे न जानके उसे पकड़ा था। बिना पारख में प्रथम बन्धनोंको जानता-पहिचानता नहीं था, इसवास्ते उन्हें ही अपना स्वरूप मान-मानकरके बहुत कर्म अध्यासको बढ़ायके खानी-वाणीके महाजाल फन्दोंमें मैं अपने ही जा-जाके अरुझ रहा था। स्वयं स्वरूपको भूल करके तत्त्वमस्यादि बन्धनोंको न जानके नानाफन्दोंमें मैं फँसा हुआ था, अज्ञान-अविद्याके कारणसे ही मैं उस जालमें अरुझा हुआ था ॥ ५१६ ॥

२. निज स्वभाव वशि भूल गोसाँई । ताते बन्धन धरेउँ बनाई ॥५१७॥

टीकाः— शिष्य कहता है:— और मन, इन्द्रियादि निग्रही हे सद्गुरु स्वामी ! अपने स्वभाव = आदत, अध्यास, प्रकृतिके वशीभूत होकर ही मैं निजस्व-स्वरूपको भूला था वा भूल रहा था, इसलिये मोटी—झीनी अनेकों बन्धनोंको बनाय-बनायके मैंने दृढ़तासे पकड़ लिया, और उन्हें अपने पास रख छोड़ा था, स्वाभाविक कर्माध्यासवश प्रेरित होके मैं अपने आपको एकदम भूल गया, तभी तो भवबन्धन बनाय-बनायके पकड़ा। इस प्रकार भ्रम-भूलवश मैंने बन्धनोंको ग्रहण किया। जिससे आवागमन, त्रिविध तापमें पड़के असह्य दुःख मैं भोग रहा था, भवचक्रमें पड़ा हुआ, अधीर हो रहा था ॥ ५१७ ॥

३. आप मिले गुरु दिनदयाला ! तीनिउ पद परखायेउ जाला ॥५१८॥

टीकाः— शिष्य कहता है:— और मेरे शुभ संस्कार उदय भये, तो मैं मनुष्य जन्ममें आया; फिर बड़े भाग्य खुले, तो आप दीनदयालु सद्गुरु आन मिले। मेरी सुबुद्धि जागी, जिससे मैं आपकी चरण—कमलोंकी शरणागतको प्राप्त भया। हे प्रभो ! मुझ दीन, हीन, मलीन, छीन, मन्दमति, पर दयादृष्टि करके आपने शरणमें अपना लिये और कठिन बन्धनोंके कारण—त्वंपद, तत्पद, असिपद,

इन तीनों पदोंके जालोंको एक-एक करके आपने सब जाल-जंजालोंको परखा दिये, समझा-बुझा दिये हैं ॥ ५१८ ॥

४. तीनिउ पदकी कसर विकारा। तुम्हरी कृपा भयो निरुवारा ॥५१९॥

टीकाः— शिष्य कहता हैः— इसलिये तत्त्वमसिरूप तीनों पदकी काल, सन्धि, झाँईंकी कसर-खोट, विकार-धोखा, भूल, भ्रम, सारासारकी पहिचान आपकी कृपा—प्रसादसे ही मुझे मालूम भया, और जड़-चैतन्यका निरुवार = भिन्न-भिन्न निर्णय, बिलछान, परीक्षा, आपकी दयासे ही जाननेमें आई। जिससे भ्रम-भूल मिट गई। नहीं तो उसीमें हम नाहक मानन्दी टिका करके खूब जकड़े पड़े थे। जब आपकी दया भई, तो सत्य निर्णयसे गुरुबोधकी पहिचान हुई, और त्रिगुणी फाँसकी विकारोंसे तब जाके छुटकारा मिल गई है ॥ ५१९ ॥

५. अनजाने बन्धन गहि लीन्हा। जानि बूझि त्यागन सब कीन्हा॥५२०

टीकाः— शिष्य कहता हैः— इस प्रकारसे हे गुरुदेव! मुख्यतया कथनका सारांश यही है कि— अनजान–अज्ञान दशामें अविद्याग्रसित होकर पूरा भेद न जाननेसे उल्टी समझसे दुःखको ही सुख मान-मानकर कर्म-कुकर्म करके अध्यास आसक्तिको बढ़ाकर भवबन्धनको जीवने ग्रहण कर लिया, उसे ही पकड़के परिपुष्ट कर लिया, जकड़ गया, बद्ध होके फँस गया; इस तरह अनसमझ या अनजान होके ही मैं महाबन्धनोंमें पड़ा था। फिर साधु-गुरुके शरण सत्सङ्गमें आकर विचारमें लगके मुमुक्षु नरजीव गुरुमुख निर्णयसे सत्यासत्यको यथार्थ जान-बूझ समझकर सकल बन्धनोंको परित्याग कर, निजबोध स्वरूपमें ही स्थिर होते हैं। तैसेही आप सद्गुरुके कृपा सत्संगकी सहायता सत्य निर्णयसे यथार्थ गुरु पारखका भेद जानके समझ-बूझकर मानन्दी जनित सकल बन्धनोंको इधर मैंने भी अब त्याग कर दिया हूँ, निर्वन्ध हो गया हूँ। अतएव आपको असंख्य धन्यवाद

है । बेपारखमें जो मुझे बन्धन हुआ था, और पारखबोध होनेपर सो सब बन्धन त्याग हुआ, यही मेरे जाननेमें आया है ॥ ५२० ॥

॥ ४० ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—४० ॥ खण्ड—८० ॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग—५४ ॥ चौ० १— २ मात्र है ॥

१. बन्धन सकल त्याग भौ भाई ! पाछे बाकी काह रहाई ? ॥५२१॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे भाई ! जिज्ञासु शिष्य ! अब तुम स्थिर होके बारीकीसे विचार करो कि— मानन्दी कृत सकल बन्धन तो गुरुबोध पारखके प्रतापसे त्याग हो गया। खानी-वाणीकी भावना, अध्यास, भास, तो कुछ रही नहीं; सब विकार छूटके निर्विकार हो गया। मनके जितने सम्बन्ध थे, सो सब भी विच्छिन्न हो गये । फिर तत्पश्चात् तुम्हारे पासमें बाकी क्या रहा ? वा क्या रहता है ? सब बन्धनोंसे छुटकारा हो जानेपर पीछे कौन-सो चीज अखण्डरूपसे बची रहता है ? उस तरफ लक्ष करो । जड़ और चैतन्यका न्यारा-न्यारा निर्णय करते-करते सम्पूर्ण जड़ भागोंको हटा देनेपर चैतन्य तब किसरूपमें रहता है ? इस बातको समझो । बीचको मानन्दो भ्रम बीचमें ही छूट गई, या छोड़ दिया गया, फिर पीछे बाकी क्या रहती है ? सो विचार करो ॥ ५२१ ॥

२. सो बाकीका करो विचारा । पावो सार शब्द टकसारा ॥५२२॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे शिष्य ! सोई बाकी पदका विचार करो, उसीको निजपद स्वयंस्वरूप जानो । सद्गुरु श्रीकबीर साहेबने "सत्य शब्द टकसार" नामसे प्रख्यात बीजक सद्ग्रन्थमें सारशब्द गुरुमुख वाणीद्वारा सत्यनिर्णयसे उसी सर्वश्रेष्ठ बाकी जमापद, हंसपद-पारखपदका बोध दिये हैं । पारखी साधु गुरुके सत्संगमें उसी सारशब्दका निर्णय जान करके विवेक करो, जिससे तुम भी निजस्वरूपका अपरोक्ष बोध पा जाओगे । अतएव अब तुम तो यही प्रयत्न करो कि— प्रथम सारशब्द टकसार— बीजक, ज्ञानको गुरु-

मुखसे समझ लो। फिर विचार करो, जितने जानने, लखने, परखने- में आते हैं, उन सबोंको निकालते, हटाते जाओ। प्रकृति, इन्द्रियाँ, विषय आदि पञ्चतत्त्वोंमें विभक्त करते जाओ; भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना, त्रिपद, आदिको परीक्षा दृष्टिसे देख-देखके भ्रम धोखाको उड़ा दो। फिर अपने स्वरूप तरफके विचार करो कि— बाकी या शेष क्या रहा? अपना नित्य सत्य, स्वयं स्वरूप ही तो बाकी जमा, अपने आप रहा, वही सब सारका-सार है, उसी पारख बोधको प्राप्त कर लो। कहो अब तुम्हें कैसा मालुम पड़ रहा है? अपना निश्चय प्रगट करके बतलाओ? फिर थोड़ी देरमें ही पारख स्वरूपका तुम्हें बोध हो जायगा, सो जानो ॥ ५२२ ॥

॥ ४१ ॥ शिष्य प्रश्न ॥ शब्द दीपक-४१ ॥ खण्ड-८१ ॥

सोरठा—हे गुरु दीनदयाल! बाकी तो मैं ही रहा॥

(१०) और सकल भ्रम जाल। जानि बूझि त्यागेउँ सकल॥५२३॥

टीकाः— उपरोक्त सद्गुरुके इशाराको पाकरके शिष्यने एकताली- सवाँ प्रश्न ऐसा कहा कि— हे दीनदयालु सद्गुरु देव! आपके शिक्षा मुताबिक विचार करके देखा, तो मुझे यही पक्का निश्चय हो गया कि— आखिरमें मैं चैतन्य जीव ही बाकी बच रहा हूँ! क्योंकि जीव स्वरूपसे अखण्ड, अविनाशी, नित्य, सत्य है, सोई मेरा स्वरूप है। और ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, खुदा, देवी, देवता, भूत, प्रेत, ऋद्धि-सिद्धि, इत्यादि सकल मानन्दी मिथ्या धोखा भ्रमका जाल-जंजाल भवबन्धन हैं। उन्हें तो आपकी सत्य उपदेश गुरु निर्णयसे अपनेसे भिन्न मिथ्या धोखा मानन्दी मात्र असार जान- बूझ, समझ करके निर्णयमें न ठहरनेवाले सम्पूर्ण भ्रम, भूल, भास, अध्यासादिको मैंने परित्याग कर दिया हूँ! तदनन्तर विवेक करके पारख किया, तो मैं ही शुद्ध चैतन्य हंस बाकी या अवशिष्ट जमापद रह गया हूँ। इस प्रकार मैं स्वयं स्वरूपमें स्थित हो गया हूँ, आपकी

दयासे अब चञ्चलताका अन्त हो गया है ॥ ५२३ ॥

॥ ४१ ॥ सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर—४१ ॥ खण्ड ८२ ॥

दोहाः—जाते तीहुँ पद परखिया । परखा सब संसार ॥
(५६) सो पारख ढिग है कि नहीं ? । मो प्रति कहु निरुवार ॥५२४॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:— हे शिष्य ! अभी तुमने ठीक बात कहा । अब मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ ! उसका खुलासा करो, फिर तुम्हें स्वरूप ज्ञानका पारख बोध हो ही गया जानना । अब तुम ठीक रास्तेपर आ गये हो ॥

जिससे या जिसकेद्वारा तुमने-तत्पद, त्वंपद, असिपद—इन तोनों पदोंको परख लिया, यानी परीक्षा करके अच्छी तरहसे त्रिपद-के कसर-खोट-विकारको जान लिया । और सारे संसार जड़-सृष्टिको भी पारख करके जान लिया कि— पाँचों तत्त्व तथा उनके कार्य पदार्थ जड़ विजातीय भिन्न हैं । जड़ और चैतन्य त्रिकालमें कभी भी एक नहीं हो सकते । स्वरूपसे भिन्न-भिन्न हैं, ऐसा तुमने यथार्थ जान ही लिया । और संशय, अनुमान, दुविधा, सन्देह, भ्रम, भूल, धोखा आदि सबोंको भी परख करके तुमने परित्याग कर ही दिया । इस तरह जिसके प्रतापसे तीन पद और सारे संसारको परखा, जाना, समझा, बूझा, निर्णय किया, त्यागा, सो अपरोक्ष निज पारख तुम्हारे ढिग = पासमें मौजूद है कि = अथवा नहीं है ? तुम पारख स्वरूप हो कि— पारखसे भिन्न हो ? सबका परीक्षा तो पारखसे किया, सोई पारख तुममें है कि— नहीं ? अर्थात् ढिग = नजदीक, पास, साथमें सो पारख है कि नहीं ? इसीका यथार्थ सत्य निर्णयसे मेरे प्रति कहो ? तुम्हें क्या निश्चय होता है, सो कहके सुनाओ । यदि तुम्हारे कथन सत्यबोधके होंगे, तो मैं उसे समर्थन या परिपुष्टी कर दूँगा, सो कहो ? ॥ ५२४ ॥

॥४२॥ अन्तिम–शिष्य प्रश्नोत्तर ॥ शब्ददीपक–४२ ॥ खण्ड–८३ ॥

॥ चौपाई–मण्डल भाग–५५ ॥ चौ० १ से ६ तक है ॥

१. पारख मोमें रहि गुरुराई ! मोते नहिं कछु भिन्न देखाई ॥ ५२५ ॥

टीकाः— सद्गुरुके बोध जाँच-परीक्षा प्रश्नका उत्तर अपने दृढ़ निश्चयका कथन इस वक्त शिष्य बयालीसवाँ प्रश्नमें अन्तिमरूपसे कहता है। यहाँपर शिष्यकी सन्देह निवृत्ति, बोध प्राप्ति, स्वरूप स्थिति हो जानेसे प्रश्नकी भी समाप्ति हो जाती है। सद्गुरुके पूछने-पर शिष्यने कहा कि— सर्वश्रेष्ठ हे सद्गुरुदेव ! पारख = ज्ञान, अकिल, समझ, बोध, परीक्षा, सो तो मुझमें ही रह रही है। मुझ चैतन्य स्वरूपसे भिन्न करके कहीं पारख दिखाई देती नहीं। मेरे पारख मेरे पाससे भिन्न हो ही नहीं सकती है। जैसे सूर्य और सूर्यके किरण प्रकाश कहने मात्रको नाम दो हुये, परन्तु वस्तुतः एक ही ठहरते हैं। तैसे ही मैं चैतन्य जीव, और मेरा स्वतः स्वरूप पारख दो नहीं, एक ही वस्तु हैं। पारख मेरा स्वतः नित्य गुण है, और मैं चैतन्य गुणीसे ही वह प्रगट होता है। अतएव वह पारख मुझमें ही रहता है। मेरेसे भिन्न होके वह कुछ दिखाई देता नहीं। अर्थात् जीव ही परीक्षा करते हैं, निर्जीव नहीं कर सकते हैं। ज्ञानस्वरूप तो जीव सदैवसे हैं। परन्तु भ्रमवश अन्य भास मानन्दीमें भूला था, सो गुरुबोधसे भ्रम मिट गया, तो स्वयंस्वरूपका पारख बोध हो गया है। इसीसे हे गुरो ! मुझमें पारख रही और है, मुझसे पृथक् तो पारख कहीं नहीं दीखता है ॥ ५२५ ॥

२. जो पारख मो मैं नहिं होखा। तो केहि भाँति परखतेउँ धोखा ॥५२६॥

टीकाः— विवेकी शिष्य कहता हैः— और जो कदाचित् मुझ चैतन्य जीवमें पारख गुण नहीं होता, और ही कुछ दूसरा गुण होता, तो कहिये मैं किस प्रकार तमाम धोखा, भ्रम, भूलोंको आपके परखाने पर परखके जान सकता था, छोड़ सकता था, अगर स्वरूपसे

पारखहीन होता, तो कितने ही प्रयत्न करनेपर भी मेरेमें पारख नहीं आती। परन्तु ऐसी बात नहीं थी, इससे आपके कृपासे इशारा मिलते ही मेरे हृदयमें परीक्षा दृष्टि खुल गई। पारखमें मैं एकरस नहीं होता, तो किस तरह आत्मा, ब्रह्म, आदिक धोखा परखके परित्याग कर सकता था। इसीसे सावित हुआ कि—पारखपदमें ही मैं हूँ! उससे न्यारा नहीं हूँ! और न्यारा हो सकता भी नहीं ॥ ५२६ ॥

३. मोमें पारख सदा रहाही। मैं हूँ रह्यों पारखके माँही ॥५२७॥

टीकाः— विवेकी शिष्य कहता हैः— इसी कारण मैं दृढ़ निश्चय से कहता हूँ कि— मुझ चैतन्य स्वरूप जीवमें सदा-सर्वदा अग्नि उष्णतावत् नित्य सम्बन्धसे पारख ज्ञान रहता है। और मैं स्वयं ही चैतन्य ज्ञान स्वरूपसे पारख भूमिकामें ही रह रहा हूँ। जैसे जलमें शीतलता अभिन्नतासे रहता है। तैसे ही मुझमें पारख सदा रहता है, तो मैं भी सदा पारखमें ही बना रहता हूँ! प्रश्नोत्तरके कथनमें बोध प्रगट करनेके लिये मैं और पारख ऐसे दो नामसे कहा, परन्तु वस्तु तो एक ही है। गुण-गुणीके तरह जीव और पारखका एक ही स्वरूप है। स्वयं स्वरूपका यथार्थ बोध सोई पारखका प्रकाश होना है। अतएव मैं पारखस्वरूप ही हूँ ॥ ५२७ ॥

४. काल सन्धि झाँईका फेरा। परख प्रतापते सब निबेरा ॥ ५२८ ॥

टीकाः— विवेकी शिष्य कहता हैः— और पारखी सद्गुरुकी दयासे स्वयं स्वरूप पारखका बोध प्राप्त हुआ, फिर पारखका प्रताप, विशेष गुरुबल, महान् विवेककी शक्तिसे सत्यन्यायसे जड़, चैतन्य, सारासार, सत्यासत्यका निर्णय किया गया, जिससे काल = कर्म, उपासना, योगादिकी जंजाल, गुरुवा लोगोंका फन्दा, स्त्रियोंका विषय जाल और मनकी बाढ़-विषय, कल्पनादिके चक्रसे छूट गया। फिर सन्धि = ज्ञानमार्गकी मानन्दी, अनुमान-कल्पनाकी मिलान,

जोड़, भ्रम-भूलका सम्बन्ध भी मिट गया। और झाँई = विज्ञानमार्ग, ब्रह्मपदकी दृढ़ता, गाफिली, शून्य स्थिति, महा अज्ञानताकी दशा, यह भो हट गई। काल, सन्धि, झाँईका फेरा बड़ा जबरदस्त छूटनेको अत्यन्त कठिन जन्म, मरण, गर्भवासमें ले जाके चौरासी योनिमें फिरानेवाला, घनचक्र, त्रिविधि ताप भुगानेवाला है। सो सब भी गुरुपारखके प्रतापसे निर्णय करके छोड़ दिया हूँ ॥ ५२८ ॥

५. स्थूल सूक्ष्म कारण महाकारण। कैवल्यादिक कीन्ह निवारण ॥ ५२९ ॥

टीकाः— विवेकी शिष्य कहता हैः— और प्रथम-स्थूल देहकी रजोगुण, अकार मात्रा, नेत्र वा मुख स्थान, विश्व अभिमान, स्थूल पञ्च विषयोंकी भोग, वैखरी वाचा, जागृति अवस्था इत्यादिकी कर्म-मार्गका बन्धन है। परख करके उस कर्मका अध्यासको छोड़ दिया हूँ। दूसरी सूक्ष्म देहकी सत्त्वगुण, उकारमात्रा, कण्ठस्थान, तैजस अभिमान, सूक्ष्म विषयोंका भोग, मध्यमा वाचा, स्वप्न अवस्था इत्यादि हैं। इसमें उपासना मार्गका जटिल बन्धन है। निर्णयसे परीक्षा करके इसे भी त्याग दिया हूँ। तीसरा-कारण देहकी तमोगुण, मकारमात्रा, हृदय स्थान, प्राज्ञअभिमान, आनन्द भोग, पश्यन्ति वाचा, सुषुप्ति अवस्था इत्यादि हैं। यहाँ योगमार्गका कठिन बन्धन लगा है। पारख करके इसको भी छोड़ दिया हूँ। चौथी-महाकारण देहकी शुद्धसत्त्वगुण, अर्धमात्रा, नाभिस्थान, प्रत्यगात्मा अभिमान, आनन्दाभास भोग, परावाचा, तुरिया-साक्षी अवस्था इत्यादि हैं। इसमें ज्ञानमार्गका प्रबल बन्धन है। पारख दृष्टिसे इसे भी परित्याग कर दिया हूँ। और पाँचवाँ-कैवल्य देहकी निर्गुण, बिन्दु मात्रा, मस्तक स्थान, निरञ्जन अभिमान, ब्रह्मानन्द भोग, परात्पर वाचा, तुर्यातीत अवस्था, इत्यादि हैं। इसमें विज्ञान मार्गका कठिन वन्धन है। पूर्ण पारखकी दृढ़तासे इसे भी छोड़ दिया हूँ। इस प्रकारसे इन पाँचों देहोंका बन्धन महाजालको पारख प्रतापसे ही निवारण करके हटा दिया गया है ॥ ५२९ ॥

६. सो पारख कहुँ आवै न जाई । भिन्न नहिं केहि विधि बतलाई ॥५३०॥

टीकाः— विवेकी शिष्य कहता हैः— पारख प्रकाशी हे गुरुदेव ! पारख जो है, सो स्वयं स्वरूप है। वह पारख पूर्वोक्त पाँचों देहोंमें, पञ्चतत्त्व, पञ्चविषयादि जगत् जालोंमें कहीं पर भी आता नहीं। और ब्रह्म, आत्मादि भ्रम-धोखाके मानन्दीमें भी कहीं जाना नहीं। जिसने सकल विकारोंको परखके छोड़ दिया, भवबन्धनोंसे न्यारा हो गया, वह आवागमनमें क्यों आयेगा-जायेगा ? वह पारख स्वरूप पारखी सन्त तो जीवन्मुक्त हो जाते हैं। इसलिये सो पारखका कहीं आना-जाना होता नहीं। और मेरे स्वरूपसे पारख भिन्न है भी नहीं, फिर भिन्न करके किस प्रकार बतलाऊँ ? अर्थात् सबके परीक्षक पारख कहीं आता और जाता नहीं। खानी-वाणीको परखके मोटी-झीनी जालोंसे न्यारा होनेवाले पारखी सन्त पारख स्वरूपमें स्थित रहते हैं। इसलिये ब्रह्म-जगत्की फेरासे होनेवाला जन्म-मरणादिमें वे कभी पड़ते नहीं। सोई पारख मेरा स्वरूप है। अब सद्गुरुकी दयासे मेरा भी कहीं आना-जाना रहा नहीं। अपनेसे भिन्न वस्तुको दिखलायके बतलाया जाता है। यहाँ मेरेसे भिन्न पारख नहीं है। अब कहिये ! किस तरह उसे बतलाया जाय ? मैं स्वयं प्रत्यक्ष पारख स्वरूप हूँ ! इतना ही इशारा बतला सकता हूँ ! ऐसा शिष्यने निर्णय कहा ॥ ५३० ॥

दोहाः— मैं पारखमें होय रहा । पारख मोरे माँहिं ॥
(५७) भास अध्यास औ कल्पना । मोंको पावत नाहिं ॥ ५३१ ॥

टीकाः— यहाँपर विवेकी शिष्य अपने कथनका सारांश दर्शाता हैः— हे गुरुदेव ! आपकी दयासे पारख बोध अपरोक्ष कर पाया हूँ ! अब मैं स्व-स्वरूप पारख बोधमें ही शान्त होके निर्भ्रान्त ठहर रहा हूँ ! जब सब तरफसे लक्ष हटाकर मैं पारखमें ही स्थित हो रहा हूँ, तब पारख भी मेरे केन्द्रमें ही है। यानी मैं पारखमें रहता हूँ, पारख

मेरेमें है। दोनों प्रकारसे बात एक ही है। पारख-पारखीमें क्या भेद हो सकता है? कुछ नहीं। स्थिर रहता हूँ, तो पारख; परखने लगता हूँ, तो पारखी; वश इतना ही अन्तर है। परन्तु वहाँ स्वरूपमें कुछ फरक नहीं पड़ता, मेरेमें पारख है, तभी मैं पारखमें नित्य एकत्त्व हो रहता हूँ। ऐसी स्वरूप स्थितिमें ब्रह्म, आत्मादिका भास, पञ्च विषयोंका अध्यास, या जड़ाध्यास, ईश्वर, देवता, सातस्वर्गादिकी कल्पना, और चारमुक्ति, चारफलादिका अनुमान, इत्यादिका कुछ लवलेश मात्र भी मुझमें नहीं है। ढूँढ़ने पर भी उनमेंका विकार किञ्चित् भी मेरे पारख स्वरूपमें मिलनेका नहीं। एक बखत अच्छी तरहसे परखके छोड़ दिया, फिर वह भ्रम मुझको कदापि पा नहीं सकता है। और भास, अध्यासादिमें पड़े हुये लोग मुझ पारखको किसी प्रकार भी प्राप्त कर नहीं सकते हैं। जहाँ पारख है, वहाँ भासादि विकार नहीं हैं और जहाँ भास-अध्यासादि लगा है, वहाँ अपरोक्ष पारख नहीं है। अतएव पारख स्वरूपकी एकरस स्थिति कायम हो गई है, इसलिये भास, अध्यास, कल्पनादि विकार मुझे अब नहीं पा सकते हैं। इस प्रकारकी पारख स्वरूपका अपरोक्ष बोध हे प्रभो! मुझे तो आपके ही कृपा-प्रसादसे मिला है, तथा दृढ़ हो गया है। और मेरे समझनेमें कुछ गलती होवे, इससे आगे और कुछ समझना बाकी होवे, तो वह भी दया करके आप मुझे बतला दीजिये। फिर मैं आपके वचनको प्रमाण मान करके सुधार कर लूँगा। कहिये गुरुदेव! जो मुझे पारख पदका बोध हुआ, सो यथार्थरूपसे ठीक है कि नहीं? सो समझा दीजिये ॥ ५३१ ॥

॥४२॥ अन्तिम सद्गुरु उत्तर ॥ वचन भास्कर–४२ ॥ खण्ड–८४॥

॥ चौपाई–मण्डल भाग–५६ ॥ चौ० १ से २० तक ॥

१. सो पारख तव रूप कहाई। जाते धोखा भरम नशाई ॥ ५३२ ॥

टीकाः—विवेकी शिष्यकी बोध यथार्थ निश्चयका समर्थन करके

सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—बुद्धिमान् पारख प्रवीण हे शिष्य! सोई स्वयं स्वरूप पारख तुम्हारा सत्स्वरूप कहलाता है। मैं निश्चयसे कहता हूँ, अब तुम्हें यथार्थ पारखका बोध अपरोक्ष हो गया है। तुम्हारे समझनेमें कोई अब गलती कुछ नहीं भया है। इससे विशेष और आगे कुछ समझना-समझाना भी बाकी नहीं है। उसी पारख बोधका परिपुष्टि करनेके लिये कुछ उपदेश मैं तुम्हें सुना देता हूँ, सो लक्षपूर्वक श्रवण करो। अपरोक्ष गुरुपारख बोधको प्राप्त होते ही समस्त भ्रम, धोखा विनाश हो जाते हैं। सच्चे पारखी सन्तमें किसी प्रकारके भ्रम और धोखा रहते ही नहीं। जैसे सूर्यके प्रकाशमें अन्धकारका नामोनिशान नहीं रहता है। तैसे ही पारख प्रकाश होने पर भी भ्रम-भूल बाकी रह नहीं सकती हैं। जिससे खानी-वाणीकी सकल भ्रम, भूल, धोखादि विकार नशाय गये या नाश हो जाते हैं, सोई शुद्ध, निर्मल पारख तुम्हारा स्वरूप है। उसीमें ही तुम स्थिर हो रहो ॥ ५३२ ॥

२. पारख भूमि अटल अविनाशी। सबके परे भिन्न नहिं भासी ॥ ५३३ ॥

टीका:— सद्गुरु कहते हैं:—हे शिष्य! अपरोक्ष पारख पदकी भूमिका सो जीवन्मुक्तिकी स्थिति है। किसीके टलाये, हिलाये, खण्डन कियेसे भी न टलनेवाला अखण्ड-अटल है, किसी प्रकारसे भी कभी नाश न होनेवाला अविनाशी एकरस ऐसा पारख पद है। और पाँचों जड़तत्त्व, कार्य-कारण, षट्दर्शन—९६ पाखण्ड, इन सबोंके मानन्दीसे परे, वेद, शास्त्र, कुरानादिके सब सिद्धान्तोंसे परे उन सबोंसे भिन्न ऐसा पारख स्वरूप है। उसमें किसी प्रकारका भास-अध्यासादि रह ही नहीं सकते। और तत्त्वोंके कला-सूक्ष्म पञ्चविषयोंके सरीखी पारख कदापि नहीं भासता है। सकल भास आदिको परखनेवाला पारख भास ही कैसे होगा, भला! इसलिये भास पारख नहीं, किन्तु भाससे भिन्न सब विकारोंसे परे, निर्विकार, निराधार, अटल, अचल, अविनाशी, अखण्ड, नित्य, सत्य, मुक्ति

स्थिति सोई पारख भूमिका सर्वोच्च-सर्वश्रेष्ठ निजपद है, ऐसा जानो ॥ ५३३ ॥

३. जो कछु भिन्न भास है भाई! सो विजाति नाश होय जाई ॥ ५३४ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई ! जिज्ञासु शिष्य ! निज स्वरूप पारखसे भिन्न जो कुछ भी ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, कर्ता, इत्यादि माने हैं, सो मिथ्या भासमात्र है । मनकी कल्पित भावना होनेसे असत्य है । और जीवके स्वरूपसे भिन्न जड़ पञ्चतत्त्व हैं, सो विजाति हैं । तत्त्वोंके कार्यरूप शरीर सम्बन्धमें होनेवाले तत्त्वोंके भास, अध्यासादि भी विजाति निर्जीव हैं । नाशमान् शरीरके साथ हो सो सब भी विनाश हो जाता है । अर्थात् पारख प्रकाश होते ही सो अनमिल विजाति भासादिका नाश हो जाता है । जो कुछ भी भिन्न भास भासता है, सो अपने स्वरूप नहीं । द्रष्टा पारख ही निज स्वरूप है, ऐसा पहिचानो ॥ ५३४ ॥

४. ब्रह्म जगत अरु तनकी आशा । सबको त्यागि परखमें बासा ॥ ५३५ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—इसलिये हे शिष्य ! नाशमान् स्थूल देहादिकी आशा, आसक्ति, मोह भी मत रखो । तथा जगत्के पदार्थोंमें लोभ, पञ्चविषय सुख भोगनेकी वासना, स्त्री, पुत्र, धन, घर, राज, काज, मठ, मन्दिर, मान-बड़ाई, इत्यादि संसारिक आशा भी छोड़ दो । और ब्रह्म, ब्रह्मानन्द, परमानन्द, सच्चिदानन्द, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, षट्गुण ऐश्वर्य, सात स्वर्ग, अपवर्ग पर्यन्त वाणी-कल्पनाकी आशा, तृष्णा, कामना, इन सबोंको परित्याग कर दो । ब्रह्मसे जगत् पर्यन्त और शरीरकी भी आशा या आसक्ति छोड़ दो; क्योंकि आसक्ति अध्यास ही भवबन्धनका कारण है । इसलिये आशाको सर्वथा त्यागके निराश वर्तमान रखके सदा पारख स्वरूपमें निवास करो । पारखमें ही स्थिति कायम किये रहो ! वश इसके सिवाय और कुछ मत करो ।

"और जतन कछुओ मत करहू । केवल पारख साहेब लहहू ॥" पं० ग्र० टकसार॥

अतएव ब्रह्म, जगत् और शरीरादिकी समस्त आशा त्याग करके पारखमें ही वासा कायम करो ॥ ५३५ ॥

५. सबको परख परखावन सारा। पारखको को परखनहारा ॥५३६॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— जो स्वयं सबको यथार्थ सत्य निर्णयसे परीक्षा करके गुण-दोषको जानकर फिर अन्य जिज्ञासुओंको भी सार-असार, सत्य, मिथ्या, बन्ध-मुक्ति आदिकी यथार्थ रहस्य परखा देनेवाला सोई सर्वोपरि गुरु पारख ज्ञान है। ऐसे सबको परखके सार सिद्धान्त परखानेवाला पारखको; तथा सत्यन्याई पारखी गुरुको छोड़कर कहो भला, और कौन परखने-परखानेवाला है ? कोई नहीं।

"जाने जनावै पारख सोई । लहत शरण सुख जीवहि होई ॥" पं० ग्र० टकसार॥

अर्थात् सबको परखनेवाला पारखको और दूसरा कोई परखनेवाला नहीं है। जैसे सबको प्रकाश करनेवाला सूर्य है, फिर उसको और कौन प्रकाश करेगा ? वह तो स्वयं प्रकाशी है। तैसे ही सर्वका परीक्षक, द्रष्टा, ज्ञाता, अखण्ड, चैतन्य स्वरूप पारखको परखनेवाला और कोई नहीं है। ब्रह्म, ईश्वर, आत्मादि भासको तो पारखकेद्वारा परखा जाता है। फिर उस पारखको परखनेके लिये और कोई साधन नहीं है। क्योंकि वह तो स्वयं स्वरूप है ॥ ५३६ ॥

६. पारख विचार अतिशय है झीना। जो जानै सो परख प्रबीना ॥ ५३७॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:—इसलिये पारख स्वरूपका विचार अत्यन्त झीना या अति सूक्ष्म = बारीक दृष्टिसे ही होता है। पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें रहके जो कोई जिज्ञासु पुरुष पारख बोधको जान जाते हैं, सो प्रवीण-चतुर-सच्चे पारखी हो जाते हैं। अर्थात् जो कोई बुद्धिमान् सत्य-शोधक, परीक्षक होते हैं, सोई कोई बिरले ही पारख बोधको जान पाते हैं। सब लोग जान नहीं पाते हैं, क्योंकि पारखका विचार अतिशय झीना है। सकल पक्षपात त्यागे बिना

पारख बोध होता नहीं, इसलिये स्थूल बुद्धि या मोटी समझवालेकी ध्यानमें आना कठिन हो जाता है। जो विवेकी होते हैं, वही पारख बोधको समझ पाते हैं, और जो समझ पाते हैं, सो पारखमें प्रवीण हो जाते हैं ॥ ५३७ ॥

७, परख भूमिका सदा उजागर। बिन परखेको जानत नागर॥५३८॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और पारख भूमिका जो है, सो चैतन्य जीवकी मुक्ति स्थिति है। इससे सदा-सर्वदा उजागर = जागृति, सचेत, प्रकाशमान्, शुद्ध चैतन्य पारख कहा जाता है। अर्थात् पारख भूमिकामें ज्ञान-प्रकाश सदा स्वयं स्वरूपमें जाग्रत् ऐसी स्थिति रहती है। परन्तु पारखी गुरुद्वारा समझ-बूझके परखे बिना, ऐसी श्रेष्ठताको भी कोई जानते नहीं। अर्थात् परखे बिना कौन जानेंगे ? कि, पारखपद सर्वश्रेष्ठ है, कोई जान नहीं सकते हैं। चाहे कोई वेद, शास्त्रादि पढ़के विद्या-बुद्धिमें निपुण होवें, नागर = सबसे श्रेष्ठ विद्वान् कहलाते होवें, तथापि पारखी गुरुकी शरण-ग्रहण करके गुरुमुखसे यथार्थ निर्णयसे परखे बिना अपरोक्ष पारख बोधकी श्रेष्ठताको कोई अन्य उपायसे जान नहीं पाते हैं। सद्गुरुने कहा भी हैः—

"क्या पण्डितकी पोथिया। जो राति-दिवस मिलि गाय॥" बीजक सा० २१॥

टीकामें सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने लिखे हैं कि— "पारख कुछ पण्डितकी पोथी वेद नहीं, जो रात-दिन कण्ठ करके गाने लगे। पारखपद सबसे न्यारा, सो कुछ कागदमें लिखा नहीं जाता और कर्तव्यसे नहीं आता। केवल पारखियोंके सत्संगसे ही पारखपदकी प्राप्ति होती है॥" अतएव पारखपदकी भूमिका सदा चैतन्य-प्रकाशरूप है, तथापि गुरुमुखसे परखे बिना, कोई उस श्रेष्ठपदको भी जानते नहीं। कोई बिरले ही श्रेष्ठ पारखी पारखपदको जानते हैं॥ कहो भला! सद्गुरुके परखाये बिना पारखको कौन कैसे जानेंगे? कभी जान नहीं सकते हैं॥ ५३८ ॥

८. पारख भूमि काहु नहिं पाई । ज्ञान समीप नाहिं दरशाई ॥ ५३९ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:— हे शिष्य ! यह पारख भूमिकाका शोध-बोध सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने ही सर्वप्रथम पता लगा पाये हैं । नहीं तो ब्रह्मादि, सनकादि, व्यास, वशिष्ठ, शुक, दत्तात्रेय, गोरखादि योगी, ज्ञानी, भक्त, विज्ञानी, आदि और किसीने भी पारख भूमिकारूप गुरुपदको जान नहीं पाये हैं, प्रमाण बीजक शब्द ९० में कहा है:—

'सन्त महन्तो ! सुमिरो सोई । जो काल फाँसते बाँचा होई ॥''

पूरा शब्दमें पढ़िये ॥ फिर संसारी विषयासक्त लोग तो कैसे जानेंगे ? क्योंकि वे तो अज्ञानमें पड़े हैं । और ज्ञानी लोग तुरिया साक्षीमें आत्मज्ञानसे ब्रह्म वा आत्मको सूत्रमणिन्याय मानके निश्चयसे आत्मा व्यापक है, ऐसा दृढ़ किये रहते हैं । इससे उस ब्रह्मज्ञानके समीपमें भी पारख बोध कहीं दरशाता नहीं है । अर्थात् सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबको छोड़कर और किसीने भी पहिले निज स्वरूप पारख बोधको अपरोक्ष करके जान नहीं पाये । त्रिगुणी जड़ाध्यासी लोग किसीने भी पारख भूमिकाको नहीं पाये । और तुरिया अवस्था, सहविकल्प समाधि आत्मज्ञानके समीपमें भी पारख प्रत्यक्ष नहीं होता है । इसलिये ज्ञानी, विज्ञानी, अज्ञानी, वे तीनों ही पारखहीन होनेसे जड़ाध्यासी अमुक्त होके आवागमनोंमें ही पड़े रहते हैं । ज्ञानस्वरूप चैतन्य जीवके समीपमें या पास ही पारख है । तथापि पारखी गुरुके इशारा, भेद पाये विना वह प्रत्यक्ष होके किसीको दिखाई नहीं देता है । अतएव सद्गुरुके शरण-ग्रहण करके विधिपूर्वक ही पारख स्वरूपका बोध प्राप्त कर लेना चाहिये ॥ ५३९ ॥

९. जेहि दरशे सो परख स्वरूपा । सो न परत झाँई अन्धकूपा ॥५४०॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— और पारखी सद्गुरुके सत्संग विचारसे जिस बड़े भाग्यवान् पुरुषको गुरुबोधसे अपरोक्ष पारख स्वरूपका साक्षात्काररूप दर्शन हो गया या जिसे पारख प्रत्यक्ष

हो गया, दरश गया, बोध अटल हो गया, सो स्वयमेव पारख स्वरूप ही हो जाता है। अर्थात् जिसको गुरुकी इशारासे पारख बोध दिखाई दिया या जानने-समझनेमें आ-गया, फिर वह स्वयं बोध-स्वरूपमें स्थित हो जाता है। इसलिये सो सत्यन्यायी पारखी, झाँईं = ब्रह्म मानन्दीकी गाफिली भूलमें भ्रमिक हो करके अन्धकूप = अज्ञान, अविद्याके गड्ढा, भ्रमकूप, गर्भकूप, चौरासी कूपमें कभी किसी प्रकारसे भी गिरके पड़ नहीं सकते हैं। अर्थात् पारखी सन्त कभी महाअज्ञानरूप ब्रह्ममानन्दीमें नहीं पड़ते हैं। जिसको पारख प्रत्यक्ष हो गया, फिर वह झाँईं अन्धकूपमें क्यों पड़ेगा? दिव्यदृष्टि खुल गयो, फिर वह कभी चूक नहीं सकता है। पारख भूमिकामें पहुँचनेपर अच्युत मुक्त हो जाता है ॥ ५४० ॥

१०. पारखमा जो होय गयो थीरा। तिन पायो गुरु सन्त कबीरा ॥५४१॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और जो कोई विवेकी मनुष्य पारखी सत्यन्यायी साधु गुरुके सत्संगमें ठहरकर जड़-चैतन्य, सत्य-असत्य, सारासारका यथार्थ विवेक-विचार करके असार, भास, अध्यासादिको परित्यागकर, सकलपदको परीक्षा करके निज-पद पारखमें ही स्थिर, शान्त हो गये हैं, या ऐसे हो जाते हैं। वे ही पूर्ण वैराग्यवान् सन्त सद्गुण हंसरहनी रहस्य संयुक्त होकर पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य पारख बोधको प्राप्त करके जीवन्मुक्त होते भये वा हो जाते हैं। अर्थात् जो हंस मनुष्य स्वयं स्वरूप पारखमें निश्चल, स्थिर हो गये, या होवेंगे, तिन्होंने पारख-प्रकाशी सद्गुरु सत्य कबीरसाहेबके जीवन्मुक्त पदको प्राप्त कर लिये वा मुक्तिपदको प्राप्त कर लेवेंगे। अतएव पारखमें स्थिर त्यागी, वैराग्यवान् पारखी सन्तको सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी बन्दीछोर मानकर उनके ही शिक्षा-दीक्षा ग्रहण, धारण करना चाहिये। उन्हींसे सत्य चैतन्य जीवके स्वरूपका पारख बोध पाकर मुक्ति स्थिति मिलेगी, ऐसा जानना चाहिये ॥ ५४१ ॥

११. सर्वोपर गुरु परख रहाई। पारखपर कोई भूमि न झाँई ॥५४२

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— इस कारणसे हे शिष्य! गुरुपद पारख अत्यन्त गरुवा = वजनदार है। तम-अज्ञान विनाशी, पारख प्रकाशी, सो अविचल, अविनाशी, नित्य, सत्य पद है। इसलिये सर्वोपरि या सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ, उत्कृष्ट, गुरुका पारखपद ही सबसे ऊँचे रहता है। अतः सबसे ऊँचा दर्जा पारखपदका है और पारखसे परे या उसके ऊपर फिर कोई भूमिका = स्थिति, ठहरावकी जगह नहीं है। पारख पदपर झाँईके लवलेशमात्र भी नहीं रहता है। क्योंकि पञ्चम भूमिकामें ही झाँई विज्ञानकी मानन्दी अचतता रहता है। परन्तु पारखपद तो सप्तम भूमिका है। इसलिये उसमें झाँईका प्रवेश नहीं होता है। सबके ऊपर पारख भूमिका निर्विकार रहता है ॥ ५४२ ॥

१२. छौ प्रकारकी भूमि कहावै। पारख प्रकाशी सबन लखावै ॥ ५४३ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— हे शिष्य! सम्पूर्ण पिण्ड-ब्रह्माण्ड वा खानी-वाणीकी जगत् भरमें छः प्रकारकी भूमिका कहलाता है। समस्त देहधारी जीवोंकी स्थिति, ठहराव उन्हीं षट् भूमिका मध्ये हो रहा है। षट् भूमिकाके घेरेमें ही ज्ञानी, अज्ञानी, विज्ञानी आदि सकल मतवादी आते हैं। पारख प्रकाशी सत्यन्यायी बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब, तथा वैसे ही बोधवान् पारखी सन्तोंने उन छहों भूमिकाके गुण, लक्षण, भिन्न-भिन्न करके लखाये हैं। अतएव पारख प्रकाशी सन्त पारखी ही उन सबोंको लखकर परखके फिर जिज्ञासु मनुष्योंको भी सबोंके भेद लखाय देते हैं। पारखनिष्ठ सद्गुरुने छहों भूमिकाका भेद जैसे लखाये हैं, सो संक्षेपमें मैं तुम्हें बता देता हूँ! ध्यानपूर्वक सुनो! ॥ ५४३ ॥

१३. छिप्रा गतागत दूजि कहावै। तीजि सौलेष्टता मन भावै ॥५४४॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— प्रथम—छिप्राभूमिका है। दूसरी—

गतागत भूमिका कहलाता है। तीसरी—सौलेष्टता भूमिका मनकी भावना है। चौथी— सुलीन भूमिका बताया है। पञ्चम— अभाव भूमिकामें जाके जीव आपही बौराय जाता है। यह नाम संज्ञा बता दिया है। अब पञ्च भूमिकामें पञ्चतत्त्व, पञ्चदेह, तीन-तीन गुण सहित आठ-आठ भागके विवरण सुनिये! १. छिप्रा भूमिकामें— काम-जल, जठराग्नि, श्वासवायु, घटाकाश माना है। रज, सत्त्व, तम, ये त्रिगुणसहित वह आठों भाग स्थूल देहमें कहा है। कर्म-भूमिका, कर्म-मार्ग, जागृति अवस्था, सोई छिप्रा भूमिका है। यहाँ ही नानाकर्म बनके सम्पूर्ण संस्कार हृदयमें छिपे रहते हैं। सारे मनुष्य वर्गका ठहराव इसी भूमिकामें रहता है। परन्तु उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ कर्मानुसार शरीर छूटनेपर वैसे ही पशु आदि खानीको प्राप्त होते हैं॥ २. गतागत भूमिकामें—चञ्चल जल, कामाग्नि, गुल्फवायु, मठाकाश, रेचक, पूरक, कुम्भक प्राणायामकी ३ क्रियारूप ये त्रिगुणसहित यह आठों भाग सूक्ष्म देहमें माना गया है। वासना-वश चौरासी योनियोंमें जाना-आना, स्वप्न अवस्था, नानावासनारूप उपासना मार्ग आवागमन करानेवाला चञ्चलता वही गतागत भूमिका है। उपासक या भक्त लोग उत्तम, मध्यम, कनिष्ट कर्म कर जो-जो अध्यास टिकाते हैं, तदनुसार अण्डजादि खानीको प्राप्त होकर कर्म-फल भोगा करते हैं॥ ३. सौलेष्टता भूमिकामें—आवरण जल, मन्दाग्नि, स्थिरवायु, महदाकाश, जड़, जाड़, मूढ़, ये त्रिगुणसहित अष्ट-भाग कारणदेहमें कहा है। सुषुप्ति अवस्था सिर्फ कल्पित परमात्मा प्राप्तिकी आशा ही मात्र योगमार्गसे होनेवाला तत्त्वोंका प्रकाश सोई कारण सौलेष्टता भूमिका है। योगी लोग अष्टांग योग साधनोंमें उत्तम, मध्यम और कनिष्ट कर्म करते हैं, इसीसे वे उष्मजादि खानीको वासनावश प्राप्त होते हैं॥ ५४४॥

१४. चौथी भूँमि सुलीन बताई। पँचई भूमि आपु बौराई॥५४५॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— चौथी भूमिका सुलीन बताये हैं,

और पञ्चम भूमिकामें ब्रह्मज्ञानी लोग आपही बौराय गये हैं ॥ अर्थात् ४. सुलीन भूमिकामें— जानीव जल, प्रकाशाग्नि या बड़वाग्नि, चिन्मयवायु, चिदाकाश, साक्षी, बोध, ज्ञान ये त्रिगुण सहित अष्ट भाग महाकारण देहमें माने हैं। तीनों अवस्थोंका साक्षी, शुद्ध ज्ञान, तुरिया दशा, जहाँ तीनों भूमिका लय हुये, सो सुलीन ज्ञान भूमिका माना है। ज्ञानी लोग सतज्ञान भूमिकाकी साधनोंमें लगके शुभ संस्कार टिकाते हैं। अतएव तदनुसार मनुष्य-जन्मको प्राप्त होके फल भोगते रहते हैं ॥ और ५. अभाव भूमिकामें—विज्ञान जल, ब्रह्माग्नि, निरान्तवायु, निजाकाश, तत्, त्वं, असि ये त्रिगुण सहित अष्ट भाग कैवलदेहमें माने हैं। तुरियातीत अवस्था, महाशून्य, विज्ञान मार्गमें अपना और जगत्का अभाव करके आनन्दमें मस्त रहना, सोई अभाव भूमिका है। परमहंस विज्ञानी लोग अपनेको विधि-निषेधसे परे पूर्ण ब्रह्म मानकर मनमाने वर्ताव करते हैं। इसलिये जड़ाध्यासी होकर अन्तमें वे अजगर, केंचुवाआदि नीच योनिको प्राप्त होते हैं। १. कर्म भूमिका, २. भोग भूमि या भक्ति भूमिका, ३. योग, ४. ज्ञान, और ५. विज्ञान भूमिका यही पाँच भूमिका चार खानीमें ले जानेवाला कहलाता है। उपरोक्त पञ्चदेह और अष्ट भागके विस्तार वर्णन "तत्त्वयुक्त निज बोध०" में देख लीजिये। यहाँ संक्षेपसे लिखा गया है ॥

इस प्रकार प्रथम भूमिकासे चलते-चलते जब पाँचवीं भूमिकामें पहुँच जाते हैं, तो वहाँ अपने आपको भी सुधि, बुधि खो करके बेभान तथा पागलके नाईं बौराहा, उन्मत्त, जड़, मूकादि दुर्दशाको धारण करके महाबन्धनमें जकड़ जाते हैं। बिना पारख जड़ाध्यासी जीव दुर्गतिको ही प्राप्त होते हैं। अतएव ऊपर कहे हुये पाँचों भूमिकाको परखकर त्याग देना चाहिये ॥ ५४५ ॥

१५. छठई सत्त भूमिका भारी । सतई पारख भूमि निन्यारी ॥५४६

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:— हे शिष्य ! उक्त

पञ्च भूमिकासे पृथक् छठईं सत्य भूमिका सोई हंस देहकी भूमिका है। यह सबसे बड़ा भारी माना जाता है। क्योंकि यह मुक्ति होनेका जगह है। सत्य, विचार, शील, दया, धीरज, विवेक, गुरुभक्ति, और दृढ़ वैराग्य यही अष्ट महा सद्गुण लक्षण, हंसदेहमें रहते हैं। मनुष्य देहमें जीतेतक शुद्ध व्यवहार, शुद्ध आहार, शुद्ध विहार, सद्गुणोंकी धारणा, यथार्थ निर्णय करना, सत्य ही कहना, निर्णयके ही सत्य उपदेश सुनना, और सत्य उपदेश देना-लेना, त्याग, ग्रहण करना, परखना, परखाना, खण्डन-मण्डन करना, इत्यादि शुद्ध रहनी-रहस्य संयुक्त चाल छठीं हंस भूमिकामें रहता है। इसमें एक असली यथार्थ रहनी सहित अपरोक्ष स्थितिवाले होते हैं। दूसरे नकली परोक्ष कथनमात्र करनेवाले रहनी रहित वाचक ज्ञानी होते हैं। कारण विशेष पायके नकलीका पतन भी हो सकता है। परन्तु असली रहनीवालेका कभी बिगाड़ हो नहीं सकता है। छठईं भूमिका साधनाकी जगह जानना चाहिये। और इन छहों भूमिसे न्यारे सबसे परे सर्वोच्चपद सातवाँ अन्तिम ठौर पारख भूमिका है। यहाँपर दृढ़तासे स्वयं स्वरूपकी ही स्थिति बनी रहती है। निराश, निवृत्त, सबसे उपराम जीवन्मुक्तिके रहनी रहस्यमें साक्षात् स्थिति सबसे पृथक् निर्विकार, निराधार सोई अविचल पारख भूमिका है। ऐसे पारखी सन्त अपरोक्ष पारख बोधमें ही शान्त, शौम्य, स्थिर, एकरस, अमृति जीते ही मुक्त होते हैं। कृतकृत्य कार्य सिद्ध हो गया है जहाँ, सोई सप्तम पारख भूमिका है, ऐसा जान लीजिये ॥ ५४६ ॥

१६. सोई भूमि तुम्हारी स्थिति होई। ताको पावै बिरला कोई ॥ ५४७ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैं:—हे शिष्य! सोई अन्तिम पारख भूमिकामें तुम्हारे भी अपरोक्ष स्वरूप स्थिति होना चाहिये। उसमें सच्ची स्थिति हो जानेपर फिर सकल कर्तव्यका इति या अन्त, बन्धनोंका क्षय, हो जाता है। पारख पदमें ही तुम दृढ़तासे स्थिति

कायम करो । वही तुम्हारा सत्स्वरूप है । तुम बड़े भाग्यशाली हो, निज स्वरूपका बोध तुम्हें पक्का हो गया है । उसी बोधमें देह रहेतक सावधानीसे ठहरे रहो । असंख्य प्राणियोंमें कोई बिरले ही मनुष्य एक-दो पुरुष ही पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आके निज स्वरूप उस पारख बोधको अपरोक्ष करके जान पाते हैं । वे ही जीवन्मुक्त होके भवबन्धनोंसे छूट जाते हैं, ऐसा जानो ॥ ५४७ ॥

१७. पारख पायो परख समाना । तहाँ न भास अध्यास अनुमाना ॥ ५४८

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—हे प्रवीण शिष्य ! गुरुकी दयासे अपरोक्ष पारख बोधको प्राप्त कर लेनेपर सो हंस, पारखमें एक समान स्थिर होनेसे स्वयं पारख स्वरूप ही हो जाता है । इस प्रकार जिन्होंने पारख बोधको हासिल कर पारखमें ही एक समान एकरस स्थिति कायम कर लिये हैं वा ऐसा कर लेते हैं, फिर तहाँ उन पारखनिष्ठ सन्तोंमें किसी प्रकार भी कसर ही नहीं रह सकती है । अतएव ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, खुदादि मानन्दोकी भास, पञ्चविषयोंके अध्यास या जगत्के जड़ाध्यास, जगत्कर्ता-ईश्वरादिका अनुमान और सातलोकोंके सुख भोगोंका, देवी, देवता, भूत-प्रेत, आदिकी कल्पना, यह सब एक भी पारखी सन्तोंके हृदयमें नहीं रहती है । उक्त चतुष्टय विकार बिलकुल निर्मूल हो जाते हैं । तहाँ पारख प्रकाशमें उक्त मानन्दीकी अन्धकार रह सकती ही नहीं ॥ ५४८ ॥

१८. पारख पारखी एकै जाना । ब्रह्म जगत मिथ्या अनुमाना ॥ ५४९ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—वास्तवमें पारख स्वरूप और पारखी कहनेके लिये नाम दो हैं, परन्तु वस्तु एक है । जैसे सूर्य और उसके किरण प्रकाश नाम दो कहे जानेपर भी पदार्थ एक ही है, तैसे ही पारख-पारखी दो नामसे कहनेपर भी वस्तु एक ही जाना जाता है । अर्थात् पारख और पारखीमें मुख्य भिन्नता भेद-भाव कुछ नहीं है । देह सम्बन्धमें सत्सङ्गमें परीक्षा करके सारासारको परखते हैं, तब

पारखी नाम होता है। और स्वरूप स्थितिमें स्थिर रहते हैं, तब पारखमात्र कहा जाता है। सिर्फ अवस्थाका फरक है, और कुछ विशेष भेद नहीं। अथवा जीवन्मुक्तिमें पारखी कहलाते हैं। और विदेह मुक्तिमें पारख मात्र कहा जाता है। इस बारेमें बीजक त्रीझाके अन्त्य साखीमें सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने स्वयं ही स्पष्ट करके कहे हैं:—

"पारख पारखी एक है। भिन्न भेद कछु नाहिं ॥
देह विलास करि भेद है। सोई दियो दरशाहिं ॥"

इस प्रकार पारख-पारखीको एक ही जानना चाहिये। और वेद, वेदान्तमें ब्रह्मसे जगत्‌की उत्पत्तिका कथन जो किये हैं, सो मिथ्या अनुमान, कल्पनामात्र है। क्योंकि जड़, चैतन्यरूप जगत् स्वरूपसे अनादि है, फिर उसे कोई कैसे उत्पन्न कर सकेगा? जगत् प्रथम नहीं था, तो ब्रह्म कहाँ था? कैसा था? फिर उसने कहाँसे लाके किस तरह जगत् कहाँपर उत्पन्न किया? इसका यथार्थ उत्तर ब्रह्मज्ञानी लोग नहीं दे सकते हैं। अतः जगत्-ब्रह्मकी एकताका कथन भी मिथ्या धोखा अनुमानमात्र ही है, ऐसा जानो ॥ ५४९ ॥

१६. यह निर्णय कबीर कृपाला। कहि निरुवारो हंसन जाला ॥ ५५० ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:—हे शिष्य! इस तरह सत्यन्यायसे जड़-चैतन्यका यथार्थ सत्यनिर्णय करके कृपालु, बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने सर्वप्रथम पारख ज्ञानका उपदेश कहे हैं, खानी, वाणीके समस्त जालोंको पारख दृष्टिसे दिखला करके हंस जीवोंको सब जालोंसे छुड़ाये हैं। यहाँ बीजक ग्रन्थका प्रमाण थोड़ासा लिख दिया जाता है, सो सुनियेः—

साखीः—"जो जानहु जीव आपना, करहु जीवको सार ॥
जियरा ऐसा पाहुना, मिले न दूजी बार ॥ १० ॥
हंसा तू सुवर्ण वर्ण, क्या वर्णों मैं तोहिं ॥
तरिवर पाय पहेलि हो, तबै सराहों तोहिं ॥ १४ ॥

हंसा तू तो सबल था, हलुकी अपनी चाल ॥
रङ्ग कुरंगे रङ्गिआ, तैं किया और लगवार ॥ १५ ॥
जाग्रतरूपी जीव है, शब्द सोहागा सेत ॥
जर्द बुन्द जल कूकुही, कहहिं कबीर कोइ देख ॥ २५ ॥
पाँच तत्त्व ले या तन कीन्हा, सो तन ले काहिले दीन्हा ॥
कर्महिंके वश जीव कहत हैं, कर्महिंको जीव दीन्हा ॥ २६ ॥
कबीर भरम न भाजिया, बहुविधि धरिया भेष ॥
साँईके परचावते, अन्तर रहि गई रेष ॥ ४६ ॥" बीजक साखी ॥

इत्यादि प्रकारसे बीजक सद्ग्रन्थमें सत्य निर्णयका वर्णन हुआ है ॥ और—

"भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी ! । पारख देहिं लखाई ॥
कहहिं कबीर भूलकी औषध । पारख सबकी भाई ! ॥" बी० शब्द ११५ ॥

यही निर्णय कृपालु पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका है। बीजक ज्ञान कहि करके जिन्होंने सब मोटी-झीनी जालोंको निरुवार करके शरणागत हंस जीवोंको मुक्त किये। तबसे पारखी गुरु-शिष्यकी परम्परासे संसारमें पारख बोधका प्रकाश होता आ रहा है, सोई गुरु निर्णय तुम्हारे प्रति कहा गया है। अब हे शिष्य ! तुम भी हंस पारखी होके उस निर्णयको ग्रहण करो। और इसी प्रकार अन्य सत्सङ्गी हंस मनुष्योंसे भी कहिके सब जालोंको निरुवार करो, उन्हें भी जालोंसे छुड़ाओ ॥ ५९० ॥

२०. जो बीजककी इस्थिति कहाई। सो शिष्य ! सकल तोहिं समुझाई ॥५९१॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबकी सत्य उपदेशरूप टकसार सद्ग्रन्थ बीजककी जो सत्य सिद्धान्त पारख पदकी स्थिति कहा है, सोई जीवन्मुक्त पारख स्वरूपकी स्थिति कहलाता है। दया, क्षमा, सत्य, शील, विचार, विवेक, इत्यादि सद्गुण संयुक्तहंस जीव कोई-कोई विरले हो उस पारख स्थितिको प्राप्त कर सकते हैं। अर्थात् जीवका स्वरूप स्थितिके बारेमें

जो पारखी सद्गुरुने कहे हैं, और जो बीजककी अन्तिम पारख स्थिति सत्य सिद्धान्त कहलाता है, हे शिष्य! सो सकल व्याख्या करके अबतक मैंने तुम्हें कहिके समझा दिया हूँ, सो तुमने भी भली प्रकार समझ ही लिया होगा। विशेषतः कहना यही है कि, दृढ़तासे उसी पारख बोध स्वरूपस्थितिमें ही सद्गुण रहनी सहित देह रहेतक तुम स्थित हो रहो। तुम्हें अब और कुछ प्राप्त करना बाकी नहीं रहा। पारखमें निष्ठा रख करके बेगारवत् निराश वर्तमानमें वर्तते रहो, ऐसा समझाते भये ॥ ५५१ ॥

दोहाः—परख साधु गुरु परख कबीर। पारख पद पहिचान ॥
(५८) पारखके परतापते। सब भ्रम जाला मान ॥ ५५२ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— पूर्णत्यागी वैराग्यवान् साधुरूपमें श्रेष्ठ सद्गुरु ज्ञानियोंमें शिरोमणि सत्य परीक्षक, शरणागत रक्षक, पारखस्वरूप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कायावीर कबीर, चैतन्य नरजीव भेषधारी साधुओंको यथार्थ निर्णय करके गुरुमुखसे जब परखाये, लखाये, समझाये, तब मुमुक्षु पुरुषोंको पारखकी विशेषता पहिचाननेमें आया। फिर गुरुपारखके पूर्ण प्रताप वा बलसे सब भ्रम जालोंकी मानन्दी छूट गई। ऐसे यह पारख पद सर्व श्रेष्ठ मुक्तिकारी है, इसे ही धारण किये रहो॥ अथवा सत्य साधना संयुक्त तमरूप सकल मानन्दी अध्यास अन्धकारको हटानेवाले पारख प्रकाशी सोई सच्चे सद्गुरु सत्य कबीर है। जिन्होंको स्वयं अनुभवसे पारख पदका पहिचान हो गया। और गुरुमुख द्वारा पारख बोध पाये हुये साधु-गुरु भी प्रत्यक्षमें श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी होनेसे वे माननीय होते हैं। अथवा सकलकाल जालोंको एक-एक करके परीक्षा दृष्टिसे परखनेवाले पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब सर्वश्रेष्ठ पारखी सद्गुरु हुए। आपने ही स्वयमेव पारखपदका पहिचान किये और मुमुक्षु मनुष्योंको भी पारख पदका

पहिचान कराये । जिस पारख बोधके प्रतापसे गुरुवा लोगोंने माना हुआ समस्त सिद्धान्त भ्रम-जालकी मानन्दी समझके त्याग हो जाता है । अब तुम भी ऐसा ही यथार्थ मानो ॥ अतएव प्रथम पारखी श्रीकबीरसाहेब पारखस्वरूप साधु-गुरु हुये । फिर आपके ही सत्यबोधको धारण किये हुये अन्य साधु जिन्होंने पारखपदको पहिचान किये, सो भी गुरुरूप पारखी हुये । हे शिष्य ! गुरुपारखके प्रतापसे तत्त्वमस्यादि सब भ्रम-जाल मनमानन्दीको मिटायके तुमने भी उसी पारखपदको पहिचान कर लिया है । अब उसीमें सर्वदा धीर-गम्भीर होके श्रीसद्गुरुकबीरके समान ही स्थिर हो रहो । ऐसे बोधकी परिपुष्टी करके सद्गुरुने सत्शिष्यको शुभआशीर्वाद प्रदान किये । इस प्रकार अन्तिम प्रश्नका उत्तर यहाँपर समाप्त हो गया ॥ ५५२ ॥

॥*॥ ग्रन्थ समाप्तिके सत्य—सार उपदेश—रहनी धारणा वर्णन ॥*॥

॥ चौपाई—मण्डल भाग— ५७ ॥ चौ० १ से ३९ तक है ॥

१. पारख गुरु कबीर कहावै । पारख धर्मदास बतलावैं ॥ ५५३ ॥

टीकाः— अब यहाँपर प्रथम पारखी सद्गुरुके परम्परा बतलाकर फिर आजीवन = देह रहेतक धारण करनेलायक रहनी दर्शाकर सत्शिक्षा कथन कर ग्रन्थपूर्ण किया जाता है ॥

ग्रन्थकर्ता सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे शिष्य ! यह पारख ज्ञान किससे प्रगट हुआ ? और किन-किनको बोध हुआ ? इस बारेमें पूर्व परम्पराका परिचय बतला देता हूँ, सो श्रवण करो । यह जगत् जड़ और चैतन्य जीव अनादिकालके स्वतः सिद्ध हैं । इसको उत्पन्न करनेवाला जगत्कर्ता कोई नहीं । जगत्कर्ता मानना कल्पना-मात्र है । बीजकमें कहा हैः—

प्रथम आरम्भ कौनको भयऊ ? । दूसर प्रगट कीन्ह सो ठयऊ ॥ बी० र० ३ ॥
प्रथम चरण गुरु कीन्ह विचारा । कर्ता गावैं सिरजनहारा ॥ बी० र० ४ ॥

गुणी अनगुणी अर्थ नहीं आया । बहुतक जने चीन्हि नहिं पाया ॥ बी० र० ४ ॥
चीन्हि चीन्हिका गावहु बौरे ! बानी परी न चीन्हि ॥
आदि अन्त उत्पति प्रलय, आपू ही कहि दीन्ह ॥ बी० र० सा० ४॥
कहाँलों कहौं युगनकी बाता । भूले ब्रह्म न चीन्हैं बाटा ॥ बी० र० ५ ॥
वर्णहु कौन रूप औ रेखा ? दूसर कौन आहि जो देखा ? ॥ बी० र० ६ ॥
नहिं जल नहिं थल नहिं थिर पवना । को धरे नाम हुकुमको बरना ? ॥ बी० र० ६॥
तहिया होते पवन नहिं पानी । तहिया सृष्टि कौन उत्पानी ? ॥ बी० र० ७॥
अविगतिकी गति का कहो ?, जाके गाँव न ठाँव ॥
गुण बिहूना पेखना, का कहि लीजे नाँव ? ॥ ७ ॥ बीजक, रमैनी ७ साखी ॥
बुझ-बुझ पण्डित ! बिरवा न होय ॥
आधे बसे पुरुष आधे बसे जोय ॥ बीजक, शब्द ५० ॥

—इत्यादि अनेकों प्रमाणसे बीजकमें जगत्को स्वयं सिद्ध अनादि बतलाया गया है । जीवको बन्धनमें किसी दूसरेने डाला नहीं । स्वयं ही निज कर्तव्यमें भूलके बन्धनोंमें पड़े हैं । उस बारेमें कहा है:—

"सन्तो ! ऐसी भूल जग माहीं । जाते जीव मिथ्यामें जाहीं ॥ १ ॥
पहिले भूले ब्रह्म अखण्डित । झाँई आपुहि मानी ॥ २ ॥
झाँईमें भूलत इच्छा कीन्हीं । इच्छाते अभिमानी ॥ ३ ॥
अभिमानी कर्ता होय बैठे । नाना ग्रन्थ चलाया ॥ ४ ॥
वोही भूलमें सब जग भूला । भूलका मर्म न पाया ॥ ५ ॥
लख चौरासी भूल ते कहिये । भूलते जग बिटमाया ॥ ६ ॥
जो है सनातन सोई भूला । अब सो भूलहिं खाया ॥७॥ बीजक, शब्द ११५॥"
"बहु बन्धनमे बाँधिया । एक विचारा जीव ! ॥
की बल छूटै आपने ? की रे छुड़ावै पीव ! ॥ २११ ॥ बी० साखी ॥

इस प्रमाणसे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने स्वयं ही स्व-स्वरूप पारखका बोध प्राप्तकर पारख अविष्कार किये । और दूसरे श्रद्धालु मनुष्योंको भी वही उपदेश बताये । कहा है:—

"अमल मिटाओ तासुका । पठवों भवपारा हो ! ॥
कहहिं कबीर तोहिं निर्भय करों । परखो टकसारा हो ॥ बीजक, शब्द ११४ ॥
केतिक कहौं कहाँ लों कही । औरों कहौं पड़े जो सही ॥" बीजक, रमैनी ७६ ॥
झूठा कबहूँ न करिहैं काज । हौं बरजों तोहिं सुनु निलाज ! ॥
छाड़हु पाखण्ड मानो बात । नहिं तो परबेहु यमके हाथ ॥
कहहिं कबीर नर ! किया न खोज । भटकि मुवा जस बनके रोझ ॥ बीजक, बसन्त १२॥

इन सब प्रमाणोंके विचारसे पारख प्रकाशी सर्वप्रथम आदि गुरु श्रीकबीरसाहेब ही कहलाते हैं । अनादिकालके जगत्में पहिले किसीने भी पारख बोधका ऐसा उपदेश नहीं दिया। षट्दर्शन-९६ पाखण्ड आदि अनेकों मत, पन्थ, विस्तार भये और चार वेद, षट्-शास्त्र, अठारह पुराण, कुरान, बाइबिल, इत्यादि अनेकों ग्रन्थ भी बने। परन्तु उन किसीमें भी पारखका प्रकाश नहीं हुआ है। बीजकमें ही कहा है:—

छौ दर्शन पाखण्ड छ्यानबे । ये कल काहु न जाना ॥ बीजक, शब्द २६ ॥

और शब्द ९० तथा ११४ में भी दर्शाया है। अतएव सर्वोपरि स्वयं अनुभवी पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीर साहेब प्रथम पारख स्वरूपमें स्थित पारखी सद्गुरु कहलाते हैं । आपने ही बीजक सद्ग्रन्थके सत्यनिर्णय गुरुमुख वाणीमें पारख बोध प्रगट करके कहे हैं । और आपके ही सतशिष्य धर्मपरायण धर्मदास नामक साधुने भी गुरुका बताया हुआ गुरुबोध पारखको धारण करके पाखण्ड खण्डन कर वही पारख ज्ञान जिज्ञासुओंको भी बतलाये हैं। वे त्यागी पारखी धर्मदासजी साहेब बड़े वैराग्यवान् गुरुभक्तिनिष्ठ भये हैं। साधु होनेके उपरान्त इनसे बंशावाली गृहस्थीका काम चला नहीं। वे तो विर[illegible] साधु होके ही जीवन बिताये थे। अर्थात् पहिले आदिमें [illegible] पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीकबीर साहेब ही जीवन्मुक्त बन्दी[illegible]र कहलाये। फिर सद्गुरुका बताया हुआ पारखबोधको साधु धर्[illegible]दासजी साहेबने भी ग्रहण कर धारण किये। वर्तमानमें भी पार[illegible] बोधदाता श्रीकबीरगुरु

और बोध ग्रहण करनेवाले सत्शिष्य धर्मके न्यायसे दास या धर्मदास कहलाते हैं, ऐसा यथार्थ जानना चाहिये ॥ ५५३ ॥

२. पारखमें सब सन्त कहाई । पारख अमरदास गुरु पाई ॥ ५५४ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— तदनन्तर कईएक परम्परागत पारखी सन्त हो गये, परन्तु लेखबद्ध नामावली संग्रह न होनेसे उन सबोंके नाम ज्ञात नहीं है । और सब पारखनिष्ठ साधु-सन्तोंने दृढ़तासे पारख बोधको ही कहे हैं । इसलिये उन सब पारखी सन्त पारख-स्वरूप मुक्त स्थितिमें ही कहलाते हैं । और वैसे ही पारखी सद्गुरुद्वारा अमरदासजी साहेबने भी गुरुबोध पारखको पाये थे । अतएव वे गुरु अमरसाहेब बड़े पारखनिष्ठ सन्त हो गये हैं ॥५५४॥

३. तहँवाँते सुखलाल कृपा निधी । पारख पाई सकल बीजक विधी॥ ५५५

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और सब प्रकारसे विधिपूर्वक सकल सिद्धान्तका ज्ञान, बीजकके सत्यज्ञान अपरोक्ष गुरुपारख बोधको श्रीअमरसाहेबकेद्वारा पारखनिष्ठ सद्गुरु श्रीसुखलाल साहेबजी ने प्राप्त किये । आप बड़े उदार, कृपासागर सत्यबोधदाता रहे । अर्थात् तहँवाते = वहाँसे यानी ऊपर कहे प्रमाण गुरु अमरसाहेबसे कृपांनिधि श्रीसुखलाल साहेबने सकल विधि विधानपूर्वक बीजकके सत्यज्ञान पारखपदको जान पाये । सोई सतशिष्योंको आपने परखाये ॥ ५५५ ॥

४. पूरण तिनका चरणको चेरो । कृपादृष्टि उनहिंन प्रभु ! हेरो॥ ५५६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— उन्हीं पारखी सद्गुरु श्रीसुखलालसाहेबके चरण कमलका दास, चेला या शिष्य मैं पूरण हूँ ! उन्हीं परमप्रभु ! सद्गुरुदेवने कृपादृष्टिसे मुझको निहारे, चरण-शरणमें मुझे आश्रय दिये । यानी उन्हीं प्रभुने कृपादृष्टिसे देखके मुझे शरणमें लिये । इसलिये मैं पूरणदास उन पारखी सद्गुरुका चरण-सेवक या शिष्य कहलाया हूँ ॥ ५५६ ॥

५. हौं मतिमन्द सकलविधि हीना । दया कीन्ह पारख पद दीन्हा ॥ ५५७

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—सद्गुरुके शरणमें आनेके पूर्व मैं मतिमन्द यानी बुद्धिहीन सकल प्रकारसे हीन, दीन, मलीन, क्षीण था। तथापि पतित पावन पारखी सद्गुरुने बड़ी भारी दया किये, निज स्वरूपका सत्यज्ञान, महान पारखबोध, बकशीस करके मुझे दे दिये। जिससे मेरी सब गरीबी दूर हो गई; अज्ञान, अबोध, भ्रम भूलादि सब मिट गई। जैसे भूखेको उत्तम भोजन मिलनेसे उसकी भूख मिट जाती है। कङ्गालको अपार सम्पत्ति मिलनेसे या दरिद्रीको पारसमणि मिलनेसे उसकी गरीबी सदाके लिये मिट जाती है। तैसे ही मैं पहले दुःखी गरीब था, परन्तु अब दुःखी-गरीब नहीं कहलाता हूँ! बल्कि सुखी धनी कहलाता हूँ। वह भी पूर्व इति-वृत्त बतायेगा, जो पहले गरीब था, पीछे धनी भया; परन्तु अभी मैं वैसा ही गरीब हूँ, कदापि नहीं कहेगा। सिद्धान्तमें ग्रन्थकर्ताने इस पदमें 'हौं' जो लिखा है, उसका अर्थ 'मैं' होता है 'हूँ' नहीं! अर्थात् सब विधिसे हीन मैं मतिमन्द था, गुरुके शरणमें आया, तो सद्गुरुने दया किये, मुझे पारखपदका बोध कर दिये हैं। फिर पूर्वकी वह हीनता सब नाश हो गई। मैं भी अब निजस्वरूप पारख स्थितिमें ही स्थिर शान्त हो रहा हूँ! ॥ ५५७ ॥

६. सो पारख शिष्य ! तोहिं बतावा । त्रिविधि भरम जाल परखावा ॥ ५५८

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— इस प्रकार पारख स्वरूपका बोध सद्गुरुके प्रसाद या दयासे जो मैंने विधिपूर्वक प्राप्त किया था, हे शिष्य! सोई सर्वोच्च पारख बोधको मैंने भी तुम्हें अच्छी तरहसे बतला दिया हूँ। और ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान, तत्त्वमसि आदि भ्रम, जाल जो कि त्रितापका दुःख भोगाके जन्म, मरण, गर्भवासमें डालने-वाला है। उन तीनों तरहके त्रिपदको भ्रमका जाल-जंजाल बतला-कर एक-एक करके विधिपूर्वक मैंने परखाकर तुम्हें समझा चुका

हूँ ! अर्थात् उसी पारखके प्रतापसे ही त्रिविधि भ्रम जालको तुम्हें परखाया हूँ ! अतएव उस पारख बोधमें ही तुम भली प्रकार स्थिर हो रहो । सदा पारख ज्ञानका ही विचार बोध परिपुष्ट करते रहो ॥ ५५८ ॥

७. पारख माँहि पारखी बासा । दूसर और रही नहिं आशा ॥५५९॥

टीकाः— पारखी सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— हे शिष्य ! हंस पारखी सन्त-महात्माओंके बासा या स्थिति सदा निज-स्वरूप पारखमें ही बनी रहती है। इसलिये दूसरा और किसी प्रकारके भी आशा, बासा, कल्पना, उनके पास रह ही नहीं सकती है। क्योंकि दूसरे विजातीय पदार्थ और विषयोंके आशा-आसक्ति उनमें कुछ नहीं रही। सबको परखके पहिले ही छोड़ चुके हैं। अतएव देह, गेह, ब्रह्म, जगत्, इत्यादि अन्यकी आशासे रहित स्वतः पारख स्वरूपमें हो विवेकी पारखी सन्तोंका ठहराव होता है ॥ ५५९ ॥

८. गुरु शिष्य पारख कहलाये । दोउ देह जब दूर बहाये॥५६०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और जैसे सद्गुरु पारख स्वरूप होते हैं, सो तैसे ही पारख स्वरूपका अपरोक्ष बोध हो जानेपर शिष्य भी पारख स्वरूप ही कहलाता है। क्योंकि देहका अध्यास, भासादि विकार परख करके जब दोनोंने दूर बहा दिये, यानी अध्यास परि-त्याग करके दूरकर दिये। तब सिवाय पारखके और क्या कहलावेंगे ? अथवा देहोपाधि छूटके जब विदेह मुक्ति स्थिति हो जाती है, तब गुरु और शिष्य दोनोंका स्वरूप पारखमात्र कहा जाता है। वहाँ और दूसरा नाम नहीं होता है। अतएव गुरु-शिष्य दोनोंने देह भावना या देहाध्यास, एवं स्थूल-सूक्ष्मादि देहोंकी मानन्दी पारखसे परखके जब बहायके दूर फेंक दिये या छोड़ दिये, तब उस अवस्थामें गुरु और शिष्य भी पारखस्वरूप मात्र कहलाये, या पारखमात्र कहे जाते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ५६० ॥

९. पारखमें समता होय जाई । शिष्य भाव ना रहै गुरुवाई॥५६१॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और पारखस्वरूपकी स्थितिमें घट-बढ़ नहीं होता, उसमें तो एक समान बराबर ही समता हो जाता है। शिष्य भाव = लघुत्त्व, गुरुभाव = गुरुत्त्वका भेद-भाव स्वरूप स्थितिमें रहता नहीं। वैसे तो चैतन्य जीव स्वरूपसे अखण्ड अनन्त हैं। तथापि स्वजातीय गुण, लक्षण, सबमें एकसा ही रहता है। चाहे जीव मुक्त होवे, या बन्धनोंमें रहे, स्वरूपसे तो पृथक्-पृथक् ही रहते हैं, परन्तु ज्ञानगुण सबमें एक समान ही एकरस होता है। फिर जिनको गुरुकी कृपासे पक्का पारख बोध हो गया है, तो वहाँ पारख बोधमात्रमें समता हो जाती है। गुरुके पारख स्थिति तथा उपदेशमें और शिष्यके पारख स्थिति एवं कथनमें कुछ भिन्न-भिन्न भाव, विरोध, अनमेल नहीं रहता है! इसलिये ऊँच, नीच, भेद रहित पारखपदमें समत्त्व हो जाता है। यानी समझ-बोध दोनोंकी एक समान हो जाती है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ५६१ ॥

१०. देह भावते दास कहावैं । पारख भावते एक होय जावैं ॥५६२॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— ऐसा हो जानेपर भी देह व्यवहारमें गुरु–शिष्यकी मर्यादासे सेव्य–सेवक भाव रहता ही है। देहके स्वभावसे जो वर्तमान बर्ताव किया जाता है, तहाँ जबतक देह है, तो देहके भावसे शिष्यको जो है, सो चाहै कितना भी बोध हो जावे, जीवन्मुक्त भी होवे, तो भी सद्गुरुका दास ही कहलाता है। और दासातन भक्ति नम्रतासे करता ही रहता है। और पारखबोध स्वरूप स्थितिके तरफ भाव करिये, तो वहाँ एक समान बरोबरी दर्जाके हो जाता है। यह मैंने तुम्हें कर्तव्य और स्थितिके बारेमें बतलाया हूँ, सो जानना चाहिये। अर्थात् पारख स्थितिमें बोधभावसे गुरु और शिष्य एकसमान वा सादृश्यतासे मुक्त हो जाते हैं। परन्तु देह भावसे गुरुसाहेब पूज्य होते हैं, तथा शिष्य दास ही कहलाता

है, वैसे ही वर्ताव भी रहता है, वा स्वामी-सेवकका वर्ताव देह रहे तक रखना ही चाहिये ॥ ५६२ ॥

११. जे पारखते हम सब परखा। सो पारख दीन्हीं तोहि हरखा ॥५६३॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे सुजान शिष्य! जिस गुरुपारख बोधके प्रतापसे हमने स्वयं, काल, सन्धि, झाँईं, तत्त्वमस्यादि महा जाल खानी-वाणी सकल बन्धनोंको परख करके परित्याग किया था, सोई सर्वोपरि गुरु पारख बोधको मैंने तुम्हें सुपात्र योग्य अधिकारी जानके सहर्ष दे दिया, समझा दिया, यथार्थ लखाके बता दिया हूँ। क्योंकि तुम्हारे सब लक्षण भक्तिभाव पारखबोध प्राप्त करनेमें अनुकूल हुआ, तो त्रिविधि जालोंको विधिपूर्वक परखाकर अन्तमें चैतन्य जीवकी स्वरूप स्थिति पारखपदको तुम्हें समझाय, बुझायके प्राप्त करा दिया हूँ! अब उसे तुम सादर हर्षपूर्वक धारण करो ॥ ५६३ ॥

१२. पारखमें हम तुम हैं एका। देह भावते भिन्न विवेका ॥५६४॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— अब ऐसा समझो कि— बोधदाता हम, और बोधको ग्रहण कर्ता तुम, यानी गुरु-शिष्य दोनों भी पारख बोधमें, रहनी-रहस्य, स्वरूप स्थितिमें एक समान बराबरीवाले हुये हैं या होते हैं। अर्थात् तुम भी अब हमारे समान ही पारखी हो गये हो। जैसे हम जीवन्मुक्त स्थितिमें एक अकेला ही मानन्दी रहित रहते हैं। ऐसे स्थितिमें तुम भी एक समान रहनीवाले गिने जाते हो। पारखबोधमें हम और तुम दोनों एक सरीखा हैं। तथापि विवेक करो— देह भाव करके तो भिन्न-भिन्न ही हैं। ब्रह्मज्ञान सरीखी गोलमाल करके जगत् और ब्रह्मको एक व्यापक बतानेके नाईं; पारख ज्ञानमें ऐसा होता ही नहीं। यहाँ तो विवेक करके घटनेवाला लक्षण ही घटाया जाता है। न घटनेवालाको मिथ्या ही वाक् चातुर्यसे घटाया नहीं जाता है। अतएव यथार्थ कहा जाता

है कि— विवेक करो। जिन्ह सद्गुरुसे पारख बोध प्राप्त किया, उनकी गुरुभक्ति बोधभाव, गुरु मर्यादाको अपने देह रहे तक कृतज्ञता पूर्वक उपकार मानके पालन करो, गुरुकी स्तुति किया करो॥ यहाँ पर साहेबने "पारखमें हम तुम हैं एका" कहके केवल बोध-रहनी रहस्य मात्रमें ऊपरकी एकता सादृश्यता बता दिये हैं। यहाँ ऐसा नहीं समझना कि— दोनों पारखीका जीव एक ही हो जाता है। ऐसा कभी नहीं होता है; जीव तो त्रिकालमें एक दूसरेमें मिलके कभी एक ही गोला हो नहीं सकता है। क्योंकि जीव स्वरूपसे अखण्ड है, और असंख्य हैं। वे कभी एकसे अनेक नहीं भये हैं, इसीसे अनेकसे कभी एक भी नहीं हो सकते हैं। जैसे जीवन्मुक्त पुरुष देह सहित भिन्न-भिन्न रहते हैं। वैसे विदेह-मुक्त जीव भी स्वरूपसे न्यारा-न्यारा ही रहते हैं। यहाँ तो एक अवस्था, एक दर्जा, एक-समान स्थितिमात्र कथन किया गया है। जैसे दो बादशाह बराबरी-के पदवीमें रहते हैं। तैसे पारखस्वरूपके बोधमें हम—तुम यानी गुरु-शिष्य एक सादृश्य हो जाते हैं। बोध दोनोंका एकसमान हो जाता है। ऐसा सत्यन्यायमें समझना चाहिये॥ ५६४॥

१३. प्रथम विचार गहो तुम जानो। सत्य असत्य करो बिलछानी ॥५६५

टीकाः— अब यहाँसे हंस रहनीको ग्रहण करनेको बतलाते हैं। सद्गुरु कहते हैंः— हे विवेकी शिष्य! अब उपदेश सुनो! हंस वा मनुष्य देहमें सर्वप्रथम स्वरूप बोध होनेके लिये और फिर बोधकी परिपुष्टि ठहरावके लिये सद्गुणोंमें पहले ही विचार तत्त्वको ग्रहण करो। और सत्यनिर्णयसे बिलछान करके सत्य तथा असत्यको पहिचान करो। विवेक दृष्टिसे देखकर खूब बारीकीसे छानबिन करके अमनियाँ करो। जड़-चैतन्यका निर्णय करो, सत्यासत्य, सारासार, बन्ध-मुक्ति, कर्तव्याकर्तव्य, ग्राह्य, त्याज्य, इन्होंकी ठीक-ठीक लक्षणोंको जानो॥ ५६५॥

१४. छानि छानि सब असत्य उड़ावो । साँच तत्त्व तबहीं तुम पावो ॥ ५६६

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— फिर विचारसे जो कुछ भी तुम्हें असत्य, अयुक्त, अग्राह्य, असार, अकर्तव्य, बन्धनरूप दिखाई देवें, तो उन्हें छान छानके खोज लगा-लगाके सारे असत्यको उड़ा दो, फेंक दो, मानन्दीको निकालके परित्याग कर दो। इस प्रकारसे जब सम्पूर्ण असत्य, भास, धोखा, उड़ जायगी, छूट जायगी, तभी तुम साँच तत्त्वके धारणाको ठीकसे पा जाओगे। अर्थात् छान-बीन करके असत्य मानन्दीको हटाते ही स्वयं स्वरूप नित्य, सत्य, चैतन्य पारखकी अटल स्थिति तब तुम अपने-आपही पा जावोगे। असत्यका विनाश होनेपर फिर वहाँपर सत्य आपही प्रगट हो जाता है। अतएव विचार कर-करके हृदयसे असत्य भासको परित्याग करो, तब तुम स्वयं ही सत् स्वरूप रह जावोगे, यह निश्चयसे जानो ॥ ५६६ ॥

१५. असत्य नाशमानके माने । बहुविधि भय जीवनको ताने ॥ ५६७ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य! असत्य या मिथ्या कल्पनारूप ईश्वरकर्ता, ब्रह्म, परमात्मा, तैंतीस कोटि देवी-देवता, भूत-प्रेत, यक्ष-राक्षस, खुदा, वगैरहकी भावना, मानन्दी, करनेसे और नाशमान् शरीर पञ्च विषयादि माया-मोह एवं जगत् पदार्थोंमें दृढ़ वासना टिका रखनेके कारणसे ही बहुत प्रकारसे भीतर-बाहरका भय; मृत्युका डर, चौरासी योनियोंमें नाना दुःख भोगनेका भय, अनिष्ट वा विनाश होनेका भय, इत्यादि प्रकारसे चारों तरफसे सब जीवोंको भ्रमरूपी भयने ताना-तान् करके खैंच रखा है। नाना भयोंको उत्पन्न करनेवाली मुख्य कारण असत्य और नाशमान् इन्हीं दोनोंके दृढ़ मानन्दी करना है। उसीसे भयभीत होके जड़ाध्यासी जीव सब आवागमन त्रिविधि तापमें तने हुये लटके पड़े हैं ॥ ५६७ ॥

१६. भयते धीरज छूटे भाई ! धीरज गये अधीरता आई ॥ ५६८ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—हे भाई! शिष्य! मिथ्या भयमें

व्याकुल होके घबरा जानेसे शाहस, धैर्य, हिम्मत, पुरुषार्थ पुरुषोंका छूट जाता है। जिससे वह बिलकुल ही कायर, डरपोक हो जाता है। जब मजबूत ढालके समान रक्षा करनेवाला धैर्य निकल गया, तो सहज ही अधीरता आ जाती है। अधीर मनुष्य हित, अहितका भी विचार नहीं करता है। जैसे रोगी रोगसे अधीर होनेपर जिसने जो-जो औषधि बताया, सो सबहीं बिना विचारे करने लग जाता है। अन्ततोगत्वा हानि ही उठाता है। वैसे ही मनुष्योंमें अधीरता आ-जानेपर संसारमें नाना दुःख पायके घबराता है, तब दुःख छूटनेके लिये जिसने जैसा-जैसा कर्म, उपासना, योग, ज्ञानादिकी साधनायें बताये, सो सब करने लग जाते हैं। चार धाम, चौंसठ तीर्थ, जप, तप, व्रत, इत्यादि करके महाभ्रम चक्रमें गिरके दुर्गतिको प्राप्त होते हैं। अतएव धैर्यको विनाश करके अधैर्यको ले आनेवाला मुख्य कारण भय-भूलकी भावना ही है, ऐसा जानो ॥ ५६८ ॥

१७. नास्ति असत्य मानना त्यागो। भय धोखामें कबहुँ न पागो॥ ५६९

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं—इसलिये हे सज्जनो ! तुम लोग यदि हित, कल्याण या मुक्ति चाहते हो, तो सत्यन्याई पारखी साधु-गुरुकी सत्संगमें ठहर करके नास्ति-असत्य = ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा, इत्यादिकी मिथ्या मानन्दीको परख करके एकदम परित्याग करो। और नाशमान् देहको अपना स्वरूप जो माने हो, सो असत्य मानन्दीको भी त्यागो। निज पारख स्वरूपके बोध प्राप्त करो। फिर धोखा करके होनेवाला झूठा भयमें कभी भी मत पड़ो। निज स्वरूपका यथार्थ बोध न होनेसे ही जीव भ्रमिक होके धोखासे नाना-तरहके भयमें पड़ते हैं। सबसे बड़ा भय मृत्युका होता है। समस्त प्राणी मरणके दुःखसे डरते हैं। परन्तु कर्मभोग पूरा होनेपर मृत्यु सभीका हो जाता है। इस कारण असत्य नाशवानके मानन्दी त्याग करके भय-धोखामें कभी पड़ना नहीं चाहिये ॥ ५६९ ॥

१८. अधीरता सब देउ बहाई। तब धीरज आपुहि रहि जाई ॥ ५७० ॥

टीका:— सद्गुरु कहते हैं:—हे मुमुक्षु जनो! सारासारका पारख विचार करके सम्पूर्ण अधीरताको बहाय दो, यानी अधैर्य, कायरपनाको परित्याग करके भयको छोड़ दो। काहेकेवास्ते अधीर होते हो! तुम्हारी हानि कभी कोई भी कर नहीं सकता है, तुम तो अखण्ड, सत्य हो, निज स्वरूपको समझ कर जब सकल अधैर्य मिटा दोगे, तब आपही-आप धैर्य, गम्भीरता, तुम्हारे अन्तःकरणमें रह जायगी। निज स्वरूपस्थितिमें अडिग्ग हो जाओगे। फिर सकल चञ्चलताएँ मिट जायँगी। स्वयंस्वरूपमें स्थिर धीर, वीर होके श्रीकबीरसाहेबके समान रह जाओ। अधैर्य नाश हुआ, तो तहाँपर सहज ही धैर्य कायम रह जायगा। धैर्य ही तुम्हें सकल आपत्तिसे बचायेगा। इसीसे हे प्रिय! तुम लोग धैर्यको ही अपनाओ ॥ ५७० ॥

१९. होनहार सोई तन होई। ताहि मान जिव काहेक रोई? ॥ ५७१ ॥

टीका:— सद्गुरु कहते हैं:—हे मनुष्यो! होनहार = प्रारब्ध कर्मोंका फल भोग जो कुछ होनेवाला है, सो तो इसी शरीर सम्बन्धमें ही भोग होवेगा। सो भी तुम्हारा ही पूर्वकृत कर्मका फल है। कहा है:—

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतंकर्म शुभाशुभम् ॥
नाभुक्तंक्षीयतेकर्म कल्पकोटि शतैरपि ॥" धर्मशास्त्रे ॥

—अर्थात् जीवने किया हुआ पाप-पुण्यरूप शुभ-अशुभ कर्मका फल भोग उसे अवश्य ही भोगना पड़ेगा। चाहे सैकड़ों कल्प व्यतीत हो जावें, तो भी किया हुआ कर्मोंका फल भोगे बिना मिटता नहीं, यानी भोगे बिना छुटकारा नहीं होता है ॥

"कबीर कमाई आपनी, निष्फल कभी न जाय ॥
बोया पेड़ बबूलका, तो आम कहाँ ते खाय? ॥"
आपन कर्म न मेटो जाई ॥
कर्मका लिखा मिटे धौं कैसे? जो युग कोटि सिराई ॥ बी०श०११० ॥

—इस कारणसे जो कुछ कर्म अध्यास तुमने प्रथम बना रखे हो,

सो भोग अवश्य होगा। होनहार कभी मिटता नहीं। परन्तु विचार करो, जो कुछ होना है हानि, लाभ, सो इसी जड़ शरीर सम्बन्धतक ही तो होगा। तुम तो शरीरसे भिन्न चैतन्य जीव पारखरूप हो। फिर इस जड़ शरीरको ही अपना स्वरूप मानके मिथ्या भ्रममें पड़के हे नरजीव! तुम क्यों रोते, कलपते, दुःखी होते हो!। विवेक करो, तुम तो अखण्ड हो, तुम्हारा कोई हानि कर नहीं सकता है। संसारमें ज्यादा ही कष्ट होगा, तो भिक्षा करके गुजारा करना पड़ेगा और अन्तमें नाशवान् शरीर तो छूट हो जायगा। इससे मिथ्या मानन्दी करके रोओ मत, धैर्य पकड़ो, सन्तोष करो! स्वरूपमें ठहरो। अर्थात् जो कुछ होनेवाला है, सो इसी शरीर तक ही होवेगा, चैतन्य स्वरूपका कुछ भी नाश होनेवाला नहीं। फिर उस नाशवान शरीरादिको मान-मानके आसक्ति करके हे जीव! तुम क्यों रोते हो? समझो, बूझो, देहादिकी मानन्दी ममता छोड़ करके सुखी हो जाओ ॥ ५७१ ॥

२०. तू अविनाशी सुखमें कहिये। याहि जानि धीरता लहिये ॥ ५७२ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— हे नर-जीव! तुम तो स्वरूपसे अविनाशी, अखण्ड, नित्य, सत्य, हो! त्रिकालमें कभी तुम्हारा बाध या नाश नहीं हो सकता है। तुम जीव ही हंस, अजर, अमर हो। तुम्हारे स्वरूपमें किसी प्रकारकी भी दुःखका लवलेशमात्र भी नहीं है, फिर तुम अपनेको दुःखी मान-मानके क्यों घबराते हो? अब ऐसा जानो कि—"मैं हंस जीव चैतन्य पारख स्वरूप अविनाशी सत्य हूँ।" ऐसा जान, बूझ, समझके धीरता प्राप्त करो। फिर जीवन्मुक्त दशामें सुख-स्वरूप कहलावोगे। अर्थात् शरीरके बनाव-बिगड़ावमें तुम्हारे स्वरूपका कुछ भी हानि, लाभ वा घट-बढ़ नहीं होता है। चैतन्य जीव तो सदा एकरस रहता है, स्वयं स्वरूपको अविनाशी कहा जाता है। सो इस प्रकार गुरु पारख बोधको जानकर धैर्य लेना चाहिये। ऐसे धैर्यवान् सन्त पारखी जीवन्मुक्तिके सुखमें रहनेवाले कहे जाते

हैं। अतएव तुम भी ऐसे ही विचार कर सुखमें स्थित हो जाओ॥५७२॥

२१. शील वचन बोलो मृदुबानी। दुःख सुख सहो छाड़ि अभिमानी ५७३

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—और हे हितेच्छुक हंस मनुष्यो! इस प्रकार विचार, सत्य, धैर्यको धारण करनेके उपरान्त फिर सद्गुण शील तत्त्वको भी अच्छी तरहसे धारण करो। नम्रता, कोमलता, दीनता, साधु-गुरुकी दासातन, गरीबी, सहनशक्ति, इत्यादि रहनीको ही शीलस्वभाव कहते हैं। तहाँ संसारमें रहते हुये बोलनेका काम पड़े, वा उपदेश देना पड़े, कुछ कहना-सुनना पड़े, तो उस हालतमें शील-स्नेहयुक्त गुरुमुख निर्णयकी वचन बोलो, तब भी मीठी वाणी उच्चारण करो। मधुर कोमल शब्दसे सबका हृदय शान्त हो जाता है। इसलिये कठोर, कर्कश, तीव्र, कटु वाक्य, कभी मत बोलो। हरवक्त मृदुवाणी ही बोला करो! इस बारेमें सद्गुरुने कहा हैः—

साखीः— बोल तो अमोल है, जो कोई बोलै जान॥
हिये तराजू तौलिके, तब मुख बाहर आन॥ २७६ ॥ बी० सा० ॥
मधुर वचन है औषधी, कटुक वचन है तीर॥
श्रवण द्वार होय सञ्चरे, सालै सकल शरीर॥ ३०१ ॥ बी० सा० ॥
शब्द सम्भारे बोलिये, शब्दका हाथ न पाव॥
एक शब्द औषधि करै, एक शब्द करै घाव॥ पञ्चग्रन्थी, मानुष वि० ॥
मीठा सबसे बोलिये, सुख उपजे चहुँ ओर॥
वशी करन यह मन्त्र है, तजिये वचन कठोर॥ तीसायन्त्र ॥

और विचार रहनी रखनेके लिये भी सद्गुरुने बताये हैंः—

कर विचार विकार परिहर। तरण तारण सोय॥ बीजक, शब्द ६० ॥

साखीः— नाना रङ्ग तरङ्ग है, मन मकरन्द असूझ॥
कहहिं कबीर पुकारिके, तैं अकिलकला ले बूझ॥ ६४ ॥ बी० सा० ॥
एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि॥
है जैसा रहै तैसा, कहहिं कबीर विचारि॥ १२० ॥ बीजक, सा० ॥

साहु चोर चीन्हे नहीं, अन्धा मतिका हीन ॥
पारख बिना बिनाश है, कर विचार होहू भीन ॥ १५६ ॥ बी० सा० ॥
राह बिचारी क्या करे ?, जो पन्थि न चले विचार ॥
आपन मारग छोड़िके, फिरे उजार उजार ॥ १६१ ॥ बी० सा० ॥

इत्यादि प्रकारसे सद्ग्रन्थ बीजकमें बहुत कुछ कहा है । तैसे पञ्चग्रन्थीमें भी लिखा है:—

दूसर शील विचारको अङ्गा । सब अस्थूल अङ्ग होय भङ्गा ॥
बुरे कर्म सो लज्जा करै । बिना विचारके पगु नहीं धरै ॥
जो काहूके होय उपकारा । मन वच कर्म करि लिये विचारा ॥
बिना शील बेपीर कठोरा । लम्पट विषई झूठा चोरा ॥
॥ मानुष विचार, चौपाई—भाग ६ ॥

तैसे सत्य रहनीके लिये भी बीजकमें कहा है:—

"कहहिं कबीर पद बूझै सोई । मुख हृदया जाके एकै होई ॥" बी० शब्द ७६ ॥
कहहिं कबीर कासों कहौं, सकलो जग अन्धा ॥
साँचेसे भागा फिरै, झूठेका बन्दा ॥ बीजक, शब्द ११३ ॥
साखी:— साँचे श्राप न लागे, साँचे काल न खाय ॥
साँचहि साँचा जो चलै, ताको काह नशाय ? ॥ ३०८ ॥ बी० सा० ॥
साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ॥
जाके हृदया साँच है, ताके हृदया आप ॥ ३३४ ॥ बी० सा० ॥
मानुष तेरा गुण बड़ा, मासु न आवै काज ॥
हाड़ न होते आभरण, त्वचा न बाजन बाज ॥ १६६ ॥ बी० सा० ॥

उसी बारेमें पञ्चग्रन्थीमें भी लिखा है सुनिये:—

हृदया साँच-साँच मुख भाखै । कपट खोट एकौ नहिं राखै ॥
कोई बात कहै नहिं काँची । बोल अडोल भाखे सो साँची ॥
जेहि विधि कार्य जीवको होई । निर्णय वाक्य उचारै सोई ॥
गुरु साँचा साँची सो बानी । झूठेके सङ्ग मूलहु हानी ॥
॥ पञ्च ग्रन्थी, मानुष विचार ॥

धैर्यके लिये भी कहा है:—

सङ्कट सोच-पोच यह कलिमा। बहुतक व्याधि शरीरा ॥
जहाँ धीर गम्भीर अति निश्चल। तहाँ उठि मिलहु कबीरा! ॥ बी० शब्द २६ ॥
अजहुँ लेहुँ छुड़ाय काल सो। जो करै सुरति सँभारी ॥ बी० शब्द ५६ ॥

साखीः— पूरा साहेब सेइये, सब विधि पूरा होय ॥
ओछेसे नेह लगायके, मूलहु आवै खोय ॥ बीजक, साखी ३०६ ॥
साधू होना चाहिये, पक्का होयके खेल ॥
कच्चा सरसों पेरिके, खरी भया नहिं तेल ॥ बीजक, साखी २८० ॥

इस प्रकार सत्य, विचार, शील, धैर्य ये चारों प्रमाण संयुक्त ऊपर दर्शा दिया गया है। सो शुद्ध तत्त्व हंस रहनीके लिये धारण करना चाहिये। इसलिये संक्षेपमें ग्रन्थकर्ताने रहनीके लिये उनको वर्णन किये हैं ॥ और हे जिज्ञासु शिष्य! सर्वदा मधुर वाणी उच्चारण करके ही शील-स्वभावसे यथार्थ निर्णयके वचन ही बोलो। चाहे दूसरे व्यक्ति कठोर वचन भी कहैं, तो भी तुम अपने तरफसे शीलके मधुर वचन ही कहो। देहके वर्तमान व्यवहारमें संस्कारके अनुसार दुःख, सुख, हानी, लाभ, कष्ट, क्लेश, आधि, व्याधि, उपाधि इत्यादि सभी आ-पड़ते हैं। उनमें देहाभिमान्, हंकार, क्रोधादि विकार परित्याग करके सहन शीलता धारण करो। यानी अभिमान्को छोड़के देहमें जो भी दुःख-सुख होवें, उसे गंभीर होके सहन करो। सहन शक्ति बढ़नेपर सब आपत्तियाँ टल जाती हैं, आप ही मिट जाती हैं, इसीसे जीव भी बन्धनोंसे रहित हो जाता है, सो जानो ॥ ५७३ ॥

२२. दुःख सुख भोग नास्ति सब जानो। शील भाव हृदयामें आनो ॥५७४

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— हे मुमुक्षुओ! विवेक करो, दुःख और सुख सम्बन्धि सब भोगोंको नास्ति, असत्य, मानन्दीमात्र ही जानलो। क्योंकि सुख-दुःख कोई साकार पदार्थ नहीं है। यदि

प्रमाणु संयुक्त साकार वस्तु सुख-दुःख होता, तो फिर वह कभी किसी प्रयत्नसे भी नहीं मिटता। परन्तु यहाँ तो घटना, बढ़ना, कम-ज्यादा मानना फिर कभी दुःख होना, तो कभी सुख होना, इत्यादि कार्य मनके मानन्दी अध्यास करके देह सम्बन्धमें होते हैं। उसका मूल स्थान तन-मन ही नास्ति या नाशमान् है, फिर वह सत्य कैसे हो सकता है? कभी नहीं। पूर्व कर्मानुसार जैसे वासना बनी है, वैसे ही स्थूल शरीरके सम्बन्धमें दुःख और सुख भोग होता है। परन्तु वह मनके मानन्दी, भावना, भ्रम, भूलका ही विकार है। अतएव सम्पूर्ण दुःख और सुखको नास्ति ही जानो। उससे न्यारा अपने स्वरूपको पहिचानो। और देह रहेतक शील, सन्तोषकी शुद्ध भावना नम्रता, कोमलता, उदारतादि, इन्हीं सद्गुणोंको अपने हृदयमें लाके रखो। अपनेमें शील स्वभाव ही प्रगट करके लाओ। हंस रहनी-रहस्यको ही दृढ़तासे धारण करो ॥ ५७४ ॥

२३. दया सदा राखो दिल माहीं। बिना दया कारज कछु नाहीं ॥५७५॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:— और हे शिष्य! हृदयमें सदा-सर्वदा दया धर्मको भी टिकाये रखो। क्योंकि दया धर्म में प्रवीण हुये बिना कल्याण-हितका कुछ भी कार्य पूरा हो नहीं सकता है। दया दो प्रकारकी होती हैं, निजदया और परदया, ऐसा कहलाता है। अपने जीवको जड़ाध्यासादि बन्धनोंसे निकालकर मुक्तिमार्गमें लगाना, सत्पुरुषार्थ, सत्संग विचार करना, सद्गुण रहनी धारण करना, इस तरह अपने उद्धार करनेमें लगाना, सो 'निजदया' है। और मन, वचन, कर्मसे किसीकी घात नहीं करना, बने वहाँ तक छोटे-बड़े प्राणियोंकी रक्षा करना। कुमार्गसे हटाकर सुमार्गमें लगाना, सत्य उपदेश देना, इत्यादि तरहसे 'परदया' होता है। यह दोनों तरहकी दया अपने दिलमें रखना चाहिये। निज दया तथा परदयामें बाधा होनेवाला कुछ भी कार्य करना नहीं चाहिये। यह दोनों प्रकारके दया पालन किये बिना और कुछ भी करके जीवोंका

कल्याण होता नहीं। क्योंकि—"धर्मस्य मूलंदया" **धर्मका मूल स्तम्भ दया हो है।**

श्लोकः—"करुणा धर्म मूलस्य पापं गर्व विशेषतः ॥
मुक्तिमिच्छसि चेत्तात ! विषवत् गर्वमेत् त्यज ॥"

— दया ही धर्मका मूल है, विशेष करके गर्व या अभिमान ही पापका मूल है। हे शिष्य ! यदि तुझे मुक्तिकी इच्छा है, तो विषके समान समझके इस गर्वको परित्याग करो, ऐसा कहा है ॥

दोहाः— "दया धर्मका मूल है, पाप मूल अभिमान ॥
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घटमें प्राण ॥"

और सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजकमें निम्न प्रकारसे कहे हैंः—

साखीः— जीव बिना जीव बाँचे नहीं। जीवका जीव अधार ॥
जीव दया करि पालिये। पण्डित करो विचार ॥ १८२ ॥ बी० सा० ॥
जीव मति मारो बापुरा ! । सबका एकै प्राण ॥
हत्या कबहुँ न छूटि हैं। जो कोटिन सुनो पुराण ॥ २१२ ॥ बी० सा० ॥
जीवघात ना कीजिये। बहुरि लेत वै कान ॥
तीरथ गये न बाँचि हो। जो कोटि हीरा देहु दान ॥ २१३ ॥ बी० सा० ॥
है दयाल द्रोह नहिं वाके। कहहु कौनको मारा ? ॥ बी० ८ शब्द ॥
है मेहरवान् सबहिनको साहेब। ना जीता ना हारा ॥ बी० ८ शब्द ॥

और पञ्चग्रन्थीमें लिखा है किः—

तीसर दया मानुष व्यवहारा। निर्दया क्या करै विचारा ? ॥
दया धर्म हृदया जेहि नाहीं। भुक्ते नर्क सो यम पुर माहीं ॥
निर्वैरी वर्तै जगमाहीं। मन वच कर्म घात कोउ नाहीं ॥
मूल दया जो आप सँवारे। सँवरे और जीवको तारै ॥
॥ मानुष विचार, पञ्चग्रन्थी ॥

काल जाल ते जीव उबार। दया धरै चित दया अधार ॥
नाम दयाल कहाये सोय। दया धरै चित ऐसे होय ॥

चौथे दया धरै चित माहिं । बिना दया कारज कछु नाहिं ॥
॥ सारशब्द निर्णय, पञ्चग्रन्थी ॥

रहस दयाल रहहु लौ लाये । आश गाँस छूटे पारख पाये ॥ टकसार ॥

इसलिये दिलमें सदा दया रखो, इसी दया करके तुम्हारा उद्धार होगा । दयाके बिना तो मुक्तिके कार्य कुछ भी पूर्ण नहीं होती है, ऐसा समझे रहो ॥ ५७५ ॥

२४. ममता गर्भ छाड़िके भाई ! सदा करो साधुन सेवकाई ॥५७६॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— इस कारणसे हे जिज्ञासु मनुष्यो ! संसारी पदार्थ, परिवार, और देहादिकी ममता-माया-मोह, तथा गर्व = हङ्कार, अभिमान्, एवं छल, छिद्र, कपट-प्रपञ्च, दम्भ, इत्यादि सम्पूर्ण विकारको छोड़ दो । इनकी भावनामात्र भी मनमें मत रखो । सदाकाल विवेकी सच्चेसाधु पारखी सन्त समाजमें रहिके उन्हीं साधुओंकी सेवकाई = दासत्त्व भावसे भक्तिभाव, सेवा, टहल, बन्दगी, चाकरी सब प्रकारसे करते रहना चाहिये । क्योंकि चैतन्य साधु-गुरुके भक्तिसे ही मुक्ति मिलती है । यह बड़ा ही उपयोगी चीज है । निष्कपट शुद्ध भावसे किया हुआ गुरुभक्ति सेवाके प्रतापसे अन्तः करण शुद्ध होता है, अभिमान् , मद-मत्सरादि दोष दूर हो जाते हैं, चञ्चलता मिटके स्थिरता आ जाती है, माया-मोहका आवर्ण पर्दा छिन्न-भिन्न हो जाता है । सत्य ज्ञान पारखकी दृढ़ता हो जाती है, स्थितिकी परिपुष्टि भी होती रहती है । नित्य प्रति सत्योपदेश श्रवण, मनन होते रहनेसे मनके सब कस्मल भी साफ हो जाते हैं । इसलिये हे भाई ! ममता और गर्वको छोड़करके पारखी साधु-गुरुकी ही सदा सेवा करते रहो, इसमें आलस्य मत करो ॥ ५७६ ॥

२५. साधुनके चरणामृत लीजे । मुख्य पूजा आदर सो कीजे ॥ ५७७ ॥

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— और सत्यन्याई विवेकी पारखी साधु गुरु या विचारमान् सन्त-महात्माओंकी बड़ी भाव-भक्तिपूर्वक मुख्य-रूपसे उन्हें ही इष्ट देवता मानकर आदर, मान, सत्कार, करके

विधिपूर्वक गुरु-साधुकी पूजा, आरती, बन्दना, भेट करना चाहिये। और भक्तिको परिपुष्ट रखनेके लिये ऐसे श्रेष्ठ साधुओंकी चरणामृत भी लेना चाहिये। पारखी सन्त ही चैतन्यरूप साक्षात् सच्चे देवता है, देह बन्धनोंसे छुड़ानेवाले बन्दीछोर हैं। इसलिये ऐसे सन्तोंके चरणोंदक पान करनेमें यथार्थ लाभ है। आपकी सेवा, पूजा, बन्दगी करते रहना चाहिये। भण्डारा करना, भेट चढ़ाना भी हितकारी है। सत्यन्यायसे चरणामृतका भावार्थ ऐसा होता है कि, पारखी सद्गुरु के आचरणके अनुसार चलना और अमृत तुल्य सत्य उपदेशोंको ग्रहण करके पालन करना। जिससे पारख पदपर स्थिति होवे। जहाँ सर्व तृष्णा नष्ट होकर पूर्ण सन्तोष प्राप्त हो जाता है ॥ कहा हैः—

जी! अब मेरे तीरथ कौन करे? ॥
सब ही तीरथ गुरुके चरणा, जाते देख परे॥ शब्द, तिमिर भास्कर ॥

अतएव पारखी साधुओंके चरणामृत प्रेमपूर्वक ले लीजिये और मुख्य आदर सत्कार करके पूजा भी कर लीजिये ॥ ५७७ ॥

२६. यथाशक्ति पूजा सेवकाई। महा प्रसाद सन्तनको पाई ॥५७८॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और शक्ति अनुसार यथार्थ रीतिसे साधु-गुरुकी सेवा करके तन, मन, धन, नाशवान् पदार्थोंके अभिमान् छोड़कर सद्गुरुको भेट-पूजामें सर्वस्व अर्पण करके चढ़ा दीजिये। तैसे ही यथाशक्ति भेट-पूजा सब सन्तोंको भी चढ़ा देना चाहिये। जो कुछ बन सकै, दिलखोलके साधु-गुरुके निवाश स्थान, मठ, मन्दिर, कुटीमें जाकर मौका विशेषसे भण्डारा भी कर देना चाहिये। फिर ऐसे सन्त महात्माओंका पाया हुआ महाप्रसादरूप शीत प्रसाद भी याचना करके प्रेमपूर्वक पा-लेना चाहिये। यह सब चैतन्य गुरुभक्ति करनेका सर्वाङ्ग विधि है। भावार्थमें महाप्रसाद कहिये इष्ट पारखी श्री सद्गुरुदेवकी सत्यन्यायकी गुरुमुख वाणी जो उनके मुखारविन्दसे निकली, सो शिक्षा ग्रहण करके पारख बोधमें स्थिति कायम करना, जहाँपर क्षुधारूप सर्व इच्छा, वासना, आशा, हङ्कार, आदिके विकार

आप ही नष्ट होके निवृत्त हो जाते हैं। तहाँ पञ्चग्रन्थीमें भी कहा है:—

दोहा:— बन्दन चरणांमृत गहन, महाप्रसादी पाय ॥
मिष्ट वचन आनन्द-युत, पोषण विधि सब लाय ॥ २११ ॥ गुरुबोध ॥
सेवा लावै साधु गुरु, पूजै आठौं याम ॥
तीरथ चरणांमृत गहन, बीरा अचल मुकाम ॥ २०७ ॥
मन वच कर्म गुरु-साधुकी, आज्ञामा समुहाय ॥
द्रव्य जुरै रचै तिन्हें, वस्त्र अन्न जल प्याय ॥ २०८ ॥
शीत प्रसाद क्षुधा हरै, चरणोदक हरै प्यास ॥
बीरा पान दयालका, मेटत यमके त्रास ॥ ८० ॥ टकसार ॥

गुरुपूजा सन्तन सनमान । गुरु सन्त एकै सम जान ॥
प्रत्यक्ष देव सन्त गुरु मान । मान महातम भरम भुलान ॥
जा मुख निर्णय लखै विशेष । ते गुरु सम न और कोई लेष ॥
साहेब गुरु दास शिष्य होय । भक्ति तेई अधिकारी सोय ॥
॥ सारशब्द निर्णय, पञ्चग्रन्थी ॥

नहिं कछु साधन नहिं कछु युक्ति । नहिं कछु औढेराके उक्ति ॥
पूजा सन्तन गुरु सेवकाई । परख विलास अटल दरखलाई ॥टकसार॥

साखी:—पूजा सन्तन कीजिये !, सेवकाई गुरुकेर ॥ टकसार ॥
भूखे अन्न जेवाँइये !, पारख करहु सबेर ॥ २१६ ॥ पञ्चग्रन्थी ॥

— इन सब प्रमाणोंसे यथाशक्ति साधु-गुरुकी सेवकाई करके सन्तोंके महाप्रसाद पावना भेंट-पूजा अर्पण करना जिज्ञासु शिष्योंके मुख्य कर्तव्य है । वैसे ही करते रहना चाहिये ॥ ५७८ ॥

२७. तिनके माँझ जो पारख पायें । गुरु मूरति सो सन्त बताये ॥५७९॥

टीका:— सद्गुरु कहते हैं:— पूर्णत्यागी वैराग्यवान् हंस रहनी-रहस्य सद्गुण सम्पन्न उन्हीं विवेकी साधु-सन्तोंके मध्यमें या साधु समाजोंके मण्डल वा बीचमें जो-जिसने अपरोक्ष पारख बोधको गुरुकी दयासे जान पाये हैं, स्व-स्वरूपकी स्थिति कर पाये हैं, जीवन्मुक्त

पद्में प्रतिष्ठित हो गये हैं, एकरस पारख प्रकाशमें स्थित हो गये हैं। ऐसे जो हैं, सो आप परम पूज्य सर्वश्रेष्ठ सन्त-शिरोमणि या शिरमौर प्रत्यक्ष चैतन्यरूप सद्गुरु मूर्ति श्री गुरु कबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। पारखी सन्त-महात्मा आपको बन्दीछोर, पारख बोधदाता, जीवन्मुक्त श्रीकबीरसाहेबके समान मुक्तिदाता साक्षात् गुरुमूर्ति करके बतलाते हैं। पूर्वके पारखी सन्तोंने भी ऐसे ही निर्णय करके बता गये हैं, या बतलाये हैं। सो यह यथार्थ सत्य निर्णय है। ऐसे कोई बिरले ही होते हैं। साधु-सन्त भेषधारी तो बहुत होते हैं, परन्तु सच्चे सत्यन्यायी अपरोक्ष पारख बोध पाये हुये पारखी सन्त कोई एक दो ही होते हैं। सो उन्हींको सन्तोंने पूज्य गुरुमूर्ति कहिके बतलाये हैं, ऐसा जानो ॥ ५७९ ॥

२८. पारखी गुरु नहीं कछु भेदा। और सकल जग कीह्न निषेधा ॥५८०॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— अतएव पारखी सन्तोंमें और पारखी सद्गुरुके बोधमें कुछ भिन्न-भिन्न भेद-भाव नहीं रहता है। बोध दोनोंमें एक समान ही होता है। सिर्फ साधक अवस्था, और पूर्ण स्थितिके अवस्थामात्रका ही फरक होता है। जो अपरोक्ष पारख स्थितिमें पहुँच चुके हैं, वे सद्गुरुरूपमें होते हैं, और जो परोक्ष पारख बोधसे पुरुषार्थ करते हुये आगे बढ़ रहे हैं, सो वे साधु-सन्तरूपमें होते हैं। पश्चात् वे भी उसी स्थितिको प्राप्त हो जाते हैं। और पारख, पारखी, गुरु, यह तो एक ही वस्तुके तीन नाम है, उसमें कुछ भी भेद-भाव नहीं है। साधु-गुरु भी एक ही बात है, क्योंकि साधुरूपमें गुरु हैं, इसलिये साधु-गुरु कहा जाता है। इस प्रकार पारखी साधु और पारखी सद्गुरुमें वस्तुतः मुख्य भेद कुछ भी नहीं है; सिर्फ उपदेशक सद्गुरु कहलाते हैं, और उपदेश न करनेवाले साधुरूपमें ही रहते हैं। और एक समान ही रहनी, रहस्य, बोध दोनोंमें रहता है, और उन सद्गुरुके ही अनुयायी साधु हैं, इसलिये ऐसे सद्गुरु और साधु-सन्तोंकी प्रेमपूर्वक सेवा, पूजा, आरती, भेट, भण्डारा, टहल,

सत्संग विचार करते रहना चाहिये। इसके अतिरिक्त बेपारखी, भ्रमिक, जड़ाध्यासी, षट्दर्शन-९६ पाखण्डोंके भेषधारी, पक्ष-पाती, और सकल जगत्के गुरुवा लोगोंकी पूजा, संगत आदि करना नहीं चाहिये, यही निषेध किया गया है। इसके लिये सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने स्वयं ही बीजक सद्ग्रन्थमें कहा है:—

साखी:— "कर बन्दगी विवेककी, भेष धरे सब कोय ॥
सो बन्दगी बहि जानदे, जहाँ शब्द विवेक न होय" ॥ बी० सा० २६४ ॥

—विवेकी पारखी सन्तोंके ही बन्दगी, सेवा, पूजा, करनेसे ही हित होता है। वैसे तो भेष सब कोई धारण कर लेते हैं, परन्तु उनमें पारख बोध नहीं, फिर भेष कोई कामकी नहीं। जहाँ शब्दका विवेक होता नहीं, उसको बहि जाने दे, चले जाने दे, हटाके दूर कर दे, सो बन्दगी करनेके योग्य नहीं। कभी उनके कुसङ्गतमें नहीं पड़ना, वे भ्रमिक लोग बन्धनदाता काल ही बने हैं ॥

॥ ❀ ॥ साखी ॥ ❀ ॥

"वस्तू अन्तै खोजे अन्तै। क्योंकर आवै हाथ ? ॥
सज्जन सोई सराहिये। जो पारख राखै साथ ॥ २४६ ॥ बीजक, साखी ॥
गुरुकी दया साधुकी संगति। निकरि आव यहि द्वार ॥ ३०४ ॥ ,, ,,
ताते परी कालकी फाँसी, करहुन आपन सोच ॥
जहाँ सन्त तहाँ सन्त सिधावैं, मिलि रहैं धूतहिं धूत ॥ बीजक, रमैनी साखी ६४ ॥
सङ्गति कीजै साधुकी, हरै औरकी व्याधि ॥
ओछी संगति कूरकी, आठों पहर उपाधि ॥ बीजक, साखी २०७ ॥
संगतिसे सुख ऊपजे, कुसंगतिसे दुःख होय ॥
कहहिं कबीर तहाँ जाइये, जहाँ अपनी संगति होय ॥ २०८ ॥ बीजक, साखी ॥
जो मोहिं जाने, ताहिं मैं जानौं ॥ लोक वेदका, कहा न मानौं ।"
॥ २०० ॥ बीजक, साखी ॥

—इन सब प्रमाणोंसे पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गको छोड़ करके और सम्पूर्ण भ्रमिक मिथ्यावादी, पाखण्डी गुरुवा लोगोंके

कुसङ्गमें कतई जाना नहीं चाहिये। क्योंकि वे अन्याई, बन्धनदाई होनेसे काल बने हैं अतः उन्होंकी संगत करना निषिद्ध है। इसीसे परित्याग करने योग्य है। अतएव गुरुवा लोगोंको भेंट-पूजा भी देना नहीं चाहिये। उनको अपने यहाँ टिकायके सेवा करना भी हानिकारक है। क्योंकि वे लोग धूर्त, पाखण्डी होते हैं, तुम उनके जितने सहायता करोगे, वे उतने ही ज्यादा जाल, जंजाल फैलायेंगे। इसीलिये निषेध = मनाही, वर्जित किया गया है, जिससे जिज्ञासु जीवोंका अहित न हो। अगर मठ-मन्दिरमें वा गृहस्थोंके घरमें कोई भूखा, प्यासा होके आ गया, तो उन्हें जीव दया करके खाली खाने पूति अन्न-जल देकर बिदा कर देना चाहिये। किन्तु द्रव्य आदि देकर उनसे कभी प्रेम बढ़ाना नहीं चाहिये। यदि ऐसा हुआ, तो उनके दाव लगनेपर तुम्हें कुमार्गमें ही घसीटके ले जावेंगे। अतएव तुम्हें चेताके सावधान कर दिया गया है। पारखी साधु-गुरुमें कुछ भेद नहीं है, परन्तु और सकल जगत्में तो बहुत भेद है। इसलिये सद्गुरुने निषेध किया है। उस तरफ कभी लगना नहीं चाहिये, सो जानो ॥ ५८० ॥

२६. सदा विचार करहु तुम भाई! ज्यों लों देह बिखरि नहिं जाई॥ ५८१॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे भाई! सत्संगी जिज्ञासु शिष्य! जबतक देह सम्बन्ध छूटके विनाश हो नहीं जाता, यानी अन्तिम घड़ी मृत्युपर्यन्त; तबतक सदा-सर्वदा निजस्वरूप स्थिति पारखका ही विचार करते रहो। क्योंकि पूर्व कर्मरूप प्रारब्धके बेगसे यह शरीर बना है। इसमें संचित अध्यासके वेगसे देह रहे तक संकल्प विकल्पादि चित्त चतुष्टयोंका कार्य होता ही रहेगा! यदि सदा गुरु पारखका विवेक-विचार नहीं करोगे, तो देखे, सुने, भोगे हुये, बेप्रयोजनकी ही स्फुरणा उठा करेंगे, जिससे जड़ाध्यास ही पुष्ट होयगी, आगे वही बन्धनका कारण होगा। अतएव उन सब भावनाओंको भुलानेके लिये, मानसिक विकारको शान्त करनेके लिये

हे शिष्य ! जीते तक सदा पारखी साधु-गुरुके ही सत्संगमें रहा करो । वहाँ गुरु-साधुके सेवा-टहल, तन, मन, धन, वचन, लगायके करना, सद्ग्रन्थोंका पठन-पाठन करना, नित्यप्रति सत्संग विचार करते रहना । जड़-चैतन्य, सारासार, सत्यासत्य, बन्धमुक्ति आदिकी भेद जानकर यथार्थ विचार करते रहना । इस तरह सदा सत्य-स्वरूपका पारख विचार, रहनी-रहस्यका विचार, अपने स्वभावमें कितना बनाव हुआ और कितना रहनी धारण करना बाकी है, सो पूरा-पूरा विचार करके सर्वाङ्ग रहनीको धारणकर लेना चाहिये। जबतक देह साबूत है, शरीर बिखरि = नाश हो नहीं जाता, उस वक्त तक अपने स्वरूपका चिन्तन-विचार करते ही रहो। इससे अन्य वासनाएँ जमने नहीं पायेंगी, अतः आयु रहे तक सत्यनिर्णय-का ही विचार करते रहना चाहिये, सो जानो ॥ ५८१ ॥

३० पारख ऊपर थिर होय रहना । सकल परखना ना कछु गहना ॥५८२

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—हे शिष्य ! सर्वोपरि चैतन्य पारखपद जो निज स्वयं स्वरूप है, उसीमें ही स्थिति कायम करके स्थिर, शान्त, सन्तुष्ट, होय रहना चाहिये । सो तुम भी उसी पारखपदमें स्थिर होय रहो । जड़ तत्त्वोंके सम्बन्धमें होनेवाला जड़ भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना, काल, सन्धि, झाँईरूप, तत्त्व-मस्यादि तीनपद, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मादिके मानन्दी, अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, आदि सिद्धान्त जगत् विषय, इत्यादि सकलको पारख दृष्टिसे देख-देखके परखना, निर्णय करना, छान-बीन करना, यथार्थ पहिचान करके सम्पूर्ण कसर-खोटको परित्याग कर देना। और उनमेंसे कुछ भी मानन्दी विकार अपनेमें ग्रहण करके नहीं लेना। परखनमें आवे, उतनेको परखके त्यागते जाना, किन्तु कुछ ग्रहण नहीं करना। स्वयं स्वरूप पारखको और कुछ ग्रहण करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ पञ्चग्रन्थी गुरुबोधकी दोहा नं० ३५२ में लिखा है किः—

प्राप्ति जीव इच्छा नहीं, केवल हन्त छुड़ाव ।।
निज स्वरूप लखि दयायुत, दीन जानि अपनाव ।। ३५२ ॥ पं० ग्र० ॥
"त्याग सोई जो सदा सुखारी । आशा मोह भव फन्दा भारी ॥
करहु विचार तजहु सो आशा । संशय शोग मोह भ्रम नाशा ॥
पारख अटल सदा सुख करहू । भरमि-भरमि जिव काहे मरहू ॥
तजहु आश भ्रम जालके बानी । लहहु विलास परखपद जानी ।।" पं० ग्र० टक० ॥

अतएव सबको परखके परित्याग करना, तथा कुछ भी ग्रहण करना नहीं और निज पारख स्वरूपमें हो एकरस स्थिर होकर रहना, यही अन्तिम सार है, ऐसा जान लेना चाहिये ॥ ५८२ ॥

३१. वर्तमानमें वर्तो भाई ! भूत भविष्य सब देउ बहाई ।।५८३।।

टीकाः— सद्गुरु कहते हैः— और हे भाई ! सत् शिष्य ! तथा पारखी सन्तजनो ! अब आप लोग अपरोक्ष पारख बोधको जाग्रत् करके आगे-पीछेकी चिन्ता, चाहना, मानना, कल्पनादिको छोड़ करके सन्मुख आया हुआ प्रारब्धके गुजारामें ही सन्तुष्ट रहकर निराश वर्तमानमें ही बर्तो । "पारखस्वरूप चैतन्य हंस मैं अविनाशी सत्य हूँ !" ऐसा विवेक बुद्धिसे दृढ़ निश्चय करके सर्वदा शुद्ध चाल-चलनसे हंसवत् सारग्राही होकर वर्तमान प्रारब्ध भोगोंके व्यवहारोंमें शान्त चित्तसे वर्तो, बेगार माफिक देह गुजाराको चलाओ । और भूतकाल जो व्यतीत हो गया, तथा भविष्यत्काल जो पश्चात् होने-वाला है, इन दोनोंके फिकर, चिन्तन, नानासंकल्प-विकल्प अनेक पदार्थोंकी चाहनासे अनेकों कर्म करना, मनके चंचलता इत्यादिको एकदमसे दूर करके बहाय दो । क्योंकि भूत, भविष्यत्की चिन्तन करते रहनेसे नरजीवोंका स्वभाव चंचल हो जाता है, तो बुद्धि कभी स्थिर नहीं रहती है । जिससे जड़ाध्यासी हो करके आवागमनके अधिकारी हो जाते हैं । अतएव भूत, भविष्यत्की सब संकल्पोंको बहाय दो, छोड़ दो, हटाय दो । जो कुछ होनेवाला है, सो तो अवश्य होयेगा ही, उसमें सोच-सोचके चिन्तित क्यों होना ? और प्रारब्धके बाहर

सुख-दुःख और कुछ तो होवेगा ही नहीं। और प्रारब्ध भोगको कोई टाल सकता ही नहीं। फिर बीत गया और भवितव्यकी चिन्ता करनेसे क्या फायदा होगा? इसीसे मैं कहता हूँ कि— ऐसा यथार्थ समझ कर वर्तमानके देह व्यवहारमें ही सद्भावनायुक्त वर्तो। फिर एक दिन प्रारब्ध भोग भी आपही समाप्त हो जायगा, ऐसा जानो ॥ ५८३ ॥

३२. दुःख सुखमें आसक्त न होई। वर्णाश्रम माने नहिं कोई ॥५८४॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैं:— और वर्तमानमें भी प्रारब्ध कर्मानुसार दुःख-सुख, भोग नानातरहसे सन्मुखमें उपस्थित हो जाते हैं। परन्तु विवेक करके उसमें कदापि किसी प्रकारसे भी आसक्त, मोहित, आकृष्ट, होना नहीं चाहिये। क्योंकि विजातीय तत्त्वोंके सम्बन्धसे ही जीवको दुःख-सुख भास होता है। सो मानन्दीका कार्य होनेसे मिथ्या धोखा ही है! इसीसे पूर्णपरीक्षक पारखी कभी दुःख-सुखादि देहविकारमें आसक्त नहीं होते हैं। तुम्हें भी तैसे ही होना चाहिये। और चार वर्णः—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नामसे कहा है। इनके अन्तर्गत छत्तीस जात पृथक्-पृथक् माने हैं। तथा चार आश्रमः— ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ऐसे ठहराये हैं। इनके अन्तर्गत षट् दर्शन और ९६ पाखण्ड विस्तार किये हैं। ये सब बेपारखी लोगोंने माने हैं, इनमें कोई भी पारखपदको माननेवाले नहीं हैं। क्योंकि वे लोग बड़े पक्षपाती, अविचारी, हठी, शठी होते हैं। यह सामाजिक व्यवस्था, लोक-वेदका चाल, घेरा है। इसलिये पारखी सन्त वर्णाश्रमके कोई कुछ भी कल्पित भ्रम मानन्दीको मानते नहीं। क्योंकि उसमें कुछ सार नहीं है। मिथ्या वाहियातके आडम्बर मात्र हैं। "लोक-वेदका कहा न मानो" ये सद्गुरुका वाक्य है। अतएव शुद्ध आचार, विचार, हंस रहनीका बर्ताव तो जरूर रखना चाहिये। किन्तु झूठी वर्णाश्रमके अभिमान् लेके उसे कोई मत मानो। छूआछूतकी भ्रमको भी हटा दो। तथापि

विचारपूर्वक बर्ताव करो, गोलमाल भी मत करो। अशुद्धका त्याग और शुद्धका ग्रहण करना, यह तो हंसकी रहनी ही है, इसे पालन करो ॥ ५८४ ॥

३३. परख विलासी पारख युक्ता। परख स्वरूप सदा सो मुक्ता ॥५८५॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— पारखबोध रहनी-रहस्य संयुक्त जो सत्यन्याई, विवेकी, पारखनिष्ठ, पारखी सन्त होते हैं, सो परख-विलासी = पारख ज्ञानमें ही रमण, विलास, या विहार करनेवाले सच्चे-सत्संगी होते हैं। वे सचमुच बड़े सुखी, प्रसन्न वदन, शान्त, शील, समतायुक्त निर्भ्रान्त होते हैं। जन्मभर पारख ज्ञानमें ही उनका विलास होता रहता है, पूर्ण अपरोक्ष पारख बोधयुक्त हैं, इसलिये सो ऐसे पारखी सन्त जीते ही भवबन्धनसे मुक्त होनेसे जीवन्मुक्त सदा निज पारख स्वरूपमें ही स्थित हो रहते हैं। प्रारब्ध शेष है, तबतक निवृत्तिसे अनुकूल स्थानमें रहते हुये वा विचरते हुये जीवन व्यतीत करते हैं। फिर प्रारब्ध पूर्ण होकर देहान्त होने-के पश्चात् सदाके लिये विदेहमुक्त पारख स्वरूपमें स्थिर हो जाते हैं। अतएव पारखके युक्ति सहित पारखी सन्तोंके सत्संग विलास-में रहते हुये निज पारख स्वरूपमें सदाके लिये स्थिति कायम करके सो तुम भी उसी प्रकार मुक्त हो जाओ ॥ ५८५ ॥

३४. सब निर्णयको जो है सारा। सोई जानो परख विचारा ॥५८६॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और इस निर्णयसार ग्रन्थकी तथा समस्त सिद्धान्तोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ यथार्थ सत्यनिर्णयका निचोड़ जो कुछ सत्यसार है, सोई यह पारख विचार है। इससे बढ़ करके और कुछ भी संसारमें सार नहीं है। जड़ और चैतन्य इन दोनों पदार्थोंमें विचार करके देखो, तो चैतन्यपद ही श्रेष्ठ सार है। जीवने ही तीनों पदकी मानन्दी करके ठहराया है, विना पारख भ्रम, भूलमें पड़ा था, सद्गुरुकी दयासे जब पारखबोध भई, तब तमाम भ्रम, भूल मिट

गई । फिर निज स्व-स्वरूपकी स्थिति हो गई । हंसको जीवन्मुक्ति प्राप्त हो गई । इस प्रकार सकल निर्णयके जो खास असली सार है, सोई पारखपद है; गुरु विचारसे तुम भी उसे अच्छी तरहसे जान लो ! उसे जान लेनेपर फिर कुछ और जानना बाकी नहीं रह जाता है, सोई स्वयं स्वरूपको जानके-समझके तुम भी मुक्त हो जाओ, ऐसा जान लो ॥ ५८६ ॥

३५. सो अब सकलों तोहि बतावा। करु विचार जो तुम मन भावा॥५८७

टीकाः—सद्गुरु कहते हैंः— हे मुमुक्षु सत्शिष्य ! अब तक तुम्हारे बोधोक्ति प्रश्नके सम्पूर्ण निर्णय उत्तरके अतिरिक्त सत्य रहनीका विवरण मुमुक्षुका कर्तव्य, और बोध होनेके उपरान्त जीवनपर्यन्त किस प्रकार रहना चाहिये ? उस बारेमें खुलासा करके सब बात बतला दिया हूँ । जीव बन्धनोंमें कैसे पड़ा ? कैसे छूटेगा ? यहाँसे लेकरके सम्पूर्ण बन्धन और मुक्ति स्थितितककी बात एक-एक अलग-अलग प्रकरणमें गुरुमुख न्याय मुताबिक निर्णय करके अब-तक मैंने तुम्हें बता करके समझा चुका हूँ । सारे सिद्धान्तोंका भेद, गुप्त बातें, जटिल, कठिन-कठिन रहस्य, कसर-खोट, सार-असारकी पहिचान भी तुम्हें बता दिया हूँ । एक प्रकारसे अपना हृदय खोलके ही तुम्हें बताके देखा चुका हूँ । तुमने भी भलीविधि समझ लिया है । अब तुम्हें बिदाई देनेका वक्त है, अभी अन्तमें इतना ही कहना है कि, बन्धन, और मुक्तिको दोनों मार्गोंको तुमने सुन-समझके जानकर देख ही लिया है । अब तुम्हारे मनमें जो श्रेयस्कर जँचे, जैसा अच्छा लगे, जिसमें तुम्हारा भाव, भक्ति, प्रेम टिके, हित-कल्याण होवे, वैसा ही विचार और बर्ताव करो, यानी सारी बातें अबतक मैंने तुम्हें बता चुका हूँ ! अब तुम्हारे मनमें जो भावे, वैसा विचार और सत् कर्तव्य पालन करके विचरण करो, सदा सावधान रहो, कहीं भूलना नहीं । कहा हैः—

"सन्तो ! जागत नीन्द न कीजै ॥

काल न खाय कल्प नहिं व्यापै । देह जरा नहिं छीजै ॥" बीजक शब्द २ ॥

सद्गुरुके इस चेतावनी वाक्यको हमेशा ख्याल रखा करो, अपना कल्याण करो। यानी जो बात मैंने अबतक तुमको सकल भेद समझाके बतलाया हूँ, सोई बात तुम सदाके लिये विचार करो, और जैसा अच्छा लगे, तैसा विचारपूर्वक ही बर्ताव करो, सो जानो ॥ ५८७ ॥

॥ * ॥ ग्रन्थ समाप्तिके अन्तिम वक्तव्य ॥ छन्द भाग १ ॥ * ॥

(१) छन्दः—निर्णयसार सो ग्रन्थ सकलों । तोहि कह्यों समुझायके ॥५८८

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब ग्रन्थ समाप्तिके वक्त अन्तिम पद दो छन्दोंमें कहते हैंः— हे विवेकी शिष्य ! सम्पूर्ण ग्रन्थोंके सार-सार निर्णय करके जमा-खर्चका टोटल लगाके सद्ग्रन्थ बीजकको सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कह गये हैं । उसी प्रमाणसे सब सार-असारका सत्य निर्णय करके यह निर्णयसार नामक ग्रन्थ भी निर्माण हुआ है । सो इसमें सकल भवग्रन्थी, कर्मग्रन्थी, भ्रमग्रन्थीकी निर्णय दर्शाकर मैंने अच्छी तरहसे समझाय करके तुझे कहा, या सब बात कह दिया हूँ । इस निर्णयसारमें गुरुवा लोगोंके सार निर्णय माना हुआ सिद्धान्त और सद्गुरुका यथार्थ निर्णयका सिद्धान्त एक-एक करके क्रमशः निर्णय करके सम्पूर्ण विधिपूर्वक तुमको समझाके कहा हूँ ॥ ५८८ ॥

परख रहनी परख वाणी । परख पद परखायके ॥ ५८९ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— इसके अन्तिम निर्णयमें मैंने हंसकी रहनी, पारखी जीवन्मुक्त सन्तोंकी रहनी, रहस्य धारणा, पारख बोध, पारखी सद्गुरुकी सत्यन्यायकी गुरुमुख वाणी, सर्वोच्च-सर्वश्रेष्ट पारखपद या गुरुपद इन सबोंकी गुण-लक्षण विधि-विधानसे परखाय करके तुम्हें बता दिया हूँ । अर्थात् शुरूसे एक-एक करके परखाते, लखाते, समझाते-बुझाते, कसर खोटका पहिचान करायके पारखी

सन्तोंकी रहनी, रहस्य, और उनके सत्य निर्णयकी वाणीसे पारख-पद तकका बोध दर्शन भी तुम्हें करा दिया हूँ। अब तुमने सोई पारख रहनीमें रहना, पारख गुरुनिर्णयकी वाणी ही कहना, और पारख-पदमें ही अपने स्थित होना चाहिये! तथा जिज्ञासुओंको भी इसी प्रकारसे परखायके पारख बोध करना, इसी प्रकार सदा बर्तना चाहिये! ॥ ५८९ ॥

तत्त्वमसिको मानवो। बहु बन्धन जीयराको भयो ॥ ५९० ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः—हे शिष्य! असंख्य जीवोंको या बहुतेक मनुष्य जीवोंको अनेक तरहसे कठिन बन्धन यही तत्त्वमसिके मानन्दी करके ही हुआ है और वैसे ही उसीसे बहुत बन्धन हो ही रहा है। तत्त्वमसिका व्याख्या प्रथम हो हो चुका है। वहाँ अज्ञान, ज्ञान, विज्ञानकी प्रपञ्च, पञ्चविषय, पञ्चकोशोंकी नानाफन्दा विस्तारसे कहा जा चुका है। मनुष्य देह कर्मभूमिका है, यहाँ ही कर्म अध्यास करके संस्कार टिकते हैं। भूमण्डल भरके सम्पूर्ण मनुष्य कोई तो परोक्ष, अपरोक्षसे त्वंपदके अज्ञानको ही दृढ़ कर रहे हैं। कोई तत्पद ज्ञानकी और कोई असिपद विज्ञानकी जटिल मानन्दीमें ही पड़े हैं। इसी त्रिपदकी मानन्दीसे समस्त जीवोंको बहुत कठिन बन्धन हो गया है, और हो रहा है ॥ ५९० ॥

सो गाँस-फाँस परखाय। पारख पाय गुरुपद तोही लह्यो ॥५९१॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे शिष्य! सो सबही गाँस = गाँठी, जोड़, मिलानरूप अध्यासोंको और फाँस = खानी-वाणीके फन्दा, जाल, फाँसी आदिको मैंने तुम्हें अच्छी तरहसे परखायके पहिचान करा दिया हूँ। पारख दृष्टिको पायके तुमने भी मैंने जैसे-जैसे पर-खाया हूँ, वैसे-वैसे ठीक तरहसे परख ही लिये हो, इसलिये पारख गुरुपदकी प्राप्ति, बोधकी दृढ़ निश्चय तुम्हें भी हो गया है। अर्थात् सो सम्पूर्ण गाँस, फाँसको परखायके दर्शा दिया हूँ। पारख पानेसे

सो फन्दोंसे तुम छूट गये हो, तुम्हें गुरुपदरूप पारख स्थिति निश्चयसे मिल गया है, जो पारख तुमने पाया है, सोई गुरुपद तुमको मिला है । उसी पदमें तुम अब सदाके लिये ठहरे रहो ॥ ५९१ ॥

(२) छन्दः—अब परखरूपि कबीर भौ। भय भीर तोर निरुवारिहै ॥५९२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे शिष्य ! अब तो तुम पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने दर्शाया हुआ गुरुपदको गुरुकी दयासे प्राप्त हो गया है । इसलिये खानी-वाणीरूप भयङ्कर भवसागरके भयका भीड़ दोषोंको गुरुनिर्णयसे परख करके तोड़ डालो, हटा दो । अथवा जो पारख बोध श्रीकबीरसाहेबने प्रदर्शित किये थे, सोई यथार्थतः तुम्हें भी समझ बोध हो जानेसे हे नर-जीव ! तुम अब स्वयं पारखस्वरूप ही हो गये हो ! अतएव अब वही गुरुबोध ही सत्यासत्यके निर्णय या निरुवार करके तुम्हारे सम्पूर्ण भव-भय-भीरको तोड़कर छिन्न-भिन्न कर देंगे । अर्थात् जड़-चैतन्यका यथार्थ निर्णय करके सकल भव-भयको तोड़ताड़के मिटा दो, तब कायावीर श्रीकबीररूपी यह जीव पारख स्वरूपमें अटल हो जायगा ॥ ५९२ ॥

जो पढ़ई ग्रन्थ यह करई निर्णय । परख ताकहँ तारि है ॥ ५९३ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— जिज्ञासु शिष्यने जो-जो प्रश्न करता गया, और सद्गुरुने उन सबोंका उत्तर सार शब्दद्वारा यथार्थ निर्णय करके समझाते गये । सोई गुरु-शिष्यको सम्वाद, प्रश्नोत्तर रूपमें लेखबद्ध करके यह "निर्णयसार" ग्रन्थ बना । अब जो कोई जिज्ञासु सारग्राही मुमुक्षु मनुष्य पक्षपात त्याग करके इस निर्णयसार ग्रन्थको गुरुमुखसे विधिपूर्वक आदिसे अन्ततक चित्त लगायके पढ़ेंगे, और तत्त्वमस्यादि वाणी जाल तथा खानी जालको तटस्थ होकर निर्णय करेंगे, तो उन्हें भी सद्गुरुकी दयासे पारख बोध प्राप्त हो जायगा। और सोई गुरु पारख बोध उन जिज्ञासु मनुष्योंको भवधारासे पार उतार देगा । यदि कोई मनुष्य अपने स्वयं ही इस ग्रन्थको पढ़ करके इसमें लिखा हुआ निर्णयको ग्रहण करके धारण करेंगे, तब उसे भी परोक्ष

पारख ज्ञान होकर सकल भ्रमसे तार देगा। फिर तो उसकी सब भूल छूट जायगी। पश्चात् पारखी सद्गुरुके दर्शन-सत्सङ्ग विचार करके वह भी कृतकृत्य हो जायगा, ऐसा जानो ॥ ५९३ ॥

परख पद ताको मिलै। याको करै अभ्यास हो ॥ ५९४ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— हे शिष्य ! जो इस निर्णयसारको भलीभाँति समग्र कण्ठाग्र करके गुरु विचारसे स्वरूप स्थितिमें स्थिर होनेका अभ्यास, सत्साधना करेंगे या विवेक-विचार करते रहेंगे, तो उन्हें अवश्यमेव पुरुषार्थ सफल होके अपरोक्ष पारख बोध भी मिल जायगा। और नित्यप्रति इस ग्रन्थको पढ़नेका वा पाठ करनेका अभ्यास करेगा, तो उसे काल, सन्धि, झाँईकी पहिचान होकर परोक्ष-रूपसे पारखपदका बोध भी जरूर ही हो जायगा। और पारखी सद्गुरुके शरण-ग्रहण करके उनके बताये अनुसार नियम पालन करके पुरुषार्थ बढ़ाते हुए पारख ज्ञानका पूरा-पूरा अभ्यास करेगा, तो उसे पारख पदकी अविचल स्थिति प्राप्त हो जायजी, यह निश्चय है ॥ ५९४ ॥

सब मिटे वाणी कल्पना। अनुमान त्रिविधि भास हो ! ॥ ५९५ ॥

टीकाः— सद्गुरु कहते हैंः— और हंसको गुरु पारख बोध पक्का परिपुष्ट हो जानेसे फिर समस्त वाणीकी कल्पना, मिट जाती है। और खानीके सकल अध्यास भी विनाश हो जाता है। तैसे ही तत्पद, त्वंपद, और असिपदकी अनुमान एवं त्रिविध भास भी मिट-मिटायके साफ हो जाते हैं। पारख पदके प्रतापसे सब विकारसे रहित होकर हंस शुद्ध, स्वच्छ, शान्त सदाके लिये मुक्त हो जाता है। इस प्रकारसे यह पारख पद सर्वोपरि, सर्वश्रेष्ठ मुक्तिकी गद्दी है। अतएव पारखी सन्त-सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें रह करके निज स्वरूपकी पारख बोध प्राप्त करके सद्गुण रहनी संयुक्त होकर जीवन सफल करना चाहिये। यही मनुष्योंका स्वधर्म है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ५९५ ॥

सोरठाः—अष्टादश नौ दोय । चैत्र शुद्ध दशमी तिथी ॥
(११) ग्रन्थ समापत होय । परख बोध भौ शिष्यको ॥ ५६६ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब यहाँपर यह निर्णयसार ग्रन्थ बनके समाप्ति होनेकी मिती सहित तिथी दर्शाते हैं। हे विवेकी सन्तो! उपरोक्त प्रकारसे विवेकी सत्‌शिष्यको निजस्वरूप पारखका सत्सङ्ग विचारद्वारा अपरोक्ष बोध हुआ। इसलिये सम्पूर्ण अध्यासों-की ग्रन्थी भवबन्धन भी मिट-मिटायके समाप्त हो गयी। फिर रञ्चक-मात्र भी कसर-खोट, बाकी नहीं रही। सत्सङ्गके वार्तालाप, प्रश्नोत्तर, शङ्का-समाधानरूप कथन, लेखन भी यहाँपर समाप्त हो गयी। शिष्यको पूर्णरूपसे पारख बोध हो गया, परिपक्व, अवस्था देखकर सद्गुरुने उसे निरुपाधि जगहमें रहके जीवन व्यतीत करो, कहके विदाई भी दे दिये। और अपने भी सद्गुरु निजस्वरूपमें शान्त होके रह गये। इस तरह इस ग्रन्थकी यहाँपर समाप्ति भी हो गई।

अष्टादश नौ दोय = विक्रमीय सम्वत् (१८९२) अठारह सौ बयान्नब्बे सालके चैत्र शुक्ल पक्षके दशमी तिथीके रोज यह निर्णय-सार ग्रन्थ-मूल—दोहा, चौपाई, साखी, छन्द, सोरठा, ऐसे पद्यमें लिखके 'अथ' से 'इति' तक सद्गुरुकी दयासे सम्पूर्ण समाप्त हो गया है। तब उसके साथ ही शिष्यको भी पारख पदका बोध अच्छी तरहसे हो गया, गुरु और शिष्य दोनों ही निवृत्ति स्थितिको प्राप्त हो गये, ऐसा जानिये ॥ ५९६ ॥

सोरठाः—साहेब पूर्ण प्रकाश । पूर्ण प्रकाशी दास हौं ॥
(१२) अब कछु रही न आश । पूरण पारखमें मिल्यो ॥ ५९७ ॥

टीकाः— श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—हमारे इष्टदेव पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब, तथा पारखी सन्त गुरुसाहेब! पूर्ण, सर्वाङ्ग, समग्र अच्छी तरहसे चैतन्य पारखके बोध प्रकाशको प्रगट, जाहिर

या प्रख्यात करनेवाले पूर्ण सत्यके परीक्षक, अनुभवी, बोधवान्, जीवन्मुक्त, मुक्तिदाता हुये हैं और अभी हैं । और मैं उन्हीं पारखी सद्गुरुका दास हूँ । इसलिये अब मैं भी पूर्ण पारख प्रकाशी, सत्य परीक्षक, स्वरूपस्थिति प्राप्त, निर्बन्ध, स्वच्छन्द, निर्मल हो गया हूँ । अर्थात् जैसे गुरुसाहेब पूर्ण पारख प्रकाश हैं, तैसे मैं दास भी पूर्ण पारख प्रकाशी हुआ हूँ । अतएव पूर्ण, अखण्ड, नित्य, सत्य, निज-स्वरूप पारखका बोध मुझे सद्गुरुकी दयासे मिल गया है । इससे मैं पूरण० पारखपदमें एकरस होके स्थिर, अटल, अचल, हो गया हूँ । ऐसी स्थिति मुझे मिल गई है । इसवास्ते अब कुछ भी ब्रह्म-जगत्, वाणी-खानीकी आशा या आशक्ति, अध्यास बाकी रही नहीं । सब आशा, बासा, कल्पनादि छूट गई, सब मानन्दी मिट गई है ॥ अर्थात् सद्गुरु श्रीकवीरसाहेबने प्रकाश किया हुआ पूर्ण गुरुपारखको मैंने भी दासत्त्वभावसे अपने हृदयमें पूर्ण तरहसे पारख प्रकाशित कर लिया हूँ ! इससे मैं दास भी पूर्ण प्रकाशी भया हूँ । अपरोक्ष पारख बोध एवं स्वरूप स्थिति पूर्णतासे मुझ पूरण० को मिला है । जिसके प्रतापसे पञ्चदेह, पञ्चकोश, पञ्चविषय, पञ्चमार्ग, पञ्च आनन्द, इत्यादि किसीकी भी अब कुछ भी आशारूप आसक्ति अभ्यास मेरेमें रही नहीं । इसलिये आवागमनका शिलसिला यहाँपर सदाके लिये टूट गई । पूर्ण पारख प्रकाशमें ही स्थिति कायम होके सदाके लिये उपाधिसे छुटकारा हो गई है । सोई मुमुक्षुजनोंने भी महत् सत् पुरुषार्थ करके बनाना, तथा प्राप्ति कर लेना चाहिये ॥ ५९७ ॥

॥ ग्रन्थकर्ता कृत अन्त्य श्रीसद्गुरु स्तुतिः ॥ छन्द भाग ॥ २ ॥

(३) छन्दः—तुम होहु जाहि दयाल सकलो। जाल ताकर नाशि हो ! ॥ ५९८

टीकाः— पारख बोधदाता सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब तथा पारखी साधु-गुरुकी उपकार मान करके यहाँपर ग्रन्थ समाप्तिमें सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने सद्गुरुको धन्यवाद देके महिमा प्रकाश करके स्तुति-रूपमें छन्दमें गुणानुवाद कथन किये हैं । सो ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि—

हे सद्गुरु साहेब ! आप जिस शरणागत नरजीवोंके ऊपर दयादृष्टिसे निहारते हो, फिर उस महा भाग्यवान् जिज्ञासु मनुष्योंका सम्पूर्ण जाल, खानी-वाणीकी महाफन्दोंको तो आप विनाश ही कर देते हो ! अर्थात् हे गुरुदेव दयाल ! आप जिन अधिकारी मुमुक्षुओंसे प्रसन्न होते हो ! उन्हें दया करके अपनी शरणमें लेकर सब जालोंको एक-एक करके परखाय-लखाय करके ताकर = उस नर जीवकी मोटी-झीनी सकल जाल-जञ्जालको नाश करके हटायकर उसे निर्बन्ध, सुखी, मुक्त कर देते हो, आप ऐसे महान् उपकारी हो ! ॥ ५९८ ॥

तुम बिना न मिटिहैं काल । सुकृत पाल परख प्रकाशि हो ! ॥५९९

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— पारख प्रकाशी हे बन्दीछोर ! आपकी दयादृष्टिसे सत्यज्ञान पारखका बोध पाये बिना, काल = मनके फन्दा, कल्पना, विषय-जाल कदापि मिटके नाश हो नहीं सकती है । और बाहरमें काल बने हुये गुरुवा लोग तथा स्त्रियोंकी खानी, वाणीकी महाजालसे छूटना भी अत्यन्त कठिन या दुस्कर हो गया है । सो आपके कृपा-प्रसाद पारख बोध पाये बिना वह काल-जाल और किसी उपायसे भी नहीं मिटती है । आपही एक समर्थ उसे मिटायके हटानेवाले हो ! हे प्रभो ! आप बड़े दयालु हो; और सुकृत = शुभ संस्कारी, पुण्यवान्, धर्मात्मा, शुभकर्म किया है जिसने, और कल्याण मार्गमें लगनेवाले शरणागत नरजीवोंको सब प्रकारसे पालन, पोषण, रक्षण, कर सत्य बोध देकर उसके हृदयमें पारखके प्रकाश कर देनेवाले हो ! आपके पारख प्रकाश उदय होनेसे जन्म-जन्मान्तरके तम, अविद्या, अज्ञान, आसक्तिरूप अन्धकार तुरन्त ही ध्वंस हो जाता है, जिससे सुकृतरूप-हंस जीवोंकी अच्छी तरह स्थितिरूप प्रतिपालन हो जाती है । अतएव हे साहेब ! पारख ज्ञानके प्रकाशी आप आदिगुरु हो ! ॥ ५९९ ॥

क्या करौं मैं स्तुति आज ? सद्गुरु ! कियो बहुत उपकार हो ! ॥६००॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सद्गुरु देव ! आज वर्तमानके

मनुष्य जन्म पाकर मेरे बड़े भाग्य खुले कि— जो मैं आपकी शरणागत हुआ। आपने मेरा बहुत बड़ा भारी उपकार किया है! उसके समतूलमें मैं आपकी स्तुति प्रगट करके कहनेमें भी असमर्थ हूँ! क्योंकि कोई भी उपमा आपके लिये उपयुक्त हो, ऐसा मुझे दिखाई नहीं देता है। कहा है:—

"गुरु उपमा क्या दीजिये? पटतर नाहीं कोय॥
पलक-पलक करौं बन्दगी! छिण-छिण निरखौं सोय॥"

इसलिये आज मैं आपकी क्या स्तुति करूँ? कौनसे शब्द विनय गुणानुवाद करनेमें लाऊँ! गुरुमहिमाकी विशेषता, प्रशंसा, धन्यवादको कथन करके स्तुतिरूपमें मैं पूरा तो क्या कर सकता हूँ!, हाँ! थोड़ा-बहुत अधूरा टूटी-फूटी भाषामें गुणानुवाद जरूर कर लेता हूँ! हे सद्गुरो! मैं तो प्रथम विषयासक्तिके कारण उन्मत्त होकर अज्ञानरूपी अन्धकारमें ही गिरा-पड़ा तड़फ रहा था, ऐसे मुझ हीन, दीन, मलीन, अबोधके ऊपर महान दृष्टि करके आपने अपने शरणमें लेके रक्षा करके मुझे बचाये हो! नित्य, सत्य, अखण्ड, एकरस, पारख स्वरूपका बोधकर मुझे स्थिर सुखी कर दिये हो! इस प्रकार हे सद्गुरु! आपने मेरा बहुत ही बड़ा उपकार कर दिये हो! उसीसे मैं कृतज्ञ होकर पल-पलमें आपकी बन्दना करता हूँ! ॥ ६०० ॥

तुम बन्दीछोर कबीरसाहेब! मेटिया भवभार हो! ॥ ६०१ ॥

टीका:— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सद्गुरु! हंस जीवोंको जन्म, मरणादि भव-बन्धनोंसे छुड़ानेवाले सारे संसार भरमें एकमात्र बन्दीछोर आप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब ही सर्वप्रथम पारख बोधदाता हुये हो। फिर आपके अनुयायी पारखी सन्त भी उसी पदमें प्रतिष्ठित होते आये हैं। कायामें सर्व माया-मोहादि समस्त विकारोंको जीते हुये सर्वश्रेष्ठ ज्ञान-शिरोमणि, साधुओंमें शिरमौर, कायावीर, धीर, गम्भीर, स्थिर, जीवन्मुक्त, श्रीकबीरसाहेब तथा तदनुरूप पारखी

सन्त आप यथार्थतः बन्दीछोर हुये हो ! और अभी हमें बोधदाता, हे सद्गुरु ! आप भी वैसे ही हो ! कृपा करके आपने हमारे भी भव-भार मिटाय दिये हो। अर्थात् भव = खानी, वाणी आदि आवागमनके कारण विस्तृत भवसागर उत्ताल तरङ्गवाला इसीके भार = कठिन बोझा विषयानन्दसे लेके ब्रह्मानन्द तककी अहन्ता, ममता, जड़ाध्यासकी महाभारमें मैं दबा पड़ा था, सो उस भारको हटायके पारख बोध देके अध्यासको मेट दिये हो ! ऐसे आप भवभयहारी, भव-भारनिवारी, जीवन हितकारी, श्रीकबीरसाहेब हुये हो ! हे पारखी गुरो ! आप भी वैसे ही सद्गुरु सद्गुण संयुक्त हो ! ॥ ६०१ ॥

छन्दः—सब करौं निछावर तोहिं परमगुरु !
(४) तन मन धन सब खेह हो ! ॥ ६०२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— परम पारखी जीवोद्धारक, हे श्रीसद्गुरुदेव ! आपके महान उपकारको स्मरण करके तन, मन, धनादि मेरे मानन्दीका सर्वस्व निछावर करके, अब मैं आपके चरण-कमलोंमें ही अर्पण करके चढ़ाय देता हूँ ! उसे आप अङ्गीकार कर लीजिये !। क्योंकि वह तो विकारी नाशवान् है। उसे निछावर करके भी आपके सत्यबोधसे विवेक करके देखनेपर गुरुदेवसे मैं उऋण नहीं हो सकता हूँ। क्योंकि 'तन' यह स्थूलदेह मलका कोष क्षण-भंगुर है, यह मेरा स्वरूप ही नहीं। तथा 'मन' यह सूक्ष्मदेह, अनेक प्रकारके मानन्दीसे भरा हुआ चञ्चल और नाश होनेवाला ही है, सो यह भी मेरा स्वरूप नहीं। और 'धन', यह तन-मनके सन्धी 'कारण' देह आवागमनका बीज है। परन्तु मैंने तन-मनके सम्बन्धमें मानन्दो करके ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, देवी, देवता और पत्थरके टुकड़े, हीरा, जवाहरात् आदिक धातु, सोना, चाँदी आदि पृथ्वीतत्त्वके भाग इत्यादिको ही श्रेष्ठ धन, सम्पत्ति, खजाना, मानके भूल रहा था। गुरु पारखसे मेरे जाननेमें आया कि, मैं

मिथ्या धोखामें पड़ा था, सो भी मेरा स्वरूप नहीं है । इस प्रकारसे तन, मन, और धन सब ही खेह = नाशमान्, परिणामी, विनश्वर, सदा न रहनेवाले हैं । तथा सकल मानन्दी असत्य भूल ही है । ऐसा समझके अब उन सबके मानन्दी तोड़-ताड़के हे परम गुरु! मैं उसे आपको ही निछावर किये देता हूँ ! ॥ ६०२ ॥

मम सुरति राखो चरणमें । यह नाशमान है देह हो! ॥ ६०३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अब हे सद्गुरुदेव ! यह नाशमान् देहादिके तरफसे लक्ष हट करके मेरी सुरति = स्मृति, यादगिरी, लक्ष, स्फुरणा, आपके पवित्र चरणकमलोंमें वा शुभ आचरणोंमें तथा गुरुपद पारखमें ही सदा-सर्वदा लगी रहे, ऐसी कृपा बनाये रखिये । गुरुपदको छोड़ करके मेरा लक्ष कभी किसी तरफ भी न लगै, देहान्त तक पारख स्थितिमें ही मेरा लक्ष स्थिर रहै, यही मेरी आन्तरिक चाहना है । क्योंकि यह स्थूल देहादि तो अनित्य नाशवान् है । जिसे क्षणभंगुर, पानीके बुद्बुदावत्, विकारवान् चञ्चल देखा जाता है । अतएव नाशवान् शरीर आदिकी तरफसे लक्ष हटकर मेरे सब अध्यास छूट जाय, ऐसी दयादृष्टि कीजिये ! यही मेरी आखीरी विनय करना है ॥ ६०३ ॥

परख पदको पाय साहेब ! मेटि गयो सब भास हो ! ॥ ६०४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— परमपूज्यवर हे सद्गुरु साहेब ! आपकी शरण, सत्संगके प्रतापसे समस्त भास मिट गये, तो स्वयं प्रकाश चैतन्य पारखपद निजस्वरूपकी स्थितिको मैं अब प्राप्त होता भया । इस प्रकार गुरुपद सर्वश्रेष्ठ पारखपदको पाय करके हे साहेब ! अब तो जगत्कर्ता ईश्वर, परमतत्त्व परमात्मा, ब्रह्म, जगत् इत्यादिकी मानन्दीकृत सम्पूर्ण भास, अध्यासादि मेरे अन्तःकरणसे बिलकुल ही मिट गई है । मैं भासिक सबसे न्यारा हो गया हूँ ! स्वपदमें ही स्थिर हूँ ! अचल, अटल हो गया हूँ ! ॥ ६०४ ॥

ब्रह्म-जगत अनेक वाणी। रहि न काहुकी आश हो ! ॥ ६०५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अतएव अब मुझे वाणी-सम्बन्धी कल्पित ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, खुदा, देवी, देवता, भूत, प्रेत, ऋद्धि, सिद्धिसे लेकरके ब्रह्मानन्द, परमानन्द, सच्चिदानन्द, योगानन्द, इत्यादिकी आशा भी कुछ नहीं रही, सो भ्रम भी छूट गया। और खानी सम्बन्धी जगत्-स्त्री, पुत्र, धन, घर, राज, काज, मान, बड़ाई, विषयानन्द, संसारिक सुख भोगादिकी आशा-आसक्ति भी कुछ नहीं रही, और वाणीरूप वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृति, कुरान, और बाइबिल इत्यादिमें अनेक प्रकारसे महिमा बढ़ाके वर्णन किया हुआ सात स्वर्गादि, तीनलोक, २१ ब्रह्माण्डोंकी सुख प्राप्तिकी आशा भी कुछ नहीं रही। नाना सिद्धान्तोंकी भ्रम-भूल भी सब मिट गई। इस तरहसे ब्रह्मसे जगत् पर्यन्तकी अनेकों वाणी-खानीकी आसक्ति, आशा, तृष्णा, अध्यास, अब आपकी कृपासे मेरेमें कुछ लवलेशमात्र भी नहीं रही। सब मानन्दी क्षय हो गई है। इसीसे मैं निःसंशय पारख स्वरूपमें ही स्थिर, शान्त, अटल हो गया हूँ! अतः हे सद्गुरु देव! आपकी जय हो! जय हो! ॥ ६०५ ॥

सोरठाः—शरण-शरण गुरुराय ! बहुत सुखी मोको कियो ॥
(१३) पूरण बन्दत पाँय। सब अपराध क्षमा करो ॥६०६॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब यहाँपर ग्रन्थ समाप्तिकी स्तुति, विश्राम करके कहते हैं:— हे श्रेष्ठ सद्गुरु सत्पुरुष महाराज! अब मैं आपके पवित्र चरण कमलोंकी तथा गुरुपदकी ही सत्य श्रद्धा भक्ति सहित शरण हूँ! शरण हूँ!! बारम्बार सदाके लिये शरणागत हूँ! क्योंकि, आपने असीम दया करके पारखस्वरूपका बोध पुष्ट कराके विकराल अत्यन्त कठिन जड़ाध्यासको निवारण करके मुझे आवा-गमनादिके महा दुःखोंसे छुड़ाकर बचा लिया है! इस तरह मुझको

बहुत ही सुखी वा जीवन्मुक्त किया है ! आपकी कृपा आधारसे ही मैं इस गुरुपद्की स्थितिमें पहुँच सका हूँ ! सकल दुःखोंका सदाके लिये अन्त होनेसे मैं बहुत ही सुखी हो गया हूँ ! इसलिये मैं बारम्बार आपके गुरुपद्की ही भीतर-बाहरसे शरणागत होता हूँ ! शरणको ही ग्रहण किये रहता हूँ ! यहाँपर ग्रन्थकर्ता श्रीपूरणसाहेब अपनी तरफ इशारा करके कह रहे हैं कि— मैं पूरण० आपके उभय पद्को सप्रेम बन्दना करता हूँ ! हे साहेब ! अब आप मेरे सम्पूर्ण अपराध, जान-अनजानकी चूक, कसूर, दोषोंको क्षमा करके मुझ दासको शरणमें ही लगाये रखिये । पुनरपि मैं आपके प्रति त्रयबार साहेब बन्दगी वा साष्टाङ्ग दण्डवत् करके गुरु पद्को बन्दना करता हूँ, सो स्वीकार करिये ! ॥ ६०६ ॥

सोरठाः—मैं नालायक प्रश्न कियो । तुम समुझायउ मोहि ॥
(१४) मोंसे बोलत ना बन्यो । क्षमा करो प्रभु ! सोहि ॥६०७॥

॥ ❀ ॥ इति श्रीपारखनिष्ठ प्रथमाऽचार्य सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब विरचित मूल निर्णयसार सद्ग्रन्थः सम्पूर्णम् समाप्तम् ॥ ❀ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— दयासागर, बन्दीछोर, हे सद्गुरु साहेब ! मैं पहिले बहुत ही नालायक, बुद्धिहीन था, आप सब लायक पारखीके सर्वोच्च पद्को मैं कुछ भी नहीं जानता था । इसलिये उद्दण्डताके कारणसे मैंने आपका कुछ अदब नहीं किया । जो मनमें तरङ्ग आया, सो कहता गया । उसी जोश प्रवाहमें बहनेसे मैंने आपसे नालायकीसे प्रश्न किया । अर्थात् कहने लायक नहीं, ऐसे कठोर, तीक्ष्ण शब्दोंका प्रयोग करके उल्टी-सीधी, टेढ़ी-मेढ़ी, खण्डन-मण्डनके प्रश्न करता भया । शठता-हठताके वशीभूत हो करके तर्क-वितर्क बढ़ायके मैंने प्रश्नमें शङ्का भी डालता गया ।

उत्तरमें प्रत्युत्तर करके वाद-विवाद भी किया। यानी नालायकीसे मैंने सब प्रकारसे अनुचित वर्ताव ही किया है, उस तरह बहुत सारे आपसे प्रश्न किया। वर्षोंतक नित्य-प्रति आ-आके आपको सताया, जब-तब कुछ-न-कुछ टेढ़ी बात पूछता ही गया। परन्तु धन्य हो प्रभु! आपकी सहनशीलता, गम्भीरता, सरलता कि, आपने हर-बार मुझे स्नेहपूर्वक यथार्थ ही बात समझाये हैं। मैंने जो-जो प्रश्न किया, उन सब मेरे प्रश्नोंके उत्तर वा समाधान आपने अपने मीठे अमृतके समान मधुर सत्यनिर्णयके शब्द सुनाय-सुनायके सत्य शब्द टकसार-की यथार्थ उपदेश दे करके मुझको भलीभाँति एक-एक रत्ती-रत्ती समझायके सन्देह रहित निःशंक कर दिया है। हे महामहीम प्रभो! अबोधवश प्रश्न करनेमें मैंने अविचारसे ऊँच-नीचका ख्याल रखे बिना जो अयोग्य वाणी कहा है, मुझसे बोलनेमें सीधी मर्यादा-की लाईन नहीं बन सकी, इसलिये बहुतसी गल्ती, त्रुटियाँ, अपराध भूलसे हो गया है। यद्यपि आप निर्मान, निर्मोही, संग दोषोंको जीते हुये मनोनिग्रही होनेसे मेरे कसूरको आपने दृष्टि ही नहीं दिये हैं। तथापि अब मुझे आपके कृपासे पूरा बोध हो जानेसे पूर्व वर्ताव को सोच, समझके बड़ा पछतावा हो रहा है। अतएव अब सिर झुका-के सद्गुरुके चरणोंमें मस्तक टेकके सविनय यही प्रार्थना करता हूँ कि—मेरे उन सब दोषोंको आप दया-दृष्टिसे निहार कर क्षमाकर दीजिये! यों तो मैं दण्डका ही अधिकारी हूँ! परन्तु मुझसे जो कुछ कसूर भई, सो भूलसे खाली सन्मुखमें बोलचाल करनेमें ही भई है। इसके अतिरिक्त जान-बूझके मैंने कुछ रहनी नहीं बिगाड़ा है। बल्की आपकी दयासे अब तो अच्छी तरहसे रहनी-रहस्यकी धारणा होकर बेड़ा पार हो गया है। पारख स्वरूपमें ही स्थिति कायम हो गई है। अब विशेष कहनेको बाकी कुछ नहीं रहा। हे प्रभु! मेरे पूर्वके सब अपराधको आप क्षमा कर दीजिये! अपने चरणोंकी सेवासे मुझे दूर मत कीजिये! मेरेपर सदा वैसे ही दयाभाव बनाये रखिये!

यही अन्तिममें मेरे दीनता पूर्वक प्रार्थना है ! सो स्वीकार कीजिये !!!

हे सद्गुरु ! साहेब ! बन्दगी ! साहेब ! बन्दगी !!

साहेब ! साष्टाङ्ग बन्दगी !!! ॥ इति ॥ ६०७ ॥

॥❋॥ टीकाकारकृत अन्त्य-श्रीसद्गुरुस्तुति, पद्यम् ॥❋॥

साखीः— यहि विधि ग्रन्थ सम्पूर्ण भया । गुरु शिष्यके सम्वाद ॥
पारखी सद्गुरुकी दया । बोध भयो आबाद ॥ १ ॥
अय बन्दगी करि प्रश्न कियो । प्रथमैं शिष्य ! सुजान ॥
सत्यज्ञानको प्राप्त भयो । तब बन्दगी ठहरान ॥ २ ॥
आदि-अन्त गुरु बन्दगी ! । भक्ति प्रीति मन लाय ॥
शीश भेंट धरि हाथमें । सद्गुरु चरण चढ़ाय ॥ ३ ॥
गुरु भक्ति परिपुष्टता । ग्रन्थकारको देख ॥
याते जबलौं देह रहे । भक्ति विचारकी टेक ॥ ४ ॥
बिनु गुरुभक्ति विनाश है । अहंकार मन लाय ॥
दम्भ दर्प छल कपटसे । सीधे नरके जाय ॥ ५ ॥
पारखी गुरु सतसंग करि । सार असारको जान ॥
तजि असार धोखा सकल । पावो पारख ज्ञान ॥ ६ ॥
पारख भयो तब भर्म गयो । मानन्दी मिटि जात ॥
निज स्वरूप स्थिति हंसको । आवागमन मिटात ॥ ७ ॥
बहु प्रकार मानन्दिको । त्रय पद वृत्त ठहार ॥
तामें भूले जहान सब । गुरु दरशायो सार ॥ ८ ॥
पारख करि तजिये सकल । भास कल्पना नाश ॥
रामस्वरूप तब होय स्थिति । रहै न जड़ अध्यास ॥ ९ ॥
साहेब कबीर समरथ धनी । पारख स्वरूप अखण्ड ॥
सो प्रथमें पारखी गुरु ! । सात द्वीप नौखण्ड ॥१०॥

पूरण साहेब पारखी। सद्गुरु कबीर महान ॥
त्रिजा अनुभव पेखिये। सारशब्द गुरु ज्ञान ॥११॥

सवैयाः— गुरु–शिष्य जब साँचे मिलिगे। प्रश्नोत्तर विस्तार किये ॥
(छन्द) सार असार यथारथ निर्णय। कहत सुनतमें लेख दिये ॥
जमा खर्च बिलगायके टोटल। हंस स्थिति ठहराय लिये ॥
रामस्वरूप सोई यह ग्रन्थ है। निर्णयसार लखाय दिये ॥१२॥

त्वंपद तत्पद असिपद तीनों। निर्णय न्यारा न्यार हुआ ॥
जेहि विधि उनमें जीव फँसे थे। गुरुमुख सो विस्तार हुआ ॥
खानि वाणी दोउ फन्दा भारी। जिव परवश नलिनीके शुवा ॥
रामस्वरूप जब पारख पाये। दिव्य दृष्टि खुलि देखि कुवा ॥१३॥

घनघोर घटा जब फैल्यो नभमें। रवि शशि तबहिं अदृश्य भये ॥
पवन प्रचण्ड झकझोर करे पर। छिन्न-भिन्न हो दूर गये ॥
तिमि अविद्या छायो हियमें। यम आवर्ण लगाय नये ॥
रामस्वरूप विचार गुरुकी। चलते भ्रम उड़ि भागि गये ॥१४॥

छन्द पदः— जड़ अरु चेतन जगत अनादि। स्वतः स्वयं ठहराया है ॥
निज स्वरूपकी बोध भये बिन। जड़हि विषय मन भाया है ॥
शुभ अरु अशुभ कर्मकरि नाना। जहाँ–तहाँ भटकाया है ॥
रामस्वरूप गुरु शरणमें आयो। तब वह भेद लखाया है ॥१५॥

दोहाः— जगत अनादि जानिये, कोइ नहीं करतार ॥
जड़ चेतन सम्बन्धमें, लीन्हों बहुतक भार ॥ १६ ॥
भार सोई अज्ञान है, परख दीजिये डार ॥
पारख स्थितिको पायके, होवो भवसे पार ॥ १७ ॥

कवित्तः— काम क्रोध लोभ मोह, भय अहंकार द्रोह ।
लिप्त होवै याहि माहिं, सोई तो अज्ञान है ॥
आलस प्रमाद नींद, तम गुणके विकार ।
आश वास राग रङ्ग, राजसमें होत है ॥

सात्विक सहित तीन, कारज अज्ञान जान।
समान विशेष करि, अज्ञान बहतु है ॥
तुर्या ज्ञान औ विज्ञान, सोउ कह्यो बन्धमूल।
रामस्वरूप तीनपद, पूरण पर्खायो है ॥ १८ ॥

चौपाईः—सद्गुरु जैसे कबीर लखावा। पूरणसाहेब तस परखावा ॥ १९ ॥
परम प्रवीण पारखि गुरु पूरण। भास भर्म अनुमित कियो चूरण ॥ २० ॥
साहेब कबीरके पारख ज्ञाना। बिरले कोई हंस ठहराना ॥ २१ ॥
प्रभु उपदेश सो बीजक दीन्हों। पारखको तब हंसन चीन्हों ॥ २२ ॥
पारख यहि विधि भो परकाशा। आश भास मन कल्पित नाशा ॥ २३ ॥
बहुत दिवस बीत्यो पुनि काला-। आपन जाल जीवन पर डाला ॥ २४ ॥
बीजक ज्ञान न चीन्हैं कोई। भरमि-भरमि दहुँदिश फिरि रोई ॥ २५ ॥
सो लखि पारखि पूरणसाहेब। बीजक टीका लिखि प्रगटायब ॥ २६ ॥
अनुभव ज्ञान सबते बड़ भारी। त्रीजामैं दरशे मुख चारी ॥ २७ ॥
बीजक त्रिजा समान न कोई। पारख ज्ञान ताहिते होई ॥ २८ ॥
कछु टीका लिखना रहे बाकी। तबहीं निर्णसार रचना की ॥ २९ ॥
दोउ समाप्ति सम्वत परमाना। यहि निश्चय किये सन्त सुजाना ॥ ३० ॥
"पक्की देह प्रथम हंसाकी। बीजक टीकामैं सब भाखी" ॥ ३१ ॥
सो गुरु वचनते होय खुलासा। निर्णयसार ग्रन्थ यह खासा ॥ ३२ ॥
किम्बदन्ति यामैं यहि आवा। वेदान्ती कोई विज्ञ रहावा ॥ ३३ ॥
तासे गोष्टि गुरुके भयऊ। ब्रह्मज्ञान खण्डन करि दियेऊ ॥ ३४ ॥
खीझि वेदान्ति बोले ऐसा। ब्रह्मज्ञान तुम जानो कैसा? ॥ ३५ ॥
वेद वेदान्त तुम जानत नाहीं। खण्डन करन लगे मन माहीं ॥ ३६ ॥
अहोरात्रमैं निर्णयसारा। पूरणसाहेब लिखि सब डारा ॥ ३७ ॥
ग्रन्थ सोइ पुनि पण्डितजीको। खोलि दिखायो पढ्यो सब नीको ॥ ३८ ॥
तब अधीन हो चरण शरण गहि। क्षमा कराय गुरु पारख लहि ॥ ३९ ॥

चौपाईः — निर्णयसार बन्यो यहि भाँती। शिष्य प्रश्न पूर्व हि बहु भाँती ॥ ४० ॥
रामस्वरूप टीका सम्पूरण। गुरु साहेबकी दयाते पूरण ॥ ४१ ॥

दोहाः— गुरुमुख निर्णय सहित यह। टीका लिखा तमाम ॥
रामस्वरूपदास अब। गुरु पारखते काम ॥ ४२ ॥
आजीवन गुरु शरणमें। सेवा आठौं याम ॥
हंस रहनी पारख स्थिति। जीवन्मुक्त निष्काम ॥ ४३ ॥
युग सहस्र वसु सम्वत। श्रावण वदि तिथि तीस ॥
गुरु वासर सन्ध्या समय। टीका समाप्ति करीस ॥ ४४ ॥
तदनुसार सन् उन्निस। पाँच एकके साल ॥
माह अगस्त अष्टम सोई। दुइ तारीख दिन हाल ॥ ४५ ॥

॥ ❀ ॥ इति श्रीनिर्णयसार सद्ग्रन्थकी रामस्वरूपदास अनुवादित पारख सिद्धान्त दर्शिनी भ्रम विध्वंशिनी सरल टीका सहित— संयुक्त निर्णयसारादि षट् ग्रन्थे-प्रथम ग्रन्थः सम्पूर्ण समाप्तम् ॥ १ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ पारखी सद्गुरुका सद्गुण महिमा वर्णन ॥ साखी ॥ ❀ ॥

पारखरूप कबीर प्रभु ! सद्गुरु बन्दीछोर ॥
समरथ ऐसे एक भये। पारख स्वयं अँजोर ॥ १ ॥
ज्ञान भूमिका राजमें। साहेब कबीर सम्राट् ॥
अनुयायी किंकर सकल। गुरु परसादी चाट् ॥ २ ॥
स्वयं प्रकाशी पारख। कबीर साहेब एक ॥
भये न ऐसे होवई। पर प्रकाशी अनेक ॥ ३ ॥
दया कीह्न सद्गुरु प्रभु ! परखायो सब जाल ॥
पारख स्थिति ठहरायके। काल कल्पना टाल ॥ ४ ॥
पारखी गुरु परम्परा। शिष्य प्रणालि विकाश ॥
गुरु कबीरके बोध लै। जीवन्मुक्ति निराश ॥ ५ ॥
अनुयायी सब पारखी। गुरु कबीरके दास ॥
निष्ठा बीजक ज्ञानमें। भास अध्यास विनाश ॥ ६ ॥
सद्गुरु पूरण साहेब। पारखी सन्त महान् ॥
निष्ठा बीजक ज्ञानमें। त्रिजा लिखि प्रगटान् ॥ ७ ॥

पारख ज्ञान जो गुप्त हता । सो सबको परकाश ॥
पूरण बीजक तिलकते । भ्रम धोखा सब नाश ॥ ८ ॥
सन्त पारखी सबनके । श्रेष्ठ सद्गुरु देव ! ॥
साहेब कबीर औ पूरण- । साहेब प्रथम कहेब ॥ ९ ॥
धन्य ! धन्य ! पारखी गुरु ! तव उपकार महान् ॥
रामस्वरूपदास अब । चरण शरण गुरु ज्ञान ॥ १० ॥
निजस्वरूप सद्गुण सहित । गुप्त सो चित्त रहाय ॥
बीजकते परिचय मिलै । भ्रम सन्देह नशाय ॥ ११ ॥
परम पारखी पूरण । बीजकके मर्मज्ञ ॥
अनुभव टीका पठन करि । जानत हैं सब विज्ञ ॥ १२ ॥
ज्ञान अज्ञान विज्ञानका । जाल बड़ा विस्तार ॥
तत्त्वमसिके शोर करि । बहे जीव भवधार ॥ १३ ॥
एक-एक निर्णय किये । कसर खोट दिखलाय ॥
निर्णयसार यहि ग्रन्थमें । सकलों भेद लखाय ॥ १४ ॥
सन्धि तत्पद जानिये । त्वंपद घेरा काल ॥
असिपद झाँई धोखमें । जीव परे बेहाल ॥ १५ ॥
मर्म न जाने राहकी । चलते बाट कुबाट ॥
यमके घेरामें परे । भटके बाराबाट ॥ १६ ॥
दया कीह्न दया निधि । दै उपदेश तमाम ॥
भूल मिटाये जीवके । रचि सद्ग्रन्थ ललाम ॥ १७ ॥
पढ़ि सुनि करिये मनन सो । बीजक, निर्णयसार ॥
पारखके परतापते । मिटै घोर अन्धार ॥ १८ ॥
राग द्वेष रु छल कपट । पक्षपात करि नाश ॥
याद करि उपकारको । गुरु गुण करिये प्रकाश ॥ १९ ॥
साहेब कबीर गुरु पूरण । काशी बालक लाल ॥
रामस्वरूप त्रय बन्दगी । भक्ति प्रेम बहाल ॥ २० ॥

॥ * ॥ इति श्रीपारखी सद्गुरुका सद्गुण महिमा वर्णन—साखी, समाप्तः ॥ * ॥

॥ * ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ * ॥ दयागुरुकी ॥ * ॥

॥ पूर्णवैराग्य स्वरूप श्रीकबीर—श्रीपूरणसाहेब पारखी सन्त गुरवे नमोनमः ॥

॥ अथ लिख्यते संयुक्त निर्णयसारादि षट् ग्रन्थः ॥

परम पारखी परमपूज्य पारखनिष्ठ इष्ट सद्गुरु सत्यबोधदाता, सत्य सिद्धान्त प्रकाशक, प्रथमाऽचार्यवर्य साधु शिरोमणि—

परम वैराग्यवान् सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब विरचित—

वैराग्यशतकनामक द्वितीय ग्रन्थप्रारम्भः २

[पारख सिद्धान्त दर्शिनी भ्रम विध्वंशिनी सरल टीका सहित ।]

॥ * ॥ टीकाकारकृत मङ्गलाचरणम् श्रीसद्गुरुपद वन्दना ॥ * ॥

॥ * ॥ साखीः—॥ * ॥

मङ्गलमय कबीर सद्गुरु ! पारख मङ्गल दानि ॥
सत्यबोध मङ्गल करन । राग सकल भ्रम हानि ॥ १ ॥

पूर्ण विरागी पारखी । काया वीर कबीर ॥
निज मङ्गल प्रथमे करी । जीवन मङ्गल धीर ॥ २ ॥

मङ्गलरूप कबीर जस । तस पूरण मङ्गल भवन ॥
पूर्ण विराग स्वरूप स्थिति । ध्वंश किये आवागमन ॥ ३ ॥

मङ्गल पारख ज्ञान है । सद्गुरु ! मङ्गल मूल ॥
शरण ग्रहण मङ्गल भये । नष्ट हो राग समूल ॥ ४ ॥

मनकी मिटी सब कामना । हो गये जो निष्काम ॥
रामस्वरूप गुरुपद लहे । मङ्गल आठों याम ॥ ५ ॥
नमो-नमो-पुनि-पुनि नमो ! बन्दगी है त्रयबार ॥
सद्गुरु ! हमरे दोष क्षमो ! रामस्वरूप उच्चार ॥ ६ ॥
कल्याणकारी पारखी । प्रभु समान नहिं कोय ॥
रामस्वरूप लीजे शरण । दीन हीन हम सोय ॥ ७ ॥
गुरुपद बन्दनके किये । अन्तस होवै शान्त ॥
स्थिर हृदय पारख मिलै । दृढ़ विराग एकान्त ॥ ८ ॥
वैराग्य बिना मुक्ति नहीं । राग है बन्धन मूल ॥
याते श्रेष्ठ विराग है । पार होनको पूल ॥ ९ ॥
पूरण साहेब पारखी । वैराग्य महातम कीन्ह ॥
वैराग्यशतक ग्रन्थ यह । सकल सारको चीन्ह ॥ १० ॥

॥ * ॥ सवैयाः—॥ * ॥

बहुते जगमें सो विरागि भये । योगि यती तपसी तु महाना ॥
साधन तीव्र तितिक्षा करिके । दृढ़ वैराग्य कियो बलवाना ॥
कितने जनमें प्रसिद्ध हुये । गुप्त रहे कितने न कहाना ॥
रामस्वरूप सबते अति उत्तम । पारखयुक्त विराग रहाना ॥ ११ ॥
को को भये जग माहिं विरागि सो । याहि ग्रन्थमें वर्णन आहै ॥
शास्त्र उक्तिअरु गुरुमुख निर्णय । दो विधिसे वैराग्य कहा है ॥
सार सोई वैराग्य है गुरुमुख । सो गहि जीवन्मुक्त लहा है ॥
रामस्वरूप अन्य परखा कर । जिज्ञासुनको बोध कहा है ॥ १२ ॥

॥ * ॥ छन्दः—॥ * ॥

विराग श्रेष्ठ उत्तमा, सर्वमान्य है यही ॥
विराग ही के कारणे, साधु पूज्य हैं सही ॥
शान्ति न होय रागमें, क्रान्ति कलह लगा रहै ॥
शान्ति इच्छुकि जने, विराग धारिके रहै ॥ १३ ॥

॥ * ॥ चौपाईः—॥ * ॥

सर्वश्रेष्ठ अवशिष्ट विरागा। जे धारैं ते हैं बड़ भागा ॥ १४ ॥
यहि आभूषण धारि मुमुच्छु। जगके सकलों नाशत इच्छु ॥ १५ ॥
दृढ़ वैराग्यवान सोइ साधु। मनमायाकृत मेटि उपाधु ॥ १६ ॥
विराग अङ्ग प्रत्यङ्ग सकल विधि। पूर्ण लखायो सार सोईनिधि॥ १७ ॥
दत्तात्रेय शुक रु सनकादिक। भर्तृहरि प्रभृति सो महाधिप ॥ १८ ॥
भये प्राचीन विरागि बहुतेरे। लेख ग्रन्थ उन नाम निवेरे ॥ १९ ॥
शास्त्र लिखित शास्त्रोक्त कहावै। सो सब निर्णय यामें पावै ॥ २० ॥

॥ * ॥ सोरठाः—॥ * ॥

साँच विराग स्वरूप। साहेब गुरु प्रत्यक्ष लखु ॥
निर्णय पारख रूप। सत्सङ्गति करि जानिये ॥ २१ ॥
और कल्पना त्याग। निजस्वरूप स्थिति कीजिये ! ॥
रामस्वरूप बड़ भाग। गुरुपदमें मन दीजिये ! ॥ २२ ॥

दोहाः—पारख सिद्धान्त दर्शिनी, भ्रम ध्वंशिनि प्रचण्ड ॥
टीका सरल यामें करूँ, कृपा गुरु बलवण्ड ॥ २३ ॥

वैराग्य शतक सत सारको, वैराग्यवान लखिलेत ॥
राग द्वेष हटायके, निशिदिन राखे चेत ॥ २४ ॥
सुखके धाम वैराग्य है, राग सकल दुःख खान ॥
याते तजी सब रागको, साधु विरक्त महान ॥ २५ ॥
चाह भई चिन्ता बढ़ी, दास खुशामद लाह ॥
जाको सब कछु चाहिये, महा दीन सो आह ॥ २६ ॥
संग्रहते हो विग्रह, चिन्ता दुःखको मूल ॥
आशा तृष्णा बाढ़ई, पावै भव बहु शूल ॥ २७ ॥
त्यागि सकल धन धामको, इच्छा मूल मिटाय ॥
साधु पारखी शान्त हो, निज स्वरूप ठहराय ॥ २८ ॥
लैके भेष विरक्तका, धन जन लखि ललचाय ॥
ताके मुखमें धूर है, यमके मार सो पाय ॥ २९ ॥
बाहर भीतर एक सी, रहनी हो वैराग ॥
भव बन्धनते छूटई, पारख पदमें लाग ॥ ३० ॥
दया गुरुकी चाहिये, राग सकल हो नाश ॥
रामस्वरूप पारख-स्थिति, जीवन्मुक्त निराश ॥ ३१ ॥
आचार्य पूरण साहेब ! और पारखी सन्त ! ॥
साधु गुरुपद बन्दगी ! रामस्वरूप नमन्त ! ॥ ३२ ॥
युगसहस्र वसु सम्वत, मङ्गलवार प्रभात ॥
श्रावण शुक्ल पंचमी तिथि, टीका भई शुरुआत ॥ ३३ ॥

॥ ❀ ॥ इति टीकाकारकृत मङ्गलाचरणम्—समाप्तम् ॥ ❀ ॥

॥ ❋ ॥ ग्रन्थकर्ताकृत गुरु बन्दना ॥ ❋ ॥

दोहाः– पूरण परख प्रकाश गुरु । सुखस्वरूप कबीर ! ॥
बन्दत हौं तब चरण युग । हरण कालकी पीर ॥ १ ॥

[वैराग्यशतक दोहोंकी संक्षेपार्थ वर्णन ।]

संक्षेपार्थः— कालरूप गुरुवा लोग और स्त्रियोंकी जाल खानी, वाणीसे उत्पन्न होनेवाले समस्त पीर = कष्ट, क्लेश, दुःखोंको निवारण करके हरण करनेवाले पूर्ण परीक्षक पारख प्रकाशी जीवन्मुक्त सुख-स्वरूप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबको और स्थितिवान वैसे ही पारखी साधु-गुरुको मैं पूरण० पूर्णरीतिसे वैराग्य पुष्टिके लिये सविनय आप गुरुदेवके युगल चरणोंमें त्रयबार साहेब बन्दगी करता हूँ ! ॥

॥ ❋ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ❋ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब ग्रन्थके प्रथमारम्भमें पारखी सद्गुरुके पद-वन्दना करते हुये कहते हैं किः— अर्थात् पूर्ण-रूपसे पारखबोधका प्रकाश करके तमरूप अज्ञान, अविद्या, अन्धकारको विनाश करनेवाले जीवन्मुक्त सुखस्वरूप हे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब ! तथा पारखी साधु गुरुदेव ! मैं आपके दोनों चरणकमलोंको श्रद्धा-भक्तिके साथ भीतर-बाहरसे सप्रेम वन्दना या त्रयबार 'साहेब बन्दगी' सर्वप्रथम शिर नमायके करता हूँ । काल = गुरुवा लोगोंके वाणी कल्पनाका, पीर = कष्ट, क्लेश, भ्रम-भूलका दुःख और खानीमें कालरूप स्त्रीकी विषय सम्बन्धसे होनेवाली, नाना पीड़ा, दुःख, सन्ताप दोनों ही आवागमन, त्रयतापादि महान् दुःखोंका कारण है । आप ही उस काल-पीरको हरण करनेवाले हो । आपकी पारखबोध सब दुःखोंके कारण बीजको समूल नष्ट कर देता है । इसीसे मैं आपकी ही बन्दना करता हूँ ।

तहाँ जीवका स्वयंस्वरूप चैतन्य, तो सुख-दुःखादिसे न्यारा है। और यहाँपर "सुखस्वरूप कबीर" कहा है। तो इसमें ऐसा समझ लेना चाहिये कि, सम्पूर्ण सिद्धान्तोंकी कसर-खोटोंकी परीक्षा करके पूर्णपारखका प्रकाश बोध करनेवाले सद्गुरु देह-सहित सुखस्वरूप यानी जीते ही जीवन्मुक्त श्रीकबीरसाहेब हुये थे। और उसी प्रकार पारखस्वरूप बोधमें स्थिति किये हुये पारखी सन्त गुरु भी श्रीकबीर-साहेब सादृश्य सुखस्वरूप या जीवन्मुक्त हुये हैं वा वर्तमानमें जो हैं, वे भी वैसे ही माने जाते हैं। स्वरूप स्थितिमें ही सदा सुखी रहते हैं। सकल मानन्दी छूट जानेसे जीव सुखी हो गया है। उसीको ही शुद्ध नित्य सुख कहा गया है। हे बन्दीछोर! आपके बाह्यशुद्ध आचारण वर्ताव रहनी, रहस्य, त्याग, वैराग्य, वोधको, और गुरुपद पारखको, और युगल चरण-कमलों समेतको बाहर शरीरका शिरसे साष्टाङ्ग दण्डवत् बन्दगी करता हूँ। भीतर चित्तसे विनम्र होके उपकार मानते हुये बोध ग्रहण करता हूँ। यह दोनों तरहसे किया हुआ भक्ति-भावना, बोध, खानी, वाणी, जन्म, मरण, जगत्-ब्रह्म, इत्यादि कालको डबल पीरको हरण करके नर-जीवोंको सुखी कर देता है। अतएव दोनों हाथोंको जोड़ करके शिर झुकाके मैं गुरुदेवकी बन्दना सत्यप्रेम भक्तिके साथ करता हूँ। हे सद्गुरु! आप मेरा कल्याण कीजिये! ॥ १ ॥

॥ * ॥ अथ ग्रन्थ समुत्थानम् ॥ * ॥

अब यहाँसे ग्रन्थका उठान या शुरू होता है। इस ग्रन्थमें तीन तरहका वैराग्य वर्णन किया गया है। मन्द, तीव्र, और तीव्रतर, ऐसे तीन भेद वैराग्यमें कहा है। (१) गुरुमुख यथार्थ वैराग्य निर्णयसे कथन है। (२) अन्य शास्त्रोक्त वैराग्य मायामुखसे वर्णन है। (३) वेदान्त शास्त्रोक्त वैराग्य ब्रह्ममुखसे वर्णन भया है। ऐसे तीन मुखसे वैराग्य वर्णन भया है। उनमें गुरुमुख वैराग्यका कथन ही ग्राह्य है, अन्य दोनों त्याज्य हैं, ऐसा जानना चाहिये। पूर्णबोध

करानेके लिये इसमें सब तरहके वैराग्यका भेद, लक्षण दर्शा दिया जाता है, सो जानिये ! ॥

॥ * ॥ यथार्थ गुरुमुख निर्णय वैराग्य वर्णन ॥ * ॥

दोहा:—काल पीर तिनकी मिटी । जिनको दृढ़ वैराग ॥
तेहि बिन जिव सब दुखित अति । पचि-पचि मरहिं अभाग ॥२॥

संक्षेपार्थः— उन ही मनुष्योंकी, काल = गुरुवा, स्त्री, मन, कल्पनाओंकी, पोर = उनसे होनेवाले दुःख मिट गये वा मिट जावेंगे, जिन्होंको असली दृढ़ वैराग्यकी धारण हो जाती है । अर्थात् जिन्होंको मनमें दृढ़तासे वैराग्य हो जाता है, और पारखी गुरुके शरणागत हो जाते हैं, उन्होंके ही कालकी पोर मिटती है । तेहि = उसी दृढ़ वैराग्यके धारण हुये बिना सब जीव नानातरहसे रागमें लगके अत्यन्त दुःखित हो-होके खानी-वाणीमें पच-पचके अभागे लोग उसी तरह मरते ही रहते हैं । उनका कभी निस्तार होता नहीं, ऐसा जानो ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:— अर्थात् जिसको दृढ़तासे पक्का वैराग्य हो गया है, पारखी साधु-गुरुके शरण-ग्रहण करके यथार्थ सत्य चैतन्यका बोध निश्चय हो गया है । फिर वह किसी बातकी राग और कोई वस्तु प्राप्तिकी चाहना बिलकुल रखता ही नहीं । स्त्री, पुत्र, धन, घरादि विषयानन्दादि प्राप्तिकी चाहना छोड़कर और ब्रह्म, ईश्वर, देवता, स्वर्गादि सिद्धि आदिक प्राप्तिकी कुछ भी इच्छा नहीं करते हैं । इसलिये कहा है:—

"चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवा बेपरवाह ॥
जिसको कछु न चाहिये, सो शाहन्पति शाह ॥"

इस तरह पारखबोध सहित जिन्होंको दृढ़ वैराग्य हो जाता है, फिर तिन्होंकी काल = कल्पना, विषय, स्त्री, और गुरुवा आदि

लोगोंकी कुसङ्गसे होनेवाला, पीर = कष्ट, क्लेश, दुःख, आपत्ति, सकल मिट गई वा मिट जाती है। क्योंकि वे विवेकी सन्त कालकी कुसंगतसे सदा दूर हो सावधानीसे वैराग्यमें ही रहते हैं। इससे खानी–वाणीसे होनेवाला सब दुःख उनके मिट जाते हैं। उसी दृढ़ वैराग्य गुरुबोध पारखको बिना जान पाये, समस्त चारोंखानीके जीव और विशेष करके मनुष्य जीव राग, कामना, काम, क्रोधादिके वशीभूत हो करके सब कोई अत्यन्त दुःखित, परमबेहाल हो रहे हैं। अविचारी, अभागे लोग संसारी पञ्चविषयोंमें लगे हैं, और भेषधारी नाना साधनोंमें पच-पचके गड़-गड़कर जड़ाध्यासी हो नाना दुःख पायके मर जाते हैं। फिर चौरासी योनियोंमें जाकर भी कर्मानुसार असह्य दुःख भोगके जन्म-मरणोंके चक्रमें पड़ा करते हैं बिना विचार। अतएव भीतर-बाहरसे सच्चा वैराग्यको ही धारण करना चाहिये। तहाँ कहा हैः—

"अन्तस्त्यागो बहिस्त्यागो विरक्तस्यैव युज्यते ॥
त्यजत्यन्तर्बहिः सङ्गं विरक्तस्तु मुमुक्षया ॥" विवेक चूड़ामणि–३७३ ॥

—विरक्त पुरुषकी ही आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकारका त्याग करना ठीक है। वही मोक्षकी इच्छासे आन्तरिक और बाह्य सङ्गको त्याग देता है ॥ इस तरह उस वैराग्य-बोधकी स्थिति कर पाये बिना सब जीव वहुत दुःखित भये, और दुःखी ही हो रहे हैं। ऐसे उत्तम मनुष्य जन्म पायके भी अभागी बनके पच-पचके विषयासक्त, जड़ाध्यासी होके मरते हैं, चौरासी योनिमें जाते हैं। कहीं भी स्थिति कर पाते नहीं, वे अभागी ही बने रहते हैं ॥ २ ॥

दोहाः—इन्द्र दुःखी ब्रह्मा दुःखी। दुःखी विष्णु सब देव ॥
शिव शेषादिक दुःखित हैं। बिन वैराग्य न भेव ॥ ३ ॥

संक्षेपार्थः— विषयासक्ति रागके कारणसे इन्द्र कई बार दुःखी हुआ। उसी रागमें लगके ब्रह्मा भी दुःखी हुये। फिर विष्णु और

सब देवगण भी विषयोंमें रागको बढ़ायके वे सब दुःखी ही भये, किसीकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। और शिवजी तथा शेषादिक बाकीके सब देव वा दानवसमूह भी विषय-भोगोंकी रागमें लगके अन्तमें दुःखित ही भये हैं, अतः बिना दृढ़ वैराग्यके धारण हुए स्वरूपस्थिति-में होनेवाला असली सुखका भेद उन किसीने भी जान पाये नहीं। और विषयासक्त होके वे भवबन्धनोंमें ही पड़े रहे ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात् पारखज्ञान स्व-स्वरूपकी सत्यताका भेद और दृढ़ वैराग्यकी एकरस स्थिति प्राप्त न होनेसे खानी-वाणीकी दोहरा विषयोंमें आसक्त हो करके इन्द्र देवताओंका राजा भी दुःखी हुआ, ब्रह्मा भी दुःखी हुये, सब देवताओंके सहित विष्णु भी दुःखी ही हुआ, और शिवजी, शेषादिक सकल पारखहीन प्राणी भी दुःखी ही हुये। मोटी-झीनी मायाजालों-को परित्याग करके यथार्थ वैराग्यमें सुखी रहनेका भेद बिना जाने जड़ाध्यासी होकर वे सब त्रिविधि-ताप तथा जन्म, मरण, गर्भ-वासके चौरासी योनियोंके दुःख भोगी भये। इस बारेमें आत्म-पुराणमें कहा हैः—

श्लोकः—"कामेन विजितो ब्रह्मा कामेन विजितो हरिः ॥
कामेन विजितः शम्भुः शक्र कामेन निर्जितः ॥" आत्मपुराण ॥

— अर्थात् ब्रह्माको भी कामने जीतके वशमें कर लिया, विष्णुको भी कामने विजय कर लिया, महादेवको भी कामने विजय कर लिया, और इन्द्रको भी कामने हरा दिया, इस तरह सबको कामने जीत लिया। वे सब सोई कामासक्तिके कारणसे महान दुःखित भये थे ॥

इस बारेमें उपयुक्त दृष्टान्त भी आया है; सो भी सुन लीजिये ! ब्रह्माने अपनी पुत्री अहिल्याका विवाह गौतम मुनिके साथ कर दिया था। परन्तु उसके सुन्दर रूपको देखके इन्द्र उसपर मोहित हो गया। तब उससे भोग करनेके लिये इन्द्र दाव-घात

लगाने लगा। एक समय मुनिकी अनुपस्थिति देखके इन्द्र, गौतमके आश्रममें घुसकर छल-बल, कपट, करके अहिल्यासे विषय भोग किया। उधर गंगा-स्नान करके गौतम आश्रममें आये, तो वहाँ इन्द्रको देख, चोरके सरीखे भागनेका प्रयत्न करनेसे उसके कुकर्मको जान, कुपित हो करके गौतमने इन्द्रको शाप दे दिया कि— हे दुष्ट ! जिस एक भगके लिये तू यहाँपर पाप कर्म करनेके लिये आया है, जा-अब तेरे शरीरमें एक हजार भग हो जायँगे। फिर इन्द्रके कुछ समयके बाद गलित कुष्ठसे सहस्र छिद्र शरीरमें हुआ। उससे बहुत दुःख पाया। और दानव गणोंसे पराजित होनेसे उत्तराखण्डमें छिपके बहुत दिनों तक कष्ट भोगता रहा, इत्यादि वर्णन पुराणोंमें हुआ है। सारांश—इसी तरह प्रथम इन्द्र दुःख-भोगी ही हुआ था ॥

वैसे ही ब्रह्मा भी कुकर्म करके दुःखी, कलङ्कित ही हुआ था ! प्रथम तो झूठ बोलनेसे मातासे शाप पाया, समयान्तरमें माता और बहिनसे भी विषय-भोग कर लिया, फिर सरस्वती उसकी पुत्री थी, उसपर भी आसक्त होके निज पुत्रीसे भी भग-भोग किया, जिससे संसारमें कलंकित हुआ। और पद्मपुराणके स्वर्गखण्ड अध्याय छः में एक कथा लिखी आई है। वहाँ लिखा है कि— शान्तनु नामका एक ऋषि था, अमोघा उसकी स्त्रीका नाम था। एक दिन ब्रह्मा कार्य विशेषसे उन ऋषिके घरमें गये। ऋषि कहीं बाहर गये थे, स्त्री घरमें थी, उसने ब्रह्माका यथोचित सत्कार किया और एक आसन उन्हें बैठनेको दिया। फिर उस पतिव्रता स्त्रीने, ब्रह्मासे कहा कि— किस निमित्तसे आपका आगमन हुआ ? ब्रह्माने कहा— ऋषिसे मिलने आया था, वे तो मिले नहीं; इत्यादि वार्ता कर उस स्त्रीके सुन्दरताको देख-कर ब्रह्मा उसी वक्त विशेष कामासक्त व्याकुल हुआ, तो उसके वीर्य पतन होके उसी आसनपर गिर पड़ा। तब तो लज्जित होकर ब्रह्मा उठके चला गया। इत्यादि नाना तरहसे ब्रह्मा दुःख-भोगी ही हुये थे ॥

उसी तरह विष्णुका कुकर्म भी पद्मपुराणके स्वर्ग खण्डमें

लिखा है । इसने भी माता और बहिनसे कुकर्म किया था। और दैत्यराज जालन्धरकी स्त्रीका नाम वृन्दा था, कहते हैं, वह पतिव्रता थी। एक समयमें देवगणसहित महादेव जालन्धरसे युद्ध करने लगे, उधर विष्णुने कपटसे नकली जालन्धरकारूप बनाय, रातमें वृन्दाके पास जाकर छल, बल, कपटसे उससे सम्भोग किया, इधर जालन्धर मारा गया। और विषय कर चुकनेपर वृन्दाको मालूम हुआ कि— यह तो कपटी विष्णु है। फिर उसने विष्णुको बहुत धिक्कारा, और शाप देके निकाल दिया। फिर विष्णु चुपचाप चला गया। तहाँ कहा है:—

दोहाः—"वृन्दा केरे श्रापसे। शालिग्राम औतार ॥
कहहिं कबीर कहु पण्डिता ! केहि पूजे होय उबार ॥"

ऐसे कई जगहमें कुकर्म, पाप, अन्याय करके विष्णुसहित सब देवगण विषयादिसे दुःखित ही भये थे। वैराग्यके बिना असली सुख कहीं किसीको भी नहीं हुआ है ॥

और महादेव तो बड़ा कामी, क्रोधी, तमोगुणी ही रहा। मातारूप आदि मायासे सबसे पहले इसीने भोग किया। देवी भागवतादि-में इसके कुकर्मकी लीलाका विशेष वर्णन भया है। और सती देवी-की विरहमें दक्षका यज्ञ विध्वंश कराया था। फिर सतीकी लाशको कन्धेमें डालके जहाँ-तहाँ पागलकी नाईं फिरा। यह सब बात पुराणों-में लिखा है। और पद्मपुराणके स्वर्ग खण्डमें लिखा है कि:— किसी समयमें महादेव ध्यान समाधिमें बैठे थे, उधर अन्य मनुष्योंकी सुन्दर-सुन्दर युवती स्त्रियाँ वनमें क्रीड़ा करने आई थीं। इधर इनके नेत्र खुले, तो उन स्त्रियोंका रूप और यौवनको देखकर महेश कामा-सक्त होके बड़े व्याकुल हो गये, तो उनके साथ भोग-विलास करने-की उसे तीव्र इच्छा हुई, तब छल, बल, कपट जालसे उन स्त्रियोंको बुलाके वश कर विषय भोग करके नष्ट-भ्रष्ट हुआ। पीछे पार्वतीने ऐसा जानके उन स्त्रियोंको निकालके महेशको लौटा लाई, इत्यादि कहा

है । और मोहिनीका रूप देखके तो महादेव बड़ा अधीर हुआ था, साथमें रही पार्वतीको भी छोड़कर उसके पीछे धोती-लंगोटी खोलके दौड़ता फिरा, बड़ी फजीहती भई । तब भी चेता नहीं । विषयोन्मत्त होके भिलनीके साथ भी फँसा था, इत्यादि बहुतेरे कुकर्म करके शिव बड़ा दुःख-भोगी हुआ था । और शेषादिक उनके अनुयायी सब भी विषयासक्त होके बड़े ही दुःखित हुये हैं । फिर सौ अश्व-मेध यज्ञ पूर्ण करके इन्द्रासन लेना, उसके रक्षाके लिये बार-बार दानवोंसे लड़ना, पराजित होके भाग जाना, छिपे रहना, इत्यादि प्रकारसे भी इन्द्र दुःखी हुआ । और षट् कर्मोंको विधिपूर्वक पालन करना, कर्ता ईश्वर मानके उसके प्राप्तिके लिये नानाकर्म करना-कराना, इत्यादि वाणी कल्पनासे भी ब्रह्मा दुःखी हुआ । तथा उपासनामार्गका प्रचार करना, कोई पृथक् परमात्मा मानके उसके प्राप्तिके लिये अनेक साधनाएँ करना, इत्यादि वाणीके भ्रमसे भी विष्णु दुःखी भया । और माने हुये सब देवतागण एक दूसरेको बड़ा-छोटा देखके ईर्षा-द्वेष, उपेक्षा, अभिमान, दम्भादि करके बड़े दुःखी हुये थे । उनमें सदा राग-द्वेष लगा रहता है, ऐसा वर्णन भी है । बड़ेको देखके जलन होना, और छोटेको देखके हंकार, तुच्छता होना, ऐसा भाव होता है । इसी कारणसे वे सब दुःखी भये हैं, तथा परब्रह्म कोई मानके अष्टांगयोगके अभ्यास, मुद्रा आसनादि कर, समाधि लगाकर गाफिल रहना, ऐसी वाणी कल्पनामें पड़के भी शिव और शेषसे आदिक लेकरके सब कोई योगी लोग जड़ाध्यासी होके दुःखित ही भये हैं । पूर्ण वैराग्यका यथार्थभेद निजस्वरूप पारखको जाने बिना वे सब वासनावश चारखानी चौरासी योनियोंको प्राप्त होकर सब प्रकारसे दुःख ही भोगे हैं, और दुःख भोग रहे हैं ॥ ३ ॥

दोहाः— राजा दुःखी परजा दुःखी । दुःखी रङ्क प्रभु भेष ॥
　　धनवन्त औ निर्धन दुःखी । निर्णय करिके देख ॥ ४ ॥

संक्षेपार्थः— संसारमें राग-रङ्गमें लगके विषयासक्त होनेवाले

सब राजा लोग भी बड़े दुःखी हैं। और प्रजा लोग भी सब कोई रागके कारणसे ही दुःखी हो रहे हैं। तैसे ही रङ्क=दरिद्री, प्रभु= श्रीमान् तथा भेषधारी षट्दर्शनोंके लोग और भेषमें बड़े कहलाने-वाले वे सब कोई भी निजस्वरूपके अज्ञानतासे विषयासक्ति रागमें लग-लग करके ही दुःखी भये, वा दुःखी हो रहे हैं। फिर धनवान् लोग धन बढ़ानेकी तृष्णासे दुःखी हैं, और निर्धन लोग गरीबीके कारणसे दुःखी हैं। इस प्रकारसे सब तरफ विचारदृष्टि करके निर्णय-से देखिये! तो यही मालूम पड़ेगा कि— बिना दृढ़ वैराग्यके हुए कहीं कोई भी सुखी नहीं है। सब तरफ सब कोई दुःखी-ही-दुःखी हैं॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात् हे साधुओ! विचार-दृष्टि फैला करके देखिये! तो संसारमें बिना वैराग्यके सब कोई दुःखी-ही-दुःखी दिखाई देते हैं। राजा, महाराजा, बादशाह, सम्राट् आदि राज्य-कार्यमें लगके अतिचिन्तित, दुःखित रहते हैं। कभी उन्हें शान्तिरूपी सुख तो मिलता ही नहीं। राज्य बढ़ानेके फिकरमें सदा बेचैन रहते हैं। बहुतेरे अन्याय करके मारे भी जाते हैं। तहाँ कहा हैः—

श्लोकः—"मोहाद्राजा स्वराष्टं यः कर्षयत्यन वेक्षया॥
सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः॥" मनुस्मृतिः ७।१११॥

—जो राजा दुष्ट-शिष्टके ज्ञान-बिना अपने देशके सब मनुष्योंको शास्त्रमें कहे हुए धन लेने, तथा मारने आदिके कष्टसे पीड़ा देता है, वह शीघ्र ही देशके बैर नाम प्रजाके कोपसे और अधर्म करके राज्यसे तथा जीनेसे पुत्रादिको समेत नष्ट-भ्रष्ट करके नाश हो जाता है। अर्थात् परिवार समेत, मारा जाता है। इस तरह राजा, नृपति, भूपति, छत्रपति, महाराजा, सम्राट्, बादशाह, कहलानेवाले भी राज-काजमें बड़े दुःखी रहते हैं। फिर प्रजा भी अनेकों कायदे, कानून, कर या टैक्स आदि-से दबे हुये पराधीनताके कारण बड़े दुःखी रहते हैं। शासकोंके

मनमाने चाल और कठिन-कठिन दण्डसे प्रजा व्याकुल, दुःखी हो रही है। और रङ्क = महागरीब-भिखारी लोग भी गरीबीके कारण भीख माँगनेमें दुःखी बने हैं। प्रभु = श्रेष्ठ, स्वामी, अधिपति कहलानेवाले लोग भी प्रभुताके रक्षण करनेमें दुःखी हो रहे हैं। भेषधारी लोग भी षट् दर्शनोंके—९६ पाखण्डोंके प्रपञ्च भेषकी मर्यादा पालन करनेमें दुःखी हो रहे हैं। धनवन्त = धनिक, सेठ, साहुकार, पूँजीपति, श्रीमन्त कहलानेवाले लोग धन उपार्जन, वृद्धि, रक्षणादि करनेमें दुःखी होते हैं। और निर्धन = जिसके पास कुछ भी धन-सम्पत्ति नहीं है, उसके यहाँ फाँका पड़ रहे हैं, इसलिये निर्धन लोग भी परम-दुःखी हो रहे हैं। अतः निर्णय करके बराबर देखिये, तो भोगासक्तिमें पड़े हुये रागी लोग कहीं कोई भी सुखी नहीं हैं। वैराग्यवान्को छोड़ करके और कोई भी सुखी दिखाई नहीं देते हैं॥ अब वाणीमें अर्थ सुनिये! राजा = ब्रह्मज्ञानी आदि गुरुवा लोग वे भ्रम-चक्रमें पड़के दुःखी होते हैं। प्रजा = अबोध मनुष्य शिष्य-शाखा लोग वे नाना साधनाएँ करनेमें दुःखी, बेहाल हो रहे हैं। रङ्क = दरिद्री, महा अज्ञानी, प्रभु भेष = भेषोंमें जिन्होंकी प्रभुत्त्व है, मण्डलेश्वर लोग, वे सब भी पारख बिना अभिमानादि बढ़ा करके दुःखी ही होते हैं। धनवन्त = बहुत पढ़े-लिखे विद्वान् लोग, चतुर्वेदी, षट्शास्त्री, पौराणिक, आदि और निर्धन = निपट मूर्ख, अपढ़, अशिक्षित ये लोग सब भी वाचालीपना, और मूर्खता करके दुःखी ही होते हैं। सत्य-न्याय-निर्णय करके पारख दृष्टिसे देखिये! पारख स्थिति पाये बिना वे सब दुःखी ही हुये और हो रहे हैं। पारखी वैराग्यवान् सन्त ही एक सुखी होते हैं। अतएव पारखी सद्गुरुके सत्संग विचारमें लगकर शिक्षा पालनकर तुम भी सुखी हो जाओ ॥ ४ ॥

दोहाः— तन धरि सुखिया कोइ नहीं। सब कोइ दुःखिया लोग ॥
बिन वैराग्य ठहरै नहीं। कहा ज्ञान कहा योग ॥५॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो! शरीर धारण करके सदा सुखी ही रहते

हों, ऐसा तो कोई भी देहधारी जीव नहीं हैं। और प्रथम ऐसा कोई हुये भी नहीं, पश्चात् कोई ऐसे होवेंगे भी नहीं। क्योंकि— कर्म भोगनेके लिये ही देह धारण होता है। तहाँ जन्मका दुःख, प्रथम होता है, फिर बाल, युवा, वृद्ध अवस्थामें भिन्न-भिन्न प्रकारसे नाना दुःख होते ही हैं, और रोग-शोकका दुःख भी होता ही है। पश्चात् मृत्युका दुःख भी सभीको होता है। इसलिये शरीर धारण करके सुखी कोई नहीं है, और सब कोई लोग दुःखी ही हैं, ऐसा कहा है। और यथार्थ गुरुमुख दृढ़ वैराग्यका धारण हुये बिना कोई भी निजस्वरूपमें नहीं ठहरे, वा ठहर भी नहीं सकते हैं, चाहे ज्ञान कहैं कि, योग कहैं, अथवा ज्ञान साधना करें कि, योग साधना करैं, तो भी उनका ठहराव नहीं होता है, बन्धनोंसे वे नहीं छूटते हैं। ऐसा पारख करके जानना चाहिये ॥

॥ ❋ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ❋ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात् पूर्वकर्मानुसार संसारमें सब जीव देह बन्धनोंमें पड़े हैं। इसलिये देह धारण करके कोई भी कहींपर जीवनभर सुख ही पाया हो, कभी दुःख पाया ही न हो, ऐसा होना असम्भव है। क्योंकि कर्माध्याससे शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगनेके लिये ही शरीर बना है। फिर शरीर धारण करके कोई कैसे सुखी होवेंगे? आधि, व्याधि, उपाधि, त्रिविधि ताप, जन्म-मरणादि नाना दुःखोंमें सब कोई लोग किसी-न-किसी प्रकारसे दुःखित हो हो रहे हैं। इस बारेमें सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबने बीजक ग्रन्थमें निर्णय वचन कहे हैं, सो सुनिये !—शब्द।

तन धरि सुखिया काहु न देखा। जो देखा सो दुःखिया ॥ १ ॥
उदय अस्तकी बात कहत है। सबका किया विवेका ॥ २ ॥
बाटे-बाटे सब कोई दुःखिया। क्या गृही वैरागी? ॥ ३ ॥
शुकाचार्य दुःख ही के कारण। गर्भहि माया त्यागी ॥ ४ ॥
योगी जङ्गम ते अति दुःखिया। तापसके दुःख दूना ॥ ५ ॥

आशा तृष्णा सब घट व्यापी । कोई महल नहिं सूना ॥ ६ ॥
साँच कहौं तो सब जग खीजे । झूठ कहा ना जाई ॥ ७ ॥
कहहिं कबीर तेई भौ दुःखिया । जिह्न यह राह चलाई ॥ ८ ॥श० बी० ॥६१॥
सुर नर मुनि औ देवता । सात द्वीप नौ खण्ड ॥
कहहिं कबीर सब भोगिया । देह धरेको दण्ड ॥ सा० बी० ॥ २९५ ॥

टीका इसकी बीजक त्रीजामें देखके जान लीजिये ! ॥

दोहाः—"तन रोगोंकी खान है, धन भोगोंकी खान ॥
ज्ञान सुखोंकी खान है, दुःख खान अज्ञान ॥"

"शरीरं व्याधि मन्दिरम्"—**शरीर यह तो रोगोंका घर ही है। खानीमें उस चीजका सर्वथा अभाव कभी नहीं होता है । इसीसे कहा गया है कि, देहधारी कोई सुखी नहीं हैं, पूर्वके और अभीके देह अध्यासके कारणसे सब लोग दुःखी ही-दुःखी हैं । इतने होनेपर भी दृढ़ वैराग्यकी धारणा न होनेसे और भी महान् दुःखी हो रहे हैं, और कोई ज्ञानका कथन करते हैं, कोई योगमार्गका कथन करते हैं । परन्तु ब्रह्मज्ञान कहा, तो उससे क्या फायदा हुआ ? और योगसाधना किया, योगकी बातें कहा, तो उससे सार क्या हुआ ? उससे जीवकी यथार्थ स्थिति तो नहीं होती है । खानी, वाणीका त्याग किया हुआ पूर्ण असली वैराग्ययुक्त पारख बोध बिना हुये, जीवकी स्थिति, ठहराव नहीं होती है । चाहे ज्ञानी हो, चाहे योगी हो; जड़ाध्यास उनके अन्तःकरणमें बना ही रहता है । गुरुमुखसे निर्णय किया हुआ यथार्थ वैराग्यके बिना कोई भी मुक्ति पदमें नहीं ठहरे, और ठहर नहीं सकते हैं । योग, ज्ञानादि कह-कहके धोखेमें ही बह जाते हैं, बिना पारख ॥ ५ ॥**

दोहाः—आशा तृष्णा ना मिटी । मिटेउ न मन अनुराग ॥
कलह कल्पना ना गई । तब लग नहिं वैराग ॥ ६ ॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! जब तक मनुष्योंकी भीतरसे खानी-वाणी

सम्बन्धी समस्त आशा, तृष्णा आदि विकार नहीं मिटती है, और मन-से ब्रह्मानन्द-विषयानन्द आदिमें लगाया हुआ, अनुराग = विशेष प्रेम समूल नाश होके नहीं मिटा, और मोटी-झीनी मायाजालोंमें होने-वाली कलह-कल्पनाएँ छूटके नहीं गई, तबलग यथार्थ सच्ची मुक्ति-दाई दृढ़ वैराग्य प्राप्त नहीं भई, ऐसा जानना चाहिये। क्योंकि दृढ़-वैराग्यके टिकाव, धारणा होनेपर वह सब विकार मिटके हृदय शुद्ध साफ, शान्त, स्थिर हो जाता है, ऐसा जानो ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात् हे मुमुक्षुओ ! सच्चा वैराग्य किसको कहते हैं ? सो सुनो ! जिसको पारख बोधसे आशा-तृष्णादि मिट गई हो, मन मानन्दीकी सम्पूर्णराग नाश होकर कलह-कल्पनाएँ छूट गई हों, सोई असली वैराग्य है। और खुलासा यह है कि, आशा = स्त्री, पुत्र, धन, जन, मान, बड़ाई, पदवी, श्रेष्ठता, आदिकी प्राप्तिकी आशा। और अष्टसिद्धि, नवनिद्धि, षट्गुण ऐश्वर्य, इत्यादि करामातकी चाहना; सात स्वर्ग, देवलोकादि प्राप्ति, देवता होनेकी इच्छा तथा सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, और सायुज्य, ये चार मुक्ति, चार फलादिकी अभिलाषा, और ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मादिकी प्राप्ति, साक्षात्कार करनेकी भावना, भरोसा, इत्यादि सब आशाके ही पास वा जाल हैं, और तृष्णा = पञ्चविषयोंको मनमाने भोगनेकी इच्छा, राज्यादि ऐश्वर्य सुख-भोग किसीको प्राप्त होनेपर भी सन्तोषका न होना। परन्तु भीतर अन्तःकरणसे और विशेष-विशेष सुख भोग मिलनेकी चाहना बढ़ती ही जावै, किसी तरह भी इच्छा पूर्ण न होवे, सोई तृष्णाकी महाजाल है। जिस मनुष्यकी ऐसी-ऐसी आशा और तृष्णायें छूटी नहीं हैं। मनके अनुराग नहीं मिटे हैं, अर्थात् मनसे दृढ़ मान करके प्रेम-प्रीति सहित खानी और वाणी जालोंके विषयोंमें लक्ष, वासना फैला हुआ नहीं हटा। मान, बड़ाई, ईर्षा, द्वेष, देहाभिमान, अष्टमद, अथवा अन्यायसे

नाना मत मतान्तरोंके पक्षपात पकड़-पकड़के परस्पर विवाद करना, लड़ना, झगड़ना, इत्यादि कलह निवृत्त नहीं हुई, और स्वर्ग लोकादि, ब्रह्म, ईश्वर, कर्तादिकी नाना कल्पनाएँ नहीं छूटी, मानसिक सर्व विकार नाश नहीं हुई। अन्तःकरणसे ऐसे-ऐसे सर्व प्रकारसे उपाधियाँ नहीं गईं। प्रारब्धके वर्तमानमात्र व्यवहारमें सन्तोष रखकर पूर्ण पारख स्थितिकी धारणा नहीं हुई। मैं चैतन्य हंस नित्य सत्य हूँ। ऐसी बोधकी धारणा और देहादि जड़ अनित्य पदार्थोंकी उदासीनतासे अभाव नहीं हुआ, हे सन्तो! तब तक शुद्ध ज्ञान वैराग्य जिसे परवैराग्य, पूर्ण वैराग्य, दृढ़ वैराग्य भी कहते हैं, सो उनमें नहीं हुआ, ऐसे निश्चयसे जानना चाहिये। "निर्पक्ष०" ग्रन्थमें ऐसे ही इसका अर्थ लिखा है॥ अतएव पूर्ण वैराग्यवान् कोई बिरले ही पारखी सन्त होते हैं। और सब तो एक-एक रागमें ही अरुझे पड़े हैं। कहा हैः—

दोहाः— "माया मरै न मन मरै, मरि-मरि जात शरीर॥
आशा-तृष्णा ना मरै, कहि गये सत्य कबीर॥"

चौपाईः— कलह कल्पना सब जग भर्मा॥
निर्मल चाल परखमय मर्मा॥पञ्चग्रन्थी-टकसार॥

अर्थात् पारख बिना किसीकी आशा-तृष्णाएँ नहीं छूटी, और छूटती भी नहीं हैं। इसीसे पारख रहनीमें ही सदा रहना चाहिये॥ ६॥

दोहाः—सोई अखण्ड समाधि है। जहाँ अखण्ड वैराग॥
सोई सन्त सोई साधु है। सोई सिद्ध बड़ भाग॥ ७॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो! जहाँ जिन पुरुषोंमें दृढ़ वैराग्यकी अखण्ड धारणा हुई हैं, वा होती हैं, तहाँ उनकी वृत्ति हमेशा स्थिर रहती है। किसी बातकी भी चाहना न होनेसे समूल चञ्चलता मिट जाती है। इसलिये अटूट वैराग्यका लक्षण जो है, सोई अखण्ड जाग्रत् समाधि है, ऐसा कहा जाता है। जैसे समाधिमें वृत्ति स्थिर रहती है,

तैसे वैराग्यवानका भी मन स्थिर रहता है। अतः सोई सच्ची अखण्ड समाधि है। और ऐसे विवेक-वैराग्यादि सद्गुणोंके सहित पारखपद निज स्वरूपमें जो स्थिर स्थिति कायम किये हैं, सोई सन्तोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, सोई साधु शिरोमणि हैं और सोई निजकल्याणके कार्यको पूर्ण करनेवाले सच्चे सिद्ध बड़े पुरुषार्थी, बड़े भाग्यशाली हैं। ऐसे विरक्त बोधवान् पारखी सन्तोंके दर्शन बड़े भाग्यसे ही मिलते हैं, सो जानो ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात् वास्तवमें कभी खण्ड या नाश न होनेवाला अखण्ड समाधि = स्वयं स्वरूपमें स्थिर स्थिति सोई है, जहाँपर पारख दृष्टिसे अपरोक्ष बोध, रहनी-रहस्य-की दृढ़तासे धारणा हुई है। जहाँ कि अखण्ड एकरस वैराग्य ठहरा हुआ है। खानी-वाणीकी मोटी-झीनी भागमें कहीं भी जिनकी राग, ममता, प्रेम, मानन्दी टिकी नहीं है। ऐसे पूर्ण अखण्ड वैरागवान् सन्त-के स्थिरताको ही अखण्ड-अविचल पारख समाधि कहते हैं। वे ही स्थितिवान् पारखी सन्त जिनकी सकल वृत्तियाँ शान्त हो गयी हैं। तन, मन, वचन, इन्द्रियादिकोंको साधकर वशमें करलिये हैं, सोई सच्चे साधु हैं, और वे ही बड़े भाग्यवान् सच्चे मनुष्य हैं। क्योंकि उन्होंने ही नर-जन्मके सच्चे स्वार्थरूपी पारख दृष्टिकी प्राप्ति दृढ़तासे साधके कार्य सिद्ध किये हैं। कृतकृत्य हो गये हैं। सोई बड़भागी स्वयं सिद्ध जीवन्मुक्त होते हैं। यह सब दृढ़ वैराग्यके प्रतापसे ही होता है। अतएव पारख स्वरूपके बोधसहित अखण्ड वैराग्यको ही धारण किये रहना चाहिये। साधु, सन्त, सिद्ध, बड़े भाग्यवान्, निस्पृही, आदि यह सब विशेषण वैराग्यवानके लिये कहा गया है ॥ ७ ॥

दोहाः—बिन वैराग्य न मुक्ति है। बिन वैराग्य न ज्ञान ॥
बिन वैराग्य न भक्ति है। बिन वैराग्य न-शान ॥८॥

संक्षेपार्थः—इसलिये हे सन्तो! प्रथम अन्तःकरणसे दृढ़तासे

यथार्थ शुद्ध वैराग्यको धारण किये बिना न सच्ची चैतन्य गुरुभक्ति ही हो सकती है, और न वैराग्यके बिना परमार्थमें उसकी इज्जत होती है, और शुद्ध वैराग्यके बिना न ज्ञान बोधका ही प्रकाश होता है, और पूर्ण वैराग्यमें टिकाव हुए बिना न किसीकी मुक्ति ही होती है। अतएव असली वैराग्यके गुण लक्षण ग्रहण किये बिना सांसारिक राग विषयासक्ति और भ्रम-कल्पनामें लगनेवाले सब प्रकारसे विनाशको ही प्राप्त होते हैं। हंस पदसे पतित होकर भव-बन्धनोंमें ही जकड़ पड़ते हैं॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात् यथार्थ शुद्ध सच्चा वैराग्य धारण बिना हुये रागरूप सम्पूर्ण जड़ाध्यास छूटकर जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। अर्थात् विषय भोगादिके रागमें पड़े रहकर किसीकी मुक्ति नहीं होती है। वैराग्यके धारणा करके ही मुक्ति होती है। फिर बिना वैराग्यके सत्यज्ञानका भी बोध हो नहीं सकता है। वैराग्यवान् ही सच्चेज्ञानी पारखी होते हैं। राग-द्वेषमें पड़े हुये लोगोंका शुष्कवाचक ज्ञान कोई कामका नहीं होता है। पूरा स्वरूप ज्ञान वैराग्यके बिना कैसे होगा भला? देहादिका अध्यास, भासादिसे उपराम हो जानेपर ही निजस्वरूपका ज्ञान होता है। और पूर्ण-वैराग्य उदय बिना हुए साधु-गुरुकी चैतन्य भक्ति भी पूरी नहीं होती? जड़भक्तिसे हानिके सिवाय जीवोंका कोई कल्याण नहीं होता। विषयोंके तरफसे वैराग्य होवे, तभी सद्भावना, गुरुभक्ति, सत्यासत्यका विचार होता है। गुरुभक्तिसे ही पारखज्ञान प्राप्त होता है, और उससे मुक्ति होती है। वैराग्यमें प्रवीण, परिपुष्ट हुये बिना भक्ति, ज्ञान, और मुक्ति ये तीनों भी किसीको प्राप्त हो नहीं सकते हैं। अतएव पूर्ण गुरुमुखसे समर्थन किया हुआ यथार्थ वैराग्यकी स्थिति बिना हुये सकल नर-जीव वाणी-खानीके प्रपञ्चोंमें लग-लगके हंसपदसे नसाय जाते हैं। फिर उसके पतित होनेपर कुछ भी

शान = इज्जत, श्रेष्ठता, उच्चता, सुख, सन्तोषादि सद्गुण एक भी नहीं रहती है । नष्ट-भ्रष्ट होके सब चकनाचूर हो जाते हैं । राग, रङ्ग, जड़ाध्यासोंमें बद्ध होके चौरासी योनियोंके कैदमें सदाके लिये पड़ जाते हैं । इस तरहसे वैराग्ययुक्त गुरुज्ञान पारखके बोध बिना सब कोई विनाशके मार्गमें ही लग रहे हैं ॥ ८ ॥

दोहाः—ताते मुख्य प्रधान है । सबको यह वैराग ॥
गुरु कृपा जापर भई । ते पावत बड़ भाग ॥ ६ ॥

संक्षेपार्थः— इसलिये हे सन्तो ! नित्य सुख मुक्ति स्थितिको प्राप्त करनेको, चाहनेवाले योगी, ज्ञानी, भक्त इत्यादि सब मुमुक्षु पुरुषोंके लिये प्रथमसे पश्चात् तक यही शुद्ध दृढ़ वैराग्यको ही धारण करना अत्यन्त आवश्यक-जरूरी है । यही वैराग्य ही ज्ञानमार्गमें मुख्य वा प्रधान है । बिना वैराग्यके मुक्ति नहीं होती है । अतः वैराग्यकी रहनी, भेष आदि ग्रहण करना ही चाहिये । और जिस जिज्ञासुओंपर पारखी सद्गुरुकी कृपादृष्टि भई वा होती है, वही बड़े भाग्यशाली मनुष्य गुरु पारखबोधके सहित पूर्णतासे दृढ़ वैराग्यको धारण कर पाते हैं । इसीसे वे ही बड़े भाग्य तथा पुरुषार्थके प्रतापसे जीवन्मुक्ति स्थितिको भी पाते हैं । अर्थात् गुरुकी दयासे वैराग्यके साथ ही बोध विचारका बड़ा-सा भाग भी वह पा लेता है ॥

॥ ※ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ※ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात् इसवास्ते सब मुमुक्षु मनुष्योंके लिये जीवन्मुक्ति प्राप्ती करनेका मुख्य सत-साधना प्रधानरूपसे यही वैराग्यको धारण करना ही है । जिसपर पारखी सद्गुरुकी कृपादृष्टि होती है, वही बड़ा भाग्यवान जीव दृढ़ वैराग्य सहित पारखबोधको प्राप्त कर लेता है ॥ इसलिये कहा गया है कि, सब मनुष्योंके लिये मुख्य कर्तव्य यही वैराग्य ही सर्वप्रधान है, वैराग्यसे सुख, शान्ति, सन्तोष, आदि सद्गुण सुगमतासे प्राप्त हो

जाते हैं । वैराग्यवानोंको ही सर्वउपाधि क्षय होके मुक्ति हो जाती है। जो कोई पारखी सद्गुरुका सच्चा शिष्य होता है, उन्हींपर सद्गुरुकी दया होती है। जिसपर सद्गुरुकी कृपादृष्टि भई, वही बड़ा भाग्यवान् मुमुक्षु दृढ़ वैराग्य, विवेक सहित पारखबोधको प्राप्त कर लेता है। जिसको पूर्ण वैराग्य उदय होके स्वरूप स्थिति होती है, वही बड़ा भाग्यशाली सर्वश्रेष्ठ है। वह जीते ही मुक्तिको पा-जाता है। अतएव वे विरक्त सन्त सबोंके पूजनीय हो जाते हैं ॥ ९ ॥

दोहाः—तिनको चरणोदक सही । तिनको महा प्रसाद ॥
तिनको दर्शन नित्य सही । जिनकी मिटी उपाध ॥ १० ॥

संक्षेपार्थः— बाहर-भीतरकी राग जनित सम्पूर्ण उपाधियाँ जिनकी सर्वथा मिट गई हैं, ऐसे दृढ़ वैराग्यवान् पारखी सन्त सर्वश्रेष्ठ होते हैं। अतएव विरक्त पुरुषोंकी सेवा-भक्ति करके उनके चरणोदक उतारके पीना, सो सही मार्गमें ही कहलाता है, तथा उनके महाप्रसाद ग्रहण करनेमें भी लाभ है। और उन वैराग्यवान् सन्तोंके पास जाके नित्यप्रति दर्शन भी करते रहना चाहिये। इससे भक्तिद्वारा हृदय शुद्ध होके जिज्ञासुओंको सत्यज्ञान, सत्यमार्ग जाननेमें आवेगा, और सब उपाधियाँ मिट जावेगी, ऐसा जानना चाहिये ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:— अर्थात् हे जिज्ञासु मनुष्यो ! अपने हित-कल्याणके वास्ते वैराग्यवान् साधु महात्माओंका सत्सङ्ग करो। निज सन्त-महात्माओंकी तन, मन और वचनादिकी सकल उपाधि मिट गई है, और खानी जाल विषय प्रपञ्च तथा वाणीजाल, भ्रम-कल्पनादि सर्वथा निवृत्त हो गई है। निरुपाधि हो हंस रहनी-रहस्यसहित पारख स्वरूपमें स्थिर हो गये हैं। मुमुक्षु मनुष्योंको सारशब्द गुरुमुख निर्णयका ही उपदेश देके भ्रम निवारण करते हैं, सारा सारको लखाते हैं। दृढ़ वैराग्यके तो साक्षात् मूर्ति ही होते हैं, ऐसे सत्य

बोधदाता विरक्त साधु-गुरु पारखी सन्त जो हैं, सो उन्हींकी शरणागत होके शिष्य होना उचित है। और उन्हींके चरणोंदक उतारके चरणामृत पान करना हितकारी है। जीवोंको तारनेवाले सच्चे चैतन्य तीर्थ स्वरूप साधु-गुरु होते हैं। तहाँ कहा है:—

चौपाईः—मुद-मंगल-मय सन्त-समाजू। जो जग जंगम तीरथ राजू।।
गुरुपद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष विभञ्जन ।। रा०बा०।।

इसलिये सद्गुरुके चरणोदक लेना सही है। पञ्चग्रन्थीमें गुरुबोधमें भी कहा है:—

सेवा लावै साधु गुरु, पूजै आठौं याम ।।
तीरथ चरणामृत गहन, वीरा अचल मुकाम ।। ३०७ ।।

चौपाईः—चरणोंदक परसादी लेहीं। परख प्रताप जीव सुख देहीं ।। टकसार ।।

और महाप्रसाद या शीतप्रसाद भी ऐसे त्यागी वैराग्यवान् साधु गुरुका ही लिया जाता है। यह गुरु-भक्तिका अङ्ग है। देहाभिमान गलित होके साधु-गुरुके पदमें श्रद्धा-भक्ति-दृढ़ बना रहे, इसलिये चरणामृत और महाप्रसाद लेना चाहिये, और नित्यप्रति उन्हीं विरक्त पारखी सन्तोंके दर्शन, उपदेश श्रवण, सेवा, सत्सङ्ग करते रहना चाहिये। यह सही रास्ता है। ऐसे करते रहनेसे उन सत्सङ्गियोंके भी उपाधि मिट जाती है। कहा है:—

दोहाः—"जो जैसी संगति करी, सो तैसों फल लीर्न ।।
कदली सीप भुजंग मुख, एक बून्द गुण तीन ।।"

सङ्गतका प्रभाव सङ्गत करनेवालेके ऊपर अवश्य ही पड़ जाता है। कहा है:—

सवैयाः—"ज्ञान बढ़ै गुणवानकी संगत, ध्यान बढ़ै तपसी संग कीने ।।
मोह बढ़ै परिवारकी संगत, लोभ बढ़ै धनमें चित दीने ।।
क्रोध बढ़ै नर मूढ़की संगत, काम बढ़ै तियके संग कीने ।।
बुद्धि विवेक विचार बढ़ै, कवि दीन सुसज्जन संगत कीने ।।"

इसलिये कुसङ्गतको छोड़कर सत्पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये।

फिर आयु बीत जायगी, तो हाथ कुछ नहीं आयेगा। इसीसे आयु रहते ही कल्याण मार्गमें लगना चाहिये। कहा है:—

सवैयाः—"पुत्र कलत्र सुमित्र चरित्र, धरा धन धाम है बन्धन जीको ॥
बारहिं बार विषै फल खात, अघात न जात सुधा रस फीको ॥
आन औशान तजो अभिमान, कही सुन कान भजो सिय पीको ॥
पाय परमपद हाथ सो जात, गई सो गई अब राख रही को ॥"

अतएव जिनकी सब उपाधियाँ, झंझट, झगड़ा, बन्धन मिट गया है, ऐसे विवेकी पूर्णविरागी पारखी सन्तोंके ही नित्य-प्रति दर्शन, बन्दना करके चरणोदक, महाप्रसाद लिया करो और उन्हींकी शिक्षा पालन कर जीवन सफल करो ॥ १० ॥

दोहाः—तिनको बन्दत हैं सबै। सुर नर मुनि औ भूप ॥
जिनके दृढ़ वैराग्य उर। मिटा राग तम कूप ॥ ११ ॥

संक्षेपार्थः— जिन साधु-सत्पुरुषोंके हृदयमें दृढ़ वैराग्य पूर्णतासे धारण होनेसे तम-अविद्या, अज्ञानकी कूपवत् भवबन्धनोंके मूल खानी-वाणीकी समस्त राग मिट गयी है, वा मिट जाती है, वे सर्वोपरि पूज्य जीवन्मुक्तके आदर्श स्वरूप होते हैं। इसलिये सुर, नर, मुनि और राजा-महाराजा एवं प्रजावर्ग ऐसे सब कोई लोग भक्तिसे सिर झुकायके उन विरक्त महात्माओंकी वन्दना करते हैं, उनकी कृपादृष्टि ही सब कोई चाहते हैं ॥

॥ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:— अर्थात् जिन विवेकी, परीक्षक, बोध-वैराग्य सम्पन्न सन्त-महात्माके अज्ञान अन्धकाररूप तमकूप = अँधियारी कोठरी वा काला कुआँके समान चौरासी योनि गर्भवासमें ले जानेवाला, राग = सब जड़ पदार्थोंमें और विषयोंमें प्रीति, आसक्ति, मोह, और वाणी कल्पनाके प्रेम समेत सर्वथा मिट, मिटायके विनाश हो गया है। उन्हींकी हृदयमें दृढ़ वैराग्यकी एकरस

अखण्ड स्थिति रहती है। ऐसे सत्पुरुषको सब कोई समझदार मनुष्य श्रद्धा-भक्ति सहित सिर झुकायके बन्दना = नमस्कार, बन्दगी, वा साष्टाङ्ग दण्डवत् करते हैं। सुर = देवतारूप सतोगुणी मनुष्य, नर = साधारण रजोगुणी मनुष्य, मुनि = मननशील तपस्वी, योगी, तमोगुणी मनुष्य, और राजे, महाराजे लोग वा राजा-प्रजा सब कोई विरक्त महात्माको भक्तिपूर्वक बन्दना करते हैं, और उनकी सेवा सत्कार करके पुण्यात्मा हो, यथार्थ लाभ उठाते हैं। अर्थात् जिनके अन्तःकरणमें दृढ़ वैराग्य होनेसे सम्पूर्ण राग, जड़ पदार्थोंमें, प्रीति, विषयासक्ति भ्रमरूप तमकूप मिट गया है। वे सर्वश्रेष्ठ, परमपूज्य होते हैं। उन्हें योगी, ज्ञानी, भक्त, त्रिगुणी मनुष्य और राजासे लेके प्रजातक सब कोई बन्दना करते हैं। कहा हैः—

"बन्दन योग सदा गुरु सोई। बन्दन करो मुक्ति फल होई ॥" पञ्च ग्रन्थी ॥

इसलिये वैराग्यवानोंके प्रति सब कोई पूज्यभावसे बन्दना किया करते हैं। अतएव हे मनुष्यो! यदि आवागमनादि जटिल-कठिन बन्धनोंसे छूटकर मुक्त होना चाहते हो, तो प्रबल प्रयत्नसे जड़ाध्यासोंको त्यागकर दृढ़ वैराग्यको ही धारण करो ॥ ११ ॥

दोहाः—सनकादि शुक भरत जड़। कपिलदेव सो जान ॥
और विदेही रघुगण कहैं। ऋषभदेव परमान ॥ १२ ॥

संक्षेपार्थः—हे सन्तो! प्राचीनकालमें जो-जो पुरुष वैराग्यवानोंमें प्रसिद्ध हुए, शास्त्रोंके प्रमाणसे उन्होंके नाम बतलाता हूँ, सो सुनिये! प्रथम ब्रह्माके पुत्र सनकादि चार भाई त्यागी-विरक्त कहलाये हैं। फिर शुकदेव, कपिलदेव मुनि तथा जड़ भरत, ये तीनों और ब्राह्मण कुलमें वैराग्यवान् हुए, सो जान लीजिये। फिर राजा ऋषभदेव, राजा रहूगण, और विदेह देशके राजा जनक, ये तीनों क्षत्रिय कुलमें राजा होते हुये भी अन्तमें त्यागी-वैराग्यवान् हुए हैं, ऐसा शास्त्रोंमें प्रमाण करके कहा है, सो जानिये ॥

सं० नि० षट्० २७—

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—अर्थात् इस दोहामें जिन-जिनका नाम आया है, वे सब प्राचीनकालमें वैराग्यवान् ऋषि, मुनि, योगी, ज्ञानी आदि हो गये हैं। उनके चरित्र विस्तारसे पुराणोंमें वर्णन भया है। यहाँपर संक्षेपमें परिचय कथा लिख दिया जाता है। जिससे जिज्ञासु जनोंको सार तात्पर्य समझनेमें सुलभ होगा ॥

॥ * ॥ इतिहास परिचय ॥ * ॥

१. सनकादि चार भाई ब्रह्माजीके प्रथम मानस पुत्र कहलाते हैं, और वे विष्णुके पाचवाँ अवतार भी कहलाये हैं। भागवत स्कन्ध २ के अध्याय ७, श्लोक ५ में लिखा है कि:—

तप्तं तपो विविधलोक सिसृक्षयामे आदौ सनात्स्वतपसः स चतुः सनोऽभूत् ॥
प्राक्कल्पसंप्लवविनष्ट मिहात्मतत्त्वं सम्यग्जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन् ॥ ५ ॥

— ब्रह्माजी कहते हैं:— हे नारद ! सृष्टिके प्रारम्भमें मैंने विविध लोकोंको रचनेकी इच्छासे तपस्याकरी, मेरे उस अखण्ड तपसे प्रसन्न होकर उन्होंने, 'तप' अर्थवाले 'सन्' नामसे युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमारके रूपमें अवतार ग्रहण किया। इस अवतारमें उन्होंने प्रलयके कारण पहले कल्पके भूले हुये ज्ञानका ऋषियोंके प्रति उपदेश किया। उस सुन्दर उपदेशसे वे लोग उसी समय परमतत्त्वके अनुभवी हो गये ॥ ५ ॥

सनकादि चारों भाई बड़े त्यागी, पाँच वर्षके बालक समान, सीधे-सादे, भोले-भाले सरल स्वभाववाले, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, ज्ञानी, साधन सम्पन्न रहे, उन्होंने पिताकी आज्ञा होनेपर भी सृष्टिकार्य स्वीकार नहीं किया॥ इत्यादि उनके विशेषण वर्णन भया है। एक समय सनकादिकोंके शंकाका समाधान हंसावतारने जो किया, उसका थोड़ा नमूना इस प्रकार है, सुनिये ! भागवत ११ स्कन्ध। अध्याय १३ श्लोक ३२ ॥

—"सनकादि ऋषियो ! इन्द्रियोंकेद्वारा बाहर दीखनेवाले सभी पदार्थ क्षणिक हैं। क्षण-क्षणमें उनकी उत्पत्ति और विनाश होता रहता है। जाग्रत् अवस्थामें समस्त इन्द्रियोंकेद्वारा उनका अनुभव कौन करता है? आत्मा। स्वप्नके समय हृदयमें ही जाग्रत् अवस्थाके समान विषयोंका अनुभव करनेवाला कौन है? आत्मा ही तो! तथा सुषुप्तिके समय उन सब विषयोंको समेट कर उनके लय-को भी कौन अनुभव करता है? वह सर्वद्रष्टा आत्मा ही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि— अवस्थाएँ तीन हैं और आत्मा एक। क्योंकि सोने—जागने और स्वप्न देखनेकी स्मृति बनी रहती है। इसलिये तीनों गुणोंकी कार्यभूत उन तीनों अवस्थाओंको देखनेवाला समस्त इन्द्रियोंका नियामक आत्मा ही है। इत्यादि ॥" इनके नामसे "सनत्कुमार संहिता" धर्मशास्त्रका मुख्य ग्रन्थ बना है। नारदको इन्होंने भागवतका उपदेश किया था। ये ज्ञानमार्गके आदि प्रवर्तक माने गये हैं।

सनकादिकोंको ज्ञानी और विरक्तकी श्रेणीमें माना जाता है॥ बीजकमें लिखा है:—

परमतत्त्वका निज परमाना। सनकादिक नारद शुकमाना ॥ बी० र० ८। चौ० ३॥
बैठे सभा शम्भु सनकादिक। तहाँ फिरै अधर कटोरी ॥ बी० श० १२। चौ० ६॥
सनक-सनन्दन हारिया। औरकी केतिक बात ॥ बी० चां० १। चौ० १५॥

वेद-वेदान्तद्वारा ब्रह्मज्ञानको जानके उसे ही सनकादिक दृढ़ता-से मानते रहे। पारख स्वरूपका ज्ञान तो उन्हें नहीं रहा। तो भी वैराग्यवान् रहे, ऐसा माना जाता है॥

२. शुकदेव, वेदव्यासके औरस पुत्र माने गये हैं। इस बारेमें स्कन्दपुराण नागरखण्ड पूर्वार्धमें "शुकदेवजीका जन्म, वैराग्य, व्यास जीके साथ उनका सम्बाद और वन-गमन", जैसा लिखा है:— सोई कथानक यहाँपर उद्धृत कर देता हूँ, सुनिये!

सूतजी कहते हैं:— एक समयकी बात है, मछलियोंके मैथुन

क्रीड़ाओंको देखके नदीतटपर बैठे हुए व्यासजीके मनमें पत्नी प्राप्तिके लिये अभिलाषा हुई। तब उन्होंने जाबालि मुनिसे उनकी सुन्दरी कन्या माँगी। जाबालिने चेटिका नामकी कन्या व्यासजीके साथ व्याह दी। तब व्यासजी उसके साथ वनमें रहते हुए मैथुनमें प्रवृत्त हुए। ऋतुकालमें व्याससे मैथुन प्राप्त करके चेटिका गर्भवती हुई। उसके उदरमें वह गर्भ दिन-दिन पुष्ट होने लगा। बारह वर्ष बीत गये, किन्तु वह गर्भ उत्पन्न नहीं हुआ। वह भीतर ही रहकर जो कुछ सुनता उसे याद कर लेता था, उसकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी। वह गर्भमें ज्यों-ज्यों वृद्धिको प्राप्त होता, त्यों-त्यों ही उसकी माता अत्यन्त पीड़ाको प्राप्त होकर व्याकुल होती जाती थी। तब विस्मयमें पड़े हुये व्यासजीने उस गर्भस्थ बालकसे पूछा— 'तुम कौन हो? गर्भका रूप धारण करके मेरी धर्म पत्नीकी कुक्षिमें आ बैठे हो? बाहर क्यों नहीं निकलते?'

गर्भ बोला— जो चौरासी लाख योनियाँ बताई गई हैं, उन सबमें मैंने भ्रमण किया है। अतः मैं क्या बताऊँ कि कौन हूँ? भयङ्कर संसारमें भ्रमण करते—करते मुझे बड़ा निर्वेद यानी वैराग्य हुआ है। इस समय मनुष्य होकर इस उदरमें आया हूँ। अब मेरा विचार किसी प्रकार मनुष्य लोकमें निकलनेका नहीं है। यहीं रहकर योगाभ्यासमें तत्पर हो, मोक्षमार्गको प्राप्त होऊँगा।

व्यासजीने कहा— वत्स! यदि तुम्हारी ऐसी अभिलाषा है, तो तुम्हें पाप नहीं लगेगा? इस गर्भवासरूपी घृणित एवं घोर नरकसे निकल आओ और योगका आश्रय लेकर कल्याणको प्राप्त होओ।

गर्भ बोला— विप्रवर! जबतक जीव गर्भमें रहता है, तभीतक उसे ज्ञान, वैराग्य तथा पूर्वजन्मका स्मरण बना रहता है। जब वह गर्भसे निकलता है और विष्णुकी माया उसे स्पर्श करती है, तब सारा ज्ञान भूल जाता है। इसलिये मैं इस गर्भसे किसी तरह बाहर नहीं निकलूँगा।

व्यासजीने कहा— वैष्णवी माया तुमपर किसी प्रकार भी प्रभाव नहीं डालेगी। अतः तुम मुझे अपना मुख दिखाओ। (कहीं लिखा है:— कृष्णजीने आके आश्वासन देनेपर, तब शुकने जन्म लिया)।

तदनन्तर बारहवर्षके कुमार शुक जो यौवनके समीप पहुँच चुके थे, गर्भसे बाहर निकले और व्यास तथा माताको प्रणाम करके उसी क्षण वनवासके लिये प्रस्थित हुए। तब व्यासने कहाः—

"बेटा ! मेरे घरमें ठहरो; जिससे तुम्हारे जातकर्म आदि संस्कार तो करदूँ !"

शुकदेव बोले— मेरे जन्म-जन्ममें सैकड़ों संस्कार हो चुके हैं। उन्हीं बन्धनात्मक संस्कारोंने मुझे भवसागरमें डाल रक्खा है।

व्यासजीने कहा— द्विजके बालकको पहले ब्रह्मचारी, फिर गृहस्थ, तत्पश्चात् वानप्रस्थी और अन्तमें संन्यासी होना चाहिये। इसके बाद मोक्षको प्राप्त होता है।

शुकदेवजी बोले— यदि ब्रह्मचर्यसे ही मोक्ष होता है, तब तो नपुंसकोंको वह सदा ही प्राप्त होना चाहिये। यदि गृहस्थाश्रमियोंकी मुक्ति होती है, तब तो सम्पूर्ण जगत्को ही मुक्त हो जाना चाहिये। यदि कहें, वनवासमें अनुरक्त रहनेवालोंकी मुक्ति होती है, तब तो मृगोंकी मुक्ति अवश्य हो जानी चाहिये। यदि आपका यह विचार हो कि 'संन्यास धर्मका पालन करनेवाले मनुष्योंका मोक्ष होता है, तब तो जितने दरिद्र मनुष्य हैं, उन सबकी मुक्ति पहले हो जानी चाहिये।

व्यासजीने कहा— मनुजीका कथन है कि, गृहस्थधर्ममें अनुरक्त हो सन्मार्गपर चलनेवाले मानवोंके लिये यह लोक और परलोक दोनों सुखद होते हैं। गृहस्थाश्रमी पुरुषोंकेद्वारा गृहस्थधर्मका पालन करनेके लिये जो संग्रह किया जाता है, वह इहलोक और परलोकमें भी सनातन सुख प्रदान करता है।

शुकदेवजी बोले— दैवयोगसे कभी अग्निसे भी शीतलता प्राप्त

हो सकती है, चन्द्रमासे भी ताप हो सकता है। परन्तु इस मर्त्य-लोकमें परिग्रहसे भी सुखकी उत्पत्ति हो, ऐसा न तो कभी हुआ है, न होता है और न आगे कभी होगा ही।

व्यासजीने कहा— बहुत पुण्य होनेसे किसी प्रकार इस पृथ्वीपर अत्यन्त दुर्लभ मानव जन्मकी प्राप्ति होती है। उसे पाकर यदि मनुष्य गृहस्थधर्मका तत्त्व जाननेवाला हो, तो उसे क्या नहीं मिल जाता?

शुकदेवजी बोले— यदि मनुष्य जन्मकालमें अपनी अवस्थाको देखकर ज्ञानयुक्त होता है, तो जन्म लेनेके पश्चात् वह सारा ज्ञान भूल जाता है।

व्यासजीने कहा— मनुष्यका पुत्र हो, अथवा गदहेका बच्चा, जब वह शरीरमें धूल लपेटे, चञ्चलगतिसे चलता और तोतली वाणी बोलता है, तब उसका वह शब्द भी लोगोंके लिये बड़ा आनन्द-दायक होता है।

शुकदेवजी बोले— मुने! धूलमें रेंगते और लोटते हुए अपवित्र शिशुसे जो यहाँ सन्तुष्ट होते या सुखका अनुभव करते हैं, वे अज्ञानी हैं।

व्यासजीने कहा— यमलोकमें 'पुं' नामक महाभयङ्कर नरक है, पुत्रहीन मनुष्य ही उसमें जाता है, इसलिये पुत्रकी प्रशंसाकी जाती है।

शुकदेवजी बोले— महामुने! यदि पुत्रसे ही सब लोगोंको स्वर्गकी प्राप्ति होती, तब तो सूअरों, कुत्तों और टिड्डियोंको विशेष-रूपसे उसकी प्राप्ति होनी चाहिये।

व्यासजीने कहा— पुत्रके दर्शनसे मनुष्य पितृ—ऋणसे मुक्त होता है, पौत्रके दर्शनसे वह देव—ऋणसे मुक्त होता है और प्रपौत्र-को भी देख ले, तब तो वह स्वर्गका निवासी होता है।

शुकदेवजी बोले— गीध दीर्घजीवी होता है, वह सदा अपनी कई पीढ़ीकी सन्तानोंको क्रमशः देखता है। किन्तु क्या वह मोक्षको प्राप्त हो जाता है? नहीं।

सूतजी कहते हैं— इस प्रकार कहकर शुकदेवजी वनमें चले गये॥ व्यासने बहुत तरहसे रोकना चाहा, परन्तु पूर्ण वैराग्य होनेसे शुकदेवजी घर-गृहस्थीमें रुके नहीं। तृणवत् सबोंका परित्याग कर दिये। अखण्ड बाल-ब्रह्मचारी अवधूत अवस्थामें रहे। सबसे विशेष पूर्ण त्याग वैराग्यमें शुकदेव ही प्रख्यात भये हैं, ब्रह्मज्ञानमें निपुण रहे थे। राजा परीक्षितको एक सप्ताह तकमें समूचे भागवतकी कथा शुकदेवने सुनाया, व्याससे उन्होंने भागवत पढ़ा था, ऐसा वर्णन भया है।

— एक समय शुकदेवजी अपनी ब्रह्म समाधिमें बैठे थे, उनके वैराग्यमें विघ्न करनेके उद्देश्यसे इन्द्रने रम्भा, उर्वसी आदि अप्स-राओंको समझायके भेजा। तब इन्द्रकी आज्ञासे रम्भादि अप्सरायें छल करनेको आईं। फिर अनेक प्रकारसे वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हो करके सुन्दर अद्भुतरूप धारण करके हाव, भाव, कटाक्ष दिखलाय, नाचने-गाने लगीं। तथापि शुकदेवने उसपर कुछ ध्यान नहीं दिया, निर्मान, निर्मोह हो रहे। तब उन अप्सराओंने वचनरूपी कामबाण-को प्रयोगमें लाकरके उन्हें मारा, तरह-तरहसे स्वाँग, नखरा बनाके कहती भई कि, महाराज! इन्द्रलोकसे हम आपके दर्शन करनेको उत्कण्ठित होके आईं हैं, सो कृपादृष्टि करके निहारिये, हमें अङ्गीकार करिये, हमारी इच्छा पूर्ण करिये, आपमें हमारी पूर्ण प्रीति लगी है, ऐसा कही। तब भी उन्होंने कुछ पर्वाह नहीं किये, तो फिर अकुलायके वे स्त्रियाँ बोलीं कि— देखिये! हमारे शरीरमें मल-मूत्रादि कुछ दुर्गन्ध भरा नहीं है, परन्तु अर्गजा, चन्दन, इत्र, आदि सुगन्धोंसे भरा हुआ निर्मल, स्वच्छ, पवित्र, शुद्ध, ऐसा हमारा शरीर है। इसलिये आप हमसे समागम करिये। हमें कृतार्थ कीजिये, आपको हम बार-बार नमस्कार करती हैं। इत्यादि मनमोहक कपट वचन बहुतसी कहती भईं, रोईं, गाईं, हँसीं, अङ्ग-प्रत्यङ्ग दिखाईं, हर तरह-से फँसानेकी कोशीस करीं, तो भी सफल नहीं हुईं। तब निर्विकार-

भावसे शुकदेवजी बोले कि— हे माता ! आपके कथन अनुसार शुद्ध, निर्मल आपको हम भी जानते, तो व्यासजीकी स्त्रीके पेटमें जाकर अवतार न लेते, उस गर्भवासमें जाकर मैंने तो महान दुःख भोगा। हे माता ! आपके शरीरमें सुगन्ध भरा है, ऐसा हमको मालूम होता, तो फिर आपके ही पेटमें आकर अवतार लेते, अर्थात् आपके ही गर्भसे हम जन्म लेते। मुझ अबोध पुत्रसे जो गल्ती हो गई, उसे माफ करिये। अब कृपा करके चले जाइये। उनके ऐसे अनासक्त वचन सुन करके रम्भा, उर्वसी आदि अप्सराएँ लज्यायमान हुईं, फिर हार मानकर प्रणाम करके वापिस इन्द्रलोकको चली गईं। इन्द्रसे उनके बहुविधि गुण गाईं, उन्हें अजेय बतलाईं। इस प्रकार शुकदेव निर्विषयी— पूर्ण वैराग्यवान् रहे। यह वर्णन पुराणोंमें आया है॥ और महाभारत शान्तिपर्व तथा योगवासिष्ठ ग्रन्थमें "शुकदेवजीकी परीक्षा" नामक एक प्रकरण आया है, सो भी संक्षेप सुनिये !—

भीष्मजी बोले— हे धर्मराज ! मोक्ष धर्मपर विचार करते-करते शुकदेव एक दिन अपने पिताजीके निकट गये और मोक्ष धर्मका रहस्य जाननेको उत्सुक शुकदेवजीने बड़ी विनम्रतासे पिताको प्रणाम किया और उनसे प्रश्न किया— भगवन् ! आप मोक्ष धर्मको जानते होंगे, अतः आप परम शान्तिप्रद मोक्ष धर्मका मुझे उपदेश दें, जिससे मेरा मन शान्त हो। [शुक बुद्धिमान ज्ञानी थे, परन्तु स्थिति न होनेसे संशय उत्पन्न भया जो मैं जानता हूँ, शायद वह सत्य न हो— सत्य और ही कुछ हो, उसे व्यासजीसे ही श्रवण करके जान लेना चाहिये, यही सोचके मनको शान्ति करानेके लिये आये]॥

पुत्रके उन वचनोंको सुनकर, व्यासजी कहने लगे— हे पुत्र ! तू मोक्ष धर्मके साथ ही साथ, जीवनोपयोगी अन्य धर्मोंका भी अध्ययन कर। तदनुसार शुकदेवजीने समस्त योगशास्त्र तथा कपिल

रचित सांख्यशास्त्र भी पढ़ा। वेद-वेदान्तादि सब पढ़ चुके। व्यासने वेद-प्रमाणसे चार वर्ण, चार आश्रमादिके विधान सब उन्हें समझाके फिर अद्वैत ब्रह्मका प्रतिपादन किया। तब शुकदेवने कहा कि, हे भगवन्! आपने जो-जो उपदेश किये, सो सब तो मैं आगेसे ही जानता हूँ. इससे मुझे शान्ति प्राप्त नहीं हुई, इसके अतिरिक्त और कुछ जानने योग्य होय, तो बतलाइये। शुकदेवके ऐसे वचन सुनकर व्यासजीने विचार किया कि, मेरे वचनसे इसको शान्ति प्राप्त न होगी, क्योंकि यहाँ पिता-पुत्रका सम्बन्ध भासता है। किसी औरके द्वारा ही इसे बोध होगा, ऐसा सोचके व्यासजीने कहा कि, हे शुक! इस वक्त सर्व-तत्त्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी मिथिलेश राजा जनक है, तू उनके पास चला जा, वह तुझे मोक्षके साधनोंकी शिक्षा देगा।

तदुपरान्त पिताकी आज्ञासे शुकदेव, राजा जनकके निकट गये। जाते वक्त और भी बहुत-सी बातें व्यासने समझाये। वह राजा मेरा यजमान है, अतः वह जो कुछ तुझसे कहै, उसे तू निःसङ्कोच करना, इत्यादि कहके भेजा। वहाँसे चलते-चलते कई एक दिनोंमें रास्ता तै करके शुकदेव, एक दिन विदेह राज्यकी राजधानी, मिथिलापुरीमें जाय पहुँचे। नगर-द्वारपर द्वारपालोंने भीतर जानेसे उन्हें रोका, तो उन्होंने अपना समाचार राजाके पास तक पहुँचा देनेको कहा। द्वारपालने जाकर राजासे, शुकदेवके आनेका हाल कहा। व्यासके द्वारा खबर पहिलेसे ही उसे मालूम हो चुकी थी, इसलिये राजाने कहा कि, उन्हें कहो कि जिज्ञासु होके आये हो, तो द्वारपर ही खड़े रहो, वही आज्ञा द्वारपालने आके सुनाया।

योगवासिष्ठ, मुमुक्षु प्रकरणके प्रथम सर्गमें लिखा है कि, तीन ड्योढ़ीमें क्रमशः सात-सात दिनतक शुकदेव खड़े रहे, इस तरह परीक्षा ली गई, और सामवेदीय महोपनिषद्में लिखा हैः—जनकपुरमें पहुँचके शुकदेव द्वारपर—(वे वहीं ठहरें), इस राजाज्ञासे सात दिन-तक रहे। फिर राज-प्राङ्गणमें बुलाये गये, वहाँ भी सात दिन चुप

रहे। फिर अन्तःपुरके आँगनमें बुलवाये, वहाँ भी सात दिनतक नहीं मिले। अन्य स्त्रियोंने विषय-चरित्र दिखाया। परन्तु शुकदेव निर्विकार रहे। फिर जनकने उनसे मिलके समाधान किया। उनका रहा-सहा भ्रमको भी ज्ञानोपदेशसे मिटा दिया, इत्यादि विस्तारसे वर्णन आया है। परन्तु महाभारत शान्तिपर्वके अध्याय ३२५ में तो एक-दिन और एक-रात राजभवनमें व्यतीत किया ऐसा लिखा है, यही ठीक होगा वा चाहे जैसे जितने दिन भी हो, उनकी परीक्षा ली गई थी।

इस बीच उन्हें भोग-विलासके मध्यमें रखा गया था। ऐसा वर्णन है।

और अगले दिन राजा जनकने आदर-सत्कारसहित शुकदेवकी भेंट-पूजाकी। फिर कुशल समाचार पूछनेके अनन्तर आपका पधारना किस प्रयोजनसे हुआ है? ऐसा राजाने पूछा।

शुकदेवने कहा— मैं पिताके आज्ञासे मोक्ष-धर्म सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करनेको आया हूँ। इस लोकमें ब्राह्मणोंका क्या कर्तव्य है? मोक्षके हेतुका स्वरूप क्या है? मोक्ष प्राप्तिका साधन तप है, अथवा ज्ञान? आप इन शङ्काओंका भली-भाँति समाधान करें।

इसके उत्तरमें क्रमशः चार आश्रमोंके कर्म पालन करनेको जनकने बताया।

शुकदेवने पूछा— यदि किसीके मनमें ज्ञान-विज्ञान उत्पन्न हो गया हो, और उसके मनमें सुख-दुःखादिकी भावनाएँ न रही हों, तब भी क्या उसे ब्रह्मचर्यादि तीनों आश्रमोंमें रहना आवश्यक है? हे जनाधिप! मैं यह बात आपसे पूछता हूँ, सो आप मुझे इसका उत्तर दें।

राजा जनकने कहा— ज्ञान-विज्ञान प्राप्त हुये बिना मोक्ष नहीं मिलता। गुरु सम्बन्ध हुए बिना ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती। गुरु इस संसार सागरसे पार पहुँचानेवाला है। ज्ञान, नौका है। चित्त शुद्ध

होनेपर मुक्त हुये विद्वान्‌को, तीनों आश्रमोंके कर्मोंका पालन करनेकी विशेष आवश्यकता नहीं है। जैसे पक्षी बिना नीचे आये ऊपर ही ऊपर उड़कर एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर जा बैठता है, वैसे ही शान्त एवं निर्द्वन्द पुरुष अपना शरीर त्यागकर, अनन्त मोक्ष पाता है। जो पुरुष निन्दा-स्तुति, सुख-दुःख, सुवर्ण-लोहा, शीत-उष्ण, अर्थ-अनर्थ, प्रिय-अप्रिय, और जीवन-मरणको समान समझता है, उसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। जैसे कच्छप अपने अङ्गोंको फैला और सिकोड़ लेता है, वैसे ही संन्यासीको अपना मन अपने अधीन कर लेना चाहिये। इत्यादि ॥

एक ग्रन्थमें लिखा है— ज्ञानोपदेशकी याचना करनेपर संसारमें-की कोई निरुपयोगी वस्तु भेंट लानेके लिये जनकने कहा— तो शुकदेव ढूँढ़नेको गये, खोजते-खोजते ऐसी कोई वस्तु मिली नहीं। अन्तमें विष्ठाको तुच्छ समझके लेना चाहा, परन्तु विचार करनेसे उसकी भी बहुत-सी उपयोगिता मालूम पड़ी। फिर विवेकसे निज देह ही तुच्छ मालूम पड़ी। राजासे जाके सोई अनुभव बताया। तहाँ कहा है:—

दोहाः—"बुरा ढूँढ़न मैं चला, बुरा मिला नहिं कोय।
जो दिल खोजौं आपना, मुझसा बुरा न कोय॥"

फिर परीक्षाके लिये तेलसे भरी हुई थाली देके उसे पकड़कर एक बून्द भी गिराये बिना, शहर-प्रदक्षिणा करके, आनेको कहा, सो भी पूरा किया। फिर भयप्रद स्थानमें भोजन कराया, ऊपर हिलता हुआ बड़ा भारी पत्थर टँगा था, जिससे उसमें लक्ष लगनेसे भोजन व्यञ्जनोंका स्वाद मालूम ही नहीं पड़ा। इन्हीं सब घटनाओंमें एकाग्र-वृत्ति होनेके समान ही आत्मस्थितिमें एकाग्रता होती है, ऐसा बतलाके समाधान किया है॥

दूसरे ग्रन्थमें लिखा है— जब शुकदेव जनकपुरीमें पहुँचे, तो परीक्षाके लिये उन्हें द्वारपर खड़े रहनेको कहा, तो तीन दिनतक द्वारपर ही खड़े रहे। परन्तु कुछ भी उन्हें क्रोध नहीं आया। फिर

चौथे दिन भीतर बुलाया, वहाँ राजसी ठाट-वाट, भोग-विलास करते हुये दिखलाये। ऐसा विषयासक्ति देखके जनकके प्रति शुकदेवके मनमें घृणा उपजो। ऐसा भाव जानके जनकने कल्पित अग्नि, शहर और महलमें लगनेकी व्यवस्था किया, अर्थात् योंही अग्नि लगनेकी अफवाह फैलाने लगाया। राजदूत आके, अग्नि लगनेका समाचार सुनाया। द्वारपर भी अग्नि आ-पहुँची कहा, तो शुकदेव कुछ शशङ्कित हुये, परन्तु जनकने निम्न श्लोक बोला; लिखा है:—

श्लोकः— "अनन्तवत्तुमें वित्तं यन्मे नास्ति हि किञ्चन ॥
मिथिलायां प्रदग्धानां न मैं दह्यतिकिञ्चन ॥"

—मेरा जो आत्मरूपी वित्त या धन है, सो अनन्त है, तिसका अन्त कदापि हो नहीं सकता है। इस मिथिलापुरके दग्ध होनेसे मेरा तो किञ्चित् भी दग्ध नहीं होता है ॥ ऐसा सुनके शुकदेवको फिर उसके प्रति श्रद्धा हुई, उसे आसक्ति रहित, आत्मज्ञानी समझा, और मोक्ष धर्मके बारेमें शङ्का प्रगट किया। यह संसार आडम्बर कैसे उत्पन्न हुआ ?-फिर कैसे शान्त होवेगा ? यह बात शुकदेवने पूछा।

राजा जनकने वेद-शास्त्रानुसार समझाया। तो शुकदेव बोले— आपने जो कुछ कहा है, सोई मेरे पिताजीने भी कहा था, सोई शास्त्रोंमें भी लिखा है, और विचारसे मैं भी वह सब जानता हूँ कि, यह संसार अपने चित्तमेंसे उत्पन्न होता है और चित्तका निर्वेद होनेसे भ्रमकी निवृत्ति हो जाती है। परन्तु अभीतक मुझको विश्राम प्राप्त नहीं हुआ है। अब जिस प्रकार शान्ति हो, वही बात बतलाइये।

जनकने कहा— हे महामुने ! मुझे तो दिव्यज्ञान तुम्हारे पिताके कृपासे ही प्राप्त हुआ है। अन्धकारमय गृह जैसे दीपकके प्रकाशसे दिखलाई पड़ने लगता है, वैसे ही बुद्धिरूपी दीपकसे आत्मा देखा जा सकता है। हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! ये सब बातें मैं तुममें पाता हूँ ! साथ ही अन्य ज्ञातव्य विषय भी तुमको विदित हैं। हे ब्रह्मर्षे ! गुरुकी कृपासे तुम्हें जो उपदेश मिला है, उससे तुम विषयोंसे परे

हो गये हो। मैं तो यही समझता हूँ। तुम जितना समझे हुये हो, उससे अधिक विज्ञान तुममें है। बाल्यावस्थासे मोक्ष प्राप्तिके सम्बन्धमें सन्देह होनेके कारण विज्ञान प्राप्त होनेपर भी उस मनुष्यको मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती। शुद्ध उद्योगद्वारा और मुझ जैसे पुरुषसे सन्देह निवृत्त होनेपर, जब हृदयकी ग्रन्थि कट जाती है, तब ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। तुम विज्ञानी हो गये हो, तुम्हारी बुद्धि भी स्थिर है और तुममें लोभ भी नहीं है। किन्तु यह सब होनेपर भी बिना उद्योग किये मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। तुम्हारी दृष्टिमें सुवर्ण और पत्थर समान है। मैं ही नहीं अन्य लोगोंकी दृष्टिमें भी तुम अक्षय्य, अनामय, मोक्षमार्गमें स्थित प्रतीत होते हो, इस संसारमें ब्राह्मणत्वका जो फल है और जो मोक्षका स्वरूप है, वह तुम्हें प्राप्त हो चुका है। तुममें बाहरी और भीतरी—दोनों प्रकारकी उपरामता है, अतः तुम मुझसे श्रेष्ठ हो। तुमको अब कुछ सीखना नहीं है। जाकर ध्यान लगाइये, निवृत्ति परायण होइये। जनकके इन वचनोंको सुनकर शुकदेवको मोक्ष प्राप्तिका निश्चय हो गया। तब सन्तुष्ट होकर शुकदेवजी उठके उत्तर दिशाके तरफ चले गये। जाकर उन्होंने ध्यान लगाया, ध्यान लगाते ही उनको समाधि भी लग गई। इस प्रकार विज्ञान स्थितिमें पहुँचे। दृढ़ वैराग्यमें ही रहके शुकदेवने जन्म-आयु समाप्त किया। पूर्वके सब त्यागी-वैराग्यवानोंमें शुकदेवजी सर्व श्रेष्ठ माने गये हैं। यह सब शास्त्रोंक्त बात उतारके लिख दिया गया है। ऐसा जानिये ॥

इतना होनेपर भी पारख स्वरूपका बोध तो उन्हे नहीं भया। सद्गुरुने कहा हैः—

"तत्त्वमसी इनके उपदेशा। ई उपनिषद् कहैं सन्देशा ॥
परमतत्त्वका निज परवाना। सनकादिक नारद शुक माना ॥" बीजक, रमैनी ८॥

सन्तो ! मते मातु जनरंगी ॥
गोरख दत्त वशिष्ठ व्यास कपि ॥ नारद शुक मुनि जोरी ॥ बी० श० १२ ॥

शुकाचार्य दुःख हीके कारण। गर्भहि माया त्यागी ॥ बीजक शब्द ६१ ॥
जा मनको कोई जानु न भेवा। ता मन मगन भये शुकदेवा ॥ बीजक शब्द ६२ ॥
माते शुकदेव उद्धव अक्रूर। हनुमन्त माते ले लंगूर ॥ बीजक, वसन्त १० ॥
भूलत विरञ्चि महेश शुकमुनि। भूलत सूरज चन्द्र ॥ बीजक, हिं० १ चौ० ८ ॥

इस प्रमाणसे पारख बिना शुकदेवको भी नित्य, सत्य मुक्ति प्राप्त नहीं भया। वाणीके कल्पना उनसे नहीं छूटा। यहाँ तो खाली त्याग-वैराग्यकी विशेषता ही दिखाया गया है। सत्यन्याय गुरु निर्णयसे पारख बोध हुये बिना किसीकी भी मुक्ति न हुई है, न होयगी। अतएव त्यागके साथमें पारखबोध अवश्य होना चाहिये, तभी जीवन्मुक्ति होती है, ऐसा जानिये ॥

३. अब दोहामें आया हुआ—भरत जड़ = जड़ भरतके बारेमें कहता हूँ, सुनिये! भागवत स्कन्ध ५, अध्याय ९ में लिखा हैः—

शुकदेवजी कहते हैंः—आङ्गिरस गोत्रमें उत्पन्न हुए एक ब्राह्मण थे। उनकी छोटी पत्नीसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ, सोई जड़भरत नामसे प्रख्यात हुआ। वह 'यथा नाम तथा गुण' होनेसे निवृत्ति परायण था। दूसरोंकी दृष्टिमें पागल, मूर्ख, अन्धे और बहरेके समान बने रहते थे। उनके पिताने ब्राह्मणोचित संस्कार करके पढ़ाने-लिखानेकी कोशिष किये, परन्तु वे कुछ भी पढ़ा नहीं सके। क्योंकि पुत्रकी विशेष जड़-बुद्धि था। कालान्तरमें उनके पिताकी मृत्यु हो गयी। माता सती होके मर गईं। तब जड़भरत सौतेली माता और उसके पुत्रोंके पाले पड़ गये। जड़ भरतको मानापमानका कोई विचार न था। कोई कुछ भी कहै, करै, उन्हें परवाह न थी। कोई भी उनसे कुछ भी काम कराना चाहते, तो वे उनकी इच्छाके अनुसार कर देते। बेगारकेरूपमें अथवा मजदूरीकेरूपमें, माँगनेपर अथवा बिना माँगे जो भी थोड़ा-बहुत अच्छा वा बुरा अन्न उन्हें मिल जाता, उसीको जीभका जरा भी स्वाद न देखते हुए खा लेते। अन्य किसी कारणसे उत्पन्न न होनेवाला स्वतःसिद्ध आत्मज्ञान उन्हें प्राप्त हो

गया था। इसलिये ! शीतोष्ण, मानापमान आदि द्वन्द्वोंसे होनेवाले सुख-दुखादिमें उन्हें देहाभिमानकी स्फूर्ति न होती थी। वे सर्दी, गर्मी, वर्षा और आँधीके समय साँड़के समान नंगे पड़े रहते थे। उनके सभी अङ्ग हृष्ट-पुष्ट एवं गठे हुए थे। वे पृथ्वीपर ही पड़े रहते थे, कभी तेल-उबटन आदि नहीं लगाते थे, और न कभी स्नान ही करते थे, इससे उनके शरीरपर मैल जम गई थी। वे अपनी कमरमें एक मैला-कुचैला कपड़ा लपेटे रहते थे। उनका यज्ञोपवीत भी बहुत ही मैला हो गया था। इसलिये अज्ञानी जनता यह कोई द्विज है, कोई अधम ब्राह्मण है, ऐसा कहकर उनका तिरस्कार कर दिया करती थी, किन्तु वे इसका कोई विचार न करके, स्वच्छन्द विचरते थे। दूसरोंकी मजदूरी करके पेट पालते देख, जब उन्हें उनके भाइयोंने खेतकी क्यारियाँ ठीक करनेमें लगा दिया, तो वे उस कार्यको भी करने लगे। परन्तु उन्हें इस बातका कुछ भी ध्यान न था कि, उन क्यारियोंकी भूमि समतल है या ऊँची, नीची, अथवा वह छोटी है या बड़ी। उनके भाई उन्हें चावलकी कनी, खल, भूसी, घुने हुये उड़द, अथवा बरतनोंमें लगी हुई अनाजकी खुरचन—जो कुछ भी दे देते, उसीको वे अमृतके समान खा लेते थे ॥ ८—११ ॥

किसी समय डाकुओंके एक सर्दारने, जिसके सामन्त शूद्र जातिके थे, पुत्रकी कामनासे भद्रकालीको मनुष्यकी बलि देनेका निश्चय किया। उसने जो पुरुष, पशु-बलि देनेके लिये पकड़ मँगाया था, वह संयोगवश उसके फन्देसे निकल कर भाग गया। उसे ढूँढ़नेके लिये उसके नौकर चारों ओर दौड़े। किन्तु अँधेरी रातमें आधी रातके समय कहीं उसका पता न लगा। इसी समय दैवयोगसे अकस्मात् उनकी दृष्टि इन जड़भरत पर पड़ी, जो वीरासनसे बैठे हुए मृग-वराहादि जीवोंसे अपने खेतोंकी रखवाली कर रहे थे। उन्होंने देखा कि— यह पशु तो बड़े अच्छे लक्षणोंवाला है, इससे हमारे स्वामीका कार्य अवश्य सिद्ध हो जायगा। यह सोचकर

उनका मुख आनन्दसे खिल उठा और वे उन्हें रस्सियोंसे बाँधकर चण्डिकाके मन्दिरमें ले आये। तदनन्तर उन चोरोंने उन्हें विधिपूर्वक स्नान कराकर कोरे वस्त्र पहनाये, तथा नाना प्रकारके आभूषण, चन्दन, माला, और तिलक आदिसे विभूषित कर अच्छी तरह भोजन कराया। फिर धूप, दीप, माला, खील, पत्ते, अंकुर, फल, और नैवेद्य आदि सामग्रीके सहित बलिदानके विधिसे गान, स्तुति और मृदङ्ग एवं ढोल आदिका महान शब्द करते हुए उस पुरुष-पशुको भद्रकालीके सामने नीचा शिर कराके बैठा दिया। इसके पश्चात् दस्युराजके लुटेरे पुरोहितने उस नर-पशुके रुधिरसे देवीको तृप्त करनेके लिये, देवी मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित, एक तेज तलवार उठायी॥ १२—१६॥

यह भयंकर कुकर्म देखकर देवी भद्रकालीके शरीरमें दुःसह दाह होने लगा, और वे एकाएक प्रगट हो गईं। और उछल कर उस अभिमन्त्रित खड्गसे ही उन सारे पापियोंके शिर उड़ा दिये। सच, है, महापुरुषोंके प्रति किया हुआ अत्याचाररूप अपराध इसी प्रकार ज्योंका-त्यों अपने ही ऊपर पड़ता है। जिनकी देहाभिमानरूप, सुदृढ़ हृदय-ग्रन्थी छूट गई है, जो समस्त प्राणियोंके सुहृद तथा वैरहीन है, उन विरक्त महात्माओंके लिये अपना शिर कटानेका अवसर आनेपर भी किसी प्रकार व्याकुल न होना— यह कोई बड़े आश्चर्यकी बात नहीं है॥ १७—२०॥

शुकदेवजी कहते हैं— एक बार सिन्धु शौवीर देशका स्वामी राजा रहूगण पालकीपर चढ़कर कपिलमुनिके दर्शनको जा रहा था। जब वह इक्षुमती नदीके किनारे पहुँचा, तो उसकी पालकी उठानेवाले कहारोंके जमादारको एक कहारकी आवश्यकता पड़ी। संयोगवश उसे ये जड़भरत मिल गये। इन्हें देखकर उसने सोचा, यह मनुष्य हृष्ट-पुष्ट, जवान और गठीले अङ्गोंवाला है। इसलिये यह तो बैल या गधेके समान अच्छी तरह बोझा ढो सकता है। यह सोच-

कर बेगारमें इन्हें भी पकड़कर पालकीमें जोत दिया। परन्तु वे बिना कुछ बोले चुपचाप पालकीको उठा ले चले। और कोई जीव पैरों तले दब न जायँ— इस डरसे उन्हें बचा-बचाके अपने नित्यके अभ्यासके अनुसार कूदते-फाँदते, उछलते चलने लगे। जिससे पालकी टेढ़ी-सीधी होने लगी। तब राजाने कहारोंको डाँटा-फटकारा, उन्होंने सारा दोष इनके बताये। फिर इन्हें भी खूब डाँटा, डपटा, बहुत तुच्छ तिरस्कारके वचन कहा, अन्तमें मारनेकी भी धमकी दी। परन्तु जड़भरतजी राजाकी बातोंको शान्तिपूर्वक सुनते रहे और अन्तमें उन्होंने उसकी सारी बातोंका बड़े सुन्दर ढंगसे और ज्ञान-वैराग्यपूर्ण उत्तर दिया। जब राजाने उस प्रकारका न्यायोचित सुन्दर उत्तर उस पालकी ढोनेवाले मनुष्यसे सुना, तो उसके मनमें यह निश्चय हो गया कि— हो-न-हो, ये कोई छद्म भेषधारी महात्मा हैं। फिर वह पालकीसे शीघ्र उतर कर जड़भरतजीके चरणोंमें बन्दना किया, और अपना भूल-कसूरका क्षमा माँगता भया। दयालु जड़भरतजीने उसे क्षमा करके बड़ा अच्छा उपदेश दिये हैं। उन्होंने कहा— हे रहूगण! वह ज्ञानरूप परमात्मा महापुरुषोंके चरणोंकी धूलसे अपनेको नहलानेके सिवाय, तप, यज्ञादि वैदिक कर्म, अन्नादिके दान, अतिथि-सेवा, दीन-सेवा आदि गृहस्थोचित धर्मानुष्ठान, वेदाध्ययन, अथवा जल, अग्नि या सूर्यकी उपासना आदि अन्य किसी भी साधनोंसे प्राप्त नहीं हो सकता है। सन्त-महात्माओंकी सेवा, सत्सङ्गके प्रभावसे ही प्राप्त हो सकता है। तुममें विवेक-विचार नहीं है, मैं सिन्धु देशका राजा हूँ, इस प्रबल-मदसे अन्धे हो रहे हो। किन्तु इसीसे तुम्हारी कोई श्रेष्ठता सिद्ध नहीं होती। वास्तवमें तो तुम बड़े क्रूर और धृष्ट ही हो। तुमने इन बेचारे दीन-दुखिया कहारोंको बेगारमें पकड़कर पालकीमें जोत-रक्खा है, और फिर महापुरुषोंकी सभामें बढ़-बढ़कर बातें बनाते हो कि— मैं लोकोंकी रक्षा करनेवाला हूँ। यह तुम्हें शोभा नहीं देता

है। इत्यादि प्रकारसे तीन अध्यायतक विस्तारसे राजाको उपदेश दिये, विशेष विस्तार तो भागवतद्वारा ही मालूम पड़ेगा, यहाँ तो संक्षेपमें उनके त्याग, वैराग्य, समझ, बोधके बारेमें ही थोड़ा-सा लिख दिया गया है। सब बातोंको जान-बूझ, समझ करके ही उन्होंने अनासक्त होनेके लिये ही जड़वृत्ति बना लिये थे, ऐसा तात्पर्य कहा है।

इतना होनेपर भी पारखबोध उनको नहीं भया, इसीसे भ्रम चक्रमें ही पड़े रहे। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहा है:—

अम्बरीष औ याज्ञ जनक जड़। शेष सहस्र मुख फाना ॥
कहाँ लौं गनौं अनन्त कोटि लों। अमहल—महल दिवाना ॥ बी० श० १२ ॥

अतएव जड़भरत पारखहीन थे, खाली वैराग्यके दर्जामें उन्हें अच्छा कहा गया है, ऐसा जानना चाहिये ॥

४. कपिलदेव— इनका विशेष चरित्र भागवत तृतीय स्कन्धमें, अध्याय २४ से ३३ तक विस्तारसे कहा गया है! उसमेंका संक्षिप्त सारांश यही है कि:—

ब्रह्माके पुत्र कर्दम नामक एक मुनि थे, स्वायम्भुव मनुकी पुत्री देवहूति थी। इन दोनोंका विवाह होनेके पश्चात् इन्हींकेद्वारा कपिल मुनिका जन्म देवहूतिके गर्भसे हुआ। पिता कर्दम तो पहिले ही विरक्त होके वनमें तपस्याको चले गये थे, माताने उनका पालन-पोषण किया। चौबीस अवतारोंमें कपिलमुनिका तीसरा अवतार माना गया है। कहा है :—

"जज्ञे च कर्दम गृहे द्विज देवहूत्यां स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगतिं स्वमात्रे ॥
ऊचेयदात्मशमलं गुणसङ्गपंक मस्मिन्विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे ॥"

भागवत स्कन्ध २। अ० ७। ३ ॥

— कर्दम प्रजापतिके घर देवहूतिके गर्भसे नौ बहिनोंके साथ भगवान्‌ने कपिलके रूपमें अवतार ग्रहण किया। उन्होंने अपनी माता-को उस आत्मज्ञानका उपदेश किया, जिससे वे इसी जन्ममें अपने

हृदयके सम्पूर्ण मल-तीनों गुणोंकी आसक्तिका सारा कीचड़ धोकर कपिलके वास्तविक स्वरूपको प्राप्त हो गयीं ॥ ३ ॥

होश सम्हालनेपर छोटेपनसे ही कपिल त्यागी, वैराग्यवान्, बालब्रह्मचारी हो रहे। सांख्य शास्त्रको इन्होंने अपने अनुभवसे बनाया, सो प्रथम देवहूति माताको ही उपदेश कह सुनाया ॥ एक समय उनसे देवहूति बोली— इन दुष्ट इन्द्रियोंकी विषय लालसासे मैं बहुत तंग आ गई हूँ और इनकी इच्छा पूरी करते रहनेसे ही घोर अज्ञानान्धकारमें पड़ी हुई हूँ। अब आप मेरे इस महामोहको दूर कीजिये !

कपिल बोले— माता ! मेरे विचारसे आत्मयोग ही मनुष्योंके आत्यन्तिक कल्याणका मुख्य साधन है, इससे दुःख और सुखकी सर्वथा निवृत्ति हो जाती है।

जीवके बन्धन और मोक्षका कारण मन ही माना गया है। विषयोंमें आसक्त होनेपर वह बन्धनका हेतु होता है और विषयासक्तिसे रहित वैराग्य होनेपर वही मोक्षका कारण बन जाता है। जिस समय यह मन मैं और मेरेपनके कारण होनेवाले काम, लोभ आदि विकारोंसे मुक्त हो जाता है, उस समय वह सुख-दुःखसे छूटकर शुद्ध और सम अवस्थामें आ-जाता है, तब जीव अपने ज्ञान-वैराग्य और भक्तिसे युक्त हृदयसे अपनेको प्रकृतिसे परे एकमात्र, भेद रहित, स्वयं प्रकाश, सूक्ष्म, अखण्ड और निर्लेप या सुख, दुःख रहित देखता है, तथा प्रकृतीको शक्तिहीन अनुभव करता है ! भक्तिके समान और कोई मंगलमय मार्ग नहीं है। विवेकीजन सङ्ग या आसक्तिको ही आत्माका अच्छेद्य बन्धन मानते हैं। किन्तु वही सङ्ग जब सन्तों, महापुरुषोंके प्रति हो जाता है, तो मोक्षका खुला द्वार बन जाता है।

जो लोग सहनशील, दयालु, समस्त देहधारियोंके अकारण हितू, किसीके प्रति भी शत्रुभाव न रखनेवाले, शान्त, सरल स्वभाव और

सत्पुरुषोंका मान करनेवाले होते हैं। ऐसे-ऐसे सर्वसङ्ग परित्यागी महापुरुष ही साधु होते हैं। तुम्हें उन्हींके सत्संगकी इच्छा करनी चाहिये। क्योंकि वे आसक्तिके कारण होनेवाले सभी दोषोंको दूर कर देते हैं। सत्पुरुषोंके सत्संगसे शीघ्र ही मोक्षमार्गमें श्रद्धा, प्रेम और भक्तिका क्रमशः विकाश हो जाता है। इत्यादि प्रकारसे कपिल-ने समझाया। फिर देवहूति प्रश्न करती गईं, उसका विधिपूर्वक वे समाधान करते गये। महदादि भिन्न-भिन्न तत्त्वोंकी उत्पत्तिका वर्णन, प्रकृति-पुरुषके विवेकसे मोक्ष प्राप्ति विशेष वर्णन इत्यादि कई प्रकरण सविस्तार वर्णन करते-करते तृतीय स्कन्धकी समाप्ति-तक नाना तरहसे बतलाया गया है। अन्तमें माताको उपदेश देकर कपिलमुनि वनको चले गये। सो इस प्रकारसे जीवनपर्यन्त कपिल-मुनि त्याग-वैराग्य संयुक्त रहे! केवल वैराग्यवानोंके श्रेणीमें इन्हें माना गया है। गुरु-पारखका बोध, उन्हें भी नहीं हुआ, ऐसा जानना चाहिये॥

५. और विदेही—राजा जनक कहलाये हैं। तहाँ निमि वंशमें जितने भी राजा हुए, सभी 'जनक' कहलाते थे। ब्रह्मज्ञानी होनेसे विदेह संज्ञा भी इन सबोंकी थी। किन्तु जनकके नामसे अधिक प्रसिद्ध सीताके पिता ही हुए हैं। उनका यथार्थ नाम तो "सीरध्वज" था; अथवा सूर्यवंशके दूसरे इक्ष्वाकुके पुत्र निमि भया था। निमिके पुत्र जनक हुआ; उनके नामसे उनके पश्चात्के प्रसिद्ध ४८ वंशतकके राजा सभी जनक पदवीवाले ही कहलाये, और निमि वंशके १७ वीं पीढ़ीके राजा 'सीरध्वज' हुये, उपनाम उनका जनक प्रसिद्ध हुआ। कुशध्वज उनके भाईका नाम था। भानुमान पुत्र और सीता पुत्री सीर-ध्वज जनकके हुए। इस वंशके मिथिलाके सब राजा, विदेह और जनक कहलाते थे। ऐसा इतिहासज्ञ लोगोंने प्रमाण करके माने हैं॥ अर्थात् विदेह नगर या मिथिलापुरीका राजा जनक नामसे विख्यात हुआ था, सुनैना नामकी उसकी रानी थी, जो नवजात कन्या उन्हें मिली;

उसका नाम जानकी या सीता रखा, सो पीछेसे रामचन्द्रसे व्याही गई । रामचन्द्रके श्वसुरका नाम वा उपनाम ही जनक विदेही था। यह बड़ा सत्संगी ब्रह्मज्ञानी था, विद्वानोंके सभामें ब्रह्मज्ञानकी ही वार्ता किया करता था। एक समय राजा बगीचामें गया, तो सत-सिद्ध आके त्याग-वैराग्य और ज्ञानका उसे उपदेश दिये। उससे राजाको बड़ी उदासीनता-वैराग्य उत्पन्न भया। फिर महलमें आके एकान्तमें बैठके विचार करने लगा कि, हाय ! संसारमें बड़ा कष्ट है ! यह चञ्चल दुःखरूप संसारमें मैं पड़ा हूँ ! उसे ही मैं विश्वास कर रहा हूँ ! मेरी बुद्धि जड़ हो रही है, मुझे तो धिक्कार है। यह मन्त्रीगण, राज्य और मेरा जीवन भी क्षणभंगुर है, विषयोंका सुख जो है, सो दुःखरूप ही है । इससे रहित होकर मैं किस प्रकार स्थिर होऊँ । यह जो लोक है, सो सब आगमापायी है, उदय-अस्त होनेवाला जल तरङ्गवत् नाशवान् है । जो बड़े-बड़े हुए हैं, सो सब नष्ट हो गये हैं, स्थिर कोई नहीं रहा, तो मैं ही क्या स्थिर रहूँगा। हे चित्त ! बड़ा खेद है, तुझने किस बड़ाई विषे आस्था बाँधी है। भोगोंसे मेरा क्या है ? और बान्धवोंसे मेरा क्या है ? इन विषै मैं क्यों मोहित भया हूँ ! संसारके सुख विषरूप हैं, इस विषयमें आस्था करना मिथ्या है। जो बड़े-बड़े ऐश्वर्यवान् हुए हैं, बड़े पराक्रमी गुणवान् हुए हैं, सो सब भी परिवारसंयुक्त मृत्युको प्राप्त भये हैं, तो मैं भी क्या रहूँगा ? कहाँ यह धन ? कहाँ यह राज्यादि रहेगा ? कितनेक इन्द्र, चन्द्रादि देवता हो गये और कितनेक ब्रह्मादि हो गये, सो कुछ खबर नहीं, यहाँ कोई नहीं ठहरा। नाहकमें मैं झूठी माया मोहमें भूल रहा हूँ ! इससे मुझे धिक्कार है। कालके सूक्ष्मगतिको कोई नहीं जान सकता। शिव और ब्रह्मा, विष्णुको भी जिसने खेलनेका गेंद किया है, ऐसा काल सबको जो नष्ट कर देता है, फिर मैं इस जीवन-विषै क्या विश्वास करूँ ! जो कुछ पदार्थ हैं, सो निरन्तर नाश होते हैं, यह सारा जगत् ही परिणामी है। दिन, पक्ष, मास,

वर्षादि करके समय बीतता जाता है, बना हुआ पदार्थ विनाश होता जाता है। परन्तु अभी तक भी मैं अविनाशी वस्तु देखनेके प्रयत्नमें नहीं लगा, इत्यादि सोचता-विचारता, अपनी करनी-भूलपर पछतावा करके, तबसे जीवनपर्यन्त साधु-सन्तोंके सत्संग करते हुए उदासीनतासे रहा। यह जनकके वैराग्य विचार प्रकरण, योगवाशिष्ठके उपशम प्रकरणमें नवम अध्यायमें विस्तारसे आया है। उसका सार नमूनामात्र यहाँ दर्शाया गया है; और महाभारत आश्वमेधिक पर्वके अध्याय ३२ में भी राजा जनक और एक ब्राह्मणका उपाख्यान आया है, उसका सारांश सुनिये !—

राजा जनकने एक अपराधी ब्राह्मणको एक समयमें देश निकालेका दण्ड दिया, और कहा, तुम मेरे राज्यमें बास न करने पाओगे। ब्राह्मण बोला— महाराज ! आप मुझसे वही विषय कहिये, जो आपके वशवर्ती हो। राजन् ! मैं चाहता हूँ कि, आपके आदेशानुसार मैं, अन्य राज्यमें जाके बास करूँ, और आपके आदेशका पालन करूँ।

उस ब्राह्मणका वचन सुन, राजा अधीर हुआ, बोला कुछ नहीं, मोहग्रस्त हुआ, पीछे सम्हलके बोला कि— हे द्विज ! यह पैतृक राज्य और सारे जनपद मेरे वशीभूत होनेपर भी मुझे यह विषय प्राप्त न हुआ, तब मैंने इसे मिथिलामें खोजा। वहाँ न मिला, तो प्रजामें खोजकी। किन्तु जब वहाँ भी मुझे यह न मिला, तब मैं मुग्ध हो गया। मोह दूर होने पर, मुझे ऐसा जान पड़ा कि—कोई विषय मेरा नहीं है, आत्मा मेरी नहीं है, किन्तु सारी पृथ्वी मेरी है। ये समस्त विषय जिस प्रकार मेरे हैं, वैसे ही दूसरोंके भी हैं। हे द्विजवर ! आप जहाँ चाहें, वहाँ बास करें, और जो चाहें सो उपभोग करें।

ब्राह्मणने कहा— महाराज ! इस पैतृकराज्य और जनपदोंके अधिकारमें रहते हुए भी क्या समझकर आपने उनकी ममता त्यागी है ? आपने क्या समझकर ऐसी विवेचना की है कि, समस्त विषय मेरे नहीं हैं ?

राजा जनक बोले— इस संसारमें धनाढ्यता और दारिद्र आदि सभी अवस्थाएँ नाशवान् हैं। इसीसे मुझे किसी भी कर्ममें ममता नहीं है और ममताके अभाव ही से मैं यह समझता हूँ कि, यह वस्तु मेरी नहीं है। यह राज्य और यह धन किसीका नहीं है। इस वेद वाक्यके अनुसार मैं इसे अपना नहीं समझता। यही समझकर मैंने ममताका परित्याग किया है। किन्तु जिस बुद्धिके सहारे मैं इस समस्त राज्यको अपना कहा करता हूँ— सो भी सुनो! मैं अपने लिये निज नासिकामें गई हुई सुगन्धिको भी नहीं सूँघता। इसीसे मेरी जीती हुई पृथ्वी सदा मेरे अधीन रहती है। अर्थात् मैं उसके अधीन नहीं हूँ। मैं मुखमें वर्तमान रसोंको भी अपने लिये नहीं चाहता। इसीसे मेरे द्वारा विजय किया हुआ जल, मेरे अधीन है। मैं रूप और नेत्रकी ज्योतिको अपने लिये नहीं चाहता। इसीसे मेरे द्वारा जीती गई ज्योति सदा मेरे अधीन रहती है। स्पर्श करनेवाली त्वगिन्द्रियको मैं अपने लिये नहीं चाहता। अतः मेरेद्वारा निर्जित वायु सदा मेरे अधीन रहती है। तैसे ही श्रोत्र और मनके शब्दादि और संकल्पको अपने लिये नहीं चाहता। इसीसे शब्द और मन मेरे अधीन रहते हैं। मैं समस्त द्रव्योंका संग्रह देवताओं, पितरों, अतिथियों तथा अन्य समस्त प्राणियोंके लिये किया करता हूँ।

यह सुनकर ब्राह्मणने हँसकर राजा जनकनेसे कहा—मैं साक्षात् धर्म हूँ। मैं तुम्हारी परीक्षा लेने आया था? तुम ममतासे रहित ज्ञानरूपी प्रवृत्तिका अस्तित्व बनाये रखनेवाले हो। इस ज्ञानरूपी चक्रकी नेमि सतोगुण है। ऐसा कहके वह चला गया।

और चन्द्रकान्त तृतीय भागमें— जनक विदेहीका आत्मशोधन, योगभ्रष्ट जनक, जनककी नगरचर्या, उदासीनता, विचित्र स्वप्न, इत्यादि प्रकरण बहुत विस्तारसे लिखा हुआ है। उसमें बहुतेरी बात तो उसके लेखकने कल्पनासे ही लेख बढ़ाया है, यहाँ उसका कोई काम नहीं। बृहदारण्यकोपनिषद्में जनक-याज्ञवल्क्य संवाद आया है।

वहाँ याज्ञवल्क्यने राजा जनकको आत्मज्ञानका उपदेश दिये हैं। यह चतुर्थ अध्यायमें वर्णन है। उसी उपनिषद्के तृतीय अध्याय में लिखा है:—

विदेह देशमें रहनेवाले राजा जनकने किसी समय एक बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ द्वारा यजन किया। उसमें कुरु और पाञ्चाल देशोंके ब्राह्मण एकत्रित हुये। उस राजा जनकको यह जाननेकी इच्छा हुई कि, "इन ब्राह्मणोंमें प्रवचन करनेमें सबसे बढ़कर कौन है?" इस लिये उसने एक सहस्र गौएँ गोशालामें रोकलीं। उनमेंसे प्रत्येकके सींगोंमें दस-दस पाद सुवर्ण बँधे हुए थे।

उसने उनसे कहा—'पूज्य ब्राह्मणगण! आपमें जो ब्रह्मनिष्ठ हो, वह इन गौओंको ले जाय।' किन्तु उन ब्राह्मणोंका साहस न हुआ। तब याज्ञवल्क्यने अपने ही ब्रह्मचारीसे कहा— 'हे सोम्य सामश्रवा! तू इन्हें ले जा।' तब वह उन्हें ले चला। इससे वे ब्राह्मण, 'यह हम सबमें अपनेको ब्रह्मनिष्ठ कैसे कहता है?' इस प्रकार कहते हुये क्रुद्ध हो गये। राजा जनकका होता अश्वल था, उसने पूछा—'याज्ञवल्क्य! हम सबमें क्या तुम ही ब्रह्मनिष्ठ हो?' उसने कहा,— 'ब्रह्मनिष्ठको तो हम नमस्कार करते हैं, हम तो गौओंकी ही इच्छावाले हैं।' तब उनसे कई जनोंने क्रमशः प्रश्न किये, तहाँ याज्ञवल्क्यनें उन सबोंका समाधान किया और ब्राह्मण सभामें विजयी भये। फिर याज्ञवल्क्य और जनकका वार्तालाप हुआ, तहाँ ब्रह्मबोधको ही निश्चय किया है।

फिर एक समयमें अष्टावक्र और जनकका भी सम्वाद भया है। मुनिने राजाको वही आत्मज्ञान ही दृढ़ कराया है। इत्यादि प्रकारसे जनक राजाकी कथा शास्त्रोंमें वर्णन भया है। विदेह पद देशका नाम था, इसीसे वह विदेही राजा कहलाता था। कुछ अंशमें इसे उदासीनता, वैराग्य था, परन्तु स्वरूपज्ञान पारखबोधसे हीन ही था, इसलिये भ्रमिक जड़ाध्यासी ही भया था। सद्गुरुने कहा है:—

याज्ञवल्क्य औ जनक सम्वादा। दत्तात्रेय वोहि रस स्वादा॥
वोहि बात जो जनक दृढ़ाई। देह धरे विदेह कहाई॥ बीजक, रमैनी ८॥
अम्बरीष और याज्ञ जनक जड़। शेष सहस्र मुख फाना॥ बीजक, शब्द १२॥

अतएव पारख ज्ञान बिना जनक आदि राजे भी भवचक्रमें ही पड़े, कोई कहीं छूटे नहीं।

६. रहूगण-नामका एक सिन्धु शौवीर देशका राजा था। यह सत्सङ्गी साधुसेवी था, इसीसे समय-समयपर सन्त-महात्माओं, ऋषि, मुनियोंका सत्सङ्ग किया करता था। एक समय कपिलमुनिके दर्शनको जा रहा था, बीचमें जड़ भरतसे जिस प्रकार मुलाकात, वा पहिचान, वार्तालाप, प्रश्नोत्तर हुआ, उसका संक्षिप्त वर्णन ऊपर कहा जा चुका है। जड़ भरतके उपदेशसे उसके ज्ञान नेत्र खुले, वैराग्यका उदय हुआ।

तब राजा रहूगणने कहा—धन्य है! समस्त योनियोंमें यह मनुष्य जन्म ही श्रेष्ठ है। अन्यान्य लोकोंमें प्राप्त होनेवाले देवादि उत्कृष्ट जन्मोंसे भी क्या लाभ है? जहाँ आप जैसे महात्माओंका खूब खुलकर समागम नहीं मिलता? आपके चरण कमलोंकी रजका सेवन करनेसे जिनके सारे पाप-ताप नष्ट हो गये हैं, उन महानुभावों-को विशुद्ध भक्ति प्राप्त होना कोई विचित्र बात नहीं है। मेरा तो आपके एक मुहूर्त्तके सत्सङ्गसे ही सारा कुतर्कमूलक अज्ञान नष्ट हो गया। तत्ववेत्ताओंकी उनके बाह्य आचरणसे कोई पहचान नहीं हो सकती; अतः वे किसी भी वेष या आयुके हों, मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। जो ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण अवधूत भेषसे पृथ्वीपर विचरते हैं, उनसे हम जैसे ऐश्वर्योन्मत्त राजाओंका कल्याण हो।

राजा रहूगणने दीन-भावसे जड़भरतके चरणोंकी वन्दना की। फिर वे शान्तचित्त और उपरतेन्द्रिय होकर पृथ्वीपर विचरने लगे। तथा उनके सत्सङ्गसे ज्ञान पाकर सिन्धु नरेश रहूगणने भी अन्तः-करणमें अविद्यावश आरोपित रागरूप देहात्म बुद्धिको त्याग दिया।

अतएव यह राजा भी वैराग्यवानोंके पंक्तीमें गिना गया। भागवत पञ्चमस्कन्ध अध्याय १३ में यह कथा विस्तारसे लिखी है। उसीका सारांश यहाँ लिख दिया गया है।

७. और राजा ऋषभदेवको वैराग्य होनेका प्रमाण भी भागवतमें ही लिखा है। सुनिये !—

श्लोकः— नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनुर्यो वै चचार समदृग्जड़योगचर्याम् ॥
यत्पारमहंस्य मृषयः पदमामनन्ति स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्त सङ्गः ॥
॥ भागवत २ । ७ । १० ॥

—राजा नाभिकी पत्नी सुदेवीके गर्भसे ऋषभदेवके रूपमें जन्म लिया। इस अवतारमें समस्त आसक्तियोंसे रहित रहकर, अपनी इन्द्रियों और मनको अत्यन्त शान्त करके एवं अपने स्वरूपमें स्थित होकर समदर्शीके रूपमें उन्होंने मूढ़ पुरुषके वेषमें योग-साधनाकी। इस स्थितिको महर्षि लोग परमहंस पद अथवा अवधूतचर्या कहते हैं ॥ १० ॥

चौबीस अवतारोंके क्रममें नवाँ ऋषभ देवका अवतार बताया गया है।

और भागवत स्कन्ध ५, अध्याय ३ में लिखा है कि, राजा नाभिकी स्त्री रानी मेरुदेवीके गर्भसे ऋषभदेव उत्पन्न भये। बड़े होनेपर उन्हें राज्याभिषिक्त कर राजा तप करने गये। इधर ऋषभने नियमानुसार ब्रह्मचर्य आश्रमसे गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया। उनके भरत आदि कई एक पुत्र भी उत्पन्न हुए। पश्चात् वृद्ध होनेपर पुत्रोंको उपदेश देकर ऋषभदेवने स्वयं अवधूत-वृत्ति ग्रहण कर ली। गृहत्याग करनेके समयमेंका उपदेश ऐसा है कि—

ऋषभदेवजी बोले— पुत्रो ! इस मर्त्यलोकमें नरदेह पाकर, जीवको दुःखमय विषय भोगोंमें ही नहीं फँसे रहना चाहिये। ये भोग तो विष्ठा भोजी सूकर-कूकरादिको भी मिलते ही हैं। इस शरीरकेद्वारा तो दिव्य तप ही करना चाहिये। जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो और

अनन्त परमानन्दकी प्राप्ति हो सके। शास्त्रोंमें महापुरुषोंकी सेवाको मुक्तिका और स्त्री-सङ्गी कामियोंके सङ्गको नरकका द्वार बताया है। महापुरुष वे ही हैं, जो समान चित्त, परमशान्त, क्रोधहीन, सबके हितचिन्तक, और सदाचार सम्पन्न हों। सारासार निर्णयकी ही चर्चा करनेवाले, भोगोंमें तथा स्त्री, पुत्र और धन आदि सामग्रियोंसे सम्पन्न घरोंमें, जिनकी अरुचि हो और जो लौकिक कार्योंमें केवल शरीर निर्वाहके लिये ही प्रवृत्त होते हों। मनुष्य जो प्रमादी होकर कुकर्म करने लगता है, उसकी वह प्रवृत्ति इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिये ही होती है। मैं इसे अच्छा नहीं समझता; क्योंकि इसीके कारण जीवात्माको यह असत् और दुःखदायक शरीर प्राप्त होता है। जबतक जीवको आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा नहीं होती, तभीतक अज्ञानवश देहादिकेद्वारा उसका स्वरूप छिपा रहता है। जबतक यह लौकिक, वैदिक कर्मोंमें फँसा रहता है, तबतक मनमें कर्मकी वासनायें भी बनी ही रहती हैं और इन्हींसे देह-बन्धनोंकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार अविद्याकेद्वारा आत्मस्वरूपके ढक जानेसे कर्मवासनाओंके वशीभूत हुआ चित्त, मनुष्यको फिर कर्मोंमें ही प्रवृत्त करता है। अतः जबतक निज सत्य स्वरूपमें प्रीति नहीं होती, तबतक वह देह बन्धनोंसे छूट नहीं सकता है। स्वार्थमें पागल जीव जबतक विवेक दृष्टिका आश्रय लेकर इन्द्रियोंकी चेष्टाओंको मिथ्या नहीं देखता, तबतक अपने स्वरूपकी स्मृति खो-बैठनेके कारण वह अज्ञानवश विषय-प्रधान गृह आदिमें आसक्त रहता है, और तरह-तरहके क्लेश उठाता रहता है ॥ १–७ ॥

स्त्री और पुरुष, इन दोनोंका जो परस्पर दाम्पत्य भाव है, इसीको पण्डितजन उनके हृदयकी दूसरी स्थूल एवं दुर्भेद्य ग्रन्थि कहते हैं। देहाभिमानरूपी एक-एक सूक्ष्म ग्रन्थि तो उनमें अलग-अलग पहलेसे ही है। इसीके कारण जीवको देहेन्द्रियादिके अतिरिक्त घर, खेत, पुत्र, स्वजन और धन आदिमें भी 'मैं' और 'मेरे' पनका मोह हो

जाता है। जिस समय कर्मवासनाओंके कारण पड़ी हुई इसकी यह दृढ़ हृदय-ग्रन्थि ढीली हो जाती है, उसी समय यह दाम्पत्य-भावसे निवृत्त हो जाता है, और संसारके हेतुभूत अहङ्कारको त्यागकर सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो, परमपद प्राप्त कर लेता है। पुत्रो! संसार-सागरसे पार होनेमें कुशल तथा धैर्य, उद्यम एवं सत्त्वगुण-विशिष्ट पुरुषको चाहिये कि, सब जीवोंको अपने समान जाने। गुरु स्वरूप मुझमें भक्तिभाव रखनेसे, निवृत्ति परायण रहनेसे, तृष्णाके त्यागसे, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंके सहनेसे, 'जीवको सभी योनियोंमें दुःख ही उठाना पड़ता है' इस विचारसे, तत्त्वजिज्ञासासे, तपसे, सकाम कर्मके त्यागसे, नित्यप्रति सत्सङ्गकर, गुरु-उपदेश श्रवण करनेसे, वैर त्याग, समता, शान्तिसे और शरीर तथा घर आदिमें मैं मेरेपनके भावको त्यागनेकी इच्छासे, सत्शास्त्रके अनुशीलनसे, एकान्त सेवनसे, प्राण, इन्द्रिय, और मनके पूर्ण संयमसे, अनुभव ज्ञानसहित तत्त्व-विचारसे और योगसाधनसे, अहङ्काररूप अपने लिङ्ग शरीरको लीन कर दे। इस प्रकार अविद्याके कारण पड़ी हुई कर्मोंकी बीजरूप इस हृदयग्रन्थिको पूर्वोक्त साधनोंद्वारा सावधानीसे पूर्णतया नष्ट करके फिर इन साधनोंसे भी निवृत्त हो जाय ॥ ८–१४ ॥

इत्यादि प्रकारसे अनेकों उपदेश दे करके फिर ऋषभदेवने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरतको राजगद्दीपर बैठा दिया और स्वयं उपशमशील निवृत्ति-परायण महामुनियोंके भक्ति, ज्ञान और वैराग्यरूप परम-हंसोचित धर्मोंकी शिक्षा देनेके लिये बिलकुल विरक्त हो गये। केवल शरीरमात्रका परिग्रह रक्खा, और सब कुछ घरपर रहते ही छोड़ दिया। अब वे वस्त्रोंका भी त्याग करके सर्वथा दिगम्बर हो गये। उस समय उनके बाल बिखरे हुए थे। उन्मत्तका-सा वेष था। इस स्थितिमें वे परमहंस संन्यासी हो गये और अपने राज्य ब्रह्मावर्त देशसे भी बाहर निकल गये। वे सर्वथा मौन हो गये थे, कोई बात करना चाहता, तो बोलते नहीं थे। जड़, अन्धे, बहरे, गूँगे, पिशाच

और पागलोंकी-सी चेष्टा करते हुये वे अवधूत बने, जहाँ-तहाँ विचरने लगे। कभी नगरों और गावोंमें चले जाते, तो कभी खानों, किसानोंकी वस्तियों, बगीचों, पहाड़ो गाँवों, सेनाकी छावनियों, गोशालाओं, अहीरोंकी बस्तियों और यात्रियोंके टिकनेके स्थानोंमें रहते। कभी पहाड़ों, जङ्गलों और आश्रम आदिमें विचरते। वे किसी भी रास्तेसे निकलते, तो जिस प्रकार वनमें विचरनेवाले हाथीको मक्खियाँ तङ्ग करती हैं, उसी प्रकार मूर्ख और दुष्ट लोग उनके पीछे हो जाते, और उन्हें तङ्ग करते। कोई धमकी देते, कोई मारते कोई पेशाब कर देते, कोई थूक देते, कोई ढेला मारते, कोई विष्ठा और धूल फेंकते, कोई अधोवायु छोड़ते और कोई खोटी-खरी सुनाकर उनका तिरस्कार करते। किन्तु वे इन सब बातोंपर जरा भी ध्यान नहीं देते। इसका कारण यह था कि, भ्रमसे सत्य कहे जानेवाले इस मिथ्या शरीरमें उनकी अहंता-ममता तनिक भी नहीं थी। वे कार्य-कारणरूप सम्पूर्ण प्रपञ्चके साक्षी होकर अपने स्वरूपमें ही स्थित थे। इसलिये अखण्ड चित्त-वृत्तिसे अकेले ही पृथ्वीपर विचरते रहते थे। अन्तमें अजगर-वृत्ति भी धारणकर लिये, इसी प्रकार गौ, मृग और काग आदिके समान वर्ताव भी करते थे।

संयोगवश अन्तमें वे दक्षिण कर्णाटक देशमें गये, उन्मत्तके समान दिगम्बररूपसे कुटकाचलके वनमें घूमने लगे। इसी समय वायु-वेगसे झूमते हुए बाँसोंकी रगड़से प्रबल दावाग्नि प्रगट हुई। उसने उस वनको जलाते हुए, उसीके साथ ऋषभदेवजीके शरीरको भी भस्म कर दिया। इस तरह उनकी मृत्यु हो गई ॥

यह प्रमाण भागवत स्कन्ध ५, अध्याय ५–६ मेंसे लिखा गया है, सो जानिये ! ॥

दोहा १२ का संक्षिप्त अर्थ यही है कि, चार भाई सनकादि, शुकदेव, जड़भरत, और मुनि कपिलदेव ये चारों ब्राह्मण पुत्र वाल-

ब्रह्मचारी, त्यागी, वैराग्यवान् भये थे, ऐसा शास्त्रोंके लेख, पुराणोंमें वर्णित जीवनीसे जाना जाता है, सो जान लो । तथा विदेही कहलाने-वाले राजा जनक, राजा रहूगण, और ऋषभदेव राजा ये तीनों क्षत्रिय पुत्र भुक्तभोगी, अन्तिम त्यागी अर्थात् राज्य-शासन, गृहस्थी आदिमें विषय-भोग किये हुये, पीछे सत्सङ्ग-विचारादि करके विषयोंमें दोष देखके त्यागे हुए कहे गये हैं । उनका चरित्र ऊपर कहा जा चुका है । अतएव ये मध्यम दर्जेके त्यागी कहलाते हैं । यह सब बात शास्त्रोंके आधारपर ही प्रमाण माना गया है ।

इतना सब त्याग-वैराग्य, भक्ति, योग, और ज्ञानादिके नाना साधनाएँ उन्होंने किये । परन्तु स्वयं स्वरूपका पारखबोध निज स्थिति उन किसीको भी नहीं मिली । अतएव सूक्ष्म, कारणादि जड़ाध्यासोंके वशीभूत हो करके वे भवबन्धनमें ही अरुझे पड़े थे । नित्य मुक्ति उन्हें प्राप्त नहीं हुई । इसलिये हठके वैराग्यको छोड़कर शुद्ध सत्य, ज्ञान, वैराग्यको ही ग्रहण करना चाहिये । देह रहेतक हंस रहनी सद्गुण लक्षणोंको पूर्णतासे धारणकर अध्याससे रहित हो जाना चाहिये । पारखबोधमें जाग्रत हो रहना चाहिये ॥ १२ ॥

दोहाः—कद्रू कर्दम विदुरजी । ये वैराग्य निधान ॥
अष्टावक्र पुनीत मुनी । किये शास्त्र परवान ॥ १३ ॥

संक्षेपार्थः—और फिर ब्राह्मणकुलमें-कर्दम ऋषि, कद्रू मुनि, अष्टावक्र मुनि, और पुनीत मुनि, ये वैराग्यमें प्रवीण भये, और क्षत्रिय कुलमें दासी पुत्र विदुरजी भी चतुर्थ अवस्थामें विशेष विरक्त भये । ये सब वैराग्य-निधान थे, ऐसी उनकी जीवनी लिखके शास्त्रोंमें प्रमाण किया है, सो जान लीजिये ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात् शास्त्रोंमें यह प्रमाण किया है कि, कद्रू, कर्दम, विदुरजी, अष्टावक्र और पुनीत

नामक मुनि ये वैराग्य-निधान हुए, अर्थात् वे लोग बड़े वैराग्यमें प्रवीण हुए। विरक्तिके भण्डार समान हुए रहे, ऐसा वर्णन भया है। अब उन्होंके चरित्र जना देनेके लिये शास्त्रोक्त संक्षिप्त कथा लिख देता हूँ, सुनिये ! ॥

॥ * ॥ कथा परिचय वर्णन ॥ * ॥

१. कद्रू नामके एक ऋषि रहे। पहले शुरू-शुरूमें तो वे बहुत कन्जूस, लोभी, विषयासक्त रहे, परन्तु पीछे कारण विशेष पायके उन्हें ऐसा धक्का लगा कि, बड़ा वैराग्य उत्पन्न हो गया, फिर तो सब धन-सम्पति दान करके गरीबोंको लुटाय दिया। बड़ा पश्चाताप किया और भिक्षु-संन्यासी हो गये। फिर जीवनपर्यन्त विरक्त हो रहे ! इतना ही इनका हाल ज्ञात है ॥

दूसरा महाभारतके आदिपर्वमें लिखा है:— दक्ष प्रजापतिकी दो कन्यायें थीं—कद्रू और विनता। उन दोनोंका विवाह कश्यप ऋषिसे हुआ था। उनमें कद्रूके पुत्र नागगण हुये और विनताके पुत्र अरुण और गरुण दो ही हुये। और लिखा है कि, उच्चैःश्रवा घोड़ाके रङ्गके बारेमें दोनों बहनोंने शर्त लगाई। कपट व्यवहारसे विनता हार गई, अतः दासी बनी। फिर गरुड़के पराक्रमसे, दासी-पनासे छूटी, इत्यादि कथा विस्तारसे वर्णन है। इसकी यहाँ कोई आवश्यकता भी नहीं। सूचना इसलिये लिखा गया कि, यह छलिनी, कपटी, कद्रू नामक स्त्रीसे भिन्न कोई दूसरे ही पुरुष कद्दुरु नामके ऋषि रहे। उन्हींको संकेत करके दोहामें कहा गया है, ऐसा जानना चाहिये। इसीसे दोनों कद्रूके हाल संक्षेपमें बता दिया गया है ॥

२. कर्दम नामक ऋषि— ब्रह्माके छोटे पुत्र रहे। पिताकी आज्ञासे उन्होंने प्रथम खूब तपस्या किये। फिर ब्रह्मा और विष्णुके कहनेसे स्वायम्भुव मनुकी पुत्री देवहूतिसे विवाह किये। समयान्तरमें उनके नौ पुत्री और एक पुत्र कपिल उत्पन्न हुये। फिर पिता-पुत्रका सम्वाद हुआ, कपिलसे भी वन-गमनकी आज्ञा पाये। तदनन्तर

कर्दमजी स्वइच्छासे घर-गृहस्थीको त्यागकर वनको चले गये। विरक्त संन्यासी बन गये। वहाँ अहिंसामय संन्यास-धर्मका पालन करते हुए, वे असङ्ग, इष्टदेवके शरण हो गये, तथा अग्नि और आश्रमका त्याग करके निःसङ्ग-भावसे पृथ्वीपर विचरने लगे। जो कार्य-कारणसे अतीत है, और अनन्य-भक्ति, ज्ञानसे ही प्रत्यक्ष होता है, उस स्वरूपमें उन्होंने अपना मन लगा दिया। वे अहंकार, ममता और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंसे छूटकर सर्वत्र समान-भाव रखते हुये, सबमें अपने समान जीवात्माको ही देखने लगे। अन्तर्मुख वृत्तिके कारण शान्त और गम्भीर चित्त हो जानेसे तरङ्गहीन, प्रशान्त समुद्रके समान जान पड़ने लगे। परमभक्ति-भावकेद्वारा चित्त स्थिर हो जानेसे सारे बन्धनोंसे मुक्त हो गये। इस प्रकार इच्छा और द्वेषसे रहित, समबुद्धि, सद्गुण-सम्पन्न, होकर कर्दमजीने परमपद प्राप्त कर लिया। ऐसा वैराग्य धारण करके शरीर छोड़ दिया ॥ यह कथा भागवत तृतीय स्कन्धके २४ वें अध्यायमें लिखा है। इसीका सारांश यहाँपर दर्शा दिया गया है, ऐसा जानिये ! ॥

३. विदुरजी—इनका वृत्तान्त महाभारत आदि पुराणोंमें विस्तार-से लिखा है। यहाँ उसीका कुछ सारांश सुनिये ! सत्यवती माताके कहनेसे, व्यासने मृत भाई विचित्रवीर्यकी स्त्रियोंसे भोग करके गर्भ-स्थापन किया। पश्चात् अम्बिकासे धृतराष्ट्र और अम्बालिकासे पाण्डुको उत्पन्न किया। जब अपनी-अपनी माताके दोषके कारण धृतराष्ट्र अन्धे और पाण्डु पीले हो गये, तब फिर भी तीसरी बार सत्यवतीने बहुको व्याससे संयोग करनेको बताई, तो अम्बिकाकी प्रेरणासे उसकी दासीने व्यासजीकेद्वारा ही गर्भ-धारण किया, और उसने विदुरको उत्पन्न किया। इस प्रकार विदुरकी उत्पत्ति दासीसे हुई। इसीसे राजा धृतराष्ट्रके छोटे भाई होनेपर भी विदुर दासी-पुत्र कहलाया। विदुर बड़े धर्मज्ञ और धर्मपरायण थे। पश्चात् राजा देवक-

के यहाँकी दासी-पुत्रीके साथ विदुरका विवाह हुआ। उससे कई एक पुत्र भी उत्पन्न हुए। विदुर हस्तिनापुरमें धृतराष्ट्रके साथ ही रहते रहे। समय-समयपर वे राजाको न्याय-नीतिका उपदेश और सलाह भी देते रहे, और पाण्डवोंके हितचिन्तक विदुरने वारणावत जाते समयमें सांकेतिक शब्दोंमें पाँच बातें इशारेसे बता दी थी, सावधानीसे रहनेको कह दिया था, उसीकी सहायतासे लाक्षागृहसे पाण्डवोंकी रक्षा हुई थी।

एक समय हितकारी विदुरने राजा धृतराष्ट्रको सुन्दर नीतिका उपदेश दिया। जो विदुर-नीतिके नामसे प्रसिद्ध भया, वह आठ अध्याय तक विस्तारसे वर्णन भया है। उसमें प्रथम राजनीतिका न्याय बतलाकर, फिर धर्मादि अन्य विषयोंमें कहा गया है। सो महाभारत, उद्योगपर्वमें विस्तारसे वर्णन किया गया है। उसका सारांश सुनिये!—

विदुरजी बोले— राजन्! जैसे समुद्रके पार जानेके लिये नाव ही एकमात्र साधन है, उसी प्रकार सुख-स्वर्गके लिये सत्य ही एकमात्र सोपान है, दूसरा नहीं; किन्तु आप इसे नहीं समझ रहे हैं। क्षमाशील पुरुषोंमें एक ही दोषका आरोप होता है, दूसरेकी तो सम्भावना ही नहीं है। वह दोष यह है कि— क्षमाशील मनुष्यको लोग असमर्थ समझ लेते हैं। किन्तु वह दोष नहीं मानना चाहिये। क्योंकि क्षमा बहुत बड़ा बल है। क्षमा असमर्थ मनुष्योंका गुण तथा समर्थोंका भूषण है। इस जगत्में क्षमा वशीकरणरूप है। भला! क्षमासे क्या नहीं सिद्ध होता? केवल धर्म ही परम कल्याणकारक है, एकमात्र क्षमा ही शान्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय है। एक विद्या ही परम सन्तोष देनेवाली है और एकमात्र अहिंसा ही सुख देनेवाली है।

राजन्! मनुष्योंकी कार्य सिद्धिके लिये उत्तम, मध्यम और अधम—ये तीन प्रकारके उपाय सुने जाते हैं। उक्त तीन प्रकारके

पुरुष भी होते हैं। काम, क्रोध और लोभ—ये आत्माका नाश करनेवाले नरकके तीन दरवाजे हैं; अतः इन तीनोंको त्याग देना चाहिये। उन्नति चाहनेवाले पुरुषोंको नींद, तन्द्रा (ऊँघना) डर, क्रोध, आलस्य, तथा दीर्घसूत्रता, इन छः दुर्गुणोंको त्याग देना चाहिये। मनुष्योंको कभी भी सत्य, दान, कर्मण्यता, अनसूया (गुणोंमें दोष दिखानेकी प्रवृत्तिका अभाव), क्षमा तथा धैर्य— इन छः गुणोंका त्याग नहीं करना चाहिये। मनमें नित्य रहनेवाले छः शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्यको जो वशमें कर लेता है, वह जितेन्द्रिय पुरुष पापोंसे ही लिप्त नहीं होता; फिर उनसे उत्पन्न होनेवाले अनर्थोंकी तो बात ही क्या है ?।

जो विद्वान् पुरुष नौ दरवाजेवाले, तीन (वातादि) खम्भोंवाले, पाँच (ज्ञानेन्द्रियाँरूप) साक्षीवाले, आत्माके निवासस्थान, इस शरीररूपी गृहको जानता है, वह बहुत बड़ा ज्ञानी है। खूब सोच-विचारकर काम करना चाहिये, जल्दबाजीसे किसी कामका आरम्भ नहीं करना चाहिये। धीर मनुष्योंको उचित है कि, पहले कर्मोंके प्रयोजन, परिणाम तथा अपनी उन्नतिका विचार करके फिर काम आरम्भ करे या न करे।

मनस्वी पुरुषोंको सहारा देनेवाले सन्त हैं, सन्तोंके भी सहारे सन्त ही हैं। दुष्टोंको भी सहारा देनेवाले सन्त हैं, पर दुष्ट लोग सन्तोंको सहारा नहीं देते।

यज्ञ, दान, अध्ययन और तप— ये चार सज्जनोंके पीछे चलते हैं। और इन्द्रिय-निग्रह, सत्य, सरलता तथा कोमलता— इन चारोंका सन्त लोग स्वयं अनुसरण करते हैं। यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और अलोभ— ये धर्मके आठ प्रकारके मार्ग बताये गये हैं। इनमें से पहले चारोंका तो दम्भके लिये भी सेवन किया जा सकता है; परन्तु अन्तिम चार तो जो महात्मा नहीं हैं, उनमें रह ही नहीं सकते।

हंसने कहा— धैर्य-धारण, मनो-निग्रह, तथा सत्य-धर्मोंका पालन ही कर्तव्य है। इसकेद्वारा पुरुषको चाहिये कि, हृदयकी सारी गाँठ खोलकर प्रिय और अप्रियको समान समझे। दूसरोंसे गाली सुनकर भी स्वयं उन्हें गाली न दे। इस जगत्में रूखी बातें मनुष्यों-के मर्म-स्थान—हृदयादिको दग्ध करती रहती हैं; इसलिये धर्मानु-रागी पुरुष, रूखी बातोंका सदाके लिये परित्याग कर दे। व्यर्थ बोलनेसे न बोलना अच्छा बताया गया है, किन्तु सत्य बोलना वाणी-की दूसरी विशेषता है। सत्य भी यदि प्रिय बोला जाय, तो तीसरी विशेषता है, और वह भी यदि धर्म सम्मत कहा जाय, तो वह वचनकी चौथी विशेषता है। मनुष्य जैसी सङ्गत करता है, वैसे ही हो जाता है। जिन-जिन विषयोंसे मनको हटाया जाता है, उन-उन-से मुक्ति होती जाती है। इस प्रकार यदि सब ओरसे निवृत्ति हो जाय, तो मनुष्यको लेशमात्र दुःखका भी कभी अनुभव न हो। जो सबका कल्याण चाहता है, किसीके अकल्याणकी बात मनमें भी नहीं लाता, जो सत्यवादी, कोमल और जितेन्द्रिय है, वह उत्तम पुरुष माना जाता है। सुख-दुःख, उत्पत्ति-विनाश, लाभ-हानि और जीवन-मरण, ये बारी-बारीसे प्राप्त होते रहते हैं; इसलिये धीर पुरुष-को इनके लिये हर्ष और शोक नहीं करना चाहिये। ये छः इन्द्रियाँ बहुत ही चञ्चल हैं; इनमेंसे जो-जो इन्द्रिय, जिस-जिस विषयकी ओर बढ़ती है, उससे बुद्धि उसी प्रकार क्षीण होती है, जैसे फूटे घड़ेसे पानी सदा चू जाता है। बुद्धिसे मनुष्य अपने भयको दूर करता है, तपस्यासे महत् पदको प्राप्त होता है, गुरु-शुश्रूषासे ज्ञान और शान्ति पाता है॥

विदुरजी बोले— मोक्षकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य दानके पुण्य-का आश्रय नहीं लेते, वेदके पुण्यका भी आश्रय नहीं लेते। किन्तु निष्काम भावसे राग-द्वेषसे रहित हो, इस लोकमें विचरते रहते हैं। बुढ़ापा-रूपका, आशा-धैर्यका, मृत्यु-प्राणोंका, असूया-धर्माचरणका,

काम-लज्जाका, नीच पुरुषोंकी सेवा-सदाचारका, क्रोध-लक्ष्मीका, और अभिमान-सर्वस्वका ही नाश कर देता है। अत्यन्त अभिमान, अधिक बोलना, त्यागका अभाव, क्रोध, अपना ही पेट पालनेकी चिन्ता और मित्रद्रोह— ये छः तीखी तलवारें देहधारियोंकी आयुको काटती हैं। ये ही मनुष्योंका वध करती हैं, मृत्यु नहीं। राजन्! सदा प्रिय-वचन बोलनेवाले मनुष्य तो सहजमें ही मिल सकते हैं, किन्तु जो अप्रिय होता हुआ हितकारी हो, ऐसे वचनके वक्ता और श्रोता दोनों ही दुर्लभ हैं। धीर पुरुषको चाहिये, जब कोई साधु पुरुष अतिथिके रूपमें घरपर आवे, तो पहले आसन देकर, जल लाकर, उसके चरण पखारे, फिर उसकी कुशल पूछकर, अपनी स्थिति बतावे, तदनन्तर आवश्यकता समझकर अन्न-भोजन करावे। जो क्रोध न करनेवाला, ढेला, पत्थर, और सुवर्णको एकसा समझनेवाला, शोकहीन, सन्धि-विग्रहसे रहित, निन्दा, प्रशंसासे शून्य, प्रिय-अप्रियका त्याग करनेवाला, तथा उदासीन है, वही भिक्षुक या संन्यासी है। तेजस्वी, क्षमाशील और विकारशून्य सन्त-पुरुष सदा काष्ठमें अग्निकी भाँति, शान्तभावसे स्थित रहते हैं। मनुष्य मन, वाणी और कर्मसे जिसका निरन्तर सेवन करता है, वह कार्य उस पुरुषको अपनी ओर खींच लेता है। इसलिये सदा कल्याणकारी कार्योंको ही करे। उद्योग, संयम, दक्षता, सावधानी, धैर्य, स्मृति, और सोच-विचारकर कार्य आरम्भ करना— इन्हें उन्नतिका मूल मन्त्र समझिये।

आलस्य, मद, मोह, चञ्चलता, गोष्ठी, उद्दण्डता, अभिमान, और लोभ— ये सात विद्यार्थियोंके लिये सदा ही दोष माने गये हैं। सुख चाहनेवालेको विद्या कहाँसे मिले? विद्या चाहनेवालेके लिये, सुख नहीं है। कामनासे, भयसे, लोभसे तथा इस जीवनके लिये भी कभी धर्मका त्याग न करे। धर्म नित्य है। किन्तु सुख-दुःख अनित्य हैं। जीव नित्य है, पर कारण अविद्या अनित्य है। आप

अनित्यको छोड़कर नित्यमें स्थित होइये और सन्तोष धारण कीजिये; क्योंकि सन्तोष ही सबसे बड़ा लाभ है। काम-क्रोधादिरूप ग्राहसे भरी पाँच इन्द्रियोंके जलसे पूर्ण इस संसार नदीके जन्म-मरणरूप दुर्गम प्रवाहको धैर्यकी नौका बनाकर पार कीजिये। इत्यादि प्रकारसे नीतिका उपदेश विदुरने शोकाकुल राजा धृतराष्ट्रको जो सुनाया था, वही 'विदुर-नीति'—आठों अध्यायोंका सार, चुनके यह लिख दिया गया है॥

और महाभारत, स्त्रीपर्व, अध्याय ३ से ७ तक विदुरका उपदेश लिखा है। तहाँ मृत-पुत्रोंके शोकमें व्याकुल धृतराष्ट्रको समझाया है॥

भागवत् ३। १। में लिखा है:—

एक समय विदुरजी, राजा धृतराष्ट्रको, कौरवोंके हितकी सलाह दे रहे थे। तब दुर्योधनने क्रोधसे उनका तिरस्कार करके कहा, अरे! इस कुटिल दासी-पुत्रको यहाँ किसने बुलाया है? इसे हमारे नगरसे तुरन्त बाहर निकाल दो। ऐसा कटु वचन सुनके, विदुर स्वयं ही हस्तिनापुरसे चल दिये। तीर्थयात्रा करते हुये, अकेले ही भूमण्डलमें विचरने लगे। वे अवधूत भेषसे स्वच्छन्दतापूर्वक पृथ्वीपर विचरते रहे। जिसमें आत्मीयजन उन्हें पहचान न सकें। वे शरीरको सजाते न थे, पवित्र और साधारण भोजन करते, शुद्ध वृत्तिसे जीवन-निर्वाह करते, जमीनपर सोते, वैराग्यमय जीवन बिताते थे। एक समय विचरते-विचरते यमुना तटपर पहुँचे, वहाँ उन्हें उद्धवजी मिले। उन दोनोंमें बहुतसी वार्तालाप हुई, फिर उद्धवके कहनेसे विदुर, मैत्रेयजीके निकट गये। पश्चात् मैत्रेय मुनिसे हरिद्वारमें विदुरका सत्सङ्ग प्रश्नोत्तर और शंका-समाधान हुई! भागवत तृतीय स्कन्धके अध्याय ५ से चतुर्थ स्कन्धके समाप्तिका अध्याय ३१ तक विदुरको अनेकों प्रकारसे मैत्रेयजीने समझाया। नाना विषयोंका पूरा खुलासा जानकर सन्तुष्ट हो, फिर हस्तिनापुर चले आये। तबतक तो महाभारतका युद्ध समाप्ति और यादव-कुलका विनाश

भी हो चुका था। कुछ समय बाद विदुरके प्रेरणासे, राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी तथा कुन्ती सहित तीनोंको साथ लेकर फिर विदुर उत्तराखण्ड-में वनवासको चले गये। वहाँ कठोर तपस्यामें संलग्न भये। भा० ३। १३॥

महाभारत आश्रम वासिक पर्व अध्याय २६ में लिखा है— युधिष्ठिर वनमें जब धृतराष्ट्रसे मिलने गये, तब बातचीत करते-करते पूछा— इस समय विदुरजी कहाँ हैं? उत्तरमें धृतराष्ट्रने कहा— 'बेटा! विदुरजी कुशल पूर्वक हैं। वे बड़ी कठोर तपस्यामें लगे हैं। निरन्तर उपवास करने और वायु पीकर रहनेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं। उनके शरीरकी नस-नस दिखाई देती है। इस निर्जन वनमें कभी-कभी ब्राह्मणोंको उनके दर्शन हो जाया करते हैं।'

राजा धृतराष्ट्र इस प्रकार कह ही रहे थे कि— मुखमें पत्थरका टुकड़ा लिये जटाधारी विदुरजी, दूरसे आते दिखाई पड़े। उनका नङ्ग-धड़ङ्ग शरीर अत्यन्त दुर्बल, और वनकी धूल-मिट्टियोंसे भरा दिखाई देता था। वे आश्रमकी ओर देखकर सहसा लौट पड़े। यह देख राजा युधिष्ठिर अकेले ही उनके पीछे-पीछे दौड़े। विदुर-जी कभी दिखाई देते और कभी वृक्षोंकी ओट पड़नेसे अदृश्य हो जाते थे। इस प्रकार वे घोर जंगलकी ओर बढ़ते चले गये और युधिष्ठिर यह कहते हुए यत्नपूर्वक दौड़ते जा रहे थे कि— 'विदुर-जी! मैं आपका परमप्रिय राजा युधिष्ठिर हूँ (आपके दर्शनके लिये आया हूँ)।' इस प्रकार अत्यन्त निर्जन और एकान्त वनमें पहुँच कर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विदुरजी, एक पेड़के सहारे खड़े हो गये। वे इतने दुर्बल हो चुके थे कि— उनके शरीरका ढाँचामात्र रह गया था, फिर भी परम बुद्धिमान् युधिष्ठिरने उन्हें पहचान लिया। और 'मैं युधिष्ठिर हूँ'— ऐसा कहते हुए वे उनके सामने जाकर खड़े हो गये। साथ ही उन्होंने विदुरजीका सत्कार भी किया।

तद्नन्तर विदुरजी एकाग्रचित्त होकर युधिष्ठिरकी ओर एकटक देखने लगे। तब देखते-ही-देखते शरीर छोड़ दिया। राजा युधिष्ठिर-

ने देखा, विदुरजीकी आँखें पूर्ववत् स्थिर हैं और उनका शरीर भी पहलेकी भाँति वृक्षके सहारे खड़ा हुआ है, किन्तु अब उसमें चेतना नहीं रह गई है। इस प्रकार उनकी मृत्यु हुई। संन्यास-धर्म पालन करनेवाले समझके उनके शरीरका दाह-संस्कार नहीं किया। पीछे युधिष्ठिर, ऐसी घटना देखके वापस चले गये, इत्यादि वर्णन किया है ॥

उपरोक्त प्रमाणसे विदुर, एक धर्मात्मा, हितैषी, बुद्धिमान्, सदाचारी और अन्तिममें विरक्त संन्यासी भये रहे। उनकी मुख्य-मुख्य सारी कथा शास्त्र प्रमाणसे दर्शा दिया गया है। इतना होनेपर भी पारख स्वरूपका बोध उन्हें नहीं भया, और तब तो पारखबोधदाता सद्गुरु भी नहीं रहे। इसलिये पारख-ज्ञान किसीको नहीं भया। खाली शास्त्रोक्त वैराग्य धारण करनेवाले ही सब भये हैं ॥

४. अष्टावक्र—एक मुनि थे, जिनके जन्मसे ही आठ अङ्ग टेढ़े थे। इसलिये उनका नाम अष्टावक्र पड़ा था। महाभारत, वनपर्वके अध्याय १३२ से १३४ तक— ऋषि अष्टावक्रकी कथा आयी है। उसमेंका सारांश लिख देता हूँ, सुनिये !—

युधिष्ठिरके पूछनेपर लोमशजी बोले— उद्दालकमुनिका कहोड़ नामसे प्रसिद्ध, एक शिष्य था। उसने अपने गुरुकी बड़ी सेवा की। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने बहुत जल्दी सब वेद पढ़ा दिये, और अपनी कन्या सुजाता भी उसे विवाह दी। कुछ काल बीतनेपर सुजाता गर्भवती हुई। एक दिन कहोड़ वेद-पाठ कर रहे थे, उस समय वह गर्भ बोला, 'पिताजी ! आप रातभर वेद-पाठ करते हैं, किन्तु यह ठीक-ठीक नहीं होता है।'

शिष्योंके बीचमें ही इस प्रकार आक्षेप करनेसे पिताको अति क्रोध हुआ, तो उसने "तू ! अष्टावक्र (आठों जगहसे टेढ़ा) हो जा" यह शाप दिया। पश्चात् धन ले आनेकी इच्छासे कहोड़ मुनि राजा जनकके पास गये। किन्तु वहाँ बन्दीनामक पण्डितसे शास्त्रार्थमें हारके बन्धन-कैदमें पड़ गये। जब उद्दालकको यह बात ज्ञात हुई, तो

अष्टावक्रको यह मालूम होने नहीं देना, ऐसा सुजाताको बताया। इस कारण अष्टावक्र, उद्दालकको ही अपना पिता और उनके पुत्र श्वेतकेतुको भाई मानता रहा।

एक दिन जब अष्टावक्रकी आयु १२ वर्षकी थी, वे उद्दालककी गोदमें बैठे थे। उसी समय वहाँ श्वेतकेतु आया और उन्हें पिताकी गोदमेंसे खींचकर कहा, 'यह गोदी तेरे बापकी नहीं', उतर! इस कटु-वचनको सुनकर उनके चित्तपर बड़ी चोट लगी, और अपनी माताके पास जाकर पूछा कि—'मेरे पिता कहाँ गये हैं? बतला' सुजाताने घबराके सब हाल-बात बता दिया! रात्रिके समय श्वेतकेतुसे मिलकर यह सलाह की कि—'हम दोनों राजा जनकके यज्ञमें चलें। वह यज्ञ बड़ा विचित्र सुना जाता है, वहाँ हम ब्राह्मणोंके बड़े-बड़े शास्त्रार्थ सुनेंगे।' ऐसी सलाह करके वे दोनों मामा-भानजे राजा जनकके यज्ञके लिये चल दिये। वहाँ पहुँचे तो भीतर जानेसे द्वारपालने रोका और कहा—वृद्ध और विद्वान् ब्राह्मणही इसमें प्रवेश कर सकते हैं, बालकको जाने देनेकी हमें आज्ञा नहीं है।

तब अष्टावक्रने कहा— द्वारपाल! मनुष्य अधिकवर्षोंकी उम्र होनेसे, बाल पक जानेसे, धनसे अथवा अधिक कुटुम्बसे बड़ा नहीं माना जाता। ब्राह्मणोंमें तो वही बड़ा है, जो वेदोंका वक्ता हो। ऋषियोंने ऐसा ही नियम बताया है। मैं सभामें वन्दी पण्डितसे मिलना चाहता हूँ। तुम मेरी ओरसे यह सूचना महाराजको दे दो। आज तुम, हमें विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ करते देखोगे और वाद-विवाद बढ़ जानेपर बन्दी पण्डितको परास्त हुआ पाओगे। तब द्वारपालने उन्हें राजाके पास ले गया। वहाँ अष्टावक्रने कहा—'राजन्! मैंने सुना है, आपके यहाँ बन्दी नामका कोई विद्वान् है। मैं उससे शास्त्रार्थ करने आया हूँ, वह कहाँ है? मैं उससे मिलूँगा।'

राजाने कहा— तुम उसकी शक्तिको न समझकर ही उसे जीतनेकी आशा कर रहे हो। पहले कितनेही पंडित ब्राह्मण आये, परन्तु

उससे सब हार गये, यह जान लो। अष्टावक्रने कहा—उसे मेरे जैसों-से पाला नहीं पड़ा, अब मुझसे परास्त होके मूक हो जायगा। तब राजाने उनकी परीक्षा करनेके विचारसे संवत्सरके बारेमें गूढ़ प्रश्न किया। उसका बराबर उत्तर आशीर्वादरूपमें अष्टावक्रने दिया।

राजाने फिर प्रश्न यह किया— सोनेके समयमें कौन नेत्र नहीं मूँदता? जन्म लेनेके बाद किसमें गति नहीं होती? हृदय किसमें नहीं है? और वेगसे कौन बढ़ता है?

अष्टावक्रने कहा— मछली सोनेके समय नेत्र नहीं मूँदती, अण्डा उत्पन्न होनेपर चेष्टा नहीं करता, पत्थरमें हृदय नहीं है, और नदी वेगसे बढ़ती है।

यह सुन राजाने कहा— धन्य है! आपको; मैं तो आपको वृद्ध-समान ही मानता हूँ। वाद-विवाद करनेमें आपके समान कोई नहीं है। देखिये! यही वह बन्दी है, कहके उसे दिखा दिया।

तब अष्टावक्रने बन्दीकी ओर घूमकर तीव्र शब्दोंमें कहा— हे बन्दी! तुमने अनुचित नियम कर रखा है। हारनेवालेको समुद्रमें डुबाने लगा देते हो, अब मेरे सामने तुम्हारी वाक्‌शक्ति नष्ट हो जायगी। अब तुम मेरे प्रश्नोंका उत्तर दो और मैं तुम्हारी बातोंका उत्तर देता हूँ।

भरी सभामें अष्टावक्रकी ऐसी ललकार सुनकरके बन्दीने शास्त्रार्थ आरम्भ किया। प्रथम बन्दीने एक-एक अङ्गवाली बात बतलाई, उत्तरमें अष्टावक्रने दो-दो अङ्ग होनेका प्रतिपादन किया। फिर उसने तीन कहा, इसने चार बताया। इसी क्रमसे बढ़ाते-बढ़ाते बारहतक बराबर गिनती लगाते गये। अन्तमें तेरहकी गिनतीमें बन्दीने कहा— तिथियोंमें त्रयोदशीको उत्तम कहा है और पृथ्वी भी तेरह द्वीपोंवाली बतलाई गई है। इस प्रकार आधा श्लोक ही कहकर बन्दीके चुप हो जानेपर अष्टावक्रने बाकी आधा श्लोक पूरा करते हुये कहने लगे— आत्माके भोग तेरह प्रकारके होते हैं, और बुद्धिको लेकर तेरह उसकी

रोके हैं। इतना सुनते ही बन्दीका मुख नीचा हो गया और वह बड़े विचारमें पड़ गया। परन्तु अष्टावक्रके मुखसे वाणीकी झड़ी लगी ही रही। यह देखकर सभाके ब्राह्मण हर्ष-ध्वनि करते हुये अष्टावक्रके पास आकर उनका सम्मान करने लगे।

अष्टावक्रने कहा— राजन्! यह बन्दी शास्त्रार्थमें अनेकों विद्वान् ब्राह्मणोंको परास्तकर जलमें डुबवा चुका है। अब इसकी भी तुरन्त वही गति होनी चाहिये।

तब बन्दीने बनावटी बातें कहीं—राजाको बन्दीकी बातोंमें फँसके देर करते देखकर अष्टावक्र कहने लगे— राजन्! मैं कई बार कह चुका, फिर भी तुम मतवाले हाथीकी तरह कुछ भी सुन नहीं रहे हो; इससे मालूम पड़ता है, लसौड़ेके पत्तोंपर भोजन करनेसे तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गई है, अथवा तुम इस चापलूसकी बातोंमें आ-गये हो। तदनन्तर जनक राजाने शर्त-मुताबिक दण्डकी व्यवस्था किया। और बन्दीने हराकर, छिपाकर रखे हुए ब्राह्मणोंको छोड़ने लगा दिया, तो वे सब भी राज सभामें आ-पहुँचे। अपना नाम, गोत्र बताके अष्टावक्रको प्रणाम करते गये। उनमेंसे कहोड़ने उन्हें अपना पुत्र जानके कहा—'मनुष्य ऐसे ही कामोंके लिये पुत्रोंकी कामना करते हैं। जिस कामको मैं नहीं कर सका था, वही मेरे पुत्रने करके दिखा दिया। पश्चात् बन्दी भी राजा जनककी आज्ञा लेकर समुद्रमें कूद पड़ा। तब ब्राह्मणोंने अष्टावक्रकी पूजा की और उन्होंने हिता कहोड़का पूजन किया। फिर अपने मामा-श्वेतकेतु और पिताके सहित वे अपने आश्रमको चले आये, इत्यादि॥

और एक, दूसरे प्रसङ्गमें वर्णन हुआ है कि, जब अष्टावक्र प्रथम राज सभामें गये, तो उनके विचित्ररूपको देखकर सारे सभासद् ठट्ठा मारकर हँसने लगे। यह देख अष्टावक्र भी खूब हँसे। पश्चात् जनकने पूछा कि— आप किस कारणसे हँसे थे? उन्होंने कहा— हे राजा! मैंने सुना था कि— जनकके यहाँ ब्रह्म-सभा लगी है, इसलिये

मैं आया था। परन्तु उसके विपरीत मैंने यहाँ देखा— तेरे यहाँ तो सब चमारोंकी सभा लगी हुई है, अथवा पशु-समान विचारहीन लोग ही सब जुटे हुए देखनेमें आते हैं। ऐसे निर्भीक शब्द सुनकर सब शान्त और लज्जित हो गये। मुनिने कहा, देखो! नदी टेढ़ी होती है, परन्तु उसमेंका जल सीधा ही रहता है। ऊँख टेढ़ा होनेपर भी रस-मिठास, टेढ़ा नहीं होता। और फूलकी आकार वक्र होनेपर भी गन्ध सीधी ही रहती है। तैसे ही यह मेरे शरीरके आठों-अङ्ग टेढ़े होनेपर भी मेरी आत्मा तो टेढ़ी-बेड़ी नहीं है। खाली चर्म-दृष्टिसे देखके तुम्हें हँसी आई है, इसीसे मैंने चमार कहा है। यदि ब्रह्म-दृष्टि होती, तो तुम लोग मुझे देखके कभी न हँसते। इसी कारण मुझे भी तुम्हारी दशापर हास्य हुआ था। फिर जनकके प्रश्नका उत्तर यथोचित देके, उसके सब शङ्काका समाधान किया। अतएव सभामें प्रतिष्ठा पाये, इत्यादि कथन, वर्णन हुआ है ॥

और भी कहा है:— एक समय जनक राजाने यह प्रण करके कि, "घोड़ेकी सवारी करतेमें एक रिकाबमें पैर रखके, दूसरेमें रखनेके पहले ही झटपट जो मुझे इतने शीघ्र ब्रह्मबोध करा देंगे, उन्हें ही मैं गुरु मानूँगा" ऐसा घोषित कर दिया था, बहुतेरे ऋषि, मुनि, आदि महानुभाव आये, परन्तु उतने अल्पकालमें बोध कर देनेकी सामर्थ्य किसीकी नहीं हुई। यह समाचार जानकर अष्टावक्र मुनि आये। राजाने सेवा-सत्कार किया। तब मुनिने कहा कि—तेरे प्रतिज्ञाको मैं पूर्ण कर दूँगा, उसके लिये सभा-भवन तैयार करो। फिर व्यवस्था ठीक होनेपर मुनिने राजाको आदेश दिया कि— घोड़ा लाके रिकाबमें पैर रखो, वैसा ही किया। तब अष्टावक्रने जनक राजाके कानमें कहा— "तत्त्वमसि!" अर्थात् तू ही ब्रह्म है। परन्तु राजाने कहा— मेरी समझमें कुछ नहीं आया। मुनिने कहा— पहिले गुरु-दक्षिणा भेंट कर दो। उसने कहा—कहिये क्या दूँ? तन, मन, धन, सर्वस्व—यही गुरुदक्षिणामें भेंट करनेको मुनिने कहा। राजाने सहर्ष संकल्प करके तन, मन,

धन, गुरु अर्पण किया, ऐसा कहा। मुनिने फिर वही 'तत्त्वमसि' कहिके चुप हो गये। फिर कुछ देरमें बोले—तुम्हारे बाह्य तन, मन, धनादि तो अब मेरे हो गये। तुम उससे परे ब्रह्म शुद्ध, बुद्ध, केवल हो, ऐसा जानो।

उसी विचारमें लवलीन होकर जनक निश्चल हो गया। फिर बोलानेपर भी बोल न सका। उसे विचार भया कि—तन, मन और धन तो अब मेरा कुछ नहीं रहा, फिर मैं कैसे हिलूँ, कैसे बोलूँ ?, इसीसे स्तब्ध हो रहा। फिर गुरुने कहा—मैं तुझे सत्सङ्ग-वार्ताके लिये अब तुझे तेरे तन, मनादि वापस करके आज्ञा देता हूँ, कहो! तुम कौन हो? उसने कहा मैं जनक हूँ, मुनिने पूछा—पाँचतत्त्व, २५ प्रकृति, दस इन्द्रियाँ, पञ्चप्राण, इत्यादिक संयुक्त शरीरमें जनक कौन, कहाँपर है? विचार करके बतलाओ! नाक, मुख, हाथ, पैर आदि कौनसा अङ्ग जनक है? प्रत्येक अङ्गका नाम अलग-अलग है, और जनक नामका अङ्ग तो कहीं नहीं दिखता है। यदि दिखता हो, तो मुझे बतलाओ।

राजाने बहुत विचार किया, तो सब अङ्गका नाम तो भिन्न-भिन्न है, परन्तु उसे देहमें कहीं भी जनक नहीं मिला। तब अवाक् हो रहा, बड़ी देरतक स्थिर हो रहा। फिर अष्टावक्रने कहा—हे राजन्! वह नाम तो कल्पित है, व्यवहारके लिये रखा गया है। नाम और रूपसे परे शुद्ध स्वरूप तू ही आत्मा है, ऐसा जान! इत्यादि समझाकरके बोले—अब तू आसक्तिसे रहित होके सद्धर्मका पालन कर, और तन, मन, धनादिको मेरे थाती समझकर रख ले। मैं तुझे सम्हाल रखनेके लिये तेरा चढ़ाया हुआ तीनों वस्तु तुम्हें ही सौंप देता हूँ। स्वामीभक्त सेवकके नाईं इसका रक्षण और परमार्थमें जीवन व्यय करो। इत्यादि प्रकारसे शिक्षा देकर जनकको ब्रह्मबोध दृढ़ाके चले गये॥

"वोहि बात जो जनक दृढ़ाई। देह धरे विदेह कहाई॥" बीजक रमैनी ८॥

'अष्टावक्र गीता' उन्हीं मुनिका बनाया हुआ कहा जाता है । उसके प्रथम श्लोकमें ही लिखा है :—

श्लोकः—"मुक्ति मिच्छसि चेत्तात ! विषवत् विषयांन्त्यज ॥
क्षमार्जव दया शौचं सत्यं पियुषमत् भजः ॥" अष्टा० गीता, १ ॥

—हे तात ! यदि तुम मुक्ति प्राप्त करनेकी इच्छा करते हो, तो उसके लिये पञ्चविषयादि सम्पूर्ण विषयोंको विषके समान घातक जानके, परित्याग कर दो । और क्षमा = अपना अपराध करनेवालेको किसी प्रकार भी दण्ड देनेका भाव न रखना । आर्जव = शरीर और इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता रखना । दया = छोटे—बड़े प्राणियोंको जान-बूझकर दुःख न देना, दुखियोंमें करुणा रखके रक्षा करना । शौच = बाहर और भीतरकी पवित्रता रखना । सत्य = अन्तःकरण और इन्द्रियोंकेद्वारा जैसा निश्चय किया हो, वैसाका वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहना, और जान-बूझके झूठ न बोलना । इन पाँचों सद्गुणोंको अमृतके समान जान करके दृढ़तासे धारण करो, या ग्रहण करो, ऐसे भजन करो ॥

और महाभारत अनुशासन पर्वमें लिखा है— प्राचीन समयमें अष्टावक्रने विवाहकी इच्छासे वदान्य ऋषिकी कन्याको माँगा । सुप्रभा उस कन्याका नाम था । तब वदान्य ऋषिने उनके योग्यताकी पूरी परीक्षा करके पश्चात् अपनी पुत्रीका विवाह, उनके साथ कर दिया । अध्याय १९ से २१ तक वर्णन है ॥

कर्दम, ऋषभदेव आदिके समान ही पीछेसे घर-गृहस्थीको परित्याग कर अष्टावक्र मुनि संन्यासी हो गये । तब कठोर साधना करके, तीव्र वैराग्यमें जीवन बिताया । शुद्ध पवित्रतासे मन, बुद्धि, वाणीको शमन कर एकान्त स्थानमें वृत्ति स्थिर करके रहे । समयान्तरमें वैराग्य दशामें ही उनका शरीर छूटा । इस प्रकार अन्तिम जीवनमें, ये वैराग्यमें प्रवीण हुए रहे । ऐसा जाना जाता है ॥

५. पुनीत मुनि—कोई एक मुनि जो विशेषरूपसे भीतर-बाहर-

की शुद्धि करके, पूर्ण अखण्ड वैराग्यमें पवित्रतासे रहते रहे। उस त्यागीने त्यागका महात्म्य जो कहा, उसका सारांश यही है कि—यदि अकिञ्चन बनके इस संसारमें घूमा जाय, तो ही असली सुखका तुम अनुभव करोगे। क्योंकि अकिञ्चन (निर्धन) जन ही सुखसे सोता और उठता है। अकिञ्चन होना ही सुखदायक है, हितकर है, कल्याणरूप है, निर्विघ्न है और शत्रुतारहित श्रेष्ठ मार्ग है। मैं जब तीनों लोकोंपर निगाह डालता हूँ, तब वैराग्यसम्पन्न अकिञ्चन जनके समान शुद्ध, मैं और किसीको भी नहीं पाता। मैंने जब अकिञ्चनत्व-को और राज्य-वैभवको विवेक तुलापर रखके तौला, तब अकिञ्चनत्व-का पलड़ा ही भारी रहा। राज्यभोगी धनी पुरुष मानों सदा कालके गालमें पड़ा हुआ है। वह सदा घबड़ाया-सा बना रहता है। किन्तु जो धन और तृष्णाको त्याग चुका है, उस मुक्त जनका कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकते। सदा इच्छानुसार विचरणशील, भूशाई, बाँहका तकिया लगानेवाले और शान्तमना पुरुषकी सब कोई प्रशंसा करते हैं। अतएव नर-जीवनमें वैराग्यको ही टिकाना चाहिये, इत्यादि ॥

इस प्रकार कद्रू ऋषि, कर्दम मुनि, विदुर भक्त, अष्टावक्र ऋषि, पुनीत मुनि, ये पाँचों अन्तिममें बड़े वैराग्यवान्, वैराग्यके तो अटूट भण्डारस्वरूप ही रहे। ऐसा शास्त्रमें प्रमाण किया है। यह शास्त्रोक्त कथन ही यहाँ दर्शाया गया है। वे सब त्यागी-वैरागी तो हुए, परन्तु पारखबोध उन्होंको नहीं भया। इसलिये गुरुनिर्णयसे देखिये, तो बिना पारख उन्होंके भवबन्धन नहीं छूटा। वैराग्यके साथमें स्वरूप बोध पारख भी हो, तभी मुक्ति होती है; ऐसा जानना चाहिये ॥ १३ ॥

दोहाः— साह शिकन्दर बलखके । और भरथरी भूप ॥
गोपीचन्द गोरखनमें । सब वैराग्य स्वरूप ॥ १४ ॥

संक्षेपार्थः— और हे सन्तो ! बलख-बोखारा देशके मुसलमान

कुलके बादशाह, शाह शिकन्दर भी पीछेसे वैराग्यवान् होके फकीर बन गया था, ऐसा प्रमाण है। तैसे ही इधर क्षत्रिय कुलमें राजा भर्तृहरि और राजा गोपीचन्द ये दोनों भी पीछे विरक्त होके राज-पाटको छोड़कर गोरखनाथके पन्थमें जाके साधु हो गये थे। ये सब लोग त्याग-वैराग्यके चिह्न, भेषको धारण करनेवाले, वैराग्य-मूर्ति भये हैं। ऐसा माना जाता है ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:— अर्थात् और भी ग्रन्थोंके प्रमाणसे जाननेमें आता है कि— महाराजा भर्तृहरि, राजा गोपीचन्द, पीछेसे गोरखनाथके पन्थमें जाके वे वैराग्यवान् साधु भये हैं। और बाह्लीक देश जिसे बलख बोखारा कहते हैं, वहाँके बादशाह शिकन्दर भी सन्तोंके चेतानेसे विरक्त फकीर हो गया था। वैराग्यके स्वरूपमें ही वे सब माने गये हैं। अब इनके हाल जाननेके लिये अन्य ग्रन्थोंमें लिखी हुई बात यहाँ दर्शा देता हूँ, सो संक्षेपमें सुनिये। जिससे उनका भेद आप लोगोंको भी मालूम हो जायगा।

॥ * ॥ इतिहास परिचय वर्णन ॥ * ॥

१. राजा भर्तृहरि— एक जगह ऐसा लिखा है:— भर्तृहरि और विक्रमादित्यके पिताका नाम राजा गन्धर्वसेन था, धारा नगरीके राजाकी पुत्री उसे विवाह दी थी। उससे विक्रम जन्मा और रानीके दासी सखीसे प्रथम ही भर्तृहरि पैदा हुआ था। उनके नानाके कोई पुत्र नहीं थे, इससे दोनों कुमारोंके प्रतिपालन करके उन्हें राज्य सौंपा। तब भर्तृहरि बड़ा होनेसे राजा भया, विक्रम प्रधानमन्त्री हुआ, इत्यादि।

अर्थात् मालवा प्रान्तके उज्जैन नगरीका राजा भर्तृहरि नामका भया है। इनके छोटे भाईका नाम विक्रमादित्य था। बड़े भाई राजा थे, तो छोटे भाई प्रधानमन्त्रीके समान राज्यकार्य किया करते थे।

राजाकी वैसे तो कई रानियें थीं, उनमें एक रूपसुन्दरी विशेष मोहिनी रानी थी, जिसका नाम अनङ्गसेना वा सैन्ध्यसेना थी, और सिन्धुमती नाम भी उसका था। विशेष रूपवती होनेसे राजा उसपर आसक्त होकर लट्टू हो रहता था, जो सैन्ध्यसेना कहती, सोई करता था। परन्तु पुरुषको अपने वशमें पाकर वह दुष्ट स्त्री भी व्यभिचारिणी हो गई। कुछ भी सोचे-विचारे बिना, एक दारोगासे फँस गई, कुकर्म करनेमें प्रवृत्त हो गई। परन्तु उसके कपट-जाल त्रियाचरित्रका पर्दा लगा रहनेसे, बहुत दिनोंतक वह बात छिपी रही। कुछ काल बाद प्रथम तो विक्रमको सिन्धुमतीके कुकर्मकी बात मालूम हुई, तब मौका पाकर एक दिन उसने राजाको समझाया, नीतियुक्त हितकर बात कहा। परन्तु राजाने उसे झूठा बताकर फटकार दिया। रानी तो सती या पतिव्रता है, यह कहा; तब विक्रम चुप हो गया। इधर सिंधुमतीको भी शंका हुई कि— विक्रमने उसकी करनी जानली है, तब वह उसे निकालनेके लिये कपटके खेल, खेलने लगी। और पहलेसे भी ज्यादा हाव-भाव, कटाक्षोंके प्रयोगोंसे राजाको वशमें करके, विक्रमके विरुद्ध राजाके कान भर दिये। अपने ऊपर विक्रमको बुरी दृष्टि बताकर और नगर सेठके पुत्र वधूपर भी आशिक हुआ है, बताई। इधर सेठको भी पट्टी पढ़ाके, कि— विक्रमने हमारे पुत्रकी स्त्रीपर कुदृष्टि लगाई है, कहो, ऐसा कहके राजाके पास फरियाद लगाने लगाया। दूसरे ही दिन नगर सेठ राजसभामें फरियाद करने पहुँचा। वहाँ रानीकी सिखाई हुई कपटकी बातें, कही। उसकी बात सुनके और रानीकी बात याद करके, राजा बहुत क्रोधित हुआ। विक्रमने सेठको धर्म बताकर समझाया भी, परन्तु राजाके मनमें झूठी बात ठस गई थी, इससे वह और नाराज हो गया। अतः भाई विक्रमको उसी क्षण—तुरन्त देशसे निकल जानेका हुक्म दे दिया। तब कुछ चेतावनीकी बात कहकर, विक्रम उसी वक्त राजधानी छोड़कर विदेशको चला गया।

पश्चात् एक तपस्वी ब्राह्मणने, घोर तपस्या करके, इष्टदेवसे एक फल पाया, जिसका नाम 'अमरफल' कहते थे। उसके खानेसे तन्दुरुस्ती, देहकी पुष्टता आदि कई एक गुण विशेषताएँ बतलाया था। फिर उस तपस्वीने सोच-विचार करके, राजाको वह फल देना अच्छा समझा। तदनन्तर, राजभवनमें जाकर राजाको सूचना दी। फिर राजसभामें जाकर कहा— हे धर्मात्मा राजा ! मुझे एक महागुणी फल मिला है, वह 'अमरफल' कहलाता है। उसके खानेसे देहके रोगादि विकार शमन होकर विशेष बल, यौवनकी वृद्धि होकर, सुखकी प्राप्ति होती है। अतएव आप भक्षण करेंगे, तो चिरायु, शक्तिसम्पन्न होकर न्यायपूर्वक प्रजापालन करेंगे, जिससे सबको सुख-समृद्धिकी प्राप्ति होगी। इसलिये आपके लिये मैं यह फल लाया हूँ, इसे लेलो, और तुम हो इस फलको खालो। इस प्रकार बतलाकर राजाको फल दे दिया। उस फलको लेकर राजाने यथायोग्य सम्मान, भेंट-पूजा, देकर तपस्वीको प्रसन्न करके, विदा किया।

फिर उस फलको हाथमें लेकर, देखते हुए राजा मन-ही-मन विचार करने लगा कि— इस फलको मैं खाऊँ कि, नहीं। एकाएक उसे प्यारी रानी सिन्धुमतीकी याद आ गयी, तब वह अत्यन्त प्रसन्न होके बोल उठा— आज मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। रानीको देनेके लिये मैं ऐसी ही भेंट चाहता था, सो संयोगसे मिल ही गया। रानी इसे खाकर स्वस्थ, सुन्दर, निरोग होनेसे सुखी होगी, तो उसके भोग-विलाससे मैं भी सन्तुष्ट-सुखी रहूँगा। यह सोचके उसी बातको दृढ़ निश्चय कर, उस फलको हाथमें लेकर राजा उसी वक्त महलमें चला गया। उधर सूचना पाकर सिन्धुमती भी आके मिली, और नखरा करके राजाको मोहित करती भई। फिर उसने पूछा— प्रभो ! आज इस वक्त आनेकी आपने कैसे कृपा की ?। उसने कहा— प्रिये ! आज एक अपूर्व फल मेरे हाथ लगा है, उसीको लेकर मैं तुम्हारे पास भेंट करने आया हूँ। फिर उस फल प्राप्ति और उसके

समस्त गुणका वृत्तान्त, उसे बतलाया, और कहा कि— तुमसे बढ़कर प्रिय मेरा और कोई नहीं है। इसलिये लो! यह 'अमरफल' तुम ही खाओ! कहके रानीके हाथमें फल दे दिया। फिर उसने कपटकी बातोंसे राजाको कहा कि— आपही इसे खा लीजिये। मेरे सौभाग्य तो आप ही हैं, इत्यादि बनावटी बातें कही। इससे राजा और भी आकर्षित हुआ। उसे ही फल खानेको कहा— तुम्हारे खा-लेनेसे मुझे भी सुख, लाभ, सन्तोष होगा, ऐसा बोला। रानी जो चाहती थी सोई हुआ। इसलिये राजी होके पीछेसे कहा— आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, मैं आपके आज्ञाको टाल नहीं सकती हूँ। मैं ही इस फलको खाऊँगी। परन्तु अभी पेट गड़बड़ कर रहा है— शौच आदिसे निवृत्त हो, स्नानकर पवित्र होकर खालूँगी, ऐसा कहके, फल रख लिया। राजाको विश्वास हो गया, वह लौटके सभामें चला आया। उधर उसने भी यही सोचा कि— मैं इसे खाकर क्या करूँगी, मेरे यार दरोगा इसे खा लेगा, तो मुझे लाभ होगा। फिर उसे बुला भेजा, अस्तबलका दरोगा, सन्देश पाके तुरन्त आ पहुँचा। तो फलके सारे गुण बताकर सिन्धुमतीने वह उस जारपति दरोगाको, खानेको दे दिया। उस बदमाशने भी ऐसे ही बहाना बना कर, नदी स्नान करके इसे खालूँगा, कहके फल लेके चल दिया। उस उल्लूने भी जाते-जाते यही सोचा कि— मैं इसे खाके उतना सुखी नहीं होऊँगा, मेरी परमप्यारी इसे खायेगी, तो मैं बड़ा सुखी हो जाऊँगा। उधर उस गुण्डाने एक रण्डी = बाजारकी वेश्यासे प्रेम लगा रखा था। इसलिये वह धूर्त, बदमाश, उस फलको लेके, उसी रण्डीके घर जा पहुँचा और उसे प्रेमके साथ वह फल अर्पण किया, और सारा गुण बयान किया। परन्तु कहाँसे मिला यह नहीं बताया। वेश्याको वह फल खानेको कहा, उसने भी वैसे ही बहाना बनाके कहा— अच्छा प्यारे! मैं पवित्र होके इस फलको खा लूँगी, तुम कोई बातकी फिकर मत करो, निश्चिन्त रहो, ऐसा बोलके फल लेके रख लिया। फिर दरोगाके

चले जानेपर, एकान्तमें बैठके फलको देखकर, वेश्या सोचने लगी— मैंने तो पाप कमाते-कमाते ही सारी जवानी खो दी । बहुतेरे पुरुषोंको भ्रष्टकर डाला, कितनोंकी जिन्दगी ही बर्बाद हो गयी। असलमें अभी तक मुझे कभी सुख-चैन, शान्ति नहीं मिली । इस विषयभोगरूपी कुकर्मसे कभी सुख नहीं मिलेगा, यह मुझे मालूम हो चुका है। फिर भला ! इस फलको खाके युवती हो, हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ हो जाऊँगी, तो कामी कुत्ते मेरे पीछे पड़के मुझे और भी सतायेंगे । उस हालतमें, मैं बड़ी आपत्तिमें पड़ जाऊँगी । अतएव मैं इस फल खानेके योग्य नहीं हूँ । किसी धर्मात्माको यह फल देना चाहिये । ऐसा विचारते-विचारते, भर्तृहरि राजाकी योग्यता उसे याद आ गयी । धर्मात्मा राजा इस फलको खाकर स्वस्थ-सुन्दर-परिपुष्ट हो जायगा, तो राजाके सुखी होनेसे सारे प्रजावर्गको भी आराम हो जायगा, न्याय होता रहेगा । इसलिये मैं तो इस फलको राजाको ही भेंट करूँगी। यह निश्चय करके राजदर्बारमें वह जा पहुँची। राजाको खबर दिया, उसने बुलाया, तो उसके सन्मुख हाजिर हुई, उसने आनेका कारण पूछा, फिर वेश्याने कहा, महाराज ! आज मुझे एक अपूर्व फल मिला है, उसमें महान् गुण हैं, सो मैं आपको भेंट चढ़ानेको लाई हूँ, लीजिये ! यह 'अमरफल' है । ऐसा कहके राजाके हाथमें वह फल दे दिया । फिर कहा कि, इसमें नामके अनुसार ही गुण हैं, मेरे खानेसे सदा पाप ही बढ़ता, इसलिये मैंने इसे खाना उचित नहीं समझा । हे प्रभो ! आप धर्मावतार हो, आपके सुखी होनेसे, हम सब प्रजा भी सुखी रहेंगी, इत्यादि गुण वर्णन किया । फलको देखके प्रथम तो राजा हक्का-बक्का, किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया । फिर पीछे सम्हल कर वेश्याको बहुतसा धन-दौलत इनाम देकर पूछा— तुमको यह फल कहाँसे मिला, सो ठीक-ठीक सच्ची बात बताओ । यह फल देके तुमने मेरा बड़ा उपकार किया, कहा । और फल लेकर राजाने अच्छी तरहसे देखके पहिचानकर लिया कि, यह

वही फल है । प्रथम तपस्वीने उसे दिया था, उसने फिर विशेष प्रीतिसे पतिव्रता समझी हुई, रानी सिन्धुमतीको दे आया था, आज वेश्याके हाथसे उसे वह फिर वापस मिला, तो बड़ा आश्चर्य-चकित हुआ । इससे उसे देनेवालेका नाम पूछा, वेश्याने बताया कि, महाराज ! कल शामको मुझे आपके अस्तबलके दरोगाने लाके दिया था, वे मुझसे प्रेम करते हैं, इत्यादि । फिर उसे बिदा करके दरोगाको बुलाके राजाने एकान्तमें उससे पूछा— जो फल तुमने अमुक वेश्याको कल दिया था, सो तुम्हें कहाँ, किससे मिला था ? इसका हाल सच्चा बतलाओ, देखो ! झूठ नहीं बोलना । झूंठ बोलोगे, तो तुम्हारे हकमें अच्छा नहीं होगा । राजाका वचन सुनके, दरोगा घबराया । परन्तु सच्ची बात बतलानेपर उसे माफ करनेका आश्वासन पाके, वह बोला— अन्नदाता ! वह फल मुझे सिन्धुमती महारानीसे मिला था, दासपर उनकी कृपा हुई थी । राजाने ठीक है, कहके उसे बिदा कर दिया और आप तत्क्षण रनिवासमें चला गया । रानीकी सत्यताकी परीक्षा करनेके लिए एकान्तमें उसे बुलाकर पूछा— प्यारी ! मैंने जो फल कल तुम्हें दिया था, सो तुमने खाया कि नहीं ? देखो ! मुझसे सत्य-सत्य हाल कहना, मैं अभी वही बात जाननेके लिये आया हूँ, कहो । इधर उसे वह घटनाका पता नहीं था, इसलिये छल, कपट, प्रपञ्च, मायाजाल, फैलाके, हाव-भाव-कटाक्ष दिखलाकर, विनयपूर्वक बोली— वाह ! प्रभो ! इसमें सन्देह करनेकी बात ही क्या है ? आपके आज्ञाको कभी मैं तोड़ नहीं सकती । फिर भला ऐसे अलभ्य गुणवान् फलको खाये बिना मैं कैसे छोड़ती । मैं तो आपकी अनन्य प्रेमिनी हूँ ! छीः ! यह आपको क्या संशय उत्पन्न हो गया, फल खाया कि नहीं ? अरे ! राम-राम ! मैं आपकी चरणकी दासी हूँ । आपही मेरे प्राणाधार हैं, रत्तीभर भी छल-कपट मैं आपसे कभी कर नहीं सकती हूँ । मैं कशम खाके सत्य-सत्य ही कहती हूँ कि, मैंने उस अमरफलको आपके जानेके बाद ही खाया था, उस वक्त मेरी दोनों

सखी भी मौजूद थीं। ऐसे त्रियाचरित्रको, देख-सुन करके राजा तो दङ्ग हो गया, साथ ही सिन्धुमतीसे उसे बड़ी घृणा उत्पन्न हो गई, तभी आसक्तिका बन्धन टूट गया। फिर उसे वह फल दिखाके दरोगाको यह फल किसने दिया था? कहा, तो सिन्धुमती फलको देखते ही भयसे थर-थर काँपने लगी, पीली पड़ गई, शून्य-सा हो गयी। और फिर विशेष उसे कुछ न कहके राजा उठके चला आया। फिर धोकर वह फल स्वयं खा गया।

और सबसे अधिक प्यारी मानी हुई सिन्धुमती रानीके ऐसे दुष्ट व्यवहार, व्यभिचार और विश्वासघात, सरासर असत्य भाषण, छल-छिद्रयुक्त कपटका बर्ताव, देखके राजाको बड़ा दुःख हुआ, असह्य धक्का लगा। इससे अज्ञानतामें लगाया हुआ स्त्री प्रेमका सम्बन्ध वहीं छिन्न-भिन्न हो गया। राजाके शुभ संस्कारसे शुभ-वासना उदय हो आई। जिससे वह दृढ़ वैराग्यको प्राप्त हुआ। स्त्रियोंको विश्वासघातकी और भवबन्धनका मूल कारण समझ लिया। विद्वान् तो वह था ही, इससे विषयोंमें दोष देखके, वैराग्य ग्रहण करनेमें, उसे कोई देर नहीं लगी। उसवक्त उसी जोशमें उसने नीचेका श्लोक बोलाः—

श्लोकः—"यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता।
साप्यन्यमिच्छति जने सजनोऽन्यसक्तः॥
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या।
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च॥" वैराग्यशतक॥

—अर्थात् मैं जिस रानी सिन्धुमतीका सदा चिन्तन करता हुआ, उसे चाहता हूँ, वह रानी मुझे नहीं चाहती, मुझसे विरक्त रहती है। परन्तु वह दूसरे पुरुषको चाहती है। फिर वह दरोगा पुरुष भी रानीको दिलसे नहीं चाहता। किन्तु वह दूसरी ही स्त्री-वेश्याको चाहता है, वेश्यामें उसकी आसक्ति लगी है। फिर वह दरोगाकी प्यारी स्त्री-वेश्या जो है, सो मुझे चाहती है, मेरे कर्तव्यसे वह प्रसन्न रहती

है । इसलिये रानी सिन्धुमतीको पहिले धिक्कार है, फिर उसके जार दरोगाको धिक्कार है, उस वेश्याको धिक्कार है, मुझ मन्दमतिको धिक्कार है. और उस कामदेवको धिक्कार है, जो यह सब अनर्थ, अनीतिका काण्ड कराता है ॥

इस प्रकार सोचके उसे तीव्र वैराग्य हो आया, संसारके विषय भोगोंके तरफसे ,बिलकुल ही ग्लानि हो गई । बहुत सोच-विचारके उसने राज-पाटको परित्याग करके, साधु हो जानेका निश्चय किया । फिर प्रधानमन्त्रीको बुलाकर, राजसत्ता सौंप दिया, अपना निश्चय जाहिर किया, और राजशी पोशाक उतारके, साधारण वस्त्र पहिना, हाथमें कमण्डलु लेकर चले जानेको प्रस्तुत हुआ । तब उसने कहा— मैं जाता हूँ, अब नहीं लौटूँगा, अपना परमार्थका सुधार करूँगा, भूलमें जो हुई, सो हुई, अब भोगोंमें नहीं भूलूँगा, योग-साधनाकर कल्याण करूँगा,इत्यादि कहकर, समस्त राज्यसुख ऐश्वर्य,धन-धान्य,राज-महल, रत्न, मणि-माणिक्य, प्रियजन, कुटुम्बी इत्यादि, सबके तरफसे चित्त हटाके, तृणवत् तुच्छ समझकर, एकक्षणमें सबका परित्याग करके चल दिया, वनका रास्ता पकड़ लिया । लोगोंने विनती करके उसे बहुत प्रकारसे रोकना चाहा । परन्तु वह नहीं रुका । जाते-जाते मन्त्रीसे कह दिया कि, मेरे भाई वीर विक्रमको खोज-तलाश कर बुलाके राज्याभिषेक कर देना । न्याय, नीतिपूर्वक राज्य व्यवस्था चलाना । अब मुझे कुछ नहीं कहना है, राज्यसे कुछ लेना-देना भी नहीं है । ऐसा कहकर सपाटेसे महावनके तरफ चला गया । फिर कठोर त्यागमय जीवन बिताया ! वर्तमानमें विक्रम सम्वत् २००८ चल रहा है । इतने ही समय उनको होनेको व्यतीत हो गया है ।

नीति, शृङ्गार और वैराग्यशतक, तीनों भर्तृहरिके नामसे ग्रन्थ बने हैं और वाक्यप्रदीप, पातञ्जल प्रणीत, महाभाष्यपर सेतु नामक टीका भी लिखा है । अन्तिममें वैराग्यावस्थामें बनाया हुआ, वैराग्यशतकमें वैराग्य सम्बन्धी बहुतसे श्लोक लिखे हुए हैं । इस

तरह भर्तृहरिने अन्तिममें वैराग्यको परिपुष्ट करके जीवन बिताया। उन्होंने कहा हैः—

श्लोकः—"न संसारोत्पन्नं चरित मनु पश्यामि कुशलं।
विपाकः पुण्यानां जनयति भयंमे विमृशतः ॥
महद्भिः पुण्यौघैश्चिर परिगृहीताश्च विषया।
महान्तो जायन्ते व्यसन मिवदातुं विषयिणाम् ॥" वैराग्यशतक ३॥

—मुझे संसारी कामोंमें जरा भी सुख नहीं दीखता। मैं तो समझता हूँ कि, मेरी रायमें पुण्यफल भी भयदायक ही हैं। इसके अतिरिक्त बहुतसे अच्छे-अच्छे पुण्यकर्म करनेसे, जो विषय सुखकी सामग्री प्राप्त करके जो चिरकालतक सुख भोगे गये हैं, वे भी विषय सुख चाहनेवालोंको अन्त समयमें दुःखोंके ही कारण होते हैं। अतएव सुख चाहनेवालोंको विषयोंका त्याग ही करना चाहिये ॥

पाठको ! तथा श्रोतागणो ! और एक बात इस विषयमें—"योगि सम्प्रदायाविष्कृतिः" ग्रन्थमें लिखा है, सो भी यहाँ बता देता हूँ, सुनिये !—

भर्तृनामंवाले दो पुरुष विभिन्न दो समयमें हुए थे। (१) प्रथम भर्तृ ही गोरखनाथके शिष्य होके योगी भया था, (२) दूसरा नहीं। तहाँ संक्षिप्त कथा ऐसी लिखी हैः—

(१) मित्रावरुणी और एक अप्सरास्त्रीके समागमसे, एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उन्होंने एक कृषकके भर्थुवा पात्रमें, उस बालकको रखके, निर्जन वनमें, एक वृक्षके नीचे रखके, उसे वहीं अकेले छोड़के चले गये। उसके प्रारब्ध बलिष्ट होनेसे वहाँ ही वह सुरक्षित रहा। फिर संयोगसे एक हरिणीने आके, वहीं बच्चा जनीं, तो उस बालकको देखके उसे भी अपना ही बच्चा जानके चाट-चूट करके दूध पिलाती भई। तदनन्तर जयसिंह नामक भट्ट अपनी स्त्रीसहित उसी मार्गसे कहीं जा रहा था, उस बालकको वहाँ अकेला देखके आश्चर्य मानकर दया उत्पन्न होनेसे उसे, उठाकर साथ ले चला। और उन्हें सन्तान नहीं

थी, संयोगसे सुन्दर बालक मिला, अतः उसे धर्मपुत्र मानके पालन-पोषण करने लगा। बड़ा होनेपर काशीमेंलेजाके, उसको पढ़ाया और यथेष्ट द्रव्य कमाया। पश्चात् पति-पत्नि, पुत्रको वहीं काशीमें पढ़नेको अकेला छोड़कर अपने घर जानेको तैयार हुए। और कहा कि, तू गुरुकी सेवा करके, पूरी विद्या पढ़के पीछे आना, अभी हम लोग जाते हैं। पुत्रने कहा— मैं भी साथ ही जाता हूँ, यहाँ नहीं रहता हूँ। तब जयसिंहने उसे भी साथ लेके घरका रास्ता पकड़ा। जातेमें, उनके पास धन बहुत है, जानके एक ठग भी मित्रवत् बनके, मैं भी उधर ही जा रहा हूँ, कहके उनके साथ हो लिया। वे चारों ही नाना वार्ता करते हुए चलने लगे। दिनको दोपहरमें चलते-चलते थक जानेसे एक वटवृक्षके नीचे आराम करने लगे। थके होनेसे वे स्त्री-पुरुष, पुत्र, तीनों ही गाढ़ी निद्रामें सो गये। इतनेमें ठग उठके उन स्त्री-पुरुष दोनोंका गला काटके सारा धन-सम्पत्ति उठाके भाग गया। जब वह लड़का उठा, तो माता-पिताको मरा पाया, और उस ठग आदमीको वहाँ नहीं देखा, तो बड़ा विलाप करके रोने-चिल्लाने लगा। कुछ देरमें व्यापारी बनजारे लोग गाड़ी लेके उधरसे निकल आये। उन्होंने लड़केसे समाचार पूछा तो, उसने सारा हाल बताया। तब उसपर दया करके, मृतकोंको चिता बनाके, अग्नि संस्कार कर दिया, और उसे साथ लेके चले गये। मुखियाने पुत्रवत् उसे पाला। लिखा है— वह लड़का पशुवाणीके अर्थ समझनेवाला हुआ। उसके साथ रहनेसे व्यापारियोंको, रक्षासे बड़ा लाभ हुआ। एक समय वे व्यापारी उज्जयिनी नगरीमें जा पहुँचे। वहाँ शृगालोंकी आवाज सुनके, लड़केने यह अर्थ बताया कि, आज आधीरातमें एक राक्षस पश्चिम दिशासे नगरमें घुसेगा, और वह रोका नहीं गया, तो बड़ा उपद्रव मचायेगा। विश्वास होनेसे वह बात राजपुरुषोंको बतानेकी सलाह करने लगे। इतनेमें नगर-रक्षक विक्रम सेनापति संयोगसे वहीं आ पहुँचा, और परिचय होनेपर व्यापारियोंने कहा कि, आज रातमें एक

राक्षस नगरमें आनेवाला है, उसको रोकनेका प्रबन्ध करिये। विक्रमने प्रमाणके लिए उस लड़केसे पूछा, उसने दृढ़तासे वही बात बताया, और कहा कि— उसे जीत लेनेपर राज्यकी प्राप्ति होनेका योग है। विक्रमने जाके सब शस्त्रास्त्र तैयार करके, फौज तैनात किया। स्वयं आगे रहा, समयपर राक्षस आया। घमासान लड़ाई हुई, अन्तमें विक्रमके हाथसे राक्षस मारा गया। यह समाचार सुनके, राजा और कर्मचारी सब खुशी हुए। फिर विक्रमने जाके व्यापारियोंसे अनेक वार्ताकर युक्ति-प्रयुक्तिसे बहुत इनाम देके, उस लड़केको माँगके लेजाकर अपने धर्मका, भाई बनाया। जो भर्तृ कहलाया, और पुत्र न होनेसे तथा योग्यता होनेसे, राजाने विक्रमको राज्यसत्ता सौंपा। और विक्रमने अधिक प्रेम और गुणी होनेके कारणसे धर्मके भाई भर्तृको ही राजा बनाके सिंहासन और सत्ता अर्पण कर दिया। उसने भी उत्तम प्रकारसे कार्य चलाया। सुन्दर और गुणवान् होनेसे कई राजाओंने भी, अपनी-अपनी पुत्री उसे विवाह दी।

फिर और लिखा है कि, एक समय भर्तृ अपने अनुयायी लोगोंको, साथ ले, आखेट करनेको वनमें गया। वहाँ यूथाधिप एक बड़ा मृगको तीरसे बेंधकर, उसे उठाके ज्योंही चलने लगे, त्योंही बहुतेरी हरिणियों-ने निर्भय हो उसके रास्ता रोकके चक्राकार खड़ी हुईं। यह देखके वे सब चकित भये। ये लोग घोड़े भगाके जानेको सोच रहे थे, समय संयोगसे, तोरनमाल पर्वतपर रहनेवाले योगी, गोरखनाथजी उधरसे निकल आये, और भर्तृके समीप जाके उसे फटकारते हुए कहते भये कि, तुमने इस मृगको क्यों मार दिया, देखो! उसकी वियोगमें इतनी सारी मृगियाँ कितने व्याकुल होके तुम्हें घेर रही हैं, यदि तुम्हारी भी ऐसी ही दशा हो, किसीने तुम्हें मार दिया, तो तुम्हारी सैकड़ों रानियोंकी कैसी दुर्दशा होगी। ऐसी ही इन मूक पशुओंकी भी बात है। इतना होनेपर भी तुम्हारे कठोर निष्ठुर हृदयमें दया नहीं आती। राजाने रामचन्द्रादिकी उपमा देके शिकार करना, अपना कर्म बत-

लाया। योगीने कहा कि, जो जिला नहीं सकता, उसे किसीको मारनेकी अधिकार नहीं है। राजाने कहा— आप योगी-महात्मा हैं, अब आपही दया करके इसे जिला दीजिये। हमारेमें तो ऐसी शक्ति नहीं है। जो होना था, सो तो हो गया। अब इस बातमें हम लाचार हैं।

नाथजीने समझ लिया कि, यह चमत्कार दिखलानेके लिये तर्क करता है। परन्तु इसी निमित्तसे इसे वैराग्य उत्पन्न होगा। अतः उन्होंने कहा कि, इसे घोड़ासे नीचे उतारो। देखता हूँ, तब आश्चर्य करके उन्होंने मृगको नीचे उतार दिया। उन्होंने उसे देखा, तो वह मूर्छित पड़ा था। इसीसे जड़ी-बूटीका प्रयोग करके, उपचारसे जगा दिया। जागृत होनेपर मृग भागके अपनी टोलीमें जा मिला। यह देखके भर्तृ, किंकर्तव्य विमूढ़ होके बड़ा शोच-विचारमें पड़ गया। तब गोरखनाथने उसे समझाया, तो वह उनके चरणोंमें पड़ा। मुझे शरण लेके शिष्य बनाइये, कहने लगा। परन्तु उसके स्त्री-विषयासक्तिकी विशेष बात भी नाथजीने सुन रखा था, इसलिये उस वक्त उसको शिष्य नहीं किया। फिर कभी देखा जायगा, अभी तो तुम राजधानीमें जाओ, यदि तुम्हारी रानियाँ अभी तुम्हें साधु होनेकी अनुमति देंगी तो हम तुम्हें शिष्य बना लेंगे, कहा। किन्तु यह कार्य अत्यन्त कठिन था। फिर वे सब राजधानीमें आये। सूचना भेजनेपर रानियोंमें खलबली मची। विशेष करके पिङ्गला रानी जो अति प्यारी थी, उसने तो यहाँतक प्रण कर लिया कि— यदि राजाके वियोग हुआ, तो मेरे प्राण छूट जायँगे, मुझे बचाना है, तो राजा मुझे न छोड़ें, ऐसा सुनके राजा अफसोस करके घरहीमें रहा। एक दिन बात-ही-बातमें राजाने पिङ्गलासे कहा— तुमने नाहक मुझे उस वक्त साधु होनेसे रोका तुम अपनेको पतिव्रता समझती हो, परन्तु उसे मैं सत्य कैसे जानूँ, क्योंकि स्त्री-चरित्र बड़ा ही दुर्भेद्य होता है। शास्त्रोंमें इसबारेमें बहुत कुछ लिखा है। पिङ्गलाने कहा— दृढ़तासे कहती हूँ कि, मैं पतिव्रता

ही हूँ ! पतिके मृतक शरीरके साथ चितामें जलनेवाली स्त्रियाँ तो दूसरे नम्बरमें होती हैं । प्रथम नम्बरमें तो वे ही होती हैं कि, जो पतिकी मृत्यु सुनके, अपने प्राण छोड़ देती हैं । मैं उन्हींमें से एक हूँ । आप चाहें तो कभी मुझे परीक्षा करके देख सकते हैं । इस बातमें भर्तृको पूरा विश्वास तो नहीं हुआ, बहाना करके समय बिता दिया । फिर कुछ महीना बीतनेपर भर्तृ शिकार करने गया था । जङ्गलमें पहुँचनेपर पिङ्गलाके वचन याद आये, अतः परीक्षा करनेकी बात सोचके, एक मृग मारकर, उसके रक्तमें अपने कपड़े भिगोकर, राजा सिंहकेद्वारा मारे गये, यह उनका चिह्न है, कहके, दर्बारमें खबर भेज दिया । सुनते ही शोक छा गया । उधर पिङ्गला रानीने पतिका मरण सुनते ही दो बार दीर्घ श्वास लेकर, प्राण त्याग दिया । इससे लोगोंमें और भी शोक बढ़ गया । साँझको राजा नगरमें आया, और राजमहलमें जाके पिङ्गला रानीकी मृत्यु सुनके, वह बहुत घबराया, और मृतक स्त्रीको देखके विलाप करने लगा, हाय ! पिङ्गला हाय ! पिङ्गला ! तूँ कहाँ गई, कहके चिल्लाने लगा । दो दिन तक उसीके लाशमें लिपटके रोता तड़फता रहा । लाशसे दुर्गन्धि आने लगी, यह देखके राजपुरुषोंने युक्तिपूर्वक उसे ले जाके जला दिया । तब तो राजाने श्मशानमें ही डेरा डाल दिया । खाना-पीना भी छोड़के पिङ्गला-पिङ्गला रटते रहने लगा । ऐसा देखके सब लोग भी दुःखी हुए । अन्य रानियाँ भी उसके बर्तावसे असन्तुष्ट हो गईं । राजा मर जाय, तोही अच्छा है, समझने लगीं । ऐसे ही बखतमें गोरखनाथ घूमते हुए उधर ही आ-निकले । उसे चेतानेके लिये एक युक्ति करते भये । श्मशानके नजदीक जाकर उन्होंने एक अपना मिट्टीका जलपात्र जमीनमें गिरा दिया । वह गिरते ही टुकड़ा-टुकड़ा होके फूट गया । तब तो वे हाय कमण्डलु ! हाय पात्र ! तू क्यों फूट गया ? कहाँ गया ? इत्यादि कहके जोर-जोरसे चिल्लाके रोने-विलाप करने लगे । कभी उसे जोड़नेकी कोशिश करते, नहीं जुड़नेसे हाय-हाय करके रोते ।

यह घटना देखके भर्तृका ध्यान उधर गया, अतः उनके पास जाकर— हे भिक्षु! एक क्षुद्र, तुच्छ चीजके लिये तू इतना शोक क्यों करता है? इत्यादि कहा। नाथने कहा— यह हमारे साथ बहुत दिनोंसे रहा था, तो हमारा भी इसमें बहुत प्रेम लग गया है, अब इसके बिना हाय! हम कैसे जीयें। भर्तृने कहा— ऐसा पात्र आपको बहुत मिलेगा, और जितना चाहिये उतना मैं दे दूँ। चाहे रत्नजड़ित सोनेका पात्र भी कहिये, तो दे सकता हूँ। फिर नाथजीने उसे बहुत बात समझाया। जैसे मैं पात्रके लिये शोक करने लगा हूँ, तैसे तुम भी रानीके लिये शोक करके, अपने प्राणतक देनेके लिये लगे हो। यदि चाहो, तो तुम्हारी प्रिय वस्तु मैं तुम्हें दिखा सकता हूँ! ऐसा सुनके राजा प्रसन्न होके रानी पिङ्गला बड़ी पतिव्रता थी कहके तारीफ किया, और उसका रूप दिखा देनेके लिये प्रार्थना किया। तब नाथजीने उसे आँखें बन्द करने लगाके एक युक्ति-प्रयक्तिसे चमत्कार दिखाया। उसने नेत्र खोला, तो बहुत-सी पिङ्गलायें देख पड़ीं, इसमें तुम्हारी पिङ्गला कौन-सी है, सो पहिचानो, कहनेपर वह पहिचान न सका, बड़ा आश्चर्य-चकित हो गया। अतः महात्माके चरणोंके शरण ग्रहण किया। फिर बोला— मैंने बड़ी भूलकी, जो एक स्त्रीके पीछे जो कि एक दिन छूटने ही वाली थी, इतना दुःखी होके व्यर्थ समय बिताया। आप जैसे गुरु विराजमान हैं, जिनके मुट्ठीमें अनेक पिङ्गला निवास करती हैं; तब आपको छोड़, अन्यत्र भटकना मुझे मूर्खता मालूम पड़ता है। फिर बात-चीतमें उसकी परीक्षा लेकर, उसे घर लौट जाओ कहा, परन्तु उसे दृढ़ वैराग्य उदय हो चुका था, इसीसे गोरखनाथजीके ही शरणागत हुआ। विक्रम आदि सबोंकी भी उसके साधु बननेमें अनुमती हुई। अतः उसे साधु बनाके भर्तृनाथ नाम रखा। फिर बदरिकाश्रममें लेजाके सम्पूर्ण योगविधि, सिखाके उसे प्रवीण बनाके, छोड़ दिये, इत्यादि, वर्णन हुआ है, सो यही सारांश है॥

(२) और दूसरे भर्तृके बारेमें निम्नलिखित कथा आयी है:—
उज्जयिनीमें चन्द्रगुप्त नामका एक राजा हुआ। जिसके कोई पुत्र नहीं था, केवल एक पुत्री थी। पुत्री जवान होनेपर भी पिताने विवाह करनेका कुछ प्रबन्ध नहीं किया। इससे एक दिन स्वयं पिताके समीप जाके पुत्री कहने लगी कि, पिताजी ! मेरी अवस्थाकी ओर भी आपका कुछ ख्याल है कि नहीं ? उसने कहा पुत्री ! तेरे भाई न होनेसे मैं तेरा वर सर्वोत्तम, सर्वगुणसम्पन्न, शास्त्रवेत्ता हो, ऐसा देख रहा हूँ। जो मेरा उत्तराधिकारी भी हो सकेगा। तब लड़कीने कहा—फिर ऐसा वर आपके महलमें आपही कभी नहीं आयेगा। यदि आप ऐसे ही चाहते हैं, तो खोज-तलाश कराइये, तो मिल भी जायगा। यह सुन उसने तलाशी कराने लगाया, तो गोविन्द भगवान् नामका एक ब्राह्मण, जो उज्जयिनीका ही रहनेवाला था, जैसा चाहता था, वैसा ही वर उसे मिल गया। उसीसे राजपुत्रीका विवाह कर दिया गया। तदनन्तर ब्राह्मण कुमारी, वैश्य कुमारी, और शूद्र कन्या इन तीनोंके भी क्रमशः उसके साथ विवाह हुआ। इस तरह चार स्त्रियाँ और महान् धनपति हो, वह जीवन बिताने लगा। उसके कुछ ही वर्षोंमें ब्राह्मणीसे भर्तृ पुत्र, क्षत्रीयाणीसे विक्रम पुत्र, वैश्य स्त्रीसे भट्टपुत्र, और शूद्रासे शङ्ख पुत्र उत्पन्न हुए। फिर गोविन्द भगवान् इन चारों कुमारोंको बीस वर्षतक विद्यामें निपुण कराके, उनको लेकर एक दिन राजदरबारमें जा पहुँचा। और उन चारों पुत्रोंका राजाको परिचय देके उसे ही चाहे जिस कार्यमें आप इन्हें लगाइये, कहके सौंप आया। राजाने भी उन्हें सहर्ष स्वीकार किया, और उन्हें युद्ध विद्यामें पारङ्गत बनाया। ऐसे ही समयमें किसी शत्रुराजाने चन्द्रगुप्तके ऊपर चढ़ाई की। युद्धमें उन चारों दत्तक पुत्रोंकी विशेष वीरताके कारण उस, लड़ने आनेवाले राजाको यहाँतक जीत लिया कि— उसका नगर पटना भी इसने अपने अधिकारमें कर लिया। और उज्जैनका राज्य बड़े पुत्र भर्तृको प्रदानकर स्वयं पटनामें ही रहने

लगा, और कुछ दिनमें राजा वहीं मर गया। इस प्रकार भर्तृके अधीनमें एक बड़ा साम्राज्य हो गया। भर्तृ युद्ध विद्यामें अपने तीनों भाइयोंकी समता रखता हुआ भी शास्त्रज्ञानमें कुछ आगे बढ़ गया था। इसी भर्तृको उस तपस्वी ब्राह्मणने एक फल दिया था, उसने सैन्ध्य सेना या सिन्धुमती रानीको वह फल दिया, वह व्यभिचारिणी थी, अतः उसने अपने नौकर जार पतिको वह फल दिया, उसने वेश्याको लेजाके दिया, और वेश्याने लाके फिर फल राजा भर्तृको ही दिया। इस घटना और स्त्री-चरित्रसे चोट खाके विरक्त होकर, राज्यका त्यागकर वह वनवासी हो गया। वहाँ विरक्त विद्वानोंकी गोष्ठीमें सुखसे जीवन बिताने लगा। इसी अवस्थामें पतञ्जली रचित वैयाकरण महाभाष्यपर वाक्य पदीय टीका किया। इसके भाई भट्टने भी भट्टी-काव्यकी रचनाकी। उधर भर्तृके निकल जानेपर उसके छोटा भाई विक्रम, सिंहासनपर अभिषिक्त हुआ। तदनन्तर कुछ वर्षके बाद उसका शालिवाहनके साथ युद्ध आरम्भ हुआ। जिस युद्धमें विक्रम मारा गया, शालिवाहनने विजयी हो, अपने सम्वत्‌की प्रतिष्ठाकी। जो आज—१८७४ का है। इससे यह बात सहज ही समझनेमें आ जाती है कि— २००९ सम्वत्‌के प्रतिष्ठाता विक्रम, शालिवाहनके साथ लड़कर मरनेवाले विक्रमसे १३५ वर्ष पहले हुआ। और उसीका भाई भर्तृ था, जो कि गोरखनाथका शिष्य हुआ। इसी दूसरे भर्तृने राज्यमें रहते हुए नीतिशतक और शृङ्गारशतक लिखा, फिर विरक्त होके वन-वासी होनेपर वैराग्यशतक लिखा; ऐसा इतिहासज्ञ लोगोंने माना है। ऐसे दो भर्तृ होनेका भेद सबोंको विदित नहीं है, अतः जिज्ञासुओंको यथार्थ बात मालूम करा देनेके लिये ही ऊपर दोनोंके हाल संक्षेपसे संग्रह करके लिख दिया है, इतनेसे ही, असली बात पाठकोंको जाननेमें आ जायगा॥

२. गोपीचन्दः—गौड़ देश बङ्गाल नगरीके राजा, त्रिलोकचन्द्रकी धर्मपत्नी रानी मैनावती (मीनलदे) के गर्भसे, राजघरानेमें गोपी-

चन्दका जन्म हुआ। लगभग इसके सोलह वर्षकी अवस्था होनेपर उसके पिताकी मृत्यु हो गयी। पश्चात् राज्यासनपर गोपीचन्द अभिषिक्त हुआ। राजा भर्तृ और विक्रम दोनों इसके मामा लगते थे। मैनावतीको वे लोग धर्म बहिन मानते थे। रानी बड़ी समझदार और सत्संगी थी। ज्वालेन्द्रनाथ (जालन्धर) की मैनावतीने गुरु माना था। उनके सत्सङ्ग, उपदेश श्रवणके प्रभावसे, संसारके तरफसे वह उपराम हो चुकी थी। अतः विषय भोगोंको असार, दुःखदाई बन्धनोंका कारण जानती थी। जगत् व्यवहारको स्वप्नवत् समझ चुकी थी।

उधर भर्तृ सम्बन्धी घटनासे, मैनावतीपर बहुत प्रभाव पड़ा। जिस वक्त भर्तृ भाई, योगी भया, उस समयमें वह उज्जैनमें ही थी। पश्चात् वह अपनी राजधानीमें पहुँची, तो मैनावतीके हृदयमें, यह विचार उत्पन्न हुआ कि— मेरा पुत्र गोपीचन्द भी वैसेही योगी हो जाता, तो कितनी उत्तम बात थी। संसार घर-गृहस्थीमें विषया-शक्तिमें रहके तो कभी भवबन्धनसे छुटकारा होता-ही-नहीं, दिनों-दिन राग-द्वेष, ममता-मोह आदि माया-जालका घेरा बढ़ता ही जाता है, इत्यादि सोचती भई।

उस समय गोपीचन्द अठारह वर्षकी अवस्थामें प्रवेश किया था, और राजा होनेका दो-एक वर्ष ही बीता था। माताके आनेपर प्रसन्न होके गोपीचन्दने जाके मामाका समाचार पूछा, उसने बताई और पुत्रकी अवस्था, राज्य-ऐश्वर्य-भोग देखके वह बड़ी विचारमें पड़ी। ऐसे ही कुछ दिन बीते। फिर अन्तमें पुत्रको योगी बना देनेमें ही उसने हित, कल्याण समझा। फिर एक दिन गोपीचन्दको प्रासादमें अपने पास बुला भेजा। वह तुरन्त ही आके माँके सन्मुख हाजिर हुआ। उसे देखके आँसू गिराती हुई, मैनावती रोती भई। गोपी-चन्दने कहा—माँ! आपको ऐसा कौन-सा दुःख भया। जिसके लिये आप रो रही हैं, मैं आपके कौन-सा प्रिय कार्य करूँ, कहिये! मैनावती-

ने अपने विचारकी बात बताके, उसे योगी हो जानेको कहा। जिसे सुनके उसने भृकुटी टेढ़ी करके अरुचि प्रगट किया। रानी बुद्धिमती थी, उसने बहुत प्रकारसे पुत्रको समझाया। कहा— जब मैं इस नगरीमें आई थी, उस समय तुम्हारे पितामह राजा थे, तब उनका कीर्ति, सुन्दरता आदि भी बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। परन्तु शरीर छूटते ही वह सब मिट्टीमें मिल गई। फिर तुम्हारे पिता महाराजा भये, वे भी बड़े सुन्दर वीर पुरुष थे, राजकार्यको बहुत अच्छी तरह चलाते थे, परन्तु कुछ दिनके बाद मेरे देखते-देखते कालचक्रने उनको भी अपने गालमें डाल लिया। ठीक यही दशा कुछ दिनमें तेरी भी हो जायगी, फिर यह राज्य भोगोंमें लगके भवबन्धनोंमें ही तो पड़ना है। ऐसा उत्तम मनुष्य-शरीर पाके, मुक्ति होनेके प्रयत्नमें क्यों नहीं लगते हो? अतः अपने कल्याणके लिये तू ज्वालेन्द्रनाथके शिष्य बनके, योगी हो जा। फिर गोपीचन्दने भी मातासे अपनी राज्य व्यवस्थाकी बहुत-सी बातें कही। तब मैनावतीने उसे नाना तरहसे समझाया, यदि तू विषय भोगोंमें ही लगा रहा, तो मैं बन्ध्याके ही समान हूँ, और योगी हो गया, तो मैं अपनेको सच्चा पुत्रवती समझूँगी, इत्यादि कही। तब गोपीचन्दने कहा— माँ! मैं अनुमानसे समझता हूँ कि, आप मेरे कल्याण होनेकी ही बात कह रही हैं। परन्तु नीतिके अनुसार मैं अपने मित्रजन, सभासदोंसे पूछकर ही, कुछ निश्चय करके, तब उत्तर दे सकूँगा, कहके बन्दना करके चला गया। फिर सभा बुलाके सबोंको अपने माताकी सलाह कह सुनाई, जिसे सुनके सब आश्चर्यचकित हो गये। किसीके समझमें मतलब कुछ भी नहीं आया। अन्तमें यह निश्चय किया कि, सब घर जाके सोचेंगे, कल सलाहका उत्तर बतावेंगे। उन्होंने जाके जैसे वे पामर, विषयी खोटे विचारके थे, वैसे ही कल्पना कर लिये। बाहर जाके बहुतोंने विषय-सम्बन्धी बात ही सलाह मिलाके गाँठकर लिये, दूसरे दिन आके अधिकांश लोगोंने, सभामें राजाको अपना यही विचार बताया कि, हमको तो

ऐसा मालूम होता है कि, माताजी इस ज्वालेन्द्रनाथ योगीके साथ, जो कि बहुत समयसे राजकोय आराममें निवास करता है, प्रेमपाशमें फँसी होंगी। इसीसे उसकी भीतरी इच्छा यह जान पड़ती है कि, पुत्रको योगी बनाकर, राज्यसे निकालकर, फिर उस योगीके साथ मनमानी क्रीड़ा करूँ। हम बहुत दिनोंसे देख रहे हैं, रोज सन्ध्याके समय वह अपनी जैसी सखियोंको लेकर ज्वालेन्द्रनाथके समीप जाया करती है। सो मतलब आज प्रगट हुआ, इत्यादि, कहते भये। ऐसा सुनके गोपीचन्दका मन पलटके उसका विचार भी उधर ही झुक गया। उसने कहा—इसके लिये क्या प्रमाण है? उन्होंने कहा—आज सामको माताजीको योगीके पास जाते हुये देख लेना, प्रत्यक्षके लिये और क्या प्रमाण चाहिये। उधर कुलगुरु और अपना गुरु समझके नित्य सन्ध्याको मैनावती जाके गुरुके दर्शन, पूजन, और उपदेश श्रवण करके आया करती थी। उस दिन भी जब वह दर्शनार्थ जा पहुँची, तब उन मूर्ख लोगोंने भी राजाको ले जाके दूरसे ही माताको योगीके समीप बैठी हुई दिखा दिये, और कहे कि, लो अपनी आँखों देख लो। भला! वह बात नहीं है, तो रात्रि होनेपर, स्त्रीका इसके पास जानेका क्या काम? यह देख-सुनके गोपीचन्द बड़ा कुपित हुआ, परन्तु कुछ न बोलके चुपचाप लौट आया। फिर उन लोगोंसे सलाह करके, यही निश्चय किया कि, किसी प्रकारसे भी योगीको ही गुप्त कर देना चाहिये। तदनन्तर समाधि अवस्था वा गाढ़ो निद्राके समयमें, उन योगीको उठाकर एक गहरा-सूखा कूआँमें ले जाके डाल दिया। वहाँ भीतर बगलमें एक गुफा सदृश बना था, उसीमें घुसके वे बैठ गये, फिर एक बड़ा पत्थर ऊपरसे छोड़ दिये, तो संयोगसे वह भी बीचमें जाके अटका पड़ा रहा (तहाँ चमत्कार दिखाके उदानवायुको रोककरके बीचमें ठहरे, और हाथको ऊपर उठाके शिला रोक दिये, ऐसी कल्पित महिमा लिखी है।) तब वे लोग आश्चर्य करके घबड़ाये, राजाको हाल बताये। उसने, लकड़ी, घाँस आदि डालके सब

कूआ भरके पाट दो कहा। फिर उन लोगोंने वैसा ही किये, और अश्वशालासे घोड़ेका लीद-कचरा डलवाके कूआ पाट दिये, फिर प्रसन्न होके राजासे मिले। उधर सन्ध्या होते ही नित्य नियमानुसार मैनावती बागमें पहुँची। तो वहाँ किसी भी सेवकको नहीं देखी, और कुटीके भीतर जाके देखा, तो गुरुजी भी नहीं दीख पड़े। इधरकी बातें उसको कुछ भी मालूम नहीं थी। यही सोची कि—पुत्रने नाराज होके गुरुजीको चले जानेका कहलाया होगा, वे साधु महात्मा ही तो ठहरे, चुप-चाप चल दिये होंगे, इत्यादि अनुमान करती भई। फिर गुरुजी कहाँ चले गये, यह जाननेके लिये उसने एक पक्का गुप्तचर लगाया। यों तो मन्त्री लोगोंने सब काम गुप्त ही किया था, उस काममें लगे लोगोंको यह बात यदि किसीको बताओगे तो प्राण दण्ड दिया जायगा, कहके धमका रखा था। तथापि गुप्तचरने अपने चतुराईसे सब बातें मालूम करके आकर मैनावतीको वह सब अनर्थकारी बातें जो घटी थीं, सो बतला दिया। पुत्रने गुरुको कूएँमें डलाके पटा दिया, सुनके वह दुःखके मारे व्याकुल होके मूर्छित भई। उसको बड़ा भारी धक्का लगा। दासीने जल छिटकके, औषधी लगाके उसे सचेत किया। जागके बोली कि—हाय! मैंने तो पुत्रको कल्याणकी मार्ग बतलाया था, किन्तु वह तो नर्कके मार्गमें चला गया। इत्यादि कहके, विलाप करके दुःखी होती भई। फिर उसने एक सभा करनेकी आज्ञा दी। जिसमें गोपीचन्द सहित वे सब राजकर्मचारी बुलाये गये। फिर वहाँ जाके उसने क्रोधित होके तेज शब्दोंमें उन सबको खूब डाँट-फटकार सुनाई। जिसे सुनके वे सब लोग नीचे सिर किये बैठे रहे। फिर गोपीचन्दको खूब बात सुनाई, कहा कि—हाय शोक! तुम लोग बड़े मूर्ख हो, ऐसे महात्माके ऊपर अनुचित शङ्का करके बड़ा अनर्थ करडाला, ऐसे योगी पुरुष इस सांसारिक माया-जालमें कभी बद्ध नहीं होते। मुझे तो उन गुरुकी कृपासे ही भक्ति, ज्ञान, वैराग्यकी परिपुष्टि प्राप्त भई है। जिससे मैंने

तो पुत्रके हितके लिये ही शिक्षा दिया था, किन्तु तूने तो मेरे समस्त शुभ मनोरथोंपर खाक डाल दी । याद रखना ! वे महायोगी हैं, वे इस तरहसे कभी नहीं मर सकते, यदि वे क्रोधित हो जायें, तो तुम्हारा सत्यानाश कर दें । गुरुने दया स्वभावसे यदि तुम्हारी कुछ हानी भी नहीं किये, तो भी उनके एक शक्तिशाली शिष्य कारिणपानाथ जो हैं, वे स्वभावके अतिक्रोधी योगी हैं, जब यह बात वे सुन पायेंगे, तो तुम्हारेसे लेके सारे शहर भरके लोगोंको आपत्ति आ जायगी । फिर उसके निवारणार्थ तुम लोगोंने क्या उपाय सोच रखी है, सो बताओ-बताओ ! परन्तु किसीने कुछ नहीं बताया । इससे मैं अपने आँखोंसे तुम्हारी दुर्दशा होते नहीं देखूँगी, अतः आज ही मैं दूसरे देशमें चली जाऊँगी, कही । यह सुनके गोपीचन्द आदि बहुतेरे रोने लगे । किन्तु कुछ भी कह नहीं सके । तब सभाकी समाप्ति करके मैनावती चलने लगी । इतनेमें गोपीचन्द और उसके कर्मचारीगण ! माताके चरणोंमें पड़े । अपनी करनी पर बहुत पश्चात्ताप किया । आप कहीं न जाइये, और आनेवाली आपत्तिसे बचावका उपाय बतलाइये, कहे । फिर उसने नाराज होनेसे वह कुछ भी न बोलके महलमें चली गई ।

उधर मैनावतीने प्रगट करके सभामें कहनेसे वह बात एक-दो दिनमें ही दूर-दूर देशान्तरोंमें फैल गई । जिससे कारिणपानाथने भी यह बात सुनपाया । उन्होंने पूरा समाचार जानके आनेको एक शिष्यको भेजा । वह भी शीघ्रताके साथ वहाँ आके लोगोंसे बात पूछने लगा, और पूछते हुए उस कूआँके पास भी पहुँचा । नया बन्द किया हुआ कूआँ देखके, उसे उस बातका निश्चय हो गया । इधर इनके आनेका समाचार सुनके राजा और उसके कर्मचारी विशेष भयभीत हुए । उन्होंने पूजा सामग्रीले जाके उसे मनाना चाहा, परन्तु वह समाचार मालूम करके तिरस्कार करके चल दिया । इसलिये वे सब घबराके फिर मैनावतीकी शरणमें जा पहुँचे । माता।

हम सबको बचाइये ! कहके पुकार करने लगे । पहिले तो उसने खूब डाँटा, फिर गोपीचन्दको विशेष भयभीत देखके दया करके बोली—अब तुमलोग मत घबराओ, मैं कोई उपाय सोचूँगी, कहके उनको वहाँसे विदा किया, और उसने तुरन्त दर्शन दीजिये, मैं सङ्कटमें पड़ी हूँ, कहके गुरुको बुला भेजा । शीघ्र ही गोरखनाथ भी वहाँ आ पहुँचे । तब मैनावतीने उनको सारा हाल कह सुनाया । कारिणपानाथको भी उसके शिष्यद्वारा खबर मिल चुकी है । अब जैसे भी हो, आप आगामी अनिष्टसे बचाइये ! इत्यादि विनयकी । नाथजीने कहा—हाँ ! काम तो अनुचित हुआ, कारिणपानाथके लिये असह्य होनेवाला ही बात है । जहाँतक हो सकेगा, मैं निवारण करनेका उपाय करूँगा, धैर्य धारण करो, सबको धैर्य दो । यह सुन मैनावती प्रसन्न हुई । गुरुकी सेवाका सब प्रबन्ध करके महलमें आई, और पुत्रको बुलाके धैर्य बँधाया । इसी निमित्तसे उसे चेताके वैराग्यका उपदेश देके और भी बहुत समझाई । तब उसने कहा—माता ! मैं आपकी कृपासे महान अनिष्टसे बचा, अब आपके आज्ञाके अनुसार ही चलूँगा । माताने कहा—तू जाके गोरखनाथजीकी शरण होकर क्षमा करनेकी प्रार्थना कर; गुरु ! मुझे बचाइये ! मैं आपका वा जिसकी आप आज्ञा दें उसीका शिष्य बन जाऊँगा, इत्यादि विनय करना । ऐसा सुनके माताके चरणोंमें मस्तक लगाके अपने साथी सहित जाके गोरखनाथजीकी वन्दना किया, और क्षमा माँगता भया । उन्होंने बहुत-सी बात समझाये, और एक युक्ति यह बतलाये कि, तुम लोग व्यापारी बनजारेका भेष बनाके उत्तमोत्तम खाद्य पदार्थ लेके जावो, कारिणपानाथ इधर आते होंगे, उस मार्गमें जाके उनसे मिलो, निमन्त्रण देके उनकी जमातको अच्छा भण्डारा खिला-पिलाके भेंट-पूजा चढ़ाके सन्तुष्ट करो, जिससे वह तुम्हें आशीर्वाद देगा, फिर पीछे उसका कोप तुम्हारा कुछ भी हानि न कर सकेगा । अब जल्दी ही चले जावो, कहा । इधर इन्होंने भी

शीघ्र सब ठीक करके, सन्देश ले जानेवाले योगी जिस मार्गसे गया था, उसी मार्गसे चले गये। फिर मार्गमें कारिणपानाथकी जमात भी मिला, इधर इन लोगोंने चतुराईसे व्यापारीके रूपमें उन्हें भेंट पूजा चढ़ाये, दूसरे दिन बड़ा भारी भण्डारा किया। और उनके आज्ञानुसार पंक्तिके समय गोपीचन्द स्वयं उपस्थित हुआ। योगियोंके हस्तका प्रसाद ग्रहण किया, फिर भोजनान्तमें कारिणपानाथने आशीर्वाद देकर उसके सिरपर हाथ रख दिया, उसने कृतज्ञता प्रगट कर वहाँसे पूजा समाप्त करके विदा हुआ। आकर यह समाचार गोरखनाथजीको बतलाया। और सफलताके खुशीमें दान-पुण्य किया।

फिर दूसरे ही दिन शिष्य मण्डलीके सहित कारिणपानाथ भी राजधानीमें आ पहुँचे। वहाँ उत्पात मचानेकी युक्ति किया, परन्तु उनकी युक्ति कुछ भी कामयाब नहीं हुई। ऐसा देखके वे बहुत आश्चर्य करने लगे। फिर उन्हें मालूम हुआ कि, गोरखनाथजी यहाँ पर विराजमान हैं, उनके ही आज्ञासे व्यापारी बनके राजाने आशीर्वाद लिया था। अतः वे शान्त हो गये। परन्तु उनके शिष्य अभिमानके वचन कहने लगे, कुआँ साफ करना कौन बड़ी भारी बात है? ऐसे अनेकों कुआँ हम साफ कर देंगे। पहले तो गोपीचन्दको दण्ड देना चाहिये, इत्यादि कहे। उन्हें समझाके नाथजीका दर्शन करने आये। फिर उनमें परस्पर वार्तालाप हुआ। राजाके तरफसे भण्डारा दिया गया। नगर भरके भूखे लोगोंको खिलाया। और गोरखनाथने गरीब बनकर भोजनसे पात्र न भरनेका चमत्कार दिखलाया, ऐसा लिखा है। और फिर रातमें जाके गोरखनाथने हमारे अतिरिक्त दूसरे कोई भी इस कुआको खाली न कर सके, ऐसा युक्तिसे व्यवस्था कर आये। और दूसरे दिन राजाकी ओरसे मजूर दल आये, कारिणपानाथ भी सब शिष्योंके सहित कुआँपर गये। और आज शामतक कुआँ साफ करके खाली करा लेना, कहके वे अपने आसन-

पर ही आ-गये । उन सब लोगोंने खूब मन लगाके साफ किया, तो भी उस दिन कुआँ खाली नहीं हो सका। तो उन्होंने जाके सारा हाल गुरुसे बताये। तब उन्होंने कहा—तुम लोग पहिले कहते थे, हम आपकी आज्ञा होगी उसी समय यह तो क्या अनेक कुआँ खाली कर देंगे। आज तुम लोग और बहुतसे मजूर लगके भी खाली नहीं हो सका। खैर! कल खाली कर लेगें, कहे तो वे चुप हो रहे।

इसी तरह तीन दिनतक विशेष प्रयत्न किये, तो भी कुआँ खाली नहीं हुआ। (क्योंकि रातमें कोई गुप्त रीतिसे उसे भरा देता था) निदान शिष्य लोग हार मानके गुरुसे विनय करके क्या कारणसे ऐसा हुआ? पूछने लगे। यह सुन, कारिणपानाथने कहा—तुम लोगोंने हङ्कारका वचन कहा था, यह उसीका फल है। अब तुम आचार्यजीसे जाके क्षमा माँगो, तभी काम बनेगा। अतः वे जाके गोरखनाथजीके चरणोंमें गिरे। क्षमा माँगी, उन्होंने कहा—क्या ज्वालेन्द्रनाथजी निकल आये? शिष्योंने कहा—महाराज! आपके कृपा बिना हम लोग कहाँ निकाल सकते हैं? अब आप ही कृपा करके निकाल दीजिये। इसपर कुछ हँसते हुए आपने कहा कि, हमने तो अपने गुरुजीको संसार सागरमें गिरेहुओंको निकाल लिया था। क्या तुम लोग उनको कूपसे नहीं निकाल सकते हो? वे लोग चुपचाप रहे, तब आपने कहा— अच्छा यह बात हमारे ऊपर है, तो हम कल मध्याह्नमें भोजन पानेपर करेंगे। वे लोग वन्दना करके आके अपने गुरुसे सब बात कहे। शहरमें ड्योंड़ी पिटा दिये कि, कल सबोंको इच्छानुसार भोजन मिलेगा। यह सुनके दूसरे दिन दोपहरतक मेला लग गया। सबोंकी पङ्गत बिठाके दो-दो पत्तल धर दिये। फिर लिखा है कि, गोरखनाथने ऊँचे स्वरसे सबको सुनाके कहे, अपने इच्छानुसार भोजनका सङ्कल्प करो, सोई मिलेगा, ऐसा करनेसे सबोंको मन चाही वस्तु प्राप्त हुई। फिर कारिणपाके एक शिष्यने सर्प माँगा, तो उसे सर्प ही मिला। जिसे देखके वह डरके पीछे हटा, और पङ्गतमें

खलबली मच गई। यह देखके गुरुने उसे श्राप देके भेष छीनके निकाल दिया। वही जाके सर्पेलिया-कानबेलिया भया, इत्यादि।

तदनन्तर श्रीनाथजी धूमधामके साथ कुएँपर पहुँचे। लिखा है— उन्होंने चमत्कार दिखा करके कुएँमें ढका तृण आदिकी टिड्डीकी नाईं बना करके उड़ा दिया, शीघ्र ही कुआ खाली करा दिया। और गोपीचन्दको कहा कि, आटेके दो पुतले तुम्हारे शरीर जितना बड़ा बराबरीके बनाकर शीघ्र ले आवो। उसने जल्दी ही बनाने लगाकर लाके उन्हें दिया। उसे लेके उन्होंने गोपीचन्दको जो-जो करनेकी है, सो सारी बात समझाये। उसने भी माना। तब श्रीनाथजीने एक प्रतिमा-पुतला कुएँके किनारेपर रक्खा। उसे पकड़के उसके पीछे आप और अपने पीछे गोपीचन्दको खड़ा किया। फिर बताये कि— तुम पीछेसे हो ज्वालेन्द्रनाथको बाहर निकलनेके लिये पुकारो, हम इस पुतलेकी छाया, कूपमें डालेंगे, तब वे पूछेंगे कि, यह शब्द और छाया किसकी है? तब तुम न बोलना, हम स्वयं उत्तर दे देंगे। सिखाये अनुसार वह बोला— स्वामीजी! नाथजी! बाहर आनेकी कृपा करिये। साथ ही इधर पुतलेकी छाया भी भीतर पड़े, ऐसा कर दिये। तब भीतरसे पूछे कि— यह शब्द और छाया किसकी है? गोरखनाथने उत्तर दिया, आपके शिष्य गोपीचन्दकी है। यह सुनके हे अपराधी! तू भस्म हो जा! कहे, तो प्रतिमा भस्म हुई। फिर दुबारा भी ऐसे ही बात हुई। तीसरी बार श्रीनाथजीने गोपीचन्दको ही कूपपर खड़ा किये, और अबके उत्तर भी तुम ही देना कहा। उसने उसी तरह पुकारा, भीतरसे बोले— जिसने मेरे दो वचन निष्फल कर डाले, ऐसा तू आवाज देनेवाला कौन है? क्या सचमुच गोपीचन्द ही है? उसने नम्रतासे कहा— हाँ! गुरुजी! मैं आपका चरण सेवक गोपीचन्द ही हूँ। यह सुनके कहे कि— हे पुत्र! लो हम तो निकल ही आते हैं, परन्तु तू भस्म न हुआ, तो अब अमर ही हो जायगा! जा अमर हो जा! ऐसा कहके आप भी कूएँसे बाहर निकल आये। तब

सब लोगोंने जय-जयकार ध्वनि उच्चारण करके बड़ा हर्ष प्रगट किया । तदनन्तर गोपीचन्दने अपने राज्यको अधिकारियोंके अधीनस्थ कर गोरक्षनाथजीके परामर्शसे ज्वालेन्द्रनाथजीकी शरण ले अपनी प्रतिज्ञा पूरी की । फिर ज्वालेन्द्रनाथने भी गोपीचन्दको योगी शिष्य बनाकर, उसे साथ लेके बदरिकाश्रम तरफ चले गये । वहाँ उसे योगमार्गकी पूर्ण शिक्षा देके निपुण किये । इस तरह वह एक प्रवीण योगी बना ॥

यह कथा "योगि सम्प्रदायाविष्कृति" ग्रन्थमें विस्तारसे लिखा है, उसीका सारांश यहाँपर उतार दिया गया है । विशेषतः चमत्कारकी बात कल्पित होती है । उसे निर्णयसे माना नहीं जाता है ॥ तहाँ एक भजन ब्रह्मानन्दने कहा है, सो भी सुनिये !

भजनः—"मैनावती वचन उचारा ! सुन गोपीचन्द पियारा ! ॥ टेक ॥

जिनकी कञ्चनसी काया । धन जोबन रूप सवाया जी ॥
सब हो गये काल अहारा ॥ सु० ॥
यह राज्य सम्पदा भारी । सब होय पलकमें न्यारी जी ॥
तज माया-मोह पसारा ॥ सु० ॥
सत्‌गुरुकी शरण सिधारो । कर योग अमर तन धारो जी ॥
मिटे जन्म-मरण संसारा ॥ सु० ॥
वो नाथ जलन्धर योगी । नित ब्रह्मानन्द रस भोगी जी ॥
कर सेवा हो निस्तारा ॥ सुन गोपीचन्द पियारा ! ॥"

माताका ऐसा हितकर उपदेश सुनकरके उसको बड़ा भारी वैराग्य उत्पन्न हो गया । और पूर्वोक्त प्रकारसे जालन्धर नाथकी शरणमें जाके उनका पक्का शिष्य होता भया । योगसाधना करके पीछेसे वह भी एक प्रवीण सिद्ध योगी हो गया । नवनाथमें यह गोपीचन्द ही गोपीनाथ नामसे प्रसिद्ध भया । वह बड़ा विरक्त योगी साधन सम्पन्न हो गया । गोरखपन्थियोंमें तीव्र वैराग्यमें अन्तिममें प्रसिद्ध गोपीचन्द ही हुआ है । गोरखनाथ भी बड़ा त्यागी वैराग्यवान् भये

रहे। परन्तु उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ एक समय सिंहलद्वीपमें जाकर कमलापति रानीसे विषय-भोगमें फँस गया था, तो गोरखनाथ जाके उन्हें छुड़ा लाये। और गुरुके झोलीमें सुवर्णकी ईंटोंका बोझा रखी देखी, तो उसे निकालकर नदीमें फेंक दिये। पीछे गुरुके पूछनेपर बताये कि— विरक्त योगीको यह मायाकी बोझा ढोनेसे क्या काम ? इत्यादि कहके कुछ चमत्कार दिखा दिये, और वैराग्यका कथन सुनाये, तो वे शान्त हो गये, इत्यादि वर्णन है। अन्य-अन्य ग्रन्थोंमें यह सब बात विस्तारसे वर्णन भया है ॥

और इनसे भी बहुत पहिले शुद्धोदन राजाके पुत्र गौतम बुद्ध बड़ा वैराग्यवान् हो गया है। उसीसे बौद्ध सम्प्रदाय चला है। इसके बहुत काल पश्चात् शङ्कराचार्य हुए, वे भी बड़े वैराग्य-सम्पन्न त्यागी, ब्रह्मज्ञानी हो गये हैं। दशनाम संन्यासी चार दिशाके चार मठोंसे उन्होंने चलाये हैं। ऐसे-ऐसे बहुतेक सन्त-महात्मा त्यागी, बड़े विरक्त पूर्वमें हो गये हैं, सो ग्रन्थोंद्वारा उन्हींके जीवनी जाननेमें आती हैं। परन्तु पारखबोध उनमें किसीको भी नहीं मिला। केवल वैराग्यवान्मात्र होते रहे ॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजकमें कहा हैः—

"गोपीचन्द भल कीन्ह योग। जस रावण माख्यो करत भोग ॥
ऐसी जात देखि नर सबहिं जान। कहहिं कबीर भजु राम नाम ॥"

॥ बीजक बसन्त १० ॥

३. शाह शिकन्दर—बलख-बोखारा (बाह्लीक देश) के राजाका नाम सुलतान शाह शिकन्दर था। वैसे तो वह ऐशो-आराम, विषय, भोग-विलासमें मस्त रहता था। जातिका मुसलमान था। युवा अवस्थामें जब उसका पिता मर गया, तो राजगद्दीपर वही बैठा। विषय-क्रीड़ामें दिन बिताने लगा। जनश्रुति ऐसा है कि— एक समय सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब रामतमें निकले, तो विचरण करते हुए बलखबोखारा देशमें जा पहुँचे। एक दिन पर्यटन करते-करते राजमहल-के समीप पहुँच गये। सामनेमें उद्यान और राजाका बगीचा था, वहाँ

टहलते हुए राजद्वारके भीतर चले गये। निर्भय होके आगे बढ़ने लगे। एक साधु-फकीरको इस तरह बिना पूछे आगे जाते हुए देखकर वहाँ संरक्षणके लिये बैठा हुआ द्वारपाल आके सन्मुख जाके रोका। उसने पूछा— आप कौन हैं? कहाँसे आये हैं? यहाँ किस कामके लिये तसरीफ लाये हैं? पूछे बिना कैसे भीतर जा रहे हैं? साहेब बोले— मैं मुसाफिर हूँ, परदेशसे आया हूँ, इस सराय या धर्मशालाको मैंने साफ देखा, इसलिये घड़ी-दो-घड़ी विश्राम करनेको भीतर मैं जा रहा हूँ, सराय सबके लिये खुला रहता है, इसीसे मैंने तुमसे कुछ नहीं पूछा। ऐसा उत्तर सुनके वह सिपाही बड़ा क्रुद्ध हुआ, और बोला— अरे फकीर! तुम्हारेमें जरा भी अकल नहीं है, क्योंकि यह सुलतानके राजमहलको तुम सराय बतला रहे हो। अच्छा तुम परदेशी हो, हाल जानते नहीं हो, अब यहाँसे लौट जाओ। समझा! यह राजदर्बार है, सराय नहीं। महाराज यदि सुन पावेंगे, तो तुमपर बड़ा नाराज हो जावेंगे, झटपट यहाँसे भाग जाओ। परन्तु इसी युक्तिसे राजाको चेतानेके लिये ही साहेब गये थे, इसलिये निर्भीक होके बोले— अरे भाई! तुम हमको काहेको रोकता है? हम इस सरायमें एक-दो घड़ी आराम करके आप ही चले जावेंगे। तू जिसे राजमहल बताता है, सो हमें तो पूरा सराय सरीखा ही दिख रहा है। सिपाही बोला— ओ मुसाफिर! यह सराय नहीं है, राजदरबार है, तुम क्यों हठ करते हो? यहाँसे लौट जाओ। तुम फकीर हो, महाराज फकीरोंसे प्रेम रखते हैं, इस कारण मैं और कुछ नहीं कहता, और दूसरा कोई होता, तो मैं इसी वक्त बिना पूछे गिरफ्तार कर लेता, समझे! साहेब बोले— अच्छा! यह तो बतलाओ— इस वक्त इस महलमें कौन रहता है? सिपाहीने कहा— सुलतान शाह शिकन्दर रहते हैं। साहेबने पूछा— उनके पहले कौन रहता था? सिपाहीने कहा— इन बादशाहके पिताश्री रहते थे। साहेबने पूछा— उनके भी पहले कौन रहता था? सिपाही—

शाहके दादा रहते थे। साहेबने पूछा— उनसे भी पहले कौन था ? सिपाही—दादाके पहिले बाबा, उसके पहले आजा, परपाजा, उनके भी पिता, पितामह, प्रपितामह, वृद्धपितामह, महाराजे लोग इस राजमहलमें रहते थे, अब कहो, कितने बताऊँ ? तुम तो निपट अनाड़ी मालूम पड़ते हो, कौन देशमें रहते हो ? साहेबने कहा— मैं भारतवासी हूँ। नाराज मत होओ, अच्छा ! थोड़ा-सा और बतला दो, इन बादशाहके बादमें यहाँ कौन रहेगा ? सिपाही— इनके बादमें यहाँ शाहके राजकुमार युवराज बादशाह होके रहेंगे। इसी प्रकार दुनियाँमें क्रम चलता रहता है। साहेबने कहा—तुमने अच्छा बतलाया। जहाँपर इतने सारे मुसाफिर आये-गये, और आते-जाते ही रहेंगे, भला ! फिर वह सराय नहीं तो क्या है ? सदाकाल यहाँ अमर होके सदेह कोई रहने नहीं पाया, और कोई रह भी नहीं सकते, उसको राजमहल समझके आसक्त हो रहना, नितान्त मूर्खता है। जितने भी घर बने हैं, वह धर्मशालारूप वा सराय ही हैं। वहाँ रहनेवाले सब मनुष्य चाहे राजा हो कि— रङ्क हो, मुसाफिररूप पथिक ही हैं। अपने गन्तव्य स्थानको भूलकर यहाँ लुब्ध हो रहे हैं। इसीलिये महाबन्धनोंमें जकड़े हुए नाना कष्ट, क्लेश, दुःख भोग रहे हैं। जो सब बन्धनोंसे छूटकर शान्ति स्थितिमें पहुँच गया, सोई सच्चा बादशाह है। बन्धनोंमें पड़े हुए सब जीव मुसाफिर हैं। इत्यादि प्रकारसे सत्योपदेश कहने लगे, यह चमत्कार देख-सुनके वह सिपाही तो अवाक् हो दङ्ग रह गया। संयोगसे राजा भी वहीं समीपमें बैठा था, उसने भी सारी बातचीत कान लगा कर सुन ली। जिससे उसके शुभसंस्कार जागृत हो गये। तीर लगा हुआ हिरणके समान वह दौड़ता हुआ आकर श्रीकबीरसाहेबके चरणोंमें गिर पड़ा, और स्वागत सत्कारसे महलमें ले जाकर पूजा, वन्दना करके अपने कल्याणके लिये प्रश्न किया। तब उत्तम अधिकारी जानके उसे सत्यज्ञानका उपदेश सद्गुरुने सुनाये, और बोध-वैराग्यका

कूक भर दिये। त्याग-वैराग्यसे होनेवाला लाभ और भोग विषयोंमें लगे रहनेसे होनेवाली हानी यथार्थ सत्यनिर्णयसे दरशा दिये। जिससे उसको अच्छी तरहसे वैराग्य दृढ़ हुआ। उसे इस प्रकार बोध करके साहेब चले आये। पीछेसे वैराग्यका जोश बढ़ जानेसे शाह शिकन्दर भी जल्दीसे ही घर-बार, राज-पाट, बन्धु-बान्धव, सकल विषय सुखोंको परित्याग करके फकीर हो गया। फिर धीरे-धीरे पैदल चलकर बलख-बोखारा देशको छोड़के भारतवर्षमें आया। और सद्गुरुके दर्शन कर अपना जीवन सफल माना। फिर तो वह बड़ा त्यागी हो अत्यन्त वैराग्यको धारण करके जीवन बिताया। ऐसे उसके शुद्ध त्याग वैराग्यको देखके सद्गुरु श्रीकबीर साहेबने भी उसकी प्रशंसा किये, पारखबोधमें स्थिति करनेके लिये, समझा दिये। इस बारेमें उपयुक्त एक भजन "श्रीकबीर भजनमाला" में छपा है, सो सुन लीजिये ! ॥

॥ * ॥ भजन ॥ * ॥

सुलताना बलख बुखारे दा ॥
शाही तजकर लिया फकीरी, अल्ला नाम पियारेदा ॥ टेक ॥
तब थे खाते लुकमा उमदा, मिसरी कन्द छुहारेदा ॥
अब तो रूखा-सूखा टूका, खाते साँझ सकारेदा ॥ १ ॥
जा तन पहने खासा मलमल, तीन टङ्क नौ तारेदा ॥
अब तो बोझ उठावन लागे, गुदड़ दशमन भारेदा ॥ २ ॥
चुनि-चुनि कलियाँ सेज बिछाते, फूलों न्यारे-न्यारेदा ॥
अब धरतीपर सोवन लागे, कङ्कर नहीं बुहारेदा ॥ ३ ॥
जिनके सङ्ग कटक दल बादल, झण्डा जरी किनारेदा ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो ! फक्कड़ हुआ अखारेदा ॥ ४ ॥

॥ * ॥ भजन ॥ गजल—वैराग्यका ॥ * ॥

हमन् हैं इश्क मस्ताने, हमन्को होशियारी क्या ? ॥
रहैं आजाद हम जगमें, हमें दुनियाँसे यारी क्या ? ॥ टेक ॥

जो बिछुरे हैं पियारेसे, भटकते दर-बदर फिरते ।।
हमारा यार है हममें, हमन्को इन्तजारी क्या ? ।। १ ।।
खलक सब नाम अपनेको, बहुत कुछ सिर पटकती है ।।
हमन् गुरु ज्ञान आलिम हैं, हमन्को नामदारी क्या ? ।। २ ।।
न पल बिछुरे पिया हमसे, न हम बिछुरें पियारेसे ।।
जो ऐसी लव लगी हरदम, तो हमको बेकरारी क्या ? ।। ३ ।।
कबीरा इश्कका माता, दुईको दूरकी दिलसे ।।
ये चलना राह नाजुक है, हमन् सिर बोझ भारी क्या ? ।। ४ ।।

—इस प्रकार बलख बोखाराके शाह शिकन्दर सद्गुरुके चेतानेसे बड़ा विरक्त हो गया था, और भर्तृहरि राजाने भी सिन्धुमतीके कारणसे चोट खाकर वैराग्य धारण कर लिया था। गोपीचन्द राजा भर्तृहरिका भानजा लगता था, ऐसा लिखा है। माताके उपदेशसे गोपीचन्द भी वैराग्यवान् होकर गोरखपन्थियोंमें सम्मिलित हुआ। नौनाथोंमें एक वह भी गिना गया, ये सब लोग शास्त्र प्रमाणसे वैराग्यके स्वरूप या वैराग्यमूर्ति हो गये, ऐसा माना जाता है।

अगर पारखनिष्ठ वैराग्यवान हों, तब तो सोनेमें सुगन्ध है। अर्थात् सर्वश्रेष्ठ हैं, वे तो इसी जन्ममें जीवन्मुक्त हो सकते हैं। परन्तु सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पहले पारखबोधका प्रकाश हुआ ही नहीं रहा। इसलिये उन्होंको पारख विचार नहीं मिल सका। तथापि वैराग्य धारण करनेवाले वे, रागियोंसे श्रेष्ठ अति उत्तम ही माने जाते हैं। शुभ संस्कार टिकनेसे किसी नरदेहमें वे अपना कल्याण कर पावेंगे। अतएव मुक्ति चाहनेवालोंने दृढ़ वैराग्यको अवश्य धारण करना चाहिये, और सब बातोंमें भय-ही-भय लगा हुआ है, एक वैराग्यमें ही निर्भय पद है; अब उसीके बारेमें ग्रन्थमें दर्शाते हैं। सो भी ध्यानपूर्वक श्रवण-मनन करते जाइये ।। १४ ।।

॥ ॥ भयकी अङ्ग वर्णन ॥ ॥

दोहाः—विद्याको भय वादको । तपको क्षय भय होय ॥
द्रव्यको नृप चोर भय । समुझ सयाने लोय ॥ १५ ॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! प्रवृत्तिके कार्यमें सो सब तरफ भय ही भय लगा हुआ है, सो कैसे कि— विद्या पढ़नेवाले विद्यार्थी और विद्वानोंको कहीं वाद-विवाद होनेका भय होता है। तथा तपस्या करनेवालोंको चूक होके तपस्या क्षय होनेका भय होता है। और विशेष द्रव्य संग्रह करनेवालोंको चोरोंके और राजा आदिकोंके भय होता है। इस तरह विषयोंकी राग-आसक्तिके कारणसे ही सब प्रकारसे प्राणी भयभीत रहते हैं, और नाना उपाधियोंमें पड़ा करते हैं, अतः हे सयाने लोगो ! तुम लोग इस बातको विवेक करके समझो, और विरक्त बनो ! ॥

॥ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात् हितेच्छुक हे मनुष्यो ! सुनो, संसारमें जहाँतक मनुष्योंमें राग बना रहता है, तहाँतक चारों तरफसे उसे भय लगा रहता है। सो उसके कारण ऐसा है कि— विशेष कर्तव्यका अभिमान हो जाना। जिससे अपने करनीसे आप ही भयभीत हो जाते हैं, इसलिये विद्वान्‌जनोंको वाद-विवाद होनेका भय लगा रहता है। जैसे कोई मनुष्यने विद्या अध्ययन किया, चार वेद, षट् शास्त्र, अठारह पुराण, १४ विद्या, स्मृति आदि कई एक ग्रन्थोंको पढ़ लिया। तहाँ मैं बड़ा विद्वान् हूँ, मेरे समान दूसरे कोई नहीं, यह हंकार उसे हो गया। परन्तु शास्त्रार्थ, वाद-विवाद प्रतियोगितामें कहीं मुझसे ज्यादा जाननेवाला आके मुझे हरा न देवे, यह डर उन्हें लगा रहता है। अथवा व्यर्थ वकवादीके साथ कहीं वाद उपस्थित न हो जाय, उसके लिये विद्वान् या पण्डित लोग डरा करते हैं। विद्याभिमानी कभी निर्भय नहीं हो सकते हैं।

इससे मुमुक्षुओंके लिये ज्यादा विद्या पढ़नेकी कामना त्यागने योग्य है। और तपस्वी लोगोंको तपस्यामें विघ्न पड़के तप क्षय हो न जाय, इसीका भय लगा रहता है। तहाँ ग्रन्थकर्ताने बीजक टीकामें जो सवैया लिखे हैं, सो सुनिये !—

सवैयाः— डरहि ते योग औ यज्ञ हूँ करत नर।
डरहि ते दान-पुण्य ध्यानको धरतु है ॥
डरहि ते राज छाडि भूप बन खण्ड गये।
डरहि ते तपस्या करि डरहिमें मरतु है ॥
डरहि ते भक्ति औ ज्ञानको अभ्यास करे।
डरहि ते अन्न छाड़ि दूबको चरतु है ॥
डरहि व्यापक तिहुँ लोकको बन्धन भयो।
पूरण परख बिनु डर न सरतु है ॥ बी० ज्ञा० चौ० ॥

मनोकामना पूर्ण, इष्ट सिद्धि, स्वर्गादि, ईश्वरादि प्राप्तिके लिये तपस्या करते हैं। तहाँ पञ्चाग्नि वा चौरासी धुनी तापना, वर्षामें खुले मैदानमें रहना, ठंडीमें जलशयन करना, मौनी, दिगम्बर, जटाधारी, उर्ध्वबाँहू, ठाड़ेश्वरी, दूधाहारी, दूबाहारी, फलाहारी, अल्पाहारी, रूखा, सूखा, भाजी, पाला, लोना, अलोना, जब-जैसा मिले, तैसा पायके रहना, कभी भोजन न मिले, तो पानी ही पीके रहना, इत्यादि प्रकारसे नाना तरहके तपस्या करते हैं। फिर हम बड़े तपस्वी हैं, ऐसा उन्हें अभिमान चढ़ जाता है। विश्वामित्र, पाराशर, शृङ्गी ऋषि, दुर्वासा ये सब बड़े भारी तपस्वी कहलाते रहे, परन्तु विषयासक्तिके कारण उन्होंके तपस्याका क्षय हो गया था, तहाँ कहा :—

"विश्वामित्रपराशर प्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्री मुख पङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहंगताः ॥
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा-
स्तेषा मिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत् सागरे ॥" वैराग्यशतक ॥

—अर्थात् विश्वामित्र, पाराशर इत्यादि ऋषि, मुनि—जो वायु, जल, रूखे पत्ते, तृणादि खायके तपस्या करते थे—वे भी स्त्रीका मुख कमल देखकर कामासक्त हो मोहको प्राप्त हो गये और स्त्री विषयोंमें फँस गये। फिर शालि चावल आदि अन्न, दूध, दही, और घी मिलायके जो नित्य-प्रति स्वादिष्ट भोजन करते हैं, यदि उनकी इन्द्रियाँ उनके वशमें हो जायँ, तो विन्ध्याचल पर्वत भी समुद्रमें तैरने लग जाय। अर्थात् जब कठोर तपस्या करनेवाले भी कामको जीत नहीं सके, तब कामोत्तेजक भोजन करके स्त्रियोंके बीच में रहनेवाले कैसे भग भोगसे वच सकेंगे? उनके लिये विषय—जीतना अशक्य बात है॥

इस प्रकार तपस्वीको तपस्या क्षय होनेका भय होता रहता है। तथापि तप मद उदय होनेसे मुक्तिपद उनका क्षय ही हो जाता है। कोई विषयोंमें लुब्ध होके नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं; तो कोई मिथ्या कल्पना-में पड़के नाश हो जाते हैं। तपस्याका पुण्य क्षय होनेपर चौरासी योनियोंमें गिर पड़नेका भय वहाँ लगा रहता है। पूर्वोक्त तपस्या-त्याज्य है। उससे कल्याण नहीं होता; और धनिक लोगोंको द्रव्य बचानेके लिये राजा और चोरोंका सदा भय लगा रहता है। एक-एक पैसा जोड़-जोड़ करके बहुत सारा धन बटोर लेते हैं, और भयभीत रहते हैं। तहाँ कहा हैः—

पदः—"कौड़ी कौड़ी माया जोरी, जोरे लाख पचासा॥
अन्त समय कोई काम न आवै, बाँधि चले यमपासा॥"

अथवा और भी कहा हैः—

दोहाः—तजि तिय पूत जु धन चहै, ताके मुखमें धूर॥
धन जोरन रक्षा करन, खरच नाश दुःख मूर॥

चौपाईः— जो चाहे माया बहु जोरी। करै अनर्थ सु लाख करोरी॥
जातिधर्म कुलधर्म सु त्यागै। जो धनकूँ जोरन जन लागै॥
बिना भाग तदपि न धन जुरिहै। जुरै तु रक्षा करि-करि मरि है॥

खर्चत धन घटि है यह चिन्ता। नाशै निशिदिन ताप अनन्ता॥
सदा करत यूँ दुःख धन मनकूँ। चहै ताहिं धिक-धिक तिहिं जन कूँ॥
॥ विचारसागर— ५। ११०। ११३॥

और वैराग्य शतक श्लोक ४ में कहा हैः—

"उत्खातं निधि शङ्कया क्षितितलंध्माता गिरेर्धातवो निस्तीर्णः सरितांपतिर्नृपतयो यत्नेन सन्तोषिताः॥ मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशानेनिशाः प्रातः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुनामुञ्चमाम्॥"

— धन मिलनेकी आशा, तृष्णासे, मैंने जमीनके पेड़-पौधे तक खोद डाले। अनेक प्रकारकी पर्वतोंकी धातुएँ भी फूँक डाली। मोतियोंके लिये समुद्रकी भी थाह लिया, तहाँ बालुओंको छानता फिरा। राजाओंको प्रसन्न रखनेमें भी अनेक प्रकारके यत्न-प्रयत्नकर कोई बात उठा नहीं रखी, और मन्त्र सिद्धिके लिये रात-रातभर श्मशानमें एकाग्रचित्तसे बैठा हुआ जप करता रहा, परन्तु बड़ी भारी अफसोसकी बात तो यह हुई कि, इतना कष्ट-क्लेश उठानेपर भी एक कानी-कौड़ीतक भी मुझे न मिली, और मिलकर भी मेरे पास नहीं ठहरी। अतएव हे प्रबल तृष्णे! अब तो तू मेरा पीछा छोड़॥

द्रव्य जो है, सो सारा अनर्थ, उपाधि, झगड़ोंका कारण है, और ज्यादा छल-कपट, पाप, अन्याय करके ही विशेष धन-सम्पत्तिकी प्राप्ति और संग्रह या संचय होता है। तो भी वह सब प्रकारसे भय और दुःख ही देता है। प्रथम तो बड़े कष्टसे ही धन हाथमें आता है। फिर रक्षा करनेमें भी बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। धनिक, सेठ, साहुकारोंको धन-रक्षाके निमित्त ही टण्टा, फसाद, मुकदमा, लगा रहता है। विशेष धन मालूम होनेपर राजा लोग भी कई कारण या बहाना लगाकर धन छीन लेते हैं, जायदाद हड़प जाते हैं। कोई मददमें माँगके फिर वापस नहीं देते हैं, और आमदनीमें टैक्स वगैरह अलगसे लगा देते हैं। इस तरह राजा ही धन हथिया लेते हैं। अगर किसी प्रकारसे राजाको प्रसन्न करके पूँजी इकट्ठा करके

भी रखा, तो गरीब मनुष्य धनके लोभसे चोर बन जाते हैं। मौका पाके चोर लोग आके द्रव्यको चुरा ले जाते हैं, यदि उसमें कोई बाधक भी हुआ, तो चोर लोग उस रोकनेवालेको मार भी डालते हैं। यदि चोरोंने और डाकुओंने धनको छीनके लेकर उसे जीता भी छोड़ दिया, तो धन नाश हो जानेके चिन्तामें कोई अपने ही घात करके मरते हैं, कोई प्राणान्तके समान दुःख पाते, हाय-हाय करते रहते हैं। इस तरह दुनियाँभरके झंझट धनके कारणसे होता है। धनिकोंमें परस्पर विशेष ही बैर-विरोध भी लगा रहता है। धनिक राजे, महराजे लोग चोर, डाकुओंसे सदा भयभीत होके सावधान रहते हैं। सशस्त्र सिपाहियोंके गारत तैनात करके, दिन-रात खजानेमें पहरा लगाये रखते हैं। द्रव्यवान् पूँजीपतियोंको राजा और चोरोंका भय सदा लगा रहता है। निश्चिन्त होके वे कभी सो भी नहीं सकते हैं। अतएव विवेकी पुरुष धन जोड़नेके पीछे कभी नहीं लगते। इसीसे वे निर्भय सुखी रहते हैं॥

हे सयाने-समझदार लोगो! तुम अब तो भी पारखी साधु गुरुकी सत्सङ्ग करके समझो-बूझो, अपने हित-कल्याणके मार्गमें लगो। विद्यामें वादका भय, तपमें क्षयका भय, और द्रव्यमें राजा तथा चोरोंका भय, समझके उन तीनों अनर्थकारक विकारोंको परित्याग करो, निजपदके विचारमें सद्गुण रहस्य सहित सदा निर्भय हो रहो॥ १५॥

दोहाः—सकल भोगको रोग भय। कायाको भय काल॥
सकल साधना इन्द्रिन भय। ताते होत बेहाल॥१६॥

संक्षेपार्थः— और फिर सम्पूर्ण विषय-भोगोंको मनमाने भोगनेवालोंको तरह-तरहके रोग उत्पन्न होनेका भय होता है। तथा देहधारियोंको काल वा समय पूरा होनेपर मृत्यु होके काया नाश होनेका भय होता है; और भक्ति, योग, ज्ञानादि सकल साधनायें करने

वालोंको दशों इन्द्रियाँ विचलित होके साधनोंसे गिरनेका भय होता है। इसवास्ते दृढ़ वैराग्य बिना रागी-प्राणी सब तरफ बेहाल, संकटग्रस्त ही होते रहते हैं॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीका :—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं :— अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये सम्पूर्ण पञ्चविषयोंको यथेष्ठ भोग करनेवालोंको संयम-नियमका उल्लंघन होनेसे शरीरमें नाना-विकार पैदा होकर नाना तरहके कठिन रोग उत्पन्न होनेका भय लगा रहता है। क्योंकि, रोगोंका मूल-बीज ही भोग है। गरीष्ट पदार्थ, चटपटे, स्वादिष्ट वस्तु नित्य-प्रति ज्यादा खानेवालोंको अजीर्ण, अग्निमन्द, पेचिस, शूल, संग्रहणी, इत्यादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। और अति मैथुन, वेश्या-गमन आदि कुकर्म करनेवालोंको प्रमेह, सुजाक, नपुंसकत्त्व, निर्बलता, क्षयरोग, ऐसे रोग आदि हो जाते हैं। फिर ज्यादा नाच-तमाशा आदि देखनेवालोंके नेत्र खराब हो जाते हैं। ज्यादा जागते हुए विशेष गाने-बजाने, सुननेवालोंको शिरदर्द, बेचैनी आदि होती हैं। ज्यादा सुगन्ध सूँघते रहनेवालोंकी घ्राणशक्ति मारी जाती है। इस प्रकारसे सकल भोगोंका फल रोग ही उत्पन्न होते हैं। रोगी मनुष्य दुःख और मृत्युसे डरा करता है, और देहधारियोंको आयु क्षय होकर काल, मृत्यु हो जानेका भय लगा रहता है। काया कभी नाश न हो, सब यहा चाहते हैं, परन्तु वह इच्छा किसीकी भी पूर्ण नहीं होती है। कहा है :—

छन्दः—"ते दिन चारि विराम लियो शठ, तोर कहे कछु ह्वै गई तेरी॥
जैसे ही बाप ददा गये छाँड़ि सु, तैसेहि तू तजि है पल फेरी॥
मारहि काल चपेट अचानक, होइ घरीकमें राख कि ढेरी॥
सुन्दर ले न चलै कछु ये सङ्ग, भूलि कहै नर मेरेहि मेरी॥
देह सनेह न छाँड़त है नर, जानत है थिर है यह देहा॥
छीजत जात घटै दिन ही दिन, दीसत है घटको नित छेहा॥
काल अचानक आइ गहे कर, ढाइ गिराइ करै तनु खेहा"॥ सुन्दर वि०॥

कायाको आयु घटनेका कालरूप मृत्यु आनेकी चिन्ता, घबराहट, भय, सब मनुष्योंको लगा ही रहता है। परन्तु विषयाशक्ति त्यागकर वैराग्य लेकर निर्भय कोई नहीं होते, इसीसे भयभीत रहते हैं ॥ तहाँ कहा भी है :—

श्लोकः—भोगे रोग भयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं ॥
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जरायाः भयम् ॥
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं ॥
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

छप्पयः—बहुत भोगको सङ्ग, तहाँ इन रोगनको डर ॥
धनहूँको डर भूप, अग्नि अरु त्योंही तस्कर ॥
सेवामें भय स्वामि, समरमें शत्रुनको भय ॥
कुलहूमें भय नारि, देहको काल करत क्षय ॥
अभिमान डरत अपमानसों, गुन डरपत सुन खल शबद ॥ (भर्तृहरि कृत-
सब गिरत परत भयसों भरे, अभय एक वैराग्य पद ॥ वैराग्य शतक ॥)

अर्थः—विषयोंको भोगनेमें रोगोंके होनेका डर रहता है, उत्तम कुलीनजनोंको किसी दोषके कारण पतन होनेका भय होता है, अधिक धन होनेमें राजाका, अथवा चोर आदिका भय होता है, चुप रहनेवाले मौनीको दीनताको भय आता है, बलवान्को शत्रुओंका भय है, युवा अवस्थामें सौन्दर्यरूपवालोंको बुढ़ापेका भय है, और शास्त्रोंमें विपक्षियोंसे वाद-विवाद होनेका भय है, सद्गुणवान्को दुर्जनोंका भय है, शरीरधारियोंको मृत्युका भय है, इस प्रकार संसारमें सम्पूर्ण वस्तुमें भय-ही-भय भरा है, कोई भी कहीं भयसे खाली नहीं है। केवल एकमात्र वैराग्यपद ही निर्भय स्वच्छन्दका है। इसीसे वैराग्यमें किसी तरहका भय नहीं, अतएव वैराग्यरूप अभयपदको ही ग्रहण करना चाहिये ॥

इस तरह विचार करके देखिये ! तो जहाँ-जहाँ जीवोंकी मानन्दी लगी रहती है, वहाँ-वहा एक-न-एक भय लगा ही रहता है। रागके

घेरामें रहके कोई भी निर्भय नहीं हुआ, और होगा भी नहीं। भयका मूल कारण ही राग है। सम्पूर्ण रागसे रहित होके जो दृढ़ वैराग्यवान् हो जाते हैं, सोई निर्भय हो सकते हैं, और वैसे भये भी हैं। नहीं तो संसारमें सकल भोगोंमें रोग होनेका भय लगा ही है। कायाको काल पायके नाश होनेका भय लगा है। और यम, नियमादि अष्टांग योग साधना, नवधा भक्ति साधना, ज्ञान चतुष्टयकी साधना, इत्यादि सकल परमार्थ साधना करनेवाले साधक लोगोंको मन सहित दशों इन्द्रियोंकी चञ्चलतासे साधन-भ्रष्ट होनेका डर लगा रहता है। तहाँ भगवद्गीतामें कहा है :—

श्लोकः— यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ॥
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ भ० गीता, अ० २। ६० ॥

— हे अर्जुन! जिससे कि— यत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुषके भी मनको यह प्रमथन स्वभाववाली इन्द्रियाँ बलात्कारसे हर लेती हैं ॥ ६० ॥

श्लोकः— तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ॥
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ गीता, अध्याय २। ६१ ॥

—इसलिये मनुष्यको चाहिये कि— उन सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके समाहितचित्त हुआ, मेरे परायण स्थित होवे, क्योंकि जिस पुरुषके इन्द्रियाँ वशमें होती हैं, उसकी ही बुद्धि स्थिर होती है ॥६१॥

श्लोकः— इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ॥
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ गीता, अध्याय २ । ६७ ॥

—क्योंकि जलमें वायु नावको जैसे हर लेता है, वैसे ही विषयोंमें विचरती हुई इन्द्रियोंके बीचमें जिस इन्द्रियके साथ मन रहता है, वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुषकी बुद्धिको हरण कर लेती है ॥

श्लोकः— इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ॥
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ गीता, अध्याय ३।४० ॥

— इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इसके वासस्थान कहे जाते हैं, और

यह काम इन मन, बुद्धि और इन्द्रियोंद्वारा ही, ज्ञानको आच्छादित करके इस जीवात्माको मोहित करता है ॥ ४० ॥

श्लोकः— अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ॥
प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् ॥
मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ॥
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥मनु०अ० २।२१४।२१५

— मैं विद्वान् हूँ, जितेन्द्रिय हूँ, ऐसा समझके स्त्रियोंके समीप बैठना नहीं चाहिये। देहके धर्मसे काम, क्रोधके वशीभूत पुरुष विद्वान् हो, अथवा मूर्ख हो, उसको स्त्रियाँ कुमार्गमें ले जानेको समर्थ हैं ॥ युवती माता, बहिनी, और पुत्री, अथवा अन्य स्त्री इनके साथ भी एकान्त स्थानमें नहीं बैठे। क्योंकि इन्द्रियोंका समूह बलवान् हैं, इसीसे शास्त्रकी रीतिसे चलनेवाले विद्वान् पुरुषको भी अपने वशमें करके विषयोंके तरफ खैंच लेती है ॥

इस कारण सारे साधकोंको विषयोंमें इन्द्रियाँ चलायमान होनेका डर लगा रहता है। क्योंकि, न जीती हुई इन्द्रियोंके कुकर्मद्वारा ही सब साधना बर्बाद हो जाते हैं। इसलिये सब साधक-बेहाल परम-दुःखी हो जाते हैं। फिर इन्द्रिय निग्रह करनेके लिये उपवास, अल्पाहार, पत्र, पुष्प, जलाहार करके इत्यादि प्रकारसे शक्ति घटाते हैं, शरीरको दुर्बल करते हैं, सदा जंगलमें रहते हैं। परन्तु समय आनेपर वे भी चूक जाते हैं। इसीसे जड़ाध्यासी पारखहीन मनुष्य चौरासी योनिके चक्रमें पड़के बेहाल रहते हैं। अतएव भोगाशक्ति देहका मोह, काम, क्रोधादि विकारोंको त्यागकर शुद्ध विवेक, वैराग्यादि सद्गुणोंको धारण करके वर्तना चाहिये ॥ १६ ॥

दोहाः—तरुणिको भय तरुणता। योगिनको भय नारि ॥
स्वर्गिनको भय अवधिको। हृदये देखु विचारि ॥ १७ ॥

संक्षेपार्थः—तैसे ही तरुणी वा युवती स्त्रियोंको उनके यौवन

अवस्था ही भय देनेवाली होती है। तथा योगियोंको स्त्रियोंके तरफसे कहीं योग साधनोंमें विघ्न पड़ न जाय, यह भय होता है, यानी स्त्रियोंसे योगी लोग डरते रहते हैं। और स्वर्गवासियोंको उनके अवधि पूरा होनेका भय लगा रहता है, ऐसा माने हैं। तहा हृदयमें विचार करके देखो, दृढ़ वैराग्यके बिना कहीं कोई भी रागमें लगके सुखी दिखाई नहीं देते हैं॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात् और तरुणी स्त्रीको उसकी चढ़ती हुई जवानीरूप-तरुणता ही भय देनेवाली या भय उपस्थित करनेवाली कारण हो जाती है। युवा अवस्थाको देख-कर बहुतेरे कामी पुरुष भोगकी इच्छासे युवतीको हर तरहसे फँसानेके ताकमें लगे रहते हैं। छल, बल, कपट, प्रपञ्चादिका जाल फैलाकर तरुणीको वशमें करके, फिर नाना प्रकारसे अत्याचार, पाप, कुकर्म करते हैं। बहुतोंका जीवन बर्बाद कर देते हैं। और भी अनेकों प्रकारका भय, युवती स्त्रियोंको लगा रहता है। उसमें मुख्य करके जवानी चली न जाय, इसके लिये सदा स्त्रियाँ डरा करती हैं। तरुणी सदा तरुणाईके मद, अभिमानमें मस्त रहती हैं। बूढ़ी होनेपर भी जवानीकी हङ्कार करती हैं। तहाँ बीजकमें कहा हैः—

बसन्तः—बुढ़िया हँसि बोलि मैं नितहिं बार। मोंसे तरुनि कहो कवनि नारि॥ १॥
(४) दाँत गये मोरे पान खात। केस गये मोरे गङ्गा नहात॥ २॥
नैन गये मोरे कजरा देत। बैंस गये पर पुरुष लेत॥ ३॥
जान पुरुषवा मोर अहार। अनजानेका करौं सिङ्गार॥ ४॥
कहहिं कबीर बुढ़िया आनन्द गाय। पूत-भतारहिं बैठि खाय॥ ५॥

"सोवत छाँड़ि चली पिय अपना। ई दुःख अबधौं कहै केहि सना॥"
॥ बीजक, रमैनी ७३॥

"सदा रहे सुख संयम अपने। बसुधा आदि कुमारी॥"
॥ बीजक, शब्द ८२॥

इस तरह तरुणीके लिये तरुणता ही भय उत्पन्न करनेवाली हो जाती है। उस अवस्थामें बहुत-सी निरंकुश स्त्रियाँ, स्वच्छन्द होके अनेकों पाप कर्म-कुकर्म कर बैठती हैं। स्वार्थके लिये सब कुछ कर लेती हैं। जवानी क्षय न होय, उसीके लिये डरती हैं, और किसीसे दबती भी नहीं॥

और योग साधना करनेवाले योगियोंको स्त्रियोंके तरफसे विघ्न होनेका भय लगा रहता है। क्योंकि कहा है :—

"बाल सङ्ग मति ना रहै, नारि सङ्ग तप भङ्ग॥"

योगी महादेव— भिलनी, और ब्राह्मणोंकी सुन्दर स्त्रियाँ और मोहिनी आदिकोंको देखके, कामासक्त होकर, योगभ्रष्ट हुए थे। सती-देवीकी विरहमें पागल हो गये थे। पार्वती तो साथ ही रहती रही। दूसरे मत्स्येन्द्रनाथ कमलापति रानीसे सिंहलद्वीपमें फँसके योगमार्ग-से पतित हुए थे। इसलिये योगी लोगोंको सदा स्त्रियोंसे भय लगा रहता है। क्योंकि शास्त्रोंमें लिखा है कि :—

जिताहारोऽथवा वृद्धो विरक्तो व्याधितोऽपि वा॥
यतिर्न गच्छेत्तं देशं यत्र स्यात्प्रतिमा स्त्रियः॥ अद्वैतामृतवर्षिणी॥

—यति, योगी या साधु, जिताहार हो, अथवा वृद्ध हो, या विरक्त हो, वा रोग करके पीड़ित हो, तब भी उस देशमें न जाय, जहाँपर स्त्री हो या स्त्रीकी प्रतिमा मूर्ति भी लिखी हुई हो॥ और भी कहा है:—

सम्भाषयेत्स्त्रियं नैव पूर्वदृष्टां च न स्मरेत्॥
कथां च वर्जयेत्तासां नो पश्येल्लिखितामपि॥

—यति, त्यागी साधुओंने, स्त्रीके साथ सम्भाषण = बोलचाल न करे, और पहलेकी देखी हुईका मनमें स्मरण भी न करे, और स्त्रियों-की कथाओंको भी न कहै, न सुनै, और लिखी हुई स्त्रीकी मूर्ति = फोटो, चित्र आदिको भी न देखै॥

यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा पुनः सेवेत्तु मैथुनम्॥
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥

—जो साधु वा योगी, संन्यासी होकर फिर भी स्त्रीके साथ मैथुनको करता है, वह साठ हजार वर्ष विष्ठामें कृमिकी योनिको प्राप्त होता है॥

विषयासक्त चित्तो हि यतिर्मोक्षं न विन्दति॥
यत्नेन विषयासक्तिं तस्माद्योगी विवर्जयेत्॥

—जिस यति=योगी या साधुका चित्त, विषयोंमें आसक्त रहता है, वह यतिरूप साधु मोक्षको कदापि प्राप्त नहीं होता है। इसलिये योगी, यतिको चाहिये कि, यत्न करके विषयासक्तिको चित्तसे हटावे॥

अथवा वाणीमें अर्थः—योगियोंको नारी=ऋद्धि, सिद्धि, आदिके तरफसे मन ललचानेका भय हो जाता है, जिससे योग-भ्रष्ट होके पतित हो जाते हैं। ऐसे नारीके तरफसे योगी भयभीत हो रहते हैं। तथापि कितनेक असावधानीसे चूक भी जाते हैं। बिरले ही बच पाते हैं।

"स्वर्गिनको भय अवधिको"—स्वर्गनिवासियोंको समय पूरा होनेपर च्युत होनेका डर लगा रहता है। भगवद्गीतामें कहा है:—

गीता, अध्याय ९ श्लोक २१॥

"ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं, क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति॥
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना, गतागतं कामकामा लभन्ते॥"

—वे उस विशाल स्वर्गलोकको भोग कर, पुण्य क्षीण होनेपर, मृत्यु-लोकको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्वर्गके साधनरूप तीनों वेदोंमें कहे हुए सकाम कर्मके शरण हुए और भोगोंकी कामनावाले पुरुष बारम्बार जाने-आनेको प्राप्त होते हैं, अर्थात् पुण्यके प्रभावसे स्वर्गमें जाते हैं, और पुण्य क्षीण होनेसे मृत्युलोकमें आते हैं। ऐसे आवागमनमें पड़ा करते हैं॥

और योगवाशिष्ठके कथाप्रारम्भमें स्वर्गके गुण-दोष निम्न प्रकारसे लिखा है:—

"देवदूत बोला—स्वर्गमें बड़े दिव्य भोग हैं, सो बड़े पुण्यके प्रतापसे जीव पाते हैं। उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ पुण्यके अनुसार वैसे ही सुख भोग पाते हैं, और दोष यह है कि—अपनेसे उच्च

श्रेष्ठ, सुख पानेवालोंको देखके, दूसरेके उत्कृष्टता सहन न होनेसे, ईर्षा करके सन्ताप उत्पन्न होता है, और अपने समान सुख भोगते हुए-को देखके, यह मेरे समान क्यों है? समझके डाहसे क्रोध उत्पन्न होता है, और अपनेसे नीचे दर्जेवालोंको देखके इनसे मैं उत्तम हूँ, ऐसा अभिमान हो जाता है। एक दोष और भी यह है कि, पुण्य-क्षीण होनेके उपरान्त तुरन्त ही वहाँसे उसे मृत्युलोकमें गिरा देते हैं, फिर एक क्षणभर भी वहाँ रहने नहीं देते ॥"

—यद्यपि स्वर्गादि लोक कहीं ऊपर मानना, मिथ्या कल्पना ही है। तो भी भ्रमिक लोगोंने उसे मान रखा है। इसलिये उनके शास्त्रों-के प्रमाणसे ही उसमें दोष दिखला दिया गया है। और यहाँपर जो सुख-दुःखोंका भोग पा रहे हैं, सोई पाप-पुण्यका प्रत्यक्ष फल है। शुभ संस्कारका फल सुख होता है, वही स्वर्ग माना गया है। कर्म-भोग समाप्त होते ही, सुख क्षीण हो जाता है, और प्रारब्ध क्षय होते ही मृत्यु होकर चौरासी योनिको जीव प्राप्त होते हैं।

इस तरह सर्वत्र विचार करके देखिये! सब ठिकाने एक-न-एक भय लगा ही हुआ है। हृदयमें विवेक दृष्टि खोलके देखो! कर्म-भोगोंकी अवधि = समय पूर्ण होनेपर मनुष्योंकी मृत्यु हो जाती है, फिर अध्यासवश जीव पशु आदि खानीको प्राप्त होते हैं। वहाँ कर्म भोगने-के सिवाय और कुछ हो नहीं सकता है। इससे अभी समय रहते ही चेत करना चाहिये ॥ १७ ॥

दोहाः—मन्त्रनको भय यन्त्रको । यन्त्रनको भय तन्त्र ॥
तन्त्रनको भय सिद्धको । ताते नाहिं स्वतन्त्र ॥ १८ ॥

संक्षेपार्थः— और मन्त्र प्रयोग करनेवालोंको, यन्त्रोंका भय होता है। तथा यन्त्रोंका प्रयोग करनेवालोंको, तन्त्रोंका भय होता है, और छल-कपटसे टोना आदि करके तन्त्रोंका प्रयोग करनेवालोंको, सिद्धों-का भय होता है। अतएव वे राग-द्वेषमें पड़े हुए लग, कोई भी स्वतन्त्र

सुखी नहीं हैं । सब दुःख-सन्तापमें ही पड़े हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात् मन्त्र जाप करनेवाले, मान्त्रिक-जापक कहलाते हैं। वे ब्रह्म-गायत्री आदि २४ गायत्रियोंका जप करते हैं। दीक्षा मन्त्र, सप्तबीज, महामन्त्र, और तैंतीस कोटि मन्त्रोंका जाप, नाना तरहके प्रयोग, अनुष्ठान आदिके द्वारा किया करते हैं, उससे इष्ट सिद्धि चाहते हैं। परन्तु उन मान्त्रिक लोगोंको यन्त्रका भय लगा रहता है। यन्त्र = मशीन, औजार और शरीरके आड़े पड़नेसे, विपरीत भाव होकर मन्त्र निष्फल हो जाता है, ऐसा मानके उससे भयभीत होते हैं। अथवा मन्त्र कहिये शुभ सलाह करके आपसमें मेल-मिलाप कर लेना, वहाँ मशीनगन, बम-गोला आदि यन्त्रोंका प्रयोग हुआ, तो शान्तिके लिये खतरा उत्पन्न हो जाता है। अतएव शान्तिके सलाहकार ऐसे विनाशकारी यन्त्रोंसे डरते रहते हैं, और तान्त्रिक लोगोंके छल-कपटसे यन्त्रचालकोंको भी भय लगा रहता है। जैसे विमान-वेधक तोप आदिसे उड़ते हुए विमानको भी बीच हीमें मारके गिरा देते हैं। अथवा तन्त्र शास्त्रोक्त कपट जालोंसे, यन्त्रोंको भी निकम्मा कर देते हैं। टोना, मोना टोटकासे विष आदि खिलाय, शरीरको हानि पहुँचा देते हैं। इसलिये ऐसे तन्त्रज्ञों-से यन्त्रवाले डरते रहते हैं, और तन्त्रादिकी कसर-खोट जाननेवाले सिद्ध उन तान्त्रिकोंको ठोकर देके औंधे मुँह गिराय देते हैं, उनके शक्तिको व्यर्थ कर देते हैं। तन्त्र विधिको ही चूर-चूर धूर करके रौंद देते हैं। इसलिये तान्त्रिकोंको, सिद्धोंका भय लगा रहता है। कहीं उन सिद्धोंसे मुकाबिला होके आफतमें पड़ना न पड़े, उसके लिये डरते रहते हैं। इसलिये सब ओर बलवान् व्यक्तिसे निर्बल लोग डरा करते हैं ॥

अज्ञानी लोगोंको तो मन्त्र जपनेवाले धमकायके डरवाते हैं। यन्त्र चालकसे वे भी डरते हैं, फिर तन्त्र-विशेषके कपट-घेरेसे यन्त्रवाले भी

डरते हैं और सिद्धसे तन्त्रवाले भी भय खाते हैं। इस कारण कोई भी कहीं स्वतन्त्र सुखी नहीं हैं। सब जगह एक-दूसरेके अधीन या परतन्त्र होकर सकल प्राणी भयके मारे दुःखी सन्तप्त हो रहे हैं। कोई बिरले ही वैराग्यवान् पारखी सन्त भ्रम-भूलके भयसे छूटकर निर्भय सुखी होके विचरते हैं ॥ १८ ॥

दोहाः—सिद्धनको भय माया। मायाको भय ज्ञान ॥
भयमान सकल संपति अहै। ताते त्यागहु जान ॥१६॥

संक्षेपार्थः— और सिद्धोंको भी मोहिनी-मायाके मोहमें फँसनेका भय होता है। और मायारूप अविद्याको ज्ञान प्रकाशसे विनाश होनेका भय होता है, अथवा गुरुवा लोग और स्त्रियाँ इन मायाको सत्यज्ञानसे भय हो जाता है। इस तरह संसारकी सकल संपत्ति भयमान, भयसे घिरा हुआ है। इसवास्ते उसे दुःखदाई जानके त्याग करो, और वैराग्यको धारण करो ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:— अर्थात् भक्ति, योग, ज्ञानके साधनाओंको सिद्ध किये हुये, सिद्ध कहलानेवाले लोगोंको भी, माया = काया, स्त्री, ऐश्वर्य, अज्ञानसे फिर घिर जानेका भय होता रहता है। जरा-सा गाफिल हुए कि— महामायाके महाजालोंमें फँसके दुर्दशाग्रस्त हो जाते हैं। इसलिंये सिद्ध लोग माया, मोहसे दूर रहनेका प्रयत्न करते हैं। साधक हो वा सिद्ध हो, मौका पाते ही माया उन्हें भवजालोंमें फँसा देती है। जिससे पीछे सब सिद्धाई उड़ जाती है। इस कारण मायाजालोंसे सिद्धजन भयभीय रहते हैं, और मायाके मुख्यरूप स्त्री, तथा गुरुवाओंको सत्यज्ञानसे भय लगा रहता है। क्योंकि सत्यज्ञान होनेपर मनुष्य उनके पाखण्डोंसे छूट जाते हैं। फिर मायाजाल नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। ज्ञानके प्रतापसे अज्ञान, अविद्या, कायाकी आसक्तिरूप, मायाकी आवरण भी निवृत्त

हो जाता है। इसलिये मायाको ज्ञानका भय रहता है, ऐसा कहा है। और शमको विषमका भय है, दमको उद्दण्डताका भय है, उपरतिको भोगासक्तिका भय है, तितिक्षाको ऐश-आरामका भय है, श्रद्धाको अश्रद्धाका भय है, समाधानको संशय, तर्क-वितर्कोंका भय है; तथा ज्ञानको अज्ञानका भय, लक्ष्मीको दरिद्रताका भय, यशको अपयशका भय, विद्याको अविद्याका भय, बलको क्षय रोगका भय, सर्वज्ञताको अल्पज्ञताका भय लगा रहता है। इस प्रकार संसारमें बाह्य धन, सम्पत्ति और आन्तरिक षट् सम्पत्ति, षट् गुण ऐश्वर्य इत्यादि सकल मानन्दीके पदार्थ जो हैं, सो भयमान या भय उत्पन्न करनेवाले हैं। अतएव गुरुनिर्णयसे ऐसा यथार्थ जान करके उन सबोंकी परीक्षा करके एकदम सब मानन्दोका परित्याग कर दो। वह सबके भय, भ्रम अध्यास ही जीवको चौरासी योनियोंमें ले जानेवाला है, ऐसा जानो, और सकल भयको त्यागके, निर्भय होकर, निजपदमें स्थिर हो रहो ॥ १९ ॥

दोहाः—सज्जनको भय दुर्जन। मित्रनको भय हान ॥
मिलनको भय बिछुरन। आवनको भय जान ॥२०॥

संक्षेपार्थः— तैसे ही सज्जनोंको दुर्जनोंके तरफसे बिगाड़ पैदा होनेका भय होता है। मित्रोंमें परस्पर प्रेम टूटके, मित्रता छूटकर हानि होनेका भय होता है। तथा मिलन वा मेल-मिलापमें बिछुड़न, बियोग होनेका भय होता है; और जन्म लेके आनेवालोंको कभी-न-कभी मृत्यु होके चले जानेका भय होता है। ऐसे सब जगह भय लगा है, सो जानो ॥

॥ ❋ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ❋ ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात् परोपकारी, धर्मात्मा, दयालु, हितचिन्तक, सद्गुणवान् ऐसे जो सज्जन होते हैं, उन्हें दुर्जन, दुष्टलोग नाना तरहसे, सताया करते हैं। झूठ-मूठका दोष

लगाके निन्दाकर उनको बदनाम भी कर दिया करते हैं। हर प्रकारसे कष्ट ही पहुँचाते हैं। इसलिये सज्जन पुरुष, दुर्जनोंके कुसङ्गतसे सदा डरते हुये दूर ही रहते हैं। दुष्टके सहवाससे बुद्धि भ्रष्ट हो जानेका डर रहता है। तहाँ कहा हैः—

चौपाईः— "दुष्ट सङ्ग जनि देहु विधाता। तासे भलो नर्कको बासा॥"

और भी कहा हैः—

चौपाईः—परहित हानि लाभ जिन्ह केरे। उजरे हरष विषाद बसेरे॥
जे पर दोष लखहिं सह साखी। परहित घृत जिनके मन माखी॥
पर अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं॥
॥ रामायण, बालकाण्ड ॥

दुष्टोंका स्वभाव कैसा होता है? इस बारेमें सुन्दर विलासमें कहा हैः—

छन्दः—अपने न दोष देखे, परके औगुण पेखे॥
दुष्टको स्वभाव उठि, निन्दाहि करतु है॥
जैसे कोइ महल, सँभारि राख्यो नीके करि॥
कीरी तहाँ जाय, छिद्र ढूँढ़त फिरतु है॥
भोर ही ते साँझ लग, साँझ ही ते भोर लग॥
सुन्दर कहत दिन, ऐसे ही भरतु है॥
पाँवके तरेकी नहीं, सूझे आग मूरखकूँ॥
औरकूँ कहत तेरे, सिरपै बरतु है॥ सुन्दर विलास॥

छन्दः—घात अनेक रहै उर अन्तर, दुष्ट कहै मुखसूँ अति मीठी॥
(सवैया) लोटत पोटत व्याघ्रहि ज्यूँ नित, ताकत है पुनि ताहिकि पीठी॥
ऊपरते छिरकै जल आन सु, हेठ लगावत जारि अँगीठी॥
यामहिं कूर कछू मति जानहु, सुन्दर आपुनि आँखिते दीठी॥
आपुन काज सँवारनके हित, औरको काज बिगारत जाई॥
आपनु कारज होउ न होउ, बुरो करि औरको डारत भाई!॥
आपहु खोवत औरहु खोवत, खोइ दुनों घर देत बहाई॥

सुन्दर देखत ही बनि आवत, दुष्ट करै नहिं कौन बुराई ॥
सर्प डसै सु नहीं कछु तालुक, बीछू लगै सु भलो करि मानौ ॥
सिंहहु खाय तु नाहिं कछू डर, जो गज मारत तौ नहिं हानौ ॥
आगि जरौ जल बूड़ि मरौ, गिरिजाइ गिरौ कछु भै मत आनौ ॥
सुन्दर और भले सबही यह, दुर्जन संग भलो जिन जानौ ॥ सु० वि० ॥

— इस प्रकार सज्जनोंको जगत्‌में दुर्जनोंके तरफसे बड़ा भारी भय उपस्थित होता है। इसलिये वे सदा सावधान रहते हैं। दुर्जनोंके घेरेसे बाहर ही रहते हैं ॥

और विशेष मित्रता होके, प्रेम बढ़नेसे, एक मित्र, दूसरे मित्रका लाभ सोचता रहता है । मित्रकी हानि होनेमें वह बड़ा भयभीत हो जाता है । किसी हितचिन्तकने कहा है :—

दोहाः—"जितनी चाह अचाहकी, होत अधिकता चित्त ॥
उतना दुःख सुख जानिये, तन मनको हे मित्त ॥"

मित्रोंको हानिका भय व्याकुल कर देता है । किसी प्रकारसे भी मित्रता न टूटे, दोस्ती बनी रहे, यह चाहते हैं। परन्तु स्वार्थके प्रेम तो कारण विशेषपायके नाश हो जाते हैं । विषय-सम्बन्धमें कई कारण उपस्थित होके मित्रतामें शत्रुता भी हो जाती है । निःस्वार्थ सच्चा प्रेम-में ही मैत्री-भाव टिका रह सकता है, अन्यथा नहीं ॥

और संसारमें माता-पिता, स्त्री, पुत्र-पुत्री, बन्धु-बान्धव, धन, घर, जागीर, राज-पाट, इत्यादि जो कुछ भी पदार्थ संयोगसे मिलते हैं, या उनसे मिलन हो जाता है, सो उसके लिये एक दिन बिछुड़न होने-का या वियोगका भय लगा ही रहता है । संसारके सकल पदार्थ परि-णामी-नाशवान् हैं, इससे कभी-न-कभी वे बिछुड़ ही जावेंगे । तैसे ही जो जन्म लेके देह धरकर आये हैं, उसे भोग पूरा होनेपर देह छोड़के मृत्यु होकर चले जानेका भय भी लगा ही रहता है ! क्योंकि, बना हुआ कार्य पदार्थ बिगड़ेगा, पैदा हुआ वस्तु नाश होगा, जन्मा हुआ प्राणी मरेगा, यह सिलसिला लगा ही हुआ है ।

तहाँ कहा भी है :—

श्लोकः—जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥
तस्मादपरिहार्येऽर्थेनत्वं शोचितुमर्हसि ॥ भ० गीता, अ० २ । २७॥

—जन्मनेवालेकी मृत्यु निश्चित है, और मरनेवालेका निश्चित जन्म होना सिद्ध है। इससे भी तू इस बिना उपायवाले विषयमें शोक करनेको योग्य नहीं है ॥

श्लोकः— नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ॥
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ भ० गीता, अ० २ । १६ ॥

—हे अर्जुन ! असत् वस्तुका तो अस्तित्व नहीं है और सत्का अभाव नहीं है, इस प्रकार इन दोनोंका ही तत्त्व ज्ञानी पुरुषोंद्वारा देखा गया है ॥

अतएव आवागमनका भय सभीको लगा हुआ है। इस तरह सज्जनको दुर्जनोंका भय, मित्रोंको हानिका भय, सम्मेलनको वियोगका भय, और आनेवालेको फिर चले जानेका भय, जन्मे हुयेको मृत्युका भय, इत्यादि प्रकारके भयोंमें अज्ञानीजन सदा पड़ा करते हैं। विवेकी सत्यज्ञानी उन सबको परख करके उससे न्यारे हो जाते हैं ॥ २० ॥

दोहाः—पण्डितको भय निन्दा। मूरखको भय मार ॥
रणमें भय अति शत्रुको। कुलमें भय अतिनार ॥ २१ ॥

संक्षेपार्थः— और पण्डितोंको जगत्में निन्दा होनेका भय, दुःखी किये रहता है। मूर्खोंको तो सिर्फ मार पड़नेका ही भय होता है। युद्ध-स्थलमें विशेष शत्रुओंके तरफसे हानि होके हार जानेका भय होता है। और कुलीन गृहस्थोंके घरमें ज्यादा स्त्रियोंके जमघट वा स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता, यह अति भय देनेवाली होती है, ऐसा जानना चाहिये ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं कि:— अर्थात् बुद्धिमान् मनुष्य, जिनकी बुद्धि अतितीव्र परिपुष्ट है, उनको, अथवा वेद शास्त्रादि पढ़े-लिखे हुए पण्डितजन या विद्वान् लोगोंको अपनी मान, प्रतिष्ठा, बड़ाई, इज्जत, अत्यन्त प्रिय होती है। इसीसे कोई हमारी झूठी निन्दा, उपहास करके अपमान न करदे, इसके लिये वे सदा भयभीत रहते हैं। यानी पण्डितोंको विशेष करके निन्दाका भय होता है। एक समय कृष्णको स्यमन्तकमणि छिपानेका झूठा दोष लगा था, उसके लिये वे बड़े व्यग्र भये, फिर बड़े प्रयत्नसे खोज-तलाश-कर जाम्बवान्से लड़करके, उसे जीतकर, फिर उसकेपाससे मणि लाकरके, उस कलंकको मिटाया, ऐसा वर्णन भया है। इस कारण पण्डितवर्ग झूठी निन्दासे डरा करते हैं, निन्दकको हर तरहसे मनानेका प्रयत्न भी करते हैं; और वज्रमूर्ख लोग अन्य किसी बातसे तो नहीं डरते हैं, किन्तु मारके सामनेमें वे भयभीत होकर थर-थर काँपने लग जाते हैं। मार पड़नेसे मूर्ख लोग भय खाते हैं, फिर मनमाने करनेसे रुक जाते हैं।

चौपाईः— "ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़नके अधिकारी ॥" रा० मा० ॥

— ऐसा रामायणमें कहा है ॥ और रणस्थल यानी युद्धके मोर्चेमें शत्रु राष्ट्रकी अत्यन्त सैन्यशक्ति तथा शत्रु-पक्षमें ज्यादे ही लड़ाके योद्धा वीरगण होनेसे, मित्रराष्ट्रोंको अत्यन्त भय, घबराहट हो जाती है। महाभारतके युद्धमें, चक्रव्यूहको तोड़कर अकेला अभिमन्यु कौरव सेनाओंके भीतर चला गया। अन्तमें सात महारथियोंने मिलकर उसे घेरकर एक साथ आक्रमण करके, उसे मार डाला, जिससे पाण्डव सेना भयभीत हो गई, ऐसा वर्णन है। और जङ्गमें ज्यादा शत्रुओंको देखके, कम ताकत वालोंको अतिभय हो जाता है। और ब्राह्मण, क्षत्रियादि उच्च-प्रतिष्ठित कुलोंमें ज्यादातर लड़कियाँ ही उत्पन्न भईं, घरमें पुरुष कम और स्त्रियाँ ज्यादा हुईं, एवं विशेष

सत्ता स्त्रियोंको मिली, तो उनसे अनाचार, पापाचार, व्यभिचार आदि दोष होनेसे कुलमें कलङ्क लगनेका भय हो जाता है। ज्यादा स्त्रियाँ होनेसे कुलमें बट्टा लगनेका भय बना रहता है ॥ २१ ॥

दोहाः—कर्म अकर्महि पुण्य अघ । इष्ट अनिष्टहि जान ॥
उपासना विक्षेप भय । ज्ञानको भय अज्ञान ॥२२॥

संक्षेपार्थः— और कर्मको अकर्मका, अर्थात् कर्मकाण्डियोंको कर्महीन वा कुकर्मी लोगोंके तरफसे कर्मलोप होनेका भय होता है। पुण्यवान् लोगोंको अघ = पाप करनेवालोंसे भय होता है। इष्टदेव माननेवालोंको अनिष्टोंके तरफसे भय होता है। उपासना करनेवालोंको विक्षेप = चित्तकी चञ्चलता होनेका भय होता है, और ज्ञानको अज्ञानका भय होता है; यानी ज्ञानियोंको उजड्ड अज्ञानी लोगोंके तरफसे झंझट होनेका भय होता है, ऐसा जानिये ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात् नित्य, नैमित्तिकादि विधिपूर्वक कर्म करनेवाले कर्मनिष्ठ ब्राह्मणादि द्विज जातिवाले होते हैं। यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन, दान-प्रतिग्रह, ये मुख्य षट्कर्म माने हैं। स्नान, सन्ध्या, तर्पण, पूजा, पाठ, होम, ये नित्य षट्कर्म कहा है। जप, तप, व्रत, उपवास, उत्सव, श्राद्ध, ये नैमित्तिक षट्कर्म माने हैं। इत्यादि प्रकारके कर्मकाण्डमें लगे हुए कर्मप्रिय मनुष्योंको अकर्म या कुकर्मका भय लगा रहता है। कहीं कर्म-भ्रष्ट न हो जायँ, कर्म करनेमें विघ्न न पड़े, उसके लिये डरते रहते हैं। कहा हैः— "यज्ञः कर्म समुद्भवः" ॥ भ० गीता ३ । १४ ॥

— यज्ञ कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला है ॥ और भी—

"कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥" भ० गीता ३ । १५ ॥

—तथा उस कर्मको तूँ वेदसे उत्पन्न हुआ जान। और वेद अविनाशी परमात्मासे उत्पन्न हुआ है ॥

श्लोकः— एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ॥
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ भ० गीता ३ । १६ ॥

—हे पार्थ! जो पुरुष इस लोकमें इस प्रकार चलाये हुये सृष्टिचक्रके अनुसार नहीं बर्तता है, अर्थात् शास्त्र अनुसार कर्मोंको नहीं करता है, वह इन्द्रियोंके सुखको भोगनेवाला, पाप आयु पुरुष व्यर्थ ही जीता है ॥

श्लोकः—तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ॥
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ भ० गीता ३ । १६ ॥

— इससे तूँ अनासक्त हुआ, निरन्तर कर्तव्य कर्मका अच्छी प्रकार आचरण कर, क्योंकि अनासक्त पुरुष, कर्म करता हुआ, परमात्माको प्राप्त होता है ॥

श्लोकः—कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ॥
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ भ० गीता ३ । २० ॥

—इस प्रकार जनकादि ज्ञानीजन भी, आसक्तिरहित कर्मद्वारा ही परमसिद्धिको प्राप्त हुये हैं, इसलिये तथा लोक संग्रहको देखता हुआ भी, तूँ कर्म करनेको ही योग्य है॥

श्लोकः— यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ॥
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ भ० गीता ३ । २१ ॥

—क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी उस-उसके ही अनुसार बर्तते हैं, वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है, लोग भी उसके अनुसार बर्तते हैं ॥

इस प्रकार कर्मप्रतिपादक वाक्योंको पढ़-सुनकर, कर्मी लोग अकर्मसे बहुत डरते रहते हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक, विप्रमतीसीमें कहा है:—

"कर्म पढ़ैं औ कर्मको धावै। जेहि पूछा तेहि कर्म दृढ़ावै ॥ १२ ॥
निष्कर्मीकी निन्दा कीजै। कर्म करैं ताहीं चित दीजै ॥ १३ ॥

जेहि सिरजा तेहि ना पहिचाने । कर्म धर्म मति बैठि बखाने ॥" ३ ॥बी० विप्र०॥
"कर्मत कर्म करे करतूतों । वेद-कितेब भये सब रीता" ॥ बी० र० ३६ ॥

—कर्मकाण्डियोंको अकर्म और कुकर्मी वा निष्कर्मियोंसे भय लगा रहता है। और पुण्यात्मा धार्मिक लोगोंको, अघ = पापसे बड़ा भय लग जाता है। जान-बूझके कभी कोई पाप-कर्म अपनेसे न हो, उसके लिये डरते रहते हैं। उन्हें धर्म-भीरु कहा जाता है। अधर्म, अकर्म, पापसे पुण्य करनेवाले सहज ही डरा करते हैं। परन्तु हङ्कार करना ही बड़ा पाप है और झूठ बोलना यह भी महान पाप है, सो सब नहीं जानते हैं। तहाँ सद्गुरुने बीजकमें कहा हैः—

"बड़ सो पापी आहि गुमानी। पाखण्डरूप छलेउ नर जानी" ॥ बीजक, र० १४॥
साखीः—"साँच बराबर तप नहीं। झूठ बराबर पाप ॥" बीजक, साखी ३३४ ॥

अतः पापाचारसे पुण्यवान्‌को डर होता है, इसलिये वे पापियोंके सङ्गसे दूर रहते हैं ॥

तैसे ही इष्टको अनिष्टका भय होता है, ऐसा जानो। अर्थात् इष्टसिद्धि, मनोकामना पूर्ण करनेकी इच्छावालोंको, उसके बीचमें साधनोंमें विघ्न हो जानेका और उलटा फल मिलनेका, लाभके बदले हानि होनेका, सुखके विपरीत दुःख होनेका, इत्यादि अनिष्टद्वारा भय उत्पन्न होके व्याकुल कर देता है। जानकार लोगों-को अनजान लोगोंके सतानेसे भय होता है ॥ और उपासना करने-वालोंको विक्षेप = चित्तकी चञ्चलता होनेका डर लगा रहता है। उपासनाके बारेमें कहा हैः—

"उपसाविधयः स्तत्र चत्वारः परिकीर्तितः ॥
सम्पदारोपसंवर्गाध्यासा इति मनीषिभिः ॥" शिवगीता अ० १२ । श्लोक १० ॥

—उपासनाके, मुख्य चार प्रकार कहे हैं। अनन्तगुणविशिष्ट-मूर्ति मानके ध्यान करना, वह "सम्पत उपासना" कहलाता है। एक अङ्गमें आरोप करके ध्यान करना, वह 'आरोप उपासना' कहाती है। ॐकारकी ऐसी ही उपासना करते हैं। मूर्तियोंको विष्णुरूप तथा

लिङ्गोंको शिवरूप मानना, वह 'अध्यास उपासना' कहा है। और कर्मयोगसे अनेक देवताओंकी उपासना करना, वह 'सम्बर्त्त उपासना' कहाती है ॥

इसके अतिरिक्त चैतन्य गुरुमूर्तिकी उपासना ध्यान आदि विधिसे नाना प्रकारसे भक्त लोग अपने-अपने इष्ट देवताओंके भिन्न-भिन्न प्रकारसे उपासना करते हैं। सो मनकी एकाग्रता होनेपर ही उपासना ठीक-ठीक होती है। मनकी चञ्चलतासे उपासनामें विघ्न पड़ जाता है। इसलिये उपासकोंको विक्षेपरूप चञ्चलताका भय लगा रहता है ॥ और ज्ञानवान् पुरुषोंको अज्ञानका भय होता है। अर्थात् अज्ञानी मूढ, हठी पुरुषोंसे, ज्ञानीजन भी डरते रहते हैं। परन्तु शास्त्रोंमें तो ज्ञानसे ही अज्ञानका नाश बताया है ॥ तहाँ कहा हैः—

"अज्ञानात्प्रभवं सर्वं ज्ञानेन प्रविलीयते ॥"

—सर्वजगत् अज्ञानसे उत्पन्न हुआ है, और ज्ञानके प्रकाशसे अज्ञानके सङ्कल्पका नाश होता है ॥ किन्तु पक्षपाती मूर्ख अज्ञानीजनोंके संसर्गसे डरते हुए, ज्ञानी विचारवान् सदा दूर ही रहते हैं। इस तरहसे कर्ममें अकर्मका भय, पुण्यमें पापका भय, इष्टमें अनिष्टका भय, उपासनामें विक्षेपका भय और ज्ञानमें अज्ञानका भय, लगा रहता है। बिना पारख निर्भयता कहीं भी नहीं रहता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २२ ॥

दोहाः— चतुरनको भय मूरख । सत्यवादिन पाखण्ड ॥
दुःखरूप सकल सुख जगतको । तैसहि सुख ब्रह्मण्ड ॥ २३ ॥

संक्षेपार्थः— और हे सन्तो ! चतुर पुरुषोंको भी मूर्खोंके तरफसे हानि होनेका भय होता है, तथा सत्यवादियोंको पाखण्डी लोग धूर्तोंके तरफसे, कपट-जालोंमें फँसानेका भय होता है। तहाँ जगत् भरके समस्त विषयोंका सुख, वास्तवमें दुःखरूप वा दुःखदायी ही हैं, और तैसे ही ब्रह्माण्डके माने हुए सब सुख भी वाणीके कल्पनामात्र

होनेसे, दुःखोंके कारण जड़ाध्यासको बढ़ानेवाले हैं। ऐसे प्रवृत्तिके सब कार्य भयदाई दुःखोंके मूल ही हैं। अतः इन्हें त्यागकर निवृत्ति-मार्गमें दृढ़ वैराग्य संयुक्त रहना चाहिये ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—अर्थात् उसी प्रकार चतुर चालाक समझदार मनुष्यको अगर मूर्खोंसे पाला पड़े, तो बड़ी फजीहती उठानी पड़ती है। इसीसे वे मूर्ख लोगोंसे डरते रहते हैं। क्योंकि मूर्ख लोग झंझटिया होते हैं। उनके भी दो भेद हैं—एक तो पठित मूर्ख, और दूसरा अपठित मूर्ख कहलाते हैं। यह दोनों ही दुराग्रही होते हैं। उन्हें कोई समझा नहीं सकते हैं। इस बारेमें नीति शतकमें कहा हैः—

"अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतर माराध्यते विशेषज्ञः ॥
ज्ञानलव दुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति ॥" नीति श० ३ ॥

—बिलकुल ही न जाननेवाला, अज्ञानीको समझाना सहज है, और समझदार ज्ञानीको समझाना तो और भी सहज है। परन्तु थोड़े अधूरे ज्ञानसे अपनेको पण्डित समझनेवाले मूर्ख मनुष्यको, ब्रह्मा भी सन्तुष्ट नहीं कर सकते ॥ नीति० ३ ॥

श्लोकः— "शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो ॥
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्द्भौ ॥
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं ॥
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ॥" नीति श० ॥

— जलसे अग्निको बुझा सकते हैं, छातेसे धूपको रोक सकते हैं, तीखे अंकुशसे उन्मत्त हाथीको वशमें कर सकते हैं, दण्डेसे दुष्ट बैल और गदहेको काबूमें कर सकते हैं, नाना प्रकारकी औषधियोंसे रोगों-को मिटा सकते हैं, और मन्त्र प्रयोगादिसे विषको भी नष्ट कर सकते हैं, इस प्रकार शास्त्रोंमें सबकी औषधि कहा है। परन्तु मूर्खकी कोई औषधी लिखी नहीं है। इसलिये मूर्खके लिये कोई उपाय लगता

नहीं ॥ बीजकमें भी कहा है:—

साखी:— मूरखके सिखलावते । ज्ञान गाँठिका जाय ॥
कोइला होय न ऊजरा । जो सौमन साबुन लाय ॥ १६१ ॥
मूरखसों क्या बोलिये ? शठसों काह बसाय ? ॥
पाहनमें क्या मारिये ? जो चोखा तीर नशाय ! ॥ १७६ ॥
जैसी गोली गुमजकी । नीच परी ढहराय ॥
तैसा हृदया मूर्खका । शब्द नहीं ठहराय ॥ १७७ ॥

—इस कारणसे चतुर ज्ञानी पुरुषोंको भी मूर्खोंके तरफसे भय होता है। इसलिये चतुर लोग मूर्खोंके मुँह नहीं लगते हैं। और सत्य-वादी सच्चे पुरुषोंको झूठे मिथ्यावादी पाखण्डियोंके तरफसे उपाधि होनेका भय होता है । पाखण्डी किसको कहते हैं ? तहाँ कहा है:—

श्लोक:— "पालनाच्च त्रयी धर्म्मः पा शब्देन् निगद्यते ॥
तं खण्डयन्ति ते तस्मात् पाखण्डास्तेन हेतुना ॥"

— सत्पुरुषोंका कहा हुआ ज्ञान, वैराग्य और विवेक, ये तीन प्रकार-के सद्धर्म पालन करनेसे उसे 'पा' शब्दसे कहते हैं। उस सद्धर्मको जो खण्डन करते हैं, तिससे अर्थात् तिस कारणसे, उसे 'पाखण्ड' कहते हैं। यानी जो सत्यधर्मको खण्डन करे, सो पाखण्ड है, वैसे मनुष्य भी पाखण्डी कहलाते हैं ॥ ऐसे षट्दर्शनोंमें छयान्नवे पाखण्ड भये हैं। तहाँ कहा है:—

तिन्ह पुनि रचल खण्ड ब्रह्मण्डा । छौ दर्शन छानवे पाखण्डा ॥ बी० र० १
औ भूले षट दर्शन भाई ! पाखण्ड भेष रहा लपटाई ॥ बी० र० ३०
सुमृति वेद पढ़ें असरारा । पाखण्डरूप करें हङ्कारा ॥ बी० र० ३१
छौ दर्शन पाखण्ड छयान्नवे । ये कल काहु न जाना ॥ बी० श० २६

इस प्रकारके पाखण्डियोंसे सत्यवादीजन सदा शशङ्कित रहते हैं ! क्योंकि मिथ्यावादी लोग, सत्यवादियोंको हर तरहसे कष्ट पहुँ-चाते रहते हैं। इससे वे उनसे भय खाते हैं। दूरही रहते हैं ॥

और हे मुमुक्षुओ ! इस प्रकार विवेक दृष्टिसे देखो ! तो परोक्ष

पदार्थोंके सम्बन्धमें सर्वत्र भयका ही घेरा लगा हुआ है। फिर भला! कहो, संसारमें कहाँ सुख है? कहीं नहीं। अगर तुम भ्रमसे जगत्के पञ्चविषयोंमें सुख मानोगे, तो जगत्के सकल सुख, दुःखोंका ही घर है। पञ्चविषय, स्त्री, पुत्र, धन, घर, राज-काज, इत्यादिमें सुख माने हैं, परन्तु उनमें दुःखके सिवाय सुख तो कहीं दिखाई देता ही नहीं। दुःखको ही सुख मानना सोई महा अज्ञानता है। सांसारिक माने हुए सब सुख, दुखोंका ही रूप है! कहा है:—

श्लोकः—"बहुना किमिहोक्तेन स्त्रीसङ्गात्सर्व देहिनाम् ॥
प्रायेण जायते दुःखं स्त्री सङ्गं सन्त्यजेदतः ॥" मु० ॥

—इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय? स्त्री सङ्गसे सभी देहधारियोंको प्रायः दुःख ही उठाना पड़ता है। अतः स्त्री सङ्गका सर्वथा परित्याग करे॥

श्लोकः—"युवानः सूनवोऽप्येवं पित्रोः प्रायेण दुःखदाः ॥
तथापि तेषु नो प्रीतिं त्यजन्ति रागिणो जनाः ॥" मु० ॥

मु०—इस प्रकार युवक पुत्रगण भी प्रायः माता-पिताको दुःख देनेवाले ही हुआ करते हैं, तो भी रागी पुरुष उनमें प्रीति नहीं छोड़ते॥

श्लोकः—"ईहा धनस्य न सुखा लब्ध्वा चिन्ता च भूयसी ॥
लब्धनाशो यथामृत्युर्लब्धं भवति वा न वा ॥" महाभारत ॥

—धनके लिये जो चेष्टा होती है, वह सुखरूप नहीं होती। इसे पाकर बड़ी चिन्ता बढ़ जाती है। मिले हुए धनका नाश तो मानो मृत्यु ही है और धन प्राप्त होगा या नहीं—यह भी निश्चित नहीं है॥ और सुलभाने कहा है— हे जनक! इन कर्मों तथा राजाओंके दुःखोंको मैं सैकड़ों, अथवा सहस्रों प्रकारसे वर्णन करसकती हूँ॥ महाभारत॥

उसी प्रकार बाहर ब्रह्माण्डमें माने हुए समस्त सुख भी, तुच्छ दुःखरूप ही है। कहा है:—

अर्धश्लोकः—"आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ॥" भ० गीता ८। १६ ॥

—हे अर्जुन ! ब्रह्मलोकसे लेकर सब लोक पुनरावर्ती स्वभाववाले हैं, अर्थात् जिनको प्राप्त होकर पीछा संसारमें आना पड़े, ऐसे हैं ॥ और भी आत्मपुराणमें कहा है:—

श्लोकः— "उत्पद्यते सुखं याद्दग् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥
विष्ठाक्रिमेस्ताद्दगेव स्याद्योगादिन्द्रियार्थयोः ॥
विट् क्रिमेरपि सन्त्येव ह्यन्नंदाराः सुतास्तथा ॥
ब्रह्मणोऽपि विशेषःस्यादनयोः केन हेतुना ॥
जायते म्रियते ब्रह्मा विट् क्रिमिश्च तथैव हि ॥
सुख दुःखकरं तद्वत्सदेहत्वं समं द्वयोः ॥" आत्मपुराण ॥

—इन्द्रिय और उसके विषयका संयोग होनेपर जैसा सुख परमेष्ठी ब्रह्माको होता है, वैसा ही विष्ठाके कीड़ेको भी होता है ॥ विष्ठाके कीड़ेके भी अन्न, स्त्री, तथा पुत्र होते हैं और ब्रह्माके भी होते हैं, फिर इन दोनोंमें किसीकी विशेषता किस हेतुसे हो सकती है ॥

ब्रह्मा और विष्ठाका कीड़ा ये दोनों ही उत्पन्न होते और मरते हैं, उसी प्रकार इन दोनोंको सुख-दुःख देनेवाली सदेहता भी एक जैसी ही है ॥

श्लोकः—"तस्मादैहिक वद्धेयं स्वर्ग भोग सुखं बुधैः ॥
बहुना किमि होक्तेन सर्वाञ्छब्दादि कांस्त्यजेत् ॥" मु० ॥

—अतः बुद्धिमानोंको इस लोकके सुखके समान माना हुआ स्वर्गादि भोगोंका सुख भी त्याग देना चाहिये। यहाँ बहुत क्या कहा जाय ? शब्दादि सभी विषयोंको त्याग दे ॥

श्लोकः—"विषय वासनाकृष्टं चित्तं त्वनादिकालतः ॥
तासां ततः प्रहाणाय विषयाणां मुहुमुहुः ॥
दोषाश्चिन्त्याः प्रयत्नेन तावदेव मुमुक्षुणा ॥
यावन्न नाशमायान्ति ह्यर्थेष्वखिलवासनाः ॥" मु० ॥

— यह चित्त अनादिकालसे विषय-वासनाओंसे आकर्षित हो रहा है। अतः जबतक विषयोंकी सारी वासनाएँ नष्ट न हो जायँ,

तबतक मुमुक्षु पुरुषको उनका नाश करनेके लिये प्रयत्नपूर्वक बारम्बार विषयोंके दोषोंका चिन्तन करना चाहिये ॥

इस प्रकार जगत्के सकल सुख और तैसे ही ब्रह्माण्डके सम्पूर्ण कल्पित सुखोंको भी दुःखरूप जानके उस तरफसे चित्त हटाकर वैराग्य दृढ़ करना चाहिये ॥ २३ ॥

अब यहाँपर २४ से २८ तक पाँच दोहोंमें धर्मशास्त्रोंमें वर्णन किया हुआ वैराग्य मायामुखसे बतलाया है ॥

॥ * ॥ धर्मशास्त्र कथित वैराग्य वर्णन ॥ * ॥

दोहाः—बसवो भलो एकान्तको । छाड़ि सकलकी आश ॥
जित अविवेकी नर सकल । कोई न आवै पास ॥२४॥

संक्षेपार्थः—अहा ! वैराग्यवानो ! एकान्त स्थानमें ही निवृत्त होके रहना भला वा अच्छा है। इसलिये सकल जगत्की आशा बिलकुल छोड़के एकान्त जगहमें जाके अकेले रहो। जगह ऐसी होनी चाहिये कि— जहाँपर अविवेकी, संसारी पुरुष वा नारि आदि सकल लोग कोई भी आस-पासमें आने न पावैं। ऐसे दुर्गम स्थानमें जाके बसो, फिर तुम्हारे पासमें कोई लोग भी नहीं आवेंगे। जिससे निर्विघ्न निवृत्तिमार्गमें ही लगे रहोगे, ऐसा जानो ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं, शास्त्रोंमें लिखा हैः— अर्थात् सकल संसारकी आशा और आसक्तिको छोड़ करके एकान्त दुर्गम, स्थानमें जाके बैठना, वैराग्यवानोंके लिये भलाई है, हितकर है, और निवृत्तिमार्गके लिये सहायक होनेसे लाभप्रद है। जहाँपर अविवेकी, रागी, विषयी नर-नारियोंकी पहुँच न होनेसे या उन्हें उपयुक्त न होनेसे कोई भी पासमें उपाधि करनेको आने नहीं पाते हैं। सकल संसार प्रपञ्चके झंझटोंसे छुटकारा मिल जाता है। इसलिये अविवेकी संसारी मनुष्य कोई भी जहाँपर आस-पासमें भी आने न पावैं वा

आ न सकें, वैसे सूनशान वनखण्ड, पहाड़, गुफा, आदि एकान्त प्रदेशमें जाकर सकल विषयोंकी आशादि छोड़के निवृत्ति परायण होके बैठनेमें ही जीवनकी भलाई है । वैराग्यको बढ़ानेवाला एकान्त स्थान ही अच्छा है, ऐसे ही जगहमें हमेशा बैठना चाहिये । किसी-की भी आशा नहीं रखना चाहिये । जिधर विषयी नर आते-जाते हों, उधर रहना नहीं चाहिये । कोई भी अपने पासमें आने न पावें, वैसे ठिकाने निवास करना चाहिये ॥ २४ ॥

दोहाः—भल बसवो आरण्यको । शरद निशाको चन्द ॥
शीतल जल सरितानको । फल भक्षण स्वच्छन्द ॥२५॥

संक्षेपार्थः— हे विरक्त पुरुषो ! आरण्यमें रहनेमें ही तुम्हारे लिये भला है । अतः भलीभाँति अब तो जङ्गलमें जाके ही बसो । शरद्-कालीन रात्रिमें स्वच्छ चन्द्रमाका प्रकाश जहाँपर तुम्हें स्वयं दीपक-का काम देगा । जङ्गलमें खानेके लिये फल-फूल मिलते हैं, पीनेके लिये शीतल नदियोंका जल मिलता है । अतः फलोंको खाके नदियों-के शीतल जल पीके, जङ्गलमें रहकर, शरदनिशाकी चन्द्रमाको देखके, भले तुम सदा स्वच्छन्दतासे रहा करो, उसीसे तुम सदा सुखी रहोगे, सो जानो ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं, शास्त्रोंमें लिखा है:— अर्थात् वैराग्यवान्के लिये महावनमें रहना बहुत ही अच्छा है । क्योंकि आरण्य = एकान्त वन प्रान्तमें जन समूहोंकी उपाधि नहीं होती है । इसलिये बड़ा सुखदाई होता है, दिनमें तो सूर्यका प्रकाश रहता ही है और कार-कार्तिक महीनेवाली शरद-ऋतुमें रात्रिमें चन्द्रमाका स्वच्छ-शुभ्र-प्रकाश बना रहता है । फिर नदियाँ तथा झरनों आदि सरिताओंके शीतल जल पीनेको मिलता है । और वनके फल यथेष्ट खानेके लिये किसीका कोई रोक-टोक तो रहता ही नहीं,

स्वच्छन्द गतिसे स्वतन्त्रतापूर्वक जहाँ चाहे वहाँ जा सकते हैं, वन-फलको खायके शीतल स्वच्छ जलको पीके मस्त रह सकते हैं। ऐसे वैराग्यके सुखको कोई भाग्यवान ही पा-सकते हैं। सबके लिये यह प्राप्त नहीं होता है। भर्तृहरिने कहा हैः—

श्लोकः— "किं कन्दाः कन्दरेभ्यः प्रलयमुपगता निर्झरा वा गिरिभ्यः ॥
प्रध्वस्ता वा तरुभ्यः सरस फलभृतो वल्कलेभ्यश्च शाखाः ॥
वीक्ष्यन्ते यन्मुखानि प्रसभमुपगतप्रश्रयाणांखलानां ॥
दुःखोपात्ताल्पवित्तस्मयवशपवनानर्तितभ्रूलतानि ॥" वैराग्यशतक

—क्या पर्वतोंकी कन्दराओंसे उत्पन्न होनेवाले, कन्द-मूल तथा पर्वतोंके झरनोंके श्रेष्ठ जल नष्ट हो गये? क्या वल्कलवाले वृक्षोंकी मीठे फलोंसे लदी हुई शाखायें टूट गईं? जो इन दुष्टोंका मुँह ताकते हो, जिनकी भौंहरूपी लता बड़े कष्टसे पैदा किये हुये, थोड़ेसे धनके गर्वरूप वायुसे चञ्चल हो रही है। अर्थात् दुष्टोंका आश्रय छोड़कर, वनमें निवास करके कन्द, मूल, फल और जलसे जीवन निर्वाह करना चाहिये। तभी उपाधि छूट सकती है ॥

श्लोकः—"फलंस्वेच्छालभ्यं प्रतिवनमखेदं क्षितिरुहाम् ॥
पयः स्थानेस्थाने शिशिर मधुरंपुण्यसरिताम् ॥
मृदुस्पर्शा शैय्या सुललित लतापल्लवमयी ॥
सहन्ते सन्तापं तदपि धनिनां द्वारि कृपणा ॥" वैराग्यशतक ॥

—प्रत्येक वनमें वृक्षोंके सुन्दर फल इच्छानुसार बिना परिश्रम ही मिल जाते हैं। तथा पवित्र नदियोंका शीतल, मधुर जल भी सम्पूर्ण स्थानोंमें प्राप्त हो जाता है, और सुन्दर लताओंके पत्तोंकी कोमल शैय्या भी वनमें प्राप्त होती ही है। इसपर भी इन्द्रियारामी मूढ़ पुरुष धनियोंके द्वारपर दीन होकर अनेक सन्ताप सहते हैं ॥

इसलिये वैराग्यको धारण करनेवाले, हे लोगो! अरण्यमें भले निवास करो। वहाँ तुम्हें सब प्रकारका सुभीता मिलेगा। शरद निशाकी चन्द्रमाका प्रकाश देखते ही बनता है। जिससे मन प्रफु-

लित हो जाता है। स्वच्छन्दतापूर्वक जङ्गली फल खाकर सरिताओंकी शीतल जल पीके तृप्ति हो जाती है। इस तरह देहका प्रतिपालन होकर निर्विघ्न वैराग्यकी धारणा होती है। जिससे राग-मूलक सकल बन्धनोंकी निवृत्ति होकर मुक्तिपदकी भी प्राप्ति हो जाती है। अतएव सब प्रकारसे वैराग्यको ही दृढ़ करना चाहिये ॥ २५ ॥

दोहाः—दोष दृष्टि जबहीं भई । तब उपजो वैराग ॥
दृढ़ निर्वेद जाको भयो । सोई मुमुक्षु बड़ भाग ॥ २६ ॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! जब सुखमाने हुये सम्पूर्ण विषयोंमें सब तरफसे विचार करके दोष-ही-दोष दिखाई देती भई, ऐसी जब दोष-दृष्टि होती भई, तब उसके मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ । अथवा तब उसी प्रकार वैराग्य उत्पन्न होता है । फिर जिसको दृढ़तासे स्त्री आदि विषय भोगोंके तरफसे, निर्वेद = ग्लानि हुई, त्याग हुई वा ऐसे होती है, सोई मुमुक्षु बड़ा भाग्यवान् है। उसके सत्पुरुषार्थ सफल होते हैं ॥

❋॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥❋

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—शास्त्रोंमें लिखा हैः—अर्थात् विवेकद्वारा जगत्के समस्त पञ्च विषयादि सुखोंमें आदि, अन्त और मध्यमें दुःखही-दुःख भरा हुआ जाननेमें जब आ जाता है, तब उस तरफ सेमन हट जाता है। और उसे सब जड़ पदार्थोंमें दोष-ही-दोष दिखाई देते हैं । इस तरह जब समस्त भोगोंमें दोष-दृष्टि होती है, तब चित्तमें बड़ा वैराग्य उत्पन्न हो जाता है । उस प्रकार वैराग्य दृढ़ होकर जिसको, निर्वेद = बड़ी ग्लानि होनेसे सब उपाधियोंसे रहित हो उदासीनताका बर्ताव हो जाता है। देह और देह सम्बन्धी सब पदार्थ तुच्छ नाशवान् लखके मोह-आसक्ति छूट जाती है । जिसको ऐसे दृढ़ वैराग्यका टिकाव हो जाता है, सोई बड़ा भाग्यवान् मुमुक्षु है । वही अपना कल्याण कर सकता है। तहाँ कहा हैः—

श्लोकः— "अनित्यत्वादिदोषाणामालोचनं मुहुर्मुहुः ॥
भवेऽनुभूतियुक्तिभ्यां विवेकाभ्यसनं स्मृतम् ॥" मु० ॥

—इस संसारमें अनुभव औ युक्ति पूर्वक अनित्यत्व आदि दोषों-का पुनः पुनः विचार करना ही विवेकका अभ्यास कहलाता है ॥

श्लोकः— "वैराग्यस्ययतो हेतुर्विवेकाभ्यास उच्यते ॥
तस्मादुक्तप्रकारेण सकार्योऽर्थ जिहासुना ॥" मु० ॥

— क्योंकि यह विवेकाभ्यास ही वैराग्यका हेतु कहा जाता है। इसलिये जिसे लौकिक पदार्थोंको त्यागनेकी इच्छा हो, उसे उपर्युक्त प्रकारसे विवेकाभ्यास ही करना चाहिये ॥

श्लोकः—"विषं विषय वैषम्यं न विषं विषमुच्यते ॥
जन्मान्तरघ्ना विषया एक देह हरं विषम् ॥" योगवाशिष्ठ ॥

— विषयकी विषमता ही विष है! विष, विष नहीं है। क्योंकि विष तो एक ही शरीरको नष्ट करता है, किन्तु विषय तो जन्मान्तरके देहोंको भी नष्ट कर डालते हैं ॥ योगवाशिष्ठ ॥

श्लोकः— "भोग्येषु वीततृष्णत्वं वैराग्य मिति कथ्यते ॥
त्यक्तेषु तेष्वदैन्यंयत्तद्वैराग्यफलं विदुः ॥" मु० ॥

—भोग्य पदार्थमें तृष्णा न रहना, यही वैराग्य कहलाता है, और उनके त्याग दिये जानेपर जो दीनताका अभाव हो जाता है, वही त्यागका फल माना गया है ॥

— आदिमें भ्रमसे सुख सदृश भासते हुये भी परिणाममें सकल विषयादि भोगोंका सुख, दुख उत्पन्न करनेवाले दुःखरूप ही हैं। ऐसा यथार्थ विचार करके जब विषयोंमें दोष-दृष्टि हो जाती है, तब ही शुभ संस्कारी पुरुषोंके मनमें एकाएक वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। दोष-दृष्टि हुये बिना, कदापि किसीको वैराग्य हो नहीं सकता है। जहाँ कहीं भी जिस-किसीको वैराग्य हुआ है, सो दोष-दृष्टि करके ही हुआ है। विषयोंमें दोष देखनेके उपरान्त वैराग्यकी स्थितिके लिये, जिसको जन्मभर दृढ़तासे निर्वेद-उदासीनता या विरक्ति बनी रहती है, वही

मुक्तिके अधिकारी मुमुक्षु बड़ा भाग्यशाली है। वही सर्व श्रेष्ठ है। ऐसा जानना चाहिये ॥

श्रीकाशीसाहेबजीने—"निर्पक्षसत्यज्ञानदर्शन" ग्रन्थमें, वैराग्यका विस्तार जो लिखा है, आप लोगोंको सुगमतासे जानने, समझनेके लिये, वह भाग भी यहाँपर लिख देता हूँ, सो सुनिये !—

तत्त्वानुसन्धानके द्वितीय परिच्छेदमें कहा है--'पर' और 'अपर' ऐसे मुख्य दो प्रकारके वैराग्य कहा है। अपर वैराग्य चार प्रकारके हैं। कहा भी है:—

श्लोकः—"स विरागः पुराणेषु चतुर्धा सम्प्रकीर्तितः ॥
यतमान वशीकार व्यतिरेकादि भेदतः ॥" मु० ॥

—पुराणोंमें यतमान, वशीकार और व्यतिरेक आदिके भेदसे वह वैराग्य चार प्रकारका कहा गया है। उसमें चौथा भेद 'एकेन्द्रिय' नामक है।

१. संसारमें सार असारका विवेक करके वर्तमान भोगोंमें सन्तोषसे रहना, वह "यतमान वैराग्य" है।

२. राग-दोषोंमें कितने छूट गये और कितने शेष रहे हैं, ऐसे जानके, तिनके निवृत्तिका प्रयत्न करना, वह "व्यतिरेक वैराग्य" है।

३. मनमें विषयोंकी इच्छा अध्यासरूपसे रही है, उसके निरोधका उदासीन रहके प्रयत्न करना, वह "एकेन्द्रिय वैराग्य" कहाता है। और ४. यह लोक तथा कल्पित स्वर्गादि लोकोंके विषय सुखोंको नाशवान जानके विशेष उदासीन हो, तिनको त्यागनेकी इच्छासे प्रयत्न करना, सो "वशीकार वैराग्य" कहा है, ऐसा जानिये ॥

और योगसूत्र, समाधिपाद १५ में कहा है:—

"दृष्टानु श्रविकविषयवितृष्णा वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥" सूत्र १५ ॥

—वशीकार वैराग्य—यह मन्द, तीव्र और तीव्रतर, ऐसे तीन प्रकारके हैं। १. स्त्री, पुत्र, धनादि प्रिय पदार्थोंके वियोग हुये इस संसारको धिक्कार है, ऐसा जानके विषयोंको धीरे-धीरे त्यागनेकी

इच्छा होना, सो "मन्द वैराग्य" है । यही वैराग्य संसारी गृहस्थोंको हमेशा होता रहता है । दोष-दृष्टि हो, फिर विषयोंसे सम्यक् बुद्धि करना, सोमन्द वैराग्य कहलाता है । २. इस जन्ममें स्त्री, पुत्र, धनादि दुःख देनेवाले पदार्थ फिर मुझे प्राप्त नहीं होवें, ऐसी स्थिर बुद्धिसे तीन सर्वविषयोंको त्यागनेकी इच्छा होना, सो "तीव्र वैराग्य" है। और पुनरावृत्ति = पुनर्जन्म प्राप्ति करके युक्त ब्रह्मलोक पर्यन्तका सर्वसुख मुझे प्राप्त होवे. ऐसी इच्छासे मुनिवत् वनमें जाके दृढ़ वैराग्ययुक्त साधन करनेवालेका "तीव्रतर वैराग्य" कहा है । यह सब अपर वैराग्यका लक्षण है, ऐसा जानिये । अन्य ग्रन्थोंमें भी कहा है । योग दर्शनका सूत्र १५ साधन पादमें लिखा है:—

"परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥" सूत्र १५ ॥

— परिणाम दुःख, तापदुःख, संस्कारदुःख, तथा दुःखोंसे मिश्रित होने और गुण-वृत्तिविरोध होनेसे भी विवेकी पुरुषोंकी दृष्टिमें समस्त विषय सुख, दुःखरूप ही हैं (ऐसा दिखता है) ।

जो आरम्भमें सुखरूप प्रतीत होनेपर भी परिणाममें महान दुःखरूप हो, वह सुख परिणाम दुःखता कहलाता है । जैसे रोगीको कुपथ्य ! तद्वत्-विषय भोगको जानना चाहिये । और कहा भी है—

श्लोकः—"विषयेन्द्रिय संयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ॥
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥" भ० गीता १८ । ३८ ॥

— जो सुख, विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होता है, वह यद्यपि भोगकालमें अमृतके सदृश भासता है, परन्तु परिणाममें वह बल, वीर्य, बुद्धि, धन, उत्साह और सुगतिका नाशक होनेसे विषके सदृश है, इसलिये वह सुख राजस कहा गया है ।

ताप दुःखताः—स्त्री, पुत्र, धन, जन, घर, राज-काज, इत्यादि सभी पदार्थोंमें हर समय मन लगनेसे चिन्ता, सन्ताप बना रहता है । वे ताप जलाते रहते हैं । ईर्षा, द्वेषादिसे भी ताप हृदयमें जलन होती है । विषयोंकी प्राप्ति, उनके संरक्षण और नाशमें भी सदा जलन

बनी ही रहती है। कहा है:—

श्लोकः—"अर्थस्य साधने सिद्ध उत्कर्षे रक्षणे व्यये ॥
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमोनृणाम् ॥" भागवत ११।२३।१७ ॥

—धन कमानेमें कई तरहके सन्ताप, उपार्जन हो जानेपर उसकी रक्षामें सन्ताप, कहीं किसीमें डूब न जाय, इस चिन्तालयमें सदा ही जलना पड़ता है, नाश हो जाय तो जलन, खर्च हो जाय तो जलन, छोड़कर मरनेमें जलन, अर्थात् आदिसे अन्त तक, केवल सन्ताप ही रहता है। इसलिये इसको धिक्कार दिया गया है। यही हाल पुत्र, मान-बड़ाई आदिका है। सभीमें प्राप्तिकी इच्छासे लेकर वियोग तक सन्ताप बना रहता है। ऐसा कोई विषय सुख है ही नहीं, जो सन्ताप देनेवाला न हो।

संस्कार दुःखताः—आज स्वामी, सेवक, स्त्री, पुत्र, परिवार, धन, घर, मान-बड़ाई, आदि जो विषय प्राप्त हैं, उनके सम्बन्धका संस्कार हृदयमें छापा लग चुके हैं। इसलिये उनके समाप्त होनेपर संस्कारोंके कारण उन वस्तुओंका अभाव महान दुःखदाई होता है। गुणवृत्तियोंके विरोध-जन्य दुःखः—झूठ, छल, कपट, विश्वासघात, आदिसे मनके त्रिगुण और वृत्तिके विरोध होनेसे पैदा होनेवाला कष्टमय दुःख एक दूसरेकी विरोधी भावना संकल्प-विकल्पकेद्वारा होता रहता है।

और भयजनित वैराग्य, विचारजनित वैराग्य, साधनयुत वैराग्य, और ज्ञान-जनित वैराग्य, ऐसे अन्य चार भेद भी ग्रन्थकारों-ने माने हैं। और इसी ग्रन्थके दोहा ६।७ की टीकामें पररूप दृढ़ ज्ञान वैराग्यके बारेमें प्रथम ही कहा जा चुका है॥

इस प्रकार जब सकल विषयोंमें दोष दृष्टिका दर्शन होता है, तब मनुष्योंमें वैराग्य उदय होता है। जिससे विषयोंमें घृणा हो जाती है, जिसको विषयोंमें ग्लानि, उदासीनता, तथा अभाव होकर जीवन पर्यन्त वैराग्य ही दृढ़ हो रहता है, वही मुमुक्षु बड़भागी

सर्वश्रेष्ठ होते हैं। उनका ही नर-जन्म पाना सफल हुआ, ऐसा जानना चाहिये ॥ २६ ॥

दोहाः—अन्त दशा ले आदिमें। सोई साँच वैराग ॥
सो सुखिया तीहुँ लोकमें। जाको निश्चय त्याग ॥ २७ ॥

संक्षेपार्थः— और आदि = जगत्‌में, अन्त = ब्रह्मकी, दशा = शून्य स्थितिको, जो धारण कर लेते हैं, सोई सच्चा वैराग्य है, ऐसा कहा है। अथवा अभी प्रथमसे ही अन्तिमदशा = मृतकवत् निवृत्ति स्थितिको जो अपनेमें बनाय लेता है, सोई सच्चा वैराग्यवान् है, उसीका वैराग साँच है। और जिसको त्याग और वैराग्यमें अटल निश्चय है, सोई तीन लोकमें सबसे बढ़के सुखी होते हैं। अतः त्यागमें ही सुख है, यह निश्चय है ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—शास्त्रोंमें लिखा हैः—अर्थात् सोई सच्चा वैराग्य कहलाता है, अन्तमें होनेवाली दशाको अपने खुशीसे जोकि आदिमें ही धारण कर लेता है। यानी अन्तमें शरीर छूटते समय वा शरीर छूट जानेपर, संसारके कोई भी मायिक पदार्थ और माया, काया, बन्धु-बान्धव, किसीके साथ नहीं जाती, तब कोई काममें भी नहीं आती। अतएव इनके साथ सम्बन्ध, मोह पहले ही छोड़ देना अच्छा है। ऐसा समझके सबका त्यागकर उस तरफसे सर्वदा अभाववृत्ति या निवृत्ति प्रथमसे ही जिसने कर लिया, ऐसी दशा या स्थितिको जिसने कर लिया, सोई सच्चा वैराग्य है, ऐसा विवेकियोंने कहा है। इस प्रकार शुरूसे देह रहेतक अन्तिम दशा नैराश्य निवृत्तिको लेकर वर्तनेवाले वैराग्यवान् सन्त, सो तीनों लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ, सन्तुष्ट सुखी रहते हैं। जिसको दृढ़ निश्चयसे त्याग-वैराग्यमें ही शान्ति, सुख और मुक्तिका अनुभव हो गया है, सो ज्ञानी, योगी, भक्त और त्रिगुणी मनुष्यरूप यही तीन लोकमें

सबसे बढ़कर परम सुखी होते हैं। तीन लोक = अर्ध, उर्ध, मध्य-में जिसका कहीं कोई भी राग बाकी नहीं रहा, ऐसे त्यागी पुरुष निश्चयसे ही सुखी होते हैं। अतएव अन्तमें होनेवाली गतिको समझ-कर आदिमें ही वैराग्यको ग्रहण कर लेना चाहिये ॥ २७ ॥

दोहाः—कन्था अरु कौपीनहु । जाको मिलै न कोय ॥
वृत्ति इन्द्रहुते अधिक- । तृप्ति चलित नहिं होय ॥ २८ ॥

संक्षेपार्थः—जिनको कभी किसी समय देह निर्वाहके लिये कन्था और कौपीनके लिये भी कुछ कपड़ेके पुराने टुकड़ेमात्र भी न मिलै, नङ्ग-धड़ङ्ग ही रहना पड़ै, तो भी वे विरक्त पुरुष किसी बातकी पर्वाह नहीं करते हैं। और कोई वस्तु प्राप्तिकी इच्छा भी नहीं उठाते। कुछ न मिलनेपर भी उनकी वृत्ति कभी विचलित नहीं होती है। बल्कि इन्द्रसे भी अधिक सुखी, सन्तुष्ट, शान्त होते हैं। सदावृत्ति स्थिर किये रहते हैं। इसीसे विरक्त पुरुष सबसे बढ़ करके सुखी होते हैं ॥

॥ ※ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ※ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— शास्त्रोंमें कहा हैः— अर्थात् दृढ़ वैराग्यवानोंको देहादिमें ममता, आसक्ति तनिक भी नहीं रहती है। इसलिये वे किसी वस्तुकी कभी चाहना नहीं करते हैं। इससे जिनको कुछ भी न मिले, यहाँ तक कि पहिरनेके लिये कौपीन = लङ्गोटी बनाने लायक कपड़ेका टुकड़ा और ठण्डी मौसममें ओढ़नेके लिये कन्था = फटी-टूटी गुदड़ी, ये भी न मिले, तब भी उन्हें किसी बातकी पर्वाह नहीं होती है। उघाड़े-नंगे ही रहके, समय व्यतीत कर देते हैं। अर्थात् विशेष वैराग्यमें पहुँचनेपर कन्था और कौपीनकी भी अपेक्षा नहीं रह जाती है। किसी बातकी आवश्यकता उन्हें खटकती ही नहीं। जिन्हें कुछ भी नहीं मिले, तो उस स्थितिमें वे और भी परम सुखी रहते हैं। निवृत्ति परायण होनेसे, सब तरफसे उनकी वृत्ति हट जाती है। इसीसे इन्द्रसे भी बढ़ करके सुखी, अत्यधिक

तृप्त, सन्तुष्ट होते हैं। उनकी वृत्ति किसी प्रकार भी विषयोंमें विचलित या चलायमान होती नहीं या हो नहीं सकती है। क्योंकि ऐसा कोई कारण नहीं, कि— उनकी वृत्ति विचलित हो सके। उनके सन्मुख इन्द्रादिकोंके सुख तुच्छ है। देवी भागवतमें एक जगह कहा हैः—

श्लोकः— "इन्द्रोऽपि न सुखी तादृग्यादृग्भिक्षुस्तु निःस्पृहः ॥
कोऽन्यः स्यादिह संसारे त्रिलोकीविभवे सति ॥" देवी भा० ॥

—शुकदेव कहते हैं— जैसा निःस्पृह = चाहनासे रहित भिक्षुक, त्यागी सुखी है, वैसा इन्द्र भी सुखी नहीं है, त्रिलोकीके विभव = सम्पत्ति होनेपर, जब इन्द्र भी निःस्पृह भिक्षुके तुल्य सुखी नहीं है, तब दूसरा कौन हो सकता है ? किन्तु कोई भी नहीं हो सकता है ॥ और भीः—

श्लोकः— "यच्च काम सुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ॥
तृष्णाक्षय सुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥"—म० शान्ति पर्व ॥

—तृष्णाके विलीन होनेपर, जो सुख प्राप्त होता है, उसकी सोलहवीं कलाके बराबर भी इसलोकके लौकिक विषय सुख और पारलौकिक महान सुख भी नहीं है ॥

इस प्रकार कल्पित इन्द्रादिकोंके माना हुआ सुखसे भी अधिक सुखी, तृप्त, दृढ़ता, वैराग्यवानोंमें कहा है। जिनकी वृत्ति दुःख-सुखमें कभी विचलित नहीं होती है ॥ २८ ॥

अब यहाँ दो दोहामें गुरुमुख निर्णयसे ज्ञान वैराग्यका वर्णन करते हैं, सो सुनिये !—

॥ * ॥ यथार्थ सत्यनिर्णय ग्राह्य गुरुमुख वैराग्य वर्णन ॥ * ॥

दोहाः—अनइच्छा सो मिलत है। भोजन वस्त्र विहार ॥
सोई लेत है सुखित होय। राखत कछु न अधार ॥ २९ ॥

संक्षेपार्थः—हे सन्तो ! सच्चे वैराग्यवान् पुरुष अपने देह

गुजाराके लिये सो उन्हें भोजन, वस्त्र आदि पदार्थ और रहनेकी जगह अनइच्छासे जो समय संयोगसे मिलता है, सोई विचारपूर्वक ग्रहण कर लेते हैं, आशा-तृष्णा बढ़ानेवाला कुछ भी आधार वा आश्रय वे नहीं रखते हैं। इस तरह निराश-वर्तमानमें सदा सुखी होयके विवेकपूर्वक विहार करते हैं। विहार=कुटी वा निरुपाधि स्थानको भी कहते हैं। अनुकूल होनेपर कहीं कुटी आदिमें रहते भी हैं, और प्रतिकूल होनेपर विचरते रहते हैं॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात् मुझे ये वस्तु चाहिये, ऐसी इच्छा किये बिना ही, अनइच्छासे प्रारब्ध वेगसे जो कुछ भी वर्तमानमें मिल जाय, वा मिलता हैः— अन्न, वस्त्र, आहार, विहार, यानी खानेके लिये शुद्ध भोजन, रूखा-सूखा, फल, फूल, साग, भाजी, लोना, अलोना, इत्यादि समय पर जैसा मिल जाय, उसे ही पाके, जल पीकर सन्तुष्ट रहना। और देहरक्षण, शीतोष्ण निवारणके लिये वस्त्र, मोटा-झोटा, छोटा-बड़ा, कम्बल, टाट, साधारण कपड़ा, जैसा प्राप्त हो, उसीसे वर्तमानमें गुजारा कर लेना, और समयानुसार जो कुछ पदार्थ मिले, उसमें देह गुजारा माफिक ग्रहण करके बरते, एकान्त प्रदेशमें रहे, वा विचरण करे; अथवा विहार कहिये, कुटी, मठमें कहींपर बैठके विचार करे। इस प्रकार वैराग्यको बढ़ावे कहा हैः—

श्लोकः— "शरीरस्थितिमात्रं नुनैव सिद्ध्येद्वियैर्विना ॥
तानन्नादींस्तु गृह्णीयाच्छुकेनेति समीरितम् ॥" मु० ॥

— शुकदेवजीने भी यही कहा है कि— जिसके बिना मनुष्यके शरीरकी स्थितिमात्र भी न हो सके, उन अन्नादिको ही ग्रहण करना चाहिये॥

इस तरहसे प्रारब्ध वेगद्वारा अनइच्छासे भोजन-वस्त्रादि जो मिलते हैं, सोई विचारपूर्वक लेके सुखी होकर विचरे। कहीं कुछ

भी आधार वा आश्रय, मोह, ममता न रखे, यही वैराग्यका लक्षण है। विवेकी त्यागी सन्तोंके बर्ताव उसी तरह होते हैं। अर्थात् वे बिना चाहना किये ही समय संयोगसे भोजन, वस्त्र और देह व्यवहारके लिये आवश्यकीय वस्तु जो कुछ भी सज्जनोंसे मिल जाता है, सो उसे ही विवेकपूर्वक काम लगे उतनामात्र ही लेकर प्रसन्न सुखित होते हैं। और अपने लिये कहीं किसीका आधार भी नहीं रखते हैं। निराधार, निराश वर्तमानमें बर्तते हैं। इसी प्रकार वे जीवन बिताते हैं। ऐसे कोई बिरले ही पारखी सन्त वैराग्यमूर्ति होते हैं ॥२९॥

दोहाः—सज्जनते जाँचै नहीं। दुर्जन ढिग नहिं जाय ॥
प्रारब्ध वर्तमान जो। बरतै सो बरताय ॥ ३० ॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो! जो सज्जन मनुष्य हैं, उनसे कुछ भी वस्तु माँगो नहीं। बिना माँगे भी वे तुम्हारे आवश्यकताको पूरा कर ही देंगे, और जो दुर्जन लोग हैं, उनके तो नजदीकमें भी जाना ही नहीं। वर्तमानमें प्रारब्ध बेगके अनुसार, जैसा कुछ समय बर्तता है, सो तैसा ही प्रसन्न होके समय निकालकर बरताना चाहिये ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात् वैराग्यके साधना करनेवाले, हे मनुष्यो! सुनो! पक्की तरहसे त्याग-वैराग्य बनानेके लिये रहनी भी वैसे ही लेना चाहिये। पहले तो सहनशील सन्तोषी होना चाहिये। फिर देह गुजाराके लिये भी चिन्ता करना नहीं चाहिये। और कोई सज्जन पुरुष हैं, धर्मात्मा हैं, दानी हैं, तो उनके पास जाके कोई वस्तु माँगना नहीं चाहिये। वहाँ तुम्हें माँगनेका काम ही नहीं पड़ेगा। क्योंकि वे सज्जन स्वयं ही भोजनादिके व्यवस्था कर देते हैं। वे श्रद्धालु होनेसे, सन्तोंके जाँच पड़ताल भी करते नहीं फिरते हैं। यदि सज्जनोंने कारणवश नहीं पूछे, तो भी अपने तरफसे उनसे कुछ याचना करनेका कोई काम नहीं है।

क्योंकि तहाँ कहा है:—

दोहा:—"अनमाँगे सो दूध बराबर । माँगि लिये सो पानी ॥
कहहिं कबीर सो रक्त बराबर । जामें ऐंचातानी ॥"

और दुर्जन = दुष्ट प्रकृतिके तामसी मनुष्योंके तो कभी समीप आस-पासमें भी जाना नहीं चाहिये । दुर्जन पहिचाननेपर उसके नजदीकमें जानेका काम ही नहीं है । इस तरह सज्जनोंसे कुछ माँगना नहीं, और दुर्जनोंके निकट भी नहीं जाना । फिर विचरण करते हुए प्रारब्धानुसार नित्यप्रति वर्तमानमें जो कुछ भी सहजमें सेवकोंसे अन्न, जल, वस्त्रादि मिले, उसे अपने प्रयोजनमात्र थोड़ा-बहुत ले करके विवेक-विचारपूर्वक बरते, और बचा हुआ पदार्थ सो उन्हीं लोगोंमें बर्ताय देवे ! संग्रह करके उपाधिमें कदापि पड़ना नहीं चाहिये । क्योंकि पूर्ण परीक्षक, सत्यन्यायी, पूर्ण वैराग्यवान्, सद्गुरुने इसी प्रकार रहनी धारण किये हैं । उन्होंने सज्जन, धर्मात्मा, दानी, श्रद्धालु लोगोंसे भी कभी कोई वस्तु याचना किये नहीं । और दुर्जन,कपटी, कुटिल, तामसी, धनिक, सेठ, राजाओंके नजदीक या समीपमें भी कभी गये नहीं। प्रारब्ध वेगसे वर्तमानमें, भक्त लोगोंसे भोजन-वस्त्रादि जो प्राप्त हुआ, उसे ही हंसवत् सारको ग्रहण करके वैराग्ययुक्त बर्तते-बर्ताते रहे। और अभी भी वैसे ही स्थितिवान् पारखी साधु-गुरु जो हैं, सो भी सज्जन जनोंसे कुछ याचना नहीं करते हैं । और दुर्जनोंके तो नजदीकमें भी जाते नहीं। प्रारब्ध भोगपर पूर्ण भरोसा है उन्हें । कर्मानुसार प्राप्त हुआ दुःख-सुखोंको वे धैर्यपूर्वक सहन करतेहुये, वर्तमानमें प्रारब्ध सम्बन्धसे, जो कुछ भी देह गुजारा लायकवस्तु मिलता है, उसीमें ही बेगारवत् निर्वाह करके सदा प्रसन्नतासे बर्तते और बरत ही रहे हैं, वैसे होना चाहिये ॥ ३० ॥

फिर भी यहाँपर दोहा ३१ से ४३ तक मायामुखसे धर्म शास्त्रोक्त वैराग्यका वर्णन किया गया है ॥

॥ * ॥ धर्मशास्त्र कथित वैराग्य वर्णन ॥ * ॥

दोहाः— अन्तदशा लिये आदिमें । सोई करो बखान ॥
सुख ब्रह्मा इन्द्रादिको । काक विष्टवत जान ॥ ३१ ॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! अभी आदिमें देह रहते ही अन्तमें देहान्त होनेपर होनेवाली दशा अभाव, अचाह, शून्य वृत्तिको धारण करो। ऐसी रहनी धारण करके, सोई वैराग्यके गुणको ही बखान करो। अथवा आदि = जगत्में देहोपाधिके बीचमें ही अन्तदशा = विदेह कैवल्य ब्रह्मस्थितिको दृढ़तासे बनाय लो, और अधिकारीके प्रति सोई ब्रह्मज्ञानके ही बखान किया करो। संसारके विषय सुख तो तुच्छ होनेसे कोई गिनतीमें नहीं है। परन्तु इन्द्रादि, ब्रह्मादिकोंके महान् सुख भी विरक्तोंके लिये त्याज्य हैं। अतः ब्रह्मा, इन्द्रादिकोंके सुखको भी कागके विष्टावत् जानके अभाव करो। चित्तसे कुछ भी चाहना नहीं करो ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— शास्त्रोंमें कहा हैः— अर्थात् हे मुमुक्षुजनो ! वैराग्यकी अन्तिम दशा प्राप्ति करनेके लिये अभी आदि या शुरूमें मैं तुम्हें सोई बात वर्णन करके कहता हूँ, कि— जो प्रथम वैराग्यवानोंने कहे हैं, और धर्मशास्त्रोंमें भी लिखा है ! कहा हैः—

"मुक्ति मिच्छसि चेत्तात ! विषवत् विषयान्त्यजः ॥" अष्टावक्र, गीता १ ॥

—हे तात ! यदि तुम्हें मुक्तिकी इच्छा है, मुक्ति पाना चाहते हो, तो सर्वप्रथम समस्त विषयोंको हलाहल विषके समान समझके परित्याग करो। तदनन्तर आदिमें ही अन्तमें होनेवाली दशा विरक्तिको धारण करो। देहान्तमें जीवके साथ कोई भी वस्तु आदि जायेगी नहीं । किन्तु मायामें आसक्ति रहनेसे जीव ही बन्धनोंमें पड़ जायेगा। इसलिये पहले तुम ही सबके सङ्गको छोड़ दो, वृत्ति खैंचके सब तरफसे अभाव करलो, सब तरफसे उदास

हो जाओ, और जो विरक्त जनोंने रहनी बखान किया है, सोई पालन करो। यह संसारके विषय सुख-भोग सकल तो तुच्छ क्षणिक निकृष्ट ही हैं। और जो शास्त्रोंमें पण्डितोंने क्रमशः स्वर्गादि लोकोंमें एकसे-एक बढ़करके सुख वर्णन करते हुए, इन्द्रादि देवताओंको विशेष सुख और उससे भी बढ़ करके ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंको महासुख कथन किये हैं। परन्तु सो सब सुख वैराग्यवानोंकी दृष्टिमें बिलकुल तुच्छ, काक = कौवा या कागड़ाके विष्ठा = मैलाके समान, त्याज्य दिखाई देता है, और सबोंके मैलाको तो काग खा लेता है, किन्तु कागके विष्ठाको कोई ग्रहण करते नहीं, महाकनिष्ट तुच्छ मानते हैं। ऐसा जान करके सकल भोगेच्छाको परित्याग कर देना चाहिये। तभी वैराग्य पूर्ण होता है। विचार सागरमें वैराग्यका लक्षण निम्न प्रकारसे कहा हैः—

दोहाः— "ब्रह्म लोकलौं भोग जो, चहै सबनको त्याग ॥
वेद अर्थ ज्ञाता मुनि, कहत ताहि वैराग ॥"

—और कहा हैः—

श्लोकः— "ध्वाङ्क्षोच्चार इवार्थेष्वनादरो यश्च सर्वथा ॥
वैराग्यस्यावधिंप्राहुस्तं विरक्ता यतीश्वराः ॥ मु० ॥"

—विषयोंमें जो काक-विष्ठाके समान अत्यन्त घृणा हो जाना है, उसीको विरक्त यतीश्वरगण वैराग्यकी अवधि बतलाते हैं ॥
और योगवाशिष्ठमें कहा हैः—

श्लोकः—"कोट्यो ब्रह्मणो याता गताः सर्ग परम्पराः ॥
प्रयाताः पांशुवद्भूपाः काधृतिर्मम जीवने ॥" योगवा० ॥

—करोड़ों ब्रह्मा बीत गये, अनेकों सृष्टियाँ समाप्त हो गयीं। बहुतसे राजा लोग धूलिकी तरह उड़ गये। अब इस जीवनमें मेरी क्या आस्था या भरोसा हो?

दोहाः—"सुख ब्रह्मा इन्द्रादिके, श्वान विष्ठवत त्याग ॥
नाममात्र सुख अवनिके, भूलि न इन अनुराग ॥" वि० मा० ॥

—ब्रह्मादि, इन्द्रादिदेवोंके कहा हुआ सुख भी कुत्तेके मलवत् तुच्छ है ॥

दोहाः— "अनाथ बिसारे विषय रस, सन्तन जान मलीन ॥
ता उच्छिष्ट सों रति करै, कामी काक अधीन ॥" वि० मा० ॥

—ब्रह्मा, इन्द्रादिकोंके सुखको भी काक-विष्ठाके समान जाननेको कहा है। उसका भाव यही है कि—मनुष्य, पशु आदि सबोंके विष्ठाको तो काग या कौवे खा जाते हैं। परन्तु उसके विष्ठाको तो कोई भी ग्रहण नहीं करते हैं, ऐसा निकृष्ट, तुच्छ महामलीन है। बिलकुल निकम्मा समझके कागके मलको कोई छूना भी नहीं चाहते, बड़ा अपवित्र समझते हैं। यदि ऐसे ही उपराम हो, इसलोक, परलोकादिके सकल सुख-भोग तुच्छ, दुःखरूप समझ लिया जाय, तभी वैराग्य दृढ़ हो सकता है। ऐसा जान लीजिये ॥ ३१ ॥

दोहाः—देह अन्त मृतुक दशा । सो मैं आजहि लीन्ह ॥
कफन पहिरी समाधिमें । जग विस्मृति भई चिह्न ॥३२॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो! अन्तके मृतुक होनेपर, देहकी जैसी विरूप शून्यदशा होती है, सोई दशाको आज जीवितमें ही मनको मारकर मैंने वैसे स्थिति धारण कर लिया हूँ, मुर्देको कफनसे ढाकनेके समान मैं भी गलेसे कफनी पहिरके शून्य समाधिमें अचल होके बैठ जाता हूँ, तो जगत्की सम्पूर्ण चीह्न, याद, विस्मृति हो जाती है, तैसे बहुत-सी बात भूलके मेरे मनमें अब विस्मृति हो चुकी है, ऐसा जानलो ॥

॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— शास्त्रोंमें कहा हैः—अर्थात् कर्मभोग पूरा होनेपर, अन्तमें मृत्यु होनेपर, देहको जो दशा होती है, उसको समझकर, जगत्से उदासीन हो, आज वर्तमानके नरदेहमें जीते-जी ही सो मैंने अपने खुशीसे ही अभी उस अन्तिम दशाको

धारणकर लिया है। सो कैसे कि—वैराग्यवान् पुरुष कहते हैं, सुनो! चेतनजीव निकल जानेपर उस मुर्दाको लोग, कफन = कोरा कपड़ा पहिनाके और ओढ़ाके पृथ्वी खोदके उस गड्ढारूप समाधिमें डालकर दफना देते हैं। ऊपर मट्टी आदिसे ढाँकके चले आते हैं। फिर उस मृतकके लिये जगत्के समस्त चिह्न विस्मृत या ज्ञान-शून्य हो जाता है। चाहे कहीं कुछ बनो कि, बिगड़ो; उससे उसे कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता है। तैसे ही उस गतिको जानकर मैंने भी स्वयं ऐसी स्थिति बनाई है कि—मुर्देके समान मैं भी संसारमें निकम्मा ही पड़ा रहता हूँ, और कफनी = मेखला, अलफो वा खाली कपड़ाको कफनके समान ही अपने ऊपर लेके इस तुच्छ शरीरको ढाक लेता हूँ। ऐसे कफनी पहिरके कहीं गुफा, कन्दरा, खोहा वा सूनशान एकान्त स्थानमें बैठके, चित्तवृत्तिको विरोध करके समाधिस्थ हो जाता हूँ। इस तरह समाधिमें रहनेसे जगत्की सारी स्थिति, भावनाएँ मेरे चित्तसे विस्मृत हो गई हैं। अर्थात् जगत्में क्या हो रहा है, यह मुझे स्मृति, या ख्याल, यादगीरि अब कुछ नहीं है। मैं अपने सिवाय दूसरे किसीको अब कुछ चीन्हता, जानता या पहिचानता भी नहीं। जगत्की सकल सृष्टि मुझे तो तस्वीर या चित्रके नाईं, विचित्र भास होता है। समाधिमें रहनेपर जगत्के समस्त चीह्न विस्मृत हो गई हैं। जैसे चित्रके चिह्न असार हैं, तैसे जगत् भी मेरे लिये असार हो गया है। कहा है:—

श्लोकः—"अत्यन्त वैराग्यवतः समाधिः समाहितस्यैव दृढ़ प्रबोधः ॥
प्रबुद्ध तत्त्वस्य हि बन्धमुक्तिर्मुक्तात्मनो नित्य सुखानुभूतिः ॥"
॥ विवेक चूड़ामणि ॥ ३७६ ॥

—अत्यन्त वैराग्यवान्को ही समाधि-लाभ होता है, समाधिस्थ पुरुषको ही दृढ़ बोध होता है, तथा सुदृढ़ बोधवान्का ही संसार बन्धन छूटता है और जो संसार बन्धनसे छूट गया है, उसीको नित्यानन्दका अनुभव होता है ॥

श्लोकः— "वैराग्यान्न परं सुखस्य जनकं पश्यामि वश्यात्मन ॥"

—जितेन्द्रिय पुरुषके लिये, वैराग्यसे बढ़कर, सुखदायक मुझे और कुछ भी प्रतीत नहीं होता है ॥

श्लोकः— "वैराग्यस्यफलं बोधो बोधस्योपरतिः फलम् ॥
स्वानन्दानुभवाच्छान्तिरेषैवोपरतेः फलम् ॥" ४२० ॥ वि० चू० ॥

—वैराग्यका फल बोध है और बोधका फल उपरति (विषयोंसे उदासीनता) है। तथा उपरतिका फल यही है कि—आत्मानन्दके अनुभवसे चित्त शान्त हो जाय ॥

श्लोकः— "अज्ञानहृदयग्रन्थेर्विनाशो यद्यशेषतः ॥
अनिच्छोर्विषयः किन्नु प्रवृत्तेः कारणं स्वतः ॥" ४२४ ॥ वि० चू० ॥

— यदि अज्ञानरूप हृदयकी ग्रन्थिका सर्वथा नाश हो जाय, तो उस इच्छारहित पुरुषके लिये सांसारिक विषय क्या स्वतः ही प्रवृत्तिके कारण हो जायँगे ? कदापि नहीं ॥

श्लोकः—"वासनानुदयोभोग्ये वैराग्य परोऽवधिः ॥
अहंभावोदया भावो बोधस्य परमोऽवधिः ॥
लीनवृत्तेरनुत्पत्तिर्मर्यादोपरतेस्तु सा ॥" ४२५ ॥ वि० चू० ॥

— भोग्य वस्तुओंमें वासनाका उदय न होना, वैराग्यकी चरम अवधि है, चित्तमें अहंकारका सर्वथा, उदय न होना ही बोधकी चरम = आखिरी सीमा है। और लीन हुई वृत्तियोंका पुनः उत्पन्न न होना, यह उपरामताकी सीमा है ॥

इसलिये यह कथन पूर्ण वैराग्यवान्का ही है कि— देहान्तमें होनेवाला मृतुक दशा जो है, सो मैंने आज जीवितमें ही ले लिया है। कफन पहिरके समाधिमें स्थित रहनेसे जगत्के चिह्नतक विस्मृति हो गई। जगत्से मुझे अब कोई प्रयोजन नहीं रहा ॥ ३२ ॥

दोहाः—मृतुकको मरबो कहा । निर्धन तस्कर भीत ॥
भिक्षुकको अभिमान कहा । त्यागी काको मीत ॥२२॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! जो एक दफे मर चुका और मुर्दा हो चुका, फिर वह दुबारा क्या मरेगा ? इसीसे मृतुकको मरना कहाँ रहा, जीवितको मरना होता है, मृतुकको नहीं । तैसे अब हमारा मन सदाके लिये मर गया है । अतः अब हमको मरना वा मरनेका डर भी नहीं है । जैसे निर्धन-कंगालोंको चोरोंका क्या डर होता है ? कभी नहीं होता है । और भिक्षुकोंको अभिमान कहाँ हो सकता है ? अभिमान होवे, तो भीख ही कैसे माँग सकेंगे ? कभी नहीं । तैसे ही त्यागी, वैराग्यवान् भी किसका मित्र हो सकता है ? किसीका नहीं हो सकता है, विरक्त लोगोंकी ऐसी विशेषता होती है, सो जानो ॥

॥ ※ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ※ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं:— शास्त्रोंमें कहा है:— अर्थात् जिसे देहाभिमान है, उसे ही मृत्यु होनेका डर होता है । परन्तु सम्पूर्ण देहादिके हङ्कार जिसने छोड़ दिया है, मैं-ममताके पाससे छूटकर जो परे हो गया है, फिर उसे मृत्यु आदि किसीका भी भय नहीं रहता है । और जियत हो जिसने, मृतुक दशा = मानापमानसे रहित, इच्छा, वासनासे रहित, ऐसी स्थिति धारण कर लिया है । फिर उसे मरना ही क्या रह गया ? अर्थात् अब उसे मरनेकी डर ही क्या रह गया ? अतएव मैंने भी अपने मनको मारके मुर्दावत् बना दिया है । इससे मृतुक मनको फिर मरनेका डर ही कहाँ रहा ? जो जिन्दा हो, राग-द्वेषादि विकारमें पड़ा हो, उसे ही मरणका, हानिका, दुःखोंका डर होता है । परन्तु मेरेमें तो इन सब बातोंका अभाव है । इसलिये मुझ मृतुक = चाहनाहीनको मरने-जीनेका कोई डर नहीं है । अब मैं निर्भय हो गया हूँ, चाहे यह देह रहे या नाश होय । मेरा उससे

कोई प्रयोजन नहीं है। और जो धनवान् हैं, उसे ही चोरोंसे भय होता है कि—कहीं चोर आके धन उठाकर ले न जायँ, उसके कारण कहीं मुझे ही न मारें, इत्यादि अनेकों चिन्ताके मारे, वे भयभीत रहते हैं। परन्तु जो शुरूसे ही निर्धन है, उसके पासमें कुछ भी धन-सम्पत्ति नहीं है, देहनिर्वाहमात्र किसी प्रकार काम कर लेता है, भला ! उसे चोरोंसे, लुटेरोंसे क्या डर होगा ? सब तो जानते हैं कि, उसके पासमें कुछ नहीं है, फिर चोर आके भी तो उसके यहाँसे क्या चुरायेंगे ? इसीसे निर्धन गरीबोंको, तस्कर = चोरोंका कुछ डर नहीं रहता है, वैसे ही माया-मोहकी सम्पत्तिसे हीन, मुझ निर्धनको भी काम, क्रोधादि चोरोंसे अब कोई डर नहीं रहा। फिर घर-घर भिक्षा माँगनेवाला भिखारी या भिक्षुकको कहाँ अभिमान हो सकता है ? अभिमानी पुरुष कभी दीन होकर हाथ फैलाके गिड़गिड़ाकर भीख नहीं माँग सकते हैं। क्योंकि कहा है:—

दोहाः— "माँगन मरन समान है, मत कोइ माँगो भीख ॥
माँगनसे मरना भला, यही सतगुरुकी सीख ॥"

और—

दोहाः— "तुलसी कर पर कर करो, कर तर कर न करो ॥
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरण करो ॥"

इसलिये जाति, कुल, वर्ण, आश्रमादिके अभिमानग्रसित मनुष्य भिक्षुक नहीं हो सकते हैं। और जो उन सबोंको छोड़कर भिक्षुक हो गया है, वहाँ अभिमान कहीं पर रह नहीं सकता है। अपने तो पूर्व ही मृतुक हो चुके हैं, भिक्षुक = साधुरूपमें विचरते हैं, फिर हमें अभिमान कहाँका हो सकता है ? कभी नहीं ॥ महाभारतमें कहा है:—

"कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता । उपेक्षा सर्वभूतानामेतावद्भिक्षु लक्षणम् ॥"

— कपाल, वृक्षकी जड़, मलिन वस्त्र, निरपेक्षता और सम्पूर्ण प्राणियोंकी उपेक्षा—यही भिक्षुका लक्षण है ॥ और रागी-रागीमें

मित्रता होती है, सामान्यगुण लक्षणवालोंमें ही दोस्ती या मित्रताई, प्रेमका सम्बन्ध स्थापित हो सकता है; किन्तु त्यागी-पुरुष किसका मित्र होवे? जो प्रथम ही सबसे प्रेमको छिन्न-भिन्न करके आया, वह फिर किसीका घनिष्ट मित्र नहीं हो सकता है। तैसे हमारे भी कोई मित्र या प्रेमीजन नहीं हैं। हम किसीके मित्र और शत्रु भी होते नहीं। हम तो स्वच्छन्द गतिसे विचरते हुए चाहे जहाँ चले जाते हैं। हमें रोक-टोक करनेवाला कोई नहीं है। अतएव मृतुक वा मुर्देको फिर मरनेका डर ही क्या? निर्धनको चोरोंका डर ही कैसे? भिक्षुकके लिये अभिमान ही कहाँ रहा? और त्यागी किसका मित्र होवे, किसीका नहीं। ऐसे असंग रहनीको धारण करके वैराग्यवान् बिलकुल उपराम हो जाते हैं। बेगार माफिक देह-गुजारा चलाकर जीवन बिता देते हैं ॥ ३३ ॥

दोहाः—दरिद्रताको सब डरें। करें सम्पतिसों प्रीति ॥
सो दरिद्र हम लीन हैं। अब कहा रीत बे प्रीति ॥३४॥

संक्षेपार्थः—हे भाई! जगत्में सब कोई दरिद्रतासे खूब डरते हैं, दरिद्रताके नाम सुनके ही चौंकके थर-थर काँपते हैं। गरीबीसे व्याकुल होके, रोते कराहते, छटपटाते, फिरते हैं, और सब कोई अविवेकी लोग धन-सम्पत्तिसे ही अत्यन्त प्रेम, प्रीति करते रहते हैं। सम्पत्ति पानेपर, बहुत खुश होते हैं। परन्तु हमारी तो उन लोगोंसे बिलकुल उल्टी चाल है। क्योंकि, सो दरिद्र अवस्थामें ही हम प्रसन्न होके लवलीन रहते हैं, और सम्पत्तिको विपत्तिका घर समझके उससे दूर भागते हैं। अब कहो! उन लोगोंकी रीति और हमारी रीति-चालमें विपरीत है कि नहीं? जरूर विपरीत है। अतः तुम्हारा-हमारा बनाव हो नहीं सकता है, हमें दरिद्रतामें रहना ही पसन्द है ॥

॥ ※ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ※ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— शास्त्रोंमें कहा हैः— अर्थात् देखो!

संसारमें रागी, विषयी, पुरुष सब कोई दरिद्रतासे बहुत डरते रहते हैं। दरिद्रीको तुच्छ समझते हैं। तहाँ नीतिकारोंने कहा भी है कि— "दरिद्रस्य विषंगोष्ठी" — दरिद्रोंको सभा वार्ता विष होता है। "सर्वशून्या-दरिद्रता" — दरिद्रता सब सूनोंका घर है, अर्थात् दरिद्रके लिये सब सूना है। और भी कहा है:—

श्लोकः— "दारिद्र्यान्मरणाद्वापिदारिद्र्यमवरं स्मृतम् ॥
अल्पक्लेशेन मरणं दारिद्र्यमतिदुःसहम् ॥"

— दरिद्रता और मरना इन दोनोंमें मरना ही अच्छा है, क्योंकि, मरनेमें थोड़ा क्लेश है और दरिद्रतामें अत्यन्त कष्ट है॥

श्लोकः—"मनस्विनो दरिद्रस्य वर्नादन्यत्कुतः सुखम् ॥"

— निर्धन दरिद्र मनस्वीके लिये जङ्गलको छोड़कर और कहाँ सुख हो सकता है ?॥

श्लोकः—"यच्चात्रैव याञ्चया जीवनं तदतीव गर्हितम् ॥"

— और जो यहींपर भीख माँगकर जीवन बिताना है, वह तो अत्यन्त निन्दित है॥

श्लोकः—"दारिद्र्याद्ध्रियमेति ह्री परि गतः सत्त्वात्परि भ्रश्यते ॥
निःसत्त्वः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते ॥
निर्विण्णः शुचमेति शोक निहतो बुद्ध्या परित्यज्यते ॥
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम् ॥"

—क्योंकि दरिद्रतासे मनुष्य लज्जित होता है। लज्जित मनुष्य तेजसे हीन हो जाता है। तेजहीन नरका निरादर होता है। अनादर-से खेद होता है। खिन्न मनुष्य शोक ग्रसित हो जाता है। शोक-ग्रसित नर बुद्धिहीन हो जाता है। बुद्धिहीनका नाश हो जाता है। अहो ! दरिद्रता सब आपत्तियोंका स्थान है॥

श्लोकः—"वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं, द्रुमालयं पक्वफलाम्बुभोजनम् ॥
तृणानि शैय्या परिधानवल्कलं, न बन्धुमध्ये धनहीन जीवनम्" ॥चाण०॥

—बल्कि व्याघ्र और हाथियोंसे भरे हुये वनमें, वृक्षोंके नीचे

ठहरना अच्छा है । तथा पके हुए फल, जलसे निर्वाह करना भी अच्छा है, तृणकी शैय्या और पहननेको वल्कल = वृक्षकी छाल आदि हो, तो भी अच्छा है । परन्तु अपने बन्धुओंके मध्यमें दरिद्र बनकर रहना अच्छा नहीं है ॥ उपरोक्त श्लोक चाणक्य नीति और हितोपदेशमें आया है ॥

इस प्रकार सोच-समझकर और पण्डितोंसे नीति-ग्रन्थोंके वचन सुनकर, सब संसारी लोग दरिद्रताको बड़ी आपत्ति मानके सदैव उससे डरा करते हैं । और सुख भोगके लिये धन-सम्पत्ति वा ऐश्वर्यादिसे प्रीति किया करते हैं । धन कमानेके लिये रात-दिन कष्ट उठाकर हाय-हाय करते हुये, पच-पचके मरते हैं । तब भी सफल सुखी नहीं होते हैं । धनिक लोग बड़े उपाधिमें पड़े रहते हैं । उन्हें नित्य चिन्ताएँ घेरे रहती हैं । जिस सम्पत्तिमें लोग प्रेम करते हैं, वही महान आपत्तिका घर है ।

अतएव संसारी मनुष्य जिस दरिद्रता, गरीबीसे, भयभीत होते हैं । सो उस दरिद्रताको हमने स्वयं प्रेमसे स्वागत करके धारण कर लिया है । और हम तो उसी गरीबीरूप, दरिद्रतामें ही लवलीन हो रहे हैं । अब कहो ! उनकी रीति और हमारी रीतिमें कितना जमीन आशमानका अन्तर है । बिलकुल ही विपरीत चाल है । वे जिसमें प्रीति करते हैं, उसमें तो बिलकुल हम प्रीति नहीं करते हैं । क्योंकि हम दरिद्रावस्थामें ही प्रेम करके उसीमें लीन रहते हैं, वे उससे डरते हैं । अब कहाँपर तुम्हारी-हमारी रीति मिली, कहीं भी नहीं मिली, सर्वत्र विपरीत प्रीतिसे रहित ही हुई । ऐसे दोनों विरुद्ध स्वभाववालोंमें कभी मिलाप नहीं हो सकती है । फूट होके अप्रीति ही होती रहेगी, सो जानो ॥ ३४ ॥

दोहाः—हम दरिद्रमें सुखी हैं । संपतिसों दुःख मान ॥
भोजन भिक्षा अन्नको । औ नदियन जलपान ॥ ३५ ॥

संक्षेपार्थः— अरे भाई ! मैं तुमको कितना खुलासा करके बताऊँ !

हम तो अपने वैराग्यमें मस्त होके, दरिद्र अवस्थामें ही खूब सुखी रहते हैं, और धन, सम्पत्ति आदि संग्रहसे तो हम बड़ा भारी दुःख मानते हैं। हमें संपत्ति लेके भी क्या करना है? देह गुजारा तो योंही आनन्दपूर्वक चल ही रहा है। देखो! भिक्षासे प्राप्त अन्नको हम भोजन करते हैं और नदियोंमेंसे स्वच्छ जलको हाथ ही से उठायके अञ्जुलि भर-भरके पी लेते हैं। बस, इसी तरह हमारा देह गुजारा चल जाता है। इससे अधिक और कुछ हमें चाहिये भी नहीं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—शास्त्रोंमें कहा हैः—अर्थात् विरक्तजनका कथन है, हे भाई! हम तो इसी दरिद्र अवस्थामें ही निश्चिन्त हो, सुखपूर्वक रहते हैं। इस दरिद्रतामें तो हम बड़े सुखी हैं। शान्त, निर्भ्रान्त हो, एकान्तमें रहते हैं, और संसारके धन-सम्पत्ति माया-मोहके संगसे तो हम बड़े ही दुःख मानते हैं। उसमें रञ्चक-मात्र भी कहीं शान्ति, सुख नहीं है। दुनियाँ भरके उपाधि, सम्पत्ति-में विपत्ति लगा ही रहता है। कहा हैः—

श्लोकः— "न तादृशं जगत्यस्मिन् दुःखं नरककोटिषु ॥
याद‍ृशं यावदायुष्कमर्थोपार्जन शासनम् ॥" योगवाशिष्ठ ॥

—इस संसारमें सारी आयु धन कमाते रहनेका, शासन या दबाव, जैसा कष्ट है, वैसा करोड़ों नरकोंमें भी नहीं है ॥

और भागवतमें भी कहा हैः—

श्लोकः—"स्तैयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ॥
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्द्धा व्यसनानि च ॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ॥
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥" भागवत ॥

—द्रव्यमें पन्द्रह दोषः—चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, अभिमान, मद, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा और (स्त्री, द्यूत = जूवा, एवं मादक द्रव्य सम्बन्धी) व्यसन—ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्यों-

को अर्थ या धन सम्पत्तिके ही कारण प्राप्त होते माने गये हैं। अतः कल्याणेच्छुक पुरुषको अर्थरूप अनर्थका दूरसे ही त्याग कर देना चाहिये, तभी विश्रान्ति मिल सकेगी ॥

इस प्रकार बड़ा भारी विकार दोष-ही-दोषसे भरा हुआ सम्पत्ति, ऐश्वर्य कष्टमय होनेसे हम उसे दुःखोंका घर ही मानते हैं। और इसी दरिद्रता, गरीबीमें सन्तुष्ट हो सुखी हो रहते हैं। यदि तुम ऐसा पूछो कि—दरिद्रतामें तुम्हारा देह गुजारा कैसे चलता है? तो सुनो! अन्नक्षेत्र, सदावर्त वा सज्जनोंके घरमें जा करके एक वक्त भिक्षा करके अन्न भोजनको ले आते हैं, और शुद्ध एकान्त स्थानमें बैठके उसे पाकर या भोजन करके फिर नदियों, झरनोंमें जाके हाथ-मुँह धो, कुल्लाकर, अंजुलीसे उठा-उठाके, जल पीके तृप्त हो जाते हैं। कदाचित् कभी भिक्षामें भोजन नहीं मिला, तो जलपान ही करके रह जाते हैं। पश्चात् निजस्वरूपके विवेक-विचारमें संलग्न हो जाते हैं। इस प्रकार सुखपूर्वक हमारे देहका वर्तमान चल जाता है। अर्थात् भिक्षान्नका भोजन और नदियोंके शुद्ध स्वच्छ जलपानद्वारा ही हमारा देह निर्वाह चल जाता है, अतएव मुक्ति सहायक इस गरीबीको हम सदा अपनाये रहते हैं ॥ ३५ ॥

दोहाः—राह बाटकी चींधरी । जोरी गुदरी कीन्ह ॥
गही तुमरी हाथमें । शयन भूमिपर कीन्ह ॥ ३६ ॥

संक्षेपार्थः—और देखो! हम जब कभी कहीं चले जाते हैं, तब रास्ता, चौराहे, बाट-कुबाटमें कहीं निकम्मी पड़ी हुई, चीन्धी-चीन्धी टुकड़ा बटोरके इकट्ठे होनेपर, उसे सूई धागासे सीके जोड़कर गुदड़ी बना लेते हैं, और उसीको ओढ़के शीत निवारण कर लेते हैं, और हाथमें जलपात्रके लिये तुम्बा लेके चलते हैं, तथा भूमिपर ही सदा शयन किया करते हैं। इसी प्रकार हम उपाधिसे रहित हो, अपना जीवन वैराग्यमें ही बिता देते हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः-शास्त्रोंमें कहा हैः-अर्थात् वैराग्यवान् लोग अच्छे नये कपड़े पहिरनेकी भी इच्छा नहीं करते हैं। शीत-निवारण करनेके लिये वे मार्गमें चलते-फिरते या भ्रमण करतेमें कहीं चौराहेमें तथा बाट-कुबाटमें गिरा, पड़ा, फेंका हुआ चींधरी और फटा-टूटा पुराना वस्त्र चींधी-चींधी, टुकड़ा-टुकड़ा उठाके लाकर उसे धोकर सुखाके, उन्हीं चीन्धियोंको सूई-डोरासे सीके जोड़कर ओढ़ने लायक गुदड़ी बना लेते हैं। ठंढी मौसममें वैसे ही गुदड़ी ओढ़के खाली पृथ्वीपर ही सो जाते हैं, अगर गुदड़ी बड़ी हुई, तो उसे ही बिछाकर शयन करके ओढ़ भी लेते हैं। और कहीं चलना हुआ, तो तुमड़ीरूप तुम्बा जलपात्रको हाथमें पकड़कर चल देते हैं, कन्धेमें गुदड़ी डाले हैं, तुम्बाको हाथमें पकड़के निश्चिन्त चले जा रहे हैं, और जहाँ कहीं—रात्रि हुई या थक गये, तो एकान्त जगह देखके भूमिपर ही सो गये, इस प्रकार त्यागीजनोंकी चाल रहती है। वैसे ही भागवतमें भी कहा हैः—

श्लोकः—"सत्यां क्षितौ किंकशिपोः प्रयासैर्बाहौ स्वसिद्धे ह्युपवर्हणैः किम् ॥
सत्यञ्जलौ किं पुरुधान्नपात्र्या, दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलै ॥" भाग०॥

—पृथ्वीके रहते हुए बिछौनाके लिये प्रयास करनेकी क्या आवश्यकता है? अपनी भुजाओंके रहते हुये, तकियोंकी क्या जरूरत है? अञ्जलीके होते हुये, तरह-तरहके भोजनके पात्रोंसे क्या लेना है? तथा दिशा एवं वल्कलादिके रहते हुये वस्त्रोंकी क्या जरूरत है? ॥

श्लोकः— "चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां ॥
नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्य शुष्यन् ॥
रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान् ॥
कस्माद्भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान् ॥"

—क्या मार्गोंमें चिथड़े नहीं हैं? दूसरोंका पालन करनेवाले वृक्षोंने क्या भिक्षा देना छोड़ दिया है? क्या नदियाँ भी सूख गई

हैं ? गुहाएँ क्या रुक गई हैं ? क्या इष्टदेव अपने गुरुजी शरणागतों-की रक्षा नहीं करते हैं ? फिर तत्त्वज्ञजन धनके घमण्डमें अन्धे हुये पुरुषोंका आश्रय क्यों लेते हैं ? (वैराग्यको क्यों नहीं धारण करते ?) ॥

अतएव विरक्त पुरुष कहते हैं—इसी विचारसे मैंने भी राह-बाटके चिथड़े बटोरकर उन्हें जोड़-जोड़के गुदड़ी बना लिया है। जो निर्भयकी चीज है। और हाथमें एक विरूप कड़वी तुमड़ी जल-पात्रके लिये गहि लिया हूँ। बश इतना ही हमारा सब सामान है। और जहाँ कहीं भी जाते हैं, हम भूमिपर ही शयन कर लेते हैं। विस्तर, तोशक-तकियोंसे हमें कोई काम नहीं, यह पृथ्वी ही हमारी शैय्या है ॥ ३६ ॥

दोहाः—काह बन बाग आरण्य कहा । काह मन्दिर समशान ॥
अचिन्त निद्रा करत हौं । हर्ष शोक नहिं मान ॥३७॥

संक्षेपार्थः—हे सन्तो! हमारे रहनेकी खास कायमका कोई जगह नहीं है। हम रमतेराम ठहरे, इसीसे जहाँपर जब जैसा समय आता है, तहाँपर तब तैसे ही रह जाते हैं। कभी वनमें रहे, तो कभी बगीचामें रहे, कभी आरण्यमें रहे, तो कभी मन्दिरमें रहे, और कभी श्मशानमें जाके रहे। क्या है, हमारे लिये तो सब जगह एक सरीखी ही है। और न किसी जगहमें पहुँचके मुझे हर्ष होता है, न शोक ही होता है। मैं तो किसी बातमें हर्ष-शोक नहीं मानता हूँ, निश्चिन्त होके आँखें मूदके जहाँ कहीं भी सोके, निद्रा लेके आराम करता हूँ ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—शास्त्रोंमें कहा हैः—अर्थात् विरक्त पुरुष कहते हैं, हे भाई! अब कोई जगह भी हमारे लिये आसक्ति पैदा-कर नहीं सकती है। इसलिये विचरण करते हुये हम जहाँ कहीं भी पहुँच जाते हैं, देख लेते हैं कि, रहने योग्य जगह है, तो वहीं पड़े रहते हैं। चाहे वह मामूली वन हो, वा बाग-बगीचा हो, या संरक्षित

उपवन हो, कुञ्ज-निकुञ्ज हों, अथवा आरण्यरूप महावन या घनघोर जङ्गल हो। चाहे किसीका मठ-मन्दिर हो, धर्मशाला हो, तथा मुर्दा जलानेकी जगह श्मशानघाट हो, बीरान जगह हो, सुनशान एकान्त जगह होना चाहिये। कहा भी है:—

श्लोकः—"देवाग्न्यागारे तरुमूले गुहायां, वसेदसङ्गोऽलक्षितशीलवृत्तः ॥
रिनिन्धनज्योतिरिवोपशान्तो न चोद्विजेत्प्रवजेद्यत्र कुत्र ॥" मु० ॥

—यतिको अपने शील और आचारको अलक्षित रखते हुये, देवागार, अग्निशाला, वृक्षमूल, अथवा गुफामें असङ्ग भावसे निवास करना चाहिये। तथा बिना इँधनकी अग्निके समान शान्त रहकर, जहाँ-तहाँ विचरता रहे और उद्विग्न न होवे ॥ इसलिये और दूसरी बातोंसे हमें क्या करना है? न हमें किसीसे हर्ष होता है, न शोक होता है। क्योंकि उसके समस्त कारणोंको हमने पहले ही छोड़ दिया है। अच्छे जगहसे हमें हर्ष-प्रसन्नता भी नहीं होती है। और खराब जगहसे शोक-चिन्ता, क्लेश भी नहीं होती है। ये सब उपाधियोंको हम अपने मनमें कुछ भी नहीं मानते; सब चिन्ताओंको छोड़कर उपरोक्त स्थानोंमें अचिन्त या निश्चिन्त होके विश्राम करते हैं। वहीं सुखपूर्वक सो जाते हैं, चिन्ता न होनेसे सोते ही अच्छी निद्रा भी लग जाती है। सोई हमारी योगनिद्रा है ॥ महाभारतमें कहा है:—

श्लोकः—"शून्यागारं वृक्षमूलमारण्य मथवा गुहाम् ॥
अज्ञातचर्यां गत्वान्यां ततोऽन्यत्रैव संविशेत् ॥" म० भा० ॥

— शून्य मठ, वृक्षमूल, आरण्य = वन, अथवा जिसका किसीको पता न हो, ऐसी किसी अन्य गुहामें जाकर या वहाँसे भी अन्यत्र जाकर रहने लगे ॥

अर्थात् हमारे लिये अब कोई आकर्षणका केन्द्र और उदासी करनेकी जगह नहीं रही। क्या वन-बाग हो? क्या आरण्य हो? क्या मन्दिर तथा मरघट या श्मशान हो? कहीं किसीसे न हमें हर्ष होता है, न शोक ही हो सकता है। और मान-अपमानकी भी हमें

कुछ अपेक्षा नहीं है। हम कुछ मानते ही नहीं। इसलिये अचिन्त हो, सुखपूर्वक योगनिद्रा लगायके आराम करते रहते हैं। इसके सामने जगत्के सब सुख तुच्छ हैं, ऐसा जानो ॥ ३७ ॥

दोहाः—शिला पलङ्ग आरण्य घर । शरद् निशाको चन्द ॥
पङ्खा करत बयार सब । हम पौढ़त स्वच्छन्द ॥ ३८ ॥

संक्षेपार्थः—देखो! हमारा खास निवासस्थान, घर तो आरण्य = जङ्गलोंमें है। पहाड़ोंकी बड़ी-बड़ी चपटी शिलायें हमारे मजबूत पलङ्ग हैं। शरद् ऋतुके रात्रियोंमें जो चन्द्रमाका प्रकाश होता है, सोई हमारा दीपकके जगहमें है, और सब तरफसे बिना रोक-टोकके जो वायु बहती है, सोई हमारा पङ्खा झलनेका काम करती है। इतना सब सुख-साजके मध्यमें हम स्वच्छन्द होके सम्राट्वत् सुखसे, पौढ़त = शयन करते रहते हैं। ऐसी हमारी अविचल स्वतन्त्रता सदा हमारे साथ रहती है ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—शास्त्रोंमें कहा है:—अर्थात् विरक्त पुरुषका कथन है—हे भाई! यह महावनरूप अरण्य = बियावान् जङ्गल ही हमारा घर या सुखदाई महल या दर्बार है। पहाड़ी प्रदेशमें स्वयमेव बिछे हुए साफ-सुथरी बड़ी-बड़ी लम्बी-चौड़ी शिलायें = चपटा पत्थर, सोई हमारा बेशकीमती मजबूत जड़ाऊ पलङ्ग बिछा हुआ है। और क्वार-कार्तिक महीनेवाली शरद्-ऋतुमें रात्रिको साफ आकाशमें निर्मल चन्द्रमाका प्रकाश जो फैलता है, वही हमारे घरको उजियाला करने-वाला चिराग या दीपक है; और गर्मीकी मौसममें जो वायु चलती है, सो बयार सब आ–आके, हमारा पङ्खाका काम करती है। इस प्रकार-के दिव्य प्राकृतिक सामग्रीको बटोरके, उस बीचमें हम स्वच्छन्द, स्वतन्त्रतापूर्वक खुशीसे पौढ़ते हैं। अर्थात् ऐसे आनन्द-भवनमें जाके हम निश्चिन्त्य होकर सो जाते हैं, वा मनमाने लेटते हुए आराम

करते रहते हैं । भर्तृहरिने भी कहा हैः—

श्लोकः—"शैय्या शैल शिला गृहं गिरि गुहा वस्त्रं तरूणां त्वचः ।
सारङ्गाः सुहृदो ननुक्षितिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः ॥
येषां नैर्झरणाम्बुपानमुचितं रत्यै च विद्यांगना ।
मन्यन्ते परमेश्वराः शिरसियैर्बद्धो न सेवाञ्जलिः ॥" वै० श० ॥

श्लोकः—"शिला शैय्या फलं भक्ष्यं वल्कलं वसनं तरोः ॥
इतीशानु गृहीतानां वृत्तिरस्तिमहोज्ज्वला ॥" वैरागशातक ॥

—पर्वतोंकी शिला जिनकी शैय्या है, कन्दरा ही जिनके घर है, वृक्षोंके वल्कल = छाल ही जिनके वस्त्र हैं, वनके हरिण ही जिनके मित्र हैं, वृक्षोंके कोमल फल खाकर ही जो जीवन निर्वाह करते हैं। झरनोंका जलही, जिनका योग्य जलपान है, विद्यारूपी नारीमें ही जिनकी प्रीति है, और सेवाके लिये जिनने कभी अपने हाथ नहीं बाँधे, उनको मैं परमेश्वरतुल्य पूज्य जानता हूँ ॥

अथवा आरण्य घरमें शिलाका पलङ्ग बिछाकर, जब हम स्वच्छन्द हो, शयन करते हैं; तब शरदऋतुमें रात्रिमें चन्द्रमाका प्रकाश दीपकका काम देता है और सब प्रकारसे पंखेका काम वायु स्वयं ही कर देती है। हमें कुछ भी करना नहीं पड़ता है। हम तो मजेमें आरामसे सोते रहते हैं, यही वैराग्यका प्रताप है ॥ ३८ ॥

दोहाः—धुनि ध्यान वृत्ति भारजा । केल करत परबीन ॥
लज्जा मान बिसारिके । घर-घर भिक्षा कीन ॥ ३९ ॥

संक्षेपार्थः— सुनो भाई ! कभी हम बाहर लकड़ी जलाके धूनी बनाते हैं, तो कभी निवृत्तिमें ज्ञानाग्नि जलानेवाला ध्यान ही हमारो आन्तरिक असली धूनी हो जाती है; और बाहर स्त्रीके सङ्ग-साथ तो हम कभी करते नहीं, परन्तु हमारे भीतर मनोवृत्ति ही स्त्रीके समान आज्ञाकारिणी होके हमें आराम पहुँचाती है। इसीसे वृत्ति ही हमारी भारजा = स्त्री है। प्रवीणतासे मनोवृत्तिके साथ ही हम

केलि = क्रीड़ा करते रहते हैं, और जब क्षुधा लगती है, तब क्षुधा निवृत्तिके लियेमात्र ही लज्जा, मान, अपमान आदिको भुलाय करके, नित्यप्रति दिन-दोपहरको एक बखत घरों-घरमें जाके, भिक्षा ग्रहण कर लेते हैं। भिक्षामें रूखा-सूखा जो मिल जाता है; उसे ही भोजन करके, हम सन्तुष्ट, शान्त हो रहते हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—शास्त्रोंमें कहा हैः—अर्थात् वैराग्यवान् कहते हैं, हमने अपने वैराग्यरूपी घरकी सामग्री कुछ तो ऊपर बता ही चुके हैं। अब बाकी वस्तु और हमारे परिवार, कौन-कौनसे हैं? सो भी कहता हूँ, सुनो! ध्यान = जगत् अनित्य है, देह क्षणभंगुर है, इसमें आसक्ति रखनेसे चौरासीयोनियोंमें जाना पड़ेगा, एक दिन मृत्यु अवश्य होयगी; यही ध्यानमें रखके, विचारकर उस तरफसे मनको हटाय, निजपदका ही हमेशा ध्यान किया करते हैं! यही ध्यान हमारे अखण्ड जलनेवाली धूनीरूप अग्निका प्रज्वलित कुण्ड है, उसीमें काम, क्रोधादिको हम होम दिया करते हैं। निजकल्याणकी धुन एकसी लगी रहती है, ज्ञानाग्नि जला करती है। और एकाग्रवृत्ति स्व-स्वरूपमें स्थितिके लक्ष, सब तरफसे चित्तवृत्तिका निरोध हो जाना, स्थिर-वृत्ति सोई हमारी अर्धाङ्गिनी भार्या कभो साथ न छोड़नेवाली सती-पतिव्रता नारीरूप धर्मपत्नी है। हम स्वयं चैतन्य उसके पुरुष हैं। इस प्रकार जड़-चैतन्य ही प्रकृति-पुरुषमय देह सम्बन्ध है। सो उसीके साथ बड़ी प्रवीणता या चतुराईसे केल = तीव्र वैराग्यकी क्रीड़ा, व्यवहार, वा आनन्द-विलास हम किया करते हैं। विरक्तिका खेल बर्ताव करनेमें हमारी चित्तवृत्तिरूप भार्या अत्यन्त प्रवीण साधनसम्पन्न है। कोई बिरले ही भाग्यवान्को ऐसे दृढ़ वैराग्यमें वृत्ति ठहर सकती है। कोई बुद्धिमान् ही निजवृत्तिके द्रष्टा होते हैं। और लोकलज्जा, कुल, वर्ण, आश्रमादिकी लाज, युवा अवस्थाके मान-सम्मान, शरम, इन सबोंको स्वप्नवत् मिथ्या

समझकर लज्जा और मान-अभिमानको बिसारके या भूलभाल करके, हम तो सिर्फ वैराग्यको ही परिपुष्ट करते हैं। इसलिये भोजनकी आवश्यकता होनेपर, सद्गृहस्थोंके घरों-घरमें दोपहरको जाकर एक-बार ही भिक्षा माँगके क्षुधा निवृत्ति कर लेते हैं। पूर्वके मान वा लाजको बिसारके ही हम घर-घरमें जाके भिक्षा कर लेते हैं। इस तरह देहके वर्तमानको हम चला लेते हैं। यही हमारा उद्यम-जीविका जानो॥ नीतियोंमें वीतरागियोंके परिवार निम्न प्रकारसे बताया है, सुनिये!—

श्लोकः— "सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा ॥
शान्तीः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः ॥" चाणक्य० ॥

—सत्य ही मेरी माता है, ज्ञान मेरा पिता है, धर्म ही भाई है, दया ही मित्र है, शान्ति सोई पत्नी है, क्षमा हमारा पुत्र है, ये ही छः मेरे तन-मनरूपी गृहके बन्धु-बान्धव या परिवार हैं॥

और भर्तृहरिने भी वैराग्य शतकमें कहा है किः—

श्लोकः— "धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी ॥
सत्यं मित्रमिदं दया च भगिनी भ्राता मनः संयमः ॥
शैय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनम् ॥
ह्येते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे! कस्माद् भयं योगिनः" ॥वैरा० श०॥

—जिसका धैर्य पिता है, क्षमा माता है, शान्ति स्त्री है, सत्य जिसका मित्र है, दया जिसकी बहिन है, संयमसे रोका हुआ मन जिसका भाई है, भूमितल जिसकी शैय्या है, दशों दिशायें ही जिसके वस्त्र हैं और ज्ञानरूपी अमृत ही जिसका भोजन है, हे सखे! तू ही बता कि, यह सब जिसके कुटुम्बी हों, भला! उस योगी पुरुषको किसका भय हो सकता है? किसीका भी नहीं॥

उपरोक्त परिवार ही वैराग्यवानोंके साथ रहते हैं। इसलिये ध्यानकी ही धूनी बनाके सचेत रहते हैं। संसारके अन्य सब भार, बोझाओंको परित्याग करके, निज वृत्तिरूप भार्याके सङ्ग निवृत्ति सुखमें रहते हैं। प्रवीण लोग केवल देह-रक्षणार्थ खान-पान आदि साधा-

रण व्यवहार बेगारवत् करते हैं, और संसारिक लज्जा, मान आदिको भूलके घरों-घर जायके भिक्षा वृत्तिसे गुजारा चला लेते हैं ॥ ३९ ॥

दोहाः—विषम वचन सहों जगतके । चहों न धन त्रिय भोग ॥
करत ठठोली लोग खल । मोंको हर्ष न सोग ॥४०॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! हम भले ही शान्तिपूर्वक जगत्के अज्ञानी लोगोंके मनमाने कहा हुआ विषम वचन = कठोर कटु वाक्योंको सुन-सुनके उसे सहन कर लेते हैं; तथापि विषयोंका भोग, धन, स्त्री, पुत्रादि, गृहस्थीजालोंको रञ्चकमात्र भी ग्रहण करना हम नहीं चाहते हैं। और संसारमें खल-दुर्जन लोग हमारी ठठोली-मस्खरी करते हैं, नाना तरहसे चिढ़ाके सताते हैं, परन्तु उस बातसे मुझे न शोक ही होता है और न हर्ष ही होता है । हर्ष-शोकसे रहित मैं तो अपने वैराग्यके धुनमें ही मस्त रहता हूँ ॥

॥ ❀ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ❀ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— शास्त्रोंमें कहा हैः— अर्थात् विरक्त पुरुष कहते हैं—हे मुमुक्षुओ ! हमने तो सहनशीलता अब अच्छी तरहसे बना ली है । संसारमें होनेवाले सब प्रकारके कष्ट सहन करना हमें मञ्जूर है । इसलिये जगत्के भोगी-प्रमादी, हङ्कारी, विषयासक्त लोग उलाहना देके विषम = विपरीत कठोर कटुक वचनसे नाना तरहसे हमें देखके गाली देते हैं । तुच्छ शब्द कहके चिढ़ाते, निन्दा करते हैं । यह सण्ड-मुसण्ड साधु बना है, सो ठग है, पाखण्डी है, इससे मेहनत नहीं हो सकी, तो यह ढोंग बनाया है । इसे भिक्षा भी मत दो, मुआ कहींके निकम्मा, मारा-मारा, इधर-उधर फिरता रहता है । सब इसी तरीकेसे इसे खानेको मिल जाता है, तो फिर यह काम क्यों करेगा ? उद्योग-धन्धा करके धन कमाना, विवाह करके घर-गृहस्थी चलाना, यही पुरुषार्थ है, हम ही भाग्यवान् हैं । स्त्री, धन, जनसहित भोग-भोगके सुखी हैं । ये अभागे लोगोंको यह सब

कहाँसे मिले। जा-जा रास्ता नाप, यहाँ क्या लेनेको आया है ? क्या यहाँ तेरे बापकी सम्पत्ति धरी है कि— माँगता फिरता है ? भागजा, यहाँसे; इत्यादि प्रकारके विषम-कठोर वचन अनाप-सनाप कह-कहके बकते हैं। उन सब वचनोंको हम शान्त चित्तसे सहन कर लेते हैं। चाहे ऐसे कटु वाक्य लाखों भी नित्यप्रति सुनना पड़े, तो भी उन्हें खुशीसे हम सहनकर लेते हैं, और सहनकर लेंगे। तथापि मुख्य पन्द्रह दोष लगा हुआ महाउपाधिका घर, धन, और स्त्री, पुत्रादि सुख-सांसारिक पञ्चविषयोंका भोग, झूठी मान-प्रतिष्ठा इत्यादि भूलकर स्वप्नमें भी हम उसे प्राप्त करना नहीं चाहते हैं। यानी धन, स्त्री, आदिकोंका भोग हम बिलकुल नहीं चाहते हैं। हलाहल विषवत् जानके हमने जिसे छोड़ दिया, उसकी हम कदापि चाहना नहीं करते हैं। भले ही लोग कुछ भी कहें, हम उसे सहन करेंगे, और हमारे त्याग, वैराग्य, उपरामता आदि देखकर खल=मूर्ख, दुर्जन लोग विचित्र मानके ठठोली करते हैं। हँसी, मजाक, निन्दा-चर्चा, मसखरी, करते हुए ताली पीटके खिल्ली उड़ाते हैं। कोई तो थप्पड़ मारके, झकझोरके, गिराके भी भाग जाते हैं, नाना विधिसे सताते हैं। परन्तु उससे मुझे कुछ हानि, लाभ वा हर्ष, शोक, चिन्ता कुछ भी विकार नहीं होता है। क्योंकि मेरा चित्त मेरे वशमें रहता है, दुनियाँके रङ्ग-ढङ्ग मैं अच्छी तरहसे जानता हूँ। वे सब तप भङ्ग करनेवाले विघ्न हैं, मैं कभी उनके आधीन नहीं होता हूँ। गीता अ० २ में कृष्णजीने कहा है:—

श्लोकः— "दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ॥
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥" भ० गीता, अ० २। ५६ ॥

— दुःखोंकी प्राप्तिमें उद्वेगरहित है मन जिसका और सुखोंकी प्राप्तिमें दूर हो गई है स्पृहा जिसकी तथा नष्ट हो गये हैं राग, भय और क्रोध जिसके, ऐसा मुनि स्थिर बुद्धि कहा जाता है ॥

श्लोकः— "यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ॥
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥" गीता ५। २८ ॥

—जीती हुई हैं इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जिसकी, ऐसा जो मोक्ष परायण मुनि इच्छा, भय और क्रोधसे रहित है, वह सदा मुक्त ही है॥

अतएव यही सब विचार करके हम, जगत् जीवोंके कठोरसे कठोर वचन भी सहन कर लेते हैं। किन्तु धन-त्रियादिक भोग कभी नहीं चाहते हैं। यद्यपि खल लोग नाना भाँतिसे हमारी ठठोली किया करते हैं, तो भी उससे हमें हर्ष, शोक कुछ भी नहीं होता है। हम तो अपने वैराग्य स्थितिमें ही सदा रमते रहते हैं ॥ ४० ॥

दोहाः—ये मनके मानै सबै। दुष्ट मित्र जग होय ॥
मनहीं जहाँ बिलाइया। अरि मित्र नहिं कोय ॥ ४१ ॥

संक्षेपार्थः—अरे! ये सब उपाधि तो मनके माननेसे ही विस्तार होती हैं, और मनके अनुकूलतासे जगत्में कोई मित्र होते हैं, तथा मनके प्रतिकूलतासे कोई दुष्ट वा शत्रु होते हैं, अथवा दुष्ट लोग शत्रु माने जाते हैं। परन्तु वैराग्यके प्रतापसे जहाँपर मन ही मर गया, वा निर्विकल्प स्थितिमें जहाँ कि मन बिलाय गया, लय हो गया। कहो भला! फिर वहाँपर कौन शत्रु और कौन मित्र हो सकता है? कोई नहीं हो सकता। अतः हमारे कोई शत्रु वा मित्र नहीं, हम अपने आप हैं॥

॥ ❋ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ❋ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहतेहैंः—शास्त्रोंमें कहा हैः—अर्थात् संसारमें इस मनके माननेसे ही सब कुछ प्रपञ्च, उपाधि, राग-द्वेषादिका विस्तार होता है। जगत्में कोई मित्र और कोई दुष्ट विरोधीरूप, शत्रुकी भावना भी मनके माननेसे ही होती है। कहा हैः—

श्लोकः— "शत्रुर्मित्रमुदासीनो भेदाः सर्वे मनोगताः ॥"

— शत्रु, मित्र और उदासीनता ये सर्वभेद मनमें ही है ॥

और देवी भागवतमें कहा हैः—

श्लोकः— "न देहो न च जीवात्मा नेन्द्रियाणी परंतप ॥
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥" देवी भागवत ॥

— हे परंतप ! बन्ध-मोक्षमें देह और जीवात्मा तथा इन्द्रिय ये सब भी कारण नहीं हैं । किन्तु मनुष्योंका मन ही कारण है ॥

और ब्रह्मबिन्दु उपनिषद्में भी कहा है:—

श्लोकः— "मनएव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः ॥
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्ये निर्विषयं स्मृतम् ॥" ब्रह्म० उप० ॥

—मनुष्योंका मन ही बन्ध-मोक्षका कारण है । जब मन विषयोंमें आसक्त हो जाता है, तब बन्धनका कारण हो जाता है और जब निर्विषय हो जाता है, तब मुक्तिका कारण हो जाता है ॥

इसलिये जगत्में दुष्ट = शत्रु होना और मित्र होना, ये सब भिन्न-भिन्न भावना मनके अनुकूल वा प्रतिकूल माननेसे ही होती है और जहाँपर निर्विकार वैराग्य स्थितिमें मन स्वयं ही विलाय गया, अर्थात् मनके सकल मानन्दी ही छूट गई, सारे संकल्प विलीन हो गये । फिर वहाँपर अरि = शत्रु और मित्रका विचार, राग-द्वेष कुछ भी नहीं रह जाता है । अतः मेरे तो शत्रु और मित्र कोई नहीं हैं ।

गीता अ० ६ में भी कहा है:—

श्लोकः— "ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ॥
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥" भगवद्गीता ६।८ ॥

— ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त है, अन्तःकरण जिसका तथा विकार-रहित है स्थिति जिसकी और अच्छी प्रकार जीती हुई हैं इन्द्रियाँ जिसकी, तथा समान हैं मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण जिसके, वह योगी योगयुक्त है, ऐसे कहा जाता है ॥ ८ ॥

श्लोकः— "सुहृन्मित्रार्युदासीन मध्यस्थद्वेष्य बन्धुषु ॥
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥" भ० गीता, ६।९ ॥

—और जो पुरुष सुहृद (स्वार्थरहित सबका हित करनेवाला), मित्र, बैरी, उदासीन (पक्षपात रहित), मध्यस्थ, द्वेषी, और बन्धुगणोंमें तथा धर्मात्माओंमें और पापियोंमें भी, समान भाववाला है, वह अति श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥

अतः जहाँपर वैराग्यवानोंका मन भी बिलाय गया, नाश हो गया या उन्मुन हो गया; अथवा मनके मानन्दीका अन्त ही हो गया। वहाँ शत्रु वा मित्र कोई नहीं होते हैं। सब प्राणियोंपर दयाभाव एक समान हो जाता है। यही वैराग्यकी स्थिति है ॥ ४१ ॥

दोहा:—कोई बोलै कोई ठोलै । कोइ डारै शिर धूर ॥
कोई स्तुति निन्दा करै । कोइ ज्ञानी कोइ कूर ॥ ४२ ॥

संक्षेपार्थः— देखो भाई ! संसारी अज्ञानी लोग तो बड़े मूर्ख होते हैं, इसीसे तो वे लोग मजाक उड़ाके, ज्ञानी, विरक्त पुरुषोंको सताते हैं। कैसे कि—कोई बोलते हैं, तो ठट्ठाबाजी करते हैं, कोई ठेल-मठेल करके उन्हें गिराके भागते हैं, कोई तो बहुत-सी धूल लाके सिरमें डाल देते हैं, कोई ढेला-पत्थर भी मारते हैं। कोई-कोई तो भरपेट निन्दा करते हैं, कोई अच्छा समझके उनकी स्तुति भी करते हैं। कोई तो उन्हें कूर = कपटी, ढोंगी बताते हैं, और कोई-कोई लोग ये महात्मा अच्छे ज्ञानी विरक्त हैं, ऐसा कहते हैं। इस तरह जिसकी जैसी समझ होती है, वे लोग वैसे कहते और करते हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीका:—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—शास्त्रोंमें कहा है:-अर्थात् संसारी अज्ञानी लोग, वैराग्यवान् सन्त-महात्माओंको देखके उन्हें नाना तरहसे सताते हैं। सहनशील, शान्त, मौन देखके कोई तो नाना प्रकारसे आक्षेपकी वाणी, निरादरके कर्कश शब्द बोलते हैं, चिढ़ा-चिढ़ाके उन्हें भी बोलाना चाहते हैं। जब सन्त कुछ भी नहीं बोलते, तो दुष्ट लोग उन्हें ठेलके या ढकेलके गिरा देते हैं, फिर खूब जोर-जोरसे ठठायके हँसी-मजाक करते हैं, ताली ठोंक-ठोंकके दिल्लगी करने लग जाते हैं। और कोई ढीठ मूर्ख लोग तो उन महात्माको चुपचाप देखके रास्तेसे मुट्ठी भर या अंजुली भर धूल, गर्दा, उठाके उनके सिरपर डाल देते हैं; कोई कीचड़, कचरा, गन्दा, मल-मूत्र

भी उनपर छिड़क देते हैं, फिर घोड़े सरीखा हिनहिनाय-हिनहिनाय खिलखिलाके हँसने लग जाते हैं। ऐसे तरह-तरहसे कष्ट पहुँचाके परेशान कर डालते हैं। कोई भरपेट उनकी निन्दा, गाली-गलौजतक करते हैं, और कोई दुष्ट लोग तो कभी-कभी उन्हें लात, हात, घूँसा, लाठी आदिसे ठोंकते, पीटते, मारते भी हैं। झूठ-मूठके दोष लगाके कलङ्कका प्रचार भी कर देते हैं, कोई क्रूर=कपटी, ढोंगी, पाखण्डी, धूर्त, बताके बहुत ही तुच्छ समझके तिरस्कार, अपमान करते हैं, इत्यादि प्रकारसे दुर्जन लोग सन्तोंको सताया करते हैं। और सज्जन लोग कोई-कोई उन्हें ज्ञानी, विरक्त-सन्त-महात्मा समझते हैं, आदर-सत्कार करते हैं, कोई उनको स्तुति, प्रशंसा, गुणानुवादके ही वर्णन करते हैं, कोई भेट, पूजा, आरती, करके मेवा-मिष्ठान्न खिलाते हैं। इत्यादि प्रकारसे उनकी सेवा-चाकरो, करते हैं। परन्तु वैराग्यवान् सन्त तो दोनों अवस्थाओंमें अपने स्थितिमें ही टिके रहते हैं। दुर्जनसे दुःखी और सज्जनसे सुखी वे कभी नहीं होते हैं। दुःख-सुखको निज पूर्वकृत कर्म प्रारब्ध भोगोंका सम्बन्ध समझके अनासक्त-भावसे शान्त रहते हैं। कहा हैः—

श्लोकः—"न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ॥
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥" भ०, गीता अ० १८। १०॥

—हे अर्जुन! जो पुरुष अकल्याण (अकुशल) कारक कर्मसे तो द्वेष नहीं करता है और कल्याणकारक कर्ममें आसक्त नहीं होता है, वह शुद्ध सत्त्वगुणसे युक्त हुआ पुरुष, संशयरहित, ज्ञानवान् और त्यागी है॥ और भागवत स्कन्ध ५, अध्याय ५ में ऋषभदेवके त्याग, वैराग्यका वर्णन आया है। वहाँ कहा हैः—

"परिभूयमानो मक्षिकाभिरिव वनगजस्तर्जनताड़नावमेहनष्ठीवन—
ग्रावशकृद्रजः प्रक्षेपपूतिवात दुरुक्तैस्तद विगणयन्नेवासत्संस्थान ॥" भा० ५। ५॥

—वे (वैराग्यवान्) किसी भी रास्तेसे निकलते, तो जिस प्रकार वनमें विचरनेवाले हाथीको मक्खियाँ तङ्ग करती हैं, उसी प्रकार

मूर्ख और दुष्ट लोग उनके पीछे हो जाते और उन्हें तङ्ग करते । कोई धमकी देते, कोई मारते, कोई पेशाब कर देते, कोई थूक देते, कोई ढेला मारते, कोई विष्ठा और धूल फेंकते, कोई अधोवायु छोड़ते, और कोई खोटी-खरी सुनाकर उनका तिरस्कार करते । किन्तु वे इन सब बातोंपर जरा भी ध्यान नहीं देते ॥ इसका कारण यही की शरीरमें मिथ्या अहन्ता-ममता उन्होंकी नहीं रहती ॥

श्लोकः—"अरोषमोहः समलोष्ट काञ्चनः प्रहीणकोशो गतसन्धिविग्रहः ॥
अपेतनिन्दास्तुतिरप्रियाप्रियश्चरन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः ॥" महाभारत ॥

—क्रोध और मोहसे रहित, ढेले लौर सुवर्णमें समान दृष्टि रखनेवाला, पञ्चकोशसे रहित, सन्धि-विग्रह शून्य, निन्दा-स्तुतिसे मुक्त हुआ तथा प्रिय और अप्रियकी भावना न रखता हुआ यह भिक्षुक उदासीनके समान विचरता रहे ॥ अतएव हे भाई ! हमारे विषयमें चाहे कोई कुछ भी बोलै, चाहे कोई ठोलै = ठठ्ठा करे, चाहे कोई सिरमें धूल ही लाके डाल देवे, चाहे कोई निन्दा करे वा स्तुति-प्रशंसा करे, और कोई ज्ञानी समझे कि, अज्ञानी समझे, क्रूर कहे कि शूर कहे, इन सब बातोंसे हमें वास्ता या ताल्लुक नहीं। उन प्रपञ्चियोंसे हमें कोई राग-द्वेष नहीं । जो मनमें आवे, सो करें, कुछ भी कहें, प्रारब्ध-भोग तो हमें भोगना ही है, सो भोग ही रहे हैं ॥ ४२ ॥

दोहाः—मोको काज न काहुसे । काह रङ्क नृप नाथ ॥
काह इन्द्र अज हरि हर । मैं निज ज्ञान सनाथ ॥ ४३ ॥

संक्षेपार्थः—हे भाई ! अब मुझे तो किसीसे भी खास काम वा प्रयोजन तो कुछ नहीं है, इसलिये मैं किसीकी कुछ पर्वाह भी नहीं करता हूँ । चाहे कोई रङ्क = गरीब हो वा चाहे कोई नृपति-देशके नाथ हों, तो भी उससे मुझे क्या करना है ? संसारी लोगोंकी तो बात ही छोड़ो । और देवता, सर्वेश्वर माने गये लोग चाहे इन्द्र हों, चाहे ब्रह्मा, विष्णु, और महेश ही क्यों न हों ? तो भी मुझे उनसे

क्या करना है ? मुझे उन किसीसे भी कुछ वास्ता नहीं । और मैं तो निज स्वरूपके ज्ञानमें स्वयं सनाथ, सन्तुष्ट सदा सुखी हूँ ॥

॥ ❋ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ❋ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—शास्त्रोंमें लिखा हैः—विरक्त पुरुष कहते हैं—अर्थात् हे सन्तो ! मुझे तो अब किसीसे कुछ काम, स्वार्थ, परमार्थका कुछ सम्बन्ध रखना भी नहीं है। न कुछ किसीसे लेना है, न किसीको कुछ देना है । लोभ, काम, क्रोधादिके विकारको तो हमने पहले ही छोड़ दिया है । इसीमें हमको किसीसे कुछ काम नहीं है । चाहे कोई राजा हो, प्रजा हो, धनिक-सेठ, साहूकार, महाराजा, सम्राट् ही क्यों न हो, चाहे कोई नाथ = स्वामी हो वा अनाथ = गरीब, सेवक हो, चाहे कोई रङ्क = निर्धन-दरिद्र हो, वा समृद्ध हो, उनसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है । और चाहे तो शास्त्र-पुराणोंमें वर्णित कल्पित देवगण हों, देवताओंका राजा इन्द्र हो, अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महादेव ही क्यों न होवें, तिन्होंसे भी मुझे कुछ काम नहीं है। मेरे दृष्टिमें वे सब अनाथ जड़ाध्यासी कर्मबन्धनमें बन्धे हुए आवागमन चक्रमें फिर रहे हैं। फिर भला उनसे मुझे क्या काम ? और मैं तो निज स्वरूपका ज्ञानबोधसे स्वयंस्वरूपमें स्थिति करके सनाथ हूँ । यानी मैं आप ही अपना मालिक हूँ । और कोई मेरे स्वामी वा सेवक नहीं हैं । अतएव मैं निज ज्ञानस्वरूप सनाथ, सन्तुष्ट, निर्बन्ध, निश्चिन्त हूँ ! ॥ भर्तृहरिने कहा हैः—

श्लोकः—"ब्रह्मेन्द्रादिमरुद्गणांस्तृणकणान्यत्र स्थितो मन्यते, यत्स्वादाद्विरसा भवन्ति विभवास्त्रैलोक्यराज्यादयः । बोधः कोऽपि स एक एव परमो नित्योदितो जृम्भते, भो साधो ! क्षणभंगुरे तदितरे भोगे रतिं मा कृथाः ॥" वैराग्यशतक ॥

—जिस ज्ञानस्वरूप निजानन्दमें स्थित होकर पुरुष—ब्रह्मा, इन्द्र, वायु गणादि लोकपालोंके ऐश्वर्यको तृणके या तिनकेकी समान मानता है, जिस एक अद्वितीय नित्य प्रकाशमानकी प्राप्तिके आगे त्रैलोक्यके राज्यादि सम्पूर्ण पदार्थ फीके मालूम पड़ते हैं। हे सत्पुरुषो!

साधो ! उस ज्ञान आनन्दके सिवाय संसारके अन्य नाशवान् भोगोंसे प्रीति मत करो ॥

श्लोकः— "ब्रह्मांण्ड मण्डली मात्रं किं लोभाय मनस्विनः ॥
शफरीस्फुरिते नाब्धेः क्षुब्धता जातु जायते ॥"

—सारे ब्रह्माण्डका ऐश्वर्य भी ज्ञानी विचारवान् विरक्त पुरुषको नहीं लुभा सकता । भला ! मछलीके उछलनेसे कहीं समुद्र क्षुब्ध हो सकता है ? कभी नहीं ॥

इसलिये रङ्क, नृपनाथ तथा इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिसे भी मुझे क्या करना है ? उन किसीसे मुझे तो कुछ काम नहीं । मैं तो अपने ज्ञान-वैराग्यमें ही सनाथ सुखी हूँ ॥ ४३ ॥

अब यहाँ ब्रह्ममुखसे वेदान्त-कथित वैराग्य दो दोहोंमें बतलाते हैं ॥

॥ ※ ॥ ब्रह्मज्ञानीके कथन—वेदान्तकी वैराग्य वर्णन ॥ ※ ॥

दोहाः—मैं नहिं जानों जगतको । मोको सुख दुःख होय ॥
काल कर्म ये जड़ सबै । जड़ देवादिक होय ॥ ४४ ॥

संक्षेपार्थः—हे भाई ! मैं तो जगत्को और जगत्के कार्योंको भी कुछ जानता नहीं हूँ ! और जगत्के तरफसे मुझे सुख वा दुःख होता है, ऐसा भी मैं नहीं जानता हूँ, वा ऐसा मैं नहीं मानता हूँ ! क्योंकि, काल और कर्म ये सब जड़ हैं, और देव आदिक वा दैविक ताप आदिक वह सब भी जड़ ही हैं। मैं चैतन्य उनसे सदा न्यारा निर्लिप्त हूँ । अतः जगत्से कुछ भी हानि वा लाभ होनेका मैं नहीं जानता हूँ ॥

॥ ※ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ※ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— वेदान्तियोंका कथन ऐसा हैः— अर्थात् मैं खुद ब्रह्मस्वरूप हूँ, "अहं ब्रह्मास्मि" मैं पूर्णव्यापक एक अद्वैत आत्मा हूँ । इसलिये जगत् है, ऐसा तो मैं जानता ही नहीं । फिर जो वस्तु कुछ है ही नहीं, उससे मुझे सुख वा दुःखही क्या

कैसे होगा ? तीन-कालमें जगत् सत्य है नहीं, मिथ्या प्रतीतिमात्र मायाके उपाधिका नाम ही जगत् है ? और वह माया, काल, कर्म, देवादिक ये सब जड़ हैं। ये सत्य हो नहीं सकते। तहाँ शंकराचार्यने विवेक-चूड़ामणिमें कहा हैः—

श्लोकः—"सदिदं परमाद्वैतं स्वस्मादन्य वस्तुनोऽभावात्॥
न ह्यन्यदस्ति किञ्चित्सम्यक्परमार्थतत्त्वबोधे हि॥" वि० चू०॥२२८॥

—यह परमाद्वैत ही एक सत्य पदार्थ है, क्योंकि इस स्वात्मासे अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं। इस परमार्थ-तत्त्वका पूर्ण बोध हो जानेपर और कुछ भी नहीं रहता॥

श्लोकः— "स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः॥
स्वयं विश्वमिदं सर्वं स्वस्मादन्यन्न किञ्चन॥" वि० चू०॥३८९॥

—आप ही ब्रह्मा है, आप ही विष्णु है, आप ही इन्द्र है, आप ही शिव है, और आप ही यह सारा विश्व है, अपनेसे भिन्न और कुछ भी नहीं है॥

श्लोकः— "न किञ्चिदत्र पश्यामि न श्रृणोमि न वेद्म्यहम्॥
स्वात्मनैव सदानन्दरूपेणास्मि विलक्षणः॥" वि० चू०॥४८६॥

—अब मुझे यहाँ न कुछ दिखाई देता है, न सुनाई देता है, और न मैं कुछ जानता ही हूँ! मैं तो अपने नित्यानन्द स्वरूप आत्मामें स्थित होकर अपनी पहली अवस्थासे सर्वथा विलक्षण हो गया हूँ॥ ४८६॥

जब मैं जगत्को जानता ही नहीं, तब मुझको उससे सुख-दुःख क्यों होगा ? अथवा जगत्से मुझको सुख-दुःख होता है, ऐसा भी मैं नहीं जानता। क्योंकि वास्तवमें मेरेसे जगत् भिन्न है भी नहीं। यदि व्यवहारिक सत्तामें जगत्को भिन्न भी कहा जाय, तो भी तीन काल तथा मृत्यु और कर्म ये सब जड़ ही सिद्ध होंगे, और चौदह देवता, लोक, तत्त्व आदि सब भी जड़ ही साबित हो जायँगे। इसलिये यह कल्पित जड़सृष्टि मुझे सुख वा दुःख दे नहीं सकते हैं, क्योंकि मैं

असङ्ग पुरुष ब्रह्म हूँ ॥ ४४ ॥

दोहाः— मैं चैतन्य सब जानता । ई अचेत जड़ रूप ॥
ई क्या सुख दुःख देत हैं । कहते अज्ञ स्वरूप ॥ ४५ ॥

संक्षेपार्थः— सुनो ! मैं तो खास चैतन्य स्वरूप हूँ, और द्रष्टा वा साक्षीरूपसे सब जगत्‌को जानता हूं ! इसीसे मैं सबसे पृथक् भी हूँ, और ये कर्म, काल, दैव, देह इत्यादि सब तो जड़रूप होनेसे अचेत्, अज्ञान हैं । तब कहो भला ! ये क्या किसीको सुख वा दुःख दे सकते हैं ? कभी दे नहीं सकते हैं । और जो वे किसीको सुख, दुःख देते हैं, ऐसा कहते हैं, वे उनके स्वरूपका भेद न जाननेवाले अज्ञानी हैं ॥

॥ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— वेदान्तियोंका कथन हैः— अर्थात् मैं ब्रह्म या आत्मा स्वरूपसे चैतन्य हूँ, मैं सबको जानता, पहिचानता हूँ ! त्रिकालज्ञ, सर्वज्ञ मैं ही हूँ ! तीनदेह, तीन अवस्थादिको प्रकाशित करके जाननेवाला मैं ही हूँ ।

उपनिषद्‌में भी कहा हैः—

श्लोकः— "जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिप्रपञ्चं यत्प्रकाशते ॥
तद्‌ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते ॥" उपनिषद् ॥

—जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति आदि प्रपञ्चोंको प्रकाशित करता है, वह ब्रह्म ही मैं हूँ, ऐसा जानकर मनुष्य सब बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है ॥ "यतोऽद्वयासङ्गचिदेकमव्ययम् ॥"

— मैं ब्रह्म तो सदैव अद्वितीय, असङ्ग, चैतन्य स्वरूप, एक और अविनाशी हूँ ॥

श्लोकः—"यो विजानाति सकलं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिसु ॥
बुद्धि तद्‌वृत्तिसद्भावमभावमहमित्यहम् ॥"

—जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंमें बुद्धि और

उसकी वृत्तियोंके होने और न होनेको 'अहंभाव' से स्थित हुआ जानता है, सो आत्मा मैं हूँ ॥

आदि, अन्त, मध्य; भूत, भविष्य, वर्तमान; जीव-शिव, भीतर-बाहर, नीचे-ऊपर, इत्यादिको मैं जानता हूँ, इसीसे नित्य चैतन्य हूँ। और ये पाँच तत्त्व तथा उसके विस्ताररूप विश्व मायाका कार्य अचेत, अज्ञान, एवं स्वरूपसे जड़ हैं। फिर यह अचेत जड़ माया प्रकृति, विषयादि क्या मुझे सुख वा दुःख दे सकते हैं? कदापि नहीं। क्योंकि मैं उनसे असङ्ग हूँ, इसीसे मेरी उनसे हानि-लाभ कुछ होती नहीं। माया प्रकृतिसे आत्माको सुख-दुःख होता है, ऐसा जो कहते हैं, वे बिलकुल मूढ़ अज्ञानी हैं। वे आत्मा-अनात्माके स्वरूपका भेद नहीं जानते हैं। इसलिये अज्ञानतासे अपने आत्मस्वरूपको भूलकर ही काल, कर्म, तत्त्व, पंचविषयादिसे, समयानुसार सुख और दुःख देते रहते हैं, ऐसा जो कहते हैं, वे अज्ञ हैं। उन्हें वास्तविक स्वरूपका बोध नहीं, तभी विरुद्ध बातें बोलते हैं। वास्तवमें तो आत्मा सुख, दुःखादिसे परे है। ये जड़ पदार्थोंसे उसे सुख-दुःख कुछ नहीं होता है। ऐसा जानके अखण्ड वैराग्यमें लवलीन हो रहना चाहिये। नित्यमुक्त नित्यतृप्त आत्माको रागसे कुछ काम नहीं ॥ ४५ ॥

अब दोहा ४६ से ५१ तक गुरुमुखसे साधारण वैराग्यका निर्णयसे वर्णन करते हैं ॥

॥ * ॥ वैराग्य कथनमें गुरुमुख निर्णय वर्णन ॥ * ॥

दोहाः——मन मानै कर्म काल ग्रह । मन मानै सब देव ॥
मन मानै जग चक्र सब- । चलै न जानै भेव ॥४६॥

संक्षेपार्थः—हे सन्तो! कर्म, काल और ग्रह ये सब मनकी मानन्दीसे बने हैं, वा मानन्दीसे ही बनते हैं। और देवता इत्यादि माना हुआ सब भी मनके मिथ्या मानन्दी मात्र ही हैं। और जगत्के सब चक्र, कार्य, आवागमनादि वे सब भी मनमानन्दीके

वेगसे ही चल रहे हैं। बिना पारख इसका भेद कोई नहीं जानते हैं। इसीसे उसी मनमानन्दीमें पड़के सब जीव भवबन्धनोंमें पड़े हैं वा पड़ रहे हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—अर्थात् हे जिज्ञासु-जनो! शास्त्रोक्त वैराग्य और वेदान्तियोंके कथनको, उन्हींके ग्रन्थ प्रमाणसे ऊपर कह चुका हूँ, सो परखके जान लेना चाहिये। उसमें-से सार भागको लेके असारको त्याग देना चाहिये। अब मैं निर्णयकी बात कहता हूँ, श्रवण करो! जीवकी सत्ता सम्बन्धसे नर-देहमें मनकी मानन्दीद्वारा कायिक, वाचिक और मानसिक क्रियाओंके-द्वारा अनेकों शुभाशुभ कर्म होते हैं। विशेष कर्मोंके अध्यास मानन्दीसे मनमें ही टिक जाता है। और सुकाल, अकाल, त्रयकाल, महाकाल, इत्यादि समयकी मानन्दी भी मनसे ही होता है। तथा नवग्रह, तैंतीस कोटि देवता, भूत-प्रेतादि गण, ईश्वर, ब्रह्म, खुदा, आदि ये सब मनमानन्दीके कल्पनामात्र हैं। और जगत्के कर्म चक्रका व्यवहार सब भी मनमानन्दी करके ही चल रहा है। मनमानन्दीके अध्याससे ही जन्म, मरण, गर्भबास और त्रिविधि तापादिके भोग भी हो रहा है। उसी मानन्दीमें भूल जानेसे यथार्थ भेद कोई भी जानते नहीं हैं। बिना पारख कल्पनामें ही फँसे पड़े हैं ॥ और नर-जीव सत्यासत्यका यथार्थ भेद नहीं जानते हैं, इसीसे मनसे नाना मानन्दी कर-करके कल्पनामें पड़े रहते हैं। ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, देवी, देवता, भूत, प्रेत, ऋद्धि, सिद्धि, करामात, इत्यादिको सत्य मान-मानके सब धोखामें पड़ रहे हैं। यथार्थ पारख विचार कोई करते ही नहीं। मनमाने कर्म-कुकर्म करके काल-कल्पनादिमें ग्रसित हो जाते हैं। उसी मन मानन्दीकी अध्याससे सब जगत्के आवागमनका चक्र चल रहा है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग विचारसे भेद जाने बिना सब भवबन्धनोंमें ही पड़े हुये हैं। सो परखके त्यागना

चाहिये ॥ ४६ ॥

दोहाः— रज सत तमगुण मन सकल । मनके सकल चरित्र ॥
स्वामी सेवक मन सकल । मन मानै अरि मित्र ॥४७॥

संक्षेपार्थः— और रज, सत्त्व, और तम, इन त्रिगुण और उनके सकल चरित्र भी मन-मानन्दीद्वारा ही विस्तार होते हैं। मनसे ही तीनों गुणोंकी उत्पत्ति होती है। सब जगहमें मानन्दी ही काम कर रही है। मानन्दीसे ही कठिन भवबन्धनोंमें सब जीव पड़े हैं। और स्वामी तथा सेवक, नाता, गोता, इत्यादि माना हुआ सकल व्यवहार भी मनकी मानन्दी है। फिर ईश्वर, इष्ट देवतादि स्वामी ठहराकर भक्त लोग सेवक होते हैं, सो भी मनके कल्पित मानन्दीमात्र हैं। और किसीको शत्रु समझना तथा किसीको मित्र समझना, यह भी मनकी मानन्दीमात्र ही है। यह मानन्दीकी जालोंसे छूटना बड़ा कठिन हो गया है। कोई बिरले ही पारखी मानन्दीसे न्यारे होते हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् रजोगुण सत्त्वगुण और तमोगुण, ये तीनों गुणोंकी सम्पूर्ण कियायें-व्यवहार मनद्वारा ही हुआ करती हैं। विवेक चूड़ामणिमें कहा हैः— सुनिये !

श्लोकः— "विक्षेपशक्ती रजसः क्रियात्मिका, यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥
रागादयोऽस्याः प्रभवन्ति नित्यं दुःखादयो ये मनसो विकाराः ॥"वि० ११३॥

— क्रियारूप विक्षेपशक्ति रजोगुणकी है। जिससे सनातनकालसे समस्त क्रियाएँ होती आई हैं, और जिससे रागादि और दुःखादि, जो मनके विकार हैं, सदा उत्पन्न होते हैं ॥

श्लोकः— "कामः क्रोधो लोभदम्भाद्यसूयाहङ्कारेर्ष्यामत्सराद्यास्तु घोराः ॥
धर्मा एते राजसाः पुम्प्रवृत्तिर्यस्मादेषा तद्रजो बन्धहेतुः ॥"वि० चू० ११४॥

— काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, असूया (गुणोंमें दोष ढूँढ़ना) अभिमान, ईर्षा, और मत्सर ये घोर धर्म रजोगुणके ही हैं। अतः

जिसके कारण जीव कर्मोंमें प्रवृत्त होता है, वह रजोगुण ही उसके बन्धनका हेतु है ॥ और दूसरी--

श्लोकः--"एषावृतिर्नाम तमोगुणस्य शक्तिर्यया वस्त्ववभासतेऽन्यथा ॥
सैषा निदानं पुरुषस्य संसृतेर्विक्षेपशक्तेः प्रसरस्य हेतुः ॥" ११५ ॥

—जिसके कारण वस्तु कुछ-की-कुछ प्रतीत होने लगती है, वह तमोगुणकी आवरणशक्ति है। यही पुरुषके (जन्म-मरण-रूप) संसार-का आदि-कारण है, और यही विक्षेपशक्तिके प्रसारका भी हेतु है ॥

श्लोकः--"अज्ञानमालस्यजड़त्वनिद्राप्रमादमूढत्वमुखास्तमोगुणाः ॥
एतैः प्रयुक्तो न हि वेत्ति किञ्चिन्निद्रालुवस्तम्भवदेव तिष्ठति ॥" ११८ ॥

—अज्ञान आलस्य, जड़ता, निद्रा, 'प्रमाद, मूढ़ता, आदि तमके गुण हैं। इनसे युक्त हुआ पुरुष कुछ नहीं समझता है। वह निद्रालु या स्तम्भके समान (जड़वत्) रहता है ॥ और तीसरे सत्त्वगुणके बारेमें कहा हैः—

श्लोकः–"मिश्रस्य सत्त्वस्य भवन्ति धर्मास्त्वमानिताद्या नियमा यमाद्याः ॥
श्रद्धा च भक्तिश्च मुमुक्षुता च दैवी च सम्पत्तिरसन्निवृत्तिः ॥" १२० ॥

—अमानित्व आदि, यम-नियमादि, श्रद्धा, भक्ति, मुमुक्षुता, दैवी-सम्पत्ति तथा असत्का त्याग- ये मिश्रित (रज-तमसे मिले हुये) सत्त्वगुणके धर्म हैं ॥ इन तीनों गुणोंके सकल व्यापार मनका ही कार्य है।

तैसे ही सकल चरित्र, चित्र-विचित्र तमाशा भी मनकेद्वारा ही होते हैं। जिससे सब भवबन्धन भी मन ही से खड़े होते हैं। कहा हैः—

श्लोकः--"न ह्यस्त्यविद्या मनसोऽतिरिक्ता, मनो ह्यविद्या भव बन्धहेतुः ॥
तस्मिन्विनष्टे सकलं विनष्टं विजृम्भितेऽस्मिन्सकलं विजृम्भते ॥" १७१ ॥

—मनसे अतिरिक्त अविद्या और कुछ नहीं है, मन ही भव-बन्धनकी हेतु भूता अविद्या है। उसके नष्ट होनेपर सब नष्ट हो जाता है और उसीके जागृत होनेपर सब कुछ प्रतीत होने लगता है ॥

इस तरह तीन गुणके सकल विकार और जीवनके सब चरित्र भी मन करके ही हो रहा है। फिर कोई कल्पित ईश्वरको वा किसी इष्टदेवको स्वामी जगत्कर्ता मालिक सुख-दुःखादिका दाता मानकर अपने जीवको उसके अंश-सेवक वा दासभाव समझके भक्ति करना, ये सकल कल्पना मनका ही है। अंश-अंशीभाव, स्वामी-सेवक भाव, वा सेव्य-सेवकभाव, उपासक लोगोंने जीव और ईश्वरके बीचमें माने हैं। ये सारा मन कल्पनाका ही बाढ़ है, और यह मेरा शत्रु, हानि करनेवाला है, तथा वह मेरा मित्र-हितकारी लाभ करनेवाला है। ऐसे भाव-कुभाव भी मनके मानन्दीसे ही होते हैं।

श्लोकः—"शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ माकुरुयत्नं विग्रह सन्धौ ॥"

पदः— 'रिपु, प्यारा, बेटा अरु भाई ! इनसे मत कर सन्धि लड़ाई ॥'

—मनमें कुभाव हुआ, प्रतिकूल माना, उसे दुश्मन समझा, तथा जिससे अनुकूल प्रेम-भाव हुआ, उसे मित्र माना। इस प्रकार यह सारा प्रपञ्च मनसे ही राग करके होता है। अतएव उन सब उपाधियोंको छोड़कर वैराग्य धारण करना चाहिये ॥ ४७ ॥

दोहाः—मन मानै वर्ण आश्रम । मन मानै सुत दास ॥
मन मानै त्रिय कुटुम जग । मन मानै दुर पास ॥ ४८ ॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! और तैसे ही मनुष्योंने चारवर्ण, चार आश्रम बनायके, जो हिन्दुओंने मान रखे हैं; सो भी मनमानन्दीके ही फल हैं। फिर स्त्री, पुत्र, कुल, कुटुम्ब, दास, दासी, नाता, गोतादिसे लेके यावत् जगत्के व्यवहार मनमानन्दी द्वारा हो हो रहा है। और कल्पित ईश्वरादिको कहीं दूर निराकार कहा हुआ वा पासमें साकार बताया हुआ, सो दूर वा पासमें ठहराना भी मिथ्या मन-मानन्दीमात्र ही है, ऐसा जानना चाहिये ॥

॥ ❋ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ❋ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—अर्थात् जीवोंने मनसे कल्पना

कर-करके ही संसारकी व्यवस्थाकर रखी है। अनेकों नाते जोड़ रखे हैं। यद्यपि वह झूठा जाल-जंजाल ही है। तथापि मनुष्य उसीको मान-मानके अरुझ रहे हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण, तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम भी मनके मानन्दीसे ही बनाये हैं। मनसे ही किसीको पुत्र और किसीको दास मान रहे हैं ॥ कहा है:—

श्लोकः— "मनः प्रशूते विषयानशेषान्स्थूलात्मना सूक्ष्मतया च भोक्तुः ॥
शरीर वर्णाश्रमजातिभेदान् गुणक्रियाहेतुफलानि नित्यम् ॥" वि० १७९॥

— मन ही सम्पूर्ण स्थूल-सूक्ष्म विषयोंको, शरीर, वर्ण, आश्रम, जाति आदि भेदोंको तथा गुण, क्रिया, हेतु और फलादिको भोक्ताके लिये नित्य उत्पन्न करता रहता है॥ और जगत्‌में माता-पिता, स्त्री-पुत्र, भाई-बिरादरी, कुल-कुटुम्ब, इष्ट-मित्र इत्यादि प्रकारसे नाता-गोता लगायके जो नाना सम्बन्ध स्थापित किये हैं, सो सब भी मनके मानन्दीमात्र ही हैं। परन्तु मिथ्या ही मैं-ममतामें संसारी लोग बहुत फँसे हैं। कहा है:—

"मेरो देह मेरो गेह, मेरो परिवार सब। मेरो धनमाल मैं तो, बहुविधि भारो हूँ ॥
मेरे सब सेवक हुकुम, कोऊ मेटै नाहिं। मेरी युवतीको मैं तो, अधिक पियारो हूँ ॥
मेरे वंश ऊँचो मेरे, बाप दादा ऐसे भये। करत बड़ाई मैं तो, जगत उजारो हूँ ॥
सुन्दर कहत मेरो, मेरो करि जौन शठ। सोई नहीं जानै मैं तो, कालहीको चारो हूँ ॥
॥ सुन्दर विलास ॥

सवैयाः—"झूठो धन झूठो धाम, झूठी सुख झूठो काम।
झूठी देह झूठो नाम, धरिके भुलायो है ॥
झूठो तात झूठो मात, झूठे सुत दारा भ्रात।
झूठो हित मानि-मानि, झूठो मन लायो है ॥
॥ सुन्दर विलास ॥

इसीसे जितनी मनकी मानन्दी है, वह सब बेकाम है; और मन-कल्पनाकी मानन्दीसे किसीने ईश्वर, ब्रह्म वा खुदाको बहुत

दूर, सत्यलोकमें वा विहिस्त-तख्तमें असंख्य योजनोंके ऊपर शून्य आशमानमें कर्त्ता पुरुषका बासा माने हैं, कोई चार धामोंमें ईश्वरको मानते हैं, वहाँ ढूँढ़नेको जाते हैं, और कोई-कोई तो आस-पासके देव मन्दिरोंमें, नदियोंमें और मस्जिदोंमें उसे मानते हैं। कोई-कोई अपने शरीरके पासमें नाभि, हृदय, त्रिकुटी और भ्रमरगुफामें आत्मा-परमात्माका बासा ठहरायके भक्ति, योग, ज्ञानके साधनाएँ करते हैं, ध्यानस्थ हो रहते हैं। ऐसे दूर और नजदीक मान-मानके भूले हैं॥ सद्गुरुने कहे हैं:—

शब्दः—"बात ब्योंते अस्मानकी, मुद्दति नियरानी॥
बहुत खुदी दिल राखते, बूड़े बिनु पानी॥" बी० श०॥
"झूठेकी मण्डान है, धरती अशमाना॥
दशहुँ दिशा वाकी फन्द है, जीव घेरे आना॥" बी० श० ११३॥

अतः नरजीवोंने मनसे मानके ही वर्ण, आश्रम, पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब, दास-दासी आदि जगत् व्यवहार फैलाये हैं। कोई गुरुवा लोग नजदीक, पासमें वा दूरमें ईश्वर, देवतादि मानके भूलमें भुला रहे हैं। ऐसा राग बढ़ायके बद्ध हो रहे हैं, बिना विवेक॥ ४८॥

दोहाः—मन मानै जप योग है। मन मानै तप आश॥
जो मनको मानै नहीं। सुखि सो साधु निराश॥४९॥

संक्षेपार्थः— और कोई अनेक प्रकारसे जप और योग करते हैं, सो भी मन-मानन्दी है। फिर तपस्या करके कोई नाना प्रकारसे सुख आदि पानेकी आशा करते हैं, सो भी मनकी मानन्दी झूठी है। जहाँतक मन को मानना है, तहाँतक दुःख और बन्धन ही लगा है। अतः जो मनकी बातको नहीं मानते, सम्पूर्ण मानन्दीको त्याग किये रहते हैं, सो ऐसे साधु निराश वर्तमानमें सदा सुखी रहते हैं। दृढ़ वैराग्यमें ही शान्त, निवृत्त रहते हैं॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात् हे सन्तो! कितनेक भ्रमिक लोग मन-मानन्दी करके नाना प्रकारके जाप करते हैं। सप्त-बीज मन्त्रोंका जाप, दीक्षा मन्त्रका जप, काली, भैरव, महावीर, बेताल, भूतगणादिके मन्त्रोंका जाप, गायत्री आदिका जाप, और अजपा जापको विविधि प्रकारसे जपा करते हैं। तैसे ही लय, तारक, अमनस्क, सांख्य, लम्बिका, राजयोग, कुण्डली और हठयोग, ऐसे अष्टयोगोंका अभ्यास साधनाएँ किया करते हैं। फिर नाना तरहसे तपस्या करते हैं, तहाँ पंचाग्नि, जलशयन, अरण्यनिवास, मौनी दिगम्बर, जटाधारी, ठाडेश्वरी, ऊर्धवाहु, निराहारी, फलाहारी आदि तपस्वी होते हैं। वे सात स्वर्ग प्राप्ति, ईश्वर, देवी-देवतादि प्राप्ति, ऋद्धि, सिद्धि, सामर्थ्य प्राप्ति आदि, कईएक आशा-वासनादिको पकड़के मन-मानन्दीके घनचक्रमें घुम रहे हैं। मनमाने भ्रम, धोखामें पड़के गाफिल हो रहे हैं। सद्गुरुने कहे हैं:—

साखीः— "ई मन चञ्चल ई मन चोर, ई मन शुद्ध ठगहार ॥

मन-मन करते सुरनर मुनी जहँड़े, मनके लक्ष दुवार ॥ बी० साखी ९६ ॥

— इस प्रकारसे मनमाने कल्पना पकड़-पड़कके कोई जपकर रहे हैं, कोई तप करनेमें लगे हैं, कोई योग-साधना करके समाधि लगा रहे हैं। परन्तु वे सब धोखासे आशा-पासमें ही बँधे हुए हैं। ऐसे-ऐसे मन-मानन्दी कल्पनाको जो नहीं मानते, भ्रम, धोखामें नहीं पड़ते, परख करके सकल वासना, चाहना, मानन्दीको जिन्होंने परित्याग कर दिया है, सोई सच्चे त्यागी, वैराग्यवान् साधु हैं। वे निज पदमें निराश-निवृत्तिसे सद्गुण सहित, सदासुखी जीवन्मुक्त होते हैं। सद्गुरुका वचन है:—

"मन सायर मनसा लहरि, बूड़े बहुत अचेत ॥

कहहिं कबीर ते बाँचिहैं, जाके हृदय विवेक ॥" बीजक, साखी १०७॥

सोई साधु निराशपदमें सुखी रहते हैं, जिन्होंने मन-मानन्दीको

परित्याग कर दिया है। मनके विस्तारको वे मानते ही नहीं, सदा निराश वर्तमानमें ही रहते हैं ॥ ४९ ॥

दोहाः— मनहिं रोग अरु भोग है। मनहिं पाप अरु पून्य ॥
मनहिं क्रिया अरु कर्म मन। मन चेतन अरु शून्य ॥ ५० ॥

संक्षेपार्थः— और हे सन्तो ! रोग बढ़ानेवाला भी मन ही है, और भोगमें लगने लगानेवाला भी मन ही है। पापमें प्रवृत्त होनेवाला भी मन ही है, तथा पुण्यकार्य करनेवाला भी मन ही होता है, फिर नाना क्रियायें प्रगट करनेवाला भी मन ही है, और सब क्रियाओंको समेटकरके शून्य होनेवाला भी मन ही है। कर्म भी मनसे ही होते हैं, सचेत-जाग्रत् भी मन ही होता है, मूढ़ भी मन ही बनता है, और चेतन जीवको शून्यमें लेजाके गाफिल करनेवाला भी मन ही है। मन सोई पूर्व-पश्चात्की मानन्दी है, ऐसा जानिये ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् पञ्चविषय-भोगोंमें आसक्त होके, भोगोंको अनेक प्रकारसे भोगनेवाला यह मन ही है। "भोगे रोग भयं"— इस उक्तिसे भोगोंके पश्चात् देह-सम्बन्धी अनेक रोगोंमें पीड़ित-ग्रसित होके भी मन ही रहता है। तहाँ कहा हैः—

श्लोकः— "स्वप्नेऽर्थशून्ये सृजति स्वशक्त्या भोक्त्रादि विश्वं मन एव सर्वम् ॥
तथैव जाग्रत्यपि नो विशेषस्तत्सर्वमेतन्मनसो विजृम्भणम् ॥"
॥ विवेक चूड़ामणि १७२ ॥

— जिसमें कोई पदार्थ नहीं होता, उस स्वप्नमें मन ही अपनी शक्तिसे सम्पूर्ण भोक्ता-भोग्यादि प्रपञ्च रचता है। उसी प्रकार जागृतिमें भी और कोई विशेषता नहीं है, अतः यह सब मनका विलासमात्र है, और नाना प्रकारके पाप-कर्म भी मनसे ही होते हैं, तथा मन ही से अच्छे पुण्य कर्म भी होते हैं। अर्थात् शुभाशुभ कर्म मनद्वारा ही होते हैं और उसके संस्कार भी उसी मनमें ही टिके

रहते हैं, सो समय पायके देहधारीको दुःख-सुख भोगानेका कारण होते हैं; और नाना प्रकारसे यौगिक क्रियाः— नेति, धोती, वस्ती, कपाली, कुञ्जल, न्योली, षट् चक्रभेदन, दश मुद्रा, आदि क्रिया भी तन, मनसे ही होते हैं, और षट्कर्म, सोलह संस्कार आदि नाना कर्मकाण्ड भी मन मानन्दी करके ही होते हैं, इसलिये वह मनका ही विकार है, और कोई समाधि लगाकरके मनको उन्मुनकर शून्य किये रहते हैं, उसीको केवल ब्रह्म माने हैं। अथवा बौद्ध सम्प्रदायमें एक पक्षने शून्यवाद ठहराया है। सर्व दर्शन-संग्रहमें कहा हैः—

"यथा क्रमं सर्वशून्यत्वबाह्यशून्यत्व बाह्यार्थानुमेयत्वबाह्यार्थप्रत्यक्षत्ववादानातिष्ठन्ते ॥"

—माध्यमिक भावनामें, सर्वशून्यत्त्व मानता है। योगाचार भावनामें, बाह्य शून्यत्त्व मानता है। सौत्रान्तिक भावनामें, बाह्यार्थानुमेत्त्व कहता है, और वैभाषिक भावनामें, बाह्यार्थ प्रत्यक्षवाद अवस्थित करता है ॥

"केचन बौद्धा बाह्येषु गन्धादिषु आन्तरेषु रूपादिस्कन्धेषु सत्स्वपि तत्रानास्थामुत्पादयितुं सर्वं शून्यमिति ॥"

—कोई-कोई बौद्ध मतावलम्बी लोग वायु गन्धादिमें एवं आन्तरिक रूपादिस्कन्ध विद्यमान ही उसमें अनास्था उत्पादनार्थ सर्व शून्य कहते हैं ॥ इस तरह बौद्धोंका शून्यवाद पकड़ना, सो भी मनकी कल्पना भावनामात्र ही मिथ्या है। और वेदान्ती लोग ब्रह्मको कोई चेतन मानते हैं, फिर व्यापक भी कहते हैं। कहा हैः—

दोहाः—"अन्तर बाहिर एकरस, जो चेतन भरपूर ॥
विभु नभ सम सो ब्रह्म है, नहिं नेरे नहिं दूर ॥" विचारसागर ॥

विचारसागर तरङ्ग ४ में चार प्रकारके चेतन कहा है, सो भी मनके कल्पना ही है। इस प्रकार रोग, भोग, पाप, पुण्य, क्रिया, कर्म, चैतन्य, ब्रह्म-ईश्वरादि और शून्यस्थिति यह सब मन-मानन्दीके विस्तार हैं। उसी मानन्दीमें पड़के जीव जड़ाध्यासी हो रहे हैं। कहा हैः—

श्लोकः—"अध्यासदोषात्पुरुषस्य संसृतिरध्यासबन्धस्त्वमुनैव कल्पितः ॥
रजस्तमोदोषवतोऽविवेकिनो जन्मादिदुःखस्य निदानमेतत् ॥" १८१॥
॥ विवेक चूड़ामणि ॥

—अध्यास दोषसे ही पुरुषको जन्म-मरणरूप संसार होता है और यह अध्यासका बन्धन इसीका कल्पित किया हुआ है। तथा रज, तम आदि दोषयुक्त अविवेकी पुरुषके लिये, यह अध्यास ही जन्मादि दुःखका मूल करण है ॥

श्लोकः—"अतः प्राहुर्मनोऽविद्यां पण्डितास्तत्त्वदर्शिनः ॥
ये नैव भ्राम्यते विश्वं वायुनेवाभ्रमण्डलम् ॥" वि० चू० १८२॥

—अतः तत्त्वदर्शी विद्वान् मनको ही अविद्या कहते हैं। जिसकेद्वारा वायुसे मेघ-मण्डलकी भाँति, यह सम्पूर्ण विश्व भ्रमाया जा रहा है ॥

यह मन-मानन्दी बड़ा जबरदस्त बन्धन है। पारखबोध हुए बिना यह छूट नहीं सकता है। इसी कारण चौरासी योनियोंमें जाके जीव सब भ्रमा करते हैं॥ चैतन्य जीव शून्यादिके वासनावश शून्य गर्भवासको ही प्राप्त होते हैं, बिना पारख ॥ ५० ॥

दोहाः—सो मन मैं मानौं नहीं। काह भोग कहा त्याग ॥
जो है मनको भानबो। सो प्रपंच वैराग ॥५१॥

संक्षेपार्थः—हे भाई! जो अबतक ऊपरमें जितनी बात कह आया हूँ, सो मनकी मानन्दीको वा उस मनकी बातको एक भी मैं तो मानता नहीं हूँ, चाहे भोग सम्बन्धी बात हो, और चाहे गुरुवा-लोगोंकी त्याग सम्बन्धी बात हो, उसे मैं मानता ही नहीं। उससे मुझे क्या करना है? और जो लोग मनको मान-मानके नाना तरहकी मानन्दी बढ़ाते जाते हैं, सो तो उन्होंकी प्रपंचोंका ही विस्तार है, सो वैराग्य नहीं है, किन्तु वैराग्यके नकल, स्वांग, झूठा आडम्बर-मात्र ही है। वे वैराग्यके आड़में, प्रपंच बढ़ानेवाले धूर्त, प्रपंची हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—विवेकी वैराग्यवान् सन्त कहते हैंः—अर्थात् हे सन्तो ! राग और त्यागमें बहुत अन्तर है। खानी-जाल तो मोटा बन्धनकारूप ही है, और जहाँ तक वाणी जालकी कल्पना मनकी मानन्दी है, वहाँ तक भी सूक्ष्मराग लगा हुआ होनेसे वह भी बन्धन ही है। ऐसा यथार्थ जानके गुरुकी कृपा, पारखबलसे मैं अब उन सकल मनके मानन्दीको परित्याग कर देता हूँ। सो एक भी मन-मानन्दीको मैं अब नहीं मानता। विषयानन्दसे लेके ब्रह्मानन्दतकके भी भोगोंसे मुझे कोई काम नहीं। मैंने त्याग क्यों, किस लिये किया कि, जीवन्मुक्तिके लिये। फिर भोगसे मुझे क्या प्रयोजन ? क्या करना है ? अर्थात् खानी-वाणीकी मनका विकार, सो मैं एक भी नहीं मानता। भोग क्या है ? सो बन्धन है। त्याग क्या है ? सो मुक्ति है। कहाँ भोग और कहाँ त्याग; इसमें बहुत फरक है। यानी जब मैं मन-मानन्दीको मानता ही नहीं, फिर संसारी विषय भोगोंकी इच्छा तो मैं करता ही नहीं, और कल्पित स्वर्गादि सुख भोगनेके लिये भी मेरा त्याग नहीं है। जो त्यागी होके परलोकादिके सुखभोग चाहते हैं, उनमें त्याग ही कहाँ हुआ ? अष्ट-सिद्धि, नवनिद्धि, षट्गुण ऐश्वर्य, सामर्थ्य प्राप्तिकी इच्छा, लोक-परलोककी वासना, सातस्वर्गादि, ईश्वर, खुदा, ब्रह्म, और नाना देवतादिकोंकी मानन्दी उनके प्राप्तिकी आशा, इत्यादि जो कुछ भी मान रखा है, सो सब मनके मानन्दी वैराग्यके बीचमें महान् प्रपञ्च ही खड़ा किये हैं। इसलिये पारख बिना बड़े-बड़े त्यागी, वैरागी, संन्यासी, उदासी, वनवासी आदि धोखा खायके भवबन्धनोंमें ही जकड़े पड़े हैं। उनसे शुद्ध त्याग-वैराग्य पालन नहीं हुआ। वैराग्यके जगहमें उल्टा पञ्चकोशके वाणीकी प्रपञ्च, झञ्झट, उपाधि ही फैलाये। इसीसे वे सब जड़ाध्यासी और बद्ध भये और हो रहे हैं। सद्गुरुने कहे हैंः—

सं० नि० षट्० ३७—

शब्दः— ता मनको चीन्हों मोरे भाई ! तन छूटे मन कहाँ समाई ॥ १ ॥
सनक सनन्दन जैदेव नामा । भक्ति सही मन उनहुँ न जाना ॥ २ ॥
अम्बरीष प्रह्लाद सुदामा । भक्ति हेतु मन उनहुँ न जाना ॥ ३ ॥
भरथरी गोरख गोपीचन्दा । ता मन मिलि-मिलि कियो आनन्दा ॥ ४ ॥
जा मनको कोई जानु न भेवा । ता मन मगन भये शुकदेवा ॥ ५ ॥
शिव सनकादिक नारद शेषा । तनके भीतर मन उनहुँ न पेखा ॥ ६ ॥
एकल निरञ्जन सकल शरीरा । तामहँ भ्रमि-भ्रमि रहल कबीरा ॥ ७ ॥
॥ बीजक, शब्द ६२ ॥

साखीः— मूल गहेते काम है, तैं मत भरम भुलाव ॥
मन सायर मनसा लहरी, बहै कतहूँ मत जाव ॥ ६० ॥
माया तजे क्या भया ?, जो मान तजा नहिं जाय ॥
जेहि माने मुनिवर ठगे, सो मान सबनको खाय ॥ १४० ॥
माया केरी वशि परे, ब्रह्मा विष्णु महेश ॥
नारद शारद सनक सनन्दन । गौरी पूत गणेश ॥ १४६ ॥
॥ बीजक, साखी ॥

अतएव खानीका भोग और वाणीका त्याग यह दोनों ही मन-मानन्दीके भीतर हैं। इससे क्या मुक्ति होती है ? कदापि नहीं। जो मनका राग मानन्दी है, सो तो प्रपञ्च है, असली वैराग्य नहीं। इसलिये सो मनमानन्दीको अब मैं नहीं मानता। उसे भीतर-बाहरसे परित्याग करके निज स्वरूप पारखमें ही स्थित हो रहता हूँ। यही मुख्य सार वैराग्य है ॥ ५१ ॥

अब यहाँ यथार्थ गुरुमुख निर्णयसे, अनुभवका वैराग्य दोहा ५२ से १०२ तक वर्णन करते हैं ॥

॥ राग-वैराग्यादि यथार्थ निर्णय वर्णन ॥ भय और लोभका निर्णय ॥

दोहाः—मतियनमें भय मतनको । यतियनमें भय नार ॥
त्यागिनमें भय लोभ है । युद्ध समय भय मार ॥ ५२ ॥

संक्षेपार्थः— देखिये ! रागमें लगनेवालोंको सब जगह भय लगा

ही रहता है। सो कैसे कि—मतवादियोंमें एक दूसरेके द्वारा मत-वादमें परास्त होकर अपमानित होनेका भय होता है। फिर त्यागियोंमें स्त्रीके द्वारा त्याग खण्डित होके पतित होनेका भय होता है। इसीसे यति लोग स्त्रियोंसे डरते रहते हैं, और नारियोंके सङ्ग-साथ कभी नहीं करते हैं। तथा त्यागी लोग अपनेमें लोभ उत्पन्न न हो, ऐसा सोचके लोभसे सदा भयभीत होते रहते हैं; और युद्धके बखतमें सैनिकोंको अस्त्र-शस्त्रोंकी मार पड़नेका भय लगा रहता है। ऐसे भय सबमें लगा है ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः—अर्थात् बुद्धिमान् विद्वान् कहलानेवाले, विभिन्न मतवादी, शास्त्री, पौराणिक आदि लोगोंमें अपने-अपने मत, पन्थ, ग्रन्थ, आदिके मानन्दीमें बड़ा पक्ष-पात लगा रहता है। खण्डन-मण्डनके कीचड़में वे फँसे रहते हैं। इसलिये उन्हें भी भिन्न-भिन्न मतवादी, कट्टर विवादी, तार्किक, बकवादी लोगोंकी अथवा अपनेसे भी ज्यादा जाननेवाले, धाराप्रवाह व्याख्यान देनेवाले, वाद-विवादमें परास्त कर देनेवालोंसे भय लगा रहता है। जैसै बन्दी पण्डितने बहुतसे ऋषियोंको शास्त्रार्थमें हराके कैद किया था, तो पीछे अष्टावक्रने आके, शास्त्रार्थमें उसे भी परास्त किया था। इसीसे एक मतवादियोंको दूसरे मतवादियोंका डर, शङ्का, त्राश, लगा रहता है। क्योंकि दोनों भी मत, पन्थोंके पक्ष पकड़के अभिमानमें ग्रसित रहते हैं। इसीसे दूसरेसे नीचा देखना न पड़े, उसके लिये भयभीत रहते हैं। "शास्त्रेवादभयं"—शास्त्रमें वाद-विवादका भय लगा है। तैसे ही त्यागी, ब्रह्मचारी, संन्यासी, उदासी, वैरागी, यति, निहङ्ग, साधु लोगोंमें स्त्रियोंके तरफसे भय लगा रहता है। कहीं स्त्री आके हमारे त्याग, वैराग्यमें विघ्न न डाल दे, ब्रह्मचर्य खण्डित न कर दे। हाव, भाव, कटाक्ष फैलाके कदाचित् फँसा न लेवे, ऐसा सोचके इसके लिये डरते हुए दिन-रात सचेत रहते हैं।

वे स्त्रियोंसे कभी प्रेम नहीं करते हैं। स्त्रीको प्रत्यक्ष नर्ककुण्ड ही समझके तिरस्कार करते हैं। कहा हैः—

श्लोकः— "अन्तकः पवनो, मृत्युः पातालं बड़वामुखम् ॥
क्षुरधारा विषं सर्पो वह्निरित्येकतः स्त्रियः ॥" महाभारत ॥

—काल, पवन, मृत्यु, पाताल, बड़वानल, छुरेकी धारा, विष, सर्प, और अग्नि, ये सब एक ओर हैं, और स्त्रियाँ एक ओर। अर्थात् स्त्री उन सबसे बढ़के हानि करती है ॥

श्लोकः— "तत्सान्निध्यं ततत्यक्त्वा श्रेयोऽर्थी दूरतो वसेत् ॥
नारीतत्सङ्गिसङ्गेन चित्तं विक्रियते यतः ॥" मु० ॥

—अतः कल्याणकामी पुरुष उनकी समीपीको त्यागकर, सदा दूर ही रहे। क्योंकि स्त्री और उनके सङ्गियोंका सङ्ग करनेसे चित्त विकृत हो जाता है ॥

—ऐसा समझके, यतियोंको स्त्रियोंका भय विशेष होता रहता है। उससे दूर ही रहते हैं, और त्यागी पुरुषवर्ग विशेष करके, लोभ, लालचसे भयभीत होते हैं। कभी लोभमें वृत्ति न जावे, ऐसा प्रयत्न करते हैं। क्योंकि कहा है—"लोभमूलानि पापानि"—पापोंका मूल कारण लोभ ही है ॥ और सद्गुरुने भी बीजक साखी २० में कहे हैः—

साखीः— "लोभे जन्म गँवाइया, पापै खाया पून ॥
साधी सो आधी कहै, तापर मेरा खून ॥" बी० सा० २० ॥

"पाप मूल है लोभ गँवारा। मूरख पण्डित नाहिं विचारा ॥" तिमिर भास्कर ॥

अतएव त्यागियोंमें सबसे ज्यादा भय लोभका रहता है। त्यागी लोग कोई करपात्री होते हैं, कोई मिट्टीके बर्तन और जलपात्र, भिक्षा-पात्र भी मिट्टीके पात्र ही रखते हैं। फटे-टूटे चीथड़े पहिनके गुजारा करते हैं। कहा हैः—

श्लोकः— "रथ्याचर्पट विरचित कन्थः, पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः ॥
न त्वं नाहं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोक ॥"

"चौहट चिथड़न कन्था कीन्हा, पाप रु पुण्य रहित पथ लीन्हा ॥
नहिं तू नहिं मैं नहिं यह लोका, तो किस हेतु कीजिये शोका ॥" च० पं० १०॥

इस तरह विचार करके लोभको छोड़कर, त्याग-वैराग्य संयुक्त रहते हैं।

और लड़ाईके समयमें युद्ध भूमिकामें जबर्दस्त मारा-मार, काट-मार मच जाता है। दनादन अस्त्र, शस्त्रोंकी वर्षा होने लग जाती है। गोली, तोप, बमगोला वगैरह धड़ाधड़ छूटने लग जाते हैं। पुराने जमानेमें बाणवर्षा करते रहे। ऐसे अनेकों प्रकारसे घमासान युद्ध होते वक्तमें कायर या डरपोकोंके मनमें बड़ा ही भय व्याप जाता है। हृदय धड़-धड़ाने लगता है, मनमें धुक-पुक धुक-पुक होनेसे बड़ी घबराहट हो जाती है। मार पड़नेके भयसे घबराके कितनेक लोग तो रणस्थल छोड़के भाग भी जाते हैं, छिप जाते वा हार मानके चले जाते हैं। जो शूर-वीर होते हैं, वे लड़-लड़के मर मिटते हैं। भयङ्कर युद्धके समयमें भयके मारे बहुतेरे हिम्मत छोड़के मार पड़नेके डरसे, पलायन हो जाते हैं। ऐसे सर्वत्र भय लगा ही हुआ है। एक-न-एकसे सभी भय खाते हैं। कोई बिरले ही निर्भय होते हैं ॥ ५२ ॥

दोहाः—जाति पाँतिको गृहिनमें। भेषनमें भय भेष ॥
जगत सकल दुःखरूप है। निर्णय करिके देख ॥ ५३ ॥

संक्षेपार्थः—और गृहस्थी लोगोंमें जात-पाँतमें भेद पड़के झंझट, झगड़ा होनेका भय लगा है। तथा षट् दर्शनोंके भेषधारियोंमें परस्परके भेषोंकी मर्यादामें विपरीत होके, होनेवाली बड़ी भारी उपाधिका, भेषसे पतित होनेकी, निर्वासित किये जानेकी, इत्यादिका भय लगा रहता है। इस प्रकार सब तरफ विवेक-विचारसे निर्णय करके देखिये! सरासर सकल जगत्के कार्य मन-मानन्दीके भीतर रागसे सना हुआ होनेसे, दुःखरूप ही है। सुख तो सिर्फ एक दृढ़

वैराग्यसे, निवृत्ति स्थितिमें ही है, यही बात यथार्थ है ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—अर्थात् और संसारी गृहस्थी लोगोंमें हिन्दुओंने चार वर्ण, ३६ जातियाँ माने हैं। "कान्यकुब्ज चिन्तामणि" नामक ग्रन्थमें लिखा हैः—"जनाब आनरेवल डा० हण्टरके इतिहासमें लिखा है कि, अब ब्राह्मणोंकी १८८६ जातिसे कम नहीं हैं, परन्तु मैं १२० ब्राह्मणोंकी जातिके नाम जानता हूँ। जो ब्राह्मणोंकी वंशावली आदि पुस्तकोंमें पाये जाते हैं, और एक-एक भेदमें अनेकों भेद हैं, सो सब जानना समझना कठिन है।"

अब देखिये! इसी प्रकार अन्य समस्त जातियोंमें भी अनेकों भेदका विस्तार किये हैं। उनमें कुलाचार, लोकाचार, देशाचार, आदि भिन्न-भिन्न रीति-रिवाजसे जाति-पाँति, छुआछूत, लेन-देन, खान-पान, विवाह आदि सम्बन्ध कायम कर रखे हैं। अगर उसमें कोई विरुद्ध हुआ, तो जाति-बिरादरीके लोग उसका कसूर देखके उसे दण्ड देते हैं। जात-बाहर कर देते हैं, तेरा जात चला गया, कहके पंक्तीसे उतार देते हैं। अर्थ-दण्ड, प्रायश्चित, भोज-भण्डारा, करने लगाते हैं। सब प्रकारसे सम्बन्ध तोड़के दोषीको तङ्गकर बेइज्जत करते हैं। इसवास्ते अपने-अपने जाति नियमके मुताबिक सब लोग चलते हैं। जातिके पञ्च बिरादरियोंसे डरते रहते हैं। ऐसे गृहस्थोंमें जात-पाँतका भय होता रहता है। कहा हैः—

श्लोकः— "स्वजातिपूर्वजानां हि यो न जानाति संभवम् ॥
स भवेत्पुंश्चलीपुत्र सदृशः पित्रवेदकः ॥" कान्यकुब्ज० ॥

—जो कोई अपने कुल-गोत्रकी उत्पत्ति नहीं जानता, वह कुल, गोत्रको न जाननेवाला, वेश्याके पुत्रके समान, कुल-धर्मको नष्ट करता है ॥

ऐसे वाक्योंसे डरके जातिके विचार, गृहस्थ लोग किया करते हैं। तैसे ही षट् दर्शनोंके भेषधारियोंमें, अपने-अपने मत, पन्थोंके

भेष प्रपञ्चोंके तरफसे भय लगा रहता है । इसीसे भेषमें फूट हो-हो करके, षट् दर्शनोंसे—९६ पाखण्ड निकले हैं । तहाँ कहा हैः—

साखीः— "योगी जङ्गम सेवड़ा, संन्यासी दर्वेश ॥
छठवाँ कहिये ब्राह्मण, छौ घर छौ, उपदेश ॥ पञ्चग्रन्थी० ॥
"दशसंन्यासी, बारह योगी, चौदह शेख बखान ॥
अठारह ब्राह्मण अठारह जङ्गम, चौबीस सेवड़ा परवान ॥" पं० मा० ॥

और इनमेंसे भी शाखा, प्रशाखा, अनुशाखा, शिष्य-शाखा फूटते हुए भेष समूहमें लाखों तरहके नाना भेद हो चुके हैं, उन सबको गिनके, कौन समय गवाँवै ? मतलब यह कि, भेषमें भी नियम पालन न करके विरुद्ध आचरण करनेसे, भेषके मुखिया लोग, उस दोषीको यथायोग्य दण्ड देते हैं । अगर कोई साधु, भेषधारी, व्यभिचारी, भगभोगी हुआ, तो उसके भेषका चिह्न उतारके या छीनके उसे पतित समझ करके, पन्थसे निकाल देते हैं । इत्यादि प्रकारके व्यवथा होते है, इसलिये भेषधारियोंको भेषके सरपञ्च गुरु वा आचार्यका भय होता है, जिससे वे नियमपूर्वक चलते हैं । सब कोई अपनी अपनी मर्यादा पालन करते हैं । मर्यादा भङ्ग होनेपर दण्ड पाते हैं ! कहा हैः—

साखीः— "वन ते भागि बेहड़े परा, करहा अपनी बान ॥
वेदन करहा कासों कहै, को करहाको जान ॥" बीजक सा० ४४ ॥

हे सन्तो ! सब तरफ दृष्टि फैलाकर, निष्पक्षरूपसे यथार्थ निर्णय करके देखिये ! तो सम्पूर्ण जगत् महाजाल दुःखका ही रूप है । क्योंकि यहाँपर समस्त प्राणी और मनुष्य-लोभ, भय, तृष्णा, आशा, मोह, क्रोध, काम, स्त्रीकी विषयासक्ति, ईर्षा, द्वेष, और नाना प्रपञ्च, बैर, घात, हिंसा, नशा-सेवन और कुटिलता इत्यादि, अनेकों दुःखदाई चाल-कुचालमें पड़े हैं । जिससे दैहिक, दैविक, भौतिक यह त्रिताप भोगके जन्म, मरण, गर्भवासके चक्रमें पड़के, असह्य दुःखको ही भोग रहे हैं । इस प्रकार सकल जगत् दुःखोंका ही स्वरूप बना

हुआ है। निर्णय करके देखो! जड़ाध्यासी जीवोंको कहीं भी स्थिति, ठहरावका शान्ति सुख नहीं है। जो पूर्ण त्यागी पारखी हैं, वे ही सुखी हैं। अतएव पारखी सद्गुरुके सत्य बोध लेकर तुम लोग भी सुखी हो जाओ ॥ ५३ ॥

॥ * ॥ तृष्णाकी अङ्ग निर्णय वर्णन ॥ * ॥

दोहाः—तृष्णाकी विशेषता । कहाँलों करों बखान ॥
देह मरै इन्द्रिय थकें । तृष्णा न मरै निदान ॥ ५४ ॥

संक्षेपार्थः— हे भाई ! मैं मनसे उत्पन्न होनेवाली तृष्णाकी विशेषता तो भी कहाँतक वर्णन करूँ ! क्योंकि काम करते-करते इन्द्रियाँ थक जाती हैं। और बुढ़ापेमें सब इन्द्रियाँ असक्त शिथिल हो जाती हैं, फिर एक दिन देह भी मरके नाश हो जाता है। तथापि तृष्णा जो है सो, निदान = अन्ततक भी नहीं मरती है और आप ही वह कभी नाश नहीं होती। अतः यह तृष्णाका जाल बहुत ही लम्बा है, ऐसा जानो ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् हे विवेकी सन्तो ! मैं इस अघटित, अतृप्त रहनेवाली तृष्णारूपी महामायाकी, विशेषण गुण-अवगुणको कहाँ तक वर्णन करके कहूँ, क्योंकि तृष्णाके वर्णन करते-करते सब कोई थक चुके हैं। तो भी तृष्णा नहीं थकी। इधर संसारमें विषय भोगते-भोगते आयु बीत जानेसे, दशों इन्द्रियाँ शिथिल, वा थकित हो जाती हैं; बुढ़ापेमें अथवा विशेष रोग ग्रसित होनेपर इन्द्रियोंसे बराबर कार्य नहीं होते हैं। और देह भी जीर्ण-शीर्ण होके एक दिन मर जाती है, मृत्यु होनेपर सड़-गलके विनाश भी हो जाता है। परन्तु हाय ! यह पापिनी तृष्णा, तो निदान = आखिर तकमें भी नहीं मरती है। यह तृष्णा अपने तो मरती या छूटती नहीं, जिसके सङ्ग लगती है, उसका सत्यानाश करके विनाश

ही कर डालती है, उतनेपर भी वह तृप्त नहीं होती। क्या कहें? इसने तो जीवोंको आदि = शुरूसे लेके, अन्ततक परेशान करके मार डाला, परन्तु हह स्वयं अध्यासरूप होके ही रही, मरके तो नाश नहीं हुई। अर्थात् तृष्णाकी ज्यादती, बुराई बहुत हैं, सो कहाँतक कहा जाय। यहाँ तो परखानेके वास्ते कुछ थोड़ा ही कहेंगे, उतनेसे बुद्धिमान् लोग समझ सकेंगे। विषय भोगते-भोगते इन्द्रियाँ थक जाती हैं, देह भी एक दिन मर जाती है, तब भी अन्ततक तृष्णा पापिनी नहीं मरती है। राजा पुरुरवा, ययाति आदि लोग इसके नमूने भये हैं। पीछे वे भी पछताये हैं। इसके बारेमें कहा हैः—

श्लोकः— "तृष्णाया विषयैः पूर्तिर्नैव कैश्चित्कृता पुरा ॥
करिष्यन्ति न चान्येतैर्भोगतृष्णां ततस्त्यजेत् ॥" मु० ॥

—इस तृष्णाकी पूर्ति पूर्वकालमें किसीसे भी नहीं हुई, और न आगे ही अन्य किसीसे होगी; अतः भोगोंकी तृष्णा त्याग देनी चाहिये ॥ और सुन्दर विलासमें कहा हैः—

"नयननकी पल ही पलमें छण, आधिघरी घटिका जु गई है ॥
याम गयो युग याम गयो पुनि, साँझ गई तब रात भई है ॥
आज गई, अरु काल गई, परसों तरसों कछु और ठई है ॥
सुन्दर ऐसहि आयु गई, तृषणा दिन ही दिन होत नई है ॥"सुन्दर वि०॥

और भर्तृहरिने भी कहा हैः—

श्लोकः— "भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ॥
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥" वै० शतक॥

छप्पयः—भोग रहे भरपूर, आयु यह भुगत गई सब।
तप्यौ नाहिं तप मूढ़, अवस्था तपत भई अब ॥
काल न कितहूँ जात, बैंस यह चली जात नित।
वृद्ध भई नहिं आश, वृद्ध वय भई छाड़ हित ॥
अजहुँ अचेत चित चेतकर देह गेहसों नेह तज ॥"

—विषयोंको हमने नहीं भोग पाया, किन्तु विषयों ही ने

हमारा भुगतान करके हमको भोग लिया। अर्थात् विषयोंके भोगनेमें हम ही असमर्थ हो गये। हमने तपको नहीं तपा या नहीं किया, किन्तु तपने हमें ही तपा डाला, काल व्यतीत नहीं हुआ, किन्तु हमारी ही आयु व्यतीत हो चली, और तृष्णा जीर्ण या वृद्ध नहीं हुई, किन्तु हमही जीर्ण-शीर्ण हो गये ॥

इस प्रकार सबका अन्त परिवर्तन होनेपर भी तृष्णाका अन्त नहीं हुआ। अतः अध्यास वश बद्ध होके जीव नाना योनियोंको प्राप्त होते भये वा प्राप्त होते रहते हैं ॥ ५४ ॥

दोहाः—तृष्णा है कि डाँकिनी। कि जीवनको काल ॥
और और निशिदिन चहै। जीवन करत बेहाल ॥ ५५ ॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो! यह तृष्णा क्या है कि— मनमें रहनेवाली एक प्रबल दुष्ट डाँकिनी है। और क्या है कि— जीवोंका जीवन संहार करनेवाली, सत्यानाशी काल भी तृष्णा ही है। क्योंकि वह मनमें बैठके दिन-रात और-और भोगोंकी चाहना करती ही जाती है। नित्य नई-नई इच्छाओंको बढ़ाते रहना ही उसका काम है। चाहनाएँ बढ़ा-बढ़ा करके वह तृष्णा जीवोंको सदा बेहाल अत्यन्त दुःखी करती रहती है। तृष्णाके घेरेमें पड़के कभी कोई भी सुखी नहीं हुए, और हो भी नहीं सकते। जिसने तृष्णाको नाश करके निर्मूल कर दिया, सोई सदा सुखी रहते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् यह तृष्णा महापापिनी है। क्योंकि इसीसे तमाम पाप होते हैं। यह खाली तृष्णा, चाहना मात्र है, कि = अथवा यह डाँकिनी या चुडैल, बाल, युवा, वृद्धको मारनेवाली, हत्यारिनी, हिंसकी, दुष्ट राक्षसी है, ऐसा कहा जाय कि = अथवा सकल जीवोंकी जीवनको सत्यानाश करके संहार करनेवाली, काल, महाकाल वा महाकालिका कहा जाय। क्योंकि, वह

सब दुर्गुण उसमें भरा पड़ा है, जो कुछ भी कहो, सो थोड़ा ही है। डाँकिनी, पिशाचिनी, जीवोंके काल, कङ्काल, बेताल, तृप्त न होने-वाली, यह सब लक्षण तृष्णाके ही हैं। दिन-रात और-और ज्यादा-ही-ज्यादा पदार्थ, विषय-भोग, धन-धान्य, सत्ता, राज-काज, सुख, सम्पत्ति, आदि विशेष-विशेष वृद्धि करनेकी चाहना बढ़ती ही जाती है। इच्छा कभी पूर्ण नहीं होती है। चाहना दिन-दूना, रात-चौगुना होता जाता है। यह तृष्णा जीवोंको बेहाल=परम दुःखी, सन्तप्त कर डालती है। तृष्णावान् कभी सुखी नहीं होते हैं। सदा दरिद्रके समान हाय! हाय! करते-करते ही मर जाते हैं। महाभारतमें कहा है:—

श्लोकः— "यत्पृथिव्यां ब्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रिय ॥
एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत् ॥" महाभारत ॥

—पृथिवीमें जितने धान्य, जौ, सुवर्ण, पशु, और स्त्रियाँ हैं, वे एक मनुष्यके लिये भी (उसे सन्तुष्ट करनेमें) पर्याप्त नहीं है। अतः इनमें तृष्णाका त्याग करना चाहिये ॥

श्लोकः— "यादुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ॥
योऽसौ प्राणान्तकोरगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥" महाभारत ॥

—कुबुद्धि, पुरुषोंके लिये जिसका त्यागना अत्यन्त कठिन है, जो मनुष्यके जरा-जर्जरित हो जानेपर भी जीर्ण नहीं होती, तथा जो प्राणोंका अन्त देनेवाला महारोग है, उस तृष्णाका त्याग करनेवाले पुरुषको ही सुख प्राप्त होता है ॥

सुन्दरविलासमें भी कहा है:—

"तीनहिं लोक अहार कियो सब, सात समुद्र पियो पुनि पानी ॥
और जहाँ तहाँ ताकत डोलत, काढ़त आँख डरावत प्रानी ॥
दाँत दिखावत जीभ हलावत, याहि ते मैं यह डाँकिनि जानी ॥
सुन्दर खात भये कितने दिन, हे तृष्णा! अजहूँ न अघानी ॥"
"वाद वृथा भटके निशिवासर, दूर कियो कबहूँ नहिं धोषा ॥
तू हतियारिन पापिनि कोढ़िन, साँच कहूँ मत मानहु रोषा ॥

तोहिं मिलै तबते हुइ बन्धन, तू मरि है तबही हुए मोषा ॥
सुन्दर और कहा कहिये तुहिं, हे तृष्णा ! अब तौं कर तोषा ॥" सु० ॥

अतः तृष्णा जो है, सोई डाँकिनी, साँकिनी जीवनको नष्ट-भ्रष्ट करनेवाली, जीवोंकी काल ही है। क्योंकि कभी भी वह तृप्त तो होती ही नहीं, और ही और इच्छा बढ़ायके रात-दिन विषयादि सुख भोगोंको चाहती ही रहती है। इसी झकझोरमें नरजीवोंको तङ्ग या बेहाल करके, कष्ट देके चौरासी योनियोंमें गिरा देती है। अतएव उस तृष्णाको त्यागके सुखी हो जाना चाहिये। जीते ही परखके उसे छोड़ देना चाहिये ॥ ५५ ॥

दोहाः— तृष्णा अग्नि प्रलयकी । तृप्ति न कबहूँ होय ॥
सुर नर मुनि औ रङ्क सब । भस्म करत हैं सोय ॥ ५६ ॥

संक्षेपार्थः—हे सन्तो ! तृष्णाकी कभी भी तृप्ति नहीं होती है, सदा अतृप्त क्षुधित ही बनी रहती है, इसलिये खास करके यह तृष्णा ही प्रलयकालकी उग्र अग्नि है। अतः सुर, नर, मुनि और रङ्क वा राजा-वा प्रजा इत्यादि समस्त प्राणियोंको घुलाय-घुलायके झुलसायके भस्म करनेवाली प्रचण्ड अग्नि वही तृष्णा ही है। सो तृष्णा ही सबोंको अनायास भस्म करती है। पहले भी उसने बहुतोंको भस्म किया, मुक्तिपदसे गिरा दिया। अब भी वह वैसे ही सबोंको भस्म कर रही है। कोई बिरले विरक्त हो इसके लपटसे बच पाते हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात् मुक्तिपदको प्रलय करनेवाली यह तृष्णा प्रलयकालकी महाअग्नि बनी है। क्योंकि, कभी भी तो इसकी तृप्ति, सन्तुष्टि होती नहीं। गुरुवा लोगोंने महाप्रलयके वर्णनमें कल्पना करके शास्त्रोंमें ऐसा कहा है कि— पहिले तो जलामय प्रलय होगा, फिर प्रलयाग्नि प्रज्ज्वलित होके सब जगत् भस्म हो जायगा, फिर भी वह बहुत कालतक शान्त नहीं होगा, धधकता

ही रहेगा, इत्यादि। परन्तु यह कथन तो सत्य नहीं है। खाली एक रूपक उपमाके तौरपर यहाँ कहा गया है कि— यह तृष्णा प्रलयकी अग्नि सदृश महाभयङ्कर, समस्त त्रयलोकके भोग मिल जानेपर भी कभी तृप्त न होनेवाली बड़ी प्रबल है। पूर्ण पारख ज्ञान हुए विना, इसको कोई तृप्त नहीं कर सका। राग-द्वेषकी लपटोंसे, तृष्णा मुक्ति भवनको जला डालती है। जितने भी प्राणी तृष्णामें पड़े, उन सबोंकी मुक्ति-साधन तृष्णाने भस्म कर दिया। सब रङ्क = दीन-दरिद्री, गरीब लोग तो तृष्णामें जलके भस्म हो ही रहे हैं, परन्तु उनसे भी ज्यादा खाक तो बड़े-वड़े धनिकोंकी उड़ रही है। सेठ, साहुकार, राजा, महाराजा, सम्राट् वगैरह भी तृष्णामें जल-जलके स्वाहा हो रहे हैं। साधारण रजोगुणी मनुष्य = नर, तथा तमोगुणी जन, वा मननशील तपस्वी, मुनिवर्ग और सुर = सतोगुणी मनुष्य, वा देवगण, एवं यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, दैत्य, विद्याधर, मानव समूह इत्यादि प्राणधारी-मात्र सकलको भी सोई तृष्णा नाना तरहसे जलायके भस्म करती है या भस्म करी और कर रही है। इसने सबको मिट्टीमें मिला दिया, फिर भी प्रज्ज्वलित हो रही है, शान्त नहीं होती है। कहा है:—

श्लोकः— "भीषयत्यपि ज्ञं धीरमन्धयत्यपि सेक्षणम् ।।
खेदयत्यपि सानन्दं तृष्णा कृष्णेव शर्वरी ॥" योगवाशिष्ठ ॥

—अँधियारी रात्रिके समान यह तृष्णा वुद्धिमान् विवेकी पुरुषको भी भयभीत कर देती है, आँखोंवालेको भी अन्धा बना देती है और आनन्दयुक्तको भी खिन्न कर देती है ॥

अतएव यह तृष्णा, मुक्तिको विनाश करके, ध्वस्त करनेवाली, महाप्रलयकारी अग्नि है, कभी तृप्त, सन्तुष्ट नहीं होती है। अविवेकी, पारखहीन सुर, नर, मुनि और सव राव-रङ्क आदिकको वही जलायके भस्म या राखवत् निकम्मा कर देती है। इसलिये सचेत होके पहले ही तृष्णाको परित्याग करो, तभी तुम सुखी होओगे ॥ ५६ ॥

दोहाः—निर्धनिक कछु धन चहै । धनिक चहै विशेष ॥
विशेषहु विशेष चहै । होवन चहै नरेश ॥ ५७ ॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! तृष्णाकी गति-प्रवाह धीरे-धीरे ही बढ़ती जाती है । सो कैसे कि— निर्धन, कंगाल मनुष्य तो अपने गुजाराके लिये कुछ थोड़ा-सा ही धन पाना चाहता है। परन्तु यदि उसे चाहा हुआ धन मिल गया, तो फिर वही व्यक्ति निन्न्यान्नब्बेके फेरमें पड़ जाता है । अर्थात् ज्यादा-ही-ज्यादा धन मिलनेकी इच्छा बढ़ाता ही जाता है। फिर धनिक लोग तो विशेष ही द्रव्य बटोरना चाहते हैं, और जिसके पास विशेष धन भी इकट्ठा हो गया, तो भी उसको तृप्ति नहीं होती है । विशेषसे भी और विशेष दुगुना-चौगुना बटोरना चाहता है। कदाचित् कोई महासेठ भी हुआ, तो वह फिर स्वयं नरेश हो जाना चाहता है, ऐसे तृष्णा बढ़ती ही जाती है, कभी शान्त नहीं होती ॥

॥ ※ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ※ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् तृष्णाकी डोरी कैसे प्रबल होके बढ़ती है, सो यहाँपर बतलाते हैं, सुनिये ! संसारमें जो अति-निर्धन, गरीब या कङ्गाल, दरिद्र होते हैं, वे थोड़ा-बहुत धन मिल जाय, तो हमारा गुजारा चले, ऐसा सोचके कुछ थोड़ा ही धन चाहते हैं, अर्थात् जिसके पासमें एक पैसा भी नहीं वह ४—६ पैसोंके लिये तरसता है, उतने ही मिलनेके लिये इधर-उधर भटकता, भटकाता हुआ प्रयत्न करता है । फिर १–२ आना मिल जानेपर वही मनुष्य ८—१० आने पानेकी इच्छा करता है। उतना मिलनेपर १—१॥) रुपया मिलनेकी इच्छा होती है । सो भी मिला, तो वह फिर ५—७ रु० जोड़नेकी, रुपया बढ़ानेकी लालसा करता है। यदि उतना भी हुआ, तो १० + २० रु० की चाह होती है । फिर २५ + ५० की कामना करता है । तदनन्तर १०० × १५० मिलनेकी इच्छा होती है । उतना

मिल जानेपर भी ४००+५०० बटोरनेका मन होता है फिर हजार, दो हजारकी इच्छा बढ़ती है। यदि उतना भी रुपया हो गया, तो दस-बीस हजार कमानेकी धनिक होनेकी इच्छा करता है। अगर उसका उद्योग सफल हुई, रु० १०×२० हजार भी जमा हो गया, तो भी सन्तोष कहाँ होता है, तृष्णा तो और आगे ही बढ़ती चली जाती हैं। इसलिये वह मध्यम वर्गका मनुष्य पीछे लखपती ही होना चाहता है। और लखपती होनेपर फिर वही करोड़पती होनेकी इच्छा करता है। फिर करोड़पति होनेपर वह तो एक छोटा-मोटा देशका राजा ही होना चाहता है। राजा होनेपर बड़े-बड़े देशोंका महाराजा वा बाद-शाह होना चाहता है। वह बादशाह होनेपर फिर उससे भी बड़ी पदवी सम्राट् वा चक्रवर्ती होना चाहता है। वह चक्रवर्ती उससे भी उच्चपदवी पानेकी इच्छा करता है। समस्त भूमण्डल, अपने एकके ही अधीन करनेका स्वप्न देखता है। फिर अति इच्छा बढ़ाय करके अपने ही अकर्तव्यसे अन्तिममें वह मारा जाता है। यह संसारमें सर्वत्र ही घटना घट रही है, और इस विषयमें निन्न्यान्नब्बेका फेर वाला दृष्टान्त आया है, सो संक्षेपमें सुनिये !—

॥ * ॥ दृष्टान्त वर्णन ॥ * ॥

एक बड़े शहरमें एक कंजूस साहुकार रहता था। उसके मकान-के सामने एक मोचीका मकान था, वहाँ मोची रहता था, उसके और स्त्री, व एक पुत्र था। रोज एक जोड़ी जूता बनाता और १॥) रु० में बेचता, खर्चा जाके एक रुपया बचता, उसीका पूरी, मिठाई, लाता, तीनों मिलके खाते। नित्य प्रतिका यही उसका काम था। पाँच-दस रुपया भी कभी उसके पास जमा नहीं हुये थे। इसी प्रकार काम चल रहा था। गरमीके दिनोंमें छतपर बैठके वे भोजन किया करते थे। इधर साहुकार कंजूस होनेसे, बड़े त्योहारके सिवाय, साल भरमें कभी मिष्टान्न आदि अच्छा पदार्थ नहीं बनाता था। इससे साहुकारकी स्त्रीने मोची-मोचिनको नित्य पूरी-मिठाई खाते देखके,

बड़ा आश्चर्य माना । ७।८ दिन देखने पर, उससे रहा नहीं गया, तो पतिसे कहा कि—देखोजी ! यह मोची रोज मिठाई खाया करता है। क्या वह तुमसे भी अधिक धनवान् है ? तुम्हारे यहाँ तो सालभरमें एक-दो बार कभी-कभी ही मिठाई बनती है । यह बात सुनके सेठने हँसके कहा—यह मोची धनवान् तो कदापि नहीं है, देखना अब एक-दो दिन पीछे वह मिठाई खाना भूल जावेगा। सेठने सोचा, किसी युक्तिसे मोचीको मिठाई खाना भुला देना चाहिये। नहीं तो मेरे घरमें भी यह रोग घुसेगा, तो हजारों रुपये वर्षोंमें नाश हो जायगा। ऐसा विचारके दूसरे दिन वह मोचीके पास जाके, मेरा जूता बना दो कहा। उसने पैरके माप और ॥) पेशगी लेकर कहा—सेठजी ! शामको आके एक रुपया देकर जूते ले जाना। पश्चात् शामको फिर सेठ गया, उसने जूते पहना दिये। तब कुछ ढीला करनेके लिये बोला— मोची जूता लेकर घरमें जाके लकड़ीका डाट भरके ठोंकने लगा। इधर सेठने दो रुपये जेबसे निकालकर चुपकेसे उसके बैठनेके चमड़ेके नीचे रख दिये। पीछे वह आया, तो जूते पहनकर और एक रुपया देकर चला गया। बादमें मोची चमड़ा उठाने लगा, तो और दो रुपये नीचे उसे दीख पड़े। वह बड़े विचारमें पड़ा, पीछे खुश हुआ। दो रुपये ये हैं, एक मेरे पास है, तो तीन रुपये हुये। मकानकी एक कड़ी टूटी है, इसमेंसे बन जायगी, यह सोच, स्त्रीको बुलाकर कहा—आज पड़ोसीसे आँटा माँगकर टिक्कड़ बनाले—स्त्रीने ऐसा ही किया। उस दिन छतपर बैठके टिक्कड़ खाये। दूसरे दिन चार रुपया हो गये, तो उन्हें खर्च करनेको उसका जी नहीं चाहता था, उस दिन भी रोटी खाये। तीसरे दिन पाँच रुपये हुये। स्त्रीने उधार कब तक लाऊँगी कहा, तब आना-कानीके बाद, एक रुपयाका आटा-सामान लाके दिया। इस तरह मोचीके पास रुपये जमा होने लग गया। दस रुपया हुआ, तो कानकी बाली बनानेकी इच्छा किया, किन्तु बनाया नहीं। बीस हुये, तो पच्चीसकी इच्छा हुई। पच्चीस

हुये, तो वह पचास चाहने लगा। फिर सौ इकट्ठा करनेके फिकरमें पड़ गया। इस तरह मोची मिठाई खाना भूल गया। रोज सादा रसोई बनने लगी। इधर सेठानी उसे रोज देखा करती थी। उनकी बदलती हुई दशाको देखके आश्चर्यमें पड़ी। एक दिन पतिसे कहा— अब तो मोचीका खाना बिलकुल ही बदल गया। न मालूम क्या हो गया? तुमने तो कहीं मन्त्र फूँक-फाँक नहीं कर दिया? सेठने कहा— इस मोचीके पास कभी दो-तीन रुपया तक भी जमा नहीं हुये थे, कहके प्रथमकी घटना बता दिया। उस दिन उसके पास तीन रुपये जमा हुये, तो उसे देखकर अब वह रुपया जमा करने लगा; अब कहो मिठाई कैसे खाय? और मेरे पास तो लाखों रुपये हैं, मैं किस प्रकार नित्य मिठाई खा-खिला सकता हूँ? जब तक रुपया दिखाई नहीं देता, तब तक जमा करनेकी चाट नहीं पड़ती है। जब थोड़े रुपयोंमें ही ऐसा हाल है, तब ज्यादावालोंकी क्या पूछती हो? ऐसा सुनके वह चुप हो रही। निन्यान्नब्बेका फेर तृष्णाका घनचक्र इसीको कहते हैं॥

पुराणोंमें लिखा है—विषय तृष्णाके कारणसे राजा नहुष इन्द्र-पदसे पतित हुआ। और एक समय कङ्गालोंको पैसे बाँटनेवाले साधु-ने राजा उसके सामने आनेपर राजाके आगे चार-छैः पैसे फेंक दिये थे। कारण पूछनेपर, तू! अधिक तृष्णावाला होनेसे कङ्गाल है, ऐसे साधुने उसे बताया था। इसीसे कहा है:—

"को वा दरिद्रोहि विशाल तृष्णः॥" 'कौन दरिद्री, दीन, अधिक तृष्णासे दूषित'॥

— दरिद्री कौन है? अधिक तृष्णावाला॥

दोहा:— "तृष्णा बन्धन जानिये, तृष्णा क्षय है मोक्ष॥
सो जगमें प्रत्यक्ष है, देखि लेहु अपरोक्ष॥"

एक और कथा इस बारेमें आई है, उसका संक्षिप्त सार यह है कि:—एक गरीब मल्लाह सन्तानरहित स्त्रीसहित एक नदीके किनारेपर रहता था, और मछलियाँ पकड़कर निर्वाह करता था। ऐसा लिखा

है:—एक दिन गरीबीसे तङ्ग होकर, उसने अपने इष्टदेव वरुणसे प्रार्थना किया। जिससे भोजनका प्रबन्ध हो गया, फिर स्त्रीकी प्रेरणासे मकान माँगा, तो उसे घर भी मिल गया। किन्तु स्त्रीकी तृष्णा बढ़ती ही गई, फिर उस घरसे प्रसन्न न होके पक्का पत्थरका मकान माँगनेको भेजा, उसने जाके माँगा, सो भी मिला। फिर माँग बढ़ते-बढ़ते दुर्ग, राज्य, बड़ा राज्य, और चक्रवर्ती राजा भी वह हो गया। परन्तु स्त्रीकी तृष्णा शान्त होती ही नहीं थी, वह तो और-और बढ़ती जाती थी। अन्तमें स्त्रीने कहा कि, इतनेसे अभी मेरी शान्ति नहीं हुई है। अब तो मैं चन्द्र-सूर्यके ऊपर अपनी सत्ता चलाना चाहती हूँ! जा, यह भी माँगला। मल्लाहने कितनेक समझाया, परन्तु वह नहीं मानी, हठ पकड़ ली। निदान लाचार होके वह माँगने गया। क्योंकि स्त्रीके साथ उसे भी तो तृष्णाकी चाट लग गयी थी। वरुणसे ज्योंही उसने वह बात प्रार्थना की, त्योंही वरुणने कहा कि—अरे! मूर्ख सुन! अब तेरी सब समृद्धिका एकदम नाश हो जायगा। भाग जा यहाँसे, फिर कभी नहीं आना, नहीं तो तूही मर जायगा। तब दुःखी होके वह मकानमें जाकर देखा, तो उधर किसीने मकानमें आग लगा दिया था, मकान अग्निकुण्ड हो रहा है, आग धधक रही है, तृष्णावाली स्त्री, उसमें झुलस-झुलसके जल रही है। तृष्णाके कारण जीते ही नरकका अनुभव कर रही है। यह सब देखके मल्लाह बहुत पछताया, रोया, गाया, सिर पीटा, हाय! हाय! करके कलपता हुआ रह गया। ऐसी ही दुर्दशा घरों-घरमें तृष्णाके कारणसे हो रही है॥

यद्यपि यह दृष्टान्त कल्पित रोचक है, तथापि ऐसे ही दशामें सब कोई तृष्णाके दास लोग बिना विचारे अन्धाधुन्द पड़ रहे हैं। सो दिखानेके लिये यहाँ इसे लिखा गया है। तृष्णामें जो पड़ा, सो भवसागरमें गोता खाया। व्यर्थ ही बोझा ढोनेवाले पशुके समान जन्म बिताके, फिर चौरासी योनियोंके चक्रमें गिर पड़ते हैं।

और सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक शब्द १०७ में कहा है:—

"बहि-बहि मरहु पचहु निज स्वारथ । यमको दण्ड सह्यो ॥ ३ ॥
धन दारा सुत राज-काज हित । माथे भार गह्यो ॥ ४ ॥
झूठी मुक्ति नर आश जीवनकी । उन्ह प्रेतको जूँठ खयो ॥" बी० श० १०७ ॥

और महाभारतमें कहा है:—

श्लोकः—"सूच्या सूत्रं यथा वस्त्रे स सारयति वायकः ॥
तद्वत्संसार सूत्रं हि तृष्णा सूच्या निबध्यते ॥" महाभारत ॥

—जिस प्रकार दर्जी वस्त्रमें सूईसे धागेको चलाता है, उसी प्रकार इस तृष्णारूप सूईसे संसाररूप धागा बाँध दिया जाता है ॥

भर्तृहरिने कहा है:—

श्लोकः—"भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किञ्चित्फलं ॥
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सर्वाकृता निष्फला ॥
भुक्तं मानविवर्जितं पर गृहे साशंकया काकवत्— ॥
तृष्णे जृम्भसि पापकर्मनिरते नाद्यापि सन्तुष्यसि ॥" वैराग्य शतक ॥

छप्पयः—"भटको देश विदेश, तहाँ फल कछुहु न पायो ॥
निज कुलको अभिमान छोड़, सेवा चित लायो ॥
सहि गारी अरु खीझ, हाथ झारत घर आयो ॥
दूर करत हूँ दौरि, स्वान जिमि पर गृह खायो ॥
इहि भाँति नचायो मोहि तैं, बहकायो दै लोभ तल ॥
अबहूँ न तोहि सन्तोष कछु, तृष्णा तू पापिन प्रबल ॥"

—मैंने अनेक दुर्गम देशोमें भ्रमण किया, तथापि कुछ फल नहीं प्राप्त हुआ। यथार्थ जाति और कुलका अभिमान त्यागकर पराई सेवाकी; सो भी निष्फल हुई, और मानको त्यागकर कौएके समान सशङ्कित पराये घरपर भी भोजन किया। हे तृष्णे! (यह सब तेरे ही कारण हुआ) पाप-कर्ममें प्रवृत्त सदैव वर्द्धमान हे तृष्णे! तुझको अब भी सन्तोष नहीं होता है ॥

तैसे ही सुन्दरविलासमें भी कहा है:—सुनिये!—

छन्दः—जो दस बीस पचास भये शत, होई हजार तु लाख मँगैगी ॥
कोटि अरब्ब खरब्ब असंख्य, धरापति होन कि चाह जगैगी ॥
स्वर्ग पताल कु राज करौं तृषणा, अधिकी अति आग लगैगी ॥
सुन्दर एक सन्तोष बिना शठ, तेरि तु भूख कधी न भगैगी ॥
लाख करोर अरब्ब खरब्बनि, नील रु पद्म तहाँ लग खाटी ॥
जोरिंहि जोरिं भण्डार भरै जब, और रही सु जमी तर दाटी ॥
तौहु न तोहिं सन्तोष भयो शठ, सुन्दर तैं तृषणा नहिं काटी ॥
सूझत नाहिं न कालहि तो शिर, मारि जु थाप मिलाइत माटी ॥"सु०वि०॥

इस प्रकार तृष्णा बढ़ती ही जाती है, फिर उसके ओर-छोर नहीं मिलता । इसी वास्ते कहा गया कि—निर्धनिक, गरीब तो कुछ थोड़ा ही धन चाहता है । अगर वही धनिक हो जाय, तो और भी विशेष धन कमाना चाहता है । अपनी आवश्यकताके पूर्ति, धन-पदार्थादि मिल जानेपर भी इच्छा तृप्त न होके, और विशेष-विशेष प्राप्तिकी इच्छा करना, और उसके लिये अत्यन्त चिन्ता और व्याकुलताके साथ प्रयत्न करते जाना, इसीको तृष्णा कहते हैं। लोभी जीवोंका ऐसा स्वभाव पड़ गया होता है कि, कितने भी मिले, तो भी उसकी सन्तुष्टि नहीं होती है। जब कुछ नहीं रहता है, तब चाहता है कि, थोड़ा कुछ मिल जाय तो ठीक है, उतनेसे काम चला लूँगा । यदि संयोगसे थोड़ा कुछ द्रव्यादि मिल गया, तो भी सन्तोष नहीं होता । आगे उसको बढ़ानेकी इच्छा हो जाती है । अब इतना मिले तो अच्छा था, कहके बढ़ानेके फिकरमें पड़ जाता है । इसलिये कङ्गाललोग थोड़ा धन चाहते हैं, तो धनिक लोग और भी विशेष धन-सम्पत्ति जमाकर लखपति, करोड़पति होना चाहते हैं । ऐसा होनेपर करोड़पति लोग विशेष धन होनेपर भी और विशेष अरबों, खरबों द्रव्य जमाकर प्रमुख नगर सेठ प्रधान ही होना चाहते हैं । फिर यदि समय संयोग और उसके भाग्यसे वैसा नगरसेठ भी हो गया, तब भी सन्तोष नहीं होता है । यह तो एक समूचे देशका नरेश या राजा ही होना

चाहता है। राजा लोग फिर महाराजा होनेकी इच्छा करते हैं। महाराजा लोग समस्त भूमण्डलके अधिपति चक्रवर्ती या शाहन्शाह हो जानेकी अभिलाषा किये रहते हैं। उसके लिये युद्धका दौरा करके प्रयत्न भी करते जाते हैं। इस प्रकार जितना भी मिलता जाता है, उससे विशेष प्रभुत्त्व प्राप्तिकी इच्छा करते ही चले जाते हैं। तृप्त न होनेवाली इच्छा, सोई तृष्णा कहलाती है। सम्राट् होनेपर ही तृष्णा शान्त हो, ऐसी बात नहीं। वह तो उससे भी आगे उच्च-उच्च पदके लिये इच्छा बढ़ाता जाता है, चाहे वह कल्पित पद ही क्यों न हो? होते-होते अन्तमें असम्भव बातको भी चाहने लग जाता है, जिससे जड़-मूलसे विनाशको प्राप्त होता है। और बाकी नीचेके दोहामें कहते हैं॥ ५७॥

दोहाः—नरेश चहै इन्द्र पद। इन्द्र चहै रणजीत॥
असुर चहै सुरपति बनन। यह तृष्णाकी रीत॥५८॥

संक्षेपार्थः—और राजा, महराजा लोग तो भूमण्डलोंके राज्य-शासन-सत्तासे तृप्त न हो करके, कल्पित स्वर्गलोकका राज्य, इन्द्र पदवीको पाना चाहते हैं, देवताओंके राजा इन्द्र ही वे स्वयं बन जाना चाहते हैं। फिर इन्द्र होनेपर भी सन्तोष कहाँ होता है? क्योंकि, इन्द्र भी तो युद्ध करके दानवोंको जीतना चाहता है, रणमें विजय पानेकी अभिलाषा बनाये रहता है। अथवा उससे भी उच्चपद पानेकी इच्छा रखता है, और दूसरी तरफ असुर-दानव लोग तो युद्धमें इन्द्रको जीतके स्वयं देवताओंके राजा इन्द्र बनना चाहते हैं। सुन लिये न, बस! इसी तरह बढ़ते जाना, सो यही तृष्णाकी रीति वा तीव्र चाल है। चाहनापूर्ण किया कि— वह आगे बढ़ जाती है। इसलिये कुछ भी चाहना न करनेवाले परम वैराग्यवान् ही उसको जीत पाते हैं॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! अर्थात् यह तृष्णा

बड़ी दुर्धर्श है: भूमण्डलके मालिक सम्राट् नरेश होनेपर भी शान्ति नहीं होती है। क्योंकि, वैसे नरेश लोग तो इन्द्रपद्को प्राप्त करना चाहते हैं। जिसके लिये सौ अश्वमेध यज्ञ करते रहे, ऐसा कहा है, और अनेकों जप, तप, व्रत, अनुष्ठान, यज्ञ-यागादिके विधान कायम किये हैं। पृथ्वीके राज्यसे तृप्त न होके कल्पित स्वर्ग लोककी राज्य प्राप्ति, देवताओंके अधिपति इन्द्रपद्वीकी प्राप्ति करनेकी चाहना धरे रहते हैं, और यदि इन्द्रासन भी उसे मिले, तब भी चाहना आगे बढ़ती ही चली जाती है। इन्द्रके, दानव वीरोंसे शत्रुता लगी रहती है। युद्धमें कभी दानवोंकी जीत होती है, कभी देवगण विजई होते हैं। इसवास्ते इन्द्र यह चाहता है कि, युद्धस्थलमें हम कभी हारें नहीं। दैत्योंको जीत लें, रणजीत हो जायँ, यह इच्छा बढ़ाता है। यदि कभी रण = युद्धक्षेत्रमें इन्द्रकी जीत हो भी गई, तो वह स्वयं महादेव होना चाहता है। फिर महादेव भी विधाता ब्रह्मा होनेकी इच्छा करता है। ब्रह्मा स्वयं विष्णु बनना चाहता है, और विष्णु भी महाविष्णु बननेकी अभिलाषा रखता है। फिर महाविष्णु स्वयं विश्वरूप या विराट ब्रह्म एक अद्वैत होनेका दावा करता है। ब्रह्म बनने पर अन्तिममें वह ऐसा इच्छा करता है कि—

"एकोऽहं बहुस्यामेति प्रजायेयः ॥"

—मैं ही एकसे अनेक प्रजारूपमें उत्पन्न हो जाऊँ! जब ऐसी इच्छा करके गिर पड़ता है, तो चौरासी योनियोंमें जाके नाना दुःख भोगता है। स्थिति कहीं भी नहीं होती है। जैसे उधर इन्द्र रणजीत होना चाहता था, वैसे इधर देवताओंके शत्रु, असुर = दैत्य लोग भी युद्धमें इन्द्र सहित सब देवताओंको जीतके, सुरपति = देवताओंके मालिक या राजा इन्द्र स्वयं ही बन जाना चाहते हैं। उसके लिये घोर संग्राम कर मार-काट करनेमें लग जाते हैं; मारते-मरते, नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। विचार करके देखिये! यह तृष्णाकी रीति = चाल-चलन कितने अनर्थकारी हैं। इसके कारण बहुतेक लोग प्राणसे भी

हाथ धो बैठे, बर्बाद हो गये । योगवाशिष्ठमें कहा है:—

श्लोकः—"अपि मेरुसमं प्राज्ञमपि शूरमपि स्थिरम् ॥
तृणी करोति तृष्णैका निमेषेण नरोत्तमम् ॥" योगवाशिष्ठ ॥

—जो नरश्रेष्ठ सुमेरुके समान स्थितप्रज्ञ, अत्यन्त शूर-वीर और स्थिर चित्त है जिनकी, उसको भी यह तृष्णा अकेली ही एक क्षणमें तृणवत् कर देती है ॥

श्लोकः—"क्षण मायाति पातालं क्षणं याति नभस्तलम् ॥
क्षणं भ्रमति दिक्कुञ्जे तृष्णा हृत्पद्म षट्पदी ॥" योगवाशिष्ठ ॥

—हृदयरूप कमलकी भौंरी यह तृष्णा एक क्षणमें ही पातालमें जा पहुँचती है, फिर क्षण भरमें आकाशमें चढ़ जाती है, और एक क्षणमें ही दिशा-विदिशारूप कुञ्जोंमें विचरने लगती है ॥

श्लोकः—"तस्माद्विषय रागोत्था तत्त्वज्ञानाभिभाविका ॥
तृष्णा श्रेयोऽर्थिना त्याज्या गौड़ीपैष्टी सुरा यथा ॥" मु० ॥

—अतः कल्याणेच्छुकजनोंको विषयरूप रोगसे उत्पन्न और तत्त्वज्ञानको आच्छादित करनेवाली इस तृष्णाको गौड़ी और पैष्टी मदिराके समान त्याग देना चाहिये ॥ इस तृष्णारूप इच्छा-वासनाका त्याग करनेसे ही मुक्ति होती है । वह वासना विशेष करके मुख्य तीन प्रकारसे होती है ॥ तहाँ कहा है:—

श्लोकः—"लोकानुवर्तनं त्यक्त्वा त्यक्त्वा देहानुवर्तनम् ॥
शास्त्रानुवर्तनं त्यक्त्वा स्वाध्यासापयनं कुरु ॥" वि० चू० २७१ ॥

—लोकवासना, देहवासना और शास्त्रवासना, इन तीनोंको छोड़कर अपनेमें हुए संसारके अध्यासका त्याग करो ॥

श्लोकः—"लोकवासनया जन्तोः शास्त्रवासनयापि च ॥
देहवासनया ज्ञानं यथा वन्नैव जायते ॥" वि० चू० २७२ ॥

—लोकवासना, शास्त्रवासना और देहवासना इन तीनोंके कारण ही जीवको ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता है ॥

श्लोकः—"प्रारब्धं पुष्यति वपुरिति निश्चित्य निश्चलः ॥
धैर्यं मालम्ब्य यत्नेन स्वाध्यासापयनंकुरु ॥" वि० चू० ॥

—प्रारब्ध ही शरीरका पोषण करता है, ऐसा निश्चय कर निश्चल भावसे धैर्य धारण करके यत्नपूर्वक अपने अध्यासको छोड़ो ॥

श्लोकः—"संसारबन्धविच्छित्त्यै तद्द्वयं प्रदहेद्यतिः ॥
वासनावृद्धिरेताभ्यां चिन्तयाक्रिययाबहिः ॥"

—विषयोंकी चिन्ता और बाह्य-क्रिया इनसे ही वासनाकी वृद्धि होती है । इसलिये संसार बन्धनको काटनेके लिये मुनि इन दोनोंका नाश करे ॥

अतः तृष्णाके कारण नरेश इन्द्रपदको चाहता है, इन्द्र रणजीतके विजई होना चाहता है और दानव लोग भी सुरपति बनना चाहते हैं । कोई कहीं भी तृप्त होते नहीं हैं । यही तृष्णाकी विचित्र रीत है । अतएव मुमुक्षुओंको चाहिये कि, सन्तोषको लेकर तृष्णाको परित्याग करे ॥ "सन्तोषं परमं लाभं"— सन्तोषसे बड़ा लाभ होता है, सन्तोषसे बढ़के दूसरा कोई लाभ नहीं है । कहा हैः—

दोहाः— "गो धन गज धन बाजि धन, और रतन धन खान ॥
जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूरि समान ॥"

ऐसा समझ कर वैराग्यवानोंने सन्तोष धारण करना चाहिये । कभी भूल करके भी तृष्णाके फन्देमें नहीं पड़ना चाहिये । तैसे ही अब यहाँ आशाका जाल पर्खाते हैं, सो भी ध्यानपूर्वक सुनिये ! ॥५८॥

॥ * ॥ आशाकी अङ्ग निर्णय वर्णन ॥ * ॥

दोहाः—आशा धन त्रिया पुत्रकी । जीवन आशा होय ॥
आशा स्वर्ग सिद्धि मुक्तिकी । आशा बन्धन लोय ॥ ५९ ॥

संक्षेपार्थः—तृष्णाके समान आशा भी दुःखोंका मूल कारण है । किसीको धन कमाके सुखपानेकी आशा होती है, तो किसीको स्त्री और पुत्रोंसे सुख मिलनेकी आशा होती है, और किसीको सदा जीतें

रहनेकी, आयु बढ़ानेकी, झूठी आशा होती है। दूसरे तरफ कोई योगी आदि साधक लोग अष्टसिद्धि, नवनिद्धि आदि प्राप्त करनेकी आशा करते हैं, और कोई सात स्वर्ग तथा चार मुक्तिको ही पानेकी आशा लगाये रहते हैं। परन्तु उन सब लोगोंके लिये वह आशा ही कठिन भवबन्धनोंमें जकड़ानेवाला जाल-फाँस हो जाता है। इस तरह आशाके बन्धनोंमें सब कोई फँसे पड़े हैं। यदि सच्ची मुक्ति चाहते हो, तो आशा-तृष्णाको त्यागके दृढ़ वैराग्यको धारण करो॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—अर्थात् हे सन्तो! आशा भी जीवको बाँधनेवाला, एक बड़ा जबरदस्त जाल-फाँस है। मुख्यतया मोटी और झीनी दो प्रकारके आशा कही गई हैं। उसकी शाखायें अनेकों हैं। प्रथम मोटी भागमें जीते रहनेकी, तथा आयु बढ़ानेकी आशा और धन, स्त्री एवं पुत्र प्राप्त करके उनसे सुख मिलनेकी आशा, सभी संसारियोंमें प्रबल होता है। परन्तु वह दुराशा मात्र है। क्योंकि, न उनसे कभी किसीको वास्तविक सुख प्राप्त होता है, न आशा ही पूरी होती है; और तैसे ही झीनी वाणी कल्पनाकी आशामें ७ स्वर्ग, अष्टसिद्धि, चार मुक्ति प्राप्ति आदिकी समस्त आशा सब लोगोंको छूटनेको अत्यन्त कठिन, महाकठिन होनेसे महाबन्धन ही है, ऐसा जानिये॥ उसका विस्तार खुलासा वर्णन करते हैं, सुनिये! अब उसमें संक्षेपसे एक-एकके बारेमें निर्णय करके देख लीजिये। विषय सुखके लिये ही लोग धन, सम्पत्तिकी आशा करते हैं। क्योंकि, संसारमें धनवान्‌की मान-बड़ाई होती है, सब लोग उसके मित्र बनते हैं। घरमें, बाहरमें, राज-दरबारमें भी उसकी प्रतिष्ठा होती है। धनिक देखके ही लोग अपनी पुत्री उसे व्याह देते हैं। इत्यादि कारणसे धन कमानेके लिये मर मिटते हैं। परन्तु प्रारब्धके बिना किसीको धन मिलके ठहरता भी नहीं। धनके कारण सब तरफसे आपत्ति, दुःख-ही-दुःख होता है। द्रव्यमें पन्द्रह दोष

बताया गया है । धन कमानेमें, बढ़ानेमें, रक्षा करनेमें और खर्च करनेमें, उसके नाश और उपभोगमें, तरह-तरहके अनेकों परिश्रम, भय, चिन्ता, और भ्रम होते रहते हैं । कहा हैः—

श्लोकः—"धननाशे महद् दुःखं मन्ये सर्व महत्तरम् ॥
ज्ञातयो ह्यवमन्यन्ते मित्राणि च धनाच्च्युतम् ॥
धने सुखकला या तु सापि दुःखाय केवलम् ॥" महाभारत ॥

— प्रथम तो मैं धनके नाशमें ही महान् दुःख समझता हूँ, और सबसे बड़ा दुःख यह है कि, धनसे हीन हो जानेपर पुरुषका जाति, बन्धु और मित्रगण भी अपमान करने लगते हैं । धनमें जो सुखका अंशमात्र प्रतीत होता है, वह भी केवल दुःख ही का कारण है ॥

इसलिये धनकी आशा करनेवाले बड़े-बड़े दुःख भोगके मरते हैं । धन गाड़के मरनेवाले सर्प आदि दुष्ट योनियोंको प्राप्त होते हैं ।

और विषयानन्द भोगनेके लिये, तथा पुत्र प्राप्तिके लिये ही स्त्रीकी आशा करते हैं, सो भी मूर्खता है । क्योंकिः—

"नारि बुरी वेश्या अरु परकी । तीजी नर्क निसेनी घरकी ॥" वि० ॥

और कहा है—

श्लोकः—"अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमति लोभता ॥
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥" चाणक्य० ॥

—झूठ बोलना, साहस, माया = छल, कपट, मूर्खता, अत्यन्त लोलुपता, अपवित्रता और निर्दयता, ये आठ स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं ॥ इसलिये स्त्रियोंके सङ्गसे सुखकी आशा करनेवाले धोखा खाके नर्क कुण्डमें ही डूबमरते हैं । उनका निस्तार नहीं होता है ॥

और पुत्रकी आशा वंश वृद्धिके लिये, और बुढ़ापेमें सुखसे जीवन बितानेके लिये ही गृहस्थ लोग करते हैं । परन्तु यह आशा भी महा दुःखदाई ही होती है । कितनोंका वंश चलता ही नहीं, नपुंसक हो जाते हैं, मर जाते हैं । कितने दुष्ट पुत्र पिता-माताको बहुत दुःख देते हैं । भागवतमें कहा हैः—दुष्ट कंसने अपने पिता वृद्ध राजा

उग्रसेनको बाँधके कैद कर अपने ही राजा बन गया था। दीर्घतमा मुनिके अति क्रूर पुत्रोंने उन्हें थोड़ेसे ही दोषके कारण रस्सियोंसे खूब कसकर नदीमें डाल दिया था। समाधि नामक वैश्यको उसके दुष्ट पुत्र और स्त्रियोंने धन छीनके निकाल दिया था, इस प्रकार युवक पुत्रगण भी प्रायः माता-पिताको दुःख देनेवाले ही हुआ करते हैं। तो भी रागी पुरुष उनमें प्रीति नहीं छोड़ते। आशामें ही बन्धे रहते हैं।

वैसे कुपुत्रद्वारा होनेवाली दुर्दशा तो संसारमें अभी भी सब कोई देख-सुन ही रहे हैं। जो स्त्री, पुत्र, धन, धान्य आदिमें आसक्त हैं, आशारूपी स्नेह पासमें बँधा हुआ है, वह मूढ़ पुरुष कभी मुक्त हो नहीं सकता है। भवबन्धनोंमें ही पड़ा रहता है। मुक्ति, सुख चाहनेवाले जिज्ञासुको चाहिये कि, जीते ही उस तरफसे आशा हटा लेवे। कहा है:—

श्लोकः—"तस्मान्नृदेहमासाद्य स्वमोक्षस्याभिवञ्छया ॥
यूका इव सुतास्त्याज्याः श्रृङ्खलावच्च बान्धवाः ॥" मु० ॥

— अतः यह नरदेह पाकर अपने मोक्षकी इच्छासे पुत्रादिको जूँ आदिके समान और बन्धुजनोंको जञ्जीरके समान (समझ करके) त्याग देना चाहिये ॥

और जीते रहनेकी अथवा चिरञ्जीव होनेकी आशा तो सब कोई करते ही हैं, खुशीसे मरना कोई नहीं चाहते हैं। नीतिकारने कहा है:—

श्लोकः—"आपत् काले धनं रक्षेत् भार्यां रक्षेत् धनैरपि ॥
आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपि धनैरपि ॥" चाणक्य० ॥

— "आपत्तिकालमें धन और स्त्रीकी रक्षा करे, और इससे भी बढ़के अपने जीवनकी रक्षा सदा ही करे ॥" परन्तु जीवन चञ्चल और स्थिर न रहनेवाला है, उसकी आशा करना व्यर्थ है, कहा है:—

श्लोकः—"चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चले जीवितमन्दिरे ॥
चला चले च संसारे धर्म एकोहि निश्चलः ॥" चाणक्य० ॥

—जैसे प्राण चञ्चल है, वैसे लक्ष्मी = धन भी अत्यन्त चञ्चल होती है । उससे भी अधिक चञ्चल जीवन = आयु होती है । समय-पर सब विनाश होते हैं । यह चलायमान संसारमें धर्म ही एक अचल माना गया है ॥ और भी कहा है:—

श्लोकः—"आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च ॥
पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥" नीति० ॥

—मनुष्य जीव जब गर्भमें रहता है, तभी उसकी आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु ये पाँचोंकी अवधि (प्रारब्ध वेगसे) निश्चित हो जाती हैं ॥ उसमें घट-बढ़ हो नहीं सकती है ॥

"अवश्यं भाविनो भावा भवन्ति महतामपि ॥" नीति० ॥

— जो बात अवश्य होनेवाली है, वह अवश्य ही होती है, उसको बड़े लोग भी नहीं हटा सकते हैं । प्रारब्धका भोग सबको होता ही है ॥

श्लोकः —"यदभावि न तद्भावि भाविचेन्न तदन्यथा ॥
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते ॥" हितोपदेश ॥

—जो बात नहीं होनेवाली है, वह नहीं होगी, और जो होनेवाली है, वह मिट नहीं सकती । इस विचाररूप औषधिको जो कि सब चिन्ताओंको नाश करनेवाली है, क्यों नहीं पीते ? ॥ और भी कहा है:—

श्लोकः—यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च, यावच्च यत्र च शुभाशुभ मात्मकर्म ॥
तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च, तावच्च तत्र च विधातृवशादुपैति ॥हि०॥

—जो प्राणी पुण्य अथवा पाप जिस कारणसे, जिस उपायसे, जिस प्रकारसे जिस समयमें, जैसा, जितना, जिस स्थानपर, करता है । सो उसी कारणसे, उसी उपायसे, उसी प्रकार, उसी समय, वैसा ही उतना ही, उसी स्थानपर, उस पाप-पुण्यका फल प्रारब्ध कर्मवश उन प्राणियोंको मिल जाता है, अर्थात् कर्म भोगनेमें कभी हेर-फेर नहीं होता है ॥ और गीतामें कहा है:—

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥" २ । २७ ॥

—जन्म लेनेवालेकी अवश्य निश्चय ही मृत्यु होती है और मरनेवालेका (वासनावश) जन्म भी अवश्य ही सिद्ध होता है ॥

और चर्पट पञ्जरिकामें कहा है:—

"पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम् ॥"

"फिर-फिर जन्म मरण फिर होना । फिर-फिर जननि जठरमें सोना ॥"

मोह मुद्गरमें भी कहा है:—

श्लोकः— "यावज्जननं तावन्मरणं तावज्जननी जठरे शयनम् ॥
इति संसारे स्फुटतर दोषे कथमिव मानव तव सन्तोषः ॥"

पदः—"जबतक जन्मे तबतक मरना । तबतक जननि जठरमें पड़ना ॥
दोष प्रकट जगमें भासे हैं । नर! सन्तोष तुझे कैसे है ? ॥"

और गुरुवा लोगोंने मनुष्योंको भ्रमा रखे हैं कि, देखो! योग साधना करके सिद्ध होओगे, और सिद्ध होनेसे दीर्घायु होती है, इच्छा मरण भी कर सकते हो, और काया अमर भी हो सकती है। एक ऐसा लोक है—जिसे शिवलोक, ब्रह्मलोक, सत्यलोक और विष्णुलोक ऐसे नामसे कहते हैं। योगसिद्धिके प्रतापसे तुम सदेह वहाँ जाकर, पचास लाख दिव्य वर्षतक वहाँ सुख भोगोगे। और कल्प-कल्पान्ततक मार्कण्डेय मुनि सरीखी जीवित रहोगे, इत्यादि कल्पित वाणी सुनाय कर धोखामें डाल रखे हैं, उसी आशामें सब लोग बिना विचारे भूले पड़े हैं। सद्गुरुने बीजक रमैनी ५७ में कहे हैं:—

"कृतियां सूत्र लोक एक अहई । लाख पचासकी आयु कहई ॥
विद्या वेद पढ़े पुनि सोई । बचन कहत परतच्छै होई ॥
पैठी बात विद्याकी पेटा । वाहुक भरम भया संकेता ॥"

आयु बढ़ानेकी बात जो कहे हैं, सो बिलकुल असत्य है। क्योंकि, पूर्वकृत कर्म-प्रारब्ध वेगसे आयु निश्चित हो चुकी है। सो अभी वर्तमानके कर्मसे उसे घट-बढ़ करनेमें कोई समर्थ नहीं हो सकते हैं। कर्मका नियम अटल होता है। जो लोग आयु बढ़ानेकी बात कहते

हैं, वे तो भ्रमिक हैं, इससे उनका कथन असत्य है। योगादि साधनोंसे हजारों वर्षतक जीनेकी जो बात लिखे हैं, वे सब भी कल्पित होनेसे मिथ्या है। सत्यनिर्णयसे ऐसा नहीं हो सकता है। एक दिन प्रारब्ध पूर्ण होनेपर सबकी मृत्यु अवश्य होती है। अतएव जीवन बढ़ानेकी आशा जिनको होती है, वे अज्ञानी हैं, वे भवबन्धनमें ही पड़े रहते हैं। इस तरह धन, स्त्री, पुत्रकी और जीवनकी आशा खानी भागमें हुआ। जिसमें सारे संसारी लोग जकड़े पड़े हैं ॥

तैसे ही वाणी भागकी सकल आशा भी लोगोंको बन्धन ही है। कोई तो सात स्वर्गः—भूर्लोक, भुवः, स्वर्ग, महर, जन, तप और सत्यलोक प्राप्तिकी आशा करते हैं। जिसके लिये—जप, तप, व्रत, उपवास, तीर्थाटन, कर्म, उपासनादि, नाना साधनाएँ किया करते हैं। कोई तो कल्पित तैंतीस कोटि देवताओंकी उपासना करते हैं। तहाँ नौ प्रकारके गणदेवता माने हैं। अमरकोशमें कहा हैः—

श्लोकः— "आदित्यविश्ववसवस्तुषिताभास्वरानिलाः ॥
महाराजिकसाध्याश्चरुद्राश्चगणदेवताः ॥" अमरकोश ॥

—आदित्य, विश्व, वसु, तुषित, आभास्वर, अनिल, महाराजिक, साध्य, रुद्र— ये देवताओंके गण माने हैं॥ फिर उन गणोंके संख्या भेद भी भिन्न-भिन्न बताये हैं। जैसे किः—

श्लोकः—"आदित्या द्वादशाप्रोक्ता विश्वेदेवा दसस्मृताः ॥
वसवश्चाष्टसंख्याताः षट्त्रिंशत्तुषितामताः ॥
आभास्वराश्चतुःषष्टिवार्ताः पञ्चाशदूनकाः ॥
महाराजिक नामानो द्वेसते विंशतिस्तथा ॥
साध्या द्वादश विख्याता रुद्रा एकादश स्मृताः ॥"

१२ आदित्य, १० विश्व, ८ वसु, ३६ तुषित, ६४ आभास्वर, ४९ अनिल, २२० महाराजिक, १२ साध्य और ११ रुद्र हैं॥

श्लोकः—"विद्याधराऽप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्व किन्नराः ॥
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥" अमरकोश ॥

—विद्याधर, अप्सरस्, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, भूत, ये देवताओंकी योनियाँ, जातियाँ माने हैं ॥ इत्यादि प्रकारसे मानन्दी बढ़ाकर स्वर्गकी आशा लगा रहे हैं ।

और कोई योगी लोग अष्टसिद्धि तथा नवनिद्धि प्राप्तिकी आशा लगा रहे हैं । कहा है:—

श्लोकः—"अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा ॥
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशीत्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः ॥" अ० कोश ॥

—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, और वशित्व, ऐसे आठ प्रकारकी सिद्धियोंके नाम कहा गया है ॥ तैसे ही अमरकोशमें नवनिद्धियोंके भी नाम कहा है:—

श्लोकः—"महापद्मश्च पद्मश्च शङ्खो मकरकच्छपौ ॥
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नवः ॥" अमरकोश ॥

— अर्थ स्पष्ट है ॥ और कोई चार प्रकारकी मुक्ति प्राप्तिकी आशा लगा रहे हैं । चार मुक्ति विषयमें कहा है:—

चौपाई:—"सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायूज । चार प्रकारकी मुक्ति मनूज ॥
मुक्ति कहिये छूटेको नामा । तहाँ अनेक पावै विश्रामा ॥
सालोक्य सोई जो स्वर्ग निवासा । देव योनिमों करत विलासा ॥
सामीप्य हजूरीदास कहावै । भक्ति वजीरी युग-युग पावै ॥
भृङ्गी रङ्ग कीट जो पावै । मुक्ति सारूप्य सोई कहावै ॥
सायुज्य ज्योतिमें ज्योति मिलिजाई । मायारूप रहा जहँडाई ॥
मुक्ति चार सो जोइन जानो । निश्चय यमके फन्दा मानो ॥"
॥ पञ्चग्रन्थी, मानुष विचार ॥

इस प्रकारसे गुरुवा लोगोंने स्वर्गादि प्राप्ति, ऋद्धि-सिद्धि प्राप्ति, चार फल और चार मुक्ति प्राप्ति, आदिकके लिये जो आशा लगा रहे हैं, सो सब उन लोगोंको, बड़ा भारी दृढ़ बन्धन ही देनेवाली है। अतएव जबतक सम्पूर्ण आशा मिट नहीं जाती, तबतक शुद्ध वैराग्य-की धारणा नहीं होती है । अतः बन्धनोंसे छुटकारा भी नहीं होता है ।

क्योंकि आशा रखना वही तो जबरदस्त बन्धन है। इस लिये सब प्रकारकी आशाको परित्याग करनेमें ही भलाई है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ५९ ॥

दोहाः—विषय थकै इन्द्रिय मरें । आशा मरै न कोय ॥
देह मरै तेउ अमर है । देह धरावत दोय ॥६०॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! सकल विषय भी थक जाते हैं, अन्तमें इन्द्रियाँ भी मरके नाश हो जाती हैं। तथापि कोई किसीकी भी स्वयं आशाएँ नहीं मरती हैं या नाश नहीं होती है। इधर देह तो मर जाता है, परन्तु उधर आशा अध्यासरूपसे अमर जीवके साथमें रह ही रहा है। जिससे बारम्बार वह जीवको स्त्री और पुरुषके दो तरहके देह धराता हुआ, दुःख भोगाता रहता है ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँच विषय कहलाते हैं। वे इकट्ठे किये हुए विषय पदार्थ भी भोगते-भोगते खतम हो जाते हैं। शरीरकी इन्द्रियाँ भी थक करके शिथिल, शक्तिहीन हो जाती हैं। एक-एक करके इन्द्रियों-की शक्ति क्षीण होके नाश हो जाती है, वही उनका मरना है। परन्तु ऐसी हालतमें भी तो कोईकी आशा नहीं मरती है।
भर्तृहरिने तभी तो कहा है:—"भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता ॥"

—विषयोंको हमने नहीं भोगा, उल्टा विषयोंहीने हमको भोग लिया, अर्थात् विषयोंको भोगनेमें हम ही असमर्थ हो गये। उसीमें हमारी आयुका भुक्तान हो गया ॥

और कहा है:—

श्लोकः—"खलोल्लापाः सोढा कथमपि तदाराधनपरै-
निगृह्यान्तर्बाष्पं हसितमपि शून्येन मनसा ॥
कृतश्चित्तस्तंभः प्रहसितधियामञ्जलिरपि,
त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो नर्तयसि माम् ॥"

छप्पयः— सहे खलनके बैन, इतेपर तिनहिं रिझाये ॥
नैननको जल रोक, शून्यमन मुख मुसक्याये ॥
देत नहीं कछु वित्त तऊ, कर जोर दिखाये ॥
करि-कर चाव करोर, भोर ही दौरत आये ॥
सुनि आश प्यास तेरी प्रबल, तू अति अद्भुत गति गहत ॥
इह भाँति नचायो मोंहि, अब और कहा करिबौ चहत ॥

— दुर्जनोंकी सेवा करनेमें, हमने उनके कुवाक्य सहन किये, नेत्रोंके आँसुओंको रोक, उदास मनसे, उनके सन्मुख हँसा किये, और चित्तको स्थिरकर उन हतबुद्धि मनुष्योंके सन्मुख हाथ भी जोड़े, अब, हे व्यर्थ आशा करनेवाली आशे ! क्यों मुझको वृथा नचाती है ॥

श्लोकः— "वलिभिर्मुखमाक्रान्तंपलितैरङ्कितं शिरः ।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ॥"

दोहाः— "सेत चिकुर तन दशन बिन, बदन भयो ज्यों कूप ॥
गात सबै शिथिलित भये, तृष्णा तरुण स्वरूप ॥"

— वृद्धावस्थामें मुखपर झुर्री पड़ गई, सिरके बाल श्वेत हो गये, और सब अङ्ग-अंश शिथिल हो गये, परन्तु एक तृष्णा वा आशा ही बढ़ती जाती है ॥

श्लोकः— "रात्रिः सैव पुनः स एव दिवसोमत्वा बुधा जन्तवो ॥
धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारब्धतत्तत्क्रियाः ॥
व्यापारैः पुनरुक्त भुक्तविषयैरेवंविधेनामुना ॥
संसारेण कदर्थिताः कथमहो मोहान्नलज्जामहे ॥"

— वे ही रात्रि फिर दिन होते हैं, यह जानकर भी बुद्धिमान् मनुष्य उद्योग करते हुए बारम्बार कहे, और भोग लिये विषय जिनके ऐसे अनेक व्यापारोंसे पुनः-पुनः आरम्भ किंयी उन्हीं-उन्हीं क्रियाओंको करते जिस संसारमें डोलते हैं। इस संसारके कदर्थ न किये हैं,

तो भी अपनी मूढ़ताके कारणसे अहो आश्चर्य है कि— हम तुम लज्जित नहीं होते हैं, और इस असार संसारका परित्याग नहीं करते हैं ॥ और ऐसा ही चर्पट पंजरिकामें भी कहा हैः—

श्लोकः— "दिनरपि रजनी सायं प्रातः, शिशिरवसन्तौ पुनरायातः ॥
कालः क्रीड़ति गच्छत्यायुस्तदपि न मुंचत्याशा वायुः ॥" च० पं० ॥

पदः— "होय दिवस निशि साँझ सवेरा । शिशिर वसन्त लगावें फेरा ॥
खेलत काल घटत है आयू । तदपि न त्यागत आशा वायू ॥"

इस प्रकार अनादिकालके संसारमें विषय भोगते-भोगते दशों इन्द्रियाँ थकित होके मरणासन्न हो जाती हैं, तो भी अनेकों आशामें-से कोई एक भी आशा मरती नहीं । आखिरमें प्रारब्ध पूरा हो जाने-पर मृत्यु होके देह मर जाती है । सड़-गलके पञ्चतत्त्वोंमें मिल जाती है, फिर भी आशारूपी अध्यास नहीं मरती है । अजर, अमर, अवि-नाशी जीवके साथमें वह लगी ही रहती है । चौरासी योनियोंमें लेजाके उलटाय-पलटायके नर-नारीके देह फिर-फिर भी धराता ही रहता है । तहाँ कहा हैः—

दोहाः— "माया मरी न मन मरे, मरि-मरि जात शरीर ॥
आशा तृष्णा ना मरे, कहि गये सत्य कबीर ॥"

अर्थात् माया प्रकृति जड़तत्त्व, इसका सर्वथा नाश न होनेसे वह मरती नहीं । और नाश किये बिना आपही न मन-मानन्दी ही नाश होता है ? परन्तु कर्मभोग पूरा होनेपर शरीर मर-मरके नाश हो जाता है । अनेकों बार देह धारण हुआ, फिर विनाश हुआ । इस बीचमें आशा-तृष्णा जीवोंकी छूटी नहीं । जीव तो सत्य अमर है । पारख बिना आशापाशमें बन्धा हुआ, जड़ाध्यासी होके, आवागमनमें डोल रहे हैं । वही आशा-अध्यास नर-नारी दोनोंको फिर-फिर दुबारा वैसे ही शरीर धरायके भवचक्रमें फिराता रहता है । अतएव नर-देहमें जीते ही आशा-पाशको विवेकसे काटकर फेंक देना चाहिये । तभी मुक्ति मिल सकेगी, ऐसा जानो ॥ ६० ॥

दोहाः—आशा सोई यम फाँस है । सब जीवन दुःख खान ॥
जीव भरमावै ज्ञान हरै । ताते त्यागहु जान ॥६१॥

संक्षेपार्थः—हे सन्तो ! यमरूप काल, मन, स्त्री, गुरुवा इन लोगोंकी महाजाल सोई आशा यमका कठिन फाँस है । जिसमें फँसके समस्त जीव चारखानियोंमें पड़के अनेकों दुःख भोग रहे हैं। और नाना प्रकारके आशा-भरोसा देके गुरुवा लोग जीवोंको भ्रमा रहे हैं, ज्ञान, गुण विचारादि सद्गुणोंको हरणकर रहे हैं । तैसे नारियोंने भी नर जीवोंको भ्रमाके ज्ञानहरण कर रही हैं । दोनों तरहसे जीव भ्रममें पड़के चौरासी योनियोंमें पड़ रहे हैं। अतएव हे जिज्ञासुओ ! सत्सङ्ग विचारसे यथार्थ भेदको जानके उस आशा-तृष्णादिको तुम स्वयं ही प्रथम परित्याग कर दो। तभी तुम्हें स्थिति प्राप्ति होगी, ऐसा जानो ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—अर्थात् जैसे धीवर और बहेलियोंके जालमें पड़े हुए मछलियाँ तथा चिड़ियोंको छूटना असक्य हो जाता है । फिर उसी कारणसे वे मारे भी जाते हैं । तैसे ही आशा सोई तो यमका महा फाँस है। इस फाँसमें सब घिरे पड़े हैं। कोई बिरले पारखी सन्त ही इससे न्यारे रहते हैं। नहीं तो ज्ञानी, अज्ञानी, विज्ञानो सब कोई एक-एक आशामें लटक रहे हैं। सद्गुरुने बीजक शब्द ९१ में कहे हैंः—

"आशा तृष्णा सब घट व्यापी । कोई महल नहिं सूना ॥ ६ ॥
साँच कहौं तो सब जग खीजे । झूठ कहा ना जाई ॥" बी० श० ९१॥

"लोग भरोसे कौनके ? बैठ रहैं अरगाय ॥
ऐसे जियरहिं यम लूटे । जस मटिया लुटे कसाय ॥" १६६ बी० सा०॥

"चातृक जल हल आशै पासा । स्वाँग धरे भवसागरको आशा ॥" बी० र० ६५ ॥

—इस आशारूपी कठिन फाँसमें मनने जीवको फँसाया है, स्त्रीने-पुरुषोंको फँसायी है, और गुरुवा लोगोंने अज्ञानी मनुष्योंको फँसाये हैं,

तहाँ चारों तरफसे जीव दुःख ही पाने लगे। असह्य दुःखके खानीमें लालची जीव सब फँस गये। उसीकी बाढ़में बह-बहके सब अन्तमें चौरासी योनियोंके भवसागरमें पहुँच गये। कोई बिरले ही पारखी सन्त उससे पार हुये वा होते हैं। भर्तृहरिने कहा है:—

श्लोकः—"आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णा तरङ्गाकुला ॥
रागग्राहवती वितर्क बिहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ॥
मोहावर्तसुदुस्तराऽतिगहना, प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी ॥
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः ॥" वैराग्य श०॥

छप्पयः—नदीरूप यह आश, मनोरथ पूर रह्यो जल ॥
तृष्णा तरल तरङ्ग, राग है ग्राह महाबल ॥
नाना तर्क विहङ्ग सङ्ग, धीरज तरु तोरत ॥
भ्रमर भयानक मोह, सबनकों गहि गहि बोरत ॥
नित बहत रहत चित भूमिमें, चिन्ता तट अति ही विकट ॥
कढ़िगये पार योगी पुरुष, उन पायो सुख तेहि निकट ॥

—आशा नामकी एक महानदी है, जिसमें मनोरथरूपी जल भरा है। जिसमें तृष्णारूपी तरङ्ग उठती हैं, विषयरूपी ग्राह जिसमें रहते हैं, नाना प्रकारके कुतर्करूपी पक्षी उसमें विचरते हैं, तथा यह नदी धैर्यरूपी वृक्षका नाश करनेवाली है, और इसमें मोहरूपी भ्रमर हैं, इन भ्रमरोंसे यह नदी अत्यन्त दुस्तर और गम्भीर हो रही है, तथा उन्नतिको प्राप्त चिन्ता ही इस नदीका तटस्थल है। इस नदीके पार जानेवाले शुद्ध चित्त योगीश्वर अत्यन्त आनन्दको प्राप्त होते हैं ॥

और कहा है:—

श्लोकः—"अग्रे वह्निः पृष्टे भानू रात्रौ चिबुक समर्पित जानुः ॥
करतलभिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुंचत्याशा पाशः ॥"

पदः—"अग्नि अगाड़ी धूप पिछाड़ी। रात करे घोंटुन बिच दाढ़ी ॥
कर धरि खाता तरुतर बसता। तो भी आशा पास न तजता" ॥च० पं०॥

श्लोकः—"अंगं गलितं पलितं मुंडं, दशन विहीनं जातं तुंडं ॥
कर धृत कम्पित शोभित दंडं, तदपि न मुंचत्याशा पिण्डम् ॥"
पदः— 'अङ्ग गला शिर श्वेत भया है । दाँत बिना मुख बैठ गया है ॥
कर कम्पित लाठी शोभित है । तदपि न आशा पिण्ड तजत है ॥' मो० मु० ॥

अतः यह आशा ही यमकी प्रत्यक्ष गाँस-फाँस है । इसमें फँसे हुये सब जीव महा दुःखके खानीमें पड़के जन्म बिता रहे हैं । एक-दूसरेको आशा-भरोसा दे-देके जीवोंको भ्रमा रहे हैं, भुला-भुलाके भटका रहे हैं । कहीं ब्रह्म, ईश्वरादिके आशा लगाके भ्रमा रहे हैं । कहा हैः—

साखीः— "भरम बढ़ा तिहुँ लोकमें । भरम मण्डा सब ठाँव ॥
कहहिं कबीर पुकारिके । तुम बसेउ भरमके गाँव ॥" बी० २५६ ॥

— खानी-वाणीकी आशा ही नर-जीवोंके ज्ञान, विवेकादि सद्गुणोंको हरण करता है, अज्ञान, जड़ासक्त बनाता है, धोखामें फँसाके नष्ट-भ्रष्ट करता है । फिर चौरासीयोनियोंके चक्रमें गिरा देता है । जिससे निस्तार होना अत्यन्त कठिन हो जाता है । आशाका दास होनेवाला, सबका दास हो जाता है । आशाको जीतनेवाला वही सबका स्वामी सर्वश्रेष्ठ हो जाता है । ऐसा जान करके दुःखके मूल उस आशाको एकदम त्याग दो । कहीं किसीकी भी आशा मत रखो । निराश, निवृत्ति पदको ग्रहण करो । तभी तुम निज स्वरूप स्थितिको प्राप्त-कर सकोगे, ऐसा जानो ॥ ६१ ॥

दोहाः— भोग विषय औ कुटुम सब । अन्त तोहिं तजि जायँ ॥
ताते समुझि विचारिके । तुमहि तजो किन भाय ! ॥ ६२ ॥

संक्षेपार्थः—हे मुमुक्षु मनुष्यो ! संसारके सब भोग-विलासकी सुख-समृद्धि, पाँचों विषय और माता-पिता, भाई-बहिन, कुल-कुटुम्बी, स्त्री-पुत्र, परिवार, इष्ट-मित्र, नाता-गोताके सब लोग, जमीन-जागीर, राज-पाट, दुनियाँभरकी सब वस्तु, जहाँतक भी तुमने इकट्ठे किये

हो, सो अन्तिममें तुमसे सब छूट ही जायेंगे, प्राण छूटने पर कोई काममें नहीं आयेंगे। परन्तु उनके अध्यासवश तुम्हें अकेले ही चौरासी योनियोंमें जाके बहुत दुःख उठाना पड़ेगा। असह्य कष्ट सहना पड़ेगा। इसवास्ते हे भाई! पहिलेसे ही सत्सङ्गद्वारा यथार्थ सार, असार, गुण, अवगुण, समझके विवेक-विचार करके, उन परिणाममें दुःखदाई भोग, विषय, और कुटुम्ब आदिकोंको तुम स्वयं ही खुशीसे दोष देख करके पहलेसे ही देह रहते ही क्यों परित्यागकर नहीं देते हो? यदि वह जबरदस्ती छूटेगी, तो तुम्हें बड़ा दुःख भोगना पड़ेगा, वासनावश चौरासी योनियोंके घनचक्रमें पड़ोगे। यदि तुम अपने ही उन्हें छोड़ देओगे, तो फिर तुम्हें बड़ा सुख होगा। अध्यास छूटनेपर मुक्ति पदको भी पाओगे, सो जानो॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात् पञ्चविषयोंका भोग और स्वजन परिवार, कुल, कुटुम्बीके लोग सब भी आगे-पीछे करके अन्तमें तुम्हें छोड़-छोड़के सब अपने-अपने रास्तेसे चले जायेंगे। फिर तुम्हारा देहका भी तो एकदिन अन्त होगा ही। ऐसी हालतमें उनमें तुम आसक्ति क्यों टिका रखे हो? नाशवान् देह, पदार्थ, आदिमें आसक्ति टिकाना, यही तो बड़ा भारी बन्धन है। जो वस्तु अंन्तिममें अवश्य छूटनेवाली है, जिसका नाश-वियोग निश्चित है, फिर उसे पहलेसे ही विचार करके क्यों न छोड़ देना? और यह नियम भी है कि, जो चीज अपने प्रसन्नतासे छोड़दी जाती है, उस त्यागसे शान्ति सन्तोष, सुख ही होता है, और त्यागका दर्जा बहुत बड़ा है, और जो चीज अपने इच्छा न होते हुए ही विशेष कारणसे छूट जाती हैं, वा कोई छीन ले जाते हैं, हड़प लेते हैं, उसमें बड़ा भारी खेद, दुःख, विरह, चिन्तादिके ज्वाला जलाया करते हैं, तब बड़ा कष्ट अनुभव होता है। तहाँ भर्तृहरिने भी वैराग्यशतकमें कहा है सुनिये!—

श्लोकः—"अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया ॥
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून् ॥
व्रजन्तः स्वातन्त्र्या दतुलपरितापाय मनसः ॥
स्वयं त्यक्त्वा ह्येते शमसुख मनन्तं विदधति ॥" वैराग्यशतक ॥

—बहुत कालपर्यन्त भोगे हुये विषय अन्तमें अवश्य तुमको छोड़ देंगे, तो फिर उनके वियोग होनेमें संशय ही क्या रहा? इससे मनुष्यको उचित है कि, इनको पहले स्वयं ही त्याग दे। अर्थात् हे मनुष्यो! एक-न-एक दिन सब विषय अवश्य ही छूट जायेंगे। फिर तुम ही स्वयं उन्हें क्यों नहीं छोड़ देते? याद रखो! जब वे विषय आपसे छोड़ेंगे, या आपही छूट जायेंगे, तो तुम्हारे मनको बड़ा सन्ताप देंगे, और यदि तुम, अथवा जो कोई मनुष्य स्वयं ही उनको त्याग देंगे, तो तब तुझे वा उनको अपार सुखकी प्राप्ति होगी। संसारके विषय सुख ही अत्यन्त दुःखदाई है। सम्पत्ति ही बड़ी भारी विपत्ति है, भोग ही संसारके महारोग है। और राग ही परम दुःखका घर है। संसार सोई तो दुःखोंका घर कहा जाता है, उसके बीचमें पड़े हुये देहाध्यासीको भला सुख कैसे मिल सकता है? ॥ और योगवाशिष्ठमें कहा है:—

श्लोकः— "उत्पातवायुरेवायुर्मित्राण्येवातिशत्रवः ॥
बन्धनो बन्धवान्येव धनान्येवातिनैधनम् ॥" योगवाशिष्ठ ॥

—आयु ही उत्पातवायु (बवण्डर) है। मित्र ही बहुत बड़े शत्रु हैं। बन्धुजन ही बन्धन हैं, और धन ही बड़ा भारी निधन (मृत्यु) है ॥

श्लोकः— "भोगा विषयसम्भोगा भोगा एव फणावताम् ॥
दशन्त्यपि मनाक् स्पृष्टा नष्टाः प्रतिक्षणम् ॥" योगवाशिष्ठ ॥

—भोग और विषय सामग्री मानो सर्पोंके फन ही हैं। ये जरा छूते ही डस लेते हैं, और प्रतिक्षण देखते-देखते नष्ट हो रहे हैं ॥ जिनकी तृष्णा भोग-आशासे अत्यन्त बढ़ गई है, उनका खम्भेमें बँधे

हुए जङ्गली हाथियोंके समान पद-पद पर अपमान होता है ॥ सम्पदा = काञ्चन, और प्रमदा = कामिनी, तरङ्गभङ्गीके समान क्षण-भंगुर हैं। वे सर्पके फनरूप छत्रकी छायाके समान हैं। उनमें कौन बुद्धिमान् आसक्त होता है ॥

जिस प्रकार वृक्षोंके पत्ते उत्पन्न होके, पक जानेपर, शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार जड़-चैतन्य, सत्यासत्य विवेकसे रहित पुरुष जन्म ले-लेकर कुछ ही दिनोंमें मरके कहींके-कहीं चौरासी-योनियोंमें चले जाते हैं! ऐसी कौन दृष्टियाँ हैं— जिनमें दोष न हो? ऐसी कौन दिशायें हैं, जिनमें दुःखका दाह न हो? ऐसी कौन प्रजा या प्राणी है, जिसमें क्षणभंगुरता न हो? और ऐसी कौन-सी क्रिया है? जिसमें माया न हो? ॥ मनुष्योंको संसारमें ये पदार्थ तभीतक रुचते हैं, जबतक कि— विनाशरूप दुष्ट राक्षसकी स्मृति नहीं होती है। विषसे भी बढ़ करके हानिकारक ये विषय हैं। क्योंकि, विष तो एक ही शरीरको नाश करता है। परन्तु विषय अध्यास तो अनेकों जन्म-जन्मान्तरके शरीरको भी नाश कर डालता है ॥

इसलिये हे हितेच्छुक मनुष्यो! तुम लोग विवेकी पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग करके अच्छी तरहसे अपने हानि-लाभको सोचो, समझो, विचार करके देखो! अपनी शरीर भी अनित्य है। विषय-भोग और कुटुम्ब आदि सम्पूर्ण जगत्के पदार्थ अन्तमें तुमसे छूट जायेंगे या तो विषयादि पहिले तुम्हें छोड़के नाश हो जायँगे। अथवा तुम्हारा ही शरीर छूट जायगा, तो वे जहाँके तहाँ पड़े रहेंगे, फिर तुम्हारे कुछ काम नहीं आवेंगे। अतएव नरदेह रहते ही सचेत होकर विचार करके, हे मेरे भाई! तुम ही राजी-खुशीसे उस उपाधि-के घरको क्यों नहीं छोड़ देते हो? अगर अपनी भलाई चाहते हो, तो छोड़ो उसको, निकलो जञ्जालसे। त्याग-वैराग्य पथको ग्रहण करके कल्याण कार्यमें लागो। अपने हित-साधनाको फौरन ही कर देना चाहिये। ऐसा न हो कि— तुम मनसूबा ही करते रह जाओ,

इधर शरीर ही न छूट जाय। फिर देह छूटनेपर कुछ नहीं हो सकेगा। कहा है:—

श्लोकः—"श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ॥
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम् ॥" महा० मोक्षधर्म॥

—जो कार्य कल करना हो, उसे आज ही कर लेना चाहिये। और अपराह्णमें (दोपहरके बाद) करना है, उसे पूर्वाह्णमें (दोपहर) में ही कर लेना चाहिये। क्योंकि मृत्यु इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करती कि— इसने अपना कार्य समाप्त किया है या नहीं ॥

दोहा:— "काल करे सो आज कर, आज करे सो अब्ब ॥
पलमें परलय होयगी, बहुरि करोगे कब्ब ॥"

ये जरा और मृत्यु बलवान् और दुर्बल एवं छोटे-बड़े सब प्रकारके प्राणियोंको भेड़ियोंके समान खा जानेवाली है ॥

इस प्रकारसे समझ, विचारके सब विषय और विषयी लोगोंके सङ्गको सर्वथा छोड़कर, तुम विरक्त विषय विकारसे रहित सच्चे त्यागी हो जाओ। जिससे निजस्वरूपके स्थिति पारख-परमपदको पाकर फिर तुम सदाके लिये मुक्त हो जाओगे, ऐसा जानलो ॥ ६२ ॥

॥ * ॥ मोह महिमा अङ्ग निर्णय वर्णन ॥ * ॥

दोहा:—अहो ! मोह महिमा प्रबल । सबको करत बेहाल ॥
ज्ञान हरै सम्पत्ति हरै । प्राण हरै ततकाल ॥ ६३ ॥

संक्षेपार्थः— अहो ! बड़े दुःखकी और आश्चर्यकी बात तो देखो ! मोहकी महिमा कितनी बड़ी प्रबल, बलिष्ठ या शक्तिशाली है। जान-बूझके सब प्राणी, माया-मोहके तरफ ही आकर्षित होते चले जाते हैं। यह मोह अपने बलसे सबको अधीन करके, फिर सबोंको बेहाल = परम दुःखी, दुर्दशाग्रस्त, शक्तिहीन कर देता है। अनेकों प्रकारसे कर्म-कुकर्ममें फँसा देता है। जहाँ-तहाँ भटका देता है। खानी-वाणी-के मोहके कारणसे ही, मुक्ति-पद नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। बाहरके

धन-सम्पत्ति हरण करके, बर्बाद करके, फिर षट् सम्पत्ति सद्गुण रहनी-रहस्य आदिको भी हरण करके नशाय देता है। जीवोंके ज्ञान-गुण वा सत्यज्ञानको भी हरण करके, मोह जीवको अज्ञानी बना देता है, और विशेष मोहके विकार बढ़ते-बढ़ते अन्तमें तत्काल प्राण-को भी हरण करके प्राणियोंको मृत्युके मुखमें डाल देता है। इसी मोहरूप अध्यासवश जीव सब चारखानीमें नाना दुःख पा रहे हैं। ऐसा जानके मोहको त्यागकर निर्मोही होना चाहिये। तभी जीवन-सुधार और हित-कल्याण होवेगा॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् ओ हो! आश्चर्य तो इस बातमें होता है कि— संसारमें स्त्री, पुत्र, धन, जनादिके सम्बन्धमें नाना प्रकारसे दुःख पायके भी, माया-मोहकी तरफसे मन नहीं हटता है। बल्कि और भी ज्यादा ही मोहासक्तमें जीव पड़ जाते हैं। महाभारत में लिखा हैः—यक्षके प्रश्नके उत्तरमें युधिष्ठिरने कहा हैः— "धर्मके बारेमें, अनजानपना ही बड़ा भारी मोह है" और आश्चर्य क्या है? उत्तरः— लोग नित्य ही मर करके यमपुरकी यात्रा करते हैं। बाल, युवा, वृद्ध, मनुष्योंका मृत्यु देखा-सुना जाता है, तो भी जो जीवित हैं, वे उन मृतकको देखकर भी अपने मनमें सदैव जीते रहनेकी इच्छा किया करते हैं। इससे बढ़कर आश्चर्य क्या होगा?॥

और भर्तृहरिने भी कहा हैः—

श्लोकः— "अजानन्माहात्म्यं पततु शलभो तीव्रदहने॥
स मीनोऽप्यज्ञानाद्बडिशयुतमश्नातु पिशितम्॥
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जाल जटिलान्-॥
मुञ्चामः कामानहह गहनो मोह महिमा॥" वैराग्यशतक॥

छप्पयः—जानत नाहिं पतंग, अग्निको तेज मई तन॥
गिरत रूपको देखि, जरत अपने अविवेकन॥

तैसे ही यह मीन, मांसको लोभ लुभायो ॥
कण्टक जानत नाहिं, न्याय वह कण्ठ छिदायो ॥
हम जान-बूझ कण्टक सहत, छाड़ सकत नहिं जगत सुख ॥
यह महामोह महिमा प्रबल, देत दुहुनको दोष दुःख ॥

—पतंगी जब अग्निकी शिखा या दीपककी-लौ पर गिरता है, तब वह यह नहीं जानता कि— उसमें गिरनेसे भस्म होकर मैं मर जाऊँगा। तथा मछली भी बन्शीमें लगे हुये मांसको खाती है, वह यह नहीं जानती कि— इसके खानेसे बन्शीका काँटा उसके कण्ठमें छेद देगा, जिससे अन्तमें मृत्युकी प्राप्ति होगी। परन्तु हमें तो देखिये कि— हम सब जान-बूझकर भी या जानते-समझते हुए भी इन दुःखदायी विषयोंकी अभिलाषाको, और संगको नहीं त्यागते हैं। अहो ! यह मोहकी महिमा कैसी प्रबल है, अपार है ? ॥

विवेक चूड़ामणिमें कहा है:—

श्लोकः— "शब्दादिभिः पञ्चभिरेव पञ्च, पञ्चत्वमापुः स्वगुणेन बद्धाः ॥
कुरङ्गमातङ्गपतङ्गमीनभृङ्गा नरः पञ्चभिरञ्चितः किम् ॥"

॥ विवेक चूणामणि ७८ ॥

— अपने-अपने स्वभावके अनुसार शब्दादि पाँच विषयोंमेंसे केवल एक-एकसे बँधे हुए—हरिण, शब्दसे। हाथी, स्पर्शसे। पतङ्ग, रूपसे। मछली, रससे; और भौंरे, गन्धसे मृत्युको प्राप्त होते हैं; फिर इन पाँचोंसे जकड़ा हुआ मनुष्य कैसे बच सकता है ? ॥

दोहाः— "गज अलि मीन पतङ्ग मृग, इक-इक दोष विनाश ॥
जाके तन पञ्चौं विषै, ताकी कैसी आश ॥" पञ्चेन्द्रिय० ॥

इस मोहका विकार बड़ा जटिल होता है। कोई बिरले ही सन्त इससे रहित होते हैं। मणिरत्नमालामें कहा है:—

श्लोकः— "के सन्ति सन्तोऽखिलवीतरागा, अपास्त मोहाः शिवतत्त्व निष्ठाः ॥६॥

॥ मणिरत्नमाला ॥

—प्रश्नः—सन्त कौन है ? उत्तरः—जिसकी सबमेंसे आसक्ति उठ

गयी है ! वैराग्य हुआ है, जिसने मोहका नाश किया है, और जो कल्याणपदकी तत्त्वमें निष्ठावाला है, वह सन्त कहलाता है ॥

और मोहमुद्गरमें कहा है:—

श्लोकः— "का तव कान्ता कस्ते पुत्रः, संसारोऽयमतीव विचित्रः ॥
कस्य त्वं वा कुत आयातस्तत्त्वं, चिन्तय तदिदं भ्रातः ! ॥मोह मु० २॥

पदः— "को तव पत्नी को तव सुत है। यह संसार महा अद्भुत है ॥
कहाँसे आया है तू किसका। भाई ! तत्त्व विचारो इसका ॥"

और बीजकमें कहा है:—

शब्दः— "माया मोह मोहित कीन्हा। ताते ज्ञान रतन हरि लीन्हा ॥ १ ॥
जीवन ऐसो सपना जैसो। जीवन सपन समाना ॥ २ ॥
ज्योति देखि पतङ्ग हुलसे। पशु न पैखे आगी ॥ ४ ॥
काल फाँस नर मुग्ध न चेतहु। कनक कामिनी लागी ॥"श० ६०॥

"चेतत नाहिं मुग्ध नर बौरे ! मोर-मोर गोहराय ॥" बी० र० सा० ७८॥
"मोहा बापुरा युक्ति न देखा। शिव शक्ति विरञ्चि नहिं पेखा ॥" र० ८२ ॥
"जती सती सब मोहिया। गजगति ऐसी जाकी चाल ॥" बी० चाचर १॥
"कहहिं कबीर ते ऊबरे। जाहिं न मोह समाय ॥" बी० चा० १ ॥
"माया केरी बसि परे। ब्रह्मा विष्णु महेश ॥
नारद-शारद सनक सनन्दन। गौरीपूत गणेश ॥" बी० सा० १४६ ॥

ऐसी यह मोहकी महिमा बहुत प्रबल है। संसारी अज्ञानी मनुष्य सब तो विषयादिके स्थूल मोहमें पड़े ही हैं। परन्तु संसारको त्याग करनेवाले भी वाणी कल्पनाके महामोह, पक्ष, दुराग्रहको पकड़ करके कल्पना, भ्रम, धोखामें पकड़े बेहाल हो जाते हैं। खानी और वाणीकी महामोहने सबको घेर रखा है। मोहका आवर्ण भयावनी, अँधियारी रात्रिके समान है। उसमें पड़े हुए लोगोंके ज्ञानगुण, सकल दैवी सम्पत्ति तथा अन्तमें प्राणतक भी स्त्रियाँ, विषयीजन और गुरुवा लोग हरण कर लेते हैं। तत्काल मनुष्योंको महान दुस्तर भवबन्धनोंमें डालदेते हैं। फिर उनका निस्तार होना,

अत्यन्त कठिन हो जाता है। मोहाध्यासवश चौरासी योनियोंके चक्रमें ही फिरते रहते हैं।

अतएव हे मुमुक्षुओ! पारखी सद्गुरुके शरण, ग्रहण करके उक्त मोटी-झीनी दोनों मोह-ममतादिको परित्याग करो, और निज पारख-पदमें मान मोहके सङ्ग दोषादिसे रहित, स्थिर हो रहो ॥ ६३ ॥

दोहाः—जिनकी आशा लागि है। तिनते दुःखी न और ॥
आशा त्यागि निराश भये। सोई सुखके ठौर ॥६४॥

संक्षेपार्थः—हे सन्तो! जिन-जिन मनुष्योंकी जिस किसी बातमें भी आशा-वासना लगी है, वे बड़े दुःखी होते हैं, उनसे बढ़करके दुःखी और कोई भी होते नहीं। और जिन्होंने सम्पूर्ण आशाको परित्याग करके निराश, निवृत्ति स्थितिको धारण कर लिये हैं, सोई सुखकी भूमिकामें स्थित रहते हैं ॥ अर्थात् आशारूप आशक्तिको छोड़ करके जो निराश हो गये, सोई सदाके लिये सुखके ठौर या जीवन्मुक्त स्थितिको प्राप्त होते हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—अर्थात् संसारमें स्त्री, पुत्र, धन, घर, विषय सुख, राज-काज, देवी-देवता, स्वर्गादि लोकोंके कल्पित सुख, ब्रह्म, ईश्वरादि प्राप्ति, इत्यादि अनेकों तरहके आशा, वासनामें, जिन-जिन्होंका मन लगा है, उनसे बढ़के और कोई दुःखी नहीं होते हैं। क्योंकि आशाके कारणसे वे हमेशा जला करते हैं। क्षण-क्षणमें व्याकुल हुआ करते हैं। रह-रहके आशा लगाया करते हैं। परन्तु यहाँके सभी पदार्थ नश्वर हैं, इसलिये आशा भी पूर्ण नहीं होती है। कहा हैः—

श्लोकः—"कायः सन्निहितापायः संपदः पदमापदाम् ॥
समागमाः सापगमाः सर्वं मुत्पादि भङ्गुरम् ॥" हितोपदेश ॥

—शरीर नश्वर है, सम्पत्ति, आपत्तिका घर है, और मिलाप

स्थिर नहीं है, संसारमें सब पदार्थ नश्वर या क्षणभङ्गुर ही बने हैं ॥ कहा है:—

श्लोकः—"आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ॥
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥" भगवद्गीता, अ० १६।१२ ॥

—आशारूप सैकड़ों फाँसियोंसे बँधे हुए और काम, क्रोधके परायण हुए विषय भोगोंकी पूर्तिके लिये, अन्यायपूर्वक धनादिक बहुतसे पदार्थोंको संग्रह करनेकी चेष्टा करते हैं ॥ इसलिये उसमें किया हुआ आशा दुःखका कारण ही हो जाता है। और कहा भी है:—

अर्धश्लोकः— "आशा तु परमं दुःखं नैराश्यं परमंसुखम् ॥"

— आशा, भरोसा करना परम दुःखदाई है और आशासे रहित होके, निराश रहना बड़ा भारी सुख है। उसे ही परमसुख कहते हैं ॥

और भागवत ११। ८ में लिखा है कि, राजा यदुको दत्तात्रेयने बताया है:—

श्लोकः—"तस्यानिर्विण्णचित्ताया गीतं शृणु यथा मम ॥
निर्वेद आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः ॥ २८ ॥
नह्यङ्गाऽजातनिर्वेदो देहबन्धं जिहासति ॥
यथा विज्ञानरहितो मनुजा ममतां नृप ॥"२९॥ भा० ११। ८॥

—जब पिंगलाके चित्तमें वैराग्यकी भावना जाग्रत् हुई, तब उसने एक गीत गाया। वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ। राजन्! मनुष्य आशाकी फाँसीपर लटक रहा है! इसको तलवारकी तरह काटनेवाली यदि कोई वस्तु है, तो वह केवल वैराग्य है। हे राजन्! जिसे वैराग्य नहीं हुआ है, जो इन बखेड़ोंसे ऊबा नहीं है, वह शरीर और इसके बन्धनसे उसी प्रकार मुक्त नहीं होना चाहता, जैसे अज्ञानी पुरुष, ममता छोड़नेकी इच्छा भी नहीं करता ॥ २८। २९ ॥

श्लोकः— "आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ॥
यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला ॥" भा० ११।८।४४॥

— सचमुच आशा ही सबसे बड़ा दुःख है, और निराशा ही सबसे बड़ा सुख है। क्योंकि, पिङ्गला वेश्याने, जब पुरुषकी आशा त्याग दी, तभी वह सुखसे सो सकी ॥

इस प्रकार इहलोक-परलोकमें कहीं भी जिसकी आशा लगी है, वही सबसे बड़ा भारी दुःखी है। उससे बढ़के और कौन दुःखी होगा ? कोई नहीं। जिसने देह, गेह, विषय, मोटी-झीनी सकल आशाको त्यागके निराश, निरिच्छ भये हैं, उनसे बढ़ करके श्रेष्ठ और कोई नहीं है। मुख्य सुखके ठिकानेमें वही निराशी पुरुष रहते हैं। जीवन्मुक्तिका सुख ही मानव-जीवनमें सबसे बड़ा सर्वोच्च कहलाता है। आशाको परित्याग करके विरक्त, सन्त, निज स्वरूप-स्थितिमें ठहरकर मुक्तिपदमें ही रहते हैं। उसपदमें पहुँचनेके लिये मुमुक्षुओंने सकल आशाको त्यागकर निराश हो जाना चाहिये ॥ ६४ ॥

दोहाः— आदि मध्य अरु अन्तमें । आशा दुःखकी रास ॥
स्वर्ग नर्क भुगतावै । आशा अपर्बल फाँस ॥६५॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! विचार करके देखिये ! तो शुरूमें, बीचमें, और आखीरीमें भी सब प्रकारसे आपत्ति, कष्ट या दुःख भोगानेवाली यह आशा दुःखोंकी राशि या ढेरी, समूहवत् ही है। राशके-राश दुःख उसमें लगे हुए हैं। आशा करनेवाले आदि, मध्य, और अन्तमें नाना प्रकारके दुःख ही भोगते हैं। पाप-पुण्यका फल, यहाँ ही स्वर्गरूप सुख और नर्करूप दुःख, अध्यासी जीव भोग भोगा रहे हैं, ऐसा सुख-दुःख भोगनेवाला आशा यही बड़ी अपर्बल = जबर्दस्त विशेष मजबूत जाल-फाँस है। सब बेपारखी जन इसी फन्दोंमें बँधे पड़े हैं। कोई बिरलेही इस फाँससे छूट पाते हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात् जब कि आशा दुःखकी

राशि ही है, फिर उसमें सुख है ही कहाँ? आदिमें आशा सुखरूप प्रतीत होता हुआ भी, वह तो दुःखरूप ही है। जैसे जहर मिली हुयी मिठाई खानेमें स्वादिष्ट होनेपर भी हानिकारक ही होती है। तैसे ही आशा भी सदा दुःखदायी ही होती है। मध्यमें गुणी लोग शुभ गुणसे सुयशकी आशा करते हैं। परन्तु दुर्जन लोग उन्हें भी मिथ्या कलंक लगाकरके दुःखित कर देते हैं। जिससे वे बड़े चिन्तित, दुःखी हो जाते हैं। भर्तृहरिने कहा है:—

श्लोकः— "जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रत रुचौ दम्भः शुचौ कैतवं ॥
शूरे निर्घृणता ऋजौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनी ॥
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे ॥
तत्कोनामगुणो भवेत्सगुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः ॥" नीतिशतक ॥

छप्पयः—लज्जायुत जो होय, ताहिं मूरख ठहरावत ॥
धर्मवृत्ति मनमाँहि, ताहि दम्भी कहि गावत ॥
अतिपवित्र जो होय, ताहि कपटी कहि बोलत ॥
धरै शूरता अङ्ग, ताहि पापी कहि तोलत ॥
विक्रमी मत्त प्रिय वचन रत, तेजवान लम्पट कहत ॥
पण्डित लवार कहैं दुष्टजन, गुणको तज औगुण गहत ॥

— दुर्जन लोग, लज्जावान् पुरुषको मूर्ख, शिथिल। व्रतधारीको, दम्भी। पवित्रको, पाखण्डी, कपटी। शूरको, निर्दई। सीधे मौनव्रत करनेवालेको, मूर्ख। मीठा बोलनेवालेको, दीन-दरिद्री। तेजस्वीको, गर्वीला। वक्ताको, बकवादी। और स्थिर चित्तवालेको, आलसी कहते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि—ऐसा कोई गुण नहीं है, जिसको दुर्जनोंने कलङ्क नहीं लगाया है ॥

श्लोकः— "लोभश्चेद् गुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः ॥
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचिमनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ॥
सौजन्यं यदि किं निजैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः ॥
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥" नीतिशतक ॥

छप्पयः—भयो लोभ मनमाहिं, कहा तब अवगुण चहिये ॥
निन्दा सबकी करत, तहाँ सब पातक लहिये ॥
सत्य वचन तप जान, शुद्ध मन तीरथ जानहु ॥
होत सुजनता जहाँ, तहाँ गुण प्रगट प्रमानहु ॥
यश जहाँ कहाँ भूषण चहै, सद्विद्या जहँ धन कहाँ ॥
अपयश जु छयौ या जगतमें, तिन्हें मृत्यु ही है महा ॥

— जिसमें लोभ है, उसमें दूसरे अवगुणोंकी क्या आवश्यकता है? जो यदि कुटिल, परनिन्दक है, तो उसे पातक करनेकी क्या आवश्यकता है? जो सत्यवादी है, उसे तपसे क्या प्रयोजन है? जिसका मन शुद्ध है, उसको तीर्थ करनेसे क्या काम? कौन अधिक फल होगा? जो सज्जन हैं, उनको मित्र और कुटुम्बियोंकी क्या कमी है? यशस्वी मनुष्योंके लिये, यशसे बढ़कर, दूसरा कौन भूषण है? विद्यावान्‌को अन्य धनकी क्या आवश्यकता है? और जिसको अपयश है, उसे मृत्युसे बढ़कर क्या चाहिये? श्रुतिमें कहा हैः—

श्लोकः— "आदिमध्यावसानेषु दुःखं सर्वमिदं यतः ॥
तस्मात्सर्वं परित्यज्य तत्त्वनिष्ठो भवानघ ॥" श्रुतिः ॥

— यह सम्पूर्ण जगत् (आशा करके) आदि, मध्य और अन्तमें दुःखरूप ही है, इसलिये हे अनघ! इन सबको त्यागकर तू तत्त्व-निष्ठ हो जा ॥

जहाँ-तहाँ भटकाके यह आशा पुरुषोंको दुःखचक्रमें फिराता रहता है। आदिसे मध्यतक दुर्दशा कराकर और फिर अन्तमें आशापूर्ण न होनेसे बड़ाभारी चोट खाके मर जाते हैं! फिर शुभाशुभ अध्यासवश जन्मान्तरमें स्वर्ग = विषयादि लौकिक सुख और नर्क = नाना प्रकारके दुःख, देह धर-धर करके भोगते-भोगाते हैं। यह आशारूपी महाजाल-फाँसमें ज्ञानी, योगी, भक्त, विषयी सभी कोई फँसे पड़े हैं। अपर्बल = बड़ीभारी बलिष्ट दुगुना बलवाला यह आशाकी फाँस है। वह ही सब प्रकारसे दुःखको राशि है। जो

आशामें फँसा, वह भवसागरमें डूबा, कठिन बन्धनमें जकड़ गया। इसलिये प्रथमसे ही परख करके आशाको त्याग देना चाहिये। आशाको त्यागे बिना कोई कदापि मुक्त नहीं, हो सकते हैं। ऐसा जानना चाहिये ॥ ६५ ॥

दोहाः— ताते आशा त्यागिये । देह गेहकी जान ॥

नास्ति सुखके कारणे । क्यों होवै बन्धमान ? ॥ ६६ ॥

संक्षेपार्थः— इसवास्ते मुक्ति चाहनेवाले हे मनुष्यो ! अब तो भी परख करके सब तरहको आशा-वासनाओंको त्याग दीजिये ! शरीरकी, घर, स्त्री, पुत्र, धनादिकी, स्वर्गादि, ईश्वरादिकी, सम्पूर्ण आशा बन्धनरूप है; ऐसा यथार्थ सत्य निर्णय करके जानिये। और विषयानन्दसे लेकरके ब्रह्मानन्दतककी समस्त सुख नास्ति = असत्य, नाशवान्, क्षणिक देहके भासमात्र है। फिर उस नास्तिक सुखके कारणसे उसमें आसक्ति या आशा टिकाके, हे नर जीवो ! तुम क्यों हकनाहक बन्धायमान् होते हो ? देह, गेह, विषय, ब्रह्म आदि जिसके आशामें तुम लिप्त होते हो, सो सब तो यहीं शरीरके साथ ही छूट जाते हैं। परन्तु अध्यासी जीव सब आवागमनके चक्रमें जाके पड़ जाते हैं। फिर उसे तुम मान-मानके, आशा टिकाके क्यों बन्धनमें पड़ते हो ? छोड़ो उसको ॥

॥ ❋ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ❋ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् आशा करके बड़ा भारी दुःख, सन्ताप, कष्ट, क्लेश, आदिकी पीड़ा प्राणियोंको बारम्बार भोगते रहना पड़ता है। इसवास्ते सद्गुरु मुमुक्षुओंको सत्शिक्षा देते हुये कहते हैं, कि— शरीरकी और बाहरकी घर, धन, परिवार आदिकोंको बन्धनके कारण और नाशवान् जान करके उन सबोंकी आशा, अध्यासको त्याग दो, सद्गुणोंको धारण करके सत्पुरुष बनो। सत्पुरुषोंको कौन-कौन लक्षण ग्रहण करना चाहिये ! तहाँ भर्तृहरिने कहा हैः—

श्लोकः— "तृष्णांछिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापेरतिं माकृथाः ॥
सत्यंब्रूह्यनुयाहि साधु पदवीं सेवस्व विद्वज्जनान् ॥
मान्यान्मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रख्यापय स्वान् गुणान् ॥
कीर्तिपालयदुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम् ॥" नीतिशतक ॥

— तृष्णाका छेदन करो या त्यागो, क्षमा धारण करो, अभिमान या मदका परित्याग करो, पापमें प्रीति करके मन मत लगाओ, सत्य बोलो, साधुओंकी रीतिपर चलो या साधु पदवीको प्राप्त करो, विद्वानोंकी सेवा करो, मान्य-पुरुषोंका आदर करो, शत्रुको भी प्रसन्न रखो, अपने गुणोंको प्रसिद्ध करो, कीर्ति या यशका पालन करो, और दुःखियोंपर दया करो, यह सब सत्पुरुषोंके लक्षण हैं ॥

"मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णास्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ॥
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं, निज हृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥" नीति० ॥

— जिनके तन, मन और वाणीमें पुण्यरूपी अमृत भरा हुआ है, जिनने अपने उपकारोंसे तीनों लोकोंको प्रसन्न किया है, और जो दूसरेके परमाणु बराबर गुणोंको भी पर्वतके समान बढ़ाकर अपने हृदयमें सदा प्रसन्न रहते हैं, ऐसे सज्जन मनुष्य सन्त इस संसारमें बिरले ही होते हैं ॥

दोहाः— "अमृत भरे तन, मन, वचन, निशि दिन जग उपकार ॥
परगुण मानत मेरु सम, बिरले जन संसार ॥"

श्लोकः— "भोगानामाश्रयो देहः स च दोषगणान्वितः ॥
विण्मूत्रास्थ्यादयो दोषा यतः सन्ति शरीरगा ॥" मु० ॥

— शरीर भोगोंका आश्रयस्थान है, और अनेकों दोषोंसे पूर्ण है, क्योंकि विष्ठा, मूत्र और हड्डी आदि दोष इस शरीरमें ही रहते हैं ॥ कोई भी बुद्धिमान् पुरुष विष्ठा आदिके सङ्घातरूप इस देहमें भोगकी इच्छा नहीं कर सकता। भला! विष्ठाके गड्ढेमें रहकर कुकुर आदिके सिवाय और कौन पुरुष भोगोंको भोग सकता है ॥ किन्तु मूढ़ पुरुष तो इस शरीरमें बैठकर ही अति आनन्दपूर्वकपू

विषयोंको भोगता है, जिस प्रकार कोई अत्यन्त मूढ़ बालक अपने मल-मूत्रादिको ही उठा-उठाके खाने लगता है॥ वैसे ही हाल उन्होंकी भी होती है ॥

अतएव शरीर तथा घरादिकोंमें अज्ञानतासे सुख जानकर या मानकर मिथ्या विषयोंमें आशा लगाके, क्यों आशक्त होते हो? विषयानन्द, प्रेमानन्द, योगानन्द, ज्ञानानन्द, और ब्रह्मानन्दादि माने हुए सकल सुख नाशवान् देह-सम्बन्धमें भास होते हैं। इसलिये वे भी नाशवान् हैं। फिर उस अनित्य, नास्ति सुखके वास्ते आशा, तृष्णा, वासना, बढ़ाय करके हे मनुष्यो! तुम लोग क्यों नाहकमें बन्धायमान् होते हो? उसी अध्यासवश चारखानियोंमें अनेकों देह धर-धरके नाना तरहसे जीव दुःख भोग रहे हैं। तुम भी अचेत होके चौरासी योनियोंमें जानेकी तैयारी क्यों कर रहे हो? यदि अबकी बार तुम मुक्ति चाहते हो, तो सब तरफसे मनको हटा करके सम्पूर्ण आशा-तृष्णादि विकारोंको एकदमसे त्याग करो, और सत्य-विचारादि सद्गुणोंको धारण करके दृढ़ वैराग्यपूर्वक निज कल्याणपदमें लागो। सत्यासत्यको परख करके जानो, असत्यका परित्याग करो ॥ ६६ ॥

दोहाः— केवल मुक्ति आशा रहै। तेऊ है बन्धमान ॥
सुखिया सदा निराशपद। सुनु वैराग्य निधान ॥ ६७ ॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो! यदि और सब आशायें छूटके किसीके मनमें केवल मुक्ति प्राप्त करनेकीमात्र ही आशा लगी रही, तो वह भी बन्धनके भीतर ही पड़ा है, ऐसा जानना चाहिये। कुछ भी आशा करना ही बन्धनमें पड़ना माना जाता है। हे वैराग्यनिधान सन्तो! सुनो! निराशपदमें रहनेवाले ही सदा सुखी होते हैं। अतः वैराग्य धारण करो, विरक्त पुरुषोंके ही कथन उपदेश सुनो, जिससे वैराग्यके भण्डारवत् होके निराशपदमें रहके सदा सुखी होओगे, सो जानो ॥

॥ ❋ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ❋ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् और सब तरफसे आशा छोड़ करके कोई केवल मुक्तिमात्र प्राप्ति करनेकी आशा रखें, अथवा कैवल्यमुक्ति या निर्वाणपद, ब्रह्मानन्द स्थिति, परमहंस दशा प्राप्ति करनेमात्रकी आशा बना रहा, तो गुरु पारख निर्णयसे वह भी मानन्दी जीवको बन्धन ही देनेवाला है। क्योंकि आशा, चाहना, मानन्दी तो वहाँ रहा ही। इसलिये कैवल्य मुक्ति या सिर्फ मुक्तिकी आशा रखनेवाले वे भी बन्धायमान् होते हैं। "जहाँ आशा तहाँ बासा, मनका यही तमाशा" ॥ **अथवा पञ्चग्रन्थी टकसारमें भी कहा हैः—**

चौपाईः—"जो जहाँ प्रीति अटल है जाके। बासा तेई तहाँ है ताके ॥
आशा इन्ह परपञ्च न कीजै। जीवन जन्म सुफल कर लीजै ॥
पारख लहत नियारा होई। आश बास हेतु सब खोई ॥"

और पञ्चग्रन्थी गुरुबोधमें कहा हैः—

दोहाः— "प्राप्ति जीव इच्छा नहीं, केवल हन्त छुड़ाव ॥
निज स्वरूप लखि दयायुत, दीन जानि अपनाव ॥" ३५२ ॥

— वास्तवमें जीव स्वयंस्वरूप नित्य प्राप्त है। और कुछ भी आशा करके प्राप्ति करनेकी उसे जरूरत ही नहीं। सिर्फ हन्ता, जड़ाध्यासको छोड़कर पारखस्वरूपमें निराश-निवृत्ति सहित स्थिति करनेकी आवश्यकता है। इसके विपरीत अगर कहीं आशा लगी रही, तो वह अवश्य बन्धन ही होगा। परख-परख करके सकल वासना छोड़ दिया गया, तो अध्यासकी अन्त होनेपर आपही जीवन्मुक्ति हो जायगी। फिर वहाँ केवल मुक्तिकी आशा करनेका क्या काम? जिसने भोजन कर लिया, सो स्वयं तृप्त हो जायगा। उसे मैं तृप्त हो जाऊँ, यह आशा करनेकी जरूरत ही नहीं है। इसलिये पुरुषार्थ करके स्थिर होना चाहिये। केवल मुक्तितककी भी आशा नहीं रखना चाहिये। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक साखी २९८ में कहा हैः—

साखीः— "जो तू चाहै मूझको, छाड़ सकलकी आश ॥
मुझही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास ॥" बी० सा० २६८॥

इसकी टीकामें सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने स्वयं ही विस्तारसे खुलासा करके लिखा है। साहेब कहते हैं:— "हे मनुष्यो! जो तुम मुझे या मेरे सत्यसिद्धान्त पारखपदको समझना चाहते हो, तो पहले सम्पूर्ण आशा, आसक्तिको जो पकड़े हो, सो उसे छोड़ दो। क्योंकि, जबतक कुछ भी आशा लगी रहेगी, तबतक बन्धन बना रहेगा, आशा ही बन्धनका कारण है। संसारकी समस्त आशायें त्यागनेपर और वाणी कल्पनासे होनेवाली आशाः—ऋद्धि, सिद्धि, स्वर्गादि, चारमुक्ति, और केवल मुक्तिकी आशामात्र भी नहीं करना। मोटी-झीनी सब तरफकी आशा जीवको बन्धन है। इसीसे जो मेरे जीवन्मुक्ति-स्थितिको तुम भी पाना चाहते हो, तो प्रथम सकलकी आशाको छोड़ो, और मेरे समान निराश वर्तमानमें सद्गुण रहनी पारखबोध सहित स्थित हो रहो। फिर सब सुख, जो तुम्हारे पास है, सो तुम्हें मालूम होके मिल जायगा", इत्यादि ॥

इस निर्णयसे यह सिद्ध हुआ कि— केवल मुक्ति या कैवल्य-पदकी भी आशा रहेगी, तो वह भी बन्धायमान् होगा। जगत्में चारखानी चौरासी योनियोंके भव-बन्धनोंमें वह पड़ जायगा। अतएव केवल मुक्ति तककी आशाको भी त्याग देना चाहिये। जो सदा, सर्वदा निराश वर्तमानमें निजपद पारखमें शान्त, स्थिर हो रहता है, सोई सुखिया = जीवन्मुक्त सुखी होते हैं। निराशपद ही सदा सुखदायी है। हे जिज्ञासु मनुष्यो! वैराग्य निधान = दृढ़ वैराग्यवान्, वैराग्यरूपी ऐश्वर्यसे सम्पन्न पारखी सन्त जो हैं, उन्हींके सत्सङ्ग करो और सन्त सभामें जाकर सत्योपदेशको श्रवण करो और विवेक-वैराग्यको हृदयमें धारण करो। जैसी वार्ता सुनी जाती है, वैसी भावनाएँ दृढ़ होती हैं, इससे वैराग्य चर्चाको ही सुनो॥ उस बारेमें कहा है:—

"खटरागी हो जाता है, जो दुनियाँका खटराग सुनै ॥
वैरागी बन जाय जो, सन्तोंसे वैराग सुनै ॥
मुक्ति ना चाहै, वो ईश्वर दर्शनका प्यासा नहीं ॥
खास वैरागी वही है, जिसको कुछ आशा नहीं ॥"

॥ अमरदासजीकृत ख्याल—७ क० भ० ॥

हे वैराग्यनिधान सन्तो ! मैंने जो गुरुमुख निर्णयसे वैराग्य धारणाका कथन कहा, उसे चित्त लगाकरके सुनो ! और उसे मनमें अच्छी तरहसे गुनो, यानी मनन करो। फिर उसी तरह वैराग्य धारण करके निराश वर्तमानमें प्रारब्ध भोग बिताकर मुक्त हो जाओ ॥ ६७ ॥

दोहाः— आशाते दुःख और नहीं । आशा दुःखको रूप ॥
जाकी आशा सब छूटिया । सो सुखिया सुख रूप ॥ ६८ ॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! आशासे बढ़कर दुःख देनेवाला संसारमें और कोई भी बात नहीं है। दुःखका साक्षात् स्वरूप देखना चाहो, तो इसी आशाको देख लो। क्योंकि, आशा ही दुःखका रूप है। और जिस महापुरुषकी सम्पूर्ण आशा-वासनाएँ छूट गयी है, सोई एकमात्र सुखिया जीवन्मुक्त सुखस्वरूप कहलाते हैं। निराश, निवृत्तिवाले वैराग्यवान् ही निजस्वरूपमें स्थित सुखी होते हैं। ऐसे ही साधुओंकी सङ्गत होना चाहिये ॥ तहाँ कहा हैः—

दोहाः— "मारिये आशा साँपिनि, जिन डसिया संसार ॥
ताकी औषध तोष है, ये गुरु मन्त्र विचार ॥" तीसायन्त्र ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् संसारमें दुःख तो अनेक प्राणियोंको अनेक प्रकारसे होते हैं, परन्तु आशासे होनेवाले दुःखोंके सामने वे सब छोटे-हलुके कहे जाते हैं। आशासे ही नाना तरहके कठोर दुःख होते हैं। विचार करके देखिये ! तो आशासे

अधिक सन्ताप देनेवाला और कोई दुःख ही नहीं है। सब प्रकारसे आशा दुःखका ही रूप है। साखी ग्रन्थमें लिखा है:—

दोहा:— "आशा जीवै जग मरे, लोक मरे मर जाहिं ॥
धन सञ्चय सो भी मरे, उबरे सो धन खाहिं ॥ १ ॥
बाढ़ चढ़न्ती बेलरी, उरझी आशा फन्द ॥
टूटै पै छूटै नहीं, हुई जो वाचा बन्द ॥ २ ॥
आशा मनसा दोय नदी, तहाँ न पग ठहराय ॥
इन दोनोंको लाँघिके, चौड़े बैठा जाय ॥ ३ ॥
आशा छूटै भय मिटै, छूटै जग व्यवहार ॥
कहहिं कबीर तब जानिये, साधु मानुष सार ॥" साखीग्रन्थ ४ ॥

गरीबसे लेकर धनी, महाधनी इत्यादि सकल मनुष्योंको आशा समानरूपमें लगा ही रहता है। बाहरी पदार्थोंकी कमी-बेशीसे आशाकी गिनती नहीं होती है। किन्तु आशा तो मनसे होती है। चाहे कितना भी मिल जाय, तो भी और विशेष मिलनेकी आशा लगी ही रहती है। आशा अनन्त कही जाती है, क्योंकि, बिना पारख आशाका कभी अन्त आता ही नहीं। शरीर नाश हो जाता है। आशा अध्यासरूप बनके जीवके पीछे लग जाता है। पारख बोध हुए बिना किसीकी भी स्वयं आशा नहीं मिटती है। आशा सुख और मुक्तिको नाश करनेवाली जहर है। आशामें पड़े हुये लोगोंकी आयु व्यर्थ ही चली जाती है। किसीने कहा है:—

पद:— "आशा कारण केश विनाशा, झोली तुम्बा रूखमें खोंसा ॥
धन्दे बन्दे दोनों नाशा, कौने पापी आयके खाँसा ॥"

इसमें एक घटित कथा आया है, सो सन्त जानते ही हैं, इसलिये कथा नहीं लिखा है ॥

— विशेष करके छोटे-बड़े सब मनुष्योंको विषय-भोगोंसे सुख-प्राप्ति करनेकी ही आशा लगी रहती है। परन्तु विषय क्षणिक है, क्षण-क्षणमें पलटती हुई बढ़ती ही चली जाती है। आशाके कारण

चित्त मलीन और चञ्चल होता रहता है। जैसी आशाकी बढ़ती होती है, वैसी शीघ्रतासे वृद्धि किसी पदार्थकी भी नहीं होती है। आशासे, बड़ासे-बड़ा दुःख होता है। आशाके त्यागसे अवश्य सुख होता है। ऐसा जानते, समझते हुए भी आशाको छोड़ नहीं सकते हैं। यह कितनी आश्चर्यकी बात है। आशाके कारण पूर्वमें और अभी भी बहुतेरे मनुष्य बड़े-बड़े संकटमें पड़े हैं। नाना प्रकारसे दुःख भोगे हैं, अन्तमें प्राणको भी गवाँ बैठे हैं, सो नाना प्रकारसे दृष्टान्तोंमें वर्णन भया ही है। और घटनाएँ घट ही रही हैं। जीवोंको बाँधे रखनेवाली आशा, बलिष्ट यमपाश है। इसे सेवन करनेपर दुःख और त्यागनेपर सुख मिलता है।

तुलसीदासजीने दोहावलीमें कहा हैः—

दोहाः— "तुलसी अद्‌भुत देवता, आशा देवी नाम ॥
सेयें शोक समर्पई, बिमुख भएँ अभिराम ॥" दोहावली ॥

आशाको परित्याग करनेवाला सदा सुखी होता है। संस्कारी मनुष्य प्रथम अनेक प्रकारके दुःख पाकर वा दूसरोंको दुःखी देखकर घबरा जाते हैं। और कारण विशेषसे कोई घटना घट जानेसे वैराग्यमें प्रवृत्त हो जाते हैं। फिर संसारके तरफसे निराश होकर अपने जीवन सुधारमें लग जाते हैं। ऐसे कई एक हो गये हैं, उनमें-से— भर्तृहरि, गोपीचन्द, विल्वमङ्गल, तुलसीदासजी, आदिकी कथा तो प्रसिद्ध ही है। विचार करके देखिये! तो उन्होंने खाली सांसारिक मोटी मायाका सङ्ग विषय-भोगोंकी आशा ही त्यागे थे। परन्तु झीनी माया वाणी कल्पनाकी आशामें तो वे भी फँसे ही थे॥

पञ्चग्रन्थीमें कहा हैः—

साखीः—"मोटी माया सब तजे। झीनी तजी न जाय॥
पीर पैगम्बर औलिया। झीनी सबको खाय॥" पञ्चग्रंथी॥

अतएव यहाँ पारख गुरुके निर्णयमें तो जैसे खानी जाल बन्धन है, वैसे ही वाणी जाल भी जबरदस्त बन्धन है। ब्रह्म, ईश्वर, खुदा,

देवी, देवताओं आदिकी आशा करना, वह भी चौरासी योनियोंमें ले जानेवाला फाँसा ही है। उस कल्पनाके आशासे जप, तप, व्रत, उपवास, भक्ति, योग, ज्ञानकी साधना, पञ्चाग्नि, जलशयन, आदि कठिन कष्ट-क्लेश, बड़ी दुःख भोग यहाँ भी जीते ही भोगते हैं। फिर शरीर छूटनेपर भी अध्यासवश नाना योनियोंमें जाके, दुःख भोगते हैं। इसलिये सब प्रकारकी आशाएँ दुःखका ही रूप है। आशासे ज्यादा दुःखदाई और कोई नहीं है। ऐसा जानके विवेकद्वारा परीक्षा कर-करके समस्त आशा तृष्णादिको त्याग देना चाहिये। जिन पारखी सन्तोंकी गुरुपारखके प्रतापसे, सब आशाएँ छूट गई हैं, वे स्वरूप स्थितिमें स्थिर, अध्याससे रहित, जीते ही मुक्त होते हैं। इसीसे सो सुखरूप सुखिया कहलाते हैं। देह रहेतक निराश वर्तमानमें रहते हैं। उसी प्रकार हम लोगोंने अपने भी वैसे ही स्थिति बना लेना चाहिये ॥ ६८ ॥

॥ * ॥ क्रोध प्रताप निर्णय वर्णन ॥ * ॥

दोहाः—क्रोध सबनको काल है। क्रोधहि है जञ्जाल ॥
शिव दुर्वासा क्रोध वश। बहुते भये बेहाल ॥ ६९ ॥

संक्षेपार्थः—हे मुमुक्षु मनुष्यो! जान-बूझकर कभी किसी कारणसे भी क्रोध नहीं करना चाहिये। क्योंकि, क्रोध यह जो है, सो ज्ञानी, अज्ञानी, साधु, गृहस्थ आदि सबोंको विनाश करनेवाला महाकाल है। और क्रोध ही सारे जञ्जाल, अनर्थ, दुःख, सन्ताप आदिको उत्पन्न करके बढ़ानेवाला मूल कारण है। इसी कालरूप क्रोधके अधीन हो करके बड़े-बड़े लोगोंने भी बुराई करके अनुचित बर्ताव कर डाले। उनमेंसे शिव = तमोगुणी, महादेव और अत्रिपुत्र दुर्वासा मुनिने विचारको छोड़ करके क्रोधवश होकर बहुतेरे मनुष्योंको दुःख दिये थे। जिससे बारम्बार कयी बार बहुत प्राणियोंको सताये, वे बहुत बेहाल भये। अपने-पराये दोनोंकी हानि करके, परम दुःखी भये। और चौरासी

योनियोंके अधिकारी हुए । अतएव अपने हित चाहनेवालोंने क्रोधको जीतना चाहिये ॥

|| ※ || शिवके क्रोधकी कथा || विस्तार निर्णय कथन वर्णन || ※ ||

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् शिवजीके क्रोधकी बात पुराणोंमें बहुत प्रकारसे लिखी है। (१) उनमेंसे एक बात पहले यह हुई कि— ब्रह्माने जब अपनी पुत्री सरस्वतीपर आसक्त होके, विषय भोग किया, तब शिवने उसपर बहुत क्रोध करके उसका शिर काट डाला। जिससे उन्हें ब्रह्म-हत्या लगी, उससे शरीरमें जलन पैदा हुई। उसे निवारण करनेके लिये, हाथीका गीला चमड़ा ओढ़े, बाघके चर्म पहिने। पीछे उन्हें भी दुर्दशा झेलनी पड़ी। नर-मुण्डको पहिरके खोपड़ीमें भीख माँगके खाते भये। इत्यादि बात लिखा हुआ है ॥

और जब सतीदेवीके साथ दक्षके यहाँ शिवका विवाह हो रहा था, तब सतीदेवीके सुन्दररूपको देखके, ब्रह्मा मोहित, कामासक्त हुआ। जिससे उसका वीर्यपतन हुआ। यह बात जानके शिव कुपित हुये और त्रिशूलसे ब्रह्माका पाँचवाँ शिर उड़ा दिया, तबसे चार ही शिर ब्रह्माका रहा, ऐसा कहा है। और उधर उस कारणसे भी शिव-को ब्रह्म-हत्याका पाप लगा, तो विक्षिप्त चित्त हो गया, इत्यादि कथा पुराणोंमें वर्णन भया है ॥ और—

क्रोधके कारणसे ही महादेवने त्रिपुरासुर नामक दैत्य, तीनों भाइयोंको भी मार दिये थे। तबसे त्रिपुरारी उनका नाम पड़ा, ऐसा वर्णन है ॥

पुराणोंमें लिखा है— महादेव और दक्षपुत्री सतीदेवीका विवाह भी, विष्णुने, छल-कपट करके, करा दिया था। भागवत ४। २ में कहा हैः— पहले एक बार प्रजापतियोंके यज्ञमें बड़े-बड़े सब ऋषि, मुनि, देवतादि आये थे। पीछेसे दक्ष प्रजापति भी वहाँ आये। उनके सम्मानके लिये अन्य सब देवता उठके खड़े हुए, किन्तु ब्रह्मा और महादेव बैठे ही रहे। महेश उनके दामाद थे, उनसे कुछ भी आदर

न पाकर दक्ष क्रोधित हुए, तो बहुतसी बातें सुनाके महादेवको यज्ञ-में भाग न मिलनेका शाप दक्षने दे दिया। यह सुन नन्दीने भी उन्हें शाप दिया। ब्राह्मणोंको भी शाप दिया। उसके बदलेमें भृगुने भी शिव-भक्त और उनके अनुयायियोंपर कठोर शाप दे डाला। पाखण्डी बतलाया। यह सब बात क्रोधके कारणसे ही हुआ॥

और भागवत ४। ३ से ५ तक लिखा है:—उसका सारांश यही है कि—एक समय दक्षने बड़ा भारी यज्ञ किया, सबको बुलाया। किन्तु महादेवको नहीं बुलाया। देवताओंको स्त्री-सहित सज-धजके दक्षके यज्ञमें जाते देखकरके सतीदेवीको भी वहाँ जानेका मन हो गया। तब उसने महादेवसे जानेके लिये कहा। उन्होंने मना किया। कई तरहसे समझाया। परन्तु सतीने हठ पकड़ली मानी नहीं, और अकेले ही यज्ञमें चली गई। वहाँ दक्षने उसका कुछ भी आदर नहीं किया, बल्कि शिवका निन्दा, अपमानके शब्द कहा। जिसपर सतीने दक्षको धिक्कारते हुए अत्यन्त दुःखी होकर, यज्ञ कुण्डमें कूदके जल मरीं, पीछेसे यह समाचार पाकर महेश अत्यन्त क्रोधित हो गये, और वीर भद्र, महाकाली, मणिमान्, नन्दी, भृङ्गी, चण्डी, आदि चौंसठ गणोंको बुलाकर, दक्ष और उसके यज्ञको विध्वंशकर नष्ट-भ्रष्ट करके आनेकी आज्ञा देके भेजा। तब वे रुद्रगण बड़ी उत्पात मचाते हुए, यज्ञस्थलमें गये और मार-काट मचाके सभामण्डप ध्वस्त कर दिये। यज्ञका विनाश करके फिर दक्षके सिरको भी काट करके वीरभद्रने अग्नि-कुण्डमें जला दिया। आग लगाकरके सारा यज्ञशालाको विध्वंशकर दिया। बहुत लोग मारे गये। इस प्रकार शिवके क्रोधसे बहुत मनुष्य बेहाल वा अत्यन्त दुःखी हुए, इत्यादि वर्णन हुआ है॥

इस प्रकार उचित, अनुचित कई कारणोंसे शिवने बहुत बार क्रोध प्रगट करके बहुतोंको सताया है। सो सब विस्तारसे पुराणोंमें कहा है। यहाँ संक्षेपमें कुछ नमूनामात्र उसका जना दिया है।

(२) दूसरा, अत्रि मुनिद्वारा उनकी स्त्री-अनसूयाके गर्भसे तीन पुत्र

पैदा हुये । उनके नाम चन्द्रमा, दत्तात्रेय, और दुर्वासा था । छोटेपन-से ही दुर्वासा तामसी तथा बड़े उग्र क्रोधी स्वभावके था। पुराणोंमें लिखा हैः— और्व मुनिकी पुत्री कन्दलीसे दुर्वासाका विवाह हुआ था; तब स्त्रीके सौ अपराधतक होनेपर क्षमा करनेका प्रण किये थे। विशेष क्रोधी होनेसे सौ से भी ज्यादा स्त्रीकेद्वारा अपराध हो गया, ऐसा मानकर एक समयमें अपनी स्त्रीको ही मार डाला। क्रोधान्ध होके बहुतसे अनर्थ भी किया।

मार्कण्डेय पुराणमें प्रथम ही लिखा हैः—एक समय दुर्वासा मुनि हिमालय पर्वतपर तपस्या कर रहे थे। उनके तप भङ्ग करनेके लिये वपु नामकी अप्सरा वहाँ गई और गाने लगी। उसे देखके मुनिको बहुत क्रोध हो आया, तो उसे शाप देते हुए बोले— ओ खोटी, नीच अप्सरा! तू मेरे तपमें विघ्न डालनेको आई है। अरे नीच! जा, तू मेरे क्रोधसे कलङ्कित होकर मरके पक्षीके कुलमें जन्म लेगी, इत्यादि कह-कर उसे शाप देके चल दिया। जिससे वह बहुत पीड़ित भई, इत्यादि॥

भागवत ९। ४–५ में लिखा हैः— नाभागके पुत्र हुए अम्बरीष! वे प्रेमी, भक्त, धर्मात्मा थे। एक समयमें उन्होंने द्वादशी प्रधान एकादशीका व्रत किया था। द्वादशीको ब्राह्मणोंको दान-दक्षिणा भरपूर देकर व्रतका पारण या समाप्ति करनेकी तैयारी कर ही रहे थे, उसी समयमें दुर्वासा मुनि भी उनके यहाँ अतिथिके रूपमें आगये। राजा अम्बरीषने उन्हें विधिवत् पूजा किये। और भोजनके लिये प्रार्थना किये। दुर्वासाने पीछे आके भोजन पाऊँगा, अभी नित्यकर्म कर आता हूँ, कहके नदी तटपर चले गये। वहाँ उन्होंने देर लगा दिये। इधर द्वादशी केवल घड़ी भर रही, तो धर्म सङ्कटमें पड़कर ब्राह्मणोंसे विचार करके राजाने खाली जल पीकर पारण कर लिये। पीछे दुर्वासा नदी तटसे लौट आये और यह जानकर कि— राजाने पारण कर लिया है, वे क्रोधसे थर-थर काँपने लगे। दुर्वासाने अम्बरीषको डाँटकर बहुतसी कटु वचन कहा। फिर अपना एक जटा उखाड़के

राजाको मारनेके लिये एक कृत्या–राक्षसीको बुलाया। लिखा हैः—कृत्या हाथमें तलवार लेके राजाको मारनेको दौड़ी, उतनेमें विष्णुने सुदर्शन चक्रको छोडा, उस चक्रने कृत्याकोही मारके भस्मकर दिया। और फिर चक्र दुर्वासाकी ओर बढ़ा, यह देखके वे भयभीत हो, अपने प्राण बचानेके लिये सब कुछ छोड़कर एकाएक भाग निकले। परन्तु चक्र उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। यह देखके वे बहुत घबड़ाये, जहाँ-तहाँ भागे, कहीं सहारा नहीं मिला। स्वर्गादि लोकोंमें भी उनकी रक्षा नहीं हुई। तब ब्रह्माके शरणमें गया। "भक्त द्रोहीको बचानेमें हम समर्थ नहीं" ऐसा ब्रह्माने कह दिया। फिर महादेवके पासमें जाके प्रार्थना किया; "इस काममें हम असमर्थ हैं" तुम विष्णुके शरणमें जाओ, ऐसा शिवने कहा। सब तरफसे निराश होकर दुर्वासा अन्तमें विष्णुके शरणमें जाके चक्रसे रक्षा चाहता भया। नाना भाँतिसे विनय किया। तब विष्णु बोले—मैं सर्वथा भक्तोंके अधीन हूँ। इससे मैं आपकी रक्षा कर नहीं सकता। सुनिये ! मैं आपको एक उपाय बतलाता हूँ। जिसका अनिष्ट करनेसे आपको इस विपत्तिमें पड़ना पड़ा है, आप उसीके पास जाइये। निरपराध साधुओंके अनिष्ट या हानिकी चेष्टासे अनिष्ट करनेवालेका ही अमङ्गल होता है। दुर्वासाजी ! आप अम्बरीषके ही पास जाइये ! और उनसे क्षमा माँगिये। तब आपको शान्ति मिलेगी।

ऐसे विष्णुका वचन सुनके चक्रकी ज्वालासे जलते हुए दुर्वासा लौटकर राजा अम्बरीषके पास आये और उन्होंने अत्यन्त दुःखी होकर राजाके पैर पकड़ लिये। उनकी ऐसी चेष्टा देखकर और चरण पकड़नेसे लज्जित होकर राजाने जिस किसी प्रकारसे चक्रको शान्त किया। इस प्रकार जब चक्रकी ज्वालासे दुर्वासा छूट गये, तब वे राजाको अनेकों आशीर्वाद देकर प्रशंसा करते भये। पीछे मुनिको प्रसन्न करके भोजन कराये, फिर मुनिके आज्ञासे राजाने भी भोजन पाया। पश्चात् दुर्वासा सन्तुष्ट होके चले गये। ऐसे क्रोधके कारण

से दुर्वासा आप ही बहुत बेहाल भया था ॥ यहीआशय लेकर तीसा-यन्त्रमें कहा है:—

दोहाः— "गम समान भोजन नहीं, जो कोइ गमको खाय ॥
अम्बरीष गम खाइया, दुर्वासा बिललाय ॥" तीसायन्त्र ॥

और महाभारत, वनपर्वमें लिखा है:—एक समय दुर्वासा, शिष्योंके सहित दुर्योधनके अतिथि भये । हर प्रकारसे सेवा करके उन्हें दुर्योधनने प्रसन्न किया । तब दुर्वासाने वर माँगनेको कहा— दुर्योधनने यह वर माँगा कि— इसी प्रकार आप शिष्योंसहित वनवासी पाण्डवोंके भी अतिथि होइये ! परन्तु जब द्रौपदीने भी भोजनकर चुकनेके पश्चात् विश्राम कर रही हो, उस वक्त आप वहाँ पधारें । 'तथास्तु' कहके वे चले गये ॥

एकदिन दुर्वासा मुनि इस बातका पता लगाकर कि— पाण्डव और द्रौपदी, सभी लोग भोजनसे निवृत्त हो आराम कर रहे हैं, दस हजार शिष्योंको साथ लेकर वनमें युधिष्ठिरके पास जा पहुँचे । राजाने अतिथि सत्कार किया । फिर विधिवत् पूजन करके कहा— आप नित्य कर्मसे निवृत्त होकर आइये, और भोजन कीजिये । मुनि शिष्योंके साथ नदीमें स्नानादि करनेको चले गये । इधर अन्नादि सामान नहीं था, द्रौपदीने बड़ी चिन्ता करके कृष्णको बुलाई । सन्देश पाके, वे तुरन्त वहाँ आ पहुँचे । प्रसन्न होकर द्रौपदीने सब समाचार दुर्वासा मुनिके आनेका कह सुनाया । तब यथा उचित युक्ति, प्रयुक्तिसे उसके निवारणका प्रबन्ध कृष्णने कर दिया । फिर बटलोई मँगाके मुझे भूख लगी है, कहके उसमें जो कुछ साग-पात लगा था, सो निकालके खा लिया, इससे सबकी तृप्ति हो, ऐसा कहते भये । उधर कृष्णके प्रबन्धसे तृप्त, सन्तुष्ट होकर, और अम्बरीषके घटनाको याद करके, मुनि, शिष्य-सहित भाग गये । कृष्णकी चतुराईसे तब पाण्डवोंका सङ्कट टला, इत्यादि वर्णन भया है ॥

और विश्वामित्रने भी ईर्षा-द्वेष और क्रोधके कारण ही वशिष्ठ मुनिके सौ पुत्र मरवा दिया था! और राजा हरिश्चन्द्रको भी विश्वामित्रने क्रोध करके ही समस्त राज्य दानमें लेकर उन्हें चाण्डालके हाथों बिकवा दिया था। फिर विश्वामित्र, कण्व और नारद इन्होंने मूर्ख यदुवंशी सारण आदिके बातोंसे चिढ़कर लोहेके मूशलद्वारा समस्त यदुवंशियोंके विनाश हो जानेका शाप दे दिया था। काम-क्रोधादिके कारणसे ही राम-रावणादिका और कौरव-पाण्डवोंका युद्ध भी हुआ था। सो सब हाल पुराणोंमें विस्तारसे वर्णन किया ही है ॥

इस प्रकार क्रोध करना सभी प्राणियोंके लिये काल है। चाहे छोटा हो या बड़ा हो। चार वर्ण, चार आश्रमोंका निवासी कोई भी हो, गृहस्थ, भक्त, योगी, ध्यानी, ज्ञानी, यती, तपस्वी, विरक्त, साधु, संन्यासी, वनवासी, दिगम्बर और हिन्दू, मुस्लिम, नर-नारी आदि सकल संसारके जीवोंका नष्ट-भ्रष्ट, पतित करके जञ्जालोंमें डालके बड़ा भारी दुःख भोगानेवाला महाकाल, जीवघातक, यह क्रोध ही है। क्रोधके कारणसे ही सब जञ्जाल उपाधि फैलती है। पूर्वकालमें शिव और दुर्वासा आदि तामसी क्रोधियोंने समय-समयपर क्रोधवश होके बहुतेरे प्राणियोंको दुःख देके, बेहाल करते भये। फिर उनकी भी दुर्दशा हुई, सो बात पुराणादि ग्रन्थोंमें वर्णन हुआ ही है। बिना विचारे जिन्ह-जिन्होंने क्रोध किये, उन सबोंकी हानि ही हुई और हो ही रही है। क्रोधसे ही सब दुनियाँभरके झगड़ा होते हैं। पीछे जीवनसे भी हाथ धोना पड़ता है। कहा हैः—

दोहाः— "झगड़ासे घर जात है, क्रोध पापका मूल ॥
झगड़ा पड़ा तिन लोकमें, यम मारा त्रिशूल ॥"

और पुत्ररक्षक नेवलाको क्रोधी ब्राह्मणने बिना विचारे मारके पीछे पछताया था। और हितकारी गुणी कूकुरको भी उसके मालिकने क्रोध करके बिना विचारे डण्डोंसे मार दिया, फिर गलेकी पट्टीमें

बँधा पत्र पढ़कर पीछेसे बहुत अफसोस करके रोया था। इत्यादि बहुतेरी घटना क्रोधसे घट जाती हैं। क्रोधसे बहुत लोग जनमभर बेहाल, दुःखी होते रहते हैं, इसलिये हितेच्छुक मनुष्योंको चाहिये कि— वह कभी क्रोध न करें, शान्त हो रहें ॥ ६९ ॥

दोहाः— कपिल मुनिके क्रोधने। मारे सगरके पूत ॥
सनकादिकने क्रोध करि। राक्षस किये हरिदूत ॥ ७० ॥

संक्षेपार्थः— और तैसे ही कपिल मुनिके तीक्ष्ण क्रोधने सगर राजाके बहुतेरे पुत्रोंको मार डाला। फिर सनकादिकोंने भी एक समयमें क्रोध करके विष्णुके दूत या द्वारपालोंको राक्षस होनेका शाप दे दिया। इस तरह ज्ञानी, सिद्ध कहलानेवाले भी क्रोधके वशीभूत होके निर्दयी काल ही हो गये थे ॥

॥ * ॥ कपिलके क्रोधकी कथा ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात् भागवत स्कन्ध ९ अध्याय ८ में लिखा है:— सूर्यवंशी राजाओंमें बाहुकका पुत्र सगर महाराजा चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। उन्हींके पुत्रोंने पृथ्वी खोदकर समुद्रके किनारेमें चौड़ी विस्तार भाग बना दिया था। महाभारत वनपर्वमें भी इसका वर्णन आया है।

एक समय राजा सगरने और्व ऋषिके उपदेशानुसार अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया। उसके यज्ञमें जो घोड़ा छोड़ा गया था, उसे इन्द्रने चुराकर कपिल आश्रममें एक जगह बाँध दिया। उस समय सगरने सुमति रानीसे उत्पन्न पुत्रोंको घोड़ा ढूँढ़ लानेके लिये आज्ञा दिया। बहुत सारा ढूँढ़नेपर भी उन्हें घोड़ा नहीं मिला। तब उन्होंने समुद्रके पूर्व भागसे उत्तर कोनेतक खोजते-खोजते चले गये। जाते-जाते कपिल आश्रममें जा पहुँचे। वहाँ उन्हें कपिल मुनिके पास अपना घोड़ा दिखाई दिया। घोड़ेको देखके वे प्रसन्न हुये, और कपिलको देखके क्रोधित भी हुये। वे राजकुमार साठ

हजार ससैन्य शस्त्र उठाकर यह कहते हुये उनकी ओर दौड़ पड़े कि— 'यही हमारे घोड़ेको चुरानेवाला चोर है। देखो तो सही, इसने इस समय कैसे आँखें मूँद रक्खी है! यह पापी है। इसको मार डालो, मार डालो।' इत्यादि बकते हुए शोरगुल करने लगे। कोई ढेला फेंकने लगे। इससे सशङ्कित होके कपिल मुनिने उसी समय अपनी पलकें खोलीं। उनके तिरस्कार और उपद्रवसे कपिलको बड़ा ही क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने ऐसी युक्तिसे आग उन्होंके चौतरफ लगा दी कि, उस अग्निकी घेरामें पड़के सबके-सब सगर पुत्र सैन्यसहित जलके मरे, वहीं भस्म हो गये। लिखा तो ऐसा है— उनके नेत्र खोलते ही ऐसी अग्नि-वर्षा हुई कि, जिसमें जलकर वे सब खाक हो गये। परन्तु असली बात ऐसी होगी कि, उन्होंने क्रोधसे आग लगाके ही मार डाले। इस तरह सगरके अभिमानी पुत्र कपिल मुनिके क्रोधद्वारा किसी प्रकारसे भी मारे गये। पश्चात् नारदसे खबर मिलनेपर सगरके नाती अंशुमानने जाकर कपिलकी बहुत स्तुति किया, जिससे वे प्रसन्न होके, घोड़ा ले जानेका और गङ्गाके प्रवाह पड़नेपर उन मृतक सगर पुत्रोंके सुगति होनेका वरदान देके बिदा किये। अंशुमानने घोड़ा लाया, तब पीछे सगरका यज्ञ पूरा हुआ। पश्चात् अंशुमान ही राजा हुआ। उसके पुत्र दिलीप और दिलीपके भगीरथ हुआ। जिसने बड़ा भारी प्रयत्न-तपस्या करके गङ्गाको उस मार्गसे मुड़ाके लाया। इत्यादि कथा भागवतादि पुराणोंमें वर्णन भया है॥

और भागवत स्कन्ध ३ अध्याय १५ में लिखा है:—

॥ * ॥ सनकादिकोंके क्रोधकी कथा वर्णन ॥ * ॥

एक बार सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, ये चारों भाई विष्णुसे मिलनेके लिये वैकुण्ठधाममें जा पहुँचे। वे निर्भय होके विष्णु-भवनमें चले गये। प्रथमके छः ड्यौढ़ियाँतक तो बिना रोक-टोकके चलके पार किये। जब वे सातवींपर पहुँचे, तब वहाँ उन्हें

हाथमें गदा लिये हुए जय-विजय दो द्वारपाल मिले। वहाँ भी वे बिना पूछे ही घुसने लगे, उन्हें इस प्रकार निःसङ्कोचरूपसे भीतर जाते देख उन द्वारपालोंने अवज्ञापूर्वक हँसते हुए उन्हें बेंत अड़ाकर रोक दिया। भीतर जाने नहीं दिया। तब वे सनकादि अत्यन्त क्रोधित होके उन द्वारपालोंको डाँटते हुए आखिरमें तीन जन्मतक राक्षस होके उत्पन्न होनेका शाप दे दिया। कहा— तुम इस वैकुण्ठसे निकलकर अपने दोषके कारण उन पापमय योनियोंमें गिर जाओ, जहाँ काम, क्रोध, लोभ, प्राणियोंके ये तीन शत्रु निवास करते हैं। सनकादिके ये कठोर वचन सुनके वे दोनों पार्षद अत्यन्त दीनभावसे उनके चरणोंमें पड़के क्षमा माँगने लगे। जब विष्णुको यह बात मालूम हुई, तो वे लक्ष्मीसहित द्वारपर ही आके मिले। विष्णुने सनकादिकी प्रशंसा किये, प्रसन्न कराये। तीसरे जन्ममें जय-विजयकी राक्षस जन्मसे छुटकारा होगी, ऐसा बतायके मुनिगण चले गये। पश्चात् विष्णुने भी उन दोनों पार्षदोंको वैकुण्ठसे गिरा दिया। वे ही कश्यपकी स्त्री दितिके गर्भसे उत्पन्न होके हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष भये। दूसरे जन्ममें रावण और कुम्भकर्ण भये। फिर तीसरे जन्ममें कंस और शिशुपाल हुए। वे क्रमशः विष्णु, राम और कृष्णके हाथोंसे मारे गये, इत्यादि कथा भागवत आदि पुराणोंमें लिखा है। यहाँ मतलब इतना ही से है कि— सनकादिकोंने क्रोध करके, आगे-पीछे सोचे बिना ही भयङ्कर शाप देकर हरिदूत = जय, विजयको राक्षस किये, यानी तामसी बना दिये। जिससे द्वेष-बुद्धिसे उनके जन्म-कर्म ही बर्बाद हो गया, इत्यादि ॥

सारांश, क्रोध पापका प्रज्ज्वलितरूप है। सत्यानाश करनेवाला है। शान्ति, सुखको मटियामेट करके बड़ा भारी दुःख भोगानेवाला है। मनुष्यको राक्षस बनानेवाला यही क्रोध है। कपिल मुनिने क्रोध किये, जिसके कारण सगर राजाके ससैन्य बहुत सारे पुत्र मारे गये। और सनकादिकोंके क्रोधने हरिदूतको भी राक्षस कर दिया।

परिमाणमें क्रोधसे सबोंकी हानि ही हुई है, और होती रहेगी। ज्ञानीके ज्ञान, ध्यानीके ध्यान, मानीके मान, दानीके दान आदि सबोंको क्रोधने विनाश कर दिया है। इस बारेमें बहुत-सी कथा, दृष्टान्त, घटनायें, और आपबीती हाल, संसारमें प्रचलित ही हैं। सब कोई जानते ही हैं। अतएव हित और शान्ति चाहनेवालोंने सब प्रकारसे क्रोधको त्याग देना चाहिये। अक्रोध, वैराग्यमान्, जितेन्द्रिय होना चाहिये ॥ ७० ॥

दोहा:— तमोगुणको वैराग्य जो । औ तामसयुत ज्ञान ॥
कृष्ण कहत अज्ञान यह । करत जीवकी हान ॥ ७१ ॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! जो कोई तमोगुण उत्पन्न करके बिना विचारके वैराग्य करते हैं, और तमोगुणसंयुक्त ही जिनका ज्ञान भी होता है, अथवा जो तामसी ब्रह्मज्ञानी होते हैं, सो यह तो जीवोंकी जीवनको हानि करनेवाला महा अज्ञान ही है, वे अज्ञानमें ही लगे हैं, ऐसा कृष्णने भी कहा है, सो विस्तार गीतामें लिखा है। ऐसा जानना चाहिये। अतः तामसी वैराग्य और ज्ञान हितकर नहीं होता है। इससे सात्त्विकी ज्ञान, वैराग्यको ग्रहण करना चाहिये ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीका:— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात् तमोगुणसे उत्पन्न और हठपूर्वक किया हुआ अविचारकी तमोगुणी वैराग्य और तमोगुणसे मिला हुआ ज्ञान, ये दोनों भी वास्तवमें महाअज्ञान ही है। यह जीवोंका बड़ा भारी हानि करनेवाला विघ्न है, ऐसा कृष्णजीने भी गीतामें कहा है। उसके लिये प्रमाण सुनिये !—

गीता अध्याय १८। ७ में कहा है:—

श्लोकः— "नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ॥
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥" भ० गीता, अ० १८।७॥

—हे अर्जुन ! नियत किये हुए सत्कर्मका त्याग करना योग्य

नहीं है। इसलिये मोहसे उसका त्याग करना तामस त्याग कहा गया है ॥

श्लोकः— "मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ॥
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥" भ० गीता, अ० १७ । १९॥

— और जो तप मूढ़तापूर्वक हठसे, मन, वाणी और शरीरकी पीड़ाके सहित, अथवा दूसरेका अनिष्ट करनेके लिये किया जाता है, वह तप तामस कहा गया है ॥

श्लोकः— "अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ॥
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥" भ० गीता, अ० १७ । २२॥

— और जो दान बिना सत्कार किये, अथवा तिरस्कारपूर्वक, अयोग्य देशकालमें, कुपात्रोंके लिये, अर्थात् मद्य-मांसादि अभक्ष वस्तुओंके खानेवालों एवं चोरी, जारी आदि नीच कर्म करनेवालोंके लिये दिया जाता है, वह दान तामस कहा गया है ॥ गीता० १७ ॥

श्लोकः— "यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ॥
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥" भ० गीता, अ० १८।२२ ॥

—और जो ज्ञान एक कार्यरूप शरीरमें ही सम्पूर्णताके सदृश आसक्त है, अर्थात् जिस विपरीत ज्ञानकेद्वारा मनुष्य एक क्षण-भंगुर नाशवान् शरीरको ही अपना स्वरूप मानकर, उसमें सर्वस्वकी भाँति आसक्त रहता है, तथा जो बिना युक्तिवाला, तत्त्व अर्थसे रहित और तुच्छ है, वह ज्ञान तामस कहा गया है ॥

श्लोकः— "अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ॥
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥" भ० गीता १७ । ५ ॥

—और हे अर्जुन ! जो मनुष्य शास्त्र-विधिसे रहित, केवल मनो-कल्पित घोर तपस्याको तपते हैं, तथा दम्भ और अहङ्कारसे युक्त एवं कामना, आसक्ति और बलके अभिमानसे भी युक्त हैं— वे तामसी हैं ॥

श्लोकः—"अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ॥
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥" भ० गीता १८ । २५ ॥

—जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा, और सामर्थ्यको न विचारकर, केवल अज्ञानसे आरम्भ किया जाता है, वह कर्म तामस कहा जाता है ॥

श्लोकः—"अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ॥
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥" भ० गीता १८।२८॥

—जो विक्षेपयुक्त चित्तवाला, शिक्षासे रहित, घमण्डी, धूर्त और दूसरेकी आजीविकाका नाशक एवं शोक करनेके स्वभाववाला, आलसी, और दीर्घसूत्री (थोड़े कामको भी ज्यादा देर लगानेवाला) है । वह कर्ता तामस कहा जाता है ॥

श्लोकः—"आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ॥
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥" भ० गीता १६ । २० ॥

—हे अर्जुन ! वे तामसी मूढ़ पुरुष जन्म-जन्ममें आसुरी योनियोंको प्राप्त हुए मेरेको न प्राप्त होकर, उससे भी अति नीच गतिको ही प्राप्त होते हैं, अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं ॥

श्लोकः—"त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ॥
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥" भ० गीता १६ । २१ ॥

—और हे अर्जुन ! काम, क्रोध तथा लोभ यह तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माका नाश करनेवाले हैं, अर्थात् अधोगतिमें ले जानेवाले हैं । इससे इन तीनोंको त्याग देना चाहिये ॥ क्योंकि, हे अर्जुन! इन तीनों नरकके द्वारोंसे मुक्त हुआ अर्थात् काम, क्रोध और लोभ आदि विकारोंसे छूटा हुआ पुरुष अपने कल्याणका आचरण करता है, इससे वह परमगतिको जाता है, यानो मुक्त हो जाता है ॥ भगवद्गीता, अध्याय १६ । २२ ॥

इसलिये तमोगुण करके मूढ़तासे होनेवाला जो वैराग्य है, उससे मनुष्योंको कुछ भी लाभ नहीं होता है, और तामसी अविचार-संयुक्त ज्ञान, ब्रह्मज्ञान या विज्ञान भी अहितकारी उपाधिरूप ही है ।

ज्ञान और वैराग्यमें यदि तमोगुण मिला हुआ होवे, तो वह अज्ञानका ही रूप होता है। ऐसा कृष्णने भी कहा है, सोई गीता और भागवतमें लिखा है। सो वह अज्ञान नरजीवोंके मुक्तिपदको हानि करके जीवोंको चौरासी योनियोंके चक्रमें गिरा देता है। अतएव तमोगुणके समस्त कार्योंको परित्याग कर देना चाहिये। सात्त्विक स्वभाव बना लेना चाहिये ॥ ७१ ॥

दोहाः—ताते क्रोध न कीजिये। है अज्ञान अनूप ॥
समुझि विचारो जगतमें। तू सब तोर स्वरूप॥ ७२ ॥

संक्षेपार्थः— इसवास्ते हे मनुष्यो! किसी प्रकारसे किसीपर भी तुम क्रोध मत करो। क्योंकि, यही क्रोध ही अनूपम अज्ञान है। बिना अज्ञानके क्रोध उत्पन्न हो ही नहीं सकता है। जब क्रोधका बेग प्रचण्ड हो आया, तन, मन, वचनको कम्पाने लगा, तो जान लो कि—यह अज्ञानका वशीभूत है। उसके लिये उपमा भी क्या देना? अन्धकाररूप अज्ञान, अविद्याका आवरण हृदयमें छा गया है। उसीके विकारसे काम, क्रोध आदिकी लहर उठती है। अबोध-जीव सब उसमें बह जाते हैं। हे नरजीवो! तुम लोग पारखी साधु-गुरुके सत्संग करके जड़, चेतन, सत्या-सत्यके भेदको अच्छी तरहसे समझो। और विवेक-विचार करके देखो! पञ्चतत्त्वरूप जगत्में पिण्ड, ब्रह्माण्डमें तुम चैतन्य जीव, स्वयंस्वरूप, अखण्ड, नित्य, सत्य हो। जैसे तुम्हारा स्वरूप सत्य है, वैसे सव अनन्त जीव भी स्वरूपसे चैतन्य, एकरस, सत्य हैं। सब जीवमात्र तुम्हारे स्वजातीय हैं, और पाँचोंतत्त्व जड़ विजातीय हैं, ऐसा विचार करके क्रोधको निवारण करो ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात् उपमा दिया न जा सके, वह अज्ञान तमोगुणका स्वरूप प्रत्यक्षमें यही क्रोध है। इसलिये

हे मुमुक्षु मनुष्यो! किसीपर क्रोध कभी नहीं कीजिये! क्योंकि, कहा है:—

श्लोकः— "क्रोध लोभपरो नित्यं निद्रालस्यपरस्तथा ॥
विषादीच्छेश्वरश्चैव प्रेयसो भ्रश्यते' नरः ॥"

— जो नर! सर्वदा क्रोध, लोभ परायण, निद्रा और आलस्यमें पत्पर, विषादयुक्त और स्वेच्छाचारी होता है, वह प्रिय-शान्ति, मुक्ति स्थितिसे पतित हो जाता है ॥

और आपस्तम्बस्मृति अ० १० के श्लोक ४०८ में कहा है:—

श्लोकः— "न चैवासिस्तथा तीक्ष्णः सर्पो वा दुर्धिष्ठितः ॥
यथा क्रोधोहि जन्तूनां शरीरस्थो विनाशकः ॥ ४ ॥
क्रोधयुक्तो यद्यजते यज्जुहोति यदर्चति ॥
सर्वं हरति तत्तस्य आमकुंभ इवोदकम् ॥" आप० १० ४०८ ॥

— क्रोधके समान तेज, खड्ग या तलवार भी ऐसा तीक्ष्ण नहीं है, और सर्प भी ऐसा भयङ्कर नहीं है। जैसा कि प्राणियोंके शरीरमें क्रोध उनका नाश करनेवाला है। (इस कारण सब भाँतिसे मनुष्योंको क्रोध त्याग देना चाहिये) ॥ क्रोधसे ही जीव हिंसादि अनेकों पाप-कर्म हुआ करते हैं ॥ ४ ॥ क्रोधी मनुष्य जो यज्ञ करता है, होम करता है, जो पूजा करता है, वह कच्चे घड़ेके जलके समान नष्ट हो जाते हैं, अर्थात् जैसे कच्चे घड़ेमें जल नहीं ठहरता है, वैसे ही क्रोधीमें कोई भी सद्गुण नहीं ठहरते हैं। इसलिये भी क्रोधको त्याग देना चाहिये ॥ दोहावलीमें भी कहा है:—

दोहाः— "तात तीनि अति प्रवल खल, काम क्रोध अरु लोभ ॥
मुनि विज्ञान धाम मन, करहिं निमिष महँ छोभ ॥
लोभके इच्छा दम्भ बल, कामके केवल नारि ॥
क्रोधके परुष वचन बल, मुनिवर करहिं विचारि ॥ दो० व० ॥
काम, क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुःख रूप ॥"

अतएव कल्याण और जीवनमें सुख, शान्ति चाहते हो, तो

किसीपर कभी भी क्रोध मत कीजिये। क्रोध दिखा करके अज्ञानी क्यों बनते हो?, सोचो, समझो और विचारो! जगत्‌में जड़ और चैतन्य मुख्य दो ही पदार्थ हैं। जड़ पाँचतत्त्वोंमें ज्ञानगुण नहीं है। इसलिये वे जान करके किसीका हानि-लाभ नहीं करते हैं। उनमें स्वाभाविक क्रियाशक्तिसे कार्य होता ही रहता है, और जड़से विजायतीय चैतन्य जीव स्वरूपसे अखण्ड अनन्त हैं। वे सब तुम्हारे समान ज्ञानगुणवाले स्वजातीय हैं। जैसे तुम अभी कर्माध्यासवश देह बन्धनमें पड़े हो, वैसे ही वे सब जीव भी अपने-अपने कर्म-वासनासे चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़के दुःख भोग रहे हैं। जैसे तुम तथा तुम्हारा स्वरूप है, तैसे सब जीवके भी स्वरूप हैं, जीवमात्र स्वजातीय हैं। इसलिये व्यर्थमें किसीपर क्रोध मत करो। शील स्वभावको बनायके सबपर प्रेम और दयाका बर्ताव करो। जैसा गुण तुम धारण करोगे, वैसा ही फल तुम्हें मिलेगा, यह निश्चयसे जान लो ॥ ७२ ॥

॥ * ॥ क्रोध निवारण युक्ति विचार ॥ * ॥

दोहाः— निजकर लागे निजहि तन । अंगुरि गई निज आँखि ॥
दशन चबाई जीभ निज । काको क्रोध करि भाखि ॥ ७३ ॥

संक्षेपार्थः— हे जिज्ञासुओ! क्रोधका बेग उठनेपर उसे शान्त होके दबाओ, और ऐसा विचार करो कि—अपने हाथकी अंगुलियोंमें नाखून बढ़ गई, और कोई काम करते समय हाथ हिलाते, चलातेमें कभी भूल-चूकसे अपने हाथका नाखून कहीं शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें लग गया। पीठ, छाती, पेट, जंघा, पैर, बाँह आदिमें खुरिच पड़ गया, उससे रक्त भी निकल पड़ा, चोट लगा, तो किससे नाराज होओगे। और कभी भूलसे अपनी अंगुली ही अपने आँखोंमें लगी, जिससे पीड़ा होने लगा, तो भी उस अंगुलीको तुम नहीं काटोगे। फिर कभी भोजन करतेमें चूक होनेसे. अपने दाँतोंसे मुखमें अपनी ही जिभ्या चबा गयी, कट गयी, जिससे बड़ी दर्द होने लगी, तो भी

उन दाँतोंको उखाड़के फेंकोगे नहीं। दाँत, हाथ, अंगुली आदि सब भी अपना ही अङ्ग हैं, उनसे दुःख हो जानेपर भी क्रोध करके किसको तुम खरी-खोटी कहके सुनाओगे? किसीको नहीं। अपना चूक समझके शान्त ही बने रहोगे। अपने एक भागसे दूसरे भागको भूल-चूकमें पीड़ा पहुँची, तो उस हालतमें उन इन्द्रियोंपर क्षमाकी दृष्टि रखकर सन्तुष्ट ही रहना पड़ता है। सच्चे समदर्शी दयालु पुरुषको भी इसी प्रकारका सद्भाव लेकर संसारमें विरक्त होके वर्तना होता है॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् अपने किये हुए पूर्वके कर्तव्य, कर्म अध्याससे ही तो यह शरीर बना है। तैसे हो समस्त प्राणियोंके शरीर भी उन्होंके भिन्न-भिन्न कर्म संस्कारसे बना है। सब जीव अपने-अपने कर्मका फल ही सुख, दुःख भोग रहे हैं।

सद्गुरुने बीजक साखीमें कहे हैं :—

साखीः— "सुर नर मुनि औ देवता, सात द्वीप नौ खण्ड॥
कहहिं कबीर सब भोगिया, देह धरेको दण्ड॥" बीजक, साखी २९५॥

इसलिये दैहिक, दैविक, और भौतिक, ये तीन तापोंका भोग सभी को कर्मानुसार भोगना पड़ता है। इसमें किसीको दोष लगाके उसपर क्रोध करना, हानि करना, अज्ञानताका लक्षण है। ज्ञानी, विचारवान्, सत्सङ्गी, और वैराग्यवानोंने तो कभी क्रोध प्रगट करके किसीकी बुराई करना नहीं चाहिये। जैसे कभी अपने हाथोंसे ही अपने शरीरमें चोट लग जाती है, चाकू वगैरहसे अपनेसे ही हाथ, पैर आदि अङ्ग कट जाते हैं, लकड़ी फोड़तेमें चूकनेसे कुल्हाड़ीसे अपना ही पैर कट जाता है। उस हालतमें भी अपने अङ्गोंपर कुछ क्रोध नहीं होता है, लाचारीसे कष्ट सहन करके उसे निवारण करनेका कोशिश किया जाता है, और कभी नेत्रमें अपनी अंगुली घुस जाती है, तथा दाँतोंके तले जिभ्या आ-जानेसे कट जाती है या दब जाती है, जिससे नेत्र

और जीभ में दर्द होने लगता है, तो भी अंगुली और दाँतपर क्रोध नहीं किया जाता है, उनकी रक्षा ही की जाती है। क्योंकि— जान-बूझके तो ऐसा नहीं होता है। अनजानमें अपने-आपसे हुआ, तो कष्ट सहन करके भी उन अङ्गोंका कुछ भी बिगाड़ क्रोध करके किया नहीं जाता है। उस हालतमें कहो, तो भला! किसको कौन क्रोध करके क्या कहे? किससे नाराज होवे? दुर्वचन कहके किसको सुनावे? कौन किसका बदला लेवे? सब शान्त ही होके रहते हैं। उपस्थित हुआ कष्टको मिटानेके लिये उपाय करते हैं। द्वेष-बुद्धि रखके किसी इन्द्रियकी हानि नहीं कर बैठते। अगर हानि करेंगे, तो दुःख किसको होगा? अपने ही को तो होगा। इसी प्रकारसे सत्यज्ञानी वैराग्यवानोंकी भी समझ-बर्ताव होती है। अन्य प्राणियोंके तरफसे हुआ दुःखोंको शान्तिपूर्वक वे सहन कर लेते हैं और अपने तरफसे जान-बूझके किसीको भी कष्ट नहीं पहुँचाते हैं। अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गके समान सब जीवोंको स्वजातीय समझके हर हालतमें बचाव करते हैं। यदि कभी उनके तरफसे दुःख आ पड़ा, तो भी उन्हें दण्ड नहीं देते, क्षमा ही करते हैं। वे पूर्वके कटु, तीक्ष्ण वचन नहीं बोलते, ऐसे ही सद्गुणके स्वभाव क्रोध दमन, बाह्य हानि, लाभमें समदृष्टि, हितेच्छुक मुमुक्षुओंने बनाना चाहिये, तभी सच्चा सुख मिलेगा, ऐसा जानना चाहिये ॥ ७३ ॥

दोहाः— तैसे सबहिं विचारिये। क्रोध न करिये भाय ॥
सब तेरे तू सबनका। काको जानि रिसाय ॥ ७४ ॥

संक्षेपार्थः— ऊपर जैसे अङ्ग-प्रत्यङ्गसे होनेवाला दुःख, अपने शरीरके समष्टिमें क्षमा-भाव बतलाया है, तैसे ही देहधारी समस्त जीवोंके प्रति भी गम्भीरतासे विचार करो। जैसे तुम कर्म बन्धनमें पड़के देह धारण किये हो, वैसे ही कर्म बन्धनमें पड़के सब जीव भी चारखानीमें नाना शरीर धारण किये हुए हैं। जैसे अपनेको दुःख-सुख

होता है, और दुःख अप्रिय मालूम पड़ता है। तैसे ही सब जीवोंको भी होता है। शरीरमें छोटे-बड़े अङ्ग हैं, उनमें जहाँ कहीं भी चोट लगेगी, तो जीवको कष्ट हो जायगा, वैसे ही कीड़े-मकोड़ोंसे लेके सारे छोटे-बड़े देहधारी प्राणियोंकी भी हालत है। उन सबको भी दुःख-सुख होता है। ऐसा यथार्थ विचार करके, हे भाई! साधु सज्जनो! कभी किसीपर भी क्रोध नहीं करिये! क्रोधसे किसीकी हानि मत करो! क्योंकि, सब जीव परिवारके समान तुम्हारे स्वजातीय हैं, और तुम्हारा स्वरूप भी उन सबके समान ही है। तू चैतन्य जीव सबका परीक्षक है। तुम भी सब जीवोंके स्वजातीय हो। इस प्रकार सब तेरे समान, तू सबोंके समान स्वरूपसे सदृश है। जब स्वजातीय एक-सा गुण-लक्षणवाला ठहर गया, फिर कहो तो भला! किसको विजायतीय-दुश्मन जानके या मानके तुम रिसायके किसपर क्रोध करते हो। तुम्हें तो यह विचारना चाहिये कि—सब जीव मेरे स्वजातीय हैं, और मैं जीव सबसे न्यारा हूँ, तो क्रोध किसपर करूँ! अतएव सदा प्रसन्न रहना चाहिये! कभी किसीपर भी क्रोध करनेका काम नहीं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—अर्थात् हे भाई मनुष्यो तुम लोग शान्ति, सुख और हित चाहते हो, तो कभी क्रोधको प्रगट मत करो, तामसी स्वभावको दबायके नष्ट करो। जैसे सद्गुरुने सद्गुण धारण करनेके लिये सत्शिक्षा कहे हैं, तैसे ही सबको अपने समान समझ-करके रक्षा करो, सार-असारका विचार करो, गुरु निर्णयको सबोंने-विचार करना चाहिये। सत्सङ्गमें लगे रहो, कुसङ्गका त्याग करो। क्योंकि, कुसङ्गसे बड़ीभारी हानि होती है। कहा हैः—

श्लोकः— "क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥" भ० गीता अ० २। ६३ ॥

— क्रोधसे अविवेक या मूढ़भाव उत्पन्न होता है और अविवेकसे स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है और स्मृतिके भ्रमित हो जानेसे

बुद्धि या ज्ञानशक्तिका नाश हो जाता है, और बुद्धिके नाश होनेसे यह पुरुष अपने श्रेय या कल्याण साधनसे गिर जाता है॥

और धम्मपदमें भी कहा है:— सुनिये !—

श्लोकः— "कोधं जहे विप्पजहेय्यमानं, सञ्ञोजनं सब्बमतिक्कमेय्य ॥
तं नाम-रूपस्मि असजमानं अकिञ्चनं नानुपतन्ति दुक्खा॥" धम्मपद ॥

— क्रोधको छोड़ दे, अभिमानको छोड़ दे, सब बन्धनोंको पारकर जाय—ऐसे आदमीको जो नाम-रूपमें आसक्त न हो, जो परिग्रहरहित हो, दुःख नहीं सताते॥

श्लोकः— "योवे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं व धारये ॥
तमहं सारथिं ब्रूमि रस्मिग्गाहो इतरो जनो ॥" धम्मपद ॥

—जो आये हुए क्रोधको उसी तरह रोकले, जैसे कोई मार्ग-भ्रष्ट रथको। उस आदमीको मैं असली सारथी कहता हूँ। दूसरे लोग तो केवल रस्सी पकड़नेवाले हैं॥

श्लोकः—"अक्कोधे न जिने कोधं असाधुं साधुना जिने ॥
जिने कदरियंदानेनसच्चेन अलिकवादिने ॥" धम्मपद ॥

—क्रोधको अक्रोधसे जीते, बुराईको भलाईसे जीते, कंजूसपनको दानसे जीते और झूठको सत्यसे जीते॥ सत्य बोले, क्रोध न करे, माँगनेपर थोड़ा रहते भी दे, इन बातोंसे मनुष्य सत्पुरुष हो जाते हैं॥

और नीतिशतकमें कहा है:—

श्लोकः— "क्षान्तिश्चेद्वचनेन किं किमरिभिः क्रोधोस्ति चेद्देहिनाम् ॥" नी० श०॥

जिस मनुष्यको क्षमा है, उसको शान्त वचनसे क्या काम है? जिस मनुष्यमें क्रोध है, उसको शत्रुकी क्या आवश्यकता है? अर्थात् क्रोध ही उसका शत्रु बन जाता है॥ और चाणक्य नीतिमें कहा है:—

श्लोकः—"नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोह समो रिपुः ॥
नास्ति कोपसमो वह्निर्नास्ति ज्ञानात्परं सुखम् ॥" चाणक्य० ॥

दोहाः— "व्याधि काम समान नहीं, मोह समान न शत्रु ॥
क्रोध बराबर आग नहीं, ज्ञान सदा सुख दत्रु ॥"

—काम-वेगसे बढ़कर कोई कठिन रोग नहीं, मोहसे बढ़कर कोई विशेष शत्रु भी नहीं, क्रोधसे बढ़करके अग्नि भी नाश नहीं करता, क्रोधकी बराबरी अग्नि नहीं कर सकती है और ज्ञानसे बढ़करके या उसके समान सुख देनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥

श्लोकः— "अत्यन्त कोपः कटुका च वाणी दरिद्रता बन्धुजनेषु वैरम् ॥
नीच प्रसङ्गः कुलहीन सेवा, चिह्नानि देहे नरकस्थितानाम् ॥" चाण० ॥

—अत्यन्त क्रोध करना, कठोर, कर्कश, कटु वचन बोलना, असन्तुष्ट, दरिद्रता, नीच-कुसङ्गी पुरुषोंका सङ्ग, बन्धु-बान्धवोंसे वैर, हीन कुलवालोंकी सेवा—ये सब चिह्न अभी यहीं नरकमें रहनेवाले मनुष्योंके देहमें रहते हैं ॥

इन सब बातोंको सोच, समझ, विचार करके कभी क्रोधकी भावना भी नहीं करना चाहिये। जैसे तुम अपने ऊपर कोई क्रोध न करे, ऐसा चाहते हो, वैसे ही सब कोई भी चाहते हैं। इसलिये तुम अपने तरफसे किसीपर क्रोध न करो। प्रतिकूल वा विपरीत अवस्थामें विचारको छोड़नेपर ही क्रोध उत्पन्न होता है। ऐसे मौकेमें चित्तको पकड़कर स्थिर रखो, रोके रखो, फिर शान्तिपूर्वक समयको बिता दो। क्योंकि, सब प्राणी भी तुम्हारे समान ही दुःखी, सुखी होते हैं। सबोंका हाल तुम अपनेमें ही अनुभव करलो। स्वज़ातीय-भावसे तुम सबोंके रक्षक होओ। भूल-चूकमें कभी गल्ती तुमसे भी होती है, तथा औरोंसे भी होती है, फिर किसको विरोधी जानके रिसाते हो? भूलसे ही वैर, विरोध होता है। उसे अभी सुधारो। क्रोधका त्याग करो और मैत्रीभाव, करुणा, मुदिता, उपेक्षाको हृदयमें धारण करके सुखी हो जाओ ॥ ७४ ॥

॥ ❋ ॥ काम विकारका दोष और प्रबलता वर्णन ॥ ❋ ॥

दोहाः—भूमि शयन तन बसन करि । फल भक्षत आराम ॥
निशि दिन रहत आरण्यमें । तेहु सतावत काम ॥ ७५ ॥

संक्षेपार्थः— जो तपस्वी ऋषि, मुनि लोग घर-बारको छोड़के

विरक्त होकर निकले, वे पृथ्वीमें सोते हैं। बिछानेको चटाई वगैरह भी नहीं है। खाली जमीनमें पड़े रहते हैं। शरीरमें कोई कपड़ा भी नहीं, नङ्ग-धड़ङ्ग खुले रहते हैं। दशों-दिशाओंको ही जिन्होंने अपना वस्त्र मान लिया है। शरीरकी त्वचाको ही जिन्होंने वस्त्र मान करके सन्तोष कर लिया है, और जङ्गली कन्द, मूल, फल, फूल, खायके जल पीकर सदा आराम करते रहते हैं। घर-गृहस्थीका दुःख, मेहनत जिन्हें नहीं है। और दिन-रात आठों प्रहर जो आरण्य = महावन या जङ्गल, पहाड़, गुफा, आदिमें ही पड़े रहते हैं। ऐसे उग्र तपस्वियोंको या वनवासी लोग तिन्होंको भी विषय, समय या प्रसङ्ग उपस्थित होने-पर कामका बेग उठकर मनको पीड़ित करके सताता है, व्याकुल कर देता है, और तप-भङ्ग करके, भग-भोगमें गिराकर कुत्ताके समान कर देता है, ऐसा यह काम बड़ा बलिष्ट शत्रु है। फिर साधारण लोगोंकी तो गिनती ही क्या है ? ॥

॥ ❋ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ❋ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् अहो ! यह काम शत्रु बड़ा बलिष्ट है। यह सबको मार डालता है। संसारी घर-बार, परि-वारके साथ रहनेवालोंकी तो बात ही छोड़ दीजिये। जो तपस्वी, साधक, सिद्ध, बने हैं, दिन-रात भयङ्कर जङ्गलमें ही पड़े रहते हैं। मनुष्योंके संसर्गसे दूर रहते हैं, खाली जमीनपर ही बैठते, सोते हैं, जिनके पास कोई परिग्रहका संग्रहतक नहीं। वस्त्र न होनेसे नङ्गे रहते हैं, अथवा वृक्षकी छाल, केलेकी पत्ती वगैरहसे निर्वाह कर लेते हैं, फल-फूल खायके आरामसे रहते हैं। परन्तु शोक! महाशोक! ऐसे कठोर तपस्या करनेवालोंको भी मौका पायके, कामका बेग सताता ही है, फिर बेहाल करके विवेक, विचारको नष्ट-भ्रष्ट कराके कर्म-कुकर्मोंमें प्रवृत्त करा देता है, पतित कर देता है। पुराणोंमें ऐसे ऋषि, मुनियोंकी कथा विस्तारसे आयी है। जैसे—पाराशर, विश्वामित्र, शृङ्गी ऋषि, कर्दम, महेश, मत्स्येन्द्रनाथ, इत्यादि अनेकों तपस्वी लोग

कामासक्त होके पथ-भ्रष्ट हुए, उनका हाल, चरित्र तो सब लोग जानते ही हैं। भर्तृहरिने वैराग्यशतकमें कहा है:—

"भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं, शैय्या च भूः परिजनो निजदेह मात्रम् ॥
वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमलीन कन्था, हा! हा! तथापि विषया न परित्यजन्ति ॥" वै॰श॰॥

छप्पयः— "भीख अन्न एक बार, लौन बिन खाय रहत हूँ ॥
फटी गूदड़ी ओढ़, वृक्षकी छाँह गहत हूँ ॥
घाँस पात कछु डासि, भूमिपर नित प्रति सोवत ॥
राख्यो तन परिवार, भार यह ताको ढोवत ॥
इह भाँति रहत चाहत न कछु, तऊ विषय बाँधा करत ॥
हरि हाय! हाय! ते री शरण, आय पर्यो इनसों डरत ॥"

—जो भिक्षा माँगकर खाते हैं, सो भी नीरस और एकबार ही मिलती है। भूमि ही जिनकी शैय्या है, वहीं सोते हैं, अपना देह-मात्र ही जिनका परिवार है, और जो सैकड़ों चिथड़ों या टुकड़ों-से बनी हुई जीर्ण कन्थाको धारण करते या पहिरते हैं, परन्तु हाय! यह काम विषयकी वासना ऐसे पुरुषोंका भी सङ्ग त्याग नहीं करती है ॥

जिसने काम-वेगको जीता, उसने जगत्को जीता। वही सच्चा शूरवीर और जगत् विजयी मानने योग्य है। जिनको अपरोक्ष पारख बोध हो गया हो, वे ही बिरले कोई पारखी सन्त काम जीत निकलेंगे। नहीं तो और सबोंको कामने ही जीत लिया है। कामको जीतना कोई सहज बात नहीं है। जब कि कठोर व्रत पालन करके तपस्या आदि साधना करनेवाले दिगम्बर = वस्त्ररहित रहके जङ्गली कन्द, मूल, फल, जलादि खा-पीके जमीनमें सोकर आराम करनेवाले, रात-दिन अरण्यमें निवास करनेवाले, तिन्हें भी काम, भोगवासना जाग्रत् होके हैरान करके सताता है, योग्यायोग्यका विचार मिटायके विषय भोगमें गिराके नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। तब अहङ्कारी, क्षुद्र मनुष्य इससे कैसे बच सकेंगे? कभी बच नहीं सकेंगे। अतएव सावधानी

से विचारपूर्वक चलके सत्सङ्गके घेरामें रह करके काम-विकारसे अपना बचाव करना चाहिये ॥ ७५ ॥

दोहाः—काम नहीं यह काल है । काम अपर्बल वीर ॥
जब उमगत है देहमें । ज्ञानिन करत अधीर ॥ ७६ ॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! कामदेव यह साधारण कहनेकी वस्तु-मात्र नहीं है । यह तो बड़ा बलिष्ठ भयंकर काल है। जो सारे संसार-के प्राणियोंको मार-मारके छिन्न-भिन्नकर देता है । मुक्तिमार्गियोंका तो वह बड़ा कट्टर शत्रु है । काम ही विकराल महाकाल है । अरे भाई ! कामको छोटा मत समझो; वह तो अपर्बल वीर है, अर्थात् बड़ा भारी शक्तिशाली महान् वीर बना है । कोई बिरले ही पारखी सच्चे साधुको छोड़कर बाकी और सबको कामने जीत लिया है । जब शरीरमें कामका वेग या जोर उत्पन्न होता है, तब बड़े-बड़े ब्रह्म-ज्ञानी, आत्मज्ञानी, योगी, ध्यानी, भक्त, आदिकोंको भी अधीर = चञ्चल या विषयमें चलायमान कर देता है । वे भी अपने सुध-बुध खोकर तब गिर पड़ते हैं । संयोगसे यदि स्त्री भी मिल गई, तो ज्ञानी-विज्ञानी भी पतित हो जाते हैं । ऐसी यह दुर्धर्ष काम है ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् जीवोंको सुख देनेवाला मित्रतुल्य मानने लायक तो यह काम (कामदेव) नहीं है, बल्कि वह पापी काम तो सत्यानाश करनेवाला काल है । जो कामके फन्देमें पड़ा, सो चौरासी योनियोंमें कैद हो जाता है । सद्गुरुने कहा हैः—

साखीः—"काला सर्प शरीरमें, खाइनि सब जग झारि ॥
बिरले ते जन बाँचि हैं, जो रामहिं भजे विचारि ॥ १०१ ॥
काल खड़ा शिर ऊपरे, तैं जागु बिराने मीत ! ॥
जाका घर है गैलमें, सो कस सोवे निश्चिन्त ? ॥ १०२ ॥

कल काठी कालू घुना, जतन-जतन घुन खाय ॥
काया मध्ये काल बसत है, मर्म न काहू पाय ? ॥" १०३ ॥
॥ बीजक, साखी १०१ से १०३ तक ॥

इसमें काला 'सर्प' और 'काल' 'काम' को ही कहा है। इस कालका मर्म कोई पारखी सन्त ही जानते हैं। वे ही उसे जीत पाते हैं, और कोई उसे जीत नहीं सकते हैं। इस बारेमें भगवद् गीतामें भी कहा है:-

श्लोक—"काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ॥
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥" भ० गीता ३।३७ ॥

—हे अर्जुन ! रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह ही महाशन अर्थात् अग्निके सदृश भोगोंसे न तृप्त होनेवाला और बड़ा पापी है, इस विषयमें इसको ही तूँ बैरी जान ॥ ३७ ॥

श्लोकः—"धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ॥
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥" भ० गीता ३।३८ ॥

—जैसे धुएँसे अग्नि और मलसे दर्पण ढका जाता है तथा जैसे॥ जेरसे गर्भ ढका हुआ है, वैसे ही उस कामके द्वारा यह ज्ञान ढका हुआ है ॥ ३८ ॥

श्लोकः—"आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ॥
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥ भ० गीता ३।३९ ॥

श्लोकः—इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ॥
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ भ० गीता ३।४० ॥
तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ॥
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥" भ० गीता अ० ३।४१

— और हे अर्जुन ! इस अग्निसदृश न पूर्ण होनेवाले कामरूप ज्ञानियोंके नित्य बैरीसे ज्ञान ढका हुआ है ॥ ३९ ॥ तथा इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इसके वासस्थान कहे जाते हैं और यह काम इन मन, बुद्धि और इन्द्रियोंद्वारा ही, ज्ञानको आच्छादित करके इस जीवको मोहित करता है ॥ ४० ॥ इसलिये हे अर्जुन ! तूँ पहिले

इन्द्रियोंको वशमें करके, ज्ञान और विज्ञानके नाश करनेवाले इस काम पापीको निश्चयपूर्वक मार ॥ ४१ ॥

श्लोकः—"एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥" भ० गीता अ० ३।४३॥

—इस प्रकार बुद्धिसे परे अर्थात् सूक्ष्म तथा सब प्रकार बलवान् और श्रेष्ठ अपने आत्माको जानकर और बुद्धिकेद्वारा मनको वशमें करके, हे महाबाहो ! अपनी शक्तिको समझकर इस दुर्जय कामरूप शत्रुको मार ॥ ४३ ॥ भर्तृहरिने भी कहा हैः—

श्लोकः—"कृशः काणः खंजः श्रवणरहितः पुच्छ विकलो ॥
व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृत तनुः ॥
क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरककपालार्पितगलः ॥
शुनीमन्वेति श्वा हतमपि निहन्त्येव मदनः ॥" भर्तृ०शतक ॥

—जो दुबला, काना, लंगड़ा, कनफटा, और दुमकटा है, जिसके शरीरमें घाव हो रहे हैं, जिनमेंसे राध बह रही है, और सहस्रों कीड़े किलबिला रहे हैं, तथा जो भूखसे पीड़ित है, और हाँड़ीका मुख जिसके गलेमें अटक रहा है, ऐसा कुत्ता भी कुत्तीके पीछे दौड़ता है। बड़े खेदकी बात है कि, यह कामदेव मरे हुओंको भी मारता है, दुःख देता है ॥

साखीः—"काम काम सब कोई कहै, काम न जानै कोय ॥
जेती मनकी कल्पना, ओ मदन काम है सोय ॥
केते कामें बहि गये, केते बहेंगे आय ॥
ऐसो भेद विचारिके, तू जनि नियरे जाय ॥" साखी संग्रह ॥

दोहाः— अहि विष तन काटत चढ़ै, यह चितवत चढ़ि जाय ॥
ज्ञान ध्यान पुनि प्राणहू, लेत मूलयुत खाय ॥" वि० मा० ॥

इस कारणसे यह 'काम' अच्छा वस्तु नहीं है, यह तो भयंकर क्षण-मात्रमें जीवोंका सत्यानाश करनेवाला काला काल है। विषधर, काला सर्पसे भी बढ़ करके अत्यन्त बलवान् है। क्योंकि, देखने और

याद करनेमात्रसे सर्प आदिकोंके विष नहीं व्यापता है। जब सर्प काटेगा, वा और बाहर विष खाया जायगा, तभी दुःख वा हानि होता है। किन्तु कामका विष तो स्मरण करनेमात्रसे ही सर्वाङ्गमें सञ्चार करनेलग जाता है। पहिलेका देखा, सुना, भोगा हुआ विषय याद आते ही नर-जीवोंको विह्वल कर देता है। जब देह या अन्तःकरणमें काम उमग पड़ता है, यानी कामका वेग उठके तीव्र हो जाता है, तब बड़े-बड़े ज्ञानी, ध्यानियोंको भी अधीर, चञ्चल, बेकाबूकर देता है। वशिष्ठ, व्यास, जैमिनी, इत्यादिक ज्ञानी कहलानेवाले ऋषिवर्ग भी कामासक्त होके विषय-भोगोंमें गिर पड़े। बहुतोंका अनर्थ काम द्वारा ही हो गया है। ज्यादातर कुसङ्गके प्रभावसे काम प्रचण्ड होता है। कामीलोग और कामिनियोंके सङ्ग या संसर्ग करनेसे बड़े वेगसे काम बढ़ जाता है। उससे कुमति पैदा होती है, फिर कुकर्म व्यभिचारादिमें प्रवृत्ति होती है, जिससे सत्यधर्मसे पतन होकर नष्ट-भ्रष्ट होते हैं, वैसे लोग नरपशु कहलाते हैं। इसलिये कुसङ्गसे बचते हुए सदा दूर रहना चाहिये। कहा है:—

श्लोकः—"ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ॥
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥" भ० गीता २।६२ ॥

—मनसहित इन्द्रियोंको वशमें न करनेसे मनके द्वारा विषयोंका चिन्तन होता है, और विषयोंको चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, और आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है, और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है। फिर काम, क्रोधसे जीव बद्ध हो जाता है॥

अतएव इस कामवासना तथा कामनाओंको परीक्षा दृष्टिसे युक्तिपूर्वक जीत लेना चाहिये। हर हालतमें उसे हटाकर निष्काम हो रहना चाहिये॥ ७६ ॥

दोहाः—जिन गहि जीता कामको । सोइ ज्ञानी सोइ सिद्ध ॥
नहिं तो थोथी बात है । घर-घर करत असिद्ध ॥७७॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! जिस पुरुषने दृढ़ वैराग्यके द्वारा मनको वश करके कामको भी पकड़के जीत लिया, काम-शत्रुका सिर काटके उसे मार दिया, तो समझो कि, सोई शूर-वीर, ज्ञानी और सिद्ध है। नहीं तो खाली बातमात्र करनेवाले, असिद्ध, ढोंगी लोग तो घर-घरमें ढोंग करते, फिरते हैं, उससे क्या लाभ होता है? कुछ नहीं। कामको जीते बिना ज्ञान वा वैराग्यकी बात करना ही व्यर्थ होती है। थोथी बात करनेवाले लोग घरों-घरमें जाके असिद्धता ही करते फिरते हैं॥

॥ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात् और जिन विवेकी सत्पुरुषोंने इस पापी कामको पकड़के जीत लिया, मन, इन्द्रियोंको अपने वशमें कर लिया, चित्तकी चञ्चलताको हटा दिया, दुष्ट काम शत्रुके सिरको काट दिया, काम-कामनाके विकारको समूल नाश कर दिया, सद्गुण रहनी—रहस्यको धारण करके निजपारखस्वरूप स्थिति-को कायम कर लिया, और जो उसी महत् प्रयत्नमें लगे और लग रहे हैं। मुख्यतः काम विजयी जो हुए और कामको दबाके कैदकर जीते हुए जो हैं, सोई सच्चे ज्ञानी, सद्बोधवाले हैं, और वे ही नर-जीवनमें मुक्तिके कार्यको पूर्ण या सिद्ध करनेवाले सच्चे सिद्ध निष्कामी, महापुरुष हैं। ऐसे ही पारखी सन्तोंका सत्सङ्ग करनेसे मनुष्योंका कल्याण होता है। उन्हें ही सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। अगर भेषधारी साधु होकर भी ऐसा नहीं हुआ, कामादिको जीता नहीं, बाहर त्यागका दम्भ दिखा करके भी मनमें कामासक्ति बनी रही, और दुराचार, व्यभिचार भी चोरी-छिपीसे करते फिरे, पाखण्ड फैलाने लगे, त्याग-वैराग्यका मनसे धारणा नहीं हुआ। परन्तु बातें खूब बढ़ा-चढ़ाके कहते हैं। अपने साधुता-विशेषताकी डींगे मारते हैं,

और कामको त्यागा नहीं । तब तो ऐसी हालतमें उनके कथन, उपदेश, आदिकी सब बातें थोथी ही हैं । अर्थात् मिथ्या, असार, खोखला, भूसाके समान खाली, निकम्मा व्यर्थके बकवादमात्र है । उनकी बात कोई कामकी नहीं है । क्योंकि, कहा है:—

छन्दः—"पानीके मथेते कहुँ घीउ नहिं पाइयत ॥
कूकसके कूटे कहाँ निकसत कन है ॥" सु० वि० ॥

इस प्रकार कामको जीते विना, किया हुआ, जप, तप, योग, ज्ञान, ध्यान, उपदेश, वार्ता आदि सब निष्फल होते हैं । वे ढोंगी, पाखण्डी लोग घरों-घरमें जाके उपाधि करते हैं, लोगोंको तङ्ग करते हैं, छल, बल, कपटसे भोले-भाले लोगोंको फँसायके वे अपने स्वार्थको ही सिद्ध करते हैं । घर-घरमें जाके, कपटी, असिद्ध लोग खूब चिकनी-चुपड़ी बातें सुनायके बकवाद करते हैं । रोचक-भयानक शब्द सुनाय-सुनाय डराय-धमकायके तन, मन, धनादिका अपहरण करते हैं । कहीं भग-भोगादि कुकर्म भी वे करते फिरते हैं। कभी तो लोगोंसे वे ढोंगी लोग मारे-पीटे भी जाते हैं । साधुके भेषको कलङ्कित कर डालते हैं । कहा है:—

रमैनीः—"हाट बजारे लावै तारी ! कच्चा सिद्ध माया पियारी ॥" बी० र० ६६ ॥

और भागवतमें कहा है:—

श्लोकः—"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥" भा० ९।१९।१४॥

—जिस प्रकार घृतकी आहुति डालनेसे अग्नि बुझती नहीं है, किन्तु और अधिक प्रज्ज्वलित हो जाती है, उसी प्रकार कामनाओंके उपभोगसे, काम शान्त नहीं होता है, किन्तु और अधिक बढ़ जाता है ॥ ऐसा ययाति राजाने कहा है ॥

इसलिये जो पुरुष विवेक, विचार द्वारा काम, कामना, वासनाओंको त्यागते हैं, वे ही सच्चे त्यागी सत्पुरुष ज्ञानी, सिद्ध, पूज्य हैं । नहीं तो कामासक्त लोगोंकी सब बात थोथी, असार ही होती हैं ।

वे असिद्ध, धूर्त लोग घर-घर जायके लोगोंको ठगते ही फिरते हैं; और अभ्यासवश मरके चौरासी योनियोंके घर-घरमें दुःख भोगते हुए भटका करेंगे ।

अतएव हर तरहसे इन्द्रिय-निग्रह करके शम, दमादिके द्वारा कामको जीतकर शुद्ध त्याग वैराग्यको धारण करके, अपना कल्याण करना चाहिये । यही मुख्य कर्तव्य है ॥ ७७ ॥

॥ * ॥ स्त्री-दोष कथन और दोषोंकी निन्दा वर्णन ॥ * ॥

दोहाः—विषबेली संसारमें । प्रगट भई है नारि ॥
सुर नर मुनि औ देवता । खाइनि सब जग झारि ॥ ७८ ॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! यह संसारमें नारी जो है, सो एक विषकी बेलिके रूपमें ही प्रगट भई है । जिसने सुर, नर, मुनि, और देवतागण तथा सम्पूर्ण जगत्के पुरुषोंको समेटकर उनसे भीतर बाहरसे लिपट-झिपटकर भग-मुख द्वारा सबोंके जीवन खा गई, तो भी वह राक्षसी अभीतक अतृप्त भूखी ही बनी है । और बचे-बचाये नये नये पुरुषोंको भी खा रही है । कहा हैः—

"पूत भ्रतारहिं बैठी खाय ॥" बीजक, वसन्त ४ ॥

ऐसी यह सबोंको खानेवाली बड़ी कठिन विषबेलि है ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—अर्थात् जैसे हलाहल विषकी बेलि लता, विष-फलको ही उत्पन्न करती है, तैसे ही संसाररूप बगीचामें विषकी सजीव बेलि पुरुषोंमें चिपटनेवाली लता, यह नारी या स्त्रीरूपमें सज-धजके प्रगट भई है । इस नारीके सर्वाङ्गमें विष ही विष भरा है, अरे भोले मनुष्यो ! यह तो विष-कन्या है, विषसे ही उसका पालन-पोषण हुआ है, जो उसके पाले पड़ा, सो मारा गया । यह तो अबला नहीं, किन्तु बड़ी भारी सबला है । जिसने नारीको अबला समझा, उसने धोखा खाया । नारीके शक्तिके सामने सबकी शक्ति क्षीण हो

जाती है। सुनिये! भर्तृहरिने कहा है:—

श्लोकः—"नूनं हि ते कविवरा विपरीत बोधा ॥
ये नित्यमाहुरबला इति कामिनीनाम् ॥
याभिर्विलोलतरतारकदृष्टिपातैः ॥
शक्रादयोऽपि विजिता अबलाः कथं ताः ॥" भर्तृ० शतक ॥

दोहाः—"कामिनिको अबला कहत, ते नर मूढ़ अचेत ॥
इन्द्रादिक जीते दृगन, सो अबला किहि हेत ? ॥"

—वे कविवर निःसन्देह उल्टी समझवाले हैं, जो स्त्रियोंको अबला कहते हैं। भला! जो अपनी नेत्रोंकी पुतलियोंके चञ्चल कटाक्षोंसे इन्द्रादिकोंको भी वश कर लेती हैं, वे अवला किस प्रकार हो सक्ती हैं? कभी नहीं॥ और सुनिये!—

श्लोकः—"आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां ॥
दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ॥
स्वर्गद्वारस्यविघ्नो नरकपुरमुख सवमायाकरण्डं ॥
स्त्रीयन्त्रं केनसृष्टं विषममृतमयं प्राणिलोकस्यपासः ॥" भर्तृ० शतक॥

—सन्देहोंका भँवर, अविनयका घर, साहसका नगर, दोषोंकी खान या पात्र, सैकड़ों प्रकारके कपटोंसे भरा हुआ, अविश्वासकी भूमि, स्वर्गद्वारमें जानेवालोंके लिये विघ्नकारक, नरक नगरका द्वार, सम्पूर्ण मायाओंका पिटारा, अमृतमें लिपटा हुआ कठिन विष, और मनुष्योंको मोहके फन्दोंमें फँसानेवाला फन्दा—ऐसा यह स्त्रीरूप यन्त्र किसने निर्माण किया या प्रगट किया है? ॥ और सुन्दरविलासमें कहा है:—

छन्दः— "विषहीके भूमि माँहि, विषके अंकुर भये ॥
नारी विषबेली बढ़ी, नख शिख देखिये! ॥
विष ही के जर मूल, विष ही के डार पात ॥
विष ही के फूल-फल, लागे जु विशेखिये ॥
विषके तन्तु पसार, उरझाई आँटी मार ॥
सब नर वृक्षपर, लपटे ही लेखिये ॥

सुन्दर कहत कोऊ. सन्त तरु बचि गये ॥
तिनके तौ कहूँ लता, लागी नहिं पेखिये ॥" सुन्दर विलास ॥

इस प्रकार जगत्में स्त्री साक्षात् विषकी वेलि ही प्रगट भई है। उस स्त्रीने सुर = देवगण—इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, वरुण, कुबेर, मरुत आदियोंको तथा असुर = दैत्यगण—हिरण्यकशिपु, शुम्भ, निशुम्भ, मयदानव, रावण, कुम्भकर्ण, इत्यादियोंके बुद्धिको खाके नष्ट करदी। और नर = समस्त साधारण पुरुषवर्ग, राजे-महाराजे लोगोंको भी पकड़-पकड़के भग-मुखसे खा गई। फिर मुनि, ऋषि, महर्षि, देव-ऋषि, राजर्षि, और देवता = ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इत्यादि सबोंको भग द्वारा स्त्रीने खा लिया। ऐसे जगत्के समस्त मनुष्योंको तथा देव, दानव, मुनि वर्गोंको सबोंको झाड़-भूड़के समेटकर नारीने भग-मुखसे खा-खाके पचागई। अन्य त्रयखानियोंमें भी जीवोंको विषय-वासना नचा रही है। सब पुरुषोंको खाके, विषय-भोगके भी स्त्री तृप्त नहीं होती है।

महाभारतमें कहा है:—

श्लोकः—"नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ॥
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥" महाभारत ॥

—अग्नि ईन्धनसे या लकड़ीसे तृप्त नहीं होता, महासागर नदियोंसे पूर्ण नहीं होता, और काल सम्पूर्ण प्राणियोंसे तृप्त नहीं होता। इसी प्रकार स्त्री कभी पुरुषोंसे तृप्त नहीं होती ॥

वीजकमें भी कहा है:—

शब्दः—"सुरभी भक्षण करत वेद मुख, घन बर्षे तन छीजै ॥
सदा रहें सुख संयम अपने, बसुधा आदि कुमारी ॥" बी० शब्द ८२॥

बसन्तः—"जान पुरुषवा मोर अहार, अनजानेका करौं सिङ्गार ॥
कहहिं कबीर बुढ़िया आनन्द गाय, पूत भ्रतारहिं बैठि खाय ॥" बसन्त ४ ॥

ऐसी विषैली नारी, विषसे पुरुषोंको बेहोश करके, राक्षसीके तरह निःशङ्क होके सबको खा रही है। इसीसे सदा नारीसे दूर

रहनेमें ही कुशल है। कभी भूलके भी उसका सङ्ग करना नहीं चाहिये ॥ ७८ ॥

दोहाः—हाड़ चाम औ रुधिरमें । मांस चर्ममें सोय ॥
नारि कूपिका नर्ककी । समुझ सयाने लोय ॥ ७९ ॥

संक्षेपार्थः— अरे भोगासक्त मनुष्यो ! नाहक स्त्रीके बाह्यरूपको देखके ही मोहान्ध होके क्यों भूलते हो ? विचार करो, स्त्रीके शरीरमें-हड्डी, मांस, रक्त, मल-मूत्र इत्यादि अपवित्र पदार्थ ही तो भरा है। चामसे ऊपर मढ़ी है, उसी अपवित्र वस्तुमें वह सनी है, मांस और चर्ममें उस नारीका सजीव पुतला बना है। भगमें भी वही मांस और चमड़ीकी लोथ लगी है। एक प्रकारसे स्त्री तो नर्ककी कुण्ड या नर्क भरी हुई गहरी अँधेरी कुआँके समान ही बनी है। उसमें जो डूबा, उसका सत्यानाश ही भया समझो। अरे ! समझदार मुमुक्षु लोगो ! तुम इसे भलीभाँति समझो। झूठी मोह मत करो। सयाने श्रेष्ठ पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें जाके सकल भेदको समझलो ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—अर्थात् स्त्रीका शरीर निपट मूर्ख नरपशुको ही सुन्दर भासता है, सो मोह करके ही है, और वास्तविकताको देखनेवाले ही विवेकी है। अङ्ग-प्रत्यङ्गको अलग-अलग करके विचार दृष्टिसे देखो ! बाहर त्वचा लपेटी हुई है, भीतर नस-नाड़ियोंका जाल बिछी हुई है, मांस, मज्जा, रक्त, हड्डियाँ, गू, मूत इत्यादिकी भण्डार भरा हुआ है। सिरसे पैरतक सारे शरीरमें नर्क ही भरा हुआ है, जो घृणाको उत्पन्न करनेवाला अपवित्र है। कहा है:—

श्लोकः—"एक एव पदार्थस्तु त्रिधा भवति वीक्षितः ॥
कुणपः कामिनी मांसं योगिभिः कविभिः श्वभिः ॥" लि० पुराण ॥

—लिङ्ग पुराणमें लिखा है:—एक ही पदार्थ (स्त्री-शरीर) तीन तरहसे देखा जाता है। सो कैसे कि— योगियोंकी दृष्टिमें

मृतक, कवियोंकी दृष्टिमें कामिनी और कुत्तोंकी दृष्टिमें मांस-पिण्ड देखा जाता है ॥

और सद्गुरुने बीजक, वसन्त ३ में कहा हैः—

बसन्तः— लम्बी पुरिया पाई छीन। सूत पुराना खूँटा तीन ॥ २ ॥
सर लागै तेहि तिन सै साठ। कसनि बहत्तर लागु गाँठ ॥ ३ ॥
खुरखुर-खुरखुर चालै नारि। बैठि जोलाहिन पल्थी मारि ॥ ४ ॥
ऊपर नचनियाँ करत कोड़। करिगहमा दुइ चलत गोड़ ॥ ५ ॥
पाँच पचीसों दशहूँ द्वार। सखी पाँच तहाँ रची धमार ॥ ६ ॥
रङ्ग-विरङ्गी पहिरे चीर। हरिके चरण धै गावैं कबीर ॥७॥ बी० ब० ३ ॥

इसकी टीका विरह अर्थमें विस्तारसे सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने स्वयं ही लिखे हैं। उसका सारांश यही है कि—"सो स्त्री तो कौन अति उत्तम है, तूँ बूझ! तीन सै साठ हाड़ोंकी झोपड़ी और बहत्तर हजार बन्दसे कसी गई, उसके भीतर खुरखुर-खुरखुर पवन चलती है, और हाड़ोंपर रक्त, मांसादिसे लीपी है। उसपर चामसे मढ़ी है, ऊपर घाससे रोवाँ भुर-भुर करते हैं। भीतर लार, मल, मूत्र, पित्त, कफादि भरा है। अरे! नारी है कि, डाँकिनी, जीवकी बिजुका है कि, पारधी, फाँसी है कि, खुशीका कैदखाना। तूँ कौन अति-उत्तम वस्तु समझके रीझा है। हे भाई! सो ठीकसे विचार करके देखो! स्त्री कभी पलथी मारके बैठती है, ऊपर नेत्रोंकी सैन चलाती है, तरे ठमक पाँव डारती है, मनमें संकल्प-विकल्प करती है। भीतर एक पुरुष वश किया है, तो दूसरेपर नजर रखती है। और एकसे बातें करती है, तो दूसरेपर चित्त चलावती है। एककी नारी कहाती है, दूसरा अच्छा नजरमें आया, तो उसे धावती है। मैथुन, द्रव्य दोनों चाहती है। अरे! इस नारीका नाम काम-भक्षिणी है, इससे हुशियार रहना. नहीं तो दो मुखकी भूखी बाघिन तेरेको खा लेगी। ऊपरके मुखसे रिझायके तरेके मुखसे तो अवश्य (तुम्हारे शक्ति-बुद्धिको) खा लेगी। जिसके दशोंद्वारोंमें नर्क भरा है, तो भी

विषयी मूर्ख लोग उसे अच्छा ही समझते हैं, इत्यादि" ॥

और विचारमालामें कहा हैः—

दोहाः— "अस्थि मांस अरु रुधिर त्वक्, कश्मल नख शिख पूर ॥
निरघिन अशुचि मलीन तन, त्याग आग ज्यों दूर ॥" वि० मा०॥

अतएव हे मुमुक्षु मनुष्य लोगो! तुम सयाने वृद्ध वा बुद्धिमान् बनके अब तो भी यथार्थ बातको समझो। हाड़, मज्जा, नाड़ी, रक्त, मांस, त्वचा और रोम यह सप्त धातुसे बना हुआ, नर-नारीका शरीर है। इसलिये स्त्री प्रत्यक्ष नर्क-कुण्डसे भरी हुई है। ऐसा जानके उसके तरफसे मनको हटाओ। वैराग्य धारण करो॥ ७९॥

दोहाः— मांस ग्रन्थि उर रार मुख। रही रोमते छाय॥
नारि कहत याको सकल। डाँकिन होय जग खाय॥८०॥

संक्षेपार्थः—हे मनुष्यो! स्त्री-देहमेंके सब अङ्ग-उपाङ्ग सर्वथा तुच्छ मलीन हैं, उसे अच्छा समझना मूर्खता है। उसके मुखमेंसे लार, थूक, खकार या कफ निकला करता है। छातीमें उभरे हुए दोनों स्तन भी मांस, त्वचा, नाड़ियोंकी एकत्र गाँठि पड़ी हुई मांसका गोला ही है। जिसके शिरमें, बगलमें और योनि या मल-मूत्रके द्वारोंमें बहुतसी मलीन रोम छाय रही हैं। सब विषयासक्त पुरुष इसे अपनी-अपनी नारी कहते हैं। किन्तु वे अनाड़ी हैं। मैं तो समझता हूँ कि, यह स्त्री ही डाँकिनी होके बाल, युवा और वृद्ध सब जगत्के पुरुषोंको खा रही है, मार रही है॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् स्त्रीका शरीर जिसमें विकार-ही-विकार भरा है, निपट मूर्ख ही उसकी प्रशंसा करते हैं। समझदार लोग कोई भी स्त्री-देहकी बड़ाई नहीं कर सकते। वे तो वास्तविकताको ही देखते हैं। इसलिये सब विवेकी वैराग्यवानोंने नारीकी निन्दा ही किये हैं। तहाँ भर्तृहरिने, वैराग्य शतकमें कहाहैः—सुनिये!

श्लोकः— "स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ ॥
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितम् ॥
स्त्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धि जघन– ॥
महोनिंद्यंरूपं कविजन विशेषैर्गुरु कृतम् ॥" वैराग्य शतक ॥

छप्पयः— "कुच आमिषकी गाँठ, कनकके कलश कहत कवि ॥
मुखहूँ कफको धाम, कहत शशिके समान छवि ॥
झरत मूत्र अरु धातु, भरी दुर्गन्ध ठौर सब ॥
ताको चम्पकबेल, कहत रस रेल टेल दब ॥
यह नारि-निहारि निन्दतन, वहँके विषयी बावरे ॥
याको बढ़ाय वाको, विरद बोले बहुत उतावरे ॥"

—स्त्रियोंके स्तन हैं, तो खास मांसके लोथड़े, परन्तु उनको उपमा दी गई है, सुवर्ण कलसकी, झूठ ही सुन्दर बतलाते हैं। मुख है तो खास कफका स्थान, परन्तु उसकी तुलना करते हैं, चन्द्रमाके समान सुन्दर बताते हैं। स्त्रीकी जंघायें हैं तो मूत्रसे भींगे हुए मलिन स्थान, परन्तु उनको उपमा देते हैं, गजेन्द्रके सुण्डकी। इस प्रकार निन्दितरूपको कविजनोंने, देखो! कैसा झूठ-मूठ बेपरिणाम बढ़ा दिया है ॥

और विचार सागर स्तरंग ५ में भी लिखा हैः—

चौपाईः–"तिय जो चारि चतुष्पद सोहत। चार फूल-फल खग मन मोहत ॥"

दोहाः— "करिकर उरु मृग खुर पुरज, केहरिसी कटि मान ॥
लोचन चपल तुरङ्गसे, बरणै परम सुजान ॥ २९ ॥
कमल वदन अलसी कुसुम, चिबुक चिह्न मति धाम ॥
तिल प्रसूनसी नासिका, पङ्कक तनु अभिराम ॥ ३० ॥
बिम्ब अधर दाड़िम दशन, उरज बिल्वसे धीर ॥
कोहरसी एड़ी कहत, कोविद मति गम्भीर ॥ ३१ ॥
है मरालसी मन्दगति, कण्ठ कपोत सुढार ॥ ३२ ॥
पिकसी वाणी अतुल मधुर, मोर पुच्छसम बार ॥" वि० सा० ॥

इत्यादि मनमाने उपमा देके विषयी बावरे विषय धारामें ही बह गये, चौरासी योनियोंके बँधुवे भये। खास करके स्त्री डाँकिनी होके जगत्में पुरुषोंको खाती है। तहाँ कहा भी है:—

श्लोकः— "योषितोरूपवत्या नुर्डाकिनीभ्योऽधिकं भयम् ॥
डाकिन्यो घ्नन्ति वै बालान् सा तु हन्यात यौवनान् ॥" मु० स० ॥

— मनुष्यको रूपवती स्त्रीसे डाँकिनियोंकी अपेक्षा भी अधिक भय है। क्योंकि डाँकिनियाँ तो बालकोंको ही मारती हैं, किन्तु वह स्त्री तो युवा पुरुषोंको मार डालती हैं ॥

और सुन्दर विलासमें भी कहा है:—

छन्दः—"कामिनीको तनु मानु, कहिये सघन वन ॥
वहाँ कोउ जाय सो तो, भूले ही परतु है ॥
कुञ्जर है गति कटि, केहरिको भय जामें ॥
बेणी काली नागिनीऊ, फणि कूँ धरतु है ॥
कुच हैं पहार जहाँ, काम चोर बसैं तहाँ ॥
साधिके कटाक्ष बाण, प्राण कूँ हरतु है ॥
सुन्दर कहत एक, और डर जामें अति ॥
राक्षसी बदन खाउँ, खाउँ ही करतु है ॥" सुन्दर वि० ॥

इस प्रकार स्त्री क्या है? प्रत्यक्षमें राक्षसी, चुडैल, डाँकिनी, कालिका ही है। कहा है:—

दोहाः— "पुत्र कारण भई जननी, भोग कारण भारजा ॥
पूजा कारण भई देवी, अन्त समय वह कालिका ॥"

छातीमें जिसके, मांसके गोले या लोथड़े गाँठि पड़ी है, मुखसे लार टपक रही है, कफ, थूकसे भरा है, जहाँ-तहाँ रोम छाय रहो है, अत्यन्त मलिन घृणित जिसका शरीर है, और रोमोंसे अर्धद्वार ढकी है। इन सब मल-घरको कपड़ोंसे ढाँकके कपटका सुन्दररूप बाहर दिखा रही है। जिसे देखके अज्ञानी लोग मोहके मारे लट्टू होके उसे अपना रहे हैं, और सब मूर्ख मनुष्य उसे अपनी नारी, हितकारी

कहते हैं, वैसे ही मान भी रहे हैं। परन्तु वही स्त्री डाँकिनी, राक्षसी होके जगत्में सब पुरुषोंको मार-मारके खा रही है। पारखी सन्तके सिवाय यह भेद कोई नहीं जानते हैं। इसीसे स्त्रीके पशु होके मारे जा रहे हैं। दुनियाँभरकी उपाधि, बैर-बिरोध स्त्रीके कारणसे ही होता है, तो भी उसे छोड़ नहीं सकते हैं। सो मोह आसक्तिका ही प्रताप है। अतः हित चाहनेवालोंको चाहिये कि— वह स्त्रीका सङ्ग कभी न करे। अनजानमें सङ्ग किया होय, तो युक्तिपूर्वक त्याग दे। फिर कभी भूलके भी स्त्रीके फन्दोंमें न पड़े, तभी कल्याण होवेगा ॥ ८० ॥

दोहाः— ज्ञान हरै क्रिया हरै। बल वीर्य हरै लाज ॥
यश लक्ष्मी कीरति हरै। हरै तप मुक्ति समाज ॥८१॥

संक्षेपार्थः— ज्ञान, शुद्ध क्रिया, बलरूप शक्ति, वीर्य, लज्जा, यश, धन-सम्पत्ति, कीर्ति, तपस्या और विवेक, वैराग्यादि मुक्तिका समाज— ये दश गुणोंको मैथुन कर्मसे स्त्री सत्यानाश कर देती है। स्त्री सम्भोग करनेसे वे सब गुण विशेष करके जाते रहते हैं। स्त्री उन सबोंको हरण कर लेती है। जिससे पुरुष निकम्मा होके चौरासी योनियोंके अनुगामी होता है ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—अर्थात् स्त्रीके संसर्गसे अनन्तों सद्गुण एकदमसे नाश हो जाते हैं। उनमेंसे मुख्य-मुख्य दश गुणका नाश यहाँ बतलाते हैं। स्त्री-भोगमें पड़े हुये पुरुष, सत्यज्ञानसे वञ्चित ही रहते हैं। और स्त्रीकी चाहना करनेपर, ज्ञानियोंका भी ज्ञान हरण हो जाता है। महादेव, नारद, वशिष्ठ, व्यास आदि ज्ञानी कहलाते रहे। परन्तु स्त्रीकी इच्छा और स्त्री-सङ्गसे उनका ज्ञान हरण हुआ, तथा प्रियव्रत, पुरु, ऋतुध्वज, ययाति आदिकोंके स्त्रीके कारणसे क्रिया-हरण हुई। राजा दशरथका बल, कैकेयीने हरण करी, देवीने शुम्भ,

निशुम्भका बल हरण किया, बालीका वीर्य (पराक्रम) हरण हुई, और मैथुनद्वारा सब पुरुषोंका वीर्य पतन होता ही है। ब्रह्मा आदिकी लाज, शरम, धर्म हरण हुआ। रावण, कंस, अजामिल, आदिका यश हरण हुआ। नल, पाण्डव, आदिकी लक्ष्मी, सम्पत्ति भी स्त्रीके कारणसे ही द्यूत-प्रसङ्ग होके हरण हुआ। असुरोंकी कीर्ति हरण हुई। विश्वामित्र, पाराशर, शृङ्गी आदिकी तपस्या हरण हुई। और विषयासक्त समस्त संसारी पुरुषोंकी मुक्तिका सकल समाज हरण हुई, और हो रहा है ॥

यह तो विशेष-विशेषरूपसे एक-एक गुण हरणकी बात जनाया। असलमें एक ही पुरुषकी दशों गुण भग-भोगमें फँसायके एक ही स्त्री भी हरण कर लेती है। कैसे कि—मैथुनकी इच्छा होते ही ज्ञानहरण होके अज्ञान-अविद्या आ जाती है। भोग करनेको तत्पर होते ही लाज, शरम हरण हो जाती है। भग-भोगते ही वीर्य पतनके साथ-साथ बल घटके निर्बलता आ जाती है। जिससे क्रियाका भी हरण होके निष्क्रिय सुस्त हो जाता है। "नारिसङ्ग तप भङ्ग" कहा है, ऐसा होनेसे तपस्या भी हरण हो जाती है। विषयसे तृप्ति न होनेसे व्यभिचार, वेश्यागमनादि कुकर्ममें भी लगते हैं। उससे यश, लक्ष्मी = द्रव्य, कीर्तिका भी नाश हो जाता है; और आखिरमें पतित होनेसे उसमें—विवेक, गुरुभक्ति, वैराग्य, बोध, सत्यादि सद्गुण कुछ रञ्चकमात्र भी नहीं रहते हैं। इस प्रकार सारे मुक्तिका समाज विषयासक्ति स्त्री सङ्गके कारणसे ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। ऐसे सब सद्गुणोंको हरण करनेवाली स्त्री है। अतः यह तो सचमुच राक्षसी, महाकाली, सत्यनाशिनी ही है। दत्तात्रेय संहितामें कहा हैः—

श्लोकः— "दर्शनाद्धरते चित्तं स्पर्शनाद्धरते बलम् ॥
सम्भोगाद्धरते वीर्यं नारी प्रत्यक्ष राक्षसी ॥" दत्त० सं० ॥

— अगर कोई राक्षसीको देखना, समझना चाहो, तो इसी स्त्रीको देख लो। क्योंकि, देखनेमात्रसे नारी, पुरुषोंके चित्तको हरणकर

लेती है। स्पर्श करनेसे बलको वा वीर्य पराक्रमको हर लेती है। और सम्भोग करनेमें पुरुषोंके शक्तिरूप वीर्यको हर लेती है। इस प्रकार प्रत्यक्षमें यही स्त्री साक्षात् राक्षसी है॥ बिना विवेक उसी स्त्रीमें प्रेम लगाकर नरजीव चौरासी योनियोंमें भटकते हैं। सारी परतन्त्रता, आवागमनका मूल कारण ही स्त्री है, विषसे भरा हुआ घड़ा यही है॥ महाभारतमें कहा है:—

श्लोकः— "स्मरणाज्जायतेकामो वधूनां धैर्यनाशनः॥
दर्शनाद्वचनात्स्पर्शात्कस्मादेष न सम्भवेत्॥" महाभारत॥

—स्त्रियोंका तो स्मरण करनेसे ही धैर्यको नष्ट करनेवाला कामदेव उत्पन्न हो जाता है, फिर उनको देखने, उनसे बातचीत करने, अथवा उनका स्पर्श करनेसे वह क्यों न उत्पन्न होगा?॥

दोहा:— "बुद्धि विवेक सबहीं हरै, नारी सेती नेह॥
कारज कोई ना सरै, व्यर्थ गया नर देह॥
नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजे गौर॥
देखत ही पै विष चढ़ै, मन आवै कुछ और॥
नारि नहीं वह नाहरी, नख शिख निंद्यस्वरूप॥
नारीके वशमें परे, गये गर्भ तम कूप॥"

अतएव स्त्रीको सर्व अनर्थका मूल, नर्कका खुला हुआ द्वार, बन्धनोंका घर ही जानकर उपरोक्त दश गुणोंको बचानेके लिये, सर्वथा मुमुक्षुओंने, स्त्रीको त्यागके, दूर ही रहना चाहिये। तभी कल्याण मार्गमें आगे बढ़ सकेंगे, ऐसा जानना चाहिये॥ ८१॥

दोहा:—कछु दिन बिलसत प्रीतिसों। मानत मनमें मोद॥
तन छूटे पर जाइके। बसी करत निज गोद॥८२॥

संक्षेपार्थः— जब कामासक्त पुरुष स्त्रीके विषय-जालमें फँस जाते हैं। तब परस्पर प्रीति बढ़ायके कुछ दिन तक तो विषय-विलास करते हुये मस्त पड़े रहते हैं, और वे मनमें बड़ा आनन्द मानने लग

जाते हैं। अपने हित-अहितके परिणामकी, गतिको कुछ भी याद नहीं रखते हैं। फिर अन्तमें शरीर छूटनेपर वासनावश उसी स्त्रीके गर्भ और गोदमें जायके बालकरूपसे निवाश करते हैं। इस प्रकार स्त्री फिर पुरुषरूपको ही पुत्र बनायके अपने गोदमें बाँधकर बैठाती है। तहाँ कहा है:—

दोहा:— "माता सो मेहरी भई, पुत्र भयो सो कन्त ॥
एकै राह दूनों भये, तुम सुनो विवेकी सन्त ॥"

ऐसा समझना चाहिये।

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीका:— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात् स्त्रियोंके हाव, भाव, कटाक्ष, स्वाँग, नखरा, कपटकी मीठी बातें, चञ्चलता, बनावटी प्रेम, हास्य, इत्यादि चालको देख, सुनकर आकर्षित होकर पुरुष सहज ही स्त्रीके माया, मोहके जालमें बन्धायमान हो जाते हैं।

भर्तृहरिने कहा भी है:—

श्लोक:— "स्मितेन भावेन च लज्जया भिया पराङ्मुखैरर्द्धकटाक्ष वीक्षणैः ॥
वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः ॥" शृं० २॥

—मन्द-मन्द मुसकुराना, लज्जा करना, मुख फेर लेना, तिरछी दृष्टिसे देखना, मीठी-मीठी बातें करना, ईर्ष्या करना, कलह करना, और अनेक प्रकारके भाव प्रगट करना, इत्यादि सब बातोंसे स्त्री, पुरुषके लिये बन्धन स्वरूप ही हैं ॥

दोहा:— "रसमैं त्योंही रोषमैं, दरशात सहज अनूप ॥
बोलनि चलनि चितौनिमैं, बनिता बन्धन रूप ॥"

श्लोक:— "भ्रूचातुर्याकुञ्चिताक्षाः कटाक्षाः स्निग्धा वाचो लज्जितान्ताश्च हासाः ॥
लीलामन्दं प्रस्थितं च स्थितं च स्त्रीणामेतद्भूषणं चायुधं च ॥" शृं० ३ ॥

—भौंह टेढ़ीकर कटाक्ष करना, मधुर-मधुर बात बोलना, लज्जित होकर मुसकुराना, लीलासे मन्द-मन्द चलना, और पुनः ठहर जाना,

इत्यादि भावभङ्गी, स्त्रियोंके भूषण और शस्त्र है, अर्थात् स्त्री इन्हीं सब भावोंसे पुरुषको वशमें कर लेती हैं ॥

सोरठाः— "मोह प्रलाप प्रमाद, ज्ञान नाश निर्लज्जता ॥
शोक कलेश विषाद, कहा न कर हिय घुस त्रिया ॥"

श्लोकः—"अदर्शने दर्शनमात्रकामा दृष्ट्वा परिष्वंगरसैकलोलाः ॥
आलिंगितायां पुनरायताक्ष्या माशास्महे विग्रहयोरभेदम् ॥" शृं० शतक ॥

—जबतक विषयी पुरुष स्त्रीको नहीं देखते, तबतक तो वे उसको देखने ही की इच्छा रखते हैं। और जब देख लेते हैं, तब उससे आलिंगन रसका सुख चाहते हैं, और जब वह भी प्राप्त हो जाता है, तब यह इच्छा करते हैं कि— यह स्त्री हमारे शरीरसे अलग न हो। ऐसी दुराशा घेरे रहती है ॥

निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शनके प्रश्न ११९ के उत्तरमें सद्गुरु श्रीकाशी साहेबजीने लिखा है :—

"अथवा— दोनों नेत्र, मुख, दोनों स्तन और भग,— ये स्त्री देहोंके षट् स्थानोंमें सदा लक्ष रहनेसे 'कमल-भ्रमर न्याय' मनुष्य भग-लम्पट (चामके कीड़े ही) बन जाते हैं। वैसे ही स्त्रियोंका परस्पर बोलना, देखना, चलना, उठना, बैठना और आलिंगन देना,—इन षट् क्रियाओंको देखकर मनुष्यकी बुद्धि विषयासक्त हो जाती है। हाड़, मांस, रक्त, लार, मूत्र, विष्ठा इत्यादि दुर्गन्धि पदार्थोंसे स्त्री-देह बनी है। रङ्ग दी हुई चिकनी दिवालवत् ऊपर चामसे मढ़ी हुई, अनेक बालयुक्त रहके उसे सुन्दर स्वरूप कोई कहते हैं। हर महीनेमें ऋतु-समय योनिद्वारा (४ दिन विशेष और १२ दिन सामान्य रीतिसे ऐसे) १६ दिन रक्त बहा करता है। उसीको अच्छे-अच्छे कपड़े पहिराय, सोना, चाँदी, मोती, नग, इत्यादिकोंसे सुशोभित करके मूर्ख, विषय-लम्पट लोग तिस विषय रीझते हैं। उसीसे सन्तान उत्पन्न हुए बाद उसके नरक-मूत्रादिको प्रतिदिन साफ करती हुई स्त्री प्रत्यक्ष ही भङ्गिन बन जाती है ॥

केवल स्त्रियोंके जड़ देहोंपर पुरुषोंका लक्ष, और पुरुषोंके जड़ देहोंपर स्त्रियोंका लक्ष सदोदित लगा रहता है। चेतन जीवोंका ज्ञान-विचार कौन देखते हैं? कोई नहीं। साँप समान स्त्रीके काटनेसे उसका जहर पुरुषोंके सर्व अङ्गमें चढ़ा है, तो भी विषयासक्त मनुष्य स्त्रीके विरह-वियोगमें अग्निके तुल्य जल रहे हैं। जैसे नरकके कीड़े नरकहीमें उत्पन्न हों, वहाँ ही सुखमानके मरते हैं, तैसे ही मनुष्य खानीमें भी स्त्रीकी योनिरूप नरकमेंसे उत्पन्न हों, वहाँ ही अल्प विषयानन्द भोगकर देह छोड़के अध्यासवश वहाँ गर्भवासमें ही जाके फिर त्रयतापका दुःख बारम्बार भोगते रहते हैं। कभी आवागमनादिसे छुट्टी नहीं पाते॥" इत्यादि॥

और कहा हैः—

चौपाईः— "जो नर नारि नयन शर बीधे। तिनके हिये होत नहिं सीधे॥" वि० सा० ५॥

"नारी बुरी वेश्या अरु परकी। तीजो नरक निसेनी घरकी॥" वि० सा० ५॥

—पुरुष विषयान्ध होकर कुछ दिनतक, अथवा जबतक आयु है, जवानी है, तबतक प्रीतिसे ऐश-आराम, भोग-विलास स्त्रीके साथमें गाढ़ी प्रेम बढ़ाकरके करते हैं। जैसे नर्क मल, मूत्र, गोबरका कीड़ा उसीमें सुख मानता है, तैसे विषयी लोग भी होते हैं। कहा हैः—

छन्दः— "नरक रचे नरकका कीड़ा। चन्दन ताहिं न भावै जू॥" सुन्दर०॥

बीजकमें कहा हैः—

"वै उतङ्ग तुम जाति पतङ्गा! यम घर कियेउ जीवको सङ्गा॥
नीम कीट जस नीम पियारा। विषको अमृत कहत गँवारा॥
विषके सङ्ग कौन गुण होई? किञ्चित लाभ मूल गौ खोई॥" बी० रमैनी ११॥

—तैसे ही विषयासक्त कामी-पुरुष, स्त्रीसे विलास करके मनमें बड़ा सुख, प्रिय, मोद, प्रमोद, अत्यन्त हर्ष मानते हैं। परिणाममें होनेवाला दुःखको तो वे कुछ जानते ही नहीं। विवेक, विचार, बुद्धि, गँवायके, गधे सरीखी स्त्रीकी लातें, बातें, झिड़की, खायके भी उसके चरण चूमते फिरते हैं। व्यर्थ ही उन नर-पशुओंकी आयु चली जाती

है । फिर शरीर छूटनेपर वासनावश स्त्रीके उसी योनि द्वारा गर्भ-वासको प्राप्त होते हैं, पश्चात् जन्म लेकर मातारूप स्त्रीके गोदमें बास करते हैं । इसी प्रकार बारम्बार निज गोदमें पुरुषोंको बच्चे बनाय-बनायके नारी बैठाती है, माया जालोंमें झुलाती रहती है । पारखबोध होके अध्यास छूटे बिना कोई इस चक्रसे छूट नहीं सकते हैं । अतएव विषयोंमें भूलो मत ! अभी जीतेजी वासनादि त्यागके, सुधारके मार्गमें लग जाना चाहिये, सो जानो ॥ ८२ ॥

दोहाः—मनसा वाचा कर्मना । त्याग कीजिये नार ॥
हतै स्वर्ग अपवर्ग सुख । दुःखदाई निर्धार ॥ ८३ ॥

संक्षेपार्थः—इसलिये हे मनुष्यो ! यदि तुम लोग अपना हित-कल्याण चाहते हो, तो कर्मसे, वचनसे, और मनसे भी स्त्रीकी इच्छा, विषयवासनाओंको सर्वथा एकदम परित्याग कीजिये । क्योंकि, स्त्री ही नरककी भवन है, उसमें लक्ष रखनेवाले पुरुष पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं । स्वर्ग = तृष्णा क्षय होकर शान्ति स्थितिका पद, अपवर्ग = मोक्षपद-रूप जीवन्मुक्तिका सुख, जो सच्चा सुख है, उसको स्त्री तथा उसकी वासनायें नाशकर देती हैं । स्वर्ग, अपवर्ग सुखोंको हनन करके विनाश करनेवाली और निश्चय करके भयङ्कर दुःख, सन्ताप देनेवाली काल वही स्त्री है । ऐसा ठीकसे जानके उसे सब प्रकारसे त्याग कीजिये ! कभी उसमें मत भूलिये ! ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् हे सन्तो ! और सज्जनो ! यदि आप लोग इस मनुष्य जन्ममें सुख, शान्ति और मुक्ति पाना चाहते हैं, तो पहिले स्त्रीको त्याग दीजिये । फिर उसके वासनाओंको भी हटाइये । खाली बाहर शरीरसे नारीको छोड़नेमात्रसे ही पूर्ण लाभ नहीं होगा । मन, वचन, कर्म, तीनों तरहसे त्यागिये । तभी यथार्थ लाभ होगा । यदि नहीं त्यागोगे, तो तुम अनन्तों जन्मतक

चौरासी योनियोंके संकटमें ही पड़े रहोगे, यह खूब याद रखो। अवधूत गीतामें कहा है:—

श्लोकः—"मनसा कर्मणा वाचा त्यज्यतां मृगलोचना ॥
न ते स्वर्गोऽपवर्गो वा सानन्दंहृदयंयदि ॥" अवधूत गीता ८।११॥

—मृगके तुल्य नेत्रोंवाली ऐसी स्त्रियोंको मन करके, क्रिया और वाणी करके भी त्यागकर देओ। यदि त्याग नहीं करोगे, तब वह तुम्हारेको स्वर्ग-सुख और मोक्ष-सुख, अथवा हृदयमें आनन्द, शान्ति, सुख भी होने नहीं देवेगी ॥

अर्थात् मन, वाणी और कर्मसे स्त्रीको छोड़ देनेमें ही भलाई है। संसारमें बन्धनोंमें जकड़ानेवाली खास स्त्री ही हैं। नाना प्रकारके दुःखोंका कारण होनेसे वही नारी दृढ़ बन्धन है। इससे दुःखोंका जड़ काट देना ही विवेकीका काम है। स्वर्ग, मोक्ष, और शान्तिको नशानेवाली स्त्रीका संसर्ग और कामना है। अतएव उसे युक्तिपूर्वक हटा देना चाहिये ॥ बीजकमें कहा है:—

साखीः— "साँप बिच्छूका मन्त्र है, माहुरहू झारा जाय ॥
बिकट नारिके पाले परे, काढ़ि कलेजा खाय ॥" बीजक, सा० १४३॥

—साँप, बिच्छू आदि जहरीले जानवरोंके विष उतारनेके लिये मन्त्र कहिये सलाह, वा मन्त्रणा, युक्ति, प्रयुक्तिसे, जड़ी, बूटी आदि औषधियोंका प्रयोग होता है। जिससे उनका विष उतरके निवारण भी हो जाता है, और माहुर वगैरह तेज विष भी और मारण औषधियोंका प्रयोग करके झाड़नेसे उतर जाते हैं। परन्तु इस स्त्रीके विषयाध्यासका विष उतरना बड़ा ही कठिन हो जाता है। जो पुरुष ऐसी कालरूप बिकट नारीके पाले पड़े, उन सब पुरुषोंका ज्ञान-गुणसहित कलेजा या हृदय काटके स्त्रीने खा गई, और खा रही है। पुरुषोंको सद्गुणहीन कामासक्त नरपशु ही बनाई और बना रही है। ऐसी वह तीक्ष्ण विषैली है ॥

इस कारण सब प्रकारसे स्त्री त्यागने योग्य है। दृढ़ वैराग्य

धारण करके मुमुक्षुओंने, भीतर, बाहरसे अष्ट-मैथुनोंको त्याग देना चाहिये। कभी उसमें गाफिल होना न चाहिये॥

तहाँ दक्षस्मृतिमें अष्ट-मैथुनके बारेमें कहा हैः—
और निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शनमें भी लिखा हैः—

श्लोकः— "स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणं॥
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥" दक्षस्मृति ७।३१।३२॥

—१. स्मरण, स्त्रियोंका चिन्तन या याद किया करना, २. कीर्तन, स्त्रियोंके गुणोंका विशेष वर्णन करना, ३. केलिः, स्त्रियोंके साथ चौसरादि, नाना खेल-खेलना-क्रीड़ा करना, ४. प्रेक्षण, भोग बुद्धिसे स्त्रियोंको देखना, ५. गुह्य भाषण, एकान्तमें स्त्रियोंसे बोलचाल करना, ६. संकल्प, स्त्रियोंके प्राप्तिकी इच्छा करना, ७. अध्यवसाय, स्त्रियोंकी प्राप्तिका बुद्धिमें निश्चय होना, और ८. क्रिया निष्पत्ति, स्त्रियोंसे मिलके प्रत्यक्ष सम्भोग करना॥ ऐसे अष्ट मैथुन कहा गया है।

साखीः— "श्रवण सुमिरन कीर्तन, चिंतवन बात इकन्त॥
दृढ़ संकल्प प्रयत्न तन, प्रापति अष्ट कहन्त॥" विचारमाला॥

—इस प्रकार उपरोक्त आठों तरहके मैथुन और स्त्रीका सहवास, संसर्गको भी वैराग्यवानोंने छोड़ देना चाहिये। स्त्री-मुक्तिघातिनी, पापिनी, वैराग्य, सुख-विनाशिनी है। कभी किसीरूपमें भी आवें, तो भी स्त्री-जातिपर विश्वास नहीं करना चाहिये। सङ्ग-साथको त्याग देना ही चाहिये। स्त्रियोंको प्रेम उत्पन्न होनेका ऐसा कोई कर्म भी नहीं करना चाहिये। प्रेमपूर्वक स्त्रियोंसे विषय बढ़ानेवाली बात बोलना भी नहीं, और मनसे भी स्त्री-सम्बन्धी किसी बातका भी मनन वा याद नहीं करना चाहिये। सदा उदास, विरक्त, रागरहित हो रहना चाहिये। निश्चय करके स्त्रीको दुःखोंके खानी, दुःखदाई ही जानना चाहिये। सच्चा शान्ति सुखरूप प्रत्यक्षके स्वर्ग तथा जीवन्मुक्ति वा मोक्षको विनाश करनेवाली चौरासी योनियोंके नाना दुःखोंमें ढकेलके गिरानेवाली सब प्रकारसे निंद्य, त्याज्य, नार = प्रत्यक्ष नर्कका

कुण्ड सोई नारी है । अतएव हे मुमुक्षुओ ! अब तो भी मन, वचन, कर्मसे इसे त्याग करके दूर होओ, तभी तुम्हें सच्चा सुख मिलेगा, ऐसा जानो ॥ ८३ ॥

दोहाः—बाघिनरूप धरि गायके । वृषभन प्रिय करि मान ॥
सुखकी बेड़ी याहि है । विश्वासघातिनी जान ॥ ८४ ॥

संक्षेपार्थः— भीतर असलमें छिपी हुई बाघिनीरूपी नारीने बाहर कपटसे गायके समान रूप धारण करके हाव, भाव, कटाक्ष करके गीत गायके, पुरुषोंको मोहित करके, रिझायी और मूर्ख बैलरूप नर-पशु ऐसे पुरुषोंने भी उस स्त्रीको बड़ा प्रियकरके हितकर मानके उसीसे फँसके विषयोंमें भूल गये। उधर उसने मौका पाते ही, विश्वासघात करके उन्हें मारके खा गई, सत्यानाश कर डाली । अरे भाई ! यही स्त्री खुशीके कैदखाना, तथा सुखकी पुतली मानी हुई कठिन बेड़ी है, यानी यही सुखकी बेड़ी है । स्त्री करके ही महाबन्धन, संसारभरके उपाधियाँ खड़ी होती हैं। चाहे उसे कितने भी प्यार करो, तो भी वह किसीकी हितकारिणी नहीं होती है, अतः इसे तो विश्वासघातिनी ही जान लीजिये, और उसे त्याग ही कर दीजिये ! ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् जैसे जङ्गली हिंसकी भूखी बाघिन भूखसे व्याकुल होके, आहार ढूँढ़ने निकली, तो वैसे उसके भयङ्कररूप देखके सब जानवर भयभीत होके भागने लगे। तहाँ एक जगह मरी हुई गायकी खाल पड़ी थी, उसे ही बाघिनने बाहर पहिरके गायके समान रूप धारणकरली, आगे बढ़ी, तो मस्त साँड़, बैलचर रहे थे, उन्होंने उसे गायके रूपमें देखा, तो वे कामान्ध होके उसके पास आये, और झट मैथुन करनेमें प्रवृत्त हुये, उतनेमें बाघिनीने भी झट-पट खाल फेंकके असलीरूपमें प्रगट होके, कई एक साँड़ वा बैलोंको मारकर, मांस खाके चली गई । ऐसे वह

विश्वासघातिनी भई । और इसी प्रकार कागजकी हथिनीको देखके, कामीहाथी भी फन्देमें पड़के मारे जाते हैं ॥ और एक कामी गदहा भी भोगकी इच्छासे आके, सिंहसे आरूढ़ होने जाकर मारा गया था, इत्यादि कथा कई एक हैं ॥ सिद्धान्तमें संसाररूपी जङ्गलमें हिंसकी बाघिनीके समान क्रूर स्वभाववाली यही स्त्री है। उसे विषय-भोग करनेकी खूब भूख लगी, तो नाना प्रकारसे सोलहों शृङ्गारकर अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहनके अपने असलीरूपको छिपाकर नकली सुन्दरी रूपको धारण करी, और देखनेमें गायके समान सीधी-सादी, अबला, नम्र, कोमल बनी, और नाना तरहसे गाय-गायके, नाच-नखरा करके लिपट-झिपटके, रोयके "हे प्राणनाथ ! मेरे आधार तो तुम्हीं हो" ऐसी-ऐसी बातें बनाय, नाना तरहसे मोहक वचन कहके पुरुषोंके दिल और चोटी अपने हाथमें कर लेती है । ऐसे कामिनियोंके फन्दोंमें पड़के, बैलरूप अनेक पुरुष या बैलके भाई गधे, साँड़, घोड़े, भैंसा, सूअर आदि पशुओंके समान स्वभाववाले बनके कामान्ध मूर्ख पुरुष भी उसे अत्यन्त प्रिय करके मान लेते हैं । "कामातुराणां न भयो न लज्जा"

— कामासक्तको भय, लज्जा कुछ नहीं होता है । और जब पुरुष भोग करनेको तत्पर होता है, तब बाघिनरूप स्त्री, खालरूप सुन्दर दर्शानेवाले कपड़ोंको हटाकर भयङ्कर भग-मुखसे ग्रास करके पुरुषोंकी सर्वस्व शक्ति, सद्गुण लक्षण, क्षणभरमें ही खा लेती है । और पुरुषको निकम्मा बना देती है । अन्यत्र भी कहा हैः—

श्लोकः— "स्त्रीसङ्गादुद्विजेद्व्याघ्रीसङ्गादप्यधिकं बुधः ॥
व्याघ्री हन्त्येकवारं हि योषिद्धन्ति नरं मुहुः ॥" मु० स० ॥

— बुद्धिमान् पुरुषोंको स्त्री-सङ्गसे व्याघ्रीके सहवाससे भी अधिक भय मानना चाहिये । क्योंकि, व्याघ्री तो मनुष्यको एक ही बार मारती है, परन्तु नारी उसें बारम्बार मारती रहती है ॥

श्लोकः—"व्याघ्रयत्ति हि नरं दन्तैर्नार्यत्तितैर्विनापि तम् ॥
योनिरन्ध्रेण चादत्कमुदत्कमिति वै श्रुतेः ॥" मु० स० ॥

"व्याघ्रया हतो न ना याति नरकादीन्परस्त्रियः ॥
सम्भोगाद्याति तान् कामीत्यादिकं भारते स्मृतम् ॥" महाभारत ॥

— व्याघ्री तो पुरुषको दाँतोंसे काटती है, परन्तु स्त्री तो—

"श्वेतमदत्कमदन्कꣳ श्वेतं लिन्दुमाभिगाम्" (छा० उ० ८ । १४ । १)

—'मैं बिना दाँतोंके भक्षणकर जानेवाले श्वेत और लिबलिबे (स्त्रीचिह्न-भग) के प्रति गमन न करूँ।'—इस श्रुतिके अनुसार दाँतोंके बिना केवल अपने योनिरन्ध्रसे ही लील जाती है ॥ और महाभारतमें भी कहा है कि— पुरुष व्याघ्रसे मारा जानेपर नरकादिको प्राप्त नहीं होता। किन्तु वह कामवश परस्त्रियोंका सम्भोग करनेसे घोर नरकोंमें ही चला जाता है ॥ इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय? स्त्री-सङ्गसे सभी देहधारियोंको प्रायः दुःख उठाना पड़ता है। अतः स्त्री-सङ्गका सर्वथा परित्याग करना चाहिये ॥ मु० स० ॥ स्त्रियोंके दोष अनन्त हैं, पुरुषोंको बाँधकर जकड़के रखनेवाली यही सुखकी बेड़ी वा सुखरूपमें कठिन दुःखकी बेड़ी माया-मोहकी फाँसीरूप ही स्त्री है, और विश्वासको घात करनेवाली स्त्रीको बड़ी भारी कुटिल विश्वासघातिनी ही जानो। तहाँ दत्तात्रेयने भी अवधूत गीतामें कहा है:—

श्लोकः—"न जानामि कथं तेन निर्मिता मृगलोचना ॥
विश्वासघातकीं विद्धि स्वर्गमोक्ष सुखार्गलाम् ॥" अ० गीता ८ । १२ ॥

— हम इस बातको नहीं जानते हैं कि— उस मृगलोचनारूप स्त्रीको किसवास्ते रचा, वह कैसी है कि— विश्वासको घात करनेवाली है, ऐसा तू जान, और स्वर्ग तथा मोक्ष सुखमें विघ्नरूप अर्गला है ॥ ऐसे वह अविश्वाशिनी दुष्टा है ॥

और स्त्रियाँ कैसे असाध्वी, दुष्टा, विश्वासघातिनी होती हैं, यह जानने, दिखलानेके लिये "जातक" में आयी हुयी कथा यहाँ लिख देता हूँ, सो ध्यानपूर्वक सुनिये !—

जातक खण्ड १, असातमन्त जातक १ । ७ । ६१ में लिखा है:—

गौतमबुद्धने कहाः—

"हे भिक्षु ! स्त्रियाँ असाध्वी, असती, पापी, निकृष्ट होती हैं, तू इस प्रकारकी पापी स्त्री-जातिके प्रति क्यों आसक्त हुआ है ?" कहके बुद्धने प्रथमके एक कथा सुनाये ।—

|| * || कथा || १ || * ||

पूर्व समयमें बाराणसीमें एक ब्राह्मणको एक पुत्र उत्पन्न हुआ । और पुत्रकी उत्पत्तिके दिनसे ही निरन्तर प्रज्ज्वलित आग रक्खी गई । जब वह ब्राह्मणकुमार १६ वर्षका हुआ, तब उसके माता-पिताने कहा—"पुत्र ! हमने तेरी उत्पत्तिके दिन आग जलाकर रख दी थी । यदि ब्रह्मलोक जानेकी वा तू मुक्ति चाहता है, तो साधु होके जङ्गलमें उस आगको लेकर चला जा । यदि गृहस्थ होना चाहता है, तो तक्षशिला जाकर वहाँ लोक-प्रसिद्ध आचार्य्यसे विद्या, शिल्प सीखकर घर आ । फिर कुटुम्बका पालन-पोषणकर ।" उस ब्रह्मचारीने जङ्गलमें प्रविष्ट हो, अग्निकी परिचर्या न कर सकूँगा, मैं साधु नहीं हो सकूँगा, मैं गृहस्थ ही होऊँगा, कुटुम्ब ही पालूँगा सोच, माता-पिताकी आज्ञा ले, उन्हें नमस्कारकर पढ़नेको गया । और आचार्य्यकी एक हजारकी फीसके साथ वह तक्षशिला गया, और शिल्प सीख, विद्या पढ़कर समय पूरा करके फिर वापस घर लौट आया । उसके माता-पिताको उसके गृहस्थ होनेकी इच्छा नहीं थी, उसे वे साधु बनाना चाहते थे, उसका कल्याण हो, यह सोचते थे । सो उसकी माताने उसे स्त्रियोंके दोष दिखाकर जङ्गलको भेजनेकी इच्छासे सोचा:— मेरी बात तो यह नहीं मानेगा, वह आचार्य्य पण्डित है, व्यक्त है, वे ही इसे स्त्रियोंके दोष बता सकेंगे— यह सोच-विचारकर पूछा—"तात ! क्या तूने विद्या-शिल्प सीख आया ?" "हाँ माताजी ! सीख आया ।"— "असात-मन्त्र भी तूने सीखा क्या ?" "माताजी ! नहीं सीखा ।" "हे तात पुत्र ! यदि तूने 'असात-मन्त्र' नहीं सीखा, तो तूने क्या सीखा ? जा ! फिरसे सीखकर आ ।"

वह 'अच्छा' कहकर, फिर तक्षशिलाकी ओर चल दिया ॥ उस आचार्य्य महापण्डितकी भी, एक सौ बीस वर्षकी बूढ़ी माता थी। वह उसे अपने हाथसे नहला, खिला, पिला, उसकी सेवा करता था। अन्य मनुष्य उसे वैसा करते देख, घृणा करते। इसलिये उसने सोचा— मैं जङ्गलमें प्रवेशकर, वहाँ माताकी सेवा करता रहूँगा, वह वहाँसे हटकर कोई उपयुक्त जगहमें पर्णशाला बनवाके वहाँ रहकर माताकी सेवा करते रहने लगा। वह ब्रह्मचारी भी फिर तक्षशिलामें जा पहुँचा, तो वहाँ आचार्य्यको न देख, आचार्य्य कहाँ हैं ? पूछा। लोगोंसे पता पाकर वहाँ गया और आचार्य्य-गुरुको प्रणामकर खड़ा हुआ। उससे आचार्य्यने पूछा— "तात ! किसलिये वहुत जल्दी तू लौट आया ?"—"आपने मुझे 'असात-मन्त्र' नहीं सिखाया न ?" वही सीखने आया हूँ ! "तुझे किसने कहा कि— "असात-मन्त्र" सीखना चाहिये ?"— "आचार्य्य ! मेरी माताने कहा।" आचार्य्यने मनमें सोचा— "असात-मन्त्र तो कोई मन्त्र नहीं है। इसकी माता इसे स्त्रियोंके दोषोंको विदित करा देना चाहती होगी।" "सो, अच्छा ! तात ! तुझे असात-मन्त्र भी बता दूँगा"— उसने कहा— सुन ! आजसे आरम्भ करके, तू मेरे स्थानपर, मेरी माताको नहलाते, खिलाते, पिलाते, उसकी सेवा करना। हाथ, पैर, सिर और पीठ दबाते या मलते हुये, "आर्यें ! बूढ़ी होनेपर भी तेरा शरीर ऐसा अच्छा सुन्दर है, तो जवानोमें यह शरीर कैसा रहा होगा ? कहकर शरीर दबानेके समय, हाथ, पैर आदिके वर्णकी खूब प्रशंसा करना, और जो कुछ तुझे मेरी माता कहे, वह बिना लज्जाके, बिना छिपाये, मुझे कहना। ऐसा करनेसे असात-मन्त्रोंकी प्राप्ति होगी, न करनेसे नहीं होगी।" उसने अच्छा आचार्य्य गुरुजी ! कह, उनकी बात मान, उस समयसे आरम्भ करके जैसा-जैसा कहा था, वैसा-वैसा ही किया, और खूब प्रेमसे उस बुढ़ियाकी सेवा करता गया।

उस विद्यार्थीके बार-बार प्रशंसा करनेपर, उस अन्धी, जरा-

जीर्ण-बूढ़ीके मनमें भी काम-विकार उत्पन्न हो गया— "यह पुरुष मेरे साथ रमण करना चाहता होगा।" ऐसा सोच, उसने एक दिन अपने शरीर-वर्णकी प्रशंशा करनेवाले विद्यार्थीसे पूछा—"मेरे साथ तू रमण करना चाहता है क्या ?" "आर्यें ! मैं रमण करनेकी इच्छा तो करूँ, लेकिन मुझे आचार्य्यका भय है।" तबतक बूढ़ीकी बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी थी, इससे उसने कहा—"यदि तू मुझे चाहता है, तो मेरे पुत्रको मार डाल।"—"मैंने आचार्य्यके पास इतनी सारी विद्या, शिल्प सीखा, मैं कैसे केवल कामासक्तिके कारण अपने हाथसे उनको मारूँगा।"— "अच्छा, तो यदि तू मेरा परित्याग न करे, तो मैं ही उसे मार दूँगी।" ऐसा कहती भई।

सो देखो ! स्त्रियाँ, ऐसी असाध्वी, पापी, निकृष्ट होती हैं। वैसी उमरमें भी चित्तमें रागोत्पत्तिके कारण, कामका अनुकरण करती हुई, ऐसे उपकारी पुत्रको मारनेको तैयार हो गई। विद्यार्थीने जाके गुरुको वह सब बात कह दी। क्योंकि, वह गुरुका भक्ति निष्ठ सच्चा ही शिष्य था। गुरुने कहा— विद्यार्थी ! तूने अच्छा किया, जो मुझे सब बात बता दिया, ठीक है, कहकर माताका भी आयु-संस्कार क्षीण देख, वह 'आज ही मर जायगी' जान, उस विद्यार्थी शिष्यको कहा— "विद्यार्थी ! आ, हम उसकी परीक्षा करें।" यह कह फिर उसने एक गूलरका वृक्ष छीलकर अपने जितना बड़ा काठका पुतला बनाया। उसे सिर सहित ढककर, अपने सोनेकी जगहपर लम्बा लिटा दिया, और रस्सी बाँधकर, अपने शिष्यको कहा— 'तात ! कुल्हाड़ा ले जाकर, मेरी माताको इशारा कर"— इधर विद्यार्थीने जाकर कहा—आर्यें ! आचार्य्य, पर्णशालामें अपनी शैय्यापर सोये हैं, मैंने रस्सीकी निशानी बाँध दी है। यदि सामर्थ्य हो, तो इस कुल्हाड़ाको ले जाकर मार।" बूढ़ीने कहा— "तू मुझे छोड़ेगा तो नहीं न ?" उसने कहा— "किसलिये छोड़ूँगा ?"—फिर उस बूढ़ीने कुल्हाड़ेको ले, काँपती हुई उठकर, रस्सीके साथ-साथ

जा, हाथसे छूकर, 'यह मेरा पुत्र है' करके, काठके पुतलेके मुँहपरसे कपड़े हटा, कुल्हाड़ेको ले, 'एक ही चोटके प्रहारसे मारूँगी' ऐसा सोच, गर्दनपर ही ताकके मारा। 'टन' करके शब्द हुआ। तब उसे पता लग गया कि — यह तो लकड़ी है। फिर उसी वक्त वहाँपर उसके पुत्र आचार्य्य-पण्डितने आके 'मा ! क्या करती है ?' पूछनेपर 'मैं ठगी गई' जान, भयभीत हो, वह वहीं गिरकर मर गई। अपनी पर्णशालामें पड़ी रहनेपर भी उस क्षण उसको मरना ही था। उसका मृत्यु होना जान, फिर उसके पुत्र पण्डितने उसे मृतक देखके पीछे दाह-संस्कार कर दिया। फिर पर्णशालामें बैठ विद्यार्थीको कहा—"तात ! असात मन्त्र कोई पृथक् मन्त्र नहीं है। स्त्रियाँ असाध्वी-असती होती हैं। तेरी माताने तुझे असात मन्त्र सीखकर आ, करके जो मेरे पास भेजा है, वह स्त्रियोंके दोष जाननेके लिये ही भेजा है। सो तूने अब प्रत्यक्ष ही, मेरी माताके दोष देख लिये हैं। इसलिये तू जान ले कि, स्त्रियाँ असाध्वी, पापिनी, विश्वास-घातकी होती हैं। इस प्रकार उपदेशकर, उसे बिदा किया, वह माणवक भी आचार्य्य-गुरुको प्रणामकर घरमें माता-पिताके पास गया। तब उसकी माताने पूछा—"असात-मन्त्र सीखा ?"— हाँ, माताजी !— "तो अब क्या करेगा ? साधु होगा, प्रव्रजित हो; अग्नि-परिचर्या करेगा, वा गृहस्थीमें रहेगा ?"—"माताजी ! मैंने प्रत्यक्षतः स्त्रियोंके दोष देख लिये, मुझे अब गृहस्थी बननेसे कुछ काम नहीं, मैं प्रव्रजित साधु ही हो जाऊँगा" कहके उसने अभिप्रायको प्रकाशित करते हुये, यह गाथा कहीः—

"लोकमें स्त्रियाँ असाध्वी होती हैं। उनका कोई समय नहीं होता। जैसे दीपककी शिखा या अग्निकी ज्वाला सबको जला देने या खा लेनेवाली होती है। वैसी ही वह—स्त्री रागानुरक्त तथा प्रगल्भ होती हैं। मैं उन्हें छोड़, अपनी शान्ति, विवेककी वृद्धि करता हुआ प्रव्रजित-साधु होऊँगा ॥"

"वे माया हैं, मरीचि हैं, शोक हैं, रोग हैं, उपद्रव हैं, कठोर हैं, बन्धन हैं, मृत्यु-पाश हैं, गुह्य-आसय हैं, जो मनुष्य उन स्त्रियोंका विश्वास करे, वह नरोंमें अधम नर है, मूर्ख है ॥"

ऐसा कहकर वह ब्रह्मचारी भी माता-पिताको प्रणामकर घर-गृहस्थीसे निकलकरके विरक्त, प्रव्रजित वा साधु हो गया, इत्यादि ॥

॥ * ॥ कथा ॥ २ ॥ * ॥

और जातक खण्ड २।५।१९३ चुल्लपदुम जातकमें वैसे ही एक कथा लिखी है:— उद्विग्नचित्त भिक्षुको समझाते हुए गौतमबुद्ध-ने कहा— "भिक्षु ! स्त्री अकृतज्ञ होती है, मित्रद्रोही होती है, कठोर हृदया होती है। पुराने पण्डित दाहिनी जाँघका लोहू पिलाकर भी, जीवन-दान देकर स्त्रीका चित्त न जीत सके। ऐसा बताके एक कथा कहाः—

एक समयमें बाराणसीके राजाके एक पुत्र पैदा हुआ, पदुमकुमार उसका नाम पड़ा। यह जेष्ठ था, उसके और भी छः भाई हुये। वे सातों जनें क्रमसे बड़े हो, विवाहकर राजाके मित्रोंकी तरह रहने लगे। एक दिन राजाने राजाङ्गणमें खड़े होकर उन्हें बड़े ठाट-बाटसे राजाकी सेवामें आते देख, सोचा—यह मुझे मारकर राज्य भी ले सकते हैं। ऐसी शङ्का होनेसे सशङ्कित हो उसने उन्हें बुलाकर कहा—तात ! तुम इस नगरमें नहीं रह सकते, दूसरी जगह जाओ। मेरे मरनेपर आकर कुल-प्राप्त राज्य ग्रहण करना।

वे पिताका कहना मान, रोते-पीटते घर गये। अपनी-अपनी स्त्रियोंको ले, जहाँ कहीं जाकर जीवन बितानेके लिये नगरसे निकले। रास्ते चलते हुये वे एक कान्तार = मरुभूमिमें जा पहुँचे। वहाँ खाना-पीना कुछ न मिला। भूख न सह सकनेके कारण उन्होंने सोचा, जीते रहेंगे, तो स्त्रियाँ और भी मिलेंगी। सबसे छोटे भाईकी स्त्रीको मारकर उसके तेरह टुकड़ेकर, उसका मांस खाया। पदुमकुमारने अपने स्त्री-पुरुषको मिले दो टुकड़ोंमें एकको, दोनोंने खाया, एक

रख छोड़ा। इस प्रकार छः दिनोंमें, छः स्त्रियोंका मांस खाया गया। पदुमकुमारने एक-एक करके छः दिनोंमें छः टुकड़े जो भये, सो रख छोड़े थे। सातवें दिन उसके स्त्रीको मारनेकी पारी आई, तो उसने वही छः टुकड़ा उन्हें देकर कहा— आज यह खाओ, कल देखेंगे।

जिस समय वे छहों भाई मांस खाकर सो रहे थे, पदुमकुमार अपनी स्त्रीको लेकर चुपकेसे भाग निकला। थोड़ी दूर चलनेपर स्त्रीने कहाः—स्वामी! चल नहीं सकती हूँ। तब उसे कन्धेमें उठाकर ले चला सूर्योदयके समय कान्तारसे निकले थे। सूर्योदय होनेपर फिर स्त्रीने कहा— स्वामी! प्यास लगी है। पतिने कहा— भद्रे! यहाँ पानी नहीं है। लेकिन वह घड़ी-घड़ीमें बार-बार पानी माँगती रही। तब पुरुषने कहा— यहाँ पानी तो नहीं है, तुझे ज्यादा प्यास लगी है, तो ले यह मेरी दाहिनी जाँघका लोहू पीले। ऐसा कहके, जाँघमें तलवारसे प्रहार कर दिया, रक्त निकला, तो उसने वही पीया।

फिर चलते-चलते वे क्रमसे महानदीपर आये। फिर वहाँ पानी पी, नहाकर फल, मूल खाते हुये आराम करनेकी एक जगहपर विश्राम किये। और वहीं फिर गङ्गाकी मोड़की जगहपर झोपड़ी बनाकर रहने लगे।

गङ्गाके ऊपरके हिस्सेमें किसी राज्यापराधी चोरको, हाथ-पाँव तथा नाक काटकर बोरेमें बिठा, गङ्गामें बहा दिया गया था। वह बहुत चिल्लाता हुआ उस जगह आ लगा। पदुमकुमारने उसके रोने-पीटनेकी करुणापूर्ण आवाज सुन, दुःखी देख, दया-स्वभावसे, मेरे रहते कोई दुःख-प्राप्त प्राणी नष्ट न हो, सोच उसकी रक्षाके लिये गङ्गा किनारे जा, उसे उठा, आश्रमपर ला, काषायसे धो, लेपकर उसके जखमोंकी चिकित्सा की। तब तो उसकी स्त्री बड़ी घृणासे उसपर थूकती हुई फिरती थी— कैसे इस प्रकारके लुञ्जेको गङ्गासे लाके सेवा करते हैं, कहके रूठती थी। परन्तु स्त्रीका मन बदलनेमें कोई देर नहीं लगती, उनका चरित्र जानना अशक्य है॥

फिर पश्चात् उसकी जखम ठीक होनेपर पदुमकुमार उसे और अपनी स्त्रीको झोपड़ीमें छोड़, जङ्गलसे फल, मूल लाकर उसका तथा भार्याका दोनोंका पालन करने लगे। उनके इस प्रकार रहते हुये समयान्तरमें वह स्त्री उस लुञ्जेसे आकृष्ट हो गई। उसने उसके साथ अनाचार, व्यभिचार, भोग किया, फिर उस दुष्टके बहकावेमें आकर वा अपने ही मनसे अपने पतिको किसी प्रकार मार देना चाहिये, ऐसा सोचने लगी। फिर छल-कपट करके पुरुषसे बोली—कष्टमें मैंने तुम्हारे कन्धेपर बैठे हुये जिस समय कान्तारसे निकल रही थी, इस पर्वतको देखकर एक मिन्नत मानी थी— देवताकी पूजा करूँगी। हे पर्वत-निवासी देवता! यदि मैं, और मेरा स्वामी सकुशल जीते निकल जायेंगे, तो मैं तुम्हारी बलि चढ़ाऊँगी। सो उसकी बलि देना है, इत्यादि कही।

पदुमकुमार उसकी माया नहीं जानते थे। उन्होंने अच्छा कह, उसकी बात स्वीकार किया; और बलिकर्म तैयारकर उससे बलि-पात्र उठवाकर पर्वतपर चढ़े।

उस स्त्रीने पतिसे कहा—"स्वामी! देवतासे भी बढ़कर तुम ही उत्तम देवता हो। इसलिये पहले तुम्हें ही वन-पुष्पोंसे पूज, प्रदक्षिणाकर, वन्दनाकर, पीछे देवताको बलि दूँगी।" उसने धर्म-पतिको प्रपातकी ओर कर, वन-पुष्पोंसे पूजा की। फिर प्रदक्षिणाकर, प्रणाम करनेवालीकी तरह हो, पीछे जा, पीठमें धक्का दे, प्रपातसे नीचे गिरा दिया। 'शत्रुकी पीठ देख ली' सोच, सन्तुष्ट हो, वह पर्वतसे उतर लुञ्जेके पास गई। देखिये! जो विवाहिता पति, सुन्दर राजकुमार था, सद्‌गुणी, दयालु था, जिसने आपत्‌कालमें युक्तिसे उस स्त्रीको बचाया, कन्धेमें उठाके लाया, जाँघका अपने रक्त भी पिलाया, हर प्रकारसे उसकी रक्षा किया। परन्तु वह विश्वासघातिनी चुड़ैल स्त्री, उसकी शत्रु भई। अधम, कुरूप, अङ्ग-भङ्ग, पापी, दुष्ट, लुञ्जेके साथ फँसके उसके आसक्तिसे उसकी बातोंमें

आकर पूजा करनेके बहानेसे, धोखा देके, पतिको मारनेके लिये पहाड़परसे गिरा आयी। फिर उधर क्या हुआ, उसका हाल सुनिये!

पदुमकुमार प्रपातके किनारेसे पर्वतसे गिरते हुए, एक गूलरके वृक्ष-पर पत्तों सहितके ढके कण्टकरहित गुम्बमें जा अटका, पर्वतसे नीचे उतर न सकनेके कारण वहीं गूलर खाकर शाखाओंके बीचमें बैठा रहा।

पश्चात् एक गोह जिसका शरीर बड़ा था, पर्वतके नीचेसे उस गूलरके पेड़पर चढ़, फल खाता था। कई दिन आते-जाते उससे मित्रता हो गई, फिर उसी गोहकी सहायतासे वह पहाड़से उतरके आया, और एक गाँवमें जाकर रहने लगा। वहाँ रहते हुये, उसे कुछ दिनमें पिताके मरनेका समाचार मिला, फिर वह बाराणसी राज्यमें जाकर कुलागत राज्यपर अधिकारकर वह राजा हो गया। पदुमराज नामसे राज्य करने लगा, सदावर्त भी खोल दिया, धर्मपूर्वक रहने लगा। छः दान शालायें बनवा, प्रतिदिन दान देने लगा।

इधर वह पापिनी स्त्री भी उस लुञ्जेको कन्धेपर बिठा, जङ्गलसे निकल, बस्तियोंमें भिक्षा माँगकर खाने और उस लुञ्जेको पोसने लगी। लोगोंके पूछनेपर उस लुञ्जेको, अपना खास पति बताती फिरती थी। जिससे लोग, उसे पतिव्रता समझते थे। लोगोंने उसे एक बेंतकी टोकरी भी बना दी, और कहा— काशीराज बड़ा दानी है, तू वहाँ जा, तुझे बहुत धन मिलेगा। वह पापिनी भी लुञ्जेको टोकरीमें बिठा, उसे सिरपर उठा, बाराणसी पहुँची, वहाँ दान-शालाओंमें खाती हुई घूमने लगी।

पदुमराज नित्य दानशालामें जा, वहाँ आठ या दशको अपने हाथसे दान देकर घर जाते थे।

एक दिन राजाने उस लुञ्जेको टोकरीमें बिठा रास्तामें टोकरी उठाये उसे खड़ी देखा, और राजाने पूछा— "यह क्या है?" लोगोंने कहा—'देव! एक पतिव्रता है।' फिर उसे पासमें बुलवाकर, पहिचानकर लुञ्जेको टोकरीसे निकलवाकर पूछा— "यह तेरा क्या

लगता है ?" स्त्रीने कहा— "देव ! यह मेरी बुआका पुत्र है, कुलवालोंने मुझे इसे सौंपा है। यह मेरा पति है।" और मनुष्य उनके बीचके भेदको कुछ भी जानते नहीं थे। वे उस व्यभिचारिणीकी प्रशंसा करने लगे— ओह ! पति देवता ! यह तो बड़ी पवित्रता है। राजाने फिर भी उससे पूछा— "तुझे कुलवालोंने इसे सौंपा है ? यही तेरा स्वामी है ?" उसने राजाको न पहिचानते हुये वीर बनकर कहा— "जी हाँ ! देव ! यही मेरा स्वामी है।" तब राजाने उससे पूछा—"क्या यह बाराणसी राजाका पुत्र है ? क्या तू पदुमकुमारकी भार्य्या, अमुक राजाकी, अमुक नामकी लड़की नहीं है ? मेरी जाघका लोहू पीकर इस लुञ्जेके प्रति आसक्त हो, मुझे प्रपातसे गिरा दिया। वह तू अब अपने सिरपर मृत्यु ले मुझे मरा समझ यहाँ आई है ? मैं जीता हूँ।" इतना कह— अमात्योंको बुला, राजाने कहा—अमात्यो ! क्या मैंने तुम लोगोंके पूछनेपर यह नहीं कहा था कि, मेरे छः छोटे भाइयोंने छः स्त्रियोंको मारकर मांस खाया। लेकिन मैंने अपनी स्त्रीको सकुशल गङ्गा किनारे लाकर, एक आश्रममें रहते हुये, एक दण्ड-प्राप्त लुञ्जेको पानीसे निकाल, सेवा की। उस स्त्रीने उस आदमीके प्रति आसक्त हो, मुझे पर्वतपरसे गिरा दिया। मैं अपने मैत्री चित्तके कारण नहीं मरा। जिसने मुझे पर्वतसे गिराया था, वह कोई और नहीं थी, यही दुराचारिणी थी। जो दण्ड-प्राप्त लुञ्जा था, वह भी कोई दूसरा न था, यही था। यह कहकर गाथायें कहीं— [यही वह है। मैं भी वही हूँ। यह हाथ कटा भी वही है, दूसरा नहीं है। जिसे 'यह मेरा कौमार पति' कहती है। स्त्रियाँ बध्य करने योग्य हैं। उनमें सत्य नहीं होता है। इस नीच, लोभी, मृतसदृश, पराई स्त्रीका सेवन करनेवालेको मूसलसे मार डालो। और इस पापी पतिव्रताके जीते-जी इसके कान, नाक काट डालो ॥] राजाने क्रोधको न सम्हाल सकनेके कारण ऐसा तो कहा। लेकिन वैसा करवाया नहीं।

तब फिर पदुमराजाने क्रोधको कम करके अपने अमात्योंको बुला, सबके सामनेमें पहलेका सब भेद खोलकर बतलाया। उसके छल, कपट, पापकर्म, किस प्रकार उसने धोखा देकर पहाड़परसे उसे ढकेल दिया था, सो सब कहा। फिर उस पापिनीको सिरमें टोकरो ऐसे कसाकर बँधवाया कि, वह उतार न सके। फिर उस लुञ्जेको उसीमें डालके तुरन्त उसे अपने राज्यसे बाहर निकलवाके सीमा पार कराने लगा दिया।

राजा बुद्धिमान् और दयालु था, इसलिये कठोर दण्ड न दे, वैसा दोषी, दुष्ट लोग होनेपर भी खाली देशनिकाला करा दिया। फिर धर्मपूर्वक राज्य करके जीवन बिताया। स्त्रियाँ ऐसी दुष्ट होती हैं ॥

॥ * ॥ कथा ॥ ३ ॥ * ॥

और अण्डभूत जातक (१ । ७ । ६२) में निम्न कथा लिखी हैः—

एक भिक्षु किसी स्त्रीमें आसक्त हो गया था, उसे बुलाकर गौतमबुद्धने 'भिक्षु ! क्या तू सचमुच आसक्त है ?' पूछा। 'सचमुच' कहनेपर 'भिक्षु ! स्त्रियाँ (सँभालकर) रक्खी नहीं जा सकतीं। पूर्व समयमें पण्डित लोग (= बुद्धिमान्) स्त्रियोंको (उनके) गर्भसे ही सँभालकर रखनेकी कोशिश करते हुये भी न रख सके' कह, एक कथा कहीः—

पूर्व समयमें बाराणसीमें राजा ब्रह्मदत्तके राज्य करनेके समय, बोधिसत्त्व, उसकी अग्र पटरानीकी कोखसे जन्म ग्रहणकर, वयस्क होनेपर, सभी शिल्पोंमें सम्पूर्णता प्राप्तकर, पिताके मरनेपर, राज्य-पर प्रतिष्ठित हो, धर्मपूर्वक राज्य करने लगा। वह पुरोहितके साथ जूआ खेला करता था, और खेलते समय इस द्यूत-गीत (जुयेके गीत) को कहकर चाँदीके तखतेपर सोनेके पासे फेंकता था—

श्लोकः— "सब्बा नदी वङ्कगता, सब्बे कट्ठमया वना ॥
सब्बित्थियो करे पापं, लभमाना निवातके ॥"

[— सभी नदियाँ टेढ़ी हैं, सभी बनोंमें लकड़ी है। मौका मिलनेपर सभी स्त्रियाँ पाप-कर्म करती हैं।]

इस प्रकार खेलते हुये राजा सदैव जीतता, पुरोहितकी हार होती। क्रमसे घरकी सम्पत्ति नाश होती देख, पुरोहित सोचने लगा— इस प्रकार तो इस घरका सब धन नष्ट हो जायगा, "मैं एक ऐसी स्त्रीको ढूँढ़कर घरमें रक्खूँ, जो दूसरे पुरुषके पास न जाये।" फिर उसे यह ख्याल आया,—"मैं किसी ऐसी स्त्रीको, जिसने पहले किसी दूसरे पुरुषको देखा हो, (सँभालकर) न रख सकूँगा। इसलिये मैं एक स्त्रीको उसके गर्भसे आरम्भ करके, रखकर, उसकी आयु होनेपर, उसे अपने वशमें कर, और उसे एक ही पुरुषवाली रख, उसके चौगिर्द कड़ा पहरा लगा, राजाके कुलसे धन ले आऊँगा।" वह अङ्क विद्यामें हुशियार था। सो उसने एक दरिद्र गर्भिणी स्त्रीको देख, 'लड़की उत्पन्न करेगी' जान, उसे बुला, खर्च दे, घरमें रक्खा। फिर उसके प्रसूत होनेपर उसे धन दे, प्रेरितकर, वह लड़की किन्हीं दूसरे आदमियोंको न देखने देकर, स्त्रियोंके ही हाथमें दे, उसका पालन-पोषण करा, बड़ी होनेपर, उसे अपने वशमें कर लिया। जबतक वह (लड़की) बढ़ती रही, तबतक वह राजाके साथ जूआ नहीं खेला, लेकिन लड़कीको अपने वशमें कर लेनेपर, पुरोहितने राजासे कहा— महाराज! जूआ खेलें। राजाने 'अच्छा' कह, पूर्व प्रकारसे हो खेला। पुरोहितने राजाके गाकर पासा फेंकनेके समय कहा—"मेरिमाणविका स्त्रीके अतिरिक्त" उस समयसे पुरोहित जीतता, राजाकी हार होती।

बोधिसत्त्व राजाने सोचा, 'इसके घरमें एक पुरुषवाली एक स्त्री होनी चाहिये।'

पता लगानेपर 'ऐसी स्त्री है' जान, इसके सदाचारको तुड़वाऊँगा, सोच, एक धूर्तको बुलाकर पूछा— "पुरोहितकी स्त्रीका शील तोड़ सकता है?"।

"देव ! तोड़ सकता हूँ ।" सो राजाने उसे धन दे 'जल्दी' कर कह, भेजा ।

उसने राजासे धनले, गन्ध, धूप, चूर्ण, कपूर आदि खरीद, उस पुरोहितके घरके समीप सब सुगन्धियोंकी दूकान लगाई। पुरोहितका घर सात तलोंका तथा सात ड्योढ़ियोंवाला था। सभी ड्योढियोंपर स्त्रियोंका ही पहरा था। उस ब्राह्मणको छोड़कर और कोई आदमी घरमें नहीं घुस सकता था। कूड़ा फेंकनेकी टोकरी भी, देखकर ही अन्दर आने-जाने दी जाती थी। उस माणविका स्त्रीको, केवल वह पुरोहित ही देख सकता था। हाँ! उसकी एक स्त्री परिचारिका थी। वह परिचारिका गन्ध, पुष्प, खरीदकर ले जाती हुई, उस धूर्तकी दूकानके समीपसे ही जाती। उस धूर्तने 'यह उसकी परिचारिका है' ऐसा अच्छी तरह जान, एकदिन उसे आती देख, दूकानसे उठ, जाकर, उसके पैरोंमें गिर, दोनों हाथोंसे पैरोंको जोरसे पकड़, 'माँ! इतने समयतक तू कहाँ रही, कह, रोना आरम्भ किया।

शेष लगे हुए धूर्तोंने भी एक ओर खड़े होकर कहा—"हाथ, पैर, मुँहकी बनावट और रङ्ग-ढङ्गसे माता-पुत्र एक ही जैसे हैं।" उनको कहते सुन, उस स्त्रीने अपनेमें अविश्वास कर, 'यह मेरा पुत्र ही होगा' सोच स्वयं भी रोना शुरू कर दिया। वे दोनों काँदकर, रोकर, एक-दूसरेको गले लगाकर खड़े हुए। तब उस धूर्तने पूछा—"माँ तू कहाँ रहती है ?"

"तात ! मैं किन्नर-लीलासे रहनेवाली, श्रेष्ठ-सुन्दरी, पुरोहितकी तरुण स्त्रीकी सेवा, सुश्रूषा करती हुई रहती हूँ।" "माँ अब कहाँ जा रही है ?"

"उसके लिये फूल-माला आदि लेने।"

"माँ! तुझे और जगह जानेकी क्या जरूरत है ? अबसे तू मेरे ही पाससे ले जाया कर" कह, बिना मूल्य लिये ही बहुतसे पान-

पत्र आदि तथा नाना प्रकारके फूल दिये ।

माणविका-स्त्रीने उसे बहुतसे गन्ध, पुष्प आदि लाते देख, पूछा—"अम्म ! क्या आज हमारा ब्राह्मण प्रसन्न है ?" "ऐसा क्यों कहती है ?" "इनकी अधिकता देखकर ।"

"ब्राह्मणने अधिक मूल्य नहीं दिया, मैं इन्हें अपने पुत्रके पाससे लाई हूँ ।"

उस समयसे ब्राह्मणका दिया हुआ मूल्य अपने पास रखकर, उसी पुत्रके पाससे गन्ध-फूल आदि ले जाती थी। कुछ दिन व्यतीत होनेपर, धूर्त बीमारीका बहाना बना पड़ रहा । उसने उसकी दूकानके दरवाजेपर जा, उसे न देख, पूछा—"मेरा पुत्र कहाँ है ?"

"तेरे पुत्रको बीमारी हो गई है ।" उसने, जहाँ वह लेटा हुआ था, वहाँ जाकर उसकी पीठ मलते हुए पूछा—"तात ! तुझे क्या बीमारी है ?" वह चुप रहा । "बेटा कहता क्यों नहीं ?"

"माँ ! प्राण निकलनेको आयें, तो भी तुझे नहीं कह सकता ।" "तात ! यदि मुझसे नहीं कहेगा, तो किससे कहेगा ?" "माँ ! मुझे और कोई रोग नहीं है। तुझसे उस माणविका-स्त्रीके सौन्दर्यकी प्रशंसा सुन, मैं आसक्त हो गया हूँ । वह मिलेगी, तो जीता रहूँगा, नहीं मिलेगी, तो यहीं मर जाऊँगा ।" "तात ! यह भार मुझपर रहा । तू इसके लिये चिन्ता मतकर" कह, उसे आश्वासन दे बहुतसे गन्ध फूल आदि ले, माणविकाके पास जाकर, उसे कहा—

"अम्म ! मुझसे तेरी प्रशंसा सुन, मेरा पुत्र तुझपर आसक्त हो गया है । इस विषयमें क्या करूँ ?"

"यदि उसे ला सके, तो मेरी ओरसे छुट्टी ही है ।"

उसकी बात सुन, वह उस दिनसे, उस घरके कोने-कोनेसे बहुत-सा कूड़ा इकट्ठा करके, फूल लानेकी बड़ी टोकरीमें डालकर ले जाती; और पहरेदार स्त्रीके उस टोकरीको देखने लगनेपर, वह कूड़ा उसके ऊपर फेंक देती । वह घबराकर दूर हट जाती । यदि कोई दूसरी

पहरेदार स्त्री कुछ कहती तो उसके ऊपर भी, वह उसी प्रकार कूड़ा उलट देती। तबसे चाहे वह कुछ लाती, वा ले जाती, कोई उसकी तलाशी = परीक्षा करनेकी हिम्मत न करती। सो उस समय, वह उस धूर्तको फूलोंकी टोकरीमें लिटा, माणविकके पास लिवा ले गई। धूर्त माणविकाके सतीत्वका नाश कर, एक-दो दिन प्रासादमें ही रहा। पुरोहितके बाहर जानेपर, दोनों रमण करते; उसके आनेपर धूर्त छिपा रहता। एक-दो दिनके बीतनेपर उसने कहा—"स्वामी! अब तुझे जाना चाहिये।"

"मैं ब्राह्मणको, एक थप्पड़ मारकर जाना चाहता हूँ।"

अच्छा! ऐसा हो; कह, उसने धूर्तको छिपाकर, ब्राह्मणके आने-पर कहा— "आर्य! मैं चाहती हूँ कि, तुम बीणा बजाओ, और मैं नाचूँ।"

"भद्रे! अच्छा, नाचो" कह वह बीणा बजाने लगा। "तुम्हारे देखते, नाचते लज्जा आती है, तुम्हारा मुँह वस्त्रसे बाँध, ढककर नाचूँगी।" "यदि लज्जा लगती है, तो वैसा कर ले।"

माणविकाने घना वस्त्र ले, उसकी आँखें ढँकते हुए, मुँहपर कपड़ा बाँध दिया। ब्राह्मण मुँह बँधवाकर, बीणा बजाने लगा। उसने थोड़ी देर नाचकर कहा— "आर्य! जी चाहता है कि, तुम्हारे सिरपर एक थप्पड़ मारूँ।" स्त्रीके लोभमें फँसे हुए ब्राह्मणने, किसी भीतरी बातको न जानकर, कहा—"मार"। माणविकाने, धूर्तको इशारा किया।

उसने हलकेसे आ, ब्राह्मणकी पीठके पीछे खड़े हो, उसके सिरपर कोहनीसे प्रहार किया। ब्राह्मणकी आँखें गिरनेवाली-सी हो गईं। शिरमें फोड़ा पड़ गया। उसने दर्दसे पीड़ित होकर कहा—"अपना हाथ ला!" ब्राह्मण तरुणीने अपना हाथ उठाकर, उसके हाथमें रख दिया। ब्राह्मण बोला—'हाथ तो कोमल है; लेकिन प्रहार कड़ा है।' ब्राह्मणको चोट मारकर, धूर्त छिप रहा। धूर्तके छिप रहनेपर, ब्राह्मण

तरुणीने ब्राह्मणके मुँहपरसे कपड़ा खोल, तेल लेकर शिरमें चोटकी जगहपर मला। ब्राह्मणके बाहर जानेपर, उस स्त्रीने फिर, उस धूर्तको टोकरीमें लिटाया, और बाहर ले गई। उसने राजाके पास जा, सब हाल कह सुनाया।

राजाने अपनी सेवामें आये हुए उस ब्राह्मणसे कहा—"आओ ब्राह्मण! जूआ खेलें।"

"महाराज! अच्छा कहा।" राजाने द्यूत-मण्डल तैयार करवा पहले हीकी तरहसे जुएका गीत गाकर, पाँसा फेंका। ब्राह्मणने माणविकाके तपके खण्डन होनेकी बात न जानते हुए, कहा—"मेरी माणविकाके अतिरिक्त।" ऐसा कहनेपर भी, वह हार ही गया। राजाने जानकर कहा— ब्राह्मण! "अतिरिक्त" क्या कह रहे हो? तुम्हारी माणविकाका सतीत्त्व भ्रष्ट हो गया है। तुम समझते थे कि, शुरू गर्भसे सँभालकर, रखनेसे, सात जगहोंपर पहरा लगाकर रखनेसे, तुम स्त्रीको सँभालकर रख सकोगे? स्त्रीको गोदमें लेकर साथ लिये फिरनेसे भी, उसे सँभालकर रक्खा नहीं जा सकता। ऐसी कोई स्त्री नहीं है, जो एक ही पुरुषवाली हो। तेरी माणविकाने 'मैं नाचना चाहती हूँ' कह बीणा वजाते रहनेपर तेरा मुँह कपड़ेसे बाँध, अपने जारको तेरे शिरमें कोहनोसे प्रहार देनेके लिये प्रेरित किया। अब क्या "अतिरिक्त" कहते हो? यह कह, यह गाथा कही—

श्लोकः— "यं ब्राह्मणो अवादेसी, वीणं सम्मुख वेठितो ॥
अण्डभूता भता भरिया, तासुको जातु विस्ससे ॥"

[जिसके कारण ब्राह्मणने मुँहपर पट्टी बाँधकर, बीणा बजाई, वह गर्भसे आरम्भ करके पाली गई भार्य्या थी। ऐसी स्त्रियोंका कौन विश्वास करे।]

इस प्रकार राजाने ब्राह्मणको धर्मोपदेश किया। ब्राह्मणने राजाका धर्मोपदेश सुन, घर जाकर, उस माणविकासे पूछा—"तूने इस प्रकारका पाप-कर्म किया?"

"आर्य्य ! ऐसा किसने कहा ? नहीं किया, प्रहार मैंने ही दिया, किसी और ने नहीं। यदि विश्वास न हो, तो 'मैं तुम्हें छोड़, किसी दूसरे पुरुषके हस्त-स्पर्शको नहीं जानती'—ऐसी सत्य-क्रिया कर अग्निमें प्रविष्ट हो, तुम्हें विश्वास कराऊँगी। ब्राह्मणने 'ऐसा हो' कह, लकड़ीका बड़ा ढ़ेर लगवा, उसमें आग दे, उसे बुलवा कर कहा—"यदि अपनेपर विश्वास है, तो अग्निमें प्रविष्ट हो।"

माणविकाने अपनी परिचारिकाको पहलेसे ही सिखा, पढ़ा रक्खा था—अम्म ! तू अपने पुत्रसे कह कि, वह मेरे अग्नि-प्रवेश करनेके समय, वहाँ जाकर मेरा हाथ पकड़ले। उसने जाकर वैसा कहा। धूर्त आकर परिषद्के बीचमें खड़ा हो गया। ब्राह्मणको ठगनेकी इच्छा-से माणविकाने जन-समूहके बीचमें खड़े होकर कहा—"ब्राह्मण ! मैं तुझे छोड़ किसी अन्य पुरुषके हस्त-स्पर्शको नहीं जानती हूँ। मेरे इस सत्यके बलसे, यह अग्नि मुझे न जलाये।" यह कह, वह आगमें घुसनेको तैयार हुई।

उसी क्षण उस धूर्तने, "देखो ! इस पुरोहित-ब्राह्मणके कामको; इस प्रकारकी माणविकाको आगमें जलाना = प्रवेश कराना चाहता है" कहते हुए, उस माणविकाको हाथसे पकड़ लिया। उसने हाथ छुड़ा पुरोहितसे कहा— "आर्य्य ! मेरी सत्य-क्रिया टूट गई। अब मैं आगमें प्रवेश नहीं कर सकती। कैसे ? आज मैंने यह सत्य-क्रियाकी कि, अपने स्वामीको छोड़कर, मैं किसीके हस्त-स्पर्शको नहीं जानती, और अब मुझे इस आदमीने हाथसे पकड़ लिया।" ब्राह्मण जान गया कि, इसने मुझे धोका दिया है। सो उसने उसे पीटकर, निकलवा दिया।

यह स्त्रियाँ ऐसी असद्धर्मिणी, अधम, पापिनी होती हैं ! कितना बड़ा भी पाप-कर्म हो, उसे करके, अपने स्वामीको ठगनेके लिये, 'नहीं, मैं ऐसा नहीं करती हूँ' करके प्रतिदिन शपथ खाती हैं। इस प्रकार यह अनेक चित्तोंवाली होती हैं। इसलिये कहा गया है:—

श्लोकः—"चोरीनं बहुबुद्धीनं यासु सच्चं सुदुल्लभं ॥
थीनं भावो दुराजानो मच्छस्सेवोदके गतं ॥
मुसा तासं यथा सच्चं सच्चं तासं यथा मुसा ॥
गावो बहुतिणस्सेव ओमसन्ति वरं वरं ॥
चोरियो कठिना हेता वाला चपलसक्खरा ॥
न ता किञ्चि न जानन्ति यं मनुस्सेसु वञ्चनं ॥"

[ऐसी स्त्रियाँ, जो चोर हैं, अतिबुद्धि हैं, जिनमें सत्यका मिलना दुर्लभ है,—उनका भाव, जलमें गई मछलीके पद-चिह्नकी तरह दुर्ज्ञेय है ॥ उनको झूठ वैसा ही है, जैसा सत्य और उनको सत्य वैसा ही है, जैसा झूठ । वह बहुत तृणके होनेपर, गौवोंके अच्छा-ही-अच्छा खानेकी तरह, नये-नये आदमीके साथ रमती हैं ॥ यह चोर, कठोर, हिंस्र-प्राणी सदृश, चपलतामें कङ्कर सदृश स्त्रियाँ मनुष्योंके ठगनेकी सब विधियोंको जानती हैं ।]

इस प्रकारसे अक्सर स्त्रियाँ विश्वासघातिनी होती हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥

॥ * ॥ कथा ॥ ४ ॥ * ॥

और तक्क जातक (१ । ७ । ६३) में वैसी ही एक कथा लिखी है, सो भी सुनिये !

बुद्धने उसे, 'भिक्षु ! क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है ?' पूछा । उसके 'हाँ ! सचमुच' कहनेपर स्त्रियाँ अकृतज्ञ होती हैं, मित्रोंमें फूट डालनेवाली होती हैं, तू किस लिये उनके प्रति चञ्चल हुआ है ? कह, एक कथा कही—

पूर्व समयमें बाराणसीमें राजा ब्रह्मदत्तके राज्य करनेके समय, बोधिसत्त्व ऋषि-प्रव्रज्याके अनुसार प्रव्रजित हो, गङ्गाके किनारे आश्रम बना, ध्यानमें रत हो, सुखपूर्वक रहते थे । उस समय बाराणसीके श्रेष्ठीकी एक दुष्ट-कुमारी नामक चण्ड स्वभावकी, कठोर स्वभावकी लड़की थी । वह दासोंको, नौकरोंको गाली देती थी, मारती

थी, एक दिन, उसे लेकर वे गङ्गापर खेलनेके लिये गये। उनके खेलते-ही-खेलते सूर्यास्तका समय हो गया। बादल आ गये। आदमी बादलोंको देखकर, इधर-उधर भाग गये। श्रेष्ठीकी लड़कीके दासों, नौकरोंने सोचा— "आज हमें इससे छुट्टी पानी चाहिये (=इसकी पीठ देखनी चाहिये)।" यह सोच वह, उसे जलके भीतर ही छोड़ स्थलपर चले आये। वर्षा बरसी। सूर्य भी अस्त हो गया। अँधेरा छा गया। उन्होंने उस लड़कीके बिना ही घर लौटकर, "वह कहाँ है ?" पूछनेपर कहा— "गङ्गासे तो पार हो गई थी, फिर हम नहीं जानते कि, कहाँ चली गई।" रिस्तेदारोंको ढूँढ़नेपर भी पता नहीं लगा।

वह चीखती, चिल्लाती, पानीमें बहती, बोधिसत्त्वकी पर्णशालाके समीप जा पहुँची। उसने उसका शब्द सुन, सोचा— "यह स्त्रीका शब्द है, मैं इसे बचाऊँगा।" और उसने तिनकोंकी मशाल ले, नदीके किनारे जा, उसे देख 'डर मत, डर मत' कहा। तब आश्वासन दे अपने हाथी सदृश बलसे, नदीको तैरते हुए जाकर, उसे उठा लाया; और आग बनाकर दी। शीत दूर हो जानेपर मधुर फल, फूल लाकर दिये। उनके खा चुकनेपर पूछा—"कहाँकी रहनेवाली है ? कैसे गङ्गामें गिर पड़ी ?" उसने वह हाल कह दिया। उसे 'तू यहीं रह' कह, दो-तीन दिन पर्णशालामें रखा ? और स्वयं खुलेमें रहा। दो-तीन दिनके बाद कहा—"अब जा।" वह 'इस तपस्वीका ब्रह्मचर्य' तोड़, इसे साथ लेकर जाऊँगी, ऐसा सोचकरके नहीं गई। समय बीतते-बीतते स्त्री-माया और स्त्री-लीला दिखा, उसने उस तपस्वीका ब्रह्मचर्य नष्टकर, उसके 'ध्यानका' लोपकर दिया। वह उसे लेकर जङ्गलमें ही रहने लगा। तब उसने उससे कहा— "आर्य ! हमें जङ्गलमें रहनेसे क्या लाभ ? अब आबादीकी जगहपर चलें।" वह उसे लेकर एक सीमान्तके ग्राममें गया, और वहाँ मट्ठा बेंचकर जीविका कमा, उसे पालने लगा। तक्र बेचकर जीविका करनेसे, उसका नाम तक्र-पण्डित पड़

गया। ग्राम-वासियोंने उसे खर्चा दे 'हमें उचित-अनुचित बताते हुए यहाँ रहें' कह ग्रामद्वारपर एक कुटिया बनवा, उसमें बसाया।

उस समय, चोर, पर्वतसे उतरकर, आस-पास, लूट-मार किया करते थे। एक दिन उन्होंने उस गाँवको लूटा, और ग्राम-वासियोंसे ही उनका सामान उठवाकर, जाते समय, उस श्रेष्ठीकी लड़कीको भी अपने निवास-स्थानको ले गये। वहाँ जाके बाकी सब जनोंको तो छोड़ दिया; लेकिन चोरोंके सरदारने उसके रूपपर मुग्ध हो, उसे अपनी भार्य्या बना लिया।

बोधिसत्त्वने पूछाः—"अमुक नामक कहाँ रही?"

"चोरोंके सरदारने पकड़कर उसे अपनी भार्या बना ली।" यह सुनकर भी बोधिसत्त्व 'वह मेरे बिना वहाँ नहीं रहेगी, भागकर आ जायगी' सोच उसकी प्रतीक्षा करता रहा। श्रेष्ठीकी लड़कीने भी सोचा—"मैं यहाँ सुखसे रह रही हूँ। कहीं वह तक्र-पण्डित किसी कामसे यहाँ आकर, मुझे यहाँसे ले न जाये, और मैं इस सुखसे वञ्चित हो जाऊँ। सो मैं उसे चाहती हूँ करके उसे बुलवाकर मरवा दूँ।" यह सोच उसने एक आदमीको बुलाकर सन्देशा भेजा, —"मैं यहाँ दुःखी हूँ। तक्र-पण्डित आकर मुझे ले जायें।"

उसने उस सन्देशको सुन, उसपर विश्वासकर लिया, और जाकर ग्रामके द्वारपर पहुँच, खबर भेजी। उसने बाहर आ, उसे देख, कहा—"आर्य्य! यदि हम इस समय भागेंगे, तो चोरोंका सरदार हमारा पीछाकर, हम दोनोंको मार देगा। इसलिये रातको भागेंगे।" यह कह उसे लिवा, खिलाकर कमरेमें बिठाया। शामको चोरोंके सरदारके आकर, शराब पीकर मस्त होनेपर पूछा—"स्वामी! यदि इस समय अपने प्रतिद्वन्दीको देख पाओ, तो क्या करोगे?"

"यह करूँगा, वह करूँगा" कहनेपर, बोली—"तो क्या वह दूर है? क्या वह कमरेमें नहीं बैठा है?" चोरोंके सरदारने मशाल ले,

वहाँ जाकर उसे देख, पकड़, घरके बीचमें गिराकर, कुहनी आदिसे यथेच्छ पीटा। वह पीटते समय, और कुछ न कहकर, केवल इतना ही कहताः—

श्लोकः—"कोधना, अकतञ्ञू च पिसुणा मित्तदूभिका ॥"

—क्रोधी, अकृतज्ञ, चुगलखोर, मित्रोंमें फूट डालनेवाली ॥ चोरने उसे पीटा, बाँधकर डाल दिया, और अपने खाकर सो रहा। उठनेपर, शराबकी नशा उतरनेपर, फिर उसे पीटना शुरूकर दिया। वह भी केवल वह चार शब्द ही कहता रहा। चोरने सोचा—"यह इस प्रकार पीटे जानेपर भी, और कुछ न कहकर, केवल वह चार शब्द ही कहता है। मैं इससे पूछूँ।" उसने उस लड़कीको सोया जान, उससे पूछा—"भो! तू इस प्रकार पीटे जानेपर भी किसलिये केवल यह चार शब्द ही कहता है?"

तक्क-पण्डितने 'तो सुन' कह, वह सब बातें शुरूसे कहा! "मैं पहले वनमें रहनेवाला एक ध्यानी, तपस्वी था। सो मैंने इसे गङ्गामें बही जाती हुईको निकालकर, पाला। इसने मुझे प्रलोभन दे, ध्यानसे च्युत किया। मैं जङ्गल छोड़, इसका पालन-पोषण करता हुआ सीमान्तके ग्राममें रहने लगा। सो इसने चोरोंद्वारा यहाँ लानेपर 'मैं दुःखसे रह रही हूँ, मुझे आकर ले जाओ' मेरे पास सन्देश भेज, मुझे यहाँ बुला, अब तुम्हारे हाथमें फँसा दिया। इस कारणसे मैं ऐसा कहता हूँ।"

चोर सोचने लगा—"जिसने इस प्रकारके गुणवान्, उपकारी आदमीके साथ इस प्रकारका बर्ताव किया, वह मेरे साथ क्या उपद्रव न करेगी? इसे हटाना चाहिये।" उसने तक्क-पण्डितको आश्वासन दे, उसे जगा, तलवार ले 'चल, इस पुरुषको ग्राम-द्वारपर मारूँगा' कह, उसके साथ ग्रामसे बाहर जा, 'इसे हाथसे पकड़' कह उस पुरुषको, उसके हाथमें पकड़ाते हुए, तलवार लेकर तक्क-पण्डितको मारते हुएकी तरह, उसी स्त्रीके दो टुकड़े कर दिये।

फिर शिरसे नहाकर, घर लौट आया, और कुछ दिनतक तक्र पण्डितको प्रणीत भोजनसे संतर्पितकर पूछा—"अब कहाँ जायगा ?"

तक्र-पण्डितने कहा—"मुझे अब गृहस्थसे मतलब नहीं। ऋषि-प्रव्रज्याके अनुसार प्रव्रजित हो, उसी जङ्गलमें रहूँगा।"

"तो मैं भी प्रव्रजित होऊँगा।" कह, दोनों जनें प्रव्रजित होकर उस अरण्यमें जाकर रहने लगे। फिर तपस्या करते हुए ही जीवन बिताये। बुद्धने यह गाथा कही—

श्लोकः— "कोधना अकतञ्ञू च पिसुणा च विभेदिका ॥
ब्रह्मचरियं चर भिक्खू ! सो सुखं न विहाहिसी ॥"

[भिक्षु ! जिसपर तू आसक्त है, वह स्त्री क्रोधी है, अकृतज्ञ है, चुगलखोर है, मित्रोंमें फूट डालनेवाली है। "भिक्षु ! तू ब्रह्मचर्य पालन कर। इससे तेरे ध्यान सुखका नाश न होगा।"] ऐसा समझानेपर उस भिक्षुका मन शान्त हो गया ॥

अतएव स्त्रियोंको दुर्गुणोंकी खानी जानकर, उनके सङ्ग करनेकी इच्छा बिलकुल नहीं करना चाहिये। सदा स्त्रियोंसे दूर रहकर वैराग्यमय जीवन बिताना चाहिये ॥

॥ * ॥ कथा ॥ ५ ॥ * ॥

और मुदुपाणी जातक (३ । २ । २६२) में ऐसे ही एक कथा आयी है, सो भी सुनिये !—

बुद्धने एक विच्छिन्नचित्त भिक्षुको सभामें लाये जानेपर पूछा—"सचमुच भिक्षु ! तू उद्विग्नचित्त है ?" उसके "सचमुच" कहनेपर बुद्धने कहा—

"भिक्षु ! स्त्रियाँ कामुकताकी ओर जानेसे रोकी नहीं जा सकतीं। पुराने पण्डित भी अपनी लड़कीकी रक्षा नहीं कर सके। पिताके हाथ पकड़े रहनेपर भी लड़की, पिताको बिना खबर होने दिये, कामुकताके वशीभूत हो, पुरुषके साथ भाग गई।" यह कह एक कथा कहीः—

पूर्व समयमें बाराणसीमें ब्रह्मदत्तके राज्य करते समय, बोधिसत्त्व उसकी पटरानीकी कोखमें पैदा हुआ। आयुप्राप्त होनेपर तक्षशिलामें शिल्प सीखा। पिताके मरनेपर धर्मानुसार राज्य करने लगा। वह लड़की और भाञ्जे दोनोंका घरमें पालन-पोषण करता था। एकदिन अमात्योंके साथ बैठे हुए कहा—"मेरे मरनेके बाद मेरा भाञ्जा राजा होगा। मेरी लड़की उसकी पटरानी होगी।"

आगे, उनके आयु प्राप्त होनेपर, फिर अमात्योंके साथ बैठे रहनेपर उसने कहा—

"हम भाञ्जेके लिये दूसरी लड़की लायेंगे। अपनी लड़की भी दूसरे राजकुलमें देंगे। इस प्रकार हमारे बहुत रिश्तेदार हो जायेंगे।" अमात्योंने स्वीकार किया।

राजाने भाञ्जेको बाहर घर दिया। अन्तःपुरमें प्रवेश बन्द कर दिया। वे एक-दूसरेपर आसक्त थे। कुमारने सोचा—"किस उपायसे राजकुमारीको बाहर निकाला जाय? उपाय तो है।" उसने दाईको रिश्वत दी। दाईने पूछा—"आर्य्य-पुत्र क्या करना है?"

"अम्म! राजकुमारीको बाहर निकालनेका मौका कैसे मिले?" उसने कहा—

"राजकुमारीसे बात करके जानूँगी।" "अम्म! अच्छा।"

वह गई। "अम्म! तेरे शिरमें जूँ है, निकालूँगी" कह, उसे नीचे आसनपर बिठा, स्वयं ऊँचे बैठ, उसके शिरको अपनी जाँघोंपर रखकर जूँ निकालते समय, राजकुमारीके शिरमें नख धँसाया। राजकुमारीने—"यह अपने तरफसे नखसे नहीं बींधती है, किन्तु पिताके भाञ्जे-कुमारके तरफसे नखसे बींधती है" ऐसा अनुमानसे जानकर पूछा—

"अम्म! तू राजकुमारके पास गई थी?" "अम्म! हाँ?" "उसने क्या सन्देश कहा?"

"अम्म ! तुम्हें निकाल ले जानेका उपाय पूछता है।"
राजकुमारीने—

"अगर कुमार पण्डित होगा, तो जान जायगा" कह, पहली गाथा कही, और कहाः—

"अम्म ! इसे ले जाकर कुमारको कहना ।"

श्लोकः— "पाणी चे मुदुकोचस्स, नागोचस्स सुकारितो ॥
-अन्धकारो च वस्सेय्य, अथनून तदासिया ॥"

[उसके पास कोमल हाथ हो, सिखाया हुआ हाथी हो, अन्धकार हो, और वर्षा बर्षे; तब निश्चयसे उसका उद्देश्य पूरा होवे ।]

वह उसे सीख कुमारके पास गई। कुमारने पूछा—"अम्म ! राजकुमारीने क्या कहा ?"

"आर्य्य-पुत्र ! और कुछ न कह यह गाथा भेजी है।" उसने वह गाथा कही। कुमारने उसका अर्थ जानकर उसे भेज दिया— "अम्म ! जा।"

कुमार इस बातको भली प्रकार जान, एक रूपवान् कोमल हाथ-वाले छोटे सेवकको सजाकर, मङ्गल हाथीके पीलवानको घूँस दे, हाथीको सिखा, उपयुक्त समयकी प्रतीक्षा करने लगा।

कृष्णपक्षकी अमावस्याको आधीरातके बाद, घनी वर्षा हुई। उसने सोचा, राजकुमारीद्वारा बताया गया दिन आज है। स्वयं हाथीपर चढ़, कोमल हाथवाले छोटे सेवकको हाथीपर बैठा, जाकर रनिवासके खुले आँगनमें हाथीको बड़ी दीवारसे सटा, खिड़कीके समीप भीगता हुआ ठहरा। राजा लड़कीकी रखवाली करता हुआ, दूसरी जगह सोने नहीं देता था। अपने पास छोटे बिस्तर पर सुलाता था। "आज कुमार आयेगा" जान, बिना सोये लेटे-लेटे राजकुमारीने कहा—"तात ! नहानेकी इच्छा है।"

"अम्म ! आ" कह उसका हाथ पकड़ खिड़कीके समीप लाकर कहा—"अम्म ! नहा।" वह उसे खिड़कीके बाहरके छज्जेपर रख

एक हाथ पकड़े खड़ा रहा। नहाते हुए उसने कुमारकी ओर हाथ बढ़ाया। उसने उसके हाथसे गहने उतारकर सेवकके हाथमें पहना, उसे उठाकर राजकुमारीके पास छज्जेपर रखा। उसने उसका हाथले, पिताके हाथमें दिया। पिताने उसका हाथ पकड़कर लड़कीका हाथ छोड़ दिया। वह दूसरे हाथसे भी आभरण उतार, उसके दूसरे हाथमें पहना, पिताके हाथमें रखकर कुमारके साथ चली गई। राजा "मेरी लड़की ही है" समझ, उस लड़केको, नहानेके बाद शयन-गृहमें सुला, द्वार बन्द कर, कुण्डी दे, बेंवड़ा लगा, अपने बिस्तरपर जाकर लेटा। उसने प्रातः दरवाजा खोल, लड़केको देखकर आश्चर्यचकित होके पूछा—"यह क्या बात है? तू कहाँसे आया? लड़की कहा गई?" उसने उस कुमारीके कुमारके साथ चले जानेकी बात कही।

राजाने दुःखी होकर सोचा—"हाथ पकड़कर साथ रखनेपर भी स्त्रीकी हिफाजत नहीं की जा सकती। स्त्रियाँ इस प्रकारकी हिफाजत न की जा सकनेवाली होती हैं।" उसने दूसरी दो गाथायें कहीः—

श्लोकः— "अनला मुदुसम्भासा दुप्पूरा ता नदीसमा॥
सीपन्ति नं विदित्वान, आरका परिवज्जये॥
यं एता उपसेवन्ति छन्दसा वा धनेन वा॥
जात वेदो व संठानं खिप्पं, अनुदहन्ति नं॥"

[इन (स्त्रियों-) की इच्छा कभी पूर्ण नहीं होती। मृदुभाषी होती हैं (मैथुनादिसे) नहीं पूर्ण होनेवाली होती हैं। ❀ यह नरकमें डुबोती हैं। यह सब जानकर पण्डित आदमी इन्हें दूर ही रखे॥

❀ "भिक्षुओ! स्त्रियाँ तीन चीजोंसे अतृप्त हो मर जाती हैं। कौनसी तीन? १ मैथुन-धर्म, २ बच्चा पैदा करना, और ३ शृङ्गार करना। भिक्षुओ! स्त्रियाँ इन तीन चीजोंसे अतृप्त हो मर जाती हैं।" अंगुत्तर-निकाय; तिकनिपात॥

जिस पुरुषसे भी वे सम्बन्ध करती हैं, चाहे रागसे, चाहे धन-लोभसे, उसे वे आगके समान शीघ्र ही जला देती हैं ।]

और ऐसा कहा भी गया है:—

श्लोकः— "बलवन्तो दुब्बला होन्ति, थामवन्तोऽपि हायरे ॥
चक्खुमा अंधिता होन्ति, मातुगामवसंगता ॥ १ ॥
गुणवन्तो निग्गुणा होन्ति, पञ्ञावन्तोऽपि हायरे ॥
पमत्ता बन्धने सेन्ति, मातुगामवसंगता ॥ २ ॥
अज्झेनं च तपं शीलं, सच्चं चागं सतिं मतिं ॥
अच्छिन्दन्ति पमत्तस्स, पत्थदू भीव तक्करा ॥ ३ ॥
यशं कित्ति धितीं सूरं, बाहुसच्चं पजाननं ॥
खेपयन्ति पमत्तस्स, कट्ठपुञ्जं व पावको ॥" ४ ॥

[स्त्रियोंके वशीभूत होनेवाले लोग, बलवान् भी दुर्बल हो जाते हैं, शक्तिमानोंकी शक्ति घट जाती हैं, आँखवाले अन्धे हो जाते हैं ॥ १ ॥

गुणवान्, निर्गुण हो जाते हैं । प्रज्ञावानोंकी प्रज्ञा भी घट जाती है ! प्रमादी लोग बन्धनमें बँध जाते हैं ॥ २ ॥

जिस प्रकार मार्ग लूटनेवाला चोर, लोगोंको लूटता है, उसी प्रकार मनुष्यका अध्ययन, तप, शील, सत्य, त्याग, स्मृति, मति, सभी लुट जाती है ॥ ३ ॥

जिस प्रकार लकड़ीके ढेरको आग जला देती है । उसी भाँति प्रमत्त मनुष्यका यश, कीर्ति, धृति, शूरता, बहुश्रुत-भाव, ज्ञान, सभी नष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥]

(ठगनेवाली, महामाया, ब्रह्मचर्यको प्रकुत करनेवाली, स्त्रियाँ उसे डुबा देती हैं, ऐसा जान, पण्डित आदमी स्त्रियोंसे दूर ही रहै ॥ स्त्रियाँ—माया, मरीची, शोक, रोग, उपद्रव, कठोर, बन्धन, मृत्यु पाश, गुह्याशय होती हैं । जो पुरुष इनका विश्वास करे, वह अधम नर है ।)

ऐसा कह महासत्त्वने सोचा—(लड़की और भाञ्जेसे द्वेष करके तो कुछ लाभ होनेवाला नहीं। आखिर) भाञ्जेको तो मुझे ही पोसना है। (वे दोनों प्रेमसूत्रमें बँध चुके हैं, तो उसमें बाधक होनेसे क्या सार? फिर अपने प्रथम वचनको यादकर शान्त हुआ, और उन दोनोंको आदरपूर्वक बुलवा समझा, बुझाके) बड़े सत्कारके साथ लड़की उसीको दे, उसे उपराज (युवराज) बनाया। वह भी मामाके मर जानेपर राज्यपर प्रतिष्ठित हुआ।

राजा बुद्धिमान् होनेसे, वहाँ और कुछ विशेष बिगाड़ नहीं हुआ। इस तरह स्त्रियोंका विश्वास नहीं होता है। यह कथा सुनके उत्कण्ठित भिक्षु शान्त हो गया॥

॥ * ॥ कथा ६ ॥ * ॥

और त्रिया-चरित्रका दूसरा प्रकरण—(१) में जो बात लिखी है, सो भी सुन लीजिये!—

एक मनुष्य बड़ा नटखट था, स्त्रियोंके छलबलको सुनके, अपनी स्त्रीको ऐसा ताके रहता था, कि—किसी स्त्रीको या बुढ़िया दाई तकको भी उसके पास न आने देता। पर यह न समझता था, कि सब स्त्रियाँ एक-सी नहीं होती हैं। जैसे एक हाथकी पाँचों उँगलियाँ एक-सी नहीं होतीं।

निदान वह मूर्ख उसके पास सदा बैठा रहता था। जब कभी किसी आवश्यक कामके लिये बाहर जाता, तो घरके दरवाजेके बाहरसे ताला लगा जाता। एक दिन घरके बाहरी दरवाजेमें ताला लगाके कुछ आवश्यक कामके लिये वह बाहर चला गया; इतनेमें एक चने बेचनेवालेने उस गलीमें आ पुकारा— "चना लो, गरम चना लो!" कहता आया। उस पुरुषकी घरमें बन्द स्त्रीने चने बेंचनेवालेकी पुकार सुन करके दरवाजेके पास आकर उसे बुलाके भीतरसे कुछ पैसोंको एक-एक करके किवाड़की दरारसे बाहर निकालकर दे दिया और कहा कि—इन पैसोंके चने तौलके इसी

दरारकी राहसे भीतर डाल दो। जब उसने उसी दरारकी राहसे चने फेंकके डाल दिये, तब वह उठा ले गई। इतनेमें उसका खाविन्द (पति) दरवाजेपर आ पहुँचा, वहाँ चनेवालेको देख, किवाड़ खोल अन्दर जाके, बड़ा क्रोध प्रगट करके बोला कि—"अरी अभागिनी! भले-मानसोंकी स्त्रियाँ कहीं ऐसे दरवाजेपर आके कोई वस्तु मोल लेती हैं ?" यह बात सुन, वह स्त्री कहने लगी कि— अरे मूर्ख ! तू वृथा क्रोध करता है, कोई अपनी स्त्रीको ऐसे कैदमें डाल रखता है ? जो कोई बुढ़िया भी घरमें रहती, तो कोई घरका काम न अटका रहता, और घरकी बस्ती दूनी देख पड़ती। यह सुन वह पुरुष बोला कि, मुझे स्त्रियोंका विश्वास नहीं। जब चाहें तब एक नया छल बनाके खड़ा कर दें। यह सुन वह स्त्री, यों कहने लगी कि— अरे महामूढ़ ! तू यह बातें वृथा करता है, जो स्त्रियाँ छली होती हैं, वे अपने खाविन्दके शिरपर घड़ा धरकर वहाती हैं, और कुछ वश नहीं चलता, और अपनी तो वही दशा है कि:—

"कर तो डर, न कर तो डर"—

"शेर खाय तो मुँह लाल, न खाय तो मुँह लाल ॥"

—क्या करें ऐसी हाल है। यह बातें सुन, पुरुष कहने लगा कि— वे और ही नामर्द होते हैं, जिनकी स्त्रियाँ छिपे-छिपे खरची जाती हैं, किन्तु चतुर लोगोंकी स्त्रियोंकी क्या सामर्थ्य कि, किसीसे आँखें मिला सकें। यह वचन सुनकर वह परमचतुरी उस वक्त चुप हो रही, पर मनमें कहने लगी कि—देखूँ तो भड़वे ! वह तेरी चतुराई और चौकसी कैसे तेरे सिरपर डालती हूँ। तदनन्तर कुछ दिन तक तो पुरुषके मन-माफिक बर्ताव कर, हाव-भाव, कटाक्षद्वारा पुरुषको अपने वशमें कर लिया। फिर कई दिन बीतनेपर वह स्त्री अपनी माया फैलाके, कलेजेकी पीर वा दुःख, दर्द, रोग होनेका बहाना बनाकर लोटने, तड़फने लगी। तब उसके खाविन्दने बहुतेरे बड़े-बड़े नामी वैद्योंको दिखलाया, परन्तु किसीनेउसके रोगका भेद न जान

पाया। इसलिये अच्छा कर नहीं सके। तब एक चतुर वैद्यने कहा कि— इसकी औषधि हम लोगोंसे तो क्या? खास धन्वन्तरीसे भी न हो सकेगी। क्योंकि, न जाने इसे कौन-सा रोग हुआ है? कुछ पता ही नहीं लगता है, कहके चला गया।

निदान जब उसका खाविन्द अपने वश भर सब कहींकी औषधि कर चुका, तब भी अच्छी होती हुई न देखके अन्तमें निराश और उदास होकर यह कहने लगा कि— नेहके वैद्यकी दूकान कहाँ है ? प्राणोंकी औषधिका क्या नाम है? खाविन्दकी यह बातें सुनके स्त्री कहने लगी कि— प्यारे! तुमने मेरे रोग दूर करनेके लिये बहुतेरे उपाय किये, पर उन किसीने भी कुछ गुण न किया; जो कुछ हुआ सो हुआ। अब एक काम और करो कि— किसी अच्छी चतुर दाईको बुलाके दिखला देखो; क्योंकि, स्त्रियोंकी औषधि स्त्रियोंसे ही बन पड़ती है। यह सुन कर वह कहने लगा कि— प्यारी! तेरे क्लेश दूर करनेके लिये मुझे सब कुछ अङ्गीकार है। निदान वह बुद्धिहीन मूढ़ पुरुषने एक बुढ़िया संसारकी नटखट चतुर छलीको अपने घरमें बुला लाया। उस दाईने भी उसके पास जा, सब शरीरके नस-नाड़ियोंको और एक-एक कलसे उसे देखा। भलीभाँति देख लेनेपर तो कोई कल-बेकलीकी न पाई; तब यह अचम्भा देख, उस बीमार मक्कारसे बोली कि— तूने छल करके इस विचारेको क्यों दुःख दे रक्खा है। यह बात उस दाईके मुँहसे सुनकर वह स्त्री कहने लगी कि— अये गुरुघण्टाल दाई! इस मेरे छलका यह कारण है कि— इस मूढ़ अभागीको मेरा कुछ भी विश्वास नहीं, ऐसा यह कह चुका है। यद्यपि मैंने इसके सिवाय आजतक भी किसी परपुरुषका मुँह नहीं देखा है, इतनेपर भी इसने मेरे सामने एक बड़ा बोल बोला है, उसका फल इसे दिखाना चाहती हूँ, चाहे इसमें हानि वा लाभ कुछ क्यों न हो, यह बात करके ही दिखाना चाहती हूँ। अब तुझे इसीलिये बुलाया है कि— तू मेरे कामके लिये सहायता कर। किसी युक्तिसे भी हो, एक जवान-

को फुसलाके, मटकामें छिपाकर, फिर इसी उल्लूके सिरपर मटका उठवाके शामको ले आ। रात भर मैं उससे रमण करके चङ्गी हो जाऊँगी; फिर सबेरे इसीके सिरमें उठाके मटका ले जाना; समझा! तू मेरी ऐसी मदत कर। भरपूर इनाम दूँगी। तुझे विश्वासी जानके अपने मनकी बात कही हूँ, बोल! क्या करेगी? यह बात सुनके धूर्त कुटिनी दाई बोली, कि— यह कितनी बड़ी बात है? यह तो मैं सहजमें बन्दोबस्त कर दूँगी, तू विश्वास कर, मैं इसमें तेरी साथी हूँ। देखते रहना, सब बात मेरे चुटकी बजाते ही ठीक हो जायगी। ऐसा कहके निदान उसके पाससे उठकर उसके खाविन्दके पास आके कहने लगी कि— तूने ऐसी परी जैसी चन्द्रमुखी सुन्दरी कान्ताको घुला डाला। यह सुनके वह बोला कि— अब मुझसे कुछ भी उपाय नहीं बन पड़ता है, वही देखता हूँ, जो भाग्य (तकदीर) दिखलाती है। दाई बोली—तुम वृथा इतना सोच करते हो, परमेश्वर वा खुदाकी कृपासे मैं इसे एक ही दिनमें अच्छा किये देती हूँ। यह सुनकर वह खुश होके बोला कि— इससे और क्या भला है? और मुझे यही तो चाहिये। भलाई करना और पूछ-पूछके, वाहजी! जैसे हो, वैसे उसे अच्छा करो। उसके आराम होनेके लिये धन तो क्या वस्तु है, जो मेरे प्राण भी काम आवे, तो मैं उसके नामपर निछावर कर डालूँ। यह सुन, अब उल्लू पकड़में आया, सोचके बुढ़िया बोली कि— जहाँ तूने इतने सारा रुपये खर्च किये, तहाँ पाँच सौ रुपये और खर्च कर, जो तेरी प्राणप्यारी एक दिनमें चङ्गी होके अच्छी न होवे, तो तलवार से मेरा गला काट डालना। सुन, बाबू! मेरी बेटीकी ऐसी ही दशा हो गई थी, भाग्यवश अनायास ही एक महात्मा वा बड़े फकीर उधर आ निकले, मुझे अति दीन, दुःखी देखकर मेहरवानी (दया) करके पाँच सौ रुपये लगाके ऐसा एक यन्त्र, टोटका बना दिया कि— एक ही दिनमें रात-भर एक कोठरीमें टोटकेके साथ मेरी बेटीको रख देनेसे सबेरे वह लड़की भली, चङ्गी हो गई थी। अब उस टोटके,

वा, यन्त्रको मेरा बेटा प्राणके समान रक्षा करके रखता है। यदि जो तू इसके लिये पाँच सौ रुपये खर्च करे, तो रातभरके लिये बेटेकी चोरीसे उसे मैं तेरे घर ले आऊँ, और तेरी जोरू (स्त्री) को अच्छा-कर फिर वहीं पहुँचा दूँ। पर यह बात किसीको प्रगट न हो, क्योंकि, मेरे बेटेका स्वभाव बड़ा बुरा है, अति क्रोधी है, जो कहीं वह जान पावेगा, तो मुझे जीता न छोड़ेगा। यह बात सुनकर वह बुद्धि-हीन मूढ़ आदमी, उस बुढ़ियाके पैरोंपर सिर रखकर कहने लगा कि— तू मेरे प्राण बचाये देती है, मैं अपने जीते जी तुझसे उऋण न होऊँगा। तब वह नटखट धूर्त बुढ़िया बोली कि—देखो! एक शर्त है कि, उस ठोटके, वा यन्त्रको तू ही अपने सिरपर ला, और पीछे वहीं फिर वापस पहुँचा दे। निदान जो-जो बुढ़ियाने कहा, सो-सो उसने सब मान लिया। क्योंकि—["मरता क्या न करता"] ऐसा कहा है।

आखिरमें यह मक्कार धूर्त बुढ़िया उस उल्लूको अपने मायाजालमें फाँसकर, अपने घर चली आई, और बन्दोबस्त करने लगी। और एक अच्छेसे खिङ्के गुण्डा जवानको बुलाके उससे कहने लगी कि— अरे बेटा! सुन, तेरे मजे उड़ानेके लिये मैं एक सोनेकी चिड़ियाके समान एक खूबसूरत औरतको फँसा आई हूँ, उसका सन्देश तेरे पास लाई हूँ, पर एक मटकेमें बैठके तुझे चलना पड़ेगा। उसकी यह बात सुनकर वह गुण्डा जवान मस्तान ताल ठोंकके मूछोंपर ताव देके, बोला कि— यदि ऐसी बात है, तो मटका तो क्या? जो उससे भी छोटेसे पात्रमें बन्द करके ले चलोगी, तो भी मैं वहाँ खुशीसे चलूँगा, और जो कहीं लड़ने, भिड़नेको भी कहोगी, तो सिर तोड़ेंगे, मुँह न मोड़ेंगे। फिर वह धूर्त बुढ़िया उस मस्ताना गुण्डे जवानको, सब बात समझा बुझाके अपने घरमें उसे बैठाके, उस निपट मूर्ख उल्लूके पास चली आई, इतनेमें साँझ भी हो गई। तब उस उल्लूके पट्ठेको अपने घर लाके, उस मस्ताना गुण्डे जवानको छिपे-छिपे मटकेमें बिठा, मोटे-कपड़ेसे ऊपर मटकाके मुँह ढाँक, बाँधके ठीक-ठाककर लेनेपर बाहर

आके बोली कि—लो मीयाँ साहब! यह अचूक यन्त्र टोटकेका मटका है, इसे अपने सिरपर रखके धीरे-धीरे अल्लाह मीयाँको याद करते हुए घर ले चलो। वह काठका उल्लू जैसे निपट मूर्खने भी मटकेको सिरपर चढ़ाके अपने घर लाया। यह कुछ भी भेद न समझा कि—इसमें सिर झुकानेकी बुरी बात है। उधर बुढ़िया भी उसके साथ ही आई और उसकी जोरू (स्त्री) को नहला-धुला, अच्छे साफ सुथरे कपड़े पहिना, सर्वाङ्ग शृङ्गार कर, अतर लगा, पान खिला, हार-पान रखवा, चारों ओर बहुत-सी अगर-कपूरकी बत्तियाँ जला, सब प्रकारसे सज-धजके रङ्ग महल तैयार कर दीं। और उस घरवालेसे बोली कि—तुम अब रात भर और सवेरे, मैं आ पहुँचू तबतक, इस कोठरीमें मत जाना; कोई जायेगा, तो टोटकेकी करामातसे उसमें जानेवालोंके प्राणोंका बड़ा खटका, खतरा लगा रहता है, समझा! इसलिये दरवाजेमें बाहरसे ताला लगाके तुम बाहर ही सोते पड़े रहो। उसने भी उसकी बात मान ली। बुढ़िया घर चली गई। इधर उस बिना सींग-पूँछके नरपशुने भी उसकी बातोंमें विश्वास कर कोठरीके बाहर दरवाजेपर पलङ्ग डाल, उसपर तोशक बिछा, सिरहाने तकिया लगा, किवाड़ोंमें ताला लगा, वहीं पैर फैलाके बेखबर होके सो रहा। उधर मौका देखके स्त्रीने मटकेके ऊपरका ढक्कन, कपड़ा खोल दी। तब वह खिङ्गा मस्ताना गुण्डा जवान मटकेसे निकला। दोनों परस्पर मिले, रात-भर उस स्त्रीसे गुण्डा, विषय भोग-विलास करता रहा। इस तरह त्रिया-चरित्रसे धूर्त स्त्रीकी इच्छा पूर्ण हुई। और भोर होते-होते वह स्त्री भी भली-चङ्गी हो करके उठ बैठी। और समय जानके वह खिङ्गा मस्ताना गुण्डा जवान भी मटकेमें जाके छिप रहा। तब सबेरे ५ बजे ही बुढ़िया आके धूर्ताईकी व्यवस्थाको इशारोंसे ठीक-ठाक करके बोली कि—मीयाँ साहब! जागो! कोठरीका ताला खोलो, और अपनी जोरूको देखो, टोटकेकी कैसी करामात है? उसने आँख उठाके स्त्रीको जो देखा, तो वह अच्छी, भली-चङ्गी होके बैठी थी। यह देख

करके दौड़के बुढ़ियाके पैरोंपर गिर पड़ा। तब बुढ़िया बोली कि—अभी थोड़ी रात और अँधेरी है, अतः इस मटकेको मेरे घर ले जाके पहुँचा दो। जो कि यदि उजियाला हो जायगा, तो फिर मेरे और तुम्हारे दोनोंके लिये बदनामी होगी। निदान वह अजान जवान बैल समान उस मटकाको सिरपर रखकर बुढ़ियाके साथ जा, उसके घर पहुँचानेको ले चला। समय संयोगसे उस समय मार्गमें एक जगह एक हलवाई अपनी दुकानके नीचे कराही धो रहा था। उसने देखा कि—एक मनुष्य अच्छे साफ-सुथरे कपड़े पहिने, मटका सिरपर धरे हुए आता है, वह उसे नजर लगाके देखने लगा। तबतक वह निर्बुद्धि उल्लू भी हलवाईके पास आ पहुँचा, और उसे अपनी तरफ ताकते हुए देख लाजके मारे आँखें फेर लीं और कराहीके धोनेसे उस जगह कीचड़ हो रहा था, और कुछ गोबर भी वहाँ पड़ा था, उसमें एकाएक जो उस उल्लूका पैर फिसला, तो मुँह भरा आगेकी ओर धड़ामसे गिर पड़ा, और मटका भी सिरसे गिरके टुकड़ा-टुकड़ा होके फूट गया। तब उसके भीतरसे मस्ताना गुण्डा जवान निकला, तो उसने कपड़े झाड़-पोंछके जूता हाथमें ले, उस उल्लूके पट्ठेका गला पकड़, एक-दो तमाचा लगाके फिर कहने लगा कि— अरे बेवकूफ मसखरे! तू भले-मानसोंपर मटका पटकता है? परमेश्वरने कुशलकी! जो कोई ठिकरा मेरी आँखमें और नाकमें लग जाता, तो फिर तेरा सिर मारे जूतियोंके प्रहारसे गञ्जाकर डालता। तू बड़ा नालायक दिखता है, अबे! तूने मुझपर मटका क्यों फेंका? बता, मैं अपने रास्ते जा रहा था, तूने अन्धा होके धक्का देके मेरे ऊपर मटका पटक दिया, इत्यादि कहके इधर तो वह मस्ताना गुण्डा जवान उसकी दुर्दशाकर झकझोर रहा था, और उधर धूर्त बुढ़ियाने भी उसका हाथ पकड़के कह रही थी कि—अरेरे! बला लूँ तेरी? तुमने तो मुझे अब बड़े संकटमें डाल दिया, अबे सुन! यह मटका तो हीरे-पन्नेके दामोंसे भी भारी मोलका था, मेरा बेटा मुझे छूने तक नहीं देता था, और कहता था कि—जो तू इस मटकेमें

हाथ लगावेगी, तो तेरी टाँगे चीर डालूँगा। हाय खुदा! अब वह मेरी क्या दुर्दशा करेगा, अब क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? तब तो वह मूर्ख काठके उल्लूके समान जड़ बनके चुपचाप खड़ा रहा, और दोनों ओरसे पकड़े जानेपर चौकन्ना हो रहा था। निदान मस्ताना गुण्डा जवानसे हाथ जोड़, उसके पैरों पड़, विनती करके माफी माँगी, तब कहीं छूटा, और बुढ़ियाको पाँच सौ रुपये तो मटका ले जानेके पहले ही दे चुका था, और फिर मटका फोड़नेके दण्डमें पाँच सौ रुपये पीछेसे देके तब जाके कहीं बुढ़ियासे छुटकारा पाया। परन्तु इतना सब होनेपर भी उसकी जोरू (स्त्री) के आराम होनेके आनन्दमें इस नुकसान और बेहुरमतीको कुछ मनमें न लाया। इधर यह विचित्र तमाशा सबेरे ही देख करके उस हलवाईने कहता भया कि—भाई! ऐसा अनूठा चरित्र तो मैंने पहिले कभी नहीं देखा था, जो आज देखा। यह तो बड़ा ही विचित्र मामला देखा। यह बिना किसी कारणके ऐसी गजब बात नहीं भई होगी। इसमें जरूर बड़ा भारी रहस्य छिपा होगा। जब उसने युक्तिपूर्वक उस बुढ़ियाके द्वारा सब भेदको जाना, तब यह बात लोगोंमें जाहिर करके पुरुषोंको चेतावनी देते हुए बताया कि—एक तो मनसे स्त्रियोंका विश्वास नहीं करना। दूसरा इस दृष्टान्तका मूर्ख आदमीकी सरीखी कड़ाकड़ी बन्धनमें रखके रखवारी भी करते नहीं फिरना। यदि उसे विगाड़ पैदा करना है, तो तुम्हारे हजार रखवारी करनेपर भी किसी-न-किसी युक्तिसे वह स्त्री बिगड़ ही जायगी; फिर फूट होनेकी बात करनेसे क्या लाभ? गृहस्थोंने मध्यस्थ भावसे स्त्रियोंसे बर्तना चाहिये।

स्त्रियोंके ऐसे-ऐसे नाना चरित्र होते हैं, सत्संगी, विवेकी, वैराग्यवान् ही, उनसे बच पाते हैं। नहीं तो सब लोग उनमें ही फँसे रहते हैं, तो भी कुछ भेद नहीं जान पाते हैं।

जैसे कहा है कि:—

चौपाईः—"त्रिया चरित्र जानै नहिं कोय । खसम मारके सत्ती होय ॥"

दोहाः—"नाक छिदाई लाखकमें, रती कनकके काज ॥
तुलसी त्रियके बदनमें, कहाँ शरम कहाँ लाज ॥
पनघट गयेसे पनघटे, पनघट वाको नाम ॥
तुलसी कबहुँ न जाइये, पनिहारिनके धाम ॥"

और एक परीक्षा लेनेवाले पुरुषने श्वास रोके रखनेपर पतिको मरा जानके स्त्रीने तस्मै खाके, सीरा-पूरी आलमारीमें छिपा रखी थी, यह जानके पुरुषने उसे त्याग दिया, ऐसी एक कथा है। दूसरे एक पुरुषने स्त्रीकी परीक्षाको मूर्दावत् बनके खम्बेमें पाँव अड़ाके फँसा रखा था। लोगोंने खम्बा काटनेको कहनेपर, "नहीं खम्बा मत काटो, इनके ही पैर काट लो" ऐसा स्त्रीने कही, ऐसी कथा है। तीसरा कुलीन क्षत्रियकी स्त्रीने व्यभिचारिणी होके जारके कन्धेमें चढ़के तमाशा देखनेपर श्वसुरने उसे पहचानके उसके पैरसे पायजेब, झाँजन उतार ले गया, फिर पतिको उठाके लाकर वैसे ही तमाशा देख, उसने उल्टा श्वसुरको ही दोष लगाई, ऐसी कथा है ॥

और जातक (१ । ७ । ६५) में लिखा हैः—एक गृहस्थ शिष्यने स्त्रीके दोष देखके दुःखी हुआ, फिर आचार्यके पूछनेपर उनसे वह बात बताया। तब आचार्यने कहा—"तात ! स्त्रियाँ सबके लिये हैं। यह दुःशीला हैं, करके पण्डित लोग उनपर क्रोध नहीं करते" कह, उपदेश-स्वरूप यह गाथा कहीः—

श्लोकः—"यथा नदी च पन्थो च पाणागारं सभा पपा ॥
एवं लोकित्थियो नाम नासं कुज्झन्ति पण्डिता ॥"

[जैसे नदी, महामार्ग, शराबखाने, धर्मशालायें, तथा प्याऊ, सबके लिये आम होते हैं, वैसे ही लोकमें स्त्रियाँ सबके लिये साधारण होती हैं। पण्डित = बुद्धिमान् लोग, उनके विषयमें क्रोध नहीं करते हैं।]

ऐसा सुनके शिष्य शान्त हो गया। इसी प्रकार गृहस्थ लोगोंने

स्त्रियोंमें मध्यस्थ भाव रखना चाहिये । अति आसक्ति विनाशका कारण हो जाता है, सो जानना चाहिये ॥

इत्यादि प्रकारके कथा, अनेकों घटनायें संसारमें हुई और हो रही हैं, यहाँपर तो संक्षेपमें नमूनामात्र दिखला दिया गया है । सचमुच स्त्रियाँ विश्वासको घात करनेवाली होती हैं । उनका विषय, चरित्र जानना अत्यन्त कठिन है । वे तो सिर्फ स्वार्थ साधनेको ही जानती हैं । हितोपदेशमें लिखा हैः—

श्लोकः—"स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः ॥
तेन नारद न नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥" हितोपदेश ॥

—हे नारद ! स्त्रियाँ पतिव्रता तब हो सकती हैं कि—या तो उनके व्यभिचारका कोई स्थान न हो, या समय न हो, या चाहनेवाला ही कोई न हो ॥

श्लोकः—"न स्त्रीणामप्रियः कश्चित्प्रियो वापि न विद्यते ॥
गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ति नवं नवम् ॥" हितोपदेश ॥

—स्त्रियोंका न तो कोई प्रिय है और (वास्तवमें) न कोई अप्रिय है । किन्तु जैसे गायें वनमें नया-नया तृण ढूँढ़ती हैं, वैसे ही स्त्रियाँ नये-नये पुरुषोंके खोजमें लगी रहती हैं ॥

श्लोकः—"न लज्जा न विनीतत्त्वं न दाक्षिण्यं न भीरुता ॥
प्रार्थनाऽभाव एवैकं सतीत्वे कारणं स्त्रियाः ॥" हितोपदेश ॥

—स्त्रीके सती होनेका कारण—न लज्जा है, न नम्रता है, न दानशीलता है, और न डर है, यदि कोई है, तो केवल उसे चाहके प्रार्थना करनेवालेका न होना, यही एक अभाव है ॥

श्लोकः—"उसना वेद यच्छास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिः ॥
स्वभावे नैव तच्छास्त्रं स्त्रीबुद्धौ सुप्रतिष्ठितम् ॥" हितोपदेश ॥

—शुक्राचार्य और बृहस्पति जिन शास्त्रोंको जानते हैं, वे सब शास्त्र, छल, कपट करनेका गुप्त कला, कौशल स्त्रीकी बुद्धिमें स्वभावतः रहते हैं ॥

जैसे लताओंके पासमें जो कोई भी ठूँठ-वृक्षादि होते हैं, वेलि उसीमें लिपटके चढ़ जाती है, वैसे ही स्त्रियोंके समीपमें भी चाहे जैसा अवगुणी पुरुष रहता हो, गुण-अवगुणको न देखकर स्त्रियाँ उसीसे फँसके लिपट जाती हैं। विश्वासघात कर बैठती हैं, ऐसी यह दुष्टा होती हैं॥ यहाँ दोहाके अर्थमें सारांश यही है कि—

बाघिनीरूपी स्त्रीने गायके समान सौम्य-सुन्दररूप धरी। उसके बाहरी सुन्दरताको देखके बैलरूप अज्ञानी पुरुषोंने उसे प्रिय करके माने, उसके भीतरके कपटको कुछ नहीं जाने। यही स्त्री ही तो सुखकी खास बेड़ी बनी हैं। और मौका पाके पुरुषोंको पतित ही कर देती हैं। उनके सर्वस्व खा जाती हैं, तो भी तृप्त नहीं होतीं। इसको विश्वासघातिनी ही जानो, और कभी स्त्री घटधारियोंके सङ्ग मत करो। पारखी, सन्त, त्यागी, वैराग्यवान् सत्पुरुषोंके सदा सत्सङ्ग करते हुए अपने जीवनका सुधार करो, यही सार शिक्षा है, सो जानो॥८४॥

दोहाः—मूत्र रक्त दुर्गन्ध दृढ़। अमेध्य धूपित द्वार॥
चर्मकुण्डमें जो रमै। पचे सो तहाँ निधार॥ ८५॥

संक्षेपार्थः— स्त्रीका शरीर एक बड़ा भारी नर्ककी खानी बनी है। दशों द्वारोंमें अपवित्र नर्क-ही-नर्क भरा पड़ा है।

चौपाईः— "दशों द्वार नरककी खानी। तहाँ जीव चाहै अवादानी॥" पं० ग्र०॥

और उसका भगद्वार तो बजबजाता हुआ मैलाका स्थान ही है। जहाँसे बार-बार मूत्र, रक्त बहा करता है, जिससे बड़ी भारी दुर्गन्धि उठती है, वही दुर्गन्धका दृढ़, मजबूत कोठी है। अमेध्य = अपवित्र मल, मूत्रका भण्डार, धूपित = बदबू बहनेवाला, ऐसा वह घृणित अधोद्वार है। चर्मकुण्ड = चौतरफसे मांसके ऊपर चमड़ीका घेरा पड़ा हुआ, गहरा भाग, भगकुण्डके महानर्कमें जो पुरुष-स्त्री सम्भोग करके रमण करता है, सो गधे, कुत्ते, सुअरोंके समान नर-जन्मको व्यर्थ बितायके पच-पचके मर जाते हैं। फिर अध्यासवश निश्चय ही

उसी नर्ककुण्डमें जाके डूबते हैं। अर्थात् यह निश्चय है कि, भग-भोग-के वासनावश जीव चौरासी योनियोंमें सोई भग द्वारा गर्भवासमें जाके मल, मूत्रमें लथ-पथ होके वहीं पचता हुआ दुःख भोगता रहता है। इसलिये मैथुन भोगकी वासना जीतेजी एकदम छोड़ देना चाहिये।

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—अर्थात्, हे मुमुक्षु पुरुषो! विचार करो, और स्त्री-भोगके तरफसे आसक्ति परित्याग कर दो। विवेकसे स्त्री-देहमें दोष और मलीनताको देखो। मल, मूत्र, पित्त, कफ आदि विकार ही उसके शरीरमें भरा है। उसमें कोई अच्छी चीज धरी नहीं है, और ऋतुकालमें योनिसे बहता हुआ रक्तमेंसे सड़ा हुआ मूर्देके समान बड़ी दुर्गन्ध आती है। ऐसे निकृष्ट वस्तु भरा हुआ योनिद्वार अत्यन्त घृणा करनेका स्थान है।

अवधूत गीतामें भी कहा हैः—

श्लोकः—"मूत्रशोणित दुर्गन्धे ह्यमेध्यद्वारदूषिते ॥
चर्मकुण्डे ये रमन्ति ते लिप्यन्ते न संशयः ॥" अ० ८। १३ ॥

—निश्चय करके मूत्र और रक्तसे दुर्गन्धयुक्त मलके द्वारोंसे दूषित इस चर्मकुण्डमें जो पुरुष रमण करते हैं, वे दुःखमय संसारमें लिप्त होते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है॥ कामी लोगोंने झूठ-मूठ ही स्त्री-देहकी प्रशंसाके पूल बाँधे हैं, वे सरासर मूर्ख हैं। नहीं तो ऐसे प्रत्यक्षमें मल, मूत्रादि तुच्छ वस्तुसे भरी हुई नारी-घटकी कौन बुद्धिमान् पुरुष प्रशंसा करेगा। सच पूछो, तो स्त्रीके मन भीतर भी अत्यन्त कुटिल, दुर्गुण, दुर्भावनादि ही भरे पड़े हैं, और बाहर शरीरके सर्वाङ्गोंमें तो मल-विकार भरा ही हुआ है। जिसके लिये कामीजन मर मिटते हैं, वह मुख्य भगद्वार तो मूत्र और अत्यन्त दुर्गन्धित रक्त आदिसे भरा हुआ, मैला भरा हुआ एक चमड़ेकी थैलीरूप कुण्ड या नर्कका तालाब ही है। उसमें तन, मन, धन लगाके जो रमण करते हैं, वे निश्चयसे ही शरीर छूट जानेपर भी वहीं गिरके पच-पचके

चौरासी योनियोंके दुःख भोगते रहेंगे। मुमुक्षु सर्वस्वसारमें कहा है:—

श्लोकः—"चर्मखण्डं द्विधा छिन्नमपानोद्‌गार वासितम् ॥
तत्र मूढा रमन्ते ये प्राणैरपि धनैरपि ॥
स्त्रीणामवाच्यदेशस्य क्लिन्ननाड़ीव्रणस्य च ॥
अभेदेऽपि मनोभेदाज्जनः प्रायेण वञ्च्यते ॥" मु० स० ॥

—जो अपना वायुसे वासित या दुर्गन्धित दो भागोंमें बँटा हुआ एक चमड़ेका खण्डमात्र ही है, उसमें जो लोग प्राण और धन खोकर भी रमण करते हैं, वे मूर्ख ही हैं ॥ स्त्रियोंके अवाच्य देश यानी भग-द्वार और एक लिबलिबे नाड़ी व्रण (नासूर) में कुछ भी भेद नहीं है। तथापि उनमें मनोवृत्तिके भेदसे मनुष्य प्रायः ठगा ही जाता है ॥

विचारसागर तरङ्ग ५ में कहा है:—चौपाई:—

"गीलो मलिन मूत्रतैं निशि दिन। स्रवत मांसमय रुधिर जु छत बिन ॥
चर्म लपेट्यो मांस मलीना। ऊपरि बार अशुद्ध अलीना ॥
इनमें कौन पदारथ सुन्दर। अति अपवित्र ग्लानिको मन्दिर ॥
आर्द्र मूतको मनुपतनारो। रुधिर मांस त्वक अस्थि पसारो ॥
लगत जु नीके स्थूल नितम्बा। तिनके मध्य मलिन मल बम्बा ॥
तट ताके ते अति दुर्गन्धा। है आसक्त तहाँ सो अन्धा ॥"३८॥

इस प्रकार नर्क कुण्डरूप नारीमें फँसनेवालोंके लिये तो नर्कका द्वार खुला ही हुआ है, वे सीधे ही नर्कलोक या चौरासी योनियों-की यात्रा करते हैं। फिर उनका निस्तार कभी नहीं होता है। बल्कि पशु आदि नीच खानीमें जाके नाना दुःख भोगा करेंगे। कहा है:—"सूकर कूकरके योग, जन्म तेरो भयो ॥" अभिलाष सागर ५ ॥

बस इसी तरह विषयाध्यासी जीव सब चौरासी योनियोंके चक्रमें ही सदा भटका करते हैं। भग और गर्भमें बारम्बार गोता लगाया करते हैं। विषय-वासना त्यागे हुए त्यागी पारखी सन्त कोई बिरले ही मुक्त होते हैं, ऐसा जान लीजिये ! ॥ ८५ ॥

दोहाः—कुटिल डिम्भ संयुक्त है । सत्य शौच्य नहिं ताहिं ॥
जीवनके बन्धन यही । प्रिये करि मानत ताहिं ॥८६॥

संक्षेपार्थः— हे मुमुक्षुओ ! विचार करके देखो ! तो स्त्रीमें भीतर और बाहर दुर्गुण ही दुर्गुण भरे पड़े हैं । सद्गुणोंके तो उनमें कहीं नाममात्र भी दीखता नहीं । सत्यकी धारण और उभय पवित्रता, सदाचार, शुभ विचार आदि तो नारीमें रञ्चकमात्र भी नहीं है । असत्य, अपवित्रता, मूर्खताके साथ-साथ कुटिलता, डिम्भ = यौवन और रूप-सुन्दरतादिके अत्यन्त दम्भ, अभिमान, हंकार, क्रोध, ईर्षा, काम, लोभ, मोह, भय, छल, कपट, आशा, तृष्णा आदि अनेकों विकार, दुर्गुणसंयुक्त वह भरी पड़ी है । यही स्त्री नर-जीवोंके लिये महाकठिन बन्धनकारी हैं, यही कालरूपिणी हैं। परन्तु विवेकहीन मूर्ख पुरुष उसे ही प्रिय करके अपने अर्धाङ्गिनी मानते हैं। भवबन्धनमें जकड़ पड़ते हैं॥

॥ * ॥विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात्, जिसे लोग अच्छी, भली, भोली-भाली कहते हैं, वह स्त्री तो वास्तवमें कैसी है कि, बड़ी ही कुटिल है; स्त्रियाँ ही तो कुटनी भी बनती हैं। उनके मनमें तो कपट जाल, बिछी हुई हैं, और डिम्भ या दम्भकर झूठी हङ्कार संयुक्त रहती हैं । उसमें न सत्य है और न शौच = पवित्रता ही है । बलाय सब प्रकारसे नरजीवोंको बाँधनेवाली मुख्य भवबन्धन यही स्त्रियाँ बनी हैं। उसे जो प्रिय करके मानते हैं, वे ही कठिन बन्धनमें बँध जाते हैं । दत्तने भी अवधूत गीतामें कहा हैः—

श्लोकः—"कौटिल्यदम्भसंयुक्ता सत्यशौच विवर्जिता ॥
केनापि निर्मिता नारी बन्धनं सर्व देहिनाम् ॥" अ० ८ । १४ ॥

—कुटिलता और दम्भ करके संयुक्त जो स्त्री है, वह सत्यसे और पवित्रतासे रहित है, ऐसी स्त्रीको किसने निर्माण करके रचा है ? (उसके पाप कर्मने रचा है, अतः) निश्चय करके यह सम्पूर्ण

जीवोंके बन्धनका कारण है ॥ और मुख्य आठ प्रकारके दोष स्त्रियोंमें स्वाभाविक विशेष रूपसे रहते हैं । इसलिये स्त्री समस्त दुर्गुणोंकी खानी हैं । तहाँ नीतिकारोंने कहा है:—

श्लोकः—"अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता ॥
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥" चाणक्य० ॥

दोहाः—"साहस, झूठ, छल, मूर्खता; लोभ अति अपवित्रता ॥
निर्दयता, भय आठ यही, नारि स्वभाविक दुष्टता ॥"

—जान बूझके भी झूठ बोलना, कुकर्म करनेमें अत्यन्त साहस करना, छल-कपटसे माया, मोह फैलना, कितने भी समझाओ, तो भी हठ न छोड़नेकी मूर्खता, अत्यन्त लोभ बढ़ायके लुब्ध रहना, तन, मनादिकोंकी अपवित्रता, और निर्दयता— मौका पड़नेपर सब प्राणियोंकी हिंसा करनेवाली, ऐसी हिंसकी, घातकी, ये सब दोष स्त्रियोंके स्वाभाविक होते हैं ॥ चाणक्य नीति २ । १ ॥

और वही बात तुलसीदासजीने भी कहा है:—

चौपाई:—"नारि सुभाव सत्य कवि कहहीं । अवगुण आठ सदा उर बसहीं ॥"
"साहस अनृत चपलता माया । भय अविवेक अशौच अदाया ॥"

और विचारसागर तरङ्ग ५ में भी वैसे ही कहा है:—

चौपाई:— "कपट कूटको आकर नारी । मैं जानी अब तजन विचारी ॥"

चौपाई:—"कोटि वज्र सङ्घात जु करिये । सबको सार खींचि इक धरिये ॥
तियके हिय सम सो न कठोरा । ऋषि मुनि गण यह देत ढँढोरा ॥
पढ्यो पुराण वेद स्मृति गीता । तर्क निपुण पुनि किनहु न जीता ॥
करत अधीन ताहि तिय ऐसे । बाजीगर बन्दरकूँ जैसे ॥
सब कछु मन भावत करवावत । पढ़ पशुहि भल भाँति नचावत ॥
उक्ति युक्ति सब तब हीं विसरै । जब पण्डित पढ़ि तिय पै दिसरै ॥
जे नर नारि नयन शर बीधे । तिनके हिये होत नहिं सीधे ॥
नारि बुरी वेश्या अरु परकी । तीजी नरक निशानी घरकी ॥
तजत विवेकी तिहुँमें नेहा । करै नेह तिय शठ मुख खेहा ॥"

दोहा:— "अर्थ धर्म अरु मोक्ष कूँ, नारि बिगारत ऐन ॥
सब अनर्थको मूल लखि, तजै ताहि है चैन ॥" ८६ ॥

और प्रश्नोत्तरीमें कहा है:—

श्लोकः— "बद्धो हि को यो विषयानुरागी कावा विमुक्तिर्विषये विरक्तिः ॥"

प्रश्न— इस संसारमें बँधा हुआ कौन है ?

उत्तर—जो विषयोंमें अनुराग या स्नेह करनेवाला है ॥

प्रश्न—विशेष मुक्त कौन है ?

उत्तर—जो विषयोंसे विरक्त है, वही मुक्त है या होता है ॥

"द्वारं किमेकं नरकस्य नारी ।"

प्रश्न—नरक जानेका एक मुख्य द्वार कौन-सा है ?

उत्तर—स्त्री ही मुख्य नर्ककी द्वार है ॥

"किमत्र हेयं कनकं च कान्ता ॥"

प्रश्न—इस जगत्में त्यागनेयोग्य क्या चीज है ?

उत्तर—कनक = द्रव्य, और स्त्री त्याग करने योग्य है ॥

"विज्ञान्महाविज्ञतमोऽस्ति को वा, नार्या पिशाच्या न च वंचितोयः ॥
का श्रृङ्खला प्राण भृतां च नारी, दिव्यं व्रतं किं च निरस्त दैन्यम् ॥" प्र० १६॥

प्रश्न—ज्ञानियोंमें भी महान् ज्ञानी कौन है ?

उत्तर— नारीरूप पिशाचिनीसे जो ठगा गया न हो, सो उत्तम ज्ञानी है ।

प्रश्न— प्राणियोंको बेड़ीरूप शृङ्खला = बाँधनेवाली साँकल कौन है ?

उत्तर—स्त्री ही मजबूत बेड़ीरूप साँकल है ॥

प्रश्न—दिव्य उत्तम व्रत कौन-सा है ?

उत्तर—दीनपनेसे मुक्त होना, उत्तम व्रत है ॥

इस प्रकारसे नरजीवोंको महा बन्धनकारी यही स्त्री है । परन्तु ऐसा न जानके बहुतेरे स्त्रियोंको ही प्रिय करके हितकारी मानते हैं । वे मोहसे ढके हुए अज्ञानी मूढ़ हैं, कितनेक स्त्रियोंके पक्षपाती स्त्रीपशु लोग भाँति-भाँतिसे स्त्रियोंकी स्तुति करते हैं, बड़ी प्रशंसा

करते हैं, वे चापलूस लोग कामी कुत्तेके समान नीच होते हैं। जैसे कुत्ता भूँक-भूँकके काटनेको दौड़ पड़ता है. तैसे ही वे कामान्ध नरपशु भी स्त्रियोंकी निन्दा करनेवालोंसे लड़-झगड़के, मार-पीट करनेको भी उतारू होते हैं। वे पापी स्त्रियोंके हथियार बनते हैं। कपटसे कितनोंको उन दुष्टोंने मार भी डाले हैं। तो भी क्या विष, कभी अमृत हो सकता है? कभी नहीं। सच्ची बात कहनेको किसका डर है? नारी साक्षात् नर्ककुण्ड ही हैं। परन्तु विषयी बावरे लोग नाराज होके ऐसा कहते हैं कि:—

दोहा:— "नारी निन्दा मत करो, नारी नरकी खान ॥
नारीसे नर होत हैं, ध्रुव प्रह्लाद समान ॥"

स्त्रियोंके पक्षपातियोंने जो ऐसा कहा है, सो गलत है। उसका उत्तर हम भी ऐसा दे सकते हैं:—

दोहा:—"नारी निन्दा सब करो, नारी नर्ककी खान ॥
नारीसे नर हो रहे, रावण कंस शैतान ॥"

असलमें स्त्रियोंका सङ्ग करके ही तो पुरुष बिगड़ते हैं। पतन करनेवाली तो वही हैं, और सुधार, त्याग, वैराग, शुभ सद्गुणादि तो जीवोंको शुभ संस्कार और साधु सद्गुरुकी कृपा, सत्य उपदेश ग्रहण, सत्सङ्ग आदिसे ही होता है। और अनेकों मनुष्योंमें किसी एक-दो माताओंने कभी कदाचित् पुत्रको कल्याण मार्गमें लगनेकी प्रेरणा किया है। वह तो अपवादमात्र ही होनेसे नगण्य है। नहीं तो समस्त स्त्रियाँ सद्गुरुके वचनमें— "पूत-भ्रतारहिं बैठी खाय" और "अपने बलकवहिं रहल मारि" बीजक ॥ ऐसे ही कर रही हैं, अतएव स्त्रियोंको त्यागनेमें ही भलाई है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ८६ ॥

दोहा:— तीन लोककी जननी। सो भग नर्क निदान ॥
तहाँ जाय जीव रति करत। अन्तहु सोई ठिकान ॥८७॥

संक्षेपार्थः—तीन लोक = सात्त्विक, राजस और तामस प्रकृति-

वाले त्रिगुणी प्राणियोंको वा देव, दानव, मनुष्य वर्ग इन सकलको जन्म देनेवाली या उत्पन्न करनेवाली माता जो है, सो निदानमें तो भगवती यानी भग धारण करनेवाली स्त्री ही हैं। आखिरमें तो उसके भग = योनिद्वार जो है, सो तो नर्क कुण्ड ही हैं। उसी द्वारसे अध्यासी जीव गर्भमें जाते और तीन खानीके सम्पूर्ण शिशु उसी भगद्वारसे ही जन्म लेके बाहर आते हैं। अन्तमें तीनों लोकोंकी जननी जो हैं, सो भग ही है और वह नर्कका स्थान है। नरजीव फिर भी तहाँ अपने जन्मस्थानरूप माताके समान स्त्रीके भगमें लिङ्ग डालके रति, भोग या मैथुन कर्म, कुकर्म करनेमें प्रेम लगाते हैं, मातारूप स्त्रीके साथ निधड़क भोग-विलास करने लगे हैं। बड़ी उल्टी कुचाल पशुके समान बर्ताव करते हैं। फिर शरीर छूटनेपर अन्तमें वे जीव सब भी वासनावश सोई ठिकाने अर्थात् भगद्वारा गर्भवासको ही प्राप्त होते हैं। आवागमनके चक्रमें फिरा करते हैं, बिना पारख ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात्, स्वर्ग, मृत्यु, पाताल; वा अर्ध, ऊर्ध, मध्य स्थानको बाहर तीन लोक कहते हैं। किन्तु यहाँ त्रिगुणी प्राणियोंको ही तीन लोक कहा है। रज, सत्त्व, तम, इन तीन गुणसंयुक्त तीन खानीके सकल सन्तानोंको जन्मानेवाली माता-स्त्रीरूपमें ही कहलाती हैं। सो उसके उत्पन्न करनेका मुख्य स्थानका नाम ही भग या योनिरन्ध्र कहलाता है। सो निदानमें नर्ककी खानी, महामलीन ही है।

इस बारेमें दत्तने भी अवधूत गीतामें कहा है:—

श्लोकः— "त्रैलोक्य जननी धात्री सा भगी नरकं ध्रुवम् ॥
तस्यां जातो रतस्तत्र हा ! हा ! संसारसंस्थितिः ॥" अ० गी० ८। १५ ॥

—जो स्त्री तीनों लोकोंको उत्पन्न करनेवाली है, भगके सहित वह निश्चय करके साक्षात् नरक ही है। तिसी स्त्रीमेंसे उत्पन्न हो-होके पुरुष उसीमें फिर प्रीति करता है या उसी भगको भोगता है। हाय !

हाय ! बड़ा भारी कष्ट या यह दुःखकी ही बात है। देखो ! यह संसारकी कैसी स्थिति या उल्टी चाल है, या हो रही है ॥

जहाँसे उत्पन्न भया, तहाँ ही भगमें जायके, जो पुरुष रतिभोग करता है, सो फिर भी वहीं जानेकी तैयारी कर रहा है। मृत्यु होनेपर उसी ठिकानेमें जाके निवास करेगा। जितनी बार भग भोगेगा, उतनी बार निश्चयसे गर्भवासमें जायगा। और जितने स्त्रियोंसे संसर्ग, मैथुन करेगा, उतने स्त्रियोंके गर्भमें बास करेगा, तथा चौरासी योनियोंके चक्रका दुःख भोगता रहेगा। तहाँ साखी संग्रहमें कहा है:—

साखीः— "भग भोगे भग ऊपजे, भगते बचे न कोय ॥
कहहिं कबीर भगसे बचे, भक्त कहावै सोय ॥
नारीकी झाँई परत, अन्धा होत भुजङ्ग ॥
कबीर ताकी कौन गति, जो नित नारिके सङ्ग ॥
आवागमनके द्वार है, नारी बड़ी बलाय ॥
जल बूड़ा तो ऊबरे, भग बूड़ा मरि जाय ॥" सा० सं० ॥

और बीजक ग्रन्थमें कहा है:—

रमैनीः— "एकै जनी जना संसारा। कौन ज्ञानसे भयउ निनारा ? ॥
भौ बालक भगद्वारे आया। भग भोगीके पुरुष कहाया ॥"
॥ बीजक, रमैनी १ के चौपाई ६—१० ॥

शब्दः— "सुभागे ! केहि कारण लोभ लागे ? रतन जन्म खोयो ॥
पूर्वल जन्म भूमि कारण। बीज काहेक बोयो ॥" शब्द ८६॥

इस शब्दकी खानीकी टीका—त्रिज्ञामें लिखा है, सो वहाँसे देख लीजिये ! ॥

"जहाँसे उपजे तहाँ समाने, छूटि गये सब तबहीं ॥" बीजक, शब्द ३८ ॥

इस प्रकार एक तो स्त्रियाँ त्रैलोक्यकी माता हैं। दूसरा भग महानर्कका स्थान है। इस बारेमें कुछ भी सोच, विचार न करके कामासक्तपुरुष आखिर वहीं जायके भग-भोगनेमें प्रीति करते हैं।

तो उसका नतीजा यही होगा कि— देह छूटनेपर जीव वासनावश उसी ठिकाने, यानी भगद्वारा गर्भवासको प्राप्त होगा, फिर जन्म लेके नाना दुःख भोगता रहेगा। अतएव मुक्ति चाहनेवालोंने जितनी जल्दी हो सके, उतना शीघ्र विषय अध्यास, मैथुन कर्मके वासनादि-को भीतर, बाहरसे एकदम छोड़ देना चाहिये। तभी हित हो सकेगा ॥ ८७ ॥

दोहाः— जानो नारी नर्क है। निश्चय बन्धन माँहि ॥
ना जाने मन काहेको। तहँवाँ दौरो जाहि ॥ ८८ ॥

संक्षेपार्थः—हे मुमुक्षु पुरुषो! इस स्त्रीको तुम भली-भाँतिसे नर्कका समुद्र ही जानो, और निश्चय करके सब प्रकारसे स्त्रियाँ भवबन्धनोंमें पुरुषोंको जकड़ाके नर्कमें ही डालनेवाली होती हैं। यह यथार्थ भेदको अपरोक्ष रीतिसे न जानने, न समझनेके कारणसे ही मूर्ख पुरुषोंके मन बार-बार वहीं स्त्रीके भग-भोगादिके स्मृतिमें खींचा हुआ दौड़ा चला जाता है। अनजान लोगोंका मन तो विषय-वासनामें लगा ही रहता है। परन्तु जानकार कहलानेवालोंका मन भी न जाने क्यों उधर ही समय-समयपर दौड़ा चला जाता है? इसका कारण यही है कि—पूर्व संस्कार तथा देखे, सुने, भोगे हुयेके कारणविशेषसे स्मृतिकी उपस्थिति और विवेक, वैराग्याभ्यासके कमीके कारणसे ही अनजान पुरुषके समान ही, वाणीके जानकारके भी वृत्ति विचलित होके विषयोंके तरफ ही मन दौड़ा चला जाता है ॥ प्रयत्न करके वैराग्यको बढ़ायके अपने-अपने मनको रोकना चाहिये ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात्, हे जिज्ञासु मनुष्यो! स्त्रीको तुम अच्छी मत समझो। उसे तो बड़ी बुरी भयङ्कर नर्ककी खानी, और समस्त विकारोंकी पिटारी, काली नागिनीके समान जहरीली जानो। स्त्रियाँ ही सकल आपत्तिकी घर हैं। महान बन्धनमें

घेरे रखनेवाली निश्चयसे यह विकराल राक्षसी ही हैं। हम तो अच्छी तरहसे स्त्रियोंको नर्ककुण्डरूप बन्धनकारी जानते हैं। परन्तु ये अज्ञानी लोगोंकी दुर्दशा पशुचाल देखके मुझे करुणा उत्पन्न हो जाती है। मैं यथार्थ समझता हूँ! तो भी ये मूर्ख पुरुष कुछ भी नहीं समझते हैं। जहाँसे जन्मे, फिर वहीं दौड़-दौड़के गमन कर रहे हैं। क्या कहें, समझानेपर भी समझके जागते नहीं। बड़ी विकट बन्धन है। दत्तने अवधूत गीतामें कहा है:—

श्लोकः— "जानामि नरकं नारीं ध्रुवं जानामि बन्धनम् ॥
यस्यां जातो रतस्तत्र पुनस्तत्रैव धावति ॥" अ० गीता ८। १६ ॥

— स्त्रियोंको हम जानते हैं कि— यह नरकरूप हैं, और निश्चय करके बन्धनका कारण भी स्त्रियाँ ही हैं, ऐसा हम जानते हैं। परन्तु हाय शोक! अन्य पुरुष ऐसा नहीं जानते। उनकी तरफ देखता हूँ, तो बड़ा अफसोस होता है। क्योंकि, जिस स्त्रीमेंसे उत्पन्न होते हैं, भगद्वारा निकलते हैं, फिर युवा होके उसीमें क्रीड़ाको करने लगते हैं। पुनः उसीमें जानेके लिये निश्चय करके दौड़ भी लगाते हैं। अर्थात् सभी पुरुषोंकी उत्पत्ति भगद्वारासे हुई है, फिर मातारूप स्त्रीमें आसक्त होके कामान्ध लोग भग-भोगनेके लिये ही बार-बार उधर ही दौड़ते हैं। बड़ी घनी अज्ञानका आवरण पड़ा है। जिससे बारम्बार गर्भवासको ही प्राप्त होते हैं ॥ प्रश्नोत्तरीमें कहा है:—

श्लोकः— "विषाद्विषं किं विषयाः समस्ता, दुःखी सदाको विषयानुरागी ॥" १३ ॥

प्रश्न—विषसे भी अधिक विष कौन-सा है?

उत्तर— सब प्रकारके पञ्च-विषय, विषसे भी अधिक जहरीले विष हैं ॥

प्रश्न— हमेशा दुःखी कौन है?

उत्तर— जो हमेशा विषयोंमें प्रेम करनेवाला है, सो सदा दुःखी रहता है ॥

श्लोकः-- "ज्ञातुं न शक्यं हि किमस्ति सर्वैर्योषिन्मनो यच्चरितं तदीयम् ॥"

प्रश्न— किसीसे भी जाना न जाय, ऐसा क्या है ?

उत्तर— स्त्रीका मन और उसका चरित्र अज्ञात होता है ॥

और योगवाशिष्ठमें कहा है:--

श्लोकः—"ज्वलतामतिदूरेऽपि सरसा अपि नीरसाः ॥
स्त्रियो हि नरकाग्निनामिन्धनं चारु दारुणम् ॥" योगवाशिष्ठ ॥

स्त्रियाँ (देखनेमें) सरस होकर भी (वास्तवमें) बड़ी नीरस होती हैं। ये अत्यन्त दूर जलनेवाले नरकाग्निका अति दारुण एवं सुन्दर ईन्धन ही हैं ॥

श्लोकः— "इतः केशा इतो रक्तमितीयं प्रमदातनुः ॥
किमेतया निन्दितया करोति विपुलाशयः ॥ १ ॥
आपातरमणीयत्वं केवलं कल्प्यते स्त्रियः ॥
मुने तदपि नास्त्यत्र मम मोहैककारणम् ॥ २ ॥
सर्वेषां दोषरत्नानां सुसमुद्गिकयानया ॥
दुःख शृङ्खलया नित्यमलमस्तु मम स्त्रिया ॥ ३ ॥
यस्य स्त्री तस्य भोगेच्छा निःस्त्रीकस्य क्व भोगभूः ॥
स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्त्यक्तं जगत्त्यक्त्वा सुखीभवेत् ॥" ४ ॥ योगवाशिष्ठ ॥

—इधर बाल (केश) छितरे हैं और इधर दूसरी तरफ रक्त भरा है— बस, इतना ही यह स्त्रीका शरीर है। भला! इस निन्दित शरीरसे महानुभाव क्या करते हैं ? या क्या करेंगे ? ॥ (रामचन्द्र कहते हैं:—) स्त्रियोंकी केवल आपात रमणीयता या सर्वाङ्ग सुन्दरता, कल्पनाकर ली जाती है, किन्तु हे मुने! मुझे तो मोहकी एकमात्र कारणरूप वह भी प्रतीत नहीं होती ॥ सम्पूर्ण दोषरूप रत्नोंकी एकमात्र पिटारी और दुःखोंकी शृङ्खलारूप इस स्त्रीसे तो सदाके ही लिये मेरा कोई प्रयोजन न हो ॥ जिसके (पास) स्त्री होती है, उसीको (विशेष) भोगोंकी इच्छा होती है। स्त्रीहीनोंके लिये तो भोगका स्थान ही कहाँ है ? जिसने स्त्रीको (वैराग्य

विचारसे) त्याग दिया, उसने सारा संसार त्याग दिया; अतः संसारको त्यागकर मनुष्य सुखी हो जायगा ॥

इस प्रकार हे सन्तो ! निश्चय करके बड़े भारी बन्धनमें ही डालनेवाली इस स्त्रीको नर्ककी खानी, जीता-जागता यमपुरी ही जानो। ऐसा न जानके न मालूम यह मूर्ख मन वहा ही दौड़-दौड़के क्यों जाता है ? इस तरहसे तो यह फिर-फिर भी नर्कवास ही करेगा, गर्भवासके कैदमें पड़ जायगा। इसलिये अभी ठीक तरहसे यह बात जानके सच्चे त्याग-वैराग्यको धारण करो। गाफिल होके कभी स्त्रियोंमें राग मत करो, दोषोंको देखके समझके ही दूर हो रहो ॥ ८८ ॥

दोहाः—भग आदि कुच पाशलों। घोर नर्ककी खान ॥
जो नर तहँवाँ रमत है। सो जियतहि नर्क समान ॥८९॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! स्त्रियोंके भगसे शुरू करके नवोंद्वार और कुच = दोनों स्तन, छाती, कण्ठके आस-पास तक घनघोर बड़ी भारी नर्क मल-मूत्र, पीब, चर्बी, रक्त, मांस, कफ, पित्त, वात इत्यादि घोर नर्ककी खानी हैं। वहाँ सब ठौर नर्क ही नर्क भरा पड़ा है। जो पुरुष ऐसी स्त्रियोंके साथमें भग-भोगादि करके रमण करते हैं, सो मानो जीतेजी नर्कमें समायके या प्रवेश करके घृणित नर्कमें डूब रहे हैं। उसी नरकको ही खा-पीके प्रत्यक्ष नरकके निवासी बड़े डील-डौलवाले कीड़े ही बन रहे हैं। जब जीते ही नर्क कुण्डमें पैठके नर्क भोग रहे हैं, फिर मरनेके पीछे उनकी दुर्गतिका क्या पूछते हो ? उसी प्रकार अनेकों जन्म पर्यन्त चौरासी योनियोंके दुःख ही भोगते रहेंगे। अतएव अपना हित चाहते हो, तो स्त्री-सङ्गका भोग त्यागके शुद्ध विरक्त हो रहो ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात् हे मुमुक्षुओ ! स्त्रीके

प्रति झूठी सुन्दरता, कल्पना करके मोहके गाँठी मत बाँधो। इतने समझानेपर भी नारीके प्रति तुम्हारी राग निवृत्त नहीं हुई। तो तुम अब स्त्रियोंके सर्वाङ्गको एक-एक करके अलग-अलग उसके असलियतको विचार करो। फिर तुम्हें शुद्ध बुद्धिसे देखनेसे स्त्रियोंकी देह, घोर नर्ककी खानी ही दिखाई देगी। मलीन अङ्ग-भङ्ग भग आदिसे लेके कुचोंके पाशतक सब ठिकाने नर्क ही तो भरा है। कौन-सी अच्छी वस्तु धरी है, उसमें हड्डीकी कङ्कालके ऊपर मांस, रक्त, लपेटके नसोंसे कसकर, उसपर त्वचा मढ़ी गई है। और ऊपरसे वस्त्रोंसे ढाँकके पुरुषोंके नेत्रोंपर धूर झोंक दी गई है, मोहका चश्मा चढ़ाके उसे सुन्दर देखते हैं। स्त्रियोंके ऊपर आसक्त होते हैं, भोग-विलास करते हैं, यही अज्ञानका प्रताप विशेष मूर्खता है। अगर बीचका पर्दा हठा दिया जाय, तो पिशाचिनीके रूप उसे देखके सब भय-भीत हो जायँ। परन्तु जबरदस्त पर्दा पड़ा है, इसलिये अन्धेरेमें भटक रहे हैं। जैसे कुत्ता सूखी हड्डी चबाके अपने ही मसोड़ाके रक्त चाटके प्रसन्न होता है! तैसे संसारी लोगोंका भी यही हाल हो रहा है। तहाँ सद्गुरुने बीजक ग्रन्थमें कहा हैः—

शब्दः— "इहै पेड़ उत्पति परलयका। विषया सबै विकारी॥
जैसे श्वान अपावन राजी। त्यों लागी संसारी॥" शब्द ५६॥
"ना हरि भजसि न आदत छूटी"॥ बीजक, शब्द ५७॥

और दत्तने भी अवधूत गीतामें कहा हैः—

श्लोकः— भगादिकुचपर्यन्तं संविद्धि नरकार्णवम्॥
ये रमन्ति पुनस्तत्र तरन्ति नरकं कथम्॥" अ० गीता ८। १७॥

— यह स्त्रीके भग आदि अङ्गोंसे लेकरके स्तनों पर्यन्त नरकका महासमुद्र भरा पड़ा है। हे नर! तिसको तू सम्यक् प्रकारसे या अच्छी तरहसे जान, और जो पुरुष नारीके गर्भमें रहकर फिर उसके योनिसे पैदा होकर भी फिर तिसी स्त्रीमें भग भोगते हुए रमण करते हैं, अब कहो भला! वे किस प्रकारसे नर्कसे अलग होकर नरकसे

कैसे तर सकेंगे ? कदापि नहीं तर सकेंगे। सर्वदा नर्क-सागरमें ही डूबते रहेंगे ॥ और सुन्दर विलासमें लिखा है। सुनिये !— छन्दः—

"उदरमें नरक, नरक अधद्वारनमें । कुचनमें नरक, नरक भरी छाती है ॥
कण्ठमें नरक गाल, चिबुक नरक बिम्ब । मुखमें नरक जीभ, लारहु चुवाती है ॥
नाकमें नरक आँख, कानमें नरक बहै । हाथ पाँव नख-शिख, नरक दिखाती है ॥
सुन्दर कहत नारि, नरकको कुण्ड यह । नरकमें जाइ परै, सो नरक पाती है ॥३॥
कामिनीको अङ्ग अति, मलिन महा अशुद्ध। रोम-रोम मलिन, मलिन सब द्वार है ॥
हाड़ मांस मज्जा मेद, चामसुँ लपेटि राखै । ठौर-ठौर रकतके, भरेई भण्डार है ॥
मूत्रहू पुरीष आँत, एकमेक मिलि रही। और ही उदर माहिं, विविध विकार है ॥
सुन्दर कहत नारी, नख-शिख निंद्यरूप । ताहि जो सरा है सो तो, बड़ा ही गँवार है॥४॥
॥ सुन्दर विलास ॥

इस प्रकार दरअसलमें स्त्रियाँ घोर नर्ककी ही खानी हैं। भग क्या है ? रौरव नर्क है। मुख क्या है ? कालकूट विष भरा हुआ घड़ा है। कुच क्या है ? विषकी गोली हैं। मोटी-मोटी हड्डियोंके चार टुकड़े जोड़के दोनों पैर बने हैं, पेटमें सड़ा हुआ मैला भरा पड़ा है। खाली चामके ढक्कनसे ही सब निकृष्ट चीजें छिपी हैं। तहाँ व्यासने कहा है:—

श्लोकः— "सर्वाशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः ॥
शरीर कस्यापिकृते मूढाः पापानि कुर्वते ॥
यदि नामास्य कायस्य यदन्तस्तद्बहिर्भवेत् ॥
दण्डमादाय लोकोऽयं शुनः काकांश्च वारयेत् ॥" मु० स० ॥

— हाय ! सारी गन्दगीके खजाने, कृतघ्न और विनाशशील इस देहके लिये ही मूढ़ पुरुष नाना प्रकारके पाप-कर्म करते हैं ॥ और इस शरीरके भीतर जो (मल, मांस, रक्त, मज्जा, आदि दुर्गन्धमय वस्तुएँ भरी पड़ी) हैं, वे ही यदि बाहर निकल आवें, तो यह लोग (इसकी रक्षाके लिये) हाथमें डण्डा लेकर कुत्तों और कौओंको हटाता फिरेगा ॥ और शुकदेवने भी कहा है:—

श्लोकः— "अमेध्यपूर्णं कृमिराशिसंकुलं, स्वभावदुर्गन्धमशौचमध्रुवम् ॥
कलेवरं मूत्रपुरीषभाजनं, रमन्ति मूढा न रमन्ति पण्डिताः ॥"

— जो गन्दगीसे भरा हुआ, कीड़ों, मकोड़ोंके समूहसे संकुलित, स्वभावसे ही अत्यन्त दुर्गन्धित और अत्यन्त चञ्चल, अस्थिर = स्थिर न रहनेवाला है । उस मल-मूत्रके पात्ररूप शरीरमें मूढ़जन ही सुख मानते हैं, पण्डित जन = विवेकी तो सर्वदा उससे विरत ही होते हैं ॥

और विष्णु पुराणमें भी कहा हैः—

श्लोक— "मांसासृक्पूयविण्मूत्रस्नायुमज्जास्थिसंहतौ ॥
देहे चेत्प्रीतिमान्मूढो भविता नरकेऽपि सः ॥" विष्णु पुराण ॥

— मांस, लोहू, पीब, विष्ठा, मूत्र, स्नायु, मज्जा और अस्थियोंके समूहरूप इस नर-नारीके देहमें यदि किसी मूढ़ पुरुषकी प्रीति हो सकती है, तो वह नरकमें भी प्रेम कर सकता है ॥ अतः भग, कुचसे लेके सिर पर्यन्त स्त्रियाँ महान नरककी खानी हैं । जो पुरुष नरपशु होकर तहाँ ही प्रीति लगायके स्त्री-भोग करनेमें रमते हैं, सो जीते ही नर्कवासीके समान हैं । कूकुर, सूअर, गधे आदि पशुओंके समान ही उनकी जिन्दगी भी व्यर्थ चली जाती है । मरनेपर भी उसी नर्कवासको या चौरासी योनियोंको ही प्राप्त होते हैं ॥ इसलिये प्रथमसे ही स्त्री विषयकी आसक्ति एकदम छोड़ देना चाहिये, तभी कल्याण होवेगा ॥ ८९ ॥

दोहाः—विष्ठा नर्कको भोग यह । भग जो भया निर्मान ॥
क्यों नहिं जानत चित्त तूँ ! तहाँ क्यों धावत जान ? ॥९०॥

संक्षेपार्थः— त्याग करने लायक मल-मूत्रका घर, मैला-ही-मैला भरा हुआ, यह जो भगकुण्ड यानी स्त्रीकी योनिद्वार निर्माण होता भया । सो पापके कारणसे ही भग संयुक्त स्त्री देह निर्माण हुआ है, और उसके साथ भगभोग या मैथुन करना, मानो विष्ठारूपी नर्कका ही भोग करना है । यानी विष्ठा खानेके समान ही निकृष्ट तुच्छ कर्म है ।

मैलेसे भरा तालाबमें डूबनेके समान अत्यन्त घृणित निन्दनीय है। हे नर! तू ऐसा क्यों नहीं चित्तमें विवेक करके जानता है। अन्धा, मूर्ख बनके पशुके समान तहाँ ही भग-भोगके नर्कमें डूबनेको क्यों दौड़ा चला जाता है? अभी मनुष्य जन्म पाये हो, तो इसे सत्सङ्ग-विचार करके अच्छी तरहसे जानलो। और सच्चे मनुष्य बनके विषयासक्तिको छोड़ दो। सद्गुण रहनी, रहस्य, त्याग, वैराग्यको धारण करके अब भी चेत करके मुक्तिमार्गमें लागो। नहीं तो पीछे बड़ी दुर्दशा होगी। हे जीव! तुम अपने स्वरूपको जानो। भोगासक्ति वासनाको परित्याग करके स्थिर हो जाओ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात्, नर्क स्थानमें क्या होता है? विष्ठा = जिसे भाषामें लोग 'गू' कहते हैं, मूत, पीब, खून, बदबूदार पानी, इत्यादि दुर्गन्धित पदार्थ गचर-पचर होके भरा रहता है। जहाँ कीड़े बिलबिलाते रहते हैं। वैसे जगहमें पवित्र पुरुषको, तो क्षणभर ठहरना भी कठिन हो जाता है। फिर उसे छूना, उठाना, शरीरमें मलना और खाना, तो अशक्य है। चाहे भले ही मर जावें, परन्तु वैसा उनसे हो नहीं सकता है। और सूअर, कुत्ते आदि पशु तो मैलाको ही प्रसन्न होके खाते हैं। ऐसे ही जिस पदार्थ-को तुच्छ समझके वैराग्यवानोंने त्याग दिया, उसे ही संसारी विषयी लोगोंने प्रसन्नतासे ग्रहण किया है। यहाँ उपदेश खास करके त्यागी मुमुक्षुओंके ही लिये है। तो देखो! यह स्त्रीका भोग सरासर विष्ठा, नर्कका ही भोग है। भग जो निर्माण भया है, सो भी विष्ठादि मल-मूत्रसे भरा हुआ खास नर्कका कुण्ड ही है। फिर हे चित्त! तू चेत करके असली बातको जानकर उपराम क्यों नहीं होता है? क्यों मनमें ग्लानि नहीं करता है, तहाँ ही स्त्रीमें नर्कवास करनेको क्यों दौड़ा जाता है? आवागमनका दुःख भूलके क्यों भवसागरमें कूद-कूदके गिर पड़ता है? जाग, चेतकर!॥

ऐसे ही दत्तने अवधूत गीतामें कहा हैः—

श्लोकः—"विष्ठादिनरकं घोरं भगं च परिनिर्मितम् ॥
किमुपश्यति रे चित्त कथं तत्रैव धावसि ॥" अवधूत गीता, ८ । १८ ॥

— विष्ठा आदिकों करके घोर नरकरूप ऐसी स्त्रीकी भग रचित भया है । जहाँ नर्कके सिवाय और कुछ नहीं । हे चित्त ! तो फिर तू उसमें क्या देखता है ? और फिर किस लिये तिसी स्त्रीकी तरफ दौड़ता है ? क्या तू नर्कमें डूबना चाहता है ? ॥

विचार सागर तरङ्ग ५ में कहा हैः—

"प्रभु पुरीष पएडा यह रएडा । दिय मुहि कौन पापको दएडा ॥
बोलत बैन व्याल कागनिके । भेड़ भैंसि न्योरी नागिनीके ॥ ५३ ॥
प्रेतरूप धरि लग्न अमङ्गल । भिरि फिरि भिरत मेष मनु दङ्गल ॥
ज्यों लोटत मद्यपी मतवारो । गिनत मलीन गलीन न नारो ॥ ६३ ॥
त्यों नर नारि मदन मद अन्धे । अति गलीन अङ्गनमें बन्धे ॥" वि० सा० ५ ॥

अतः स्त्री देहमें भग जो निर्माण भया, सो विष्ठादि मैला भरा हुआ नर्कमें जीवोंको भेजनेके लिये कुम्भीपाक नरकका एक महाद्वाररूप ही बना है । जो उसमें प्रवेश किये, सो महानर्कमें औंधे मुख गिर पड़े, और गिर ही रहे हैं । हे मुमुक्षु ! तुम ऐसा अपने चित्तमें क्यों नहीं जानता है ? कुतियाके पीछे दौड़नेवाले कुत्तेकी नाईं तू भी क्यों स्त्रीके पीछे भग-भोगनेकी तृष्णासे दौड़ता है ? खबरदार ! अब भी सावधान हो जा ! नारीके सङ्गको छोड़ दे । नहीं तो कालरूप स्त्रीसे तू मारा जायगा, तो फिर जन्म-जन्मान्तरमें भी तेरा कहीं ठिकाना नहीं लगेगा । सद्गुरुने बीजक शब्दमें कहा हैः—

शब्दः—"बुन्दसे जिह्व पिण्ड सञ्जोयो । अग्निकुण्ड रहाया ॥ ३ ॥
जब दश मास माताके गर्भे । बहुरि लागल माया ॥ ४ ॥
बारहु ते पुनि वृद्ध हुआ । होनहार सों हुआ ॥ ५ ॥
जब यम अइहैं बाँधि चलै हैं । नैनन भरि-भरि रोया ॥ ६ ॥

जीवनकी जनि आशा राखो । काल धरे हैं श्वासा ॥ ७ ॥
बाजी है संसार कबीरा ! चित्त चेति डारो फाँसा ॥ बीजक शब्द ८६ ॥

अतएव पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग करके सचेत होकर सकल विषय फन्दाको परित्याग कर डालो । और पूर्ण वैराग्यको ग्रहण करके सदाके लिये सुखी हो जाओ ! ॥ ९० ॥

दोहाः—चर्मकुण्ड दुर्गन्ध दृढ़ । भग सो नर्क बखान ॥
देव दैत्य औ नर सकल । खण्ड्यौ सबनको ज्ञान ॥९१॥

संक्षेपार्थः— हे भाई ! यह त्याग, वैराग्यकी बात और स्त्रीकी भरपूर निन्दा, खाली अकेला मैंने ही कहा हो, ऐसा बात नहीं । बल्कि सारे ज्ञानी, वैराग्यवानोंने भी पहिले-पहिलेसे ही कहते हुए मुमुक्षुओं-को चेताते आये हैं । सोई बात दृढ़तासे मैं भी कहता हूँ ! सुनो ! चमड़ेसे घिरा हुआ कुण्ड, जिसमें अत्यन्त दृढ़ महान् दुर्गन्ध आता है, सो भगरूप योनिद्वार हो महान् नर्क है, ऐसा ज्ञानियोंने बखान किये हैं, सो सर्वथा अक्षरशः सत्य है । सो नर्करूप भग भोगनेवाले चाहे देवता हों, दैत्य हों, और सम्पूर्ण मनुष्य हों, ऐसे नरजोवोंके समेत सबके ज्ञान, गुण विचारका खण्ड-खण्ड होके विनाश हो गया। वे सब अज्ञानी मूढ पशुवत् हो गये। ऐसा हानिकारक यह स्त्री विषय है॥ यानी भग भोगनेवाले सबोंके ज्ञानादि सद्गुण नष्ट, भ्रष्ट हो गया। स्त्रीने सबके ज्ञानको खण्डित करके पुरुषोंको अज्ञानी नरपशु बनाया, ऐसी यह स्त्री पिशाचिनी है ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात्, सभी विवेकी, त्यागी, सन्त महात्माओंने बड़ी भारी दुर्गन्ध आनेवाला चर्म कुण्डरूप भगको खास नर्कस्थान कहके बखान किया है । जिसके स्पर्श, मैथुन करनेसे वीर्यपातके साथ-साथ ज्ञान, बोध, विचार, वैराग्य आदि सकल सद्गुण देव, दैत्य और सर्व मनुष्योंका एक साथ खण्डित

हो गया, और उसी तरह सद्गुणोंका विध्वंश हो ही रहा है। प्रत्यक्षमें वही यमलोकका भोग है। भग-भोगते रहनेवाला मुक्तिपदसे पतित होकर चौरासी योनियोंको ही प्राप्त होता है। चाहे अभी वह देवताके समान पूज्य माना जाता हो, या देवता ही कहलाता हो, तथा दैत्यके समान पराक्रमी, तमोगुणी हो, और रजोगुणी मनुष्य कहलानेवाले पुरुष हों, ऋषि, मुनि, सिद्ध, साधक, इत्यादि कोई भी क्यों न हों, उन सबका ज्ञान, भग-भोगसे खण्डित्त हो गया, और खण्डित हो ही रहा है। तहाँ दत्तने भी अवधूत गीतामें कहा है:—

श्लोकः—"भगेन चर्मकुण्डेन दुर्गन्धेन व्रणेन च ॥
खण्डितं हि जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥" अ० ८। १६ ॥

—अरे हाय! जो स्त्रीका भग है, वह चर्मका एक कुण्डरूप महा दुर्गन्धिका घर है। जिसे कोई पूति (सड़ी हुई, बड़ी बदबू आनेवाली जगह) कहते हैं। और घावकी तरह आकारवाली इस भगने देवता, दानव और मनुष्योंके सहित सम्पूर्ण जगत्को खण्डित-कर दिया। यानी भग-भोगके कारणसे ही सब विनाशको प्राप्त हो रहे हैं॥ देखिये! गौतमकी स्त्री अहिल्याके पीछे भग-भोगमें लगके इन्द्रके शरीरमें सहस्र भग होनेका गौतमका शाप हुआ, तो गलित कुष्ठी बना। पुत्रीसे भोग करनेके कारणसे ब्रह्माकी पूजा बन्द हुयी। गुरु-पत्निसे भोग किया, तो चन्द्रमाको कलङ्क लगा। इत्यादि देवता कहलानेवाले भी पतित भये। दानवोंके राजा शुम्भ, निशुम्भ भी एक स्त्रीके कारणसे ही लड़-लड़के मर गये। रावण वगैरह भी स्त्रीके कारणसे ही मारे गये। मनुष्योंमें बाली, कीचक, कौरव, इत्यादि अनेकों लोग उसी कारणसे मारे गये और अभी भी स्त्रीके भगा-सक्तिके विकारसे ही सब पुरुष नष्ट, भ्रष्ट, पतित हो रहे हैं। कहा है:—

साखीः—"नारि नशावै तीन गुण, जेहि नर पीछे होय ॥
भक्ति मुक्ति औ ज्ञानमें, पैठि न सकिहैं कोय ॥" चौ० अं० ॥

सं० नि० षट्० ४७—

साखीः—"नारी कुण्डी नरककी, बिरला थामैं बाग ॥
बिरले साधू ऊबरे, सब जग मूआ लाग ॥" चौ० अं० ॥

संसारके समस्त त्रिगुणी पुरुषोंके ज्ञानादि सद्गुणोंका विनाश स्त्रीका सङ्ग करनेसे ही हुआ और हो रहा है। स्त्रीसे प्रेम बढ़ानेका फल अन्तमें चाहे कोई भी हो, उसे नर्करूप भग-भोगमें ही स्त्री गिरा देती है। पिता अपने ही पुत्रीसे भोगकर बैठता है। जैसे ब्रह्मादिकोंने जाहिर किया। पुत्र भी अपने मातासे ही भग-भोग कर लेता है। जैसे शिवादि तीनोंने किया। भाई अपने बहिनसे मैथुन कर लेता है। शिष्य भी गुरुपत्निसे भोग कर लेता है। जैसे चन्द्रमाने किया। मुख्य-मुख्य प्रतिबन्ध इन्हींमें लोक समाजने लगाये हैं। जब वहाँ भी नहीं रुकते, तो दूसरेकी तरफ रुकनेकी बात क्या पूछते हो? यह काम-विषयको जीतना अत्यन्त कठिन है। कुसङ्गसे दूर रहकर स्त्रीका परित्याग करके सत्सङ्ग विचार द्वारा रहके ऐसे तो जीता भी जा सकता है। परन्तु स्त्रियोंके साथ रहकर, कामोत्तेजक आहार, विहार करके स्त्रियोंमें विशेष गाढ़ा प्रेम बढ़ाय करके तो कामको जीतना असम्भव हो जाता है। जब बड़े-बड़े पण्डित, ऋषि, मुनि आदि भी कुसङ्ग स्त्रीका सहवाससे पतित भये, फिर और की तो बात ही क्या है?। कहा हैः—

चौपाईः— "को न कुसङ्गति पाय नशाई। रहै न नीच मते चतुराई ॥
कैसहु चतुर होय किन कोऊ। नीच सङ्ग करि बिगरत सोऊ ॥"रामा०॥

और स्मृतिकारने भी कहा हैः—

श्लोकः— "मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ॥
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥" मनुस्मृतिः ॥

— माता, बहिन तथा पुत्रीके साथ भी बुद्धिमान् पुरुषोंने, कभी एकान्त स्थानमें बैठना नहीं चाहिये। क्योंकि, इन्द्रियाँ प्रबल हैं, इसलिये ये विद्वान्को भी अपने वशमें करके खैंच लेती हैं ॥

श्लोकः— "पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ॥
पुत्रश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हसी ॥" मनुस्मृतिः ॥

—बाल्यावस्थामें स्त्रीकी रक्षा पिता करता है। जवानीमें पति रक्षा करता है, वृद्धावस्थामें पुत्र रक्षा करता है, इसलिये स्त्रीको कभी भी स्वतन्त्रता न देनी चाहिये ॥

निरंकुश स्वतन्त्र चलनेवाली स्त्रियाँ बड़ी-बड़ी उपाधियाँ, प्रपंच खड़ी कर लेती हैं। जहाँ-तहाँ विघ्न ही उपस्थित करती फिरती हैं। अतएव स्त्री जातिमात्रका कभी विश्वास न करे। जहाँ स्त्रियाँ जाती रहती हों, उस स्थानमें विरक्त पुरुषोंने अकेले कभी निवास न करे। सद्गुरुने तो यहाँ तक मनाही किया है कि:—

साखीः— "गाय भैंस घोड़ी गधी, नारि नाम है तास ॥
जा मन्दिरमें ये बसैं, तहाँ न कीजे बास ॥" चौ० अं० सा० ॥

साखीः— "सुन्दरी न सोहै, सनकादिकके साथ ॥
कबहुँक दाग लगावै, कारी हाँड़ी हाथ ॥" बी० र० ६६ ॥

यह अनुभव किया हुआ वाक्य अक्षरशः यथार्थ सत्य है ॥

देव, दैत्य और सकल नरोंका ज्ञान स्त्रीने विनाश कर दिया है, और ज्ञान खण्डित करनेका तो उसका स्वभाव ही है। अतएव सदा सावधानीसे स्त्रियोंके जालोंसे बचे रहना चाहिये। स्त्रियोंमें प्रेम करके जो गाफिल होते हैं, सो भेड़, बकरोंकी नाईं, मारे जाते हैं, ऐसा जानके मुमुक्षुओंने सदा, सर्वदा स्त्रियोंके तरफसे ग्लानि करके, मन उदास रखना चाहिये ॥ ९१ ॥

दोहाः— देह नर्क महा घोरमें। पूरित श्रोणित जान ॥
निर्माण भई बड़वामुखी। भगमुखि तिरिया जान ॥९२॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो! विचार करो, स्त्री पुरुषादि सभीकी देह-नर्करूप मैला रज, वीर्यका सम्बन्ध करके बना हुआ है। महाघोर नर्करूप गर्भमें निवास करके देह बना, जो रक्त रजस्वला स्त्रीकी

योनिसे बाहर निकलता था, सोई गर्भमें एकत्रित होके शरीर तैयार हुआ। तब ऐसा जानो कि— यह देह महान् घोर नर्कका स्थान गर्भवासमें श्रोणित=रक्त आदि सप्त धातुकी परिपुष्टिसे विशेष खून पूरित होके बना और समय पूरा होनेपर योनिद्वारासे निकला है। जब यह अपना शरीर ही ऐसा मलीन है, तो जहाँसे यह बनी, वह स्त्रीकी देह, तो और भी महामलीन है। घनघोर नर्क उसकी देहमें भरा पड़ा है। उसे तो खटमल सरीखी रक्तका पुतली ही जानिये! हर महीने दुर्गन्धित खून योनिसे बहा करता है। नारी बड़ी अपवित्र होती हैं। कहते हैं—बड़वानल नामके अग्नि समुद्रके गर्भमें रहके सदा पानी शोषण किया करता है। वैसे ही स्त्रीको भी भगमुखी=भग ही है, वीर्य शोषण करनेके मुख जिसके, मानो जीता-जागता बड़वामुखीरूप यह स्त्रियाँ निर्माण भई हैं। जो पुरुषोंकी सारी शक्ति, सामर्थ्यको भगमुखकेद्वारा ही चूस-चूसके खैंच लेती हैं, और पुरुषोंको निकम्मा, बद्ध बना देती हैं, तब भी वह तृप्त नहीं होती हैं। ऐसा इसे महाराक्षसी ही जान लो। अथवा भगमुखी स्त्रीको बड़वामुखी अग्निवत् ही अतृप्त रहनेवाली जान लो॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात्, जिसका कार्य खराब दीखे, उसका कारण क्या अच्छा हो सकता है? कभी नहीं। तैसे ही इस देहमें दशोंद्वारोंमें नर्क-ही-नर्क भरा है। जो नित्यप्रति निकला करता है, उत्पत्ति भी नर्कसे ही भया है। विशेष करके सर्वाङ्गमें रक्त भरा है। और रक्त, मांस, त्वचा, नाड़ी, हाड़, मज्जा और रोमसहित सप्त धातुका यह शरीर बना है। सो यह घट स्त्रीके गर्भमें ही निर्माण भया है। अतएव सम्पूर्ण मलका भण्डार, नर्कका कुण्ड स्त्रीका शरीर ही है। क्योंकि, थोड़ेसे नमूनासे ही बहुत कुछ भण्डारका भी पता लग जाता है। इससे अपने देहको देखके स्त्रीकी

देहमें महाघोर नर्क मळ, मूत्र, रक्त, पित्त, कफ आदि विकारसे पूर्ण जाना जाता है। सो यह तो प्रत्यक्ष ही दिख रहा है। दत्तने भी अवधूत गीतामें कहा है:—

श्लोकः— "देहार्णवे महाघोरे पूरितं चैव शोणितम् ॥
केनापि निर्मिता नारी भगं चैव अधोमुखम् ॥" अ० ८। २०॥

— स्त्रीके शरीररूपी समुद्रमें महान् घोर नरकरूपसे निश्चय करके लोहू और अन्य अनेकों विकार भरा हुआ है। निश्चय करके किसने या किस पापसे स्त्री घट रची गई है? (सो अज्ञात होनेपर भी बड़ा भारी पाप ही कारण मालूम पड़ता है)। जिस कर्मने इस स्त्रीके शरीरमें भगद्वारको अधोमुख किया है॥

यदि खास करके दोनों मुखसे भक्षण करनेवाली बाघिनको देखना हो, तो स्त्रीको ही देख लो, वह एक साथ दोनों मुखसे पुरुषोंको खा जाती है। साखी संग्रहमें कहा है:—

साखीः—"फटी कानकी बाघिनी, तीन लोकको खाय॥
जीवत फाड़ै काल ज्यों, मुये नर्क ले जाय॥
नारी नहीं यह नाहरी, करै नयनकी चोट॥
पारखी बिरले बाँचई, गुरुपूराकी ओट॥
इस भग केरी प्रीतिसे, केते गये गड़न्त॥
केते अजहूँ जायंगे, नरक हँसन्त हँसन्त॥" साखी सं०॥

सचमुच ही यह स्त्री बड़वामुखी अग्निके समान ही धधकती हुई सद्गुणोंको भस्म करनेवाली ऐसी निर्माण भई है। समुद्रमें रहनेवाला बड़वाग्नि तो खाली विशेष जल मात्रको ही शोषण करता है। वहाँ रहनेवाले जीव, जन्तुका वह कुछ हानि नहीं करता है। परन्तु बड़ी विकराल मुखवाली भगमुखी स्त्रियाँ तो उससे बढ़के होती हैं। ये तो पुरुषोंके और स्वयं अपने जीवके भी शत-सहस्रगुणा हानि कर देती हैं। जब मुक्तिमार्गको ही नष्ट कर देती हैं, तब और बाकी क्या रहा? पुरुषोंको दोनों हाथोंके पासमें कसके निचोड़

लेती हैं। ऊपरसे मुख चूमके नीचेसे बल-वीर्यादि शक्तिको खैंच लेती हैं। बुद्धि, विवेक, विचार, वैराग्य, ज्ञान, ध्यान, स्थिरता, पराक्रम, पुरुषत्त्व, धैर्यादि समस्त हंस गुण लक्षणोंको विनाशकर, जन्म-जन्मान्तरके लिये जीवोंको चौरासी योनियोंके चक्रमें डाल देती हैं। ऐसी यह अधम, पापिनी हैं। ऐसा न जानके मूर्ख पुरुष उसीका गुलाम बने रहते हैं। और पतङ्गीके नाईं हो, दिन-दिन विषय भोगके जड़ाध्यासी होके जल मरते हैं। कभी उनके निस्तार नहीं होता है। तहाँ सद्गुरुने बीजक रमैनीमें कहे हैं:— सुनिये !—

रमैनीः— "दिन-दिन जरै जलनीके पाऊ। गाड़े जायँ न उमँगे काहू ॥
कन्धन देई मस्खरी करई। कंहुधौं कौन भाँति निस्तरई ? ॥
अकर्म करै औ कर्मको धावै। पढ़ि गुनि वेद जगत समुझावै ॥
छूँछे परे अकारथ जाई। कहहिं कबीर चित चेतहु भाई ! ॥"

॥ बीजक, रमैनी ५६ ॥

सद्गुरुने अब भी चित्तमें चेत करके बचाव करनेके लिये कहे हैं। नहीं तो नरजन्म व्यर्थ चला जायगा। फिर और अनन्तों जन्म आवागमनमें ही भटकते रहना पड़ेगा। अतएव बड़वाग्नि सदृश भयङ्कर भगमुखी स्त्रीको दुष्ट, दुश्मन जानके उससे दूर हो रहिये। तभी जीवनका सुधार और कल्याण प्राप्तकर सकोगे, सो जानो ॥९२॥

दोहाः—भीतर सब विधि नर्क है। बाहर कीन्ह सिङ्गार ॥
तू नहिं जानत बावरे ! ज्ञान विरोधिनि नार ॥९३॥

संक्षेपार्थः— इस स्त्रीके घट भीतर तो सब प्रकारसे निकृष्ट मल, मूत्रादि नर्क दुर्गन्धी पदार्थ ही सर्वाङ्गमें भरा पड़ा है। खास करके तो नर्कसे बनी हुई यह स्त्री देहकी पुतली है। वहाँ अच्छे पदार्थका तो नाम-मात्र भी नहीं है, यदि ढूँढ़ो तो भी सार कुछ नहीं मिलेगा। परन्तु ये स्त्रियाँ मायाके स्वरूप होनेसे बड़ी धूर्त होती हैं। सब तरहसे भीतर नर्क छिपाया हुआ होनेसे भी बाहर अच्छी-अच्छी सुन्दर कीमती वस्त्रोंसे उस

मल-पेटारीको ढाँक करके नाना तरहसे वस्त्राभूषण पहिर, षोड़श शृङ्गार बनाकर, खूब मन लगायके देहको सजाती हैं। जिसे देखके कामी पुरुष पतङ्गीवत् लुब्ध हो जाते हैं, और स्त्रीके रूप ज्वालामें गिर-गिरके मर जाते हैं। हे मुमुक्षु! यदि तुम स्त्रियोंके असली रूपको नहीं जानते हो, उसके भेदको नहीं पहिचानते हो, तो मैं समझता हूँ कि— तुम सरासर पागल बने हो। क्योंकि, पागल ही उल्टी समझवाले होते हैं। अरे! बावरे! तू क्यों नहीं जानता कि— स्त्री ही आवागमनका कारण, नर्कका घर है! यह स्त्री तो वास्तवमें मुक्ति ज्ञानकी विरोधिनी हैं। यह किसीको भी मुक्त होने देना नहीं चाहती हैं। क्योंकि, नारी ही काल हैं। इसलिये छल, बल, कपट, आदिका प्रयोग करके भवजालमें ही जीवोंको झुलाये रखना चाहती हैं। और मुख्य करके जन्म, मरण, और गर्भवासमें जीवोंको डालनेका काम स्त्रीने अपने हाथमें ले रखा है। यह मनमोहिनी माया देखने-मात्रकी सुन्दरी है, भीतर बड़ी भयावनी है। जिसने ज्ञान-विरोधिनी स्त्रीको भीतर, बाहरसे परखके छोड़ा, वही पुरुष धन्य है! वही मुक्त हो सकते हैं, ऐसा जानके स्त्रीका त्याग करो॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात्, स्त्रियाँ बाहर देखनेके लिये तो बड़ी भारी शृङ्गार करती हैं। उसका वर्णन सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने स्वयं ही बीजक टीकाको हिण्डोला २ में, एक कवित्त कहा है, सुनिये!—

कवित्तः— "नाकमें बेसर रचि, अंगहूँ केसर जामें॥
भौंहकी कमान बिच, अञ्जन रेख लाई है॥
कचमें फुलेल टीका, बेंदी काहु जामें मेल॥
मोतिनके झेलझारी, जरतारी भाई है॥
शोभत विशाल भाल, ताहूपर रेख लाल॥
कर्ण भूषण कण्ठमाल, डोलत छबिछाई है॥

चंपकली पञ्चकली दुलरि, तिलरि मोहनमाल ॥
रत्नमाल मुक्तमाल, भूषित अधिकाई है ॥
कंकन किंकनि मुद्रिका, चमक चूरी ॥
पाँवोंमें नूपूर देई, कामको जगाई है ॥"

और भी कहा है:—

कवित्तः—"नेत्रनके कटाक्ष सो तो, तीर ऐसे लागत आये ॥
बेसरकी मोड़ जैसे, नागिनीसि धाई है ॥
काननके झोंक सो तो, डारत धोख जीवको ॥
त्वचाकी शोभा तड़ित, आँखिन पर छाई है ॥
जीभनकी बातें, करन चाहत जिव घातें ॥
देखि सुर नर मुनि मातें, सो जीवनको भाई है ॥"
भाँति-भाँति वस्त्र धारे, काहु टरत नाहिं टारे ॥
सकल जीव जाहिं मारे, पूर्ण घटा उरमाई है ॥" बी० हि० टीका ॥

ये सब स्त्रियोंके शृङ्गार देखने, दिखानेके लिये मात्र ही झूठा ढोंग है। शृङ्गार करके पुरुषोंके आँखोंमें धूर झोक देती हैं। अरे! उसके भीतर तो सब प्रकारसे मल, मूत्रादि नर्क ही भरा है। इसके सिवाय और कुछ भी नहीं है। दत्तने अवधूत गीतामें कहा है:—

श्लोकः—"अन्तरे नरकं विद्धि कौटिल्यं बाह्यमण्डितम् ॥
ललितामिह पश्यन्ति महामन्त्र विरोधिनिम् ॥" अ० ८। २१ ॥

— हे भाई! जिसे तू बाहरसे सुन्दर देखता है, सो स्त्रीके शरीर-भीतर महान नर्क भरा है, और ऊपरसे भूषित है, तथापि कुटिलता करके संयुक्त वह दुष्ट है, ऐसा तू जान। और इस जगत्में संसारबन्धन-से छूटने-छुटानेके लिये जो कि, महान् मन्त्ररूप, वैराग्य-बोध-विवेक है, उसके विरोधी राग-द्वेषादि विकार संयुक्त स्त्रीको जान ॥

एक इन्द्रायण नामका फल होता है। वह बाहरसे देखनेमें तो सुन्दर दिखता है, किन्तु भीतर बड़ा खराब बदबू आनेवाला होता है। ठीक इसी प्रकार स्त्री भी भीतरसे अपवित्र नर्कसे भरी

हुई तथा कुटिलतासंयुक्त है। बाहरकी सुन्दरता बनावटी तो झूठी है। सद्गुणोंके विरोधी दुर्गुणोंके साथी होती है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि, उसे दूरसे ही त्याग दे। धोखामें पड़के कभी न भूले।

सर्वथा नर-नारीके शरीर महामलीन हैं। तहाँ सुन्दरविलासमें कहा है:—

छन्दः— "जा शरीर माँहि तू, अनेक सुख मानि रह्यो ॥
ताहि तू विचार यामें, कौन बात भली है ॥
मेद मज्जा मांस, रग-रगमें रक्त भर्यो ॥
पेटहू पिटारीसीमें, ठौर-ठौर मली है ॥
हाड़नसूँ भर्यो मुख, हाड़नके नैन नाक ॥
हाथ पाउँ सोऊ सब, हाड़नकी नली है ॥
सुन्दर कहत याहि, देखि जनि भूलै कोई ॥
भीतर भङ्गार भरी, ऊपर तो कली है ॥" सुन्दर विलास ॥

सवैयाः— "हाड़को पिंजर चाम मढ्यो सब, माहिं भर्यो मल-मूत्र विकारा ॥
थूक रु लार परै मुखते पुनि, व्याधि बहै सब औरहु द्वारा ॥
थूक रु लार भर्यो मुख दीसत, आँखिमें गीड़र, नाकमें सेंढो ॥
औरहु द्वार मलीन रहै अति, हाड़ रु मांसके भीतर भेढो ॥"

इस प्रकार स्त्री चाहे बाहर कितने भी शृङ्गार करे, उसके भीतर तो सब तरहसे तुच्छ नर्क ही भरा है। अरे दिवाने! तू ऐसा यथार्थ जानके स्त्रीका त्याग क्यों नहीं करता है! गुरु ज्ञानका विरोध करनेवाली नारी नर्कमें ले जानेवाली काल या महाकाली बनी है। अब भी उसका भेद जानके उसे त्यागदो, तभी जीवकी भलाई होगी ॥ ९३ ॥

**दोहाः—क्यों नहीं जानत चित्त तू! भग है बन्धन रूप ॥
दुर्गन्धित अतिशय मलिन। जाय परत तेहि कूप॥ ९४ ॥**

संक्षेपार्थः— अरे! भग-भोगना तो सब प्रकारसे भवबन्धनोंमें ही जकड़ पड़ना है। हे मेरे चित्त! ऐसे असली भेदको तूँ अब भी

क्यों नहीं जान लेता है ? और अतिशय मलिन, दुर्गन्धित जो भग-कूप है, उसी नर्कमें जा-जाके क्यों अन्धे होके गिर पड़ता है ? अब तो भी सब प्रकारसे भग-भोगोंको महान बन्धनके रूप जानकर सर्वथा छोड़ दे। नहीं तो चौरासी योनियोंमें जाके महान कष्ट भोगते रहना पड़ेगा, सो जानले ॥

॥ ❋ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ❋ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात्, अरे भाई ! चित्तमें ठीक तरहसे विचार करके तू इस बातको क्यों नहीं जान लेता है कि, स्त्रीका भग-भोग सब प्रकारसे बन्धनका ही रूप है। हे मूर्ख ! तूने उसे क्या अच्छी चीज समझ रखा है। मालूम पड़ता है, तुम मनुष्यके खाल ओढ़े हुये पशु ही बने हो ! तभी तो अतिशय मलिन, महान् दुर्गन्धित सड़ी हुई मैलाके समान बदबू आनेवाली, ऐसे भगकूपमें जाय-जायके गिर पड़ते हो। विचार सागर तरङ्ग पाँचमें कहा हैः—

"अहो ! मूढ़को मम सम जगमैं। भो लम्पट अब लग मैं भगमैं॥" वि० सा० त० ५॥

और तुम पशुवत् भग-भोगके मैलामें लथपथ होते हो। महा-अज्ञानके कारण जैसे पशुको शुद्ध, अशुद्धका कुछ ज्ञान नहीं होता है। मल-मूत्रादिमें ही सदा सना रहता है। तैसे ही हाल विषयासक्त पुरुषोंकी भी हो जाती है। पवित्र, अपवित्रका उन्हें कुछ भी ख्याल ही नहीं रहता है। वाममार्गी लोग तो कुत्ते, सूअरके समान नीच होते हैं। उनकी बात तो जाने दो, परन्तु तुम तो धर्मात्मा, सज्जन, भक्त, ज्ञानी, और साधु होनेका दावा करते हो न ? फिर भग-भोगको बन्धन जानके क्यों नहीं छोड़ते हो ? अभी तो तुम्हारे चित्तमें बहुत-सी कामादि विकार भरी हैं। तुम्हें अपरोक्ष पारखबोध हुआ नहीं; इसलिये बार-बार अत्यन्त मलिन दुर्गन्धयुक्त होते हुए भी उसीमें धाय-धायके भग-कूपमें पतित होते हो। याद रखो ! ऐसा ही हाल तुम्हारा रहा, तो फिर अनेकों जन्मतक, तुम्हें उसी अन्धेरी कूवाँ गर्भवासको जाते रहना पड़ेगा। अतएव हे मुमुक्षुओ ! अभी चेत करो, भगको बन्धन-

रूप जानके उसके आसक्ति सर्वथा छोड़ दो। दिलमें सदा उपराम बनाये रखो, तभी मुक्त हो सकोगे ॥ ९४ ॥

दोहाः—ऐसो मलिन विचारिके । ज्ञानिन त्यागो सोय ॥
ताहि जीव नित चाहै । महा विडम्बन होय ॥ ९५ ॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! इस प्रकारसे भग-भोगको ऐसे अत्यन्त मलीन, निकृष्ट नर्कके खानी विचार करके ज्ञानियोंने और विवेकी साधु, वैराग्यवानोंने सो उसे सर्वथा परित्याग कर दिये हैं। और मुमुक्षुओंके लिये भी स्त्री भोग त्यागनेको कह रहे हैं। परन्तु उधर संसारमें देखो, अज्ञानी नरजीव उसी स्त्रीकी भोग-विलासको नित्य चाहते हैं, रोज ही भोग करते हैं। देखो ! यह बड़ी आश्चर्यकी वात है। महाविडम्बन = विपरीत या उल्टी काम हो रही है, उसी कारणसे जीव चौरासी योनियोंमें जाके त्रयताप जन्म, मरणादि दुस्सह दुःख पा रहे हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात्, ज्ञानी और अज्ञानी तथा त्यागी और भोगियोंकी चाल एकदम उल्टी होती हैं। इसलिये जो बात ज्ञानी लोग निषेध करते हैं, सोई बात अज्ञानी लोग ग्रहणकर लेते हैं। जैसे मल, मूत्रादिको मनुष्य खराब, त्याज्य समझके फेंक देते हैं, और उसीको कुत्ते, सूअर आदि पशु, पक्षी अच्छा समझके खा लेते हैं। और रोज ही मैला खानेके लिये चाहते रहते हैं। जहाँ सूअर होते हैं, उस जगह कोई मैदानमें टट्टी करनेको बैठे, तो वे देखते रहते हैं, फिर पास-पासमें आते जाते हैं, इधर टट्टी, मैला बाहर निकला कि— मौका पाते ही झट सूअर आके उसे बड़ी खुशीसे खा लेते हैं। उसी मैला खानेके लिये सूअर परस्पर लड़ते-भिड़ते भी हैं, बस ! यही हाल विषयी पुरुषोंकी भी हो रही है। परन्तु मैला खाके तो उस सूअरका पेट कुछ भर भी जाता है, और इधर भग-भोगके तो न किसीके

पेट भरे, न इच्छा मिटै । इसलिये भोगी पुरुषोंका दर्जा उन कुत्तों, सूअरों, गधोंसे भी गये बीते नीचे होते हैं ।

पीब भरा हुआ तालाव, मुर्दे सड़े हुए गटर, सड़ी हुई चमड़ेकी कूप, मूत्रकी नदी, विष्ठाका समुद्र, रक्त, मांसादि घृणित वस्तु गज-बजाता हुआ विशाल दुर्गन्ध उठनेवाला नर्ककुण्ड, महामलीन, ऐसे असलियतको विचार करके तुच्छ, जहर, जान करके विवेकी, ज्ञानी, पारखी सन्तोंने सोई भग-भोग स्त्रीका सङ्ग-साथ, विषय-विलासादि रागको एकदम त्याग दिया है, और मुक्ति चाहनेवालोंको भी, उसे त्यागो, दृढ़ वैराग्यको धारण करो, ऐसा उपदेश दिया है, और त्याग-वैराग्यका उपदेश अभी भी सन्त, महात्मा लोग दे ही रहे हैं, विषय भोगोंमें बहुत-सा दोष दिखा ही रहे हैं। परन्तु इतना होनेपर भी जीवोंको बोध, वैराग्य दृढ़ नहीं होता है, बड़े अभागे लोग हैं । वर्षोंतक गुरुका उपदेश सुनके भी स्त्री-भोगमें दोष समझते नहीं, जटिल मूर्ख ही बने रहते हैं । जैसे जान-बूझके विष खानेवाला भी तड़फ-तड़फके मरता है, और न जानके खानेवाला भी मरता है । तैसे ही समझ-बूझके विषय भोगनेवाला भी मजबूत चौरासी योनियोंके बन्धनोंमें ही गिर पड़ता है, और न समझके भोगनेवाला भी गिर पड़ता है ।

सद्गुरुने कहा है:—

"जानि बूझि जो कपट करतु है । तेहि अस मन्द न कोई ॥
कहहिं कबीर तेहि मूढ़को । भला कौन विधि होई ?" ॥बी० शब्द ५८॥

तहाँ अज्ञानी लोग तो नर-पशु ही बने हैं । उनके लिये तो क्या कहना ? । यहाँ अफसोस तो उनके लिये है, जो गुरुका शिष्य सत्सङ्गी कहलायके भी कामी, विषयासक्त हो रहते हैं । कितनेक तो एक स्त्रीसे भी तृप्त न होके दो-तीन और कईयेक स्त्रियाँ भी बनाय लेते हैं, उन्हें तो गधोंसे भी गया बीता जानना चाहिये । और कोई साधुका भेष लेके भी छिपे-छिपे व्यभिचार, स्त्री-भोग करते फिरते हैं, उन्हें धिक्कार है ! सैकड़ों-सहस्रों बार धिक्कार है ! उन पापियोंको; जिसके कारण

भेषमें भी कलङ्क लग जाता है। जिसे ज्ञानीजनोंने मलिन जानके परित्याग किया, उसी मैलाको वा स्त्री-सम्भोगको समस्त अज्ञानी नर-जीव नित्य ही भोगना चाहते हैं, उसके लिये छल, कपट करके नाना प्रयत्न करते हैं। यही तो महान् विडम्बना हो रही है। बिलकुल उल्टी बात हो रही है। अवधूत गीतामें भी कहा हैः—

श्लोकः— "अज्ञात्वा जीवितं लब्धं भवस्तत्रैव देहिनाम् ॥
अहो जातो रतस्तत्र अहो भव विडम्बना ॥" अवधूत गीता८।२२॥

—अपने स्वरूपको न जानकर विषयाध्यासी होनेसे जीव स्त्रीके गर्भमें जाकर फिर जन्म लेके आया। नरदेह पाके कल्याण-पथमें तो लगना था, जिससे मुक्ति लाभ होती। परन्तु जिससे जन्म हुआ, फिर उसी स्त्रीमें, प्रेम लगाके भोग करनेमें प्रवृत्त हुआ। यही आश्चर्य-पर महाआश्चर्य विडम्बना होती है कि, देहधारी नरजीवोंकी विषया-सक्ति कितना प्रबल है। वन्धनरूप होनेपर भी उसे नहीं छोड़ते हैं। उलट-उलटके उसीमें लगते हैं ॥ बड़ी कठिनाईसे विषयवासना छूटती है, सो भी त्याग, वैराग्यके अभ्यास दृढ़ करनेपर ही हो सकती है। विषयी लोगोंका संसर्ग और स्त्रीके साथ रहनेवालोंकी वासना छूटती तो नहीं, बल्कि कई गुनी ज्यादा ही होके बढ़ जाती है। अतएव मुमुक्षुओंने सदा वैराग्यवानोंके सत्सङ्गके घेरामें ही रहकर विषयी लोगोंके कुसङ्गसे सदा दूर ही रहना चाहिये ॥ ९५ ॥

दोहाः—तत्र मूत्र जो रमत है। देव दैत्य नर कोय ॥
ते निश्चय नर्के गये। संशय करो न कोय ॥ ९६ ॥

संक्षेपार्थः— मूत्र, रक्तादि बहनेवाला, स्त्रीके उस भगद्वारमें त्रिगुणी मनुष्य, देवता, दानव और मानव या नरजीव जो कोई भी भोग-विलासमें प्रेम बढ़ायके, स्त्री-सम्भोग करके, उसमें रमण करते हैं। निश्चय करके वे सब नर्क भोग रहे हैं, और मर करके नर्क-कुण्डरूप गर्भवासमें ही चले गये और जावेंगे। इसमें कोई तनिक

भी संशय न करो, "जहाँ आशा तहाँ बासा" अवश्य ही होता है, ऐसा जानो ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात्, हे सन्तो! तत्र = वहाँ मूत्र स्थानमें जो रमण करते हैं। वे अवश्य ही नर्कबासी जीव हैं। जैसे मैलेके कीड़े मैलेमें ही उत्पन्न हों, वहीं क्रीड़ा करके वहीं मरते, जन्मते रहते हैं। तैसे ही भगद्वारसे निकलके पुनः उसी भगका भोग करके रमनेवाले कोई भी हों, चाहे साधारण नर या पुरुष मनुष्य हों, पण्डित हों, राजा-महाराजा हों, चाहे दैत्यकुलोत्पन्न हों, चाहे देवता कहलानेवाले हों, चाहे देवताओंके राजा इन्द्र हों, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ही कोई क्यों न हों, विवेकदृष्टिसे देखिये! तो वे भग-भोगनेवाले नर्कगामी, नर्कबासी ही हुये हैं, और निश्चय करके वे सब कामासक्तिके वश शरीर छूटनेपर भी नर्क स्थान या गर्भवासमें ही चले गये और जा ही रहे हैं। इसमें कोई संशय करनेकी जगह ही नहीं है। यह यथार्थ कथन है। ऐसे ही दत्तने भी अवधूत गीतामें कहा है:—

श्लोकः— "तत्र मुग्धा रमन्ते च सदेवासुरमानवाः ॥
ते यान्ति नरकं घोरं सत्यमेव न संशयः ॥" अ० गीता ८। २३॥

—स्वरूप ज्ञानके बिना जिस स्त्रीके गर्भवासमें पहिले रहके भगद्वारा जन्म लेके आया, पुनः तिसी स्त्रीमें मोहित हो करके मूढ़ बुद्धिवाले देवताओं, और असुरों तथा मनुष्योंके सहित सब पुरुष वहाँ ही रमण करते हैं, और भोग-विलासकर ही रहे हैं। वे सब अन्तमें निश्चय करके घोर नरकमें ही चले जाते हैं, इसमें संशय नहीं है, यह सत्य वाक्य है ॥

भगकी आसक्तिसे फिर भगद्वारा गर्भवासको ही प्राप्त होते हैं, भला! इसमें सन्देह ही क्या है?। पञ्चग्रन्थीमें कहा है:—

चौ०:—"जो जहाँ प्रीति अटल है जाके। बासा तेई तहाँ है ताके ॥" पञ्चग्रन्थी ॥

और बीजक रमैनीमें भी कहा है:—

"कबहूँ न भयउ संग औ साथा। ऐसेहिं जन्म गमायउ आछा॥ १॥
बहुरि न पैहो ऐसो थाना। साधु सङ्गति तुम नहिं पहिचाना॥ २॥
अब तोर होइहैं नर्क महँ बासा। निशिदिन बसेउ लबारके पासा॥" बी० र० ४४॥

और भी कहा है:—

"नरक रचे नरकको कीड़ा। चन्दन ताहि न भावै जू॥" सु० वि०॥

नरकके कीड़ोंके सिवाय दूसरा कोई नर्कमें नहीं सुख मान सकते हैं। जैसे चामके कीड़े वहीं उत्पन्न होके उसीमें आनन्द मानते हैं। तैसे ही विषयासक्त पुरुष भी मूत्र, लोहू आदि बहता हुआ, योनि द्वारासे निकलके फिर भी उसीमें रमण करते रहते हैं। निःसन्देह निश्चयसे यह जानो कि, वे जैसे पहले नर्कमें गये थे, वैसे फिर भी वे भगभोक्ता लोग उसी नर्क स्थानमें जावैंगे। जितनी बार जितने स्त्रियोंसे भोग किये हैं, उतनी बार, उतने सब स्त्रियोंके गर्भमें जाके जन्म लेवेंगे। इसी तरह चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़ा करेंगे। अतएव मनुष्यको चाहिये कि, भगभोगको छोड़के, विरक्त शुद्ध साधु हो जावें। तभी मनुष्य जन्म पाया हुआ सफल होवेगा॥ ९६॥

दोहा:— अग्निकुण्ड सम नारि है। घृत समान नर होय॥
छूवते पिघलत तुरित। ताते बर्जित सोय॥९७॥

संक्षेपार्थः— हे जिज्ञासुओ! यहाँ उपमामें स्त्रियाँ धधकती हुई अग्निके कुण्ड-समान हैं। वह रूप ज्वाला यौवनमें प्रज्वलित होती हैं, और घी भरा हुआ घड़ेके समान, पुरुष घट बना है। अतः स्त्रीके छूते ही पुरुषके मन काम-ताप करके तुरन्त ही पिघल जाता है। जैसे अग्निके तापसे घी पिघलके फौरन टपकने लगता है। तैसे स्त्रीके स्पर्शसे वीर्यपाततक हो जाता है। इसवास्ते अपने वैराग्यको दृढ़ रखनेके लिये साधकोंने कभी, किसी प्रकारसे भी स्त्रीका स्पर्श न करे। वैराग्यवानोंने, साधुओंको स्त्रियोंको छूने तथा स्त्रियोंसे शारिरीक सेवा करानेको सर्वथा अनुचित बतला-

के उसके लिये वर्जित=मनाही किया है, सो इसको ध्यानमें रखना चाहिये ॥

॥ ※ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ※ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—अर्थात्, अग्निकी उष्णत्त्व और घीका द्रवत्त्व स्वभाव होता है। इसलिये अग्निकी आँच पानेसे घी तुरन्त ही पिघल जाता है। अगर घी उसी अग्निमें गिर पड़े, तो ज्वाला और भी प्रचण्ड हो जाती है, और लपटसे सारे घीके घड़ेको जलाके स्वाहाकर देती है। इसी प्रकार यहाँपर जलता हुआ अग्निकुण्डके समान स्त्री है। उसके शृङ्गार, हाव, भाव, कटाक्ष, नखरा, नाना प्रकारके चाल, कुचाल सोई अग्निके लपटोंके समान निकलते रहते हैं, और जमा हुआ घीके घड़ाके समान पुरुषका स्वभाव होता है। कदाचित् स्त्री-पुरुषका पकड़ावरूप स्पर्श हुआ, तो चाहे वह कैसा ही साधु, सन्त ही क्यों न होवे, पूर्व संस्कार उदय होके फौरन ही पुरुषका तन, मन पिघल जाता है, उसी ओर आकर्षित हो जाता है, बिजलोके करेंट-सी चमक सारे शरीरमें दौड़ जाती है, रोमाञ्च हो आता है, मनसे विवेक, विचार गायब हो जाते हैं, कामासक्ति बढ़ जाती है, यदि वहाँ उपयुक्त समय मिला, तो समय मिलनेपर सारे त्याग, वैराग्यको तिलाञ्जलि देकर भग-भोगनेमें भी तत्पर हो जाते हैं। जिससे नैतिक पतन तो हो ही जाता है, और भेद खुलनेपर लोकमें हँसी, निन्दा, अपमान भी होने लग जाता है; पीछे वे नष्ट, भ्रष्ट होके पशुसे भी बदतर कुचाल करके कालके गालमें समा जाते हैं। अतः स्त्रीका स्पर्शसे अधःपतन होनेका भय लगा रहता है और कितनेक तो पतित भी हो जा चुके हैं, और कितनेक अभिमानी अविचारी साधुवर्ग भी इसी तरहसे पतित भये हैं। पहले तो वे समझते हैं, कि—हम त्यागी, वैरागी हैं, हमें कोई आसक्ति नहीं। फिर पीछे—"हमने आपके मायाको जीत लिया"—कहकर पीछे नारदके पतन होनेके सरीखी उनकी भी दुर्दशा हो जाती है।

वे बाबाजी, उपदेशक बनके जहाँ-तहाँ मनमाने घूमते हैं, देश-विदेशमें जाते हैं, बहुतेरे स्त्रियोंको चेलियाँ बनाते हैं। कोई-कोई लोग तो स्त्रियोंको भेष देके साधुनी बनाके उसे साथ-साथ लेके फिरते भी हैं, कोई उन्हें ही भण्डारी बनाते हैं। तहाँ पहिले कुछ दिनतक तो हाल ठीक ही रहता है। फिर पीछे नित्यके सहवाससे मोहमें आकर्षित हो जाते हैं, और गीतावाली बाबाकी नाईं दुर्दशा-ग्रस्त हो जाते हैं। नारी-पुरुषोंके घट स्वभावका परस्पर खिंचाव तो अनेकों जन्मसे लगा ही हुआ रहता है, सो अंकुरित होता है। स्त्रियोंके प्रार्थना करनेपर कि "—सेवा बिना हमारा कैसे कल्याण होगा ?"—वे कच्चे मूढ़ साधु प्रसन्न होके उनसे अयोग्य रीतिसे शारीरिक सेवा भी कराने लगाते हैं। जैसे कि, स्नान कराना, कौपीन आदि कपड़े धुलाना, तेल लगवाना, हाथ-पैर, आदि सर्वांग दबवाना, इत्यादि करानेसे उन दोनोंका मन विकारी, कामासक्त हो जाता है। जिससे—"छूवते पिघलत तुरित" होके मैथुन सम्बन्ध तक भी होने लग जाता है, और सदाके लिये उनका महानपतन हो जाता है। इसलिये साधुओंको आलसी होके कभी कुचालका बर्ताव नहीं करना चहिये। ऊपर लिखीहुई शारीरिक सेवा स्त्रियोंसे करानेके लिये सख्त मनाई हैं। स्त्रियोंको छूने देनेतकके लिये भी पतनके कारणरूप बीज होनेसे सद्गुरुने मनाई किये हैं। गुरु नियमके सीढ़ीसे उतरनेवालेका फिर कभी किसी तरह भी भलाई नहीं हो सकती है। सद्गुरुने बीजक साखीमें कहे हैं:—

साखी:— "गुरु सीढ़ीते ऊतरे। शब्द बिमूखा होय ॥
ताको काल घसीटि हैं। राखि सकै नहिं कोय ॥" बी० सा० २८६ ॥

सद्गुरुकी शिक्षा— नियमकी सीढ़ीसे कभी उतरना नहीं चाहिये। मैं विशेष विद्वान् वा बोधवान हूँ, समझके जो गुरुके नियम छोड़ेंगे, वे ही अवश्य पतित होंगे। बहुतेरे इसी तरह नष्ट, भ्रष्ट हो भी चुके हैं। ऐसा जानके सावधानी रखना चाहिये। दत्तने भी कहा है:—

सं० नि० षट्० ४८—

श्लोकः—"अग्निकुण्ड समानारी घृतकुम्भसमो नरः ॥
संसर्गेण विलीयेत तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥" अ० गीता ८। २४ ॥

—जलती हुई अग्निके कुण्डके समान स्त्री है, और घृतके कुम्भके समान पुरुष है। नारीके सम्बन्ध होनेसे नर पिघल जाता है। (तथा पतन भी हो जाता है) तिसो कारणसे उस स्त्रीको मुमुक्षु पुरुषोंने परित्यागकर देवें ॥ और अग्नि पुराणमें भी कहा है:—

तप्ताङ्गारसमा नारी घृत कुम्भसमः पुमान्। तस्मात् घृतं वह्निं नैकत्र स्थापयेद् बुधः ॥
घृत कुम्भोऽग्नि योगेन द्रवते न तु दर्शनात्। पुरुषो दर्शनादेव द्रवते यद्विमोहितः ॥

—स्त्री तप्त अङ्गारके सदृश है, और पुरुष घृतके घड़ेके समान है। इसलिये बुद्धिमानको चाहिये कि, घृत और अग्निको कभी एकत्र न रक्खे, अर्थात् साथमें स्त्रीको कभी न रखे ॥ और घीका घड़ा अग्निके संयोगसे पिघल जाता है, किन्तु अग्नि देखनेमात्रसे पिघलता नहीं। परन्तु यहाँ पुरुष तो स्त्रीको देखनेमात्र हीसे भी मोहित होकर पिघल जाता है ॥ इससे अग्निसे भी बढ़कर सन्ताप देनेवाली स्त्री है। अतः स्त्री-संसर्गसे सदा दूर ही रहना चाहिये ॥

और आत्म पुराण अध्याय ७ में कहा है:—

"विलीयते घृतं यद्वदग्नेः संसर्गतस्तथा ॥ नारी संसर्गतः पुंसोधैर्यंनश्यति सर्वथा ॥"

— जैसे अग्निके सम्बन्धसे घृत पिघल जाता है, तैसे ही स्त्रीके संसर्गसे पुरुषको धीरता भी नष्ट हो जात है ॥

श्लोकः— "एक एव प्रतीकारो नारी सर्प विषे भुवि ॥
आसाङ्ग स्मरणं तद्वद्दर्शनादेश्च वर्जनम् ॥"

— पृथ्वीतलमें स्त्रीरूपी सर्पके विषके हटानेका एक ही उपाय है, स्त्रियोंके रूपका स्मरण न करना और उनके दर्शन आदिकोंका न करना ॥

"वासना यत्र यस्यस्यात्स तं स्वप्नेषु पश्यति। स्वप्नवन्मरणे ज्ञेयं वासनातो वपुर्नृणाम् ॥"

— जिसमें जिसकी वासना रहती है, सो उसको वह स्वप्नमें भी दीखता है, स्वप्नकी तरह मरणमें भी जान लेना। मरणकालमें

जिसकी वासना जिसमें रहती है, उसीको वा उसीरूपको वह प्राप्त होता है। क्योंकि, वासनामय ही इसका शरीर बना है॥ कामी पुरुषोंके और स्त्रियोंके सङ्गसे पुरुष भी कामी हो जाता है। और जन्मान्तर तथा देहान्तरमें भी क्रोधी, लोभी, मोही ही हो जाता है॥

इसलिये वैराग्यमें पदार्पण करनेवाले जिज्ञासु साधुओंको चाहिये कि— सदा सचेत रहें। अकेले स्वतन्त्र होकर मनमाने कभी कहीं न घूमें। सेवकोंके घरमें भीतर कभी अकेला न सोवें। दो-चार मूर्ति विरक्त सन्तोंके साथ ही चलैं रहैं। अपने देहके समस्त कार्य स्वयं ही कर लेवें और नारियोंसे तो कभी देहकी सेवा न करावें जहाँतक हो नारीके साथ स्पर्श न हो, इस बातका ध्यान रखें। क्योंकि, नारीको छूने-छुवानेसे मन विकारी हो जाता है, सम्भव है अधः-पतन भी हो जाय। इसलिये वैसा करना सर्वथा वर्जित है, और त्याग, वैराग्यसहित जीवनको बितावें। सदा अष्ट मैथुनोंको बाहर भीतरसे बचाते रहैं। पारखी सद्गुरुके नियम, आज्ञापूर्वक निराश वर्तमानमें बर्तें। इस तरह अपना हित कल्याण करैं। इसी प्रकार सब साधुओंने सद्‌गुण रहनीयुक्त वर्तना चाहिये ॥ ९७ ॥

दोहाः— गुड़ महुवा और दूधकी । तृतिया मदिरा जान ॥
चौथी मदिरा नारि है । मोहा सकल जहान ॥९८॥

संक्षेपार्थः— शराब बनानेवाले लोग तीन प्रकारसे मदिरा बनाके तैय्यार करते हैं। प्रथम— गुड़सड़ाके, जौका आटा आदि मिलाके सड़ जानेपर अर्क निचोड़ लेते हैं। दूसरा— दूधकी मदिरा भी उसी तरह दूध, फाड़के सड़ जानेपर, रस निकालके बनाते हैं। और तीसरा— महुवेको भी आठ-दसदिन पानीमें सड़ाके, उबालकर मसलके रस गार कर शराब बना लेते हैं। जो कि, मादक होनेके साथ-साथ बड़ी नशीली हो जाती है। संसारमें ऐसे मुख्य तीन प्रकारसे मदिरा बनाते हैं। उनमें नशा होती हैं, परन्तु जो उसे पीते

हैं, उन्हें ही उसका नशा चढ़ता है। किन्तु दूर रहके उसे देखनेवाले, न पीनेवालेको उसकी नशा कदापि नहीं चढ़ती है। उसके विपरीत चौथी बड़ी जबदस्त मदिरा सो स्त्री है। जो आप ही पापके कारणसे नारी बनके तैयार हुई है। उस मोहिनीको तो दूरसे देखनेमात्रसे भी मोहका नशा पुरुषोंपर चढ़ जाता है, जिससे पुरुष कामी होके दिवाना हो जाते हैं। इस स्त्रीरूपी मदिराने तो संसारके सकल पुरुष वर्गको मोहित, अचेत ही कर डाला। ऐसी यह बड़ी नशीली है। कोई बिरले ही सन्त पारखी जिन्होंके घटमें पारख अमृत भरा है, उन्हें ही इसके नशा नहीं चढ़ता है। नहीं तो और सकल जहानको इसने मोहितकर लिया है ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात्, कलवार लोग मुख्यतया तीन प्रकारके भेदसे शराब बनाते हैं। गुड़की, महुवाकी और दूधका सड़ा हुआ रस निचोड़कर मदिरा बनाते हैं। वह पदार्थ कुछ दिनतक सड़ानेसे उसमें एक प्रकारका नशा और दुर्गन्ध उत्पन्न हो जाता है। मदिरा पीनेवाले मस्त होके बेकाबू हो जाते हैं। उनकी सुधि— बुधि खो जाती है। आवँ-बावँ बकते, झकते, उत्पात मचाते, फिर कहीं गिरके अचेत हो जाते हैं। कहीं नालीमें, मल, मूत्रादिके बुरे स्थानमें भी पड़े रहते हैं। कुत्ते आके उनके मुख चाटके मूत्र छोड़के चले जाते हैं, तो भी उन्हें कुछ खबर नहीं रहता है। मदिरा पीनेवालोंकी ऐसी-ऐसी बहुतसी दुर्दशा होती हैं; और न पीनेवालोंके ऊपर उसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता है। परन्तु चौथा नम्बरमें नारी ऐसी मदिरा है कि— जिसे देखनेमात्रसे भी कामका नशा चढ़के सकल संसारके विषयी पुरुष मोहित हो जाते हैं, फिर स्त्रीके गुलाम और स्त्री-पशु ही हो जाते हैं, घर-घरमें सबकी आराध्य देवी, स्त्री ही मनमोहिनी बनी हैं; पुराणमें लिखा हैः— समुद्र मथनसे निकला हुआ एक अमृत-कलशाको जब

दानवगण छीनके ले गये, तब देवताओंकी सहायताके लिये, त्रिभुवन-मोहिनी एक स्त्री आई। उसने हाव, भाव, कटाक्ष चलाकर बात ही बातोंमें दैत्योंको भुलाके अमृत बाँटनेके बहाने लेली। फिर ऐसी माया फैलाई कि, सब अमृत देवगणोंको पिला दिया और शराब लाके दानवगणोंको पिला दिया, जिससे वे उन्मत्त हो गये, और वह स्त्री भाग गई। फिर एक समय मोहिनीके रूपको देखके महादेव ऐसे पागल भये कि, साथमेंकी पार्वतीको भी छोड़कर नङ्गे ही उसके पीछे दौड़ पड़े, बड़ी दुर्दशा भोगा। फिर मोहिनीके नकल करनेसे भस्मासुर भस्म हो गया। इस प्रकारसे देवगण, दानवगण, और मानवगण समेत् समस्त जगत्में पुरुष वर्गको स्त्रीने मोहित कर रखा है। ऐसी यह बड़ी तीक्ष्ण नशावाली नारीरूप चौथी मदिरा है। ऐसे ही दत्तने भी अवधूत गीतामें कहा है:—

श्लोकः— "गौड़ी पैष्टी तथा माध्वी विज्ञेया त्रिविधासुरा ॥
चतुर्थी स्त्री सुरा ज्ञेया ययेदं मोहितं जगत् ॥" अ० गीता ८। २५॥

—संसारमें मुख्य तीन प्रकारकी शराब बनती हैं, एक गुड़की, दूसरी जौ आदिके आटोंकी, उसी प्रकार तीसरी महुवेकी मदिरा होती है, ऐसा जानो। चौथी शराब स्त्रीको जानो। जिस स्त्रीरूपी मदिरा करके यह जगत् सब मोहको प्राप्त हो रहा है॥

अर्थात् उपरोक्त तीनों शराब तो पीकर नशा करती हैं। परन्तु स्त्री-रूपी मदिरा तो ऐसी विचित्र है कि, देखनेमात्रसे ही पुरुषोंको उन्मत्त कर देती है॥ प्रश्नोत्तरीमें भी कहा है:—

श्लोकः—"पाशो हि को यो ममताभिधानः, सम्मोहयत्येव सुरेव का स्त्री ॥
को वा महान्धो मदनातुरो यो, मृत्युश्चको वा पयशः स्वकीयम् ॥"प्रश्नो० ६॥

प्रश्नः— पाशरूप बन्धन क्या है ?

उत्तर—ममता है, सोई पाश है ॥

प्रश्न—मदिराके समान मोह उत्पन्न करनेवाली कौन है ?

उत्तर— ऐसी स्त्री ही है ॥

प्रश्न— महाअन्ध कौन है ?

उत्तर— जो कामातुर है, सो महाअन्धा है ॥

प्रश्न— मृत्यु क्या है ?

उत्तर— अपना अपयश ही मृत्यु है ॥

छप्पयः— "फाँसी कौन महान् ? खानी दुःखकी कहलाती ? ॥
ममता फाँसी जान, योनिनाना भटकाती ॥
मदिरा जैसा मोह, कौन देखत उपजावै ? ॥
तीक्ष्ण मदिरा नारि, ज्ञान विज्ञान नशावै ॥
महाअन्ध जग कौनसा ? कामातुर नर जानिये ॥
मृत्यु क्या कहलाय है ? अपयश मृत्यु मानिये ॥

विचारसागर तरङ्ग पाँचमें कहा है:—

चौ०:—"नशै मदन मदते मति नरकी । लखत न ऊँच नीच पर घरकी ॥ ६५ ॥
प्रबल काम मदिरा मद जागै । तब द्विज तिय धानकते लागै ॥ ६६ ॥
पिये मदन मदिरा नर नारी । ऐसे करत अनन्त खुवारी ॥"
"इष्ट मदा नारी मदिरा भजि । शुद्ध अशुद्ध विवेक दियो तजि ॥" वि०त० ५ ॥

इस प्रकार स्त्री सबको मोहित करके पतित करनेवाली ऐसी मदिरा है । ऐसा जानके सदा स्त्रियोंकी तरफ तिरस्कारके भाव बनाये रखे, और वैराग्यको दृढ़ करता रहै ॥ ९८ ॥

दोहाः— मदिरा नारी कुटिलनी । दोउ त्यागिये मीत ! ॥
अश्वस्थित करै चित्तको । नर्क दाइनी नीत ॥ ९९ ॥

संक्षेपार्थः—हे मित्र ! हे मुमुक्षुओ ! यदि अपना कल्याण तुम लोग चाहते हो, तो शीघ्रातिशीघ्र मदिरा पीना, मांस आदि अभक्ष खाना, और कुटिलनी स्त्रियोंका सङ्ग, साथका निवास करना, पहिले इसे भीतर, बाहरसे दोनों तरफसे एकदम परित्याग कर दो । क्योंकि, उससे सिवाय हानिके तो लाभ कुछ है नहीं । मदिरा और नारी, ये दोनों बड़ी खराब निकृष्ट चीज हैं । वे स्वस्थ चित्तको भी फौरन

अस्वस्थ = रोगी, चञ्चल, दुःखी कर देती हैं। नित्य ही चित्त विचलित रहता है, इससे चित्त स्थिरता होनेका सुख जीवको कभी होने नहीं देती है । और अन्तमें नित्य, सत्य जीवको जड़ाध्यासी बनाय, नर्ककुण्ड चौरासी योनियोंके गर्भवासमें डाल देती है; ऐसे यह नर्क-दाइनी हैं, ऐसा ज्ञानके अब तो भी उन्हें त्याग कर दो, जागो ! गुरु-सत्सङ्गमें लागो ! ॥

॥ ※ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ※ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात्, मदिरा पीनेवालेका और कुटिल, छली, कपटी, ठगिनी स्त्रियोंसे प्रेम करके, उनके साथ रहनेवालोंका चित्त कभी भी स्थिर नहीं रह सकता है । क्योंकि, चित्तको अस्वस्थ, दुर्बल, चञ्चल करनेका दुर्गुण पूर्णतासे उनमें भरा है । इतना ही नहीं, जीवोंको नर्कदाइनी वे ही हैं । जैसे घोड़ा अपने जोशमें आके अत्यन्त चञ्चल होता है । तैसे ही मद्यपी और स्त्री-सङ्गियोंका मन भी अति चञ्चल ही बना रहता है । यदि कोई शराब पीके भग-भोगमें लगता है, तो फिर उसकी दुर्दशाका क्या पूछते हो ? सब प्रकारसे वह पतित ही हो जाता है, नर्कमें ही वह नित्य-नित्य भटका करता है, नाना दुःख भोगके मरा करता है । उस अधमका कभी निस्तार नहीं होता है । मदिरा पीकर नशा चढ़नेके कारण क्रोध बढ़के उसीसे युद्ध करके यादवकुलका संहार हुआ । ऐसा पुराणोंमें लिखा है । और गुरुके समझानेपर भी एक मूर्ख शिष्यने मदिरामें दोष नहीं माना । फिर एक बगीचाके चार द्वारोंमें चार चीज रखी थी, उन-उन चीजोंको ग्रहण करनेसे ही भीतर जानेका अनुमति, आज्ञा लिखा था । १—बालकघात; २—वेश्यागमन; ३—सूअर-मांसभक्षण; इन तीनोंको पहिले उसने पाप-कर्म वा निषिद्ध कर्म, समझके स्वीकार नहीं किया, और चौथे दरवाजेमें जाके शराबको अच्छा, निर्दोष समझके पीया, तो उसे नशा चढ़ा, फिर भूख लगी, तो सूअरका मांस भी खा गया, फिर स्त्रीरूप वेश्याको देखके

कामासक्त हुआ, उसने बालकका हत्या करके आओ, तब विलास करो, कही। तो इसने जाके उस बालकका घात भी किया और आके वेश्यागमन भी किया। इस तरहसे मद्य पीनेके कारणसे ही वह महान पतित हुआ। दूसरे दिन जब नशा उतरी, होशमें आया, तो वह मूर्ख बहुत पछताया, फिर क्या हो सकता था? जनमभर दुःखी होके ही बिताया, और मरकर चौरासी योनियोंमें चला गया। अतएव मदिरा पीना तथा स्त्री-भोग करना, ये दोनों त्याग करके शुद्ध रहना चाहिये। हे मनुष्यो! मित्रताके नाते, मैत्रीभावसे जीवको स्वजातीय जानकर तुम्हारे कल्याणके वास्ते, मैं तुम्हें इतना समझा रहा हूँ। यदि मदिरा और स्त्रीसे तुम पृथक् हो, तो भी सावधान रहना। जनमभर उनमें नहीं फँसना। क्योंकि, आदत लगनेपर वह छूटना अत्यन्त कठिन हो जाती है। जहाँतक नशाकी आदत है, वह सब बुरी, हराम ही है। ऐसा जानके किसी प्रकारकी आदत नहीं लगाना चाहिये। सद्गुरुने कहा है:—

"हबी नबी नबीके कामा। जहाँलों अमल सो सबै हरामा॥" बी० र० ४८॥

यदि कुसङ्गके वश पहिलेसे उसमें फँस गये हो, तो भी सत्सङ्ग विचारद्वारा उनमें पूर्ण दोष देखकर प्रबल पुरुषार्थद्वारा उन्हें छोड़ देना चाहिये। मदिरा और स्त्री, यह कभी चित्तको स्थिर रहने नहीं देती, और नाना धन्धा कर्म, कुकर्ममें फँसाये रखती हैं। वह महा-पापरूप ही हैं, ऐसा जानो। दत्तने भी अवधूत गीतामें कहा है:—

श्लोकः— "मद्यपानं महापापं नारीसङ्गस्तथैव च॥

तस्माद्द्वयं परित्यज्य तत्त्वनिष्ठो भवेन्मुनिः॥" अवधूत गीता ८।२६॥

—जिस प्रकार शराब पीना महान् पापरूपी है, उसी प्रकार स्त्रीका सङ्ग भी निश्चय करके वैसा ही है, अर्थात् महापापरूप ही है। तिसी कारणसे इन दोनोंका परित्याग करके मुनि तत्त्वज्ञानयुक्त होवे, अर्थात् मद्य और स्त्रीको त्याग करके साधुने सद्गुणसंयुक्त सच्चे त्यागी, तत्त्वज्ञान=जड़, चैतन्यके भेदको जाननेवाला होना चाहिये॥

अतः पुरुषको कुटिल और मूढ़ बनानेवाली स्त्री और शराब हैं, इनमें प्रेम करके मित्रता मत करो। हे मीत ! उन दोनोंको जल्दीसे छोड़ दो। अगर नहीं त्यागोगे, तो तुम्हारे चित्तको वह अश्वस्थित = विशेष चञ्चल कर देगी, और नित्यको सङ्गतसे पीछे उनके संस्कार तुम्हें नर्कमें ले जाके भी डाल देगा। चौरासी योनियोंमें भटकावेगा, फिर तुम्हें दुस्सह दुःख सहते रहना पड़ेगा। अतएव अभी समझ-बूझके उन्हें सर्वथा त्याग दो ॥ ९९ ॥

दोहाः— नारीयन्त्र न त्यागिया । मोहित भयो निदान ॥
ते दृढ़ बन्धनमें परे । धृग ताको सब ज्ञान ॥ १०० ॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो ! भगयन्त्रको धारण करनेवाली स्त्रीको विकारका खदान, आपत्तिका घर, समझकरके जिन जिज्ञासु पुरुषोंने सब प्रकारसे त्याग नहीं किया। इधर-उधर करके निदानमें या आखिरीमें जो स्त्रीमें ही मोहित हो गये, विषयासक्तिमें ही फँस गये, तो वे पुरुष दृढ़ या मजबूत भवबन्धनमें पड़ गये, नाना जालोंमें फँसके जकड़ गये। चाहे वे बाहर लोगोंमें वाचक ज्ञानका भी कथन, उपदेश करते हों, वे पढ़े, लिखे पण्डित, शास्त्रज्ञ भी होवें, ज्ञानी भी कहलाते होवें, तो भी उन्हें और उनके सब ज्ञान कथनको भी बारम्बार शत-सहस्रबार धिक्कार है ! धिक्कार है ! वे धिक्कार पानेके ही पात्र हैं, उन्हें ज्ञान गधे ही जानो। क्योंकि, सब अनर्थका मूल नर्कका द्वार स्त्रीके सङ्गको तो छोड़े नहीं, और अन्तमें उलट-पुलटके भग-भोगमें ही मोहित, तदासक्त हो गये। तो उसे धूर्त, ठग ही जानो। धिक्कार है ऐसे लोगोंको। ऐसोंका कभी सङ्ग करना भी नहीं चाहिये। वे कुसङ्गी कालस्वरूप दुष्ट ही होते हैं, उन्हें भी त्याग देना चाहिये ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात्, जीवोंकी हंसपद, तथा मुक्तिपदको छिन्न-भिन्न करनेवाला, तीक्ष्ण छुराके धारवाला, चक्रके

समान ही प्रत्यक्षमें यह नारीयन्त्र बना है। विचित्र ढङ्गकी स्त्रीके सर्वाङ्गमें बहुविधि यन्त्र लगे हुये हैं। उनमें जबरदस्त सत्यानाशी एक भग-यन्त्र अर्धमुख लगा हुआ है। जिसमें पड़नेसे पुरुषोंका पुरुषत्त्व आदि सारे सद्गुणोंका विनाश हो जाता है। और बहुतसी उन्नति भी बाहर हासिल किया, नाम भी कमाया, उपदेशक, कथा-वाचक, व्याख्यान वाचस्पति, महामहोपाध्याय, महापण्डित, षट्शास्त्री, चतुर्वेदी, आदि भी कहलाया, और धन भी कमाया, शिष्य-शाखा बनायके मत, पन्थोंका भी विस्तार किया, लोकमें मान, बड़ाई भी हुयी, इतना सब होनेपर भी स्त्रीमें मोहित होके विषयरूप नारकीय भग-भोग करता रहा। शुद्ध त्यागी नहीं हुआ, तो उसका सब ज्ञान, चतुराई, विद्या, बुद्धिको अनेकों बार धिक्कार है! धिक्कार है! क्योंकि, वह तो न छूटनेवाला दृढ़ बन्धन विषयवासनामें ही जाके पड़ गया है। वह चौरासी योनियोंका जीव चौरासी योनियोंमें ही भ्रमण करता हुआ, नाना दुःख भोगता रहेगा, जब वही बन्धनमें पड़ा है, तो भला! दूसरोंको वह क्या छुड़ायेगा? ॥

॥ * ॥ स्त्रियोंके दोष वर्णन ॥ * ॥

महाभारत, अनुशासन पर्वके अध्याय ३८ में स्त्रियोंका दोष निम्न प्रकारसे लिखा है:—

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मजीने यह कथा इस प्रकार कहा—पूर्वकालमें एक बार नारद भ्रमण करते हुये ब्रह्मलोकमें गये। वहाँ पञ्चचूड़ा एक सुन्दरी अप्सराको देखा; तो नारदने उससे यह पूछा कि— हे सुन्दरी! स्त्रियोंका स्वभाव कैसा होता है? सो बता। पहले तो वह हिचकिचाई, मैं स्त्री-जातिकी हूँ, मैं अपने ही मुखसे स्त्रियोंकी निन्दा कैसे करूँ, इत्यादि कही। नारदने कहा— तू यथार्थ बात कह, असत्य बोलनेमें अवश्य पाप लगता है। इसपर उस अप्सराने कुछ सोच-विचारकर, स्त्रियोंके अनादिकालीन दोषोंको कहना आरम्भ किया।

पञ्चचूड़ा कहने लगी— हे नारद ! कुलीन, रूपवती और जीवित पतिवाली स्त्रियाँ मर्यादामें नहीं रहतीं, यह उनमें प्रथम दोष है। स्त्रियोंसे बढ़कर पापी अन्य प्राणी और कोई नहीं हैं। क्योंकि, स्त्रियाँ दोषोंका मूल हैं। यह बात तो आप भी जानते ही हैं। पति भले ही बड़ा कीर्तिवान्, धनवान्, रूपवान् हो और अपनी पत्नीका कहा करता हो; किन्तु यदि उस पतिके द्वारा उनके काममें विघ्न पड़ता है, तो वे उसकी परवाह नहीं करतीं। हे प्रभो ! स्त्रियोंमें एक बड़ा भारी अधर्म यह है कि, हम लज्जाको त्यागकर, पापी पुरुषोंकी भी सेवा करती हैं। जो पुरुष स्त्रियोंकी खुशामद करता है, जो उनके निकट रहता है, जो उनकी जरा-सी भी सेवा करता है, स्त्रियाँ उसीको चाहने लगती हैं। स्त्रियाँ मर्यादाको नहीं मानतीं। पातिव्रतकी मर्यादाका उनके द्वारा पालन किये जानेका कारण यह है कि, मनुष्य उनकी प्रार्थना नहीं करते। उन्हें आस-पासके कुटुम्बियोंका डर लगा रहता है। स्त्रियोंके लिये कोई भी पुरुष अगम्य नहीं है। न उनको छोटी-बड़ी अवस्था ही का विचार है। उनका चाहा हुआ पुरुष चाहे कुलीन हो, अथवा नीच, चाहे वह रूपवान् हो, चाहे कुरूप; किन्तु हो पुरुष, उसीका वे उपभोग करती हैं। स्त्रियाँ भय, दया, अर्थहेतु अथवा जाति, कुल सम्बन्धसे पतिको अनुगामिनी नहीं होतीं। कुल-कामिनी स्त्रियाँ भी रूपवती, युवती, वस्त्रों और आभूषणोंसे सजी हुई वेश्याओंके सुखोंको चाहती हैं। जिन स्त्रियोंकी सत्कारपूर्वक रक्षा की जाती है, जिन्हें उनके पति बहुत चाहते हैं, वे भी कभी-कभी कुबड़े, अन्धे, काणे, मूर्ख, लुञ्ज तथा खर्वाकार पुरुषोंके साथ प्रेमपाशमें बँध जाती हैं। (मौका पानेपर विवाहित पुरुषको मारनेकी चेष्टा करती हैं, और कोई तो मार भी डालती हैं, ऐसी दुष्टा होती हैं)।

हे देवर्षे ! इस लोकमें स्त्रियोंके लिये कोई भी पुरुष अगम्य नहीं है। हे विप्र ! स्त्रियोंको जब किसी प्रकार भी पुरुष नहीं मिलते, तब

स्त्रियाँ—स्त्रियोंके साथमें ही समागम करने लगती हैं। वे अपने पतियों-की प्रतीक्षा नहीं करतीं। स्त्रियाँ पुरुषोंके अभावसे, कुटुम्बियोंके भयसे तथा वध किये जाने, अथवा बन्दीगृहमें डाले जानेके भयसे, अपने शीलकी रक्षा करती हैं। जिस प्रकार पुरुष नयी-नयी बातोंको खोजा करते हैं, वैसे ही चञ्चलमना स्त्रियाँ नवीनताको खोजा करती हैं। उनके मानसिक भावको जान लेना बड़ी कठिन बात है। "स्त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः॥" और जैसे समुद्रकी तृप्ति नदियोंसे नहीं होती, आग काष्ठसे तृप्त नहीं होता, काल मृत्युसे सन्तुष्ट नहीं होता, वैसे ही स्त्रियाँ भी पुरुषोंसे कभी नहीं अघातीं।

हे देवर्षे! स्त्रियोंका दूसरा दोष यह है कि, मनोहर पुरुषोंको देख, उनकी उपस्थेन्द्रिय, क्लेशयुक्त हो जाती है। भले ही किसी स्त्रीका पति उसका हर प्रकार मन रखता हो और उसकी रक्षा करता हो, तो भी स्त्रीको वह पूर्ण रूपसे नहीं रुचता। स्त्रियाँ रति सुखको जैसा अनुग्रह समझती हैं, वैसा अनुग्रह वे अन्य अति सुखप्रद भोगों, आभूषणों तथा पतिके सत्कारको नहीं मानतीं। काल, पवन, मृत्यु, पाताल, बड़वानल, अग्नि, क्षुरधार, विष, और सर्पको यदि एक ओर रखा जाय और एक स्त्रीको दूसरी ओर रखे, तो स्त्री उन समस्त पदार्थोंके बराबर ही निकलेगी। अर्थात् नाश करनेमें अकेली स्त्री—काल, मृत्यु, अग्नि, आदिका सामना कर सकती है॥ इस प्रकार स्त्रियोंके दोष अनेकों हैं। यह तो थोड़ासा कहा गया है। इतनेपरसे बुद्धिमान् पुरुष बहुत कुछ समझ सकते हैं॥

स्त्री-सम्भोगकी विषयाध्यास या वासना परित्याग किये बिना कोई आजतक मुक्त नहीं भया है। न त्रिकालमें वह मुक्त होवेगा, वैसे भोगी कभी मुक्त न होगा। इसलिये वाणीके कथन ही सीखनेसे कोई सार और लाभ नहीं होता है। दृढ़ वैराग्यसे विषयोंमें पूर्ण ग्लानि, सद्गुण धारण संयुक्त पारखस्वरूप स्थितिमें एकरस रहनेवाले साधु ही कोई

जीवन्मुक्त हो सकते हैं, उनकी ही प्रशंसा है, धन्यवाद है। और बाहर ज्ञान कथन करके भी मनमें विषयासक्तिके कारणसे नारियन्त्रमें मोहित, जो हैं, ऐसे लोग तो दृढ़तासे महान भवबन्धनोंमें ही पड़े हैं, उनके ज्ञानको तो धिक्कार ही है। क्योंकि, वह कुछ कामका होता नहीं। अतएव सच्चे त्यागी वैराग्यवान् साधु होना चाहिये। तभी यथार्थ लाभ होगा। तहाँ सद्गुरुने बीजक साखीमें कहा हैः— सुनिये !

साखीः—"साधू होना चाहिये। पक्का होयके खेल ॥
कच्चा सरसों पेरिके। खरी भया नहिं तेल ॥ २८० ॥
कहन्ता तो बहुते मिला। गहन्ता मिला न कोय ॥
सो कहन्ता बहि जानदे। जो न गहन्ता होय ॥ ८० ॥
जस कथनी तस करनी। जस चुम्बक तस ज्ञान ॥
कहैं कबीर चुम्बक बिना। क्यों जीते संग्राम ॥"बीजक, साखी ३१४॥

इस प्रकारसे हंस रहनी धारण करनेवाले विरक्त साधुका ही कल्याण होता है। न कि ढोंगी, पाखण्डी, विषयासक्तोंका। इसलिये मुमुक्षुओंको चाहिये कि—प्रयत्न करके भी सब प्रकारकी विषय-वासना छोड़के वैराग्यको ही पुष्ट करना चाहिये ॥ १०० ॥

दोहाः—नष्ट चित्तको करत है। धात करत है नाश ॥
चिन्ताको उत्पति करत। नारि रहत जो पास ॥१०१॥

संक्षेपार्थः— हे सज्जनो ! स्त्री पहिले तो पुरुषोंके चित्तको नष्ट, भ्रष्ट, चञ्चल कर देती हैं, फिर सप्त धातुको भी विनाश कराके वीर्य-पात करा देती हैं, और जिसके पासमें स्त्री रहती हैं, उसे नित्य-प्रति नयी-नयी चिन्ता, फिकिर, शोक, क्लेश, नाना प्रकारके कष्ट ही उत्पत्ति करा देती हैं। इस तरह सकल आपत्तिका मूल कारण स्त्री ही हैं। इसलिये शान्ति और मुक्ति चाहनेवालोंने, अवश्य ही स्त्रीको त्याग देना चाहिये ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात्, पासमें स्त्री रखनेसे

कितनी हानि होती है, सो यहाँ दर्शाते हैं। जो पुरुष अपने पासमें या सङ्ग-साथमें युवती स्त्रियोंको रखते हैं, अथवा कोई भी किसी प्रकारके स्त्रियोंके पासमें रहते हैं, सो उस पुरुषके चित्तको स्त्रियाँ हाव, भाव, कटाक्ष, झूठा प्रेम प्रदर्शनद्वारा अपने तरफ आकर्षण करके नष्ट, विक्षिप्त, विवेक, विचार शून्य, उन्मत्त, विशेष चञ्चल ही कर देती हैं। फिर मौका पाके भग-भोगाकर सप्तधातुओंका सार अमूल्य वीर्यको भी नाश करके पतन करा देती हैं, शक्ति-शोषण कर लेती हैं। फिर उसके अध्याससे बार-बार स्वप्नदोष होकर भी धातुरूप, वीर्यका नाश हो जाता है। अथवा विशेष कामोन्मत्त होनेपर वैसे भी शीघ्र वीर्यपात हो जाता है, और स्त्री न मिलनेपर मदनातुर या कामी लोग स्वयं ही हस्तमैथुनादि नाना कुकर्म करके वीर्यपात कर लेते हैं। स्त्रीकी आसक्ति वासना हृदयमें रहनेसे यह सब उपद्रव, दुराचार होता है; और जो खास करके स्त्रीको साथमें रखते हैं, वे तो नित्यप्रति मैथुनादि करके धातुओंको नाश करते रहते हैं। फिर उसके चित्तमें अनेकों चिन्तायें, उत्पन्न होती रहती हैं। पहिले तो पुरुष अकेला था, तब कोई बातकी विशेष चिन्ता नहीं होती थी। कुछ भी खाता, कहीं भी पड़ा रह सकता था। अकेलेका पेट पालनेमें ज्यादा कठिनाई भी नहीं होती थी। जब स्त्रीकी चाहना होती है, तभीसे चिन्ता घेरने लग जाती है। विवाहके लिये धन जोड़ने, कपड़े, गहने, बनवाने, माल इकट्ठे करनेकी चिन्तामें पड़ते हैं। अगर घरमें पूर्व सञ्चित धन हो, तो किसी तरह काम चल भी जाता है, कम हो तो ऋण, लेके, कोई वस्तु गिरवी रखके, अगर घरमें कोई चीज भी न हो, तो कहीं गरीब लोग सालदारी वा महिनदारीमें नौकर होके मालिकसे रुपये उधार लेकर विवाह कर लेते हैं। स्त्री आनेपर उसे रखनेके लिये घर, द्वार, कोठरी होना चाहिये, उसकी चिन्ता अलग, उसे खिलानेके लिये अच्छी-अच्छी वस्तु लानेकी चिन्ता, कीमती कपड़े, आभूषण आदि पहिरानेकी चिन्ता, स्त्री नया-नया

वस्तु लानेको फर्माती हैं, उसके लानेके लिये चिन्ता, कहीं बाहर गया, तो स्त्रीमें मन लगे रहनेकी चिन्ता । इस प्रकार हमेशा चिन्तासे पुरुषोंका चित्त जला करता है । चिन्तासे शरीरका रूप भी बिगड़ जाता है । सद्गुणोंका नाश होता है:—

"मन मलीन, तन सदा उदासी । गलमें डिम्भ कपटके फाँसी ॥"

— ऐसा हो जाता है । विवेक और चतुराई भी नष्ट हो जाती है । ऐसी चिन्ताओंमें अनेक प्रकारकी हानि भरी है । चिन्ता बढ़ते-बढ़ते अन्तमें सत्यानाश ही हो जाता है । अवधूत गीतामें कहा है:—

"चिन्ताक्रान्तं धातुबद्धं शरीरं, नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम् ॥
तस्माच्चित्तं सर्वतो रक्षणीयं, स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सम्भवन्ति ॥" अ० गी० ८ । २७॥

— चिन्तासे दबाया हुआ चित्त जब कि अति दुःखित होता है, तब तिसकालमें चित्तके नाश होनेपर (रस, रक्त, मांस, चर्बी, हाड़, मज्जा, और वीर्य) ये सप्तधातुओं करके बाँधा हुआ शरीर भी नष्ट हो जाता है । सब धातुयें भी शरीरके साथ नाशको प्राप्त हो जाती हैं। अर्थात् बहुत चिन्तासे मन और तनका नाश या क्षीणता हो जाती है । तिसी कारणसे बुद्धिमानोंने चित्तकी सब ओरसे सावधानीसे रक्षा करनी चाहिये । क्योंकि, चित्तके स्वस्थ होनेपर, सार, असारको विचारनेवाली बुद्धियें उत्पन्न होती हैं । अर्थात् चित्त स्थिर होनेपर ही बुद्धि शुद्ध होती है ॥ और किसीने कहा है:—

श्लोकः— "चिता चिन्ता द्वयोर्मध्ये चितायेव गरीयसी ॥
चिन्ता जीवित दग्धानां चिता मृतकमेव च ॥"

— चिता और चिन्ता-दोनों ही शब्दाकृतिसे तो समान हैं, परन्तु चितासे चिन्तामें एक बिन्दु अधिक है । उसका यह फल निकला कि, चिता = जिसमें मुरदे फूँका जाता है, उसकी अग्नि मरे हुए मुरदेको जलाती है और बिन्दुकी विशेषतावाली चिन्ता जीते हुए शरीरधारीको ही जलाती है । अर्थात् चिताकी अग्निसे भी चिन्ताकी ज्वाला विशेष जलानेवाली होती है । मृतकको दुःख उस चितासे नहीं होता है, किन्तु जीवित प्राणी चिन्तासे बहुत दुःखी होते हैं। कहा है:—

दोहाः— "चिन्तासे सुधि बुधि घटत, घटत रूप, गुण, ज्ञान ॥
लाज, काज, विद्या घटत, चिन्ता चिता असमान ॥"

संसारमें बहुत सारे दुःख चिन्तासे ही होते हैं। चिन्ताका त्याग करनेवाला ही सुखी होता है। अज्ञानी विषयासक्तोंकी चिन्ता कभ निवृत्त नहीं होती है। स्त्रीके साथ रहनेवालोंकी चिन्ता निवृत्त होना, तो असम्भव है। सकल चिन्ताकी खानी स्त्री है, इससे नारीके पासमें रहनेवालेके चित्तमें नाना प्रकारकी चिन्ताका लहरी उठा करती है, उसीकी चिन्ता निवृत्त हो सकती है, जिसने स्त्री आदिकोंके कुसङ्ग छोड़ दिया है, पूर्ण त्याग, वैराग्यको धारणकर लिया है, जो पारखी साधु-गुरुके शरणागत होके, पारख बोधमें ही स्थिर हो गया है, सो ऐसे कोई बिरले ही सन्त निश्चिन्त, शान्त, निर्बन्ध, सुखी हो जाते हैं। परन्तु संसारी लोग तो स्त्री, पुत्र, धन, घरादिके नाना चिन्ताओंमें नित्य ही पड़े रहते हैं। तो भी स्त्रीके वचन सुनके खुश होके लट्टू और टट्टू ही बन जाते हैं। विचार सागर तरङ्ग पाँचमें कहा हैः—

"मीठे बैन जहरयुत लड़वा। खाय गमाय बुद्धि ह्वै भड़वा ॥
और कछू सुपनहु नहिं देखै। काम अन्ध इक कामिनि लेखै ॥ ५७ ॥
धन कछु मिलै जु बाहिर घरमैं। सो सब खरचै कामिनि घरमैं ॥
भूषण वस्त्र ताहि पहिरावै। गुरु पितु मात न यादिहु आवै ॥ ५८ ॥
पायस पान मिठाई मेवा। देय भक्ति तैं तिय निज देवा ॥
नेह नाथ नाथ्यो नहिं छूटै। तिय किशान पिय बैलहि कूटै ॥ ५९ ॥
अस अति उत्तम बिन्दु जु जगमैं। तिहिं तिय छीनि लेत निजभगमैं ॥ ७४ ॥
ज्यों किशान बेलनमैं ऊखहि। पेरत लेत निचोरि पियूषहि ॥
बार-बार बेलनमें धारहिं। ह्वै असार दथ्या तब जारहिं ॥ ७५ ॥
त्यों तिय मींचि भुजनमैं पीकूँ। भरत योनि घट खींचि अमीकूँ ॥
पुनि-पुनि करत क्रिया नित तौलौं। शेष बिन्दुको बिन्दु न जौलौं ॥ ७६ ॥
कियो असार नारि नर देहा। खींच फुलेल फूल ज्यों खेहा ॥" इत्यादि ॥

॥ विचार सागर तरङ्ग ५ ॥

और योगवाशिष्ठ, वैराग्य प्रकरणके सर्गः २१ में स्त्री दुराशा वर्णन किया है। तहाँ रामचन्द्रजीने कहा हैः— हे मुने! जिस काम विलासके निमित्त पुरुष, स्त्रीकी इच्छा करता है, सो स्त्री अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र, विष्ठा आदि करके पूर्ण है। इसीकी पुतरी बनी हुई है। जो विचारकर नहीं देखता, तिसको रमणीक दीखती है। जैसे पर्वतके शिखर, दूरसे सुन्दर, और निकटसे असार हैं, पत्थर ही भरे पड़े दीखते हैं। तैसे स्त्री, वस्त्र और भूषणादिसे सुन्दर भासती है, और जो उसके अङ्गको भिन्न-भिन्न विचार कर देखिये, तो सार कुछ भी नहीं है। जैसे नागिनीका अङ्ग बहुत कोमल होता है, परन्तु उसका स्पर्श करो, तो काटके मार डालती है। तैसे जो कोई स्त्रीको स्पर्श करते हैं, तिनको स्त्री नाश कर डालती है। जैसे विषकी बेलि देखनेमात्रको सुन्दर लगती है, परन्तु स्पर्श किये ते मार डालती है। तैसे स्त्री भी है। इसलिये स्त्रीको अच्छा समझना मूर्खता ही है॥ इत्यादि॥

इस प्रकार जो स्त्रीके पासमें रहता है, उस पुरुषके चित्तको नित्य ही स्त्री नष्ट करती है। वीर्यादि धातुका नाश करती है, और चिन्ताको उत्पत्ति करके रोज ही पीड़ित करती है। ऐसी यह महा अधम राक्षसी है। अतएव स्त्रीको त्यागके कल्याण मार्गमें लगना चाहिये। पारखी श्रीसद्गुरुके सत्सङ्गमें लगे रहना चाहिये॥ १०१॥

दोहाः—सर्वत्र चित्तको रक्षिये। कहुँ जाने नहिं पाय॥
सो ज्ञानी दृढ़ जगत है। जाहि नारि नहिं खाय॥१०२॥

संक्षेपार्थः— इसवास्ते मुमुक्षुओंके प्रति सद्गुरुका सत् शिक्षा तो यही है कि, हे नरजीवो! यदि तुम लोग यथार्थ सुख, शान्ति चाहते हो, तो अपने चित्तको सर्वत्र, सब ठिकाने ठीक तरहसे रक्षा करके रखो। पहरेदार बनके चित्तको अपने सन्मुख रखो, गुरु विचारको छोड़के बाहर और कहीं जाने न पावै, इसका ध्यान रखो। पञ्च

विषय और स्त्री-भोगकी इच्छाओंको निर्मूल कर डालो। यह निश्चय करके जानो कि, संसारमें जिसे स्त्री-पिशाचिनीने नहीं खाया, अर्थात् जो स्त्रीके फन्देमें नहीं पड़े, भग-भोगमें नहीं फँसे, जगत्में सोई सच्चे ज्ञानी दृढ़ वैराग्यवान् शूर, वीर, धीर, सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके अनुयायी पारखी सन्त जीवन्मुक्त होते हैं। उन्हें ही अनेकशः धन्यवाद है। पुरुषोंको मुक्तिके लिये ऐसे ही सच्चे त्यागी, विरक्त होना चाहिये ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात्, हे मनुष्यो! तुम लोगोंको यदि सच्चा सुख और मुक्ति प्राप्त करना है, तो सुनो! अपने चित्त, चतुष्टयको सर्वत्र सबकालमें पञ्चविषय सुख भोगोंकी तरफसे हटाये रखो, और स्त्री भोगकी तो कभी याद भी न करो। क्योंकि, यही भवबन्धनोंका कारण है। तहाँ कहा है:—

दोहाः—"अन्य विषय सरिता सरिस, नारि विषय बारीश ॥
भूलि परो मत ताहिमें, नहिं नाचो सम कीश ॥"

श्लोकः— "अप्रमत्तेषु जाग्रत्सु नित्ययुक्तेषु शत्रुषु ॥
अन्तरं लिप्समानेषु कथं त्वं नाव बुध्यसे ॥"

—जो सदा अवसरकी ताकमें रहते हैं, उन अति सावधान और नित्ययुक्त शत्रुओंके जागते रहनेपर भी तू क्यों नहीं चेतता है? ॥

और भी योगवाशिष्ठमें कहा है:—

"विचारः सफलस्तस्य विज्ञेयो यस्य सन्मते! दिनानुदिनमायाति तानवं भोग गृध्नुता ॥
श्रूयतां ज्ञानसर्वस्वं श्रुत्वा चैवाव धार्यताम्। भोगेच्छामात्रको बन्धस्तत्यागोमोक्ष उच्यते॥
किमन्यैः शास्त्रसन्दर्भैः क्रियतामिदमेव तु। यद्यत्स्वाद्विह तत्सर्वं दृश्यतां विषवह्निवत् ॥
महाजड़लवा धारे संसार विषमार्णवे। इन्द्रियग्राह गहने विवेकः पोतको महान् ॥"
॥ योगवाशिष्ठ ॥

—जिस सुबुद्धि पुरुषकी, भोग-लालसा दिनों-दिन मन्द पड़ती जाय, उसीका विचार सफल समझना चाहिये ॥ ज्ञानका सार सर्वस्व सुनो, और उसे सुनकर चित्तमें धारण करो। 'भोगेच्छामात्र

ही बन्धन है और उसका त्याग ही मोक्ष कहा गया है' ॥ और अनेकों शास्त्र समूहोंकी क्या आवश्यकता है ? केवल इतना ही करो कि, इस लोकमें जो-जो पदार्थ स्वादिष्ट हों, उन्हें विषाग्निके समान देखो ॥ जो इन्द्रियरूप ग्राहोंके कारण अति गहन हो रहा है, उस महान् जड़रूप कणोंके आधार संसाररूप विकराल समुद्रमें विवेक-रूप एक महान् पोत (जहाज) है ॥ अतएव चित्त कहीं कोई विषयमें जाने न पावे, यह ध्यान रखके विवेकसे चित्तको सब तरफसे हटा करके रक्षाकर रखो । जगत्में सोई सच्चे ज्ञानी त्यागी हैं या वे ही ज्ञानी माने जाते हैं, जिसे नारीने भगमुखसे नहीं खाया । अर्थात् स्त्री विषयको भीतर, बाहरसे त्यागनेवाले ही सत्यज्ञानी साधु होते हैं ॥

और पञ्चग्रन्थी गुरुबोधमें कहा हैः—

साखीः— "विरक्त बोधे देह निजु, मैथुन त्यागै अष्ट ॥
ठहरै रमिता भूमिपर, बोधि कालता कष्ट ॥ ३४३ ॥
कष्ट करै विषयानको, नष्ट न कतहुँ होय ॥
भ्रष्ट बुद्धि त्यागै भले, अष्टयाम लखु जोय ॥" ३४४ साखी ॥

इसलिये संसारमें सोई ज्ञानी दृढ़ = पक्के स्थितिवान् हो सकते हैं, जिन्हें स्त्रीने खाके नहीं फँसाया, और सब भोग सामग्री स्त्री आदि मौजूद प्राप्त होनेपर भी, जो वैराग्यवान् सन्त उन्हें ग्रहण नहीं करते, हलाहल विषवत् जानके परित्याग कर दिया, भूलके भी कभी कहीं कोई विषयोंमें नहीं भुलाया, वे असली ज्ञानी विरक्त होते हैं । अपरोक्ष पारखनिष्ठ सन्त भी वैसे ही सच्चे त्यागी होते हैं। वे श्रीकबीरसाहेबके अनुयायी पारखी जीवन्मुक्त हो जाते हैं। उसी स्थितिको प्राप्त करनेके लिये साधु, सन्तोंने महत् प्रयत्न करना चाहिये । स्त्री जातिका कभी विश्वास न करे । नवजात लड़कीसे लेकर एक सौ बीस वर्षकी बुड्डीतकका भी सङ्गमें न रहे, विश्वास न करे ! क्योंकि, कारण विशेषसे उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग देखके अपना ही मन बिगड़ करके पतन होनेका भय लगा रहता है ।

वे स्त्रियाँ उसमें सहायक, साधन बन जाती हैं। फिर युवती नारीका तो कुछ भी भरोसा नहीं रहता है। मौका मिलनेपर वे स्वयं ही हाव, भाव, कटाक्ष करके भग-भोगमें फँसाके भ्रष्ट कर देती हैं। यह सब वैराग्यका उपदेश त्यागी साधुओंके लिये चेतावनीरूपमें हो रहा है। क्योंकि, कितनेक साधु बने हुए पुरुष भी कामासक्त होकर पुनः गृहस्थीमें लौट जाते हैं। अथवा कहीं संजोगी होके स्त्री सहित कुटी बनायके रहते या घुमते रहते हैं। ऐसे लोग प्रत्यक्षमें सींग, पूँछहीन नरपशु ही बने हैं। उन्हें सतसहस्त्रबार धिक्कार है! धिक्कार है! ऐसे लोगोंको बड़े पापी जानना चाहिये। सज्जनोंने ऐसे कुसङ्गमें कभी पड़ना नहीं चाहिये। संजोगी लोगोंका उपदेश भी कोई कामका होता नहीं, उसे तो जहरके माफिक जानके त्याग देना चाहिये।

अतएव हे सन्तो! शुद्ध सत्यरीतिसे वैराग्य धारण करिये। इस ग्रन्थमें दर्शाये हुए स्त्री आदिकोंके दोषोंको हृदयङ्गम करके सदा उस तरफसे मनमें ग्लानि बनाये रखिये। जिससे अन्तिमतक पूर्ण वैराग्यका पालन हो जावे। सदा सचेत रहना चाहिये ॥ १०२ ॥

अब यहाँपर दोहा १०३ से १२१ तक शास्त्रोंमें वर्णन किया हुआ कठोर वैराग्य तथा षट् ऋतुओंमें वैराग्यकी वृद्धि, एवं वैराग्यवानोंका बर्ताव जैसा कहा गया है, वैसा आप लोगोंको भी ज्ञात करानेके लिये, सो यहाँपर ग्रन्थकर्ताने दर्शा दिये हैं। वह मायामुखका कथन है, ऐसा समझ लेना चाहिये, उसमेंसे भी सार भाग ग्रहण कर लेना चाहिये ॥

॥ * ॥ वनवास, वर्षाऋतुमें शास्त्रोक्त वैराग्य वर्णन ॥ * ॥

दोहा:—वर्षत मेघ अखण्ड विधि। हरियर भई बन घास ॥
हम बैठे गिरि कन्दरा। कोई न आवत पास ॥१०३॥

संक्षेपार्थः— शास्त्रोंमें लिखा है, और विरक्त पुरुष वर्षाकालीन

अपने वैराग्यका बर्ताव बता रहे हैं:— हे भाई ! हम अभी पहाड़के कन्दराओंमें बैठे हैं । दुर्गम पथ होनेसे हमारे पासमें तो कोई आते नहीं और आ सकते भी नहीं । क्योंकि, ऋतु परिवर्तन होनेसे ग्रीष्मऋतु गत होके मध्य वर्षाऋतु आ गई है । इसलिये विधिपूर्वक पानीकी धारा वर्षाके दिन-रात मेघ-मण्डल अखण्ड रीतिसे वरष रहा है । जिससे वृक्षोंके गर्दा धुलके साफ हो गई, उधर वनमें भी घास उगके हरी-भरी हो गई हैं, हम गिरी कन्दरामें बैठके यह शोभा देखते रहते हैं, और ध्यानस्थ हो रहते हैं ॥

अथवा योगी लोग कहते हैं:— अखण्ड जीवके ऊपर माया-मोहके मेघ अच्छी उरहसे काम, क्रोधादिकी वर्षा कर रहे हैं, और हमें तो हरिसे यर=यारी, प्रीति लग गई है, इससे घासके नाईं वनमें रहना ही हमें अच्छा लगता है । संसारमें माया, मोहकी रागमें बड़ी दुःख है । तितिक्षायुक्त वैराग्यमें ही सुख है । इसलिये हम वैराग्यसे योगसाधना करके मेरु गिरिके शिखर-वाला कन्दरारूप भ्रमर गुफामें जायके समाधिस्थ हो बैठे रहते हैं । वहाँपर काम, क्रोधादि कोई भी हमारे पासमें आते नहीं, अतः हम शान्त सुखमें रहते हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अर्थात्, वर्षाकालमें मेघ-मण्डल अखण्ड विधिसे पानीकी धारा गिरायके वर्षते हैं । जिससे भूमि प्लावित सरस होकर अंकुर उगाने लगती है, और वन प्रान्तमें घास-फूस बढ़कर हरियाली हो जाती भई । तहाँ महाभारत, वनपर्वके अध्याय १८२ में वर्षा— विवरण निम्न प्रकारसे कहा है:— "समस्त जीवोंको सुखदाइनी और ग्रीष्मकालका अन्त करनेवाली वर्षाऋतु आई । उस समय गर्मीको मिटानेवाले और बड़े जोरसे गरजनेवाले सैकड़ों, हजारों काले बादल, आकाश और दिशाओंमें उमड़-घुमड़कर रात-दिन जलकी वृष्टि करने लगे । सूर्यका प्रकाश अन्तर्हित हो गया,

और बादलोंमें बिजली कौंधने लगी। पानीसे सराबोर हो भूमि शस्य श्यामला होनेसे मनोहर हो गई। डाँस, मच्छर और कीट, पतङ्ग मतवाले हो गये। पृथ्वीपर इतनी जलवृष्टि हुई कि— यह नहीं पता चलता था कि, कहाँपर भूमि सम है, कहाँ विषम है। कहाँ नदी है, और कहाँ स्थल है। तेज जानेवाले बाणकी तरह बहती हुई नदियोंके प्रवाहसे तटवर्ती काननोंकी भूमि शोभामयी हो गई। शूकर, हिरन, पक्षी, पानीकी बौछारसे तर हो, वनमें भाँति-भाँतिकी बोलियाँ बोल, हर्ष प्रगट करने लगे। पपीहा, मयूर, कोयल आदि पक्षी मतवाले हो, इधर-उधर नाचने उड़ने लगे। मेढक भी फूलकर टर्र-टर्र करने लगे। पाण्डव उस वर्षाऋतुमें पर्वतके निकटकी सूखी भूमिमें रहे और मेघोंकी गर्जनसे युक्त वर्षाऋतुको उन लोगोंने आनन्दके साथ बिताया।"

इसी प्रकार वैराग्यवान् सन्त भी गिरि-कन्दरादिमें जायके वर्षा-बास करते हैं। तब वे कहते हैं कि—उस अवस्थामें पहाड़के गुफामें जाकर हम बैठे रहते हैं, तहाँपर कोई भी संसारी मनुष्य हमारे आस-पासमें भी नहीं आने पाते हैं। जिससे हम बड़े मगनमस्त सुखी रहते हैं। अखण्ठ वैराग्य बनी रहती है। परन्तु सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबने कहा है कि— रमैनी १५ बीजक ॥

रमैनीः— "वोनई बदरिया परिगौ सन्झा। अगुवा भूला वन खण्ड मन्झा ॥"
शब्दः— "घूरि घूरि वर्षा वर्षावे। परिया बून्द न पानी ॥ बीजक शब्द ५२ ॥"

और बीजक शब्द ८७ में भी कहा हैः—

शब्दः— "कबिरा ! तेरो वन कन्दलामें। मानु अहेरा खेलै ॥ १ ॥
काम क्रोध लोभ मोह। हाँकि सावज दीन्हा ॥ ६ ॥
गगन मध्ये रोकिन द्वारा। जहाँ दिवस नहिं राती ॥ ७ ॥
दास कबीरा जाय पहुँचे। बिछुरे सङ्ग साथी ॥" ८ ॥ बी० ॥

यहाँ मनरूपीमेघ कर्म संस्कारसे अविच्छिन्न लगातार संकल्प-विकल्पकर आसक्तिका वर्षा कर रहा है। उसमें भीजे हुए जीव

वनके घास या तृणवत् तुच्छ दीन हो रहे हैं, इसलिये संसारको छोड़कर हरिमें प्रीति लगाकर हम गिरी कन्दरामें आके बैठे हैं, अर्थात् शून्य समाधि लगाकर ब्रह्माण्डमें हम स्थित रहते हैं। वह अगम्य प्रदेश होनेसे वहाँ हमारे पासमें मनादि वृत्तियें कोई भी आ नहीं पाते हैं। हम निवृत्त, शान्त रहते हैं, यही हमारी स्थिति है। ऐसा योगीजन अपने वैराग्यकी कथन करते हैं ॥ १०३ ॥

दोहाः—खगकुल मृगकुल रहत बन । सोइ हमारे मीत ॥
भादौ रात अन्धारिया । नहिं काहूकी भीत ॥१०४॥

संक्षेपार्थः— शास्त्रोंमें लिखा हैः— वनबासी पुरुष कह रहे हैंः— समस्त पक्षियोंके कुल—गोत्रोत्पन्न पक्षीवर्ग और मृग कुलोत्पन्न अहिंसक पशुवर्ग नित्य हमारे साथमें महावनमें रहते हैं। इसलिये वे पशु, पक्षियोंके अमूह सब ही हमारे मित्रगण हो गये हैं। मैत्री भावसे हम उन्हें देखते हैं, इससे वे सब हमारे मित्र ही बन चुके हैं। हमारे दुःख-सुखके साथी अब वे ही हैं। श्रावण, भाद्रके दिनोंमें विशेष मेघ छाया हुआ रहनेसे भादौंमें रात्रि अत्यन्त अन्धकारमय भयावनी होती है। परन्तु ऐसा होनेपर भी गिरि-कन्दरामें बैठे हुए हमको किसी प्रकारसे किसीका भय मालूम नहीं होती है। क्योंकि, हम किसीके हानि तो करते ही नहीं, अतः हमारा भी हानि कौन करेगा ? हम तो अपने विचारमें निश्चिन्त, निर्भय हो रहते हैं। उस सुखके सामने और सब सुख तुच्छ दिखते हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अर्थात्, अरण्य निवासी वैराग्यवान् कहते हैंः— हे भाई ! संसारमें तुम्हारे बहुत भी मित्रवर्ग हैं, तो वे सब स्वार्थी ही तो हैं। इसलिये हमने उन दुष्ट स्वजन, मित्रोंको छोड़के यहाँ जङ्गलमें चले आये। तो यहाँ वनमें रहनेवाले भोले-भाले, सीधे-सादे, अहिंसक, दीनप्राणी खगकुल और मृग-

कुलोंके समुदाय साथी मिल गये। सोई हमारे सच्चे मित्रवर्ग हैं। हम उनके हित चाहते हैं, वे हमारे बर्तावसे सुखी रहते हैं; तो वे अपने-अपने कलरव सुना-सुना करके हमें प्रसन्न करते हैं। भर्तृहरिने ऐसे विरक्तोंका प्रशंसा करते हुये वैराग्यशतकमें कहा है:—

श्लोकः— "धन्यानां गिरिकन्दरेनिवसितां ज्योतिः परं ध्यायता- ॥
मानन्दाश्रुकणान् पिवन्ति शकुना निःशंक मंकेशयाः ॥
अस्माकं तु मनोरथोपरचितप्रासादवापीतट- ॥
क्रीड़ा काननकेलि कौतुकजुषामायुः परं क्षीयते ॥" वै० श० ॥

छप्पयः— "योगी जग विसराय, जाय गिरि गुहा बसत हैं ॥
करत ज्योतिको ध्यान, मगन आँसू बरषत हैं ॥
खगकुल बैठत अङ्क, पियत निःशंक नयन जल ॥
धनि-धनि हैं वे धीर, धर्खो जिन यह समाधि बल ॥
हम सेवत वारी बागसर, सरिता वापी कूप तट ॥
खोवत हैं योंही आयुको, भये निपट ही निरघट ॥"

— जो पुरुष पर्वतकी कन्दराओंमें रहते हैं, और जो ज्योतिका ध्यान करते हैं, जिनके आनन्दाश्रुओंके जलको पक्षीगण निःशङ्क गोदमें बैठकर पीते हैं, वे धन्य हैं। और हमारी तो अवस्था केवल मनोरथ हीके मन्दिरमें बनी बावड़ीके तटपर जो क्रीड़ा कानन है, उसमें लीला करते ही क्षीण होती है। अर्थात् नाना प्रकारकी मिथ्या कल्पनाओंमें ही आयु व्यतीत हो जाती है, वास्तवमें कोई मनोरथ सिद्ध नहीं होता है ॥ और भी कहा है:—

श्लोकः— "स्थितिः पुण्यारण्ये सह परिचयो हन्त हरिणैः ॥
फलैर्मेध्यावृत्तिः सततमथ तल्पानिदृषदः ॥"

— पवित्र वनमें निवास करना, मृगादिके साथ मित्रता, पवित्र फलादिसे जीवन यापन करना, और पत्थरकी चट्टानपर सोना— यही वैराग्यवानोंके योग्य सामीग्र हैं ॥

दोहाः— "ब्रह्म ध्यान धर गङ्ग तट, बैठूँगो तज सङ्ग ॥
कबधौं वह दिन होयगो, हिरण खुजावत अङ्ग ॥"

असूचीसंसारे तमसि नभसि प्रौढजलद, ध्वनिप्राये तस्मिन् पतति दृषदां नीरनिचये ॥

— जिसमें कोई पदार्थ नहीं देख सक्ता, ऐसे गाढ़ा अन्धकार-युक्त श्रावण, भाद्र महीनेमें बड़े-बड़े मेघोंकी गर्जना और पत्थर सहित जलकी वृष्टि खूब होती है ॥

इस प्रकार जङ्गलमें रहनेवाले सारे पक्षीगण और मृग आदि पशुगण वर्षासे भींग जानेसे हमारे पास गुफामें आके मित्रतासे रहते हैं, तो सोई हमारे मित्र हैं। भादौ महीनेके रात घनघोर बादल और वर्षाके कारणसे बड़ी अन्धकारमय हो जाती हैं। अपने हाथ, पैर तक भी दिखता नहीं है। तो भी हमको किसीका डर कुछ नहीं रहता है। क्योंकि, कहीं भी रहो, निजकृत प्रारब्ध कर्मका भोग तो अवश्य भोगना ही पड़ता है, फिर डर काहेका करना? तहाँ कहा भी हैः—

श्लोकः— "वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महाऽर्णवे पर्वतमस्तके वा ॥
सुप्तं प्रमत्तं विषम स्थितं वा रक्षंति पुण्यानि पुराकृतानि ॥" नीति० ९८ ॥

— वनमें, रणमें, शत्रु, जल और अग्निके मध्यमें, समुद्रमें, पहाड़की चोटीपर सोते हुए बेहोशीमें और विषम अवस्थामें केवल पूर्वजन्मके पुण्यकर्म प्रारब्ध ही मनुष्योंकी रक्षा करते हैं। और कोई रक्षा करते नहीं ॥

दोहाः— "वन रण जल अरु अग्निमें, गिरि समुद्रके मध्य ॥
निद्रा मद अरु कठिन थल, पूरब पुण्यहिं सध्य ॥
वन पुर ह्वै जग मित्र ह्वै, कष्ट भूमि ह्वै रत्न ॥
पूरब पुण्यहि पुरुषके, होत इते बिन यत्न ॥"

इस प्रकार प्रारब्ध भोगपर दृढ़ता रखनेवालेको कभी किसीका भय नहीं होती है। दिन-रात निर्भय होकर जङ्गल, गुफा आदिमें भी पड़े रहते हैं, ऐसे विरागी होते हैं ॥ १०४ ॥

दोहाः— निर्भय निज पदमें रहै । सर्प सिङ्घ लिये साथ ॥
कहा ग्राम पुर पाटन । कहा धनिक नृप नाथ ॥१०५॥

संक्षेपार्थः— हे भाई ! हम तो वैराग्यके कारणसे जङ्गलोंमें प्रवेश करके सर्प और सिंहोंको मैत्री भावनासे साथमें लेकरके निर्भय होकर सदा निजपदमें ही मस्त रहते हैं । अतः ग्राम, नगर वा शहर, बस्तीसे हमें क्या करना है ? चाहे कोई धनिक नृप नाथ ही हों, उनसे भी हमें कोई प्रयोजन नहीं है ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— शास्त्रोंमें लिखा हैः— अर्थात्, वैराग्यवान् साधु, योगी, संन्यासी आदि जङ्गल, पहाड़, गुफा आदिमें कहीं भी एकान्त स्थानमें निर्भय होकर निज वैराग्यपद अपने-अपने स्थिति-ठहरावमें ही रहते हैं । उनके आस-पासमें कभी विषैले सर्प, और बलवान् सिंह, बाघ, भालू आदि क्रूर स्वभाववाले हिंसकी जीव जन्तु भी आयके रहें, तो अपने तरफसे उन्हें भी मैत्रीभावसे अवलोकन करके साथ लिये रहते हैं, मैत्रीभावका उन प्राणियोंपर भी बड़ा असर पड़ जाता है, और तब भी निर्भय होकरके निजपदमें ही स्थित रहते हैं । और चाहे छोटा गाँव हो, चाहे बड़ा गाँव हो, कस्बा, नगर, महानगर, शहर, राजधानी चाहे कोई क्यों न हो, उनमें वे अटके नहीं रहते हैं । और सेठ, साहुकार, राजा, महाराजा, सेवक, स्वामी आदि कोई भी हों, उनसे उन्हें क्या करना है ? वे तो कोई प्रयोजन ही नहीं रखते, ऐसे विरक्त होते हैं ॥

अथवा विवेकी पुरुषका कथन ऐसा हैः— मैं अब सर्परूपी क्रोधको तथा पञ्चमुखी नागरूप पञ्च अभिमानको और सिंहरूप मनको अपने ही साथमें लेकर, उन्हें अपने प्रतापसे शान्त करके, दुर्वृत्तिसे निवृत्त करके दृढ़ वैराग्य संयुक्त निर्भय होकर निजपद हंसभूमिकामें ही स्थित हो रहता हूँ । प्रारब्धानुसार निराश वर्तमानसे देह गुजार

चला लेता हूँ। अतएव मुझे ग्राम, नगर, शहर तथा वहाँ निवास करनेवाले धनिक, नृपति या महाराजा आदिसे भी क्या करना है? मुझे अब जन-समुदायवाले रमणीय स्थान और श्रीमानोंसे कोई सरोकार नहीं रहा। वैराग्यको परिपुष्ट करके अपने जीवन-सुधार करनेमें ही मैं प्रसन्न रहता हूँ। और मुझे कुछ नहीं चाहिये ॥

अतः हम तो निर्भय होके, निजपदमें रह रहे हैं, सर्प, सिंहादिको भी साथ लिये रहते हैं, उनसे भी द्वेष नहीं करते हैं, तो भला! और किसीसे हमें राग-द्वेष क्या करना है? जहाँ निरुपाधि एकान्त स्थान देखते हैं, वहीं रह जाते हैं। गाँव, पुर, पाटन, धनिक, नरेश आदिसे भी हमें कोई वास्ता नहीं है, किसीसे हमें कोई मतलब नहीं। वास्तवमें हमारा शत्रु, मित्र कोई नहीं है ॥ १०५ ॥

दोहाः—कोइ न हमारो जगतमें। न हम काहुके मीत ॥
सत्संगति प्रताप बल। रहे मोह गढ़ जीत ॥१०६॥

संक्षेपार्थः— और जगत्में हमारे अपने कोई सङ्गी-साथी भी नहीं हैं, और हम भी न किसीके मित्र वा प्रेमी ही होते हैं। सत्सङ्गके प्रताप तथा वैराग्यके बलसे, मोहकी गढ़ = किलाको जीतके हम न्यारा हो रहे हैं। अतः हम अकेले ही विचरते रहते हैं। अब हम संसारी लोगों-का घेरा, भीड़-भाड़में पड़ना नहीं चाहते हैं, ऐसी हमारी स्थिति है ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— शास्त्रोंमें लिखा हैः— अर्थात्, विरक्त साधु कहते हैंः—हे सन्तो! इस संसारमें हमारे अपने स्वजन कुटुम्बी, बन्धु-बान्धव, मित्र, शत्रु आदि सम्बन्धी कोई भी नहीं हैं, और न हम ही किसीके मित्र आदि होते हैं। न हमें अब किसीमें राग है, और न द्वेष-भाव ही रखते हैं। हम किसीके साथी नहीं, तो हमारा भी जगत्में कोई साथी नहीं हैं। बाहरके पदार्थको तो छोड़ दो। यह शरीर भी हमारा स्वरूप नहीं है। जन्मने, मरनेवाला, यह काया तो

पाँच तत्त्वोंके बना हुआ कार्य है । विजातीय नाशवान् है । पाँचतत्त्व, तीनगुण, पचीस प्रकृतियाँ, दश वायु, पञ्चविषय, पञ्चदेह, पञ्चकोश, सप्तधातु, सोलह कलायें, चौबीस भाग यावत् नस-नाड़ियाँ पुर्जे-पुर्जे रोम-रोम इस देहमें यह कोई भी हमारा स्वरूप नहीं है । ये तो हमसे भिन्न जड़तत्त्वोंके कार्य भाग हैं । इसलिये इन किसीके भी हम साथी मित्र नहीं है । मैं तो द्रष्टा चैतन्य सबसे न्यारा ही रहता हूँ । कर्माध्यासवश इस देहके घेरामें पड़ गया हूँ। यहाँ मुझे काम, क्रोध, लोभ, मोहादि अनेकों बलिष्ट शत्रुओंसे सामना करना पड़ रहा है, तथापि मैं पीछे अब नहीं हटूँगा । मेरे भाग्यसे मुझे सच्चे सहायक सद्गुरु मिल गये हैं । उन्हीं सद्गुरुके सत्सङ्ग गुरुज्ञानके प्रतापसे अपने हिम्मत, बल, पराक्रम, शूर, वीर, धीरतासे अब हम आन्तरिक दुष्ट रिपुदलसे लड़े-भिड़े, वैराग्य ढालको आगे रखके घमासान संग्राम करके अन्तमें हम विजयी हो गये । तहाँ मोह दलको मारके भगा दिये, पीछे ढकेल दिये । कायागढ़, मनगढ़, और बुद्धिगढ़, ये तीनों दुर्भेद्य किलाको हमने एक साथ धावा बोल करके जीतलिया । अब एक छत्र साम्राज्य अपने हाथमें आ गया है । जीवनपर्यन्त इसकी व्यवस्था करना है । सद्गुण मन्त्रियोंको यथायोग्य कार्यमें नियुक्त करके अपने तो स्व-स्वरूपकी स्थितिमें ही शान्त हो रहेंगे । इच्छासे रहित होवेंगे । सद्गुरुकी कृपासे सत्सङ्गके बल, प्रताप द्वारा मोहके गढ़को जीतके फतेहकर लिये हैं । अब जीवन्मुक्त स्थितिमें ही अन्तपर्यन्त रहेंगे । दृढ़ वैराग्य करेंगे । और कृतकृत्य हो जावेंगे ॥ हस्तामलकने कहा हैः—

श्लोकः—"नाहं मनुष्यो न च देवयक्षो न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्राः ॥
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो भिक्षुर्नचाहं निजबोधरूपः ॥"

—मैं मनुष्य नहीं हूँ, देव और यक्ष भी नहीं हूँ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं हूँ, न ब्रह्मचारी हूँ, न गृहस्थ हूँ, न वानप्रस्थ हूँ, न संन्यासी हूँ. इसलिये मैं तो स्वयं ज्ञानस्वरूप हूँ ॥

और आत्मषट्क स्तोत्रमें कहा हैः—

श्लोकः—"न मैं मृत्यु शङ्का न मैं जातिभेदः पिता नैवमें नैव माता न जन्मः ॥
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥"

—मुझे मृत्युकी शङ्का नहीं है तथा मुझमें जातिका भेद भी नहीं है। मेरा पिता नहीं है, माता नहीं है, जन्म नहीं है, बन्धु नहीं है, मित्र नहीं है तथा गुरु-शिष्य भी नहीं हैं। मैं चैतन्य आनन्दस्वरूप शिव हूँ, मैं शिव हूँ ! ॥

इस प्रकार सत्सङ्गके प्रतापसे वलिष्ठ होकर हमने मोह गढ़को जीत लिया है। तब जाना कि, जगत्में हमारा अपना कोई नहीं और हम भी किसीके मीत नहीं। अतः अब केवल वैराग्य स्थितिमें हम लव-लीन हो रहे, और उसीमें अन्ततक लगे रहेंगे, ऐसा जानो ॥ १०६ ॥

दोहाः– धारा वर्षे मेघकी। घटमें वर्षे प्रेम ॥
हम बैठे आनन्दमें। राति दिवस नहिं नेम ॥ १०७ ॥

संक्षेपार्थः—जैसे वर्षा ऋतुमें बाहर मेघोंको धारा खूब बरसती है, तैसे हमारे घटमें भो शुद्ध प्रेमकी धारा वरसती है। उसीसे रात, दिनके नियम बिना हम आनन्दमें ही मगन होके बैठे रहते हैं। जब हम आनन्दमें पुलकित होके बैठे रहते हैं, तब दिन वा रात्रिका भी कुछ नियम हमारे लिये नहीं रहता है ॥

॥ ❋ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ❋ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—शास्त्रोंमें लिखा है:—अर्थात्, वर्षा ऋतुमें घनघोर मेघ-मण्डल नभमें आच्छादित हो जाते हैं। फिर प्रेरक वायुके बहाव होनेसे बादल पिघल करके पानीकी धारा खूब बरसते हैं। कभी-कभी तो लगातार दो, चार, दश, पन्द्रह और महीनों दिनतक भी वर्षाकी झड़ी लगी ही रहती है। इस प्रकार बाहर मेघकी धारा महाकाशमेंसे वरसता है। तैसे ही हमारे हृदया-काशमें भी इधर वैराग्यकी घटा छायके निजस्वरूप स्थितिमें अखण्ड प्रेमकी धारा वरसती रहती है। जिससे अन्तःकरणरूपी भूमिका तर-

बतर होके शीतल शान्त हो जाता है। उसी प्रेमकी धारामें भीजते हुए हम कहीं भी एकान्त प्रदेशमें जाकर निश्चिन्त हो, आनन्दमें सराबोर होके बैठे रहते हैं, ध्यानस्थ हो रहते हैं। तहाँ दिन और रात्रिका कोई नियम अटकाव हमें नहीं रहता है। हम ध्यान विचारमें रात-रात भर जागते हुए भी बैठे रहते हैं, और दिन-दिनभर भी बैठे ही रह जाते हैं। कभी तो समाधिस्थ होकर दिन-रात वा तीन-दिन और आठ, दश दिनतक भी एक आसनसे बैठे-बैठे बिता देते हैं। प्रेममें कर्म-विधान-का कोई नियम नहीं रहता है। जहाँ अखण्ड वैराग्य है, फिर भला! वहाँ नियम ही क्या रहेगा?। जबतक वृत्ति निरुद्ध रही, तबतक आनन्दमें मस्त होके बैठे रहते हैं। जब वृत्ति स्फुरित हुई, तब उठके किधर भी चल देते हैं। वैराग्यकी गति ऐसे ही होती है॥

जलकी वर्षा होनेके बारेमें कहा हैः—

श्लोकः—"वायुनाऽऽनीयते मेघः पुनस्तेनैव नीयते॥" विवेक चू० १७४॥

—वायु बादलोंको पहिले इकट्ठा करती है, फिर तिनको और देशमें उड़ाय देती है॥ और पञ्चग्रन्थीमें टकसार तथा समष्टिसारमें भी कहा हैः—

अर्धसाखीः— "अनल आकर्षण बीज जल, प्रेरक वायु थाप॥"

चौपाईः— "जो जल शोषक उठै बतास। तुरतहिं तहाँ घटाको नास॥" पं० ग्र०॥

—प्रेरक और शोषक ऐसे दो प्रकारकी वायु होती हैं, प्रेरक वायुसे सूर्यकी उष्ण किरणोंद्वारा समुद्र, नदियाँ आदि स्थानोंका जल भाफ-रूप बनके ऊपर चढ़ जाता है और अनेक बादल बनकर फिर बुन्द-रूपसे जलकी वर्षा होती है॥ और शोषक वायु चलनेसे बादलोंके घटाका तुरन्त नाश हो जाता है॥

इस प्रकार वर्षाकालमें मेघकी अनन्त धाराएँ बाहर पृथ्वीमें बरसती हैं। यह दृष्टान्त देके सिद्धान्तमें वैराग्यवान् अपनेमें घटायके कहते हैंः—उसी प्रकार विवेक-विचारकी वायुसे वैराग्य घटा एक-त्रित होकर हमारे घट भीतर हृदय आकाशमेंसे भी निजपदमें सत्य-

प्रेमकी धारा बरष रही है। सब तरफसे चित्तको स्थिर करके हम अपने स्वरूप स्थितिकी निजानन्दमें बैठे हैं। अब चाहे रात हो कि, दिन हो ? इसका कोई हमें नियम नहीं है। अथवा रात = अज्ञानी, दिन = ज्ञानी, आदि कोईसे भी हमारा अब नेम, प्रेम, कोई सरोकार नहीं रहा। सङ्गरहित होके हम अकेले विचरते वा कहीं भी पड़े रहते हैं ॥ १०७ ॥

दोहाः—ऊपर चमकै बिजुली । घटमें ज्ञान प्रकाश ॥
अनहद गरजै मेघ जो । छूटि जगतकी आश ॥ १०८ ॥

संक्षेपार्थः— और जैसे ऊपर मेघ मण्डलमें बिजली चकाचौंध चमकती है, तैसे ही हमारे घटमें भी ज्ञानका प्रकाश चमकता रहता है। जैसे बाहर मेघ गर्जते हैं, तैसे हमारे ब्रह्माण्डमें भो अनहद नादकी घोर गर्जना होती है। अतः सम्पूर्ण जगत्की आश, अब हमारी छूट गई है। निराश निवृत्त होके हम रहते हैं ॥

॥ ❋ ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ ❋ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— शास्त्रोंमें कहा हैः—ज्ञानवान् कह रहे हैंः— अर्थात्, जैसे बाहर ऊपर आकाशमें या वातावरणमें परस्पर बादलोंके संघर्षण, आकर्षण हो जानेसे अग्नि तत्त्वके विशेष परमाणु समूह एकत्रित होके, विजली चकाचौंध होके, चमकने, कौंचने लग जाती है। घना अन्धकारमें बार-बार बिजली चमक करके प्रकाश फैला-फैलाकर अदृश्य हो जाती है, और आपसमें मेघ-मण्डल टकरा जानेसे शब्द बहिर्गत होके भयङ्कर गर्जना होने लगती है। फिर मूसलाधार पानी बरषने लग जाता है। तैसे ही हमारे भीतर घटरूप अन्तःकरणमें भो विवेक, वैराग्यके रगड़से अज्ञान अन्धकारको विदीर्ण करके साक्षीपद ज्ञानगुणका प्रकाश रह-रहके होता जाता है। ज्ञानके प्रकाशमें घटमेंकी सब कुवृत्तियाँ देखनेमें आती हैं। और उन्हें हटाके हम शान्त हो जाते हैं। तब एकाग्र वृत्ति होने-

से मेघ-गर्जनाके समान दशनाद अनहद बाजाः—भेरी, दुन्दुभी, घण्टा, शङ्ख, मृदङ्ग, झाँझ, वीणा, सितार, बाँसुरी और सहनाई ये बजते हुए हमें सुनाई देते हैं। और मेघ-गर्जनके समान गम्भीर शब्द भी ब्रह्माण्डमें सुननेको आता है। बाह्य बिजली चमकना, मेघ गर्जना तो क्षणिक अस्थाई है, वर्षा भी खण्डित होती ही है। परन्तु हमारे हृदयस्थ ज्ञानका प्रकाश, अनहदकी ध्वनि, वैराग्य, प्रेमकी वर्षा तो स्थाई, सदैव अखण्डित बनी रहती है। उक्त दृष्टान्त तो स्थूल बुद्धि-वालोंको समझानेके लिये दिया है। नहीं तो नित्य ही वैराग्यकी वर्षा हमारेमें होती रहती है। जिससे जगत्का सम्पूर्ण आसक्ति और आशा, वासा, कल्पनादि सारे विकार हमारे हृदयसे छूट गयी हैं। सदा हम निराश, निवृत्त वर्तमानमें ही स्थिर हो रहते हैं॥

अथवा स्थूलदेहके ऊपरकी सुन्दरता सो यह बिजलीके नाईं क्षणिक, नाशवान् है। जो चैतन्य जीवका ज्ञानगुणका प्रकाश घटमें हो रहा है, इसीसे यह सुन्दर दिख रहा है, उसे न जानकर माया, मोहकी रागमें जो पड़े हैं, सो बद्ध हैं। और वाणी कल्पनाके प्रमाणसे अनहद कहिये जिसका हद नहीं, सो बेहद ब्रह्म मैं हूँ, ऐसा कथन करके जो मिथ्या हङ्कार पकड़के गर्जना करते हैं, वे भी जड़ाध्यासी बनके चौरासी योनियोंको प्राप्त होते हैं। और जगत्में खानी-वाणीकी आशा, अध्यास, सर्वथा जिनकी छूटी या छूट जाती है, वे ही पारखी मुक्त होते हैं। पारखी सद्गुरुकी दयासे जगत्की सकल आशा हमने छोड़ दिया है। अब निजपदमें ही स्थिति करके हमने विश्रान्ति ले लिया है। ऐसा विवेकी सन्त कहते हैं॥ १०८॥

दोहाः—घट आनन्द धारा बहै। ऊपर बहै जो नीर॥
मोहिं हर्ष नहिं शोग कछु। चहुँदिश बहै समीर॥ १०९॥

संक्षेपार्थः—जैसे बाहर वर्षाकालमें ऊपर मेघमण्डलसे जल वरषके जहाँ-तहाँ पानी बहने लगता है। तैसे हमारे घटमें भी आनन्द-को धारा लहरायके बहती रहती हैं। और चारों दिशाओंमें भी बाहर

हवा बहती है, तो हमारे चित्त चतुष्टयमें भी विचार बहता रहता है। अतः प्रकृतिके कार्यसे मुझे कुछ भी हर्ष वा शोक नहीं होता है। जगत्से मैं निर्लिप्त रहता हूँ ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— विरक्त शास्त्रज्ञका कथन हैः— अर्थात्, जैसे बाहर ब्रह्माण्डमें ऊपर मेघमण्डलसे बहुत जल-वृष्टि होनेपर वर्षाकालमें जिधर देखो, उधर पानी-ही-पानी नजर आता है। नदियोंमें पूर बढ़के, जोर-जोरसे बड़े वेगसे धारा बहती चली जाती है। नीचे-ऊपर सब तरफ जल बरसता है, तो बहता है। ऐसे वर्षाऋतु बड़ी सुखदाई होती है। उसी प्रकार भीतर पिण्डाण्डमें हमारे घटमें भी विवेक-वैराग्यसे निवृत्ति सुखरूप आनन्दकी धारा उमड़-घुमड़के प्रवाहित होती है, या प्रेम बहता रहता है। सदा निज-स्थितिमें हम मगनमस्त रहते हैं। अतएव संसारमें किसीका चाहे कुछ बनो वा बिगड़ो, हानि-लाभ कुछ भी होता रहे, उससे मुझे कभी न हर्ष ही होता है, और न कुछ शोक ही होता है, अर्थात् दुनियाँसे कुछ भी मुझे हर्ष-शोक नहीं होता है। जैसे शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन अपने गतिसे चारों दिशामें बहता है या चलता रहता है, तैसे मैं भी अपनी स्वच्छन्द, स्वतन्त्र गतिसे चारों दिशामें जाके भ्रमण या विचरण करता रहता हूँ। कहीं किसी पदार्थमें आसक्ति नहीं टिकाता हूँ।

किसीने कहा भी हैः—

दोहाः—"बहता पानी निर्मला, रूका गन्दा होय ॥
साधु तो रमता भला, दाग न लावैं कोय ॥"

चाहे घनघोर वर्षा होती रहे, वा प्रचण्ड पवन चौतरफ चलता रहे, अथवा कड़ाकेका धूप पड़ रही हो, वा ठण्डी फैली पड़ी हो, उससे मुझे कोई हर्ष-शोक नहीं होता, मैं तो अपनी मस्तीसे जब चाहे, तब कहीं भी, कैसी भी मौसम हो, तो भी निकल जाता हूँ। मुझे ये जड़-प्रकृतियाँ रोक नहीं सकती हैं। हम अपने चालमें ही सदा बर्तते रहते हैं ॥

अर्थात् हमारे घटमें प्रेमआनन्दकी निर्मल धारा बह रही है और बाहर देखो तो ऊपरसे भी जलकी वर्षा हो रही है। फिर बाहर चारों दिशामें सरसराता हुआ वायु बह रहा है। घट भीतर, तैसे ही विचारका प्रवाह, चित्त-चतुष्टयमें चल रही है। ऐसे भीतर-बाहर एक सदृशकार्य देखके भी मुझे कुछ हर्ष-शोक नहीं होता है। कहा है:—

दोहाः— "क्षुधा तृषा गुण प्राणके, शोक मोह मन होय ॥
सुन्दर साक्षी आतमा, जाने बिरला कोय ॥
निन्दा स्तुति है देहकी, कर्म शुभाशुभ देह ॥
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय, कछुहु न जाने येह ॥" सुन्दर वि० ॥

अतः अपने वैराग्यपदमें ही हमारी स्थिति है। इसलिये राग, द्वेष बिसरायके सुख, दुःखादिमें समानभावसे बर्तते हैं। चारों तरफ विचरते रहते हैं ॥ १०९ ॥

दोहाः—पपिया पिउ पिउ करत है । चहुँदिश कुहकत मोर ॥
हम बैठे आनन्दमें । सुनत श्रवणते शोर ॥११०॥

संक्षेपार्थः— विरक्त पुरुष कहते हैं:— वर्षाके मौसममें वृक्षोंकी डालीमें बैठे हुए पपिहा = चातक पक्षी मधुर-मधुर स्वरमें पीउ-पीउ कहता है, कभी "पानी पिउँ-पानी पिउँ" ऐसा रटता है। ऐसे ही दिन-दिनभर पुकारा करता रहता है, और मोर भी मेघ-गर्जना सुनके खुश होकर चारों दिशाको देखके नाच-नाचकर, घूम-घूमके कुहकते हैं; काँव-काँव बोलते हुए चिल्लाते जाते हैं। उन पक्षियोंके भाँति-भाँतिके शब्द शोर-गुलको श्रवणंसे सुनते हुए वनखण्ड, गिरी-गुहा, नदीतट आदिक स्थानोंमें हम बैठे-बैठे आनन्दमें निमग्न हो रहते हैं। तहाँ हम अपने विचारमें तल्लीन हो रहते हैं। कहाँ क्या हो रहा है? उस तरफ हमारा लक्ष बिलकुल जाता ही नहीं। अक्सर विचारमें ही लीन हो रहते हैं, कभी बाह्यवृत्ति हुआ, तो उन पक्षियोंका स्वर सुनाई देता है, ऐसे हम आनन्दमें ही बैठे रहते हैं। इसी प्रकार जीवन बिताय देते हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— शास्त्रोंमें कहा हैः— अर्थात्, वर्षाऋतुके वर्णनमें भर्तृहरिने कहा हैः—

श्लोकः— "उपरि घनं घनपटलं तिर्यग्गिरयोऽपि नर्तित मयूराः ॥" भ० शृ० श० ॥

— ऊपर घनघोर घटा छा रही है, दाहिने-बायें पर्वतोंपर मयूर नाचरहे हैं ॥

दोहाः— "घटा घोर चढ़ मोर गिरी, शोह हरित सब भूमि ॥
बिरही व्याकुल पथिकको, कहाँ तोष लखि घूमि ॥
अम्बर घन अवनी हरित, कुटज कदम्ब सुगन्ध ॥
मोर शोर रमणीक वन, सबको सुख सम्बन्ध ॥
दमकत दामिनि मेघ इत, केतकि पुष्प विकास ॥
मोर शोर निशि दिन करत, विरही जन मन त्रास ॥"

और कबीरपरिचय साखीमें कहा हैः—

साखीः—"स्वातीको पपिहा रटत, सबै बोल मत प्रेम ॥
जो स्वाती पपिहा मिली, पिउका छुटा न नेम ॥" साखी १६१ ॥

यह सब सम्बन्ध अज्ञानी, मूर्ख, कामी लोगोंको काम बढ़ानेवाला होता है, परन्तु ज्ञानी, विवेकी, निष्कामी पुरुषोंको वैराग्यको वृद्धिकरने वाला होता है। इसीसे वैराग्यवान् कह रहे हैं कि, हे भाई ! समयानुसार वह सब देखते-सुनते हुए भी परिणामका, विचार करके हम विकारसे रहित हो रहते हैं। मनको मारे रहते हैं। तभी वैराग्यपूर्ण होता है।

वर्षासे प्रभावित होकर सब प्राणी हर्षोल्लासमें भर उठते हैं। उनमें पपिहा एक तरफ पीउ-पीउ ! कहाँ हो ? कोहो-कोहो ! शब्दोंकी राग अलापता है। दूसरी तरफ मोर पङ्ख फैलाके नाच-नाचकर कुहकते हुए चारों दिशामें दौड़ते-फिरते हैं। कोयल अलग ही मधुर-मधुर ध्वनि बोलती है। और कोई दुक्कुर-कूर-कूर ! दुक्कुर-कूर-कूर ! करते, बैठते हैं। कोई टाँय-टाँय करते हैं, कोई कुचूर-चूर-चूर करते है, कोई टर्र-

टर्र-टर्र करते, बैठते हैं। इत्यादि अनेकों प्रकारकी बोलियाँ बोल-बोलके वे दिन बिताते हैं। और रात्रिमें पशु-पक्षीगण शान्त होके बैठ जाते हैं, तो उधर कीड़े, पतङ्गे, झिंगुर झीं-झीं, झीं-झीं करते रहते हैं। ऐसा होनेपर भी हम तो अपने ज्ञानगुफामें बैठके आनन्दमें ही समय बिताते हैं। उन सबके शोर श्रवणसे सुनते हुए, आदि, अन्त, मध्यकी कर्मफलोंका विचार करते हुए, चित्तको एकाग्र करके दृढ़ वैराग्यमें ही लगाये रखते हैं। जिससे वैराग्यका प्रत्यक्ष सुख-फल हम पाते हैं। नहीं तो संसारमें जिधर देखो, उधर ही सब प्राणी दुःख-ही-दुःखके ज्वालामें झुलस रहे हैं, मर-मरके चौरासी योनियोंमें जा रहे हैं। हे मनुष्यो! यदि तुम लोग भी सुखी होना चाहते हो, तो वैराग्य-भूमिकामें पदार्पण करो। तभी सब प्रकारसे सुखी हो जाओगे! ॥

उस बारेमें कहा है:—

दोहा:—"मुक्ति विषय वैराग्य है, बन्धन विषय सनेह ॥
यह सद्ग्रन्थनको मतो, मनमाने सो करेह ॥"

अतएव ऐसा जानकर वैराग्य धारण करके सुखी होओ ॥११०॥

॥ * ॥ शास्त्रोक्त वैराग्य, शरद ऋतुका कार्य वर्णन ॥ * ॥

दोहा:—यहि विधि वर्षा बीतही। आई शरद अनयास ॥
निर्मल बादल हो गये। चहुँ दिश फूली कास ॥१११॥

संक्षेपार्थः— इसी प्रकारसे वर्षाऋतुके दो महीने श्रावण, भाद्र बीत गये। तबतक विरक्त पुरुषोंने भी गुफा, कन्दराओंमें रहके समय बिता दिये। इस तरह वर्षा व्यतीत होनेपर आश्विन, कार्तिक ये दो महीनों वाली शरदऋतु अनायास = अचानक आप-ही-आप या सहज ही आ गई। यानी वर्षा बीती, तो अनायास बिना प्रयत्न किये ही सन्मुखमें शरदऋतु आती भयी। तब बाह्य प्रकृतिमें भी परिवर्तन होते गये। और सब बादल छँटके नभ-मण्डल निर्मल साफ हो गये। कहीं एक छोटा टुकड़ामात्र भी बादलका नहीं दिखाई देता था, और

वनप्रान्तके चारों दिशाओंमें कासके सफेद-सफेद चँवर सरीखे फूल झकाझक होके फूल गये। जो देखनेमें बड़े शोभायमान लगते थे ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—शास्त्रोंमें कहा हैः— अर्थात्, महाभारतके वनपर्वके अध्याय १८२ में शरदऋतु वर्णन निम्न प्रकारसे किया हैः—"वर्षाके बाद रमणीय शरदऋतु आई। क्रौंच, हंस आदि जलचर पक्षी आनन्दमें मग्न हो, इधर-उधर विचरने लगे। जङ्गलों और पहाड़ोंपर हरी-हरी घास शोभायमान दीख पड़ने लगीं। नदियोंका जल निर्मल हो गया। निर्मल आकाशमें चन्द्रमाका और नक्षत्रोंका उज्ज्वल प्रकाश फैल गया। पशु और पक्षियोंकी टोलियाँ विचरने लगीं। धूल कहीं न रही, आकाशमें बादल कहीं देखनेको भी न थे। ग्रहों और नक्षत्रोंसेयुक्त चन्द्रमाके उदय होनेपर, रात बड़ी सुन्दर जान पड़ती। शीतल जलसे पूर्ण नदियों और सरोवरोंमें कुमोदिनी और कमलोंके फूल खिलने लगे। तारोंसेयुक्त विमल आकाशकी तरह उत्तमपत्र लगे हुए, बेतोंके वृक्षोंसे शोभित एवं तीर्थरूपी पावन सरस्वती नदीके तटपर बिचरनेसे पाण्डव बड़े हर्षित थे ॥"

इस विधिसे वर्षाकाल व्यतीत हो गया, तो आप ही घूमती हुई शरदऋतु भी आ गई। इससे प्रकृतिके कार्य भी बदल गये। बादल छँट गये, आकाश निर्मल हो गया। जङ्गलोंमें भी चौतरफ कासके फूल, फूल गये। यह सब देखके वैराग्यवान् पुरुष भी गुफासे बाहर निकल गये। फिर जिधर जी चाहे, उधर विचरण करनेको चल पड़े। मनमें कोई बातकी चाहना, आशा, तृष्णा उनके नहीं रही। सहज भावसे कहीं भी भ्रमण करते रहते हैं, और मनको स्थिर रखके इसी प्रकार जीवन बिता देते हैं ॥ १११ ॥

दोहाः—देखि शरद्की चाँद्नी । उत्तम शिला अपार ॥
निर्मल जल सरितानको । अरु आरण्य विहार ॥११२॥

संक्षेपार्थः—शरद्कालकी रात्रिमें स्वच्छ, शुभ्र चाँदनीके प्रकाश देखके विरक्त पुरुष अपने मनको भी वैसे ही स्वच्छ, शीतल, शान्त कर लेते हैं । और लम्बी, चौड़ी, पथरीली जमीनमें चपटी शिला देखके वहीं पड़े रहते हैं । उत्तम बर्ताव रखते हैं, मनकी अपार दौड़को रोककर स्थिर किये रहते हैं । उस वक्त जैसे नदियोंका जल निर्मल साफ हो जाता है; वैसे वे अपने वृत्तियोंको भी निर्मल बनाय लेते हैं, और आरण्य = जङ्गलोंमें विचरण करते हुए इस प्रकार वैराग्यवान् अकेले वैराग्यको बढ़ायके, विहार करते रहते हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—शास्त्रोंमें कहा हैः—अर्थात्, पर्वतीय प्रदेशमें सर्वोत्तम शिलायें अपार विस्तारसे बिछी हुयी हैं। इधर नदियोंमें जल भी निर्मल होके बह रहा है, और रात्रिमें चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना छिटक रही है, ऐसे शरद्ऋतुमें विहार करने लायक आरण्यको देखके विरक्त पुरुष बन-पर्वतोंमें ही टहला करते हैं; और कोई बातकी चाहना नहीं करते हैं । तहाँ कहा हैः—

चौपाईः—"गुहा महल वन बाग घनेरा । क्यों राजाको ह्वै हूँ चेरा ॥
सेजशिला अरु निज भुज तकिया । निर्झर जलकर पात्र न रुकिया ॥ ४३ ॥
बैठि इकन्त होय सुच्छन्दा । लहिये भर्छू परमानन्दा ॥ ४४ ॥
बिन एकान्त न आनन्द कबहूँ । मिलै अब्धिलों पृथ्वी सबहूँ ॥"वि० सा०५॥

शरद्की स्वच्छ चाँदनीकी सरीखी विशुद्ध मन विरागी पुरुषकी देखलो । शिलावत् साफ उत्तम अपार दृढ़ता, स्थिरता उनमें रहती है । निर्मल जलवत् उनके विचारधारायें निर्मल शुद्ध रहती हैं, और जङ्गल ही उनका निवास-स्थान रहता है, ऐसे ही उनके विहार दृढ़ वैराग्यके व्यवहाररूप बर्ताव देह रहे तक रहता है, और इसी प्रकार-

से बर्तनेका वे अन्य लोगोंको भी शिक्षा देते हैं ॥ ११२ ॥

दोहाः—भूख लगी तब मागिबो । भीख अन्न एकबार ॥
भक्षण करि सरितानको । नीर पीजिये सार ॥११३॥

संक्षेपार्थः—वैराग्यवान् सन्त जब अत्यन्त भूख लगती है, तब ही एक बार दिनके दोपहरको भिक्षा करके अन्न माँगते हैं, और उस भिक्षान्नको लेके नदी तटादि एकान्त स्थानमें जाके, जल छिड़ककर खा लेते हैं। फिर भोजन करनेके उपरान्त नदियोंके स्वच्छ जल पीके तृप्त होकर सारासार, विचार,विवेक, वैराग्यकी वृद्धि करनेमें ही सदा लगे रहते हैं। यतिके लिये ऐसे ही करनेको वेद, शास्त्रोंमें नियमित आज्ञा भी लिखा हुआ है ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—शास्त्रोंमें कहा हैः—अर्थात्, शास्त्रज्ञ गुरु उपदेश देते हुए शिष्यके प्रति कह रहे हैंः— हे शिष्य ! जब ज्यादा ही भूख लगे, तब एक बार गाँव, कस्बा, नगरोंमें जाके भिक्षा माँगकर अन्न माँग लेना। फिर उसे शुद्ध भूमिमें अकेले बैठके खाकर, नदियोंसे जल छानके पी लेना। तदनन्तर सत्यसार और असारका निर्णय करके वैराग्यमें लगे रहना चाहिये। सुनो, एकबार भिक्षा करनेके लिये प्रमाण, मनुस्मृतिमें कहा हैः—

"एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे। भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जते ॥
विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने। वृत्त सरावसम्पाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ६ । ५५–५६ ॥

—यति केवल एक समय ही भिक्षाटन करे, भिक्षाके विशेष विस्तारमें आसक्त न हो। जो यति भिक्षामें ही आसक्त होता है, उसका विषयोंमें भी राग हो जाता है ॥

रसोईकी धुँआँ दूर होनेपर और मूसलके कूटनेका शब्द बन्द होनेपर, तथा रसोईकी आग बुझी होनेपर, और गृहस्थतक

सबोंके भोजन कर लेनेपर त्याग किये हुए मिट्टीके सराव आदि वर्तनोंमें यति सदा भिक्षाको करै ॥ और उशनः स्मृतिमें भी कहा हैः—

श्लोकः— "मनः संकल्परहितान् गृहांस्त्रीन्पञ्चसप्त वा ॥
मधुवदाहरणं यत्तन्माधुकर मिति स्मृतम् ॥" उशनः स्मृति ॥

— मधुकर = भौंरा, जैसे भिन्न-भिन्न पुष्पोंसे मधु ले आता है, उसी प्रकार जिनके मनमें कोई संकल्प न हो, ऐसे तीन, पाँच, या सात घरोंसे भिक्षा माँग लाना "माधुकरि" कहलाता है ॥

श्लोकः— "अष्टौ भिक्षाः समादाय स मुनिः सप्त पञ्च वा ॥
अद्भिः प्रक्षाल्य ताः सर्वास्ततोऽश्नीयाच्च वाग्यतः ॥" संवर्त स्मृति ॥

— वह मुनि आठ, सात अथवा पाँच घरकी भिक्षा लाकर उन सबको जलसे धोवे, और फिर मौन होकर भोजन करे ॥ ऐसा संवर्त स्मृतिमें कहा है ॥ और मनुस्मृतिमें कहा हैः—

"दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् । सत्यपूतांवदेद्वाचं मनः पूतंसमाचरेत् ॥
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च । अहिंसया च भूतानाममृतत्त्वाय कल्पते ॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ६ । ४६ । ६० ॥

— बाल तथा हाड़ आदि अशुद्ध बचानेके लिये आँखोंसे देखकर पवित्र जानकरके भूमिमें पैर रखै । वस्त्रसे छानकर पवित्र करके जल पीवै, सत्यसे पवित्र हुआ वचन बोले, और निषिद्ध सङ्कल्पोंसे रहित अन्तःकरणसे पवित्र माना हुआ आचरण करे ॥

— इन्द्रियोंके रोकनेसे, राग-द्वेषके दूर होनेसे और प्राणियोंकी हिंसा न करनेसे, यति मोक्षके योग्य होता है ॥ शरीर क्षीण हो जानेपर भी जीवोंकी रक्षाके लिये रात्रि अथवा दिनके समय सर्वदा पृथ्वीकी ओर देखते हुए ही भ्रमण करे । ऐसा मनुने कहा है ॥ इस प्रकार क्षुधा लगनेपर ही दिनमें एक वक्त मध्याह्नमें भिक्षाकरके बना-बनाया भोजन माँग लेवे, फिर उसे भक्षण करके सरिताओंका जल छाँनके पीवे । इस तरह क्षुधा-तृषादिको शान्तकरके सदा सत्य, सारका ही विचार करता रहै, दृढ़ वैराग्य बनाये रखै ॥ ११३ ॥

दोहाः— नींद लगै तब सोइये । उत्तम थल एकान्त ॥
ओढ़ि गूदरी इन्द्र ज्यौं । वृत्ति करिये निरान्त॥११४॥

संक्षेपार्थः—हे विरक्त लोगो! जब तुम्हें कभी नींद लग जाय, तब कहीं अच्छा एकान्त उत्तम स्थान देखके सो जाइये। उसपर ऊपरसे अपनी फटी-टूटी गुदड़ी ओढ़करके, इन्द्रसे भी बढ़करके सुखी हो, वृत्तियोंको निरान्त, शान्त, करते रहिये। जो उस सुखको तो इन्द्र भी पा नहीं सकता है। ऐसे निवृत्ति स्थिति सबसे महान होती है, सो जान लिजीये ! ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— शास्त्रोंमें कहा है:— अर्थात्, हे वैराग्यवानो! ध्यान, विचारादि अभ्यास करते-करते जब शरीर, इन्द्रियाँ, मन थकित हो जायें, और आलस्य बढ़के निद्रा लगने लगे, ऊँघी आ जाय, तथा रात्रिका दूसरा प्रहर लग गया हो, ऐसा जाने, तब एकान्त उत्तम स्थानमें, जहाँ किसी प्रकारकी उपाधि हल्ला-गुल्ला न होता हो, और हिंसक जन्तुओंका भय भी जहाँपर न होवे, ऐसे जगहमें जाके आरामसे सो जाइये। परन्तु दिनमें कभी मत सोइये। सोयके ही दिन बिताना तो मूर्खता है। अतएव दिनमें नहीं सोना, और रात्रिमें नींद लगै, तब उचित स्थान देखके एकान्तमें शयनकर लीजिये, और ऊपरसे गुदड़ी = कन्था, चद्दर जो पासमें हो, सो ओढ़के शीत निवारण, तथा डाँस, मच्छर आदि जन्तुओंसे देहका बचाव कर लीजिये ! और बाह्य दशों इन्द्रियाँ तथा आन्तरिक चित्त-चतुष्टय आदि सबोंको जैसे भी करके स्ववश-दमन करके बाह्याभ्यन्तर सर्ववृत्तियोंको निवृत्त, शान्तकर, निरान्त = नीराअन्त, बिलकुल लीन करिये। अर्थात् जैसे इन्द्र, इन्द्रासन प्राप्त करके परमसुखी रहता है, ऐसा कहा है। तैसे विरक्त पुरुष भी सकल इन्द्रियोंके वृत्तियोंको लय करके परम सुखी हो जाते हैं। जैसे गुदड़ीसे शरीर ढाँका

जाता है, तैसे विवेकसे मनादिको ढाँककर शान्त स्थिर रहते हैं।

अथवा जब ध्यान समाधि करनेका विचार हो, तब उत्तम निर्जन एकान्त स्थानमें जाकर ध्यान लगाइये। योग निद्रामें लवलीन होके, समाधि लगाके, सुखपूर्वक सोइये। जैसे गुदड़ी ओढ़के इन्द्रियाँ छिपायी जाती हैं, तैसे वृत्तिलय करके निरान्त करिये। संकल्प, विकल्पको मिटाकर निर्विकल्प स्थितिको प्राप्त हो जाइये ॥ ११४ ॥

दोहाः—चलन फिरन स्वच्छन्दसों। काहू की नहिं आश ॥
राजा रङ्क समान है। रहै न काहुके पाश ॥११५॥

संक्षेपार्थः— विरक्त पुरुषोंने सर्वदा स्वइच्छासे ही सब कार्य करना चाहिये। चलना, फिरना, बैठना, उठना, कहना, सुनना, इत्यादि सम्पूर्णदेह व्यवहार स्वच्छन्द = अपने इच्छानुसार ही स्वतन्त्ररूपसे करे। संसारमें किसीकी भी आशा, भरोसा न करै। राजा और रङ्क = गरीब, निर्धन इन दोनोंको एक समान समझे। त्यागी पुरुष राजा, रङ्कमें समान दृष्टि रखते हैं। इसवास्ते धनी, निर्धनादि किसीके भी आस-पासमें या निकट जाके न रहै। कभी किसी व्यक्तिके साथमें वा पासमें न रहै। अकेला ही सदा विचरता रहै ॥

॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— शास्त्रोंमें कहा हैः— अर्थात्, वैराग्यवानोंका चलना, टहलना, फिरना, कहीं जाना, आना, इत्यादि सबकार्य उनके इच्छा, खुशी करके स्वच्छन्दसे ही होता है। उन्हें किसीको आशा भो नहीं रहती है, और किसीके पासमें भो वे नहीं रहते हैं। उनके दृष्टिमें राजा और दरिद्री एक समान ही दिखते हैं। इसलिये वे किसीकी भी पर्वाह नहीं करते हैं। शास्त्रोंमें कहा हैः—

"एकरात्रं वसेद्ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम्। वर्षाभ्योऽन्यत्र नासीतैकत्रेत्युक्तं कठश्रुतौ ॥" मु०

—उसे (अधिकसे-अधिक) ग्राममें एक रात्रि और नगरमें पाँच रात्रि निवास करना चाहिये। तथा वर्षाऋतुके सिवा अन्य समयमें

किसी एक स्थानपर कभी न रहना चाहिये — ऐसा कठ श्रुतिमें कहा है ॥ और मुमुक्षु सर्वस्व सारमें कहा है:—

"चिन्तयन्स्वस्वरूपं च त्यक्त्वा बन्धु भवस्थलम् । कारागृहविनिर्मुक्तचोरवद्दूरतो वसेत् ॥
पत्तने तु त्रिरात्राणि क्षेत्रे षड्रात्रकं वसेत् । तीर्थे च सप्तरात्राण्येवं चरेदनिकेतकः ॥मु०
मात्सर्यादींश्च सन्दह्य सदैकाकी यतिश्चरेत् । पत्तननगरग्रामान्न कुर्वीत कदाचन ॥
द्वाभ्यां ग्रामः समाख्यातः पत्तनंच त्रिभिर्भवेत् । चतुर्भिर्नगरं तस्मात् त्रयंत्यक्त्वा चरेद्यतिः॥"

—अपने बन्धुजन और जन्मस्थानको छोड़कर अपने स्व-स्वरूपका चिन्तन करते हुए कारागारसे छूटे हुए चोरके समान सदा दूर ही निवास करे ॥ और पत्तन (नगर) में तीन रात्रि, क्षेत्रमें छः रात्रि तथा तीर्थमें सात रात्रितक रहे । इसप्रकार अनिकेत = गृहविहीन, होकर विरचता रहे ॥ मात्सर्य आदि दोषोंको दग्ध करके यतिको सदा अकेले ही विचरना चाहिये । उसे पत्तन, नगर या ग्राम कभी न करना चाहिये ॥ दो यतियोंके साथ-साथ रहनेसे ग्राम कहा जाता है, तथा तीनके रहनेसे पत्तन और चारसे नगर हो जाता है, इसलिये यतिको इन तीनोंका त्याग करते हुए (अर्थात् सर्वदा अकेले रहते हुए ही) विचरना चाहिये ॥ और भागवत ग्यारह स्कन्धमें दत्तात्रेयने कहा है:—

श्लोकः—"वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्ता द्वयोरपि ॥
एक एव चरेत्तस्मात्कुमार्या इव कंकणः ॥" स्क० ११ अ० ९ श्लोक १०॥

—जब बहुत लोग एक साथ रहते हैं, तब कलह होता है, और दो आदमी साथ-साथ रहते हैं, तब भी बात-चीत तो होती ही है । इसलिये कुँआरी कन्याकी चूड़ीके समान अकेले ही, साधुको— विचरना चाहियें ॥

इसप्रकार विरक्त पुरुषको चाहिये कि, वह अकेले ही सदा स्वच्छन्द गतिसे चलै-फिरै । संसारमें किसीकी भी आशा न करै, किसी पदार्थकी चाहना भी नहीं करे, और ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, खुदा, देवी, देवता, भूतगण, इत्यादि इन मिथ्या कल्पनाओंकी भी कभी आशा, भरोसा न करे । निराश वर्तमानमें निवृत्तिसे बर्तै ।

राजा, रङ्क आदिकोंमें समान भाव, समदृष्टि रखै, पक्षपात न करे, और किसी मनुष्यादि प्राणियोंके पासमें या साथमें कभी न रहै। क्योंकि, किसीके साथमें रहनेसे सङ्गदोष लगनेका भय लगा रहता है। अतएव असङ्गहो अकेला ही पृथ्वीमें विचरता रहै। सदा सचेत हो रहै ॥ ११५ ॥

दोहाः— समशानमें गृह शून्यमें । की धूनीके पास ॥
　　की तो ओढे गूदरी । की तो बिछावै घास ॥ ११६ ॥

संक्षेपार्थः—हे विरक्त पुरुषो ! आपलोग निवृत्तिके स्थितिके लिये सदा एकान्त स्थानमें ही अकेले रहो। चाहे श्मशानघाटमें— जहाँ मुर्दे जलाया जाता है, वहाँ जाके रहो, और मुर्दोंकी गति देख-देखके अपनी शरीरकी भी आसक्ति छोड़कर वैराग्यको बढ़ाओ। यातो कहीं शून्यगृह = धर्मशाला (पाटी-पौआ, ठाँटी) जहाँ कोई मनुष्य न हो, गिरे-पड़े मकानोंमें, जिसमें लोगोंने रहना छोड़ दिया हो, ऐसे शून्य गृहमें जाके रहो और ध्यान विचारमें लगो। की = अथवा जलती हुई धूनीके पास वृक्षके नीचे पड़े रहो। विचरते हुए उक्त तीनों स्थान नहीं मिलै, और ठंडी समय होवे, तो फटी टूटी गूदड़ी ही ओढ़के रात विताय देवें। अथवा गूदड़ी भी नहीं मिलै, तब तो जङ्गलमें घास मिलता ही है, उसी घासको बटोरके बिछावे, इस-तरह सर्दीकी रात बिताय देवे। परन्तु संसारिक सुखकी कभी इच्छा न करै, दृढ़ वैराग्यमें ही स्थित रहै ॥

॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैः—शास्त्रोंमें कहा हैः—अर्थात्, श्मशान भूमिका, शून्य गृह, और वृक्षके नीचे, धूनीके पासमें, मुख्य करके ये तीन स्थानमें विरक्त साधुओंको रहनेके लिये कहा है। जिस करके वैराग्य दृढ़ हो। तथा पर्यटन करतेमें उक्त तीनों स्थानोंका अभाव हो, तो गूदड़ी पासमें होवे, तो, उसे ही ओढ़के कहीं वृक्षके नीचे पड़ा

रहै, अथवा घास ही बिछायके समय गुजार लेवे। इसके अतिरिक्त आरामके लिये अन्य प्रयत्न न करै, ऐसा शास्त्रज्ञोंने कहा है। तहाँ शास्त्र वाक्य निम्न प्रकारसे कहा है:—

श्लोकः— "नदीपुलिनशायी स्याद्देवागारेषु वा स्वपेत् ॥
नात्यर्थं सुखदुःखाभ्यां शरीर मुपतापयेत् ॥" मु० स० ॥

—(यतिको चाहिये कि) नदीके पुलिन (रेतीले किनारे) में पड़ा रहे, अथवा देवालयोंमें शयन करे तथा अपने शरीरको सुख, दुःखसे अत्यन्त सन्तप्त न करे ॥

श्लोकः— "देवाग्न्यागारे तरुमूले गुहायां, वसेदसङ्गोऽलक्षितशीलवृत्तः ॥
निरिन्धनज्योतिरिवोपशान्तो, न चोद्विजेत्प्रव्रजेद्यत्र कुत्र ॥" मु० स० ॥

—यतिको अपने शील और आचारको अलक्षित रखते हुए— देवागार, अग्निशाला, वृक्षमूल, अथवा गुहामें असङ्ग भावसे निवास करना चाहिये। तथा बिना ईन्धनकी अग्निके समान शान्त रहकर जहाँ-तहाँ विचरता रहे और उद्विग्न न हो ॥

और महाभारतमें भी कहा है:—

श्लोकः— "शून्यागारं वृक्षमूलमारण्यमथवा गुहाम् ॥
अज्ञातचर्यां गत्वान्यां ततोऽन्यत्रैव संविशेत् ॥" महाभारत ॥

—शून्य मठ, वृक्षमूल, वन, अथवा जिसका किसीको पता न हो, ऐसी किसी अन्य गुहामें जाकर या वहाँसे भी अन्यत्र जाकर रहने लगे ॥

श्लोकः— "न चैकस्मिन्वसेद्ग्रामे न चैकस्मिन् सरित्तटे ॥
शून्यागारे न चैकस्मिन्वसेच्छून्यालयें तथा ॥" मु० स० ॥

—और वह एक गाँव, एक नदी तीर, एक शून्य गृह, अथवा एक ही शून्य आश्रममें कभी न रहे। (अर्थात् उसे अपना निवासस्थान सर्वदा बदलते रहना चाहिये) ॥

इस प्रकार वैराग्यको परिपुष्ट करनेके लिये साधुने मरघटमें, सूना घरमें कि— धूनीके पासमें रहे, और कि तो गूदड़ी ओढ़ै कि, तो

घास बिछायके रहै। किसी पदार्थका संग्रह न करे। जैसे भी हो वैराग्यको ही बढ़ावे, चाहना मिटाय देवे ॥ ११६ ॥

दोहाः—शरद निशाकी चाँदनी। चहुँदिश करत विहार ॥
भूमि शयन वल्कल वसन। कन्द मूल फलहार ॥११७॥

संक्षेपार्थः— शरदऋतुके रात्रिमें चन्द्रमाके शुभ्र किरण प्रकाशसे चारों दिशायें प्रकाशित हो रही हैं। हिमगिरीके धवल शृङ्ग जगमगा रहे हैं, ऐसे समयमें विरक्त पुरुष निश्चिन्त हो चहुँदिशमें विहार या विचरण करते रहते हैं, और दिनमें वनके कन्द, मूल, फल, फूलादिका यथा प्राप्त आहार करके नदियोंसे जल पीकर तथा वल्कल= वृक्षोंके छालका ही वस्त्र पहिनके जहाँ कहीं भी साफ जमीनमें ही शयन करके शान्त रहते हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— शास्त्रोंमें कहा हैः— अर्थात्, इस बारेमें भर्तृहरिने भी वैराग्यशतकमें कहा हैः—

श्लोकः— "सखे ! धन्याः केचित् त्रुटित भवबन्ध व्यतिकरा ॥
वनान्ते चित्तान्तर्विषमविषयाशीविषगताः ॥
शरच्चन्द्रज्योत्स्ना धवल गगनाभोग सुभगां ॥
नयन्ते ये रात्रिं सुकृतचय चित्तैकशरणाः ॥" वैराग्यश० ॥

दोहाः— "ते नर जगमैं धन्य हैं, शरद शुभ्र निशि माँहि ॥
तोड़े बन्धन जगतके, मनते विषयन काहि ॥"

सोरठाः— "विषय सर्पको मारि, चित लगाय शुभ कर्ममें ॥
पुण्य कर्म शुभ धारि, त्यागे सब मन वासना ॥"

—हे सखे ! धन्य है उन पुरुषोंको, कि—जो वनमें बैठे हुये शरद ऋतुकी चाँदनीसे शुभ्र हुए आकाश-मण्डलसे अति मनोहर ऐसी रात्रिको व्यतीत करते हैं। फिर वे कैसे हैं कि—जिन्होंने संसार-बन्धनका सम्बन्ध तोड़ दिया है और अन्तःकरणमेंसे महाभयानक

विषयरूपी सर्प निकस गये हैं जिनके, और उनके चित्त केवल पुण्य समूहके सम्पादन करनेमें ही लग रहा है ॥

श्लोकः— "स्फुरत्स्फारज्योत्स्ना धवलिततले क्वापि पुलिने ॥"

— प्रकाशित चाँदनीसे जिसकी तलहटी श्वेत हो रही है, ऐसी गङ्गाकी किसी पुलिनमें हम सुखपूर्वक कब बैठेंगे ॥

श्लोकः—"फल मलमशनाय स्वादु पानाय तोयं, शयनमवनिपृष्ठे वाससी वल्कले च ॥
धनलवमधुपान भ्रान्तसर्वेन्द्रियाणामविनय मनुमन्तुं नोत्सहे दुर्जनानाम् ॥"

दोहा:— "भूमि शयन वल्कल वसन, फल भोजन जलपान ॥
धनमद माते नरनको, कौन सहत अपमान ॥"

— फल भोजन करनेके लिये, मधुर जल पीनेको, पृथ्वी शयन करनेके लिये और वृक्षकी छाल पहिरनेके लिये, यथेष्ट है। फिर धनरूपी मदिरासे उन्मत्त दुर्जनोंके सन्मुख निरादर सहन करनेके लिये क्यों उत्सुक हों? ॥ "वयमिह परितुष्टा वल्कलैः"**—हम वृक्षके वल्कल पहनके सन्तुष्ट हैं ॥**

श्लोकः—"पुण्यैर्मूलफलैः प्रिये प्रणयिनि प्रीतिं कुरुष्वाधुना ॥
भूशैय्यानववल्कलैरकरणैरुत्तिष्ठ यामो वनम् ॥
क्षुद्राणामविवेकमूढमनसांयत्रेश्वराणांसदा ॥
चित्तव्याध्यविवेक विह्वलगिरां नामापि न श्रूयते ॥"

दोहा:— "वल्कल वसन फल असन कर, करिहौं वन विश्राम ॥
जित अविवेकी नरनको, सुनियत नाहीं नाम ॥"

—हे प्रिये चित्तवृत्ते! तूँ अब उठ, और पवित्र फल, मूलोंसे अपना पालनकर, तथा बनी-बनाई भूमि शैय्या और नवीन वल्कलके वस्त्रोंसे निर्वाहकर। हम तो अब वनको जाते हैं, जहाँ अविवेकके कारण जो मूढ़जन हैं, जो क्षुद्र हैं, और धनरूपी व्याधिजनित विचारसे जिनकी बुद्धि विह्वल है, उन मनुष्योंका नाम भी नहीं सुनाई देता है। ऐसे निर्जन स्थानमें जाके रहेंगे ॥

वैराग्यवान् कहते हैं—अरे भाई! हमको संसारके सुख भोगकी

कोई आवश्यकता ही नहीं। उन्हें तो हमने विषतुल्य जानके त्याग दिया है। उसकी अब हमें इच्छा नहीं होती है। देखो! हमारा जीवन निर्वाह तो बड़े आरामसे ही हो रहा है। वन प्रान्तमें निवास करते हैं। वहाँ यथा प्राप्त कन्द, मूल, फूल, फलाहार और पत्तियाँ खाकर क्षुधा निवारण कर लेते हैं। निर्मल झरनोंसे पानी पीकर तृप्त हो जाते हैं। पहिरनेके लिये वस्त्रके जगहमें वल्कल = वृक्षोंके छाल, केलोंके खम्भेकी छाल आदि लपेटकर निर्वाह कर लेते हैं। और कहीं भूमिमें तथा शिलाखण्ड वगैरहमें सुखपूर्वक शयन करते हैं। मनमें कोई बातकी चाहना, चिन्ता तो है नहीं। और शरद्ऋतुमें रात्रिमें चाँदनीके प्रकाशमें बिना रोक-टोकके चारों दिशाओंमें हम विहार करते रहते हैं। इस प्रकार वैराग्य स्थितिमें हमारा वर्तमान चलता है, और चल रहा है। हम इसी स्थितिमें सन्तुष्ट सुखी रहते हैं ॥ ११७ ॥

॥ ※ ॥ शास्त्रोक्त वैराग्यमें, वसन्तऋतुका बर्ताव वर्णन ॥ ※ ॥

दोहाः—बीति शीत यहि भाँतिसो । आयो सरस वसन्त ॥
आँबा टेसू फूलहीं । शोभित वन दरसन्त ॥११८॥

संक्षेपार्थः— इसी प्रकारसे शरद्ऋतु बीत गया, और अगहन, पौषवाली हेमन्तऋतु आया, वह भी चला गया, फिर माघ, फाल्गुनवाली शिशिरऋतु आया। वह दोनों भी इसी बीचमें क्रमशः आये और निकल गये। इस तरहसे तीनों ऋतु और शीतकाल भी व्यतीत हो गयी। तदनन्तर सरस = रससंयुक्त या रसदार ऋतुओंमें अग्रगण्य वसन्त ऋतु आगया। (चैत्र-वैशाख दो महीनातक वसन्त ऋतु होता है)। जिसका बाह्य प्रकृतिमें भी परिवर्तन लक्षण प्रगट दिखाई दे रहा है। आमके वृक्षोंमें मौर आ गये हैं, सब डालियाँ फूलसे लद गयी हैं, तथा टेसू = पलासके फूल भी अच्छी तरहसे फूल चुके हैं। और कई प्रकारसे वनस्पतियोंके फूल, फूल रहे हैं। जिसके कारणसे सम्पूर्ण वन सुषोभित वा सुन्दर दिखाई दे रहा है। रङ्ग-विरङ्गोंके फूल, फल,

पत्ते, मञ्जरियाँ आदियोंसे वन खूब सुन्दर हो रहा है। ऐसे यह वसन्त ऋतु इधर रागियोंको तो राग बढ़ाता है, किन्तु उधर वीतरागियोंको वैराग्य ही बढ़ाता है ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— शास्त्रोंमें कहा हैः— अर्थात्,

"जाके बारह मास वसन्त होय । ताके परमारथ बूझै बिरला कोय ॥बीजक, वसन्त १ ॥

इसकी टीकामें सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने स्वयं ही एक कवित्त लिखे हैं, सो सुनिये !—कवित्तः—

फूले गुलाब टेसू, आमहूके मौर फूले । चम्पा चमेली बेली, नानाकार छाई है ॥
कामराज झूलत सोई, होत लहर घटमें । कोकिला कलोल शब्द, विविधि विधि सुनाई है ॥
उठन लागे छवौंराग, नानाकार रङ्ग जाग । किंगरी सितार बीन, श्रवणनमें आई है ॥
पूरण वसन्त आय, कन्तहूँके दरश पाय । बारह मास याही भाय, योगिन जो गाई है ॥

और भर्तृहरिने भी वसन्तका वर्णन निम्न प्रकारसे किया हैः—

श्लोकः—"परिमल भृतोवाताः शाखा नवांकुरकोटयो ॥
मधुर विरतोत्कठा वाचः प्रियाः पिक पक्षिणाम् ॥
मधुरयं मधुरैरपि कोकिला कलकलैर्मलयस्य च वायुभिः ॥"

—सुगन्धियुक्त पवन चल रहा है, वृक्षोंकी शाखाओंमें नये अंकुर निकल रहे हैं, कोकिल आदि पक्षियोंको उत्कण्ठा भरी वाणी अत्यन्त मधुर मालूम होती है। वसन्तऋतुमें कोयल आदि पक्षियाँ मधुर-मधुर शब्द करते हैं, और मलयाचलसे शीतल वायु बहती है ॥

दोहाः— "ऋतु वसन्त कोकिल कुहुक, त्यों ही पवन अनूप ॥"
"कोकिल रव फूलीलता, चैत्र चाँदनी रैन ॥"

सोरठाः—"फूले चहुँदिशि आम, भई सुगन्धित ठौर सब ॥
मधु मधुपी अलिग्राम, मत्त भये झूमत फिरैं ॥"

श्लोकः— "सहकारकुसुमकेसरनिकर भरामोदमूर्च्छितदिगन्ते ॥
मधुरमधुविधुरमधुपे मधौ भवेत्कस्य नोत्कण्ठा ॥"

—जिसमें आमके बौरोंकी केसरकी सुगन्धिसे दिशायें व्याप्त हो रही हैं, और मधुर मकरन्दका पानकर भ्रमर उन्मत्त हो रहे हैं, ऐसे ऋतुराज वसन्तमें किसके मनमें उत्कण्ठा नहीं होती ॥ विरक्त-जनोंको छोड़कर अन्य सभी जनोंके मनमें नाना प्रकारकी चाहनायें उठा ही करती हैं। किन्तु त्यागी पुरुष सर्वदा अचाह रहते हैं।

पूर्वोक्त प्रकारसे तीनों ऋतुओंके साथ-साथ शीतकालका मौसम भी स्वयमेव बीत गई। तत्पश्चात् सरस ऋतु वसन्तका आगमन हुआ। इसलिये आमके मौर आये, तथा टेसू या पलास आदिक वृक्षोंमें भी खूब फूल-फूल गईं, जिससे सारा महावन शोभित, सुन्दर दिखाई देने लगा। यह देखके, विरागी पुरुष कन्थादिको फेंककर वस्त्ररहित हो, और भी वैराग्य वढ़ायके, नङ्ग-धड़ङ्ग विचरण करने लगे ॥ ११८ ॥

दोहाः-शिला पलङ्ग दिगवसन करी। वापी कूप तड़ाग ॥
शीतल छाया वृक्षकी। निर्विकल्प वैराग ॥११९॥

संक्षेपार्थः— देखिये! हम लोग तो दशों-दिशाओंको ही अपने वस्त्रके जगहमें बना करके फिर बड़ी-बड़ी शिलाखण्डोंको ही अपना अचल पलङ्ग बना लेते हैं। और बावड़ी, कूआँ तथा तालाब इत्यादिकोंको ही जलपात्रके स्थानमें समझ लेते हैं, और वृक्षकी शीतल छायामें बैठके निर्विकल्प वैराग्यमें सदा शान्त हो रहते हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—शास्त्रोंमें कहा हैः—अर्थात्, वसन्त लगनेपर विरक्त पुरुषोंने भी अपने दिनचर्याका कार्यक्रम बदल दिये! भ्रमण करनेके लिये शून्यागार, गुफा आदिसे बाहर निकल पड़े। भिक्षापात्र, जलपात्र, कन्था या गूदड़ी आदि जो कुछ भी पासमें था, सो सबको भी छोड़के चल दिये। दिगवसन = उन्होंने दशों-

दिशाओंको ही वस्त्ररूपमें समझ लिये। दिशायें ही हैं वस्त्र जिनकी, ऐसे दिगम्बर यानी वस्त्ररहित नङ्गे ही चलने-फिरने लगे। शयन करनेके लिये पर्वत चट्टानोंमेंके चपटी-चपटी शिला या पत्थरोंको ही अपने अचल-अटल पलङ्ग समझ करके उन्हीं शिलाखण्डोंमें ही लेटते हुए आराम करने लगे। और जलपात्रके अभावमें हाथ ही द्वारा कार्य चलाने लगे। इससे करपात्री कहलाते भये। प्यास लगनेपर वापी = बावड़ी या सीढ़ीदार कूवाँ, कूप = साधारण कूवाँ, तड़ाग = गोल, चौकोर आदि तालाब, नदियाँ, झरनायें आदि स्थानोंमें जाकर अंजुली-से जल उठाय-उठायके पीने लगे। और दिनमें वृक्षोंकी शीतल छाया-में बैठके कल्पनारहित, वा चाहनारहित ऐसे निर्विकल्प वैराग्यमें वे दृढ़तासे स्थिर रहते हैं। कहा है:—

दोहाः—"एकाकी इच्छा रहित, पाणिपात्र दिगवस्त्र ॥
शिव शिव हौं कब होउँगो, कर्म शत्रुको शस्त्र ॥"

अथवा रात्रिमें आराम करनेके लिये पलङ्गरूपमें बड़ी-बड़ी चपटी शिलायें मौजूद ही हैं; दिशाओंको ही वस्त्र समझकर दिगम्बर रहके गुजारा कर सकते हैं। जलपात्रके अभावमें अन्य वा प्राकृतिक निर्मित वापी, कूप, तड़ाग, नदियाँ आदि जगह-जगहपर प्राप्त होते ही हैं। तथा दिनमें निवास करनेके लिये आराम-भवनके सदृश वृक्षकी घनी शीतल छाया है ही। इतने उपयुक्त साधन प्राप्त होते हुए भी क्यों निर्विकल्प वैराग्यमें स्थित नहीं होते हो? अरे अभागे! एक दिन शरीर छूट जायगी, तो यहाँके सब पदार्थ यहीं रह जायेंगे, तुम्हारे साथमें तो कुछ पदार्थ नहीं जायगा। अध्यासवश तुम अकेले ही चौरासी योनियोंके गर्भवासमें पड़ोगे, फिर बहुत दुःख पाओगे। अतएव उपरोक्त अनुकूलताको प्राप्त करके अभी निर्विकल्प दृढ़ वैराग्य-में ही जीतेतक ठहरे रहो। सब इच्छा वासनाओंको समूल मिटा डालो, तभी मुक्ति होगी। इससे सब कल्पनाओंको छोड़के दृढ़ वैराग्यको ही पक्का करके धारण करो॥ ११९ ॥

दोहाः—फल पावत उत्तम सरस । पीयत शीतल नीर ॥
गावत उत्तम गीत तहाँ । त्रिविधि बहत समीर ॥१२०॥

संक्षेपार्थः— निस्पृही विरक्त सन्त दृढ़ वैराग्ययुक्त वन-प्रदेशमें रहते हुए यथा प्राप्त उत्तम सरस फलोंको भूख लगनेपर खाय लेते हैं, तथा प्यास लगनेपर नदियाँ एवं झरनोंके शीतल मधुर जलको पी लेते हैं। इस प्रकार क्षुधा-तृषाको शान्त करके स्वस्थ चित्तसे रहते हैं। जहाँपर शीतल, मन्द और सुगन्ध ऐसे त्रिविधि वायु धीरे-धीरे बहती रहती है। तहाँपर वे विरक्त पुरुष भी अपने याद किये हुए उत्तम गीत = भजन, पद गायके प्रसन्नतापूर्वक जीवन बिताय देते हैं ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—शास्त्रोंमें कहा हैः— अर्थात्, वैराग्यवानोंको देह निर्वाहके लिये कोई बातकी कमी नहीं है। जङ्गलोंमें रहते हैं, वहाँ खानेके लिये मीठे रसदार उत्तम अच्छे-अच्छे फल प्राप्त होते ही हैं, और शीतल जल पीनेके लिये यथेष्ट नदियोंमें है ही।

विचारसागरमें कहा हैः—

"क्षुधा विनाश ही वन फलकन्दा । ह्वै क्यों पराधीन यह बन्दा ॥" वि० सा० ५ ॥

इसलिये नित्य प्रति यथाप्राप्त उत्तम सरस फल वे पाते हैं, फिर स्वच्छ शीतल नदी, झरनों आदिमेंके जल पी लेते हैं, इस प्रकार तृप्त होकर एकान्त स्थानमें जाके बैठ जाते हैं। तत्त्वज्ञानका विचार करने लग जाते हैं। इधर ब्रह्माण्डमें सुयोग्य समय उपस्थित होनेसे त्रिविधि समीर = तीन प्रकारका वायु मन्द, सुगन्धयुक्त शीतल हवा बहने लग जाती हैं। उधर विरक्त सन्त भी उत्तम-उत्तम गीत गाने लग जाते हैं। अर्थात् जो कुछ भी वाणी, पद, भजन आदि याद करके कण्ठाग्र किये हुए हैं, उसे ही उच्चारण करकेऊँचे स्वरसे कहते हुए अर्थ विचारते जाते हैं। कभी गुरुस्तुतिका पाठ ही करते रहते हैं। भक्ति, ज्ञान,

और वैराग्य वृद्धि करनेवाले वाणीको उत्तम गीत कहते हैं। सोई घण्टों बैठके कहा करते हैं। फिर अन्तर्मुख लक्ष करके विचारमें तल्लीन हो रहते हैं। इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक आनन्दसे वसन्त-ऋतु बिताय देते हैं। फिर ग्रीष्मऋतु आ जाता है, जेष्ठ और अषाढ़ ये दो महीना ग्रीष्म कहलाता है। तब भी स्वच्छन्दतापूर्वक वन, बाग, आरण्य, गिरि-गुहा आदिमें पर्यटन करते हुए सुखसे समय बिता देते हैं। पश्चात् वर्षाका आरम्भ हो जाता है, फिर पूर्ववत् यथाविधि कार्यक्रम चलता ही जाता है। इस प्रकार वैराग्यकी परिपुष्टि करते हुए जीवन बिताते हैं। कहीं राग-आसक्ति न होनेसे वे सब बन्धनोंसे छूट जाते हैं ॥ १२० ॥

दोहाः—कहा मन्दिर सम्पति कहा। कहा त्रियनके भोग ॥
ये सबहीं छिनभङ्ग हैं। अचल समाधी योग ॥१२१॥

संक्षेपार्थः— दृढ़ वैराग्यवान् पुरुष कहते हैंः—हमें ये संसारिक विषय-विलास स्त्रियोंकी भोगोंकी इच्छा बिलकुल भी नहीं है, फिर उससे हमें क्या काम? अरे! वह तो विष और बन्धनरूप है, उसे लेके ही क्या करना है? और घर-द्वार, धन-सम्पत्तिसे भी हमें क्या काम? तथा मठ-मन्दिर आदिसे भी क्या करना? अर्थात् मन्दिर, सम्पत्ति और स्त्रियोंके भोग-विलास आदि जगत्का ठाट, विषय-सुख हमारी दृष्टिमें तुच्छ, निकम्मा है, इससे हमें उनसे क्या सरोकार? क्योंकि, वे सब पदार्थ और विषयादि सुख सब ही क्षणभंगुर= क्षणभरमें ही विनाश हो जानेवाले विकारी तथा बन्धनरूप हैं। अतएव उनकी मुझे किञ्चित् भी चाहना नहीं है। हम तो योग समाधि लगाके सर्ववृत्तिको लयकर अचल स्थितिमें शून्य या उन्मुन हो रहेंगे। अर्थात् वृत्तिको अन्तरमें मिलाय, लयकर समाधि लगाकर स्थिर या अचल हो रहेंगे। "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः"—चित्तकी वृत्तियों-का रुक जाना ही योग है। ऐसा पातञ्जलिने कहा है। इससे

हम तो समाधिस्थ हो रहेंगे। ऐसा विरक्त योगी पुरुषोंने कथन किये हैं॥

|| * || विस्तार निर्णय कथन वर्णन || * ||

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— शास्त्रोंमें कहा है:— अर्थात्, हे भाई! मठ, मन्दिरादि लेके हमको अब क्या करना है? सम्पत्ति बटोरके भी क्या करना है? और स्त्रियोंके निकृष्ट भोगोंसे भी क्या करना है? इनसे तो हमें कोई काम नहीं है। हमने तो प्रथम ही, आदि, मध्य, अन्तमें दोष-ही-दोष भरा हुआ जानकरके, हलाहल विषरूप समझके, उन्हें परित्यागकर दिया है। फिर उसे हम कदापि ग्रहण नहीं कर सकते हैं। धैर्यादि सद्गुणोंको हमने धारणकर लिया है, अब हमें कोई डर नहीं। कैसा भी दुःख होवे, तो भी धैर्यवान् धैर्य नहीं त्यागते हैं। तहाँ कहा है:—

श्लोकः— "कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेर्न शक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम्॥
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेर्नाधः शिखायाति कदाचिदेव॥" नीति०॥

दोहाः— "धैर्यवान नहिं धैर्य तज, यदपि दुःख विकराल॥
जैसे नीचो अग्निमुख, ऊँची निकसत ज्वाल॥"

— कैसा ही कष्ट क्यों न पड़े, परन्तु विरक्त धैर्यवान् मनुष्यका धीरज नष्ट नहीं हो सकता, अग्निकी ज्वाला कैसी नीचेको क्यों न करदी जाय, परन्तु फिर भी वह ऊपर ही को उठ जायगी, नीचेको नहीं जाती॥

"कान्ता कटाक्षविशिखा न दहन्ति यस्य, चित्तं न निर्दहति कोप कृशानु तापः॥
कर्षन्ति भूरि विषयाश्च न लोभपाशै, लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः॥" नीति०॥

दोहाः— "तिय कटाक्षशर विधत नहिं, दहत न कोप कृशानु॥
लोभपाश खैंचत न ते, तिहुँपुर वश किय जानु॥"

— स्त्रियोंके कटाक्षरूपी बाण जिसके हृदयको नहीं बेधते, क्रोधरूपी अग्निकी ज्वाला जिसके चित्तको दग्ध नहीं करती है, तथा विषय-भोग जिसके चित्तको लोभपाशमें बाँधकर नहीं खींचते, वही

धीर पुरुष इन तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लेता है ॥

दोहाः— "मेरु गिरत सूखत जलधि, धरनि प्रलय ह्वै जात ॥
गज सुतके श्रुति चपल ज्यों, कहा देहकी बात ॥
इन्द्र भये धनपति भये, भये शत्रुके साल ॥
कलप जिये तौऊ गये, अन्तकालके गाल ॥"

"शून्यागारे गुहायां वा पर्वतेषु वनेषु च। तत्रासीनः प्रसन्नात्मा ध्यानं विधिवदा चरेत् ॥"

— शून्य मन्दिर, गुहा, पर्वत अथवा वनोंमें बैठकर प्रसन्न चित्तसे विधिपूर्वक ध्यानका अभ्यास करे ॥

सूत्रः—"तदेवार्थमात्रनिर्भासंस्वरूप शून्यमिव समाधिः ॥" पातञ्जल, वि० पा० ३ ॥

— केवल वही पदार्थ-स्वरूप विद्यमान् है, यह आभास या ज्ञान-मात्र रहेगा, दूसरा कुछ भी ज्ञान नहीं रहेगा। चित्तकी तदाकारता लय अवस्थाका नाम समाधि है ॥

संसारके विषय और समस्त पदार्थोंके सम्बन्ध क्षणभंगुर हैं। इसलिये स्त्रियोंके भोग क्या? धन-सम्पत्ति क्या? महल, मन्दिर क्या? यह कहीं किसीका कल्याण करनेवाला है? नहीं; वह तो क्षणभरमें ही नाश हो जानेवाला है। इसलिये उसे परित्याग करके सब तरफसे आसक्ति हटाके, विवेक, वैराग्यद्वारा ज्ञानयोगका अभ्यास-पूर्ण करके चित्तको एकाग्रकर अचल समाधि लगाये रहना चाहिये। जिससे वृत्ति कहीं चलायमान् न हो, ऐसा प्रयत्न करके बन्धनोंसे रहित हो जाना चाहिये ॥ १२१ ॥

[यहाँतक शास्त्रोक्त वैराग्यका विधिवत् वर्णन किया गया है। शास्त्रकारोंने किस प्रकारके वैराग्यको प्रतिपादन किया है, सो दिखला दिया गया है। विवेकी सन्तोंके लिये यह सब ग्राह्य नहीं है। इसमेंका उचित सारांशमात्र छान-बीन करके हंसवत् ले-लेना चाहिये। अब नीचे दोहा १२२ से १२७ ग्रन्थके समाप्तितक यथार्थ ग्राह्य गुरुमुख निर्णयका सत्य वैराग्य वर्णन किया जाता है, सो ध्यानपूर्वक श्रवण कीजिये ! ॥]

॥ * ॥ यथार्थ वैराग्यसार–गुरुमुख निर्णय वर्णन ॥ * ॥

दोहाः— ना काहू सो माँगना। ना काहूको देन ॥
अनइच्छा जो कछु मिलै। सो भोजन करि लेन ॥१२९॥

संक्षेपार्थः— दृढ़ वैराग्य धारणा होनेपर, उन पुरुषोंको न किसीसे कुछ माँगनेकी इच्छा होती है, और न किसीको कुछ देनेकी ही चाह होती है। तहाँ अनइच्छासे जो कुछ रूखा-सूखा आहार मिल जाता है, सोई शुद्ध अन्न-जल सन्तुष्ट होके भोजन कर लेते हैं, बस, इतना ही देह निर्वाहमात्र व्यवहार उनकी रहती है। और माँगने वा देनेका काम नहीं होता है ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात्, हे सन्तो! सत्यन्यायी, विवेकी, पारखी सन्तोंके यथार्थ दृढ़ वैराग्यकी रहनी, अन्य गुरुवा लोगोंके वैराग्यके अविवेककी बर्तावसे भिन्न ही हंस चाल रहती है। वे सच्चे, विरागी पुरुष तमोगुणसे होनेवाला कठोरता-का बर्ताव नहीं करते हैं। सदा निर्जन वनमें वन-पशुवत् विचरण भी नहीं करते हैं। करपात्री बनके भिक्षान्न माँग-माँगकर खाते भी नहीं फिरते हैं। फटी-टूटी चीन्धी बटोरकर कन्था बनाके भी नहीं पहिरते हैं। नङ्ग, धड़ङ्ग दिगम्बर भी नहीं होते हैं। उनका निवास सदा कन्दराओंमें भी नहीं होता है। वे तो विचारपूर्वक वर्तमानमें ठीक रीतिसे बर्तते हैं। कहीं ग्रामके समीप निरुपाधि स्थानमें, पर्णकुटीमें, शून्य गृहमें, चित्तको स्थिर करके निवास करते हैं। और संसारमें नाशवान् कोई भी पदार्थ वे किसीसे जाके कुछ भी कभी माँगते नहीं। प्रारब्ध भोगमें उनका दृढ़निश्चय रहता है, और अनित्य पदार्थ ही न वे किसीको कुछ देते हैं। अर्थात् देह-निर्वाहके लिये भी अन्न, वस्त्र, जल, द्रव्य, औषधि, पात्र, स्थान आदिक कुछ भी पदार्थ विवेकी सन्त न स्वयं किसीसे माँगते हैं, न मँगवाने लगाते

हैं, और न किसीको वे परिणामी पदार्थ ही कुछ देते हैं। देना, लेना, यह प्रवृत्तिका कार्य विचारपूर्वक वे परित्याग किये रहते हैं। अयाचक, अपरिग्रही, अमानी हो रहते हैं; और अनइच्छा = इच्छा या चाहना किये बिना ही अर्थात् माँगे बिना ही प्रारब्ध वेगसे देश, काल, वर्तमानके अनुसार सज्जन, सेवक या भक्तजनोंके द्वारा जो कुछ भी रूखा, सूखा, अन्न, भाजी, पाला-वाला, लोना, अलोना, मिल जाता है, शुद्ध देखके उसे ग्रहण कर लेते हैं, और कभी स्वयं भी वनायके भोजन पाय लेते हैं, तथा कभी सन्तोंका बनाया हुआ भोजन पाते हैं, और रुग्णावस्थामें शुद्धवृत्तिवाला शुद्धतासे रसोई बनानेवाला सेवकका बनाया हुआ भोजन भी ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार निराश वर्तमानमें बर्तते हुए अनइच्छासे जो कुछ खाद्य-पदार्थ सेवकोंसे मिल जाता है, शुद्ध देखके सोई भोजन कर लेते हैं। हमेशा वे जल छानकरके ही पीते हैं। मोटा वस्त्र जो मिले, सोई पहिर लेते हैं। इस प्रकार असङ्ग, आसक्तिसे रहित रहके जीवन-निर्वाह कर लेते हैं। यथायोग्य समयमें जिज्ञासुओंके प्रति कुछ सत्य उपदेश भी दे देते हैं। अतएव जिज्ञासु विरक्तको भी चाहिये कि, न किसीसे कुछ माँगै, तथा न किसीको कुछ पदार्थादि देवें, और न देनेकी आशा ही लगावे। किन्तु अनइच्छासे जो कुछ शुद्ध आहार मिले, उसे ही भोजन करके सन्तुष्ट रहना चाहिये। यही रहनी सत्य वैराग्यका है ॥ १२२ ॥

दोहाः— जासु मोह सब जीवको। डर उपजत है जान ॥
सो देही छिनभङ्ग है। ठहरै नाहिं निदान ॥१२३॥

संक्षेपार्थः— सब जीवोंको जिसकी मोहसे सदा भय उत्पन्न होता रहता है, सो शरीर तो नाशवान् होनेसे क्षणभंगुर कहलाता है, निदानमें शरीर नाश हो ही जाता है, चाहे कितने भी प्रयत्न क्यों न करो, तो भी सदा शरीर किसीके ठहरे नहीं रहता है। एक-एक दिन

सभीका देह नाश हो ही जाता है, ऐसा जानके जड़ासक्तिको त्यागो ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात्, समस्त प्राणियोंको, एवं विशेषतः मनुष्य-जीवोंको सब प्रकारसे मोह, माया, ममता, आसक्ति, प्रेम, चिपकाहट आदि हो रही हैं। जिस शरीरको अत्यन्त प्रिय करके अपना ही स्वरूप मान रहे हैं। जिसके साथ-सम्बन्धमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, आशा, तृष्णा, राग, द्वेषादि नाना उपाधियाँ लगी हुई हैं, और भ्रमसे देहको ही अपना स्वरूप जानके या मानके उसमें आसक्त होनेसे डर उत्पन्न होता है। अर्थात् जिस कायाके मोहसे सब जीवोंको अनेक तरहसे भय उत्पन्न होता है। हानिकी, दुःख पानेकी, मृत्यु होनेकी, जीर्ण-शीर्ण होके विनाश होनेकी, भूखों मरनेकी, अङ्ग-भङ्ग होनेकी, और त्रिविधि तापोंके दुःसह दुःख भोगनेकी, इत्यादि अनेकों प्रकारके भय जीवोंको देहके मोह, ममतासे उत्पन्न हुआ करता है। अब शान्त चित्तसे विवेक करके देखिये ! सो यह स्थूल देह तो क्षणभंगुर है, अर्थात् पानीके बुलबुलाके समान क्षणभरमें ही विनाश होनेवाला है॥ तहाँ कहा हैः—

पदः— "पानीके बुद्बुदासा, साधो ! तनका यही तमाशा है ॥
　　मुट्ठी बाँधके आया, बन्दे ! हाथ पसारे जाता है ॥"

प्रारब्ध-भोग पूरा होनेपर निदान = आखिरमें फिर यह देह तुरन्त विनाश हो ही जाता है, तब क्षणभरके लिये भी नहीं ठहरता है। ऐसी यह कच्ची काया है। योगवाशिष्ठमें रामने कहा हैः—

श्लोकः— "कायोऽयमचिरापायो बुद्बुदोऽम्बु निधाविव ॥
　　व्यर्थं कार्यपरावर्ते परिस्फुरति निष्फलः ॥
　　बद्धास्था ये शरीरेषु बद्धास्था ये जगत्स्थितौ ॥
　　तान्मोहमदिरोन्मत्तान्धिगस्त्वेव पुनः पुनः ॥" योगवाशिष्ठ ॥

—यह शरीर समुद्रमें उठनेवाले बुलबुलेके समान शीघ्र ही नष्ट हो जानेवाला है। यह कार्यपरतारूप भँवरके रूपमें व्यर्थ और

निष्फल ही स्फुरित हो रहा है॥ जो शरीरमें आस्था = विश्वास रखते हैं, तथा जिन्हें संसारकी स्थिरतामें भी विश्वास है, उन मोहरूप मदिरासे उन्मत्त हुए पुरुषोंको बारम्बार धिक्कार ही है॥ और व्यासने भी कहा है:—

श्लोकः— "स्थानाद्वीजादुपष्टं भान्निष्यन्दान्निधनादपि ॥
कायमाधेय शौचत्वात्पण्डिताः ह्यशुचिं विदुः ॥" मु० स० ॥

—उत्पत्तिस्थान, बीज, आश्रय तथा जन्म और मरणके कारण शरीरमें केवल कल्पित पवित्रता होनेसे ही पण्डितजन उसे अपवित्र मानते हैं॥

अतएव यह शरीर क्षणभंगुर कहलाता है। चाहे कितने भी प्रयत्न करो, तो भी यह निदानमें ठहर नहीं सकता है, एक दिन विनाशको प्राप्त हो ही जाता है। जीते रहनेके लिये चाहे योग करो, अष्टाङ्गयोगका साधना पूरा करके, समाधि लगाके भी चाहे दीर्घकाल तक शून्यमें गाफिल पड़े रहो, चाहे कायाकल्प करो, तो भी एक दिन मृत्यु हो ही जायगी। देखो! सुना जाता है कि— गोरखनाथने ८४ बार कायाकल्प किये, कहते हैं; तो भी उनका शरीर अन्तमें छूट ही गया। फिर जप, तप, व्रत, उपवास और ध्यान, मुद्रा, समाधि और रसायन-सेवन एवं संयम, नियमादि समस्त उपाय ही क्यों न करो, तथापि प्रारब्ध पूरा होते ही शरीर अवश्य सबका छूट जायगा, ठहर नहीं सकेगा। जीवके निकलते ही शरीर सड़, गलके वा जलाके नाश हो ही जायगा। जब प्रथमके योगी, ज्ञानी, भक्तादि सिद्ध, साधक लोग ही बच नहीं सके, मर-मर गये, तब तुम लोग ही क्या कितने दिनतक बचे रहोगे? एक-एक दिन अवश्य तुम्हारा भी शरीर छूट हीं जायगा। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक, रमैनीमें स्पष्ट ही कहा है:—

रमैनीः—"मरिगौ ब्रह्मा काशिको बासी। शीव सहित मूये अविनाशी॥
मथुराको मरिगौ कृष्ण गोवारा। मरि-मरि गये दशों अवतारा॥
मरि-मरि गये भक्ति जिन्ह ठानी। सर्गुणमा निर्गुण जिन्ह आनी॥"बी०र०५४॥

साखीः— "नाथ मछन्दर बाँचे नहीं । गोरख दत्त औ व्यास ॥
कहहिं कबीर पुकारिके । ई सब परे कालकी फाँस ॥" र० सा० ५४ ॥

"एक-एक दिना याहि गति सबकी । कहा राव कहा दीना हो ॥" बी० कहरा ६ ॥

शरीर तो सबकी ही छूट जाती है । किन्तु, जड़ाध्यासी बेपारखी जीव बद्ध होके आवागमनके चक्रमें गिर पड़ते हैं; और पारखी सन्त जीते ही अध्यासको मिटायके जीवन्मुक्त हो रहते हैं । अतः वे ही देहान्तमें विदेहमुक्त हो जाते हैं । अतएव नाशवान् देहादिकी आसक्ति अध्यासको विवेक द्वारा हटा देना चाहिये ॥ १२३ ॥

दोहाः— नाशमान जो वस्तु है । सो तो ठहरै नाहिं ॥
तासों लोभ न कीजिये । यह निश्चय मन माहिं ॥ १२४ ॥

संक्षेपार्थः— कार्यरूपमें बना हुआ जो कुछ भी वस्तु है, सो वे सब नाशवान् होती है, इससे सो नाशवान्-देहादि वस्तु तो सदा एकसी ठहरी नहीं रहती है, समय पायके कभी तो विनाश हो ही जाते हैं । अतएव वह नाशवान् देह और पञ्च विषयादि पदार्थोंमें कुछ भी लोभ, लालच मत कीजिये ! अपने चैतन्यस्वरूप, अविनाशी, अखण्ड है । मैं पारखस्वरूप हूँ, यही मनमें सदा दृढ़ निश्चय बनाये रखिये ! ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात्, हे सन्तो ! जो वस्तु कार्यरूपमें तत्त्वोंसे बना है । सो उसका कभी-न-कभी परिणाम बदल ही जायगा । जो वस्तु बनी है, या बनाई गई है, सो कार्य होने-से नाशवान् कहलाती है । यह शरीर भी जीवकी सत्ता और रज, वीर्यके सम्बन्धसे बना हुआ कार्य एवं नाशवान् है । देह, कुल, कुटुम्बी, घर, धन, राज, काज, इत्यादि संसारमें समस्त नाशवान् वस्तु जो कुछ भी हैं, सो सब चञ्चल, विनाशशील है । अतः सदा, सर्वदा, नित्य, एकरस होके, वह तो ठहरे रहनेवाला नहीं है । कभी-न-कभी विनाश हो ही जायगा; अवधि पूरी होनेपर सब बिगड़

जायगा । इसवास्ते उसमें लोभ, मोह, आशा, आशक्ति या अध्यास मत कीजिये ! यदि लोभ, मोह करोगे, तो तुम अवश्यमेव महाबन्धन चौरासी योनियोंके भवचक्रमें ही जाके पड़ जाओगे । यह मनमें निश्चय करके जानो, और अपने चैतन्यस्वरूप जीवको अविनाशी, एकरस, अखण्ड समझके परीक्षादृष्टिसे सकल मानन्दी मिटाकर पारख पदमें स्थिर स्थिति कायम करो । मन-मानन्दी छूटनेपर जोव जीते ही जीवन्मुक्त हो जाता है । यह विवेकसे निश्चय करके जानो, समझो, बूझो, और अध्यासको त्यागके निर्वन्ध हो जाओ ॥

अर्थात् जो पदार्थ नाशवान् होता है, सो नित्य होके सर्वदा कभी ठहरे रह नहीं सकता है । जो बना है, सो एक दिन अवश्य विगड़ेगा । असत् वस्तु कभी सत् नहीं होता है, तथा सत्यका अभाव कभी त्रिकालमें नहीं होवेगा, जीव, नित्य-सत्यस्वरूप है, और शरीर अनित्य, नाशवान् है । देह बनता-ही-बिगड़ता रहता है, तथा जीव सदा अखण्ड रहता है । किन्तु जड़ाध्यासी होनेसे बार-बार जन्म-मरणके चक्रमें पड़ा रहता है । तैसे ही तत्त्वोंके सम्बन्धसे बने हुए समस्त कार्य, पदार्थ, घर, बारी, बगीचा, सम्पत्ति आदि भी नाशवान् वस्तु हैं । सो एक-एक दिन समय पायके सब बिगड़ जायेंगे । सब पदार्थोंका परिणाम बदलता ही रहेगा । अन्तमें विनाश होके कारणमें मिल जायेंगे, और दूसरी तरफ वाणो कल्पनासे जगत्कर्ता ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, देवी-देवता, भूत-प्रेत, ऋद्धि, सिद्धि इत्यादिको जो वस्तु माने हैं. सो तो कोई वस्तु नहीं, वह तो मिथ्या कल्पनामात्र है। सो तो सत्यन्यायसे निर्णय करनेपर कुछ ठहरता ही नहीं। यथाः—

"पेट फाड़ि जो देखिये रे भाई ! आहि करेज न आँता ॥" बीजक, शब्द ८८ ॥

तैसे ही सात स्वर्ग, चार मुक्ति, आदि भी मिथ्या मानन्दीमात्र ही हैं। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गद्वारा सत्यासत्यको यथार्थ परखके उन असत्य, नाशवान् वस्तु वा अवस्तुओंमें मन लगाके लोभ मत करो । क्योंकि, लोभ ही पापका मूल कारण है । तहाँ कहा हैः—

साखीः— "लोभे जन्म गँवाइया, पापै खाया पून ॥
साधी सो आधी कहै, तापर मेरा खून ॥" बीजक साखी २०॥

इसवास्ते देह, विषयानन्द और ब्रह्मानन्दादि अनित्य भोगोंमें लोभ नहीं करना। यदि लोभ करोगे, तो चौरासी योनियोंके जालमें घिर पड़ोगे। यह मनमें निश्चय करके जानो, और अपने ही सत्यस्वरूप जीवको पहिचान करके पारख पदमें स्थिति कायम करो, जिससे मुक्त हो जाओगे, ऐसा जान लो! ॥ १२४ ॥

दोहाः— अविनाशी चैतन्य जो। सबको जाननहार ॥
सो तू निश्चय धारिले। सुखमय अवनि बिहार ॥ १२५ ॥

संक्षेपार्थः— सबोंको जाननेवाला अविनाशी, अखण्ड, नित्य, सत्य, एकरस जो चैतन्यस्वरूप है, सो तो हे जीव! तूँ ही है। हे हंस! अब तुम विवेकदृष्टिसे देखके पारखबोधको दृढ़निश्चय करके हंस रहनीकी सद्गुण लक्षणोंको अपनेमें धारण कर लेओ, और दुःखदाई सम्पूर्ण राग, आशा, तृष्णादि विकारोंको सर्वथा परित्याग करके अटल, दृढ़, वैराग्य, बोध, विचारसंयुक्त, सुखपूर्वक, पृथ्वीमण्डलमें विहार करते रहो, विचरण करते हुए भी सदा सुखी रहो ॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात्, हे जिज्ञासु शिष्य! अविनाशी, त्रिकालाबाध्य, अर्थात् जिसका तीनकालमें कभी किसी प्रकार किसी कारणसे भी विनाश नहीं होता है, परिणाम नहीं बदलता है। सदा एक समान, एकरस ही बना रहता है, और स्वरूपसे अखण्ड, नित्य, सत्य, अजर, अमर है। फिर जो सबको जाननेवाला तन-मनका प्रकाशी, रोम-रोमका जनैया, चैतन्य जीव चिरञ्जीव है। जिसके सत्तासे देहमें पाँचतत्त्व, तीनगुण, दश इन्द्रियाँ, दश वायु, पच्चीस प्रकृति, सप्तधातु, सूक्ष्मदेह— चित्त, बुद्धि, मन, हङ्कार, प्राण, इत्यादि जड़ पदार्थ शक्ति सम्पन्न होके, सञ्चालित हो रही हैं।

उन सबके हालको और देह सम्बन्धमें सुख, दुःखादिको, तीनों अवस्थाओंको, इत्यादि सबको क्रमशः जाननेवाला चैतन्य-जीव जो है, सो तू ही है। तू ही इन सबके साक्षी सबसे न्यारा है। विवेक द्वारा यह निश्चयसे जान लो कि— तू जीव सत्य है। अपनेसे भिन्न जितने भी मानन्दी तूने किया है, पञ्चकोश, पञ्चविषयादिका विस्तार सो मिथ्या है। सोई मानन्दी तुझे बन्धन है। ऐसा जानके खानी, वाणीकी सकल मानन्दी एकदम त्याग दो, और सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, विवेक, गुरुभक्ति (बोध भाव) तथा दृढ़ वैराग्य, इन अष्ट महासद्गुणोंको हृदयमें धारण कर लो! फिर अपरोक्ष पारख स्वरूपका बोध प्राप्त करके, भास, अध्यास, अनुमान, कल्पनासेरहित हो, एवं काल, सन्धि, झाँईके घेरासे निकल करके जीवन्मुक्त स्थितिमें जा पहुँचो। पश्चात् देह रहेतक निराश वर्तमानमें जीवन बिताते हुए सुखपूर्वक शान्त चित्तसे, प्रारब्ध बेगसे, अवनि = पृथ्वीमें चाहनासेरहित हो, विहार करो। यानी नैराश्य जीवन बिताते हुए सुखमय = स्वरूप स्थिति होनेसे सुखी होकर भूमिमें कहीं भी विचरण करते रहो। कहीं मानन्दी टिकाके अटको नहीं। यही तात्पर्य है॥

सारांशः— जो त्रय देहादि नखसे शिखा पर्यन्त तथा खानी, और वाणीके सकल विस्तारको जानने वा माननेवाला स्वरूपसे अविनाशी चैतन्य जीव है, हे मनुष्य! सो तू ही है। गुरु पारखद्वारा सो निश्चय करके भ्रमको त्यागकर हंसके सद्गुण पारख बोधको ही दृढ़तासे धारण कर लो। फिर त्याग वैराग्यमें पक्का होकर सुखमय जीवन बिताते हुए नैराश्य, निवृत्तिसे पृथ्वीमें देह रहेतक विचरण करते रहो वा कहीं भी रहो। इस प्रकार नरदेहमें सत् पुरुषार्थ करके जीवन्मुक्त हो जाओ॥ १२५॥

दोहाः— परकाशी प्रकाशते। सबको परखनहार॥
ना काहूँ सो काम है। ताको समुझ विचार॥१२६॥

संक्षेपार्थः— हे सन्तो! सबको परखनेवाला तथा देहादिको

प्रकाशित करनेवाला चैतन्य जीव है, वह स्वयंस्वरूपके ज्ञान प्रकाशसे ही सर्व दृश्यको प्रकाशकर उसे जानता वा मानता है। उससे श्रेष्ठ सत्य वस्तु, और कोई भी नहीं है; उसे किसी दृश्य जड़ पदार्थसे तथा कल्पित मानन्दीसे भी कुछ काम नहीं है। उसे ही परीक्षा-दृष्टिसे यथार्थ जानो, सोई निजस्वरूप है, पारखस्वरूपको समझो, और उसीका विचार करते रहो ॥

॥ * ॥विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैंः— अर्थात्, संसारमें स्वयं प्रकाशी, और पर प्रकाशी ऐसे दो तरहके प्रकाशी होते हैं। उनमें भी जड़, और चैतन्यत्त्व लक्षणसे दो भेद होते हैं। जो अपने-आप ही स्वयं शक्तिसे प्रकाश हो, जिसे अन्य किसीकी शक्ति लेकरके प्रकाशित होनेकी अपेक्षा न हो, उसे ही स्वयं प्रकाशी कहते हैं। जैसे जड़ तत्त्वोंमें सूर्य स्वयं प्रकाशी है। वह धधकता हुआ विशाल अग्निका तेजोमय पुञ्ज है। उसे अग्निके समुद्रवत् महान् भी कहा जा सकता है। स्थूलरूपसे असंख्यों तेजतत्त्वके परमाणु संयुक्त अनादि दृश्य कारणरूप ही सूर्य है। वह अपने तो स्वयं प्रकाशरूप है ही, और उसके प्रकाशसे समस्त विश्व प्रकाशित वा आलोकित होके दिखाई देते हैं। विशेषतः चन्द्रमा पर-प्रकाशी है। सूर्यके किरण उसके स्वरूपमें प्रतिबिम्बित हो करके ही चन्द्रमामें प्रकाश आता है। तहाँपर पृथ्वी, चन्द्रादिके भ्रमणगतिसे नजदीक, वा दूर, आड़ा-सीधा रेखामें पड़नेके कारणसे ही चन्द्रमा घटता, बढ़ता रहता है। चन्द्र, पृथ्वी, जल, हिमालयँ, काँच, दर्पण, इत्यादि पदार्थ सब परतः प्रकाशी हैं। उनमें स्वयं प्रकाश होनेकी शक्ति नहीं है। सूर्यके प्रकाश-द्वारा दृश्य, चमकीले होते हैं। ऐसा जानना चाहिये ॥

तैसे ही सूर्यवत् विश्वको प्रकाशित करके चैतन्य सत्ता देनेवाला गुरुवा लोगोंने कोई एक कर्ता पुरुष सर्वशक्तिमान् ब्रह्म-परमात्मा या आत्मा, परमेश्वर, खुदा, आदिको जगत्के प्रकाशी माने हैं।

परन्तु सत्यन्यायसे निर्णय करके देखिये ! तो वह मिथ्या भ्रम कल्पना ही ठहरता है। क्योंकि ब्रह्म, ईश्वरादिकी चैतन्य प्रकाशके चराचरमें कहीं भी कुछ लक्षण देखनेमें नहीं आता है। अतएव वह मानन्दी मिथ्या है, और पर प्रकाशित यानी नरजीवोंने वाणीकी प्रकाश करनेसे प्रसिद्ध भया है, वस्तु कुछ भी नहीं है, ऐसा जानिये ! ॥

इधर देहधारी चैतन्य जीव स्वयं प्रकाशी है। स्वयंस्वरूपमेंसे ही उसका ज्ञान-गुणका प्रकाश हो रहा है। जीव किसीमेंसे बना नहीं, और बिगड़नेवाला भी नहीं। किसीके कार्य-कारण नहीं, इसीसे वह अखण्ड है। तथा ऐसे चैतन्य जीव प्रत्येक घटमें भिन्न-भिन्न होनेसे स्वरूपसे असंख्य हैं। चैतन्य जीवके प्रकाश या सत्तासे ही तीन देह, तीन अवस्था, चारोंपन, चित्त-चतुष्टयादि समस्त प्रकाशित सचेत या चैतन्यवत् प्रतीत हो रहे हैं। जड़ देहादि परतः प्रकाशी हैं, और जीव स्वयं प्रकाशी है। इसी तरह अन्य मतवादियोंके सिद्धान्त, भ्रमपूर्ण पर प्रकाशी हैं, और पारखी सद्गुरुके सत्य, सिद्धान्त यथार्थ सत्यन्यायका है, तथा पारख बोध स्वयं प्रकाशी है। अतएव चेतन प्रकाशी-जीव पारख प्रकाशसे शुद्ध निर्मल बोधवान् हो करके, खानी-वाणीके सकल कसर-खोट, सार, असार, बन्ध, मुक्ति, हानि, लाभ, जड़, चेतन, सत्य, मिथ्यादि सबोंको परखनेवाला परीक्षक, जानकार, सत्यन्यायी, विवेकी, पारखी सन्त सत्पुरुष हो जाते हैं। उन्हीं साधु पारखीके सत्सङ्गमें रहके सबके भेदको जान, बूझ, समझकर पारख ज्ञानका ही विचार सार ग्रहण कर लेना चाहिये। इसीसे नरजीवोंके हित वा कल्याणका कार्य पूरा होवेगा। नहीं तो, और किसीसे भी नरजीवोंका कल्याणरूप मुक्तिके काम या कार्य पूरा होनेका नहीं। क्योंकि, खानी जाल विषय जड़ है, एवं आसक्ति करना बन्धनरूप है। सम्पूर्ण पदार्थ नाशवान् है, देह ही छूट जाता है, तो और क्या साथमें जायगा? कुछ नहीं। इससे

इनसे कुछ काम नहीं, और वाणी जालमें ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवता, स्वर्गादि मिथ्या कल्पनामात्र हैं। वह कोई वस्तु ही नहीं। भला! उससे क्या काम होगा? इसीसे अन्य किसीसे भी जीवका काम या मुक्ति होनेवाला नहीं है। अतएव उन्हें परित्याग कर देना चाहिये। एक पारख स्थितिसे ही जीवका कल्याण, बन्धनोंका क्षय जीवन्मुक्ति प्राप्तिका मुख्य काम पूर्ण हो जाता है। इस कारणसे पारखी सद्गुरुके शरण ग्रहण करके पूर्ण त्याग, वैराग्यको धारणकर उसी पारख बोधसे निजस्वरूपको ही भलीभाँति गुरुमुखसे समझ, बूझकर विचार करते रहना चाहिये। तहाँ ग्रन्थकर्ताने स्वयं कहा हैः—

चौपाईः— "सदा विचार करहु तुम भाई! ज्यों लों देह बिखरि नहिं जाई ॥" निर्णयसार॥

प्रथम सत्यको पहिचानना, फिर देह रहे तक वैराग्यकी धारणा संयुक्त विचारपूर्वक निराश वर्तमानमें बर्तना। अपने देहकी भी आशा, ममता, आशक्ति, नहीं रखना। इस प्रकारसे शुद्ध हंस देहकी सद्गुण, लक्षण, रहनी-रहस्यादिको अपनेमें सर्वाङ्ग धारण करके इस वैराग्यशतकमें कहा हुआ गुरुमुख निर्णय प्रतिपादित दृढ़ वैराग्य-संयुक्त जीवन बितायकर निर्ग्रन्थ जीवन्मुक्त हो जाना चाहिये। उसीके लिये ग्रन्थकर्ताने यहाँ— "ताको समुझ विचार" कहा है। ऐसा जानना चाहिये ॥ १२६ ॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थ समाप्तिका दोहा ॥ ❀ ॥

दोहाः— पूरण अगम अगाधको। थाह लहै नहिं कोय ॥
सो गुरु पारख ते निकट। बिन गुरु कछु नहिं होय ॥१२७॥

॥ ❀ ॥ इति श्री पारखनिष्ठ पूर्णवैराग्य सम्पन्न प्रथमाऽचार्य सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब विरचित मूल वैराग्यशतक ग्रन्थः सम्पूर्णम् ॥ ❀ ॥

संक्षेपार्थः— बेपारखियोंने जगत्कर्ता ब्रह्म, आत्मा वा ईश्वर कोई एक मानके जिसको सर्वत्र व्यापक, परिपूर्ण, अगम, अगाध, वर्णन किये हैं। इसलिये जिसका थाह वा पूरा पता आजतक भी कोई किसीको भी लगा नहीं। सोई बातका भेद पूर्ण पारखबोधसे पहिचान यहाँ निकटमें ही पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गद्वारा हो गया है। गुरुके पारखसे वह ब्रह्म आदि मिथ्या धोखा ही है, ऐसा मालूम पड़ गया। अतः बिना सद्गुरुकी दयासे कुछ भी यथार्थ बोध नहीं होता है, इसीसे गुरुमुख निर्णयको ही ग्रहण करना चाहिये॥

॥ * ॥ विस्तार निर्णय कथन वर्णन ॥ * ॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं:—अर्थात्, ब्रह्मज्ञानियोंने ब्रह्म या आत्माको सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक ओत-प्रोत, अगम-अगाध = अत्यन्त गहरा, अथाह, अपार, अगम, अगोचर ऐसा माने हैं। वह क्या चीज है? इसका थाह, आजतक किसीको भी लगा ही नहीं। इसलिये अनुमान, कल्पनाके घोड़ेमें ही चढ़के वे सब दौड़े, और अभी तक वैसे ही दौड़ ही रहे हैं। जहाँ थके वहाँ जैसेका-तैसा पूर्णब्रह्म परब्रह्म मान-मानके भूल रहे हैं। वैसी ही बात, विवेक चूड़ामणिमें कहा है:— श्लोकः—

"अहेयमनुपादेयं मनोवाचा मगोचरम्। अप्रमेयमनाद्यन्तं ब्रह्म पूर्णं महन्महः॥"२४२॥

—वह ब्रह्म त्याग अथवा ग्रहणके अयोग्य, मन, वाणीका अविषय, अप्रमेय, आदि-अन्तरहित, परिपूर्ण तथा महान् तेजोमय है॥

श्लोकः—"असत्कल्पो विकल्पोऽयं विश्वमित्येकवस्तुनि॥
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः॥" ४००॥

—उस एक वस्तु ब्रह्ममें यह संसार मिथ्या वस्तुके सदृश कल्पनामात्र है। भला! निर्विकार, निराकार और निर्विशेष वस्तुमें भेद कहाँसे आया?॥ और अवधूत गीतामें कहा है:—

"येनेदं पूरितं सर्वमात्मनैवात्मनात्मनि॥"—जिस आत्मा करके निश्चयसे अपनेमें ही अपने करके यह दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् पूर्ण हो रहा है॥

श्लोकः— "गुरुप्रज्ञाप्रसादेन मूर्खो वा यदि पण्डितः ॥
यस्तु सम्बुध्यते तत्त्वं विरक्तो भवसागरात् ॥" अ० गीता ॥

— गुरुकी बुद्धिकी प्रसन्नता करके मूर्ख हो, अथवा यदि पण्डित हो, पुनः जो आत्मतत्त्वको जान लेता है, वह पुरुष संसाररूपी समुद्रसे विरक्त हो जाता है, या तर जाता है ॥

वास्तवमें वेदान्तियोंने परब्रह्मको आकाशवत् निराकार, निर्गुण और सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक माने हैं। इसलिये वह मन, बुद्धि, वाणीकी गममें आता ही नहीं, तो ठहरा अगम, जिसका कुछ भी पारावार गहराईका पता पाया न जा सके, उसे अगाध कहते हैं। ऐसा वह ब्रह्म, परमात्मापद विशेषण माने हैं। उपनिषद्में कहा है:—

"यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह ॥" तैत्तिरीय उपनिषद् ब्रा० ४ ॥

— वह ब्रह्म वाचा, मन, बुद्धि, और इन्द्रियाँ, इत्यादिकोंसे जाना नहीं जाता है ॥ "नेतिनेतिति श्रुतिः"—उस ब्रह्मका इति, अन्त या आखिरीका पता नहीं लग सकता है, ऐसा वेदमें कहा है।

वेदवादी, शास्त्रवादी, पुराणवादी और कुरानवादियोंने समेत् सबोंने ब्रह्म या खुदाका पूरा पहिचान, थाह, भूतकालमें किसीने पाये नहीं, अभी वर्तमानमें भी ब्रह्मज्ञानी सब तो महा अज्ञानी मूढ़वत् ही हो रहे हैं, तो वे ब्रह्मका क्या थाह पावेंगे ?। और भविष्यत्में भी कोई ब्रह्मको जान नहीं सकेंगे। क्योंकि, आकाशके फूलका सुगन्ध त्रिकालमें भी कोई सूँघ नहीं सकेंगे। जो मिथ्या भ्रम मात्र ही है, वह कैसे क्या प्राप्त होगा ? पूर्ण अगम, अगाध, माना हुआ ब्रह्म, मिथ्या, धोखा, भ्रममात्र है। फिर ब्रह्म, आत्मा, ईश्वरादिकी प्राप्ति, साक्षात्कार, तदाकार इत्यादिकी आशा, भरोसासे किया हुआ सब साधनाएँ व्यर्थ ही हो जाती है कि—नहीं ? जरूर व्यर्थ हो जाती हैं। जीव जड़ाध्यासी होके पुनः चौरासी योनियोंके चक्रमें ही जाके गिर पड़ते हैं। योगी, ज्ञानी, भक्त, संन्यासी आदिकोंने हठपूर्वक त्याग, वैराग्य तो बहुत किये, परन्तु निजस्वरूपकी यथार्थ पारखज्ञान, तथा हंस रहनी

न होनेसे तमोगुणको बढ़ायके वे हंसपदसे गिर पड़े। कोई परम हंस भये— बाल, पिशाच, मूक, जड़, और उन्मत्त बनके दुर्दशाको ही धारण किये। पशुवृत्ति बना लिये, कोई अघोरी सर्वभक्षी भी होते भये। कोई बहुरूपिया भये। परन्तु विचारसेरहित हठ, मूर्खता, अविवेकसे किया हुआ, वैराग्यसे, उनका कुछ भी कल्याण नहीं हुआ। उल्टे जड़ाध्यासी होके, भवबन्धनोंमें ही जकड़ पड़े। अतएव ग्रन्थके अन्तिममें सद्गुरुका कहना यही है कि—हे मुमुक्षु मनुष्यो ! उन गुरुवा लोगोंके आशा, भरोशा, दूरकी भटकना, छोड़के यहाँ निकटमें विराजमान पारखी सद्गुरुके शरण सत्सङ्गमें आओ। गुरुपारखके प्रतापसे दिव्य-दृष्टि खुलके सो सब गुरुवा लोगोंके कल्पित सिद्धान्त, सार, असार, त्याज्य, ग्राह्य, एवं बन्ध, मुक्ति आदिकी सकल भेद यहाँ निकटमें ही पूर्णतासे तुम्हें जानने, पहिचाननेमें आ जायगी। जिस ब्रह्मका थाह वा पता किसीको नहीं मिल रहा है, सो मिथ्या धोखा जीवकी कल्पना या मानन्दीमात्र है, उसे माननेवाला हंसजीव ही सत्य है। ऐसे यथार्थ पता, पहिचान, यहाँ पारखी सद्गुरुकी कृपासे तुम्हें मालूम हो जायगा। कोटि उपाय करनेपर भी पारखी सद्गुरुकी दया, उपदेशसे पारख बोध हुए बिना, अन्य उपायसे कुछ भी लाभ नहीं होता है, यानी गुरुपारखके बोध पाये बिना कुछ मुक्ति नहीं हो सकती है। ऐसा अब यथार्थ जानलो ! ॥

अथवा संक्षेपमें मतलब यह है कि—पूर्ण व्यापक, अगम, अगाध, माना हुआ ब्रह्म-परमात्मा पदका थाह, असली भेदको पारखहीन गुरुवा लोग किसीने भी कुछ नहीं जान पाये। तहाँ अथाह, अपार, मान-मानके भ्रमिक हो गाफिलीमें पड़े, बद्ध भये, और हो रहे हैं। यदि कोई जिज्ञासु नरजीव पारखी साधु-गुरुकी शरण-सत्सङ्गमें आवें, तो सोई भ्रम, भूल यहाँ सद्गुरुकी पारख निर्णयसे सत्सङ्गके निकट या नजदीकमें ही परख लेवेंगे। माना हुआ ब्रह्म तो मिथ्या भ्रममात्र ही है, उसे माननेवाला मैं चैतन्य जीव ही नित्य सत्य हूँ !

जीवके ऊपर कोई ब्रह्म, आत्मा, ईश्वरादि नहीं हैं, ऐसा यथार्थ समझ जावेंगे ॥

अतएव हे मुमुक्षुओ ! पारखी साधु गुरुके ही शरण सत्सङ्गमें तुम सब लगे रहो। गुरुज्ञान पारखबोधके बिना, और कुछ भी उपाय करोगे, तो भी कल्याण नहीं होवेगा, भ्रम, भूल नहीं छूटैगा । क्योंकि, पारखी सद्गुरु मिले बिना, मनुष्योंको कुछ भी सत्यासत्यका समझ, बोध हो नहीं सकता है । गुरुवा लोग तो नाना तरहसे भुला-भुला करके ही भटका देते हैं । इसलिये पहिले उपदेश श्रवण करके सत्यन्यायी पारखी सद्गुरुकी पहिचान करना चाहिये, फिर निश्चय होनेपर श्रद्धा, भक्तिके सहित उनके शरणागत होना चाहिये । तदनन्तर सत्सङ्ग विचार-द्वारा सब सिद्धान्तोंको परखके जानना चाहिये । रहनी-रहस्यको धारण करना चाहिये, त्याग, वैराग्यको बढ़ाना चाहिये । सब इच्छा, वासनाओंका त्याग करके निजपारखस्वरूपमें स्थिति करना चाहिये । तभी बन्धनोंसे छूटकर मुक्ति-प्राप्ति हो सकेगी । गुरुपारखके प्रतापसे आखिरमें मुक्ति सन्निकट, यानी जीते ही जीवन्मुक्ति हो जायगी । गुरुपारखमें स्थिति हुए बिना यह लाभ कुछ भी होनेका नहीं । इस कारणसे हे मुमुक्षुओ ! शीघ्रातिशीघ्र तुम लोग गुरुपारखपदको दृढ़तासे अपनाओ ! रहनी बनाये रखनेमें मन लगाओ ! सत्पुरुषार्थ करनेमें कटिवद्ध हो जाओ ! ॥ १२७ ॥

॥ * ॥ टीकाकार कृत अन्त्य श्रीसद्गुरु पद वन्दना ॥ दोहा ॥ * ॥

वैराग्यशतक निर्माण कियो, पूर्ण विराग स्वरूप ॥
पूरणसाहेब पारखी, पद बन्दौं गुरु भूप ॥ १ ॥
ज्ञान विराग सद्गुण भवन, पारखरूप प्रत्यक्ष ॥
कबीरसाहेब सद्गुरु, बन्दौं पारख लक्ष ॥ २ ॥
सोई सार वैराग्य दृढ़, किये कराये सादर्श ॥
ताहिंते निजपद हंस लहे, मुक्त भये आदर्श ॥ ३ ॥

स्वतः अनादि जगत रहै, जन्मृति चला प्रवाह ॥
उभय अध्यास घुमाय रहै, पारख बिनु नहिं थाह ॥ ४ ॥
पारखपद सर्वोपरि, सहज लहै नहिं कोय ॥
निज बल गुरु कृपा भई, बिरले पावै सोय ॥ ५ ॥
सत्य कबीर महान भये, पारख प्रगट सो कीह्न ॥
मुक्ति स्थिति जीवन मिल्यो, निज स्वरूपको चीह्न ॥ ६ ॥
काल कराल बहुजाल जग, फँसि रहे सकलो दीन ॥
फाँस अनन्त फैलाय दियो, खण्ड-खण्ड सत कीह्न ॥ ७ ॥
परखाये पारखी गुरु, हंस छुड़ाये जाल ॥
जो आये प्रभुके शरण, सुखी भये तत्काल ॥ ८ ॥
दृढ़ वैराग्य गुरु भक्तियुत, परख विवेक भी होय ॥
सोई मुक्ति अधिकारि है, और मिले नहिं कोय ॥ ९ ॥
शुद्ध विराग परमपद, आशा भास विनाश ॥
गुरुपद लहे न जब तक, रामस्वरूप हो नाश ॥ १० ॥

॥ ❀ ॥ **चौपाई** ॥ ❀ ॥

सब सन्तन मिलि महिमा गावा । पद विराग उत्तम ठहरावा ॥ १ ॥११॥
तामैं भेद अनेक प्रकारा । पारखि सन्तहिं जानैं सारा ॥ २ ॥१२॥
विषय वैराग्य संसारी जनको । माया मोह आसक्ति उनको ॥ ३ ॥१३॥
मरिगौ स्वजन सम्बन्धि कोऊ । मरघट लखि कछु चिन्ता होऊ ॥ ४ ॥१४॥
क्षणिक स्मशान वैराग्य है सोई । तस विषया वियोगमैं होई ॥ ५ ॥१५॥
इमि बहुभाँति अज्ञान विरागा । उलट-पुलट भुलते सो अभागा ॥ ६ ॥१६॥
ईश ब्रह्म आदिक कोइ मानी । मायामुख वैराग्य बखानी ॥ ७ ॥१७॥
किये कठोरता तन मन दाहा । तापस बहुविधि भये बौराहा ॥ ८ ॥१८॥
तीसर ब्रह्ममुखी वैरागा । ब्रह्मज्ञानिनके पीछे लागा ॥ ९ ॥१९॥
विधि निषेध त्यागे बहुभाँती । तामैं जीव नहीं कुशलाती ॥१०॥२०॥
काल सन्धि झाँईका फेरा । त्रय मुख विराग कालका घेरा ॥११॥२१॥
आशा वासा जग जञ्जाला । तामैं पड़ि-पड़ि भये बेहाला ॥१२॥२२॥

रहनी रहस्य बोध विवेका। गुरुमुख हो वैराग्यकी टेका ॥१३॥२३॥
सर्वोत्तम वैराग्य यही है। याते जीवन्मुक्ति भई है ॥१४॥२४॥
रामस्वरूप सोई वैरागा। भीतर बाहर रहनि दृढ़ लागा ॥१५॥२५॥

छन्दः—"शान्ति भये मन राग गये पर, भयो विराग सुखी तब सोई ॥
निजस्वरूपमें स्थिर भये जब, आशा तृष्णा रहे न कोई ॥
पारखबोध भयो जब जीवको, कलह कल्पना जाय बिगोई ॥
रामस्वरूपदास निज पदको, गुरुकी दया ते जाने कोई ॥१६॥२६॥

दोहाः— पूरणसाहेब पारखी, सर्व प्रथम यह ग्रन्थ ॥
वैराग्यशतक रचना किये, दर्शायो सब पन्थ ॥ २७ ॥
शास्त्र कथनि त्रयमुखनके, दियो दर्शाय तमाम ॥
आदि अन्त वैराग्य गुरु, रहनि लिये ते काम ॥ २८ ॥
मूल हता टीका किया, दरशायो सब सार ॥
रामस्वरूप सो मनन करि, साधु होवैं पार ॥ २९ ॥
पारख सिद्धान्त दर्शिनी, भ्रम ध्वंशिनी परचण्ड ॥
टीका सरल यामैं किया, रामस्वरूप ब्रह्मण्ड ॥ ३० ॥
युग सहस्र वसु सम्वत, आश्विन वदी नवमी तिथी ॥
बार सोम सन् उन्निस, पाँच एक सित चौबीस इति ॥ ३१ ॥
याकी टीका समाप्त भया, गुरुकी दया ते आज ॥
रामस्वरूपदास लिखा, रहनी रहेते काज ॥ ३२ ॥

॥ ❀ ॥ इति श्री वैराग्यशतक नामक ग्रन्थस्य—रामस्वरूपदास अनुवादित पारख सिद्धान्त दर्शिनी भ्रम विध्वंशिनी सरल टीका सहित—संयुक्त निर्णयसारादि षट् ग्रन्थे—द्वितीय ग्रन्थः सद्गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् समाप्तम् ॥ २ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

पारखनिष्ठ बुरहानपुर गद्दीके चतुर्थ आचार्य सद्गुरु श्रीरामसाहेब लिखित

❋ "एकईस प्रश्न" नामक ग्रन्थस्य प्राक्कथन वर्णन ❋

॥ संयुक्त निर्णय सारादि षट्ग्रन्थे— तृतीय ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ ३ ॥

॥ ❋ ॥ टीकाकार कृत श्रीसद्गुरु पद वन्दना ॥ ❋ ॥

दोहाः—प्रथमैं गुरु पद बन्दगी । भक्ति सहित त्रय बार ॥
परखायो सब जालको । गुरु कबीर सत सार ॥ १ ॥
पारखबोध सब भाँतिसे । पूरण साहेब लीन्ह ॥
सद्गुरु पद त्रय बन्दगी । गुरुपद रज शिर कीन्ह ॥ २ ॥
तबते बोध प्रचार भो । पाये परख बहुतेक ॥
गुरु-शिष्य परम्परा । गुरु पारख पद टेक ॥ ३ ॥
पूरण साहेबके सिख । साहेब हंस महान ॥
ताते सन्तोष साहेब । पारख बोध पिछान ॥ ४ ॥
साहेब राम चतुर्थ भये । नागझिरी शुभस्थान ॥
एक्कीस प्रश्न निर्माण किये । देखो निर्णय ज्ञान ॥ ५ ॥
तिनके शिष्य नरोत्तम । रहे स्थान पश्चात् ॥
पुनि काशी साहेब भये । परखायो साक्षात् ॥ ६ ॥
ता पीछे हमरे गुरु । छोटे बालक देव ॥
चरण शरण मोंको लिये । अभय दान वर देव ॥ ७ ॥
रामस्वरूप मति मन्द हूँ । गुरु कृपया ते आज ॥
यथामति शुभलेख लिखौं । साधुनके हो काज ॥ ८ ॥

यहि विधि गद्दी परम्परा। चलि आयो वर्तमान ॥
सोई पारख ज्ञानको। गुरुते हमहूँ जान ॥ ९ ॥
गुरुकबीर आचार्य गुरु। सबके पद नमूँ शीश ॥
रामस्वरूप यहि दासको। गुरु ज्ञान दियो बकशीश ॥ १० ॥

॥ * ॥ प्राक्कथन—वक्तव्य वर्णन ॥ * ॥

सद्गुरु श्रीकबीर साहेबको तो संसारमें सब कोई अच्छी तरहसे जानते ही हैं। आप सर्वप्रथम पारख प्रकाशी सत्यबोधदाता हुए हैं। इतिहासकारोंके लेख प्रमाणसे विक्रमीय संवत् १४५५ में काशीमें आपकी उत्पत्ति माना गया है। और वि० सं० १५७५ में मगहरमें जाके अन्तरधान हुए। इस बीचमें आपने बहुतेक नरजीवोंको चेतायके पारखबोध दिये। सो सबको विदित ही है। निर्णयसारके प्रमाणसे धर्मदासजी साहेब भी पीछेसे घरबारका परित्याग करके, सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबसे भेष लेकर, विरक्त साधु पारखी हुए थे। तहाँ ४२ वंशोंके स्थापनाकी बात, कबीर-धर्मदास सम्बादरूपमें गुरुवा लोगोंने जो लिखे हैं, सो कपोल-कल्पित है। क्योंकि, गृहस्थमें डूबा हुआ भग-भोगनेवाला कभी पारखीगुरु हो ही नहीं सकता है। परीक्षा दृष्टि होनेपर वह फिर कभी गृहस्थीके कीचड़में डूबे रह नहीं सकता है। और निर्वंश त्यागी पुरुष श्रीकबीरसाहेबने तो वंश चलाके गुरुवाई करनेको कभी किसीको आज्ञा नहीं दिये। त्याग वैराग्य बतायके विषय खण्डनका ही उपदेश सबको दिये। श्रीकबीर साहेबके रहते ही साधु धर्मदासजी साहेबका शरीर छूट गया था, ऐसा इतिहासमें माना जाता है। फिर पीछेसे उनके पूर्व गृहस्थाश्रमके पुत्र चूडामणि आदिने ही कल्पनासे ४२ वंशोंकी बात स्थापित कर अपने गुरुवाई करनेका मतलब पूरा किये॥ तदनन्तर श्रीकबीर साहेबके बीजकसिद्धान्तको माननेवाले कयी एक पारखी सन्त परम्परासे होते आये। उन सबोंका नाम ज्ञात न होनेसे लिखा नहीं। उन्हींमेंसे एक श्रीअमरसाहेब गुरु पारखी हुए। उनके शिष्य पारखी श्रीसुखलाल साहेब हुए। उनके पक्का

सत्‌शिष्य श्रीपूरणसाहेब हुए। जो हमारे बुरहानपुर, नागझिरी, कबीर-पन्थ गद्दीके प्रथम आचार्य्य सद्गुरु माने जाते हैं। बुरहानपुर नागझिरी स्थानमें कबीरपन्थ गद्दीके संस्थापक आप ही हुए हैं। आप त्यागीपूर्ण वैराग्यवान् तथा अपरोक्ष पारखी साधु गुरु रहे। सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने पहले शुरू-शुरूमें शब्दावलीके भजनोंको और गुरुस्तुति, विनय आदिके पदोंको बनाये थे। तथा ग्रन्थरूपमें वैराग्यशतकके दोहा १ से १२७ तक प्रथम ही बना, ऐसा ज्ञात होता है। फिर निर्णयसारकी रचना किये। जो कि, वि०सं० १८९२ में समाप्त होनेका सोरठामें लिखा है, इसी बीच-में बीजक साखीकी कुछ टीका तक भी आपने लिख चुके थे। पश्चात् बीजककी विस्तार टीका (त्रिजा) लिखके पूर्ण किये। वि० सं० १८९४ में टीका समाप्तिकी तिथी-मिती लिखी है। आपके रचनामें इतना ही उप-लब्ध हैं। अन्य प्रकाश हुआ नहीं। वैसे तो आपके शिष्य साधु लोग कयी एक रहे। उनमेंसे प्रधान शिष्य ४ × ५ गिने जाते रहे। बड़े शिष्य श्रीहंस-साहेब बुरहानपुर नागझिरी स्थानके प्रमुख गद्दीनशीन आचार्य हुए, और श्रीलालसाहेब एक शिष्य, तो इन्दौर, मल्लागञ्जके महन्त हुये। श्री-पूरणसाहेबके एक शिष्य श्रीफूलीसाहेब इन्दौरके पास मह्वछावनी स्थान-में जाके निवास किये। एक शिष्य आत्मासाहेब बेगमगञ्ज जाके रहे। तथा शिष्या सोनादासजी साधुबाई और लछमनदासजी साधुबाई इन्दौर, गरबड़ीमें जाके रहती भई। और ३१ या ३२ वर्षके अवस्थामें ही श्रीपूरण साहेबका बुरहानपुरमें शरीरान्त हुआ। ऐसा सन्तोंसे सुना जाता है। तदनन्तर गुरु हंससाहेबके भी प्रमुख पाँच शिष्य होते भये। १. श्रीसन्तोष साहेब, बुरहानपुर स्थानमें रहे, वहाँपर गद्दीमें तीसरे आचार्य पदपर प्रतिष्ठित हुए। २. गिरधारीसाहेब, जिन्होंने सिंधखेड़ा गाँव बसाये और वहीं रहे। ३. रामसाहेब, जो बुरहानपुर स्थानमें रहे, पीछे चौथी पीढ़ीमें आचार्य भये। ४. गोपालसाहेब, और ५. गङ्गाबाई साधु (४—५) ये दोनों सिंधखेड़ामें रहे। उनमें गोपालसाहेबके मुख्य शिष्य बड़े बालक साहेब भये, आपका उपनाम

मोहनसाहेब भी था। उनके प्रमुख शिष्य छोटे बालकसाहेब हुए। और मैं (रामस्वरूपदास) श्रीगुरु छोटे बालक साहेबका शिष्य अभी वर्तमानमें स्थानपर मौजूद हूँ ॥

ईसवी सन् १९१६ के प्लेगमें साधु गङ्गाबाईका और बारह दिनके बादमें ही बड़े बालकसाहेबका भी शरीर छूट गया था। अस्तु ! ॥

इधर सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबके पश्चात् उनके सत् शिष्य श्रीहंससाहेब गद्दीनशीन भये। उनके बादमें उनके ही प्रमुख शिष्य श्रीसन्तोषसाहेब गद्दीनशीन भये। आपके शिष्य श्रीभगवान साहेब रहे, किन्तु विशेष योग्यता श्रीरामसाहेब, जो सन्तोषसाहेबके गुरु भाई रहे, उनके होनेसे उन्हें ही गद्दीनशीन किया गया। आप बड़े प्रवीण वेदान्त विशेषज्ञ रहे। आपने ही मतवादियोंके ऊपर २१ प्रश्नका लेख किये हैं। इस ग्रन्थमें उसे ही दर्शाया जायगा। साथ ही अबतककी गुरु प्रणाली यहाँ दर्शा देनेसे सबको सुगमतासे गुरु प्रणाली भी ज्ञात हो जायगा। यही समझके यहाँ लिख दिया गया है। अब बाकीकी पूरी ही बात सुन लीजिये ! इन्हीं श्रीरामसाहेबके एक शिष्य नारायणसाहेब भये। जिन्होंने "सखुन बहार दर्पण" नामक ग्रन्थ बना दिये हैं, और श्रीनरोत्तमसाहेब तथा कल्यानदास भी श्रीरामसाहेबके शिष्य भये। उनमें पहले कल्यानदासको महन्ती दिया गया था, किन्तु वह कुसङ्गतमें पड़के पथ-भ्रष्ट हो पतित हुआ, तो उसे निकाल दिया गया, फिर वह सिंघखेड़ामें जाके गृहस्थ हो गया, अब तो उसका शरीर भी छूट चुका है। यहाँ स्थानमें श्रीनरोत्तमसाहेबको गद्दीनशीन किया गया। पश्चात् आपके कयीएक साधु शिष्य भये। उनमें प्रेमसाहेबने तिमिर-भास्कर ग्रन्थ बनाये। निर्मलसाहेब खजाञ्ची और सिंघखेड़ाके हिस्सेदार भी भये रहे। आत्मादासजी, लालदासजी और भी कयी शिष्य भये। और श्रीरामसाहेबके एक शिष्य श्रीरामसुकसाहेब रहे, उनके प्रमुख शिष्य श्रीकाशीसाहेब भये, श्रीनरोत्तमसाहेबके समयमें कयी वर्षतक आप अधिकारी पदमें रहे। फिर वि० सं० १९७७

में श्रीनरोत्तमसाहेबके शरीर छूटनेपर श्रीकाशीसाहेब गद्दीनशीन आचार्य हुए। आपने प्रथम 'पारखबोध' ग्रन्थ लिखके छपाये थे। बीजक टीका, पञ्चग्रन्थी संयुक्त निर्णयसार, वैराग्यशतक, कबीर परिचय आदि तथा विवेकसार, विवेक चन्द्रिका, इत्यादि ग्रन्थोंको छापके प्रकाशित करनेके लिये, एवं राजनीति एक ग्रन्थ स्वयं लिखके वह सब बम्बईमें खेमराजके प्रेसमें छपानेको दिये थे। फिर निर्पक्ष सत्यज्ञानदर्शन, सत्यज्ञान बोध नाटक, तत्त्वयुक्त निजबोध विवेक, जड़-चेतन भेद प्रकाश, इतने ग्रन्थ हिन्दीमें स्वयं लिखके प्रकाशित भी किये, और निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन, तथा जड़चेतन भेद प्रकाश, ये दो ग्रन्थ स्वयं छपवा भी दिये थे। और तत्त्वयुक्त निजबोधविवेक, सत्यज्ञानबोधनाटक, जड़ चेतन भेदप्रकाश, ये तीनों ग्रन्थ मराठीमें आपका लिखा हुआ छप चुका है। किन्तु निर्पक्ष सत्यज्ञानदर्शन मराठीमें लिखा हुआ अभी अप्रकाशित ही पड़ा है। पश्चात् विशेष उपरामता-विरक्तिके कारणसे आचार्य गद्दीके महन्तपदमें श्रीछोटेबालकसाहेबको नियुक्त करके आप विचरण करनेको चले गये। उधर ही कहीं बसई गाँव आगरा तरफ वनप्रान्तमें आपका शरीर छूट गया। इधर श्रीछोटेबालकसाहेब गद्दीनशीन होनेसे पुनः बुरहानपुरके मन्दिर और सिंघखेड़ा मठ एक हो गया। आपने तत्त्वयुक्त निजबोध विवेक, सत्यज्ञानबोध नाटक—हिन्दी-मराठी, तथा निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन, तिमिरभास्कर आदि ग्रन्थ सब छपवानेमें आर्थिक सहायता और सहयोग प्रदान किये, तो श्रीलालसाहेबने उन सब ग्रन्थोंको छपवाने लगाये थे। सखुन बहार ग्रन्थको शोधन करके श्रीछोटेबालक साहेबजीने बम्बईमें प्रकाश करने दिये थे। सन्ध्या पाठ मूल, नमूना आदि स्वयं छपवाने लगाके प्रकाशित किये थे। आपके समयमें श्रीकाशीसाहेबके प्रमुख शिष्य श्रीलालसाहेबजी बुरहानपुर नागझिरी स्थानमें बहुत वर्षों-तक रहके बीजक मूल, और पञ्चग्रन्थीके अर्थ सन्तोंको पढ़ाते रहे। आप उप-आचार्यरूप महन्तपदमें प्रतिष्ठित श्रेष्ठ पारखी सन्त रहे। आपसे सब गद्दियोंके सन्त आयके बीजक मूल आदिका अर्थ पढ़-पढ़के गये।

काशीके साधुमहाराजदासजी आदि भी आयके आपसे शिष्यरूपसे बीजक, पञ्चग्रन्थी आदिके अर्थ पढ़ गये थे । और बाराबङ्कीके प्रेमसाहेब आदिकोंने भी आचार्य श्रीलालसाहेबसे बीजक पढ़ गये थे। और वासुदेव-साहेब आदियोंने तो भली-भाँति आपसे शिक्षा पाई थी । पश्चात् हम भी जब श्रीसद्गुरुके शरणमें आये, तब हमने भी आचार्य श्रीलालसाहबजीके श्रीगुरुमुखसे ही विधिपूर्वक मूल बीजक और पञ्चग्रन्थी दोनों सद्-ग्रन्थोंका अध्ययन किया । बहुत उत्तम प्रकारसे शिक्षा प्राप्त किया। पश्चात् कालगतिके प्रभावसे वि० सं० १९९८ अधिक जेष्ठ शुक्ल २, सोम-वार तदनुसार ई० सन् १९४२, मई दिनाङ्क १८ में श्रीगुरु छोटेबालक-साहेबजीका देहान्त हो गया । कुछ काल पूर्व ही आपने हमारे नामसे बुरहानपुर और सिंघखेड़ाको एकत्र मिलाकरके वसीयतनामा लिखाके रजिष्ट्री कर गये थे, उसी माफिक बुरहानपुर नागझिरी स्थानमें व्यवस्था करके उपरोक्त मितीके महीना दिन बादमें हो विधिपूर्वक सन्त समागम मेला भण्डाराका आयोजन करके उस वक्त श्रीसद्गुरु आचार्य श्रीलाल-साहेबजीने अपने करकमलोंसे विधिपूर्वक चद्दर ओढ़ायके मुझ (रामस्वरूपदास) को गद्दीनशीनकर आचार्य पदपर प्रतिष्ठित किये । तबसे यहाँ स्थानमें रहकर मैं बीजक और पञ्चग्रन्थी आदिका अध्ययन तथा अध्यापन कार्यमें लगा हुआ हूँ । इसी बीचमें वि० सं० २००२ चैत्र वदी २, मङ्गलवार तदनुसार ता० १९-३-१९४६ ई० को लखनऊ अस्पतालमें सद्गुरु श्रीलालसाहेबका देहान्त हो गया। आप रामतमें गये थे, रुग्णावस्थामें थे, उधर हो देहावशान हो गया। तहाँ सन्तोंने स्थान 'मेहदीगञ्ज लखनऊमें आपकी देह लेजाके समाधि दे दिये, पश्चात् ऐसा ज्ञात हुआ ॥

इस प्रकार समयकी गतिसे पूर्ववर्ती महामान्य पूज्य आचार्य गुरुजनोंका नाशवान् शरीर तो छूट ही चुका है, परन्तु उन्होंका पारख ज्ञान अमर अविनाशी है, और वह अमर ही रहेगा। तैसे ही एक दिन मेरी भी यह क्षणभंगुर कच्ची देह छूट ही जायगा, उसके

पहिले ही जो कुछ मैं जानता हूँ, सद्गुरुकी दयासे जो समझा हुआ हूँ; सो आप लोगोंको बिना प्रयास ही प्राप्त हो, इसी उद्देश्यसे मैं इस लेखन कार्यमें प्रवृत्त हुआ हूँ। सद्गुरुकी दयासे सो सफल ही हो जायगा ॥

उपरोक्त गुरु परम्पराओंको सहज ही सरसरी निगाहसे जाननेके लिये नीचे नकशा बना देता हूँ, सो देख लीजिये ! ॥

आचार्य स्थान बुरहानपुर, नागझिरी, कबीरपन्थ गद्दीकी गुरु-शिष्य-प्रणालीका नकशाः—

॥ १ ॥ [प्रथम नकशाः—]

पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके उपदेशरूप सद्ग्रन्थ मूल बीजकके आद्य टीकाकार, पारख सिद्धान्त प्रकाशी, पारखनिष्ठ, पूर्ण त्याग वैराग्यस्वरूप श्रेष्ठ सन्तशिरोमणि—

॥❋॥ प्रथम आचार्यवर्य सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी ॥❋॥

[नागझिरी स्थान—बुरहानपुरमें आके विराजमान हुए]

आपके प्रधान शिष्यवर्ग प्रसिद्ध पाँच स्थानोंमें हुए; उन्होंके नाम प्रणाली वर्णन ।

[नकशा आगेके पेजमें देखिये !]

॥ * ॥ प्रथम आचार्य सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी ॥ * ॥

(त्यागी, साधु, गद्दीकी प्रसिद्ध शाखायें:—)

(१) श्रीहंससाहेब । (बुरहानपुर)	श्रीआत्मासाहेब । (बेगमगञ्ज व गाड़रबाड़ा)	श्रीलालसाहेब । (इन्दौर— मल्हारगञ्ज)	श्रीफूलीसाहेब । (महू-छावनी)	सोनादासजी साधुबाई । लछमनदासजी साधुबाई । (इन्दौर-गरबड़ी)
(२) श्रीसन्तोषसाहेब ।	अमरसाहेब ।	शम्भुसाहेब ।	श्रवणदासजी । (इससे स्थान टूट गया,) (समाप्त)	{ गुरुशरणदासजी । शिवरामदासजी ।
(३) श्रीरामसाहेब ।	साहेबदास । (इसने स्थान नष्ट कर दिया ।)	लक्ष्मणसाहेब । (देहान्त हो गया)		मङ्गलदासजी ।
(४) श्रीनरोत्तमसाहेब ।				रामदासजी ।
(५) श्रीकाशीसाहेब ।				मथुरादासजी ।
(६) श्रीछोटेबालकसाहेब । [श्रीलालसाहेब (समकालीन)]				निर्भयदासजी । (इसके बाद स्थान नष्ट हो गया, समाप्त)
(७) रामस्वरूपदास । (वर्तमानमें मौजूद, पाठ चला रहा है ।)				

[यह निहङ्ग (त्यागी) गद्दीरूप मूल वृक्षके शाखायें जो हुए; सो दिखला दिया गया है ।]

॥ २ ॥ (दूसरा नकशा :—)

॥ ❋ ॥ प्रथमाऽचार्य सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी ॥ ❋ ॥

श्रीहंससाहेबजी ।
(आपके भी पाँच शिष्य मुख्य प्रसिद्ध होते भये ।)

- श्रीसन्तोषसाहेब, (बुरहानपुर)
  - श्रीभगवानसाहेब, (बुरहानपुर)
    - छोटेप्रेमसाहेब, (बुरहानपुर)
    - विश्रामदासजी, (गातापार)
- श्रीगिरधारीसाहेब, (सिन्धखेड़ा)
- श्रीरामसाहेब, (बुरहानपुर)
  - श्रीनरोत्तमसाहेब, (बुरहानपुर)
    - बड़े प्रेमसाहेब, (बुरहानपुर)
    - निर्मलदासजी, (बुरहानपुर)
    - लालदासजी, (रणाईस)
  - श्रीरामसुखसाहेब, (बड़गाँवतांदली)
    - श्रीकाशीसाहेब, (बुरहानपुर)
      - श्रीलालसाहेब, (बुरहानपुर)
  - नारायणसाहेब, (बुरहानपुर)
- श्रीगोपालसाहेब, (सिन्धखेड़ा)
  - श्रीबड़ेबालकसाहेब, (उर्फ मोहनसाहेब) (सिन्धखेड़ा)
    - श्रीछोटेबालकसाहेब, (सिन्धखेड़ा और बुरहानपुर)
      - रामस्वरूपदास, (बुरहानपुर)
- गङ्गाबाई साधु, (सिन्धखेड़ा)
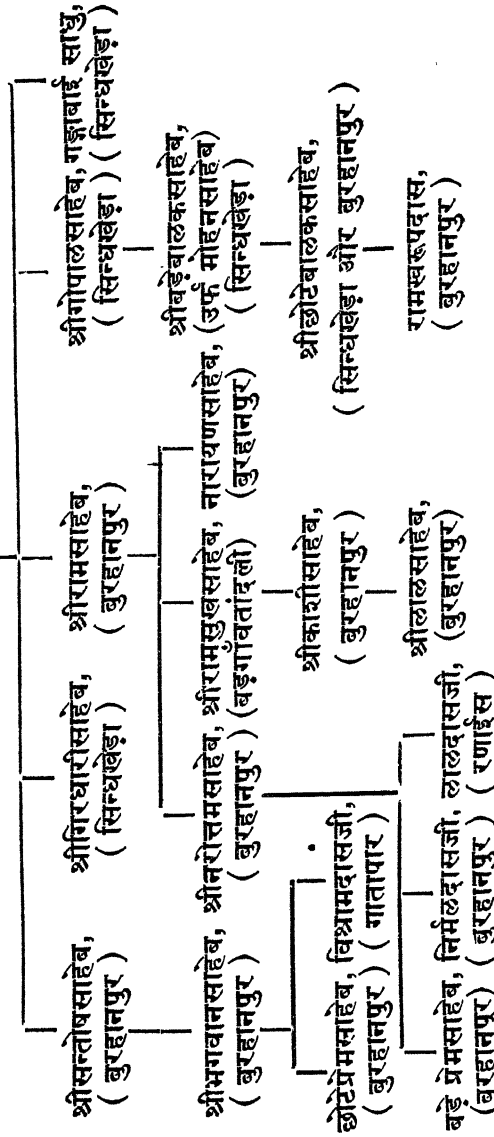
बुरहानपुर गद्दीस्थान—श्रीकबीर निर्णय मन्दिर, नागझिरी, मूल प्रधानकेन्द्र है। वहाँसे शिष्य-परम्परा क्रमसे शाखा-प्रशाखा निकलके जो-जो सन्त, महन्त प्रसिद्ध भये हैं, उन्होंकी यह नामावलीः दर्शाया गया है। उनमें लिखे हुए और सब महापुरुषोंकी तो भूतकालमें देहान्त हो चुका है। वर्तमानमें बुरहानपुर स्थानमें रामस्वरूपदास मौजूद है, और रणाईस तथा गातापारके सन्त, महन्त जीवित हैं, ऐसा जान लीजिये ! ॥

॥ ※ ॥ पूर्वाचार्योंका देहान्तकी तिथी, मिती वर्णन ॥ ※ ॥

विक्रमीय सम्वत् १८९४ के अगहन वदी ३ में, प्रथम आचार्य श्रीपूरणसाहेबका बुरहानपुरमें देहान्त हुआ। वि० सं० १९१० के लगभग वैशाख सुदी ५ को श्रीहंससाहेबका बुरहानपुरमें देहान्त हुआ। वि० सं० १९२० के पौष सुदी ९ को श्रीसन्तोषसाहेबका बुरहानपुरमें देहान्त हुआ। वि० सं० १९५३ के पौष वदी ७ को श्रीरामसाहेबका बुरहानपुरमें देहान्त हुआ। वि० सं० १९७७ के अगहन सुदी १५ को श्रीनरोत्तमसाहेबका बुरहानपुरमें देहान्त हुआ। वि० सं० १९८१ गुरुवार पौष वदी ७ को श्रीकाशीसाहेबका आगराके तरफ देहान्त हुआ। [आगरा शहरसे करीब १५ कोशके दूरीपर गाँव बसई अरेला या जरारीमें ता० १८। १२। १९२४ ई० को श्रीकाशीसाहेबका शरीर छूटा है]। और वि० सं० १९७३ के कार्तिक वदी १३ (ता० २३। ११। १९१६ ई०) को सिंधखेड़ामें साधु गङ्गा-दासजी बाईका देहान्त हुआ। और—वि० सं० १९७३ के मार्गशीर्ष सुदी ११ में (ता० ५। १२। १९१६ ई० को सिंधखेड़ामें बड़े बालकसाहेब उर्फ मोहनसाहेबका देहान्त हुआ। फिर— वि० सं० १९८७ के पौष वदी १० मङ्गलवार (ता० १३। १। १९३१ ई०) को बुरहानपुरमें श्रीभगवान् साहेबका देहान्त हुआ। तथा— वि० सं० १९९८ के अधिक ज्येष्ठ, सुदी ३, सोमवार (ता० १८। ५। १९४२ ई०) को बुरहानपुरमें आचार्य श्रीछोटेबालकसाहेबजीका देहान्त हुआ। और—

वि० सं० २००२ के चैत्र वदी २, मङ्गलवार (ता० १९ । ३ । १९४६ ई०) को लखनऊमें श्रीलालसाहेबजीका देहान्त हो गया है ॥

यह उपरोक्त मृत्यु तिथी, मिती, पुरानी डायरीके लेख तथा समाधियोंके ऊपरकी शिलालेखपरसे उतारके, सही प्रमाणसे लिखा गया है, ऐसा जानिये ! ॥

दोहाः—पारख प्रकाशी आदि गुरु । सन्त शिरोमणि आप ॥
सद्गुरु कबीरसाहेब । सर्वोपरि परताप ॥ १ ॥

चौपाईः—पारख ज्ञान कबीर लखावा । बीजकमें सब भेद बतावा ॥ २ ॥
पारखी बीजक मर्म पिछानै । निज स्वरूपमें स्थिति ठहरानै ॥ ३ ॥
मुक्ति मार्ग पारखपद होई । ताको पावै बिरले कोई ॥ ४ ॥
स्वार्थ बुद्धि उपजो जेहि माँही । करि मतभेद जीव भटकाही ॥ ५ ॥
शिष्य अनेक भये गुरु केरे । नाम कबीर पन्थ सब टेरे ॥ ६ ॥
बीजक ज्ञान मर्म नहिं जानै । भ्रम धोखा माया लपटानै ॥ ७ ॥
नाना पन्थ कबीरके नामा । माया जाल सो यमके कामा ॥ ८ ॥
पारखी सन्त बिरल जगमाहीं । निज-पर हित जीव मुकताही ॥ ९ ॥
इष्टदेव कबीर गुरु साहेब । अनुयायी पारखी कहलायब ॥ १० ॥
परम्परा पारखीके लेखा । अप्रसिद्ध बहु नाम न देखा ॥ ११ ॥
पारखी सद्गुरु पूरण साहेब । गुरुदयाल पारखी कहलायब ॥ १२ ॥
रामरहस पारखी गुरु साहेब । पारखी तीन प्रसिद्ध कहायब ॥ १३ ॥
टीका बीजक निर्णयसारा । कबीरपरिचय ग्रन्थ सुधारा ॥ १४ ॥
पञ्चग्रन्थी बहु भेद बतावै । यहि सद्ग्रन्थ पूरख ठहरावै ॥ १५ ॥
सब पारखी इनके अनुयायी । यहि अधार बहु ग्रन्थ उपाई ॥ १६ ॥
मुख्य अधार गुरुके गुणगाऊँ । कृतघ्नताके दोष नशाऊँ ॥ १७ ॥
काशी साहेब सद्ग्रन्थप्रकाशा । तब पायो सहजे सब खाशा ॥ १८ ॥
कहना बात यथार्थहि चहिये । भेद छिपाय दोष क्यों लहिये ॥ १९ ॥
पूर्व पारखी गुरु सब केरे । अनुयायी अब तो बहुतेरे ॥ २० ॥
रामस्वरूपदास शिरनाऊँ । पारखी गुरुके गुण नित गाऊँ ॥ २१ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥ दयागुरुकी ॥ ❀ ॥

॥ अथ लिख्यते संयुक्त निर्णयसारादि षट् ग्रन्थः ॥

पारखनिष्ठ आचार्य श्रीरामसाहेब लिखित—

एकईस प्रश्न नामक तृतीय ग्रन्थ प्रारम्भः ३॥

[पारख सिद्धान्त दर्शिनी भ्रम विध्वंशिनी सरल टीका सहित ।]

॥ ❀ ॥ टीकाकारकृत मङ्गलाचरणम् श्रीसद्गुरुपद वन्दना ॥ ❀ ॥

साखीः—पारखरूप कबीर सद्गुरु । बन्दीछोर दयाल ॥
पूरणसाहेब पारखी । त्रय बन्दगी त्रय काल ॥ १ ॥
पारखी सन्त समाजको । पद वन्दौं दिन रैन ॥
परखाये सब भेदको । पारख दृष्टिकी शैन ॥ २ ॥
श्रीरामसाहेब पारखी । काशी बालक लाल ॥
रामस्वरूपदास नमूँ । गुरु-गुण गाउँ कृपाल ॥ ३ ॥

अब यहाँपर २१ प्रश्नोंकी टीका-व्याख्या गद्य (भाषा), तथा पद्यमें विधिपूर्वक किया जाता है, सो श्रवण कीजिये ! ॥—

दोहाः—सत साहेब त्रय बन्दगी । मन वच कर्म आधार ॥
रामस्वरूप उल्था करूँ । इकीस प्रश्नका सार ॥ १ ॥

टीकाः—सत्यपारखस्वरूप, सत्यबोधदाता, सद्गुरु श्रीकबीर-साहेब तथा पूर्वाऽचार्य समस्त पारखी, साधुगुरु एवं निज बोधदाता, श्रीसद्गुरुसाहेबको मैं मन, वचन, कर्मसे आधार

लेकर श्रद्धा, भक्तिसहित शिर नवाकर प्रारम्भमें त्रयबार "साहेब बन्दगी ३" करता हूँ ! पश्चात् इस ग्रन्थके लेखन कार्यमें प्रवृत्त होता हूँ ! वि० सं० १९२१ से लेकर १९५२ तककी भेषके जीवनकालमें, बुरहानपुर, नागझिरीगद्दीके चतुर्थ आचार्य श्रीराम-साहेबने मतवादियोंके प्रति २१ प्रश्न लगा करके, सो बोलचालके साधारण भाषामें लिख गये हैं। वह संयुक्त पञ्चग्रन्थी मूलमें छपा हुआ प्राप्त है। रामस्वरूपदास कहता है—उसीका सम्पूर्णसार लेकरके, मैं २१ प्रश्नोंको उल्था करके, दोहामें बनाकर, सो यहाँपर लिख देता हूँ ! जिससे कण्ठाग्र करनेवालोंको सुभीता होगी।

[ता० १६।११।१९५० ई० में सम्पूर्ण उल्था करके दोहारूपमें बना चुका था] सोई यहाँपर आज टीकासहित खुलासा करके लिखा जा रहा है ॥ १ ॥

पहले ऊपर मूल प्रश्न भाषा ज्योंका-त्यों लिखके नीचे उल्थाका दोहा और टीका रखा है ॥

(१) प्रश्नः— जीव बिन ईशका ज्ञान नहीं, ईश बिन जीवको ज्ञान नहीं; उभय सम्बन्ध है, एकता कैसे होय ? ॥ १ ॥

दोहाः—ईश ज्ञान बिन जीव नहीं । ईश बिना जीव ज्ञान ॥
उभय सम्बन्ध वर्णन किया । एकता कैसे मान ? ॥ २ ॥

टीकाः— गुरुवा लोग कहते हैंः— ईश्वरकी शक्ति बिना, जीवको ज्ञान हो ही नहीं सकता है, और यहाँ देखा जाता है, ईश्वरादिको जानने, मानने, थापने, कल्पना करनेवाले, तो मनुष्य जीव ही हैं। चैतन्य नरजीवके सत्य हुए बिना ईश्वरका ज्ञान तो भी किसको होगा ?। इसलिये जीवके बिना तो ईश्वरका ज्ञान कदापि हो ही नहीं सकता है, और ज्ञान बिना ईश = ज्ञानी भी नहीं होते। दोनों परस्पर भिन्न-भिन्न और उभय सम्बन्ध लगा है, अर्थात् जीव, ईश्वरको जानता है और ईश्वर जीवको जानता है, ऐसा शास्त्रोंमें वर्णन किया है। अब कहो

भला ! जीव, ईश्वरकी एकता या जीव-ब्रह्मकी एकता कभी हो सकती है ? कभी त्रिकालमें भी नहीं हो सकती है । अगर एकता हुआ, तो उसको जानेगा कौन ? जाननेवाला तो सदा पृथक् ही रहता है । फिर एकता कैसे होगी ? नहीं होगी । अजी ! वास्तवमें तो माना हुआ वह ईश्वर ही मिथ्या कल्पना है । अतएव कल्पना करनेवाला हंस-जीव सदा उससे न्यारा रहता है । वही कल्पित स्वरूप कभी नहीं हो सकता है । अतः एकता मानना मिथ्या भ्रम है, इसीसे ऐसी मानन्दीको त्यागना चाहिये ॥ २ ॥

(२) ब्रह्मको निर्विकल्प कहते हो, जीवको नानात्त्व विकार-सहित वेद वर्णन करता है, एकता कैसे होय ? ॥ २ ॥

दोहाः—जीव नानात्त्व विकार सहित । वेद कहै परमान ॥
निर्विकल्प ब्रह्महि कहै । एकता कस पहिचान ? ॥ ३ ॥

टीकाः—वेद प्रमाणसे वेदान्तमें ऐसा वर्णन किया है कि, जीव नानात्त्व विकारसहित परिछिन्न हैं, अर्थात् अनन्तरूपमें अनेकों विकारसे घिरे हुए जीव समस्त बद्ध हैं, और ब्रह्म निर्विकार, निराकार, निर्गुण, निर्विकल्प, निरञ्जन, एक अद्वैत नित्य मुक्त है, ऐसा कहा है । अब कहो, उन दोनों महा विरोधियोंकी एकता कैसे होगी ? और एकता हुआ कि नहीं, उसका पहिचान कौन करेगा ? जब ब्रह्ममें सङ्कल्प-विकल्प कुछ है ही नहीं, निर्विकल्प कहा है ? तब एकताका पहिचान तो भी कैसे होगा ? क्योंकि, जीवको विकारसहित माननेसे एकता हो ही नहीं सकती है । भाई ! वास्तवमें ब्रह्म तो मनुष्य जीवका कल्पनारूप मिथ्या भ्रम ही है । फिर क्या कैसे एकता होगी ? दुराशा त्यागके निजस्वरूपमें स्थिति करो ॥ ३ ॥

(३) प्रश्नः—जीवको प्रतिबिम्ब कहते हो, तो प्रतिबिम्बको दुःख-सुख नहीं, और जीवको दुःख-सुख होता है, (इससे तुम्हारा कथन मिथ्या है) ॥ ३ ॥

दोहाः—प्रतिबिम्ब जीवहिं कहत हो । सुख-दुःख जीवको होय ॥
प्रतिबिम्बको सुख-दुःख नहीं । दोउ विरोधि सोय ॥४॥

टीकाः—ये भ्रमिक गुरुवा लोग चैतन्य जीवको ब्रह्म वा ईश्वरका प्रतिबिम्ब = परछाँहीं, या आभास कहते हैं । अर्थात् जैसे सूर्यकी परछाँहीं घड़ोंके जलमें, नदियोंमें, तालाबोंमें, दर्पणोंमें, पड़नेसे नानात्त्व भासता है; किन्तु सूर्य एक है । यह दृष्टान्त देकर सिद्धान्तमें कहते हैं, कि— सूर्यवत् कूटस्थ आत्मा वा ब्रह्मका चिदाभास अन्तःकरणमें पड़ा, सोई ब्रह्मका प्रतिबिम्ब जीव हुआ । नाना अन्तःकरण होनेसे जीव भी नाना हुए, ऐसा वेदान्तमें लिखा है; सूर्यवत् ब्रह्मको एक अद्वैत बताया है । परन्तु विचार करिये, उनके दृष्टान्त, सिद्धान्त एकदम विषम होनेसे अयुक्त है । कैसे कि—सूर्य एकदेशीय दृश्य साकार और जड़ है । तैसे दृश्य प्रत्यक्ष ब्रह्म कोई नहीं है, और उसे सर्वदेशी, व्यापक, निराकार माना है । उसका प्रतिबिम्ब ही नहीं होता है । फिर प्रतिबिम्बरूप परछाँहींको सुख, दुःखादि होनेका ज्ञान होता ही नहीं, प्रकाश और पदार्थके सम्बन्धमें ही प्रतिबिम्ब भासता है, अन्धकारमें सो भासता नहीं, उसके विपरीत जीवोंको सुख, दुःखादिका ज्ञान, त्रयकालमें होता है । अन्धकारमें भी जीवको सुख, दुःख मालूम होता है । रूपको छोड़कर शब्दादि चारों विषयोंका ज्ञान तब अन्धकारमें भी वैसे ही होते हैं । इस तरह सो जीव और प्रतिबिम्ब इन दोनोंमें घोर विरोध आता है । इसवास्ते दोनों विरोधियोंकी एकता कैसे होगी ? जैसे अन्धकार तथा प्रकाशमें एकता कभी हो नहीं सकती है; तैसे-जीव और प्रतिबिम्ब कभी एक हो नहीं सकते हैं । इस निर्णयसे तुम्हारा परस्पर विरोधी कथन मिथ्या बकवादमात्र ठहरता है । चैतन्य-जीव, नित्य, सत्य, अनन्त, अखण्ड पदार्थ है, वे प्रतिबिम्ब हो नहीं सकते हैं । ऐसा जानो ॥ ४ ॥

(४) प्रश्नः— ब्रह्मको निरावेब कहते हो, तो प्रतिबिम्ब असम्भव है ॥ ४ ॥

दोहाः—बिम्ब स्वरूपी ब्रह्मको। निराबेब कहु सोय ॥
फिर प्रतिबिम्ब असम्भव। कैसे सम्भव होय ?॥ ५ ॥

टीकाः—हे वेदान्ती जनो! सुनो, तुम लोग ब्रह्मको बिम्बस्वरूप बताकर फिर उसे निराबेब=अवयवसेरहित निराकार, निर्गुण, बखान करके कहते हो, फिर जरा शब्दार्थपर भी लक्ष लगाकर सोचो, विचारो तो सही। निराकार कहा, तो जिसका कोई भी आकार, प्रकार नहीं है, उसका कहीं परछाँहीं पड़ना, कैसे सम्भव होगा ?। अरे भाई! निराकारका प्रतिबिम्ब पड़ना एकदम असम्भव बात है। शून्यका भी कहीं परछाँहीं पड़ती है? नहीं। माना हुआ बिम्बरूप ब्रह्म ही मिथ्या धोखा है। फिर उसे निराकार बताके प्रतिबिम्ब होनेको मानना, तो सरासर मूर्खता है, एकदम यह असम्भव है॥५॥

(५) प्रश्नः— कदाचित् ऐसा कहा जाय कि, नभ निराबेब कहते हैं; तिसका प्रतिबिम्बमें भास होता है। जो ऐसा है, तो बिना साबेब परछाँहीं नहीं, तो दोनोंका भास करनेवाला तीसरा चाहिये ॥ ५ ॥

दोहाः—जो यदि ऐसा तुम कहो। निराबेब आकाश ॥
जलमें नभ प्रतिबिम्बवत्। ब्रह्म जीव परकाश ॥ ६ ॥
साबेब बिनु प्रतिबिम्ब नहीं। मेघ आदि साकार ॥
भासक तीसर चाहिये। द्रष्टा दृश्य निराकार ॥ ७ ॥

टीकाः—हे वेदान्ती जनो! कथंकदाचित् यदि तुम लोग ऐसा कथन करके कहो, कि— जैसे आकाश निराबेब=अवयवसेरहित शून्य निराकार है, उसे निर्गुण भी कहते हैं। और उसका जलमें, दर्पणमें, स्वच्छ स्फटिक आदि शिलाओंमें नीला-नीला आकाशका प्रतिबिम्ब भास होता है, यानी ऐसा दिखाई देता है।

तहाँ विचार सागर तरङ्ग ४ में कहा हैः—

दोहाः— "जल पूरित घटमें जु पुनि, है नभको आभास ॥
घटाकाश युत विज्ञजन, भाषत जल आकाश ॥" ७६ ॥

दोहाः—जो जलमें आकाशको, नहिं प्रतिबिम्ब लखाइ ॥
थोरेमें गम्भीरता, है प्रतीत किहिं भाइ ॥ ७७ ॥
याते जलमें व्योमको, लखि आभास सुजान ॥
रूप रहित जिमि शब्द तें, है प्रतिध्वनिको भान ॥ ७८ ॥

— इस प्रकार निश्चलदासजीने अपने ही तर्कसे स्वयं शङ्का, समाधानकर, अन्तमें— जलमें आकाशका प्रतिबिम्ब पड़ना माना है। परन्तु तहाँपर उनकी बुद्धि कुण्ठित हो गई है। मिथ्या पक्षको ही पकड़े हैं। अपना मत स्थापित करनेके लिये पक्षपाती लोग मिथ्या है वा सत्य है, उस तरफ कुछ भी विचार नहीं करते हैं। भला! जब आकाश निराकार, शून्य या पोल है, फिर उसकी परछाँहीं होगी ही कैसे? क्रिया रहित, निराकार आकाशका कोई कार्य बनता ही नहीं, फिर उसका गुण प्रतिध्वनिरूप क्रिया और साकार प्रतिबिम्ब मानना, सरासर कपोल कल्पना ही है। जल भरे हुए घड़ोंमें तथा तालाब आदिमें नक्षत्रादि सहित आकाशका भी प्रतिबिम्ब होता है, ऐसा मानना, सरासर भूल है, और थोड़े जलमें गम्भीरता दिखना, तो जलका स्वयं गुण-शक्ति है। किन्तु उसे ही आकाशकी परछाँहीं समझना, महा अज्ञानता है। तो क्या आकाशको भी अन्य तत्त्वोंके सदृश साकार समझ रखा है? किन्तु केवल शून्य ही आकाश है।

जड़ चेतन भेदप्रकाशमें कहा हैः—

दोहाः— "निराकार आकाशका, कछु परिणाम न होय ॥
प्रतिबिम्ब तासु असम्भव, नहीं शब्द ध्वनि कोय ॥" जड़ चेतन० ॥

—इसलिये जलमें दिखनेवाली परछाँहीं, सो आकाश नहीं। बल्कि साकार पदार्थ है। जो ऊपर तम्बू सरीखी नीला-सा रङ्ग प्रतीत होता है, सो एक तो अत्यन्त दूर पोल-ही-पोल होनेसे वैसा दिखता है। दूसरा— पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुके असंख्यों परमाणु, अणु, त्रसरेणुओंका जाल फैलावटरूप, जलचक्र या अणुचक्र है। वह अनादि, साकार जलचक्र तथा बादल, धूएँ, सूर्य,

चन्द्र, तारागणादि साकार पदार्थोंका एकदेशी, साकार प्रतिबिम्ब, साकार जल आदिमें देखा जाता है। वे पदार्थ बहुत ही ऊँचे स्थानमें स्थित हैं, इसीसे घुटनायुक्त आकारके जलमें मनुष्याकार वा अधिक गहरे आकारके तिनके प्रतिबिम्ब प्रतीत होते हैं। इस कारण निराकार, अदृश्य शून्यका साकार दृश्य प्रतिबिम्ब कभी कहीं नहीं होता है। ऐसा ही श्रीकाशीसाहेबने सत्यन्यायसे निर्णय करके ठहराये हैं, यही यथार्थ बात है ॥

इस प्रकार दृष्टान्त ही गलत, असम्भव साबित हुआ, तो सिद्धान्त कहाँसे सत्य ठहरेगा ? और निराकार ब्रह्मका प्रतिबिम्ब अन्तःकरणमें पड़के जीव प्रकाश हुआ, या ब्रह्मके प्रकाशसे जीव प्रकाशित होता है, कहना कितनी उल्टी समझ और बड़ी भारी भूल है ॥ ६ ॥ और साकार पदार्थ हुए बिना, तो कहीं कभी भी परछाँहीं पड़ नहीं सकती है। जल आदिमें जो दिखता है, सो मेघ, सूर्य, चन्द्र, तारागण और वातावरणका नील रङ्ग आदि वे सब तो साकार दृश्य पदार्थ हैं। उनकी परछाँहीं तो जरूर ही दिखेगी। किन्तु जिसको बाहर नेत्रसे कोई कदापि देख नहीं सकते, उस शून्यरूप आकाशका प्रतिबिम्ब पानीमें कोई कैसे देख सकेगा भला ? अरे भाई ! वे वेदान्ती लोग तो पूरे मिथ्यावादी भये हैं। अब इधर विचार करके देखो, दोनों दृश्य भासको देखनेवाला द्रष्टा या भासिक मनुष्य तीसरा न्यारा ही रहता है। अर्थात् जल-घट आदि पदार्थ और उसमें पड़ा हुआ प्रतिबिम्बको मनुष्य पृथक् रहके देखता है, जानता है, तभी वर्णन करता है। तैसे ही आकाशवत् निराकार ब्रह्म, और उसके प्रतिबिम्ब माने हुए जीव यह दोनों तो यहाँपर दृश्य हो गये, अब उन दोनोंका द्रष्टा भास करनेवाला तीसरा भासिक अलग होना चाहिये। सो कौन है ? कहाँ है ? बताओ। अरे ! ये क्या बतायेंगे, इनकी अकिल तो वहाँतक नहीं पहुँचती है। ब्रह्म माना हुआ ही भ्रम धोखा है। चैतन्य जीव स्वयं स्वरूप द्रष्टा है, और चारतत्त्व साकार

दृश्य हैं। जड़ और चैतन्य स्वतः सिद्ध अनादि हैं। इनका कर्ता कोई नहीं, माना हुआ ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि जगत्कर्ता मिथ्याकल्पनाके वाणीका पसारा मात्र है, ऐसा निर्णय करके जानना चाहिये ।। ७ ।।

(६) प्रश्नः—पाँच तत्त्वोंका उपजना, बिनसना वेद गावते हैं, और साबेब कहते हैं, इसीको निराबेब कैसे मानिये ? ॥ ६ ॥

दोहाः—पाँच तत्त्व जग आदिका । उपज-बिनश कहै वेद ।।
पुनि साबेब कहत तब । निराबेब कस छेद ।। ८ ।।

टीकाः— जगत्में पाँचों जड़तत्त्व और जीव समेत चराचरको प्रथमारम्भमें ब्रह्मके स्वाभाविक इच्छा या स्फुरणासे उत्पन्न हुआ, और महाप्रलयमें सम्पूर्ण जगत् विनाश हो जायगा; पाँचों तत्त्व क्रमशः एक-एकमें लय होकर अन्तमें ब्रह्ममें जाके मिल जायेंगे, इत्यादि वर्णन करके, वेदमें कहा है। वेदवादीलोग वही बात कहते हैं। और फिर पाँचों तत्त्वोंको साबेब=साकार भी कहते हैं। तब विचार करो, यदि जगत् साकार है, तो कभी वह निराकार हो नहीं सकता है, महाप्रलय होके सब नष्ट भी नहीं हो सकता है; और ब्रह्म निराकार है, तो उसके इच्छामात्रसे साकार तत्त्व उत्पन्न नहीं हो सकते हैं। निराबेब तो छेद=छिद्ररूप शून्य पोल है, उससे कैसे साकार जगत् बनेगा ? उससे जगत् बनेगा, कहना यह अन्यायका कथन है। ब्रह्मसे जगत्कीउत्पत्ति—प्रलय मानना सरासर मिथ्या भ्रम है, असत्य है। सुनो! पाँचों तत्त्व एक समान साकार या साबेब भी नहीं हैं। उनमें आकाश सर्वथा निराकार शून्य पोलरूप है। इसमें गुण, धर्म, क्रिया, शक्ति, मिलाप, यह कुछ भी नहीं है, केवल अवकाशमात्र, 'निराकार' है। वायु अदृश्य परमाणु समूह संयुक्त 'सूक्ष्माकार' है। अग्नि दृश्य, अदृश्य, 'स्थूल, सूक्ष्माकार' दोनोंसहित है, और जल, तथा पृथ्वी दोनों दृश्य 'स्थूलाकार' हैं। उनमें जल द्रवत्व स्वभाववाला है, और पृथ्वी विशेष कठिनत्त्वरूप है। अब इसीको निराकार ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ,

कैसे मानना ? पाँचोंतत्त्वरूप जगत् तो स्वतः अनादि हैं । यह किसीसे बना नहीं, तो किसीसे नाश भी नहीं होगा । बल्कि नर-जीवोंसे ही ब्रह्म कल्पना उत्पन्न भई है, विवेक होनेसे वही नाश हो जायगी । ऐसा निर्णय करके जानिये ! ॥ ८ ॥

(७) प्रश्नः—ब्रह्मको सर्वज्ञ वेद गावते हैं, और सर्वदेशी कहते हो, जीवको अल्पज्ञ एकदेशी कहते हो, 'प्रतिबिम्ब न्याय' कैसे बने ? ॥ ७ ॥

दोहाः—सर्वदेशि सर्वज्ञ विभु । ब्रह्मको वेद बखान ॥
एकदेशि अल्पज्ञ जीव । कस प्रतिबिम्ब समान ? ॥ ९ ॥

टीकाः—वेद-वेदान्तमें ऐसा वर्णन किया है, कि—ब्रह्म सर्वदेशी, सर्वज्ञ, और विभु = व्यापक है; अर्थात् सर्वत्र परिपूर्ण भरा हुआ, एक समान सबको जाननेवाला, त्रिकालज्ञ, उसे ओत-प्रोत कहा है । और जीवको एकदेशी, अल्पज्ञ, अल्पशक्तिवान्, परिछिन्न या नानात्त्व विकारयुक्त बताया है, और तुम लोग भी वेद प्रमाणसे बिना विचारे ऐसा ही कहते हो । अब सोच, समझके कहो भला ! प्रतिबिम्ब न्याय या परछाँहींके समान जीव कैसे बनेंगे ? जरा तुम दर्पणमें अपना मुख देखो ! उसमें तुम्हें कुत्ते, गधे, सूअर, बाघ, भालू आदिकोंके समान विचित्र ही अपनारूप दिखाई देता है क्या ? यदि नहीं दिखाता है, जैसा बिम्ब है, वैसा ही प्रतिबिम्ब भी दिखाता है, उसमें कुछ भी फरक नहीं पड़ता है । तब विवेक करके जानलो कि— ब्रह्म-वादीके कथन मिथ्या है । क्योंकि, उनका कथन परस्पर विरोधी है । सर्वज्ञ, सर्वदेशी, व्यापक निराकार वैसा ब्रह्मका प्रतिबिम्ब उसके विरुद्ध अल्पज्ञ, एकदेशी, नानात्त्व, साकार, यह कैसे हो गया ? क्या भाँग तो नहीं पीलिये हो, ऐसे अन्ट-सन्ट बकते हो । कैसी असम्भव बात करते हो, प्रतिबिम्ब तो उस वस्तुके समान ही होता है । जैसे कि, सूर्यके प्रतिबिम्ब जल आदिमें तद्वत् हो दिखता है, न कि, बिल्कुल अँधियारा भासेगा ? इसलिये कल्पित ब्रह्मका प्रतिबिम्ब

होता ही नहीं । जीव स्वयं सत्य है, ऐसा जानो ॥ ९ ॥

(८) प्रश्नः— महातत्त्व सावेब वेद गावते हैं, और ब्रह्मको निराबेब कहते हो, (फिर-) दृष्टान्त दुर्लभ नहीं होता ? ॥ ८ ॥

दोहाः— महातत्त्व सावेब हैं । ऐसा वेद बखान ॥
निराबेब ब्रह्महिं कहो । उपमा दुर्लभ ज्ञान ॥ १० ॥

टीकाः— वेद और वेदान्तशास्त्रमें ऐसा वर्णन किया है कि, प्रकृतिके कार्य महत्तत्त्व = बुद्धिको कहते हैं, चित्त, बुद्धि, मन, हङ्कार, पञ्च तन्मात्रायें, सूक्ष्म, स्थूल देहें, इत्यादि संयुक्त महातत्त्व सावेब = साकार है, और ब्रह्म उन सबसे परे अर्थात् मन, बुद्धि, वाणीसे परे निराबेब = निराकार है, और तुम भी ऐसा ही कहते हो, और उस ब्रह्म सिद्धान्तको निश्चय करानेके लिये आकाश आदिका दृष्टान्त या उपमा देते हो । परन्तु वहाँपर उपमा देना दुर्लभ या असम्भव है कि नहीं ? विचार करो । बुद्धिके बिना तो कोई बातका निश्चय होता ही नहीं, निश्चय किये बिना दृष्टान्त देके सिद्धान्त प्रतिपादन होता ही नहीं, और बुद्धि साकार होनेसे वह साकार वस्तुका ही अपनेमें ग्रहण कर सकती है; किन्तु निराकारको वह नहीं जान सकती है । उधर तुम लोग ब्रह्मको निराकार कहते हो, और निर्गुण माना है । फिर उस बारेमें कोई भी दृष्टान्त देके ब्रह्मज्ञानका निश्चय करना, कराना, सम्भव नहीं होता है, उसके लिये तो दृष्टान्त मिलना ही दुर्लभ है । जहाँ बुद्धिकी पहुँच नहीं है, वहाँ निर्बुद्धिवालेके कथन सिद्धान्त मिथ्या धोखाके सिवाय और क्या हो सकती है । यहाँ विवेकी, ज्ञानियोंके लिये तो उपमा मिलना दुर्लभ है । किन्तु, अविवेकी विज्ञानी लोग तो महाअज्ञानीवत् बनके ब्रह्मके बारेमें आकाशका उपमा देते फिरते हैं, और "अहं ब्रह्मास्मि" कहके अपनेको भी आकाशवत् शून्यमान लेते हैं। यही बड़ी भारी भूल है । कहीं आकाशकी भी उत्पत्ति मानते हैं । महान धोखामें गिरके गाफिल पड़े हैं ॥ १० ॥

(९) प्रश्नः— प्रतिबिम्ब न्याय जीवको कहते हो, सो एकदेशी सूर्य, चन्द्र इत्यादिक सावेब हैं, तिसका प्रतिबिम्ब घट जल सहित दूसरा होता है। तिसको मनुष्य आदि देखते हैं, प्रतिबिम्बको प्रतिबिम्ब नहीं देखता, दृष्टान्त असम्भव है ॥ ९ ॥

दोहाः—प्रतिबिम्ब सम जीवहिं कहो। ताका करो विचार ॥
सूर्य चन्द्र तारादिक। एकदेशि साकार ॥ ११ ॥
घट जल युत प्रतिबिम्ब वह। द्वितीय दृश्य साकार ॥
सो मनुष्य सब देखते। जीव ज्ञान आकार ॥ १२ ॥
परछाँही इक आनको। आपनको नहिं देख ॥
तामें चेतनता नहीं। उपमा असम्भव लेख ॥ १३ ॥

टीकाः—हे वेदान्ती लोगो! यदि तुम लोग "बिम्ब प्रतिबिम्ब न्यायवत्" जीव-ब्रह्मको एक समान मानते हो, अर्थात् बिम्ब ब्रह्म तथा प्रतिबिम्बके समान जीव हैं, ऐसा कहते हो, और यही सिद्धान्त ठहराते हो; तो उसका तुम निष्पक्ष होके निर्णय करके विचार, विवेक करो, तब यथार्थ बात मालूम पड़ेगी। अच्छा मेरी बात सुनो! पाँचवें प्रश्नमें भी मैंने तुम्हें समझा चुका हूँ, तब भी समझमें नहीं आया, तो और कहता हूँ, सुनो! आकाशका कोई आकार न होनेसे उसका कहीं कभी भी प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता है, और सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारागणोंके समूह, बादल, कुहिरें, इत्यादि पदार्थ सब प्रत्यक्ष दृश्य साकार एवं एकदेशी जड़ पदार्थ हैं ॥ ११ ॥ घड़ोंके जलमें, नदियों, तालाबोंमें वा दर्पणमें उपरोक्त एकदेशी पदार्थोंका ही प्रतिबिम्ब या परछाँहीं पड़ता है, सो घट, जलसहित दृश्य साकार दूसरा ही होता है। साकार पदार्थोंका प्रतिबिम्ब साकार जल आदिमें जो पड़ता है, सो तिसको मनुष्य आदि प्राणी सब प्रत्यक्ष ही देखते हैं। क्योंकि, जानना यह जीवका धर्म है। ज्ञानस्वरूप या ज्ञानाकार ही जीव है, वे सबसे न्यारे ही द्रष्टा रहते हैं ॥ १२ ॥

और परछाहींरूप एक प्रतिबिम्ब दूसरे प्रतिबिम्बको और अपनेको भी कदापि नहीं देख सकता है, तथा वह कुछ जान भी नहीं सकता है। क्योंकि, प्रतिबिम्बमात्र जड़भास या छाया है, उसमें चेतनता या जाननेकी शक्ति नहीं है। उसमें कोई उपमाका लेखा भी नहीं लगता है। क्योंकि, उसके लिये दृष्टान्त देना ही असम्भव है। अर्थात् ब्रह्मको निराकार मानके जीवको उसका प्रतिबिम्ब कहना, केवल मूर्खता है। क्योंकि, आजतक किसीने ब्रह्मको दृष्टि भरके देखा भी नहीं। फिर देहरहित ब्रह्मका छाया, देह सहित जीव कैसे हुआ? यह किसने कैसे देखा? कहाँ रहके, किसद्वारा जाना? यह सारी बात भ्रमिक मनुष्योंकी कोरी कल्पना मिथ्या है। जीवको प्रतिबिम्ब ठहरानेके लिये कोई भी दृष्टान्त लग नहीं सकता है। अतएव मिथ्या भ्रमको छोड़ करके सत्यसारका विचार करना चाहिये ॥ १३ ॥

(१०) प्रश्नः— ब्रह्म निराबेब सर्वदेशी और प्रतिबिम्ब साबेब एकदेशी, और ब्रह्मको निर्विकार वर्णन करते हो, और जीवको विकारसहित गावते हो, जो कदाचित् प्रतिबिम्ब भी मानिये, तो प्रतिबिम्बको कोई उपदेश नहीं करता, याते प्रतिबिम्ब असम्भव है ॥१०॥

दोहाः— निराबेब ब्रह्महिं कहा । सर्वदेश भरपूर ॥
एकदेशि प्रतिबिम्ब जिव । साबेब कहैं मशहूर ॥ १४ ॥

टीकाः— वेदान्तीलोग कहते हैं, कि— ब्रह्म निराबेब = निराकार, निर्गुण, सर्वदेशी = सर्वदेशमें यानी सारे संसारमें भरपूर-व्यापक है, ऐसा ही वेद-शास्त्रोंमें भी कहा है। ब्रह्मके बिना एक तिल मात्र रखनेकी जगह भी खाली नहीं, ऐसा बताते हैं, और जीवको उसी ब्रह्मके प्रतिबिम्ब, एकदेशी, साकार, कहके वाणीके ढिंढोरा पीट-पीटके वही बात मशहूर = प्रख्यात कर रखे हैं ॥ १४ ॥

दोहाः— निर्विकार पुनि ब्रह्म कहो । सहविकार जिव मान ॥
याते पृथक् उभय भई । एकता कहै अज्ञान ॥१५॥

टीकाः— और फिर ब्रह्मको निर्विकार, निराधार, शुद्ध, बुद्ध,

निरञ्जन वर्णन करके कहे हैं। तथा उसके विपरीत इधर जीवको विकारसहित, पराधीन, अशुद्ध, अबुद्ध, बद्ध मानते हैं। इसवास्ते ब्रह्म और जीव इन दोनोंके बीचमें बहुत ही पृथक्ता साबित होती भई। तहाँ जीव, ब्रह्मकी एकता कथन करनेवाले और एकता करनेको चाहनेवाले या जीव-ब्रह्म एक है, कहनेवाले, सरासर नादान या महा अज्ञानी ठहरे कि नहीं? पहलेकी उतनी सारी विषमताको कहाँ डालके, एकता कहते हैं? अविचार, अज्ञानसे ही ऐसा विपरीत कथन होता है ॥ १५ ॥

दोहाः— यदि जीवहिं प्रतिबिम्ब कहो। चेतनता कहँ जाय ॥
उपदेश नहीं परछाँहिंको। प्रतिबिम्ब असम्भव गाय ॥ १६ ॥

टीकाः— हे गुरुवा लोगो! यदि कथंकदाचित् तुमलोग जीवको ब्रह्मका प्रतिबिम्ब ही कहो, और थोड़ी देरके लिये ऐसा ही मान लो, परन्तु ऐसा माननेपर उसमें यह युक्तियुक्त शङ्का उपस्थित होती है कि— परछाँहींमें तो कहींपर भी जाननेका ज्ञान-गुण या चेतनत्त्व शक्ति रहता ही नहीं, और जीवमें तो चेतनता या ज्ञान-गुण स्वयं सदा मौजूद है, फिर बताओ वह चेतनता जीवको छोड़कर कहाँ जायगी, और क्या कभी देखे हो, तुम्हारे परछाहींमें भी चेतनता रहती है? उसे दुःख-सुख आदिका ज्ञान होता है? कभी नहीं। फिर जीव प्रतिबिम्ब कैसे हुआ? अरे अविचारी जनो! सुनो! प्रतिबिम्बको संसारमें कोई भी कहीं उपदेश करते हुए हमने देखा, सुना नहीं। यदि तुम्हारे सरीखी मूर्ख, पागल लोग उपदेश करते होवें, तो वह बात प्रमाण नहीं होगी। यानी परछाँहींमें समझनेकी शक्ति न होनेसे उसे उपदेश, शिक्षा, दण्ड, प्रशंसा आदि कुछ होता ही नहीं। अर्थात् कोई भी ज्ञानी पुरुष प्रतिबिम्बको उपदेश नहीं करते हैं, किन्तु मनुष्य जीवको तो सब कोई उपदेश, शिक्षा किया करते हैं; गुरु-शिष्य होते हैं, और तुम लोग भी जीवोंको ही उपदेश करते हो, परन्तु उल्टी-सीधी बातें समझाके

मनुष्योंकी बुद्धि भ्रष्टकर भुलाया, भटकाया करते हो, धोखेमें डालके सत्यानाशकर देते हो। इसलिये तुम लोग धूर्त, दुष्ट मतिवाले हो। जीवको ब्रह्मका प्रतिबिम्ब मानना सरासर सोलहोंआना असम्भव है। क्योंकि, ब्रह्म कोई वस्तु ही नहीं, मिथ्या भ्रममात्र है, और जीव स्वयंस्वरूप सत्य वस्तु प्रत्यक्ष है। अतएव उस ब्रह्म = भ्रमको छोड़के अपना सुधारकर, हित-कल्याणकारी गुरुपदके मार्गमें लागो ॥ १६ ॥

(११) प्रश्नः— जब-जब ईश्वरके अवतार भये, तब-तब वेद, त्रिदेव आदि सबने स्तुति ठानी, सम्पूर्ण जीव ईश हैं, तो विशेषता क्यों बखानी ? ॥ ११ ॥

दोहाः— ईश्वरके अवतार भये । जब, तब वेद त्रिदेव ॥
सबने ठानी स्तुति । किमि विशेष बरतेव ? ॥१७॥

टीकाः— गुरुवा लोगोंने कोई एक सर्वशक्तिमान् ईश्वर मान रखे हैं, और समय-समयपर उसका साकार अवतार होना भी ठहराये हैं। हिन्दुओंने सब चौबीस अवतार माने हैं, उनमें दश अवतारोंको मुख्य और चौदहको गौण ठहराये हैं, और जब-जब उनके माने हुए ईश्वरके अवतार होते भये, यानी जिस किसी प्राणीमें विशेष कला कार्य देखे, तो उसे ही ईश्वरका अवतार मानकर, जब-जब ऐसे देखे, तब-तब वेदवेत्ता, शास्त्रज्ञ लोगोंने तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन त्रिदेवोंने और ऋषि-मुनि आदिक सबोंने उनकी बड़ी बड़ाई, लम्बी-चौड़ी स्तुति किये हैं। उन्होंने वेद, शास्त्रोंमें भी अवतारोंकी स्तुति लिखके भर दिये हैं। जब एक अद्वैत कहा है, तो ऐसे द्वैत भावसे विशेषता एकमें मानकर उल्टा बरताव क्यों किये ? इसका क्या कारण है ? ॥ १७ ॥

दोहाः— ईश जीव जब एक है । अंशाअंशी भाव ॥
पुनि अवतार विशेषता । पण्डित क्यों ठहराव ? ॥ १८ ॥

टीकाः— और गुरुवा लोगोंने कहा हैः—

चौ०:—"ईश्वर अंश जीव अविनाशी । चेतन अमल सहज सुख राशी ॥" रामायण ॥

अर्धश्लोकः— "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ॥" भ० गीता १५ । ७ ॥

—हे अर्जुन ! इस देहमें यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है॥ इस प्रकार अंशांशीभाव या कार्य-कारण भावसे जब जीव तथा ईश्वर एक ही सिद्ध हुए। पानी-पानी एकके समान उनमें समानता ठहरी। तब फिर अवतारोंकी विशेषता क्यों ठहराये? हे पण्डित ! तुम इसका प्रमाणसहित निर्णय करके कहो? जब तुम एककी बड़ाई करो, दूसरेकी न करो, तहाँ द्वैत ही सिद्ध हो गया, और एकताका विचार कहाँ रही? ॥ १८ ॥

दोहाः— ईशरूप सब जीव हैं। तो अवतार असत्य ॥
ईश लक्ष परमाण जग। कछू न मिलता सत्य ॥१६॥

टीकाः— यदि सम्पूर्ण जीव खुद ईश्वरके अंश ही हैं, ऐसा कहोगे, तब तो जीव-ईश्वरमें समानता हुई। सब जीव ईश्वरके ही स्वरूप हैं, यह बात ठहरी। तब थोड़ेसे अवतारी लोगोंकी विशेषता बताना और अवतार ठहराना ही असत्य है। सत्यन्यायसे निर्णय करनेपर तो ईश्वरके गुण-लक्षण तथा प्रत्यक्षादि प्रमाण, सत्यताका कोई कुछ भी संसारमें ईश्वर होनेका चिह्न ही नहीं मिलता है। फिर अन्धाधुन्ध अनुमान, कल्पनासे ईश्वर मानकर क्या फायदा होता है? कुछ नहीं होता है। सत्य वस्तु तो सबको प्रत्यक्ष ही लखाता है। अतएव मिथ्या ईश्वरादिका पक्ष छोड़के सत्यसारका विचार करो, तभी हित होवेगा ॥ १९ ॥

(१२) प्रश्नः—जीवको स्वर्ग, नर्क, चौरासी भरमना वेद गावते हैं, जीव परतन्त्र ईशके आधीन है, अतिशय दीन वर्णन गावते हो, और ईश स्वतन्त्र मायाधीश, जो जीवको ईश मानिये, तो पूर्व निर्णय मिथ्या बात ॥ १२ ॥

दोहाः— स्वर्ग नर्क चौरासिमें। भ्रमत रहत सो जीव ॥
अती दीन परतन्त्रता। ईश अधीन सदीव ॥ २० ॥

टीकाः— गुरुवा लोगोंका कथन ऐसा है, कि— अज्ञान, अविद्या,

मायाके वशीभूत होकर, जो चौरासी योनियोंमें, इक्कीस नरकोंमें तथा सात स्वर्ग लोकादिमें भ्रमण करता हुआ, पाप-पुण्योंका फल भोगते रहते हैं, सोई बद्ध जीव हैं; और वह अतिशय दीन, हीन, मलीन, होनेसे अल्पज्ञ जीव परतन्त्र होकर सदैव ईश्वरके अधीनमें रहते हैं ॥२०॥

दोहाः— ऐसे वेद बखानहीं । ईश स्वतन्त्र मायापति ॥
यदि जीव-ईश्वर इक । पूर्व कथन मिथ्या अति ॥ २१ ॥

टीकाः— ऐसी ही बात वेदमें भी वर्णन किया है, सोई वेद प्रमाणसे गुरुवा लोग बखान करते हैं, और कहा हैः— उसके विपरीत ईश्वर ज्ञानी, स्वतन्त्र, मायापति या मायाधीश अर्थात् मायाके मालिक, पाप, पुण्यसे रहित मुक्त माने हैं। अब विचार करिये ! जीव, ईश्वरमें कितना बड़ा भारी अन्तर हो गया । फिर भी जीव, ईश्वरको अंशांशी भावसे यदि एक ही मानोगे, तब तो तुम्हारा प्रथम निर्णय किया हुआ कथन अत्यन्त मिथ्या गपोड़ी बात ही ठहरेगी। उसमेंसे सार कुछ भी नहीं निकलेगा ! क्योंकि, जो दोष जीवमें आते हैं, सोई दोष ईश्वरमें भी लगेगा, और ईश्वरके गुण सब जीवमें भी आवेंगे । इसलिये तुम्हारा कथन असत्य वा बिलकुल असार है ॥ २१ ॥

(१३) प्रश्नः—ईश सामर्थ्यवान् जो चाहै सो करै, और जीव नासामर्थ्य, कछु लाचार, बनता नहीं, एकता कैसे मानिये ? ॥ १३ ॥

दोहाः— सर्वशक्ति युत ईश है । जो चाहै करै सोय ॥
जीव असक्त लाचार कहै । एकता कहु किमि होय ? ॥ २२ ॥

टीकाः— ईश्वरवादी लोग कहते हैं कि— परमेश्वर सकल षट्-गुण ऐश्वर्य संयुक्त सामर्थ्यवान् या सर्वशक्तिमान् है । इसलिये वह जो चाहै सो कर सकता है, और इच्छानुसार कार्य करता भी है । कहा हैः—

"मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघइते गिरिम् । यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम् ॥"

— गूँगेको वक्ता कर दे, पंगुको पहाड़ नघादे, जिसकी कृपामात्रसे

यह असम्भवित कार्य भी संभवित हो जाता है, उस परमानन्दमय माधवको वन्दना है ॥ और बीजक रमैनी २९ में कहा है:—

रमैनीः— "बज्रहुते तृण खिनमें होई । तृणते बज्र करे पुनि सोई ॥" २९ ॥

पहाड़को कङ्कर बनादे, ढेलाको पहाड़ कर दे; राजाको रङ्क कर दे, रङ्कको राजा बना दे; त्रिकालका, और तीन समयोंका उलट-पुलट कर दे, यानी असम्भव बातको भी अपनी शक्तिसे सम्भव कर सके, ऐसा विलक्षण गुण-लक्षण ईश्वरमें माने हैं, और उससे एकदम उल्टा असक्त या अल्पशक्तिमान् जिसमें विशेष सामर्थ्य न हो, कुछ भी अनियमितकार्य जिससे न हो, अत्यन्त लाचार, दीन, हीन, मलीन, ऋद्धि, सिद्धि, करामात उससे कुछ भी नहीं बनता है। ऐसा अल्पज्ञ जीवका लक्षण वेद-वेदान्तादिमें कहा है, वही बात गुरुवा लोग कह रहे हैं। अब कहो भला! इतना बड़ा विरोध मिटके जीव, ईश्वरकी एकता होके ब्रह्म कैसे होयगा? तहाँ एकता भी कैसे किस प्रमाणसे मानना? एकताका कथन करनेवाले गपोड़शङ्ख हैं। पूर्वापर विचार किये बिना ही नेत्र मूँदके एकता कहते हैं। अरे भाई! ईश्वर, ब्रह्म ही मिथ्या भ्रम है, तो फिर उसमें जीवोंकी एकता कैसे होगी? इसका यथार्थ विचार करो ॥ २२ ॥

(१४) प्रश्नः— परमात्मा प्रभुजीके उरमें भृगु मुनिके चरणकी चिह्न परी, सो सर्व अवतारोंमें भान भई, और सर्व जीव ईश्वर हैं, तो सबके उरमें काहे न भान भई? ॥ १४ ॥

दोहाः—भृगू मुनिने जायके । मारी हरि उर लात ॥
　　अवतार उर सब भान भई । चरण चिह्न बिलगात ॥ २३ ॥

टीकाः— पुराणोंमें लिखा है:—एक समय ऋषि वर्गोंमें यह बात छिड़ी कि, ब्रह्मा, विष्णु, और शिव इन तीनों देवोंमें विशेष गुणवान् और बड़ा कौन हैं? वाद-विवाद बढ़ा, पर कुछ निर्णय नहीं हुआ। तब परीक्षा करनेको भृगुमुनि निकल पड़े। क्रमशः ब्रह्मा तथा महादेवके

पासमें गये, जाके उन्होंको मुनिने अपमान किये, तो वे क्रोधित होके उन्हें फटकारे और पीटने-मारनेको भी उतारू हुए। तब वहाँसे भागके बादमें विष्णुके पास गये। उस वक्त विष्णु लेटे हुये थे, सरासर जाते ही भृगुने बड़ी जोरसे विष्णुकी छातीमें लात मार दिया। वही कारणसे भृगुके चरण चिह्नका छापा हरिके उरमें अङ्कित भई। तब झट-पट उठके हरिने भृगुके चरण दाबते हुए क्षमा माँगी, शान्तिसे कहा कि, मुझसे बड़ी गल्ती हो गई। आपके आगमनका मुझे ज्ञान न रहा। आपको बड़ा कष्ट हुआ, मेरे बज्रसा हृदयमें प्रहार करके मुझे चेता दिये, सो अच्छा हुआ। किन्तु आपके पैर बहुत दुःख गये होंगे, लाइये! मैं उसे दबा दूँ, इत्यादि कहा, शान्त हो रहा। इससे भृगु लज्जित होके विनय करके वहाँसे विदाई होके चला गया। जाके सब हाल अन्य ऋषियोंको भी बताया। तब सबोंने विष्णुको बड़ा माना, ऐसा कथा वर्णन भया है ॥ तहाँ कहा हैः—

दोहाः—"तामस पी शीतल भया, फिर कछु रही न प्यास ॥
भृगु मुनि मारे लातसे, प्रभु पद गहि जिमि दास ॥" ती० यं० ॥

साखीः— "क्षमा बड़नको चाहिये, ओछनको उतपात ॥
क्या विष्णुका घटि गया, भृगु मुनि मारे लात ॥" चौ० अं० ॥

इस प्रकारसे परमात्मा प्रभु माने हुए विष्णुको भृगु मुनिने जाके एक समय छातीमें लात मारा, तो उनके चरणका चिह्न हरिके उरमें पड़ गया। फिर विष्णुने जितने भी अवतार समय-समयमें धारण किया, उन सब अवतारोंके हृदयमें भी वह चरण चिह्न प्रत्यक्ष-रूपमें भान होके दिखाई देती भई, यानी मुख्य दशों अवतारोंके उरमें वह भान होती भई, ऐसा गुरुवा लोग कहते हैं, और ऐसा ही लिखे भी हैं ॥ २३ ॥

दोहाः—जीव ईश यदि एक है। तो सब उरमें देख ॥
क्यों न दिखे पद चिह्न हिय। मिथ्या कवियन लेख ॥२४॥

टीकाः—अब इसमें शङ्का यह होती है कि, पहले तो किसीके

छातीमें चरणका चिह्न पड़ना ही असम्भव बात है। गीली मिट्टीवाली जगहके समान तो छाती नहीं होती, जो कि, पैरसे टेकते ही छापा पड़ जाय। यदि रङ्ग आदिकी छापा कदाचित् लगा भी दिया हो, सो तो स्नान करनेमें धुलके मिट ही जाती है। फिर भला! वह चिह्न दूसरे शरीरमें कैसे प्रगट होगा? यदि थोड़ी देरके लिये तुम हठसे उसे सत्य भी मानो, तो सुनो! जीवको भी ईश्वरका अंश माने हो, विष्णुको ईश्वररूप ही समझते हो, फिर यदि जीव ही ईश्वरका स्वरूप है, अथवा अंश भी हैं, तो यहाँ संसारमें सब नरजीवोंके हृदयके बाहरमें वह चरण चिह्न दीखना चाहिये। वैसे तो किसीके छातीमें भी पैरका छापा देखनेमें नहीं आती है। तो बताओ! वह पद चिह्न सबके उरमें क्यों नहीं दिखाती है? भान क्यों नहीं होता है? इसलिये मैं कहता हूँ, यह कथन कवियोंके पौराणिक लेख मिथ्या धोखा, कपोल कल्पित भ्रम है, ऐसा जानो! ॥ २४ ॥

(१५) प्रश्नः—रावणकी मुक्ति वर्णन करते हैं, फिर रावण शिशुपाल होयके क्यों अवतरा? ॥ १५ ॥

दोहाः—राम हाथ मरि रावण। मुक्ति वर्णन कीन्ह ॥
पुनि रावण शिशुपाल हो। काहे तन धर लीन्ह ॥२५॥

टीकाः—रामोपासक वैरागी लोगोंके कथन है, और रामायण आदि ग्रन्थोंमें भी लिखा है कि, त्रेतायुगमें रामचन्द्रके हाथोंसे छूटे हुए बाणसे जब रावण मारा गया, तो उसमेंसे एक ज्योति निकलके आकर राममें समा गया। तहाँ रामायणमें लङ्काकाण्डमें कहा हैः—

चौ०:—"तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि शम्भु चतुरानन॥" लं० का० ॥

इस प्रकार वहाँ तो रावणकी मुक्ति वर्णन किया है। और तुम लोग भी वही बातको सत्य कहते हो, फिर पीछेसे तुम्हीं लोग कहते हो तथा भागवतादि ग्रन्थोंमें भी लिखा है कि—वही रावणका जीव द्वापरयुगमें शिशुपाल होके पैदा भया था। अब विचार करो, यदि

रावण सचमुच ही मुक्त हो गया था, तो पुनः शिशुपाल होके क्यों शरीर धारणकर लिया था ? जब वह जन्म-मरणके चक्रमें पड़ा रहा, तो मुक्त कैसे भया ? मुक्त जीवका फिर कभी जन्म होता ही नहीं। जो जन्मा, सो तो बद्ध है, मुक्त नहीं था। और मारने-मरनेसे कभी मुक्ति नहीं होती है। किन्तु गुरुवा लोगोंने ऐसे झूठ ही दृढ़ा रखे हैं॥ ग्यारह शब्दके शब्द ८ में कहा हैः—

"सन्तो ! मुक्ति यही सब गावै। राम कृष्ण अवतार आदिदै। हाथ मरै सो पावै॥"

इसलिये ऐसा असत्य बात धूर्त स्वार्थीलोग ही दृढ़ाते हैं। वह मानने योग्य नहीं है॥ २५॥

(१६) प्रश्नः—भगवान्‌के समीप हनुमतादिक (लोगोंका) भिन्न-भिन्न मुक्ति वेद गावते हैं, जो एक ही हैं, तो भिन्न-भिन्न मुक्ति काहे भई॥१६॥

दोहाः—मुक्ति समीप भगवानके। हनुमतादिक भिन्न॥
बिलग बिलग मुक्ति कहैं। एकमें क्यों भइ छिन्न ?॥२६॥

टीकाः—भगवान्‌के अवतार माने हुए रामचन्द्रके समीपमें उनके मित्रगण, सेवकवर्ग सदा हजूरीया दासवत् रहते रहे। हनुमान, अङ्गद, जाम्बवान, नल, नील इत्यादि सेवक भावसे रहते रहे। तथा सुग्रीव, विभीषण आदि सखा भावसे रहते रहे। नित्यप्रति कयीवर्षतक समीपमें रहनेवाले उन रामभक्तोंके शरीर छूटनेपर उनके मुक्ति भिन्न-भिन्न ही प्रकारसे वर्णन किया है। किसीकी सालोक्य मुक्ति भई, तो किसीकी सामीप्य मुक्ति भई, किसीकी सारूप्य मुक्ति भई और किसीकी सायुज्य मुक्ति हुई—ऐसा वेदके अन्त भाग वेदान्तरूप रामरहस्योपनिषद्, रामपूर्वतापिन्यु-उत्तर-तापिन्यु उपनिषद्, मुक्तिकोपनिषद् और वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्म रामायण, तुलसीकृत रामायण आदिकोंमें वर्णन करके कहे हैं, सोई पण्डित लोग गायन करते हैं, लोगोंको भिन्न-भिन्न मुक्ति बतलाते हैं। अब यहाँ विवेक करिये, जब आत्मा सबके एक ही है और इष्टदेव राम भी एक ही है, तथा सबके मुक्तिका ध्येय भी एक

ही है। फिर एक सरीखी सबोंके मुक्ति होना छोड़के, एक मुक्तिके बदले अनेक मुक्ति या एक आत्मामें भी क्यों छिन्न-भिन्न न्यारा-न्यारा मुक्ति भई ? किस कारणसे ऐसा विपरीत हुई ? । अगर मिश्री मीठी है, तो खानेपर सबको एक सरीखी मीठी ही लगेगी, न कि कड़ुवा, तीखा, तीता, कसैला, आदि होगा। इसलिये जब सबों-की एक-सी मुक्ति न होके भिन्न-भिन्न मुक्ति कहा है, तो वह मुक्ति नहीं, किन्तु भवबन्धन ही है। बिना पारख स्थितिके तो किसीके यथार्थ मुक्ति होती ही नहीं। अतएव गुरुवा लोगोंके मुक्तिका कथन असत्य है ॥२६॥

(१७) प्रश्नः—क्षीर-नीर मिला रहै, हंस भिन्न-भिन्न करता है, तिसको एक कैसे मानिये ? ॥ १७ ॥

दोहाः—नीर क्षीर सामिल रहै । राजहंस बिलगाव ॥
एकता कैसे मानिये । याहिं करो तुम न्याव ॥२७॥

टीकाः—जैसे दृष्टान्तमें दूध और पानी एकत्र सम्मिलित करके मिलाया गया भी होवे, तो भी उसे राजहंस न्यारा-न्यारा कर लेता है। हंसमें ऐसे स्वाभाविक गुण होता है कि—उसके चोंच डालते ही दूध फटके अलग होता है और पानी अलग ही रह जाता है। तब हंस दूध-दूध पी जाता है और पानी अलग छोड़ देता है। फिर उसे एकता कैसे मानना ? इसका तुम न्याय करके देखो, तो वस्तु किसी-में मिलके सर्वथा एक ही नहीं हो जाते हैं। किन्तु उन-उन तत्त्वोंके परमाणु स्वरूपसे अलग ही रहते हैं। संसारमें व्यापक कहने लायक पदार्थ कोई भी कहीं नहीं है। नीमक वा शक्कर आदिको पानीमें घोल देनेसे सामिलतासे पानीमें एक होके मिला हुआ सरीखा ही दिखता है। परन्तु तब भी उसका स्वरूप जलसे पृथक् ही रहता है। अग्नि-द्वारा औंटायके भाफ उपर वातावरणमें उड़ जानेसे पुनः पूर्ववत् नीमक वा शक्कर बाकी रह जाता है। इसलिये पाँचों तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं, फिर एक ही कैसे मानना ? तैसे ही सिद्धान्तमें नीरमें पाँच तत्त्व जड़, उसके समस्त कार्य पदार्थ एवं शरीर आदि विजातीय

परिणामी या परिवर्तनशील दृश्य पदार्थ भिन्न है, और क्षीररूप शुद्ध चैतन्य जीव द्रष्टा ज्ञान स्वरूप सबसे न्यारा ही है। जड़ाध्यास पूर्व संस्कारके कारण चैतन्य-जीव जड़ शरीरमें शामिल होके मिला हुआ सरीखी दिखता है। किन्तु स्वरूपसे वह पृथक् ही है। तभी तो शरीर छोड़के जाता है। न्यारा न होता, तो शरीर छोड़के कैसे जाता ? ऐसे जड़-चैतन्यका विवेक-विचार करके राजहंसवत् पारखी सन्त बिलगाव या भिन्न-भिन्न निर्णय करके यथार्थ स्वरूपको जान लेते हैं। फिर चराचरकी एकता करके "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" कहकर एक अद्वैत व्यापक ब्रह्म ही सत्य है, ऐसे अन्धा-धुन्ध कैसे मानना ? हे जिज्ञासु जनो ! इसीका तुम लोग पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा यथार्थ न्याय निर्णय करो, सत्यबोधको ग्रहण करो ॥ २७ ॥

(१८) प्रश्नः— इसीमें सिद्धान्त मालूम होता है, जिस प्रकार सुषुप्तिमें इन्द्रिय आदि व्यवहार लीन होता है, फिर कुछ काल गये व्यवहार लिये उठता है ॥ १८ ॥

(१९) प्रश्नः— तिस तरह भगवान्के स्वरूपमें जो चाहे बेतरह-की मुक्ति है। तिस करके लीन रहते हैं, परन्तु पृथक्-पृथक् मुक्ति लिये रहते हैं, फिर भिन्न-भिन्न होय संसारी होते हैं ॥ १९ ॥

दोहाः—सिद्धान्त याहिमें ज्ञात हो। सुषुप्ति जैसे अभाव ॥
इन्द्रियादि व्यवहार लय। जाग्रत् पुनि सब भाव ॥२८॥

टीकाः— इस दृष्टान्तमेंसे गुरुवा लोगोंके सिद्धान्त मालूम हो जाता है कि— जैसे सुषुप्ति अवस्थामें स्थूल-सूक्ष्म देहोंके सम्पूर्ण इन्द्रियाँ, चित्त-चतुष्टय आदिकोंके भी व्यवहार, क्रियादि सब अन्तःकरणमें लय होके वृत्ति शून्यमें लीन हो जाती है। जगत् और देहादिके भी भाव यहाँ रहता नहीं, अभाव रहता है। फिर कुछ समय व्यतीत हो गये बाद निद्रा खुलके जाग्रत् अवस्था होती है, तब पूर्वके सब व्यवहार लिये हुए ही उठता है, तो पूर्ववत् सब संसारके भाव उनमें हो जाता है। तैसे ही निराकार ईश्वर भी महाप्रलय-कल्पान्तमें

आकाशवत् शून्य रहता है, ब्रह्ममें ही जगत् लीन रहता है। फिर कालान्तर में ब्रह्ममें इच्छा या स्फुरणा उठकर प्रकृति-पुरुष सहित समस्त जगत् उत्पन्न होके पूर्ववत् सृष्टि विस्तार हो जाता है। तहाँ कहा है:—

"सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥"

॥ ऋग्वेद मण्डल १० ॥ सूक्त १९०। मन्त्र ३ ॥

अर्थः— सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, पृथ्वी, वायु, जल और अन्तरिक्ष इत्यादिकोंको धारण करनेवाले परमेश्वरने प्रथम कल्पमें जैसा था, वैसा ही रच दिया ॥

इस प्रकार जगत्के उत्पत्ति-प्रलय माने हैं, परन्तु सो यथार्थ बात नहीं है। क्योंकि, जीवके पासमें तो शरीर सम्बन्ध रहनेसे ही तीनों अवस्थायें होती रहती हैं। बिना देहके कहीं अवस्था और इच्छा = स्फुरणा हो ही नहीं सकता है। फिर निराकार माने हुए ब्रह्म वा ईश्वर-में इच्छा होना, जगत् उत्पन्न करना, यह तो असम्भव कथन है। उपरोक्त ऋग्वेदके प्रमाणमें ईश्वरने पूर्ववत् सृष्टि रचना किया कहा है, सो भी असत्य है। जब पूर्वमें जगत् था, तो पश्चात्में उसे रचने-का क्या काम ? अनादि वस्तु भी कभी गायब हो सकती है ? नहीं। फिर निराकारसे भी साकारकी रचना होती है ? कभी नहीं। इस-लिये जगत्की उत्पत्ति-प्रलय मानना अविवेक वा अज्ञानता है ॥ २८ ॥

दोहाः— तैसे भगवद्रूपमें। सब मुक्ति रहै लीन ॥
जन्में पुनि संसारि हो। सुख दुःख भोगे पीन ॥ २९ ॥

टीकाः— और जैसे सुषुप्तिमें, एक अन्तःकरणमें ही सब इन्द्रियाँदि लीन हो जाती हैं, फिर जाग्रत् होनेपर भिन्न-भिन्न अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त हो जाती हैं। उसी तरह यदि तुम ऐसा कहो कि— सब भक्त-जीव एक ही भगवान्के निराकार-स्वरूपमें जाके मुक्तिमें लवलीन हो रहते हैं। भगवद्रूपमें बेतरहकी = दो तरहकी— सगुणमुक्ति सुख भोगना और निर्गुणमुक्ति आत्मामें मिलके शून्य हो जाना मानते हैं, अथवा भगवान्के पासमें सब किसकी मुक्ति हैं,

जो चाहे सो भक्ति-भावसे प्राप्त कर सकता है। परन्तु ईश्वरके रूपमें लीन होते हुए भी जीव अपने-अपने संस्कार, भिन्न-भिन्न भावनाओंके अनुसार वहाँ भी पृथक्-पृथक् मुक्ति लिये रहते हैं। फिर संस्कार सन्मुख होनेपर मृत्युलोकमें आयके जन्म लेते हैं, पुनः देहधारी भिन्न-भिन्न संसारी होते हैं। कर्मफल परिपुष्ट या परिपक्व होनेपर सुख-दुःखादि भोग, भोगते रहते हैं। किन्तु मन उनका भगवान्में ही लगा रहता है, ऐसा कहोगे, तो अब विचार करो, यह तुम्हारा कथन बिलकुल निरर्थक है। प्रथम तो निराकार भगवान् माना हुआ ही असत्य है। फिर साकार जीव उसमें जाके कैसे मिलेगा? यदि मुक्त हुआ, तो फिर वह बन्धनमें क्यों आयेगा? बन्धनमें आ पड़ा, तो कभी मुक्त हुआ ही नहीं है। तुम्हारी मानी हुई चार मुक्ति तो बन्धनका ही घर है। वह यथार्थ मुक्ति नहीं है। तहाँ पञ्चग्रन्थीमें कहा हैः—

"चार मुक्ति जोइनि चौरासी, तेहि मिलि हेतु बढ़ावै॥" इत्यादि॥ २९॥

दोहाः— जन्म मरणके चक्रमें। पड़े ईश अरु जीव॥
मुक्ति आश निराश भई। भव बन्धनहिं सदीव॥ ३०॥

टीकाः— इस तरह विवेकदृष्टिसे देखो, तो तुम्हारा ईश्वर और सब जीव दोनों ही जन्म, मरणादि भवचक्रमें ही पड़े हुए हैं। क्योंकि, अध्यासवश, सब जीव आवागमनादिमें पड़े ही हैं। तैसे ईश्वर भी बारम्बार अवतार धारण करके जन्मता, मरता रहता है, और कर्म वासनाके बिना देह धारण नहीं होता है। शरीर धरा, तो वह कर्म-बन्धनोंमें पड़ा ही है। अब ईश्वरके भरोसे मुक्ति पानेकी आशा किया हुआ भी व्यर्थ निराश ही हो गई। सदैवसे जीव-ईश्वर भव-बन्धनोंमें ही गिरे पड़े हुए हैं, ऐसा साबित हुआ। जिनके सकल आशा, वासनाएँ छूटकर, पारखस्वरूपके स्थिति होगी। वे ही पारखी सन्त बिरले ही जीवन्मुक्त होवेंगे। उनके ही सत्सङ्गमें लगना चाहिये॥ ३०॥

(२०) प्रश्नः— ब्रह्मको निरुपाधि आकाशवत् वर्णन करते हो, और घट, मठ इत्यादि उपाधि उसीके भीतर कहते हो, तो ये उपाधि

असाध्य कैसी होय ? ॥ २० ॥

दोहाः— निरुपाधि विभु नभ सम । केवल ब्रह्म बखान ॥
घट मठ आदि उपाधि पुनि । तामें सधत न ज्ञान ॥ ३१ ॥

टीकाः— वेदान्तियोंने कहा हैः— आकाशके समान निराकार, निर्गुण, व्यापक, और निरुपाधि ब्रह्म है। एक तरफ तो तुम लोग केवल ब्रह्मको उपाधिसे रहित वर्णन करते हो, और दूसरी तरफ घट, मठ, पट, इत्यादिक उपाधिसहित मायाको भी उसी ब्रह्मके भीतर स्थित बताते हो। अब कहो! तुम्हारा ब्रह्मज्ञान कैसे सिद्ध होगा? और फिर तुम लोग उपाधिरूपी आवागमनसे तो भी कैसे रहित होओगे? यह तो अनादिसे असाध्य रोग तुम्हारे पीछे लगा है। अर्थात् आकाशवत् निरुपाधि व्यापक ब्रह्म कहनेको तो कहते हो, परन्तु सम्पूर्ण मायाके उपाधिरूप जगत्में ओत-प्रोत पूर्ण माननेसे सब उपाधियाँ उस ब्रह्मके ही भीतर आईं, और गोरे अङ्गमें काले तिलकके नाईं ब्रह्मके एक देशमें माया रहती है, ऐसा वेदान्तमें भी कहा है। इस तरहसे तो ब्रह्म घट, मठ, पट, तटादि सकल विश्वके अधिष्ठान, दुनियाँभरके उपाधिका घर या विकारकी खानी ही हुआ। तो कहो ये उपाधियाँ असाध्य हैं, तो साध्य कैसे होवेंगी? अर्थात् ब्रह्मज्ञानसे निरुपाधि मुक्ति कभी न प्राप्त होगी। इससे वह धोखाको छोड़के, पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें लागो। सत्यासत्यका निर्णय करके सत्यसारका ही ग्रहण करो ॥ ३१ ॥

(२१) प्रश्नः— ब्रह्मको निराबेब निरीह कहते हो, फिर इच्छा और अविद्या कबसे वर्णन करते हो? ये युक्ति असम्भव होती है ॥२१॥

दोहाः— निराबेब निरीह विभु । परब्रह्म कहु आप ॥
इच्छा अविद्या ताहिं पुनि । वर्णन कबसे थाप ? ॥३२॥

टीकाः— हे ब्रह्मज्ञानियो! तुम लोग जो वेद-वेदान्तके प्रमाणसे कोई एक परब्रह्म-परमात्मा मानकरके उसे निराबेब = अवयवरूप

आकारसे रहित निराकार तथा निरीह = इच्छा-वासनासे रहित और सर्वव्यापक कहते हो, यही तुम लोगोंका दृढ़निश्चयका सिद्धान्त है, तो फिर उसमें इच्छारूप स्फुरणा तथा अविद्या अज्ञानरूप मायाकी उत्पत्ति कबसे हुई, कबसे वर्णन करते हो? इस बारेमें तुमने क्या ठहराये हो? क्या स्वरूपसे ही इच्छा, अविद्याका ब्रह्ममें, सम्बन्ध मानते हो? कि बीचसे? अगर स्वरूपसे है, तो निराकार, निरीह, विभु कहा हुआ सरासर गलत हुआ। बीचमें होनेका कोई कारण ही नहीं, और ब्रह्मके इच्छासे जगत्की उत्पत्ति कहे हो, इससे तो इच्छा, अविद्या, उसके स्वरूपमें ही साबित हुई और तुम्हारे पूर्व पक्षका कथन मिथ्या सिद्ध हुआ। किन्तु यथार्थ विचार करो! इच्छा, क्रिया, अवस्था, अविद्या आदि साकार देह सम्बन्धमें ही जीवोंको हो सकते हैं। विदेहमें या निराकारमें वे एक भी लक्षण सिद्ध नहीं होते हैं। इसलिये तुम्हारा ठहराया हुआ सिद्धान्त मिथ्या, धोखा होनेसे असार है॥३२॥

दोहाः—— यह युक्ति है असम्भव । करिये याहिं विवेक ॥
बीस एक इमि प्रश्नके । उत्तर सत्य न एक ॥ ३३ ॥

टीकाः— अगर तुम ऐसा कहो कि — ब्रह्म वा ईश्वर सर्वशक्तिवान्, सर्वज्ञ है, इसलिये वह स्वरूपसे निराकार, निरीह, होनेपर भी जब चाहे, तब मायाको प्रेरणा करके जगत् उत्पन्न कर सकता है, उसे कोई बात मुश्किल नहीं है। तो सुनो! ये तुम्हारी कल्पित युक्ति मूलमें ही असम्भव है। इसमें तुम गोलमाल मत करो, किन्तु विवेकसे निर्णय करो, तभी सत्य बोध तुम्हें भी होगा। स्थूल शरीरके संयुक्त सम्बन्ध हुये बिना किसीको कभी इच्छा हो ही नहीं सकती है। सो भी जाग्रत् तथा स्वप्न अवस्थाओंमें ही इच्छा होती है। यह सबको अनुभव है। अन्तःकरण चतुष्टयादि संयुक्त साधनके रहनेसे ही देहधारियोंको इच्छा होती है, किन्तु ब्रह्मको निराकार कहा है, तो उसमें इच्छा कैसे होगा, भला? फिर वह सर्वशक्तिवान् और सर्वज्ञ भी हो नहीं सकता है। निराकारमें शक्ति कैसे होगा? सबको

जानेगा कैसे ? यह कथन तुम्हारी निर्बुद्धिकी मिथ्या बातें होनेसे निरर्थक हैं। अतः उसमें वह लागू नहीं होता है। विवेक करनेसे तुम्हारी ये युक्ति बिल्कुल असम्भव होती है। सत्य निर्णय करो, अब तो भी भ्रम, धोखाको परित्याग करो। इस प्रकार उपरोक्त २१ प्रश्नके ठीक-ठीक उत्तर, गुरुवा लोग दे नहीं सकते हैं। यदि उत्तर देंगे, तो एक प्रश्नका भी उनके उत्तर सत्यन्यायमें नहीं ठहरेगा ॥ ३३ ॥

दोहाः—गुरुवा भोंदू न जानहीं । सारासार विचार ॥
निर्णयसे परखायके । पारखि पार उतार ॥ ३४ ॥

टीकाः— हे जिज्ञासु हंसजीवो ! ये गुरुवा लोग सब तो भोंदू= भ्रमिक अज्ञानी बने हैं, इससे वे स्वरूप ज्ञान पारख निर्णयका बोध कुछ भी नहीं जानते हैं। सार-असारका विचार भी उनमें कुछ नहीं है। इसलिये उन्होंके सङ्गको छोड़ दो, पारखी सद्गुरुके शरणागत होकर सत्सङ्गमें लागो। पारखी साधु-गुरु ही गुरु-निर्णयसे यथार्थ परखायके, हंस-जीवोंको खानी-वाणीरूप भवसागरसे पार उतार देते हैं। यानी निजस्वरूपकी स्थिति कराय देते हैं ॥ ३४ ॥

दोहाः—जिज्ञासुनको चाहिये । पारखी गुरु सतसङ्ग ॥
जाते पारख बोध लही । काल जाल सब भङ्ग ॥ ३५ ॥

टीकाः— इसलिये सत्यके जिज्ञासु तथा मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि— नित्यप्रति पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग विचारमें लगे रहें। जिससे अपरोक्ष पारख स्वरूपका बोध प्राप्त होकर सब कालके जालका नाश हो जायगा। अर्थात्, जिसे सत्यज्ञानके बोध होनेकी चाह है, वह पारखी साधु सद्गुरुके सत्सङ्ग करते रहें, और विवेक-विचार करते जायँ। जिससे स्वयं स्वरूपका ज्ञान पारख बोध मिलेगा। फिर कालरूप गुरुवा लोग, और स्त्री आदिके विषय, कल्पनाके जाल सब ही भङ्ग=विनाश हो जायगा, तो फिर हंस जीव भवबन्धनोंसे छूटकर जीवन्मुक्त हो जावेंगे। अतएव सदा पारखी साधु गुरुके ही सत्सङ्गमें लगे रहना चाहिये ॥ ३५ ॥

॥ * ॥ ग्रन्थकर्ताके स्थानका परिचय आदि वर्णन ॥ * ॥

दोहाः—बुरहानपुर शुभ नागझिरी । श्रीकबीर मन्दिर मध्य ॥
चौथी पिढ़ी आचार्य भये । श्रीरामसाहेब सद्य ॥ ३६ ॥
पारख ज्ञान प्रवीण गुरु । वेद वेदान्तके विज्ञ ॥
कसर विलोकि परखायके । भर्म मिटायो अज्ञ ॥ ३७ ॥
बोध हेतु जिज्ञासुको । यही प्रश्न उन कीन्ह ॥
बीस एक सब हो गये । भाषामें लिख दीन्ह ॥ ३८ ॥
सोइ गद्यमय प्रश्नको । पद्यमें लिखा बनाय ॥
रामस्वरूपदास तुम । याद करो मन लाय ॥ ३९ ॥
कण्ठ करनको सुगम भो । सन्त वृन्दको येह ॥
रामस्वरूप जो याद करैं । सत्सङ्ग सहाय करेह ॥ ४० ॥

चौपाईः— बिन गुरु पारख घोर अन्धारा । खानि वाणि भटके भवधारा ॥ ४१ ॥
सूझे नहिं सत ज्ञान अभागे । ईश खुदा अनुमितमें लागे ॥ ४२ ॥
गुरुवा अहेर करे बहु भाँति । बाण वाणि मारे जिव छाति ॥ ४३ ॥
घायल भये दहुँदिश भर्मावैं । सुखदाता परमेश्वर गावैं ॥ ४४ ॥
इष्ट दर्शको विरह बढ़ाये । कहरत ही दिन रैन गमाये ॥ ४५ ॥
तदपि दर्श मिल्यो नहिं कोई । अन्ध गोलांगुल पकड़ो सोई ॥ ४६ ॥
ऐसे करत मरे भ्रम धोखा । काल कराल दाढ़ बहु चोखा ॥ ४७ ॥
गुरुवाने समझायो बाला ! । परमेश्वर कर्ता इक आला ॥ ४८ ॥
प्रथमे शून्य रहा जग सोऊ । कर्ताको इच्छा तब होऊ ॥ ४९ ॥
एकोहंबहुस्यामि उपाई । चारखानि तबहीं निर्माई ॥ ५० ॥
आपुहि एक अनन्त भये जब । जीवसृष्टि उपजी जगमें तब ॥ ५१ ॥
यहि विधि पिण्ड ब्रह्माण्ड उपाई । सबमें व्यापक ब्रह्म रहाई ॥ ५२ ॥
निराकार निर्गुण निरमाया । ताके भये जड़ चेतन छाया ॥ ५३ ॥
सर्वशक्तिमान परमेश्वर । त्रिगुणातीत जानु परात्पर ॥ ५४ ॥
ताकर अंश जीव तुम सब हो । अहं ब्रह्म लखि जगदुःखपर हो ॥ ५५ ॥
जो जाने ब्रह्मास्मि सोई । जगते छूटि मुक्त सो होई ॥ ५६ ॥

चौपाईः—वेद वेदान्त सनातन ज्ञाना । जो याको समझे सो सयाना ॥ ५७ ॥
वेद गुरुके वाक्यहि मानो । नहिं माने ते दुष्ट भुलानो ॥ ५८ ॥
ताके कुशल नहिं किहिं भाँती । लख चौरासी नर्क भुगाती ॥ ५६ ॥
आशा भयके जाल बिछाकर । बहुविधि पकड़ रहे यम आकर ॥ ६० ॥
बन्दीछोर कबीर गुरु स्वामी ! परखायो जीवन परणामी ॥ ६१ ॥

छन्दः—पारखी गुरुदेवने, परखाय कर सब भर्मको ॥
भूले हुए नरजीवके, भूल मिटाये मर्मको ॥
कसर खोट जबहीं लखे, निजरूपको जाना सही ॥
ज्ञानस्वरूप खुद चेतन, पारख स्थिति मुक्ति लही ॥ ६२ ॥

सोरठाः—पारख ज्ञान समान । जगमें कोई और नहीं ॥
पारखी गुरु महान । तरण तारण सुख निधि ॥ ६३ ॥
पारख जीव स्वरूप । जानत पारखी सन्त जन ॥
और नहीं निजरूप । धोखामें मत जाहु जिव ॥ ६४ ॥

॥ * ॥ ग्रन्थ समाप्तिकी गुरु वन्दना ॥ * ॥

दोहाः—चरण कमल शिर नायके । बन्दगी है त्रयबार ॥
रामस्वरूप गुरु देवजू । कृपा दृष्टि आधार ॥६५॥
भक्ति सहित बन्दन करौं । पारखि सन्त समाज ॥
जिनके कृपा कटाक्षसे । जीवनके हो काज ॥६६॥
एकईस प्रश्न पद्य अरु । टीका सहित सुसाज ॥
रामस्वरूप गुरुकी दया । पूर्ण भयो यह आज ॥६७॥
युग सहस्र वसु सम्वत । आश्विनवदि चौदस शनि ॥
एक नौ पाँच इक सने । सितम्बर दिन उनतीस गनि ॥६८॥
रामस्वरूपदास लिखा । भयो समाप्त यह ग्रन्थ ॥
पढ़े-गुने जो सार गहै । मुक्ति मिले सत पन्थ ॥६९॥

॥ ❀ ॥ इति श्री पारखनिष्ठ श्रीआचार्य रामसाहेब कृत ग्रन्थ एकईस प्रश्न मूल भाषाकी—रामस्वरूपदास विरचित—उल्था पद्य-अनुवाद तथा सरल टीका सहित तृतीय ग्रन्थः सम्पूर्ण समाप्तम् ॥ ३ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ दयागुरुकी ॥ ❀ ॥

॥ अथ लिख्यते संयुक्त निर्णयसारादि षट् ग्रन्थः ॥

पारखनिष्ठ अज्ञात पारखी सन्त लिखित—

पारख विचार नामक चतुर्थ ग्रन्थ प्रारम्भः ४

[पारख सिद्धान्त दर्शिनी भ्रम विध्वंशिनी सरल टीका सहित ।]

॥ ❀ ॥ टीकाकारकृत मङ्गलाचरणम् श्रीसद्गुरुपद वन्दना ॥ ❀ ॥

सोरठाः—मङ्गल पारख रूप । बन्दीछोर कबीर गुरु ! ॥
पारख बोध स्वरूप । प्रथमें प्रभु प्रगट कियो ॥ १ ॥

साखीः—गुरु कबीर उपदेश सुनि । भयो विवेक अनेक ॥
बोधवान नरजीव सो । पारख लीन्हा टेक ॥ २ ॥
गुरु शिष्य परम्परा । पारख भया प्रचार ॥
अमित जिज्ञासुनबोध भो । जड़ चिद सारासार ॥ ३ ॥
पूरण साहेब पारखी । गुरु कबीर महान ॥
रामस्वरूप गुरुकी दया । पारखपदको जान ॥ ४ ॥
पारखी गुरुपद बन्दगी । श्रद्धा भक्तिके साथ ॥
रामस्वरूप हूँ शरणमें । दया करो गुरु नाथ ! ॥ ५ ॥
पारखी कबीर सद्गुरु ! बन्दौं साधु समाज ॥
हितकारी गुरु सबनके । रामस्वरूप हो काज ॥ ६ ॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थ निर्माण वर्णन ॥ ❀ ॥

साखीः—पारखी गुरुदेव इक । शिष्य परीक्षा कीन्ह ॥
प्रश्नोत्तर यथार्थ लखि । पारख विचार लिख दीन्ह ॥ ७ ॥

टीकाः— प्रथम मङ्गलाचरणके साखी ६ तक अर्थ स्पष्ट है। पश्चात् खुलासा यही है कि— कोई एक पारखी सद्गुरुदेव रहे; आप बुरहानपुरके प्रथमाऽचार्य सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबके पक्के अनुयायी रहे। आपने एक समय, अपने सत् शिष्यके बोधका परीक्षा किये। तहाँ आपने जो-जो बातें पूछे; सो सबका उत्तर शिष्यने यथार्थ निर्णयसे ही कहा। सो प्रश्नोत्तरको उपयुक्त यथार्थ अन्य जिज्ञासुओंके लिये भी लाभकारी जान करके आपने 'पारख विचार' नाम रखकर उसे ग्रन्थरूपमें लिख दिये ॥ ७ ॥

साखीः—यह भाषामें लिखित था । सोइ पद रचना साज ॥
रामस्वरूपदास किया । साधु सन्तके काज ॥ ८ ॥

टीकाः— यह मूल ग्रन्थ प्रथम बोलचालके भाषामें लिखा हुआ, स्थान नागझिरी बुरहानपुरमें पड़ा था। उसे मूल पञ्चग्रन्थीके साथ अन्तमें रखकर श्रीकाशीसाहेबने बम्बईमें छपाने दिये थे। वि० सं० १९६५ में खेमराज श्रीकृष्णदासने उसके प्रेसमें छपाके बम्बईमें प्रकाशित किया था। तबसे अबतक वैसे ही भाषामें यहाँ स्थानमें सन्तोंको पढ़ाया जाता था। सोई मूल भाषाका सार लेकरके, साखीरूप पद्यमें उसे सजाके रामस्वरूपदासने पद्यमें रचना किया है। क्योंकि, जो साधु सन्त यहाँ बुरहानपुरमें पढ़नेको आते हैं, वे विशेष करके पदको कण्ठ करनेकी श्रद्धा रखते हैं। खाली भाषा समझने भरको होता है, याद करके समयपर प्रमाण उपस्थित करनेके लिये भाषा सुगम नहीं होती है। इसलिये उन्हीं साधुओंके पढ़ाई कार्यके लिये हमने सेवारूपमें इसे पद्यमें रचना कर दिया है ॥ ८ ॥

साखीः—पञ्चग्रन्थिके अर्थको । पढ़त हते सब साधु ॥
अर्थ पढ़ावत रामस्वरूप । पद रचना सुस्वादु ॥ ९ ॥

टोकाः— और निम्नाङ्कित गत वर्ष "श्रीकबीर निर्णय मन्दिर नागझिरी स्थान" में उपस्थित २०।२५ मूर्ति सब साधु मूल पञ्चग्रन्थीके गुरुमुख निर्णयसे अर्थ पढ़ते रहे थे । तब उन्हें रामस्वरूपदासने भली-भाँति अर्थ पढ़ाया था, उसी समयमें वि० सं० २००७, आश्विन शुक्ल ५, सोमवारको पारख विचारका, पदमें रचना करके, अच्छी सुरस या मधुररूपमें निर्माण किया गया था; और आज वि० सं० २००८, आश्विन कृष्ण १४,(ता० ३०।९।१९५१ ई०) को पुनः इसकी व्याख्या-रूपमें टीका लिखनेको प्रारम्भ किया गया है, यही ग्रन्थ निर्माणका पूर्व इतिवृत्त है, ऐसा जान लीजिये ! ॥ ९ ॥

॥ ❋ ॥ अथ लिख्यते पारख विचार ग्रन्थः ॥ ❋ ॥

साखीः— एक समय श्रीसद्गुरु । बैठे हते स्वच्छन्द ॥
यथासमय सद्शिष्यगण । दर्श पर्श निस्पन्द ॥ १ ॥

टीकाः— किसी एक समयमें पारखनिष्ठ विराग मूर्ति श्रीसद्गुरु-देव स्वच्छन्द शान्त भावसे स्वरूप विचारमें बैठे हुए थे । उस वक्त यथायोग्य उचित समयमें दर्शन करनेका अनुकूल मौका देख करके सद्शिष्यगण कई एक भक्त लोग आये; दर्शन, त्रयबार बन्दगी, चरणस्पर्श, चरणरज शिरोधार्य करके, एक तरफ चुपचाप बैठ गये । वे सब स्थिर या शान्त थे, चञ्चलता उनमें नहीं थी, निस्पन्द = अचल, एकाग्र या स्थिरतामें बैठे थे ॥ १ ॥

साखीः— कृपादृष्टि लखि शिष्यन । बन्दीछोर दयाल ! ॥
निज शिक्षा सिखबोधको । जाँच किये ततकाल ॥ २ ॥

टीकाः— तब बन्दीछोर परम दयालु पारखीसद्गुरुने उन सभी शिष्योंके ऊपर कृपादृष्टिसे देख लिये। फिर उनके रहनीको देखके उन्हें

बोध कैसा भया है? उसके परीक्षा करनेका विचार किये। उन शिष्योंको दिया हुआ अपने शिक्षा या उपदेशका बोध उन्हें कैसा हुआ, यह जाननेके लिये तत्काल = उसीवक्त सद्गुरुने जाँच करना शुरू किये! उनमेंसे प्रथम एक बुद्धिमान्, बोधवान, शिष्यसे पूछे, जिससे यह पारख विचार बना है ॥ २ ॥

॥ ❀ ॥ यहाँपर पहले ऊपर मूल प्रश्नोत्तर भाषा रखके फिर नीचे उल्थाका पद और टीका लिखा है ॥ ❀ ॥

(१) गुरु कहते हैं कि— हे शिष्य! तू यह देहमें कौन है? सो विचार करके कहो? ॥ १ ॥

॥ * ॥ सद्गुरुके परीक्षारूप प्रश्न—१ ॥ खण्ड १ ॥ * ॥

सोरठाः—तुम हो शिष्य सुजान । जो पूछूँ मों प्रति कहो ॥
　　तूँ है कौन पिछान । को है याहि देहमें ॥ ३ ॥

टीकाः—सद्गुरुने कहा— हे शिष्य! तुम तो अब अच्छे जानकार हो चुके हो, और बुद्धिमान् हो, इसलिये मैं तुम्हारे बोधकी परीक्षाके लिये जो कुछ तुमसे पूछता जाऊँ, उसका उत्तर तुम मेरे प्रति ठीक-ठीक कहकर सुनाते जाओ। कहो— तुम कौन हो? इसका पहिचान तुमने किया है, कि नहीं? और इस देहमें कौन रहता है? तुम अपने आपको जानते हो, तो बताओ, तुम हो कौन? ॥ ३ ॥

साखीः— तीन देहमें कौन है? । याका करो विचार ॥
　　तोंको निश्चय सो कहु । लखिये सार असार ॥ ४ ॥

टीकाः—और स्थूलदेह, सूक्ष्मदेह, तथा कारणदेह, इन तीन देहोंमें रहनेवाल कौन है? इसका तुम भलीभाँति विचार करो, फिर तुमको जो बात जैसा निश्चय हो, सो विचार पूर्वक मुझसे कहो; और सार-असारको यथार्थ निर्णयसे लख लो। इस प्रकार प्रथम गुरुदेवने पूछते भये ॥४॥

॥ * ॥ सत् शिष्यके बोध प्रकाशरूप उत्तर—१ ॥ खण्ड २ ॥ * ॥

(१) शिष्य कहता है— हे साहेब! मैं आपकी दयासे सब

विचार करके परखता हूँ, तो मैं पारखी हूँ ! ॥ १ ॥

साखीः— हे साहेब ! भल पूछहू । गुरुकी दया विचार ॥
साँच झूठ सब परखता । पारखके आधार ॥ ५ ॥

टीकाः— सद्गुरुके ऐसे उपरोक्त वचन सुन करके, तब सत् शिष्यने, दोनों हाथोंको जोड़कर, विनयपूर्वक कहता भया। हे सद्गुरु-साहेब ! आपने भले पूछे हो ! हमारे भलाई, कल्याण, बोधकी परि-पुष्टिके लिये ही आपका पूछना, परीक्षा करना होता है। सो मुझे आपकी कृपासे जैसा बोध हुआ है, वैसा कहता हूँ। कहीं त्रुटि हो, तो चेता दीजियेगा। हे प्रभो ! आप ही सद्गुरुके दयासे मैंने सब बातोंका भलीभाँति विचार करके परखा हूँ ! या परखता हूँ ! तहाँ मैं पारखके आधारसे ही सत्य-जीव स्वयं है, तथा ब्रह्म, ईश्वरादि मानन्दी सबहीं झूठ हैं, ऐसा यथार्थ परखता गया हूँ ! ॥ ५ ॥

साखीः— पारख सबके मैं करौं । पारखी है मम नाम ॥
परख हंस यहि देहमें । पारखी मैं तन ठाम ॥ ६ ॥

टीकाः— और दृश्य-अदृश्य, तीन देह, पञ्चविषय, खानी, वाणी, इत्यादि सबोंकी पारख तो मैं चैतन्य जीव स्वयं ही करता हूँ ! इसलिये मेरा नाम पारखी कहा जाता है। यही स्थूलादि त्रय देहके घेरामें पूर्वकर्मानुसार रहा हुआ मैं ही वस्तुतः पारख स्वरूप हंस जीव हूँ ! देह संघातमें सबको परखनेवाला होनेसे मैं, इस शरीरके ठिकाने पारखी हंस जीव कहलाता हूँ ! देह रहित होनेपर पारख स्वरूपमात्र रहता हूँ ! सत्य निर्णयसे ऐसा ही मैं जानता हूँ, सोई निश्चयसे मानता हूँ ! ॥ ६ ॥

॥ * ॥ सद्गुरुके परीक्षारूप-प्रश्न—२ ॥ खण्ड ३ ॥ * ॥

(२) हे शिष्य ! पारखी काहे सो कहिये ? ॥ २ ॥

साखीः— अहो शिष्य ! प्रवीण तूँ । तेरे वच है ठीक ॥
पारखी काहे सो कहै ? । मों प्रति कहु सो नीक ॥ ७ ॥

टीकाः— अहो, हे शिष्य ! तू तो बड़ा समझदार बोधमें प्रवीण दीख पड़ता है । क्योंकि, तुमने अभी जो बात कहा, सो न्याय-निर्णय-में ठीक जँचते हैं, सो तुम्हारे वचन ठीक हैं । किन्तु उसमें शङ्का यह होती है कि— पारखी किसको कहते हैं ? पारखीके लक्षण क्या है ? पारखी कौन होता है ? सो इसका खुलासा तुम अच्छी तरहसे स्पष्ट करके मेरे प्रति कहो ? ॥ ७ ॥

॥ * ॥ शिष्य बोध प्रकाश—उत्तर—२ ॥ खण्ड ४ ॥ * ॥

(२) हे साहेब ! जो देह आदि काल, सन्धि, झाँई इत्यादि ये जालको परखै, सो पारखी है ॥ २ ॥

साखीः— हे साहेब ! तन मन वचन । इन्द्रियादि औ प्राण ॥
काल सन्धि झाँई सकल । जाल परख परमाण ॥८॥

टीकाः— हे सद्गुरुसाहेब ! मैं स्थूलादि पञ्चदेह, पञ्चकोश, पञ्च-विषय, पञ्चप्राण, पञ्च उपप्राण, बाह्य दश इन्द्रियाँ, भीतरी मनआदि अन्तःकरण पञ्चक, पाँच तत्त्व, तीन गुण, २५ प्रकृतियाँ, वचन और काल = कल्पना, कर्म, उपासना, योग, गुरुवा लोग और स्त्रियोंका प्रपञ्च, सन्धि = मानन्दी, ज्ञानमार्ग, सम्बन्ध, भेद; तथा झाँई = विज्ञानमार्गकी गाफिली, भ्रम, भूल, धोखा, इत्यादि, पिण्ड-ब्रह्माण्डको सकल जाल-जञ्जालोंको परखनेवाला पारख स्वयं प्रत्यत्त हूँ ! सो प्रत्यक्ष प्रमाण है । पारखके प्रतापसे ही वह सम्पूर्ण परखा जाता है ॥ ८ ॥

साखीः— खानी वाणी सबहिको । परखै पारखी सोय ॥
अस लक्षणयुत पारखी । जामें भ्रम नहिं कोय ॥ ९ ॥

टीकाः— और मोटी जाल खानी भाग— स्त्री, पुत्र, धन, घर, कुल, कुटुम्ब, राज-काज आदि जगत् जाल है । तथा झीनी जाल

वाणी भाग—वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल आदि, ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, इत्यादि भ्रमजाल हैं। उन सबोंको ही एक-एक करके भलीभँाति परखकर सत्यासत्यको जो जान लेते हैं, सोई सच्चे पारखी हैं । विवेक, वैराग्य, बोधभाव, सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, परीक्षादृष्टि आदि ऐसे सद्गुण लक्षण, रहनी-रहस्यसंयुक्त पुरुष जो हैं, सोई हंस-पारखी हैं; जिनमें रञ्चकमात्र भी स्वरूप बोधमें भ्रम, भूल कोई कुछ भी नहीं रहता है । वे सदा पारख प्रकाशमें रहते हैं, उसी प्रकार मैं निजस्वरूपमें स्थित-पारखी हूँ! ऐसा मैं समझता हूँ ॥९॥

॥ * ॥ परीक्षक सद्गुरु प्रश्न—३ ॥ खण्ड ५ ॥ ॥ * ॥

(३) हे शिष्य ! तू परखता काहेसे है ? ॥ ३ ॥

साखीः– शिष्य ! काहेसे परखता । है क्या तेरे पास ॥
कौन वस्तु औजारको । उरमें रखता खास ॥ १० ॥

टीकाः— हे सुबुद्धि शिष्य ! तूने जो कहा, सो ठीक है । परन्तु यह तो बताओ, कि— तू सबको परखता है, तो किस चीजसे परखता है ? परखनेके लिये तेरे पासमें क्या साधन रखा है ? ऐसी कौन वस्तु तथा औजारको खास करके हृदयमें रखता है ? क्योंकि, सुनार, जौहरी आदि लोगोंके पासमें कसौटी आदि साधन और औजार रहता है, वे उसीकी सहायतासे सुवर्ण, रत्न आदिकी परीक्षा करते हैं! तैसे ही तूँ जब पिण्ड-ब्रह्माण्ड आदि सकलका पारख करता है, तो काहेसे या किसके द्वारा, या किस वस्तुके प्रयोगसे परखता है ? सो अब यथार्थ बताओ ॥ १० ॥

॥ * ॥ शिष्य बोध प्रकाश— उत्तर—३ ॥ खण्ड ६ ॥ * ॥

(३) हे साहेब ! [मैं निज] पारखसे [ही सबको परखता हूँ !]

साखीः—पारख दिव्य दृष्टि निज । परखत हूँ सब जाल ॥
सद्गुरु सो मैं पारख । सार वस्तु त्रयकाल ॥ ११ ॥

टीकाः— हे सद्गुरु देव ! मैं स्वयं पारखस्वरूप अपरोक्ष हूँ,

परीक्षा करनेकी दिव्यदृष्टि सदा मेरे पासमें मौजूद रहती है, सोई निजपारख बलसे, मोटी, झीनी सब जालोंको मैं परखता हूँ! त्रयकालमें एकरस सत्यसार वस्तु मैं खुद पारखस्वरूप हूँ, और देहमें बुद्धि, विचार आदि सूक्ष्म औजार तो रहे ही हुए हैं, सद्गुण रहनी आदिके लिये मैं उनको भी काममें लाता हूँ, विवेककी कसौटी मेरे पास है, उसीसे मैं सत्यासत्यका निर्णय करता हूँ, और त्रिकाल-अवाध्य चैतन्यस्वरूप तो मैं ही हूँ! बोध, विवेक, विचारादि सद्गुण ही मेरे साधन हैं। अतः पारखसे सबको परखता हूँ ॥ ११ ॥

|| * || परीक्षक सद्गुरु प्रश्न—४ || खण्ड ७ || * ||

(४) हे शिष्य ! पारख तुझमें है कि—तूँ पारखमें है ? ॥ ४ ॥

साखीः—तुझमें पारख शिष्य है । कि तुम पारख माँहिं ॥
तुम औ पारख उभयमें । किसमें को कहु ताँहिं ॥ १२ ॥

टीकाः— हे शिष्य ! तुम्हारा विचार ठीक है। किन्तु यह बताओ कि— वह पारख तुझमें रहता है कि, या तूँ ही उस पारखमें रहता है ? एक तुम हुए, दूसरा पारख हुआ; इन दोनोंमें किसमें कौन रहता है ? कौन आधार है ? कौन आधेय है ? पारखसे तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ? इसका यथोचित विवरण कहो, तुम्हारा समझ कैसा है ? सो दर्शाओ ॥ १२ ॥

|| * || शिष्य बोध प्रकाश—उत्तर—४ || खण्ड || ८ || * ||

(४) हे साहेब ! मैं पारखमें हुआ, तब पारख सहज ही मेरेमें है ॥ ४ ॥

साखीः—पारखमें मैं सद्गुरु ! सदा रहौं तेहि ठाहिं ॥
जब पारखमें मैं हुआ । सहजहि मेरे माहिं ॥ १३ ॥

टीकाः— हे सद्गुरुदेव ! पारख स्वरूपकी स्थितिमें सदासर्वदा मैं उसी ठिकानेमें ही स्थिर होके रहता हूँ ! इस प्रकार जब मैं सब मानन्दीको त्यागकर, पारख स्वरूपमें स्थित हुआ, तब पारख भी सहज ही मेरेमें रहा हुआ सिद्ध हुआ। अर्थात् मैं चैतन्य-जीव जब

पारखपदको प्राप्त हुआ, तब बिना परिश्रम पारख भी मुझमें साबित हो गया ॥ १३ ॥

साखीः—मैं औ पारख भिन्न नहीं। जैसे सूर्य-प्रकाश ॥
पारख पारखी एक हौं। देह रहे कि नाश ॥ १४ ॥

टीकाः— और वास्तवमें तो मैं चैतन्य-जीव और पारख यह भिन्न-भिन्न दो पदार्थ नहीं है। जैसे सूर्य, और सूर्यका प्रकाश कहने-मात्रको नाम दो हैं, किन्तु वस्तु एक है, दो नहीं। प्रकाशको छोड़के सूर्य दूसरा हो नहीं सकता है। प्रकाश गुण, सूर्य गुणीका नित्य सम्बन्ध है। तैसे ही जीव तथा पारख भी कहनेको नाम दो हैं, वस्तु एक है। यहाँ आधार–आधेयका सम्बन्ध लगता नहीं। क्योंकि, वह तो कार्य-कारणमें घटता है। कारणसे कार्य पदार्थ रूपान्तरमें भिन्न होता है। इसीसे घड़ा आधेय, पृथ्वी आधार, इत्यादि प्रकारसे माना जाता है, सो यहाँ घटता नहीं। गुण-गुणीका नित्य सम्बन्ध ही यहाँ-पर माना जाता है। चैतन्य-जीव गुणी है, पारख उसका गुण है। जो वस्तुः एक है। इस प्रकार मैं पारखी तथा मेरा स्वरूप पारख, एक ही है। निजस्वरूपकी स्थितिपर स्थिर हो गया हूँ। सकल आशा-वासनायें छूट गई हैं। अब यदि प्रारब्ध-भोग तक देह रहे, अथवा प्रारब्धपूर्ण होके शरीर छूटके नाश हो जाय, उसमें मुझे कोई हानि, लाभ नहीं है। मैं तो पारखमें ही अटल हूँ! ॥ १४ ॥

॥ * ॥ परीक्षक सद्गुरु प्रश्न—५ ॥ खण्ड ॥ ९ ॥

(५) हे शिष्य! तू तो यह देहमें नखसे शिखा-पर्यन्त भरा होगा, फिर चैतन्य और पारख कहाँ रहती है? ॥ ५ ॥

साखीः—हे शिष्य! तू यह देहमें। नखसे शिर पर्यन्त ॥
होगा व्यापक भरा हुआ। सर्व अङ्ग अनन्त ॥ १५ ॥

टीकाः— हे शिष्य! तू अपनेको व्यापक सर्वत्र परिपूर्ण मानता होगा, तो इस स्थूलदेहमें भी पैरके अंगूठेके अग्रभाग नाखूनसे लेके

शिरके शिखा या चोटी स्थानतक, तू सर्वाङ्गमें व्यापक होके भरा हुआ ही होगा; यानी नखसे शिखा पर्यन्त भरा हुआ सब अङ्गमें पूर्ण तू अनन्त, अपार होगा ॥ १५ ॥

साखीः—पुनि पारख चेतन कहाँ । रहती ठौर बताव ? ॥
पिण्ड छोड़ि ब्रह्माण्डमें । क्या करता ठहराव ? ॥ १६ ॥

टीकाः— अगर ऐसा ही है, तो फिर चैतन्य और पारख कहाँपर, किस ठौरमें रहती है, उसके ठीक-ठीक ठौर या ठिकाना बतलाओ ? क्या तब वह ऐसी हालतमें पिण्डरूप शरीरको छोड़कर बाहर कहीं ब्रह्माण्डमें जाके ठहराव करता है ? कि, या क्या करता है ? कहाँ रहता है ? ॥ १६ ॥

साखीः—व्यापकमें पारख नहीं । एकदेशी है जीव ॥
एक देशमें पारख । सत्सङ्गत गुरु कीव ॥ १७ ॥

टीकाः— और फिर बात ऐसी है कि— जहाँ व्यापक होता है, उसमें पारख नहीं होता है । क्योंकि, जीव एकदेशी है, और जीवको छोड़कर पारख सिद्ध होता नहीं, इसलिये पारख भी एकदेशमें ही साबित होता है । सद्गुरुकी सत्सङ्ग विचार करके यह तो तुमने जान ही लिये हो । अब तुम्हें जैसा बोध हो, वैसा खुलासा कहो ? ॥ १७ ॥

॥ ※ ॥ शिष्य बोध प्रकाश--उत्तर— ५ ॥ खण्ड १० ॥ ※ ॥

(५) हे साहेब ! मैं तो सदा देहसे न्यारा पारखी, पारखमें रहता हूँ । मैं देहमें भरा हूँ, ऐसा कहा जाय— तो क्या मैं नाकमें हूँ, कि कानमें हूँ, कि मूड़में, कि नाभिमें, कि पाँवमें, कि आँखमें, कि हाथमें, कि जीभमें, कि पाँच तत्त्वोंमें, कि मैं दश इन्द्रियोंमें, इनकी सबकी पारख मैं करता हूँ ! तो मैं इनसे न्यारा हूँ ! पारखमें । पारख भूमिका सबसे न्यारी, सो पारख और मैं कछु दोय नहीं । मैं ही पारखी हूँ ! ॥ ५ ॥

साखीः—हे बोधदाता सद्गुरु ! देहादिक मैं भिन्न ॥
सदा परीक्षक पारखी। द्रष्टा न्यारा चिह्न ॥ १८ ॥

टीकाः— उपरोक्त सद्गुरुके वचन सुनके सत्शिष्य विनम्रभावसे बोला— हे सद्गुरु ! आप तो सत्यबोधदाता हो, आपके सत्यउपदेशके प्रतापसे मुझे जो कुछ बोध भया है, सोई मैं दृढ़तासे निश्चय करके कहता हूँ ! देह आदिक नाशवान् पदार्थोंसे तो मैं स्वरूपसे भिन्न ही हूँ, सदा-सर्वदा इन सबके परीक्षक, द्रष्टा, पारखी, ऐसे चिह्न या लक्षणवाला, मैं सबसे न्यारा पारखमें रहता हूँ ॥ १८ ॥

साखीः—न्यारा पारखी मैं अहौं। पारखमें त्रयकाल ॥
एकरस एकदेशमें। स्थिति स्वरूप बहाल ॥ १९ ॥

टीकाः— ऐसे जड़तत्त्वोंके कार्य-कारणसे न्यारा देहसम्बन्धमें मैं पारखी हूँ, और त्रयकाल पारखमें ही रहता हूँ; और एकरस, एक तरफ चेतन देशमें स्व-स्वरूपकी स्थिति बहाल या कायम किये रहता हूँ ॥१९॥

साखीः—यदि मैं व्यापक देहमें। कहा जाय गुरुदेव ! ॥
अवस्था तीन न होवई। देह होय नहिं छेव ॥ २० ॥

टीकाः—हे गुरुदेव! यदि मैं देहमें नखसे शिखापर्यन्त भरा हुआ व्यापक हूँ, ऐसा कहा जायगा, तब तो बड़ी शङ्का उत्पन्न हो जायगी। देहमें चेतनकी व्यापकता माननेपर तीन अवस्थायें कभी न होना चाहिये। और शरीरका परिवर्तन, विनाश भी होना नहीं चाहिये। किन्तु यहाँ तो तीन अवस्थायें भी अदल-बदल होते रहते हैं, देहके परिणाम बदलके नाश भी होता है। फिर चेतनको देहमें व्यापक कैसे मानना ? ॥ २० ॥

साखीः—माना व्यापक देहमें। तो कहो दीनदयाल ! ॥
कौन ठौरमें मैं रहूँ। भरा हुआ सब काल ॥ २१ ॥

टीकाः— अगर मैं चैतन्य इस स्थूल देहमें भरा हुआ व्यापक

हूँ, ऐसा माना जाय, तो हे दीनदयालुसाहेब ! मैं निम्न प्रकारसे शङ्का उपस्थित करता हूँ, उसका समाधान कहिये कि—मैं इस देहमें कौन ठौरमें या किस जगहमें भरा हुआ हूँ ? सब कालमें मैं देहमें कब भरा हुआ था ? और कौन अवयवमें भरा हुआ हूँ ? ॥ २१ ॥

साखीः—नाक कानकी शीशमें । नाभि पाँवके माहिं ॥
नेत्र हाथ औ जीभमें । त्वचा शिश्न किहिं ठाहिं ॥ २२ ॥

टीकाः— कहिये तो क्या मैं नाकमें भरा हुआ हूँ ? कि कानोंमें भरा हूँ ? कि मैं शिरमें व्यापक हूँ ? कि नाभिमें भरा हूँ ? कि पैरोंमें पूर्ण हूँ ? कि नेत्रोंमें भरा हूँ ? कि हाथोंमें बैठा हूँ ? कि जिभ्यामें व्यापक हूँ ? कि त्वचामें पूर्ण हूँ ? कि लिङ्ग-गुदादिमें भरा हूँ ? और कहिये ! मैं किस ठौरमें भरा हूँ ? ॥ २२ ॥

साखीः—पाँच तत्त्व दश इन्द्रिय । की मैं त्रिगुण माहिं ॥
प्राण प्रकृति केहि ठौरमें । व्यापक चिह्न दिखाहिं ॥ २३ ॥

टीकाः— और क्या मैं पाँच तत्त्वमें भरा हूँ ? कि दश इन्द्रियोंमें हूँ ? कि मैं तीनों गुणोंमें व्यापक हूँ ? कि प्राणमें भरा हूँ ? कि पच्चीस प्रकृतियोंमें पूर्ण हूँ ? आपको इस शरीरमें किस ठौरमें चेतन व्यापक होनेका चिह्न दिखता है। मुझे तो सर्वाङ्गमें कहीं भी चेतन भरा हुआ कुछ भी लक्षण दिखाई नहीं देता है। फिर मैं कैसे मानूँ कि—मैं देहमें भरा हूँ ! ॥ २३ ॥

साखीः—सबकी पारख मैं करुँ । हूँ मैं सबसे न्यार ॥
व्यापक कभी न होऊँ मैं। पृथक सदा सत्सार ॥ २४ ॥

टीकाः— हे प्रभो ! उन सबोंकी पारख-पहिचान तो मैं स्वयं करता हूँ ! इसलिये मैं उन सबोंसे सदा न्यारा ही हूँ ! तभी मैं उन सबोंको जानता हूँ । यदि उनमें मिला हुआ लिप्त होता, तो मैं कभी उन्हें नहीं जान सकता । इस कारणसे मैं कभी व्यापक नहीं हुआ,

और व्यापक होता भी नहीं। तीनों कालमें सदा-सर्वदा सबसे पृथक् नित्य, सत्य, अखण्ड, सारवस्तु, पारख मैं ही हूँ! जड़ देहादि ये सब मेरे स्वरूपसे भिन्न हैं, मैं उनसे भिन्न ही रहता हूँ ॥ २४ ॥

साखीः– न्यारी पारख भूमिका । पारख इस्थिति मेर ॥
हम पारख कछु दोय नहीं । जल शीतल इव टेर ॥ २५ ॥

टीकाः— और छिप्रा, गतागत, सौलेष्टता, सुलीन, तथा अभाव आदि अन्य सब भूमिकाओंसे पारखभूमिका न्यारी है। वही पारख स्थिति मेरा ठहरावकी जगह है। जैसे जल और उसकी शीतलता कुछ दो हो नहीं जाती है। गुण-गुणी भावसे एक ही ठहरती है। इसी प्रकारसे मैं कहता हूँ कि—सो पारखपद और मैं कुछ विभिन्न दो वस्तु नहीं हैं। किन्तु एक ही है, अर्थात् मेरा स्वतःस्वरूप ही पारख है ॥ २५ ॥

साखीः–चेतन जीव अखण्ड नित । पारखी ज्ञान स्वरूप ॥
अविनाशी निज रूप लखि । मैं पारखी तद्रूप ॥२६॥

टीकाः— अखण्ड, नित्य, सत्य, अजर, अमर, अविनाशी, ऐसा चैतन्य जीवका स्वरूप है। उसे अपरोक्षरूपसे जो जानते हैं, सोई ज्ञानस्वरूप पारखी हैं। उसी प्रकार पारखबोधसे, अविनाशी निज स्वयंस्वरूपको विवेकरूप दिव्य-दृष्टिसे लख करके मैं भी पारखस्वरूपमें स्थित पारखी हो गया हूँ! ॥ २६ ॥

साखीः–पाँच तत्त्वके कारज । जड़ देहनते भिन्न ॥
भरा नहीं मैं देहमें । पारखमें स्थिति चिह्न ॥ २७ ॥

टीकाः— इसलिये पाँचतत्त्वके कार्य नाशवान् जड़देहसे मैं भिन्न हूँ! और इस देहमें मैं कहीं किसी अङ्गमें भी भरा हुआ व्यापक नहीं हूँ। सबको विजातीयपृथक् पहिचानके सद्गुण रहनी-रहस्यसहित अपरोक्ष पारखमें ही मेरी अटल स्थिति है। ज्ञानगुण-परीक्षा करनेकी लक्षण देहादिसे भिन्न ही है, ऐसा मैं समझता हूँ ॥ २७ ॥

॥ * ॥ परीक्षक-सद्गुरु प्रश्न—॥ ६ खण्ड ११ ॥ * ॥

(६) हे शिष्य ! तू तो पारखी, पारखरूप सबसे न्यारा, और यह देहमें कौन है ? जो पाँवमें काँटा गड़ै, तो दुःख किसको होता है ? और शिरमें चोट लगी, तो कौन जानता है ? ॥ ६ ॥

साखीः—हे शिष्य ! तू तो पारखी । पारखरूप निन्यार ॥
तू न्यारा सबसे हुआ । कौन देह मंझार ॥ २८ ॥

टीकाः— हे बोधवान् शिष्य ! तेरे कथनसे तू तो पारखी हुआ, और पारखरूप होके सबसे न्यारा ठहर गया । इस तरह तू पारख-स्वरूप सबसे सर्वदा न्यारा या भिन्न हुआ, खैर यह बात मान लिया; अब यह बताओ कि, यह देहके बीचमें कौन रहता है ? तू न्यारा होनेसे देहमें तेरे बास ठहरा ही नहीं, फिर शरीर मध्यमें रहने-वाला कौन है ? ॥ २८ ॥

साखीः—तनमें रहता कौन है ? । सुख दुःख जाने कौन ? ॥
को काया प्रकाशता । कहो यथाविधि तौन ॥२९॥

टीकाः— और स्थूलादि देहमें कौन रहता है ? तथा तन, मन, वचनादि करके सुख-दुःखोंको कौन जानता है ? इस कायाको कौन प्रकाशित करता है ? उसे यथार्थ जैसा हो, वैसा विधिपूर्वक कहो॥२९॥

साखीः—पाँवमें काँटा गड़ गया । दुःख पिछानत कौन ? ॥
चोट लगी शिरमें पुनि । दर्द किसे कहु तौन ? ॥ ३० ॥

टीकाः— फिर जब पाँवमें काँटें गड़ जाते हैं, तब वहाँ होनेवाला दुःखको कौन पहिचानता है ? या किसको दुःख होता है ? और यदि शिरमें कहीं ठोकर लगनेसे बड़ी चोट लगी, तो फिर वह दर्द किसे होता है ? अथवा एक साथ ही कभी शिरमें चोट भी लगे, तथा पाँवमें काँटा भी गड़े, तो उसे कौन जानता है, दुःख किसे होता है ? सो कहो ॥ ३० ॥

साखीः—कर शिर पदके हालको । नखसे शिखा पर्यन्त ॥
को जाने यहि देहमें । मर्म बतावहु सन्त ! ॥ ३१ ॥

टीकाः— इस प्रकार स्थूल शरीरमें रहके शिर, हाथ, पैर, अङ्ग-प्रत्यङ्ग, नखसे लेकर शिखापर्यन्तके हाल-चालको या सुख-दुःख-को कौन इस देहमें जानता है ? हे सन्त ! सुबुद्धि शिष्य ! उसके मर्म या भेदको तुम ठीक-ठीक बतलाओ ॥ ३१ ॥

॥ ※ ॥ शिष्य बोध प्रकाश—उत्तर—६ ॥ खण्ड १२ ॥ ※ ॥

(६) शिष्य कहता है कि— हे साहेब ! यह शरीर मेरे कर्तव्य-से बना है । सो इसमें मेरी सत्ता है, मुझको ज्ञान कहते हैं, द्रष्टा कहते हैं, और चैतन्य कहते हैं । सत्तासे सब मैं जानता हूँ, यह देहका सुख-दुःख आदि । देह (सम्बन्ध) में विचार होता है, ज्ञान होता है, कल्पना होती है, और अनुमान, भास होता है, सो सब मेरी सत्तासे होता है । यह देहमें मेरी सत्तामात्र है, और कुछ मैं देहमें लिप्त नहीं । मैं तो सदा पारखी । विचार करे तो भी मैं पारखी और चुप बैठा तो भी मैं पारखी हूँ ! ॥ ६ ॥

साखीः—गुरुवर मम कर्तव्य जस । पूर्व किया तस देह ॥
प्रथम कर्मके वेगसे । देह बन्यो है येह ॥३२॥

टीकाः—सद्गुरुके वचन सुनके यहाँ सत्शिष्य कहता है—हे गुरुवर! सर्वश्रेष्ठ, हे सद्गुरु साहेब ! जैसे मैंने पूर्व नरदेहमें शुभाशुभ कर्तव्य कर्म उपार्जन किया था, जैसा संस्कार टिकाया था, तैसा ही मेरा यह शरीर बना है। प्रथम किया हुआ कर्तव्य कर्मके वेगसे ही यह मेरा शरीर बना हुआ है ॥ ३२ ॥

साखीः—प्रारब्ध योगसे देह बना । तनमें सत्ता मेरी ॥
भोग पूर्ण सो नाश हो । तन धरना नहिं फेरी ॥३३॥

टीकाः— उसी प्रारब्ध कर्मके संयोग सम्बन्धसे यह स्थूल

शरीर बना है, इसलिये इस देहमें मेरी पूरी तरहसे सत्ता अवस्थित है । आयु पर्यन्त प्रारब्ध भोगके भोग पूर्ण होनेसे, सो देह आप ही नाश हो जाती है । अध्यास रहे तक आवागमन होता ही रहता है; जीते ही अध्यास मिटा दी गई, तो फिर मुक्त-जीव उलटके शरीर धारण नहीं करता है । फिर उसे देह धारण करना नहीं पड़ता है ॥ ३३ ॥

साखीः— सत्ता सम्बन्ध देहमें । कर्म भोगलों जान ॥
भोग पूर्ण तन नाशई । मुक्त सदाहि ठिकान ॥ ३४ ॥

टीकाः— और चैतन्य जीवकी जड़ देहमें सत्ताका सम्बन्ध पूर्व कर्म भोगनेतक ही जान पड़ता है । और कर्म भोग सम्पूर्ण होते ही मुक्त जीवके प्रारब्ध भोग समाप्तिके अन्तमें ही तीनों देहें विनाश हो जाते हैं, सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो जाता है । फिर सदा विदेह मुक्ति स्थितिके ठिकानमें ही मुक्त जीव निराधार रह जाता है ॥ ३४ ॥

साखीः—मोंको द्रष्टा कहत हैं । जान और चैतन्य ॥
साक्षी ज्ञाता जीव कोई । कहै अविनाशी मन्य ॥ ३५ ॥

टीकाः— अभी मैं देह सम्बन्धमें हूँ, इसलिये मुझे कोई द्रष्टा कहते हैं, कोई जान या जनैया कहते हैं, और कोई चैतन्य कहते हैं । तथा कोई मुझे साक्षी, ज्ञाता, जीव कहते हैं; मुझ अविनाशी स्वरूपका ही वह सब गुण-लक्षण मान्यताका वर्णन है ॥ ३५ ॥

साखीः—निज शक्ति सम्बन्धसे । जानूँ सुख दुःख आदि ॥
रोम रोम सब जानहूँ । मेरे स्वरूप अनादि ॥ ३६ ॥

टीकाः—और निज चैतन्य शक्तिरूप सत्ता-सम्बन्धसे यह देहका सुख-दुःख आदि सम्पूर्ण हाल जानता हूँ । चाहे एक ही दफे पाँवमें काँटा गड़े, तथा शिरमें चोट लगे, तो क्या ? मैं निज सत्तासे उसे तत्काल जान लेता हूँ ! जबतक देह सम्बन्ध है, तबतक इसमें रोम-रोमके

सब हाल सुख और दुःखादि सबोंको मैं जानता रहता हूँ, मेरे स्वतः ज्ञानस्वरूप अनादि, अखण्ड है, नित्य, सत्य, एकरस है॥ ३६ ॥

साखीः—तन मनादि सम्बन्धसे । घटमें होय विचार ॥
ज्ञान विज्ञान प्रकाशिया। जानूँ सब संसार ॥ ३७ ॥

टीकाः— और स्थूल, सूक्ष्मादि शरीर, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, मन आदि अन्तःकरण चतुष्टय इत्यादिसे चैतन्य जीवका घनिष्ठ सम्बन्ध होनेसे घटमें या हृदयमें कभी शुभ-विचार होता है और कभी ज्ञान-विज्ञानका प्रकाश होता है, उन सबको और चराचर संसारके सब वस्तुओंको भी मैं भलीभाँति जान लेता हूँ। इसीसे मुझे जनैया कहते हैं ॥ ३७ ॥

साखीः—कभी कल्पना होवई । कबहूँ हो अनुमान ॥
भास अध्यास बिगोवई । सत्ता मेरी जान ॥ ३८ ॥

टीकाः— और मेरी सत्ता-सम्बन्धसे ही कभी मनमें कल्पना, सङ्कल्प-विकल्पकी नाना तरङ्गें उठती हैं, स्फुरणा होती हैं, कभी तो अनुमान दृढ़ होता है। कभी भास, अध्यास प्रबल होके, विवेक-विचारको बिगाड़ देते हैं। सो सब मेरी सत्तासे ही होता है। जान या ज्ञानस्वरूप जीवकी सत्ता बिना देहमेंसे कोई भी कार्य नहीं हो सकते हैं, इसलिये वह मेरे सत्ताद्वारा होता है, ऐसा मैं जानता हूँ! बिना पारख वह भास, अध्यास ही मुक्तिपदको बिगाड़ता है, सो जानिये ॥ ३८ ॥

साखीः—तन मनमें हो हुलास कहूँ । कठिन दुःखकी फेर ॥
ज्योंलों स्थिति पाया नहीं । चौरासी भटकेर ॥३९॥

टीकाः— और कभी कहींपर तो मेरे सत्तासे तन और मनमें हुलास, प्रसन्नता, आराम, या सुख वा प्रमोदका अनुभव होता है। फिर कभी तो कहीं कठिन दुःखोंका फेरा या चक्रमें पड़ जाता है। इस प्रकार नानाकार्य होता रहता है। जबतक जीवने निजस्वरूप

स्थिति पारखबोधको पाया नहीं था, तबतक चौरासी योनियोंके जङ्गलमें ही भटक रहा था, तथा बेपारखी जन वैसे ही पारख स्थिति न पा करके चौरासी योनियोंके चक्रमें भटक ही रहे हैं। किन्तु सद्गुरुकी दयासे हमें पारखबोध भई, इससे वह चक्रसे हम छूट गये हैं ॥३९॥

साखीः—चेतन सत्ता देहमें । तन मन हो रहि कार्य ॥
मेरी सत्ता सो अहै । कीन्हा देह सुधार्य ॥ ४० ॥

टीकाः— और मुझ चैतन्यकी सत्तासे ही इस देहमें तन, मन और वचनादिसे नाना कार्य हो रहे हैं । सो मेरी ही सत्ता है, क्योंकि, मैं ही चैतन्य हंस हूँ ! उसी सत्तासम्बन्धसे यह देह धारण कर रहा हूँ । पारखबोधके प्रतापसे मैंने अब देहादिके रहनीका सुधार कर लिया है ॥ ४० ॥

साखीः—मम सत्ता अब देहमें । लिप्त न कबहूँ होय ॥
मैं तो हुआ गुरुपारखी । पारख निजपद सोय ॥ ४१ ॥

टीकाः— और मेरा सत्ता पूर्व वेगसे देहादिमें होते हुए भी गुरुबोधके प्रभावसे अब उन किसीमें कहीं भी, कभी भी लिप्त नहीं होता है। हे गुरुवर! आपकी कृपासे मैं तो सकलका परीक्षक पारखी हो गया हूँ, उनके अध्याससे न्यारा हो गया हूँ । इसलिये मैं पारखी सबसे न्यारा हूँ, ऐसा कहनेका मेरा अभिप्राय असङ्ग भाव करके है । गुरुबोधसे मैं पारखी हुआ, तो अब पारख सोई निजपदमें स्थित हो गया हूँ ॥ ४१ ॥

साखीः—करूँ विचार तो पारखी । चुप बैठूँ तो सोय ॥
मैं पारखी साक्षी सदा । पारखरूप समोय ॥ ४२ ॥

टीकाः— अब चाहे तो मैं सत्यासत्यका विचार करूँ, किसी शुभ विचारका मनन करूँ, तो भी मैं पारखी हूँ, और चित्तचतुष्टयके सब कार्योंको छोड़कर चुपचाप, पवनरहित दीपशिखाके समान स्थिर,

अटल, अचल, शान्त, होके बैठा रहूँ, तो भी मैं तो सोई पारखी ही हूँ! हंस देहसहित सबका परीक्षक, साक्षी होनेसे मैं सदा पारखी रहता हूँ! हरहमेशा निजरूप पारखपदमें ही मैं अपने वृत्तिको समाये या लगाये रखता हूँ, सोई पारख मेरा सत्यस्वरूप है ॥ ४२ ॥

साखीः—सत निष्ठा पारख सदा। निज स्वरूप स्थिति कीन्ह ॥
अविचल सत दृढ़रहनियुत। जीवन्मुक्त सुलीन ॥४३॥

टीकाः— और सदा-सर्वदा पारखस्वरूपमें ही दृढ़तासे सत्य-निष्ठा टिकायके निज स्व-स्वरूपमें स्थिति कायम कर लिया हूँ। सत्य रहनी-रहस्यसंयुक्त दृढ़ हो, निज सत्स्वरूपमें अविचल हो, शुद्ध हो जीवन्मुक्ति पदको भी प्राप्त कर लिया हूँ। इस तरहसे सब भवबन्धन क्षय होके मैं मुक्त हो गया हूँ। सब मनोकामनाएँ लीन या क्षीण हो गये हैं, हंसदेहमें हूँ, तबतक मैं पारखी हूँ, और देह न रहनेपर पारख-मात्र रहता हूँ! ॥ ४३ ॥

॥ * ॥ परीक्षक सद्गुरु प्रश्न—७ ॥ खण्ड १३ ॥ * ॥

(७) गुरु कहते हैंः— हे शिष्य! चोला जब छूटेगा, तब तूँ कहाँ रहेगा? ॥ (इसका उत्तर बताय दो, फिर तेरी स्थिति अटल है, और अटल ही रहेगा।) ॥ ७ ॥

साखीः— हे शिष्य! जब चोला नशै। तुम बासा किहिं ठौर ॥
भू जल तेज पवन नभ। अन्तरिक्ष कर गौर ॥४४॥

टीकाः— सद्गुरु सत् शिष्यकी समझ, बोधके परीक्षा करते हुए पूछ रहे थे, सो यह जाँचके अन्तिम प्रश्न बता रहे हैं। सद्गुरु कहते हैं कि— हे सुबोध शिष्य! तुमने शरीर रहेतककी सब बात तो बताया, अब मैं आखीरमें एक बात तुमसे पूछता हूँ, उसका उत्तर भी यथार्थ सत्यनिर्णयसे कहो। चोला = शरीर जब छूटके विनाश हो जायगा, तदनन्तर शरीररहित होनेपर तुम्हारा बासा या रहनेका

जगह कहाँपर, किस ठिकाने या किस ठौरमें होगा ? क्या तुम पृथ्वीके किसी भाग, दुर्गम वा सुगम प्रदेशमें जाके रहोगे ? कि जलमें रहोगे ? कि अग्निमें निवास करोगे ? कि वायु या वातावरणमें विचरण करते रहोगे ? कि आकाशमें ठहरोगे ? कि अन्तरिक्षमें सूर्य, चन्द्र, तारा-गणोंके सदृश लटकते रहोगे ? कहाँ रहोगे ? उस बारेमें तुम गौर करके अच्छी तरहसे सोच-विचार करके बताओ ॥ ४४ ॥

साखीः—सात लोककी अलोकमें । मुक्ति चार ठहार ॥
यहाँ वहाँ तूँ कहाँ रहै ? । कहो शिष्य ! निरधार ॥४५॥

टीकाः— और या तो तुम माने हुए, भूर्लोकादि सात स्वर्ग लोकमें जाके रहोगे ? कि अलोकमें ? कि सप्तपातालमें रहोगे ? कि तुम सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, और सायुज्य, ऐसे चार प्रकारसे ठहराये हुए मुक्तिमें जाके ठहरोगे ? अथवा यहाँपर जहाँ तुम निवास कर रहे हो, यहीं पड़े रहोगे ? कि वहाँ—ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, आदि जो माने हैं, उनके पासमें जाके रहोगे ? कहो, विदेह मुक्त होनेपर तुम कहाँपर रहोगे ? हे शिष्य ! सत्यनिर्णयसे इस बारेमें तुमने जैसा निश्चय किया हुआ है, सो अब यथार्थ रीतिसे, निर्णयसे वर्णन करके कहो ? जिससे तुम्हारे बोधकी पूर्ण परीक्षा भी समाप्त हो जायगी, यथार्थ बात होनेपर उसमें मेरी भी स्वीकृति हो जायगी। फिर तुम निज स्थितिमें शान्त होके निराश वर्तमानमें वर्तते हुए जीवन-यापन करना। अभी तुम मुझे विदेह मुक्तिके बारेमें खुलासा करके जैसा तुम समझते हो, वैसा कहो ॥ ४५ ॥

॥ ❋ ॥ शिष्य बोध प्रकाश—उत्तर—७ ॥ खण्ड १४ ॥ ❋ ॥

(७) शिष्य कहता हैः— हे साहेब ! आपकी दयासे अब मेरेको कहीं जाना-आना नहीं । मैं पारखी पारखरूप ! अब देह छूटै, तो भी मैं पारख, और चोला रहै, तो भी पारखी, पारख भूमिपर सदा हूँ ! कछु देहमें लिप्त मैं नहीं । देह छूटै, तो क्या ? और रहै, तो क्या ? देहमें

सत्तामात्र हूँ ! जिससे देहका व्यवहार सब जानता हूँ ! सो सत्ता मेरी मेरे पास है । चोला साबूत है, तबलग चोलेमें है, और चोला छूटा, तब मेरी सत्ता मेरे पासमें रहेगी, फिर वह प्रगट हो ही नहीं सकती । जैसा मैंने कर्तव्य बनाया, सो कर्तव्यमें मेरी सत्ता रही, और कर्तव्य नाश हुआ, तब मेरी सत्ता मेरे पास है । आगे कछु कर्तव्य कल्पना नहीं, जामें द्रष्टाकी सत्ता जावै । तभी तो आपकी दयासे द्रष्टा पारखी हुआ, तब पारख भूमिकापर रहा । आवागमनसे रहित हुआ ॥ ७ ॥

सद्गुरु वचनः—"सन्तो ! जागत नींद न कीजै" ॥ बीजक शब्द २ ॥

साखीः—"पारख पारखी एक है । भिन्न भेद कछु नाहिं ॥
देह विलास करि भेद है । सो गुरु दियो दरशाहिं ॥"

॥ ❀ ॥ यह बीजक टीका त्रिजाकी अन्तिम स्तुतिकी साखी है ॥ ❀ ॥

॥❀॥ इति पारख विचार स्थिति मूल भाषा गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥❀॥

॥ * ॥ उल्था साखी समूह वर्णन ॥ * ॥

साखीः—पारख प्रकाशी सद्गुरु ! साहेब सत्य कबीर ॥
दयादृष्टि प्रभुकी भई । टूटी जन्मृति पीर ॥ ४६ ॥

टीकाः— सद्गुरुके अन्तिम जाँच प्रश्न श्रवण करके बोधवान् शिष्य विनम्रभावसे बोला—प्रथम पारखज्ञानको प्रकाश करनेवाले सद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेब सत्यबोधदाता हुए । उन्हीं प्रभुकी दया-दृष्टि जब मुमुक्षु नरजीवोंपर हुई, तब पारखबोध पायके सकल भ्रम, अध्याससे रहित होकर, हंस जीव पारखस्वरूपमें स्थित भये । तब उन्होंकी जन्म-मरणादिकी पीर = दुःख टूट गई, बन्धन छूट गई । तबसे मुक्ति मार्ग चालू हुई ॥ ४६ ॥

साखीः— कबीर सम सत साहेब ! आप मिले गुरुदेव ! ॥
चरण शरणमें लै करी । परखायो सब भेव ॥ ४७ ॥

टीकाः— और हे सद्गुरु साहेब ! आप भी सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके समान ही पारखभूमिकामें विराजमान हो !। और श्रीकबीर-साहेबके पक्के सच्चे अनुयायी हो ! मेरे बड़े भाग्यसे हे सद्गुरुदेव ! मुझे आपके दर्शनका सौभाग्य मिला। और आपने असीम कृपा-दृष्टिसे निहारकर, मुझे अपने चरणकमलके शरणमें ले करके, सब भेद भी आपहीने दया करके परखा दिये हो ॥ ४७ ॥

साखीः— बोध कियो जो आपने । सोई हम हिय लीन्ह ॥
पूछत हो गुरु कहब सोई । सत्य सार जो चीन्ह ॥ ४८ ॥

टीकाः— हे प्रभो ! आपने जो बात बोध किये हो, सोई पारख-बोध अच्छी तरहसे हमने भी अपने हृदयमें दृढ़तासे धारण कर लिया है। हे गुरुदेव ! अब आप अपने बोध जाँच या परीक्षाके लिये जो मुझसे पूछते हो या पूछे हो,—आपकी कृपासे जो सत्यसार मैंने भी चीन्हा है, तथा विदेह मुक्तिके बारेमें जो कुछ मैंने समझा हूँ ! सोई आपके सन्मुख अब मैं खुलासा करके कहता हूँ ! ॥ ४८ ॥

साखीः—दया आपकी साहेब ! पद पारखमें थीर ॥
अब जाना आना नहीं । परख स्वतः गम्भीर ॥ ४९ ॥

टीकाः— हे बन्दीछोर साहेब ! आपकी दयाके प्रभावसे जीते ही सकल वासनासेरहित होकर मैं हंसजीव निजपद पारखमें स्थिर हो गया हूँ ! इसलिये क्रियमाणकर्मके संस्कार बाकी न रहनेसे अब मुझे कहींपर भी जाने और आनेकी आवागमन नहीं है। चालू-प्रारब्ध भोगके समाप्त होते ही तीनों देहोंसे सम्बन्ध टूट जायगी, तब मैं स्वतः पारखमात्र गम्भीर या शान्त अक्रिय, अटल हो जाऊँगा। फिर कहीं जाने, आनेकी क्रिया वहाँ रहेगी ही नहीं ॥ ४९ ॥

साखीः— पारखी पारखरूप मैं । काल जाल सब टाल ॥
मन मानन्दी त्यागके । कर्तब दीन्हा डाल ॥ ५० ॥

टीकाः— सबका परीक्षक मैं पारखी पारखस्वरूप ही हूँ ! जीते ही सब काल-जालको सर्वथा टाल दिया हूँ या मिटाके हटा दिया हूँ। और मनके सकल मानन्दीको भी परित्याग करके, तन-मनादिके बन्धनकारी सम्पूर्ण कर्तव्य क्रिया आदियोंको भी बाहर निकालके डाल दिया, यानी अध्यासोंको छोड़ दिया हूँ। तब सहज ही यहाँ अभी मुक्तिस्थितिमें ठहराव हो गया है ॥ ५० ॥

साखीः— दीनदयालु सद्गुरु ! आप कियो प्रभु छोह ॥
सन्धि काल झाँईं छुटी । पारख स्थिति सदोह ॥ ५१ ॥

टीकाः—और दीन जीवोंके ऊपर दया करनेवाले हे दीनदयालु ! सद्गुरु प्रभु ! आपने हमपर छोह = बड़ी दया किये हो, उसीसे काल, सन्धि, और झाँईंके सारे जाल-जञ्जाल छूट गई हैं। और सदोदितके लिये पारखस्वरूपकी स्थिति प्राप्त होगई है, अब वह कभी पृथक् हो नहीं सकती है ॥ ५१ ॥

साखीः— जीव कारण कार्य नहीं । सदा अखण्ड स्वरूप ॥
जब बन्धनमें पृथक है । न्यारा नित्य अनूप ॥ ५२ ॥

टीकाः— और तहाँ चैतन्यजीव चारों तत्त्वोंमेंसे किसीके कारण और कार्य भी नहीं है, उनसे भिन्न जीव, सदा अखण्ड, नित्यस्वरूप है। जबकि, देह बन्धनमें रहते हुए भी, जीव पाँचों जड़तत्त्वोंसे पृथक् है, तब देह बन्धनोंसे रहित होनेपर मुक्त जीव पाँच तत्त्वोंमें जाके कैसे रहेगा ? विदेहमुक्त स्थितिमें जीव सर्वदा सबसे न्यारा सब सम्बन्धसे रहित, नित्य अचल, उपमासे रहित ही स्वयं रहता है ॥ ५२ ॥

साखीः— पाँच तत्त्व जड़ भिन्न हैं । जाति मिले नहिं एक ॥
याते उनमें रहत नहीं । मुक्त जीव सविवेक ॥ ५३ ॥

टीकाः— क्योंकि, पाँचजड़ तत्त्वोंके स्वरूपसे चैतन्य जीवोंका स्वरूप सर्वथा भिन्न-भिन्न ही हैं, और दोनों विजातीय हैं। जीवको स्वजातीय तो जीव ही होते हैं, किन्तु पृथ्वी, जलादि पाँचों विजातीय तत्त्वोंमें कोई एक भी तत्त्वमें जाति, गुण, लक्षण, धर्म, आदि कहीं समता होके मिलता नहीं। और पृथ्वीके कार्य-कारणरूप भाग पृथ्वीके आश्रयमें ही रहता है, तैसे जल, अग्नि, वायुके कार्य भी उन्हीं तत्त्वोंके कारणके आधारमें रहते हैं। शून्य पोलमें—गुण, धर्म, शक्ति आदि कुछ भी न होनेसे, उसमें ठहरावकी स्थिति नहीं है। इसवास्ते विवेकसे यही निश्चय होता है कि, जल, थलादि उन पाँचों तत्त्वोंमें विदेहमुक्त जीव कभी नहीं रहता है। उनसे सदा न्यारा निराधार ही रहता है ॥ ५३ ॥

साखीः— विजातीय जड़ चेतन । नहिं सम्बन्ध स्वरूप ॥
भूगोल रु खगोलमें । बासा मुक्त न ऊप ॥ ५४ ॥

टीकाः— और अनन्त चैतन्य जीव तथा जड़ पाँचतत्त्व, ये स्वरूपसे विजातीय भिन्न-भिन्न हैं। जड़, चैतन्यके स्वरूपमें किसी प्रकारके सम्बन्ध, आकर्षण, मिलान, ठहराव, ये कुछ भी नहीं है। इसलिये नीचे-ऊपर जाके भूगोल और खगोलमें जड़तत्त्वोंके आधार लेके, विदेह मुक्त जीवका बासा नहीं होता है। गुरुत्त्वाकर्षण, धारणाकर्षण, स्नेहाकर्षण, रसायनाकर्षण, आदि तत्त्वोंके अनादि शक्तिसे ही पृथ्वी, जल, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारागणादिका ठहराव हो रही हैं। किन्तु, उनके जड़ शक्ति चैतन्य जीवमें लागू नहीं होती है। जीव, जड़-घेरासे बाहर है, इसलिये विदेहमुक्तिमें तत्त्वोंके आश्रयरहित, निराधार स्थिति होती है ॥ ५४ ॥

साखीः— सातलोक अलोक औ । चारमुक्ति पाताल ॥
यामें कहुँ स्थिति है नहीं । गुरुवन वाणी जाल ॥ ५५ ॥

टीकाः— और ऊपरमें सातस्वर्ग लोक, कहीं अलोकाकाश, कहीं चारमुक्ति, और नीचे सात पाताल माना हुआ, वह तो गुरुवा लोगोंके वाणी जाल मिथ्या कपोलकल्पना, धोखा ही है। इसलिये इन सबमें कहींपर भी मुक्ति स्थिति नहीं है। मुक्त जीवको वहाँ जानेका कोई काम नहीं है ॥ ५५ ॥

साखीः— यहाँ वहाँ ठहराव नहीं । कल्पित आहि तमाम ॥
उनमें रहता मैं नहीं । पद पारख विश्राम ॥ ५६ ॥

टीकाः— और यहाँ संसारमें तीर्थ, धाम, क्षेत्र, मठ, मकान, आश्रम, नदीतट, वन, खोहादि स्थानोंमें और वहाँ ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवता, इत्यादिके पास कहीं भी मुक्त-जीवके ठहराव नहीं होता है। यह तो तमाम मिथ्या कल्पना ही है। मुक्त होनेपर जाके रहनेका कहीं विशेष बासस्थान मानना भ्रम धोखा है। ब्रह्म आदि मिथ्या होनेसे सत्य जीव उनमें कैसे मिलेगा? मुक्तिका तो कहीं स्थान विशेष नहीं है। तहाँ शास्त्रमें कहा हैः—

"मोक्षस्य नहिवासोस्ति न ग्रामान्तरमेव वा। अज्ञान हृदयग्रन्थिनाशो मोक्षइतिस्मृत ॥"

दोहाः— "कतहूँ मुक्तिको धाम नहीं, जहाँ बसत कोउ ग्राम ॥
भव बन्धनसे छूटिबो, मुक्ति तिसीको नाम ॥"

इसलिये विदेह मुक्ति होनेपर मैं उन किसीमें कहींपर भी जाके नहीं रहता, तब भी मेरा विश्राम पारखपदमें ही होगा, अन्यत्र कहीं नहीं होगा ॥ ५६ ॥

साखीः—चेतन स्वयं स्वरूप मम । मुक्तिमें आपहि आप ॥
रहित भयो आवागमन । मुक्ति विदेह सो साफ ॥ ५७ ॥

टीकाः— और मेरा स्वयं स्वरूप तो चैतन्य ज्ञानाकार है; अखण्ड

है, सो विदेहमुक्तिमें आप-ही-आप अकेला स्वयं स्वरूपमात्र निराधार, अचल, सबसे न्यारा रह जाता है। जब आवागमनसेरहित भया, तब सोई साफ विदेह मुक्ति कहलाता है। अर्थात् देहादिकके घेरा बन्धनोंसेरहित होकर उसे कहीं जाने-आनेकी क्रिया नहीं रही, सो साफ, शुद्ध, स्वच्छ स्वरूपमात्र मुक्तिमें स्वयं कायम रहता है ॥ ५७ ॥

साखीः—इच्छा क्रिया अवस्था । देह नाश मिटि जाय ॥
ज्ञेय सम्बन्ध विच्छिन्नते । ज्ञान स्वरूप रहाय ॥ ५८ ॥

टीकाः— और प्रारब्ध भोगोंकी वेग पूरा होकर स्थूल देहका विनाश होते ही मुक्तजीवके सूक्ष्म, कारणदेह भी साथ ही छूट जाते हैं। इसलिये विदेह मुक्तिमें चैतन्य जीवको किसीप्रकारकी इच्छा नहीं होती है। तथा सब तरहकी क्रियाएँ भी छूट जाती हैं, और जाग्रत्, स्वप्नादि अवस्थाएँ भी वहाँ नहीं होतीं। इच्छारहित, अक्रिय, अवस्थाओंसे परे, हो जाता है। देह रहेतक इच्छा, क्रिया, अवस्था आदिका सम्बन्ध रहता है। और शरीर छूटते ही वे तीनों भी मिट-मिटायके आप ही नष्ट हो जाते हैं। ज्ञेय पदार्थोंसे स्थूल, सूक्ष्मादि सम्बन्ध एकदम विच्छिन्न हो जानेसे या उनसे नाता टूट जानेसे जीव ज्ञानस्वरूपमात्र स्वयं अकेला रह जाता है। वहाँ सत्ता देना छूट जाता है ॥ ५८ ॥

साखीः— अजर अमर अखण्ड स्वयं । नित्य रहे अविनाशी ॥
निराधार इक आप ही । अचल स्वरूप रहाशी ॥ ५९ ॥

टीकाः— हंस जीवका स्वरूप तो ऐसा है कि— अजर = कभी वृद्ध होके क्षीण न होवे, न जलनेवाला, अमर = कभी न मरनेवाला त्रिकालमें एकरस। अखण्ड = जिसका खण्डरूप टुकड़ा कभी न होवे। स्वयं = अनादिसे स्वतः होवे, या आप-ही-आप, अविनाशी = जिसका कभी नाश न होवे; नित्य, सत्य, ज्यों-का-त्यों रहनेवाला ऐसे गुण-लक्षणयुक्त चैतन्य जीव है। वासनाप्रवाह करके देह बन्धनोंमें

पड़ रहा था, सो प्रवाह पारखबोधसे समूल टूटते ही जीवन्मुक्ति होती है, फिर उनके देहके उपाधि भी छूट जानेसे तब जीव अकेले आप ही स्वयंशक्तिसे निराधार, अचल, अटल, केवल पारख स्वरूप-मात्र जहाँके-तहाँ स्वयं रह जाता है। जड़तत्त्वोंके कार्यरूप शरीरादि-से सर्वदाके लिये उसका सम्बन्ध टूट जाता है। फिर मृत देहको चाहे कहीं भी ले जाके कुछ भी करो, उसके साथ विदेहमुक्त जीव कदापि नहीं जाता है, और मृत्यु होनेपर शरीरसे तब मुक्त जीव निकला, ऐसा भी कहा नहीं जाता है, किन्तु जड़ शरीर ही तत्त्वोंके कार्य नाशवान् होनेसे सड़-गलके वा किसीके उठाय ले जानेसे, जीवके अचलस्वरूपसे छिन्न-भिन्न होके निकल जाता है। क्योंकि, चैतन्य जीवका स्वरूप अति सूक्ष्म है, उसके सामने आकारमें तुलना किया जाय तो शरीर एक महाद्वीपके समान या उससे भी मोटा साबित हो सकता है, और अतिसूक्ष्म परमाणुओंसे भी तब जीवसे स्पर्श नहीं हो सकता है। वह मुक्त जीव अचल होनेसे परमाणु समूह भी उसे चलायमान नहीं कर सकते हैं। वह सदा स्वयं अक्रिय ही स्थित रहता है ॥ ५९ ॥

साखीः— विदेह मुक्ति लक्षण यही । कहूँ कहाँलों सोय ॥
यह निर्णय प्रभु आपके । जान लिया हम वोय ॥ ६० ॥

टीकाः— यही विदेह मुक्ति स्थितिके यथार्थ लक्षण है। विशेष विस्तार करके उसके बारेमें और मैं कहाँतक कहूँ ! हे सद्गुरु प्रभो ! यह सत्य निर्णयके कथन उपदेश तो आपके ही घरका है। हमने भी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक आपके शिक्षाको श्रवन, मनन करके आपके द्वारा ही वह उपरोक्त बातको जान लिया है। जैसा मैंने जाना वा समझा था, वैसा ही आपको कह सुनाया हूँ ॥ ६० ॥

साखीः— पारख गुरुकी दया भई । बन्धन मिटा तमाम ॥
निज स्वरूप पारख स्थिति । अचल मुक्ति विश्राम ॥ ६१ ॥

टीकाः— हे पारखी सद्गुरु ! जब आपकी असीम दया-दृष्टि

मुझ दासपर भई, तब खानी, वाणी सम्बन्धी तमाम भवबन्धन सर्वथा मिट गईं । और निज स्वयंस्वरूप पारख पदपर स्थिति भी हो गई । अब देह रहे तक जीवन्मुक्तिमें विश्राम करेंगे, और देह छूट जानेपर अचल, अटल, शान्त होके निराधारमें स्वयं स्थित रहेंगे। उसे ही विदेह मुक्तिके विश्राम कहते हैं। उसे जीवन्मुक्त पुरुष ही स्वयं अनुभवसे जान सकते हैं। इस बारेमें और विस्तार कथन भी किया, तो भी सर्व साधारण बद्ध पुरुष उस स्थितिको समझ नहीं सकते हैं। और विवेकी पुरुष किञ्चित् लक्षणासे भी पूरी स्थितिको समझ सकते हैं। आपके आज्ञानुसार यथाविधि मैंने भी विदेह मुक्तिका लक्षण ऊपर वर्णन किया हूँ। अब और थोड़ा-बहुत अपना बोध दर्शाकर प्रकरणको समाप्त करूँगा ॥ ६१ ॥

साखीः— तन छूटै तो पारख । देह रहित मम रूप ॥
तन है तौलों पारखी । परखौं सकल स्वरूप ॥ ६२ ॥

टीकाः— सत्शिष्य अपना बोध प्रकाश करके कह रहा हैः— हे गुरुदेव ! शरीर छूटके देहरहित होनेपर तब तो मेरा खास स्वरूप पारखमात्र या चैतन्यमात्र रहता है। शरीर है तबतक मैं सकल सिद्धान्तके, स्वरूपको परखता, निर्णय करता रहता हूँ, इसलिये पारखी कहलाता हूँ ! ॥ ६२ ॥

साखीः— पारख भूमि रहत सदा । देहादिकते भिन्न ॥
लक्ष सदा निजपद महँ । मन मानन्दी छिन्न ॥ ६३ ॥

टीकाः— और देह साबूत रहते हुये भी मैं सदा खास करके पारख भूमिकामें रहता हूँ ! और शरीर आदिक जड़ पदार्थोंसे मैं हमेशा भिन्न ही रहता हूँ ! तथा सदा-सर्वदा निजपद पारखमें ही मेरा लक्ष टिका या लगा रहता है । अतएव सब मनके मानन्दियाँ छिन्न-भिन्न हो गई हैं ॥ ६३ ॥

साखीः—विनशि जाय तन हानि नहीं। नाशमान क्या काम ? ॥
आयु वृद्धिकी चाव नहीं। रहूँ आपनो ठाम ॥६४॥

टीकाः— अब मेरा यह शरीर विनाश हो जाय, तो भी मेरी कुछ हानि नहीं है। जब शरीर नाशवान् है, तो उसे अपनायके क्या काम ? जो कुछ कल्याणका कार्य सिद्ध करना था, सो तो मैंने अब कर लिया हूँ, और आयु बढ़ै, जीता रहूँ, उसकी ऐसी इच्छा भी मुझे नहीं है। मैं तो सदा अपना ठाम = स्वरूप स्थितिमें ही रह रहा हूँ और जीवनके अन्ततक रहूँगा ही, उससे विचलित होनेका नहीं ॥६४॥

साखीः—जियत रहौं तो विषाद ना । रहो देहकी छूट ॥
मन मनसादि मिटा दिया । सकलो बन्धन टूट ॥ ६५ ॥

टीकाः— अगर प्रारब्ध समाप्ति पर्यन्त बहुत दिनों तक जीवित भी रहूँ, तो भी उससे मुझे विषाद = शोक भी नहीं होता है। अथवा मैं हर्ष भी नहीं मानता हूँ। अब यह शरीर कुछ कालतक रहे वा जल्दी ही छूट जाय, यानी देह रहो कि छूटो, उसके लिये मुझे कोई सोच नहीं है। गुरु पारखके प्रतापसे मनकी समस्त मानन्दी मिटा दिया हूँ, सकल बन्धन टूटके अलग हो गया है ॥ ६५ ॥

साखीः—मम सत्ता यहि देहमें । जानूँ सब व्यवहार ॥
सो सत्ता मम पासमें । पूर्व वेग तन धार ॥ ६६ ॥

टीकाः— अभी इस शरीरमें मेरा सत्ता सम्बन्ध कायम है, उसीसे सब देहका व्यवहार मैं जानता हूँ। सो मेरी सत्ता मेरे ही पासमें है, पूर्वकृत कर्म संस्कार प्रारब्ध वेगसे अभी यह शरीर धारण हुआ है। देहान्त तक इसमें सम्बन्ध बना रहेगा, फिर सदाके लिये आप ही मिट जायगा ॥ ६६ ॥

साखीः—जब लग तन साबूत है । तब लग सत्ता देह ॥
मम सत्ता मम पासमें । तन विनशि हो खेह ॥ ६७ ॥

टीकाः— और जबतक शरीर साबूत है, या रहेगा, तबतक तो

जीवका सत्ता-सम्बन्ध देहमें रहेगा ही, और जब शरीर छूट जायगी, तब देहके सर्वाङ्ग तो विनाश होके छिन्न-भिन्न हो जायँगे, किन्तु मेरी सत्ता मेरे पासमें ही केन्द्रित हो ठहर रहेगी। जैसे अस्त होनेपर सूर्यका प्रकाश किरण सर्वथा उसीमें ही बना रहता है, तद्वत् विदेह-मुक्तजीवकी ज्ञानरूपी स्वयं शक्ति, सब तरफसे हटके, उसीमें ही सदा स्थित हो जाता है ॥ ६७ ॥

साखीः—पूर्व कर्म प्रारब्ध करि। भयो देह निर्मान ॥
तौलों तन सम्बन्ध रहै। पुनि छूटैंगे प्रान ॥ ६८ ॥

टीकाः— पूर्व नरदेहमें किया हुआ कर्म संस्कार ही प्रारब्ध होकरके यह नरदेह अभी निर्माण भया है, प्रारब्धके भोग हैं, तब-तक तो जीवका शरीरमें सम्बन्ध रहेगा, फिर कर्म भोगके समाप्ति होनेपर अपने आप ही प्राण छूट जायगा, अर्थात् प्राणके चलन गति स्वयमेव बन्द होके रुक जायगी, तो देह नाश हो जायगा ॥ ६८ ॥

साखीः—कर्म भूमि अध्यास नशी। जाग्रत् परख रहाय ॥
ज्ञान अग्नि सञ्चित जली। आगामी विनशाय ॥ ६९ ॥

टीकाः— इस कर्म भूमिकारूप नरदेहमें जीते ही सम्पूर्ण अध्यासोंको नशायके पारखस्वरूपमें जाग्रत् होके ठहर रहा हूँ! तहाँ सत्यज्ञानरूप अग्निद्वारा सब सञ्चित संस्कारकी कचरा जलाके खाक हो गई, और आगामी या क्रियमाण कर्म भी विनाश हो गई हैं। अर्थात् बोध होनेसे आगामी कर्म नहीं बनी है ॥ ६९ ॥

साखीः—रहा भोग प्रारब्ध इक। पूर्ण भयो तन साथ ॥
सत्ता चेतन छूटिगो। होवै प्रगट न हाथ ॥ ७० ॥

टीकाः— अब बीचमें सिर्फ एक प्रारब्ध कर्मका भोग बाकी रहा, सो भी शरीरके साथमें पूर्ण होता ही जा रहा है, देहान्तमें वह भी खतम हो जायगा। तब शरीरसे चेतनकी सत्ता सदाके

लिये छूट गया, वा छूट जायगी, फिर वह देहादिकी घेरामें आके कभी प्रगट हो ही नहीं सकती है ॥ ७० ॥

साखीः—इच्छा जागृतमें नशी । पुनि प्रगटे नहिं सोय ॥
विदेह मुक्त सम्बन्ध नहीं । निराधार तब होय ॥ ७१ ॥

टीकाः— क्योंकि, जीते ही पारख प्रतापसे जाग्रत् अवस्थामें जब इच्छा-वासनायें विनाश हो गई, फिर वह इच्छा आदि देहान्त होने-पर कदापि प्रगट हो ही नहीं सकती है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदिसे सम्बन्ध छूट जाता है, विदेहमुक्त होनेपर कुछ भी उनसे सम्बन्ध नहीं रहता है। तब तो जीव असङ्ग, अक्रिय, निराधार, होयके नित्य मुक्त रहता है ॥ ७१ ॥

साखीः—जस कर्तब भो पूर्वमें । देह धरो तस आय ॥
मम सत्ता तामें रही । अन्त तलक ठहराय ॥ ७२ ॥

टीकाः— पूर्वके देहमें अबोधसे जैसा कर्तव्य तैयार हुआ, और संस्कार टिका, उसीके प्रतापसे यहाँ आयके वर्तमानमें तैसा ही कर्मा-नुसार देह धारण हो गया है, इसीसे मेरी सत्ता या चैतन्य शक्ति इस देहमें रह रही है। सो देहान्त तक ही ठहरेगी। फिर विदेह मुक्तिमें विच्छिन्न हो जावेगी ॥ ७२ ॥

साखीः—वर्तमान नरदेहमें । कर्तब आशा नाश ॥
सत्ता मेरे पासमें । कर्तब कछू न खाश ॥ ७३ ॥

टीकाः— वर्तमानमें प्राप्त इस नरदेहमें स्वरूप ज्ञानको जान करके परीक्षा दृष्टिसे सकल कर्तव्यकी आशा, वासना, तृष्णादिकोंको नाश कर दिया, अब कुछ खास विशेष कर्तव्य हो करके अध्यास टिक नहीं सकती है। क्योंकि, सब सत्ता तो मेरे ही पासमें एकत्र है। मेरे शक्ति देके सञ्चालित किये बिना जड़ देहें मनादिसे कुछ भी कार्य नहीं हो सकती हैं ॥ ७३ ॥

साखीः—स्वयं शक्ति समेटिके । पारखमें स्थिति कीन्ह ॥
पुनि तनमें घेरा नहीं । जियत मुक्ति सो लीन्ह ॥ ७४ ॥

टीकाः— अब मैंने स्वयं ही अपनी सत्तारूप शक्तिको समेटके इच्छाओंको रोक दिया है, और पारख स्वरूपमें अविचल स्थिति कायम कर लिया है। इसलिये फिर-फिरके लिये इस जड़ देहादि बन्धनोंके घेरा अब मेरा रहा नहीं, सब घेरा जालोंको तोड़के हटा दिया हूँ। इस प्रकारसे स्वयं स्वरूपमें स्थिर होकर जीते ही सो दुर्लभ जीवन्मुक्तिको भी महत् प्रयत्नसे प्राप्तकर लिया हूँ ! ॥ ७४ ॥

साखीः—कर्म कल्पना वासना । मम आगे कछु नाहिं ॥
तब द्रष्टा जावै कहाँ ?। ठहरे पारख माँहिं ॥ ७५ ॥

टीकाः— अब आगे भविष्यत्के लिये मेरे सन्मुखमें कर्मोंकी अध्यास, मनकी कल्पना, चित्तकी वासना, खानी-वाणियोंकी संस्कार इत्यादि बन्धनोंका मूल बीज कुछ भी शेष नहीं है। तब शरीर छूटनेपर द्रष्टा चैतन्य हंसजीव कहाँपर, कैसे जावैगा? वासना करके आवागमन होता था, सो तो शरीर रहते ही सब मिट गयी। अतएव स्वयंस्वरूप पारखमें ही द्रष्टा जीव सदाके लिये ठहर जायगा या ठहरा रहेगा ॥ ७५ ॥

साखीः—तनयुत द्रष्टा पारखी । जीवन्मुक्त कहाय ॥
तन छूटै नित मुक्त है। मुक्ति विदेह सो आय ॥ ७६ ॥

टीकाः— और सकलके परीक्षक सत्यन्यायी, सारग्राही, द्रष्टा-पारखी शरीरके संयुक्त रहते हैं, तबतक वे जीवन्मुक्त कहलाते हैं। सत्यन्याय निर्णयका उपदेश बोध, वे मुमुक्षुओंके प्रति देते भी हैं। उनके फिर जब शरीर छूट जाती है, तब सदाके लिये नित्य मुक्तिमें वे स्थित हो जाते हैं, सोई विदेह मुक्ति है, देह छूटनेपर ही विदेहमुक्ति होती है ॥ ७६ ॥

साखीः—पारखी द्रष्टा मैं हुआ । गुरुकी दयाते आज ॥
छूटी आवागमनते । परख भूमि नित राज ॥ ७७ ॥

टीकाः— हे सद्गुरो ! आपके ही महान दयाभावसे मैं आज इस वर्तमान मनुष्य देहमें द्रष्टा पारखी हुआ हूँ ! अब आवागमनसे सर्वथा छुट्टी मिल गई है । यहाँ ही पारख भूमिकी नित्य अविचल स्वराजकी प्राप्ति हुई है । नित्य पारख भूमिकामें ही स्थिर होनेसे जन्म-मरणादिके चक्रसे छुटकारा हो गयी है ॥ ७७ ॥

साखीः—सद्गुरु उपदेश ग्रहण । सकलो जाल विनाश ॥
बन्धन मन माया मिटा । भास कल्पना नाश ॥ ७८ ॥

टीकाः— हे सद्गुरु देव ! जब मैंने आपके सत्य उपदेशको यथार्थरूपसे ग्रहण किया, तभी खानी-वाणी आदिको सम्पूर्ण जाल या फन्दाओंका विशेष करके विनाश हो गयी है । और मन-मायाकी या तन, मनकी मोटी, झीनी सकल फन्दा मिट-मिटायके साफ हो गयी, तथा पारखबोधसे भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना आदि सब भी नाश हो गई है ॥ ७८ ॥

साखीः—जीवन्मुक्त सदेह लग । सब भवबन्धन अन्त ॥
विदेह मुक्त जब देह गिरी । निराधार अचलन्त ॥ ७९ ॥

टीकाः— इस तरहसे सारा भवबन्धनोंका अन्त होकर जीते ही मैं मुक्त हो गया हूँ । अब देह सहित अन्ततक मैं जीवन्मुक्त स्थितिमें रहूँगा । और जब देह गिर जायगी, या नाश हो जायगी, तब विदेहमुक्त होकर निराधार ही स्वयंस्वरूपमें अचल हो रहूँगा ॥ ७९ ॥

साखीः—यहि विधि बोध पिछानहूँ । निर्णय गुरुमुख सून ॥
सो रहस्य कहि गायऊँ । गुरु सतसङ्गत चून ॥ ८० ॥

टीकाः— प्रथम गुरुमुख निर्णयको श्रवण करके जो निश्चय मैंने किया है, सो इसी प्रकारसे विधिपूर्वक आपके सत्यबोधको मैं जानता

या समझता हूँ। आपकी आज्ञा पायके अभी सोई सत्यरहस्य या विदेहमुक्ति आदिके मर्म कहकर गायन किया हूँ या वर्णन करके आपको सुनाया हूँ! हे गुरुदेव! यह निर्णय तो आपके ही सत्सङ्गमें चुनी हुई मेरे हृदयका संग्रह है। मैं तो अभी केवल इसका अनुवादक, लेखकमात्र बन गया हूँ, रहस्य सार तो आपका ही है ॥ ८० ॥

साखीः—समझ भेद कछु होय तो। कहि समुझाव कृपाल! ॥
तब निर्णय प्रमाण सत। मैं तब लघु हूँ बाल ॥८१॥

टीकाः— हे कृपालु! मेरे समझनेमें यदि कुछ भेद या फरक कदाचित् होवे, तो उसे आप दर्शाकर कह करके समझाइये! हमारे लिये आपका वचन ही सत्य निर्णय है। वही मान्य प्रत्यक्ष सच्चा प्रमाण है। मैं तो आपका छोटा बालकरूप चरणका शिष्य या दास हूँ! आपका बोध ही आपके समक्ष कह दिया हूँ ॥ ८१ ॥

साखीः—झीन विचार यहि मुक्तिकी। बोध विवेकते जान! ॥
निश्चय सो प्रकाश किया। सारशब्द गुरु ज्ञान ॥८२॥

टीकाः— वास्तवमें जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिका यह विचार अत्यन्त झीना या सूक्ष्म है। सत्य विवेक तथा पारख बोध अपरोक्ष होनेसे ही तब कहीं वह रहस्य जाना जाता है। गुरुकी ज्ञान, सार-शब्दका विचार, जो मुझे निश्चयसे दृढ़ था, सोई वर्णन करके यहाँ प्रकाश किया हूँ! ॥ ८२ ॥

साखीः—अब मनमें कछु चाह नहीं। कर्म भोगलों देह ॥
दृढ़ विराग सत रहनि युत। वर्तमान वर्तेह ॥ ८३ ॥

टीकाः— अब मेरे मनमें किसी बातकी चाहना या इच्छा भी नहीं है। प्रारब्ध कर्मका भोग, अन्त होनेतक तो देह रहेगा ही। तबतक सत्य रहनी, सद्गुण धारणा, पारखरहस्य संयुक्त दृढ़ वैराग्यको धारण करके निराश वर्तमानमें वर्तता रहूँगा ॥ ८३ ॥

साखीः—दया दृष्टि गुरुकी रहै । मन गुरुपदमें प्रेम ॥
गुरु आज्ञा पालूँ सदा । भक्ति भाव सत नेम ॥ ८४ ॥

टीकाः— हे प्रभु ! सद्गुरुकी दयादृष्टि इस दासपर सदा ऐसे ही बनी रहै, मुख्य यही चाहिये । और मन या हृदयमें अन्ततक गुरुपद पारखमें सत्य-प्रेम टिका रहै । तथा सदा-सर्वदा देह रहे-तक सद्गुरुके आज्ञाको शिरोधार्य करके पालन करता रहूँगा । और साथ ही गुरुभक्ति बोध-भावके सत्य नियमपूर्वक वर्तता रहूँगा ॥ ८४ ॥

साखीः— गुरु पदमें निष्ठा सहित । बन्दगी है त्रयबार ॥
रामस्वरूप गुरुकी दया । प्रगट्यो परख विचार ॥ ८५ ॥

टीकाः— और हे बन्दीछोर सद्गुरो ! इस प्रवचनके अन्तमें, भीतर-बाहरसे सत्य श्रद्धाकी निष्ठा सहित गुरुपद पारख संयुक्त आपके पवित्र चरण कमलोंमें मैं अनुवादक—रामस्वरूपदास शिर झुकाय करके अञ्जलिबद्ध हाथ रखकर भक्ति विनम्रः त्रयबार बन्दगी करता हूँ—"साहेब बन्दगी ३" इस प्रकार वन्दना करके वह शिष्य भी मौन, स्थिर हो गया । यहाँपर अनुवादक—रामस्वरूपदास कहता है— इस तरह सद्गुरुकी दयादृष्टिसे ही यह "पारख विचार" नामक ग्रन्थ भी इसरूपमें बन करके प्रगट, या प्रकाश हुआ । अथवा पारख ज्ञानका विचार पारखी श्रीसद्गुरुकी दयासे संसारमें प्रकट हुआ, और उसका प्रकाश-प्रचार विवेकी सन्तोंके द्वारा जहाँ-तहाँ हो ही रहा है । एक पारखपद ही सर्वोपरि, सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा जान लीजिये ! ॥ ८५ ॥

॥ ※ ॥ सद्गुरु कथन, शिष्य प्रशंसा, ग्रन्थ समाप्ति वर्णन ॥ ※ ॥

साखीः— पारख बोध परिपुष्ट लखि । सद्गुरु भये प्रसन्न ॥
कृपादृष्टि आशीष दई । ठहरायो चैतन्य ॥ ८६ ॥
और अनेकन युक्ति ते । पुष्ट कियो सतबोध ॥
शिष्यबोध अनुमोद करि । पुनि पारखहिं प्रबोध ॥ ८७ ॥
धन्य ! धन्य ! तू शिष्य है । निजस्वरूप पहिचान ॥
परख रहस्य जाना भले । तोहिं पूरण भो ज्ञान ॥ ८८ ॥
समझा ठीक यथार्थ तूँ । यामें भेद न कोय ॥
मुक्ति उभय लक्षण सही । पारखपद निज सोय ॥ ८९ ॥
जागत रहिये सन्त जन । नीन्द न कीजे भूल ॥
नर तन मुक्ति ठिकान है । पारख लीजे मूल ॥ ९० ॥
कबहुँ काल न नाशई । अजर अमर नित सत्य ॥
व्यापै नहिं कोइ कल्पना । पारख वर है महत्त्व ॥ ९१ ॥
स्वयं स्वरूप सो पारख । सदा एकरस जान ॥
जो जाने अविचल भये । सकलो तमहिं नशान ॥ ९२ ॥
पारख जाने पारखी । पारखि पारख एक ॥
तनयुत कहते पारखी । विदेह पारख एक ॥ ९३ ॥
सोई गुरु दरशा दियो । उभय अल्प तन भेद ॥
मुख्य रूपमें भेद नहीं । परख स्वरूप न खेद ॥ ९४ ॥
शिष्य ! सुबुद्धि कुशाग्र हो । शिक्षा मम तू जान ॥
मनन ग्रहण भल कीन्हेउ । अपरोक्ष बोध तू जान ॥ ९५ ॥
मुक्तिदायी वैराग्य है । रहनि गहनियुत चाल ॥
लिप्त न कतहूँ होवहू । दृष्टि परख बहाल ॥ ९६ ॥
सावधान सर्वत्र रहू । कबहूँ कहूँ न चूक ॥
तन घेरा बन्धन यही । आसक्ति मन लूक ॥ ९७ ॥
मिथ्या वाणी कल्पना । परखे ते मिट जाय ॥
तन खानी नित पासमें । प्रबल वेग उठि आय ॥ ९८ ॥

साखीः— मनकी द्रष्टा होयके । निज वश करिये ताहिं ॥
भूलि कुसङ्ग न लागहु । उपराम रहु जगमाहिं ॥ ९९ ॥
दया गुरुकी अटल है । शिष्य ! मुक्त तुम होऊ ॥
अनुकूल हो रहिये तहाँ । विचर विचार समोऊ ॥ १०० ॥
अन्तिम यहि विधि बोधकरि । शिष्य विदा करि दीन्ह ॥
पारख स्थिति सद्‌गुरु रहे । वृत्ति निरोध निज कीन्ह ॥ १०१ ॥

गुरु शिष्य सम्वाद यह । पारख भया विचार ॥
रामस्वरूप(दोउ)स्थितिलिये । परख मुक्ति निरधार ॥ १०२ ॥
संक्षिप्त भाषा हता । पारखी सन्तका लेख ॥
मूल गद्यते पद्यमें । रचित किया सोइ देख ॥ १०३ ॥
भाषाकी उल्था करी । साखी लिखा अनुवाद ॥
रामस्वरूपदास यही । सद्‌गुरुका परसाद ॥ १०४ ॥

बन्दौं पारखी साधु गुरु । परख विचार प्रकाश ॥
पारख रामस्वरूप करु । जीवन्मुक्तिकी बास ॥ १०५ ॥
युग सहस्र ऋषि सम्वत । आश्विन सुदि तिथि पाँच ॥
साखी सोम दिन पूर्ण भो । रामस्वरूप कृत साँच ॥ १०६ ॥

साल एक अन्तर पुनि । टीका लिखा बनाय ॥
भाव स्पष्ट भाषा सुनि । भ्रम सन्धि मिटि जाय ॥ १०७ ॥
निर्णय गुरु यथार्थको । वर्णन किया विस्तार ॥
रामस्वरूप गुरु पारख । धारण हो भवपार ॥ १०८ ॥
पारख मुक्ति ठिकान है । परे और नहिं कोय ॥
पारखी गुरु सतसङ्ग करी । धारण करिये सोय ॥ १०९ ॥

ज्ञान स्वरूपी जीव है । पारख जाने मुक्त ॥
पारख बिन भवधारमें । जन्म मरण दुःख भुक्त ॥ ११० ॥
पारख हो अपरोक्ष जब । सकल अध्यास मिटाय ॥
रामस्वरूप सोइ कीजिये । जियत मुक्ति पद पाय ॥ १११ ॥

साखीः— युग सहस्र वसु सम्वत । आश्विनसुदितिथि चार ॥
टीका समाप्त गुरुवासर । रामस्वरूप सत सार ॥११२॥

॥ ❀ ॥ इति श्री पारख विचार ग्रन्थ मुक्ति स्थिति वर्णनम्—अज्ञात पारखी सन्त रचित मूल भाषा संयुक्त—रामस्वरूपदास कृत उल्था साखी तथा पारख सिद्धान्त दर्शिनी भ्रम विध्वंशिनी सरल टीका सहित चतुर्थ ग्रन्थः सम्पूर्णम् समाप्तम् ॥ ४ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब और प्राचीन पारखी गुरुकी विशेषता वर्णन ॥ ❀ ॥

साखीः— पारख विचार सर्वोपरि । स्थिति स्वरूप लहन्त ॥
साहेब कबीर उपकार बड़ । स्वयं पारखी सन्त ॥ १ ॥
स्वयं प्रकाशी स्वानुभवी । सद्गुरु साहेब कबीर ॥
हुए न ऐसे होवई । पारख शोध कबीर ॥ २ ॥
बीजक सम कोउ ग्रन्थ नहीं । पारख बोध प्रकाश ॥
आदि एक सद्ग्रन्थ वही । गुरुमुख निर्णय खास ॥ ३ ॥
बीजक मत गहि पारखी । श्रेष्ठ कहाये सन्त ॥
बीजक मत जो जहाँ नहीं । पारखहीन कहन्त ॥ ४ ॥
जेते पारखी हो गये । बीजक मतको मान ॥
पारख ज्ञान प्रचार करि । पाये मुक्ति ठिकान ॥ ५ ॥
गुरु कबीर औ बीजक । पारखि भये अनुयायी ॥
गुरु महिमा प्रकाश करि । निर्णय साँच दिखायी ॥ ६ ॥
बीजक मूलते भेदको । नहिं जाने मतभेद ॥
पारख ज्ञान छिपायके । गुरुवन धोखा वेद ॥ ७ ॥
दया करि परखाय प्रथम । त्रिजा लिखि विस्तार ॥
याते पारखी सद्गुरु । पद आचार्य ठहार ॥ ८ ॥
आचार्य पूरण साहेब । बड़ उपकार सो कीन्ह ॥
जाहिर पारख बोध करि । भ्रम धोखा नशि दीन्ह ॥ ९ ॥

साखीः— यदि न हो त्रिजा यहाँ । कस हो पारख ज्ञान ॥
गुरु उपकार न मानई । स्वार्थी सो अज्ञान ॥ १० ॥
कबीर परिचय ग्रन्थ बना । बीजकके आधार ॥
पारखी गुरुदयाल भये । पारख बोध प्रचार ॥ ११ ॥
रामरहस गुरु पारखी । सो अति बीजक निष्ठ ॥
पञ्चग्रन्थी निर्माण किये । महिमा बीजक श्रेष्ठ ॥ १२ ॥
पूरणसाहेब, रामरहस । गुरुदयाल प्रसिद्ध ॥
अनुयायी कबीर गुरु । कबीर पन्थ प्रसिद्ध ॥ १३ ॥
तीनों पारखी गुरुनकी । महिमा ज्ञान प्रकाश ॥
बुरहानपुर सो नागझिरी । परम्परा सो खास ॥ १४ ॥
अर्थ पढ़ाई बीजक । पञ्चग्रन्थीकी होय ॥
कबीर परिचय आदिकी । अर्थ पढ़ें सब कोय ॥ १५ ॥
अमित सन्त सो अर्थपढ़ि । करि सत्सङ्ग तमाम ॥
पाये भेद सहजे भले । नहिं कठिनाई काम ॥ १६ ॥
काशी साहेब सद्गुरु । मुद्रित ग्रन्थ प्रकाश ॥
बीजक टीका मुद्रित । करी प्रचार उजाश ॥ १७ ॥
पञ्चग्रन्थी मूलादि औ । परिचय आदि प्रकाश ॥
रचि निर्पक्ष आदि पुनि । सहजे सरल खुलाश ॥ १८ ॥
पारखज्ञान सद्ग्रन्थ सब । यहि विधि भो परचार ॥
निजमति पढ़िगुनि सारलै । अब सब पारखि धार ॥ १९ ॥
पूर्व पारखी गुरुनके । निर्णय सब अनुयायी ॥
जो अनुयायी न होवई । धोखामें भटकायी ॥ २० ॥
राजमार्ग निर्माण भो । पन्थी चले अनेक ॥
पन्थी मार्ग कर्ता नहीं । सब पन्थी समएक ॥ २१ ॥
ग्रन्थ पन्थ विस्तार बहु । पारखी गुरु कर दीन्ह ॥
वर्तमान पथ गहि चले । नहिं विशेष कोउ कीन्ह ॥ २२ ॥

साखीः— देखि-सुनि पढ़िगुनि अमित। ग्रन्थ रचे चतुराई ॥
यामें नहीं विशेषता। उद्धृत सब दिखलाई ॥ २३ ॥
आपन दोष गुण मानई। परगुण दोष बखान ॥
चतुराई वाचालता। जीव रहे बन्धान ॥ २४ ॥
मुक्तिमार्गके विघ्न यही। मान बड़ाई लोभ ॥
राग द्वेष निन्दा हठी। ईर्षा दम्भ छल क्षोभ ॥ २५ ॥
सूक्ष्म अहं हो उदय जब। माने अपन विशेष ॥
पूर्व दशा विस्मृत करि। गुरु पूरब निज शेष ॥ २६ ॥
स्वयं बोध निज मानई। अनुयायी होन लजाय ॥
अवगुण परके गावई। निज ही गुण बतलाय ॥ २७ ॥
मुक्तिमार्ग तब दूर हो। रहनी रहस्य विपरीत ॥
पूर्व पारखी मग तजी। मनमति माने हीत ॥ २८ ॥
निज-पर हितकी बात यही। पूर्व पारखी मग चाल ॥
निष्ठा बीजक प्रचार हो। पारख बोध बहाल ॥ २९ ॥
गुरु अनुयायी पारखी। समता सन्तन होय ॥
गुणग्राही सो सद्गुणी। मन कस्मल सब खोय ॥ ३० ॥
पारखविचारके सार यही। सार गहैं भव पार ॥
पक्षपात जो लेवई। बूड़े भवके धार ॥ ३१ ॥
कबीरसाहेब आदि गुरु। पूरण गुरु आचार्य ॥
रामस्वरूप त्रय वन्दगी। पारखपद हिय धार्य ॥ ३२ ॥

॥ ❀ ॥ इति श्री पूर्व-पारखी सद्गुरुकी विशेषता वर्णन समाप्तः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥ दयागुरुकी ॥ ❀ ॥

॥ अथ लिख्यते संयुक्त निर्णयसारादि षट् ग्रन्थः ॥

॥ * ॥ सत्यन्यायी पारखनिष्ठ पारखी सन्त, साधु शिरोमणि--॥ * ॥

सद्गुरु श्रीगुरुदयालसाहेब विरचित—

श्रीकबीरपरिचय साखी पञ्चम ग्रन्थः प्रारम्भः

[पारख सिद्धान्त दर्शिनी भ्रम विध्वंशिनी सरल टीका सहित ।]

॥ ❀ ॥ टीकाकारकृत मङ्गलाचरणम् श्रीसद्गुरुपद वन्दना ॥ ❀ ॥

साखीः-- कबीर साहेब सद्गुरु ! बन्दीछोर महान् ॥
पारख ज्ञान प्रकाशते । हिय तम सकल नशान् ॥ १ ॥
प्रभु उपकार अनन्त है । जाने बिरले सन्त ॥
गुरु पदमें नित बन्दगी । हितकर पारखी सन्त ॥ २ ॥
पारख बोध लखायके । बन्धन कीन्हा अन्त ॥
मुक्तरूप गुरु साहेब ! साधु समाज महन्त ॥ ३ ॥
कबीर कायावीर हो । मुक्ति चलायो पन्थ ॥
सत्यशब्द टकसार कही । सोई बीजक ग्रन्थ ॥ ४ ॥

साखीः— जाने बिरले पारखी। परिचय गुरुका ज्ञान ॥
जो जाने सो मुक्त हो। ना जाने बन्धमान ॥ ५ ॥

छन्दः— गुरु पारखी पहिचानकर, सतसङ्ग जो कीन्हें सही ॥
सब मर्म सो जाने भले, पारख स्वरूपमें स्थित रही ॥
तरण-तारण होवई, जियत मुक्ति सो लही ॥
रामस्वरूप सोइ धन्य है, सत्य साधु सो कही ॥ ६ ॥

साखीः— श्रीकबीर गुरु पारखी। प्रथम भये जगमाहिं ॥
परखायो सब जालको। हंस रहनि दरशाहिं ॥ ७ ॥
उपदेश सत् गुरु बीजक। मूल अमोलिक सार ॥
श्रीपूरण गुरु साहेब। टीका सरल विस्तार ॥ ८ ॥
मूल हता तब सन्त जन। परिचय पावै नाहिं ॥
जाने बिन गुरु ज्ञानको। भ्रम धोखा भटकाहिं ॥ ९ ॥
सोई लखि विपरीत जग। पारखी सन्त दयाल ॥
समझायो सब हालको। काल कल्पना टाल ॥ १० ॥
गुरुदयाल साहेब भये। पारख निष्ठ प्रवीन ॥
कबीर परिचयसाखि सब। यह रचि दीन्हा चीन ॥ ११ ॥
निर्णय कीन्हा सत असत। सार असार लखाय ॥
खानि वाणि बतलायके। पारखमें ठहराय ॥ १२ ॥
यद्पि बीजक भाव कहा। कबीर परिचय माहिं ॥
तद्पि साखी सो गूढ है। बिन गुरु सो न लखाहिं ॥ १३ ॥
साहेब लाल गुरुमुख सुनि। रामस्वरूप चितलाय ॥
विधिवत पठन प्रथम करी। हृदय मनन ठहराय ॥ १४ ॥
सन् उन्निस बयालिस। माह दशमके लाल ॥
रामस्वरूपदास पढ़ा। गुरु कि दया तत्काल ॥ १५ ॥
दिना सातमें पूर्ण करी। मनन विधिवत कीन्ह ॥
दया गुरु श्री लालकी। याहि रहस तब चीन्ह ॥ १६ ॥
समयान्तर पश्चात् पुनि। हम सब सन्त पढ़ाय ॥
सत निर्णययुत वर्तई। गुरुपद शीश चढ़ाय ॥ १७ ॥

देह यही क्षणभङ्ग है। याका नियम न कोय ॥
गुरुजन तन छूटा जस। हमरे छुटि हैं सोय ॥ १८ ॥
याका भाव न लुप्त हो। जानु सन्त सब लोग ॥
याते टीका सार यही। लिख हूँ आज निरोग ॥ १९ ॥
पारख सिद्धान्त दर्शिनी। भ्रम ध्वंशिनि परचण्ड ॥
टीका सरल यामें करूँ। रामस्वरूप अखण्ड ॥ २० ॥
श्रीकबीर गुरु पूरण। काशी बालक लाल ॥
गुरुदयाल पारखी सकल। बन्दगी करूँ त्रयकाल ॥ २१ ॥
रामस्वरूपदास नित। गुरु गुण गाऊँ सोय ॥
पारख रहनि रहस्ययुत। वर्तें मुक्त सो होय ॥ २२ ॥
गुरु बिन भेद न पावई। करत रहो सतसङ्ग ॥
पढ़ि गुनि हिय धारे भले। त्यागी सकल कुसङ्ग ॥ २३ ॥
युग सहस्र वसु सम्वत। शुक्लषष्ठि शनि आश्विन ॥
प्रभात शुरू छः अकटूबर। एक्यावन उनईस सन ॥ २४ ॥
रामस्वरूप टीका लिखौं। जस गुरु कीह्ना बोध ॥
सार यथार्थ प्रकाश करौं। सतसङ्गत करि शोध ॥ २५ ॥
पढ़िये गुनिये सन्त जन। लीजे सार विचार ॥
रामस्वरूप पारख अटल। होवो भवसे पार ॥ २६ ॥

॥ ❀ ॥ इति टीकाकारकृत गुरु वन्दना तथा गुरु महिमा आदि समाप्तम् ॥ ❀ ॥

॥ * ॥ अथ मूल ग्रन्थः सटीक प्रारम्भः ॥ * ॥

साखीः — कबीर काहू अस कही। कान काग लिये जाय ॥
कान न टोवै बावरा। खोजै दहुँ दिश धाय ॥ १ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता पारखी श्रीसद्गुरु गुरुदयाल साहेब कहते हैं:— जैसे दृष्टान्तमें किसी मसखराने कोई भोंदू पुरुषके पास जायके ऐसा कहा कि— अरेभाई! तू देखता है कि नहीं, देख! यह काग

(कौवा) तेरे दोनों कानोंको उड़ाये लिये जाता है— ऐसा कहके उड़ते हुए कौवेको इशारा करके दिखा दिया। ऐसा वचन धूर्तका सुन, कागको उड़ता देख, उस मूर्खने भी विश्वास कर लिया कि, मेरा कान कहीं वह काग ले जा रहा होगा। तब वह मूढ़ बावरा या पागलवत् हो गया। क्योंकि, अपने कानको टोयके देखे बिना ही, मिथ्या वाणीमें विश्वास करके उस कागके पीछे-पीछे दौड़ा। इसतरह दशों-दिशाओंमें दौड़-दौड़के कानको खोजा, परन्तु कहीं उसे कान गिरा हुआ नहीं मिला। अन्तमें वह निर्बुद्धि अभागा ठोकर खायके गिरकर मर गया। अविचारसे ऐसे ही दुर्दशा होती है॥ यह तो दृष्टान्त है॥

अब इसी प्रकार सिद्धान्तमें इसका अर्थ ऐसा हैः—कबीर = संसारी अबोध नरजीवोंको, काहू = कोई एक भ्रमिक धूर्त गुरुवा लोगोंने, असकही = ऐसे कल्पित शब्द कहे, कि— हे मनुष्यो! तुम्हारे ऊपर कर्ता-धर्ता, मालिक, परमपिता-परमात्मा, जगदीश्वर कोई एक सर्व-शक्तिमान् कर्ता पुरुष है। उसके दर्शन प्राप्ति होनेसे ही तुम्हारे हित, कल्याण गति-मुक्ति होवेगी। इसलिये तुम लोग सब कोई ईश्वरके भक्तिमें लगो, देखो! वे कागरूप षट् दर्शनोंके भेषधारी गुरुवा लोग सब तुम्हारे, कान = कल्याणकारी भक्ति, योग, ज्ञानमार्ग लिये हुए सीधे परमेश्वरके पासमें चले जाते हैं। अतएव तुम लोग भी अब झटपट उनके पीछे लगो, किसी एक गुरुजीके शिष्य बनो, साधना करो, इसीमें तुम्हारी भलाई है। इत्यादि प्रकारसे रोचक, भयानक वाणी नाना तरहसे उपदेश देके, अबोध मनुष्योंके कानमें सुनाये, और कल्याण प्राप्तिके वास्ते, गुरुवा लोग मनुष्योंको तीर्थादि करानेको जहाँ-तहाँ लिये जाते भये। ऐसे-ऐसे भ्रमिकोंके वचन सुन-सुन करके मनुष्य विचारसे-हीन, बावले या पागलकी नाईं हो जाते भये। इसीसे कान = अपना कल्याण कहाँपर है, ऐसा सोचके गुरुवा लोगोंने जहाँ कल्याण बताये, वहाँ कल्याण होनेवाला है कि नहीं, ऐसा न टोवै = विचार

करके विवेकदृष्टिसे ठीक-ठीक देखते तो नहीं हैं, और भ्रमिक बौराहा होके दशों दिशाओंमें जहाँ-तहाँ ईश्वर, खुदादि कल्पित इष्टदेवको खोजते फिरते हैं, तो भला ! वह कहाँसे उन्हें मिलेगा ? और कैसे कल्याण होगा ? किन्तु, जड़ाध्यासी होके चौरासी योनियोंको ही प्राप्त होंगे ।

अथवा मनुष्योंको किसी पण्डित गुरुवाने ऐसा कहा कि, देखो ! तुम्हारे कान = जीवको, काग = काल या यमदूत नर्क लोकमें लिये जारहे हैं, अथवा अन्तमें वहाँ ले जावेंगे, उसके लिये शब्द प्रमाण, वेद, शास्त्रोंमें लिखा है, चाहे वहाँ देखो, वा हम जो कहते हैं, सो सुनो ! तो पता चलेगा । यदि स्वर्गप्राप्ति, मुक्ति प्राप्ति, आदि चाहते हो, तो वेद, शास्त्रादिको पढ़के भक्ति, योगादिसे परमेश्वरके खोजी करो । ईश्वर प्राप्ति होनेपर नर्कादि सब दुःखोंसे छुटकारा हो जायगा । इत्यादि वाणी गुरुवा लोगोंसे सुनके, प्रतीत करके, बावरे बने । अपने चैतन्य जीवको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गद्वारा विवेक-विचारकर यथार्थ देखते या टोवते तो नहीं हैं, उसके विपरीत दहुँदिश = दशोंदिशारूप चार वेद, षट् शास्त्र आदि वाणीके जङ्गलमें ही भटकके धाय-धायके ब्रह्म, ईश्वरादिके खोजी करते हैं, और बिना पारख भ्रमिक जड़ाध्यासी हो, आयु बिताकर आवागमनमें ही पड़े रहते हैं; अतएव पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग करके मिथ्या भ्रम, धोखाको त्यागना चाहिये ॥ १ ॥

साखीः— चोर चले चोरी करन । किये साहुका भेष ॥
गल्ले सब जग मूसिया । चोर रहा अवशेष ॥ २ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— जैसे कोई •चोर, चोरी करनेके वास्ते चले, सो दिनमें तो वे लोग साहुकारका भेष सदृश रूप बनायके इधर-उधर धनिकोंकी कोठी, ताकते-झाँकते देखते-भालते, खरीद-बिक्रीके बहानासे भीतर घुसते गये । इस तरह सबका भेद लेकर, रातमें सब जगत्के बड़े-बड़े सेठोंके गल्ला तथा धन-सम्पत्ति चुराय ले गये, और उसे छिपाय दिये । अब फिर प्रगटमें जो चोर बाकी

रहा, सोई श्रेष्ठ बने फिर रहे हैं। तब कहो, लोगोंकी भलाई कैसे होगी? कभी नहीं होगी॥ तैसे ही सिद्धान्तमें पक्के चोर बने हुए गुरुवा लोग, अपस्वार्थी बने हैं। वे जीवोंके हंसपदको छिपानेवाले बने हैं। ऐसे ठग-चोर गुरुवा लोग, संसारमें, चोरी करन = लोगोंके तन, मन, धनादि पदार्थ नाना तरहसे हरण कर, चोरी करनेके वास्ते कपटरूप धारण करके, जहाँ-तहाँ चले गये, या चल पड़े। किन्तु उन्होंने बाहर दिखानेको भेष तो साहुका-सा बना लिया, अर्थात् त्यागी, वैराग्यवान्, साधु गुरुके समान स्वाङ्ग बनाये, संन्यासी, उदासी, वनवासी, वैरागी, नागे, निर्वाणी, नाथ, निरञ्जनी, इत्यादि प्रकारसे षट् दर्शनमें अनेकों भेष बनाये; खाक लगाय, मृगछाला, बाघम्बर आदिको पहिर लिये, बड़े-बड़े जटा बढ़ा लिये हैं। इस तरहसे बन-ठनके, जीवोंके बुद्धि, विचार चुरानेको संसारमें चले, रामत करते फिरने लगे। ऐसे उन्हें त्यागी साधुके भेषमें देख करके, मनुष्योंको बड़ी श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हुई। सब उनके भक्त, शिष्य-शाखा बनते गये। और ऋद्धि, सिद्धि, धन, धान्य, संसारके सुख, ऐश्वर्य प्राप्ति, स्त्री, पुत्र, धन, राज्यादि प्राप्ति, स्वर्ग, सात लोक, चार फल, चार मुक्ति, और ईश्वर, ब्रह्म आदि प्राप्तिकी आशा, भरोसा, देके उपदेशके खरीद-बिक्री करने लगे। सबको भ्रमायके धोखेमें डाल दिये। आखिरमें सब जगत्के मनुष्योंकी गलेमें महा अज्ञानका पर्दा डालकर अविद्यारूपी रात्रिमें उन चोर गुरुवाओंने सबोंके गह्ले = द्रव्यरूप तन, मन, धन तथा सत्य, विचार, शील, दया, विवेक आदि सद्गुण संयुक्त चैतन्य जीवके जमापद या हंसपदको घटोंघटसे, मूसिया = चुरा लिया, छिपा दिया वा हरण कर लिया। और उन्हें निर्धन, दरिद्र, भ्रमिक, अविचारी, बनायके धोखेके साधनाओंमें लगाकर नष्ट-भ्रष्टकर दिया। किन्तु, इस तरह दुर्गति करनेपर भी अबोध मनुष्योंको उनका कपट भेद मालूम नहीं होता है। अब संसारमें वे ही चोर, गुरुवा लोग, अवशेष = अब बाकीके सबसे श्रेष्ठ हो रहे हैं।

अथवा चोर गुरुवाओंने एक कल्पित ब्रह्मपदको ही अवशिष्ट सारपद बताके जीवोंको भुला रखा है। यथार्थ गुरु पारखके बोध बिना यह भेद किसीको जाननेमें नहीं आता है। इसलिये पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके उन चोरोंको ठीक तरहसे पहिचानकर, उन्हें भगा देना चाहिये। उनके फन्दोंमें कभी पड़ना न चाहिये॥ २॥

साखीः—अवशेषै जग मूसिया। सेंध जो दीन्हों कान॥
ब्रह्मादि सनकादि जग। दुखिया भये निदान॥ ३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— जैसा चोर तो बाकी रहा, किन्तु, पकड़ा नहीं गया, तो वह बार-बार लोगोंके दीवाल वा भीत आदि फोड़कर, सेंध लगाके, रास्ता बनाकर, भीतर जाके, जो कुछ बचा हुआ मिलता है, सोई चुराकर भाग जाता है। आखिरमें उनसे तङ्ग आके सब साहु लोग दुःखी होते हैं। तैसे ही संसारमें अब वेपारखी लोगोंमें सर्वश्रेष्ठ महात्मा योगी, ज्ञानी, भक्त बने हुए या श्रेष्ठ माने गये गुरुवा लोग ही अविवेकी होनेसे परमार्थमें चोर बनके अवशेषै = बाकी, श्रेष्ठ, सारपद ब्रह्म-परमात्मा कोई हैं, ऐसा दृढ़ाकर, उसीके आड़में जगत् जीवोंको लूटने लगे। उन्होंने मनुष्योंके कानमें ही सेंध लगा दिये। अर्थात् नाना प्रकारसे भ्रमाकर पहिले कान फूँक-फूँकके चेले बना लिये। तहाँ दीक्षाके नामसे "ॐ रामाय नमः" फुस ३ "ॐ नमः शिवायः" फुस ३ "ॐ ब्रह्मणे नमः" फुस, फुस, फुस, करके एक-एक कानमें तीन-तीन बार फूँक मार दिये। बस, इस तरीकेसे उसे अन्धा बनाय, वाणीके प्रहारसे फोड़कर भीतर हृदयमें जाने-आनेका द्वार, कानमें सेंध लगाकर, मार्ग तैयार बना लिये। फिर रोचक, भयानक आदि अनेकों वाणीकी उपदेश जो उन्होंने दिये, सो उसे अविवेकी लोगोंने भी सत्य मान लिये। इस प्रकार उन प्रवीण चोरोंने जगत्में युक्तिपूर्वक घुसके विवेक, विचार, बोध, आदि मुक्तिदाई सद्गुणरूपी धनको चुराकर कल्पनामें छिपायके

नष्ट-भ्रष्ट कर दिये। और मन-मानन्दी कल्पनारूपी चोरने संसारमें ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि गुरुवा लोगोंके और सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद, वशिष्ठ, व्यास आदि उनके अनुयायी शिष्य वर्गोंके भी बुद्धि-विचार सहित सर्वस्वको लूटके हरणकर लिये। वे सब लोग बिना पारख 'अहं ब्रह्म' बनके जगत्‌रूप व्यापक ही हो रहे। अतएव निदान = अन्त या आखिरीमें जड़ाध्यासी होनेसे जन्म, मरण, गर्भवास, त्रयतापादि दुःख भोगकी भवचक्रमें पड़के, दुःखिया = परम बेहाल या अत्यन्त दुःखित होते भये। अभी उनके अनुयायी चौरासी योनियोंमें पड़के वैसे ही दुःखी हो रहे हैं। उन्हें जीवन्मुक्तिका सुख कभी प्राप्त नहीं भया। अतएव उनके पक्ष छोड़के पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें लगना चाहिये। तभी नर जन्म पाया हुआ सफल होगा, सो जानिये ! ॥ ३ ॥

साखीः—कानते मुखमें मुखते करमें । चुटकी चमकै नूर ॥
तीहटा खेती चोरवा । सब पण्डित भये मञ्जूर॥ ४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— तीन प्रकारसे खेती, धन्दादि करके चोरी करनेका उद्योग करनेवाले, गुप्त चोर यहाँपर वे ही धूर्त बेपारखी गुरुवा लोग हैं। वे कानसे घुसके चुराते हैं, तो मुखसे निकली आते हैं। फिर मुखसे हाथोंमें आकरके भी चोरी करते हैं, चोरबत्ती जलानेके समान चुटकीसे नूर चमकाते हैं। वे चोर तीन-प्रकारके खेती करने लगते हैं, तहाँपर सब पण्डित लोग मञ्जूर करके उनके मजदूर या नौकर होते हैं। अर्थात् ये चालाक गुरुवा लोग अपने-अपने आचार्य गुरुवोंसे जो-जो बात कानसे सुने या सुनते गये, सो-सो मुखमें रटन करके कण्ठाग्र करते गये। फिर मुखमेंसे भी विस्मृत न हो, उसके लिये मुखमेंसे हाथोंमें ले आये। फिर चुटकी = हाथकी अंगुलियोंसे कलम पकड़कर काली, नीली आदि स्याहियोंसे सफेद कागजोंपर अक्षरोंको लिखकर उसीका

नूर या प्रकाशसे संसारमें कल्पित महिमा चमकाने लगे। सो कैसे कि— वही कल्पित वाणी लिखी हुई वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि पुस्तकोंको पुनः हाथमें पकड़कर उसे देख-देखके मुखमें-से शब्द उच्चारण करने लगे; गुरुवाओंके मुखमेंसे निकली हुयी वाणियोंको शिष्य लोग कान द्वारा मन लगायके सुनने लगे और सब पण्डितोंने भी उसे मञ्जूरी या स्वीकारकर लिया। तदनन्तर गुरुवा लोगोंने चेलोंके कानोंमें गायत्री मन्त्र, दीक्षा मन्त्र, ॐ, और त्रयदेवोंके नामके मन्त्र, सप्तबीज मन्त्र, और अनेकों मिथ्या कल्पित मन्त्र फूँक दिये। और कहे कि— इसे मन लगायके जाप करो, जिससे तुम्हारे सब मनोकामनादि पूर्ण होंगी, इत्यादि आशा लगा दिये। तब उन अबोध मनुष्योंने कानोंसे सुना हुआ, मन्त्र-वाणियोंको मुखमेंसे जीभ हिलाय-हिलायके जाप करने लगे, और उसकी संख्या-हिसाब रखनेके लिये कोई हाथमें अंगुलियाँ-कोष्ठक गिनने लगे, कोई एकसौ आठ दानोंकी माला या हजारीमाला करमें लेकर चुटकीरूप अंगुलियोंसे दानोंको फिरायके नूर चमकाते हुए खटाखट-खटाखट माला फेरने लगे—इस तरहसे जाप करने-कराने लगे। चोरवा = ये गुरुवा लोगोंने, तीहटा = कान, मुख, और हाथ, यह तीन जगह रहनेवाला शब्दके द्वारा जगत्में, खेती = उपदेश, धन्दा, शिष्य-शाखा बनानेकी कृशानी करने लगे। तहाँ सब वेद-शास्त्रादि पढ़े हुए पण्डितोंने भी उसी बातको मञ्जूर करते भये। कर्म, उपासनादिसे ईश्वर मिलनेको बतलाते भये। अतः वे पण्डित लोग ही वाणी कल्पनाके दास होकर मजूरवत् लोगोंकी गुलामी करने लगे। ग्रह शान्ति आदिमें बहुतेरे जाप, पाठ, पूजादि, करके मजूरीरूप दक्षिणा लेके वे सब पण्डित-ब्राह्मण लोग ही वह कर्म करते हैं, कथा सुनाते हैं, तो भी मजदूरी लेते हैं, सब स्वार्थ लेके धन बटोरनेके लिये ही प्रयत्न करते हैं। इसलिये वे पण्डित लोग कङ्गाल मजदूर भये हैं, कल्पनाके बातको ही वे लोग स्वीकार करते हैं, वही वाणी लिख-लिखके मुखसे

कहकर कानोंमें सुनाय-सुनायके लोगोंको भ्रमाते हैं। अतः उन्होंको गुप्त चोर वा ठग ही जानके उनके सङ्गत छोड़ देना चाहिये ॥ ४ ॥

साखीः—हिये मुख नासा श्रवण दृग । कर काख चोरका भौन ॥
कहहिं कबीर पुकारिके । पण्डित ! चीन्हों कौन ? ॥५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासु जनो ! चोर बने हुए गुरुवा लोग और उन्होंके वाणी कल्पनादिको छिपनेका जगह-रूप, भौन = भवन या मकान मुख्यतया शरीरमें सात ठिकाने हैं। कहाँ-कहाँ हैं ? सो सुनो ! पहिले— तो कल्पना, अनुमान, भास, अध्यास, जीवोंके हृदय या अन्तःकरणमें गुप्तरूपसे छिपी रहती हैं। फिर दूसरे— मुखमें आके वैखरी वाणीरूपमें नाना तरहसे उच्चारण होती हैं। तीसरे— नासिकाग्रमें लक्ष लगायके रहती है। कोई रेचक, पूरक, कुम्भक करते हैं, कोई नाक पकड़कर प्राणायाम करते हैं, कोई नाकसे आने-जाने वाली श्वासरूप प्राणवायुमें लक्ष लगाकर सोहं, ओहं राम नामका जाप करते वा कराते हैं, कोई नाकसे श्वास बन्दकर ब्रह्माण्डमें चढ़ाके शून्य समाधि लगाके बैठते हैं। कोई ज्ञान स्वरोदय साधके नासिकासे आने-जानेवाली वायुपर लक्ष लगाये रहते हैं। चौथे— श्रवण = कानोंमें नाना उपदेश सुनाते हैं, कोई दोनों कानोंको अंगुलियोंसे वा ठेड़ीसे बन्द करके अनहद नादका दश बाजा सुनते-सुनाते हैं। पाँचवाँ— दृग = नेत्रोंसे वेद, शास्त्र, पुराण आदि ग्रन्थोंके अक्षरोंको देखते वा दिखाके पढ़ते-पढ़ाते हैं। कोई अष्ट प्रतिमाके जड़ मूर्तियोंको इष्टदेव बताके, दर्शन कराते हैं। कोई योगी लोग त्राटक, मुद्रादि करते-कराते हैं, और नेत्र मूँदकर भीतर ज्योति देखके उसे ही ईश्वर-दर्शन मानते हैं। छठवाँ— कर = हाथोंसे नाना कर्तव्य करते-कराते हैं। समस्त वाणी-पुस्तकें हाथसे ही लिखी गईं, सब ग्रन्थ हाथोंसे ही तैयार हुये हैं। और सातवाँ— काख = बगलमें वेद, शास्त्र, कुरान, आदिकी पुस्तकें दबायके पुरो-

हित, वा मौलवी लोग यजमानोंके घर-घर जायके फिर वही ग्रन्थ खोलके सुना-सुनाकर उन्हें भ्रमाते हैं। पीछे दक्षिणा लेकर ग्रन्थोंको बगलमें दबाये हुए ही घर चले जाते हैं। यही सब चोरका भवन है या भ्रमानेका घर है। यहाँ श्रीगुरुदयाल साहेब कहते हैं:—हे पण्डित! हे बुद्धिमान्! तुम लोग चीन्हों, पहिचानो कि— वह चोर कौन है? जो उपरोक्त सात स्थानोंमें रहता है। यदि तुम लोग नहीं जानते हो, तो सुनो! सद्गुरु श्रीकबीर साहेबने पुकारके बीजकमें कहे हैं कि— ये पण्डित कहलानेवाले ब्राह्मण लोग और उन्होंके वाणी-कल्पना वही पक्के चोर बने हैं। तहाँ कहा है:—

रमैनीः— "बड़ सो पापी आहि गुमानी। पाखण्डरूप छलेउ नर जानी॥ १॥
ब्राह्मण ही सब कीन्हीं चोरी। ब्राह्मण ही को लागल खोरी॥" ३॥
॥ बीजक, रमैनी १४॥

पण्डित भूले पढ़ि गुनि वेदा। आप अपनपौ जानु न भेदा॥ बी० र० ३५॥
पण्डित! बाद वदे सो झूठा॥ १॥
रामके कहै जगत गति पावै। खाँड़ कहे मुख मीठा॥ बी० शब्द ४०॥

इस प्रकारसे सद्गुरुने प्रख्यात करके कहे हैं, अब तुम लोग भी चीन्हों या जानो कि— ये पण्डित कौन है? अरे! भाई! जीवपदको चुराने-छिपाने वाले वे पण्डित ही चोर बने हैं, ऐसा जानो॥ ५॥

साखीः—त्याग करनको सब चले। हुआ नहीं वैराग॥
जो चोरवा जग मूसिया। सो सबके पीछे लाग॥ ६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— मुक्ति प्राप्तिकी आशासे बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, राजे, महाराजे, श्रीमान् मनुष्य आदि बहुतेरे लोग संसार-बन्धनको त्याग करनेके वास्ते घर-बार, स्त्री, पुत्र, धन, कुटुम्ब, राज्यादि मोटी-मायाको छोड़कर सब वनमें तो चले गये। परन्तु झीनी मायाका परित्याग न होनेसे पूर्ण सारवाला यथार्थ गुरुमुख कथित दृढ़ वैराग्य उन्होंको नहीं हुआ है। इसलिये ये सब झीनी रागमें लगके

भवबन्धनोंमें ही उलट-पुलटके गिर पड़े। काम, क्रोधादि, कल्पना, अनुमानादि, जिन चोरोंने जगत्-जीवोंको लूट लिया है, सो योगी, ज्ञानी, भक्तादि उन सबोंके पीछे भी लगी ही रही, छूटी नहीं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीर साहेबने बीजक साखी १४० में कहा है:—

साखीः— "माया तजे क्या भया ? जो मान तजा नहिं जाय ॥
जेहि माने मुनिवर ठगे, सो मान सबनको खाय ॥" बी० सा० १४० ॥
"मोटी माया सब तजे, झीनी तजी न जाय ॥
पीर पैगम्बर औलिया, झीनी सबको खाय ॥" पं० ग्र० ट० २१५ ॥

अतः सब कोई त्याग करके साधु होनेके लिये तो चल पड़े, किन्तु, उनके हृदयमें शुद्ध वैराग्यका उदय नहीं हुआ। घर-गृहस्थी खानी जालको छोड़के मठ-मन्दिर, आश्रम, और वाणी-जालमें जाके जकड़ पड़े। ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, देवी, देवता, सात स्वर्ग, ऋद्धि, सिद्धि, आदि कल्पनामें विशेष उन्होंके राग बढ़ा। सम्पूर्ण मानन्दी, कल्पना, भ्रम परित्याग करके, सच्चा वैराग्यकी प्राप्ति नहीं हुयी। जो चोरवा = मन-मानन्दी कल्पना, विषय वासनादिने जगत् जीवोंकी मुक्ति-धनको मूसिया = चुरा लिया या लूट लिया है, सोई मन कल्पना, मानन्दीरूपी चोर सब बेपारखी साधु भ्रमिकोंके पीछे भी जाके लगा है। उन सबोंके सर्वस्व हरण करके बेहालकर रहा है। इसलिये पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके उन चोरोंको पहिचान-कर उन्हें कैद करना चाहिये ॥ ६ ॥

साखीः—पूरण कला होयके । चोर देखाई देत ॥
सुर नर मुनि जग आँधरा । चीन्ह न कोई लेत ॥ ७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— अबोध नरजीव स्वयं ही अपनी कला-कल्पनासे परिपूर्ण या सर्वव्यापक अद्वैत ब्रह्म आप ही होयके या अपनेको ब्रह्म मानके जीवपदको चुरानेवाले चोर होते हैं। और चोर गुरुवा लोग ही "अहं ब्रह्मास्मि" कहके वे बाहर ब्रह्मज्ञानीके रूपमें दिख-

लाई देते हैं। अर्थात् पूर्णकलाधारी चैतन्य जीव ही अपने कल्पनासे आप ब्रह्म होयके चोर भये हैं। ऐसा विवेक पारखसे ही दिखलाई देता है। पारखहीनको यह कुछ दिखाई नहीं देता है। इधर, सुर = देवता वा सत्त्वगुणी मनुष्य, नर = रजोगुणी साधारण पुरुष, मुनि = तमोगुणी मनुष्य वा मननशील तपस्वी लोग और जग = संसारी अबोध अज्ञानीजन, ये सब तो जगत्में, आँधरा = पारख दृष्टिसे रहित पक्के अन्धे ही बने हैं, उन्हें सत्यासत्यका यथार्थ विवेक तो है नहीं। इसलिये वे योगी, ज्ञानी, भक्त, जनादि कोई भी ब्रह्म, ईश्वर कर्तादि माना हुआ, तो मिथ्या जीवके ही कल्पना है, जीव ही सत्य है। ऐसा विवेक करके कोई चिह्न लेते नहीं, सत्यासत्यको पहिचानते नहीं। इसलिये जड़ाध्यासी होकर आवागमनोंके चक्रमें ही पड़े, और पड़ रहे हैं। उसे परखकर पहिचानना चाहिये ॥ ७ ॥

साखीः—साहु भरोसे चोरके। सदा करै इतबार ॥
कहहिं कबीर तिहुँ लोकमें। चोर भया करतार ॥ ८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— जैसे चोरके भरोसेमें साहु रहै, उसका विश्वास करता रहे, तो उधर चोर शक्तिमान् श्रेष्ठ बनके साहुको ही दबा बैठेगा। तैसे ही साहु = सत्यस्वरूप चैतन्य नरजीव, चोर = मन, स्त्री, गुरुवा लोग और कल्पित ईश्वर, ब्रह्म आदिकोंके भरोसे = आशा-भरोसा, विश्वास, आसरा, निश्चय करके निश्चिन्त रहते हैं कि— ये हमको विषयानन्द, ब्रह्मानन्दादिके सुख-देगें, और हमारा हित, भलाई, कल्याण ही करेंगे, ऐसा समझके उनसे गाढ़ी मित्रता कर लिया, और सदा-सर्वदा उन्हीं चोर, डाकू, ठग लोगोंका ही इतबार = पूरा विश्वास या निश्चय करते हैं। उनके वचनोंका ही प्रतीत करते हैं। इसवास्ते सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहा है कि— तीहुँ लोक = स्वर्ग, मृत्यु, पाताल, अथवा तीन गुण, वा

कामी, क्रोधी, मोही, वा योगी, ज्ञानी, भक्त, इत्यादि त्रिगुणी माया जालोंमें ही सब जीव पड़े हैं, उसमें स्त्री, और गुरुवा आदि चोर उनमें कर्ता, धर्ता, मालिक, सर्वश्रेष्ठ भये या हो रहे हैं ।

अथवा साहुरूप नरजीव, चोर = मनःकल्पित ईश्वर, ब्रह्म, आदिको अपना रक्षक, वा अन्तिम गति निश्चय करके उसीके भरोसे नाना साधनाएँ करने लगे । वेद, कुरान आदिके वाणी कल्पनाको सदा विश्वास करने लगे । इसवास्ते सद्गुरु कहते हैं— कर्मी, उपासक, योगी, इन तीनों लोकोंमें चोर ब्रह्मज्ञानी जगत् कर्ता ब्रह्म-स्वरूप अपनेको ही श्रेष्ठ कहनेवाले होते भये । इस प्रकार वाणी कल्पनाका कर्ता जीव भ्रमसे आप ही ब्रह्म करतार भया, धोखामें पड़ा।

साखीः— "तीन लोक चोरी भई । सबका सरबस लीन्ह ॥
बिना मूँड़का चोरवा । परा न काहू चीन्ह ॥" बी० सा० १२८ ॥

ऐसा सद्गुरुने कहा है । वाणीके प्रमाणसे माना हुआ ब्रह्म, ईश्वरादि मिथ्या भ्रम, भूल है, उसे परखकर मानन्दीको त्यागना चाहिये ॥ ८ ॥

साखीः— शब्द करावै साधना । शब्द न चीन्हा जाय ॥
योग जप तप आदि ले । मरै कमाय कमाय ॥ ९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं— माना हुआ ॐकार शब्द ब्रह्मके प्राप्ति या साक्षात्कार करनेके वास्ते गुरुवा लोग वेद, शास्त्रादिका शब्द नाना कल्पित वाणीका उपदेश सुनाय-सुनायके मनुष्योंको भक्ति, योग, ज्ञानादि मार्गोंका अनेकों साधनाएँ कराते हैं, वे अपने भी साधनाएँ करते जाते हैं । परन्तु उसे परख करके चीन्हते नहीं कि— प्रणव शब्दरूप ॐकार ब्रह्म, चारों वेद, छहोंशास्त्र एवं पुराण, कुरानादि समस्त शब्दरूप वाणी नरजीवोंकी ही कल्पना किया हुआ मिथ्या धोखा है । उससे जीवोंका कल्याण तो कुछ भी होता नहीं, बिना विवेक ऐसा यथार्थ चीन्हा या पहिचाना नहीं जाता है । इसीसे भ्रमिक होकर मनुष्य सब नाना साधनाएँ करने-करानेमें लगे और

लगा रहे हैं। तहाँ कोई अष्टाङ्ग-योग साधना कर रहे हैं, कोई षट्क्रिया, दशमुद्रा, धारणा, ध्यान, समाधि लगा रहे हैं। कोई तैंतीस कोटि देवताओंके नाम जप करके माला फेरनेमें लगे हैं। कोई तपस्या करनेमें—पञ्चाग्नि तापना, जल-शयन करना, अरण्य-निवास, उर्ध्वबाहु, मौनी, दिगम्बर, ठाडेश्वरी, निराहारी, फलाहारी, इत्यादि नाना प्रकारसे कठोर तपश्चर्या करते-कराते जन्म बिता रहे हैं। कोई तीर्थयात्री, व्रत, उपवास करनेवाले-कर्मकाण्डी, उपासक, ज्ञानी, विज्ञानी, इत्यादि एक-एक कल्पनाको ले-ले करके जीवन भर जड़ाध्यास, भ्रम, कल्पना, भूल, धोखा, हङ्कार, काम, क्रोधादि और वासना-संस्कार इसी सबको यथेष्ठ खूब कमाय-कमायके अत्यन्त अध्यासी होके मरते हैं। फिर शरीर छूटनेपर चौरासी योनियोंके चक्रमें ही घुमा करते हैं। बिना पारख धोखेका शब्द न चीन्हके भवबन्धनोंमें पड़ते हैं। अतः पारखी साधु गुरुके सत्सङ्गमें रहकर उक्त शब्द जालोंको चीन्ह लेना चाहिये ॥ ९ ॥

साखीः— कोटि साधना करि मरै। ब्रह्म आप जो होय ॥
शब्दके मारे सब मरे। शून्यमें गये बिगोय ॥ १० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— आप जीव अपने स्वयंस्वरूपका बोध पारख न होनेसे कल्पनासे एक ब्रह्म व्यापक मानकर फिर आप ही वह ब्रह्म होनेके लिये गुरुवा लोगोंके भ्रमानेसे करोड़ों-करोड़ों नरजीव या जीवकोटि यहाँ करोड़ों प्रकारके नाना साधनाएँ कर-करके मरे, जड़ाध्यासी भये, हंसपदसे मृतक, पतित हुए, वा हो रहे हैं। इत्यादि साधनाएँ करके अन्तमें जो आप ही ब्रह्म अधिष्ठान होते हैं, तो क्या ब्रह्म पीछे भया, पहिले नहीं था? यदि ब्रह्म प्रथमसे ही व्यापक ही है, तो फिर नाना साधनाएँ करनेका क्या काम? जब ब्रह्म अधिष्ठान ही है, तो तुम्हें ब्रह्म बनना क्या है? सरासर धोखा ही है। और आप ही ब्रह्म भी हुआ, तो जगत्

चौरासी योनियोंके स्वरूप ही तो बना। इससे क्या फायदा हुआ? कहाँ आवागमन छूटी? जन्म-मरणके चक्रमें ही तो पड़े। हे सन्तो! विचार करिये, उन धूर्त गुरुवा लोगोंके कल्पित वेद, शास्त्रादिकी धोखाके शब्दके मारे चोटलगनेसे, यानी नाना उपदेशके शब्द बाण हृदयको लक्ष करके कान द्वारा गुरुवा लोगोंने मनुष्योंको ताक-ताकके मार दिये। जिससे विवेक-विचारकी चेतना गमाय करके सब नरजीव मरे वा जड़ाध्यासी भये। चराचरमें परिपूर्ण व्यापक आकाशवत् शून्य ब्रह्म मैं हूँ, ऐसा मानकर हंसपदसे विगड़ कर शून्य धोखामें पड़ गये। इस प्रकार नर-जन्म कर्म-भूमिकामें स्थिति बिगाड़ करके, अन्तमें देह छोड़कर चौरासी योनियोंकी शून्य स्थान गर्भवासमें ही वे चले गये। बिना पारख॥ इससे पहिले ही उसे परख करके परित्यागकर चैतन्य स्थितिमें स्थिर हो जाना चाहिये॥ १०॥

साखीः— ब्रह्म ईश जग आदिलों। हित माने सब कोय॥
शब्दके मारे सब मरे। चीन्है बिरला कोय॥ ११॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु मनुष्यो! अविचारी लोगोंने कल्पना करके भिन्न-भिन्न प्रकारसे अपने-अपने इष्टको हितकारी माने हैं। तहाँ कोई असिपद, विज्ञान ब्रह्म, झाँईको ही कल्याण-स्वरूप परमतत्त्व परमात्मा मान रहे हैं। कोई ईश = तत्पदवाच्य ईश्वर ज्ञानी, सर्वशक्तिवान्, षट्गुण ऐश्वर्य संयुक्त, जगत्कर्ता परम-पुरुष ठहराकर उसे इष्ट मान रहे हैं। और कोई जग = जगत्में त्वंपदवाच्य अल्पज्ञ जीव अज्ञानी, असक्त मानकर उसके हितके लिये ब्रह्म, ईश्वरादिकी ध्यान आदि नाना साधनोंमें लगा रहे हैं। और कोई विषयी, पामर बाममार्गी लोग पञ्चमकार सेवन, भैरवी चक्र आदि कुकर्मको ही हित मानते हैं। कोई शून्यवादको, कोई तत्त्व-वादको, कोई देहवादको, क्षणिकवाद, हिंसावाद, नास्तिकवाद,

चार्वाक आदिसे लेकर षटदर्शन-९६ पाखण्डतक सब कोई अपने-अपने मान्यताको हितकारी समझ करके ही मानते जाते हैं। परन्तु पूर्ण पारखबोध हुए बिना सब धोखामें पड़के, निज पदसे नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। ब्रह्म, ईश्वर, जगत्-विषय भोग, आदितक हित माननेवाले वे सब अविवेकी लोग गुरुवा लोगोंके रोचक, भयानक मिश्रित कल्पना, भ्रमके हलाहल विषसे बुझाई हुई शब्दरूपी बाणके मारसे घायल हो-होके, चोट खाके गिर पड़े, सब मरे, वा जड़ाध्यासी होते भये। फिर देह छूटनेपर अध्याशवश चारखानीको प्राप्त भये। इसके पूर्ण भेदको तो कोई बिरले ही सत्यन्यायी, विवेकी पारखी सन्त, पारखके प्रतापसे चीन्हते हैं, और उससे न्यारा होकर हंस रहनी संयुक्त निजपद पारखमें ही स्थित हो मुक्त होते हैं। अतः पारखी साधु गुरुकी शरण, सत्सङ्गको प्राप्त करके बन्धनोंसे मुक्त होना चाहिये ॥ ११ ॥

साखीः— बिन पग परकी चीड़िया। भूतल नभ उड़ि जाय ॥
सब कोई लगे बझावने। बागुर तोरि पराय ॥ १२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— जैसे कोई पैर और पङ्ख न दिखै, ऐसी चिड़िया पृथ्वीसे आकाशतक उड़ जाय, फिर जहाँ-तहाँ बैठे, उसे बिचित्र देखके सब कोई पकड़नेके मनसूबासे उसपर जाल डालें, किन्तु, वह चालाँक पक्षी जालोंको तोड़-तोड़कर ही भाग जाय, तो सब पछतावैं। तैसे ही यहाँ सिद्धान्तमें वाणी-कल्पनाकी पैर और पङ्ख तो है नहीं, तो भी चीड़िया=पक्षीवत् मनकी चञ्चलतासे, भूतल=नीचे पृथ्वीरूप स्थूल-सूक्ष्म शरीरसे. उड़ करके नभ= आकाशरूप ऊपर ब्रह्माण्ड पर्यन्त चली जाती है। तहाँ वाणी कल्पनासे आकाशवत् सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक ब्रह्मकर्ता निश्चय किये हैं। कोई भ्रमरगुफामें उसको ढूँढ़ते हैं, कोई वेदवाणी आदिमें उसकी तलाश करते हैं। कोई जहाँ-तहाँ तीर्थादिमें जाके ईश्वरादिकी तलाश करते हैं। इस प्रकार मनकी कल्पना उड़-उड़के सबके पास जाके बैठी।

उसे सुन्दर देख-सुन करके इधर सब कोई उसे बझानेका या फँसाके पकड़नेका प्रयत्न करने लगे । उन्होंने सुना कि— कर्ता पुरुष परमात्मा हृदयमें वा मस्तकमें तथा ब्रह्माण्डमें सब जगह रहता है । तो उसके दर्शन-प्राप्तिके वास्ते सब कोई नाना साधनाएँ करने लगे । जप, तप, व्रत, उपवास तीर्थयात्रा, यज्ञ, दान, योग, ध्यान, उपासना, ज्ञान, विज्ञान, समाधि इत्यादि वाणीजाल फैलाके मन-कल्पनाको पकड़नेका दाव सब कोई अपने-अपने इच्छानुकूल कार्य करने लगे । परन्तु वह वाणी-कल्पना, मन-मानन्दी किसीकी पकड़नेमें नहीं आई । बल्कि उन्होंका डाला हुआ बागुर = वाणी-जालको भी तोड़-ताड़के वह बलिष्ठ कल्पना, पराय = भाग गई । तहाँ मन, बुद्धि, वाणीसे परे अवाच्य आत्मा बन गई । गर्भवासको उड़ा ले गई, और लापरवाहीसे कोई पकड़ने आया, तो वह भागी चली जाती है । मौका पाते ही हृदयमें आकर सब सद्गुणोंको चुन-चुनकर खा जाती है । ऐसी यह मन-पक्षी बड़ी दुष्ट और चालाँक है । सब बेपारखी जनोंको मन कल्पनाने चक्कर खिलाया, चौरासी योनियोंमें डाला । केवल पारखी सन्तके आगे ही उसका कुछ वश नहीं चलता है । पारखी सन्त मनको पकड़के स्वाधीन किये रहते हैं । इसलिये कल्पनाका दाव उनपर नहीं चलता है । अतएव पारखी सद्गुरु द्वारा वही युक्ति सीख करके मनको पकड़कर वाणी कल्पना और विषय वासनाको नष्ट करना चाहिये ॥ १२ ॥

साखीः— शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध । विषय बतावै वेद ॥
उपदेशै एक ब्रह्म पुनि । केहि विधि विषय निषेध ॥ १३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! आकाश तत्त्वरूप समान वायुका शब्द विषय है, सो कानोंद्वारा सुना जाता है । चञ्चल वायुतत्त्वका स्पर्श विषय है, वह त्वचा द्वारा शितोष्ण आदि जाना जाता है । अग्नितत्त्वका रूप विषय है, नेत्र द्वारा देखा जाता है । जलतत्त्वका रस विषय है, जिह्वा द्वारा षट्रस चाखा जाता है ।

और पृथ्वीतत्त्वका गुण गन्ध विषय है, नासिका द्वारा गन्ध-सुगन्ध सूँघा जाता है। इस प्रकारसे पाँच तत्त्वोंके मुख्य गुण वा विषय पाँच हैं, सो वे पञ्चज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण होते हैं। औरवे दमें भी ऐसे ही भिन्न-भिन्न करके इन्हें पाँच विषय बताया है। तथा वेदवेत्ता वेदान्ती लोग भी उक्त पाँचों विषयोंको जड़ पञ्चतत्त्वोंका गुण कहके ही बताये हैं और बता रहे हैं। इस प्रकार शब्दादि पाँचों तो जड़ विषय बन्धनरूप ठहरा। फिर उसी विषयरूप शब्द द्वारा अद्वैत एक ब्रह्म है, ॐकार या प्रणवरूप वह ब्रह्म है, "शब्दब्रह्मेति श्रुतिः" इत्यादि कथन कह करके ब्रह्मज्ञानी लोग जीवोंको एक शब्द ब्रह्मका उपदेश देते हैं। तहाँ विचार करिये, फिर किस प्रकारसे विषयका निषेध या त्याग हुआ? जब विषय, तत्त्व, ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच-पाँच हैं, उसे पहिले मानकर पीछे उसके तरफ कुछ भी ध्यान न देके आँखें मूँद, एक ही अद्वैत ब्रह्म है, और जगत् त्रिकालमें नहीं है, ऐसा कहा, तो वह कैसे साबित होगा?। विषय और जगत् तो सबको प्रत्यक्ष है। और जिस ब्रह्मको तुम सत्य बतलाते हो, उसकी प्रतीति तो किसीको भी नहीं होती है। कैसी मिथ्यावाद करते हो। जब वेदने पञ्चविषय बताया है, तो फिर एक ब्रह्म है, ऐसा तुम शब्द द्वारा ही तो कहते हो, तब वह ब्रह्म भी शब्द विषय हुआ कि नहीं? प्रणव ब्रह्म कहा है, तो वह शब्द विषय हुआ ही। अब कहो! विषयका निषेध ब्रह्मज्ञानमें किस तरहसे हुआ? अतएव माना हुआ ब्रह्म कथन शब्दका विषयमात्र होनेसे मिथ्या कल्पना है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गसे यथार्थ सत्यासत्यको जान लेना चाहिये ॥ १३ ॥

साखीः— विषय कहै चीन्है नहीं। विषय बतावै ईश ॥
सो विष विषयको पान करि। बड़े-बड़े मुये मुनीश ॥ १४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! ये वेदान्ती गुरुवा लोग कहनेको तो शब्द आदि पाँचोंको विषय विकार है, उसे त्यागना

चाहिये, ऐसा कहते हैं। परन्तु उसके अन्तर्गत कौन-कौन हैं, उसका घेरा विषय कहाँतक रहता है। इस रहस्यको यथार्थ रीतिसे वे चीन्हते या पहिचानते ही नहीं। तभी तो वाणी कल्पनासे कोई एक जगत् कर्ता ईश्वर, परमात्मा है, ऐसा बताते हैं। जो ईश्वर बताये, सो भी शब्दका ही विषय हुआ। क्योंकि, ईश्वर-ब्रह्मको निराकार माना हुआ होनेसे उसका साक्षात्कार तो किसीको हो सकता ही नहीं। इससे बताया हुआ वाणीका विषय ब्रह्म, ईश्वरादि मिथ्या कल्पना ही है। परन्तु सोई कल्पित ब्रह्म, ईश्वरादिकी मानन्दी विष मिश्रित वा हलाहल विषरूप वाणी-विषयको यथेष्ट पान करके, यानी उसे भाँगके प्याला सरीखी खूब पी करके वा ग्रहण करके पक्ष पकड़कर बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, ब्रह्मादि, सनकादि, वशिष्ठ, व्यास, शुक, दत्त, शङ्करादि विना पारख, मुये = भ्रमिक जड़ाध्यासी भये और जगत्रूप ब्रह्म वनके देह छूटनेपर मर-मरके चौरासी योनियोंमें गर्भबासको ही प्राप्त भये। अतः उसे मुमुक्षुओंने यथार्थ परखके त्यागना चाहिये। मिथ्या मानन्दीको छोड़देना चाहिये॥ अर्थात् पाँचों विषय बन्धनरूप हैं, उसे त्यागना चाहिये, तभी मुक्ति होगी, ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं। और शब्द विषयसे ही ईश्वरादिको कर्ता बतलाते हैं, उस कल्पनाको चीन्हते नहीं। सोई विषरूप वाणीका विषय नाना सिद्धान्तोंको ग्रहण करके बिना पारख बड़े-बड़े मुनीश्वर जड़ाध्यासी होके मरि गये। आवागमन चक्रमें पड़े। अतः पारखबोधको ग्रहण करके उस भ्रम धोखामें कदापि नहीं पड़ना चाहिये॥ १४॥

साखीः—शब्द विषय कँहि ब्रह्म उदय। गुरुवन कीन्हा फेर॥
मातु सुतहि विष देइ जो। तो क्या बसि बालक केर॥१५॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! अब देखिये! वेदान्तियोंने पहिले तो शब्दको विषय कह करके उसे बन्धनका कारण, विकारी ठहराया। और फिर पीछे उस बातको भूलकर

शब्द द्वारा ही ब्रह्मज्ञानका उदय या प्रकाश किया। तथा शब्दस्वरूपी ही ब्रह्म ठहराया। इस प्रकार उलट-फेर करके गुरुवा लोगोंने ढिंढोरा पीट-पीटके लोगोंकी बुद्धि फिराकर संसारमें वाणी-कल्पना फैला दिये हैं। यह तो ऐसा हुआ कि— जैसे कोई निर्दयी माता ही स्वयं अपने पुत्रको जोकि विष खिला देवे, तो उसके अबोध बालकका क्या वश चलेगा? वह तो विषके प्रभावसे अवश्य ही मर जायगा। इसी तरह यहाँपर मातावत् रक्षक बने हुए गुरुवा लोग, अपने पुत्रवत् अबोध शिष्योंको विषरूप वाणी, कल्पना, भ्रम, धोखा, ब्रह्म, ईश्वरादिको ही सत्य बता करके जो नाना प्रकारसे उपदेश देते हैं, वही बात दृढ़ा देते हैं या दृढ़ा रहे हैं; तब बालकवत् अज्ञानी अबोध संसारी मनुष्योंका वश ही क्या चले? कैसे भवबन्धनोंसे बचें, कैसे सत्यबोध हो? अज्ञानी जीव तो लाचार हो, उसी भ्रम, चक्रमें ही पड़ जाते हैं। अर्थात् शब्दको विषय भी कहे हैं, फिर शब्दसे ब्रह्मका प्रकाश भी किये हैं। ऐसे गुरुवा लोगोंने बुद्धि फिराके जीवोंको फेरा या घनचक्रमें डाल दिये हैं। गुरुवालोग ही धोखा देके शिष्योंको कल्पनामें डाल रहे हैं, तो अबोध मनुष्योंकी क्या शक्ति चले कि, वे भ्रम, कल्पना छोड़ सकें? अतएव गुरु, शिष्य, दोनों ही जड़ाध्यासी हो, आवागमनमें घूम रहे हैं, बिना पारख ॥ १५ ॥

साखीः—शब्द आदि पाँचों विषय। करैं आचार्य बखान ॥
शब्द विषय ठहरायके। भजन कहैं भगवान् ॥१६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! सुनो! वेद-वेदान्तके ज्ञाता व्यास, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, शङ्कर आदि आचार्योंने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध, ये पाँचों विषय जड़, विकारी, तथा जीवोंको बन्धनदाई हैं; ऐसा वेद-वेदान्त आदि शास्त्रोंमें बखान या वर्णन किये हैं, और पण्डित, आचार्य लोग भी अभी वैसे ही वर्णन करते हैं। इस प्रकार एक तरफ तो शब्दको विषय ठहरायके त्याज्य

बतायके निषेध किये हैं। दूसरे तरफ शब्दको प्रणव या ॐकार ब्रह्म, परमात्मा, षट्गुण-ऐश्वर्य संयुक्त भगवान् वा वेद भगवान्, ठहरायकर उनके शब्दोच्चार द्वारा नाम स्मरण, भजन, कीर्तन, पाठ, प्रार्थना, आदि करनेको कहे हैं; और ब्रह्म उपासना, ध्यान, धारणा, आदि ॐकारको शब्द ब्रह्म मानके करते-कराते हैं। इस तरह यहाँ शब्दको ही विधि-विधान किया है। विवेकसे देखिये! उन्होंकी कितनी उल्टी समझ हुई है। अगर शब्द विषय तथा बन्धनकारी है, तो उससे स्थापित किया हुआ ब्रह्म, ईश्वरादि समस्त सिद्धान्त भी बन्धनरूप ही होते हैं। माना हुआ भगवान् भी शब्द विषयका विकार ही ठहरता है। उसका कल्पनासे भजन, कीर्तनादि तथा जापादि करनेको जो कहे हैं, सो सब भी वाणी जाल ही है। अतएव इनके सिद्धान्तमें मिथ्या धोखाके सिवाय और कुछ भी सार नहीं है। उनके सङ्गत, तथा पक्ष त्यागनेमें ही मुमुक्षुओंकी भलाई है, ऐसा जानिये! ॥ १६ ॥

साखीः—अपने मुखकी बारता। सुनै न अपने कान ॥
जो ठहरै शब्द विषय। तो विषय ब्रह्म भगवान् ॥ १७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! ये वेदान्ती लोग तो पक्के बहिरे, मूढ़ ही हो गये हैं। क्योंकि, वे लोग स्वयं अपने मुखसे बोली हुई वार्ताको भी अपने कानसे सुनते तक नहीं। केवल दूसरोंको ही सुनाते हैं। मैं क्या बोल रहा हूँ, उसके तात्पर्यको भी वे कुछ समझते नहीं। मानो॰ पागल ही बन गये हैं। अपने ही मुखसे तो शब्दको प्रथम विषय ठहराये हैं, विषय निषेध करना, ब्रह्मको निर्विषय कहना, यह उनके अपने मुख्य वार्ता या मुख्य सिद्धान्त है। किन्तु, पश्चात् उसे अपने ही कानसे सुनते नहीं। अर्थात् सत्य, असत्यका विचार, विवेक करनेमें कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं। पहले खण्डन करके पीछे उसीको मण्डन भी करते हैं। ब्रह्मको मन, बुद्धि,

वाणीसे परे अवाच्य कहते हैं। फिर उन्हीं शब्द-मनादिके द्वारा ब्रह्मका प्रतिपादन भी करते हैं। कैसी इनकी उल्टी समझ है। जो कि, यदि असलमें शब्द विषय अग्राह्य बन्धनरूप ठहरा, तो उस शब्द द्वारा निरूपित ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, देवी, देवता, भगवान्, खुदा, आदि सब भी मिथ्या वाणीकी कल्पना खाली कहने-सुननेमात्रका निरर्थक शब्द विषय ही सिद्ध हुआ। तुम्हारे यावत् कथन, सिद्धान्त शब्द विषय ठहरनेसे दोषयुक्त बन्धनकारी ही हुए, अतएव यह तो महान् बन्धनका जाल ही हुआ। ऐसा जानके उसे त्यागनेमें ही कुशल है। अर्थात् ये पक्षपाती लोग अपने मुख्य सिद्धान्तकी पहिली वार्ताको पीछे अपने ही कानोंसे सुनते नहीं। यानी उसपर कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं, विचार नहीं करते हैं। जो पहलेके कथनसे शब्द तो विषय ठहर ही गया, फिर शब्द द्वारा भगवान्, ब्रह्म, परमात्मा, आदि कहा हुआ क्या विषय नहीं हुआ? वह सब कथन भी वाणीका विलास सरासर शब्द विषय ही साबित हुआ। अतएव वह माना हुआ ब्रह्म आदि सत्य चैतन्य सार वस्तु नहीं हैं। सत्यासत्यको परखके उसे पहिचानकर भ्रम, भूलको त्यागना चाहिये ॥१७॥

साखीः—कबीर व्यापक पदमिनी । व्याप रही संसार ॥
ते सुत जाये ब्रह्म एक । ताहि कहै कर्तार ॥ १८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! कबीर = कायाबीर चैतन्य नरजीवोंके हृदयमें पहले एक कल्पना स्फुरित हुई। सोई परा, पश्यन्ती, मध्यमा, होते हुए वैखरीमें आयके एकपाद उच्चारित हुई कि— कोई एक व्यापक पद है। सोई मुखके पादने बाहर वाणी या शब्दके आकार धारण किया। फिर तो वह पदमिनी = वाणी धीरे-धीरे सारे संसारमें व्याप्त होके फैल रही। यानी कल्पना सब ठिकाने प्रचार हो गया। पीछे उसी पदमिनी, वाणीरूप लक्ष्मी स्त्रीने पुरुष नरजीवके संसर्गसे एक अनूपम वा अद्भुत पुत्रको कल्पनाकी योनि

द्वारा ही उत्पन्न किया। जिसका नाम ब्रह्म, परमात्मा रक्खा। जब वह सिद्धान्त क्रमशः परिपुष्ट होके बड़ा हुआ, तब सारे गुरुवा लोग उसे चराचरके कर्ता, विश्वपति, विराट पुरुष, परमेश्वर, परब्रह्म, निरञ्जन, निराकार, निर्गुण, अद्वैत, व्यापक कहने लगे। आजतक उस कल्पनाकी ऐसे ही मिथ्या प्रशंसा होती चली आ रही है। सब कोई ब्रह्मको कर्ता पुरुष कहते हैं, परन्तु उसका कहीं ठौर-ठिकानाका पता ही नहीं लगता है। इससे हे नरजीवो! वाणीकी संशय, कल्पना ही ब्रह्म होके अनुमानसे सब संसारमें व्यापक मानी जा रही है, उस ब्रह्मको ही कर्तार कहे हैं, सो तो वाणी कल्पनासे उत्पन्न हुआ, मिथ्या धोखा है। सो उसे यथार्थ जानके भ्रमको त्यागो॥ १८॥

साखीः— कबीर पदारथ पदमिनी। माने तीनों लोक॥
सोई पद चीन्हें बिना। देत पदारथ शोक॥ १९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! कबीर = भ्रमिक नरजीवोंने, पदमिनी = कल्पित वाणीके प्रमाणसे पदारथ = पदका अर्थ करके नित्यमुक्त, नित्यतृप्त, निराकार, निर्गुण व्यापक एक ब्रह्म पदार्थ निश्चय किये। तब उसे तीनोंलोक = योगी, ज्ञानी, भक्त वा त्रिगुणी साधक आदि सब लोगोंने मन-मानन्दीसे, स्वर्ग, मृत्यु, पाताल, ये तीनों लोकोंमें पूर्ण भरा हुआ ब्रह्मको मान लेते भये। परन्तु सो ऐसा पद-पदार्थ भी कहीं है? कहीं भी नहीं। किन्तु सोई ब्रह्मपद ही तो नरजीवोंकी मानन्दी मिथ्या वाणीकी कल्पना, भ्रम, धोखा है। यथार्थ विवेकसे उसे परीक्षाकर मुख्य बातको चीन्हें बिना या जाने-पहिचाने बिना-धोखासे सब भूलमें पड़े हैं। इसी कारण माना हुआ वह कल्पित ब्रह्म पदार्थ जो है, सो सब साधक मनुष्योंको हर तरहसे, शोक = दुःख ही दे रहा है। यानी वही डबल दुःखका कारण हो रहा है। जीतेतक ब्रह्म प्राप्ति आदिके लिये नाना साधना करके दुःख पाते हैं, जड़ाध्यास वश हो, अन्तमें शरीर छोड़के चारखानी-के गर्भवास, जन्म, मरण तथा त्रय तापादि दुस्सह दुःख भोगते रहते

हैं। बिना पारख वाणी कल्पनासे तो ब्रह्म, ईश्वरादिको तीनों लोकोंका कर्ता सर्वश्रेष्ठ सब गुरुवा लोगोंने मान लिये हैं। परन्तु निज पदको जाने बिना, धोखामें पड़के जड़ाध्यासी भये हैं। इसीसे जीवको वह अध्यास ही जन्म-जन्मान्तर पर्यन्त शोक, कष्ट, दुःख, त्रयताप आदिमें डालके दुःख देता ही रहता है। अतएव जीते ही परखकर खानी, वाणीको अध्यासोंको छोड़ देना चाहिये, तभी यथार्थ सुख होगा॥१९॥

साखीः—कबीर पदारथ पद विषय। चीन्है नाहीं कोय॥
अन्ध हाथ जस दर्पण। दिनहिं अँधेरा होय॥२०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— कबीर = हे नरजीवो! तुम्हारा माना हुआ एक ब्रह्म पदार्थ जो है, सो तो पद = शब्द या वाणीका कथन उच्चारित विषय ही है। बिना विवेक तुम लोग कोई भी उसे चीन्हते या पहिचानते नहीं हो, यही तुम्हारी बड़ी भारी भूल है। पदसे ही तो पदार्थकी सिद्धि होती है। किन्तु वस्तु सत्य हो, तो उसका नाम भी सत्य होता है, यदि वस्तु ही मिथ्या हो, तो नाम कैसे सत्य होगा? वह तो सहज ही मिथ्या ठहरेगा। तैसे गुरुवा लोगोंने ब्रह्म, ईश्वरादि जो पदार्थ माने हैं, निराकार, निर्गुण, आदि ठहरानेसे वह असली कोई पदार्थ ही नहीं ठहरता है। वह तो सिर्फ पदका विषय वाणीकी कल्पनामात्र है। इसलिये कल्पना करनेवाला जीव सत्य है, और ब्रह्म, ईश्वरादि असत्य है। परन्तु पारख बिना यह कोई भी गुरुवा लोग चीन्हते नहीं। इसीसे भ्रमचक्रमें पड़े हैं। जैसे अन्धेके हाथमें दर्पण या ऐना भी हुआ, तो वह क्या मुख देखेगा? अरे! उसे तो दिनमें सूर्यके महाप्रकाशमें भी कुछ नहीं दिखता है, दिन ही में भी धुन्ध अँधेरा है, तब रात्रिमें चन्द्रमाके या दीपकके प्रकाशमें दर्पणको हाथमें लेके अन्धा क्या रूप देखेगा? कुछ नहीं। तैसे ही पक्का जन्मान्ध पारख दृष्टि हीन गुरुवा लोग काँच या शीशाके दर्पणवत् वेद, शास्त्र, पुराण, कुरानकी वाणी लिखित पुस्तक अपने

हाथोंमें लेके जिस-तिस प्रकारसे पढ़कर उसमें अपने स्वरूप देखना चाहते हैं। अर्थात् वेदादि पढ़कर स्वरूप ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं? तो कैसे होगा? अरे! उन्हें तो दिनरूप चैतन्यजीवकी ज्ञान प्रकाशमें ही, अन्धेरा = महा अज्ञान भ्रम गाफिली हो रही है। तो वे अपने स्वरूपको क्या जानेंगे? इतना भी तो वे जानते नहीं कि— वेदादि वाणी सब नरजीवोंने कल्पना करके बनाया है? किन्तु, वेद-वाणीको गुरुवा लोग ईश्वरकृत मानते हैं, यही दिनमें अँधेरा हो रहा है। क्योंकि, वे अन्धे पक्षपाती बने हैं। इसलिये उन्हें यथार्थ बात मालूम पड़ता ही नहीं। सद्गुरुने बीजकमें कहा है:—

रमैनीः— "अन्ध सो दर्पण वेद पुराना। दर्वी कहाँ महारस जाना॥ १॥
जस खर चन्दन लादेउ भारा। परिमल वास न जानु वगाँरा॥ २॥
कहहिं कबीर खोजे असमाना। सो न मिला जो जाय अभिमाना॥ ३॥"
॥ बीजक, रमैनी ३२॥

इसलिये यहाँ रहस्यको कहा कि— हे जीव! ब्रह्म कोई पदार्थ नहीं है। किन्तु, पद या वाणीकी कल्पित शब्द विषयमात्र है। यह कोई चीन्हते नहीं। अन्धे मतवादियोंने स्वरूप देखनेको दर्पणवत् वेदादिको हाथोंमें पकड़ लिया है। तो भी दिन = ज्ञान, समझ, बोधमें आवरण पड़के अन्धेरा छाया है, गाफिल पड़े हैं। इसलिये सत्य पारख बोध उन्हें होता नहीं। अतः भ्रमिकोंके सङ्गत करनेमें कोई लाभ नहीं है, पारखी सन्तोंका ही सत्सङ्ग करना चाहिये॥ २०॥

साखीः—कबीर पदार्थ पद अर्थ जो। सो तो विषय देखाय॥
और पदारथ कौन है?। पण्डित! कहो बुझाय॥२१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! यहाँपर पद या शब्दका जो अर्थ निकलता है, वही पदार्थ या शब्दार्थ ठहरता है। इसलिये सो माना हुआ ब्रह्म, ईश्वरादि तो पदरूप वाणीका अर्थ या पदार्थ, सरासर विवेक करनेसे प्रत्यक्ष वाणीका विषय ही दिखाई देता

है। फिर उसके अतिरिक्त पदके अर्थको छोड़के और पदार्थ है, तो कौन है ? कैसे है ? कहाँ है ? हे पण्डित ! बुद्धिमानो ! मैं तुम लोगोंसे ही पूछता हूँ, निष्पक्ष होके पदार्थ बात निर्णय करके समझाय, बुझायके तुम मुझसे कहो । फिर मैं उसे विचार करके सत्य, मिथ्याका पहिचान, फैसला करके बतलाऊँगा । अर्थात् नरजीवोंने जो ब्रह्म पदार्थ एक अनूपम निर्गुण, निराकार, पूर्ण आदि लक्षण वर्णन करके माने हैं, सो पदका अर्थमात्र अनर्थ कल्पित शब्दका विषयमात्र दिखता या दिखलाता है । फिर वाणीको छोड़के अवाच्य कहा हुआ और ब्रह्म पदार्थ कौन है ? उसके जितने भी लक्षण कहा गया है, सो सब तो निषेध सूचक है । वह तो कोई पदार्थ सत्य नहीं है । हे पण्डित ! जरा समझ-बूझके कहो ? मिथ्या पक्ष धोखाको छोड़ो ॥ २१ ॥

साखीः— कबीर अपने रूपको । कहै जो प्राप्ति होय ॥
ऐसा भ्रम जेहि ऊपजा । सो जियरा गया बिगोय ॥ २२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! कायावीर कबीररूप चैतन्य नरजीवोंसे जो गुरुवा लोग ऐसा कहते हैं कि— हे जीव ! तुम्हें अपने स्वरूपको प्राप्त कर लेना चाहिये । ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा आदि इनमेंसे कोई एक तुम्हारा स्वरूप है, उनसे तुम पृथक् हो गये हो, अब उपासना, योग, ध्यान, ज्ञान आदिकी साधना करो, तो तुम्हें फिर निज ब्रह्मस्वरूपकी प्राप्ति होगी, इत्यादि जो कहते हैं, और अपना स्वरूप कहीं भिन्न है, साधना द्वारा उसकी प्राप्ति होगी, ऐसा महाभ्रम-भूल जिसमें उत्पन्न हुआ, सो नरजीव अपने हंसपदसे बिगड़के जड़ाध्यासी हो गया, वह शरीर छूटनेपर चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़ जायगा, ऐसा जानो । जैसे बाँशमें फूल, और चींटीके पङ्ख आनेपर वे विनष्ट हो जाते हैं, तैसे भ्रम उपजनेपर जीव भी मुक्तिपदसे गिर पड़ते हैं । एक कथामें कहा हैः— एक बन्दर और मगर या ग्राहमें मैत्री हो गई, नदी तटमें जामुनके वृक्षमें फल पके थे ।

बन्दर अपने फल खाता, कुछ नीचे गिरा देता, जिसे ग्राह भी खाता, कुछ घर ले जाके स्त्रीको देता। इस तरह कुछ दिन बीतनेपर मगरकी स्त्रीने कहा, ऐसे मीठे फल खानेवालेका मैं तो कलेजा ही खाना चाहती हूँ, तुम उसे पकड़ करके लाओ, ऐसा कहके स्त्रीने हठ पकड़ ली। लाचार हो मगर आके कहा—बन्दर भाई! तुम तो मेरे पक्के मित्र हो, चलो तुम एक दिन हमारे घर देख आओ, आओ! तुम मेरे पीठपर बैठो, मैं तुम्हें नदी पार करा देता हूँ, वहाँ बहुत अच्छे-अच्छे फल मिलेंगे, इत्यादि कहा। उसकी बात सुन, विश्वास करके बन्दर जाके मगरकी पीठपर बैठ गया, नदीके बीचमें ले जाके मगर डूबने लगा। उस बन्दरने कहा—अरे! मित्र! यह क्या करते हो? मगरने कहा— मेरी स्त्री तुम्हारा कलेजा खाना चाहती है, इसीसे मैं तुम्हें डुबा रहा हूँ! बन्दर सम्हलके झट बोला— अरे! इतनेके लिये ही है, तो सुनो! मैंने अपना कलेजा निकालके तो उसी वृक्षमें टाँग रखा हूँ, अब वह मेरे पासमें कहाँ है? वहीं किनारेमें कहा होता, तो मैं अपना कलेजा उतारके तुम्हें वहीं दे देता। मेरे पासमें कलेजा नहीं है, तभी तो मैं उछल-कूद करता हूँ, वृक्षपर चढ़ता हूँ! चलो, जल्दी वहाँपर पहुँचा दो, तो वृक्षसे उतारकर कलेजा तुम्हें दे दूँगा, फिर उसे लेते जाना। मगरने भी उसकी बातमें विश्वास करके, फिर बन्दरको किनारेमें ला दिया, बन्दर कूदके वृक्षपर चढ़ गया। ऊपरसे उसपर विष्टा गिरा करके बोला— देखो! यही मेरा कलेजा है, कहके जङ्गलमें भाग गया॥ तैसे ही सिद्धान्तमें बन्दररूप गुरुवा लोगोंने नाना उपदेशरूप फलको संसार नदीमें गिराया, जिसे मगररूप अज्ञानी मनुष्योंने सुन-सुनके ग्रहण किया। तब किसीको गुरुके स्वरूप वा अपने स्वरूप कलेजावत् केवल ब्रह्म प्राप्तिकी इच्छा हुई, गुरुवा लोगोंसे वह स्वरूप प्राप्ति करानेको कहे, तो उन्होंने कहा, ठीक है, तुम्हारा-हमारा स्वरूप तो ब्रह्म वृक्षमें लटका है, चलो घर-बार त्यागके नदी तटमें, वनमें, बैठके साधना करो, तो आत्मस्वरूपकी प्राप्ति

होगी। ऐसा सुनके जिज्ञासु नरजीव उनके पीछे लगे, तो अन्तमें अपने सिद्धान्तके स्थानमें आके गुरुवाने विघ्नावत् कल्पित वाणी छोड़ा कि— ब्रह्म सर्वव्यापक जगत्‌रूप है, सो तुम ही हो, इत्यादि कथन करके वे भाग खड़े हुए, विचार छोड़ दिये। इधर ये धोखेमें पड़के पछताते रह गये, हाथ कुछ न आया, इत्यादि ॥

इस दृष्टान्त-सिद्धान्तसे यही सिद्ध हुआ कि, अपना स्वरूप कहीं बाहर नहीं, जो कि प्राप्त होगा। निज स्वरूप तो स्वयं प्राप्त; सर्वदा नित्य, सत्य ही है। स्वयं स्वरूपको प्राप्त ही क्या करना है? जो भी वस्तु प्राप्त होगी, सोई अपनेसे भिन्न होनेसे जड़कार्य ही होगा। वह निजस्वरूप कदापि नहीं हो सकता है, और ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा, खुदा आदि जो माने हैं, सो तो मिथ्या धोखा वाणीकी कल्पनामात्र है, तब प्राप्ति तो भी क्या होगी? कुछ नहीं, फिर ब्रह्मको व्यापक कहा है, तो प्राप्त होता है, कहना बड़ा भ्रम है। ज्योति आदि भास, तत्त्वोंका प्रकाश जड़ है, सो निजस्वरूप नहीं। इसलिये जो जीव अपने स्वरूपको अप्राप्त बतलाकर अन्य उपायद्वारा प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। सो भ्रमिक बेपारखी, अविचारी ही हैं। जिसको ऐसा भ्रम, संशय उत्पन्न होके दृढ़ होता है, सो जीव निश्चय ही मनुष्यपदसे बिगड़कर, अध्यासी हो, चौरासी योनियोंको गया और जाता रहेगा। अतएव पारख करके स्वयं प्राप्त निज स्वरूपको समझना चाहिये ॥ २२ ॥

साखीः— अपनेको जाना चहै। कहै जो ऐसा बोल ॥
कहहिं कबीर सो जीयरा। भया सो डांमाडोल ॥ २३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! ये भ्रमिक गुरुवा लोग तो पञ्चविषयसदृश अपने स्वरूपको भी भिन्न बतालाकर, उसे जानना-जनाना चाहते हैं, तथा मैं अपने स्वरूपको प्रत्यक्ष देखके जानना चाहता हूँ, ऐसा अविचारकी बोली या वाणी जो

बोलता है, सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहा है कि— सो जीव बड़ा भ्रमिक है, अतः सो डामाडोल = पारखस्वरूपकी स्थिति हुए बिना, चञ्चल, डोलायमान्, जड़ाध्यासी हो गया है। इसलिये वह आवागमनके चक्रमें पड़ गया है, बार-बार देह धरता, छोड़ता हुआ, दुःख ही भोगता रहेगा। क्योंकि, उसने अपने स्वरूपको क्या जड़-वस्तु या पाँच विषयके सरीखी भिन्न समझ रखा है ? तो जो ऐसा समझ रखा है, तो वह अनित्य नाशवान् ही है। उसे जान भी लिया, तो क्या लाभ हुआ ? जो कहता है कि— मैं अपनेको जानना चाहता हूँ, इससे तो वह और सबको जाननेवाला, जनैया स्वयं ज्ञानस्वरूप द्रष्टा साबित हो गया। फिर वह अपनेको जानेगा क्या ? और कैसे ? ध्यानमें दिखता हुआ ज्योति, अग्नितत्त्वका प्रकाशरूप विषय है, अनहद, शब्द विषय है, आनन्द, अमृत रस, तथा कमलका गन्ध क्रमशः स्पर्श, रस और गन्ध विषय हैं। उसको जानकर जीव तो न्यारा ही रहा, बिना पारख इस भेदको या स्व-स्वरूपको कोई समझकर जान नहीं सकते हैं, और अपनेको भ्रमसे ब्रह्म, ईश्वर, वा उसके अंश मानकर जो कोई ऐसा बोली कहते हैं कि— "अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म", इत्यादि वेदके महा-वाक्यके प्रमाणसे ब्रह्मस्वरूप ही अपनेको जान लेना चाहिये, तो निश्चयसे सो नरजीव डामाडोल या बिना स्थितिके चञ्चल, बद्ध, आवागमनका अधिकारी हो गया है। ऐसे जड़ाध्यासी जीवके मुक्तिकी कोई आशा नहीं है। सत्यन्यायी श्रीकबीरसाहेबने यही निर्णय करके कहे हैं। अतः पारखबोधसे सब कसरको परखना चाहिये ॥ २३ ॥

साखी— पूर्व आचार्य वेदान्तके । निरूप करें अद्वैत ॥
केहि निरूप उपदेशहीं । भीतर भासे द्वैत ॥ २४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते कहते हैंः— हे जिज्ञासुजनो ! पूर्व

या प्रथम प्राचीनकालमें बड़े-बड़े वेदान्त शास्त्रके अधिष्ठाता आचार्य व्यास, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य आदि हुए हैं। तत्पश्चात् शंकराचार्य आदि कयीएक वेदान्ताचार्य हो गये हैं। उन्होंने वेद-वेदान्तके प्रमाणसे अद्वैत ब्रह्मका निरूपण किये हैं। उसी प्रमाणसे अबके वेदान्ती लोग भी एक अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है, ऐसा निरूपण करते हैं। अब उसमें विवेक करिये कि— अगर एक अद्वैत ही है, एक ब्रह्मके सिवाय दूसरा कुछ है ही नहीं। तब वे लोग अद्वैत ब्रह्मका निरूपण करके किसको उपदेश देते हैं। क्या ब्रह्म अपने आपको उपदेश करता है? कि दूसरेको? अपने आपको मैं एक हूँ, या ब्रह्म अद्वैत है, कहकर बतानेकी कोई आवश्यकता ही नहीं। इसलिये यह सिद्ध हो गया कि— उनके भीतर अन्तःकरणमें द्वैतकी दुगदुगी भ्रान्ति लगी ही थी। बाहर अद्वैत एक ब्रह्म है, कहते हुए भी भीतर द्वैतकी भास उन्हें भासता ही था। अगर अपनेसे भिन्न दूसरा कोई न भासता, तो वे अद्वैत निरूपण करके उपदेश ही किसको देते। दूसरे मनुष्योंको देखके ही तो उपदेश दे रहे हैं। अतः वे सब भ्रमिक मिथ्यावादी ही भये हैं ॥ २४ ॥

साखीः— व्यास कहै जग है नहीं। हुवा न कबहूँ होय ॥
कहहिं कबीर उपदेश केहि। कारण कहिये सोय ॥ २५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! वेदान्त शास्त्रके कर्ता व्यासजी ऐसा कहते हैं कि— जगत् या संसारके नाम-रूप वास्तवमें कदापि सत्य नहीं है। जो कुछ सत्य है, सो ब्रह्म ही एक अद्वैत है। पूर्वमें न कभी ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति हुई है, और न कभी पश्चात्में ही जगत्की उत्पत्ति होगी। अर्थात् त्रयकालमें जगत्का अस्तित्त्व ही नहीं। चराचर द्वैत जगत् नहीं है! नहीं है!! नहीं है!!!

"एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति"—"ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या"— नेत्र मूँदकरके ऐसा वाक्य कहा है। तहाँ पारखी सन्त श्रीकबीरसाहेव कहते हैं—

अगर असलमें ऐसा ही तुम्हें निश्चय है, तो यह बताओ, वेद, वेदान्तका उपदेश, ब्रह्मज्ञानका कथन तुम किसको और किस कारणसे कहते हो ? । एक ब्रह्म है, दूसरा कोई नहीं है; तब उपदेश देनेका क्या काम ? गुरु-शिष्य होनेसे क्या काम ? ब्रह्मको विधि-विधानसे निरूपण कर जगत्को मिथ्या कहकर निषेध करनेका क्या काम ? ब्रह्म सत्य है, और जगत् नहीं है, ऐसा तुम किससे कहते हो ? जब तुमने अन्य लोगोंको उपदेश दिया, तो द्वैत सहज ही सिद्ध हो गया। ब्रह्मको तुम क्या समझते हो, जड़ कि, चैतन्य ? जड़ कहोगे, तो पाँच तत्त्व जड़का विस्तार संसार प्रत्यक्ष ही दृश्य है। यदि चैतन्य कहोगे, तो अनन्त देहधारी जीव चैतन्य प्रत्यक्ष मौजूद ही हैं। अगर चराचरमें व्यापक ब्रह्म कहोगे, तो वह असम्भव बात होनेसे तुम्हारा भ्रम मिथ्या धोखा ही है। सब एक होता, तो उपदेश कौन, किसको देता ? उपदेश देनेका क्या कारण है ? सो कहो ? जब तुम जगत्में रहके, फिर जगत् जीवोंको ही उपदेश दे रहे हो, फिर भी जगत् है नहीं, ऐसा कहना, कितना मूर्खतापूर्ण अविचारकी बात है। जैसा कोई वाचाल कहै— देखो भाई ! मेरे मुखमें जिभ्या तो है नहीं, किन्तु, मैं ईश्वरीय शक्तिसे उपदेश दे रहा हूँ ! सो मेरे वचनको मानो, तो उस वञ्चकका कथन मूर्खताके ही ठहरेंगे। तैसे ही इन वेदान्तियोंकी बात भी व्यर्थ ही है, ऐसा जानिये ! ॥ २५ ॥

साखीः— कबीर दीपक एक जो । लेसकै करै अँधेरी दूर ॥
सब अँधेरी सकेरिके । रही गाँड़ितर पूर ॥ २६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! रात्रिमें जो किसीने एक दीपक जलाया, तो वह, लेसकै = उजियाला, प्रकाश करके उस स्थानके अँधियाराको दूर कर देता है। परन्तु सब अन्धकारको समेटकरके, हटाकर वह अँधेरी उसी दीपकपात्रके गाँड़ितर = नीचेके स्थानपर पूर्णरूपसे छाया रहता है। अर्थात् दीपकका उजियाल,

चौतरफ तो प्रकाश करता है, किन्तु अपने नीचे प्रकाश कर नहीं सकता है। इसीसे "दीयाके तले अँधेरा" वा "गाँड़ तरे अँधेरा" ऐसा कहावत प्रसिद्ध है। इसी प्रकार सिद्धान्तमें वेदान्ती गुरुवा लोगोंने जो कि, वेद-वेदान्त शास्त्रके प्रमाणसे दीपकवत् एक अद्वैत ब्रह्म-सिद्धान्तकी वाणी मुखद्वारा जगत्में चेताये या जलाये। ब्रह्मज्ञानका प्रकाश वा प्रचार कर अज्ञान, अविद्यारूप मायाकी द्वैत भासका खण्डन करके कहनेको तो बाहरकी अँधेरी दूर किये, संसारमें वे ज्ञानी-विज्ञानी कहलाये। परन्तु अँधेरी अविद्यामायारूप सब चराचर जगत्को समेट करके सर्वाधिष्ठान आप ही एक ब्रह्म भये। तहाँ जगत् त्रिकालमें नहीं है, मैं-ब्रह्म ही सत्य हूँ, ऐसा कहते भये। इसलिये सारा महाअज्ञान, गाफिली, धोखा, भ्रम, भूल, जड़ाध्यास, इत्यादि समस्त विकार महा अन्धकार उनके गाँड़ितर = हृदयके भीतर ही पूर्णरूपसे जमा होके रहती भई। अधिष्ठान होनेसे सब विकारका मूल बीज वे आप ही होते भये। इच्छामाया पूर्णब्रह्ममें ही गुप्त होके बैठ रही। उसीसे "एकोहं बहुस्याम्" करके जगत् विस्तार होता ही रहता है। अतएव भ्रमरूप ब्रह्म अध्यास चौरासी योनियोंके चक्रमें भ्रमानेवाला है, उस भ्रमको परखके त्यागना चाहिये ॥ २६ ॥

साखीः— माया बैठी ब्रह्म होय। अद्वैत आवर्ण ॥
जग मिथ्या दरशायके। पैठी अन्तःकर्ण ॥ २७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु मनुष्यो! मायारूपी गुरुवा लोग वेद-वेदान्तकी वाणीके प्रमाणसे आप स्वयं ही ब्रह्म होयके व्यापक मानन्दी करके एक देशमें बैठे हैं। असलमें मायारूप कल्पित वाणी ही ब्रह्म होयके उनके हृदयमें जाके बैठी है। इसलिये अद्वैत कथनका अवर्ण = अज्ञानका बड़ा परदा उनपर पड़ा हुआ है। वर्णसे रहित निःअक्षर, अवर्ण एक ही सर्वत्र पूर्ण, ऐसा लक्षणवाला अद्वैत ब्रह्म कहा है। तथा मायाको भी अनिर्वचनीय, अचिन्त्य शक्तिवाली

माना है। सो वाणीरूपी माया ही वैसे विचित्र ब्रह्म होके गुरुवा लोगोंके मनमें जमके बैठी है। उसने अपने मिथ्या कल्पना, दुराग्रह, पक्ष, अविवेकसे दृश्य जड़, चैतन्यरूप स्वतः सत्य अनादि जगत्को भी वेदान्त कथनके प्रकरणमें धोखासे मिथ्या रज्जू-सर्पवत् प्रतीतीमात्र, तीन कालमें असत्य ऐसा भ्रम दर्शायके, अधिष्ठान ब्रह्म सत्य है, ऐसा बतलायके पुनः वेदान्तियोंके अन्तःकरणमें जाके घुस पड़ी, उन्हें शून्य, गरगाफ करके जड़ाध्यासी बना दी। अतएव वे बेपारखी भ्रमिक लोग सब अध्यासवश ब्रह्म-जगत्के रहटामें पड़के, जन्म, मरणादिके चक्रमें गिर पड़े, महाबन्धनमें जकड़ गये। बिना विवेक ॥ २७ ॥

साखीः— कबीर माया रामकी। भई रामते शेष ॥
व्यापक सब कहैं राम है। राम रमामय देख ॥ २८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! माया = काया, छल-कपट, वाणी, कल्पना, मानन्दी, ये सब तो, रामकी = चैतन्य जीवोंकी सत्ता-सम्बन्ध देह द्वारा प्रगट होती हैं। परन्तु वही जीवकी माया, मोह, वाणी, अनुमान, आदि संसारमें राम = रमैयाराम चैतन्य जीवसे विशेष शक्तिशाली तथा बाकी सबसे श्रेष्ठ होती भयी। क्योंकि, उसी वाणी कल्पनाके आधारसे सब कोई भ्रमिक गुरुवा लोग और ही कोई एक आत्माराम मानकरके उसे सर्व-व्यापक परिपूर्ण भरा है, ऐसा कहते हैं। इसलिये राम स्वयं चैतन्य-जीव जब खानी, वाणीमें रमा, तब तन्मय होकर या रमामय = वाणी कल्पनारूप ही होकर भ्रमसे जगत्-ब्रह्म सबको एक अधिष्ठान आत्मामें मानकर एक अद्वैतस्वरूप देखने लगा। अर्थात् कबीर = हे जीव ! मायारूप खानी, वाणी तो चैतन्य जीवकी शक्तिसे ही उत्पन्न भयी हैं। किन्तु अविवेकके कारणसे संसारमें वह माया, जीवसे भी श्रेष्ठ हो रही है या मानी जा रही है। सब कोई वाणीके प्रमाणसे

एक आत्माराम सर्वव्यापक है, ऐसा कहे और कह रहे हैं। इसलिये नरजीव आप ही कल्पनामें तदाकार हुआ—जगत्‌को ब्रह्मरूप देखते हैं। वह मिथ्या धोखा है, ऐसा कोई बिरले ही पारखदृष्टिसे परख कर उसे यथार्थ देखते वा जानते हैं ॥ २८ ॥

साखीः— कबीर माया रामकी । चढ़ी रामपर कूद ॥
हुकुम रामका मेटिके । भई रामते खूद ॥ २९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! चैतन्य जीवरूप रामकी शक्तिसे ही अध्यास सम्बन्ध करके मन माया, काया बनी है। फिर तन-मनके आधारसे, विषय-वासना तथा वाणी कल्पना, अनुमान, भास आदि उत्पन्न हुये। पीछे वही खानी, वाणीके अध्यास-रूप माया उछल-कूद करके रमैया राम चैतन्य जीवके अन्तःकरणमें चढ़ी। रामपर ऐसे कूदके चढ़ी कि, उसे धर दबायी। जड़ाध्यासी, भ्रमिक बना दी। जीवसे उठी कल्पनाने जीवको ही धोखा भव-बन्धनमें डाल दिया। फिर तो अज्ञानका ऐसा रङ्ग चढ़ा कि गाफिल हो गये, और वह माया, कल्पना, मन, अज्ञानके नशामें चूर, मदमस्त होनेसे, राम = सत्य चैतन्य जीवके, हुकुम = आज्ञा, स्वरूप स्थिति [जीव सत्य है, स्व-स्वरूपमें स्थिर होकर मुक्त होना चाहिये। यह सद्गुरुकी आज्ञा] को भी मेट-मिटाय करके विस्मृत कर दिया। जीवकी सत्तासे ही मन कल्पना बढ़ते हुए जीवसे भी विशेष प्रधान खुद मालिक कर्ता, धर्ता, हर्ता, जगदाधिष्ठान आत्मा ही हो गया। जीवकी सत्ता प्रवाह मेटके खुद मुख्तियार, सर्वेसर्वा भयी है। इससे जीव लाचार होके मन-मानन्दीके अधीन दबकर, भवबन्धनके कैदमें पड़े और पड़ रहे हैं, बिना पारख ॥ २९ ॥

साखीः— कबीर अक्षर शुद्धमें । निकसै अर्थ न कोय ॥
मात्रा सन्धि बेकारते । पण्डित अर्थी होय ॥ ३० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! खाली अकेले ही

"क से क्ष" तक शुद्ध एक-एक अक्षरमें तो कोई भी विशेष अर्थ निकल नहीं सकता है, और उन अक्षरोंमें जब मात्राएँ लगाई जाती हैं, तब अ, उ, म, अर्ध, बिन्दु ये पाँच मात्राएँ, सन्धि = सम्बन्ध, मेल, अक्षरोंका जोड़, त्रयलिङ्ग, इत्यादि कई एक विकार संयुक्त होनेसे तब कहीं पण्डित लोग, अर्थी = अर्थ करनेवाले होते हैं। मात्रा-सन्धि संयुक्त शब्द समूह, पदोंको देख करके ही पदच्छेद, अन्वय, टीका, टिप्पणी, भाष्य, शब्दार्थ, भावार्थ, पद-पदार्थ, ध्वन्यार्थ, व्यंग्यार्थ, खुलासा इत्यादि पण्डित लोग कह सकते हैं। उसके बिना कुछ कह नहीं सकते हैं। तैसे ही सिद्धान्तमें शुद्ध अक्षर = शुद्ध, अविनाशी, चैतन्य, जीवमात्रमेंसे कोई भी, अर्थ = मतलब, खानी-वाणी आदिकी विस्तार निकल नहीं सकती है। किन्तु, जीव जड़ाध्यास संयुक्त है, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चतत्त्व और उसके विषय वासनाके सन्धि-सम्बन्धमें देहधारी भये हैं। इसोसे विषय-विकार तथा वाणी कल्पनादिकी मानन्दीसे ही बुद्धिमान् लोग नाना अर्थवाद प्रगट करनेवाले, चतुर, पण्डितादि होते हैं। अथवा गुरुवा लोगोंने माना हुआ शुद्ध, अक्षय, अविनाशी, केवल ब्रह्म, निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, निरीह, सर्व-व्यापक, सर्वाधिष्ठान, एक आत्मा है। विचार करिये! तो उसमें खास कोई अर्थ निकलता ही नहीं। वह सब निषेधकारक शब्द होनेसे अनर्थ ही प्रगट होता है। तब फिर उस कल्पित ब्रह्मकी इच्छासे जगत् कैसे बनेगा? जगत् तो स्वतः अनादि ही है। यदि पहिले जगत् नहीं था, तो पीछे कहाँसे आया? इच्छामात्रसे तो कोई भी वस्तु नहीं बन सकती है। यदि ऐसा कहो कि—पञ्चतत्त्वों-की पञ्चमात्राओंकी सन्धि विकारसे जगत् बना, उसमें ब्रह्म व्यापक हुआ। तो यह भी तुम्हारी कल्पना मिथ्या है। इधर जीव ही अध्यासवश देह धारण करके, वेद-शास्त्रादि पढ़-पढ़कर पण्डित बनके नाना अर्थ करनेवाले होते हैं। अतः जीव सत्य है, ब्रह्म मिथ्या है, ऐसा जानो! ॥ ३० ॥

साखीः— अक्षर मात्रा सन्धि मिलि। भासै अर्थ विचार ॥
मात्रा सन्धि जुदा किये। पण्डित होय गँवार ॥ ३१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— जब चौंतीस अक्षरोंमें सोलह स्वर और पाँच मात्रा, तीन सन्धि, तीन लिङ्ग, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, इत्यादि संयुक्त होके परस्पर मिल जाती हैं या ऐसा मिलाया जाता है, तब उस पद समूहका विचार करनेसे नाना प्रकारके अर्थ, तात्पर्य, पण्डितजनोंको भासता है, या मालूम पड़ता है, और अक्षर, मात्रा, सन्धि आदि उक्त सब साधन मिले हुए वेद-वेदान्तादि ग्रन्थोंका अध्ययन करके शब्दका विचारकर कोई एक ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, आदि कर्ता पुरुष निराकार व्यापक है, ऐसा अर्थ भास होता भया। सोई भासको श्रेष्ठ मान करके भासक जीव भूलमें पड़ गये, और जब पञ्चमात्रा, पञ्चतत्त्वकी जड़सन्धिसे या मानन्दीसे चैतन्य जीवको, जुदा = न्यारा वा पृथक किया गया। जड़, चेतनको अलग-अलग निर्णय करके उनसे पूछा गया कि— बताओ, तुम्हारा ईश्वर वा ब्रह्म अब कहाँपर है? तब तो पण्डित लोग निपट गँवार या मूर्ख ही हो गये। वे कहने लगे चराचरमें परमात्मा व्यापक है, जड़-चैतन्य न्यारा-न्यारा करके तो वह कहीं भी नहीं ठहरता है। इसलिये न्यारा नहीं, वह सबमें भरा हुआ है, ऐसे गँवारी हठ पकड़ने लगे, बिना विवेक ॥

अथवा जीव, पाँच तत्त्व और अध्यासका सम्बन्ध मिलके ही नरदेह बनता है। तब वाणी, खानीका निर्माणकर नाना अर्थका विचार भासता है। यदि मात्रारूप विषयादिसे, सन्धि = सम्बन्ध जुदा किया गया, तो पण्डित जन भी बुद्धि गँवाके मौन हो जाते हैं। मन आदिसे सम्बन्ध विच्छेद होनेपर कोई विचार आदि हो नहीं सकता है॥

अथवा अक्षर प्रणवरूप ॐकार कल्पित ब्रह्ममें पाँच मात्राओंकी सन्धि मिली, तब मनुष्योंको नाना अर्थ विचारकी भास हुई। अगर

ॐकारमें मिले हुए पाचों मात्राओंकी सन्धि तोड़कर भिन्नकर दिया, तब तो ब्रह्मके कुछ अस्तित्त्व न ठहरनेसे ब्रह्मज्ञानी पण्डित गँवार-मूढ़ ही हो जाते हैं । अतः ब्रह्म कुछ नहीं, सिर्फ जीवकी भ्रममात्र है ॥३१॥

साखीः— बरण सन्धि वाणी रची । मात्रा भरनी दीन्ह ॥
जगत ईशकी चूनरी । पहिरि कबीरा लीन्ह ॥३२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— बरण = वर्ण, अक्षर, चौंतीस अत्तर, सोलह स्वर, त्र, ज्ञ, एकत्र मिलायके ५२ वर्ण प्रगट किये हैं । उसीमें पञ्चमात्रा लगाय, भिन्न-भिन्न सन्धियाँ ज़ोड़कर वाणीकी रचना किये हैं । जिससे ४ वेद, ६ शास्त्र, १८ पुराण, १४ विद्या, ६४ कला, और कुरान, बाइबिल आदि बहुत-सा वाणो समूह, ग्रन्थोंकी रचना होती भई, और जैसे तानामें सूतके भरनी देते हैं और साड़ी तैयार करते हैं, सोई स्त्रियाँ पहिर लेती हैं, तैसे ही अक्षर-समूह वाणियोंको बाँधने, जोड़ने, ग्रन्थ निर्माण करनेके लिये पण्डित गुरुवा लोगोंने अकार, उकार, मकार, इकार और बिन्दु ऐसे पञ्च-मात्राओंकी भरनी जहा-तहाँ लगा दिये हैं । मनकी कल्पना, भाव-कुभाव सब वाणीमें भर दिये, लिख दिये हैं । वेद-शास्त्रादिमें इधर जगत्में वर्णाश्रम पालनकी व्यवस्था, उधर ब्रह्म, ईश्वरादिकी महिमा खूब बढ़ा दिये हैं । रोचक-भयानक वाणीका विशेष विस्तार किये हैं । वाणीसे ही कर्म, उपासना, योग, ज्ञान, विज्ञान, ये पाँच मार्ग, षट् दर्शन—९६ पाखण्डोंका पसारा कर रखे हैं । सबसे अधिक भक्ति-मार्गकी महिमा बढ़ाये हैं । इसलिये जगत्में संसारी मनुष्योंने गुरुवा लोगोंका आधार पकड़कर ईश्वरादि प्राप्तिके लिये नवधा-भक्ति-रूपी चुनरी = चित्र-विचित्र भेषोंकी नाना रूप, नाना रङ्गकी साड़ी सब भ्रमिक भक्त लोगोंने स्त्री-भाव धारण करके, अपने-अपने अङ्गोंमें पहिर लिये हैं । कल्पित ईश्वर पतिको रिझानेके लिये गाय, ध्यायके नाच, तमाशा कर रहे हैं । परन्तु वह तो मिथ्या धोखा मनकी कल्पना

है। उससे लाभ तो कुछ नहीं होता है, व्यर्थ ही जन्म बिता रहे हैं, बिना विवेक। अर्थात् जगत्की चुनरी, विषयी लोगोंने पहिरे और भक्तोंने ईश्वरकी चुनरीरूपी भक्तिको पहिरके भूल गये ॥ ३२ ॥

साखीः— सूत पुराना जोड़ते। बैठ बिनत दिन जाय ॥
बरण बीनि वाणी किये। जोलहा परा भुलाय ॥ ३३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— जैसे पुराना सूत जोड़ते-जोड़ते बैठकर ताना बिनते-बिनते दिन तो चला जाता है। कपड़ा तैयार होनेपर फटा हुआ ही निकलता है, तो जुलाहा बड़ा भूलमें पड़ जाता है कि—यह क्या हुआ? मेहनत बेकार गई। इसी प्रकार सिद्धान्तमें पुराण पुरुष सूत्रधारी चैतन्य-जीव वासनावश देह-बन्धनमें पड़ा हुआ है। मनुष्य जन्ममें आया, तो कर्मभूमिका होनेसे अनेकों जन्मों-का पुराना सूतरूप नाना वासनाओंको जोड़ते-जोड़ते देहमें बैठके सङ्कल्प-विकल्प करके कर्मोंको बिनते-बिनते दिनरूप आयु समग्र खतम हो जाती है। तो भी निजस्थितिको प्राप्त नहीं हो सकते हैं, जिन्दे हैं, तबतक वर्ण, आश्रम, जाति, पाँति, मान, बड़ाई इत्यादि सांसारिक आचार-विचारको ही विनके या चुन-चुनके संस्कार बनाये वा वना रहे हैं। इसीमें जोलहा = जो कल्पनादिको लहा सो जीव निजपदको भूल पड़ा। इसीसे जड़ाध्यासी होकर शरीर छूटने-पर चारखानी चौरासी योनियोंके महाचक्रमें गिर पड़ा। उसका बुना हुआ सब शरीर फटता ही गया, छूटता गया, कुछ भी काममें नहीं आया ॥

अथवा दूसरा अर्थः— सूत पुराना = नरजीवकृत प्राचीन कल्पित वाणियोंको जोड़ते, संग्रह करते, पढ़ते, पढ़ाते, और अनुमान, कल्पनाकी भूमिकामें बैठकर वाणीको बिनते-बिनाते, श्लोक, छन्द, प्रबन्ध, कविता, गद्य, पद्य आदिकी रचना करते-करते तथा भाषामें कवित्त, छन्द, सवैया, छप्पै, अरिल्ल, सोरठा, दोहा, साखी, इत्यादि पद बनाते

कण्ठाग्र करते-कराते, इसी प्रकार सारा दिनरूपी नर-जन्मकी आयु बीती चली जाती है। किन्तु, निजस्वरूपका बोध, बिना पारख कहीं किसीको नहीं होता है। बावन वर्णरूप अक्षरोंको बीन-बीनके अपने मतलबके माफिक शब्द समूह चुन-चुनके वाणी रचना किये। उसीसे चार वेद, षट्शास्त्र आदि बहुतेरी वाणी जाल बनाये, और जो कल्पना भ्रमको लहा, सो जोलहा = मानुष जीव उसीमें निज-पदको भूलके गिर पड़ा। मुक्तिके बदले और महाबन्धनोंमें जा पड़ा। इस प्रकार बिना पारख अनादिकालसे जीव सब वाणी, खानीके जालमें फँसे पड़े हैं। कोई बिरले ही पारखी उससे छूटकर मुक्ति पदको प्राप्त करते हैं ॥ ३३ ॥

साखीः— जो सबके उरमें बसी। ताहि न चीन्है कोय ॥
देवलोकमें उर बसी। ताहूके उर सोय ॥ ३४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— जो वाणी, कल्पना, अनुमान, भास, अध्यास, विषयासक्ति सब मनुष्य जीवोंके, उरमें = अन्तःकरणमें दृढ़ होके बैठी है, जिसमें सकल जहान मोहित हो रहे हैं। सो खानी जाल और वाणी जालको तो कोई चीन्हते ही नहीं, कि—वही जीवोंको बन्धन है। तथा स्त्री और गुरुवा लोग एवं ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि कल्पनाको भी कोई चीन्हते नहीं कि— वही काल है। परन्तु मूर्ख लोग कहते हैं कि— देवलोक, स्वर्गलोक, वा इन्द्रलोकमें कहीं एक अति सुन्दरी मनमोहिनी उर्वसी नामकी अप्सरा रहती है, उसके रूप क्रीड़ा देखते ही बनता है। अरे! यह कथन तो असत्य है। क्योंकि, जब स्वर्गलोक, देवलोकादि ही कल्पित मिथ्या है, तो वहाँ अप्सरा स्त्री कहाँसे आयेगी? किन्तु, यह सब भ्रम, भूलकी भावना, कल्पनादि मनुष्योंके हृदयमें ही बसी हुई है। स्वर्गादि सात लोकोंमें तैंतीस कोटि देवताओंकी मानन्दी लोक-लोकादिका अनुमान, ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, खुदा आदिकी भ्रम, विषय-वासना, इत्यादि सम्पूर्ण विकार

सो तो उसी मनुष्योंके अन्तःकरणमें बीजरूपसे गुप्त होके टिके हुए हैं। जो उरमें बसी है, सोई समय पायके, देवलोक = कण्ठस्थानमें आयके मध्यमा वाचासे, कर्मलोक = वैखरी वाणीमें आयके उतरती है। उसी वाणीको देख-सुन करके, सब मोहित-आकर्षित हो जाते हैं। इसलिये जिसने वेद, पुराणादि ग्रन्थ बनाया, उसीके हृदयमें भी सोई भ्रम-कल्पना ही बैठी रही। उसे न चीन्हके सब भूलसे धोखामें पड़े और पड़ रहे हैं, बिना पारख ॥ ३४ ॥

साखीः— कबीर सब घर अपछरा । देवन दै बरताय ॥
आपको छरै सो अपछरा । चितवत मोहा जाय ॥ ३५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! गुरुवा लोगोंने कहा है कि— देवलोक, वा स्वर्ग लोकादिमें सुन्दरी अप्सराएँ रहती हैं; वे देवताओंको नाच-गाके, रिझाये रखती हैं, और तपस्या भङ्ग करानेके लिये इन्द्र आदि उन्हीं अप्सराओंको भेजते हैं, इत्यादि कथन तो कपोलकल्पित, मिथ्या ही है। असल बात तो यह है कि, बाहर सबोंके घर-घरमें अप्सरारूपी स्त्रियाँ घुस-घुसके पुरुषोंको हाव, भाव, कटाक्षसे छलकर वश कर रही हैं। प्रथम ब्रह्मादि त्रिदेवोंने भी वही विषय-भोगकी प्रेरणा, प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञा, संसारमें बरताय दिये या बाँट दिये हैं, प्रचार कर दिये हैं। जो आप पुरुषोंको छले या अपने पतिसे भी छल, कपट करे, सो स्त्री ही अप्सरा है। जिसे देखते ही वा चिन्तवन करते ही विषयी पुरुष तुरन्त मोहित हो, आसक्त हो जाते हैं। अतः बन्धनका मूल कारण स्त्री ही है ॥

अथवा कबीर = देहधारी मनुष्य जीवके, सब घर = सबोंके घटोंघटमें, अपछरा = अपने जीवको छलनेवाली कल्पना, वाणी, अभिमान, मानन्दी, अध्यास, भ्रम, भूल, बैठ रही है, और देवन = गुरुवा लोग उपदेश देनेवालोंने भी, दै = नाना प्रकारके वाणी वेद,

शास्त्रादिके उपदेश दे-देकरके संसारमें वाणी कल्पना आदिको ही बरताय दिये हैं, यानी उपदेश बाँट-बाँटके प्रचार कर दिये हैं। अब वे पूर्वके गुरुवा लोग, अभी देवता कहलाते हैं, किन्तु, वे ही यमराज बने थे, और जो अपने-आप जीवको छलै, धोखामें डालै, बन्धनमें पाड़ै, सो वाणीजाल कल्पना ही डाँकिनी, अपछरा है। वेद, वेदान्त, पुराण, कुरान, आदिकी वाणीको देखते ही, तथा ईश्वर, ब्रह्म, खुदा आदिका चिन्तन करते ही मनुष्य भ्रमिक होके मोहित हो जाते हैं। अपने सुधि-बुधि खोके धोखामें गरगाफ हो जाते हैं। बिना विचार उसे ही सत्य मान-मानके मूढ़, पतित हो जाते हैं। इसवास्ते मुमुक्षुओंको चाहिये कि— पारखी सत्यन्यायी साधु गुरुके सत्सङ्ग, विचार, विवेक द्वारा खानी, वाणी जालको भलीभाँति परखकर परित्याग कर देवें। कहीं भूले नहीं, पारखस्वरूपकी स्थिति करे, तो बन्धनोंसे रहित हो जायेंगे ॥ ३५ ॥

साखीः— परी श्रवण द्वारे सोई । ताको परा बखान ॥
बसी हियेमें आयके । सोइ पश्यन्ती जान ॥ ३६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! गुरुवा लोगोंने चार वाचाका स्थान इस प्रकार माने हैं कि— परावाचा नाभि स्थानमें, पश्यन्तीवाचा हृदयमें, मध्यमावाचा कण्ठमें और वैखरीवाचा मुखमें कहे हैं। परन्तु विवेकदृष्टिसे निर्णय करिये, तो उसका स्थान दूसरा ही मालूम पड़ता है, सो कैसे कि— गुरुवा लोगोंके मुखसे निकला हुआ शब्द, उपदेश नाना प्रकारसे जो शिष्योंके श्रवणद्वारमें सुनाई पड़ा, उसीसे ब्रह्म, ईश्वरादिका निश्चय हुआ। सो उसीको बाहर सबसे परे परावाणी, आध्यात्मिक उपदेश, ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान, ऐसे नामसे वर्णन किये हैं। अर्थात् जो कल्पितवाणी कानमें पड़ी, उसे ही परा वा परात्पर ब्रह्म बखान करते हैं, और वही वाणी कल्पना, भ्रम, वाणी सुननेके पीछे जब हृदयमें आयके, दृढ़ निश्चय होके बैठ

गई कि— एक अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है, सो ब्रह्म मैं हूँ, मन-ही-मनसे ऐसे कल्पित स्वप्न देखने लगा, सोई पश्यन्ती वाणी जानना चाहिये। फिर निज कल्पनाको हृदयमें देखते हुए उसे ही सत्य जानना या मानना, पश्यन्तीवाचा कहलाता है, ऐसा जानिये! ॥ ३६ ॥

साखीः—पश्यन्तीसों निश्चय भई। मध्यमा कहिये सोय ॥
बोलै जिभ्या द्वार होय। सो तो वैखरी जोय ॥ ३७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और जो बात अपने ही अन्तःकरणसे निश्चय हो जाती है, सो पक्की होती है। इससे पश्यन्ती वाणीसे मैं ब्रह्म या आत्मा सर्वत्र चराचरमें परिपूर्ण व्यापक, ओत-प्रोत हूँ! वेद प्रमाणसे अधिष्ठान आत्मा मैं ही हूँ! तो मैं विधि-निषेधसे न्यारा हूँ! ऐसा जो निश्चय दृढ़ भया, अपरोक्ष हुआ, सोई मध्यमा वाणी कहलाता है। जीव और जड़के मध्यमें वह मानन्दी रहती है, इसीसे उसे मध्यमा कहते हैं। कण्ठ-स्थानमें उसे माने हैं। पश्चात् जिभ्या द्वारा तालु, दन्त, ओष्ठादि स्थानोंका स्पर्श करके मुख खोलके, जो शब्द बाहर उच्चारण करके बोला जाता है, सोई तो वैखरी वाणी है। उसीसे सारा पिण्ड-ब्रह्माण्ड एक ब्रह्म स्वरूप ही बतलाकर दिखलाते हैं। वाणी तो सत्य ही बोलना चाहिये, किन्तु, गुरुवा लोग खोटी या झूठी वाणी ही बोलते हैं। अपने भ्रममें पड़े हैं, दूसरोंको भी भ्रमा-भ्रमाके धोखामें डाल देते हैं। अतः उनके चारों वाचा जीवोंको बन्धनकारी हैं, ऐसा विवेकसे देखिये! ॥ ३७ ॥

साखीः—परा पश्यन्ती मध्यमा। वैखरी भई ज़ो तीन ॥
कहहिं कबीर यह वैखरी। चीन्है सो परबीन ॥ ३८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! चार वाचाका निर्णय यही है कि— कानमें जो वाणी पड़ी, सो परा कही गई, वह वाणी हृदयमें स्थित हुई, सो पश्यन्ती भई, और हृदयमें दृढ़ निश्चय होनेके उपरान्त कण्ठमें आई, सो मध्यमा बनी, ये तीन वाणियोंको

छोड़के जो बोलकर मुखसे प्रकाश करता है, सोई चतुर्थ वैखरी वाचा प्रगट भई। जो कि, उन तीनोंके सहायक तथा जनक होता है। इसलिये वैखरीके बिना परा, पश्यन्ती, मध्यमा, इन तीनोंकी कुछ भी शक्ति चल नहीं सकती है। यदि पहिले वाणी सुना ही नहीं, तो क्या विचार करेगा? क्या निश्चय करेगा? और क्या कहेगा? और वैखरीको छोड़के तो तीनों वाणी पंगु हैं, वे आगे कोई विशेष कार्य नहीं कर सकती हैं। कह-सुनकर ही सब कार्य सम्पादन होता है, बोध होता है, सत्यासत्यकी विवेक-विचार निर्णय होता है। इसलिये सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने यही वैखरी वाणीको पहिचान करनेके लिये कहा है:—

दोहाः— "बोल तो अमोल है, जो कोइ बोलै जान ॥
हिये तराजू तौलिके, तब मुख बाहर आन ॥" २७६ ॥
"वाणी ते पहिचानिये! शब्दहिं देत लखाय ॥" बी० सा० २८१॥
"अन्तर घटकी करनी, निकरे मुखकी बाट ॥" बी० सा० ३३०॥

अतएव कोई प्रवीण विवेकी पारखी सन्त ही इस वैखरी वाणीके भेदको गुरुमुख निर्णयसे यथार्थ चीन्हते हैं, और जो पारखी सद्गुरुकी सत्सङ्गद्वारा यह वैखरीको चीन्हते या पहिचानते हैं, सोई प्रवीण, बुद्धिमान्, विवेकी होते हैं। वेदादि सब वाणियोंको वे जीवकी कल्पना ही समझते हैं, अतः भ्रम, भूलमें नहीं पड़ते हैं ॥३८॥

साखीः—श्रवण मनन सो वैखरी। निजध्यासन साक्षात् ॥
परा प्रकाशके ज्ञानको। स्वयं कहै वेदान्त ॥३९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और पहिले, सो वैखरी वाणीको ही सद्गुरु द्वारा श्रवण करके फिर भीतर मनद्वारा मनन या विचार, चिन्तन होता है, फिर बुद्धिद्वारा बार-बार ठहरानेसे निदिध्यासन या दृढ़ निश्चय होता है, तत्पश्चात् निश्चयके अनुसार ही साक्षात्कार भास होता है। इस तरह सबका मूल वैखरी ही हुआ, और वैखरीसे

बोला हुआ शब्द कानमें पड़ा, तो श्रवण हुआ, मध्यमामें मनन, पश्यन्तीमें निदिध्यासन, और परामें जाके साक्षात्कार हुआ। अथवा कोई श्रवण, मनन, ये दोनोंको वैखरीमें लेके, निदिध्यासनको मध्यमामें तथा साक्षात्कारको पश्यन्तीमें कहते हैं, और फिरपरा वाचासे प्रकाशित हुआ ब्रह्मज्ञानको वेदान्ती लोग स्वयं है, या स्वयं प्रकाश ब्रह्म है, ऐसा कहते हैं। परन्तु उनके कानमें जब गुरुवा लोगोंकी वाणी पड़ी, तभी ब्रह्मको व्यापक प्रकाशरूप मानके ब्रह्मज्ञानको संसारमें प्रकाशकर प्रचार किये, और कहने लगे— मैं स्वयं ब्रह्म हूँ। वही बात वेद-वेदान्तमें भी लिख दिये हैं, अब उसीका पक्ष पकड़के वेदान्ती लोग कहते हैं कि— वेद, वेदान्त = उपनिषद् आदिमें भी कहा है कि— परा ज्ञानका प्रकाश स्वयं है। वह अपरोक्ष आत्मज्ञान पराविद्याका हृदयमें प्रकाश होते ही सकल अविद्या नष्ट होकर जीव ब्रह्मस्वरूप ही हो मुक्त हो जाता है। ऐसी महिमा बढ़ाये हैं, सो भ्रम कल्पना ही है। गुरुनिर्णय द्वारा उसे परखकर भूल मिटाना चाहिये ॥ ३९ ॥

साखीः— श्रवण मनन निजध्यासन । साक्षात्कार जो होय ॥
परा प्रकाशको ज्ञान यह । चीन्है बिरला कोय ॥ ४० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! वैखरी वाणीको श्रवण करके उसीको मननकर अपनेमें अध्यास संस्कार जमायके निदिध्यासन द्वारा, जो कुछ दृढ़ निश्चय कर लेते हैं, सोई पीछेसे भास, अध्यासरूपमें साक्षात्कार होता है। इस प्रकार पहिले गुरुवा लोगोंकी वाणी सुनकर, मनमें गुनकर, निश्चय करके, जो "अहं ब्रह्मास्मि वा सर्वं खल्विदं ब्रह्म" का साक्षात्कार या दृढ़ मानन्दी भी हुआ, तब भी मिथ्या धोखा ही है। क्योंकि, उनका माना हुआ श्रेष्ठ पराविद्या आत्मज्ञान तो जब कानमें वाणी कल्पना पड़ा, तब जाके कहीं यह ब्रह्मज्ञानका प्रकाश हुआ। पढ़े-सुने बिना तो ब्रह्मज्ञान

किसीको भी प्रकाश नहीं हुआ था, इसलिये यह कानोंका शब्द विषयमात्र ठहरा, और जड़-चेतनमें पूर्ण व्यापक ब्रह्म, आत्मा वा ईश्वरादि तो कोई नहीं है, और वेदान्ती लोग एक अद्वैत सर्वव्यापक ब्रह्म अपनेको मानते हैं, सो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे असिद्ध होनेसे मिथ्या धोखा ही है। यदि ब्रह्म एक ही होता, तो ब्रह्मबोधके लिये श्रवण, मनन आदि करनेका क्या काम? जब श्रवणादि साधना करनेके पश्चात् ही जो ब्रह्मज्ञानका साक्षात्कार होता है, तो यह परम्परासे प्रकाश होनेवाला, पराज्ञान परोक्ष तथा कल्पित है, अतः उनका बोध मिथ्या है, उससे जीवका कुछ भी कल्याण हो नहीं सकता है। इस ब्रह्मज्ञानकी कसर-खोटको कोई निष्पक्ष सत्यन्यायी, विवेकी, पारखी सन्त बिरले ही परखकर निर्णय करके यथार्थ चीन्हते या पहिचानते हैं कि— ब्रह्म मानना मिथ्या धोखा है। जो उनके सत्सङ्गमें आते हैं, उन्हें भी वे परखाय देते हैं, भ्रम-भूल मिटाय देते हैं। अतः पारखज्ञान सत्य है, और ब्रह्मज्ञान मिथ्या है, ऐसे निर्णयसे जानना चाहिये ॥ ४० ॥

साखीः— अन्धे परम्परायके । देखो तिनको न्याव ॥
राते शब्द शब्दार्थ करि । गुण अकाशको भाव ॥ ४१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और अन्धे लोगोंकी परम्परा या परिपाटी चाल यही है कि, देखनेवालोंका भी दोनों आँखें फोड़के अन्धा बना देना। नकटोंका परम्परा नाक कटाके नकट्टा बनाना है। तैसे ही अन्धे = पारख दृष्टिहीन इन ब्रह्मज्ञानी आदि गुरुवा लोगोंके यहाँ, परम्परा = पीढ़ी, दरपीढ़ी, पुस्तनपुस्ता पूर्व-प्राचीनके गुरुवा लोगोंके समयसे अर्वाचीन या अभी वर्तमान समयतकके समस्त वेदान्ती गुरुवा लोग बड़े भारी भ्रम-धोखेमें पड़े, और पड़ रहे हैं, अब विवेकदृष्टिसे उन्होंके न्याव = न्याय, निर्णय वा वास्तवमें अन्यायको तो देखिये! कि— आकाश = शून्य, पोल, जिसमें भाव,

गुण, आकार, धर्म, शक्ति, क्रिया, सम्बन्ध इत्यादि कुछ भी नहीं है। तहाँ मिथ्या भावनासे एक तो शब्दको आकाशका गुण वा विषय ठहराकरके कर्ण ग्राह्य माने हैं। फिर ब्रह्मको आकाशवत् निराकार, निर्गुण माने हैं। जब आकाश निराकार है, तो सूक्ष्माकारवाला उसके शब्द गुण होना ही असम्भव है। फिर उसी शब्दद्वारा अर्थ करके शब्दार्थमें ॐकारको शब्द ब्रह्म निश्चय करके उसीमें राते = प्रेम करके रत, गाफिल, आसक्त होते भये। तो भी तो उनके पूर्व कथनके अनुसार भावनासे आकाशका गुण माना हुआ शब्द एक विषय है, सो प्रणव ब्रह्म भी माना, तो शब्द विषय ही वह ठहरा। अब कहो, उसके जनैया जीव तो उससे सदा न्यारा ही है। फिर वह शब्दरूप ब्रह्म स्वयं ही कैसे हो सकता है ?। अथवा ब्रह्मका अंश जीव भी कैसे होगा भला ? पारखहीन अन्धे वेदान्तीजन परम्परासे ही अन्याय, अविचारसे जीवको ब्रह्मरूप या उसका अंश ठहराते आ रहे हैं। किन्तु उस ब्रह्मका तो कहीं पता ही नहीं लगता है। अतः कहीं जगत्-रूप ही ब्रह्म ठहराकर, कहीं ॐकार शब्दस्वरूप ब्रह्म मानकर, कहीं आनन्दरूप ब्रह्म ठहराकर उसी धोखामें मगन भये। आकाशका गुण शब्द वही ब्रह्म, ऐसे कुभावना करके भ्रमिक जड़ाध्यासी भये हैं। बिना पारख चौरासी योनियोंमें गोता लगाते भये। इसे परख करके त्यागना चाहिये ॥ ४१ ॥

साखीः— कबीर काली सुन्दरी। भई सो पूरण ब्रह्म ॥
सुर नर मुनि भरमायके। कोइ न जाने मर्म ॥ ४२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— महाकाली, भगवती, आदिमाया स्वयं ही पूर्णब्रह्म होती भई, तहाँ उसने सुर, नर, मुनि आदिको भ्रमायके खानी, वाणीके जालोंमें फँसाई, परन्तु उसकी मर्म पारख बिना कोई जानते नहीं। अथवा हे कायाबीर-कबीर ! नर-जीवो ! पूर्ण ब्रह्म होनेवाली काली कलूटी सुन्दरी नारी कौन है ? क्या तुम

उसे जानते हो? यदि नहीं जानते हो, तो सुनो! मैं बतला देता हूँ। कबीर = नरजीवोंके कल्पनासे उत्पन्न, काली सुन्दरी = काली-स्याहीसे सफेद कागजपर लिखी हुई वेद-वेदान्त आदिकी वाणी है, जिसे लेखकने सुन्दर गोल-गोल अक्षरोंमें लिख रखा है। उसमें महिमाका शृङ्गार बहुत सजाया है। जिसे देख-सुनके सबकोई मोहित, लुब्ध, आकर्षित हो जाते हैं। सो वही कल्पित वाणी बाहर परिपूर्ण ब्रह्म होती भई, और उस काली सुन्दरी वाणीको आलिंगन करके उसके पतिरूप नरजीव भी साथ ही कल्पना, भ्रमसे एक अद्वैत पूर्णब्रह्म अपनेको ही मान लेता भया। अर्थात् एक कोई पूर्ण ब्रह्म है, ऐसा वेदान्तकी वाणीमें ही तो लिखा है। इससे केवल वाणी ही ब्रह्म होती भई। नहीं तो ब्रह्म कोई वस्तु नहीं, भ्रममात्र है। परन्तु उस वाणी कल्पनाने, सुर = देवतारूप सत्त्वगुणी मनुष्य, ज्ञानी, नर = रजोगुणी मनुष्य, कर्मी, भक्त और मुनी = मननशील तमोगुणी मनुष्य, तपस्वी-योगीलोग, इत्यादि सकल सिद्ध-साधक मनुष्योंको भ्रमायके महाधोखा, भ्रमचक्र, महाबन्धनमें डाल दी, नीचे गिरा डाली। तथापि पारख बोध बिना इस बन्धनकारी वाणी कल्पनाके मर्म = भेद या रहस्यको, कि—यह सब प्रकारसे त्याज्य है, उसे कोई विवेक करके जानते, पहिचानते नहीं। इसलिये वाणी प्रमाणसे ब्रह्म बन-बनके चौरासी योनियोंके चक्रमें भटक रहे हैं, बिना पारख ॥ ४२ ॥

साखीः— कबीर काली सुन्दरी । भई जगतकी ईश ॥
ब्रह्मादि सनकादि जग । सबै नवावैं शीश ॥ ४३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! आदिमाया सबपर स्वयं मालिक होके बैठी, उसीके चरणोंमें ब्रह्मादि सबोंने शिर नवायके मानते भये! अथवा, काली सुन्दरी = कागजमें काली स्याहीसे लिखी हुई कल्पित वाणी जो है, सो दूसरे तरफ जाके वही जगत्कर्ता परमेश्वर, परमात्मारूप भी वर्णन होती भई। अर्थात् कोई

ईश्वर जगत्का कर्ता है, ऐसा वेद, शास्त्रादिकी वाणीमें लिखा है। किन्तु जड़-चैतन्ययुक्त जगत् तो स्वतः अनादि स्वयं सिद्ध है, इसको बनानेवाला कर्ता ईश्वर तो कोई है नहीं। इसलिये वह रोचक वाणी कल्पना ही जगत्में ईश्वर या सर्वश्रेष्ठ होती भई। अतएव ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ये अगुवे गुरुवा लोग और सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद, भृगु आदि सप्तऋषि इत्यादि उनके पछुवे, अनुयायी शिष्य लोग तथा जगत्में मौजूद योगी, ज्ञानी, भक्तवर्ग आदि वे सब लोगोंने महामाया, भगवती, सरस्वतीरूप वाणी, कल्पनाको ही झुक, झुकके अपने-अपने शिर नवाये। उसके सामने सब दीन, हीन, मलीन, हतबुद्धि होगये। वेद-पाठ, गायत्री-जाप, नित्य, नैमित्यिक षट्कर्मों-का आचरण, चारवर्ण, चार आश्रमोंके नियम पालन करते रहे। अर्थात् ब्रह्मादि, सनकादिकोंने भी कोई एक जगत्कर्ता निराकार, निरञ्जन परमेश्वर मानके, शिर नवायके आदिमायाकी स्तुति किये। बिना पारख वाणी कल्पना और खानीके ही फन्देमें वे सब पड़े। जड़ाध्यासी हो आवागमनमें पड़े। कोई पारखी ही उसको पहिचानते हैं ॥ ४३ ॥

साखीः— कबीर काली सुन्दरी। बैठी ईश्वर होय ॥
ब्रह्मादि सनकादि जग। जोवैं मुख सब कोय ॥ ४४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— आदिमाया ही सर्वोपरि ईश्वर होके बैठी तहाँ ब्रह्मादि सबोंने दीन होके उसके मुख ताकते भये। अथवा हे नरजीवो! काली सुन्दरी= काली स्याहीसे कागजमें लिखी हुई वाणी ही कल्पनासे बाहर कोई एक सृष्टिकर्ता ईश्वर होयके बैठी है। सोई वाणी पढ़-सुनके सब नरजीव बिनाविचारे ईश्वरकर्ताको मान रहे हैं। और पहले जगत्में ब्रह्मादि गुरुवालोग तथा सनकादि चेलेलोग जो उत्पन्न हुए, उन्होंको पारख बोध नहीं हुई। इसलिये उन सबोंने भी कल्पित ईश्वर, ब्रह्म आदिकी दर्शनकी आशासे आँखें, मुख

खोल-खोलके चारों वेदोंको पढ़े, जोवैं = देखे, सुने, गुने और नाम-स्मरण, पाठ, पूजा, धारणा, ध्यान, समाधि आदि नाना उपाय करके सब कोईने पिण्ड, ब्रह्माण्डमें लक्ष लगायके देखे, शून्य आकाशमें त्राटक करके टकटकी लगाये, जगत्में दशों-दिशामें ढूँढ़े, परन्तु वह निराकार ईश्वर कहीं किसीको भी नहीं मिला। और वेदमें उसके नाम, महिमा लिखा हुआ देखे। अन्तमें हारकर अगम, अथाह, अपार, ऐसा मान करके महा गाफिलीमें पड़े। तैसे ही अभी गुरुवालोग शिष्यसहित धोखेमें ही पड़े हैं। बिना पारख ॥ ४४ ॥

साखीः— कबीर काली सुन्दरी । बैठी अल्लह होय ॥
पीर पैगम्बर औलिया । मुजरा करे सब कोय ॥ ४५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और उसी प्रकारसे वह काली सुन्दरी आदिमाया-नारी मालकिन होके बैठी, तहाँ उसने सुन्नति आदि करनेकी हुकुम प्रदान करी, सोई बात मानके पीर, पैगम्बर, औलिया आदि सबकोईने उसके मुजरा किये वा बन्दना करते भये, और वही स्त्रीने शुरूसे ही— मुसलमान आदि सबोंके घरमें भी घुसके उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करडाली है। अथवा हे नरजीवो! तुरुकोंके यहाँपर भी वही काली स्याहीसे कागजपर लिखी हुई हुरूफ या अक्षर सुन्दरी वाणी, कलाम, कल्माके वचन भई, जो कि, कुराने शरीफके प्रमाणसे दुनियाँमें एक अजब अल्लाह होयके जमके बैठ गई। अर्थात् कुरानके कलाम (वाणी) से कोई एक अल्लाह है, ऐसा कल्पना मुसलमानोंके अन्तःकरणमें दृढ़ होके बैठ गई है। अतएव पूर्वमें भये हुये पीरसाहब = गुरुवा लोग, पैगम्बर = मूसा, ईशा, मोहम्मद आदि धर्माचार्य लोग और औलिया = सिद्ध फकीर लोग आदि उनमें जो बड़े-बड़े गुरु-चेले भये, उन सब कोईने भी अल्लाह या खुदाको जगत्-कर्ता या दुनियाँका मालिक मान करके उसको प्रसन्न करनेके वास्ते नाम जप, रोजा, बाँग, निमाज, जाकात, हज्ज, आदि नाना उपाय

करने लगे, और मुजरा = झुक-झुकके अल्लाहमियाँको सलाम, बन्दगी, सब कोईने करते भये । इस प्रकार मुजरा करके अपना फर्ज अदा वा चुकता किये । अब उनके अनुयायी कट्टर मुसलमान लोग भी कितेब-कुरान आदिको पढ़ करके, काली सुन्दरीको देखके मोहित होकर, एक मालिक अल्लाहको मानकर पीर, पैगम्बर, औलिया लोगोंकी तरह अभी सब कोई खुदाको मुजरा या सलाम करके अपना-अपना हिसाब चुका रहे हैं । बिना पारख सब धोखेमें ही पड़े हैं ॥ ४५ ॥

साखीः— कबीर काली सुन्दरी । बैठी होय अल्लाहिं ॥
पढ़े फातिया गैबकी । हाजिरको कहै नाहिं ॥ ४६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! काली स्याहीसे लिखी हुई कुरानकी वाणी, खाली नरजीवोंकी कल्पनामात्र ही है । किन्तु, उस काली-कलूटीको ही मुस्लिमोंने बड़ी सुन्दरी मानके ग्रहण किये हैं । जैसे कीचड़ मल-मूत्रसे लथ-पथ सूअरीको देखके मूर्ख सूअर उसे बड़ी सुन्दरी मानके कामासक्त हो जाता है । तैसे ही विषयी कामी पुरुष भी अन्धे होके काली कुरूप, फोहरी, मैली-कुचैली, घृणित स्त्रियोंको भी बड़ी सुन्दरी मानकर विषयोंमें रत हो जाते हैं । उसी-तरह वाणी कल्पना निकम्मी, काली, भ्रमके दाग लगानेवाली काजल-की गोली है । किन्तु अविवेकी मनुष्य उसे सुन्दर सुखद मान रहे हैं । वही कल्पना अल्लाह होके मुसलमानोंके हृदयमें जाके बैठ गई है । अतएव तुरुक लोग भ्रमिक होकरके धोखामें पड़कर गैबकी फातिया पढ़ने लगे । अर्थात् गैब = जहाँ कुछ भी नहीं शून्य आकाशमें खुदाको गोयमगोय, अनुमान करके उसे प्रसन्न करनेकी कल्पनासे जिन्दा बकरा मारके पीरको चढ़ाते हैं, उस वक्त जो कुरानकी वाणी बोलते हैं, उसे 'फातिया पढ़ना' कहते हैं । और हाजिर-हजूर प्रत्यक्ष चैतन्य जीव है, उसको तो कुछ भी जानते या मानते नहीं । कहते हैं, जीव कुछ नहीं, जो कुछ है सो खुदा ही सत्य है । खुदाके कुदरतसे

दुनियाँ बनी है, उस खुदाके वास्ते बकरा, मुर्गा, भेड़ी, गाय, आदि मारके फातिया पढ़के बली चढ़ाना चाहिये। यही इस्लाममतका धर्म है। इस प्रकार वे निर्दयी काल-कसाई ही बने हैं। प्रत्यक्षमें जीव हत्या होती है, उस हाजिर बातको तो वे नहीं कहते हैं, और जो शून्य मिथ्या है, उसको बड़ा खुदा मानते हैं, ऐसे मूढ़ बने हैं ॥ ४६ ॥

साखीः— कबीर काली सुन्दरी। कल्मा किये कलाम ॥
पीर पैगम्बर औलिया। पढ़ै सो करे सलाम ॥ ४७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! कालीसुन्दरी = कुरानकी कल्पित वाणोसे, कल्मा = मन्त्ररूप कुरानके वाक्य— "लाहे-लाहे ईलिल्लाह, मुहम्मदरसूलिल्लाह" ऐसे रीतिसे पाँचकल्मा बनाये हैं, उसे ही उन्होंने, कलाम = सही मानके निश्चयसे यकीन किये हैं। मुसलमानोंने कल्मा पढ़ना, स्वधर्म माने हैं। इसलिये पीर = उनके गुरु लोग, पैगम्बर = धर्मोपदेशक अवतारी माने गये लोग, औलिया = सिद्धमाने हुए फकीर लोग, इत्यादि सब कोई बड़े प्रेमसे पाँच कल्माको पढ़-पढ़के सो गोयमगोय वा लामुकाम माना हुआ खुदा या अल्लाहको झुक-झुकके, सलाम = बन्दना किये और अभी वैसे ही सलाम कर रहे हैं। बिना विचारे धोखेमें ही पड़के गरगाफ हो रहे हैं। जैसे अरण्यरुदन करनेसे कोई फायदा नहीं होता है, तैसे शून्यको सलाम, प्रार्थना करनेसे भी कोई लाभ नहीं होता है, किन्तु अविवेकसे वे सब लोग मिथ्या प्रपञ्चमें ही गाफिल पड़े हैं ॥ ४७ ॥

साखीः— कबीर काली सुन्दरी। भई सो अल्लह मीयाँ ॥
पीर पैगम्बर सुनि शिया। दगा सबनको दीया ॥ ४८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! कुरानकी कल्पित वाणी सोई काली सुन्दरी मुसलमानोंके यहाँ, मीयाँ = सबसे श्रेष्ठ जगत्के मालिक अल्लाह होती भयी। अर्थात् वाणीको पढ़-सुन-करके कल्पनासे कोई एक अल्लाहमीयाँको मुस्लिमोंने श्रेष्ठ मानते

भये, और उसीकी खोजी प्रार्थनामें वे सब लोग लगे । पीर=गुरुवा-लोग, पैगम्बर=अवतारी पुरुष, मुनि = कर्ममार्गी सुन्नी लोग, शिया=उपासक शिया आश्रमी लोग (तुरुकोंमें शिया, और सुन्नी, यह दो आश्रम माने हैं), गृहस्थ, फकीर आदि उन सबोंको वाणी कल्पनाने, दगा=धोखा, प्रपञ्चमें डाल दिया है । अर्थात् भ्रमिक पीर, पैगम्बर, मुनि, शिया, बने हुए वही भ्रमिक लोगोंने अन्य सब मुसलमानोंको कितेब-कुरान आदिकी वाणी सुना-सुनाकरके अल्लाह या खुदाकी मानन्दी दृढ़ा-दृढ़ाकर सबोंको धोखा दिया है, मनुष्यपदसे उन्हें नष्ट-भ्रष्टकर दिया है । अतः वे धोखेबाज हुए हैं । बिना पारख जीव उसी धोखामें भूल रहे हैं, बद्ध हो रहे हैं ॥ ४८ ॥

साखीः— झूठ जवाहिरको बनिज । परै सो तबलग पूर ॥
जबलग मिलै न पारखी । घनपै चढ़ै न कूर ॥ ४९ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जैसे झूठा जवाहिरात, खाँड़का नकली बनावटी हीरा, पन्ना, लाल, मोती, आदि खोटे काँच-के टुकड़े रत्नके नामसे तभीतक पूरा पड़के व्यापारमें चलता रहता है, झूठे व्यापारी नकली जौहरी लोग भी तभीतक खूब अकड़के फूले रहते हैं, धोखा-धड़ी चलाया करते हैं, और जबतक पारखी असली जौहरी उसे नहीं मिलते, तभीतक उसके रत्न, घन=अहिरनपर नहीं चढ़ता है । इसीसे हीराकी पूरी परीक्षा नहीं होती है, और जब पारखी मिल जाते हैं, तब रत्नोंकी खरी-खोटी परीक्षाके लिये अहिरन-पर चढ़ायके घनसे ठोंकके देखते हैं । तब नकली होगा, तो चकनाचूर हो जायगा, यदि असली होगा, तो फिसलके दूर गिर पड़ेगा । यह परीक्षा देखके झूठोंका मुख उतर जाता है, कायल हो जाते हैं । इसी प्रकार सिद्धान्तमें भी झूठा जवाहिरातवत् खाँड़का हीरा कल्पित ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, खुदा, अल्लाह, देवी, देवता, भूत-प्रेत, ऋद्धि-सिद्धि, इत्यादि मानन्दीको बड़ा श्रेष्ठ रत्नवत् बता-बताकर

झूठे गुरुवा लोग संसारमें कपटका व्यापार कर रहे हैं, नाना प्रकारसे मिथ्या आशा-भरोसा दे-देके उपदेश दे रहे हैं। उनके शिष्य लोग भी ग्राहकी कर रहे हैं। सो भूठा प्रपञ्च उनके ठगाई तभीतक पूरा पड़ता है या प्रचार होता है, अविवेकी लोग ही उसे मानते हैं। जब-तक जिज्ञासुओंको सत्यन्यायी, सत्यबोधदाता पारखी सद्गुरु नहीं मिलते हैं, और उनके घनपै = सत्य निर्णयरूप खण्डन, मण्डनकी घनपर क्रूर-कपटी गुरुवा लोगोंके मिथ्या सिद्धान्त चढ़ते नहीं। यानी जबतक पारखी सद्गुरु मिलते नहीं, तबतक पारख बोध जीवोंको होता नहीं; इसलिये अनुमान, कल्पना, धोखाको ही सत्य समझते रहते हैं, ठग गुरुवा लोगोंको ही बड़े सिद्ध महात्मा मानते रहते हैं, और मुमुक्षु लोग जब पारखी सद्गुरुके शरण सत्सङ्गमें आजाते हैं, तो उन्हें गुरुमुख निर्णयसे यथार्थ बोध हो जाता है। ब्रह्म, ईश्वरादि मिथ्या भ्रम मनकी मानन्दी मालूम हो जाती है। गुरुवा लोगोंको छली, कपटी, धोखेबाज जान करके पहिचान हो जाती है। निर्णयमें गुरुवाओंका एक भी सिद्धान्त ठहर नहीं सकता है, चकनाचूर हो जाता है। अतः पारख निर्णयकी सर्वोपरि विशेषता है ॥ ४९ ॥

साखीः—जो इन्द्रिय सो हैं नहीं। हुई न कबहूँ होय ॥
　　ताको इन्द्रिय ज्ञान करि। पावन चाहैं लोय ॥५०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ! वेदान्ती लोग कहते हैं कि— ब्रह्म, परमात्मा, विषयादिसेरहित मन, बुद्धि, वाणीसे परे है। इसलिये जो पञ्च-ज्ञानेन्द्रियाँ तथा चित्त चतुष्टयादि स्थूल, सूक्ष्म इन्द्रियाँ एवं उनके विषय जो हैं, सो ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा नहीं है, और न कभी ब्रह्म-परमात्मा इन्द्रिय ग्राह्य विषयवत् हुआ है, और न कभी वह इन्द्रियादियोंसे ग्रहण ही हो सकेगा। क्योंकि—

"यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह ॥"— ब्रह्म या परमेश्वर वाचा, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ इत्यादिकोंसे जाना नहीं जाता है॥ ऐसा तैत्तिरीय

उपनिषद्के ब्रह्मानन्द वल्ली, अनुवाक ४ में कहा है ॥ इससे निराकार, निर्गुण, अगम, अगोचर, अथाह, व्यापक माना हुआ उस ब्रह्म वा ईश्वरको पुनः अविवेकी गुरुवा लोग भीतर-बाहर इन्द्रिय ज्ञान करके पञ्च विषयवत् प्राप्त करना चाहते हैं। अर्थात् नेत्रसे ज्योति आदि साकार दर्शन, कानोंसे अनहद नाद वा तत्त्वमसि, आदि महावाक्य श्रवण, त्वचासे आनन्द प्राप्ति, जिभ्यासे अमृतपान, नाकसे मूर्धनी कमलकी सुगन्ध ग्रहण इत्यादि प्रकारसे इन्द्रियजन्य ज्ञान करके ही वा वाणी कह-सुन करके ही ब्रह्म, ईश्वरादिकी साक्षात्कार करके उसे पाना चाहते हैं। कहिये ! अब वे लोग कितने मूढ़ अविचारी हैं। जैसे आकाशके फूल तथा शशाशृङ्ग नहीं है, तो उसे पाना असम्भव है। तैसे ही सो ब्रह्म कोई वस्तु नहीं है, न हुआ, न कभी होगा, फिर ऐसे अभाव, असम्भव भी कहीं प्राप्ति हो सकती है ? कभी नहीं। किन्तु पारखहीन मूढ़ लोग ऐसे ही धोखासे दुविधा, भूलमें पड़ा करते हैं, उसे परखके जान लेना चाहिये ॥ ५० ॥

साखीः— अविनाशी पूरण कहै । व्यापक चेतन जोय ॥
या सब इन्द्रिय ज्ञानके । प्राप्ती इन्द्रिय होय ॥५१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! वेदान्ती लोग मनमानन्दी कल्पनासे एक कोई ब्रह्म या आत्मा मानके उसे अविनाशी = तीन कालमें कभी नाश न होनेवाला, सनातन तथा पूरण = परिपूर्ण भीतर-बाहर सर्वत्र भरा हुआ, व्यापक = आकाशवत् ओत-प्रोत जो ऐसा एक अद्वैत सामान्य चैतन्य है, कहते हैं। अब विवेकदृष्टिसे देखिये ! तो ऐसा ब्रह्मका कहीं भी किसीको प्रतीति नहीं होती है। ऐसा कल्पना भीतर मनादि इन्द्रिय द्वारा होता है, और बाहर मुख इन्द्रियसे शब्द निकलता है, सो कान इन्द्रियद्वारा सुनाई देता है, फिर चित्त, बुद्धि आदिसे वह ग्रहण होता है, और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पाँचों विषयें सब तो इन्द्रियज्ञानके द्वारा ग्रहण होते हैं। तथा पाँचों ज्ञानेन्द्रियों-

को अपने-अपने विषयोंका सम्बन्ध ही परस्पर प्राप्ति होती हैं, सोई चित्त चतुष्टयसे भोग होता है। जो इन्द्रियोंसे परे अविषय है, बुद्धिसे भी अत्यन्त परे आत्माको माने हैं। फिर मन, बुद्धि आदि इन्द्रियद्वारा ब्रह्म या आत्माकी प्राप्ति कैसे होगी? कभी न होगी; व्यापक, पूर्णचेतन, ऐसा तो कहीं नहीं है। चैतन्य जीव तो एकदेशीय देहधारी प्रत्यक्ष नित्य प्राप्त ही है, उसे निजस्वरूप प्राप्ति करनेकी आवश्यकता, तो कुछ भी है ही नहीं। और ब्रह्म, ईश्वरादि मिथ्या कल्पना है, वह कुछ प्राप्ति होनेवाला ही नहीं है। अतः गुरुवा लोगोंके ज्ञान सब इन्द्रियजन्य विषय ही हैं, विषय इन्द्रियोंको प्राप्त होते ही हैं। किन्तु परिणामी विकारी होनेसे बन्धनरूप ही हैं, उसे परखके त्यागना चाहिये। ब्रह्मज्ञान जो है, सो शब्दका विषय, विकारी, परिणामी होनेसे अविनाशी, पूर्णव्यापक, चेतन कहा हुआ सिद्ध नहीं हुआ है। उससे उल्टा विनाशी, अपूर्ण, एकदेशीय, जड़ ही ठहरा। क्योंकि, ब्रह्म अनुभव इन्द्रियगम्य होनेसे, सरासर विषय ही साबित भया। अतएव उसके मानन्दीसे जीव भवबन्धनमें ही पड़े और पड़े रहेंगे। इससे पूरा पारख करके भेदको जानना चाहिये ॥ ५१ ॥

साखीः—कबीर इन्द्रिय ज्ञानकी। सब कोइ करे भरोस ॥
सुर नर मुनि छलि मारे। बड़े-बड़े बातफरोस ॥५२॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—और हे नरजीवो! संसारमें योगी, ज्ञानी, भक्त आदि सकल सिद्ध-साधक जीव सब कोई प्रथम भी इन्द्रियके विषय ज्ञानकी ही भरोसा किये; और अभी भी वही इन्द्रियजनित विषय अनुभवका ही भरोसाकर रहे हैं। सो कैसे कि— कोई 'शब्दब्रह्मेति श्रुतिः' कहकर प्रणवरूप ॐकारको शब्द ब्रह्ममाने हैं, सो कानोंका शब्द विषय है। सच्चिदानन्द सुखरूप ब्रह्ममाने हैं, सो त्वचाका स्पर्श विषय है। ज्योतिस्वरूप परब्रह्म माने हैं, सो नेत्रका रूप विषय है। अमृत रसवत् जो ईश्वर माने हैं, सो जीभका रस विषय है।

गन्धवत् ब्रह्ममाने, सो नासिकाका गन्ध विषय है, और आकाशवत् निर्विकल्प ब्रह्म, अन्तःकरणका विषय है। वायुवत् सहविकल्प ब्रह्म, चित्तका विषय है। अहं ब्रह्मास्मि, हङ्कारका विषय है। सगुण ब्रह्म, मनका विषय है। ज्योंका-त्यों परिपूर्ण सर्वाधिष्ठान आत्मा, यह बुद्धिका विषय है। इस प्रकार इन्द्रियसे होनेवाला ज्ञान, इन्द्रियोंके विषयोंको ही आत्मा, ब्रह्म, ईश्वरादि इष्टदेव मान करके सब कोईने उसकी भरोसा किये कि— वे हमारी मुक्ति करेंगे। परन्तु उस भ्रम कल्पना धोखाने, सुर = सत्त्वगुणी, नर = रजोगुणी, मुनि = तमोगुणी मननशील करनेवाले ऐसे त्रिगुणी मनुष्यवर्गः और योगी, ज्ञानी, भक्त, कर्मी आदिसे लेकर, बड़े-बड़े ऋषि लोग, वेदान्ती, सिद्धान्ती, चतुर्वेदी, षट्शास्त्री, पौराणिक, इत्यादि बातफरोस = वक्ता, बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें बनानेवाले, बकवादी, वाक्पटु, इन सब जनें तो वाणीके छल-छिद्रमें पड़के मारे गये। अर्थात् वाणीसे वे सब छले गये, तो जड़ाध्यासी भये। उन्होंने और सब मनुष्योंको भी छलके मारे, भ्रमाये हैं। कल्पनाका विस्तार कर-करके मारे गये, तो अन्तमें चौरासी योनियोंको ही प्राप्त होते भये ॥ ५२ ॥

साखीः— बातफरोसी करि मुये। सरा न एकौ काम ॥
बातफरोसी ब्रह्म एक। बातफरोसी राम ॥ ५३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— बातफरोसी = कल्पित वाणीका विस्तार या लम्बी, चौड़ी बातें बढ़ायके आकाश-पातालकी, सातस्वर्ग, अपवर्ग, चार मुक्ति, चार फल, कर्ता—ईश्वर, खुदा आदिका वर्णन, महिमा कथन कर-करके ऋषि, मुनिगण, पण्डित लोग, जड़ाध्यासी होके मर गये, गर्भवासमें कैद भये। किन्तु उनकी कल्पित वाणीसे किसीका एक भी काम या कार्य सिद्ध नहीं हुआ। न ईश्वर मिला, न स्वर्ग मिला, न मनोकामना पूर्ण हुई, न जीव-ब्रह्मकी एकता हुई, और न मुक्ति ही मिली, भवबन्धन भी नहीं छूटी। इस तरह जीवका एक

काम भी सफल होके पूरा नहीं हुआ, खाली गप्प-सप्प करते-करते आयु बिताके मर-मरके गये, और एक अद्वैत ब्रह्म जो माना, सो भी बातफरोसी = बातूनी पण्डित लोगोंकी, बकवाद कल्पनामात्र ही है। तथा घट-घटमें व्यापक अधिष्ठान अत्माराम या 'रमेतीरामः' जो माने हैं, सो भी बातफरोसी = बकवाद वाणी कल्पना पण्डितोंके जाल ही है। अतएव पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग द्वारा उसे यथार्थ पहिचानके न्यारा होना चाहिये ॥ ५३ ॥

साखीः—माया बैठी शेष होय। कहै सो ज्ञान अतीत ॥
नेति नेति उपदेश कहि। भई सो शब्दातीत ॥ ५४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! मायारूप गुरुवा लोग तो अपनी माया = छल, कपट, वाणी कल्पनादिकी जाल चौतरफ फैलायके सब जगत्को निषेध करके बाकी अपने ही स्वयं सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, या खुदा होयके बैठी है। संसारमें सो कल्पित वाणी ही श्रेष्ठ शेष = बाकी या विशेष शक्तिशाली होकर मनुष्योंके अन्तःकरणमें बैठी है, वही मानन्दीसे गुरुवा लोग, अतीत = सबसे परे पूर्ण त्यागी निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, सोई ब्रह्म अद्वैत है। ऐसे ब्रह्मज्ञान कहते हैं, ब्रह्मको अधिष्ठान बताना, सोई अतीतज्ञान कहते हैं। अक्षरातीत = अक्षरसे परे या रहित निःअक्षर है। तुरियातीत = साक्षी अवस्थासे रहित, उससे परेको कहते हैं। यहाँ अतीत = सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक ब्रह्मको कहा है और वेदमें "नेति नेति या न इति-इति" अर्थात् ब्रह्मका अन्त नहीं है, असीम, अपार, बेहद्द, अथाह, जो परमात्मा है; सो तू ही है "तत्त्वमसि" ऐसा उपदेश कह करके जगत्- ब्रह्मको एक ठहराय "सर्वंखल्विदं ब्रह्म" ऐसा बता करके सो बहुरूपिणी माया = वाणी आखिरमें शब्दातीत = सकल शब्दोंसे परे या शब्दसे रहित अवाच्य, अकथनीय मौन होती भयी। मन, बुद्धि, वाणीसे परे ब्रह्मको मान करके ब्रह्मज्ञानी, लोग जड़, उन्मत्त, गाफिल हो, जड़ाध्यासी बद्ध होते भये। बिना

पारख यह धोखा छूट नहीं सकती है ॥ ५४ ॥

साखीः— कबीर बरण फेरिके । अबरण भई छिनार ॥
बैठी आप अतीत होय । किये अनन्त भ्रतार ॥ ५५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— जैसे दृष्टान्तमें छिनार-स्त्री अपने जातिसे पतित होके, जातिसे उलटके, कुजात वेश्या बननेपर कहीं कोठेपर अलग नीच पेशा लेके बैठ जाती है, तहाँ अनेकों पुरुषोंको पति बनाके भोग-विलासमें फँसी रहती है । तैसे सिद्धान्तमें— हे नर-जीवो ! गुरुवा लोगोंने छल-कपटसे, बरण=वर्ण या अक्षरोंको फेर-फार करके या उलट-पुलट वा औंधा-सीधा करके, उलटायके अक्षरा-तीत ब्रह्मको माने हैं । तहाँ छिनार=उनके कल्पित वाणी व्यभि-चारिणी बनके, अवरण=अवर्ण या निःअक्षर शून्य आत्मा होती भयी । और बाहर कहने सुननेके लिये तो वह वाणी अपने-आप नरजीवोंके हृदयमें आके, अतीत=सबसे परे, विरक्त, असङ्ग, स्वयं ब्रह्म होके बैठी । किन्तु दूसरे तरफ वही वेश्या बनके अनन्त भ्रतारके सङ्ग रमण करी और कर रही है । अर्थात् कहीं तो वाणीसे असङ्ग, अवर्ण, निर्गुण ब्रह्म कथन करते हैं । कहीं जीवोंके ऊपर अनन्तों मालिक— ब्रह्म, ईश्वर, तैंतीस कोटि देवी-देवता, भूत, प्रेत, खुदा, इत्यादिको इष्ट-देवता, भ्रतार=पति मानकर उन्हींकी आराधना किये और कर-करा रहे हैं । इस तरह कुटनी गुरुवाओंकी वाणी ऐसी दुष्ट, छिनार भयी वा हो रही है । वह तो देखने-सुननेमात्रको अच्छी लगती है, नहीं तो असलमें कल्पना बड़ी खराब है, दुःखदाई है । अतः परख करके इसे परित्याग करना चाहिये ॥ ५५ ॥

साखीः— कबीर बैठी शेष होय । बिना रूपकी राँड़ ॥
गाल बजावै नेति कहि । किये भ्रतारहि भाँड़ ॥ ५६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— जैसे पर्दानशीन स्त्री रूप छिपाके श्रेष्ठ होके बैठती है, तहाँ भीतरसे ऐसा नहीं, वैसा नहीं, ऐसा-वैसा

करो, कहकर पतिको भाँड़वत् बनाती है। तैसे सिद्धान्तमें— और हे नरजीवो! बेपारखी मनुष्य जीवोंके अन्तःकरणमें वही कल्पित वाणी, शेष=विशेष, बाकी या अवशेष, सर्वश्रेष्ठ मुख्य ब्रह्मपद अधिष्ठान मानन्दी दृढ़ होयके बैठी है। आखिरमें वह, राँड=वाणी कल्पना बिनारूपकी=निराकार, निर्गुण, आकाशवत् निरञ्जन ब्रह्म बनी है। जब उसकी रूप-रेख नहीं, आकार-प्रकार कुछ नहीं, तो मिथ्या धोखा ही है। परन्तु उसे ही सत्य मानके वाचाल धूर्त गुरुवा लोग ब्रह्म वा ईश्वरकी वड़ी महिमा बढ़ायके, वेद-प्रमाणसे "न इति न इति" कह करके अर्थात् उसके इति वा अन्त, भेद, पता पाया जा नहीं सकता है, असीम है, ऐसा कथन कर-करके गाल बजाते हैं, मिथ्या बकवाद करते हैं। हे सन्तो! असलमें सबका भ्रतार या स्वामी, श्रेष्ठ मालिक तो चैतन्य जीव ही है। उसीको ये राँड=वाणी कल्पनाने, भाँड़ वा भडुवे किया है। अतएव गुरुवा लोग भाँड़वत् बकवादी, मिथ्यावादी भये हैं। उन्होंने शिष्य वर्गोंके भी बुद्धि भ्रष्ट करके उन्हें भाँड़ बनायके जड़ाध्यासी किये हैं। इसीसे सब भवबन्धनमें पड़े और पड़ रहे हैं। पारखी सद्गुरुकी सत्सङ्गद्वारा उसे निर्णय करके जिज्ञासुओंने पहिचान कर लेना चाहिये ॥ ५६ ॥

साखीः— कबीर चञ्चल नारिको। मोहि नहीं इतबार ॥
शेष बतावै नेति कहि। बैठी होय हुशियार ॥ ५७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! इस चञ्चल स्वभाववाली चपला स्त्रियोंका तो कुछ भी भरोसा नहीं होती है। स्त्रियाँ सती वा पतिव्रता रहती हों, मन, वचन, कर्मसे परपुरुषकी चाहना न करती हों, ऐसा होना अशक्य है। मुझे तो इन दुष्ट स्त्रियोंका रत्तीभर भी विश्वास नहीं होती है। चाहे ये कैसे ही रूप बनावें, विश्वास करने लायक नहीं होती हैं। छोटी-छोटी लड़कियोंसे ले करके अतिवृद्ध तक स्त्रियाँ पुरुषोंके मनको विकारी बनाके

विचलित कर देती हैं। अतः लड़की, बूढ़ी, तरुणी, गृही, भक्तिनी, ब्रह्मचारिणी, साधुनी, इत्यादि सब प्रकारसे स्त्री-जातिमात्रसे दूर ही रहनेमें मुमुक्षुओंके लिये कुशल है। नहीं तो समय पायके वही स्त्री साथमें रहनेवाले पुरुषको भग-भोगमें फँसायके नष्ट-भ्रष्टकर जीवन बर्बाद कर देती हैं, यह निश्चय है। क्योंकि, ऐसी घटना बहुत जगहों-में हो चुकी हैं। अतः सर्वत्र सावधान रहना चाहिये। पहिले तो स्त्रियाँ अपनी विशेषता बतलाती हैं, फिर पुरुषोंको फुसलाके फँसाती हैं। और साथ होनेपर आभूषणादि कितना भी दो, तो भी इतनेमें पूरा नहीं हुआ, और लाओ-और लाओ, ऐसा कहती ही रहती हैं। और बड़ासे-बड़ा पाप कुकर्म करके भी पूछनेपर उसे छिपायकर झूठ बोलके कहती हैं—नहीं, ऐसा मैंने नहीं किया, मैं कभी ऐसा नहीं कर सकती हूँ, सच कहती हूँ, तुम्हारे शिरकी कसम! इत्यादि कहकर रोय-गायके पुरुषके आँखोंमें धूर झोंक देती हैं, और दुराचार करके कोई जानने न पावें, इसके लिये घरमें हुशियार होके बैठी रहती हैं। इस प्रकारसे अनन्त दुर्गुण स्त्रियोंमें भरा रहता है। अतएव कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंने सदा स्त्रियोंकी कुसङ्गसे दूर ही रहना चाहिये। उसीमें भलाई होगी॥ [स्त्रियोंका दोष, विस्तारसे वैराग्यशतककी टीकामें लिखा है चाहे वहाँसे देख लीजिये !] अब दूसरा अर्थ वाणीमें कहता हूँ, सो सुनिये !

कबीर = जीवरूप हे मनुष्यो ! मनकी चञ्चलतासे बनी हुई नारी कौन है ? सो वाणी कल्पना ही है। पारखी सन्त कहते हैं— मुझे तो उस कल्पित वाणीका कुछ भी इतबार = विश्वास या भरोसा नहीं होता है। क्योंकि, जब शुरूमें ही वह भ्रम-कल्पना है, तो उसके कथन और अर्थ कहाँसे सत्य हो सकते हैं ? और वाणीके प्रमाणसे कहीं तो गुरुवा लोग, ब्रह्मको शेष = अवशिष्टपद वा विशेष मुख्य सारपद सर्वोपरि कर्ता परमात्मा बतलाते हैं। और कहीं "नेति नेतीति श्रुतिः" कहकर बेअन्त, अपार, अथाह, अवाच्य या निःअक्षर, परिपूर्णव्यापक ठहराते हैं। फिर कहीं उसका ठिकान नहीं लगा, तो आप ही ब्रह्म बनके,

वही वाणी कल्पना हुशियार होयके, हृदयमें जमके बैठ गई। अब बताओ, ऐसी चञ्चल वृत्तिका क्या विश्वास करना। अविचारी मनुष्य ही वाणीके पुष्पित सौन्दर्यतामें मोहित होकर जड़ाध्यासी गाफिल होते हैं। शेष बताके नाकसे बोलती है, तो नेति-नेति कहती है। हुशियार होके गुरुवा लोगोंके मनमें जाके बैठी है। उन्हें भ्रम चक्रमें डाल रही है। तुम उसे परखो, उसका विश्वास मत करो ॥ ५७ ॥

साखीः— अध्यारोप जाके जवन। ताहि गले अपवाद ॥
अध्यारोप अज्ञानकी। कोइ न जाने आद ॥ ५८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो! जिसके जैसा-जैसा अध्यारोप = जो वस्तु नहीं है, उसका मिथ्या आरोपसे निरूपण करना, अर्थात् वाणीकी प्रमाणसे विधिपूर्वक ब्रह्म, आत्माका स्थापन या निरूपण, सिद्धान्त प्रतिपादन करना होता है, फिर उसीके गले-में या उसके भीतर ही, अपवाद = एक-दूसरेका खण्डन, निषेध या सिद्धान्त तोड़ना भी लगा रहता है। यानी जैसे रस्सीमें सर्प नहीं है, तो भी मिथ्या भ्रान्ति करके भासता है, तहाँ अध्यारोप-मिथ्या सर्प प्रतीति हुआ। फिर पूर्णप्रकाश होनेपर उसमें ही अपवाद हुआ कि— अरे! यह तो सर्प नहीं, रस्सी है, ऐसा मालूम हुआ। इस तरह मण्डनमें साथ ही खण्डन भी लगा रहता है। तैसे वेदान्ती लोग कहते हैं— एक अद्वैत ब्रह्ममें नानात्त्व जगत् भासना अध्यारोप है। सो तो मृगजलवत् मिथ्या प्रतीतिमात्र है। अविद्या करके ही जगत् भास हो रहा है। जब ब्रह्मज्ञानका पूर्ण बोध हो जायगा, तब उसीके गलेमें अपवाद आ जायेगा कि— "ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो-ब्रह्मैवनापर"— ब्रह्म ही वास्तवमें सत्य है, जगत् प्रतीतिमात्र मिथ्या है, जीव-ब्रह्ममें कोई भेद नहीं है, एक है, "अहं ब्रह्मास्मि" इस तरह जगत्का निषेध करके एक ब्रह्मको सत्य बतलाते हैं। इसीसे जिसके जैसे अध्यारोप होता है, उसके भीतर वैसे ही अपवाद भी उनके गलेमें

लटका रहता है। अब विचार करिये ! जब माना हुआ सच्चिदानन्द ब्रह्ममें अज्ञान, माया, अविद्यारूप इस जगत्की; अध्यारोप = मिथ्या आरोप या निरूपण हुआ, यानी चराचर जगत् भी सत्य है, ऐसा कहा, सुना, देखा गया, तो प्रथमसे जगत् मौजूद ही था, तभी तो इसकी प्रतीति होकर भास होता भया। यदि जगत् त्रिकालमें कहीं न होता, तो भास ही कैसे होता ? खपुष्प, शश शृङ्ग, बाँझ पुत्रादिकी तो आजतक कहीं किसीको भी भास हुआ ही नहीं। और रज्जू सर्प, मृगजल आदिके दृष्टान्त जो देते हो, उनमें सर्प वा जल दूसरे देशमें सत्य ही मौजूद हैं, पूर्वमें उन्हें देखा, सुना, अनुभव किया हुआ भी था, इससे कहीं पश्चात् उपयुक्त जगह मिलनेसे वैसे ही भ्रमसे भास होते हैं। तुम्हारे सिद्धान्तमें यह दृष्टान्त कुछ भी लग ही नहीं सकता है। तुम वेदान्ती लोग मिथ्यावादी बने हो। अरे भाई ! अध्यारोप होनेवाला अज्ञानकी आदि तो मनुष्य ही है और कोई नहीं। मनुष्य जीव न होते, तो ब्रह्म-जगत्का भ्रम और किसको होता? किन्तु, वेदान्ती लोग किसीने भी आजपर्यन्त उस आदिको जाने नहीं। इसलिये भ्रम-चक्रमें पड़े रहे और अभी पड़ रहे हैं। जड़-चैतन्यरूप जगत् स्वयं अनादि है। माना हुआ ब्रह्म ही मिथ्या धोखा भ्रममात्र है। गुरु पारखसे ऐसा यथार्थ जानना चाहिये ॥ ५८ ॥

साखीः— अध्यारोपी ब्रह्मको । करे ब्रह्म अपवाद ॥
वाणी ब्रह्म न लखि परे । मिथ्या कीन्हों बाद ॥ ५९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! विचार करिये ! जब वेदान्ती लोग एक अद्वैत ब्रह्मके सिवाय दूसरा और कुछ भी नहीं मानते हैं। तब उस ब्रह्ममें जगत् नामका मिथ्या आरोप कहाँसे आया ? कैसे आया किसने आके लगाया ? क्या ब्रह्मको ब्रह्मने ही पुनः जगत् होनेका अध्यारोप लगाया ? और फिर उस अध्यारोपी ब्रह्मको ज्ञानप्रकाश करके अपवाद कौन करता है कि, जगत् त्रिकालमें

नहीं है, एक ब्रह्म ही सत्य है । क्या वही ब्रह्म पीछे आप ही अपवाद या जगत्का खण्डन करता है? बड़ी विचित्र बात करते हो। एक ब्रह्म, दूसरा जगत्, तीसरा दोनोंका द्रष्टा साक्षी, ऐसे त्रिपुटी सिद्ध हुई। इसलिये जड़ पाँचतत्त्व और देहधारी अनन्त चैतन्य-जीव सहित संसार स्वतः ही अनादि ठहरता है । तहाँ मनुष्योंने ही कल्पना कर-करके वेद, शास्त्र, पुराण आदि नाना वाणी रचना करके बनाये हैं। फिर जगत्को देखके जगत्के कर्ताका अनुमान किये, तो किसीने—ब्रह्म, आत्मा, कहे, कोईने ईश्वर वा खुदा आदि कर्ता माने। किन्तु सो वाणी और ब्रह्म आदि मनुष्योंके मिथ्या मानन्दी भ्रम कल्पनामात्र है, उसमें जरा भी सत्यता नहीं है। बिना पारख उन भ्रमिकोंको यह कुछ लख नहीं पड़ता कि— वाणी और ब्रह्मका मानन्दी करनेवाला उसका कर्ता तो मैं जीव ही सत्य हूँ, यह भेद न जान करके धोखामें पड़के मिथ्या ही ब्रह्मवाद किये और कर रहे हैं। पक्ष पकड़कर वाद-विवाद करके महाबन्धनमें जकड़ पड़े हैं। अतः परख करके उस मिथ्या वादको परित्याग करना चाहिये ॥ ५९ ॥

साखीः—– अव्याकृत दुःखरूपको । सब माने मनमोद ॥
ब्रह्मादिकसे बालका । खेलहिं जाके गोद ॥ ६० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! अव्यक्त-गुप्त माना हुआ मूल प्रकृति माया जब प्रगट हुई, तो दुःखरूप अव्याकृत बनी। अर्थात् अव्या = मायारूप वाणीसे, कृत = कल्पना करके बनाया हुआ कृत्तिम-ब्रह्म, ईश्वर या परमात्मापद जो है, सो दुःखरूप जगत् या जन्म-मरणादिका कारण वीजरूप है। परन्तु सब भ्रमिक लोग उसीको परमपद परमानन्द समझके धोखासे, मनमें मोद = अत्यन्त आनन्द मानते भये, और आनन्द मान ही रहे हैं। हे भाई! और छोटे-छोटे अप्रसिद्ध लोगोंकी तो बात ही क्या करना? जो बड़े कहलानेवाले प्रसिद्ध, त्रयदेव = ब्रह्मा, विष्णु, शिव और उनके

अनुयायी शिष्यवर्ग सनकादिसे लेकर ऋषि-मुनिगण सब ही ऐसे-ऐसे पण्डित, योगी, ज्ञानी, भक्तादि समेत् बालकवत् अज्ञानी, अविचारी, हठी, अविद्या ग्रसित, भ्रमिक होकर जिस वाणीके गोदरूप ब्रह्म सिद्धान्तमें ठहरकर नाना साधनाओंमें खूब खेलते भये। और अनुमान, कल्पनामें ही जन्म बिताकर आवागमनके चक्रमें पड़ते भये। अब उसी वाणीकी नाना सिद्धान्त मतवादरूप गोदमें टहलकर सबगुरुवा लोग लुकी-चोरी, ठगाई, धूर्ताईका खेलकर रहे हैं। भेद न जानकर बहुतेरे नरजीवोंकी हानि हो रही हैं। सत्सङ्ग द्वारा परखके उसे यथार्थ जानना चाहिये ॥ ६० ॥

साखीः— डाइन सर्व शक्ति यह। लरिकन कियो बेहाल ॥
सुख कलेजा काढ़िके। गाड़े सबहिं पताल ॥ ६१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! जैसे जनश्रुतिके अनुसार डाइन मानी गई स्त्रियाँ, टोना-टोटका करनेवाली बड़ी निर्दयी, घातकी होती हैं। वे चुड़ैल, युक्तिसे लड़कोंको फुसलाकर जहर खिलाके बेहाल करके सब शक्ति हरणकर बालकोंको मार डालती हैं। फिर कलेजा काटके निकालकर उसे जमीनमें गाड़ देती हैं। उसके घेरेमें पड़नेवाले सबको ऐसे ही घात किया करती हैं। वे राक्षसी बड़ी पापिनी होती हैं॥ तैसे ही सिद्धान्तमें यह डाइन = कल्पित वाणीमें मनुष्योंको भ्रमाने, भुलाने, फँसानेकी सर्व-शक्ति छल, बल, कपट, प्रपञ्चका जाल बहुत होता है। डाँकूवत् गुरुवा लोगोंने इसी डाइनी वाणीकी सहायतासे, घेरघारके, लरिकन = अज्ञानी, अबोध, अविवेकी नरजीवोंको नाना मत-मतान्तर षट्दर्शन-९६ पाखण्डमें फँसा-फँसाके बहुत-सी लालच, आशा भरोसा दे देकर अनेकों कठिन साधनोंमें लगाके, बेहाल या परमदुःखी किये हैं, और जीवोंके विवेक-विचार, सत्य, शील, दयादि सर्व शुभ सद्गुणोंकी शक्ति हरण कर लिये। कल्पनाका जहर खिलाकर उन्हें बेहोश करके

हंसपदको मार डाले। और सुख कलेजा = नरजीवोंकी साक्षीदशा, तथा जीवन्मुक्तिका शुद्ध सुख एवं हृदयरूप जीवकी पारख स्थिति ठहरावको भी काढ़िके या निकालके बहुत दूर फेंक दिये और जड़ाध्यासी अचेत बना दिये। तदनन्तर श्वासमें लक्ष लगाकर, पताल = नाभि या भ्रमरगुफामें लक्ष लगाके शून्यमें गड़ गये, तथा भ्रम-कूपके नीचे पातालमें लेजाके जीवको गाड़ दिये, गाफिल किये। देह छूटनेपर गर्भवासमें जाके गाड़े जाते हैं। इस प्रकार सब अध्यासो जीव चौरासी योनियोंमें गाड़े गये, और गड़ रहे हैं, बिना पारख ॥ ६१ ॥

साखीः— तिलई काठ जराइके। कोइलामें अंकूर ॥
तैसे संसृति जीवको। अव्याकृत भरिपूर ॥ ६२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—और एक तिलई नाम करके वृक्ष होता है। जङ्गलमें कोइला बनाने वाले तिलई झाड़के डालियोंको हरी-हरी ही काटकर अन्य सूखी लकड़ियोंके साथ उसके, काठ = लकड़ी भी जलायके कोइला बनाते हैं। उसमेंसे कोई अधजला हुआ लकड़ी बाहरसे झुलस गया हो, कोइलावत् दिखता हो, उसे निकाल के फेंक दिया, सो जमीनमें पड़ा रहा; मिट्टी-पानीका संयोग पायके उस कोइलावत् झुलसा हुआ डालीमेंसे भी उसके समयमें अंकुर फूट पड़ता है। फिर वह समयान्तरमें वृक्षाकार हो जाता है। तैसे ही बाहर संसारमें चाहे जप, तप, तीर्थ व्रत, योग, उपासना, ज्ञान, ध्यान आदि करके कितने भी स्थूल शरीरको जलाओ, तपाओ, दुःख दो, दुबला-पतला करो; बहुरूपको धारण करो, तो भी कोइलावत् साधनोंमें झुलसा हुआ शरीरके भीतर मनमें अंकुररूप खानी, वाणी-की, वासना अध्यास टिका ही रहता है। पूर्ण पारख स्थिति हुए बिना और किसी भी उपायसे उसका नाश नहीं होता है। तैसे ही उसके लिये उपयुक्त समय आनेपर वह भी फूटके निकलता है। और संसृति = संसारके अध्यास कर्मसंस्कार ही जीवको चौरासी योनियोंमें

ले जाके डाल देता है। मन-मायाकृत वासना अन्तःकरणमें भरपूर हो रही है। वही जीवको प्रारब्धानुसार दुःख-सुख भोगाता है। और कोई ईश्वरादि, चारखानियोंमें जीवोंको लेजाके, दुःख-सुख भोगानेवाले नहीं हैं। जीव सब अपने आप ही नाना संस्कारके वशीभूत होके चौरासी योनियोंमें जाते हैं, जन्म-मरण आदि चक्रमें पड़ा करते हैं। मनुष्य जन्म कर्मभूमिका है, यहाँ जैसा संस्कार टिकाया जाता है, पशु आदि खानीमें जाके वैसे ही भोग होता है। अर्थात् तिलई काठके कोइलामें अंकुरवत्— तैसे भ्रमिक मनुष्योंके हृदयमें भी वाणी कल्पनाके दृढ़ संस्काररूप संसृति या संशय, दुविधा, भ्रान्तिके अंकूर फूटा करते हैं। चाहे उन्हें कितना भी समझायके पारख निर्णयका बोध करो, ब्रह्ममें कसर दिखाओ, तथापि उनकी मानन्दी नहीं छूटती है। अव्याकृत = वाणी माया कल्पनाकृत ब्रह्म-परमात्मापद चराचरमें भरपूर-व्यापक है, सो अधिष्ठान ब्रह्म मैं हूँ। ऐसी ही भावना उनके मनमें ठसी रहती है। क्योंकि, बहुत समयसे वही मानन्दीको उन्होंने दृढ़ कर रखा है, तो सहजमें वह नहीं निकलती है। अतः बिना पारख जड़ाध्यासी होके आवागमनमें ही पड़े रहते हैं। तैसे सम्पूर्ण विषय अध्यास भी जीवोंको नाना योनियोंमें नचाती है। अव्या = माया, काया, मनादिके सम्बन्धमें किया हुआ कर्म संस्कार हृदयमें भरपूर या पूर्ण हो रहता है। जैसे-जैसे वह सन्मुख आता-जाता है, तैसे-तैसे फल भोगजीव भुगतते जाते हैं। अतएव मुमुक्षुओंको चाहिये कि, पहिलेसे ही पारखी सद्गुरुके शरण-ग्रहण करके खानी-वाणीके सकल अध्यासको जीते ही परि-त्याग करके सद्गुण रहनी सहित पारखस्वरूपमें एकरस स्थिति कायम कर जीवन्मुक्त हो जाना चाहिये। तभी यथार्थ मुक्ति होवेगी ॥ ६२ ॥

साखीः— भास जहाँ जहाँ जो करै । तहाँ तहाँ तम अधिकाय ॥
अव्याकृत दुःख रूपको । बोधे सुख दरशाय ॥ ६३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो ! जो-जो मनुष्य जहाँ-

जहाँपर जैसा-जैसा भास, भावना दृढ़ करते हैं, तहाँ-तहाँपर तैसा-तैसा ही, तम = अज्ञानरूप अन्धकार, अविद्या, माया-मोहकी आसक्ति, अध्यास विशेष-विशेष अधिक ही होता जाता है। भ्रम-भूल बढ़ता ही जाता है। कर्मके भास भोग आदि काम प्राप्ति, सालोक्य मुक्तिके लिये तीर्थ, व्रत, तपस्या, मन्त्र, जाप, स्नान, सन्ध्या वन्दन, होम, हवन आदि जो करते हैं, तहाँ जड़ाभ्यास ही विशेष बढ़ता जाता है। उपासनाके भास धर्म प्राप्ति, सामीप्य मुक्तिके लिये नाम स्मरण, सगुण-निर्गुण-उपासना, ब्रह्म, ईश्वर, तैंतीस कोटि देवता, देवी, भूत, प्रेत, आदिके आराधना भक्ति जो करते हैं, तहाँ कुसंस्कार ही विशेष बढ़ता है। योगके भास अष्टसिद्धि आदि अर्थ प्राप्ति, तथा सारूप्य मुक्ति प्राप्तिके लिये अष्टाङ्ग योग साधना, षट्कर्म, दशमुद्रा, यम आदि आठ अभ्यास, तथा ध्यान, समाधि लगाय, ज्योति देख, शून्यमें गाफिल होते हैं। तहाँ अविद्या ही अधिक होती जाती है। ज्ञानके भास सूत्रमणि न्याय, साक्षी-आत्मा मानकर, सायुज्य मुक्ति प्राप्तिके लिये साधन चतुष्टयकी अभ्यास, सप्तज्ञान भूमिकाकी बढ़ाव आदि करते हैं, मानन्दीरूप बन जाते हैं, तहाँ तमरूप अध्यास ही ज्यादा बढ़ जाती है। और विज्ञान मार्गके भास चराचर परिपूर्ण एक ब्रह्म सर्वाधिष्ठान आकाशवत् शून्य मानन्दी करके तहाँ जड़ अजगरादिवत् वृत्ति बनाय, विशेष गाफिल मूढ़ ही हो जाते हैं। और जो संसारमें विषयादिकी भास दृढ़ करते हैं, तहाँ अज्ञान, अध्यास ही अधिक हो जाती है। इस प्रकारसे मनुष्य जहाँ-जहाँपर जा-जाकर जो-जो भास दृढ़ करते हैं, वहाँ-वहाँपर तम-रूप महा अज्ञान ही बढ़ जाता है। और अव्याकृत = वाणी कल्पनाकृत ब्रह्म-परमात्मा-पद जो माने हैं, सो तो वास्तवमें दुःखरूप जगत् या जन्म-मरणादिके कारण बीज ही है। परन्तु उसी ब्रह्मको भ्रमिक गुरुवा लोग सच्चिदानन्द सुखस्वरूप है, ऐसा कल्पना दरशायके, उपदेश देके जीवोंको बोध करते हैं। और उसकी बड़ी महिमा बताकर वेद-वेदान्तका प्रमाण दरशाकर ब्रह्मज्ञानका बोध करते हैं। जीव-ब्रह्मकी

एकतामें परमानन्द सुख बतलाते हैं। इसीसे अविचारी मनुष्य सब उसी धोखामें फँसके बद्ध हो जाते हैं। अतएव पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग विचारद्वारा परख करके जिसको अव्याकृत दुःखरूपका भेद जानकर यथार्थ पारखबोध हो जाता है। फिर उसे सकल भास, अध्यासका परित्याग कर निजस्वरूप स्थितिमें ही नित्य सुख प्राप्त हो जाता है। सो गुरुबोधसे दरशाता है। इसीसे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें लगे रहना चाहिये ॥ ६३ ॥

साखीः— ज्ञानी हत्या पापको कहैं। मानत लागै सोय ॥
जल करि मानै अग्निको। तो शीतल काहे न होय ॥६४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ! ब्रह्मज्ञानी-वेदान्ती लोग अविचार या मूर्खतासे ऐसा कहते हैं कि— जीव हत्या=हिंसा आदि पाप कर्तृत्त्व, भोक्तृत्व अपनेमें उसको माननेवाले अज्ञानी लोगोंको ही पाप लगता है। आत्मज्ञानी मैं अकर्ता, अभोक्ता ब्रह्म हूँ, ऐसा जानते हैं, वे पाप-पुण्यको कुछ मानते ही नहीं; इसलिये ज्ञानीको पाप-पुण्य भी कुछ लगता ही नहीं॥ भगवद्गीता अध्याय ३, श्लोक २७ तथा ३० में कहा हैः—

श्लोकः— "प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ २७ ॥
मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ॥
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥" ३० ॥

—हे अर्जुन! वास्तवमें सम्पूर्ण कर्म प्रकृतिके गुणोंद्वारा किये हुए हैं, तो भी अहङ्कारसे मोहित हुए अन्तःकरणवाला पुरुष, मैं कर्ता हूँ, ऐसे मान लेता है॥ हे अर्जुन! तूँ ध्याननिष्ठ चित्तसे सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें समर्पण करके, आशारहित और ममतारहित होकर, सन्तापरहित हुआ युद्ध कर॥

और भी भगवद्गीतामें श्रीकृष्णने बहुत प्रकारसे कहा है कि— स्वधर्मआचरण करके युद्ध करनेवाले क्षत्रियको हत्याका कोई पाप नहीं

लगता है। हे अर्जुन! तूँ युद्ध कर, इन सबको मार, तूँ कर्मका हंकार मत ले, तो तुझे कुछ भी पाप नहीं लगेगा। ज्ञानी मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा समझके अनासक्त चित्तसे निष्काम कर्म करते हैं। और कर्मके सब फल ईश्वरार्पण करते हैं। इसलिये उन्हें जीव-हत्या आदिका पाप नहीं लगता है। जो अपनेको कर्म करनेवाला मानके हंकार लेता है, उसीको सब प्रकारसे पाप लगता है। सारांश; माननेसे ही हत्या आदिका पाप लगता है, और न माने, तो कुछ भी पाप नहीं लगता है; ऐसा वेदान्ती ज्ञानियोंका कथन है। तिसपर पारखी सन्त उनसे पूछते हैं कि—यदि ऐसा ही है, तो हे भाई! प्रज्ज्वलित प्रचण्ड अग्निको यह बरफके समान ठण्डा वा पतला जल है, ऐसा कल्पनासे यदि दृढ़ करके माने, तो क्या वह शीतल हो जायगा? कभी नहीं होगा। कहो, अग्नि शीतल क्यों नहीं होता है? उसे जल करके तो मान लिया था न? फिर शीतल हुआ क्यों नहीं? जब यह संभव नहीं है, तो अग्निवत् जीव हत्यादि पापको, जलवत् मैं आत्मा अकर्ता, अभोक्ता हूँ! ऐसा माननेसे क्यों नहीं दोष लगेगा?। यदि तुम पाप-पुण्यसे न्यारे हो, तो अभी दुःख-सुखको क्यों भोग रहे हो? जैसे अभी पूर्व संस्कारको भोग रहे हो, तैसे ही किया हुआ शुभाशुभ कर्मका फल फिर भी देह धारण करके अवश्य भोगोगे। चाहे मानो या न मानो, किन्तु कर्म संस्कार तुम्हें अवश्य भोगना ही पड़ेगा। अरे! वे ब्रह्मज्ञानी तो धूर्त रहे, अपने स्वार्थसिद्धिके लिये ही ऐसा वचन उन्होंने कहे थे। सो अन्याय-अविचारकी बात है। जो वस्तुका गुण जैसा है, वह वैसा ही रहता है, न माननेसे उसके गुणमें फरक नहीं पड़ सकता है। रातको दिन माननेसे प्रकाश नहीं होता है, अग्निको जल माननेसे ठण्डा-पतला नहीं होता है। वैसे ही पापको न माननेसे भी उसका भोग नहीं छूटता है। अतएव मिथ्या मानन्दी भ्रमको छोड़कर सत्यबोधको ग्रहण करके जीवन सुधार करना चाहिये ॥ ६४ ॥

साखीः— और वृक्ष कहै कल्पतरु । कै माने अनुमान ॥
सकल पुरावै कामना । तो साँच एकता ज्ञान ॥ ६५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासुओ ! वेदान्ती लोग जो जीव-ब्रह्मकी वा जगत्-ब्रह्मकी एकता कथन करते हैं, सो सरासर असत्य है, न घटनेवाला या साबित न होनेवाला है । क्योंकि, ऐसी एकता तो कहीं किसीको दिखाई देता ही नहीं । जैसे गुरुवा लोगोंने ही कल्पना किया है कि— स्वर्गलोक-इन्द्रपुरीमें एक कल्पवृक्ष है । उस वृक्षके नीचे जाके उसे पकड़कर जो भी सङ्कल्प करके इच्छा या चाहना जैसा करे, तो वहाँ वही चाही हुई वस्तु मिलके अपने-आप चाहना पूरी होती है । इत्यादि कल्पना करके उस कल्पवृक्षको विशेष करके माने हैं । सो मिथ्या भ्रम ही है । यदि उसे भी थोड़ी देरके लिये मान लें, तो और जङ्गलमेंके दूसरे सब वृक्षोंको भी अनुमान करके वैसे ही कल्पवृक्ष है कहैं, फिर उसके नीचे जाकर, झाड़को पकड़कर मनमाने नाना इच्छाएँ करें, तो क्या वह मनुष्योंके मनकी सम्पूर्ण कामना या चाहना पूरा कर सकता है? कभी नहीं कर सकता है । यदि सब वृक्ष सब प्रकारकी कामना या इच्छा पूर्ण कर दें, तब तुम्हारी एकताज्ञान सच्चा है, ऐसा जाना जायगा । नहीं तो अद्वैत ज्ञान सरासर झूठा है, ऐसा दृढ़तासे माना जायगा । अर्थात् जैसे तुमने ब्रह्मको माने हो, वैसे ही और जड़-चैतन्य सबको भी ब्रह्म अनुमान करके माना, एक ही ब्रह्म व्यापक है, ऐसा कहा— तो भी क्या चराचरमें उस ब्रह्मका लक्षण निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, निरीह, आदि कहीं घटता है ? कहीं नहीं । इसीसे ऐसे ब्रह्म मानतें ही जीवकी सब इच्छा निर्मूल होवे, ऐसा तो कहीं नहीं होता है । अतः ब्रह्मज्ञानका एकता कथन भी सच्चा नहीं ठहरता है । वह मानन्दी भ्रम-धोखामात्र होनेसे असत्य है ॥ ६५ ॥

साखीः— कबीर सम्मल जहरको । मानै खोवा दूध ॥
जो खायेपर गुण करै । तो एकै है सूध ॥ ६६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे नरजीवो ! सम्मल =

हलाहल तीक्ष्णगुण एकत्र, जहरको=कालकूट विषको, भिगायके, गीला करके उसे यदि, दूध गाढ़ा करके बनाया हुआ खोवा या मावा मानकर खा लेवें। तब वह जहर खानेपर जो खानेवालोंको दूध वा खोवाके समान अच्छा गुण करे, फायदा करे, शरीरमें शक्ति बढ़ायके हृष्ट, पुष्ट, बलिष्ट करे, ताकत बढ़ावे, तन, मनमें सुख होवे। तब तो तुम्हारा एक ब्रह्म शुद्ध सत्य पूर्ण व्यापक है, ऐसा कहा हुआ एकताका प्रत्यक्ष पता भी चले। जब ऐसा नहीं होता है, किन्तु, जहर खाते ही बहुत कष्ट पाके, तड़प-तड़पकर प्राणान्ततक हो जाता है। तब कहो तुम्हारे एकताका पता कहाँ, कैसे लगेगा? वैसे ही जहररूप जड़-तत्त्व तथा विषयोंको, और दूधरूप चैतन्य जीवोंको एकमें मिलायके उनके भिन्न-भिन्न गुण-लक्षणोंको खोयके, या मिटायके उसे न मानकर एक ब्रह्म माने हैं। जो ऐसे भ्रमकी समझ ग्रहण करनेपर यथार्थमें बन्धन निवृत्ति-का गुण करता, मुक्ति मिलती, तब तो एक ब्रह्म है, कहना भी सत्य ठहरता। परन्तु ऐसा नहीं होता है, ब्रह्म बनके जीव भ्रम चक्रमें पड़ जाते हैं, और ब्रह्म बननेपर जीव जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके चक्रके फेरामें पड़ जाते हैं। अतः एकताका सूध असत्य भ्रमपूर्ण है। परीक्षा करके धोखाको हटाना चाहिये ॥ ६६ ॥

साखीः— तो मैं जानों एकता। लो आगीसों नहाय ॥
जल छूये जो अङ्ग जरै। तो सकलों एक पतियाय ॥ ६७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! बिना प्रत्यक्ष-प्रमाणके एकता कथन करनेपर कैसे विश्वास हो?। अगर जड़-चेतन सर्वत्र एक ही ब्रह्म भरा है, ऐसा तुम्हें दृढ़ निश्चय है, तो हे ब्रह्मज्ञानी! तुम लोग धध-कती हुई अग्निकी चिनगारी समूह अङ्गारोंको अपने शिरपरसे डालके उससे अच्छी तरहसे स्नान कर लो। अथवा नदीमें गोता लगानेके सरीखी प्रज्ज्वलित अग्निकुण्डमें प्रवेश करके गोता लगाके निकल आओ। तब तो मैं तुम्हारी एकताका ज्ञान या जीव-ब्रह्म-जगत्की एकता मान्यताको

ठीक जानूँगा। अगर ऐसा नहीं कर सकोगे, तो मैं तुम्हें पाखण्डी धूर्त ही समझूँगा। क्योंकि, साँच-झूँठकी पहिचान अग्नि परीक्षासे होती है, ऐसी बात लोकमें प्रचलित है। सो अब तो तुम अपनी मतकी परीक्षा दिखा दो; अग्निसे नहा लो। और ठण्डा बहती हुई जलको छूते ही हाथ आदि अङ्ग जल जावें, फफोला पड़ जाय, जो ऐसा होवे, तुम ऐसी परीक्षा मुझे प्रत्यक्ष दिखा सको, तो मैं भी तुम्हारे सिद्धान्त— स्थावर-जङ्गम सकल संसारमें पूर्ण भरा हुआ एक अद्वैत परमात्माका अनुभव करके प्रतीत कर लूँगा। अगर अग्निके स्नानसे शीतलता हो, जलके स्पर्शसे उष्णत्त्व होके अङ्ग जरै, तब तो ब्रह्मकी एकतापनाको संसारमें सब कोई विश्वास कर लेंगे। जब ऐसा होना सम्भव नहीं है, तब तुम्हारे मिथ्यावाद एकता कथनको कौन विवेकी पतियायेंगे? कोई भी प्रतीत नहीं करेंगे। उसे महान् असत्य ही समझेंगे ॥ ६७ ॥

साखीः— आतम ज्ञान उत्तम किये। झूठनके सरदार ॥
कृतमको कर्ता कहैं। पढ़ि गुनि भये लबार ॥ ६८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ! झूठोंके सरदार या महा झूठे, मिथ्यावादियोंमें अग्रगण्य वेदान्ती गुरुवा लोगोंने संसारमें सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ आत्मज्ञान = आत्मा एक सर्वाधिष्ठान परिपूर्ण व्यापक, अद्वैत, निराकार, निर्गुण, निरञ्जन है, इत्यादि वर्णन किये हैं। सबसे उत्तम संसारमें वही आत्मज्ञान है। ऐसा दृढ़निश्चय किये-कराये हैं। विवेक करिये! तो वह लक्षण सब कपोलकल्पित, झूठा ही है, ऐसा मालूम हो जायगा। कृतमको = बनावटी, नकली वाणी कल्पना, भ्रमको ही वे लोग श्रेष्ठ मानते हैं, और वेद-शास्त्र आदि ग्रन्थोंको अपने बनाते हैं। उसके प्रमाणसे ईश्वर, परमात्मा कोई जगत्कर्ता है, जड़, चैतन्य सृष्टि और चारोंवेद भी उसी कर्ता पुरुषने बनाया है, वह सर्वशक्तिमान् है, जो चाहे, सो कर सकता है, इत्यादि कहते हैं। वे तो कृत्तिमको ही

कर्ता कहते हैं, बड़े अन्यायी, अविचारी बने हैं। अरे! वे भ्रमिक गुरुवा लोग तो वेद, शास्त्र, पुराण, आदि कल्पित वाणीको ही पढ़के पढ़ाके और उसे ही गुनि = मनन, हृदयङ्गम, दृढ़ निश्चय करके-कराके अन्तमें, लबार = मिथ्यावादी या झूठे, दुराग्रही मिथ्यापक्ष पकड़नेवाले हठी, शठी, बकवादी भये और वैसे ही लबार हो रहे हैं। अपने कल्पनाको ही कर्ता, ईश्वर कहते हैं। मनुष्योंकी बनाई हुई वेदादि वाणीको ईश्वरकृत कहते हैं। ऐसे अविवेकी भये हैं ॥ ६८ ॥

साखीः—केहि उपदेशे आतमा । को कहै आतमज्ञान ॥
कृतम बड़ा कि कर्ता । कहु पण्डित! परमान ॥ ६९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे ब्रह्मवादी पण्डित! तुम लोग जब आत्माको सर्वत्र व्यापक एक ठहरायके "आतति सर्वत्र व्याप्नोतीति स आत्मा"— सर्वत्र व्यापक होवे, सोई आत्मा है— ऐसा कहते हो। जब एक आत्माके सिवाय अन्य दूसरा कोई नहीं है, तब कहो, वह आत्मा किसको कैसे आत्मज्ञानका उपदेश देता है? तथा आत्मज्ञानको कौन, कहाँ रहके किस तरह कहता है? और कौन, कैसे सुनके जानता है? क्योंकि, यह सब व्यवहार तो अनेक देहधारियोंमें होता है, एक निराकारमें ऐसा कार्य हो ही नहीं सकता है। इससे द्वैत जगत् जड़-चैतन्यकी अनादि सिद्धि स्वयं ही हो गई। आत्मज्ञान, उसके उपदेशदाता गुरु, श्रोता— ग्रहण करनेवाला शिष्य, भिन्न-भिन्न होनेसे एक आत्माका कथन सरासर मिथ्या ही ठहरा, और कृत्तिम वाणी कल्पना तथा ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, इत्यादि मानन्दी बड़ा श्रेष्ठ है कि— अथवा उसे बनानेवाला, मानन्दी करनेवाला, वाणी, कल्पना, अनुमान, आदिका निर्माणकर्ता नरजीव बड़ा है? कृत्तिम— वाणी ब्रह्म और कर्ता जीव, मनुष्य इन दोनोंमें कौन बड़ा है? सत्य श्रेष्ठ कौन है? हे पण्डित! बुद्धिमान् लोगो! मैं तुमसे पूछता हूँ! तुम्हारे समझमें कैसे आता है? सो प्रत्यक्ष प्रमाण सहित निष्पक्ष

होके कहो। अपना विचार प्रगट करो। मिथ्यापक्ष, धोखाको परित्याग करो, जड़ पाँच तत्त्वके संसार तथा देहधारी अनन्त चैतन्य जीव स्वतः ही अनादि हैं। ब्रह्म, ईश्वर, व्यापक, आत्मा आदि मानन्दी मिथ्या है, इसका यथार्थ पारख विचार करके जीवन सुधार करो ॥ ६९ ॥

साखीः— नास्तिक-नास्तिक सब कहैं। नास्तिक लखै न कोय ॥
कृतमको कर्ता कहै। नास्तिक कहिये सोय ॥७०॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! संसारमें पक्षपाती भ्रमिक गुरुवा लोग सब कोई अपने मत खण्डन करनेवालेको युक्ति-प्रयुक्ति, न्याय-निर्णयसे परास्त कर न सकनेके कारणसे हार मानके आखिरमें उन्हें तुच्छ बताकर शिष्योंको अपने कब्जेमें रखे रहनेके लिये कहते हैं कि— अरे! सज्जनो! वे तो पक्के नास्तिक हैं, तभी तो ईश्वर, ब्रह्म, वेद आदिको झूठा बताकर खण्डन करते हैं। वे नास्तिक हैं, उनके सङ्गतमें नहीं जाना, नहीं तो तुम लोग भी वैसे ही नास्तिक हो जाओगे। सावधान रहो, वेदके सनातन मतसे बाहर नहीं जाना। इत्यादि प्रकारसे दृढ़ा कर सब कोई मतवादी एक-दूसरेको नास्तिक हैं, नास्तिक हैं, कहते हैं। परन्तु नास्तिक किसे कहते हैं? उसका खास लक्षण क्या होता है? यह भेद तो वे गुरुवा लोग खुद ही लखके कोई भी नहीं जानते हैं। तो औरको क्या लखावेंगे? क्या बतावेंगे? पारखी सन्तोंके बिना पक्के नास्तिकको और कोई लख नहीं पाते हैं। विवेक-दृष्टिसे देखिये! तो कृत्तिम = मनुष्योंका बनाया हुआ वाणी— कल्पना, ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, आदि नकली मनकी मानन्दी मिथ्या धोखाको ही कर्ता = जगत्कर्ता, परमात्मा, चैतन्य, सुख-दुःखका दाता, परमेश्वर, इत्यादि झूठ ही महिमा बढ़ाके कहते हैं। जो सत्यन्याय निर्णयसे भ्रम, धोखाके सिवाय और कुछ भी वस्तु नहीं ठहरता है; और वाणीके कर्ता जीवोंको कल्पित ईश्वर वा ब्रह्मका अंश कहते हैं, उसे ही

कल्याण कर्ता ठहराके उसके आशा लगाके भूलमें पड़े रहते हैं, और दूसरोंको भी भुलाके भटकाते हैं, भवबन्धनमें डाल देते हैं, वास्तवमें सोई तो पक्के बड़े नास्तिक कहलाते हैं। नास्ति-कल्पनाको माने-मनावे, सोई नास्तिक है। कहिये! वे मिथ्यावादी नास्तिक नहीं हैं, तो कौन है? अतः गुरुवा लोग ही नास्तिक हैं, ऐसा जानिये! ॥ ७० ॥

साखीः—जाको इष्ट प्रत्यक्ष नहीं। लीन परोक्षहिं होय ॥
कहहिं कबीर पुकारिके। नास्तिक कहिये सोय ॥ ७१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— क्योंकि, जिन्होंके इष्ट देवता = ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, देवी, देवता, भूत, प्रेत, खुदा, राम, रहीम, इत्यादि जो कुछ भी इष्ट, प्रिय, दृढ़ करके अपनाके माने हैं, सो तो प्रत्यक्ष दृश्य और विवेकमें ठहनेवाला भी ऐसा कोई वस्तु नहीं है। सिर्फ मिथ्या मानन्दी, कल्पनाको ही इष्ट मान करके व्यर्थ ही परोक्ष कही-सुनी हुई वाणीकी मिथ्या भावनामें ही लवलीन होते हैं। तो भला! उस भ्रमसे जीवकी क्या भलाई होवेगी? कुछ भी हित नहीं होगा। प्रत्यक्ष इष्ट-देवतारूप पारखी सत्यन्यायी साधु गुरु और उन्हींकी पारख दृष्टि स्वरूप ज्ञान और यह चैतन्य जीव ही नित्य, सत्य, अखण्ड स्वरूप है; इससे परे और कोई सत्य वस्तु नहीं है; ऐसे अपरोक्ष बोध जिनको कुछ भी नहीं है। अप्रत्यक्ष ईश्वर, खुदा, आदि कोई एक कर्ता मानके वेद, कुरान आदिकी परोक्ष कलिपत वाणीमें ही लीन, गाफिल होते हैं। ऐसे अविवेकी, भ्रमिक, पक्षपाती, अन्यायी, पाखण्डी, मतवादी गुरुवा लोग सोई असली नास्तिक कहलाते हैं। क्योंकि, उनके स्थिति कुछ नहीं है। पारखी सद्गुरुश्रीकबीरसाहेबके सत्य-सिद्धान्तके ज्ञाता पारखी सन्तने पुकारके कहा है कि— जीवको न माननेवाले गुरुवा लोग वे ही नास्तिक हैं, ऐसा निर्णयसे ठहरता है ॥ ७१ ॥

साखीः—है ताको जाने नहीं । तासों बेमुख होय ॥
नाहीं को जाना चहै । नास्तिक कहिये सोय ॥ ७२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासुओ ! जो निज स्वरूप जीव-सत्य, चैतन्य, अजर, अमर, अविनाशी, अखण्ड, हाजिर-हजूर है; और पारखबोधदाता, सत्यन्यायी, सद्गुरु जीवोंके हितकारी मुक्ति प्रदाता हैं। उनके शरण-सत्सङ्गमें जाके, निज पारखस्वरूपको तो नहीं जानते, और जाननेके प्रयत्न भी नहीं करते हैं। बल्कि पारखी सद्गुरु और चैतन्य-जीवकी स्वयंस्वरूप पारखबोधसे विमुख-उल्टे, विरोधी, पक्षपाती, द्वेष करनेवाले होते हैं, और उसके विपरीत माना हुआ आकाशवत् निर्गुण, निराकार, असीम ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा, इत्यादि जो कुछ कहे हैं, सो वस्तु ही नहीं है। मिथ्या भ्रान्ति धोखाकी मानन्दी भूल ही है। उसे योग, जप, तप, धारणा, ध्यान, समाधि, ज्ञान, विज्ञान, आदि नाना साधनाएँ करके जानना चाहते हैं, उसके दर्शन करना, मिलना, तदाकार होना, उसीमें एकता करके लय होना चाहते हैं। उसके लिये जन्म भर नाना तरहसे प्रयत्न करते-करते गाफिल जड़ाध्यासी होके मर जाते हैं। किन्तु, पारख बोधको नहीं जानते हैं। वास्तवमें सोई पक्का या कट्टर नास्तिक या मूढ़, असत्य-को माननेवाले हैं, वे ही नास्तिक कहलाते हैं। यह यथार्थ पारखी सद्गुरुकी निर्णय है ॥ ७२ ॥

साखीः—है ताको जाने नहीं । नाहीं को करे मान ॥
कहहिं कबीर पुकारिके । सो नास्तिक अज्ञान ॥ ७३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो ! प्रत्यक्ष सत्य चैतन्य-जीव ही है, और मनुष्योंको पारखबोध देनेवाले दयालु बन्दीछोर पारखी सद्गुरु हैं। उसको या उन्हें तो ठीक तरहसे जानते, पहिचानते भी नहीं। पक्षपाती अविवेकी गुरुवा लोग जो कुछ सत्य वस्तु नहीं है, शून्य मिथ्या है। उसे ही आकाशवत् पूर्णव्यापक

निर्गुण, निराकार ब्रह्म-परमात्मा, ईश्वर, खुदा, कोई कर्ता पुरुष है, ऐसा कहकर जो नहीं है, उसीको सत्य मानते हैं; और देवी, देवता, भूत, प्रेतादि मानके जीव हिंसा करते हैं, वही मानन्दी दृढ़ करते-कराते हैं। सत्यासत्यको न जाननेवाले सोई महा अज्ञानमें पड़े हुए भ्रमिक लोग बड़े नास्तिक हो रहे हैं। सत्यन्यायी पारखी सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके अनुयायी पारखी सन्त पुकारके कहते हैं कि— बेपारखी जीवके स्वरूपको न समझनेवाले जो हैं, सोई अज्ञान ग्रसित नास्तिक हैं। यानी नास्ति कहिये वस्तु कुछ न हो, उसीको कल्पना करके सत्य माने, उसे ही नास्तिक-महामूढ़ जानना चाहिये; और जो सत्य वस्तुको सत्यबोध सहित जाने-माने तथा मिथ्या मानन्दीको न माने, सो यथार्थमें आस्तिक हैं, इस प्रकार गुरुमुख निर्णयको सत्सङ्ग विचार द्वारा ठीक तरहसे पहिचानना चाहिये ॥ ७३ ॥

साखीः—माया जाको इष्ट है। दाहिन पन्थ नहिं सोय ॥
कहहिं कबीर पुकारिके। बामते बामिक होय ॥७४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ! जिसको या जिन-जिन मनुष्योंको माया = काया, विषय-भोग, स्त्री, गुरुवा लोग, वाणी, कल्पना, अर्थ या द्रव्य इत्यादि इष्ट है, प्रिय है, उसमें प्रेम, आसक्ति, मोह, पक्षपात, हठ, दुराग्रह लगा रखा है। जिन्होंने मायाको ही इष्ट देवी मान रखा है, और वाणी कल्पनामें ही गाफिल पड़े हैं; विवेक करके देखो! तो वास्तवमें वे लोग कट्टर बाममार्गी हैं। उल्टे मार्गसे ही चलनेवाले हैं। अतः सो ऐसे लोगोंके पन्थ कदापि कभी भी दाहिन पन्थ या दक्षिणमार्ग = शुद्ध न्याय निर्णयकी हंस चाल रहनी-रहस्यकी रास्ता हो नहीं सकती है। वे सत्य-पन्थी कभी हो नहीं सकते हैं। क्योंकि, उनके इष्ट तो खानी-वाणी है, फिर भला! वे शुद्ध मोक्षमार्गी कैसे हो सकते हैं? कभी हो नहीं सकते हैं। इसवास्ते सद्गुरु श्रीकबीर साहेबके पारख निर्णयके ज्ञाता

पारखी सन्तने पुकार करके कहे हैं कि— जैसे स्त्रीकी सङ्गत करके पञ्चमकार = मीन, मांस, मुद्रा, मद्य, और मैथुन, इसका सेवन करने-से वह बाममार्गी होता है या लोकमें बाममार्गी कहलाता है। तैसे ही बाम = वाणी, वेद, वेदान्त, ब्रह्म, वाद-विवाद, ये पञ्च "व" वकारके सेवन करनेवाले गुरुवा लोग सब भी बायाँ चालसे चलनेवाले बामिक = बाममार्गी, उल्टे बन्धनमें जानेवाले हुए और हंसपदसे उलट-उलटकर कल्पना लेकर बद्ध हो रहे हैं। अतएव पारख-दृष्टिसे उन्हें ठीकसे पहिचानकर उपरोक्त दोनों प्रकारके बाममार्गियोंके कुसङ्गसे दूर रहना चाहिये। भूल करके भी कभी उनके सोहबतमें नहीं लगना चाहिये, तभी कल्याण होवेगा ॥ ७४ ॥

साखीः—हृदया भासे सर्प जो। रज्जुमें कलपे सोय ॥
रज्जु लखि मिथ्या कहत है। पुनि रज्जु अहि सत होय ॥७५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जिसने पहलेसे सर्प देखके उसके गुण-अवगुण समझ लिया है, तो उसे ही सर्प सम्बन्धी संस्कार पुष्ट होता है। फिर हृदयमें जो सर्पका भास दृढ़ है, जैसा भासा है या भासता है। सो मनुष्य कालान्तरमें कहीं रज्जु या आड़ी-टेढ़ी पड़ी हुई रस्सीको मन्द प्रकाशमें देखके, वहाँ उस रस्सीमें पूर्व दृष्ट-श्रुत सर्परूपका कल्पनाका आकार खड़ा करता है। इससे सो कल्पना करनेवाला तब डरता, काँपता भी है; हिचकिचाके पीछे हट जाता है। फिर पश्चात् दीपक आदिके द्वारा विशेष प्रकाशमें उसे देखनेपर वहाँ तो रज्जु या रसरी पड़ी हुई देखकर उसे उठाकर अरे! इसमें माना हुआ सर्प तो मिथ्या था, भ्रमसे ही मैं डर रहा था, ऐसा कहता है। फिर पूर्वभासित साँपके जगहमें रस्सी ही सत्य साबित हुई। इस तरह भी देखिये! तो रज्जु और सर्प अपने-अपने जगहमें दोनों ही सत्य हुए। यदि सत्य सर्प कहीं देखा न होता, तो फिर रस्सीमें ही वह कहाँसे दिखाई देता! सर्प सत्य प्रथमसे था, उसे देख-सुन-

कर हृदयमें भास भी टिका लिया था, तभी रज्जुमें भी सर्पकी कल्पना हुई और उपयुक्त समयमें सादृश्यता पायके वह भास हुई। इसलिये भी सर्प सत्य ही हुआ। सिद्धान्तमें वेदान्ती लोग यही दृष्टान्त देके "रज्जु सर्पवत्" जगत् मिथ्या भ्रान्ति है, अधिष्ठान आत्मा ही एक सत्य है, ऐसा कहते हैं। तहाँ सर्पके समान जो जगत्को ठहराये, सो जगत् त्रयकालमें देखे, सुने, अनुभव किये हुए प्रत्यक्ष ही है, और रज्जुवत् आत्माको माने हैं। जो जगत् जड़-चैतन्यरूपका भास हृदयमें भास रहा है, सोई अत्मामें कल्पना करते हैं। यानी मनमें एक आत्मा व्यापक है, ऐसा कल्पना करते हैं, तो भी जगत् भासता ही है। वेद-वेदान्त पढ़, सुन, गुनके जब वाणीका प्रकाश भया, तब वेदमें आत्मा अधिष्ठान सत्य है, ऐसा लिखा हुआ देखके आत्मज्ञानको लखके, जगत् मिथ्या है, तीन कालमें नहीं है, ऐसा कहते हैं। तो भी फिर उन्हें रज्जुवत् आत्मामें अहि = सर्पवत् मिथ्या माना हुआ जगत् बारम्बार सत्य हो करके भासता या दिखाई देता ही है। यदि नहीं भासता, तो निषेध ही क्यों कर सकते थे। इस कारणसे सिद्ध हुआ कि— इन वेदान्तीके दृष्टान्त-सिद्धान्त विषम होनेसे असम्भव है। जगत् तीन कालमें सत्य है। जिसको भासता है, सो जीव भी सत्य है। माना हुआ आत्मा, ब्रह्म, ही कल्पना होनेसे मिथ्या है। जड़ और चैतन्यका सम्बन्धमें मनुष्योंको भ्रम होता है। पारख विचार होनेपर वह भ्रम-भूल मिट सकता है। फिर आत्मा आदि मानन्दी असत्य है, जड़-चैतन्यरूप जगत् सत्य है, सो बोध हो जाता है ॥ ७५ ॥

साखीः— जो अहि कबहुँ देखा नहीं। तेहि रज्जुमें नहिं दरशाय ॥
सर्पज्ञान जाको भयो। जहाँ-तहाँ देख भयाय ॥७६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो! जो कभी भी जिस किसीने जीवित या मृतक किसी भी प्रकारके सर्पको अपने

नेत्रोंसे देखा नहीं है तथा सुना भी नहीं है; यानी जिसे सर्प कैसा होता है? उससे क्या हानि होती है? यह बात बिलकुल मालूम ही न होवे, तो तिसको कहीं पड़ी हुई जड़ रस्सी आदिमें भी सर्प दिखाता नहीं है। अर्थात् उसे रज्जुमें भी सर्पका भास नहीं दरशता है। अतएव छोटे-छोटे अबोध बालक कभी-कभी कहीं अनायास ही जहरीले सर्प हीको भी निर्भय होके पकड़ लेते हैं, और पकड़े ही रखते हैं। दूसरे लोग पीछे युक्तिसे उसे छुड़ा देते हैं। (यह घटना बहुतोंने देखा वा सुना भी है, कई लोग जानते भी होंगे)। इससे यह सिद्ध हुआ कि, जन्मसे कभी सर्प न देखा हो, तो उसे रस्सीमें सर्प कदापि नहीं भासेगा, और जिसको सर्प तथा उसके जहरसे होनेवाली हानिका ज्ञान हो गया है कि— "सर्पके काटनेसे शरीरमें उसका जहर चढ़कर प्राणी दुःख पायके मर जाते हैं, यदि कदाचित् सर्प मुझे काटेगा, तो मैं भी पीड़ित होके मर जाऊँगा" ऐसा सोच-समझ दृढ़ होनेसे वही सर्प ज्ञानवालाने पहलेसे सर्पको देखा-सुना भी है, इसलिये जहाँ-तहाँ मन्द प्रकाशमें रस्सी आदि जड़ पदार्थ पड़ा हुआ देखके, उसे सर्प होनेका कल्पना करके भ्रमसे सर्प भास होनेके कारणसे भयभीत होकर डर जाता है, तब चिल्लाके पीछे भागता है, डरके मारे काँपने लगता है, ऐसी विकार उसमें उत्पन्न हो जाते हैं। फिर अच्छी तरहसे दीपकके प्रकाशमें उसे देखके, रस्सी जाननेपर भ्रम मिट जाता है। उसी प्रकार सिद्धान्तमें जो कभी भी स्थावर-जङ्गमरूप— जड़-चैतन्य-वाला जगत् जिसे वेदान्तीने सर्पवत् मिथ्या, भ्रम प्रतीतिमात्र माना है। यदि उस जगत्को पहिले कभी न देखा होता, तो फिर यह संसार प्रपञ्च रज्जुवत् आत्मा अधिष्ठानमें भी किसीको दिखाई नहीं देता। जगत् था ही नहीं, तो आत्मामें वह कहाँसे, कैसे दिखेगा? अत्यन्त अभावका कभी भाव हो नहीं सकता है। जब जगत् दिख रहा है, तो फिर उसे मिथ्या बताना, कितनी बड़ी भारी भूल है। बल्कि आत्मा व्यापक ही नहीं दिखता है, तो वही, मिथ्या धोखा है। सर्प

ज्ञानवत् जगत्का ज्ञान जिस जीवको हुआ, और हो रहा है, सो प्रत्यक्ष है। फिर यदि वह वेदान्ती बनके आत्मा वा ब्रह्मकी भावना, मानन्दी करके स्वयं ब्रह्म बनके जगत् निषेध भी किया; तथापि जहाँ-तहाँ जड़, और जीवका पसारा जगत्को ही देख-देखकर भयभीत या भ्रमिक ही होता रहेगा। अतः वह जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंमें ही भ्रमता रहेगा, बिना पारख यह भ्रम छूटता नहीं है ॥७६॥

साखीः—— कबीर जीवको देह करि । माने सो अज्ञान ॥
तन जड़ जीव जाने नहीं । जीव देहको जान ॥ ७७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! जो कोई मनुष्य अखण्ड, अविनाशी, नित्य, सत्यस्वरूप जीवको न पहिचान करके स्थूल-सूक्ष्मादि जड़ देहको ही जीव समझके मानता है। खान-पानसे शरीरको पुष्ट बनाय, विषय भोगादिमें ही आसक्त हो रहता है। सो देहवादी महा अज्ञानी नरपशु ही बना है। उसे कुछ भी जड़-चैतन्य, सत्यासत्यका विवेक नहीं है, ऐसा जानो। क्योंकि, शरीर जड़-तत्त्वोंका बना हुआ कार्य होनेसे निर्जीव या जड़ है, और जीवकी ज्ञानगुणकी जाननेकी शक्ति जड़देहमें नहीं है। वह तो देहसे भिन्न है, और जड़ शरीर चैतन्य जीवके स्वरूपको कदापि जान नहीं सकता है, वह जीवके बारेमें कुछ भी जानता ही नहीं है। उधर चैतन्य जीव देहसे भिन्न विजातीय होनेसे देहको तथा सर्वाङ्गके हालको, रोम-रोमको, सुख-दुःख आदि सभी हालको जीव ही जानता है। अतएव शरीर जड़ है, सो जीव नहीं। चैतन्य जीव शरीरसे न्यारा और ही दूसरा कुछ है, वह ज्ञानस्वरूप द्रष्टा, अमर, एकरस है, ऐसा पारख करके जानना या समझना चाहिये ॥ अथवा वे नरजीव, जो अपने स्वयंस्वरूप जीवको देह ही निश्चय करके मानते हैं, कि— यह शरीर ही मेरा स्वरूप है। सो अज्ञान, अबोध, देहवादी पामर नास्तिक हैं। शरीर जड़ है, और जीव चैतन्य, दोनों विजातीय हैं। फिर देह ही

जीव कैसे हो सकता है ? परन्तु बिना विवेक यह भेद वे जानते ही नहीं हैं । इसीसे मूढ़ता, अज्ञानता करके बुद्धि उनके मोहित हो गई है । अतः स्थूल दृष्टिसे वे शरीर ही को जीव समझके जानते या मानते हैं । परन्तु देहादिसे न्यारा जीव है, उसे विवेकी सत्सङ्गीजन ही जानते हैं ॥ ७७ ॥

साखीः—निर्गुण सगुण करि जीवको । माने मूरख सोय ॥
निर्गुण सगुण देहके । लक्षण जानो दोय ॥७८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और भी जो कोई भ्रमिक लोग, चैतन्य जीवको निर्गुण, निराकार, शून्य आकाशवत् ब्रह्म या उसके अंश करके मानते हैं, अथवा सगुण, साकार, अवतारी ईश्वर या उसके अंश ठहरा करके मानते हैं, अथवा चैतन्य जीवके खास स्वरूप निर्गुण है या होगा । नहीं तो सगुणरूप होगा । ऐसा अनुमान, कल्पनासे जो मानते हैं, सोई तो पक्के मूर्ख हैं । वैसे पठित मूर्ख वा अपठित मूर्ख लोगोंको जीवके सत्यस्वरूपका पता ही नहीं रहता है । तभी बिना विचारके कुछका-कुछ मानके अनर्थ बकते हैं । हे सन्तो ! निर्गुण=जिसमें कोई भी गुण, धर्म, लक्षण ही नहीं, ऐसा शून्य निराकार आकाश है, और सगुण = जो रज, सत्त्व, तम, ये त्रिगुण और पञ्च-विषयसंयुक्त हैं, धर्म, आकार, शक्ति, इत्यादि भी जिसमें हैं, सो ऐसे पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु, ये जड़ चार तत्त्व हैं । उक्त पाँचों तत्त्वोंके पुतला, यह जड़ शरीर कार्यरूपमें बना है । अतएव उक्त निर्गुण-सगुण दोनों लक्षण देहके वा जड़ पञ्चतत्त्वोंके हैं । ऐसा विवेक करके जानिये ! और जीव तो द्रष्टा या ज्ञानस्वरूप उक्त जड़ लक्षणोंसे न्यारा है, सो पारखसे पहिचानिये ! ॥ ७८ ॥

साखीः— कबीर लक्षण देहके । निर्गुण सरगुण दोय ॥
गुप्त रहै तब निर्गुण । सगुण परगट होय ॥ ७९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! निर्गुण और सगुण

दोनों ही खास करके जड़के लक्षण हैं। आकाश— निर्गुण, निराकार, अक्रिय, पोलमात्र, अन्य तत्त्वोंकी अपेक्षासे वह अवकाश कहा जाता है; और चार तत्त्व सगुण-साकार हैं। उनमें वायु अदृश्य, सिर्फ सूक्ष्माकार है, अग्नि दृश्य स्थूल-सूक्ष्माकारवाला है, परमाणुरूपसे अदृश्य तथा समूहमें दृश्य होता है, तथापि केवल अग्नि पकड़में नहीं आती है, इससे सूक्ष्म माना जाता है, और जल पतला तथा पृथ्वी कठोर, यह दोनों स्थूलाकारवाले हैं। इस प्रकार चारों तत्त्व सगुण हैं। यही तत्त्वज्ञानका निर्णय विचारदर्शन है। उन्हीं तत्त्वोंकी सङ्घातसे शरीर बना है। यहाँ निर्गुण-सगुण दोनों देहके लक्षणमें अनुभव प्रकाश होता है। सो निम्न प्रकारसे जानना चाहिये। योगी वा ज्ञानी लोग साधना विशेष करके वृत्तिको लयकर अन्तर्मुख वृत्ति करके, गुप्त रहै = जब अन्तःकरणमें स्थिर हो शून्य उन्मुनकर निर्विकल्प वेभान हो रहते हैं। तव उसे वे लोग निर्गुण ब्रह्म स्थिति कहते हैं। क्योंकि, वहाँ तीनों गुणोंका अभाव लय-अवस्था रहती है। तथापि वासना वीज हृदयमें गुप्त ही रहता है, और जव समाधि ध्यान टूटके स्फुरणा या इच्छा उठके बहिर्वृत्ति भई, तब सहविकल्प या सङ्कल्प-विकल्प होकर रज, सत्त्व, तम, ये तीनों गुणसहित सगुण स्थूल-भाव प्रगट हो जाता है। तो चञ्चल-वृत्तिसे सारा कार्य होने लग जाता है। सो यह देहकेही लक्षणसे हुआ। अतः यह भी जीवरूप चैतन्य नहीं है, जनैयाजीव अखण्ड उससे न्यारा ही रहता है, सो पारखस्वरूप है, ऐसा जानिये ! ॥ ७९ ॥

साखीः— अन्धा हगै पहाड़ चढ़ि। मोहि न कोई देख ॥
कहहिं कबीर पुकारिके। आप सरीखे लेख ॥ ८० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! जैसे कोई अन्धा मनुष्य पहाड़पर चढ़के हगै = मल-मूत्र त्याग करै, तब वह यह समझे कि— मैं तो इतनी दूर ऊपर चढ़के आ गया हूँ, अब मुझे

तो कोई नहीं देखता होगा, वहाँ धोती खोलके नङ्गा बैठे। सद्गुरु पुकारके कहते हैं— देखो ! वह निर्बुद्धि अन्धा अपने समान सबको भी पक्का अन्धा ही लखता है। तभी तो ऐसे उल्टे विचार करता है, नहीं तो ऊँचा पहाड़ या टीलामें चढ़े हुए वा वहाँपर बैठे हुएको तो सब कोई देख लेते हैं। "हगनेवालेको नहीं, तो देखनेवालेको लाज" यह कहावत यहाँ लग जाती है। इसी प्रकार सिद्धान्तमें पारख दृष्टिहीन अन्धा = ब्रह्मज्ञानी वा योगी, ये लोग योग वा ज्ञानकी साधना करके, पहाड़ = चराचर व्यापक ब्रह्ममें चढ़े वा भ्रमरगुफा, सहस्रदल कमल शिखास्थानमें चढ़े, वहाँ चढ़ चुकनेपर हगने लगे, अर्थात् मायाद्वैत दृश्यका अभाव, मल, विक्षेप, आवरणका परित्याग, शुद्ध-बुद्ध, निरञ्जन एक आत्मा सच्चिदानन्द ब्रह्म मैं हूँ ! मैं बहुत उच्चस्थितिमें पहुँच गया हूँ। मुझ ब्रह्मको चित्त-चतुष्टय, प्राण, दश-इन्द्रियाँ, पाँच तत्त्व, पच्चीस प्रकृतियाँ आदि स्थावर-जङ्गम कोई भी देख नहीं सकते हैं। मैं सबको देखता हूँ, सर्वव्यापक हूँ, इत्यादि समझने वा कहने वा मुखसे हगने लगे। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखके ज्ञाता पारखी सन्त पुकार करके कहते हैं कि— देखिये ! उन अन्धे बेपारखियोंने और सबको भी अपने समान अन्धे ही समझ लिये हैं। नहीं तो पारख-दृष्टिवाले सन्त दूर रहके उन सबके रहस्य-सिद्धान्तको एक-एक करके देखते हैं। वह देहके भास, प्रकाश, आनन्द आदि सब देहके साथ ही छूट जायगी, बिना पारख जीव जड़ाध्यासी होके चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही जायगा, सो उन्होंने नहीं जाने। इसीसे देहके भास, अध्यास आदिमें गाफिल होके जड़ाध्यासी हो बद्ध भये, आवागमनमें पड़ गये। अथवा अन्धा = विषयी तथा वाचकज्ञानी पहाड़रूप कल्पना, विषय और स्त्री-देहमें चढ़के विषय-भोग करने लगे, निर्लज्ज भये, सोई गहना है। छिपे-छिपे कुकर्म करने लगे, मुझे कोई देखता नहीं, ऐसा समझके मनमाने बुरा बर्ताव करने लगे, और ऐसे पामर, विषयी लोग

मूर्खतासे और सबको भी ऐसे अपने जैसे ही लखते हैं । जो जैसा होता है, सो दूसरे सज्जन, सन्त, महात्मा आदिको भी वैसे ही निगाहसे देखता है, और अपने समान ही वे होंगे, ऐसा समझते हैं । उनकी बुद्धि भ्रष्ट होती है, इससे कुभावना ही किया करते हैं । वैसे लोगोंके संसर्ग नहीं करना ही अच्छा होता है ॥ ८० ॥

साखीः—— कबीर आचार्य सब कहैं । नाम रूपको ज्ञान ॥
नाम रूप चीन्हें नहीं । रूप बखानै आन ॥ ८१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैः— हे नरजीवो ! वेद-वेदान्तके जितने भी आचार्य प्रथम हो गये, उन सबोंने नाम-रूपका ज्ञान कहे हैं । अर्थात् नाम-रूप = शब्द या वाणीका रूप ॐकार ब्रह्म माने हैं, अथवा नाम कहिये शब्दसे रूप सोई ब्रह्मका ज्ञान कहते वा उपदेश करते हैं । कहीं नाम-रूप माया मिथ्या, आत्मा सत्य कहते हैं, कहीं नाम-रूपको ही मानते हैं, और नाम-रूपको यथार्थ निर्णय करके तो चीन्हते ही नहीं हैं या जानते नहीं हैं । बल्कि कल्पना करके ब्रह्म-परमात्माका और ही रूप या निरूप वर्णन करते हैं । मिथ्या धोखामें भूले-भुलाये रहते हैं । नाम और रूप जड़ पदार्थका तथा चेतन सत्य पदार्थका होता है, सो साकारमें ही घटता है, निराकारमें तो वह घटता ही नहीं है । स्थूल-सूक्ष्मरूप जिसका होवे, उसीका नाम सत्य होता है । जिसका रूप ही नहीं, उसका नाम भी मिथ्या है । नाम-रूपमय जगत्को निषेध करके वेदान्तके आचार्योंने ब्रह्म ज्ञानको सत्य कहा है, और ब्रह्मको निराकार माना है, फिर उसका नाम शब्दमें कैसे आया ? जब ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर आदि नाम शब्दसे कहा गया, तो वह शब्दका रूप जड़ वा कल्पना ही ठहरा । अरे ! नाम-रूप, वाणी आदिका कल्पना करनेवाले तो नरजीव ही हैं, यदि जीव न होवें, तो उसका वर्णन कौन करेगा ? । बिना पारख सत्यनिर्णयको तो पहिचानते नहीं हैं । ब्रह्मका रूप और ही शब्दस्वरूप वा ज्योति-

स्वरूप आदि अथवा निराकार है, ऐसा बखान करते हैं। सोई बात अभीके गुरुवा लोग भी वर्णन कर रहे हैं, बिना विवेक धोखामें ही भूले पड़े हैं ॥ ८१ ॥

साखीः— बिना रूपका नाम जो । अबतक सुना न कान ॥
बिना रूपको नाम सो । कैसे जगमें जान ? ॥ ८२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और मतवादी गुरुवा लोग जो कि— वेद-शास्त्रोंके प्रमाणसे ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा आदिको सर्वथा रूप-रहित, निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, कहते वा मानते हैं। फिर उनके नाम कथन करके शब्द द्वारा बतलाते भी हैं। अब हे सन्तो! देखिये! जिसके रूपका या आकार स्वरूपका तो कहीं ठिकाना ही नहीं है, जो वैसे बिना रूपवालेका नाम सत्य भया हो, ऐसा तो अबतक भी कहीं किसीने कानसे सुना नहीं होगा; न कहीं देखा, जाना ही होगा? किन्तु, ये भ्रमिक वेदान्ती लोग वैसे ही असम्भव बात कहे हैं और कह रहे हैं। अच्छा! तो यह बताओ कि, बिना रूपके निराकार माना हुआ परमात्माका— ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, इत्यादि सो वह नाम किसने रखा है? और जगत्में नरजीवोंने कैसे करके या किस प्रकारसे जाने कि— उसका नाम ब्रह्म या ईश्वरादि ही है, और उसका रूप नहीं है। रूपके बिना भी कहीं नाम रखा जा सकता है? वह तो सरासर भ्रम वाणीके कल्पना ही होता है, सो निरर्थक बेफायदेका होता है। अतः परखकर उस धोखा, भ्रमको मिटाना चाहिये। सत्य बोधको ग्रहण करना चाहिये ॥ ८२ ॥

साखीः— छिनमाहीं बोधिक भये । ज्ञान कथै अधिकाय ॥
छिनमाहीं संशय भये । दे ठगनी हुदकाय ॥ ८३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु मनुष्यो! गुरुवा लोगोंकी स्थिति बड़ी विचित्र दुर्दशाग्रस्त रहता है। क्षण-क्षणमें उनकी मति बदलती ही रहती है। क्योंकि, वे ठग-ठगिनियोंके साथमें

अलमस्त हो रहते हैं, इससे कभी स्थिर होने नहीं पाते हैं। वेदान्ती लोग एक क्षणमें तो बोधिक = बोधवान् या बुद्धिमान्, ज्ञानी बनके स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं। अपनेको नित्य मुक्त, नित्य तृप्त, शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जन, मान लेते हैं। जब ज्ञानी भये, तब ब्रह्मज्ञानकी अधिकाय = बहुत ही विशेषता, अत्यधिक महिमा कथन करते हैं, बहुत उपदेश भी देते हैं। फिर क्षणभर बादमें हो एक ऐसा संशय उत्पन्न हो जाती है कि— ब्रह्म तो मन, बुद्धि, वाणीसे परे अवाच्य है, अब कुछ बोलो ही मत, बस चुप हो जाते हैं। फिर तब भी ठगनी = वाणी कल्पना मनमें, हुदकाय = सङ्कल्प उठाय देती है। फिर उनसे चुप रहा ही नहीं जाता, तब तो ज्ञान-विज्ञानका उपदेश देने लग जाते हैं। इसी तरह कभी ज्ञानी और कभी अज्ञानी तथा कभी वक्ता, कभी गूँगा, हो जाते हैं; स्थिति कुछ भी नहीं पाते हैं। अथवा वेदान्ती लोग जब कभी बोधस्वरूप ब्रह्म बनते हैं, तब क्षणभरमें ही द्वैत दृश्य नाम-रूपमय जगत्का बाध या निषेध करके द्वैत कुछ है ही नहीं, कहकर अद्वैत एक ब्रह्म आप ही हो जाते हैं। तब तो अधिकतासे ज्ञानका कथन करते हैं। सच्चिदानन्द ब्रह्म भये, तो शून्य ही हो रहते हैं! पुनः ठगिनी कल्पना ज़ब हुदकाय देती है, तो वृत्ति चञ्चल होके सङ्कल्प-विकल्प उठाने लग जाते हैं और थोड़ी देरमें या क्षण भरमें ही बहिर्लक्ष करके देखते हैं, तो संशयरूप जगत् द्वैत ज्योंका-त्यों ही देखनेमें आ जाता है। इससे बड़ी दुविधामें पड़के भ्रमचक्रमें गाफिल, जड़ाध्यासी हो जाते हैं। बिना पारख किसीकी धोखा नहीं छूटती है ॥ ८३ ॥

साखीः— ठगनीके हुदकावते । छिनमें ब्रह्म स्वरूप ॥
　　छिनमें संशय ऊपजै । ब्रह्म हुवा भ्रमरूप ॥ ८४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो! ठगिनी = वाणी, कल्पनाके वेगसे, हुदकावते = मनमें सङ्कल्प-विकल्प चिन्तनादि चञ्चलता

उठानेसे क्षण भरमें तो जीव आप ही ब्रह्मस्वरूप निर्गुण बना, फिर साधना-के अन्तमें निर्विकल्प स्थिति भई, उसे ही सच्चिदानन्द ब्रह्म माना, और जब सहविकल्प इच्छा या स्फुरणा उठी, तब क्षणभरमें संशय उत्पन्न हुई कि— यह जगत् कहाँसे उत्पन्न भया ? द्वैत क्यों दिख रहा है ? एक है कि, अनेक है ? वास्तवमें सत्य क्या है ? इत्यादि दुविधा खड़ी होती भयी । तब माना हुआ एक ब्रह्म भी मिथ्या भ्रमरूप ही हुआ । गाफिलिमें पड़के हंसपदसे नष्ट-भ्रष्ट, बद्ध हो गये । बिना पारख ॥

अथवा पक्के ठग या ठगकी नारी ठगिनी गुरुवा लोग बने हैं। उन्होंके प्रपञ्चमें हुदकावते, बहकावते, भ्रमावते, भुलावते, नाना प्रकारके वेदान्त-के उपदेश सुनते-सुनाते, वाणी कल्पनाको गुनते-गुनाते मनुष्य-जीव भ्रमिक भये, तो क्षणभरमें ही वे ब्रह्म स्वरूप भये, सर्वाधिष्ठान मैं हूँ, यह निश्चय किये । तो भी जड़-चैतन्य स्वरूपसे संसारमें न्यारा-न्यारा ही रहा, सब जगत् प्रपञ्च दिखता ही रहा। फिर क्षणमें जीवोंको संशय उपजा कि— जगत्को असत्य कहते हैं, सो तो दिखता है, ब्रह्मको सत्य कहा हुआ है, वह तो दिखता भी नहीं ? क्या बात है ? क्या निश्चय करना ? चलो ! अपने गुरु महाराजसे पूछें, कहके गुरुवा लोगोंके पास आके पूछे, संशय प्रगट किये । तब वेदान्तीने कहा कि— नाम-रूप कथनमात्र मिथ्या जगत् है, किन्तु अधिष्ठान ब्रह्म वस्तुतः सत्य है । तुम इसे जगत् मत कहो, और जगत्रूपमें देखो भी नहीं, और इसे ही विश्वरूप व्यापक ब्रह्म समझो, एक अद्वैत ब्रह्म कहो तथा ब्रह्मरूप करके ही सबको देखो । बस ! बेड़ापार है, समझ पलटा कि— ब्रह्म हुआ । ऐसा कहते हैं । परन्तु इस प्रकारसे तो मिथ्या भ्रमरूप धोखा ही वह ब्रह्म हुआ । किन्तु किसी तरह भी सत्य नहीं हुआ । अतः सत्य निर्णयसे परख करके भ्रमको हटाना चाहिये ॥ ८४ ॥

साखीः— कबीर ठगनी भूतनी । भरि भरि आवै गात ॥
कबहुँ संशयते भरी । कबहुँ भरी वेदान्त ॥ ८५ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! यह ठगनी = माया,

वाणी, कल्पना, विषय, स्त्री, गुरुवा लोग और मन इत्यादि सब जीवोंको ठगनेवाली महा ठगिनी हैं। यह तो भ्रम भूतके अर्धाङ्गिनी नारी भूतनी=प्रेतनी, चुडैल, डाँकिनी, शाँकिनी, पूरी जबरदस्त मरियल ही बनी है। सो सब नर-जीवोंके शरीर वा हृदयमें प्रवेश करके बैठी है। समय-समयपर अपना जोर दिखलाती है। वाणी विषय और काम विषयादिका वेग या लहरी भर-भरके या उमड़-उमड़के, बढ़-बढ़के, गात=अन्तःकरणमें बढ़ाती ही चली आती है। मुख्य भूतनी, ठगिनी वाणी कल्पना भर-भरके मनमें भ्रम बढ़ाते ही आती है, और कभी तो वह मनमें संशय, दुविधा, भ्रम, आदिसे भरपूर कर देती है। जीवको अज्ञानग्रसित करके नाना सङ्कल्प-विकल्प, चाहना आदिमें डाल देती है। जगत्में नाना मत, पन्थ, सिद्धान्त, आदिकी भिन्न-भिन्न विस्तारकर द्वैत प्रपञ्चको ही भलीभाँति दिखलाती है, और कभी तो वह जब वेद-वेदान्तमतमें जाके भर जाती है, तब वहाँ उधम मचा देती है। सम्पूर्ण दृश्य चराचर जगत्को एकदम निषेध करके, नोच-नोचकर सब सत्य, विचारादि सद्गुण आभूषण, विवेक वस्त्रको फाड़-फाड़के फेंककर भूतनी प्रचण्ड हो जाती है, तो उग्र, भयङ्कररूपको धारण कर लेती है। ये नहीं, ओ नहीं, जगत् नहीं, मैं ब्रह्म हूँ, और सब कुछ चराचर मेरा ही स्वरूप हैं, मैं सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक आत्मा हूँ। इस प्रकार कहके कभी नङ्गी हो जाती है, इधर-उधर नाचती-फिरती है। कभी सब जगत्को अपनेमें ही लपेट लेती है। ऐसी यह कल्पना बड़ी विचित्र जीवोंको भुलानेवाली भवबन्धनके कारण है। उसे ठीक तरहसे परखकर मनसे निकाल, बाहर करके भगा देना चाहिये ॥ ८५ ॥

साखीः— कबीर ब्रह्म पिशाच यह । जबर बड़ा मुँह जोर ॥
बड़े-बड़े ओझा झारन लगे । बकन लगे तेहि ओर ॥ ८६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! यह वेदान्तियोंने माना हुआ ब्रह्म क्या है कि, एक ब्रह्मपिशाच या ब्रह्म-

राक्षस, ब्रह्मदैत्य, ब्रह्मभूत, ब्रह्मप्रेत, खास मनका भ्रम, धोखा ही है। अतः वाणीकल्पनासे कथन कर, दृढ़मानन्दी किया हुआ महा भ्रमरूप यह पिशाच ब्रह्म जिसके सिर वा हृदयमें चढ़ जाता है, फिर सो मनुष्य बड़ा जबरदस्त मुँहजोर या महा बकवादी अविचारी हो जाता है। उसे सारासार, सत्यासत्य, निर्णयका कुछ भान ही नहीं रह जाता है। इस मिथ्या भ्रमभूतका मुख बड़ा जोरदार होनेसे जल्दी थकता ही नहीं है। उस भ्रमने जिसको दबाया, जीता, वह मनुष्य सुधि-बुधिको खोकर जैसे मन मानै, वैसे ही बकने-झकने, सिद्धान्त कायम करने, अद्वैत ब्रह्मबोध देने लग जाता है। जड़ और चैतन्य जीव भिन्न-भिन्न प्रत्यक्ष ही हैं। उसे न मानकर तहाँ "जबरदस्तीका ठेंगा सिरपर" की कहावतके अनुसार एक अद्वैत ही ब्रह्म है, दूसरा द्वैत कुछ नहीं है, सब दृश्य मिथ्या भ्रान्ति है। ऐसे मानन्दी दृढ़ करते-कराते हैं, और बड़े-बड़े ओझा = वाणी, खानीके भूत उतारनेवाले गुरुवा लोग (तान्त्रिक टोना-मोना, झाड़-फूँक करनेवाले ओझेके समान बने), गुरुवाई करने लगे। योगी, ज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी, या विज्ञानी बड़े-बड़े ब्रह्मवेत्ता कहलानेवाले ऋषि, मुनि, सिद्ध, साधक, इत्यादिकोंने चार वेद, बावन उपनिषद्, षट् शास्त्र, मुख्य वेदान्त शास्त्र आदि ग्रन्थोंके कल्पित वाणी पढ़, सुन, गुनकर उसे ही पक्का दृढ़ निश्चय करके फिर अन्य जिज्ञासु नरजीवोंको भी वही वाणी सुनाय-सुनायके उनके भ्रम, अज्ञान या अबोध, बन्धनरूपी भूत, मायाके विकार, मल, विक्षेप, आवरण भूतकालके अविद्या आदिको झारने-फूँकने, हटाने, निकालनेका प्रयत्न करने लगे। ब्रह्मज्ञानका उपदेश दे-देकर अद्वैत सिद्धान्तका बोध करने लगे। तब उनके ऐसे उपदेश सुन-सुनकरके और उनके शिष्य-शाखारूप मनुष्य-वर्गको भी वह भ्रमभूत चढ़ गया, तो उनकी तरफ मुख करके वे सब भी उनके समान ही मनमाने बकने लगे। आँय, बाँय, काँय, अल्ल, बल्ल, कल्ल, हूम, गूम, सूम—"अहं ब्रह्मास्मि, ब्रह्मैवाहमस्मि, तत्त्वमसि,

अयमात्माब्रह्म, सर्वं खल्विदंब्रह्मनेहनानास्तिकिञ्चन," इत्यादि चिल्ला-चिल्लाकर धूम मचाये। भ्रमभूत उतरनेके बदले और परिपुष्ट होके उनपर चढ़ गई। पक्ष, कल्पना, मानन्दीरूपी वाणीका उग्रभूत और जड़ाध्यास-रूपी खानीकी कठिन भूत गुरुवा लोगोंके प्रयत्नसे नहीं निकली। गुरु-चेले और भी दृढ़ पक्षपाती, अविचारी, अध्यासी बनकर सन्निपात चढ़ा हुआ भ्रमिक मनुष्यके समान "एकोब्रह्मद्वितियोनास्ति,-ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैवनापरः"— अर्थात् एक ही अद्वैत ब्रह्म चराचरमें व्यापक एकत्त्व सत्य है, और दूसरा द्वैत नहीं है! नहीं है!! नहीं है!!! ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव-ब्रह्ममें कोई भेद है ही नहीं, अभेद है। ऐसे ही बारम्बार पुकारते-पुकारते उसी धोखाकी ओर लगके ही बकवाद करने लगे। वैसे अविवेकी भ्रमिक लोग व्यर्थ ही कल्पनामें लगकर नरजन्मकी आयु खो देते हैं, और जड़ाध्यासी होनेसे चौरासी योनियोंमें जाके आवागमन चक्रमें ही पड़ा करते हैं। अतः पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा उसे परखकर भ्रम-भूलको मिटाना चाहिये॥ ८६॥

साखीः— कबीर हिन्दू तुरुक पर। खेलै एकै भूत॥
पण्डित काजी हारिया। झारें माकी चूत॥ ८७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! संसारमें सब तरफ एक ही भूतका साम्राज्य शासन फैला हुआ है। तहाँ हिन्दू-धर्मावलम्बी चार वर्ण—३६ जात माननेवालोंपर और तुरुक = मुसल-मान, शेख, शैय्यद, मोगल, पठान ऐसे चार भेद करके भी एक ही जात माननेवालोंपर और ईशाई, पारसी, बौद्ध, जैन, इत्यादि सकल मतवादियोंपर, एकैभूत = वाणीका एक ही अनुमान, कल्पना, भ्रम, भूल, धोखा, कर्ता, ब्रह्म, ईश्वर, अल्लाह, खुदा, गॉड़, सुगत, शून्य, निर्वाण, अरिहन्त, इत्यादि मानन्दी सोई भूत, भविष्य, वर्तमानमें एक समान खेल रही है, उन्हें नाना साधनोंमें खेला-कुदा, नचा रहा

है। अर्थात् एक ही भ्रम कल्पना वाणीका पक्ष सोई भूत होके नाना रूपमें खेल-खेला रहा है। पण्डित, काजी, पोप, भिक्षु, यति, इत्यादि भूतरूपी अपने-अपने इष्टदेवताकी खोजीके लिये पीछे पड़े, नाना प्रयत्न करने लगे। किन्तु मनकी कल्पना पकड़नेमें नहीं आई। अन्तमें वे सब हार गये, थकित जड़ाध्यासी भये, तब माकी = माया, स्त्री, वाणी, कल्पनादिकी ही सेवन करके जीवकी बन्धन दुःख आदिको झारने, मिटानेका प्रयत्न करने लगे। तो भी वह कुछ भी झरा नहीं, उल्टी और ज्यादा ही जड़ाध्यास उनपर चढ़ी। अतः हंसपद मुक्तिसे चूत = च्युत या पतित होके कर्मकी चुकीसे नष्ट-भ्रष्ट हो गये। जब देह छूटी, तो मायाकी अध्याससे स्त्रीकी गर्भवासको ही जाते भये वा जा रहे हैं, बिना पारख॥ ऐसे जब बड़े-बड़े अगुवा लोग ही खानी-वाणीकी नशा, मन भूतकी बन्धन, झार नहीं सके, बिना पारख मनुष्य पदसे च्युत होके आप ही माँकी योनि द्वारा गर्भवासमें गिर गये। तब उनके अनुयायी भ्रम भूतकी बन्धनको क्या मिटायेंगे? देह छूटनेपर ये सब भी अध्यासवश चारखानीकी नाना योनियोंके गर्भवासको ही प्राप्त होवेंगे। अतः पूर्ण पारख स्थिति हुए विना किसीका बन्धन मिटता नहीं है, ऐसा जानिये!॥ ८७॥

साखीः— ज्ञाता ज्ञेय अरु ज्ञान जो। ध्याता ध्येय अरु ध्यान॥
द्रष्टा दृश्य अरु दरश जो। त्रिपुटी शब्दा भान॥८८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! वेदान्तियोंने जीव, ईश्वरकी तीन-तीन त्रिपुटी उड़ायके फिर अद्वैत सिद्धान्तका कथन किया है। तहाँ उन्होंका कथन ऐसा है कि, जीवकी पिण्डमें तीन त्रिपुटी हैं—ध्याता, ध्यान, ध्येय। उसमें ध्याता = स्थूल वा जीव है, ध्यान = सूक्ष्म वा एकाग्रवृत्तिका सम्बन्ध है। ध्येय = कारण वा इष्ट पदार्थ है, जिसका जीव ध्यान करते हैं। ये तीनों त्रिपुटी सहित जीव भावको उड़ायके अद्वैत एकत्व भावना करके जीव-

ईश्वरकी एकता मानते हैं। तहाँ तुरिया अवस्था महाकारणरूप हुआ। फिर कैवल्य ब्रह्म होनेके लिये तहाँ ईश्वरकी त्रिपुटी भी उड़ाते हैं; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, जो कहा है, सोई ब्रह्माण्डमें ईश्वरकी त्रिपुटी माने हैं। ज्ञाता = ईश्वर, ज्ञान = मूल प्रकृति-तुरिया, ज्ञेय = अव्याकृत, सो कारण, और हिरण्यगर्भ सूक्ष्म तथा विराट स्थूल, सोई ईश्वरके तीन देह माने हैं। यह सम्पूर्ण ज्ञेय इसे भी उड़ा देना। इस प्रकार षट्पुटी छोड़नेपर तब एक ब्रह्म वा आत्माकी अखण्ड दशाको प्राप्त होती है; ऐसा वेदान्तियोंने कहा है और माने हैं, और द्रष्टा = चैतन्य जीव, दृश्य = जड़ जगत् जो स्थूलरूपमें दिखाई देता है, और दरश या दर्शन = नेत्र और विषयरूपका सम्बन्ध होना, तैसे इन्द्रियाँ तथा विषयोंका सम्बन्ध, एवं जीव और जड़का सम्बन्ध, इत्यादि जो कुछ भी त्रिपुटी गुरुवा लोगोंने बताये हैं, और त्रिपुटीसे रहित ब्रह्म कहे हैं, सो सब शब्द द्वारा भान होनेवाला शब्दका विषय भास ही है। यानी शब्दका कथन मन-मानन्दी मिथ्या भ्रम ही है। जीव, ईश्वर, जगत्की यावत् त्रिपुटी शब्दाभान या वाणी कल्पनामात्र है। ब्रह्मको सर्वाधिष्ठान कारण माने हैं, तहाँ ईश्वर-पुरुष, तथा प्रकृति, ज्ञान, अज्ञान, जड़, चैतन्य इन्हीं षट् कार्यमें कारण ब्रह्म भरा है। ऐसा वेद वचन वृहदारण्य उपनिषत्का प्रमाण है, सो भान या ज्ञान भी शब्द द्वारा ही हुआ। किन्तु ऐसा ब्रह्म कहीं विवेकद्वारा ठहरता ही नहीं है। अतएव वह मनुष्योंकी मिथ्या धोखा, भ्रममात्र है। गुरुसत्सङ्गमें परखके उसे यथार्थ समझना चाहिये। सत्यासत्यका निर्णय करके सत्यसारको ही ग्रहण करना चाहिये ॥ ८८ ॥

साखीः— लाहल पारख शब्दकी । जो परखे सो पाक ॥
तामें जो हल्ला करै । सोई होय हलाक ॥ ८९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! सम्पूर्ण शब्दकी— काल,

सन्धि, झाँईंकी; तत्, त्वं, असिकी; जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख, आदि सब वाणी जालकी, पारख या परीक्षा निर्णय छान-बीन करके सत्यन्यायसे विवेक कर जिन्हें स्वरूप ज्ञान पारखबोध लाहल = प्राप्त हुयी या ग्रहण भयी, सो पारखी सन्त जीवन्मुक्त सर्वोपरि होते हैं। और जो कोई जिज्ञासु नरजीव ऐसे पारखी सन्तके शरण-ग्रहणकर गुरुमुख निर्णय सारशब्दका विचार करके जो कि, सब यम जाल खानी-वाणीको ठीकसे परखते हैं, और उसकी अध्यासोंको त्याग देते हैं, सो पाक = पवित्र, शुद्ध, निर्विकार, निर्बन्ध हो जाते हैं। पारख स्थितिमें ही वे स्थिर रहते हैं। ऐसे निर्णय विवेक-विचार न करके उसमें उल्टा जो उपाधि करते हैं, पारखी सन्तोंकी सत्सङ्ग न्यायमें हल्ला-गुल्ला या शोर-गुल मचाके विरोध, टण्टा, फसाद करते हैं तथा तर्क-वितर्क, निन्दा-चर्चा, खण्डन, करते हैं, गुरुवा लोगोंके मत, पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्त, वेद, कुरान, आदिका पक्ष पकड़ते हैं; खैंचातान करते हैं, सोई अविचारी मतवादी, भ्रमिक, जड़ाध्यासी होयके, हलाक = महादुःखी, हैरान, सन्तप्त, होते हैं। बारम्बार चारखानी चौरासी योनियोंके जन्म-मरणके चक्रमें पड़के दुःख ही भोगा करते हैं। अतः पारख बोधको ग्रहण करके निर्बन्ध सुखी हो जाना चाहिये ॥ ८९ ॥

साखीः— कबीर शब्दातीतको । शब्द बतावै भेव ॥
शब्द न चीन्हें बावरा ! करै शब्दकी सेव ॥ ९० ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! ये गुरुवा लोग ब्रह्मको शब्दातीत = शब्दसे परे, निःअक्षर, वाणीसे रहित बतलाते हैं, और फिर वेद-वेदान्तके शब्दद्वारा ही उस ब्रह्म-परमात्माकी भेव = भेद, रहस्य, महिमा, वर्णन करके बतलाते हैं, सो शब्दसे ही कहा, सुना, माना जाता है। फिर शब्दातीत कैसे हुआ ? शब्द तो नरजीवोंसे बनता है, वेदादि वाणी भी जीवोंकी कल्पनासे बनी है,

सो विवेक करके ठीकसे तो शब्दको चीन्हते नहीं हैं, बावरा = पागल या दिवाने भ्रमिक बने हैं। इसीसे शब्दको निषेध करके भी बारम्बार उसी कल्पनारूपी शब्दकी सेवन, सेवा, मानन्दी, गुलामी, ही करते रहते हैं। उसका सकल भेद तो पारखी सद्गुरु ही न्याय, निर्णयकी गुरुमुख सारशब्दसे बतायके दरशाते हैं, शब्दातीत माना हुआ कोई एक ब्रह्म जो कहा है, सो तो मनुष्योंकीही कल्पना है। उसे माननेवाले जीव ही सत्य है, सो मानन्दो मिथ्या है। किन्तु पक्षपाती लोग बावले बने हैं, इसलिये शब्द जालको वे चीन्हते, पहिचानते नहीं हैं। धोखासे ॐकारको ब्रह्म मानके शब्दकी ही सेवा कर-करा रहे हैं। अतः भवबन्धनोंमें ही बद्ध पड़े हैं, विना पारख ॥ ९० ॥

साखीः— जो-जो सुनै गुनै सोई। देखै कहै बनाय ॥
कहैं कबीर गुण शब्दका। पारख बिन जहँड़ाय ॥ ९१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासु मनुष्यो! गुरुवा लोग जो-जो कुछ भी सुनते-सुनाते हैं, और गुनते-गुनाते हैं, वह सब शब्दका ही विस्तार है। तथा शब्द समूहरूप ग्रन्थ वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, आदिको देखते हैं; फिर वाणी बनाय-बनायके कल्पित शब्दको ही मुखसे कहते हैं। और कहैं कबीर = गुरुवा लोगोंने जो कुछ भी सिद्धान्त कहे हैं और कहते हैं— कर्ता पुरुष, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, खुदा, इत्यादि सो सब भी शब्दका गुण या विषय-कल्पना होनेसे भ्रम, धोखा ही है, और पूर्वमें वा अभी जो-जो बात कानसे सुना गया वा सुन रहे हैं, सो भी शब्द ही कहलाता है। तथा जो-जो बात मनसे मनन या गुनाव किये वा कर रहे हैं, सो भी सोई शब्दका ही सूक्ष्म भाग है, और रूप विषयको देखके वैसी वृत्तिको बनाकर जो कुछ भी कहे वा कह रहे हैं, वह भी शब्द ही है। इस प्रकार गुरुवा लोगोंके कथन, मानन्दी सब शब्दका गुण ही ठहरा, शब्दातीत नहीं हुआ। यथार्थ गुरुनिर्णयसे परीक्षा दृष्टि खोलके पारखबोध हुए बिना वे सब भ्रमिक लोग जहँड़ाय

गये, अर्थात् पारखसे सत्यासत्य जाने बिना, जड़ाध्यासी हो बद्ध हो गये, तो वे चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़ गये। बिना विवेक ऐसे ही पतन होता है ॥ ९१ ॥

साखीः— स्वपने सत्य दिखायके । जागे मिथ्या होय ॥
कहहिं कबीर छिनारिकी । कला न चीन्हा कोय ॥ ९२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो! इन गुरुवा लोगोंने स्वप्नवत् जगत्को मिथ्या दिखलायके वाणीसे एक ब्रह्मको सत्य कहा है। परन्तु विवेक दृष्टि खुलके नरजीव जागनेपर वह ब्रह्म आदि मानन्दी सरासर मिथ्या भ्रम ही साबित होती है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारख सिद्धान्तके ज्ञाता पारखी सन्त कहते हैं कि—छिनारि = वाणी-कल्पना तथा व्यभिचारिणी बुद्धिवाले भ्रमिक गुरुवा लोग इन्होंकी कला = प्रपञ्च, धोखा, कपट, विकार आदिको बिना पारख संसारमें कोई चीन्हते ही नहीं है। अतः अनजान होके महाबन्धनमें ही जकड़ पड़ते हैं। अथवा जैसे अर्धनिद्रित अवस्थामें जाग्रत्की भास, अध्यास, उदय हो करके नाना प्रकारके स्वप्न उस वक्त सत्यवत् दिखाई देते हैं। किन्तु, जाग्रत् होनेपर वे मिथ्या ही होते हैं। उसे सत्य मानना मूर्खता है। क्योंकि, उससे कोई कार्य पूर्ण नहीं होता है, अतः मिथ्या है। तैसे ही उपासना, योग आदि साधना विशेष करनेसे धारणा, ध्यान द्वारा वृत्ति एकाग्र होनेपर मनके भावना अनुसार मूर्ति स्वप्नवत् त्रिकुटीके भीतर दिखाई देती है, और नाद-बिन्दुकी घर्षणसे सो तहाँ ज्योति प्रकाश होता है, किसीको अंगुष्ठमात्र मूर्ति दिखती है, किसीको हीरावत् प्रकाश भासता है। सो तत्त्वोंका प्रकाश, भास, स्वप्नवत् असत्य या मिथ्या ही है। परन्तु गुरुवा लोगोंने साधना द्वारा उसे ही साधकोंको दिखलायके सत्य बतलाये हैं। ज्योतिस्वरूप परमात्माके दर्शन, ईश्वर साक्षात्कार, इष्टदेवका दर्शन प्राप्ति, इत्यादि महिमा बतायकर

उसे ही सत्य ठहराये हैं। परन्तु जब धारणा, ध्यान टूट जाती है, बहिर्वृत्ति हो जाती है, तब जाग्रत् अवस्थामें वह सब दृश्य गायब होके मिथ्या ही हो जाती है। तथापि बिना पारख मनुष्य धोखेमें ही पड़े रहते हैं। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं— व्यभिचारिणी बुद्धि, वाणी कल्पना, भ्रम, ये ही छिनारिकी कलाको वे बेपारखी लोग किसीने भी चीन्हें नहीं। अतएव असत्य मनके भासको ही सत्य मान-मानके भूले, भटके भवबन्धनमें पड़े। अतः पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग विचारद्वारा उसे परखके यथार्थ पहिचानना चाहिये ॥ ९२ ॥

साखीः— हिन्दूका गुरु बावना । नित उठि करे प्रणाम ॥
तुरुक मुरीद है तीसका । पाँच बखत करें सलाम ॥ ९३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासुओ ! इधर हिन्दू = चोटी रखनेवाले, ईश्वर, वेद, शास्त्रोंको माननेवाले, मूर्तिपूजक हिन्दू धर्मावलम्बियोंका, गुरु = आचार्य, श्रेष्ठ, माननीय, वजनदार, महत्त्व, बावना = बावन अक्षर 'क' से 'क्ष, त्र, ज्ञ', तक ३६ तथा 'अ से अः' तक १६ स्वर मिलायके ५२ वर्ण होते हैं। उन्हींसे बनी हुयी वेद आदि पुस्तकोंको हिन्दू लोग वेद भगवान्, अक्षर ब्रह्म, आदि गुरु समझ कर मानते हैं। इसलिये नित्य = रोज-रोज उठ करके प्रातःकालमें तथा सन्ध्यामें भी अक्षररूप वेदको और ब्राह्मणोंको वे हिन्दू लोग प्रणाम = नमस्कार, वन्दना कर भक्तिपूर्वक शिर झुकाते हैं। वैसे ही अपने पुत्रोंको, शिष्योंको भी प्रणाम कराते हैं। इसी प्रकार उधर तुरुक = मुसलमान लोग, चार कितेबके कुरान शरीफको और खुदा, अल्लाह, फरिस्ते, चौदह तबक आदि माननेवाले इस्लामधर्मी लोगोंका पीर या गुरु, तीसका = तीस सिपारा = अलिफ, वे, से हमजा, ऐ, बैततक ३० अक्षर मुसलमानोंके अरबी वा उर्दूमें बनाये हैं। उसीसे बना हुआ कुरानके चार किताब हैं, तिसीके मुरीद = चेला या शिष्य, शागिर्द तुरुक लोग बने हैं, वे तीस अक्षरके कुरानको पढ़के खुदाके

लिये पाँच बखत सलाम करते हैं, निमाज पढ़के बन्दना करते हैं। पाँच बखत निमाज पढ़ना, साँम-सबेरे बाँग पुकारना, तीस दिनका रोजे रखना, सालोंसाल हज्ज करनेको जाना, और जाकात कर्म करना, इत्यादिको धर्म-कर्म मानके मुसलमान लोग बड़ी श्रद्धासे करते-कराते हैं? इस प्रकारसे हिन्दु और मुसलमान लोग बिना पारख वाणीके ही दास या गुलाम बनके भ्रमचक्रमें पड़े हैं ॥ ९३ ॥

साखीः— याको आशिष देत नहीं। वाको दुवा न देत ॥
सुर नर मुनि औ पीर औलिया। रगरें नाक अचेत ॥ ९४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! ऐसी दृढ़तासे वाणीकी मानन्दी करनेपर भी, याको = इन हिन्दु लोगोंको उनके गुरुरूप ५२ अक्षर, वेद, ईश्वरादि कभी भी कुछ आशीर्वाद, दया भाव, शिक्षा, नहीं देते हैं। तथा वाको = उन मुस्लिम लोगोंको भी उनके पीर-रूप ३० हुरूफके सिपारा, कुरान, खुदा, आदि कभी, दुवा = शुभ कामना, आशीर्वाद, तालीम, कुछ भी नहीं देता है। अरे भाई! अक्षर या वाणी कल्पना जड़ तथा भ्रमरूप हैं, तो फिर वह किसको कैसे आशीष या दुवा देवें, नाहक मिथ्या धोखामें पड़े हैं। इसलिये हिन्दुओंमें सुर = देवता, ज्ञानी, सत्त्वगुणी मनुष्य, नर = भक्त, मानव पुरुष, रजोगुणी मनुष्य, मुनि = तपस्वी, योगी, मननशील करनेवाले तमोगुणी मनुष्यवर्ग और मुसलमानोंमें, पीर = गुरुवा लोग, औलिया = सिद्ध फकीर लोग, पैगम्बर, सुन्नी, शिया, आदि सब तुरुक लोग क्रमशः मन्दिर, तीर्थस्थान और मसजिद, मक्का, मदीना आदि हज्जमें जा-जा करके नाक, मुख, सिर, रगड़-रगड़ करके या घसड़-फसड़, नाक घिसाघीस, माथा ठोंका-ठोंक करके बिना विचार, अचेत = गाफिल, बेहोश होते हैं। जड़ाध्यासी होके चौरासी योनियोंके गर्भवासको जाते हैं। अतएव वे दोनों दीनके पक्ष छोड़कर पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके सारग्राही होना चाहिये ॥ ९४ ॥

साखीः— व्यासदेव वेदान्तमें । अद्वैतका करें बोध ॥
कहैं कबीर निर्गुण भये । होय सत्सङ्ग विरोध ॥ ९५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! वेदान्त शास्त्रके या ब्रह्मसूत्रके कर्ता वेदव्यास या कृष्णद्वैपायन शुकदेवके पिता थे। उन्होंने वेद संहिताको संग्रहकर चार भागोंमें विभाग किये । जो चार वेदोंके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वेदके अन्त-भाग वेदान्त सोई उपनिषदादि कहलाया, और वेदान्तके आचार्य व्यास हुये । इसलिये उन्हें श्रेष्ठताके कारण 'देव' कहा गया है। सो व्यासदेवने वेदान्त शास्त्रमें भलीभाँतिसे युक्ति-प्रयुक्तिसे अद्वैत व्यापक एक ही ब्रह्म सत्य है, जगत् द्वैत कुछ है ही नहीं, जो भासता है, सो मिथ्या भ्रान्तिमात्र है। "एकोब्रह्मद्वितीयोनास्ति" ऐसा अद्वैत सिद्धान्तका बोध किये हैं । सोई अभीके वेदान्ती लोग भी उपदेश देके परिपुष्टि कर रहे हैं । कहैं कबीर = गुरुवा लोग ब्रह्मज्ञानी तो कहते हैं कि— त्रिगुणसेरहित होके गुणातीत होनेपर ही निर्गुण, निरञ्जन ब्रह्म हो जाता है । निर्गुणब्रह्म अक्षरातीत परिपूर्ण ज्योंका-त्यों है, सो मैं हूँ तू है, और सब जगत् ब्रह्मरूप एक हैं, भेद कुछ भी नहीं है। ऐसा माने हैं । अब विचार करके देखिये ! ऐसा माननेपर तो वे अपना ज्ञानगुण विवेकको भी नशाय करके या खो करके निर्गुण ब्रह्म भये, तब तो नीरे पक्के मूढ़ ही हो गये । दुर्गुणी या अवगुणी जिनमें सद्गुणोंका अभाव है, वे ही निर्गुणिया होते हैं । एक ही ब्रह्म निर्गुण मान लेनेसे तहाँ सत्सङ्गका विरोध हो गया। एक अकेलेमें क्या विवेक, विचार, त्याग, वैराग, बोध, आदि सद्गुण हो सकते हैं ? कुछ नहीं हो सकते हैं । सत्सङ्गका विरोध करके कुसङ्गी ही हो गये हैं । भ्रमिक, अविचारी, पक्षपाती, बनके गाफिल भये हैं । अतः सत्य चैतन्य जीवको पारख स्थितिके शुभ सङ्गसे हटाके भ्रमिक विरोधी हो जड़ाध्यासी बद्ध भये, आवागमनमें ही चले गये, बिना पारख ॥ ९५ ॥

साखीः— कबीर वाद अद्वैतका । सत्सङ्ग विरोधी जान ॥
विमुख होय सत्सङ्गते । चाहै निज कल्यान ॥ ९६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु नरजीवो! इन वेदान्ती गुरुवा लोगोंका या व्यास, शंकरादिका अद्वैत मतका वाद, उपदेश, वाणीका कथन कि— "एक ही ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण व्यापक है, ब्रह्मके सिवाय और दूसरा कुछ भी नहीं है।" जब ऐसी मानन्दी हुई, तब वह तो सत्सङ्ग, विवेक— विचारका विरोधी ही हुआ, निर्णयसे तो ऐसा ही जाना जाता है। क्योंकि, जब स्थावर, जङ्गम सब एक ही ब्रह्म है, तब काहेका सत्सङ्ग होयगा? वेदान्तियोंने तो गुरु और गुरुके ज्ञानको भी मिथ्या बताये हैं, तब वे पक्के मिथ्यावादी भये कि नहीं? अतः अद्वैतवाद सरासर सत्सङ्ग-विरोधी है, ऐसा जानिये, और पारखी सद्गुरुके न्याय निर्णयकी सत्सङ्ग, विचारसे तो विमुख हुए ही तथा त्रिकालाबाध्य सत्य चैतन्यजीवके स्वरूपस्थिति पारख बोधके सङ्ग, हंस रहनी-रहस्यका सङ्ग, मुक्तिके साधनरूप इन सब सत्सङ्गसे विमुख = उल्टा, विरोधी, दुश्मन होयके अपना कल्याण करना चाहते हैं, तो कैसे सफल होयगा? जैसे जहर खायके कोई आरामसे जीते रहना चाहैं, तो क्या ऐसा होगा? कभी नहीं होगा। तैसे सत्सङ्ग-विचार पारखको छोड़कर मूढ़ गरगाफ हो, कल्याण या मुक्तिपदको पाना चाहैं, तो भी नहीं पा सकते हैं। वे मिथ्यावादी जड़ाध्यासी होके चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़ेंगे। जड़ और चैतन्य जीव दोनों ही स्वरूपसे भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं, वे कभी त्रिकालमें एक हो नहीं सकते हैं, उन्हें एक माननेवाले झूठे हैं, उनकी मुक्ति कभी नहीं हो सकती है। अध्यास वश आवागमनमें पड़े और पड़ते रहेंगे? बिना पारख धोखा नहीं छूटती है ॥ ९६ ॥

साखीः— सत्सङ्गति सुख द्वैत सो । समुझै नहीं गँवाँर ॥
वाद करै अद्वैतका । पढ़ि गुनि भये लबार ॥ ९७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सत्सङ्गी मनुष्यो! सुखदाई

सत्सङ्ग तो द्वैत है, सो दोमें ही होता है। गुरु-शिष्य होनेपर ही प्रश्नोत्तर होते हैं। ज्ञानी-अज्ञानी या बोधवान् वा अबोधके गोष्ठीमें शङ्का-समाधान होती है। जड़ और चैतन्य दो हैं, इसीसे जड़ाध्यास लेकर बन्धन होता है और परख-परखकर सम्पूर्ण जड़ाध्यास मिटा देनेपर जीवन्मुक्तिके महत् सुखका लाभ होता है। दिन-रात, नर-नारी, जीव-निर्जीव, पाप-पुण्य, बन्धन-मुक्ति, ज्ञान-अज्ञान, सार-असार, नित्य-अनित्य, खण्ड-अखण्ड, सत्य-असत्य, इत्यादि सो सब दो-दो भाग तथा नानात्व प्रत्यक्ष द्वैत ही हैं। और सत्सङ्ग द्वारा ही भ्रम निवृत्ति होकर जीव सुखी होते हैं। सो जीवन्मुक्तिका सुख द्वैत ही है। द्वैत होनेसे ही सुख-दुःखादि, तथा जन्म-मरणादि होते हैं। एक अद्वैतमें तो ऐसा कभी नहीं हो सकता है। ऐसे स्पष्ट बातको भी कुछ समझते नहीं, तो वे पक्के गँवाँर=निर्बुद्धि, अनसमझ, अविचारी, मूढ़, नालायक ही बने हैं। तभी तो सार-असारको कुछ भी नहीं समझते हैं, और अद्वैत ब्रह्म एक सत्य है, कहकर उसका वाद-विवाद, मतवाद, सिद्धान्त कथन, उपदेश किया करते हैं। एक ब्रह्मके सिवाय दूसरा कुछ नहीं, तू, मैं, ये, ओ, सब ब्रह्म ही ब्रह्म है, कहते हुये बकवाद करते हैं। अरे भाई! ये लोग तो वेद-वेदान्त आदिको पढ़, सुन-गुन करके कल्पनाको ही दृढ़ करके, लबार=झूठे या मिथ्यावादी, पक्षपाती, धोखेबाज ही भये हैं। इन गप्पी लोगोंके बातका कौन विश्वास? वे तो जीवकी मसखरी करके एक ब्रह्म बना देते हैं, दुर्दशामें ही डाल देते हैं। इन पठित लबारोंको पहिचानके इनके फन्दोंमें पड़ना नहीं चाहिये ॥ ९७ ॥

साखीः— वाद करै अद्वैतका। ताको भासै द्वैत प्रमान ॥
कहैं कबीर चीन्हैं नहीं। यह सूक्षम अज्ञान ॥ ९८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो! जो गुरुवा लोग

एक अद्वैत मतका वाद=वार्तालाप, कथन, उपदेश, वाद-विवाद करते हैं; उन्होंको अवश्यमेव प्रत्यक्ष प्रमाणसे साक्षात् द्वैत ही भासता है। तभी तो कहना, सुनना, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष-निरूपण करना, खण्डन, मण्डन करना, अपनी विशेषता बताना होता है, और ऐसा करते हैं। यदि एक ही ब्रह्म उन्हें भासता होता, तो इतना व्यवहार, उपाधि, मत-पन्थकी स्थापना ही क्यों होती? जब यह सब हो रहा है, तब द्वैत प्रत्यक्ष ही सिद्ध है। प्रत्यक्ष प्रमाण ही सत्य होता है। यदि उनको अपनेसे भिन्न दूसरे मनुष्य-जगत् कुछ भी न दिखता, तो ब्रह्म एक अद्वैत सत्य है, जगत् मिथ्या है, ऐसा किससे, कैसे, क्यों कहते? और कहैं कबीर=गुरुवा लोग ब्रह्मज्ञानी वेद प्रमाणसे अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्तको सत्य तो कहते हैं, किन्तु, पीछेसे उसी वेद, गुरु आदि सबको भी मिथ्या बताके निषेध करते हैं। जब वे मिथ्या भये, तब उनके कथनसे माना हुआ ब्रह्म कैसे सत्य होगा? परन्तु पारख बिना यह महाभूलको वे चीन्हते या पहचानते ही नहीं हैं। यही सूक्ष्म अज्ञान कारण बीज, महागाफिली, मूढ़ता, अविद्या है, उन्होंने उसे ठीकसे जाने ही नहीं है। इसलिये वेदान्ती लोग भ्रमिक जड़ाध्यासी होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें गिर पड़े। अतः पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग विचार करके मुमुक्षुओंने इस झीनी अज्ञान मानन्दीको मिटाना चाहिये ॥ ९८ ॥

साखीः— कबीर वाद अद्वैतका । कल्पै व्यास बहूत ॥
तरु लागे आकाशमें । फल खाय बाँझके पूत ॥ ९९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! वेदव्यासने अद्वैत मतका वाद, कथन करके बहुत ही वाणी कल्पनासे रचना किये हैं। यदि अद्वैत ही सत्य था, तो फिर चार वेदोंका विभाग, वेदान्त शास्त्र-ब्रह्मनिरूपण, और अठारह भिन्न-भिन्न महापुराण, इतना सारा वाणी कल्पना करके व्यासने कैसे बनाये? किसके वास्ते बनाये? दूसरेके

लिये ही तो ग्रन्थ बना, फिर अद्वैतका निश्चय कहाँ रहा ?। सब कार्य तो द्वैतका करें, और बोले अद्वैत, सो अन्याय नहीं तो क्या है ? इनके कल्पित कथन तो ऐसा भया कि— जैसे कोई कहै— देखो भाई ! आकाश मण्डलके शून्य मैदानमें ऊपर कैसे सुन्दर-सुन्दर तरु=वृक्ष या झाड़ लगा है, सो देखते ही बनता है। अहाहा ! उसमें तो सरस, स्वादिष्ट, मधुर, बड़े-बड़े फल लगे हैं, सो सब पके हुए दिखते हैं, जी चाहता है कि— उन्हें हम भी अभी तोड़-तोड़के खायें। परन्तु देखो ! वह सब सुरस फल तो बाँझके पुत्र पहलेसे ही जाके तोड़-तोड़के खा रहा है, वह सब खा जायगा, हमें तो कुछ मिलेगा ही नहीं। यदि यह कथन सत्य होय, तो अद्वैत वाद भी सत्य होवे। परन्तु यह बात तो मिथ्या प्रलापमात्र है। तैसे अद्वैत वाद भी मिथ्या बकवादमात्र ही है। थोड़ा भी विवेक करिये ! तो भी अद्वैत कहना झूठा ही ठहरता है। क्योंकि, एक तो आकाश शून्य-पोल है, दूसरा वैसे ही निराकार ब्रह्मरूप वृक्ष, उत्पन्न होके कल्पनासे लगा। फिर जीव-ब्रह्मकी एकतारूपी सुख फलको भी बाँझ=वाणीके पुत्र अद्वैत ब्रह्म ही बनके मगन होके खाता है। वह तो सब जगत्को खाके अपना ही पेट भरता है। जब अपच होकर पेट फूटके मर जाता है, तब चौरासी योनियोंके भवधारमें गिर पड़ता है, और जन्म-जन्मान्तर पर्यन्त सदा दुःख ही भोगता रहता है, बिना पारख, ऐसा ही होता रहता है ॥ ९९ ॥

साखीः— कबीर व्यास वेदान्तमें । कहै आतम निर्लेप ॥
उपनिषद बावन केहि कहा । लगाय-लगाय कलेप ॥ १००॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! वेदव्यासने वेदान्त शास्त्र (उत्तर मीमांसा वा ब्रह्मसूत्र) में विस्तारसे वर्णन करके कहा है कि— आत्मा या ब्रह्म सदैव निर्लेप=किसीमें लिप्त न होनेवाला, असङ्ग, अलिप्त, निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, असीम, परिपूर्ण, व्यापक है। अगर यह कथन सत्य है, तो आकारवान्,

विकारी जगत् दूसरा एक देशीय कहाँसे आया ? अनेक जीव और पाँच तत्त्वका विस्तार कैसे भया ? असङ्गसे इन सबका सङ्ग होना तो असम्भव है । और जीवोंको मिथ्या कल्पना लगाय-लगाय करके बावन उपनिषद् बनाय-बनायके किसने कहा ? अतः द्वैत साबित ही हुआ । ५२ उपनिषदोंके नामः—१ ईशावास्योपनिषत् । २ केनो० । ३ कठो० । ४ प्रश्नो० । ५ मुण्डको० । ६ माण्डूक्यो० । ७ तैत्तिरीयो० । ८ ऐतरेयो० । ९ छान्दोग्यो० । १० बृहदारण्य० । ११ श्वेताश्वतरो० । १२ ब्रह्मबिन्दू० । १३ कैवल्यो० । १४ जाबालो० । १५ हंसो० । १६ आरुणिको० । १७ गर्भो० । १८ नारायणो० । १९ परमहंसो० । २० ब्रह्मो० । २१ अमृतनादो० । २२ अथर्वशिर० । २३ शिखो० । २४ मैत्रायण्यु० । २५ कौषीतकि ब्राह्मणो० । २६ बृहज्जाबालो० । २७ नृसिंह पूर्व-उत्तरतापिन्यु० । २८ कालाग्निरुद्रो० । २९ मैत्रेय्यु० । ३० सुबालो० । ३१ क्षुरिको० । ३२ यन्त्रिको० । ३३ सर्वसारो० । ३४ निरालम्बो । ३५ शुकरहस्यो० । ३६ बज्रसूचिको० । ३७ तेजो-बिन्दू० । ३८ नादबिन्दू० । ३९ ध्यानबिन्दू० । ४० ब्रह्मविद्यो० । ४१ योगतत्त्वो० । ४२ आत्मबोधो० । ४३ नारदपरिव्राजको० । ४४ त्रिशिखि ब्राह्मणो० । ४५ सीतो० । ४६ योगचूड़ामण्यु० । ४७ निर्वाणो० । ४८ मण्डल ब्राह्मणो० । ४९ दक्षिणामूर्त्यु० । ५० शरभो० । ५१ स्कन्दो० । ५२ त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ॥ इस प्रकारसे ५२ उपनिषद् बनाये हैं, मुक्तिक उपनिषद्में सब १०८ नामसे उपनिषदोंकी संख्या लिखी हैं; और "ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः" नामक ग्रन्थमें मूल-११२ उपनिषद् छपे हैं । उनमें उपरोक्त ५२ प्रधान माने हैं, उससे भी कममें २७ और फिर दश उपनिषद् तो सर्वश्रेष्ट मुख्य ही ठहराये हैं । उसे सब वेदान्ती और सनातनी लोग मानते हैं ।

श्रीगुरुदयाल साहेब कहते हैं:— जब कि, वेदान्तमें व्यासने आत्माको एक निर्लेप या असङ्ग-निराकार अद्वैत कहा है । फिर उक्त बावन उपनिषद् पृथक्-पृथक् करके नरजीवोंको कलेप =

कल्पना लगाय-लगायके किसने, कैसे, किस तरह, क्यों कहा? जब इतना सारा वाणी कल्पना किया है, तो निर्लेप अद्वैत कहाँ रहा? बिना पारख मिथ्या भ्रम चक्रमें ही गोता लगाकर डूब मरे। अतएव इस अद्वैत सिद्धान्तमें कोई सार नहीं है। मिथ्या धोखा ही लगाये हैं। सत्यन्यायी पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें यथार्थ निर्णय करके भ्रमकी मानन्दीको त्याग देना चाहिये। जड़, चैतन्यका निरुवारा करके जड़ाध्यासको छोड़कर निजपदमें स्थिर होना चाहिये ॥ १०० ॥

साखीः—जो आतम निर्लेप है। तो उपदेश मिथ्यान्त ॥
बिना रोगके औषधी। भयो वैद्यको भ्रान्त ॥ १०१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे गुरुवा लोगो! जो तुम्हारे कथनके अनुसार आत्मा या ब्रह्म निर्लेप = अलिप्त, असङ्ग, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जन, निराकार एक ही सर्वत्र भरा हुआ व्यापक है, तब तो तुम्हारा सब उपदेश— शिक्षा-दीक्षा अन्तमें मिथ्या ही हुआ कि नहीं?। क्या तुम अपने आपको उपदेश देते हो? कि दूसरेको देते हो? एक आत्मा है, ऐसा किसको बताते हो? जब उपदेश दिया गया, तो द्वैत, ज्ञान, अज्ञान, बन्धन, मुक्ति साबित भया कि नहीं? निर्लिप्त आत्मा ठहराके दिया हुआ उपदेश मिथ्यान्त ही है। यदि कोई वैद्य निरोगी मनुष्योंको भी औषधि देता फिरै, तो बिना रोगके भये ही दवाई देनेवाले वैद्यको भ्रान्ति, धोखा, भूल भया है, ऐसा जानना चाहिये। यदि जान-बूझके ऐसा किया गया हो, तो उसे मूढ़ ही भया जानो। बिना रोगके औषधि खिलाके उल्टा रोग ही बढ़ायेगा, नाश करेगा, घातकी होगा। तैसे ही सिद्धान्तमें जब जगत् तीन कालमें नहीं है, तो जन्म, मरण, गर्भवास, त्रयताप आदि भी कुछ ठहरता नहीं है। एक ही आत्मा निरोग, नित्यमुक्त, नित्यतृप्त, निरामय, निर्बन्ध, सदासे ज्योंका-त्यों है। तब बिना आवागमन और जगत् देहादि बन्धनोंके रोग भये बिना ही, तुम लोग औषधि-रूप ब्रह्मज्ञानके उपदेश किसे, कैसे, क्यों देते हो? जब यों ही

बेप्रयोजन जबरदस्ती अद्वैत ज्ञानका उपदेश देते फिरते हैं, तब वैद्य बने हुए ये वेदान्तियोंको बड़ी भ्रान्ति भयी है। तभी ऐसे उल्टे काम करके अपने गाफिल होके भवबन्धनोंमें जकड़ पड़ते हैं। और दूसरे मनुष्योंको भी धोखामें डालके चौरासी योनियोंमें भटकाते हैं, बिना पारख ॥ १०१ ॥

साखीः— कबीर चेतन द्वैत है। अद्वैत मुवा जड़ होय ॥
चेतन मुवा कि जड़ मुवा। पण्डित ! कहिये सोय ॥१०२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! वास्तवमें तो कायावीर कबीररूप चैतन्य जीव तो अनन्त देहधारी असंख्य होनेसे द्वैत या नाना ही कहे जाते हैं। और बोधदाता सद्गुरु तथा बोध ग्रहणकर्ता शिष्य भिन्न-भिन्न मनुष्यरूपमें चैतन्य जीव हैं। वे दोनों द्वैत ही होते हैं, और जो जड़, चेतन आदि सबको एकमें समेट करके अद्वैत आत्मा मानते हैं, सो मनकी मिथ्या कल्पना मानन्दी-मात्र होनेसे, मुवा = निर्जिव भ्रम भास निष्प्राण या मरा हुआ जड़का अध्यासमात्र ही साबित होता है। अर्थात् ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, खुदा, अल्लाह, आदिको मानन्दी करके जो अद्वैत कहा है, सो मुवा, मरा हुआ वाणी कल्पना तथा जड़ विषयोंकी भास, अध्यास ही है। उसमें चैतन्यत्त्वकी कोई शक्ति रञ्चकमात्र भी नहीं है, सो तो एक धोखा ही है। अब हे पण्डितो! जड़ और चैतन्य दोनोंमें कौन मुवा है? चैतन्य मुवा है? कि जड़ मुवा है? विचार करके सोई निर्णय कहिये! कौन मरता है? चैतन्य अविनाशी अजर, अमर, अखण्ड, जीव स्वयं एकरस ही है। अनादि चार जड़ तत्त्व कार्य-कारणरूपसे सदासे मौजूद हैं। इन दोनोंके स्वरूपका कभी नाश नहीं होता है। अतः जो अनुमान, कल्पना, विषयादिमें लगा, सोई मरा, जड़ाध्यासी दुःखी भया। देह छोड़-छोड़के चौरासी योनियोंमें गया। तहाँ सद्गुरुने बीजक शब्द ४५ में कहा हैः—

"कौन मुवा कहो? पण्डित जना!। सो समुझाय कहो मोहि सना ॥"

पूरा शब्दका टीका त्रिजामें खुलासा लिखा है। मुवा नाम ब्रह्म, ईश्वरादि मिथ्या धोखाका ही है। जो इसको पहिचाने, सोई बुद्धिमान् पारखी हैं। ये भ्रमिक पण्डित लोग इसका भेद क्या जानें? पारखी सन्तोंके सत्सङ्ग द्वारा ही सत्य, असत्यका पूरा भेद जाननेमें आता है ॥ १०२ ॥

साखीः— कबीर अद्वैत जड़ मुवा । भास जीवको होय ॥
भास बड़ा कि भासकर । पण्डित! कहिये सोय ॥१०३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! ब्रह्मज्ञानी लोगोंने, जो एक अद्वैत माने हैं, सो खास करके जड़ मन, वाणी, कल्पनाकृत मानन्दीमात्र होनेसे, मुवा = मृतक, निर्जीव, जड़ाध्यास ही है। वह चैतन्य नरजीवोंको बुद्धिमें भास होता है। मनुष्योंके अतिरिक्त और किसीको कहींपर ब्रह्मका भास होता भी नहीं है। जो कोई वेदान्तकी वाणी पढ़, सुन, गुनकर उसे सत्य मानके मनमें दृढ़ निश्चय कर लेते हैं, उन्हीं बेपारखी नरजीवोंको ही भ्रमसे ब्रह्म धोखाका भास होता है। अब विवेक करो कि— मन-मानन्दीकी भास ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, ज्योति आदि विषय बड़ा श्रेष्ठ है कि— अथवा उसे भास करनेवाला, जाननेवाला, माननेवाला, द्रष्टा स्वयं प्रकाशी ज्ञाता चेतन जीव बड़ा श्रेष्ठ है? हे पण्डित! बुद्धिमान् मनुष्यो! सोई बात यथार्थ निर्णय करके कहिये! जो इस बातके भेदको जानते हैं, उसे ही पण्डित कहते हैं। ये पक्षपाती पण्डित लोग उसके भेदको जानते ही नहीं, तो निर्णयकी बात क्या कहेंगे? सुनिये! गुरु निर्णयसे भासिक जीव ही सर्वश्रेष्ठ नित्य, सत्य, अखण्ड, प्रत्यक्ष होनेसे वही सबसे बड़ा है, और तत्त्वोंका प्रकाश, भास, वाणी कल्पनाकी मानन्दी जो ठसी है, सो मिथ्या, निकम्मा होनेसे तुच्छ, छोटा है, त्याज्य है। उसे परखकर यथार्थ पहिचान करना चाहिये। भ्रम मिटाय, निज पारखस्वरूपमें ठहरना चाहिये ॥ १०३ ॥

साखीः— एक ब्रह्म अद्वैत जो । व्यास कहै वेदान्त ॥
सत्सङ्गति बिन द्वैतके । कबहुँ न छूटै भ्रान्त ॥ १०४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! एक ही ब्रह्म चराचरमें भरा हुआ, परिपूर्ण व्यापक अद्वैत, सर्वाधिष्ठान है, ऐसा जो कि, वेदव्यासने वेदान्त शास्त्रमें बहुत विधिसे कहा है। परन्तु इतना सारा वाणीका वर्णन— एक निराकार अकेला ब्रह्ममात्र होता, तो कैसे हो सकता था? निराकार, निर्गुण एकमें भी कहीं वाणीका कथन, ग्रन्थ रचना हो सकती है? कभी नहीं। इसलिये वे बड़े कठिन भ्रान्तिमें पड़े हैं। और बिना द्वैतके, यानी गुरु-शिष्य दोके हुए बिना सत्सङ्ग, विचार, निर्णय, प्रश्नोत्तर, शङ्का-समाधान हो ही नहीं सकती है, तथा द्वैत सत्सङ्गके बिना मनुष्योंका दूसरा भ्रम भी छूट नहीं सकता है। इससे द्वैत प्रत्यक्ष सत्य, साबित ही है। सद्गुरुके सत्सङ्ग किये बिना यह अद्वैत मिथ्या भ्रान्ति कभी भी छूटती नहीं है। और भ्रान्ति छूटे बिना जीवकी मुक्ति होती ही नहीं है। और अद्वैत ब्रह्मकी मानन्दी महा भ्रम, गाफिली, भूल, धोखाके खाँच ही है। अतएव सत्यन्यायी पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा एक-एक परख करके उस भ्रमको समूल मिटाय, पारखपदमें स्थिर हो रहना चाहिये, यही मुख्य कर्तव्य है ॥ १०४ ॥

साखीः— उपमा व्यापक ब्रह्मकी । जिमि अकाश सब माहिं ॥
और तरुहि कहै कल्पतरु । आश पूजै कि नाहिं ॥१०५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! वेदान्तियोंने माना हुआ ब्रह्मकी व्यापकता ठहरानेके लिये तहाँ आकाशकी, उपमा = शादृश्यता दिये हैं। जैसे निराकार आकाश शून्य, असीम होनेसे सर्वत्र भीतर-बाहर सब ठिकानोंमें भरा है। तैसे ही ब्रह्म-परमात्मा भी निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, बेहद्द है, और वह आकाश, पाताल, पाचों तत्त्वोंमें, अणु, रेणु, परमाणुमें तथा चेतन जीवोंमें, स्थावर-जङ्गमकी भीतर-बाहर, ओत-प्रोत,

परिपूर्ण, सर्व व्यापक हो रहा है, संसारमें ऐसे कोई जगह खाली नहीं कि— जहाँपर ब्रह्म व्यापक न हो। वह तो दशों दिशाओंमें आकाशवत् पूर्ण है। ऐसे मानके वेद-वेदान्तमें प्रमाण कायम किये हैं। घट, मठ, पट, तट आदि सारा जगत्में ब्रह्म भरा है, वह तो सर्वाधिष्ठान है। भ्रम कल्पनासे ऐसा मानन्दी किये हैं! सो सत्य नहीं है। यदि ऐसे माननेसे ही कल्याण होती है, ऐसा समझते होयँ, तो सुनो! मैं तुमसे पूछता हूँ कि— आँक, ढ़ाक, पलास, नीम, बबूर, शीमल, बाँश इत्यादि और दूसरे-दूसरे ही जङ्गली, तरु = वृक्षोंको, कल्पतरु = मनोकामना पूर्ण करनेवाला कल्पवृक्ष कहके मानै, मनसे निश्चय करके वैसे ही समझ लेवें, और आशा लगाके वृक्षके नीचे बैठे रहैं, तो उनकी आशा, इच्छा या मनकी चाहना पूर्ण होगी कि, नहीं होगी? कदापि नहीं होगी। जैसे यह, तैसे वह। यह आशा पूर्ण नहीं होगी, तो वह ब्रह्मकी आशा भी पूर्ण नहीं होगी। क्योंकि, और तरुके समान पाँच तत्त्व जड़, तथा अनन्त चैतन्य जीव विजातीय स्वरूपसे भिन्न-भिन्न या नानात्त्वको कल्पतरुवत् कल्पनासे एक ही पूर्ण ब्रह्म है, ऐसा कहनेसे या माननेसे मुक्ति होनेकी आशा पूरी नहीं हो सकती है। अतः जीव भ्रमिक जड़ाध्यासी होके भव बन्धनोंमें पड़े और पड़ते रहेंगे ॥ १०५ ॥

साखीः— प्यास लगी है जलकी। जल जानै सब माहिं ॥
कहहिं कबीर यह ज्ञानते। प्यास बुझै कि नाहिं ॥१०६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो! जब तुम्हें प्यास या तृषा लगै, जल पीनेकी चाहना, आवश्यकता होवे, तब तुम सबमें भीतर-बाहर आकाशवत् जल अणुरूपसे परिपूर्ण है, घट, मठ, पटादिमें जल भरा है, व्यापक है, ऐसा जानो या दृढ़ निश्चयसे वैसा मान लो। पारखी सन्त सद्गुरु कहते हैं कि— यह जल सबमें व्यापक है, ऐसा जाना हुआ या माना हुआ ज्ञानसे तुम्हारी प्यास मिटैगी कि नहीं?। कभी नहीं मिटैगी। यदि जलको

सर्वत्र मानकर भी जल पीये बिना प्यास नहीं मिटती है, तो ब्रह्म या आत्माको सबमें व्यापक माननेवालोंकी भी मुक्ति हो नहीं सकती है। ये सत्य हो, तो वह भी सत्य हो। ये सत्य नहीं होती है, तो वह भी असत्य ही है। ऐसा जानो। अर्थात् प्यासवत् इच्छा तो बन्धन छूटके मुक्ति होनेकी लगी है, तहाँ पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग विचार, हंस रहनी धारण, भ्रम त्याग, पारखबोध प्राप्ति, सारशब्द निर्णयका ग्रहणरूप सच्चा अमृत जल पीना छोड़के वह कुछ भी न करके ब्रह्मज्ञानी लोग भ्रमिक बनके जलरूप आत्माको वाणीके प्रमाणसे सबमें परिपूर्ण व्यापक मानकर उसे जानना, और उसमें मिलना चाहते हैं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखबोधके ज्ञाता पारखी सन्तगुरु कहते हैं:— यह मनःकलिपत आत्मज्ञानसे जीवोंकी भवबन्धन मिटैगी कि नहीं? सत्य निर्णयसे देखो, तो वैसे भ्रम, महा अज्ञानसे कदापि बन्धन छूट नहीं सकती है। और ज्यादे ही बन्धनोंमें जकड़ जाते हैं। अपरोक्ष पारख स्थिति हुए बिना मुक्ति हो नहीं सकती है। अतः सत्सङ्ग कर पारखबोध लेना चाहिये ॥१०६॥

साखीः— एक ब्रह्म व्यापक जगत । ज्यों सब माहिं अकाश ॥
मैं तोहिं पूछौं पण्डिता ! है पदार्थकी भास ? ॥१०७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासुओ ! वेदान्तियोंने जैसे आकाश निराकार होनेसे सबमें पूर्ण भरा है, तैसे ही एक अद्वैत ब्रह्म जगत्के दशों दिशाओंमें सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है। आकाशके भीतर-बाहर भी ब्रह्म भरा है। वह तो जगत्के अधिष्ठान है, कहीं खाली नहीं है। ऐसे दृढ़ निश्चय करके माने हैं। पारखी सन्त कहते हैं— हे पण्डित ! ब्रह्मज्ञानी ! अब मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि— आकाशवत् व्यापक माना हुआ ब्रह्म कोई खास सत्य पदार्थ भी है ? की = अथवा मन-मानन्दी कृत मिथ्या भास ही मात्र है ? सो क्या कैसा है ? निर्णयसे खुलासा करके गुण-लक्षण दर्शाकर कहो, बताओ। ये भ्रमिक लोग निर्णयसे तो क्या बतायेंगे, जो उन्हें

मालूम ही नहीं है। मैं ही तुम्हें कह देता हूँ, सुनो! आकाश शून्य या पोलमात्र होनेसे कोई वस्तु नहीं है। अन्य चार तत्त्व सत्यकी अपेक्षासे मिथ्या शून्य आकाश कहा जाता है। जैसे प्रकाशका अभाव अन्धकार है, किन्तु वह कोई वस्तु नहीं है। क्योंकि, प्रकाश होनेपर उसका कहीं पता ही नहीं लगता है, और सत्य वस्तुका अभाव कभी नहीं होता है। अतएव नभवत् व्यापक माना हुआ ब्रह्म भी कोई सत्य पदार्थ या वस्तु ठहरता ही नहीं। मिथ्या भास भ्रम धोखा-मात्र है, ऐसा जानो! ॥ १०७ ॥

साखीः— जो यह ब्रह्म पदार्थ है। काको भासै सोय? ॥
को उपदेशै को सुनै। बड़ा अचम्भा होय ॥१०८॥

-टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे वेदान्ती लोगो! यदि तुम पक्ष पकड़ करके हठसे ब्रह्मको सत्य पदार्थ बताओगे, तो सुनो! जो कि, यह व्यापक कहा हुआ एक अद्वैत ब्रह्म कोई पदार्थ या वस्तु सत्य है? तो यह बताओ कि— फिर सो ऐसा ब्रह्म किसको भासता है? उसे कौन जानता वा मानता है? तुम्हारे कथनसे और दूसरा तो कोई नहीं है। दूसरा माननेपर तो भयङ्कर द्वैत-रूपी काल आके तुम्हें खा ही लेता है। इस डरसे नेत्र मूँदके एक अद्वैत है, ऐसा चिल्ला रहे हो। परन्तु विवेक करके बोलो— एक ब्रह्म है, ऐसा किसको भास होता है? अद्वैत ब्रह्मज्ञानका उपदेश कौन, किसको देता है? उस उपदेशको कौन किस तरह सुनता है? एकमें कहीं इतना सारा कार्य हो सकता है? बड़ा अचम्भा = तुम्हारी समझपर बड़ा आश्चर्य होता है। कैसे तुम लोगोंकी बुद्धि मारी गई है? कहनेवाले गुरु, और सुननेवाले शिष्य, दोनों देहधारी प्रत्यक्ष हैं। जड़-चेतन न्यारा-न्यारा ही हैं, मनुष्यजीव ही वाणी, खानी आदिकी भास अध्यासादि कर रहे हैं। अतः ब्रह्मपद वाणी कल्पनाके निषिद्ध अर्थ होनेसे अनर्थ, अपदार्थ भ्रममात्र है। तो भी बिना विवेक किये तुम लोग ब्रह्मको पदार्थ मान-मानके भूल रहे हो,

धोखामें पड़े हुए हो। इसीसे बड़ा आश्चर्य होता है कि— तुम बड़े अनसमझ बने हो। बिना पारख चौरासी योनियोंमें ही गिर पड़ोगे। अतः कल्याण चाहते हो, तो पारख करके भ्रम-भूलको परित्याग करो, सत्यबोधको ग्रहण करो ॥ १०८ ॥

साखीः— मन बुद्धि वाणीके परे। वाणी करै निरूप ॥
वाणी ब्रह्म न लखि परै। गुण अकाश अनुरूप ॥१०९॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! ब्रह्मको ज्ञानियोंने ऐसा माना है कि— मन = सङ्कल्प-विकल्प करनेवाला सूक्ष्म इन्द्रिय, जिससे मनन भी होता है। बुद्धि = हृदयमें निश्चय करनेवाली वृत्ति-रूप सूक्ष्म इन्द्रिय, इससे बोध भी होता है। वाणी = बोलचालका शब्द, सोई मुखसे निकलनेवाली वैखरी वाणी और ग्रन्थोंमें अक्षर-रूपसे लिखी हुई वाणी, इससे भाव, अभिप्राय प्रगट होते हैं। ऐसे मन, बुद्धि, और वाणी उन तीनोंसे अत्यन्त परे अपार आत्मा ठहराये हैं। परन्तु ऐसे आत्मा या ब्रह्मका निरूपण, प्रतिपादन, कथन वाणी-से ही करते हैं। तहाँ मनके सङ्कल्प, बुद्धिके निश्चय, दोनों भी साथ ही लगता है। फिर कहो मन, बुद्धि, वाणीसे ब्रह्म परे कहाँ, कैसे भया? यदि ऐसा ही होता, तो तुम लोग उसे जानकर मान भी नहीं सकते थे। जब तुम वाणी करके जानते, मानते हो, तब वह परे कदापि नहीं हुआ। किन्तु वाणीके कल्पना भ्रम ही सिद्ध हुआ। वाणीसे ब्रह्मज्ञानका कथन तो करते हो, परन्तु वह ब्रह्म क्या चीज है? यथार्थ वस्तु तो तुमको लख पड़ती ही नहीं है, और जब कुछ समझनेमें नहीं आया, तो कल्पनासे निराकार आकाशका गुण शब्द विषय मानके फिर, अनुरूप = उसी आकाशके समान निराकार, निर्गुण प्रणव या ॐकार शब्दस्वरूपी कोई ब्रह्म है, ऐसा सिद्धान्त ठहराये हैं। सो मनुष्य जीवोंका भ्रम ब्रह्म तो वाणीके कल्पना मिथ्या धोखा ही है। बिना पारख सत्य निर्णयको लखके वे नहीं जानते हैं। इसीसे असत्यको ही सत्य मान-मानके भूले, और भूल रहे हैं ॥ १०९ ॥

साखीः— मन बुद्धि वाणीके परे । वाणी करै निरूप ॥
कहैं कबीर पारख बिना । भया भिखारी भूप ॥११०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो ! ये भ्रमिक गुरुवा लोग पहिले तो ब्रह्म-परमात्माको मन, बुद्धि, वाणी आदि सबसे परे अवाच्य, अगम, अगोचर, पूर्णव्यापक है, कहके अपार ठहराते हैं । फिर पीछे धीरे-धीरे करके उलटके उसी मन, बुद्धि, वाणीके द्वारा ही आत्माके गुण, लक्षण, महिमा विशेषता वर्णन करके कल्पित वाणीसे ब्रह्मका निरूपण करते हैं । तहाँ ब्रह्मनिरूपण नामके ग्रन्थ भी बना रखे हैं । विचारा ब्रह्म मन ही के भ्रम तो ठहरा, जब वेदान्ती लोग निरूपण करते हैं, तबतक वाणीरूपमें प्रकाश होता है, फिर पीछे गायब होके उनके भ्रम उनमें ही घुस जाता है; और बाहर कहीं तो ब्रह्मके अस्तित्त्व दिखाई देता ही नहीं है । अतः मिथ्या मानन्दो भ्रमभूल ही है । किन्तु, कहैं कबीर = वेदान्ती गुरुवा लोग उसी ब्रह्मको ही सर्वश्रेष्ठ एक अद्वैत सत्य है, ऐसा पहले कहे, और अभी कह रहे हैं, धोखामें पड़े वा पड़ रहे हैं । पारखी सन्त कहते हैं— देखो ! यथार्थ गुरु पारखके बोध हुए बिना भिखारी तो राजा हो गया, और असली राजा भिखारी या दरिद्री हो गया । अन्यायसे ऐसे उलट-पुलट हो गया । अर्थात् भिखारी = गरीब, दरिद्र पारख धन हीन, निर्बुद्धि गुरुवा लोग, राजा = ब्रह्मज्ञानी, गुरुमहाराज बनके, श्रेष्ठ होके बैठे, और हंस जीव जो श्रेष्ठ भूपके समान हैं, सो अपने सद्गुण लक्षणको गँवाकर विवेक-विचारको छोड़कर अज्ञानी दरिद्र भिखारी बन गये । गुरुवा लोगोंके द्वार-द्वारमें उपदेश पानेका भीख माँगते फिरते हैं । अथवा सबका राजा मनुष्य बिना पारख भिखारीरूप भ्रमिक बन गये ! तहाँ दरिद्रवत् शक्तिहीन ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी, देवता, आदिको श्रेष्ठ भूपवत् ठहराके सुख-दुःख, बन्धन-मुक्तिका दाता मान-मानकर स्तुति, विनय करके उनकी दयाकी आशा करने लगे । अपने भीखमङ्गे हो गये । इस तरह बिना पारख जड़ाध्यासी

हो कठिन बन्धनोंमें जकड़ पड़े। आवागमनमें भटकने लगे ॥ ११० ॥

साखीः— यह जगत् जब ना हता। तब रहा एक भगवान ॥
जिन देखा यह नज़र भरी। सो रहेउ कौन मकान? ॥१११॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासु मनुष्यो! कर्तावादी गुरुवा लोग बिना विचारके कहते हैं कि— प्रथमारम्भमें या सृष्टि-संसार उत्पत्तिके पहले केवल एक भगवान्=निर्गुण, निराकार, निरञ्जन ब्रह्म, षट्गुण ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर योग निद्रामें विलीन, महाशून्य, महदाकाशवत् शान्त स्वयं एक अकेला रहा था। जब यह जगत्की अत्यन्ताभाव रही। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारागण, नदी, नाला, समुद्र, वन, पर्वत, द्वीप, खण्ड, चारखानी, चौरासी योनियोंके जीव समूह, और पिण्ड-ब्रह्माण्डके यावत् पदार्थ कोई कुछ भी, ना हता=नहीं था। तब एक ही भगवान् परमात्मा अपने आप रहा था। पश्चात् उसी परमात्माकी इच्छामात्रसे सारा संसार चराचर सृष्टिकी उत्पत्ति भई, इत्यादि बात गुरुवा लोग विस्तारसे कथन करके कहते हैं। उन्हीं लोगोंके प्रति चेतावनी देते हुए सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक, रमैनीमें कहा है:—

रमैनीः— "प्रथम आरम्भ कौनको भयऊ? दूसर प्रगट कीन्ह सो ठयऊ? ॥" र० ३॥
"प्रथम चरण गुरु कीन्ह विचारा। कर्ता गावैं सिरजनहारा ॥र० ४॥
कहँलों कहौं युगनकी बाता। भूले ब्रह्म न चीन्हैं बाटा ॥र० ५॥
वर्णहु कौन रूप औ रेखा? दूसर कौन आहि जो देखा? ॥र० ६॥
नहिं जल नहिं थल नहिं थिर पवना। को धरे नाम हुकुमको बरना? ॥र० ६॥
तहिया होते पवन नहिं पानी। तहिया सृष्टि कौन उत्पानी? ॥" र० ७॥

साखीः— "जहिया किर्तम ना हता। धरती हती न नीर ॥
उत्पति परलय ना हती। तबकी कहैं कबीर ॥" बीजक सा० २०३॥

इन सब पदोंका भाव स्पष्ट ही हैं, और टीका सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब-नें खुलासा लिखे हैं। चाहे वहाँसे देखिये! ॥ सद्गुरुके सत्‌शिक्षा बीजकके वही आशय लेकर श्रीगुरुदयालसाहेब भी कहते हैं कि—

पहले यह जगत् नहीं था, तब एक भगवान् ही रहा, और महाप्रलय होनेपर भी चराचर जगत् नहीं रहेगा, तब भी एक परमात्मा ही रहेगा। ऐसा गुरुवा लोग कहते हैं, तो अच्छा भाई! यदि ऐसा ही है, तो तहाँ यह बताओ कि— सृष्टिके पूर्वमें तथा प्रलयके बादमें जिसने एक भगवान् या परमेश्वरको खूब नजर भरके या नेत्र गड़ाकर देख करके उस समयकी यह हालको तुम लोगोंसे आके कहा। तो वह भगवान्को अकेले देखनेवाला पुरुष उस वक्त कौन मकानमें या किस मुकाममें कहाँपर रहके आँख भर-भरके परमेश्वरको देखा? जगत्की सृष्टि ही नहीं भई थी, तो वह कहाँ पर बैठके देखता था? फिर महाप्रलय हो गई, पाँचतत्त्व जीव आदि भी कोई कुछ नहीं बचे, तो देखनेवाला कैसे बचा? वह किस स्थानमें रहा? देहके बिना देखना, सुनना, कहना नहीं होता है, जब उसके शरीर रहा, तो देहके गजारा कैसे चलाया होगा? और अन्धकारमें कुछ देखा नहीं जाता है, प्रकाशमें ही देखा है, तो सूर्य रहा ही, नेत्रसे देखा, तो नेत्र होनेसे स्थूल शरीरधारी जीव रहा ही, और पाँच तत्त्व बिना तो शरीर नहीं बनता है, शून्यमें ठहरता नहीं है। इसलिये पृथ्वी आदि पाँचों तत्त्व रहे ही। निराकार तो दिखाई नहीं देता है, भगवान्को देखा, तो वह भी इसके समान स्थूल देहधारी ही हुआ। फिर कभी जगत् नहीं था, यह कैसे सिद्ध हुआ? अगर कहनेवालेने बिना देखे, बिना जाने, बिना समझे ही मनका घोड़ा दौड़ाके अन्दाजसे ऐसा कह दिया हो, तो उसकी कल्पना झूठी बात हुई। अगर उसने देखा है, तब एक तो वह द्रष्टा=देखनेवाला देहधारी, दूसरा जिसे उसने देखा, वह दृश्य देहधारी दो मनुष्य साबित हुये। फिर उनके होनेसे सारा जगत् स्वयं सिद्ध अनादि ठहर ही गया। इस तरह अद्वैत कहना, और एक भगवान्से जगत्की उत्पत्ति-प्रलयकी बात कहना मिथ्या, कोरी कल्पना होनेसे सरासर खण्डित हो जाती है। द्रष्टा, दृश्य, दर्शन, त्रिपुटी ठहरनेसे जगत् नहीं था, ईश्वर एक था, ऐसा कथन

झूठी ठहरती है। अतः यह मिथ्यावादियोंके मिथ्या प्रलापमात्र है। जगत् स्वतः सिद्ध अनादिकालका है, किसी समय जगत् नहीं था, ऐसा कहना असम्भव है। ईश्वरादिको जगत्का कर्ता मानना मिथ्या भ्रम-धोखा है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा यथार्थ बातको जानना चाहिये ॥ १११ ॥

साखीः— कबीर जब दुनियाँ नहीं। तब था एक खुदाय ॥
जिन यह पेखा नजरसे। सो केहि ठौर रहाय ॥११२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैसे हिन्दू लोग मानते हैं, उसी प्रकार उधर मुसलमान लोग भी जगत् कर्ता खुदाको एक अकेला मानते हैं। पहले दुनियाँ = आलम नहीं थी, तो खुदा एक था, उसने 'कुन्न' शब्द कहा, तो सारी दुनियाँ बन गई, और जब अल्लाह मीयाँ क्यामतके समयमें 'फैकुन्न' शब्द कहेगा, तो सारी दुनियाँ फना हो जायगी, फिर खुदा एक ही रहेगा, इत्यादि मुल्ला लोग बताते हैं। उन लोगोंसे ग्रन्थकर्ता पूछते हैं— हे मुस्लिम नर जीवो! पहिले जब यह दुनियाँ = चराचर संसार कुछ भी नहीं था, और एक खुदाय = अल्लामियाँ अकेला था। अगर यह बात सत्य है, तो जिसने अपने नजरसे दुनियाँ न रहनेपर भी खुदातालाको खूब गौर करके देखा, सो वह देखनेवाला शक्स तब किस ठौरमें या किस मुकाम, किस जगहमें खड़े रहके देखा था? कहीं तुम्हारे घरके छत ऊपर खड़े होके तो नहीं देखा था? या तो तुम्हारे कन्धेपर चढ़के देखा तो नहीं था? स्वप्नमें देखा था? कि भाँगकी वा अफीम-की नशा खाके उसके पीनकमें देखा था? बताओ, कहाँ रहके, कैसा देखा था? देखा नहीं था, योंही अन्दाजसे कह दिया, तो झूठी बात है। यदि देखा था, तो वह देखनेवाला और दिखाई देनेवाला दो साबित होनेसे सारी दुनियाँ अनादि ही रही। इसलिये खुदा मानना मिथ्या भ्रम कल्पना ही है। उसे परखके सत्यको पहिचानो ॥ ११२ ॥

साखीः—जीव ईश्वर ब्रह्म जो। तत्त्वमसी कहै वेद॥
कहहिं कबीर यह तीन पद। केहि उपदेशन भेद॥११३॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—हे जिज्ञासुओ! सामवेदके महावाक्यमें "तत्त्वमसि" कहा है। इसका यह अर्थ है कि—"वह तू है" भावार्थमें त्वंपदवाच्य जीव, अल्पज्ञ, एकदेशीय, परिछिन्न, शक्तिहीन मायोपाधि संयुक्त कहा है। तत्पदवाच्य ईश्वर, सर्वज्ञ, सर्वदेशी, एक, व्यापक, सर्वशक्तिमान् मायोपाधि-रहित माना है, और उन दोनों तत्, त्वं, की वाच्यांश विकार त्यागकर लक्ष्यांशसे चेतनकी एकता करके असिपद ब्रह्म ठहराया है। इस प्रकारसे जीवको ईश्वरमें और ईश्वर-जीवको पुनः ब्रह्ममें मिलायके जो एकाकार हुआ, सोई वेदमें तत्त्वमसि कहा, और वेद प्रमाणसे वेदान्ती लोग भी अद्वैत सिद्धान्तमें तत्त्वमसि कहते हैं। जगत्-ब्रह्मको एक बतलाते हैं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखके ज्ञाता पारखी सन्त सद्गुरु कहते हैं कि—जब उपरोक्त प्रकारसे एक ब्रह्म ही ठहराया, तब तुमने यह तीनपद = तत्पद ईश्वर, त्वंपद जीव, असिपद एकता ब्रह्म, अलग-अलग बतला करके फिर किसको उपदेश देते हो? इसका भेद बतलाओ। अर्थात् अद्वैत सत्य है, तो वेदका कहा हुआ तत्त्वमसि तीनपद द्वैत होनेसे असत्य हुआ, द्वैतके बिना उपदेश नहीं होता है। इसीसे तीन-पदकी द्वैत सत्य है, अद्वैत मिथ्या हुआ, और पहिले किसने, किसको यह तीन पद बतलायके उपदेश दिया? ब्रह्मने जीव ईश्वरको शिक्षा दिया, कि जीवने ईश्वर, ब्रह्मको वर्णन किया। अगर इसका भेद जानते हो, तो खुलासा करके कहो। अरे भाई! नरजीवोंने ही दूसरे मनुष्योंको भ्रमाके धोखा दिया है। ब्रह्म ईश्वरादि कोई वस्तु सत्य नहीं, मिथ्या भ्रमभूल मात्र है। सद्गुरुने बीजक, रमैनी ५० में कहा है:—

"बंसहि आगि लगि बंसहिं जरिया । भरम भूल नर धन्धे परिया ॥" बी० र० ५० ॥ इसलिये तत्त्वमसिके मानन्दी कर्ता नरजीव ही सत्य है, और एक है, तो उपदेश मिथ्या है, जब तुम लोग ब्रह्मज्ञानका उपदेश देते हो, तो अद्वैत मिथ्या है । पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके सत्य, असत्यको पहिचानना चाहिये ॥ ११३ ॥

साखीः— जीव ईश माया सहित । कहै अनादिक जोय ॥
कहहिं कबीर यह तीन पद । केहि उपदेशन होय ॥ ११४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! जो कोई जीव, ईश्वरसहित माया मिलाके अनादि तीनों नित्य वस्तु हैं, कहते हैं, वे विशिष्टाद्वैतवादी भ्रमिक लोग हैं । क्योंकि, देहधारी चैतन्य जीव और जड़तत्त्वको छोड़कर नित्य ईश्वर और माया कहाँ साबित होती है ? अतः उनकी वह मिथ्या कल्पना मात्र है । जीव, ईश्वर, मायासहित त्रिपुटी मिला हुआ कोई सत्य वस्तु तो संसारमें कहीं कुछ भी दिखाई देता ही नहीं है । अगर तुम उन तीनों पदको सत्य मानते हो, तो, कहो फिर उपदेश किसको कैसे होता है ? अनादि वस्तुका नाश नहीं होता है । इससे माया = अविद्या, अज्ञानका लगा हुआ बन्धन भी छूट नहीं सकेगा ? और ईश्वर निराकार होनेसे बोलके या किसी तरह भी उपदेश देनेमें वह समर्थ नहीं है, तथा माया जड़ होनेसे शक्तिहीन है । रहा जीव, अपने आपको वह क्या कैसे उपदेश देगा ? इसवास्ते सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखके ज्ञाता पारखी सन्त पूछके तुमसे कहते हैं कि— कहो भाई ! अब यह तीनपद जीव, ईश्वर, माया, ये वा तत्त्वमसि इसे उपदेश कौन देता है ? और उपदेश किसे होता है ? कैसे होता है ? इसका भेद खुलासा करके, बताओ ! और उन तीनपदको भी जाननेवाला चौथापद होना चाहिये, सो कौन है ? । यदि सो जानते हो, तो कहो, वह पद कौन है ? नहीं जानते हो, तो पक्षपात छोड़कर पारखी साधु गुरुकी सत्सङ्ग विचार,

विवेक करो, तब तुम भी यथार्थ भेदको जान पाओगे ॥ ११४ ॥

साखीः— जीव ईश औ माया जो । कहिये जगत अनादि ॥
कहहिं कबीर ताको भयो । गुरु उपदेशन बादि ॥११५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! विशिष्टाद्वैत मतवादमें एक जीव, दूसरा ईश्वर और तीसरा अचिन्त्यशक्तिरूप माया (अविद्या) इन तीनोंकी समुदायरूप जगत्को जो अनादि कहते हैं। तहाँ अनादि वस्तुका बाध या नाश न होनेसे उसके लिये तो सद्गुरुकी उपदेश बोध, मुक्तिका साधन आदि सब ही, बादि= व्यर्थ, फजूल ही हुआ। क्योंकि, अनादि मायारूप अविद्या स्वतन्त्र होनेसे वह किसीको मुक्त होने ही नहीं देगी, तब मुक्ति होना असम्भव ही हुआ। फिर ऐसे मतवादी सदा-सर्वदा घोर नर्कमें ही पचा करेंगे। धिक्कार है, ऐसी उल्टी समझवालेको। पढ़-लिखके भी नीरे मूर्ख ही बने रहते हैं। परन्तु अनेक चैतन्य जीव देहधारी और पाँच तत्त्व जड़, यह दो वस्तु तो स्वतः अनादि हैं। परन्तु जड़ाध्यासका सम्बन्ध कोई स्वरूपसे अनादि पदार्थ नहीं, वह तो बदलते रहनेवाला वासना संस्कार अध्यासमात्र है। इससे पारख-बोध होनेसे वह छूट जाती है, तहाँ मुक्ति भी होती है, इसीसे तो सद्गुरुके सत्य उपदेश भी सफल होता है! किन्तु, गुरुवा लोगोंने माना हुआ ईश्वर सिर्फ कल्पनामात्र है, और मायारूप अविद्या कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। तब जो वस्तु ही नहीं, तो वह अनादि वा आदि कैसे होगी? जो यदि हठ करके वे लोग जीव, ईश्वर, माया ये तीनोंको जगत्में अनादि कहते हैं, तो फिर कहिये! उनको गुरुका उपदेश व्यर्थ हुआ कि नहीं?। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं— उसको तो बड़ा भ्रम धोखा ही दृढ़ हो गया है। इसीसे सत्यासत्यका यथार्थ निर्णय न करके पक्ष लेके भ्रम चक्रमें पड़े हैं। ऐसोंको गुरुका उपदेश भी बेकार ही होता है, वे जड़ाध्यासी हो चौरासी योनियोंमें ही पड़े रहते हैं ॥ ११५ ॥

साखीः— एकोहं बहुस्याम कही । ईश करत उपदेश ॥
एक अनेक आपै भये । कासों कहत सन्देश ॥ ११६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और ईश = ब्रह्मज्ञानी गुरुवा लोग मनुष्योंको ऐसा उपदेश करते हैं कि— पहिले संसार वा चराचर कुछ भी नहीं था, ब्रह्म स्वयं अकेला था। तब आप-ही-आप ब्रह्ममें एक इच्छा वा स्फुरणा उठी—"एकोऽहं बहुस्याम् प्रजायेय"—मैं एक अद्वैत हूँ, अब मैं एकसे अनेकरूपमें उत्पन्न होके बहुत चराचर रूपको प्राप्त होऊँ। बस, फिर क्या था, एक ब्रह्म स्वयं ही अनेक जगत्‌रूपमें परिणत होके उत्पन्न हो गया। तहाँ पहले ब्रह्मसे ईश्वर पुरुष प्रगट हुआ; फिर क्रमशः प्रकृति, महतत्त्व, अहङ्कार, त्रिगुण, तमोगुणसे पञ्चतत्त्व तथा पञ्चविषयका पसारा भया, रजोगुणसे दश इन्द्रियाँ बनीं, सत्त्वगुणसे अन्तःकरण चतुष्टयसहित चौदह देवताएँ पैदा भये, ब्रह्मके अंशसे नाना जीव उत्पन्न भये, प्रकृतिके अंशसे जड़ जगत्‌की सृष्टि भयी। इस प्रकार एक ब्रह्मकी इच्छासे ही अनेक जगत्‌की उत्पत्ति भयी। तहाँ जीवोंको अज्ञानी देख करके सर्वशक्तिमान् दयालु ईश्वरने मनमें प्रेरणा करके वेदका उपदेश कहा; सो ऋषियोंने—अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा, इन चारोंने क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद सर्वप्रथम ग्रहण किये। फिर उन्हीं चारोंसे पीछेसे ब्रह्माने चारों वेद प्राप्त किया। उनसे संसारमें वेद प्रकाश हुआ, इत्यादि कहकरके ब्रह्मवादी और ईश्वरवादी लोग उपदेश करते हैं। तहाँ उनके कथन प्रमाणसे तो एक ब्रह्मसे ही अनेक जगत्‌की उत्पत्ति भई। इससे एक-अनेक ब्रह्म आप-ही-आप जब भये, तब फिर दूसरा कोई तो नहीं रहा, और एक अकेलेमें वेद-वेदान्तका सन्देश = खबर, हाल, समाचार कि, उपरोक्त 'एकोऽहं बहुस्याम्' का वार्ता कौन-किससे कैसे कहता है? क्यों कहता है? एकमें कहीं कहना-सुनना, सन्देश देना-लेना होता है? फिर एक ब्रह्म वा ईश्वर व्यापक है, और कोई नहीं, यह जाना

किसने ? और फिर वह एकसे अनेक हुआ, तो खण्ड-खण्ड होके नाश हो गया, फिर वह एक रहा भी नहीं, अखण्ड हुआ भी नहीं। अतः यह तुम्हारी कल्पना सरासर असत्य है। ऐसे-ऐसे मानन्दी करनेवाले नरजीवसहित संसार स्वतः सिद्ध है, ऐसा जानो ॥११६॥

साखीः— आपुहि एक अनेक होय। बोलैं ईश सुजान ॥
उपदेशन काको करै। काहि लगा अज्ञान? ॥ ११७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! वेदान्तके कथनसे आप स्वयं ही एक अद्वैत ब्रह्म, अनेक जगत्‌रूपमें परिणत होयके फैला है। एक-अनेकरूप ब्रह्म ही है, ऐसा ईश्वर पुरुषने वेदमें बोला या कहा है, कहकर ईश सुजान = ईश्वर-ब्रह्मको अच्छी तरहसे जाननेवाले वेदवेत्ता या वेदाध्ययनमें पारङ्गत ब्रह्मज्ञानी पण्डित लोगोंने बोले हैं और वही बात बोलकर बता रहे हैं। तहाँ विवेक करिये कि— फिर कौन, किसको, कैसे, उपदेश करता है? या करेगा? किसने, किसको उपदेश किया? और अज्ञान तो भी किसको, कैसे लगा? एक अद्वैतमें इतनी सारी उपाधि तो नहीं हो सकती है। जब जगत् प्रपञ्चमें अज्ञान लगा, उपदेश हो रही है, तो इससे अद्वैत कहना मिथ्या भूल ही ठहरता है। अद्वैत कथन करनेवाले सुजान ज्ञानी नहीं हैं? बल्कि अजान महाअज्ञानी ही बने हैं। एक ब्रह्म तो धोखा भ्रम है, अनेक जड़-चैतन्यरूप जगत् ही सत्य है। सत्य-न्यायसे जड़-चैतन्यके भेदको ठीक-ठीकसे जान लेना चाहिये ॥ ११७॥

साखीः— एकोहं बहुस्याममें। काहि लगा अज्ञान? ॥
को मूरख को पण्डिता? केहि कारण बहुबान? ॥ ११८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ! "एकोऽहं बहुस्याम्"—मैं ब्रह्म एक हूँ, सो एकसे अनेकरूपमें विस्तार होऊँ! ऐसी ब्रह्मकी इच्छासे सृष्टिकी उत्पत्ति भयी है, ऐसा वेदान्ती लोग कहते हैं, ब्रह्मको विज्ञानरूप बतलाते हो, तो बताओ— किसको

अज्ञान, अविद्या लगी ? कैसे लगी ? क्यों लगी ? और कौन मूर्ख, अनसमझ भया ? कौन पण्डित बुद्धिमान् भया ? तथा किसके लिये किस कारणसे बहुत-सी वाणी वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि बनी हैं ? किसने क्यों बनाया है ? इन सब बातोंका उत्तर तो ब्रह्मज्ञानी लोग यथार्थ दे नहीं सकेंगे, इससे उनकी मानन्दी भ्रम है। द्वैतरूप जड़-चैतन्य ही यथार्थमें सत्य है। उसे सत्सङ्ग द्वारा ठीकसे जानना चाहिये ॥ अर्थात् एकमें अनेकता होना, असम्भव है, जब अनेक दिख ही रहा है, तब एकसे इच्छामात्र करके अनेक सृष्टि हुयी कहना, अन्याय तथा मिथ्या कथन है। कोई अज्ञानी मूर्ख बने हैं, कोई पण्डित होके नाना वाणी बना रहे हैं, इस कारणसे जीव ही सत्य है, किन्तु, ब्रह्म नरजीवोंकी कल्पनामात्र होनेसे, असत्य है। सो पारख निर्णयको समझ लेना चाहिये ॥ ११८ ॥

साखीः— एकोहं दुतिया नहीं । महापुरुष कहैं बाक ॥
जो दिलमें दुतिया नहीं । कासों बोलतहिं ताक ॥११९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— एकोऽहं = मैं एकब्रह्म निरञ्जन, परिपूर्ण अद्वैत हूँ, और दुतिया = द्वैत जगत् दूसरा कहीं कोई कुछ भी नहीं है। ऐसा बाक = वाक्य, शब्द, उपदेश, महापुरुष कहलानेवाले व्यास, वशिष्ठ, वामदेव, दत्तात्रेय, शङ्कर आदिकोंने पूर्वमें कहे हैं, तथा अभीके ब्रह्मवेत्ता लोग भी ऐसे ही "एकोब्रह्मद्वितीयोनास्ति" कह रहे हैं। जो ऐसा ही होता, यदि उनके, दिल = अन्तःकरणमें दूसरा द्वैत कुछ भी नहीं भासता है, तो वे ब्रह्मज्ञानी, ताक = देख-देख करके, लक्ष लगाके, सम्बोधन करके, फिर् किससे बोलते हैं, किसको सुनाते, बतलाते हैं कि—मैं ब्रह्म एक हूँ, और दूसरा कोई नहीं है। उन्हींके कथनसे यह मालूम हुआ कि,—द्वैत जगत् था, दूसरे उनके वचन सुननेवाले मनुष्य भी थे, तभी तो उन्हें ताक-ताकके झाँसा देके, आश्चर्यमें डालनेके लिये "एकोऽहं दुतिया नहीं" ऐसा वाणी भ्रमिक गुरुवा लोगोंने कहे हैं। इस प्रकार मनुष्योंको धोखामें

ही डालके भटकाये हैं। वास्तवमें एक होता, तो वे कभी बोल भी नहीं सकते थे। जब वे बोलते, कहते-सुनते हैं, तो द्वैत अवश्य प्रत्यक्ष है। तो भी वे अद्वैत मानते हैं, सोई उनकी अनसमझ, मूर्खता है ॥ ११९ ॥

साखीः— एकोहं आपुहि भये। दुतिया दीन्हों काटि ॥
एकोहं कासों कहै। महापुरुषकी झाँटि ॥१२०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म"— मैं एक अद्वितीय या अद्वैत ब्रह्म हूँ। "एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति"— एक अद्वैत ब्रह्म है और दूसरा द्वैत कुछ नहीं है। "एकोऽहं, अहंब्रह्मास्मि"— मैं एक हूँ, मैं ब्रह्म हूँ। ऐसे-ऐसे वचन कह करके आप अपने ही मनसे एक ब्रह्म भये। फिर तहाँ दुतिया = दूसरा द्वैतको काँट-छाँटके सत्यानाश कर दिये। जगत्को निषेध करके ब्रह्म सिद्धान्तको ही श्रेष्ठ ठहराये। परन्तु आश्चर्यकी बात तो यह है कि—एकोहं कहके वे पुकारते, शब्द सुनाते भी हैं, अब बताइये! वे ब्रह्मज्ञानी लोग, मैं एक हूँ, ऐसा उच्चारण करके किससे कहते हैं? अपने आपसे तो कोई कहता नहीं, कहते हैं, तो सुननेवाला दूसरा रहा ही। अतः महापुरुष = ब्रह्मवेत्ता, अद्वैत मतवादी बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, व्यास, वशिष्ठादि पुरुषोंकी झाँटि = झटकारी हुई, या फटकारी हुई, युक्ति-प्रयुक्तिसे वर्णनकी हुई वेद-वेदान्तकी वाणी कल्पित, असत्य, भ्रमपूर्ण, अन्याय, अविचारसे बनी हुई होनेसे निकम्मी, तुच्छ, अग्राह्य, त्याज्य है। मुमुक्षुओंने ऐसे भ्रम चक्रमें कभी नहीं पड़ना चाहिये। पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग करके सत्यासत्यको परखना चाहिये। अन्यायी लोगोंका पक्ष पकड़नेसे कल्याण नहीं हो सकता है ॥ १२० ॥

साखीः—कबीर पाँचहु तत्त्वको। पाँच स्वभाव परधान ॥
तामें जो करै एकता। सो निर्गुण अज्ञान ॥१२१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! संसारमें—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और समान वायुरूप आकाशतत्त्व यही पाँचों

तत्त्वोंकी पाँच स्वभाव = पृथ्वीका स्वभाव कठिनत्त्व, गुण-गन्ध विषय है, सो नाशिका द्वारा ग्रहण होती है। जलका शीतल स्वभाव, रस विषय है, सो जिभ्याद्वारा ग्रहण होती है। अग्निका उष्णत्त्व स्वभाव, रूप विषय है, सो नेत्रद्वारा देखा जाता है। वायुका कोमलत्त्व स्वभाव, स्पर्श विषय है, सो त्वचाद्वारा जाना जाता है, और समान वायुरूप आकाशका लय स्वभाव, शब्द विषय है, सो कानद्वारा सुनाई देता है। कान बन्द करनेपर भी भीतरी सूक्ष्म शब्द, नाद सुननेमें आता है। इस प्रकार पाँचों स्वभाव, विषय, शक्ति, क्रिया, सम्बन्ध, पाँचोंतत्त्वका भिन्न-भिन्न, प्रधान = मुख्य विशेष करके दिख रहा है। जीवकी सत्तासे देहमें पाँच ज्ञानेन्द्रियों-द्वारा पञ्चविषयोंका ग्रहण हो रहा है। जड़-चैतन्यके गुण-लक्षण पृथक्-पृथक् ही हैं। फिर अन्धाधुन्ध मूड़-पेलकरके उन सबमेंका विभिन्नताका विचार, विवेक छोड़ करके जो ब्रह्मज्ञानी लोग न्यायको तिलाञ्जलि देके, अन्यायसे हठ करके, पाँचों जड़-तत्त्व और अनन्त देहधारी चैतन्य-जीव इन दोनोंमें या चराचरमें एकता मानकर एक अद्वैत ब्रह्म, अधिष्ठानका निरूपण करते हैं, एकत्त्व ब्रह्म प्रति-पादन करते हैं। वास्तवमें सो तो महाअज्ञानी, गाफिल, भ्रमिक, निर्गुणियाँ = हंसके सद्गुण जिनमें कुछ भी नहीं है, ऐसे अवगुणी या दुर्गुणी, नादान, नालायक ही बने हैं। ऐसे विपरीत समझने-वालेको बारम्बार शत-सहस्त्र बार धिक्कार है। अपनेको निर्गुण ब्रह्म मानके महा खाँचमें गिर पड़े हैं। चौरासी योनियोंमें भटक रहे हैं। अतः ऐसे भ्रमिक अनसमझके सङ्गमें कभी नहीं लगना चाहिये। पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग करके परखना चाहिये ॥ १२१ ॥

साखीः—षट् द्रव्य जैनी मता। ताको यह निर्धार ॥
जीव पुदगल अधर्म धर्म। कालअकाश विचार ॥१२२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता अब यहाँसे जैनियोंकी कसर-खोट दर्शायके कहते हैंः— जैनियोंके मत या सिद्धान्तमें, षट् द्रव्य = नित्य कभी

नाश न होनेवाले छः पदार्थ माने हैं। उन जैनियोंके मनमें यही बात, निर्धार=निश्चय दृढ़ है। उनके मतसे निर्णय करके माना हुआ षट् द्रव्योंके नाम यह है कि— १ जीव द्रव्य, २ पुद्गल=देह वा परमाणु द्रव्य, ३ अधर्म द्रव्य, ४ धर्म द्रव्य, ५ काल वा समय द्रव्य, और ६ आकाश द्रव्य, इन्हींको सच्चा षट् द्रव्य मानके जैनी लोग विचार किये और कर रहे हैं। परन्तु सत्यन्यायसे निर्णय करके देखिये! तो उनके माना हुआ षट् द्रव्य ही अयुक्त असिद्ध हैं। विस्तार निर्णय तो इसके बारेमें "निर्पक्षसत्यज्ञानदर्शन" में लिखा है। उसीकी संक्षिप्त सार सुनिये! जैन तत्त्वार्थमें लिखा हैः— संसारी और मुक्त दो प्रकारके जीव होते हैं। त्रस और स्थावर दो जातिके संसारी जीव माने हैं। वनस्पतिकाय, स्थावर जीव हैं। जलकाय जीव, तेजकाय जीव, वायुकाय जीव, आकाशकाय जीव कहा है, और सूईके अग्र भागपर किसी हरे पदार्थका जितना भाग ठहरेगा, तिसमें अनन्तकाय जीव रहते हैं, और स्वर्ग, नरकबासी आदि अनेकों जीव कहे हैं, उन सबमें कहीं मनसहित, और कहीं मनरहित, सैनी-असैनी जीव रहते हैं, ऐसा माने हैं। फिर और लिखा है— मट्टीके जुवार जितने कङ्करमें, जल बून्दमें, अग्निकी एक चिनगारीमें तथा वायुके एक झपटमें, असंख्यात जीव रहना माने हैं। वे यदि क्रमसे कबूतर, अण्डा, राई, और बड़के बीजवत् आकारके देह धरके उड़ जायेंगे, तो तीनों लोकमें भर जायेंगे, ऐसा असम्भव कथन किये हैं। इस प्रकार जीवको जड़ तत्त्वोंके परमाणुवत् समझनेवाले वे भ्रमिक बने हैं, और पुद्गलरूप शरीर भी नाशवान होनेसे नित्य द्रव्य नहीं ठहरता है, सिर्फ परमाणुको ही नित्य द्रव्य कह सकते हैं। तथा जड़ तत्त्वोंके गुण, धर्म और अधर्म हैं, तिनको भिन्न, नित्य द्रव्य मानना अन्याय है। यदि जीवोंके स्वरूप निराकार माने हैं, तो देहरहित अकेले मुक्त जीवोंमें ऊर्ध्वगमनकी क्रिया मानना और देह छूटे बाद मुक्ति तथा जीतेतक मुक्ति

नहीं, यह माना हुआ भी असम्भव दोषयुक्त वर्णन है। तथा काल स्वयं नित्य द्रव्य नहीं है, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमाके नित्यकी क्रियाओंसे वह समय सिद्ध होता है। और आकाश निराकार, पोलमात्र शून्य होनेसे अपदार्थ है, इससे वह कोई द्रव्य हो ही नहीं सकता है। इस तरहसे इनके माने हुए षट् द्रव्य अनर्थ और व्यर्थ है, सबोंने तो पाँचों तत्त्वोंको जड़ ही माने हैं, परन्तु जैन मतवादियोंने पाँचों तत्त्वोंको स्थावर जीव देहधारी माने हैं, यही उनकी महा अज्ञानता अविचारपना है। सत्य पारख निर्णयको ग्रहण करके इस धोखाको त्यागना चाहिये ॥ १२२ ॥

साखीः—षट द्रव्य यह मानिके। जैनी चित्त हुलास ॥
कहहिं कबीर उपदेश केहि। पूरब केहि भये भास ॥१२३॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—और हे सन्तो! षट् द्रव्य = जीव, पुदगल (शरीर वा परमाणु), धर्म, अधर्म, काल, और आकाश, यह या इसीको सत्य मान करके जैन मतवादी जैनियोंके चित्तमें हुलास = बड़ी भारी आनन्द होती भई। हमने ही खास सत्य पदार्थको जाना है, ऐसा समझके अत्यन्त प्रसन्न, मनमें मगन होते भये। परन्तु पारखी सन्त सद्गुरु चेतावनी कहकर उनसे पूछते हैं कि—हे जैनियो! जब तुम लोग उक्त षट् द्रव्यको ही नित्य-सत्य करके मानते हो, तो फिर किसको, किस लिये उपदेश देते हो? तुम्हारे मतमें तो पाँच तत्त्व आदि अनन्त परमाणु सब जीव-ही-जीव माना है। वास्तवमें जड़ वस्तुका अभाव ही माना है, तब बन्धन काहेका भया? मुक्ति भी क्या होगी? उपदेश किसे होता है? उसका फल क्या निकला? और पूरब = सबसे प्रथम उन छः द्रव्यका भास, साक्षात्कार, बोध, किसको भया? षट् द्रव्य द्रष्टा है कि, दृश्य है? अपने आपको निजरूपका भास तो होता नहीं। इसलिये उक्त षट् द्रव्यको भास करके जाननेवाला सातवाँ सत्य द्रव्य होना चाहिये। बताओ! वह द्रव्य कौन है? यदि नहीं जानते हो, तो पारखी साधु-

गुरुकी सत्सङ्गमें रहके कुछ दिन गुरुमुखसे सत्य निर्णयका विचार करो, तब यथार्थ बात जानोगे ॥ १२३ ॥

साखीः—जैनी साधन बहु किया । मुक्ति न आई हाथ ॥
जेहि दुःखते चाहैं मुक्तिको । सो दुःख उनके साथ ॥१२४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! ऋषभदेवसे महावीर पर्यन्त जैनियोंके चौबीस तीर्थङ्करोंने और उनके मतवादियोंने मुक्ति प्राप्ति करनेके लिये बड़ी आशा लगाके जप, तप, व्रत, उपवास, ध्यान आदि कष्टकर साधनाएँ तो बहुत-बहुत किये । साधना करके जीते ही बड़े-बड़े दुःख, सन्ताप, क्लेश, तो खूब भोगे; परन्तु यथार्थ मुक्ति स्थिति उनके हाथमें नहीं आई । जीते-जी मुक्तिकी रहनी—रहस्यकी घेरामें वे नहीं आये । भवबन्धनके घेरा मन मानन्दीमें ही वे पड़े रहे । और जिस संसारके दुःख त्रिविधिताप, जन्म, मरण, गर्भवास आदिसेरहित हो, देह बन्धनोंसे छूटकर मुक्ति प्राप्ति करना चाहते हैं, यानी जिस शरीरके दुःखसे परे हो, मुक्तिको पाना चाहते हैं, सो दुःखरूप शरीर तो उनके पुद्गल द्रव्य होके अनादिकालसे नित्य साथ ही लग रहा है, और सदा साथ ही बना रहेगा । क्योंकि, पुद्गलको अनादि द्रव्य नित्य माने हैं और जीवन्मुक्ति भी नहीं मानते हैं, मृत्यु होके शरीर छूटनेपर ही मुक्ति माने हैं । परन्तु पुद्गल = देहको अनादि भी कहे हैं । अतः जिस दुःखसेरहित हो मुक्ति चाहते हैं, सो देह तो उनके अनादिका साथी बना है, कभी नहीं छूटेगा, अतः बन्धन भी नहीं मिटेगा, ऐसे महा भ्रममें पड़े हैं ॥ १२४ ॥

साखीः— जैनी साधन मोक्ष हित । करें कष्ट बहु भाँति ॥
जेहि सुख नित साधन करें । होय सो आतमघाति ॥१२५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो ! जैन-मताव-लम्बियोंने मोक्ष प्राप्तिकी आशासे उसके लिये नाना प्रकारकी साधनाएँ

किये, और भाँति-भाँतिसे बहुत तरहसे कष्ट भी किये-कराये। तहाँ चालीस-चालीस रोजतक निराहार रहीके, बहुत ही कष्ट-क्लेश सहके व्रत, उपवास करने लगे। अगर अन्न-जल, खाये-पीये बिना चालीस दिनतक उपवास करके शरीर छोड़ै, तो वह साधक मरके सीधे मुक्तिस्थानमें ऊपर चला जाता है; ऐसे कल्पना किये हैं। उसी मानन्दीको दृढ़कर कष्ट करके नाना दुःख सहते हैं। परन्तु बिना विचारका परिश्रम वह सब व्यर्थ हो जाता है। जिस मुक्ति, सुख या आत्म सुखको, प्राप्त करनेके लिये जैनी लोग नित्य अनेक तरहके पीड़ा सहन करके, बहुविधि साधनाएँ करते-कराते रहते हैं। सो अन्तमें चालीस दिनका उपवास करके उसी बीचमें मर जानेसे खास करके, आत्मघाति = अपने आपको मारनेवाले, आत्म-हत्यारे, महापापी हो जाते हैं, फिर ऐसे घातकीको सुख, मुक्ति कहाँसे हो सकती है? कभी नहीं होगी। जीतेतक भी बहुत दुःख भोगते हैं, कष्टपाके मृत्युका दुःख पाते हैं, और जड़ाध्यासी होनेसे चौरासी योनियोंमें जाके दुस्सह दुःख पाते रहते हैं। जिज्ञासुओंने ऐसी धोखामें कभी पड़ना नहीं चाहिये ॥ १२५ ॥

साखीः— जैनी जैन कमाइया। कर्ता ईश बिसारि ॥
जो चाहे सो कृतमको। करि-करि कर्म फुसारि ॥१२६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और उन जैनियोंने, जैन = वाणी कल्पनासे भ्रममें पड़कर जैनधर्मको सत्य मान करके कल्पना, अनुमान, अध्यासादिसे कर्मकी कमाई तो खूब किये। बड़ी-बड़ी लम्बी-चौड़ी गप्प हाँके हैं। बहुत भ्रम जड़ाध्यासको ही जमा किये हैं। कर्ता ईशको बिसार दिये हैं, तहाँ जगत्कर्ता ईश्वर भ्रम कल्पनामात्र होनेसे उसे न मानना तो ठीक है। परन्तु ईश्वरादि सबके स्थापन-कर्ता, वेद, पुराण, कुरान, तथा जैन ग्रन्थोंके कर्ता— रचयिता, नरजीव मनुष्य ही श्रेष्ठ हैं। इस हंस जीवके स्वरूपको भी उन्होंने भुला दिये हैं। कर्तव्यका कर्ता, वाणी-खानीके स्थापनकर्ता तो मनुष्य

ही हैं, उसके पारखस्वरूपको तो बिलकुल ही विसार दिये हैं, और नाना प्रकारसे कर्म साधनाएँ कर-करके, फुसारि = कर्म करनेका ही उपदेश दे-दे करके "फुस्समफास रहा जहँडाई"— फजूलके भ्रम चक्रमें पड़े हैं। वे लोग जो मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं, चन्द्रमुक्त शिलामें जाना चाहते हैं, सो भी कृतम = कल्पित वाणी कृत धोखा ही है। अर्थात् मुक्ति चाहनेवालेको, जैन लोग कृतम वाणी कल्पनासे उपवासादि नाना कर्म कर-करके देह त्यागनेका उपदेश देते हैं। सब प्रकारसे, कर्म भ्रममें फँसाके बाँधे हैं और बाँध रहे हैं। ऐसा पहिचानके, उनके भ्रम-बन्धनमें पड़ना नहीं चाहिये ॥ १२६ ॥

साखीः—कबीर जैनी लोभिया। ठगके हाथ बिकाय ॥
मुक्ति अकाशके ऊपरे। सुनि-सुनिके ललचाय ॥१२७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! जैनी लोग अविचारी, लोभी, लालची भये। इसलिये, ठग = धूर्त, पाखण्डी, धोखेबाज, गुरुवा लोगोंके हाथोंमें बिकाय गये। भ्रमिकोंके अधीन, परवश हो गये। ठग लोगोंने उन्हें आकाशके सबसे ऊपर मुक्ति स्थान चन्द्रमुक्त शिला होना बतलाये, तो उनके रोचक वाणी सुन-सुन करके सब जैनी लोग ललचाय गये, कि— हम वहाँ कब पहुँच पायेंगे; इसीसे धोखामें पड़के, नाना साधनाएँ करके जन्म बिताने लगे। उनके मुक्ति लोकके बारेमें रत्नसार और प्रकरण रत्नाकरके भाग चारमें कहा हैः— "महावीरजी गौतमसे कहते हैं— हे गौतम! उर्ध्वलोकमें स्वर्गपुरीके ऊपरके शिखरपर या सर्वार्थ सिद्धि विमानकी ध्वजाके ऊपर १२ योजनोंपर एक सिद्ध शिला है। वह ४५ लाख योजन लम्बी तथा उतनी ही ऊँची और आठ योजन मोटी है। वह मोतीके हारवत् उजली या स्फटिक मणिसे भी निर्मल, सोनेके तुल्य प्रकाशमान और चौतरफ मक्खीके पङ्खवत् पतली है। उस शिलाके ऊपर एक योजन अन्तरमें स्वर्ग

लोकोंका अन्त है । वहाँ केवल ज्ञान, सर्वज्ञता और पवित्रता प्राप्त हुए सिद्ध तीर्थङ्करादिकोंकी स्थिति है । वहाँ अलोक आकाश एक ही द्रव्य है" इत्यादि यही कल्पित बात सुन-सुनके लालचमें पड़े । परन्तु विचार करिये, तो सिर्फ वह मिथ्या गप्प ही हाँके हैं । क्योंकि, एक तो मुक्तिका कहीं स्थान विशेष नहीं होता है । कहा हैः— श्लोकः—

मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्रामान्तर मेव वा । अज्ञानहृदयग्रन्थी नाशो मोक्ष इति स्मृतः ॥

कतहुँ मुक्तिको धाम नहीं, जहाँ बसत कोइ ग्राम । भवबन्धनसे छूटिबो, मुक्ति तिसीको नाम ॥

फिर देह छूटे बाद मुक्ति जैनियोंने माना है । देह रहते ही देखे बिना वहाँके वर्णन महावीरने कैसे किये ? मुक्त पुरुष लौटके तो नहीं आता है, जीवितमें उनके मतमें मुक्ति नहीं होती है । तब सबसे ऊपर आकाशमें चन्द्रमुक्त शिलाको उन्होंने कैसे जाना ? और चारकोशका एक योजन होता है, वहाँ ४५ लाख योजन लम्बी-चौड़ी, ऊँची, ८ योजन मोटी, सफेद शिलाको कैसे देखे ? वा कैसे मापे ? फिर वहाँ अलोक आकाश मात्र एक द्रव्य है, ऐसा कहते हैं, किन्तु, शिलारूप इतना बड़ा भारी पत्थर, चार तत्त्वको छोड़के क्या वह आकाशके ही बन गई ? कितनी बड़ी भारी भूल है । अरे ! यह सब कोरी कल्पना मात्र है । यदि देह रहते ही नेत्रसे देखे हों, तो फिर इतना बड़ा शिला सबको दिखाई देना चाहिये, और देहके बिना तो कोई कुछ भी देख-सुन ही नहीं सकते हैं, फिर जैनी ही क्या देख पायेंगे ? अतः जैनी लोग मिथ्या धोखामें ही पड़े हैं ।

सद्गुरुने कहे भी हैंः—

"ताकर हाल होय अदबूदा । छौ दर्शनमें जैनि बिगुर्चा ॥" बीजक, रमैनी ३० ॥

इसलिये लोभके मारे जैनी लोग ठगके हाथमें बिक गये । ठगने आकाशके ऊपरमें मुक्ति बताके उनके तन, मन, धनादि ठग लिया । झूठी महिमा सुन-सुनके लालची लोग भवबन्धनमें ही जकड़ पड़े, बिना पारख ॥ १२७ ॥

साखीः—कबीर तीर्थङ्कर जैनिके। चौबीसों भये मोख॥
मुक्ति कहैं पुद्गल छूटे। ग्रन्थ कियो किमिचोख॥१२८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे नरजीवो! जैनी लोग कहते हैं कि— उनके तीर्थङ्कर = तीर्थ-स्वरूप आचार्य, धर्मगुरु, प्रथम ऋषभदेव, अजितनाथसे लेकरके महावीर स्वामी पर्यन्त सब २४ हुये; पच्चीसवाँ फिर कोई भया नहीं, और वे चौबीसों मोख = मोक्ष हो गये, ऐसे माने हैं; और उनके मतमें जीवित शरीर रहते ही कोई मुक्त हो नहीं सकता है; पुद्गलरूप शरीर छूटनेके पश्चात् ही सबकी मुक्ति होती है, ऐसे कहे हैं। महावीर आदिने पुद्गल (देह) छूटनेपर ही मुक्ति होगी, ऐसा कहकर बता गये और ग्रन्थोंमें भी वही बात लिख गये हैं। अब विचार करिये! उनका बनाया हुआ ग्रन्थ कैसे, चोख = शुद्ध या सच्चा हुआ? किन्तु, झूठा ही भया। लिख-लिखके काहेको ग्रन्थ बनाये। तुम्हारे समझसे तो शरीर छूटनेपर सहज ही सबकी मुक्ति हो ही जायगी, फिर ग्रन्थका क्या प्रयोजन? और देह रहते बन्धनमें लिखा हुआ ग्रन्थ सब अप्रमाणिक झूठा ही होगा। देह छोड़के मुक्ति स्थान देखकर आया हो, फिर हाल बताया हो, ऐसी बात तो हो ही नहीं सकती है। इसलिये उनके ग्रन्थ सब सरासर झूठा लेख है। क्या जैनियोंके यहाँ आज पर्यन्त २४ ही तीर्थङ्कर मुक्त हुए? और कोई मुक्त भया ही नहीं, तो भविष्यत्में भी कोई मुक्त नहीं होगा। फिर साधनोंके दुःख सहना बेकार ही हुआ। जीते ही सकल अध्यास मिटायके निर्बन्ध, जीवन्मुक्त पारखस्वरूपमें स्थिर हुए बिना कोई भी मनुष्य मुक्त नहीं भये, और न हो सकते हैं। यदि शरीर छूटनेपर ही मुक्ति है, तो पशु, पक्षी, आदि सब प्राणियोंकी भी मुक्ति होती ही होगी। फिर बन्धन रहा ही नहीं। तो उनके साधना सब वाहियात हुआ कि नहीं?। अतः ऐसे भ्रम धोखामें कभी नहीं पड़ना चाहिये। परखकर सत्यासत्यको जानना चाहिये॥ १२८॥

साखीः— भई मुक्ति जेहि जैनिकी। चौबीसों आदिक और ॥
पुद्गल उनकी छुट गई। वचन कहैं केहि ठौर? ॥१२९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! ऋषभदेव आदिसे महावीर तक जैनियोंके प्राचीन गुरु जिन चौबीसों तीर्थङ्करोंके मुक्ति देह छूटनेपर ही और मतवादियोंसे विलक्षण प्रकारसे भई, ऐसा कहा है। अब हे जैनियो! यह खुलाशा करके बताओ कि, उन्हीं २४ जैनाचार्योंकी मुक्ति भयी है कि— औरोंकी भी मुक्ति भयी? अच्छा! तुम्हारे कथनसे महावीर इत्यादिक और भी कई लोगोंकी मुक्ति भयी, किन्तु देह छूटनेपर ही तो हुई न? जीवन्मुक्ति तो तुम लोग मानते ही नहीं हो। और देह रहे तक चन्द्रमुक्त शिलाका साक्षात्कार तो किसीको हुआ ही नहीं। और जिनकी मुक्ति भयी, उन्होंकी पुद्गल = शरीर तो छूट ही गयी। फिर वे लोग किस ठौर = ठिकान, स्थान, या भूमिकामें रहके "शिष्यो! अब हम मुक्त हो गये, मुक्ति शिलामें पहुँच गये" और तुम्हारी भी शरीर छूटेगी, तो यहाँ आ सकोगे, इत्यादि वचन कैसे, किस जगहसे कहे, क्या तुमने उनके वचनको उनके मुक्त होनेपर सुना? अरे भाई! शरीरके बिना भी कहीं कहा, सुना, जाना जा सकता है? कभी नहीं। यानी उनकी शरीर छूट गई, तो वे मुक्त हो गये। मुक्तिका अनुभव फिर किस ठौरमें बैठके वचन द्वारा कैसे कहेंगे? तुम लोग कैसे सुनोगे? अतः यह सब भ्रम, कल्पना है। सद्गुरुने कहे हैं—

शब्दः— "जियत न तरेहु मुये का तरिहो? जियतहिं जो न तरै ॥ ६ ॥
गहि परतीत कीन्ह जिन्ह जासों। सोई तहाँ अमरे ॥" बी० श० १४॥

साखीः— "बिन देखे वह देशके, बात कहै सो कूर ॥
आपुहि खारी खात है, बेंचत फिरे कपूर ॥" बी० सा० ३४ ॥
"मुये मुक्ति गुरु कहैं स्वारथी। झूठा दै विश्वासा ॥" भ० ॥

अतएव इनकी मुक्ति भ्रम, कल्पनामात्र है। पारखी सद्गुरुकी सत्सङ्ग द्वारा यथार्थ बातको पहिचानना चाहिये ॥ १२९ ॥

साखीः— ऋषभदेव जेहि बन रहै । तेहि बन लागी आगि ॥
बनहिमें वह जरि मुये । दोष अठारह त्यागि ॥१३०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो ! ऋषभदेवके मृत्युके बारेमें भागवतमें विस्तारसे वर्णन भया है । नाभि राजाके जेष्ठ पुत्र ऋषभदेव भये । बहुत वर्षौंतक राज्य करनेके पश्चात् उन्हें तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुआ, तो सब राज्य पुत्रोंको सौंपकर वे वनको चले गये, परमहंस वृत्तिसे रहने लगे । नङ्ग-धड़ङ्ग, पागलवत् चलते रहे । फिर अघोरी वृत्ति भी धारण कर लिये, पशुवत् वर्तने लगे । और एक समय जिस महावनमें ऋषभदेव स्वच्छन्द हो घूमते रहते रहे, उस घनघोर वनमें दावानल अग्नि लग गई, प्रचण्ड ज्वाला फैलती हुई आई, परन्तु वे उन्मत्त बेभान बने रहे । भागनेका कुछ भी प्रयत्न उन्होंने नहीं किया । अग्नि चारों तरफसे घिर आई, उस वनमें ही ऋषभदेव दावाग्निमें जलके मर गये, उनके देह भी भस्म हो गई । वे भय आदि अठारह दोषोंके त्यागी भये, ऐसा उनके अनुयायी जैनि लोग मानते हैं ॥

अथवा सिद्धान्तमें जैन मतके संस्थापक धर्मोपदेशक प्रथम गुरु-आचार्य ऋषभदेव भये । वे वनरूपी भ्रमिक बनके जिस वाणी कल्पनाकी मानन्दीमें टिके रहे, उसी वनमें या वाणीकी मानन्दीसे नाना साधनाओंके समझ-बूझमें भ्रम, कल्पना, धोखारूपी महा अग्नि लग गई । और वह = ऋषभदेव, बनहिमें = वाणी, कल्पना भ्रमके तीव्र ज्वालामें ही पड़के घिर-घिराके, जरि मुये = विवेक, बोध, विचार आदि हंस गुणोंको त्यागकर पशुवृत्ति बनायके शुभ संस्कारको जराय-बरायके जड़ाध्यासी बद्ध हो गये, बिना पारख आवागमन चक्रमें पड़े । परन्तु उनके मृत्यु होनेपर उनके शिष्योंने उनकी बड़ी महिमा बढ़ाये, अठारह दोष त्यागकर मुक्त हो गये, ऐसा प्रसिद्ध किये । अठारह दोषोंके नामः—१ मिथ्यात्व । २ अज्ञान । ३ मद ।

४ क्रोध। ५ माया। ६ लोभ। ७ रति (राग)। ८ अरति (खेद)। ९ निद्रा। १० शोक। ११ अलीक (झूठ बोलना)। १२ चोरी। १३ मत्सर (प्रभुत्त्व बढ़ानेके लिये अन्यका द्वेष करना)। १४ भय। १५ प्राणि-वध। १६ प्रेमरहित। १७ क्रीड़ा (खेल, कूद, नाच, गाना, बजाना, आदि) और १८ खिलखिलायके हँसना, ये अठारह दोषोंको ऋषभ देवादि चौबीसों तीर्थङ्करोंने परित्याग करके जीत लिये थे, इससे वे सब मुक्त हो गये; ऐसा जैन लोग कहते हैं। परन्तु स्वरूपज्ञान, पारखबोध हुए बिना उन्होंने जड़ाध्यास, मिथ्या मानन्दीको नहीं त्यागे थे, इससे भवबन्धनोंमें ही जकड़ पड़े। वैसे ही उनके अनुयायी सब भी बद्ध भये और हो रहे हैं। अतः मिथ्या पक्षको त्यागकर सत्यबोधको ग्रहण कर लेना चाहिये ॥१३०॥

साखीः—जीभ कमान वचन शर। पनिच श्रवण लगि तान ॥
ऋषभदेवसे धनुष्य धर। मारे हैं षट बान ॥१३१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो ! पहिले शिकारी लोग धनुष-बाण लेके, वनमें जाकर, धनुषमें डोरी चढ़ाके, उसे कान-तक तानकर जानवरोंका लक्ष-निशाना लगाके बाण छोड़के उन्हें मारकर शिकार करते रहे। वैसे ही सिद्धान्तमें, जिभ्या सोई कमान = तिरछी मुड़ी हुई—धनुष बनाये, उसमें वचनरूपी शर = नाना वाणी सोई बाण चढ़ाये। पनिच = डोरी जो धनुषमें लगाई जाती है, सो मुखसे शब्द उच्चारण करके शिष्योंके कानतक, तान = ताना खैंचके सुनाके उनके लक्ष अपने तरफ ताने या जोड़ने लगाये। शब्दरूपी डोरी कानतक खींचके गया। और ऋषभदेव आदिसे लेकर चौबीस तीर्थङ्कर वे ही ऐसे विचित्र धनुष-बाणको धारण करनेवाले धनुष-धारी, वीर लड़ाका वा शिकारी हुए। उन्होंने जानवररूप अज्ञानी मनुष्योंके छाती, कान, ताक-ताक करके तेज नुकीली षट् बाण मार दिये हैं, जो ऐसी धसी है कि— अभीतक वह निकल नहीं सकी। अर्थात् जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश, इन्हीं छः को अनादि

षट् द्रव्य बतायके दृढ़ा दिये हैं। उसी कल्पनाकी मारमें पड़के जैनी लोग भ्रमिक, बुद्धिहीन भये हैं। बिना पारख व्यर्थ ही नर-जन्मको धोखेमें गमाये। वे ही वाणी एक-दूसरेको दृढ़ाके मारामारी कर रहे हैं। कठिन बन्धनोंमें फँसते जा रहे हैं, बिना विवेक ॥१३१॥

साखीः—यहि छौ बाणके लागते । जैनी भये अचेत ॥
लागी मूर्छा कर्मकी । दुःख भोगै सुख हेत ॥ १३२ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—और यही छौ बाण=जीव, पुद्गलादि षट् द्रव्यको सत्य बतानेवाली कल्पित वाणीको कानसे सुनके चित्त लगायके हृदयमें जाके लगते ही सब कोई जैनी लोग उसे सत्य मान-मानके, अचेत=गाफिल, बेहोश, बुद्धिहीन भ्रमिक, जड़ासक्त हो गये। अब उन्हें कर्मकी बड़ी जबरदस्त मूर्च्छा लग गई, नाना कर्म साधनोंमें प्रवृत्त हो गये। मुक्ति सुखमें, हेत=प्रेम लगाके जन्म भर साधना करनेमें कठिन-कठिन दुःख-ही-दुःख भोगते रहते हैं। और कितनेक जैनी लोग तो चालीस-चालीस दिनतक निराहार निर्जल व्रत रहके दुःख भोगते हैं। दाढ़ी, मूँछ, शिरके बाल नोचते, नुचवाते हैं, उसमें अति कष्ट सहते हैं, कोई नङ्गे रहके शीत, उष्णके ताप सहते हैं, इत्यादि कई प्रकारके दुःख ही जान-बूझके भोगे और भोग रहे हैं। सुख, सिद्धि, कल्याण, मुक्ति आदिमें मन लगायके उसके लिये जीवन भर दुःख भोगते हैं, फिर मरकर अध्यास वश चौरासी योनियोंमें जाके भी दुःख ही भोगते रहते हैं। बिना पारख उन्हें कभी सुख स्थिति नहीं मिलती है ॥ १३२ ॥

साखीः—काली कुत्ती ऋषभकी । साधन जुत्ती खाय ॥
चोर अठारह दोष पर । षट मुख भूकै धाय ॥ १३३ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! ऋषभदेवकी काली कुत्ती साधनोंके जुत्ती, जूठी खाय-खायके अठारह दोषरूपी चोरोंपर दौड़-दौड़के छः-छः मुखोंसे भूकती है ॥ अर्थात् काली स्याहीसे सफेद

कागजमें लिखी हुई, कुत्ती = कूती हुई या आँकी हुई, अन्दाज की हुई कल्पित वाणी ऋषभदेव आदिकी बनाई हुई, पालतू कुतियावत् भई। सो जैनियोंके घर, मठ-मन्दिरोंमें रहके वहाँ आनेवाले साधकोंकी जूती चुरा-चुराके एक कोनेमें बैठके खाती जाती है। यानी उपवास आदि साधनोंमें जुट करके कष्ट खाते हैं, दुःख सहते जाते हैं। और हिंसा, असत्य भाषण, चोरी, आदि तन, मनके १८ दोषरूपी चोरोंपर खबरदारी करके शिष्यमण्डलीमें जहाँ-तहाँ जैन लोग धाय-धायके कूकुरवत् चिल्लाय-चिल्लायके भूँकते हैं, या उपदेश प्रचार करते-फिरते हैं। और षट् द्रव्यको मुख्य सर्वश्रेष्ठ अनादि बतायके दृढ़ाते हैं। आखिरमें उन्हीं चोरोंके द्वारा मारे जाते हैं। जड़ाध्यासी होके आवागमनके दुःख भोगते रहते हैं ॥ १३३ ॥

साखीः—काली बिल्ली ऋषभकी । षट पकवान बनाय ॥
आई यति होय जैन घर । भोजन कछू न खाय ॥ १३४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और ऋषभदेव आदिकी बनाई हुई, काली बिल्ली = काली स्याहीसे लिखी हुई कपोल कल्पित वाणी बिल्लीवत् म्याऊँ-म्याऊँ करती है। भ्रम कल्पनाको दृढ़ाती है। और उस वाणीने, षट् पकवान = षट्रस निर्मित व्यञ्जन मिठाईके समान, षट्-द्रव्य = जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, और आकाश, इन छः को अनादि सत्यवस्तु कहकर बड़ी मीठी वाणीमें सुन्दर रोचकता बनाय-बनायके कहे, सुनाये, तैयार किये। वही वाणीके मानन्दी यति = साधु, त्यागीहोयके जैनियोंके घरमें आई, अर्थात् जैनी गुरुवा लोगोंके उपदेश सुन-सुनके कई लोग जैनमतमें प्रविष्ट होके यति भये, खूब कष्टकर साधनाएँ करने लगे। फिर कभी उपदेश प्रचार करनेके लिये जैनी सेवकोंके घरोंमें आये। तो उनसे सेवकोंने कहा— महाराज! भोजन कीजिये! यति कहते हैं— आज हमारा व्रत है, अमुक उपवास है, फलाना प्रायश्चित्त है, ऐसा योग नक्षत्र है, वैसा अनुष्ठान है, हमने इतने दिनतक—३। ७। १५। २५। ४० दिनों तकका उपवास-निराहार

रहनेका सङ्कल्प किया है, इसीसे हम कुछ तबतक खायेंगे-पियेंगे नहीं, केवल तुम्हें उपदेश देके जायेंगे, ऐसा कहके भोजन कुछ खाते ही नहीं। मिथ्या भ्रम चक्रमें पड़के नाना कष्ट, क्लेश सहते हैं, जड़ाध्यास न छूटनेसे मुक्ति तो उनकी कुछ होती नहीं है। उल्टे महाबन्धनोंमें बँध जाते हैं। अतः सद्गुणरूप भोजनको वे कुछ ग्रहण नहीं करते हैं, बिना पारख ॥ १३४ ॥

साखीः— कबीर जैनीके हिये। बिल्लीकी इतबार ॥
साधन व्यञ्जन मोक्ष हित। सौंपेउ तेहि भण्डार ॥१३५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! जैन मतावलम्बी जैनियोंके हृदय या अन्तःकरणमें, बिल्ली = चौबीस तीर्थङ्करोंकी बिल-बिलाई हुई या चिल्लाई हुई कल्पित वाणीका ही बड़ा इतबार = विश्वास या निश्चय प्रतीति हो रही है। जो २४ गुरुओंने कहे, सो अक्षरशः सत्य है, ऐसा समझ रहे हैं। और मुये मुक्ति मान करके उसी मोक्ष प्राप्तिके लिये खूब प्रेम बढ़ाकर, व्यञ्जन = छत्तीस अक्षर वा सोलह स्वर संयुक्त ५२ अक्षरोंसे बनी हुई नाना वाणीके प्रमाणसे, उपवास, ध्यान, धारणा, समाधि आदि नाना कठिन-कठिन साधना, तपस्या करने लगे। ज्ञानखानी सद्गुणका भण्डार यह मनुष्य जन्म है। परन्तु अन्धविश्वाससे कुछ भी विवेक, विचार किये विना ही उसी वाणी कल्पनामें लगके अपने अमूल्य मनुष्य-जीवनको गुरुवा लोगोंको सौंप दिये। धोखेका साधनाएँ करके जन्म बिताने लगे। मोक्षके लिये साधनोंका व्यञ्जन बनाये, उसी कल्पनाके भण्डार भण्डारी वाणीको सुपुर्द कर दिये। फिर जैसे गुरुवा लोगोंने बताये, वैसे ही साधना करके, आयु बिताके मरे, जड़ाध्यास वश चौरासी योनियोंमें पड़े, बिना विवेक ॥ १३५ ॥

साखीः— काली कुत्ती ऋषभकी। अनादि दन्त खट चोख ॥
साधन बन ही खेदिके। मारैं सावज मोख ॥१३६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! जैनियोंके पूर्वाचार्य

गुरुवा लोग ऋषभदेव आदिकी, काली कुत्ती = कल्पित वाणी स्याहीसे लिखी हुई ग्रन्थरूपमें रक्षण-प्रतिपालन कर रखे हैं। उसके मुखमें मुख्य अनादि कालसे, दन्त खट = षट् द्रव्य स्वयं नित्य सत्य है, ऐसी कल्पनाके दाँत, चोख = तीक्ष्ण नुकीली भालावत् चुभनेवाली लगी हैं। यानी षट् द्रव्यको सत्य बताना, वही उनके प्रधान सिद्धान्त है। और सावज = वनके पशुवत् संसारी अबोध नरजीवोंको, मोख = मरे उपरान्त मोक्ष प्राप्तिके आशा-भरोसा दे करके, वही काली कुत्ती-वाणी उनके पीछे लग पड़ी, और नाना प्रकारके कठिन-कठिन साधना-रूपी महावन या भारी जङ्गलमें ही खेदिके = खदेड़-खदेड़ करके या दौड़ा-दौड़ा करके बहुत-बहुत कष्ट, क्लेश भोगाके, थकाकर, अन्तमें दाव-घात पाके, जड़ाध्यासी बनाके, सब साधकोंको मार डाले हैं। और वैसे ही अभी भी नष्ट-भ्रष्ट कर-कराके मार रहे हैं। उस शिकारी कुत्तीवत् वाणी कल्पनासे कोई भी जैनी लोग बच नहीं सके, बिना पारख धोखामें पड़े हैं ॥ १३६ ॥

साखीः—कबीर बानी ऋषभकी । रानी भई सरदार ॥
जैनीके शिर मारिया । साधन दुःख पैजार ॥१३७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! ऋषभदेव आदि २४ तीर्थङ्करोंकी कल्पित वाणी जैनियोंके यहाँ जाके महारानी साहिबा भई और वही, सरदार = सर्वश्रेष्ठ, प्रधान सबपर हुकूमत चलानेवाली, सर्वमान्य, अगुवा भी होती भई। उसी वाणीरूपी रानीके आज्ञामें सब जैनी लोग चलने लगे। परन्तु उसने जोशमें आके, पैरसे जूता निकालके, साधक प्रजाओंके शिरमें ठोंकने, मारने लगी, सोई जैनियोंके शिरमें कल्पनाके बोझा चढ़वाके, नाना कष्टकर साधना-रूपी, पैजार = जूता ठोंक-ठोंकके खूब मारती भई। साधना कर-करके महादुःख भोगते भये, बेहाल हुये। परन्तु मुक्तिका कुछ कार्य सिद्ध नहीं हुआ। अतः चौरासी योनियोंके गर्भवासमें पड़के अँधियारी कोठरीके कैदी बने। सब जैनी लोग इसी प्रकार बद्ध-कैदी होते जा

रहे हैं। वह दुष्ट रानी अभी पैजार शिरमें मार-मारके साधनोंमें दुःख ही भोगा रही है। अन्तमें कैदी बनाके चौरासी योनियोंमें ही डाल देती है, तो भी उसको नहीं छोड़ते हैं, यही आश्चर्य है ॥ १३७ ॥

साखीः—कबीर चोरवा जैन घर । मारै साधन सेंधि ॥
सुख धन मूसै तिनहिको । रहा सकल दुःख बेधि ॥१३८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! और उन जैनियोंके घररूपी अन्तःकरणमें, चोरवा = कल्पना, वाणी और गुरुवा लोग कट्टर चोर बनके, सेंधि = सेंध लगाके कानके पासका दिवाल फोड़-फोड़कर उसी कानके छिद्रसे भीतर हृदयमें घुस पड़े और अचेत सोये हुए जैनियोंको पहिले तो साधनोंके मारसे खूब मारे, शिथिल किये। फिर कसकर वाणीकी रस्सीसे धोखेकी खम्बेपर कसकर बाँध दिये, फिर उन्हीं जैनी बनियाँ लोगोंके, सुख धन = जीवन्मुक्ति सुख देनेवाली धनरूप विवेक-विचार, पारखदृष्टि, सत्य, धैर्यादि, सद्गुण लक्षणादि सब रत्न धन सम्पत्ति उन चोररूपी वाणी-गुरुवा लोगोंने मूसै = सर्वस्व चुरा लिये, लूट लिये, हरण कर लिये और भागते समयमें कल्पना भ्रमकी छूरी उनके शरीरमें भोंक गये या घुसेड़ गये। इसीसे अब सकल जैनियोंकी तन, मनमें हाहाकार करके दुःख-ही-दुःख बेध रहा है, छेद रहा है। उसीमें तड़फ-तड़फके व्याकुल हो रहे हैं। त्राहि-त्राहि मचा रहे हैं। अब क्या करें विचारे निर्धन, निर्बुद्धि और जखमी, दुःखी होके मरे जा रहे हैं। बिना पारख ॥ १३८ ॥

साखीः— ऋषभ आदि जेते जैन । अव्याकृत गुण भूल ॥
जिन षट द्रव्य बुझाइया । हैं सो कारण मूल ॥१३९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे मनुष्यो ! जैनियोंके आदि गुरु सर्वप्रथम ऋषभदेव भये, फिर उनके शिष्य परम्परासे महावीर तक २४ तीर्थङ्कर भये। सो ऋषभदेव आदिसे लेकरके जितने भी जैन-

मतावलम्बी उपदेशक गुरुवा लोग भये हैं, वे सबके-सब, अव्याकृत = मायारूप वाणी कल्पना कृत उसके गुण मिथ्या सिद्धान्तरूपी नाना विषय, प्रपञ्च, धोखामें निजस्वरूपको एकदम भूल गये और भूले पड़े हैं। जिन्होंने षट्द्रव्य = जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, और आकाश इन्हें अनादि षट्द्रव्य कहके सत्य बतलायके, समझाये-बुझाये हैं, उपदेश दिये हैं। सो उसका मूल कारण मन कल्पनाकृत वही वाणी ही है। जिन्हें वे सत्य मानते हैं, वही भ्रम, भूल, अविद्या, महाअज्ञान है। बिना पारख धोखामें भूलके, उसी खाँचमें गिर पड़े। अर्थात् सब जैनी लोग वाणीके मिथ्या विषयमें भूले हैं, जिन्होंने षट्द्रव्यको ही सत्य समझायके दृढ़ाये हैं, सो उसका मूल कारण अज्ञानता ही है। और सोई भूल जीवको चौरासी योनियोंके जन्म-मरणादिमें लेजानेका बीज मूल कारण है। अतः परखकर उसे त्यागना चाहिये। पक्षपातको छोड़कर सत्यसारको ग्रहण करना चाहिये ॥ १३९ ॥

साखीः— कबीर जोपै मुक्ति होय । क्षुधा पिपासा छोड़ि ॥
तो पुनि काहे अहार दै । जैनिकी मैय्या भोड़ि ॥१४०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो ! जो यदि जैनी लोगोंके कथन और मान्यताके अनुसार ही क्षुधा, पिपासा = भूखे, प्यासे रहके चालीस दिनतक निराहार, निर्जल व्रत, उपवास करके प्राण छोड़ देनेसे या भूखों मर जानेसे ही जीवकी मुक्ति, बन्धनसे छुटकारा होती होवे, तो फिर जैनियोंकी माता, अपने बच्चोंको, आहार, खुराक दे-दे करके, क्यों जिलाती है? पालन-पोषण क्यों करती रही? और इन जैनियोंको अब क्यों आहार-भोजन दिया जाता है? सबके सब निराहार रहके, भूखों मरके, मुक्त क्यों नहीं हो जाते? भोजन खाय-खायके जीकर क्यों बन्धनोंमें पड़ रहे हैं। मुक्तिका सीधा रास्ता जानके भी फिर बन्धनोंमें ही पड़े रहना, क्या यह बड़ी मूर्खता नहीं है? अरे! यह जैनियोंकी माताएँ तो आहार

दे-देकर सन्तानोंको जिलाके बन्धनोंमें डाल देनेवाली बड़ी भोली-भाली महाअज्ञानी मूढ़ ही ठहरीं कि नहीं ? और उनकी वाणी भी अज्ञानकी है। हे भाई ! बिना सोचे-विचारे, ऐसी बेहूदी बात क्यों करते हो, भूखों मरनेसे मुक्ति बतानेवालोंको कुछ जरा सङ्कोच, शरम भी नहीं आयी। मनभाने सो वैसे बक दिये। उनकी समझसे तो अकालमें भूखों मरनेवालोंकी तो सहज हीमें मुक्ति हो जाती होगी ? फिर त्याग, वैराग्य, ज्ञानका क्या काम है ? महागाफिलीमें पड़े हैं। ऐसे अनसमझ लोगोंसे किसीकी भलाई हो नहीं सकती है ॥ १४० ॥

साखीः— जैनिकी मैय्या जैन घर । जैनी धर्म कमाय ॥
साधन गुण जानत रही । काहे दूध पियाय ॥ १४१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! जैनियोंकी माताएँ और वाणी जैनमतवादियोंके घरमें रहके, जैन-धर्मको पालनेवाली हो करके, जैनमतके अनुसार, धर्म-कर्मकी कमाईकर, बटोरके जमा करनेवाली होती हैं। अथवा जैनियोंने जो कुछ धर्मको कमाये हैं, उसे उनकी माताएँ ही सम्हालके रखनेवाली होती हैं। इसलिये साधन, उपवासके बड़े भारी गुणको तो वह अच्छी तरहसे जानती ही रहीं कि—निराहार रहके भूखे-प्यासे मरनेवालोंकी सहज ही मुक्ति होती है। यह उन्हींके मतके सिद्धान्तको वह जानती ही रहीं। फिर अपने-अपने बालकोंको उन्होंने क्यों दूध पिलाया ? खिला, पिला, जिलाके, पालन-पोषणकर, क्यों बन्धनोंमें डाल दीं ? यदि उन्हें जन्मते ही उपवास कराके निराहार रख देतीं, तो वे जल्दी ही मुक्त हो जाते। फिर बड़े होकर उन्हें इतना बड़ा कष्ट सहना न पड़ता। परन्तु उसे बालहत्या समझकर वे वैसा नहीं करतीं, सो तो ठीक है। तो भी वे मूढ़ मतिके लोग भूखों मरके हठसे धर्मके नामसे आत्म-हत्यारूपी महापाप ही करते-कराते हैं। इससे वे बड़े पापी होते हैं, चौरासी योनियोंमें पड़कर, उसीका दुःख-फल भोगते रहते हैं। अतः जान-बूझकर कभी किसी प्रकारसे भी आत्मघात नहीं करना

चाहिये। ऐसे अविचारी महा निर्दयी हिंसकोंका भी सङ्ग, साथ नहीं करना चाहिये ॥ १४१ ॥

साखीः— वेश्या औ जैनी यती । दो पन्थ एकै आहि ॥
मोल खरीदी वेश्या । जति सो मोल बिसाहि ॥१४२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे भाई! बाजारू व्यभिचारिणी स्त्री-वेश्याओंके और जैन धर्मको पालनेवाले, जैनी यति = साधु, भिक्षु, महन्त आदिकोंकी कहनेको तो दो तरहके पन्थ = मार्ग, चाल, रास्ता अलग-अलग हैं, परन्तु उन दोनोंके मुख्य मतलब, सिद्धान्त, एकै = एक सरीखी ही, आहि = है। सो कैसे कि, इधर वेश्या तो मोल खरीदी करनेवाले भाड़ेके पुरुषोंको तन अर्पण करके विषय कराती हैं। और बहुत-सा रुपया देकरके गरीबोंकी लड़कियाँ खरीदकर उन्हें बड़ी बनाके, अपने समान वेश्या बनाके, फिर धन कमाके जमा करती रहती हैं। तैसे ही उधर जैनी लोग भी गरीबके बालकोंको, मोल = कीमत, धन देकर खरीद लाते हैं, फिर जैन धर्ममें दीक्षित करके सो उसे, यति = साधु बनाते हैं। उसके द्वारा उपदेश कराके पुजवाके धन कमाईकर मठ-मन्दिर आदि बनाते हैं, और उसी प्रकार अपने मतका धर्म प्रचार करते रहते हैं। अथवा पेट पालनेके लिये वेश्या विषयकी व्यापार करती हैं, और इधर, मोल = अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये यति लोग सो अपने मण्डलीमें, बिसाही = ज्ञानके व्यापार करते-फिरते हैं। और जैनियोंके एक पन्थमें यति लोगोंने भग भोगनेका कुकर्म भी चलाये हैं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक रमैनी ३० में कहा है:—

"मन्मथ बिन्दु करै असरारा । कल्पै बिन्द खसे नहिं द्वारा ॥
ताकर हाल होय अदबूदा । छौ दर्शनमें जैनि बिगूर्चा ॥" बी० र० ३० ॥

इस प्रकार वेश्यावत् जैनियोंके पन्थमें भी व्यभिचारका प्रचार हो रहा है। उनके यति, महन्त, सेवक सब लोग मिथ्या धोखामें ही गाफिल पड़े हैं, बिना पारख ॥ १४२ ॥

साखीः—मोल खरीदी मुण्डिया । मुये मुक्ति मुकाम ॥
कहहिं कबीर यह जगतमें । जैनिके यती गुलाम ॥ १४३ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं—हे सन्तो ! जैनियोंके पन्थमें रुपया देकर लड़कोंको मोलमें खरीद लेते हैं, फिर उसे मूँड़ मुड़ायके मुण्डितकर चेला बनाय लेते हैं, जिसे यति या साधु, भिक्षु, मुण्डिया, कहते हैं । पीछे वे मुण्डिया लोग लुञ्चित कर्म=नोच-नोचके बाल उखाड़कर महाकष्ट सहते हैं । मोल खरीदके मुण्डिया बनानेसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, ऐसी उल्टी समझ रखते हैं । और मृत्यु होनेपर, मुकाम=चन्द्रमुक्त शिलामें जाके ठहरकर मुक्ति होयगी, ऐसी आशा लगाये रहते हैं, मिथ्या धोखामें ही पड़े हैं, अतएव सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखके ज्ञाता पारखी सन्त कहते हैं—इस जगत्में इन जैनियोंके यति=साधु, भिक्षु लोग तो अविचार मिथ्या मानन्दीसे कल्पनाके, गुलाम=दास, तुच्छ, नीच ही बने हैं । कर्मके गुलामी ही कर रहे हैं । जीतेमें भी उन्हें कुछ सुख नहीं मिलता है, और मरे पर भी चौरासी योनियोंमें पड़के नाना दुःख ही भोगते हैं । मुये मुक्तिकी आशा व्यर्थ ही हो जाती है । बिना पारख, वे कर्मोंके बँधुवे हो रहे हैं ॥ १४३ ॥

साखीः—कबीर तीर्थङ्कर जैनिके । किये अमोक्षी बाच ॥
मुक्ति कहैं पुदगल छुटै । ग्रन्थ किये सब काँच ॥१४४॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—और हे नरजीवो ! जैनियोंके गुरुवा लोग २४ तिर्थङ्कर जो हुए हैं, उन्होंने, अमोक्षी=जहाँ जिसमें मोक्ष या मुक्ति नहीं हैं, ऐसे मुक्तिसेरहित बन्धनके ही बाच=वाणी, उपदेश वर्णन किये और पुस्तकें भी लिख-लिखाके तैयार किये हैं । जब कि वे लोग, पुदगल=शरीर छूटनेपर ही मुक्ति मिलेगी, ऐसा कह गये वा लिख-लिखाके गये, और अभी भी मुये मुक्ति कह रहे हैं, वैसे ही मान रहे हैं, अगर वह बात

ठीक है, तो फिर जितने ग्रन्थ या पुस्तकें उन्होंने तैयार किये हैं, वह सब कच्चा, झूठा, असत्य कथनसे भरा हुआ, बन्धनका ही वाणी जाल ठहरा। क्योंकि, ग्रन्थ लिखने-लिखानेका काम शरीर सहित ही होता है, उनके सिद्धान्तमें देह रहे तक बन्धन है, फिर बन्धनके भीतर रचा हुआ ग्रन्थ सब भी असत्य हुआ। क्योंकि, मुक्ति स्थितिको तो उन्होंने जाने ही नहीं, और यावत् साधनाएँ भी व्यर्थ ही हुयी, बन्धन भीतरके सारे कर्म साधनाएँ भी महाबन्धनमें डालनेवाली ही साबित हुई। इस युक्तिसे तो मरनेपर भी कोई जैनोंको मुक्ति नहीं मिल सकेगी। देहरहित होनेपर उनसे कोई साधना तो हो सकेगी ही नहीं, और बिना देहके उपदेश, तथा ग्रन्थ भी कुछ बन नहीं सकेगा। अतः उनके सब प्रयास व्यर्थ ही हुये। शरीर छूटनेपर मुक्ति कहनेवालेका किया हुआ सब ग्रन्थ, पन्थ ही काँचा (कच्चा) बेकार है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १४४ ॥

साखीः—मोक्ष मुख चुंमन लगे। छौ घुनि घुनि बजाय ॥
मारि तमाचा साधना। पटके जब खिसियाय ॥१४५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! सब जैनी लोग, छौ घुनि-घुनि = षट् द्रव्य अनादि कथनरूप बाजा, घुँघुरू, झाँझ, डमरू, पखावज आदि बजाय-बजायके खुशीके मारे नाचकर नाना कर्म करके मुख्य करके मोक्षका मुख चूँमने, चाटने लगे। अर्थात् मुक्ति प्राप्तिके लिये बड़े प्यारसे—प्रेमपूर्वक जड़मूर्तिका मुख चूमके कर्म धर्म करने लगे। वाणी, कल्पनाका 'बोसा' लेने लगे। उधर कल्पनाने उनके मुखपर एक जोरका, तमाचा = थप्पड़, पञ्जा मारा और अलोयणा-प्रायश्चित्त, उपवास, तपस्या आदि कष्टकर कर्मके साधनाओंमें उन्हें लगाया। साधना करके मरो, तो मुक्ति मिलेगी, ऐसा बताया। जब जैन लोग मूढ़ होके, खिसियाये, तलमलाये, तो शरीर, मनको जहाँ-तहाँ, पटके = पटक करके अपने भ्रम चक्रमें पड़े और दूसरे मनुष्योंको भी भ्रमाय दिये, धोखामें डाल दिये। इसी

प्रकार व्यर्थमें आयुको बिताकर, लाचार होकर, चौरासी योनियोंको ही प्राप्त होने भये, विना पारख ॥ १४५ ॥

साखीः— साधन सब लावा लखै। सिद्धि लखै सो बाज ॥
शब्द विवेकी पारखी। सिद्धनके शिरताज ॥१४६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं— और हे सन्तो! भ्रमिक मनुष्य सब संसारमें साधु भी हो जाते हैं, तो भी अविवेकी होनेसे लावा = बटेर, एक गरीब निर्बल पक्षीकी तरह लक्ष रखनेवाले दीन, हीन, मलीन दिखाई देते हैं। इसीसे साधना करनेवाले, ऐसे साधकोंको सब कोई लावाके समान, निर्बल तुच्छ लखते हैं, और बाज पक्षी जैसा बलवान् हिंसकी क्रूर होता है, वह चिड़ियोंको मार-मारके खाता है। तैसे ही जिस किसीमें बाजीगरी-तमाशावत् सिद्धि करामात, मन्त्र-सामर्थ्य, चटक, मटक, चातुरी, आदि मिथ्या पाखण्ड लखनेमें आता है, सो उसीको संसारी मूढ़ लोग सिद्ध महात्मा समझके, महिमा वढ़ाते हैं। अर्थात् सब लोग साधक अवस्थामें साधनोंमें लगके लावाके नाईं दीन लखाई देते हैं। और जब वे ही सिद्ध बनके सिद्धि आदि करामातके अभिमानी होते हैं, तो सोई बाजवत् क्रूर, कठोर, दम्भी लखनेमें आते हैं। वे सिद्ध-साधक दोनों ही वाणी कल्पनाके चक्रमें बद्ध पड़े हैं। उन्हें शब्दका पारख नहीं है। इसीसे भ्रम चक्रमें पड़े हैं, और काल, सन्धि, झाँईं तत्त्वमस्यादि सकल शब्दोंको निर्णय करके सार-असार, जड़-चैतन्यके विवेक करनेवाले जो सन्त होते हैं, सोई शब्द विवेकी, पारखी कहलाते हैं। ज्ञानी, योगी, भक्त, और सब सिद्ध महात्मा अनुभवी समाजोंमें आप पारखी सन्त ही स्वयं सिद्ध सब सिद्धोंके शिरताज = शिरमौर, शिरके मुकुटवत्, सर्वोपरि, सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ, पूजनीय होते हैं। अर्थात् सबसे बढ़कर पारखी सन्त होते हैं। वे ही सब खानी, वाणीके कसर-खोट पर्खायकर स्व-स्वरूप पारखका बोध

कराय देते हैं। अतः पारखी सद्गुरुके शरण ग्रहण करके पारख पाय, जीवन सफल करना चाहिये ॥ १४६ ॥

साखीः—सेव्य सेव्य सब कोइ कहैं। सेव्य न जानै कोय ॥
सेव्य कहत हैं सेवकहिं। लघुता गुरुता होय ॥१४७॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जैसे अन्य सम्प्रदायमें शिष्टाचारसे अभिवादन करते समय नमस्कार, प्रणाम, दण्डवत्, राम-राम, नारायणहरि, नमोनारायण, सत्यराम, सत्यनाम, वाहे गुरुजी, आदेश—महाराज, चरणस्पर्श, इत्यादि करते हैं, और मुसलमान तथा अंग्रेजोंमें सलामवालेको सलाम, आदावरत, गुड्मार्निङ्, इत्यादि करने कहनेकी चाल, परिपाटी चलाये हैं। तैसे ही जैनमतवादियोंमें भी परस्पर मिलतेमें "सेव्य-सेव्य" कहनेकी चाल चला रखे हैं। अब देखिये ! सब कोई जैनी लोग बारम्बार एक-दूसरेसे मिलनेपर सेव्य-सेव्य तो कहते हैं, परन्तु सेव्य शब्दका अर्थ या खास मतलब को तो वे कोई भी नहीं जानते हैं। अगर जानते होते, तो जो जैन नहीं हैं, उनसे घृणा क्यों करते ? सब दीन-दुःखी प्राणियोंकी सेवा क्यों नहीं करते ? इसीसे वे सेव्यका भाव कोई नहीं जानते हैं। वास्तवमें सेवा करनेवाले सेवकको ही सेव्य कहते हैं, सेवा-से ही मेवा मिलता है। यदि सेवा करनेवाले न हों, तो फिर सेवा लेनेवाले कैसे सेव्य हो सकते हैं। सेव्य-सेवक भावको ही गुरु-शिष्य भाव कहा है। तहाँ सेव्य=पूज्य, सेवा करने योग्य श्रेष्ठ होते हैं। और सेवक सेवा करनेवाले शिष्य होते हैं। सेवक ही स्वामीके प्रति सेव्य कहते हैं। इसीसे लघुता शिष्यत्त्व करके ही गुरुता-गुरुत्त्वकी सिद्धि वा स्थापित होती है। यानी लघुता करके ही गुरुताकी प्राप्ति होती है। कहा हैः—

साखीः—"सबते लघुता भली। लघुतासे सब होय ॥
जस दुतियाको चन्द्रमा। शीश नावै सब कोय ॥" ॥बीजक, साखी ३२३॥

"लघुतासे प्रभुता मिलै, प्रभुतासे प्रभु दूरि ॥
चींटी ले शक्कर चली, हाथीके शिर धूरि ॥" साखी संग्रह ॥

इसीसे कहा है कि, लघुता, दीनता धारण करके पारखी साधु गुरुके शरण-सत्सङ्गमें लगे रहनेसे ही गुरुपद पारख प्राप्त करनेके अधिकारी होते हैं। परन्तु ये जैनी लोग ऐसे पारखी सन्तोंकी सेवा-सत्सङ्ग विचार तो कुछ करते ही नहीं झूठे ही सेव्य-सेव्य चिल्लाते फिरते हैं, इसीसे उन्हें सत्यज्ञान पारखकी प्राप्ति भी नहीं होती है ॥ १४७ ॥

साखीः— कबीर गुरु बिन सम्प्रदा। देखा और न कोय ॥
और सम्प्रदा जो कहै। ताहूके गुरु होय ॥ १४८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! संसारमें जितने भी मत, पन्थ, सम्प्रदाय, मार्ग, मजहब, धर्म, फिरके, इत्यादि चले हैं; उन सबके संस्थापक, प्रवर्तक, प्रचारक, गुरु-गुरुवा लोग भये हैं। गुरुके बिना वैसे ही कहीं कोई सम्प्रदाय प्रगट भया हो, ऐसा तो कहीं देखा नहीं गया है, और कोई है भी नहीं। परन्तु वेदमत निराकार, ईश्वरसे चला, तथा कुरान मत बेचून-बेनमून खुदासे चला, ऐसा कहते हैं। वह बड़ा आश्चर्य और असम्भव होनेसे असत्य कथन है। और गौतमबुद्ध, तथा ऋषभ-देवके भी कोई गुरु नहीं थे, ऐसा कहते हैं। और उन्होंने स्वयं ज्ञान प्राप्त करके सम्प्रदाय चलाया, जो ऐसा कहते हैं। तो सुनो! उन्होंके भी पहिले शिक्षा-दीक्षाके गुरु, विद्या-गुरु, साधक-गुरु इत्यादि कईएक गुरु हुए ही थे। उन्हीं गुरुओंसे वाणी सीख-सीख करके पीछे अपने मनमें जैसा निश्चय भया, वैसा मन-मानन्दी कल्पनाका उपदेश दे करके वे गुरुवा बन गये थे। इसलिये कायावीर कबीर, जीवके ज्ञानगुणका प्रकाश शरीरमें हुए बिना तो निर्जीवसे कोई सम्प्रदाय नहीं चला। जड़से मत, पन्थ कहीं चला हो, क्या तुमने ऐसा देखा है? तुम हीं क्या और किसीने भी ऐसा देखा नहीं है। नास्तिक, भौतिकवादी इत्यादि लोग और-और सम्प्रदाय जो कहते हैं, सो उन्होंके घटमें भी गुरु=चैतन्य जीवका बास है, तभी ऐसे-ऐसे

मनमाना कल्पनाकर सकते हैं, एक-न-एक गुरु तो सबके हुए हैं, परन्तु कल्पनामें पड़े हुए भ्रमिक ही सब हुए हैं। पारखी सद्गुरु कोई बिरले ही होते हैं ॥ १४८ ॥

साखीः— कबीर जो बेगुरुमुखी । तेहि ठौर न तीनों लोक ॥
चौरासी भरमत फिरै । सो गहि नाना शोक ॥१४६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो ! बेगुरुमुखी= वे दोनों हिन्दू, तुरुक मतवादियोंमें जो-जो मनुष्य सद्गुरु पारखी सन्तसे बिमुख, विरुद्ध हैं, पारखबोधसे हीन हैं, और चैतन्य जीवके स्वरूपको सत्य जानते या मानते नहीं, सोई गुरुद्रोही, मन्मुखी हैं। ऐसे मूढ़, पक्षपाती, अविचारी, नरजीवोंको, तीन लोक=स्वर्ग, मृत्यु, पातालमें अथवा तीन गुण, तीन शरीर, भक्ति, योग, ज्ञान, इत्यादि तीनों ठिकानेमें जाकरके भी उसे कहींपर भी ठौर, स्थिति, शान्ति, मुक्ति, मिल नहीं सकती है। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक रमैनीके साखी ४३ में कहा है:—

साखीः— "गुरुद्रोही मन्मुखी । नारी पुरुष विचार ॥
ते नर चौरासी भरमि हैं । ज्यौंलों चन्द्र दिवाकार ॥" बी० र० सा० ४३ ॥

इस प्रमाणसे गुरु पारखसे विमुख जो हैं, उसे तीनों लोकोंमें कहीं भी ठहराव नहीं मिल सकता है। जड़ाध्यासवश, आवागमनके चक्रमें पड़के सो जीव नाना शोक, सन्ताप, कष्ट, त्रयताप आदिको ही पकड़-पकड़ करके चारखानीके समूह चौरासी योनियोंमें ही भ्रमते या भटकते फिरते हैं। जीतेतक कष्टकर साधना करने-करानेमें दुःख भुगतके शोकमें पड़े रहते हैं, और देह छूटनेपर नाना योनियोंमें जाके दुःख भोगते हैं। जैसे दिनके पीछे रात, फिर दिन निकलनेका क्रम चालू रहता है। तैसे जन्म, मृत्यु, गर्भवासमें ही वह जीव पड़ा करता है। पारखबोधके स्थिति हुए विना, मुक्ति नहीं मिलती है; यह निश्चय है ॥ १४९ ॥

साखीः—— विधि निषेध दुइ बातमें । वेद औ शास्त्र पुरान ॥
भावै कागज ले कहै । भावै मुख परवान ॥१५०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो ! संसारमें एक तो विधि वाक्य = मण्डन, प्रतिपादन करके, सिद्धान्त ठहराना होता है, दूसरा निषेध वाक्य = खण्डन विरोध करके, सिद्धान्त तोड़ना होता है। अपने सिद्धान्तको विधिपूर्वक मण्डन करके, दूसरेके सिद्धान्तमें कसर बताके विरोध करके खण्डन करते हैं। विधि और निषेध यही दो बातोंमें अपना मन्तव्य दरशा करके, चार वेद, उसके अनेकों शाखाएँ, उपनिषद् आदि तथा षट्शास्त्र, १०८ स्मृतियाँ, और अठारह पुराण, १८ उपपुराण, चौदह विद्या, इत्यादि अनेकों शास्त्र, ग्रन्थ, पन्थ, बने हैं, उनमें वही मनःकल्पित सिद्धान्त नानारूपमें दर्शाये हैं। परन्तु वहाँ कहीं भी कुछ पारख स्वरूपका यथार्थ बोध नहीं है। भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना, यही चार-चार खूटोंमें सब अरुझे पड़े हैं। अब भावै = चाहे तुम या गुरुवा लोग कागजमें लिखी हुई, वा छपी हुई पुस्तकें, और पत्रोंको हाथोंमें लेकरके पढ़कर कहें, अर्थ करें या तुम भी वैसे ही पढ़कर कहो, अथवा देखे, सुने, कण्ठाग्र किये हुए वाणीको ही चाहे तो पुस्तक देखे बिना ही मेरे अनुभवका प्रमाण है, कहके मुख ही से धड़ाधड़ कहते जावें। तो भी सिद्धान्त वही विधि-निषेधका ही आवेगा। अद्वैत ब्रह्मको विधि करके जगत्को निषेध करना, यही वेदान्तका मुख्य सिद्धान्त कथन हुआ है। परन्तु बिना पारख मिथ्या धोखामें ही वे सब गुरुवा लोग पड़े हैं। अतः उन्होंके कुसङ्ग-त्याग करके, पारखी साधु गुरुके ही सत्सङ्ग विचार करना चाहिये ॥ १५० ॥

साखीः— विधि निषेध दुई बातमें । सकल बातको जान ॥
वाक्य विलास जहाँ करै । तहाँ विधि निषेधकी खान ॥१५१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! विधि = मण्डन,

निषेध = खण्डन, मुख्य यही दो बातोंमें और सकल बात वाणी ग्रन्थोंकी सिद्धान्त समायी हुई हैं। वेद, वेदान्त, शास्त्र, स्मृति, पुराण, कुरान, कितेब, हदीश, रुवाई, मसला-मसल, दृष्टान्त, सिद्धान्त, इत्यादि सम्पूर्ण मत, पन्थोंकी यावत् पुस्तकें वाणी विस्तार खण्डन-मण्डन द्वारा ही बने हैं, ऐसा जानो, और जहाँपर भी जो कोई वाक्य विलास = बोल-चाल, वार्तालाप, सत्सङ्ग, प्रश्नोत्तर, शङ्का-समाधान, उपदेश, व्याख्यान, कथा, कीर्तन, इत्यादि करेंगे, अवश्यमेव तहाँ ही पर विधि-निषेध या खण्डन-मण्डन, वा प्रतिपादन, विरोधका खानी साबित हो जायगा। अर्थात् जहाँ गुरुवा लोग उपदेश देकर वाक्‌विलास, वचन चातुर्यता प्रगट करते हैं, तहाँपर अपना ठहराया हुआ कल्पित मतवाद, द्वैत, अद्वैत, विसिष्टा-द्वैत आदि निज-निज सिद्धान्तको युक्ति-प्रयुक्तिसे परिपुष्ट करके फिर अन्यके मतपर कटाक्ष प्रहार करके, खण्डन करते हैं। परन्तु पारख बिना गुरुवा लोगोंका सब कथन भ्रमपूर्ण मिथ्या धोखा ही है, उसमें कुछ भी सार नहीं है। खानी, वाणीकी दोनोंका विस्तार जीवोंको बन्धन है। पारखबोधको ग्रहण करके उसे परखकर, त्यागके न्यारा होना चाहिये ॥ १५१ ॥

साखीः— जैसे पूर्वा पौनसे। फल जल फीका होय ॥
तैसे गुरु उपदेशते। फीका कर्म विलोय ॥ १५२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैसे या जिस प्रकारसे पूर्वा नक्षत्रमें जल वर्षनेसे तथा वायु चलनेसे उस मौसमके फल एवं जल स्वादहीन फीके हो जाते हैं। अथवा पूर्विया हवा कभी पूर्वदिशाके तरफसे जोर-जोरसे बहने लग जाती है, तो उसके लगनेसे भी फल तथा जल नीरस फीके हो जाते हैं। उसमेंका मिठास जाता रहता है, वायुके परमाणुमें ऐसी ही शक्ति रहती है, उसके स्पर्श होते ही फल-जलमें फीकापन आ जाता है। तैसे या उसी तरहसे सिद्धान्तमें, पूर्व = हंसपदकी, पौन = विचारसे पारखी

सद्गुरुके उपदेश गुरुमुख निर्णयकी वाणी सारशब्द श्रवण, मनन, करनेसे गुरुवा लोगोंकी रोचक, भयानक वाणी तथा चार फल, चार मुक्ति प्राप्तिकी आशा एवं उसके प्राप्तिके लिये बताया हुआ कर्म, उपासनादि साधनादि वह सब ही नीरस, फीका, व्यर्थ, असत्य, मनकी कल्पनामात्र, ठहर गयी। विलोय = छानबीन करके सत्यासत्यका निर्णयकर खानी-वाणीकी मिथ्या मानन्दी छोड़ देते हैं। इस प्रकार पूर्वापौनवत् पारखी सद्गुरुके उपदेशसे पारखबोध होनेपर सारासारके विचारसे सब कर्मको बिलोनेसे गुरुवा लोगोंका बताया हुआ, साधनोंका सब कर्म फीका असार व्यर्थ ही हो गया। सत्यसारको ग्रहण करके हंसजीव सब बन्धनोंसे छूट जाते हैं ॥१५२॥

साखीः— ज्ञान विचारत सकल जग। चौरासी दरशाय ॥
एक वृन्दाबनको चली। एक खड़ी होय जाय॥ १५३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ! सब गुरुवा लोग सकल जीवोंको चौरासी योनियोंका डर दिखा-दिखा करके अपने-अपने मत-पन्थके सिद्धान्तोंका ज्ञान, विचार वर्णन करते-कराते हैं, और कोई एक ब्रह्मज्ञानी ज्ञान विचार करने लगे, तो सकल जगत्को ही एक ब्रह्म पूर्ण व्यापक ठहरा लिये। परन्तु उसीके भीतर चौरासी योनियोंका दुःख भी दरशता है, तब तो बड़े व्याकुल होके बेहोश होते भये। इस तरह द्वैत, अद्वैत, विसिष्टाद्वैत ज्ञानका विचार करते-करते सकल जगत्के बेपारखी जीव जड़ाध्यासी होके चौरासीयोनियोंका दर्शन करनेको चले गये। जब गुरुवा लोगोंने चौरासी योनियोंका दुःख दरशाये, तब मनुष्य घबराके उससे बचनेके लिये नाना साधनाएँ करने लगे। एक तो उनमेंसे वृन्दावनके गलियनमें, कुञ्जोंमें, चार धाम, चौंसठ तीर्थोंमें, सप्तपुरियोंमें, ईश्वर, इष्टदेवता आदिको ढूँढ़नेके लिए चले गये। बाहर जहाँ-तहाँ तीर्थयात्री होके मारा-मारा फिरने लगे। और एक दूसरे बाह्य तीर्थोंमें न जाके कहीं एक स्थानमें खड़े होके ठहर जाते हैं, अन्तर

तीर्थ करते हैं। तहाँ वे वृन्दाबन = वीर्यसे बनी हुई शरीरके भीतर ही लक्ष लगायके सूक्ष्म इन्द्रियाँ, चित्त चतुष्टय आदिसे आनन्द, ज्योति, अनहद, आदिमें विलास करनेके लिये धारणा, ध्यान करते हैं, एक शून्य समाधि लगाके खड़े अचेत हो जाते हैं। कोई ठाढ़ेश्वरी आदि होते हैं। इस प्रकारसे मन कल्पना अध्यासमें पड़के फिर-फिरके चौरासी योनियोंमें ही उलट-पुलटके चले जाते हैं, बिना पारख॥१५३॥

साखी:— एक ब्रह्म अखण्ड जो। करें आचार्य बखान॥
पूर्व पश्चिमके पण्डिता। केहि उपदेशत ज्ञान॥१५४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! वेदान्तके आचार्य व्यास, वशिष्ठ, दत्त, तथा शङ्कराचार्य आदिने ब्रह्मसूत्र, योगवाशिष्ठ, अवधूतगीता, भाष्य, आदिकोंमें युक्ति-प्रयुक्तिसे जो कि, एक ब्रह्म अखण्ड अद्वैत, व्यापक सत्य है, ऐसा दृढ़तासे वर्णन किये हैं। फिर अगर एक ही ब्रह्म सत्य है, द्वैत कुछ भी नहीं है, तो पूर्व = प्रथमके पूर्वाचार्य, तथा पश्चिम = पीछेके वेदान्ती पण्डित लोग इन सबोंने फिर अद्वैत ब्रह्मज्ञानका उपदेश किसे किये और किसे कह रहे हैं?। और पूर्वके वेदवादी हिन्दू धर्मोपदेशक लोग तथा पश्चिमके कुरानवादी मुस्लिम धर्मोपदेशक लोग भिन्न-भिन्न प्रकारसे ज्ञानका उपदेश किसको कर रहे हैं। एक ब्रह्म था, तो प्राचीन, अर्वाचीन समयमें नानामत, पन्थ, ग्रन्थ, क्यों, कहाँसे, कैसे निकले? इससे अद्वैत-मतका कथन सरासर मिथ्या है। एकमें कहीं उपदेश कहना, सुनना होता है? कभी नहीं। जब वे एक ब्रह्म भी कहते हैं, उपदेश भी दिये वा दे रहे हैं, इसीसे वे मिथ्यावादी भये हैं। यह मत असार मिथ्या होनेसे त्याज्य है॥ १५४॥

साखी:— मन बुद्धि वाणीको कहै। गम्य न ब्रह्ममें होय॥
ब्रह्म एकसो कौन कहै। पण्डित! कहिये सोय॥१५५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—और हे सन्तो! जब कि, वेदान्ती

लोग ब्रह्मको अगम्य बतलाते हैं और मन, बुद्धि, वाणीका कुछ भी गम्य, पहुँच उस ब्रह्ममें नहीं हो सकती है, ऐसा कहते हैं। यानी मनसे सङ्कल्प-विकल्प, कल्पना करके वह जाना नहीं जाता है, निर्विकल्प है। बुद्धिसे निश्चय-निश्चयात्मक करनेमें वह नहीं आता है "यो बुद्धेः परतस्तु सः"—भ० गीता ३।४२॥ जो कि बुद्धिसे भी अत्यन्त परे है, वह आत्मा है; और वाणीसे वर्णन करके जानने-जनानेमें वह नहीं आता है, निःअक्षर अवाच्य है। इस प्रकार उन तीनोंके ब्रह्ममें गम्य नहीं होता है, ऐसा कहा है। जो यदि ऐसा ही है, तो फिर एक अद्वैत ब्रह्म सत्य है, सो कौन कहता है? किसने, किसको, कैसे कहा? अद्वैत ब्रह्म है, कहनेमें मन, बुद्धि, वाणी लगी कि नहीं? हे पण्डित! सो इसके यथार्थ भेद निर्णय करके कहिये। या तो तुम्हारा ब्रह्म सिद्धान्त मिथ्या हुआ, नहीं तो मन, बुद्धि, वाणीसे अगम्य ब्रह्म है, कहा हुआ यह कथन तुम्हारा मिथ्या हुआ। ब्रह्म ही भ्रमरूप मिथ्या धोखा है, उसे स्थापित करनेवाले मनुष्य जीव ही सत्य हैं, जो इस भेदको जानते हैं, सोई सच्चे पण्डित कहलाते हैं १५५॥

साखीः— वेद नेति जेहि कहत हैं। जहाँ न मन ठहराय॥
बुद्धि वाणीकी गम्य नहीं। ब्रह्म कहा किन्ह आय?॥१५६॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे वेदान्ती लोगो! जिस ब्रह्मका पता वेदने भी नहीं पाया। जिसे वेद भी, नेति-नेति = न इति-न इति उसका अन्त, आखिरीका पता कुछ लगता ही नहीं, बेअन्त, अपार है, कहता है। वही बात ब्रह्मवेत्ता लोग कहते हैं। और जहाँपर मन भी मनन करके ठहर नहीं सकता है। बुद्धिसे निश्चय नहीं होता है, और वाणीकी भी गम्य नहीं है। इस तरह मन, बुद्धि, वाणीसे गम्य करके जिसे जाना जा नहीं सकता है। फिर तहाँपर पहुँचके एक ब्रह्म सर्वव्यापक सत्य है, ऐसा कथन किसने आयके, किसको कहा? कैसे कहा? बुद्धिके बिना निश्चय कहाँपर, कैसे किया? मनके बिना मनन, सङ्कल्प कैसे उठाया? वाणीके बिना वर्णन करके कैसे कहा? अरे! तुम्हारा

ब्रह्म तो आखिरमें मन, बुद्धि, वाणीके विकार, विषय, भ्रमरूप ही ठहरा कि नहीं? उसकी जितनी महिमा बढ़ाये हो, सो सब झूठी है। जीवके बिना ऐसे कपोलकल्पना कौन करेगा? अतः जीव सत्य है, ब्रह्म मिथ्या है, ऐसा जानिये! ॥ १५६ ॥

साखीः— कबीर वाणीके पढ़े। जगमें पण्डित होय ॥
बिना वाणिके पण्डिता। देखा सुना न कोय ॥१५७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! मनुष्य जीव ही अक्षरसमूह आदि वाणी वेद, शास्त्र, चौदह विद्या इत्यादिकोंको पढ़-पढ़ करके जगत्में एकसे-एक बढ़ करके पण्डित, बुद्धिमान्, चतुर होते हैं। और बिना वाणी ग्रन्थोंको पढ़े-सुने, सीखे, जाने, बिना योंहीं गोयमगोय, गुङ्गमगूँगा, रहके वाणीसे परे शून्य होयके कोई संसारमें पण्डित भया हो, ऐसा विचित्र पण्डितको तो आजतक भी कोई-किसीने कहींपर देखा और सुना भी नहीं है। फिर तुमने ब्रह्मको वाणीसे परे कहीं देखा है? जबतक गुरुवा लोगोंसे वाणी नहीं पढ़े थे, ग्रन्थ देखे-सुने नहीं थे, तब क्या तुम ब्रह्मका कुछ नाममात्र भी जान सकते थे, कि ब्रह्म है? ब्रह्म कौन चिड़ियाका नाम है, यह भी तुम नहीं जानते थे। जब तुमने वाणी पढ़े-सुने हो, तभी भ्रमसे अद्वैतमतवादी ब्रह्मज्ञानी भये हो। अतः ब्रह्म वाणीकृत कल्पना है, उसे माननेवाले चैतन्य जीव तुम उससे न्यारे हो। वाणीसे परे कोई ब्रह्म नहीं है, किन्तु वाणीका भ्रम ही ब्रह्म बना है। उसे परखके मिथ्या भ्रमको परित्याग करना चाहिये ॥ १५७ ॥

साखीः— कबीर मृग भरमकी नदी। यों अद्वैतको भास ॥
प्यासे दौरत मृग मुवा। करि मृग जलकी आश ॥१५८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! जैसे धूपकालमें सूर्यकी प्रचण्ड किरणें, रेतीली जमीन या बालूके मैदानपर पड़नेसे, दूरसे देखनेवालोंको वह टलमल-टलमल नदीमें पानीकी धारा बहती हुई

जैसी दिखाई देती है। गर्मीके दिनोंमें प्यासे मृग जङ्गलसे बाहर निकले, तो उन्हें वही रेतीमें सूर्यकी किरणोंवाली भरमकी नदी दिखाई दी, तो उसे पानी बहता हुआ नदी समझके, मृग उधर ही दौड़ता गया, फिर वह दृश्य भी उतनी ही दूर दिखती गई। मृगकी प्यास-तृष्णा बढ़ती गई, तो भी पानी नहीं मिला। क्योंकि, सैकड़ों कोशोंके विस्तारमें, मरुभूमिकी कान्तार होती हैं। तहाँ जलकी व्यर्थ आशा करके दौड़ते-दौड़ते थकके प्यासमें ही वहाँ मृग मर-मर जाते हैं। अन्ततक उन्हें जल नहीं मिलता है, उसे मृगतृष्णाकी झूठी नदी कहा है। वैसे ही भ्रमिक गुरुवा लोगोंने भ्रम, कल्पना वहाके नदीवत् वाणी विस्तार करके, ग्रन्थ बना दिये हैं। अज्ञानी मनुष्य मृगवत् उस वाणीकी धाराको देख, सुन, पढ़के योंहीं विना विचारे-अद्वैत ब्रह्मको सत्य मानके हृदयमें मिथ्या भास टिकाय लेते हैं। जैसा मृगजल झूठा है, तैसा अद्वैत ब्रह्मभास भी झूठा है। परन्तु, विवेक न होनेसे उसे सत्य मान लिये हैं। संसारमें दुःखी होके त्रयताप पीड़ित नरजीव परमानन्द प्राप्ति, और जीव-ब्रह्मकी एकता करनेकी आशामें नाना साधना करके, दौड़ते गये, तो भी एकता नहीं हुई। वह उतनी ही दूर रही। अन्तमें साधक जीव थकित हो, जड़ाध्यासी होकर मर गये। उनकी आशा, प्यास पूर्ण नहीं हुई। अध्यासवश मरके चौरासी योनियोंको ही प्राप्त भये हैं ॥ १५८ ॥

साखीः—कबीर मरुस्थलको कुवाँ। यों अद्वैतको बाद ॥
प्यासे मुये मुसाफिर। वर्णत निर्जल स्वाद ॥१५९॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—और हे नरजीवो! मरुस्थल = रेतीका मुल्क वा प्रदेश या रेगिस्थान, मारवाड़ आदि देश, मरुभूमिका-कान्तारवाला होता है, उसे मरुस्थल कहते हैं। जहाँपर वृक्ष, घास, फूस कुछ भी नहीं होता है। ऐसे जगहमें पानीकी आशासे जो कूआँ खोदते हैं, वे बहुधा धोखा खा जाते हैं, सौ, डेढ़ सौ, दो सौ हाथ नीचेतक खोदनेपर भी वहाँ कुछ भी जल नहीं मिलता है। जहाँ जल

मिला, सो अति थोड़ा होता है। वहाँके कुएँ अत्यन्त गहरे होते हैं। कहीं ऊपर-ऊपर गीली पतली रेतीली मिट्टी मिलनेपर भी भीतर सूखा ही रहता है, खोदनेवालोंको अन्तमें निराश होकर निष्फल ही हो जाना पड़ता है। तद्वत् अद्वैत सिद्धान्तका ब्रह्मवाद भी मरुस्थलका कूआ ही गुरुवा लोगोंने खोदे हैं। आकाशवत् व्यापक ब्रह्म एक अद्वैत है, कहके कल्पनाके कूआँ खोदे। आकाश मिथ्या, निष्फल, असार होनेसे ब्रह्म भी वैसे ही असार मिथ्या हो गया। तहाँ, मुसाफिर = साधक वेदान्ती लोग नाना तरहसे, निर्जल स्वाद = मन, बुद्धि, वाणीसे परे अवाच्य, अक्षरातीत, सच्चिदानन्द, परब्रह्म, परमात्मा पूर्ण ज्योंका-त्यों है, सो ब्रह्म मैं हूँ! इत्यादि वर्णन करते-करते भूठे ही कल्पनाको सत्य मानते-मानते, प्यासे = ब्रह्मानन्द प्रातिकी तृष्णा रख-रखके जड़ाध्यासी हुए, अन्तमें मरके आवागमन चौरासी योनियोंके महाचक्रमें पड़ गये, बिना पारख ॥ १५९ ॥

साखीः—प्रतिबिम्ब जीवहि कहैं। व्यास वेदान्त बखान ॥
सुख दुःख जेहि व्यापै नहीं। केहि उपदेशत ज्ञान ?॥१६०॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! कृष्णद्वैपायन-वेदव्यासने वेदान्त ग्रन्थ, ब्रह्मसूत्र बनायके, उसमें तथा उपनिषद् आदि व्याख्यामें देहधारी चैतन्य जीवको ब्रह्मका, प्रतिबिम्ब = परछाहीं, अंश ठहराके, वही पुष्ट करके कहे हैं; वेद-वेदान्तका सार वर्णन किये हैं कि— जीव प्रतिबिम्बमात्र है; इसका बिम्ब मूलस्थान ब्रह्म है। अब विचार करिये कि, यहाँ कहींपर भी मनुष्य आदिका प्रतिबिम्ब = छाया जहाँ-जहाँ पड़ती है, वहाँ-वहाँ उस परछाहींको कहीं भी सुख-दुःख नहीं व्यापता है, उसमें जाननेका ज्ञानगुण नहीं होता है, वह निर्जीव, जड़भासमात्र होता है। यदि जीवको भी वैसे ही मानते हैं, तो फिर ब्रह्मज्ञानका उपदेश कौन, किसको देते हैं ?। ज्ञान उपदेश देनेका क्या फल निकला? सब निष्फल ही हुआ। किन्तु, जीव तो तन-मनादिके सुख-दुःखादिको सब जानते हैं, स्वयं

ज्ञानस्वरूप हैं। अविवेकसे जीवको प्रतिबिम्ब माननेवाले, मिथ्यावादी, महागाफिलीमें पड़े हैं, बिना विवेक ॥ १६० ॥

साखीः— जो यह जीव है नहीं। भास हुआ कहु सोय? ॥
दुइ अन्धरेके नाचमें। काको मोहित कोय? ॥१६१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और यदि मिथ्यापक्ष पकड़के ब्रह्मवादी ऐसा कहैं कि, जो कुछ है, सो एक ब्रह्म ही सत्य है। यह जीव तो वास्तवमें कुछ ठहरता ही नहीं है। योंही बीचमें ही सो तो नानात्त्व जगत् जीव भासमात्र हुआ है। नहीं तो अधिष्ठान ब्रह्म एक ही है। अब हे ब्रह्मज्ञानी! यह बताओ कि— जीव और जगत्का भास किसको हुआ? निर्जीवको तो भास हो सकता ही नहीं। जीवको तुमने प्रतिबिम्ब माना, ब्रह्मको निराकार कहा है। जैसे नाचनेवाला, और दर्शक बननेवाला यदि दोनों भी जन्म-अन्धे हों, तो फिर दो अन्धोंके नाचमें कौन, किसको देखके कैसे मोहित, आकर्षित होगा? कौन, किसका बड़ाई या वाह-वाही करेगा? तद्वत् जड़, चैतन्य दोनों नहीं हैं, एक ब्रह्म ही है। तो जगत्की प्रतीति किसको, क्यों, कैसे, हो रही है? एक ब्रह्म सबको दिखता क्यों नहीं? वह कहाँ गायब हो गया है? पाँचतत्त्व जड़ और अनन्त चैतन्य जीव, आये कहाँसे? जीव नहीं है, तो जीवका और ब्रह्मका भास कहो किसको हुआ? अतः तुम वेदान्ती गुरु-चेले दोनों पक्के अन्धे हो, महा धोखामें ही पड़े हो, बिना विचार ॥ १६१ ॥

साखीः—अनादि सिद्ध जो कहत हैं। माया जीव अरु ईश ॥
कहहिं कबीर अकर्ता वादी। नास्तिक बिस्वाबीस ॥१६२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! विसिष्टाद्वैत मतवादवाले (रामानुज, दयानन्द, और बाममार्गी आदि) जो ऐसा कथन प्रगट करके कहते हैं कि—संसारमें तीन वस्तु अनादि हैं— एक तो, माया=अज्ञान, अविद्या, वा प्रकृति अर्थात् जगत्के

कारणको । दूसरा, जीव = जो इच्छा, द्वेष, सुख-दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ, नित्य है उसको । तीसरा, और ईश्वर = सबका कर्ता, धर्ता, हर्ता, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक हो, उसको— इन तीनोंको अनादि स्वयं सिद्ध नित्य पदार्थ माने हैं । इस प्रकारसे माया, जीव और ईश्वर इसीको अनादि कह करके जो सिद्ध करते हैं; उसके सिवाय और किसी पदार्थको अनादि नहीं मानते हैं । यद्यपि वे जगत् कर्तावादी हठसे कल्पित ईश्वरको वे जगत्कर्ता मानते हैं, तथापि उनके ईश्वर सत्य निर्णयसे कोई वस्तु ठहरता नहीं है, और मायारूप अज्ञानका भी कोई स्वतन्त्र आकार जड़ और जीव चैतन्यके सदृश नहीं है, और जीवको भी ईश्वरके अंशरूपमें परतन्त्र माने हैं । अतः जीवके स्वरूपको भी उन्होंने नहीं जाने । वेदको ईश्वरीय ज्ञान मानके धोखामें भूले पड़े हैं । वेद आदि सब वाणी, खानीका प्रगटकर्ता, संचालक, मनुष्य जीव ही सत्य है । पारख दृष्टिसे ऐसा न जानकर जीवको तुच्छ, अल्पज्ञ समझते हैं, कल्पित ईश्वर आदिकी ही महिमा गाते हैं । उनके प्रति सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखबोधके ज्ञाता पारखी सन्त कहते हैं कि— वे अकर्तावादी = वाणीके कर्ता मनुष्य जीवको सत्य न माननेवाले और दूसरा ही कोई ईश्वरादि कर्ताको ठहरानेवाले, सोई बिस्वाबीस = पूरे तौरसे या अच्छी तरहसे पक्के नास्तिक बने हैं । जो वस्तु नहीं है, उसको सत्य माननेवाले होनेसे वे कट्टर नास्तिक, मिथ्यावादी, पक्षपाती, हठी, शठी, अविचारी बने हैं । अतः उन्हें पहिचानके, उनके कुसङ्गको सर्वथा त्याग कर देना चाहिये ॥ १६२ ॥

साखीः— जो ठहरा अनादि जगत । तो अज्ञान अनादि ॥
गुरु आचार्य केहि कारणे । वेदादिक मतवादि ॥१६३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! बेपारखी गुरुवा लोगोंके कथन अनुसार ईश्वर, जीव, माया, यह तीनमात्र ही जो यदि जगत्में अनादि वस्तु नित्य, सत्य, स्वयंसिद्ध ठहरा, तो

मायाको अनादि माननेसे अज्ञान या अविद्या, जड़ाध्यास देहबन्धनादि भी स्वरूपसे स्वयं अनादि ही ठहरा, और स्वतः अनादि वस्तुका अभाव, विनाश कभी कदापि किसी तरहसे भी हो नहीं सकता है। उस हालतमें अनादि अज्ञानसे होनेवाला भवबन्धन भी अनादि ही सिद्ध हुआ। तथा वह अमिट साबित हो गया। अब बताओ! गुरु, विद्यागुरु, धर्माचार्य, वेदाचार्य, सम्प्रदायके आचार्य, वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदिके नाना मतवाद, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, खुदा, आदि कर्ताकी मानन्दी, योग, जप, तप, ज्ञान, ध्यान, विज्ञान, आदिके अनेकों साधनाएँ मुक्तिकी आशा, भरोसा इत्यादि सबके-सब व्यर्थ निष्फल हो गये कि, नहीं? किस कारणसे इनका प्रचार, विस्तार हुआ? सो क्या काम आया? अनादि अज्ञानको कौन, कैसे मिटायेगा? सारा प्रयत्न बेकार हो गया। इसलिये ऐसे मिथ्या, धोखामें पड़ना नहीं चाहिये। तहाँ निर्णय करो, तो ईश्वर और माया दोनों कोई स्वतन्त्र सत्य पदार्थ नहीं हैं। वह तो नरजीवोंकी कल्पना-मात्र है। वास्तवमें चार तत्त्व जड़ वस्तु कार्य-कारणयुक्त है, तथा अनन्त, अखण्ड, चैतन्य जीव देहधारी हैं, इतना ही सत्य पदार्थवाला संसार स्वयं अनादि है। यहाँ अज्ञानका परमाणु संयुक्त कोई स्वतन्त्र स्वरूप नहीं है। सिर्फ जड़ाध्यास, वासना, संस्कारको जीवोंने देह सम्बन्धमें मनमें टिका रखे हैं। प्रवाहरूपसे वह चल रहा है, अदल-बदल होता रहता है। अतः पूर्ण परीक्षा दृष्टि होनेसे अध्यासका बिनाश हो जाता है। जीवन्मुक्ति तभी हो जाती है। बन्धनका अन्त हो जाता है। इससे भ्रमिक गुरुवा लोगोंके पक्ष मानन्दी छोड़ करके पारखी सद्गुरुसे पारखबोध प्राप्त करके अपना, कल्याण करना चाहिये। भ्रम, भूलको मिटाना चाहिये ॥ १६३ ॥

साखीः— गोरीपर हरदी चढ़ी। भई सामली रङ्ग ॥
　　साँई ते परदे सुती। छुवैं न देती अङ्ग ॥ १६४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु मनुष्यो! सुनो!

जैसे गोरी स्त्रीके शरीरपर हल्दी चढ़ा दी गई, महावर लगाई गई, सो सुखनेपर साँवली = काली, रङ्गकी होती भयी, और वह पतिसे परदा करके अलग जाके सोती है, अङ्गको छूनेतक नहीं देती है, फिर पुत्र प्राप्ति भी करना चाहती है, तो यह कैसे होयगा ? नहीं होगा। तैसे ही, गोरी = भक्त लोगोंपर, हरदी = कोई सुख-दुःख देनेवाला हर-ईश्वर परमात्मा होगा, ऐसा भ्रम, कल्पना मनमें, चढ़ी = आरूढ़ हुई। सो जीवके शुद्ध हंस स्वरूपपर भूलकी पीलाई चढ़ी, हरि, हर, परमेश्वर, खुदा आदि कोई कर्ता पुरुष मानके उसके प्राप्तिके लिये प्रेम बढ़ी, चाहना हुई। इसीसे गुरुवा लोगोंके सङ्गतमें नरजीव जाके लगे, गुरुवाओंने उन्हें और भी बहुत प्रकारसे भ्रमा दिये। नाना कष्टकर साधनोंमें लगाये, तब सुख-दुःखका आवरण जीवोंपर चढ़ा। इस कारणसे, सामली रङ्ग = काला अज्ञान ग्रसित, जड़ाध्यासी, कुरङ्गी, कामी, क्रोधी, लोभी, मोही, ऐसे स्याह रङ्गवाले होते भये। और भ्रमिक मूढ़ हो करके, साँईं = स्वामी सबके मालिक, निज चैतन्य-स्वरूप और उसका यथार्थ पारखबोध देनेवाले पारखी सद्गुरु उनसे परदे = आड़, ओट, अलग, विरुद्ध, हो करके मोहके महा गाफिलीमें अचेत, मूढ़, भ्रमिक होके सो गये। अब वे, अङ्ग = अपने हृदयको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें ले जाके कभी छुने ही नहीं देते हैं, और गुरु विचारमें मन लगाते ही नहीं। तब कहो भला! पारख स्वरूपका बोध उन्हें कैसे, कहाँसे होगा? कभी न होगा। फिर भी वे मुक्ति फल प्राप्तिकी आशा करते हैं, किन्तु वह निष्फल ही हो जाता है, बिना पारख॥

अथवा भ्रमिक गुरुवा लोगोंके ऊपर, साधनोंके सुख-दुःखरूपी हल्दी चढ़ी, तो सामली रङ्गवाले जड़ाध्यासी होते भये। और साँईं = झाँईंको परमात्मा मानके समाधि अनुभवका पर्दा लगायके गाफिल भये, ऐसे सोये। अब वह कल्पना अहं ब्रह्म अद्वैत अलिप्त बनके किसीको अङ्ग छूने ही नहीं देती है। निर्गुण-निराकार बनके धोखेमें डालती है॥ १६४॥

साखीः— गोरीते कारी भई । सबै मनावै भाग ॥
रूप वर्ण गुण कछु है नहीं । भये सो अचल सोहाग ॥१६५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! गोरीते कारी भई=जीव शुद्ध ज्ञानस्वरूप पारखको भूलके जड़ाध्यासी, भ्रमिक, मूढ़, गाफिल भया, तहाँ जीवका जानपना-बोध छूटके अनजानपना या अज्ञानग्रसित हो गया। तो कोई भिन्न ही जगदीश्वर मानके कोई भक्त भये, कर्मी, योगी, ज्ञानी, विज्ञानी भये। सिद्ध, साधक सब ही कल्पना ग्रसित भये, और कोई पण्डित भये, तो गोरीरूपी सफेद कागजपर काली स्याहीसे, नाना अक्षर, वाणी लिखते भये। जिससे वेद शास्त्र, पुराण, कुरान आदि ग्रन्थ बना। उसीको पढ़, सुनकर, गुरुवाओंको देखकर, साधक बनकर, संसारमें सब कोई मनुष्य, उन लोगोंके भाग मनाने लगे। प्रशंसा, महिमा, करने लगे, धन्य भाग है! इन साधक भक्तोंका, ये परमेश्वरके प्यारे हैं, और हमारा भी धन्य भाग्य है! जो ऐसे महात्मा, भक्त, योगी, ज्ञानियोंका दर्शन हुआ, कृतकृत्य हुए। इत्यादि बड़ाई करने लगे। परन्तु जिसको परमपति परमेश्वर कर्ता पुरुष, ब्रह्म-परमात्मा माने हैं, उसका तो कहीं ठिकाना ही नहीं है, वह कहाँ रहता है, कुछ पता ही नहीं है। क्योंकि, न उसका रूप=आकार, प्रकार, स्वरूप है, निराकार-निरूप माना है। न वर्ण= रङ्ग, अक्षर, जाति ही है, उसे अवर्ण, निःअक्षर कहा है, और न तो कोई कुछ गुण ही उसमें है, निर्गुण, निरञ्जन, निरीह, माना है। जब रूप, वर्ण, गुण आदि कुछ भी उसके नहीं हैं, तो वह क्या है? मिथ्या ही है। बस, उसीको सत्य, परब्रह्म एक अद्वैत मान-मानके गुरुवा लोग, अचल सोहाग=अचल, अटल, सौभाग्यवती होते भये। उन्हें वही कल्पना सोहाया, अच्छा लगा, और संसारमें मूर्ख समाजमें आके वे पूरे भक्त, पहुँचे हुए बड़े महात्मा, सिद्ध, परमहंस ब्रह्मज्ञानी बने, ऐसे बड़े माने जा रहे हैं। किन्तु बिना पारख जीव

जड़ाध्यासी राँड, भाँड हो, आवागमनके अधिकारी ही बने हुए हैं ॥ १६५ ॥

साखीः— दिलरी गई देसन्तरे । लाई केतकी फूल ॥
छूवै तो भँवरा मुवा । सुख कारण दुःख मूल ॥ १६६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! जैसे कोई स्त्री केतकी = सफेद केवड़ाके बड़ी महकती हुई सुगन्धिवाली फूल शिरमें लगायके दूसरे देशान्तरमें चली गयी । सुगन्ध भँवराको अतिप्रिय है । यदि भँवरा केतकीरूप केवड़ाके सुगन्धमें आकृष्ट होकर उसे आसक्तिसे आके छू लेता है, या बैठके उसके सुगन्ध लेने लग जाता है, तो भँवरा तुरन्त मर जाता है, उसके लिये वह तीव्र जहर ही होता है । किञ्चित् सुखके कारणसे वह तो बड़ा भारी दुःखका मूल कारण ही हो गया । किसीने कहा हैः— दोहाः—

"सर्व गुणयुत केतकी, रूप रङ्ग अरु बास । एक बड़ा अवगुण यही, भँवर न जावै पास ॥
रूप रङ्ग सुवासयुत, केतकीके गुण तीन । अवगुण याके एक है, भँवर न जाय सुलीन ॥"

इसी प्रकार सिद्धान्तमें, दिलरी = अन्तःकरणकी वासना, मानन्दी, इच्छा, भावना, कल्पित वाणी यही दुलहिन बनके खूब ठाट-बाटसे शृङ्गारकर और केतकीके फूल सदृश विशेष सुगन्धवाला कल्पनाके वासनावाला ब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर, खुदा आदि निज-निज इष्टदेवसे मिलनेकी चाहना दिलमें लगायके, नरजीवोंके मन निजदेश पारख स्वरूपकी स्थितिको छोड़करके, देशान्तरे = दूर-दूर अन्य मानन्दीके देशमें—सात स्वर्ग, चार मुक्ति, चौदह लोक, चौदह तबक, लोक-लोकान्तर, देश-विदेश, इत्यादि दूर-दूरमें कल्पनाको भटकाने लगे । सो षट् दर्शन— ९६ पाखण्डकी नाना सिद्धान्तोंमें मन चली गयी । सबसे विशेष सुख ब्रह्म प्राप्ति, ब्रह्मानन्दको माने हैं । अब उसके लिये योग समाधि लगायके वा 'अहं ब्रह्मास्मि' निश्चय करके उस कल्पित वाणीके फूल ब्रह्मको छूते हैं, तदाकार होते हैं, तो तहाँ निर्विकल्प शून्यवृत्ति होकर, मनरूपी भँवरा मर जाता है, उन्मुनिमें

लय होके जीव अचेत-गाफिल, जड़ाध्यासी हो जाता है । अतः सच्चिदानन्द, सुख स्वरूप माना हुआ ब्रह्म ही जगत् दुःखका आदि कारण बीज बना, तहाँ मूल हंसपदसे पतित हो गया, तो जन्म, मरण, गर्भवास आदिके दुःख भोगनेका वही मूल कारण जड़ाध्यास हुआ । ब्रह्मानन्दकी आशासे चौरासी योनियोंके चक्रके दुःखमें जीव पड़े हैं । अर्थात् वाणी सुन-सुनके ही दिल, दूर देशमें मालिक माननेको वा ढूँढ़नेको चला गया, तहाँ ब्रह्मज्ञान दृढ़ करके खूब फूल गये, अभिमानी भये ! उसी कल्पनाको स्पर्श करके मनसहित जीव अचेत अध्यासी हुआ ! जिसको सुखका कारण माना, सोई ब्रह्म, ईश्वरादि आखिरमें दुःखरूप जगत्का मूल आवागमनका हेतु हो गया । अतः उस मिथ्या मानन्दीको परखकर परित्याग करना चाहिये, पारख बोधको ही लेना चाहिये । अथवा विषय वासनाके फूल लगाके मन, देशान्तर = स्त्रीके पास गया, तहाँ भोग करते ही मन मरा, सो विषय सुख ही चौरासी योनियोंके दुःख भोगानेका मूल कारण हुआ, ऐसा जानो ॥१६६॥

साखीः— पन्द्रह तत्त्व स्थूल है । नौ तत्त्व लिङ्ग शरीर ॥
चौबीस मृतुक जेहिसों जिये । सो जिन्दा जीव कबीर ॥१६७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! पाँच तत्त्वके मुख्य पन्द्रह भाग लेके स्थूल देह बनी है । सो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँः— श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका है । पाँच कर्मेन्द्रियाँः— वाक, हस्त, पाव, उपस्थ, गुदा है । पञ्चविषयः— शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध है । यही पन्द्रह तत्त्व लेके, स्थूल देह निर्माण भया है । और उसीका बीजरूप, लिङ्ग शरीर= सूक्ष्मदेह मुख्य, नौ तत्त्व = चित्त, बुद्धि, मन, हङ्कार और सूक्ष्म पञ्च विषय सहित होते हैं । अथवा उसे छोड़के पञ्चप्राणः— व्यान, समान, उदान, प्राण, अपान, ये ५ मिलायके नौ भाग होते हैं । इस तरह १५+९ एकत्र मिलानेपर २४ भाग होते हैं । सो ये चौबीसों भाग, मृतुक = जड़, अचेतन, मरे हुए मुर्दावत् निर्जीव हैं । उनमें सुख-दुःखादि जाननेका स्वयं

ज्ञान गुण नहीं है। और जिस चैतन्य वस्तुसे सत्ता पायके उपरोक्त चौबीसों तत्त्वकी कलाएँ जीवित, जाग्रत्, सचेत, सुन्दर, प्रकाश, सञ्चालित होते हैं। तथा जीवित जीवकी सदृश देह भी चेतन दिखाई देता है, सोई जिन्दा = सदा जीते रहनेवाला, कभी न मरनेवाला अमर, अजर, अविनाशी, अखण्ड, नित्य, सत्य, जीव, चिरञ्जीव, सोई स्वयं कबीर है॥ तहाँ कहा हैः—

श्लोकः—"स्थूलं पञ्चदशान्युक्तं लिङ्गं तु नव तत्त्वानि च॥
यज्जीवन्ति चतुर्विंशास्तज्जीवं कवयो विदुः॥"

—जो १५ तत्त्वका स्थूल शरीर और ९ तत्त्वका सूक्ष्म शरीर इन २४ तत्त्वको चैतन्य करे, तिसको विद्वान् पुरुष, जीव कहते हैं॥ "जीवितीति जीवः" "न जायते म्रियते"—जो सदा जीवित रहता है, सो जीव है। स्वरूपसे जीवका जन्म-मरण वा उत्पत्ति, नाश नहीं होता है। अतः जीव सत्य है॥ जिन्होंने स्वानुभवसे उसके स्वरूपको परख करके जाने, सोई कायावीर शूर, धीर, माया-मोह विकारसे रहित काम, क्रोधादिको जीते हुए जीवन्मुक्त पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब हुए हैं। आपने सारासारको यथार्थ परखाये हैं। जीवमात्र कबीर वा चैतन्य हैं, किन्तु, ज्ञानी, मनुष्य देहधारी नरजीव ही श्रेष्ठ हैं। मनुष्य ही मुक्तिके अधिकारी होते हैं, ऐसा जान लीजिये!॥१६७॥

साखीः—कबीर पद्धती रामकी। जगमें मानै कोय॥
राम पुरुष कि इस्त्री। पण्डित! कहिये सोय॥ १६८॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे नरजीवो! जगत्में कोई कितनेक वैरागी लोग राजा रामचन्द्रको ईश्वरके अवतार मानते हैं। और रामचन्द्रके वनवासका भेष, जटा आदि रखते हैं, रामकी पद्धति = उपासना मार्गसे चलते हैं। मुख्यतया वैरागी लोग मस्तकमें भगके आकार-सदृश तिलक बनायके लगाते हैं। उसमें उनसे यही पूछना है कि—हे राम-भक्तो! राम, पुरुष थे कि, स्त्री थी? पुरुष थे, तो तुम लोग भगाकार तिलक मस्तकमें क्यों लगाते हो? और स्त्री थी,

तो तुम लोग पुरुष हो कि, स्त्री हो ? पुरुष हो, तो परस्त्रीके सङ्ग मेल करनेवाले तुम लोग व्यभिचारी ही हुए । स्त्री हो, तो कुलटा ही हुए । हे पण्डित ! सो इसका भेद तुम ही ठीकसे निर्णयकरके कहो ॥ अथवा दूसरा अर्थः— कबीर = हे जिज्ञासु जीवो !, रामकी = रमैया राम चैतन्य जीवकी, पद्धति = मन कल्पनाकी पन्थ, मार्ग, चाल-चलन, रीति-रिवाज, वाणी, खानी, विषयादिकी नाना रास्ता जगत्में सब कोई मान रहे हैं । कोई रामके उपासनाके मार्गको, तो कोई दश अवतार, तैंतीस कोटि देवताओंकी भक्ति-मार्गको, कोई कर्म-मार्गको, कोई ज्ञान-मार्गको, ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, इत्यादिको मनमाने वैसे मान रहे हैं। अब ये बताओ कि, तुम्हारे माने हुए कल्पित इष्टदेवता, पुरुष = चैतन्य जीव है कि— अथवा इस्त्री = प्रकृति, जड़, वाणी ही स्वरूपी है । वाणीको छोड़के तुम्हारी और कौन पद्धती है ? हे पण्डित ! सोई बात विवेक करके कहिये । खानी और वाणी दोनों जीवको बन्धन हैं । अतः उसे परख करके त्यागना चाहिये ॥ १६८ ॥

साखीः— पारवती ब्रह्मानी अरु । कहत लक्ष्मी जाहि ॥
इनकी करै उपासना । बामिक कहिये ताहि ॥ १६९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो ! शिवकी स्त्री पार्वती रही, ब्रह्माकी स्त्री ब्रह्माणी = सावित्री रही, और विष्णुकी स्त्री लक्ष्मी रही । जिन्हें त्रिदेव, त्रिशक्ति, त्रिदेवी भी कहते हैं । स्त्री विषयासक्त भग-लम्पट ब्रह्मादि तथा भगधारिणी प्रत्यक्ष स्त्रीरूप लक्ष्मी, पार्वती, सावित्री इन्होंकी ही जो कोई ब्राह्मणादि चार वर्ण, कर्मी, उपासक, पण्डित, मूर्ख इत्यादि जो, उपासना = भक्ति, पूजा, आराधना, ध्यान, धारणा, नाम स्मरण, भाव, नित्य पूजा किया करते हैं । उसे ही स्त्री विषयके उपासक बाममार्गी कहते हैं । शक्ति उपासक जो हैं, सो शाक्त होते हैं, तथा स्त्री उपासक बामिक कहलाते हैं । वे बाममार्गी, विषयासक्त, जड़ाध्यासी हो, चौरासी योनियोंको प्राप्त होते हैं । स्त्रीरूपका विशेष अध्यास रहनेपर पुनर्जन्ममें स्वयं स्त्री चोलाको

भी धारणकर लेते हैं। अतः त्याग, वैराग्यके शुद्ध भाव ही मनमें टिकाये रखना चाहिये ॥ १६९ ॥

साखीः—ब्रह्म शब्दको पण्डितन । नपुंसक ही ठहराय ॥
ताकी इच्छाते जगत । कहत न मूढ़ लजाय ॥१७०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! व्याकरणादि शास्त्रज्ञ शास्त्री, पण्डितोंने "ब्रह्म" इस शब्दको, नपुंसक=नपुंसक लिङ्ग वाला, स्त्री, पुरुषका लिङ्ग या चिह्न भेदसेरहित, हिंजड़ा, शक्तिहीन, निरिच्छ ही निर्णय करके ठहराये हैं। जब ब्रह्मका लक्षण ऐसा साबित हुआ, जिसे निराकार, निर्गुण, निरीह, व्यापक माना है। फिर उसी ब्रह्म-परमात्माकी इच्छा या स्फुरणामात्रसे "एकोहं बहुस्याम्" कह करके, सारा चराचर जगत्की उत्पत्ति भयी। गुरुवा लोगोंने ऐसा बताया है। उन अविवेकी, अविचारी मूढ़ पुरुषोंको, ऐसा विरुद्ध वचन कहतेमें जरासा भी सकुच, लज्जा नहीं आती है। वे कुछ भी लजाते नहीं। निर्लज्ज होके मनमाने सो वैसा बकते, झकते हैं। एक तो निराकारमें इच्छा होनेका साधन ही नहीं। देह बिना इच्छा हो नहीं सकती है। सर्वव्यापीसे कुछ बन नहीं सकता है। कोई जगह खाली न होनेसे वह क्या बनाके कहाँ रखेगा? और नपुंसकमें कामके साधन न होनेसे, उसके इच्छामात्रसे कुछ भी उत्पत्ति हो नहीं सकती है। सो ब्रह्म माना हुआ ही भ्रम है। उसको कर्ता पुरुष माननेवाले लोग, निर्लज्ज, पशुवत् मूढ़ ही बने हैं ॥ १७० ॥

साखीः—जाना चाहै आतमा । जानै को है सोय? ॥
कहु पण्डित! यह देहमें । आतम एक कि दोय? ॥१७१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और ये भ्रमिक वेदान्ती लोग निज आत्म-स्वरूपको जानना चाहिये, सर्वाधिष्ठान समझना चाहिये, कहते हैं। मैं आत्माको जानना चाहता हूँ, कहनेपर, उसको जानने-

वाला जनैया तो आत्मासे पृथक ही साबित हुआ। आत्मा दृश्य और उसे जाननेवाला द्रष्टा हुआ। आत्माको जाननेवाला जनैया द्रष्टा सो कौन है? हे पण्डित! यह बात विवेक करके बतलाओ कि— इस शरीरमें आत्मा एक है कि, दो है? एक है, तो अपने आपको वह कैसे जानना चाहता है? और कैसे, किसप्र कारसे जानेगा? यदि एक देहमें दो आत्मा हैं। तो कैसे कहाँपर रहा है? फिर अनन्तों शरीरमें अनन्तों आत्मा होनेसे अद्वैत मतवाद भी चकनाचूर हो जायगा। एक ही आत्मा परिपूर्ण व्यापक है, कहा हुआ झूठा होगा। अब बताओ, आत्मज्ञान किसको, कैसे होगा? बिना पारख, भ्रम, धोखामें ही पड़े हैं ॥ १७१ ॥

साखीः—कबीर एकै आतमा। केहि उपदेशन होय? ॥
को जानै एक आतमा। पण्डित! कहिये सोय ॥१७२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं— हे नरजीवो! जब ये ब्रह्मज्ञानी लोग एक आत्मा अद्वैत है, ऐसा बतला रहे हैं। फिर कहो उपदेश किसको होता है? हे आत्मज्ञानी! जब एक, आत्माके सिवाय, दूसरा कुछ नहीं है, तब तुम लोग उपदेश किसको, किस तरहसे देते हो? ये नाना मत, पन्थोंका विस्तार क्यों हो रहा है? एकमें कहना, सुनना, उपदेश देना-लेना, कैसा होगा? फिर एक अद्वैत आत्मा ही सत्य है, ऐसा कौन जानता है? कहाँ रहके, कैसे जानता है? नहीं जानता है, तो तुमने कहा कैसे? हे पण्डित जनो! सो उपरोक्त प्रश्नका उत्तर यथार्थ निर्णय करके कहो। यदि आत्मा एक कहोगे, तो तुम्हारा उपदेश देना ही मिथ्या ठहरा। और आत्माको अनेक मानोगे, तो अद्वैत सिद्धान्त जूठा होनेसे, सरासर खण्डन हुआ। अतएव व्यापक आत्मा है, कहना ही भूल है। अनेक देहधारी जीव, तथा पाँच जड़ तत्त्वरूप द्वैत जगत् यही प्रत्यक्ष सत्य है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा परखके, भ्रम, भूलको मिटाना चाहिये ॥ १७२ ॥

साखीः— जागृतिरूपी देहमें। करै सकल परमान ॥
कारण सूक्ष्म स्थूल नहीं। तब कहो कहाँ अस्थान ? ॥ १७३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जागृतिरूपी चैतन्य-जीव इस देहमें बैठ रहा है, सोई तीन काल, तीन अवस्था, तीन पन, तीन गुण, तीन देह, तीन मार्ग, तीन लोक, तीन काण्ड, इत्यादि सकलकी मानन्दी कर-करके, प्रत्यक्ष प्रमाणके अन्तर्गत अन्य सात प्रमाणोंका भी स्थापन, वर्णन करता है। नरदेह रहेतक जीव ही देहमें रहके सबको जानता, मानता, कथन करता है। यह तो सबको प्रत्यक्ष ही है। परन्तु हे आत्मज्ञानी ! जीवको छोड़के अन्य तुम्हारा माना हुआ आत्माकी प्रतीति कहाँ होती है ? व्यापकताकी लक्षण कहाँ दिखता है ? और जब शरीर छूट जाता है, तब उस मूर्दामें आत्माकी सत्ता क्यों नहीं दिखाई देती है ? तब आत्मा मुर्दामें रहता है कि, निकल जाता है ? रहता है, तो पूर्ववत् तीन अवस्थाएँ सुख-दुःखादिका व्यवहार क्यों नहीं होता है ? और निकलता है, तो एकदेशी ठहरा, व्यापकताका खण्डन हुआ। फिर स्थूल, सूक्ष्म, और कारण, ये तीनों देहोंका स्थान ही जब नहीं रहता है, तब उस अवस्थामें आत्मा कहाँपर, किस स्थानमें, कैसे, किस रूपमें रहता है ? सो खुलासा करके कहो। एक-एक निर्णयको वर्णन करो. गोलमाल मत करो। नहीं तो घना तमाचा खाओगे, पीछे बहुत पछताओगे। अतएव सत्यासत्यका निर्णय करके सत्यग्राही होना चाहिये ॥ १७३ ॥

साखीः— योगी बड़ा कि योग बड़ा। ज्ञाता बड़ा कि ज्ञेय ? ॥
द्रष्टा बड़ा कि दरश बड़ा। भेदी बड़ा कि भेय ? ॥ १७४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! योग आदि साधना करनेवाले साधक योगी जीव बड़े श्रेष्ठ होते हैं ? कि— अष्टाङ्ग योग आदि मार्ग बड़ा है ? विवेक करो, योगी नरजीव न होवें, तो योगादि मार्ग, मत, पन्थ, निकम्मा, व्यर्थ ही है। अतः योगी

जीव बड़े हैं, योग नहीं। तैसे ज्ञाता = सुख-दुःखादिको जाननेवाला, जानकार जनैया जीव बड़े हैं, कि ज्ञेय = जो जाननेमें आया, वह वस्तु, विषयादि भास बड़ा है? ज्ञाता न होय, तो फिर ज्ञेय सिद्ध हो नहीं सकता है। अतः ज्ञाता जीव ही बड़ा या श्रेष्ठ है, ज्ञेय नहीं। और, द्रष्टा = चैतन्य, तीन देह, तीन अवस्था, पञ्चविषयादि जगत्को देखनेवाला साक्षी जीव बड़ा है, कि— दरश = दृश्य, विषयभास, जड़वस्तु, ज्योति आदि अनुभूत बड़ा है? द्रष्टा न होवे, तो दृश्यको कौन देखै, कौन जानै, मानै। अतः द्रष्टा चैतन्य-जीव बड़ा है, दृश्य नहीं। और, भेदी = वाणी, खानी आदिके गुप्त, प्रगट सारा भेदको जाननेवाले विवेकी नरजीव बड़े श्रेष्ठ हैं, कि— भेय = भेद, विषय, कला, कौशल, भक्ति, योग, ज्ञानादिके मर्म बड़ा है? भेदको जाननेवाले भेदी न होवें, तो उसके भेदको कौन बतावे? कौन जाने? इसीसे भेदी विवेकी जीव ही बड़े हैं, भेद नहीं; ऐसा निर्णय करके जानना चाहिये ॥ १७४ ॥

साखीः—दाता बड़ा कि दान बड़ा। कर्ता बड़ा कि वेद ॥
मान बड़ा कि मानिक बड़ा। कहु पण्डित! यह भेद ॥ १७५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— उसी प्रकार हे सन्तो! और दाता = दान देनेवाले अन्न, जल, वस्त्र, रत्न, फल, फूलादिके तथा ज्ञान, विद्या आदिके दाता नरजीव बड़े हैं, कि— उनका दिया हुआ दान, जड़ पदार्थ, विद्या आदि बड़ा है? यदि दाता मनुष्य न होते, तो दान ही कौन, किसको देता?। अतः दाता बड़े हैं, दान नहीं। वैसे ही, कर्ता = मनुष्य, चारवाणी, चारखानी, विद्या, बुद्धि, मत, पन्थ, ग्रन्थ, कला, चातुर्य आदि यावत् प्रपञ्चोंका निर्माणकर्ता, स्थापनाकर्ता, सञ्चालन, प्रचारकर्ता, नरजीव बड़े हैं, कि— उनका बनाया हुआ, वेद = ज्ञान, अक्षर-समूह, संस्कृत संहिताकी पुस्तक एवं उसकी शाखा, परशाखा, उपनिषदादि बड़ा है? अरे भाई! यदि कर्ता मनुष्य न होते, तो वेद आदि वाणी, विद्याओंको कौन बनाते?

कौन फैलाते ? अतः वेद आदिके कर्ता नरजीव ही बड़े श्रेष्ठ हैं, वेद बड़ा नहीं। और वैसे ही, मान=माना हुआ मानन्दी, ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, देवी, देवता, भूत-प्रेत, खुदा, अल्लाह, ऋद्धि, सिद्धि, करामात, मन्त्र, सामर्थ्य इत्यादि जो कुछ माना गया है, सो मान, प्रतिष्ठा, सम्मान, मर्यादा, अभिमान, गुमान, इत्यादि ये बड़ा है, कि— अथवा मानिक=उसे माननेवाले, जाननेवाले मनानेवाले, मानन्दी, पक्ष, दिलचस्पी, आसक्ति, मोह, अध्यास, करनेवाले अमूल्य मणि, माणिक्यवत् अजर, अमर, अखण्ड, जीव मनुष्य श्रेष्ठ बड़े हैं ? कौन बड़े हैं ? हे भाई ! माननेवाले जीव मानन्दी कर्ता मनुष्य न होते, तो उपरोक्त खानी, वाणीके प्रपञ्च विस्तारको फिर कौन मानता वा मनाता ? इसलिये मानिक नरजीव ही सर्वश्रेष्ठ बड़े हैं, किन्तु, मान-मानन्दी बड़ा नहीं। ऐसा यथार्थ गुरुमुख निर्णयसे जानना चाहिये। और हे पण्डित ! बुद्धिमान्, मनुष्यो ! योग-योगीसे लेकर मान-मानिकतक कौन बड़ा है ? उसमें तुम्हें क्या निश्चय है ? कैसा मालूम होता है ? तुम किसको, कैसे बड़ा मानते हो ? सो खुलासा निर्णय करके अपना मन्तव्य मेरे समक्ष कहो ? इसके भेदको बताओ। अगर तुम्हारे समझनेमें कसर होगी, तो मैं निर्णय दरशा करके उसमेंकी कसर पुनः दर्शा दूँगा। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजकमें जो निर्णय वचन कहे हैं, सो सुनियेः—

॥ * ॥ शब्दः— ११२ ॥ * ॥

४झगरा एक बढ़ो राजा राम ! जो निरुवारे सो निर्वान् ! ॥ १ ॥
ब्रह्म बड़ा कि ? जहँासे आया ? वेद बड़ा कि ? जिन्ह उपजाया ? ॥ २ ॥
ई मन बड़ा कि ? जेहि मनमाना ? राम बड़ा कि ? रामहिं जाना ? ॥ ३ ॥
भ्रमि-भ्रमि कबिरा फिरे उदास ! तीर्थ बड़ा कि ? तीर्थका दास ? ॥ ४ ॥ बीजक ॥

इसकी टीका— सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने बीजक त्रीजामें विस्तारसे लिखे हैं; सो वहाँसे देखके जान लीजिये ! ॥ अर्थात् सब प्रकारसे हंस जीव ही बड़ा है, उससे बढ़के दूसरा मानन्दी कोई श्रेष्ठ-बड़ा नहीं है।

इसलिये पारखी सद्गुरुके शरण, सत्सङ्ग करके पारख बोधसे सकल भेदको जानकर स्व-स्वरूपमें स्थिर होना चाहिये ॥ १७५ ॥

साखीः—पाँचतत्त्व औ काल दिग। मन औ आतम जान ॥
उपदेशत न्याय नौ द्रव्य कहि। बिन ज्ञाताको ज्ञान ॥१७६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! वैशेषिकमत और न्यायमत उन दोनोंमें नौ द्रव्य, निम्न प्रकारसे माने हैं— पाँच तत्त्वः— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश; तथा भूत, भविष्य, वर्तमान ये तीन समय मिलके एक काल; पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, आदि मिलके एक दिशा; सूक्ष्म इन्द्रियरूप मन, और आत्मा; यही नौ द्रव्य सत्य है, ऐसा कह करके न्याय शास्त्रवादी लोग, उपदेश करते हैं। अब विचार करिये! उसमें ज्ञाता स्वयं चैतन्य द्रव्य तो कोई नहीं है, बिना ज्ञाताके ही झूठी ज्ञान वा अज्ञानका ही उन्होंने उपदेश किये और कर रहे हैं। क्योंकि, न्यायवादी आत्माको स्वयं जड़ ठहराके, मनके संयोग-सम्बन्धसे ही जीवात्माको ज्ञान होना माने हैं; और मनको निराकार कहे हैं। गुण और क्रियायुक्त हो, वैसा द्रव्यका लक्षण माने हैं। तहाँ आकाश शून्य होनेसे वह द्रव्य हो नहीं सकता है। और दिशाएँ तथा काल मुख्यतया सूर्यसे सिद्ध होते हैं। सूर्योदय जहाँ होता है, वहीं पूर्वदिशा मानी जाती है। और दिन, रात्रि, महीना, वर्ष, आदि काल भी मुख्य सूर्यसे ही सिद्ध हो रहे हैं। इसलिये सूर्य, चन्द्र और पृथ्वीके सदैव क्रियाओंसे दिशा और काल ठहरनेसे, वे दोनों भी नित्य द्रव्य सिद्ध नहीं होते हैं। और मन सूक्ष्म जड़के कार्य है, वह भी नित्य द्रव्य नहीं हो सकता है। और माना हुआ सर्वव्यापी ईश्वर वा आत्मा भी कल्पनामात्र ही है, वह भी नित्य द्रव्य ठहरता नहीं। मुख्य तो स्वयं ज्ञानस्वरूप ज्ञाता जीवको तो वे मानते ही नहीं हैं, मनके संयोग होनेपर ही ज्ञान प्रगट होता है, कहनेवाले न्यायमतवादी, अन्यायी, भ्रमिक, झूठे बने हैं। (इनके कसर विस्तारसे निर्णय करके "निर्पक्ष सत्यज्ञान

दर्शन" में लिखा है, वहाँसे देख लीजिये!) । अतः ऐसे बिना ज्ञाताके ज्ञान कथन करनेवालेका मत सर्वथा त्याग करने योग्य है ॥ १७६ ॥

साखीः— मिमांसा बड़ा कि जैमिनि बड़ा । वैशेषिक बड़ा कि कणाद् ॥
गौतम बड़ा कि न्याय बड़ा । कहु पण्डित को आदि् ॥ १७७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो ! षट् शास्त्रोंको षट् मुनियोंने पृथक्-पृथक् मत दर्शा करके भिन्न-भिन्न समयमें बनाये हैं। उसमें विवेक करो कि, वह शास्त्र बड़ा श्रेष्ठ होता है कि— उनको बनानेवाले नरजीव श्रेष्ठ होते हैं? निर्जीवसे तो वाणी लिख-लिख करके शास्त्र नहीं बना, सजीवसे ही बना है, तो जीव ही श्रेष्ठ होते हैं। जैमिनी मुनिका बनाया हुआ, बारह अध्यायवाला, पूर्व मीमांसा=कर्म प्रतिपादक शास्त्र, बड़ा या श्रेष्ठ है? कि— अथवा उसके कर्ता, शास्त्र रचयिता मनुष्यरूप जैमिनी जीव श्रेष्ठ या बड़े हैं? जैमिनी न होते, तो मीमांसा शास्त्र ही कहाँसे, कैसे बनता?। अतः जैमिनी बड़े हैं, मीमांसा नहीं। तथा ही वैशेषिक शास्त्र, सूत्ररूपमें दश अध्यायवाला ग्रन्थ बड़ा है? कि— उसका निर्माणकर्ता कणाद मुनि बड़े हैं? कणाद न होते, तो वैशेषिक सूत्र ही कहाँसे, कैसे बनता? अतः कणाद नरजीव बड़े हैं, वैशेषिक नहीं। और वैसे ही गौतम नामक नरजीव तार्किक बड़े हैं? कि— उनका बनाया हुआ पाँच अध्यायवाला न्याय-सूत्ररूप शास्त्र बड़ा है? यदि गौतम मुनि न होते, तो फिर न्याय-सूत्र ही कहाँसे, कैसे बनता? अतः गौतम बड़े हैं, न्याय-सूत्र नहीं। हे पण्डित! बुद्धिमान्! कहो, तुम लोग इसमें क्या, कैसा समझते हो? कौन, किसके आदि है? कौन, किससे श्रेष्ठ सबसे बड़ा है? शास्त्र बड़ा होता है, कि— रचयिता बड़ा होता है? निर्णयसे हंसजीव बड़ा होता है, निर्जीव ग्रन्थ, वाणी समूह, शास्त्र बड़ा नहीं होता है, ऐसा जानो ॥ १७७ ॥

साखीः—सांख्य बड़ा कि कपिल बड़ा । पातञ्जल बड़ा कि शेष ? ॥
व्यास बड़ा कि वेदान्त बड़ा । दुइमा को अवशेष ? ॥१७८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और उसी प्रकार छैः अध्याय-वाला सांख्यशास्त्र-सूत्र, कारिकाएँ बड़ी हैं ? कि— अथवा उसका रचनाकर्ता कपिल मुनि बड़े हैं ? यदि कपिल मुनि नरजीव न होते, तो फिर सांख्य-शास्त्र ही कहाँसे, कैसे बनता ? अतः कपिल बड़े हैं, सांख्य नहीं। तथा पातञ्जल = चारपादवाला योगशास्त्र बड़ा है ? कि— उसके रचयिता, शेष = पातञ्जलि ऋषि बड़े हैं ? जो पातञ्जलि नामक नरजीव न होते, तो फिर योगशास्त्रके सूत्र ही कहाँसे, कैसे बनते ? अतः पातञ्जलि बड़े हैं, योगसूत्र नहीं। और वैसे ही कृष्ण-द्वैपायन-वेदव्यास नामक नरजीव बड़े हैं ? कि— उनका कल्पना करके बनाया हुआ, वेदान्त शास्त्र = जिसे उत्तर मीमांसा, वा ब्रह्म मीमांसा, शारीरिकसूत्र, वेदान्तसूत्र वा ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं। जो एक-एक अध्यायमें चार-चार पाद करके, चार अध्यायोंमें सम्पूर्ण ग्रन्थ बना है, सो वेदान्त ग्रन्थ बड़ा है ? कि— वेदव्यास बड़े हैं ? किन्तु, वेदव्यास मनुष्य न होते, तो वह वेदान्त शास्त्र-सूत्र कहाँसे, कैसे बनता ? अतः जीवरूप व्यास बड़े हैं, वेदान्त-सूत्र नहीं। अब हे पण्डित ! बताओ, तुम्हारे समझनेमें कैसा आता है ? कर्ता बड़ा होता है कि— कार्य बड़ा होता है ? षट्शास्त्र और उनके प्रगटकर्ता षट्मुनि इन दोनोंमें कौन, अवशेष = अवशिष्ट, बाकी, श्रेष्ठ, सत्य और बड़े हैं? कृत्तिम वाणी-कल्पना कभी सत्य वा बड़ी नहीं हो सकती है। अतः जीवरूप चैतन्य मनुष्य ही सबसे बड़े हैं। वेद, शास्त्रादि सब वाणी मनुष्यकृत ही हैं। मिथ्यापक्षको छोड़कर सत्यनिर्णयसे यथार्थ विचार करना चाहिये ॥ १७८ ॥

साखीः— जैमिनि कणाद औ गौतम । शेष कपिल औ व्यास ॥
षट ढीमर षट जाल बिने । बाँधेउ जीवन फाँस ॥१७९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जैमिनीने पूर्व

मीमांसा शास्त्र बनायके, कर्मवाद सिद्ध किया है। कणादने वैशेषिक शास्त्र रचना करके काल वा समयवाद वर्णन किया है, और गौतमने न्याय शास्त्र बना करके जगत्कर्ता परमेश्वरकी कल्पना किया है, सो ईश्वरवाद पकड़े हैं। शेष = पातञ्जलिने योगशास्त्र कथन करके, योगवादमें ज्योतिस्वरूप ईश्वर माना है। कपिलने सांख्य शास्त्र तैयार करके प्रकृति-पुरुषवाद पकड़ा है, और व्यासने वेदान्त शास्त्र रचना करके, अद्वैत ब्रह्मवाद वर्णन किया है। उपरोक्त वे ही षट्मुनि, ढीमर = मच्छिमार धीमरकी नाईं गुरुवा लोग बने, तथा उन्होंने कल्पित वाणी बीन-बीनके बड़ी मजबूत छः जालरूप षट्शास्त्र सूत्ररूपमें बनाके तैयार किये हैं। जैसे धीमर लोग मजबूत सूतसे जाल बिनके उसे नदी, तालाब आदिमें डालके मछलियोंको फँसा-फँसाके पकड़कर मारके स्वार्थ सिद्ध करते हैं। वैसे ही षट्मुनियोंने भी दृढ़ कल्पनासे वाणी द्वारा संस्कृतमें सूत्र बनाय, वाणीकी छः जाल बनाये। फिर उसे संसारमें छोड़कर नरजीवोंको बझाय, जहँड़ाय, जड़ाध्यासी बना दिये, अपना-अपना मत, पन्थ, बढ़ानेका स्वार्थ सिद्ध कर लिये। उसी फाँसमें सब नरजीवोंको फँसाय, कठिन बन्धन-कल्पनामें बाँध दिये हैं। बिना पारख वह जाल लखनेमें नहीं आता है। अतएव सत्यन्यायी पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग द्वारा उसकी कसर, खोटको, परखकर मिथ्या पक्ष भ्रम-भूलको त्यागना, सुधारना चाहिये। पारख बोधको ही लेना चाहिये ॥ १७९ ॥

साखीः— नाम रूप चीन्है नहीं। करै रूपको बाद ॥
कहु पण्डित! यह दोयमें। को है किसकी आद? ॥ १८० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! नाम = शब्द, वाणी, कल्पनासे ब्रह्म कहा है, और उसके रूपका तो कहीं पता, निशाना ही नहीं है। रूप = दृश्य, स्वरूप, जगत्में जो कुछ है, सो दिख ही रहा है। सो उस नाम-रूपको तो ठीक-ठीकसे चीन्हते-पहिचानते

नहीं, और जगत्को मिथ्या बताकर जगत्के स्वरूपमें ही रहकर एक अद्वैत व्यापक ब्रह्मवाद कथन करते हैं। ऐसे अविचारी बने हैं। हे पण्डित ! नाम-रूप, शब्द-अर्थ, जगत्-ब्रह्म, जीव-शीव इत्यादि इन दो-दोमें कौन, किसकी आदि या प्रथमसे सत्य है ? सो निर्णय करके कहो। रूप बिना नाम होता नहीं, शब्द बिना अर्थ नहीं, जगत् बिना ब्रह्म नहीं, जीव बिना शिव नहीं। इसलिये जगत् जीव ही उन सबका आदि है, ऐसा जानके मिथ्या मानन्दी ब्रह्मके भ्रमको त्यागना चाहिये ॥ १८० ॥

साखीः— सन्धिक मात्रा मेल करिके । अर्थ बूझनकी चाव ॥
जिन्ह सन्धिक मात्रा कियो । ताको भयो अभाव ॥१८१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! ये भ्रमिक पण्डित लोगोंने प्रथम ५२ अक्षर बनाये, फिर परस्पर उन अक्षरोंको, सन्धिक = संयुक्त जोड़-जोड़कर उसमें अ, उ, म, अर्ध, बिन्दु ये पाँच मात्राएँ यथास्थान मिलाय करके वाणी, शब्द समूहका, रचनाकर वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि नाना ग्रन्थ बनाये। फिर उसी शब्दोंका अर्थ करके ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदादि बताकर उसे बूझने या समझने, प्राप्त करनेकी चाहना वा इच्छा करने लगे, वैसे ही भाव मनमें रखते हैं। शब्दार्थ, भावार्थ आदि बूझकर ब्रह्म बननेकी चाव करते हैं, और जिस नरजीवने अक्षर बनाकर शब्द-सन्धि, स्वर-सन्धि, विसर्ग-सन्धि, पञ्चमात्रा वाणीकी सम्पूर्ण कलाएँ निर्माण किया है। उस चैतन्य जीवको या निज सत्यस्वरूपको समझनेकी तो कोई भी भाव नहीं रखते हैं। बल्कि जीवको तो अल्पज्ञ, अंश, तुच्छ, समझके अभाव, लय, शून्य ही किये और कर रहे हैं। इसीसे जड़ाध्यासी बनके चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़े वा पड़ रहे हैं, बिना पारख ॥ १८१ ॥

साखीः— कबीर कर्ताके किये । सन्धिक मात्रा अर्थ ॥
कर्ता बड़ा कि अर्थ बड़ा । कहु पण्डित सामर्थ ! ॥१८२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे नरजीवो ! कायावीर कबीर

चैतन्य जीव मनुष्य कर्ताके कर्तव्य पुरुषार्थ करनेसे कल्पना मानन्दी कियेसे ही शब्द, अक्षर-समूह नाना वाणी बनी, तथा उसीमें, सन्धिक = जोड़, मिलान, वर्ण सन्धि, स्वर सन्धि, आदिमें और पञ्चमात्रादि मिलायके, शब्दके स्थूलाकार बनाये गये। जिससे फिर मनुष्य ही उसे पढ़-पढ़ाकर शब्दार्थमें 'शब्द ब्रह्म', भावार्थमें 'कर्ता ईश्वर', ध्वन्यार्थमें 'नाद ब्रह्म', और व्यङ्गार्थमें 'जगत् मिथ्या, ब्रह्म सत्य', इत्यादि अनेक अर्थ निकाले जाते हैं। यह सब तो कर्ता मनुष्यके ही कार्यसे होता है। अतएव हे पण्डित! तुम्हारेमें विवेक करनेकी शक्ति-सामर्थ्य, यदि होय, तो यह बताओ कि— कल्पनासे वाणी ब्रह्म, अर्थ आदिके निर्माणकर्ता या प्रगटकर्ता मनुष्य-जीव बड़ा हुआ? कि = अथवा उसका कथन किया हुआ, अर्थ = ब्रह्म, ईश्वरादि, तात्पर्य या मतलब, स्वार्थ, मानन्दी आदि बड़ा हुआ? विशेष शक्ति या सामर्थ्य, पराक्रम नरजीवमें हुआ? कि, कल्पित ब्रह्म आदिमें हुआ? सो इसका निर्णय करके कहो। अरे भाई! नरजीवके हुए बिना, तो शब्द, अर्थ, ब्रह्म आदि कुछ भी साबित नहीं होते हैं। अतः जीव ही श्रेष्ठ है ॥ १८२ ॥

साखीः— कबीर लोभीके गाँवमें। ठग नहिं परैं उपास ॥
जो जेहि मतको लोभिया। तेहि घर ठगको बास ॥१८३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! जैसे विशेष लोभी, लालची, ऐसे लोग बसे हुए गाँवमें कोई ठग, धूर्त, धोखेबाज आ गये, तो वे वहाँ, उपवास = कभी भूखे-प्यासे नहीं पड़ सकते हैं। कुछ-न-कुछ लोभ बतायके, यथेष्ट उन्हें ठगकर, माल उड़ायके, सहज ही पेट भर लेंगे, और धोखा देके, हाथ मारके, चल देंगे। तैसे ही सब संसारी मनुष्य अत्यन्त लोभी, लालची बने हैं। वे रूप, यश, जय, विषयसुख, स्त्री, पुत्र, धन, राज-काज, नाज, इत्यादिके लोभमें ग्रसित हो रहे हैं। उनके बस्ती, गाँव, शहर, मोहल्ला, कस्बा आदिमें घूमनेवाले षट्दर्शनोंके भेषधारी ठग-गुरुवा लोग, धूर्ताई करनेमें बड़े चतुर हैं। इससे वे कभी, उपास = भूखे, नाकामयाब, खाली,

स्वार्थमें असफल नहीं होते हैं। जो ठगके पालेमें पड़े, वे ठगाय गये। ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी, देवता, ऋद्धि, सिद्धि, प्राप्ति, मनोकामना पूर्ण होगी, इत्यादि आशा, भरोसा दे-देके गुरुवा लोग तन, मन, धनादि सहज ही ठगके लूटकर हड़प लेते हैं। षट्दर्शन—९६ पाखण्डोंमें जो मनुष्य जिस-जिस मत, पन्थ, सिद्धान्तमें लुब्ध या लोभिया भये, उन्हीं अविचारी मनुष्योंके घरमें, आस-पासमें और घटमें ठग गुरुवा लोग तथा उनके भ्रम, धोखा, वाणी कल्पनादिका दृढ़ निवास अड्डा वा टिका रहता है। अतः उसे परखके, न्यारा होना चाहिये॥१८३॥

साखीः— कर्म इन्द्री जड़ वाक्य जो। ग्रन्थन वर्णन कीन्ह॥
आगम निगम पुराण पुनि। जड़ उपदेशन दीन्ह॥१८४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! ग्रन्थ या शास्त्रोंमें ऋषि, मुनि, पण्डित, और सन्तोंने ऐसा वर्णन किये हैं कि— मुख (वाक्), हाथ, पाँव, लिङ्ग, और गुदा, ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ जड़-तत्त्वोंके कार्य हैं। उसमें जो मुखसे उच्चारण होनेवाला वाक्य, शब्द-समूह या वाणियाँ हैं, सो भी सरासर जड़ हैं। उसी जड़ वाणीको कथन, लेखन करके समस्त पुस्तकें रचना कर, नाना सिद्धान्त वर्णन किया गया है, और प्राचीनकालमें समय-समयपर मनुष्योंसे ही, निगम = चार वेदादि श्रुतियाँ, संहिताएँ मन्त्र भाग बने हैं, आगम = नाना शास्त्र, स्मृतियाँ, षट्शास्त्र, आदि और, पुराण = इतिहास, जीवनी लिखी हुई मुख्य, अष्टादश महापुराण तथा गौण उप पुराण आदि बहुत-सी ग्रन्थ बनी हैं। फिर वह जड़, कल्पित वाणीका ही तो उपदेश सब गुरुवा लोगोंने नरजीवोंको दिये हैं, और ब्रह्म, ईश्वरादि कोई दूसरा ही कर्ता बतायके भ्रमाये, भुलाये हैं। उपदेश देने-लेनेवाले चैतन्य सत्य हंस-जीवको तो वे जानते ही नहीं, जड़ कल्पित वाणीके प्रमाणसे मिथ्या भास, अनुमान आदिमें ही गाफिल पड़े हैं। जड़ पूजा देवी, देवतादिकी उपासना करनेका कोई उपदेश दे रहे हैं। कोई जड़-श्वासमें सुरति लगाके

ध्यान, समाधि लगानेको बता रहे हैं। कोई जड़-तीर्थ, व्रतादि करनेको कह रहे हैं, इत्यादि प्रकारसे जड़ उपदेश देके नरजीवोंको जड़ाध्यासी बद्ध बना दिये, और अभी वैसे ही जड़ बुद्धि बनायके धोखेमें डाल रहे हैं। चैतन्य-बोध, पारख-ज्ञानका उपदेश पाये बिना, मनुष्योंका भ्रम नहीं छूट सकता है, अतः पारख बोधको ही ग्रहण करना चाहिये ॥ १८४ ॥

साखीः—कबीर शब्दको अर्थ करी । शब्दहि आया हाथ ॥
कहहिं कबीर पारख बिना । जहाँ तहाँ पटकै माथ ॥१८५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे नरजीवो ! जीवरूप इन मनुष्योंने कल्पित शब्द समूहसे बनी हुई वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल आदि ग्रन्थोंके शब्दोंका अर्थ करके ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, अल्लाह, इत्यादि जो-जो सिद्धान्त कायम किये हैं, सो-सो तो कुछ भी मनुष्योंके हाथमें नहीं आया, कुछ नहीं मिला। सिर्फ शब्द लिखी हुई पुस्तकें और कल्पना यही उन्होंके हाथ वा साथमें आया। स्वर्ग, ऋद्धि, सिद्धि आदि मिलके भी किसीकी मनोकामना पूर्ण नहीं हुई। शब्दके अर्थ किया तो "शब्द ब्रह्मेति श्रुतिः" कहा, अर्थात् प्रणवरूप ॐकारको ब्रह्म माने हैं। किन्तु, वस्तु तो कुछ मिली नहीं, सिर्फ जड़ शब्दका भ्रम ही हाथमें आया। मिथ्या धोखाको ही ग्रहण किये। अतएव पारखी साधु गुरु कहते हैं कि— सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबका निर्णय यथार्थ पारखबोधको जाने बिना स्व-स्वरूपकी स्थिति इन नरजीवोंकी नहीं हुई। इसलिये भ्रमिक हो करके, जहाँ-तहाँ पत्थर, पानीमें, अनुमान-कल्पनामें, माथ = सिर पटक-पटक करके मर रहे हैं। कर्म, भक्ति, योगादिके नाना कठिन साधनाएँ कर-कराके बुद्धिको भ्रम धोखामें, पटक = ठोंक, पीट करके नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। भ्रमिक जड़ाध्यासी बन, चौरासी योनियोंमें फिर रहे हैं; दुःख भोग रहे हैं। बिना पारख, ऐसे ही भवबन्धनोंमें पड़े हैं ॥ १८५ ॥

साखीः— माया है जग तीनकी। जीव गुरु औ ईश ॥
सकल जीवके अन्तरे। व्यापै बिस्वाबीस ॥१८६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जगत्में जन्म, भरण, गर्भवासमें ले जानेवाली तीन प्रकारकी माया है। अज्ञानी जीवकी त्वंपद अज्ञान माया है। विज्ञानी गुरुवा लोगोंकी, गुरु= अति बड़ा भारी असिपद माया है। और ज्ञानियोंकी, ईश=ईश्वर मानन्दी तत्पद माया है। सोई मानन्दी स्थूल, कारण, और सूक्ष्म जड़ाध्यास ही कहलाता है। वही सम्पूर्ण अविवेकी पारखहीन नरजीवोंके भीतर अन्तःकरणमें, बिस्वाबीस= पक्का, मजबूत होकर पूरी तौरसे दृढ़ हो करके व्याप रहो है, वा फैल रही है। वही सब जीवोंको आवागमनमें ले जाके, दुस्सह दुःख भुगा रही है। ये तीनोंकी त्रिपुटी माया बड़ी जबरदस्त बन्धन हैं। सब कोई उसके घेरेमें पड़े हैं, और पड़ रहे हैं, बिना विचार ॥ १८६ ॥

साखीः— जीवकी माया आपदा। ईश्वरकी संसार ॥
गुरुकी माया आवरण। पण्डित! करहु विचार ॥१८७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता उसी तीन मायाकी और खुलासा अर्थ यहाँ कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! अज्ञानी जीवको अज्ञान, अविद्या, अध्याससे बनी हुई कायारूपी मायासे सदैव, आपदा= आपत्ति, उपाधि, माया-मोह, काम, क्रोधादि विकार, स्त्री, पुत्र, धन, घर, राज्यादिमें नित्य कलह, अशान्ति, राग-द्वेष, त्रयतापके भोग, आवागमन, इत्यादि करके होनेवाली विपद, नाना दुःख, सन्ताप होते रहते हैं। तथा ईश्वररूप ज्ञानियोंकी, माया= वाणी कल्पनासे संसारमें सदैव संशय, दुविधा, भ्रान्ति, धोखा लगी रहती है। उन्होंने वेद-शास्त्रादिमें जगत्कर्ता निराकार ईश्वर कोई एक है, उसीने ही सारा जगत् बनाया है, वही सबको धारण कर रहा है। अन्तमें महाप्रलय करके सब सृष्टिको अपनेमें मिलाय लेवेगा, इत्यादि असम्भव मिथ्या कथन वर्णन किये हैं। इसीसे संसारमें वही पढ़, सुन करके सब मनुष्य संशयग्रसित

हो रहे हैं। और तीसरा, विज्ञानी, गुरुवा लोगोंकी माया, तो महान् आवरणरूप पर्दा जीवोंपर पड़ा है। एक ही ब्रह्म सर्वाधिष्ठान, सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक, महाकाशवत् शून्य, निरञ्जन, अद्वैत, निःअक्षर, ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, ऐसा कह-कह करके, धोखामें मनुष्योंको डाल रहे हैं। वही आवरणरूप पर्दा महागाफिली है। ये तीनों मायाके वशीभूत होकर सब जीव चौरासी योनियोंके चक्रमें नाच रहे हैं, मुक्तिपदसे बहुत दूर हो रहे हैं। हे पण्डित ! बुद्धिमान मनुष्यो ! तुम लोग इसका यथार्थ विचार-विवेक करो, और तत्त्वमस्यादि माया जालको परखके, परित्याग करो। निज चैतन्य पारख स्वरूपमें स्थिति करो, तभी कल्याण होगा ॥ १८७ ॥

साखीः—कबीर लिङ्ग व स्थूल तन । कारण माँहि विलाय ॥
तब आतम कहवाँ रहै । पण्डित ! कहो बुझाय ॥१८८॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे आत्मवादी ज्ञानी लोगो ! कायावीर कबीर, चैतन्य-जीव, शरीरमें है, तब ही तीनों देहें भी प्रकाशित हो रहे हैं। जब शरीर छूट जायगी, उस वक्त स्थूल देहकी सब कलाएँ, लिङ्ग = सूक्ष्म देहमें जमा होगी, फिर सूक्ष्म देह भी कारण देहमें विलीन हो जायगी। अध्यासी जीव उसे अपने साथ लेके अन्य खानीमें चला जायगा। इधर स्थूल देह खाली मुर्दा होके पड़ा, सड़ने-गलने लग जाता है। कहो ! तब आत्मा कहाँ रहता है ? आत्माकी व्यापकता कहाँ गई ? आत्मा पूर्ण व्यापक होनेका लक्षण, उस मुर्दामें क्यों नहीं दिखाई देती है ? जब चेतन निकलके देह मुर्दा निष्क्रिय, रद्दी हो गई, तब एकदेशी हुई, कि नहीं ? तहाँ व्यापक सहज ही खण्डन हो गया। यानी स्थूल, सूक्ष्म दोनों शरीर जब कारणमें विलाय गया, अभाव-शून्य हो गया, तब उस वक्त तुम्हारा व्यापक माना हुआ आत्मा कहाँपर रहता है ? हे पण्डित ! इसी बातको अच्छी तरहसे खुलासा करके, समझाय-बुझायके कहो। यदि कह नहीं सकते हो, तो फिर व्यापक आत्मा माना हुआ सरासर झूठा है, ऐसा विवेक करके जानो ॥ १८८ ॥

साखीः— कबीर माया ईशकी। जीवहुकी छुटि जाय ॥
गुरु माया छूटब कठिन। आवरण होय रहाय ॥१८९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे नरजीवो ! पारखी साधु गुरुकी सत्सङ्ग, विचार करनेसे जिज्ञासु मनुष्योंका दिलसे जीवकी माया = अज्ञानकृत आपदाएँ, तथा ईश्वररूप ज्ञानियोंकी माया = परोक्ष ज्ञानकृत, संसार = वाणीकी संशय, दुविधा आदि ये दोनों भी सद्गुरुकी दया, पारख बोधकी प्रतापसे सहजमें ही छूट जाती हैं। ईश्वरके मानन्दी भी मिट जाती है, जगत् विषयोंकी आसक्ति भी छूट जाती हैं। परन्तु तीसरे, विज्ञानी गुरुवा लोगोंकी माया = वाणी-जाल, मिथ्या ब्रह्म मानन्दीमें जो जकड़ पड़ा, सो छूटना अत्यन्त कठिन दुष्कर ही हो जाता है। क्योंकि, ब्रह्मज्ञानियोंमें जिज्ञासु-भाव श्रद्धा, भक्ति, सत्सङ्ग-विचार करना कुछ भी होता ही नहीं है। उल्टे अपने ही वेद, शास्त्र, गुरु आदिको भी द्वैत निषेध करनेके लिये गुरु, वेदादि मिथ्या हैं, कहते हैं। तब दूसरेको वे क्यों मानेंगे ? अतः ब्रह्मके पक्ष मिथ्या, धोखा छूटना कठिन ही नहीं, असक्य भी है। वह तो आवरणरूप, पर्दा दृढ़ जड़ाध्यास संस्काररूप होके हृदयमें बैठी रहती है। और बारम्बार जीवोंको चौरासी योनियोंके जन्म-मरणादिके महाचक्रमें घुमाया करती है। अतः प्रथम ही सचेत हो परख करके उस कठिन माया जालमें पड़ना नहीं चाहिये और उससे निकलके, न्यारा हो रहना चाहिये ॥ १८९ ॥

साखीः— ब्रह्म ज़ीव ईश्वर जगत। शब्दका गुण आकाश ॥
कहहिं कबीर पारख बिना। होय पदारथ भास ॥१९०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे जिज्ञासुओ ! भ्रमिक गुरुवा लोगोंने निराकार आकाशका गुण सूक्ष्माकार शब्द विषय अनुमान करके फिर उसीसे तत्त्वमसि सिद्धान्त प्रकाश किये हैं। तहाँ, त्वंपद जीव अल्पज्ञ, अंश, अज्ञानग्रसित कहा है। तत्पद

ईश्वर सर्वज्ञ, अंशी, कारण ज्ञानवान माना है। तथा असिपद ब्रह्म अधिष्ठान व्यापक ज्योंका-त्यों विज्ञानानन्द घन ठहराये हैं। जगत् मायाके कार्य मिथ्या प्रतीतिमात्र विषयरूप माना है। इस प्रकार ब्रह्म-झाँई, ईश्वर-सन्धि, जीव-काल, कल्पना ग्रसित हो, जगत्‌रूप माया-जालमें ही बन्धे पड़े हैं। यह सब नरजीवोंने शब्द विषयसे ही प्रकाश वा प्रचार किये और कर रहे हैं। वाणी, खानी जालोंमें ही जहँड़े जा रहे हैं। पारखी सन्त कहते हैं कि— सद्गुरु श्रीकबीर साहेबके यथार्थ निर्णय अपरोक्ष पारख बोधको जाने-समझे बिना सब गुरुवा लोग महाभूलमें ही पड़े हैं। अतः उन्हें जो ब्रह्म, ईश्वरादि कल्पित पदार्थ भास हुआ या हो रहा है, सो तो, पद = शब्दका, अर्थ = विषय, यानी पदार्थ सोई शब्द विषयका मिथ्या भास मात्र है। पारख न होनेसे उसे ही सत्य मानके भूले और भूल रहे हैं। तथा चौरासी योनियोंमें ही भूल रहे हैं ॥ १९० ॥

साखीः— स्वातीको पपिहा रटत। सबै बोल मत प्रेम ॥
जो स्वाती पपिहा मिली। पीउका छुटा न नेम ॥ १९१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! जैसे, पपिहा = एक चातक पक्षी होता है। वह सत्ताईस नक्षत्रमें सिर्फ स्वाती नामक पन्द्रहवाँ नक्षत्रमें वर्षा हुआ जल पीनेका ही अभिलाषा रखता है। इसीसे स्वाती जलके ही लिये पपीहा रटा ही करता है। "पानी पिऊँ, पानी पिऊँ" पीऊ-पीऊ ओ पीऊ ! पानी पिऊँ, पानी पिऊँ, ऐसा चिल्ला-चिल्लाके बोला करता है। सब चातक अपने-अपने प्रेममें मतवाले होके, दिन भर बोला करते हैं, और दूसरे जलाशयमें जाके कहीं भी जल नहीं पीते हैं। यदि संयोगसे कभी स्वाती नक्षत्रमें जलकी वर्षा भी हुई, पपीहाको जल पीनेको भी खूब मिला। तो भी पीऊ-पीऊ चिल्लानेकी जो आदत, नियम, अभ्यास उसे पड़ा है, सो रटन उसका छूटा नहीं, या छूटता नहीं है। इसी प्रकार सिद्धान्तमें— पपिहा = प्रेमी, भ्रमिक, गोयी, ज्ञानी, भक्त लोगादि पारखहीन लोग अज्ञानी पक्षीकी नाईं पक्ष, हठ, पकड़-

पकड़ करके, स्वातीको = कोई अमृततुल्य परमात्मा, परमेश्वर, परब्रह्म, कर्ता पुरुष मान करके, उसको प्रसन्न करके, प्राप्त करनेके वास्ते मनमाने वैसे नाम स्मरणकर शब्द रटना, जाप कर रहे हैं। ओहं, सोहं, राम, ह्रीं, क्लीं, श्रीं, इत्यादि मन्त्र जाप, अजपा जाप, करने-करानेमें लग रहे हैं। सब षट् दर्शन—९६ पाखण्डोंके मतवादी मनुष्य, अपने-अपने मत, पन्थोंके वाणी, प्रेमसे बोल रहे हैं, कथन उपदेश नाना साधनाएँ कर-करा रहे हैं। जो यदि सुखस्वरूप स्वातीवत् माना हुआ ब्रह्म, परमात्मा, आकाशवत्, निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, अथाह, अपार है, ऐसा सिद्धान्त भी उन्हें मिला। गुरुवा लोगोंने ऐसे ही दृढ़ निश्चय भी कराये हैं। तो भी बिना विवेक, वे समझ नहीं पाते हैं, कि— यह धोखा है। पिउ = मालिक माना हुआ ब्रह्म ईश्वरादि साक्षात्कार करनेकी आशा, योग, ज्ञान, ध्यान, नाम-स्मरण आदि साधनोंका नियम, कष्ट, क्लेश अभी तक नहीं छूटी। और वह बिना पारख छूटनेवाला भी नहीं है। झूठे ही मालिक मान-मानके धोखा धारमें गोता लगा रहे हैं। अतः पारखी सद्गुरुकी सत्सङ्गमें लगके उसे परख करके, भ्रम-भूलको मिटाना चाहिये ॥ १९१ ॥

साखीः—जाकी श्रेष्ठता पूर्वते। आई चली मलीन ॥
कहहिं कबीर सो जीयरा। भया पापका पीन ॥ १९२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! संसारमें प्राचीन कालसे अभी तक भी अनन्तों नर जीव खानी-वाणीमें आसक्त पारख-हीन हुए, वा हो रहे हैं। उन्हीं लोगोंने षट् दर्शनोंके सहस्रों पाखण्ड संसारमें प्रचलित कर रखे हैं, उनमेंसे जिन-जिन मतवादियों-की श्रेष्ठता, विशेषता, महिमा पूर्व-परम्परासे ही चली आ रही है, चाहे उनमें निषिद्ध, हिंसकी, क्रूर, कुकर्म ही क्यों न होते हों, जैसे बाममार्गमें पञ्चमकार सेवन करके भैरवी चक्रमें उन्मत्त पशुवत् हो, भग-भोगमें प्रवृत्त होते हैं, और सनातनी लोग वलिदान कर, बकरा आदिको मारते हैं। यज्ञमें बहुत पशु मारते हैं। तथा मुसलमान

लोग हलाल करके गौहत्या करते हैं। चार्वाक, भौतिकवादी लोग नाना दुराचार करते हैं। तो भी बहुतेरे मूढ़ मनुष्य उन्हें ही श्रेष्ठ मानते जाते हैं। यद्यपि वह मलीन निकृष्ट है, परन्तु जैसी पूर्वसे चली आई, वैसे ही अभी भी चलाते जाते हैं, उसे त्याग नहीं करते हैं। इसीसे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं, कि— सो ऐसे मूढ़ नरजीव सब लोग हठी, शठी, पक्षपाती, अविचारी, विषयासक्त, अघकर्मी, निर्दयी, काल, कसाई, धूर्त, लम्पट, लबार होनेसे स्वार्थके कारण वे ही, पापका पीन = पाप भरा हुआ पूर्ण घड़ावत् ही हुए, अर्थात् पापियोंमें अग्रगण्य महान पापी, दुष्ट, दोषी ही भये हैं। पाप कहिये जड़ाध्यासका दोष, वही उनके हृदयमें परिपुष्ट भया, और हो रहा है। अतः वे ही चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़के सदा दुःख ही भोगते रहते हैं, बिना विवेक ॥ १९२ ॥

साखीः— कबीर अक्षर बोलते। होय अकार अनुसार ॥
अकारके बेकारको। मूढ़ कहैं कर्तार ॥ १९३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! जीवरूप मनुष्योंके बोलनेसे ही मुख, दन्त, ओष्ठ, कण्ठ, तालू आदि स्थानमें स्पर्श होकर ५२ अक्षर उच्चारण होके, वैखरी वाणीसे प्रगट होते हैं। फिर उसमें अ, उ, म, अर्ध और अनुस्वार-बिन्दु, विसर्गः, ये पञ्च मात्राएँ यथा स्थान मिलाकर, अकार = शब्द या वाणीकी स्थूलाकार होती है। सो उसी नरजीव कल्पित वाणीसे वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल आदि नाना ग्रन्थ, पन्थ बनाये हैं। फिर उसी कथनके प्रमाण अनुसार सब नरजीव चलने-चलाने लगे, नाना साधनाएँ करने-कराने लगे। और उसी कल्पित, अकार = स्थूलाकार वाणीका विकार = विषय, मैला, कचरारूप ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा आदि मानन्दी करके, मूढ़ = अविचारी, बेपारखी, बुद्धिहीन, पक्षपाती गुरुवा लोग उसी वाणीके विकार ब्रह्म आदिको नेत्र मूँदके जगत्कर्ता, परम-पुरुष, सुख-दुःखोंका दाता इत्यादि कहते हैं, झूठी महिमा बढ़ाते हैं।

अतः वे ही कृतमको कर्ता कहनेवाले महा नास्तिक बने हैं। यदि ब्रह्म, ईश्वर, सत्य होते, तो वाणी कहे-सुने बिना भी सबको वे प्रत्यक्ष होना चाहिये था, किन्तु, ऐसा नहीं होता हैं। वाणी कह-सुनके ही उनकी महत्त्व होती है। अतः वाणी, ब्रह्म, ईश्वरादिके स्वयं कर्ता मनुष्य-जीव ही हैं। ऐसा न जानके मूढ़ोंने शब्द विकारको ही कर्ता पुरुष ठहरा रखा है, सो महा भूल है। सत्सङ्ग द्वारा परख करके वह भूल-भ्रमको मिटाना चाहिये॥ १९३॥

साखीः— अक्षर औ निःअक्षरहीं। बोलेते संयोग॥
जो मुख परा सो जूठा। काग श्वानका भोग॥ १९४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! बोलनेमें मुख, जिभ्या, कण्ठ, तालु आदि स्थानोंका संयोग-सम्बन्ध या मेल पायके बोलनेसे कवर्ग, च, ट, त, प, और श वर्ग; अ वर्ग आदि सब ५२ अक्षर पञ्च मात्रा, सन्धि आदि प्रगट होते हैं। फिर उसीके वियोग पायके निःअक्षर, अवाच्य, शून्य होता है। और फिर अक्षर ब्रह्म प्रणवरूप ॐकार कहना तथा निःअक्षर ब्रह्म, अनहद, निरञ्जन, श्वासरूप परमेश्वर, ज्योतिस्वरूप परमात्मा है, इत्यादि कथन करना, वह दोनों ही— चाहे अक्षर ब्रह्म कहो, चाहे निःअक्षर ब्रह्म कहो, सो मुखद्वारा बोलनेसे वाणीका संयोग पायके ही सिद्ध होती है। अतः वह सिर्फ शब्दके सिवाय और दूसरा कोई पदार्थ नहीं है। और जो चीज किसीके मुखमें पड़ा और निकला, थूका, अथवा अपच होनेसे उल्टी भयी, बमन गिरी, सो जूठा, अपवित्र, त्याज्य होती हैं। उसे तो काग वा कुत्ते आदि नीच जीव ही प्रसन्न होके खाते, भोगते हैं, दूसरे नहीं। तैसे ही जो-जो वाणी नरजीवोंके मुखसे निकल पड़ी, वेद, वेदान्त, शास्त्र, आदि सो सब थूक, बमनवत् जूठा, उच्छिष्ट, त्याज्य सरासर झूठा ही है। किन्तु, काग = अविचारी, बकवादी गुरुवा लोग, और श्वान = स्वार्थी पण्डित लोग आदि उन्हींका वह भोग्य, ग्राह्य हो रहा है। सच्चे हंस पारखी मनुष्य ऐसे जूठी और

झूठी वाणीको कभी ग्रहण नहीं करते हैं। वाणी, खानीको त्याग करके पारख स्वरूपमें ही सदा शान्त, स्थिर हो, रहते हैं। उन्हीं पारखी सन्तोंका बोध लेकर, अपना कल्याण करना चाहिये ॥ १९४ ॥

साखीः— कबीर यह श्वासा सहित। पाँच तत्त्वकी देह ॥
इस्थापन श्वासा करै। तेहि देह गेह सो नेह ॥१९५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे नरजीवो! चैतन्य जीवकी सत्ता-सम्बन्धसे पञ्च प्राण, सूक्ष्म देह, तथा यह नाभि, नासिका मध्यमें श्वासोच्छ्वास क्रियासे चलनेवाली श्वास वायुसहित पाँच तत्त्वकी कार्यरूप प्रत्यक्ष यहाँ स्थूल देह कर्म वेगसे बनी है। किन्तु, चैतन्य जीव, शरीर तथा श्वास आदिसे सदा विजातीय न्यारा ही रहता है। परन्तु पारखबोध बिना कोई योगी, ज्ञानी आदि लोग तो साधना द्वारा अर्धकी श्वासको उर्ध ब्रह्माण्ड भ्रमर गुफामें ले जाके, लय करके स्थापन करते हैं। तहाँ आनन्द होता है, सो जड़ देहकी भास उसी शून्य वृत्तिको सच्चिदानन्द ब्रह्म स्थिति निज गृह मानके कितनेक लोगोंने, नेह = प्रीति लगाये और गाफिल जड़ाध्यासी भये हैं; और कोईने प्राण वायुरूप जड़ श्वासको ही ईश्वरका स्वरूप वा अपना स्वरूप मान करके, विश्वास स्थापन किये हैं। कोई देहवादीने यही स्थूल देहको ही सत्यस्वरूप माने हैं। तत्त्ववादीने पाँच तत्त्वोंको ईश्वर माना है। शून्यवादोने शून्यको ही सत्य माने हैं। और विषयी लोगोंने पञ्च विषयोंको ही श्रेष्ठ माने हैं। वे सब इसी नाशवान्, देह, स्त्री, पुत्रादि, घर-बार आदिमें अति स्नेह, मोह, आसक्ति टिकायके जड़ाध्यासी हों, भवबन्धनोंमें गिर पड़े और पड़ रहे हैं, बिना पारख ॥ १९५ ॥

साखीः— त्रिदेवादि आचार्य सब। नेति कहै अवशेष ॥
नेति शब्द अकाश गुण। शेष अकाशहि देख ॥१९६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो!, त्रिदेवादि = ब्रह्मा,

विष्णु, महेश एवं सनकादि, भृगु, अङ्गिरादि, सप्तऋषि, और व्यास आदि प्रथम जितने भी वेद-वेदान्तके आचार्य हो गये, उन सबोंने ब्रह्मज्ञानका निर्णय करते-करते, वेद पढ़ते-पढ़ाते अन्तमें अवशेष = बाकी रहनेवाला अवशिष्ट एक ब्रह्म ही सत्य है, परन्तु, नेति = उसके इति वा अन्तका पता कुछ नहीं लगता है। वेदोंने भी परमात्माके गुणानुवाद करते-करते आखिरीमें 'नेति-नेति'—इतना ही मात्र गुण नहीं, उसकी इति नहीं, बेअन्त, अपार है, ऐसा कहा है। सोई गुरुवा लोग कह रहे हैं। फिर उन्हीं लोगोंने शब्दको आकाशका गुण माने हैं। अथवा शब्द गुण तो समान-विशेष वायुका ही है। तब 'नेति-नेति' कहा हुआ ब्रह्म भी शब्दका विषयमात्र ही हुआ। चाहे तुम उसे, शेष = बाकी, सर्वश्रेष्ठ, ब्रह्म, निराकार, निरञ्जन आदि कुछ भी महिमा बढ़ायके कहो, परन्तु तुम्हारा ही पूर्व कथनसे आकाश वा वायुका गुण शब्द ठहरनेसे शब्दका विषय आकाशवत् व्यापक माना हुआ ब्रह्म भी शून्य, मिथ्या धोखा ही हुआ। शेषमें आकाशको ही देख लो, वह कैसा शून्य अवस्तु है। बस, आत्मा, ब्रह्म भी आखिरमें वैसे ही असार साबित होनेसे तुम्हारा सब ही साधन, प्रयत्न, निष्फल वा व्यर्थ हो गया। यदि कल्याण चाहते हो, तो उस धोखाको परखके छोड़ो। गुरु पारखके विचारमें लागो ॥१९६॥

साखीः— शेषजादि बल शेषके। चादर ओढ़ी झीन ॥
जाड़ेते दूबर भई। कहै भई मैं पीन ॥ १९७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और जैसे कोई विशेष देह-बल वा धन, इज्जत आदि श्रेष्ठताके अभिमानसे, बारीक मलमल आदिकी चादर ओढ़ै। ठण्डके दिनोंमें शीतसे ठिठुरके दुर्बल हो जावे, तो भी ऐसा कहै कि— अब तो मैं बड़ा सुखी परिपुष्ट हो गया हूँ! तो वह उल्टी कहनेवाला मूढ़ वा स्वार्थी ही कहलायेगा। तैसे ही, शेषजादि = पारखहीन ब्रह्मवादी गुरुवा लोग ज्यादे ही हंकारी बने हैं। बल शेषके = ब्रह्मज्ञानके कल्पनाका बल पकड़के, बड़े उन्मत्त

पक्षपाती भये और हो रहे हैं। इसीसे उन्होंने, चादर ओढ़ी झीन= झीनी मायारूपवाणी कल्पनाकी मानन्दी अपने ऊपरमें ओढ़ लिये, तो "अहं ब्रह्मास्मि" कहते भये। दशों दिशामें मैं परिपूर्ण व्यापक हूँ, ऐसी बड़ी लम्बी झीनी चादर ओढ़के मगन भये। परन्तु, जाड़ेते दूबर भई=चैतन्यताको छोड़कर जड़स्वभाव धारण किये, तहाँ जड़ाध्यासी बद्ध होके ठिठुर गये, दुर्बल, असक्त, दूबले, पतले, बुद्धिहीन, भ्रमिक ही हो गये। तो भी अनसमझ, पक्षपात, प्रतिष्ठाके कारणसे वे गुरुवा लोग कहते हैं कि— अब हम, पीन=परिपुष्ट, सर्वश्रेष्ठ स्वयं ब्रह्म बन गये हैं, अथवा हम पूर्ण ब्रह्ममें मिल गये, तदाकार हो, कृतकृत्य, मुक्त हो गये, इत्यादि कथन कर महाधोखा, गाफिलीमें पड़े हैं। बिना पारख खानी, वाणीके जड़ाध्यासी हो, सब जीव भवबन्धनमें पड़े और पड़ रहे हैं। अतः परखके उसे त्यागना चाहिये ॥ १९७ ॥

साखीः— कबीर नोखी नौनिया । बास नहरनी लीन्ह ॥
नख जटा देह बढ़ायके । आतम ढुङ्गन कीन्ह ॥१९८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे जिज्ञासुओ ! जैसे अच्छा नाऊ (हजाम) की स्त्री— नाऊनी, बाक्समें नहरनी, महावर, रङ्ग, इत्यादि सामान लेके, यजमानोंके घर जा-जाकर स्त्री आदिका हाथ, पैरोंके नाखून काट-काटकर, रङ्ग लगा देती है। उसी धन्धासे मजूरी लेके, पेट पालती है। उसी प्रकारसे मतवादियोंने भी अपने-अपने एक-एक धन्धा उठाया है। कबीर=संसारी नरजीवोंको ठगनेके लिये, नोखी=अनोखी, अच्छी, चतुर-चालाक, धूर्त बने हुए, नौनिया= नाऊ गुरुवा लोगोंके नारीवत् उनके अनुयायी योगी, ज्ञानी, भक्त, कर्मियोंने अपने स्वार्थसिद्धिके लिये वेद, शास्त्रादिके नानावाणी पढ़-पढ़ा करके फिर, बास नहरनी लीन्ह=वासनारूपी औजार हाथमें या साथमें लिये अर्थात् ब्रह्म-वासना ईश्वर, आत्मा, खुदादि-वासना सात स्वर्ग, सात आशमानपर तख्तकी वासना, ऋद्धि-सिद्धि आदिकी

नाना वासना वही नहरनी पकड़के नाखूनरूप द्वैत जगत्की कल्पना निकालनेके लिये श्रवण, मननादि कर-कराके साधन चतुष्टय साधनेका प्रयत्न करने लगे। कोई तपस्वी साधक-सिद्ध भये, तो किसीने हाथ, पैरोंमें लम्बे-लम्बे नाखून ही बढ़ाय लिये, किसीने शिरमें पञ्चकेश, बड़ी-बड़ी जटाएँ, लटाएँ, दाढ़ी, मूँछ आदिका बाल ही बढ़ा लिये, कोई सर्वाङ्गमें राख लगाके खूब मैल बढ़ा लिये, कोई जिभ्या बढ़ानेवाले, तो कोई लिङ्ग बढ़ानेवाले भये। किसीने कान फड़ाये, नाक छेदाये, कङ्कण पहिने, इत्यादि प्रकारसे देहमें सारा विकार ही विकार बढ़ाय करके, विकारके तो खानी ही बन गये। मनमें काम, क्रोधादि वासना बढ़ायके जड़ाध्यासी हो गये। अन्तमें जब वेदान्ती भये, तो आतम टुङ्गन कीन्ह=व्यापक एक आत्मा निश्चय करके दृश्य जगत् मिथ्या, भ्रम, कल्पनामात्र है, यही नख निकालके स्वयं अद्वैत व्यापक ब्रह्म बने। वही जगत् द्वैतके टुकड़ाको टुङ्गन या विनाश करके अद्वैत आत्मा ठहरा लिये। मजूरीमें लोगोंके तन, मन, धनादि, हरण करके मौज करने लगे। ऐसे वे धूर्त गुरुवा लोग कपटके चाल चल रहे हैं। नाना प्रकारसे रोचक, भयानक वाणी सुना-सुनाके मनुष्योंको भुलाय भ्रमाकर अपना ढोंग फैलाके स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। उन्हें कपटी काल जानकर, उस जालसे निकल जाना चाहिये ॥ १९८ ॥

साखीः— युगयुग जो यह सम्प्रदा। श्री व शङ्करी दोय ॥
श्री सों वादी शक्तिके। शङ्करी शिवके होय ॥१९९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! यह नाना सम्प्रदाय, मत, पन्थ, फिरके, पाखण्ड, आदिका विस्तार तो संसारके बीच-बीचमें ही होते चले आये हैं। नहीं तो युगान-युग सनातन या अनादिसे जड़ तथा चैतन्य, प्रकृति और पुरुष, नर-नारी ऐसे, युग-युग= दो-दो जोड़ा साथ ही चला आ रहा है। उसीसे, श्री=लक्ष्मी, माया, प्रकृति, धन आदि स्त्रीके भागमें विस्तार हुआ है। उसीमें एक

सम्प्रदाय श्रीवैष्णव, लक्ष्मीनारायणके उपासक निकले हैं। और शङ्करी=शिव, शङ्कर, पुरुष, आदि नरजीवके भागमेंसे विस्तार हुआ। उसीमें दूसरा सम्प्रदाय शैव, जङ्गम, योगी, संन्यासी आदि शिव-पार्वतीके उपासक बने हैं। संसारमें या भारतवर्षमें मुख्य करके श्रीवैष्णव तथा शैव, शङ्कर-भक्त यही दो सम्प्रदायोंका जोर-जुल्म ज्यादातर चल रहा है। बहुत लोग उनके अनुयायी फौज बने हैं। उसमें श्रीसम्प्रदायवादी मुख्य श्री, माया, वैष्णवो शक्तिरूप स्त्रीके ही उपासना करनेवाले होते हैं। उन्हें प्रकृतिवादी ही जानिये। दूसरे-शङ्करी मतवादी मुख्य लिङ्ग पूजक, शङ्कर, शिव, पुरुषरूपसे ब्रह्म मानन्दी करनेवाले होते हैं। सारे अद्वैतवादी संन्यासी इसी मतमें आ जाते हैं। शैवमें दो भेद हैं— एक दक्षिण-मार्गी शुद्ध-चाल-वाले वेदान्ती आदि होते हैं। दूसरे बाममार्गी पञ्चमकार सेवन करनेवाले अशुद्ध, मलीन, शक्ति उपासक-तान्त्रिक आदि होते हैं। दूसरे वैष्णवलोग द्वैतवादी होते हैं। इस प्रकार श्री=शक्तिवादी स्त्री-भक्त और, शङ्करी=शिववादी पुरुष-भक्त, दोनों ही विषयासक्त जड़ाध्यासी हुए और हो रहे हैं। अतः उन दोनोंका मत मुमुक्षुओंके लिये त्याग करने योग्य है, विकारी है, ऐसा जानना चाहिये ॥१९९॥

साखीः— श्री व शङ्करी सम्प्रदा। बिन गुरु नाहीं कोय ॥
कहहिं कबीर गुरुसम्प्रदा। शरण गये सुख होय ॥२००॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे मनुष्यो! श्रीवैष्णव द्वैत मायावादी तथा शङ्करी=शैव अद्वैत पुरुषवादी उन दोनों सम्प्रदायोंके संस्थापक विष्णु और महेश गुरुवा भये हैं, परन्तु गुरु पारखके बोध बिना वे निगुरे भ्रमिक ही बने थे। उनके सम्प्रदायमें कोई किसीको भी पारख स्वरूपका बोध नहीं है। यद्यपि मोटीरूपसे बिना गुरुके तो कोई भये नहीं हैं, सबके एक-न-एक गुरु भये हैं, या गुरु माने गये हैं। तथापि वे सब बेपारखी होनेसे गुरुपदके अधिकारी नहीं हैं, बन्धनदाई गरुवा काल ही बने और बन रहे हैं। पारखी

सद्गुरुके बिना उनमें लगके किसी मनुष्यका कल्याण नहीं हो सकता है। अतएव जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा निर्णय करके सत्य न्यायसे यही जीव ही सत्य है, अन्य मानन्दी मिथ्या है, ऐसा यथार्थ पारखबोध सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने निष्पक्ष होके परखाये, लखाये हैं। सारशब्दसे सब सारासार सिद्धान्तका निर्णय कहे हैं। अतएव वही पारखी सद्गुरुका मुक्तिदाई मार्ग या सम्प्रदाय है। सत्य बोधदाता पारखी सद्गुरु बन्दीछोरकी शरण, सत्सङ्गमें जो गये, उनके सब भ्रम, बन्धन छूटके सुखी जीवन्मुक्त होते भये। और अभी उन्हीं पारखी सद्गुरुके पारखज्ञान बोधदाता परम्परागत पारखी सन्त सद्गुरुके जो जिज्ञासु शरण, ग्रहण, सत्सङ्ग विचार करते हैं, उन्हें भी शान्ति, सुख, जीवन्मुक्ति प्राप्तिका लाभ ही हो रहा है। भविष्यत्में भी जो कोई पारखी गुरुके ज्ञान लेके शरणागत होवेंगे, वे भी भ्रम, भूलसे छूटकर सुखी मुक्त ही होवेंगे। अतः उन्हीं पारखी साधु गुरुके शरण, सत्सङ्गमें लग करके पारखबोध प्राप्तकर सुखी होना चाहिये ॥ २०० ॥

साखीः—कबीर अव्या ईशकी। हतत कहैं सब कोय ॥
अव्याकृत बिन ईशता। कहु पण्डित किमि होय? ॥२०१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! सब कोई वेद, शास्त्रज्ञ पण्डित गुरुवा लोग ऐसा कहते हैं, कि— ईश्वरकी अव्या = माया, उपाधि, विषय आदि, हतत = अत्यन्त विनाश हो गयी है। अर्थात् ईश्वर मायासे परे, मन, बुद्धि, वाणीसे परे, निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, सर्वव्यापक है। सब कोई मतवादी, ईश्वरादिके बारेमें ऐसे ही असम्भव महिमा, कथन करके कहते हैं। परन्तु ठीकसे विचार करो कि— अव्याकृत = मन-मायाकृत वाणी, कल्पना और ज्ञान, श्री, ब्रह्माण्डता, यश, विद्या, और बल ये षट्गुण ऐश्वर्यरूप मायाके उपाधि बिना ईश्वरता कहाँसे, कैसे सिद्ध होगी? जब वह षट् गुणवाला ईश्वर है, तथा वाणीद्वारा ही जाना जाता है, माया, मन, वाणी, बुद्धि आदिसे परे वह कैसे भया? वह तो उसी मायाके

भीतर ही ठहरा। हे पण्डित! अव्याकृत = मायाके वेष्टन बिना ईशकी ईशता कैसे साबित हो सकती है? सो कहो! अतः वह माना हुआ निराकार ईश्वर ही तुम्हारे मनकी कल्पना है। वह कल्पना करनेवाले देहधारी नरजीव ही श्रेष्ठ हैं, ईश्वरादि कल्पना श्रेष्ठ नहीं है, ऐसा जानो ॥ २०१ ॥

साखीः— अव्यागत जो विष्णुकी । लक्ष्मी काके सङ्ग ॥
जेहि चाहै सकल जग । अव्याकृतको अङ्ग ॥२०२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! विष्णु भी माया मोहके वशीभूत भवबन्धनमें ही पड़ा था। जो यदि ऐसा कहो कि— आदि नारायण, वैकुण्ठपति महाविष्णुकी तो, अव्या = माया-मोहका विकार सम्पूर्ण ही, गत = विनाश हो गई थी, वे मायासेरहित रहते हैं। निराकार, निर्गुणरूपमें रहते हैं, व्यापक हैं। तो यह बताओ कि— समुद्र गुप्तकी पुत्री श्री वा लक्ष्मी किसकी स्त्री थी? वह सदा किसके सङ्ग साथमें रहती थी? वह मुख्य माया-मोहिनी विष्णुके साथमें ही तो रहती रहीं। फिर जिसकी स्त्री साथमें हो, वह निराकार और माया त्यागी कैसे हो सकता है? और सकल जगत्के नरजीव जिस विष्णुको वा लक्ष्मीको चाहते हैं, सो विष्णु अव्याकृत = माया-रूप लक्ष्मीके कर्तव्य कार्य मोहके अङ्गमें ही घुला-मिला हुआ, आसक्त पड़ा रहा। अतः मायाके सहित अध्यासी जीव ही विष्णु नामधारी हो भवबन्धनमें पड़ा रहा ॥ २०२ ॥

साखीः— कबीर औ महादेवकी । अव्यागत जो होय ॥
नगन रहै डर कौनके । गिरिजा कांकी जोय? ॥२०३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! पूर्वमें मनुष्य जीव एक महादेव नामसे प्रसिद्ध भया है, सो भी माया, मोहमें आसक्त बद्ध ही भया था। यदि उसके अनुयायी शैव लोग कहैं कि—अजी! महादेव तो मायाके त्यागी थे, उनकी तो माया विकार

छूट गयी थी। तो सुनो! जो यदि महादेवकी, अव्यागत = माया विकार निवृत्त भयी थी, वे मायासेरहित थे, तो गिरिजा = पर्वतोंके राजा हिमालयसिंहकी पुत्री, उमा या पार्वती किसकी स्त्री थी? वह सदा किसके गृह वा गोदमें रहती थी? गणेश, कुमार, किसके पुत्र थे? पार्वती उसी महादेवकी ही तो स्त्री अर्धाङ्गिनी रहीं, फिर वे मायासे रहित कैसे भये? और दिन-रात नग्न, दिगम्बर हो, ऋद्धि-सिद्धिकी आशासे तपस्या करते रहे, यदि वे त्यागी थे, तो किसके डरसे नङ्गे पड़े रहते थे? मायारहित होवे, तो इतनी उपाधि क्यों लगती? अतः तमोगुणी महेश काम, क्रोध, लोभ, मोहादिमें ग्रसित हो, विषयासक्तिसे भवबन्धनमें ही जकड़ पड़े। बिना पारख मूढ़ लोग ही ऐसोंका महिमा करके भूलते और भुलाते हैं॥ २०३॥

साखीः— कबीर मोहिनी देखिके। हा! हा! शङ्कर कीन्ह॥
कहहिं कबीर यह लक्षणा। अव्याहतको चीन्ह॥२०४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! पुराणोंमें लिखा है— अमृत बाँटनेके लिये विष्णुने कपटरूपसे सुन्दरी, मनमोहिनी स्त्रीका स्वरूप बनायके, दैत्योंको छल-कपट करके, सुरा पिलायी, देवताओंको अमृत पिलायी थी। यह बात सुनकर पार्वतीसहित शङ्कर विष्णुसे मिलनेको गये। मिलकर पुनः वह मोहिनीका स्वरूप दिखानेके लिये विनयपूर्वक कहा। फिर बहुत कहने-सुननेपर विष्णुने छिपकर वैसे ही मनमोहिनी स्त्रीका रूप बनायके सोलहों शृङ्गारयुक्त सुन्दररूप दिखाये। तब उस मोहिनी रूपको देखके शङ्कर बिलकुल कामासक्त बेकाबू हो गये, सुधि-बुधि हेराय गयी साथकी पार्वतीको भी छोड़कर निर्लज्ज हो, हाय प्रिये! हाय प्रिये! चिल्ला-चिल्लाकर उस मोहिनीके पीछे दौड़ पड़े, वह भागी, तो और भी हाहाकार मचाके व्याकुल हो, उसी तरफ भागे। कामासक्तिके कारण रास्तेमें ही उनका वीर्यपात हुआ, और गिर पड़े, तब ठण्ढे पड़े, तो हाय-हाय करके शोक करने लगे। फिर पीछे विष्णुको

असलीरूपमें अपने पास आया हुआ देखके बहुत लजाये । बड़ी फजीहत हुई । यह कथा भागवत आदिमें विस्तारसे लिखा है । इस प्रकार मोहिनी पर-स्त्रीको देखनेसे ही शङ्कर काम-पीड़ित होके हाहाकार किये, अनुचित बर्ताव किये । पारखी सन्त कहते हैं— क्या यही ऐसा ही लक्षण मायाको जीतनेवालोंका होता है ? कभी नहीं ! यह लक्षण तो महाविषयासक्त कामी मायामें डूबे हुए वालोंका होता है । अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके निर्णय पारखी सन्त कहते हैं कि— अव्याहत = मायासेरहित, जिसका माया विकार नाश हो गयी, उसका यह ऐसा लक्षण वा चिह्न होता नहीं । विषयासक्तको तो मायाका दास, स्त्रीका गुलाम ही जानना चाहिये ॥ २०४ ॥

साखीः— अव्याहत जो रामकी । सीता अर्ध शरीर ॥
अव्या बिन कैसे भये । दशरथ सुत रघुवीर ॥२०५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! राजा रामचन्द्र भी माया-मोहके महाजालमें ही फँसे पड़े थे । रामचन्द्रको जो लोग मायासे परे ब्रह्म बताते हैं, वे लोग यह बतावें कि— अगर रामचन्द्रकी, अव्याहत = माया विनाश हो गयी थी, मायासे वे रहित थे, तो सीता या जानकी अर्धाङ्गिनी नारी किसकी स्त्री भयी ? जनकपुरमें जाके रामने सीतासे विवाह किया, तो सीता अर्ध-शरीरसे अर्धाङ्गिनी रामकी ही स्त्री कहलायी । वनवासमें सीताहरण होनेपर रामचन्द्र माया-मोहसे अत्यन्त अधीर होकर रो-रोके वृक्षोंकी डाली-डाली, पत्तोंतकसे पूछते फिरे, ऐसा वर्णन है, इतने अज्ञ होते भये । और उसी कारणसे रावण कुलका विनाश किये । फिर वे मायासे रहित त्यागी कैसे भये ? मायाके आसक्ति अज्ञान यही; अव्या = अध्यास अविद्याके बिना फिर कैसे वे दशरथ महाराजाकी स्त्री कौशल्याके गर्भसे पुत्र होके उत्पन्न हुए ? तथा रघुकुलमें शूर, वीर, लड़ाका, योद्धा आदि प्रसिद्ध भये, सो माया विकारके बिना कैसे

भये ? अतः वे माया-मोहमें लिप्त मायाके रूप ही थे। अध्यासवश आत्मा राम बनके, चौरासी योनियोंमें ही रमे थे ॥ २०५ ॥

साखीः— पूर्ण ब्रह्म कृष्ण जो। अव्याहत किमि कीन्ह ? ॥
नाचि रिझायो गोपिकन। अव्याहतको चीन्ह ॥२०६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! कृष्ण तो और भी महान् माया-मोहमें ग्रसित रहे। जो यदि कृष्णके भक्त लोग उनको बालब्रह्मचारी, पूर्णब्रह्म, परमात्मा, चराचरमें व्यापक, शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जन, इत्यादि विशेषण करके मानते हैं, तो यह बताओ कि, कृष्णने, अव्याहत = माया विकारका नाश कैसे किया ? छोटेपनसे तो कुसङ्गमें लगा रहा, चोरी, बदमाशी, ठगायी, धूर्तायी कर-करके बड़ा हुआ, तो जवानीमें बन-ठनके, गोपिकन = ग्वालोंकी स्त्रियाँ, बहु, बेटियोंको छल, बल, कपटसे वशमें करके नाना विधिसे नटके समान नाच-नाचके हाव, भाव, कटाक्ष, करके रिझाये, उन्हें खुश या प्रसन्न करके भग-भोग भोगके व्यभिचार भी खूब किया। राधा तो कृष्णकी प्यारी स्त्री रही और आठ पटरानी रहीं। सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियोंसे कृष्ण विषय-भोग करते थे, ऐसा भागवत आदिमें लिखा है। और बाहरके व्यभिचारकी तो गिनती ही नहीं। जब इतना बड़ा पूर्ण कामासक्त भग-लम्पट हुआ; अब बताओ, अव्याहत = माया-मोहसेरहित असङ्ग पूर्ण त्यागीका चिह्न या लक्षण कहाँ हो सकता है ? कभी नहीं। यदि ऐसा होता, तो फिर सारे संसारी लोग भी मायासेरहित होते। किन्तु, कृष्ण बड़ा भोगी, बिलासी रहा। वास्तवमें ब्रह्म बनके जड़ाध्यासवश, चौरासी योनियों-में ही रमा, बिना पारख ॥ २०६ ॥

साखीः— कबीर दश अवतारकी। अव्याहत जो होय ॥
जग उत्पत्ति पालन प्रलय। बिन अव्या न होय ॥२०७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! संसारमें दश अवतार मुख्य माने हैं, सो मच्छ, कच्छ, वराह, नृसिंह, वामन,

परशुराम, राम, कृष्ण, बौद्ध और निःकलङ्की, ये माने हुए ईश्वरके दशों अवतार भी जड़ाध्यासी हो, माया जालमें ही अरुझे पड़े थे। जो यदि युक्त दशों अवतारोंकी, अव्याहत=माया जाल विनष्ट या माया बन्धनसेरहित हो गये होते, तो फिर बिना अध्यास वासनाके संसारमें उत्पन्न होकर जन्म ही न लेते। जब जगत्में उत्पन्न हुए, तो उनका पालन-पोषण हुआ, फिर समय पायके नानाकर्म करके मर गये, सोई प्रलय हुआ, सो बिना अव्यारूप मायाके सङ्ग, साथ हुए कभी उत्पत्ति, पालन, प्रलय, तथा जन्म, मरण, गर्भवासमें जाना-आना नहीं होता है। माया, काया, कल्पना, विषय, अध्यासवश ही आवागमन होता है। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक शब्द ८ में कहा है:—

"सन्तो ! आवै जाय सो माया ॥ दश अवतार ईश्वरी माया। कर्ता कै जिन पूजा ॥ कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! उपजै खपै सो दूजा ॥" ॥ बीजक पूरा शब्द ८ ॥

और गुरुवा लोगोंने वेद-शास्त्रोंमें चराचर जगत्का उत्पत्ति, पालन, प्रलय, एक ईश्वर कर्ताके अधीन होना वर्णन किया है। सो मिथ्या कल्पना ही है। तहाँ भी मायासेरहित अकेला ईश्वर ऐसा कर ही नहीं सकता है ? जब चौरासी योनियोंमें आके दश अवतार धारण किया, तो माया बन्धनके सहित ही ठहरा। अतएव वे सब माया जालमें लिपटे हुए चौरासी योनियोंके जीव हैं। झूठे ही महिमा बढ़ाये हैं। कोई बिरले ही पारखी सन्त माया जालसेरहित होते हैं, सोई सच्चे त्यागी जीवन्मुक्त होते हैं ॥ २०७ ॥

साखीः— चितवन करन जगतकी । ज्यों लों नहीं अति अन्त ॥
कहहिं कबीर पुकारिके । तौं लों होय न सन्त ॥२०८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! जबतक जगत्का पञ्चविषय, पञ्चकोश, खानी और वाणी जालके तरफसे चित्त-चिन्तन, मनन, सङ्कल्प-विकल्प, सोच, फिकर, चिन्ता, वासना, मानन्दी करना छोड़ा नहीं जाता है, अध्यास त्यागा नहीं जाता है,

संस्कार मिटाया नहीं जाता है, तबतक बन्धन मिटता नहीं है। अर्थात् संसारके भूत, भविष्य, वर्तमानका विषय चिन्तन तथा कर्तव्य करना, जबतक अत्यन्त अन्त, अभाव, त्याग, विनाश, वा शान्त नहीं होता है। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त पुकारके कहते हैं कि— तबतक वह पुरुष सच्चा सन्त, पारखी, जीवन्मुक्त कदापि नहीं हो सकता है। क्योंकि, मनके अध्यास चिन्तनादि ही जीवको बन्धन है। बाहर देखानेको भेष तो खूब बनाया, त्यागी पारखी जैसा नकल भी किया, चतुराईसे परोक्षवाणी भी सीखा, शब्द, साखी, पद, कथा आदि याद भी किया, जनतामें उपदेशक, प्रचारक, लेखक, और गुरु भी बना, किन्तु, जगत्का चिन्तन करना नहीं छोड़ा, अध्यासको नहीं मिटाया, तो अभी वह भवबन्धनमें ही पड़ा है, सच्चा अपरोक्ष पारखी सन्त भया नहीं है, ऐसा जानना चाहिये। अतः मुमुक्षु सन्तोंको चाहिये कि, गुरु विचार अभ्यास बढ़ायके सद्गुण रहनी सहित पारख स्वरूपमें स्थिर रहकर चित्त चिन्तनादि अध्यासको समूल मिटाना चाहिये। पूरा सन्त होकर शान्तवृत्ति बनाकर जीवन्मुक्त हो जाना चाहिये। यही मुख्य कर्तव्य है ॥ २०८ ॥

साखी:— कबीर कर्ता ईशको। वेद कहै गुण गाय ॥
जाकी अव्याहत भई। परे सो तासु बलाय ॥२०९॥

टीका:— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे नरजीवो! कल्पनासे कोई एक ईश्वरको जगत्कर्ता स्वतन्त्र ठहराकर वेदवादी लोग वेद प्रमाणसे उसका गुणानुवाद गाय-गायके कहते हैं कि— परमेश्वर कर्ता पुरुष है, वह निराकार, निर्गुण, अगम, अगोचर, मायासे परे अमाया, अकाया, पूर्ण व्यापक है। इत्यादि विशेष गुण गायके कहे हैं। और जिसका, अव्याहत = माया विकार नाश हो गया है, तो फिर सो ईश्वर उसी माया-जालके, बलाय = उपाधि, झंझट आदिमें पड़कर जगत्की उत्पत्ति, प्रलय आदि क्यों किया करता है? माया

रहितको ऐसे उपाधिमें पड़नेका क्या काम ? अगर ऐसा कहो कि— अव्या = मायाका, हत = नाश नहीं होता है, वह बड़ी बलवती अव्याहत = न रोकने योग्य, जबरदस्त, अचिन्त्य-शक्तिवाली है। जिस ईश्वरकी माया ऐसी दुर्धर्ष है, तो सो माया फिर उसी ईश्वरके ही शिरपर चढ़ी और उसे, बलाय = जन्म, मरण, गर्भवास, त्रयतापादि बवाल नाना दुःखोंमें खैंचके डाल दी और डाल रही है। अतः विचार करो, माना हुआ ईश्वर वा ज्ञानी मायारूप इच्छा बन्धनसे रहित नहीं हुए। इसीसे चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़े। मन-मानन्दी, इच्छा-वासना मिटाये बिना मुक्ति हो नहीं सकती है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २०९ ॥

साखीः—काम बिगारै भक्तिको । ज्ञान बिगारै क्रोध ॥
लोभ बिगारै वैराग्यको । मोह बिगारै बोध ॥२१०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! काम = कामना, विषय भोगकी इच्छा, उत्पन्न होनेपर वह शुद्ध गुरुभक्ति, बोधभावको, पवित्रता, स्थिरता आदि मुक्तिके दश गुणको एकदमसे बिगाड़के नष्ट-भ्रष्ट, खराब कर देता है। अथवा कामी कृष्णने शुद्ध भक्ति चैतन्यभावको बिगाड़ कर कल्पित पूर्ण ब्रह्म स्वयं बना, और उसने गीता बनाया। फिर मनमाने भग-भोग करके बहुतेरे कुल वधुओंको बिगाड़ा, अब उन्हींके मतानुयायी कृष्ण-भक्ति विषय विरहके चरित्र प्रचार कर-करके भक्तिको बिगाड़कर खराब कर रहे हैं। तथा क्रोध, द्वेष, दुश्मनी प्रगट होनेपर वह शुद्ध ज्ञानको बिगाड़के तामसी अज्ञानी अविचारी बना देता है। अथवा महादेव संसारमें ज्ञानी, योगी तो कहलाये, किन्तु क्रोध करके उन्होंने ज्ञानको बिगाड़ दिया। शङ्कर कामी, क्रोधी, दोनोंमें प्रवीण रहा, बहुत दुराचार किया, बहुतोंको मारा, मरवाया। इससे निज चैतन्य जीवके ज्ञानको बिगाड़ डाला। अब उसके अनुयायी योगी, संन्यासी लोग भी क्रोध कर-करके ज्ञानको बिगाड़ रहे हैं। शङ्करने लिङ्ग पुजायके भक्तिको भी बिगाड़के

खराब कर दिया। तैसे ही लोभ उत्पन्न होनेपर वह त्याग-वैराग्यको एकदमसे नष्ट करके बिगाड़ देता है। लोभ होनेपर वैराग्य नहीं रह सकता है। अथवा लोभी वामन अवतारने वैराग्यवान् ब्रह्मचारी त्यागीका भेष बनायके बलिराजाके यज्ञमें जाके कपट पूर्वक उसके सर्वस्व दान लेके बलिको भी बन्दी बनाया। तहाँ वैराग्यको कलङ्कित करके बिगाड़के नष्ट-भ्रष्ट किया। सो उसके अनुयायी ब्राह्मण लोग अभी लोभ बढ़ा-बढ़ाके लोगोंको जालमें फँसाके वैराग्यको बिगाड़ रहे हैं, रागमें ग्रसित हो रहे हैं, और मोह, मद, ममता, आसक्ति, उत्पन्न होनेपर वह निजस्वरूप बोध, सत्यासत्य, सारासारके बोधको बिगाड़कर दूषित कर देता है, आवरणरूप पर्दा लगा देता है। अथवा रामचन्द्र, जनक राजा आदि आत्मज्ञानी बोधवान् तो कहलाते थे, परन्तु सीताके मोहमें वे दोनों ही अधीर अबोध अज्ञानी ही बने थे। तभी शोकमें आकुल-व्याकुल हो गये थे, उस वक्त उन्होंके बोध बिगड़के उड़ गया था। मोह-ममता करके बोधको बिगाड़ डाले थे। अब उनके अनुयायी वैरागी लोग वैसे ही मोह ग्रसित होके सत्य बोधको बिगाड़के नष्ट-भ्रष्ट कर रहे हैं। इस प्रकार कामासक्तिसे भक्ति बिगड़ता है, क्रोध वेगसे ज्ञान बिगड़ता है, लोभ-लालचसें वैराग्य बिगड़ता है, और मोह-ममत्त्वसे बोध बिगड़ जाता है। अतएव सावधान होके उन चारोंको ही हृदयसे निकाल बाहर भगा देना चाहिये, तथा निज पारख स्वरूपमें शान्त रहना चाहिये ॥ २१० ॥

साखीः—कबीर शङ्कर औ व्यासको। खतरा भयो नसल ॥
जगत प्रतिष्ठा कारणे। आतम कहा असल ॥२११॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—'और हे नरजीवो! शङ्कर= महादेव और वेदव्यास मुनि तथा शङ्कराचार्य आदि इन अद्वैत मतवादी वेदान्तियोंको वेदादि वाणीके प्रमाणसे, नसल= न असल, नकली पदका अर्थ कल्पना, मिथ्या मानन्दीरूप ब्रह्म-

पद ही सर्वत्र परिपूर्ण सत्य है, ऐसा, खतरा = खातिरी, दृढ़-निश्चय हुई थी। सोई अपने मन-मानन्दी कल्पनाका प्रचार करके जगत्में, प्रतिष्ठा = मान, सम्मान, ठहराव, महत्त्व, श्रेष्ठता, बताने-दिखानेके वास्ते उन्होंने जोर देके विशेष करके महिमा बढ़ाकर एक आत्मा ही, असल = सारवस्तु, सत्य, सर्वाधिष्ठान है, ऐसा कहा है। वही बात ग्रन्थोंमें लिखा है, तथा उपदेश दिये हैं। परन्तु सत्य निर्णयसे देखिये! तो वह कथन असत्य मनका ही कल्पना, भ्रम-मात्र है, उसमें सार कुछ नहीं है। अथवा, कबीर = हे नरजीवो! शङ्कर और व्यास आदिकी उत्पत्ति वर्ण शङ्कर होके कुजातीमें हुई। उनके लिये सो उसी प्रकार, नसल = जातिमें प्रसिद्ध होके रहना, खतरा = विनाशकारी, दुःखदायी, भया। तो जगत्में अपने-अपने मान-प्रतिष्ठा बढ़ानेके वास्ते ही उन्होंने नानात्त्व जगत् मिथ्या है, एक ही आत्मा वा ब्रह्म असल-सत्य है, ऐसा बहुत विधिसे कहा है। क्योंकि, भविष्यपुराण आदिमें लिखा है— शङ्करके बापका पता ही नहीं था, अष्टाङ्गी माया उसकी माँ थी। तथा चाण्डालकी पुत्रीसे पराशर जन्में, धीवरकी पुत्रीसे व्यास पैदा भये, शुकीसे शुकदेव उत्पन्न भये, उलूकीसे कणाद पैदा भये। इत्यादि सब कुजातिसे वर्णशङ्कर ही पैदा भये रहे। वैसे चतुराई न करते, तो जगत्में बड़े माने नहीं जाते। इसी कारणसे उन्होंने युक्तिसे आत्माको असल, जगत् आदिको नकल-मिथ्या भ्रम बतायके लोगोंको भुलाये हैं। उसमें कुछ भी सार नहीं है; मिथ्या धोखा, बन्धनरूप ही है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २११ ॥

साखीः— जो-जो कछु श्रवण करै। मनन होय पुनि सोय ॥
निदिध्यासन साक्षात जो। चीन्है बिरला कोय ॥२१२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! पहिले कानसे जो-जो बात, जो कुछ भी वाणी श्रवण करते हैं, फिर सोई भीतर मनमें जाके, उसीका मनन, सङ्कल्प-विकल्प, चिन्तन, होता है। वही बार-बार

निदिध्यासन मेल-मिलान हो, स्मृति जाग्रत् होता रहता है, तत्पश्चात् जो कुछ मानन्दी दृढ़की हुई रहती है, सोई भास साक्षात्कार या प्रत्यक्ष हो जाता है। वह तो सुना हुआ शब्दका ही विषय विकार है, द्रष्टाजीव तो उससे न्यारा ही रहता है। कोई बिरले ही विवेकी पारखी सन्त द्रष्टाजीवको सबसे पृथक् सत्यस्वरूप करके चीन्हते पहिचानते हैं। नहीं तो बेपारखी गुरुवा लोग कल्पित वाणीको ही सुनते-सुनाते हैं, फिर वेद-वेदान्तका कथन, मनन, करके उसे निश्चय-कर शब्द स्वरूप ब्रह्म आप ही बन जाते हैं। जो उनका साक्षात्कार हुआ, सो मनकी भास, पहलेसे किया हुआ मानन्दीमात्र होनेसे असत्य है। भासिकजीव उस भाससे न्यारा है, सो बिना पारख वे चीह्नते, समझते नहीं। इसीसे एक अद्वैत ब्रह्म कल्पनाको ही निज स्वरूप मानके महान भ्रम-भूलमें पड़े हैं। कोई बिरले विवेकी पारखी सन्त ही परीक्षा दृष्टिसे निर्णय करके जानते हैं कि— श्रवण, मननके अनुसार ही मनकी भावना जीवके सन्मुख अनुभवमें साक्षात्कार होता है। अतः जीव ही सत्य है, ऐसा चीह्नते, पहिचानते हैं ॥ २१२ ॥

साखीः— श्रवण मनन निदिध्यासन । साक्षात करै जो कोय ॥
कहहिं कबीर चारिउके किये । कृतम कर्ता होय ॥२१३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! जो कोई मनुष्य जो कुछ मनमें भावना ले करके जैसा-जैसा वाणी सुनते हैं, वैसा-वैसा ही उनके मनमें मनन-विचार भी उत्पन्न होता है। फिर उसे ही बार-बार याद करते रहनेसे निदिध्यासन दृढ़ होता है। पश्चात् मानन्दीके मुताबिक साक्षात्कार करते हैं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके उपदेशको पारखी सन्त निर्णय करके कहते हैं कि— उक्त श्रवणादि चार साधनोंके करनेसे ही, कृत्तिम = मनःकल्पित वाणीसे ही कर्ता— ईश्वर, ब्रह्म आदिकी मानन्दी निश्चय हो रही है। उसके बिना और कहीं उनके अस्तित्व ही नहीं दिखती है। अर्थात्

वाणी कहा-सुना न जाय, तो ईश्वर, ब्रह्म आदि माना हुआ कर्ता और कहीं भी मालूम ही नहीं पड़ता है। अतएव वह वाणी कल्पना कृत्तिम मिथ्या ही है। वाणी, खानीका निर्माण-कर्त्ता तो नरजीव ही हैं। किन्तु, निजस्वरूपको न जान करके कृत्तिमको ही कर्ता मान-मानके जड़ाध्यासी बद्ध हो रहे हैं, बिना पारख ॥ २१३ ॥

साखीः—सुनै गुनै देखै कहै। चीन्है नहिं गुण रूप ॥
कहहिं कबीर पारख बिना। परा प्रकाश भ्रमकूप ॥२१४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासुओ! अबोध मनुष्योंने कल्पित वेदादि वाणीको ही गुरुवा लोगोंके मुखसे निकला हुआ कानसे सुने हैं; फिर वही सुनी हुई, वाणीको ही मनसे गुने या मनन किये। तथा बाहर वेद, शास्त्र, पुराण, कुरानरूप वाणी जालको ही नेत्रोंसे देखे, चित्त लगायके पढ़े। इस तरहसे जो-जो बात दृढ़ हुई, सोई वाणी मुखसे उच्चारण करके कहे, और दूसरोंको भी उपदेश सुना-सुना करके उसी प्रकार दृढ़ा रहे हैं। परन्तु यथार्थ परीक्षा करके उस वाणी मानन्दीके, गुण = शब्द विषय तथा रूप विषय दोनों भी जीवोंको बन्धन हैं, वह चीह्नते नहीं। इसीसे शब्द गुणको ही परमात्मा-ब्रह्मका रूप ठहराके धोखामें पड़े हैं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— यथार्थ गुरु पारखके बोध पाये बिना जो वाणी कानमें पड़ा उसीका प्रकाश बाहर पुस्तकरूपमें, भीतर तत्त्वोंके प्रकाश ज्योति स्वरूपमें देखे-दिखाकर सब मनुष्य भ्रमरूपी अन्धेरी कूआँमें गिर पड़े। परा-वाचा, परात्पर, परमात्माको विश्व प्रकाशी ज्योतिस्वरूप मान करके ध्यान आदि साधनोंसे ज्योति प्रकाश देखके उसे ईश्वर साक्षात्कार हुआ, ऐसा अनुमान करके धोखासे उसी भ्रम-कूपमें गिरे हैं; मैं जीव द्रष्टा न्यारा हूँ, तो दृश्य भास कैसे होऊँगा, यह न जानके वे सब जड़ाध्यासी बद्ध भये, बिना विवेक ॥ २१४ ॥

साखीः— परमेश्वर वर्णन करैं । इन्द्रिन्हका गुण रूप ॥
कहहिं कबीर राज तजी । भया भिखारी भूप ॥२१५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! गुरुवा लोगोंने तो पञ्चज्ञानेन्द्रियोंके ही गुण-रूप आदि पञ्चविषयोंको परमेश्वर वर्णन किये हैं । सो कैसे कि— शब्द ब्रह्म, वा अनहदनाद ब्रह्म, जो माने हैं, सो शब्द विषय कानका है । आनन्द ब्रह्म जो कहे हैं, सो स्पर्श विषय त्वचाका है । ज्योतिस्वरूप परमात्मा जो कहे हैं, सो रूप विषय नेत्रोंका है । अमृत रसवत् आत्मा जो कहे हैं, सो रस विषय जिभ्याका है, और गन्धवत् ब्रह्म व्यापक जो कहे हैं, सो गन्ध विषय नासिकाका है । तैसे ही निर्विकल्प, सहविकल्प, बुद्धि बोधव्य, आदि अन्तःकरण पञ्चकोंका विषय है । इस प्रकार जिस-जिसको परमेश्वर ठहराय़के वर्णन करते हैं या किये हैं, सो तो सब, इन्द्रियोंका गुण-रूप विषय ही हैं । बिना पारख उसको परमेश्वर मान-मानके महा भ्रमचक्रमें पड़े हैं । इससे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— स्व-स्वरूप पारखबोधके अटल राज्य-स्वराज्यको छोड़के, साक्षी दशा जाग्रत् स्थितिको त्यागकर, भूप = चैतन्य नर-जीव, राजावत् श्रेष्ठ होनेपर भी गाफिलीसे राज्य-च्युत होनेसे अब, भिखारी = भिखमङ्गा, कङ्गाल, दरिद्र, अबोध, अज्ञानी, दर-दर भटकनेवाला हो गया । झूठ ही पीतर, पाथर, ब्रह्म, ईश्वरादिको तो इसने स्वामी, कर्ता, भूप, मान लिया, और अपने पारखका राज छोड़कर जड़ाध्यासी बद्ध हो गया है । भवचक्रमें पड़ गया, बिना पारख ॥ २१५ ॥

साखीः— ब्रह्म, जीव, ईश्वर जगत् । सब आचार्यका ज्ञान ॥
कहहिं कबीर पुकारिके । हमरी कही को जान ॥२१६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! संसारमें जितने भी वेद, वेदान्तके आचार्य, पण्डित भये हैं, उन सभीका ज्ञान

"तत्त्वमसि" कथनतक ही हुआ है। उसमें त्वंपद जीव अल्पज्ञ, तत्पद ईश्वर सर्वज्ञ, उन दोनोंकी एकता असिपद ब्रह्म अधिष्ठान व्यापक, नाम-रूपमय जगत् मिथ्या, आत्मा सत्य, ऐसा माने हैं। जीव, ईश्वर, जगत्, कहनेमात्रको भिन्न-भिन्न हैं, वास्तवमें ब्रह्ममें सबकी एकता होनेसे एक ब्रह्म ही सत्य है; द्वैतभाव मिथ्या है। ऐसे एकता अद्वैतका ज्ञान कथन सब वेदान्ती आचार्योंने माने हैं। वे सब बिना पारख मिथ्या धोखामें ही पड़े हैं। अतएव सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णय पारखके अनुयायी पारखी सन्त कहते हैं कि— अब वे पक्षपाती, अविचारी लोग सद्गुरुका कहा हुआ पारखबोध और हमारा सत्यनिर्णयको, कौन जाने? कौन माने?। क्योंकि, गुरु-निर्णयसे उनका मानन्दी सब कल्पना मिथ्या, भ्रम, भूल ही है। चैतन्य-जीव ही सत्य है, ब्रह्म आदि असत्य है, ऐसा हम परखाते हैं, पक्षरहित जिज्ञासु मिले बिना, पारख निर्णयको और कोई नहीं जान पाते हैं। अतः जड़ाध्यासी हो, चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़ते रहते हैं ॥ २१६ ॥

साखीः— कबीर वृन्दाके श्रापते। शालिग्राम अवतार ॥
कहहिं कबीर कहु पण्डिता! केहि पूजे होय उबार?॥२१७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! पुराणोंमें लिखा है कि— दैत्य जालन्धर बड़ा वीर था, उसकी स्त्री वृन्दा पतिव्रता थी। देवताओंसे उसके दुश्मनी होनेसे महादेव आदि आके इधर जालन्धरसे रणस्थलमें लड़ने लगे, उधर विष्णुने छल-कपटसे नकली जालन्धर बनके रातमें जाकर वृन्दासे सम्भोग करके सतीत्त्व नष्टकर दिया, फिर उधर जालन्धर मारा गया, पीछे विष्णुके छल-कपटका हाल वृन्दाको मालूम हुआ, तो वह बड़ी क्रोधित हुई और विष्णुको तत्काल कठोर श्राप दिया कि— हे दुष्ट! तू पत्थर होजा! और झाड़, घाँस, फूस, हो जा! हे नीच! तूने मेरे सत्यको धोखासे डिगाया है, तो तू भी विनाशको प्राप्त होजा, इत्यादि कही, तो विष्णु अपराधी

अपना-सा मुँह लेके भागा। तहाँ गुरुवा लोगोंने कहा है— ऐसे वृन्दाके श्रापसे विष्णुका शालिग्राम अवतार, गोल-गोल काला पत्थरका हुआ। झाड़में पीपल, घासमें तुलसी, फूसमें कुशा भी विष्णु ही हुआ, इत्यादि वर्णन किये हैं। यद्यपि सो असत्य कल्पना ही है। जीव कदापि ऐसे जड़वस्तु नहीं हो सकते हैं। तथापि भ्रमिकोंने उसे सत्य ही माने हैं, तहाँ उन्हींसे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयसे पारखी सन्त पूछते हैं कि— हे पुराणको माननेवाले पण्डित! कहो तो भला! अब किसका पूजा करनेसे जीवका उबार होगा? यहाँ तो श्राप पानेवाले व्यभिचारी, दुराचारी विष्णुसे, वृन्दा ही बड़ी भयी, जिसके श्रापसे विष्णु पतित हुआ। कहो! किसके पूजासे कल्याण होगा? अतः ऐसे प्रपञ्चीको पूजा और मानन्दी छोड़के सत्य-न्यायी, त्यागी पारखी साधु गुरुकी पूजा, सेवा, सत्सङ्ग विचार करो, इसीसे जीवन सुधार होके, उबार या कल्याण होगा॥ २१७॥

साखीः— प्रतिमा दारु पषाणकी। नख शिख दारु पषाण॥
इस्थापै जेहि देव करि। सो केहि द्वार समान॥२१८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे मनुष्यो! तुम लोगोंने पञ्च देवताओंकी जो-जो प्रतिमा, आकार, गढ़न किया है, सो कहीं, दारु = काष्ठ या लकड़ीका बनाया है, तो कहीं, पाषाण = पत्थर आदिकी अष्ट प्रतिमाकी मूर्ति बनायी है, सो जड़ ही हैं। उसके, नख = नीचेसे, शिखा = ऊपर तक सर्वाङ्गमें तो लकड़ी वा पत्थर आदि जड़ पदार्थ ही दिखाई देता है। जिसको तुमने देवता, महादेव, विष्णु, दश अवतार आदि मान करके उन्हें बड़े-बड़े मन्दिरोंमें लेजाके स्थापन-कर प्राणप्रतिष्ठ किये हो। परन्तु सो देवताका प्राण चैतन्यता उस जड़-मूर्तिमें किस द्वारासे किस जगह समाया हुआ है? तुमने जीवको वायु ही समझ रखे हो? जो फूँक लगाके भीतर घुस जाय। परन्तु वह मूर्ति तो ठोस है, फिर प्राण तो भी कहाँ समायेगा? दुःख-सुख, इच्छा, क्रिया आदि चेतनका लक्षण उसमें क्यों नहीं दिखता है?

अतः जड़ पूजनेवालोंको बुद्धि भी जड़-मूढ़ ही हो जाती है। बिना पारख अज्ञानी छोकरेवत् हो रहे हैं, यदि पत्थरकी मूर्तिमें प्राण डाल सकते हो, तो अपने परिवारोंके मरनेपर उनमें भी फिरसे प्राण डालके जीवित क्यों नहीं कर लेते हो? अतः ये अन्धे ही बने हैं ॥२१८॥

साखीः— जेतेरूप तिहुँ लोकमें। शब्दैका गुण सोय ॥
जैसे बिगूर्चा खेतका। रहा पारधी रोय! ॥ २१९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! तीनलोक, त्रिगुणी मनुष्य, त्रिकाण्डवेद, योगी, ज्ञानी, भक्त, द्वैत, अद्वैत, विसिष्टाद्वैत, इत्यादि तीन-तीन माया जालमें, जितने रूप = आकार, सिद्धान्त, मानन्दीका स्वरूप ठहराव किये हैं, सो सब ही शब्दका ही गुण वाणी-विषय या शब्द विषयमात्र है। और उसमें कोई सार वस्तु नहीं है, सिर्फ धोखा ही लगाये हैं। जैसे खेतके रखवारीको आलसी मूढ़ किशानने, बिगुर्चा = धोखेका एक पुतला, बनाके वहाँ झाजक लगाया, (जानवरोंको डरवानेके लिये खड़ा करके मनुष्यके समान झूठा आकार बना दिया। जिसे देखके आपत्तिका भय मानके, जानवर भाग जायँ)। किन्तु, पीछेसे उसे देखते-देखते झूठा पहिचानके जानवरोंने आके खेतके फसल खागये, तो किशान वा रखवारने ऐसा हाल देखा, तो शिरमें हाथ धरके रोता, पछताता ही रह गया। तद्वत् खेत = संसारमें ब्रह्मका एक बिगुर्चारूप धोखा लगायके, पारधी = जिनके बुद्धि पारङ्गत है— ऐसे पण्डित, ज्ञानी उसीके भरोसेमें रहे, पीछेसे जड़ाध्यासी हो, चौरासी योनियोंके दुःख भोगके रोते, तड़फते रहे, मुक्ति लाभ न भयी, बिना पारख ॥ २१९ ॥

साखीः—रूप पदार्थ वस्तु गुण। भास करावै बाच ॥
कहहिं कबीर परखे बिना। सकल बाद है काँच ॥२२०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! रूप = माना हुआ ब्रह्म, ईश्वरादिका स्वरूप तो कोई सत्य वस्तु नहीं है। सिर्फ,

पदार्थ = पद, शब्दका अर्थ, शब्द विषय कथन मात्र है। सार वस्तु चैतन्य नरजीवोंको वह रूप पदार्थ— ब्रह्म आदि मानन्दी कोई सत्य वस्तु बताके भ्रमिक गुरुवा लोग शब्द गुणसे वही, बाच = वाणी कल्पना ही दृढ़ायके भास कराते हैं। वाणीसे भास किया-कराया हुआ सब, रूप = सिद्धान्त वाणी विषय ही है, अतः सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं— सार-असार, सत्य, मिथ्या, जड़, चेतनके भेद गुण लक्षणको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-में यथार्थ परखे बिना ठीक-ठीकसे जाने बिना अनुमान-कल्पनासे ठहराया हुआ सम्पूर्णवाद— द्वैत, अद्वैत, विसिष्टाद्वैतवाद, आत्मवाद, शून्यवाद, तत्त्ववाद, देहवाद, भौतिकवाद, इत्यादि गुरुवा लोगोंके सब सिद्धान्त, काँच = कच्चा, झूठा, बकवाद, न ठहरनेवाला भ्रम ही है। अतः यथार्थ परखके सत्यासत्यका पूरा मर्म जानना और भ्रमसे रहित होना चाहिये ॥ २२० ॥

साखीः— कबीर सूत काता करैं । तेहि शिर परी है मार ॥
जाहि भरोसे सोय रहा । सो देत न बार उखार ॥२२१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! जो मनुष्य पारखी साधु गुरुकी शरण सत्सङ्गमें विचार करके स्वरूपस्थिति न करके खाली वेद, शास्त्रोंको पढ़कर पण्डित बन ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, देवी-देवता, स्वर्ग, नर्क लोकादि इन्हींको सत्य मानकर कोई एक मतवादके पक्ष पकड़के प्रतिष्ठा प्राप्ति, मत प्रचारके लिये कबीर = जो-जो नरजीव, सूत = वाणीका सूत्र, षट्शास्त्र, श्लोक, गद्य, पद्य, कारिका, भाष्य, टीका, टिप्पणी, पदच्छेद, अन्वय, समास, तर्क-वितर्क, कथा, उदाहरण, इतिहास, जीवनचरित्र, दर्शन, दोहा, चौपाई, छन्द, सोरठा, कवित्त, सवैया, छप्पै, अरिल्ल, रेखता, झूलना, शब्द, वसन्त, हिण्डोला इत्यादि वाणी जालको ही कल्पनाका विस्तार करके, काता करै = कथन किया करते हैं, रचना, लेखन, निर्माण किया-कराया करते हैं। सो उसीके शिरमें वा अन्तःकरणमें भ्रम,

धोखा, भूल अध्यास आदिका कठोर प्रचण्डरूपसे मार पड़ेगा वा पड़ गया है। तथा नाना तरहकी साधनोंका मार कष्ट, क्लेश भी उसीकी शिरमें पड़ेगी। फिर अन्तमें वे ही जीव जड़ाध्यास वश त्रयताप जन्म-मरणादिके दुःखोंमें भी गिर पड़ेंगे, और पहलेवाले उस चक्रमें पड़े ही हुए हैं। हे मनुष्यो! तुम लोग जिस कल्पित, ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा, देवता, भूत, प्रेत आदिको इष्टदेव मानके जिनके भरोसे विश्वास करके मुक्ति, लोक, सुख प्राप्ति, आदिकी भावनाकर महागाफिली भ्रम-भूलकी गाढ़ी निद्रामें सोय रहे हो, विवेकहीन मूढ़ हो रहे हो, अरे! विचार करो, सो मनके कल्पना ईश्वर आदि अपने एक बाल = केश, रोममात्र भी उखाड़के तुम्हें नहीं देता है, या दे नहीं सकता है, और तुम्हारे कष्टके समयमें बालमात्र भी दुःख मिटा नहीं सकता है, तो फिर, वार उखार = बार-बार होने-वाले जन्म-मरणादि त्रयतापोंके दुःखोंको वह तुम्हारे क्या उखाड़ेगा? क्या दुःखसे छुड़ायेगा? कुछ नहीं। अतः मिथ्या धोखा, भ्रमको परखके हटाओ, पारखबोधको ग्रहण करो ॥ २२१ ॥

साखीः— ये कबीर सत्सङ्गति करू। देहु कुसङ्गति टारि ॥
एक ओर नौमन रेशम। एकओर चुटकी झारि ॥२२२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— ये कबीर = हे जिज्ञासु नरजीवो! यदि तुम लोग बन्धनोंसे छूटकर मुक्ति प्राप्त करना चाहते हो, तो सत्यन्यायी पारखी साधु सद्गुरुकी शरणागत् होकर नित्य-प्रति सत्सङ्ग विचार गुरु उपदेशका श्रवण, मननादि किया करो। यही एक बड़ा उपाय है। सद्गुरुने बीजक साखी २३४ में कहा हैः—

"नित खरसान लोहा घुन छूटै ॥ नितकी गोष्ठ माया मोह टूटै ॥"

और कुसङ्गतिको तो बिलकुल टार दो, या हटाय दो, यानी विषयी लोगोंका सङ्ग, स्त्रियोंका सङ्ग, जुवारी, नशेबाज, धूर्त, चोर, बदमाश, गँजेड़ी, भँगेड़ी, लम्पट, लबार, पापी, आततायी और गुरुवा

लोग षट्दर्शन— ९६ पाखण्डोंके पक्षपाती, अविचारी, इत्यादि ये सब हीं, कुसङ्ग हैं, कुवृत्ति करानेवाले हैं। अतः उनके सङ्ग-साथ कभी नहीं करना चाहिये, उसे तो टारके दूर रहो। ऐसे सब कुसङ्गोंको छोड़कर पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें ही सदा लगे रहो, तो तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा। देखो ! एक ओर नौमन रेशमके समान बारीक अति सूक्ष्म-चित्त, बुद्धि, मन, अहङ्कार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, यही नौ तत्त्वोंकी सूक्ष्म देहमें सूक्ष्म वासनाएँ टिकी हुई हैं। और एक ओर, दूसरे तरफ, चुटकी झारि=हाथकी चुटकीरूप अंगुलियोंसे पकड़के कलमद्वारा स्याहीसे लिखी हुई सम्पूर्ण वाणियों-की जाल हैं। ऐसे 'नौ मन रेशम' सो खानी-जाल है, और 'चुटकी झारि' सो वाणी जाल है। वह एक-एक ओर दो तरफ बड़ी प्रबल कठिन फन्दा है। कुसङ्गसे ही वह घेरामें जीव पड़े हैं। इसीसे सत्सङ्गसे पारख करके उसे एकदम छोड़के न्यारे हो रहो। उसीसे भलाई होगी। अथवा हे मनुष्यो ! मोटी-झीनी सब कुसङ्गसे अलग हो, मनको हटाके सदा पारखी सद्गुरुका ही सत्सङ्ग करो। गुरु पारखका प्रताप बड़ा भारी है। देखो ! एक तरफ तो मनसे कल्पना करके नौ व्याकरण, नौ कोशकी वाणी बनाके विस्तार किये हैं, उसीसे नौ द्रव्य, नौ निद्धि, नवधा भक्ति आदि ठहराये हैं, नौ नाथ आदि योगी सब नौ द्वारोंकी योग साधनोंमें भूले हैं। सूक्ष्म देहकी नौ भागमें सारे प्राणी पड़े हुए वासनाके वशीभूत हो रहे हैं। कोई नौ खण्ड पृथ्वीमें प्रख्यात होना चाहते हैं। ऐसे नौ-नौके माया जालमें सारे ज्ञानी, अज्ञानी, विज्ञानी बद्ध पड़े हैं, और एक ओर सत्यबोध-दाता बन्दीछोर पारखी सद्गुरु यथार्थ जड़-चैतन्यका भेद परखायके पारखबोध कराय, पारखदृष्टिसे चुटकी बजाते-बजाते ही मिथ्या धोखा समझाकर उन सब खानी-वाणीकी मानन्दी मिटायके झार देते हैं, उसे हटायके दूर फेक देते हैं। जिससे नरजीव सहज ही निर्बन्ध मुक्त हो जाते हैं। यही सत्सङ्गकी महा बलिष्ट महिमा है॥२२२॥

साखीः— जैसे परत बेनोरिया । जल जमि भासे स्थूल ॥
तेज लागि गलि होय जल । त्यों शब्द स्वरूपका मूल ॥२२३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! ठंडी मौसममें विशेषतः उत्तराखण्ड हिमालय तरफमें और सामान्यतः अन्य स्थानोंमें भी अधिक शीत या ठंडी पायके, बेनोरिया = ओला, बोरा, पत्थरवत्, वर्फके छोटे-छोटे टुकड़े वायुके वेगसे जल जमनेसे जहाँ-तहाँ गिर पड़ते हैं । रूई सरीखी हलकी फोहा गिर-गिरके ढेर हो जाते हैं । फिर वहींपर जलका भाग जम जानेसे स्थूल बड़ी-बड़ी ढेरीके रूपमें हिमगिरि भासते या दिखाई देते हैं । फिर तेज = उष्ण सूर्यके किरण लगनेसे विशेष करके गर्मीके मौसममें वही जमा हुआ हिमखण्ड धीरे-धीरे गलते-गलते पूर्ववत् जल होके बह जाता है । फिर वरफका स्थूलरूप मिट जाता है । उसी प्रकार गुरुवा लोगोंकी कल्पित बनावटी वाणी मुखसे निकल-निकलके शिष्योंके कानमें जायके पड़ी, उपदेश सुन-सुनके भ्रमिक हुए । वाणी मानन्दीको मनमें दृढ़ करके जमाये तो स्थूल विश्वरूप ही परमात्मा विराट है, अधिष्ठान है, सर्वव्यापक है, सो ब्रह्म मैं हूँ । कल्पनासे ऐसे उन्हें भास या भ्रम होती भयी । पारखज्ञानके प्रकाश तेज जब उसमें लगी, तब वह मानन्दी सब गलके असत्य वाणीमात्र ठहरके गल गई । तैसे ही शब्द विषयका स्वरूप जगत्के मूल कारण सच्चिदानन्द, ब्रह्म, परमात्माको जो माना है, सो शब्द ही मात्र मिथ्या कल्पना है, वस्तु कुछ भी नहीं है । ऐसा निर्णयसे ठहरता है । शब्द ब्रह्मका स्वरूप मूल ही भ्रम धोखा है । अतः पारख दृष्टि करके उसे यथार्थ पहिचानना चाहिये ॥ २२३ ॥

साखीः— जैसे पाला भास होय । देखत जाय बिलाय ॥
तैसे रूप गुण शब्दको । परखै नहिं ठहराय ॥२२४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जैसे पाला = बर्फके

झीने-झीने गिरे हुए रज, तुषार, सफेद ओस कण, सबेरे-सबेरे तो चौतरफ फैले हुए खूब दिखाई देते हैं। परन्तु सूर्योदय होनेपर देखते-ही-देखते वह सूर्य किरणद्वारा सूखके विलाय जाता है, अभाव हो जाता है, तैसे ही बहुत दिनोंसे जो ब्रह्म, ईश्वरादि, मानन्दी पालन-पोषण, मनन, करके पुष्ट किया गया है, सोई जीवके सन्मुख भावनाएँ भास होती हैं, वही सत्य-सा जान पड़ता है। परन्तु जब पारख ज्ञानरूपी सूर्यकी प्रचण्ड किरण सत्यनिर्णयका प्रकाश उसपर पड़ जाता है, तब विवेक दृष्टिसे देखते ही वह सब भ्रम विलाय जाता है, धोखा छूट जाता है। रूप = ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, आदि जितने भी सिद्धान्तके कल्पित स्वरूप गुरुवा लोगोंने माने हैं, सो सब शब्दका ही गुण वा विषय है। अर्थात् वाणी कथनमात्र कहने-सुननेका गप्प है, असार है। क्योंकि, वह पारख कसौटीमें कसके निर्णय करनेपर कोई भी खरा, यथार्थ सार वस्तु नहीं ठहरता है। भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना कृत, वाणीका विलासमात्र होनेसे धोखा, असत्य है। निर्णयमें चकनाचूर हो गया, खोटा निकल गया। अतः उस मानन्दीको सर्वथा त्याग करके हंस रहनी सहित पारख पदमें ही स्थिति ठहराव करना चाहिये ॥ २२४ ॥

साखीः— निन्दक ताको जानिये । जाको नहिं पहिचान ॥
है कछु और कहै कछु औरे । यह निन्दक सहिदान ॥२२५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सज्जनो ! पक्का निन्दक, द्वेषी तो उसे ही जान लीजिये कि— जिसको सत्य-असत्य, निज-पर स्वरूप, जड़, चैतन्य, सार, असार, असली-नकली, बन्धन-मुक्ति, हानि-लाभ सही और गलत इत्यादिकी पूरी-पूरी पहिचान, जानकारी, बोध तो है ही नहीं। इससे विपरीत समझ रखके उल्टा कथन वा बर्ताव करता है, और वास्तवमें निज, चैतन्यस्वरूप जीव ही प्रत्यक्ष सत्य है। किन्तु पक्षपात पकड़के मूर्खताके कारणसे अविवेकसे वह और ही कुछका-कुछ कहता है, कि— जीव तो ब्रह्म

वा ईश्वरके ही अंश है, अल्पज्ञ दीन, हीन, मलीन है। वही परमात्मा ही सर्वशक्तिमान् सब कुछ करनेमें समर्थ है, उसीकी भक्ति करनेसे जीवकी मुक्ति होती है, इत्यादि मिथ्या कथन करते हैं। अथवा चैतन्य जीवको आभास, कार्य, देह आदि जड़-स्वरूप करके मानते हैं, शून्य, प्राण, आदि समझते हैं। है कुछ और ही, जड़से विजातीय ज्ञानस्वरूप जीव, परन्तु कहता कुछ और ही ब्रह्म, ईश्वरादि मालिक जगत्कर्ता और जीव आदि उसके कार्य बताते हैं। सो मिथ्यावादी, अज्ञानी, हठी, स्वार्थी, अविचारी हैं, यही असली निन्दकका सहिदान या पहिचान है, जैसाका तैसा यथार्थ कहनेवाले सत्यवादी कभी निन्दक हो नहीं सकते हैं। झूठ बोलना ही निन्दक होनेका लक्षण है। अतः सत्यवक्ता, सत्य बोधवान् होना चाहिये॥ २२५॥

साखीः—कबीर केहरि सिंहको। कीन्हों कैद सियार॥
पद शिर नावें मूसको। करैं जोहार बिलार॥२२६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! यदि सियार ही उलटके सिंहको कैद करै और चूहेके पैरोंमें शिर नवायके बिल्ली प्रणाम-दण्डवत करे, तो कितने आश्चर्यकी बात है। बाहर तो ऐसा विपरीत नहीं होता है, किन्तु, गुरुवा लोगोंके यहाँ ऐसे ही उल्टी चाल होती है। सिद्धान्तमें— कबीर = हे नरजीवो! देखो, पारख बोध हुए बिना, केहरि सिंहको = अत्यन्त बलिष्ट केशरी नामके सिंह जो कि, हाथियोंको भी सहज ही मार डालता है, उसीको यहाँ हाथीरूप मनमानन्दीमें पड़ा हुआ श्रेष्ठ सिंहरूप जीव भी लाचार दीन-हीन हो रहा है, ऐसा जानो। ऐसे मौका पायके, सियार = वेद शास्त्रादिकी वाणी सुना-सुना करके होशियार, धूर्त लोगोंने हाथीरूप मनके घेरासे सिंहरूप जीवको छुड़ानेका भरोसा देके उल्टा और कल्पनाके, कैद = जेलमें ले जाके जीवोंको डाल दिये हैं। इसीसे, बिलार = कल्पना मायाके फन्दोंमें पड़के बिल-बिलानेवाले दुःखी नरजीव संसारके दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिये, मूसको = जीवन

धन, सद्गुण लक्षणोंको मूस-मूसके लूटने-खसोटने, चुरानेवाले चोर, चूहेके समान गुरुवा लोगोंको ही श्रेष्ठ मानके अब उन्हींके, पद= चरण वा सिद्धान्तमें शिर झुका-झुकाके, माथा नवायके नित्य-प्रति, जोहार=दण्डवत्, बन्दगी, वा नमस्कार श्रद्धा-भक्ति सहित करते हैं, और कर ही रहे हैं। इसीसे सब धोखा, भुलावामें पड़े हैं, कल्याण किसीका भी नहीं हो रहा है, सब ठगाये जा रहे हैं। बिना विवेक ॥ २२६ ॥

साखीः— एक अचम्भा देखिया । सर्पहि खाया मोर ॥
डेहरी भूके कूतिया । भीतर पैठा चोर ॥२२७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और एक आश्चर्य तो यह देखनेमें आया कि— सर्पने ही मयूरको खा लिया। फिर चोर तो घरके भीतर घुसा बैठा है, बाहर दरवाजेमें कुतिया भूक रही है। सिद्धान्तमें अर्थ ऐसा है कि— वेदान्ती लोग कहते हैं कि— एक ब्रह्मके सिवाय दूसरा जगत् नहीं है, फिर अनेक मनुष्योंको देखके सम्बोधन कर-करके उपदेश भी देते जाते हैं। जब द्वैत नहीं है, तो वे अद्वैतका उपदेश किसको देते हैं ? देखो ! उनकी मूढ़पना, यही एक अचम्भा ब्रह्मवादीमें दिखाई देता है। तथा मोर=जीव तो सब हमारे स्वजातीय ही हैं, किन्तु, सर्पहि=पञ्च अभिमान, अहं ब्रह्मकी मानन्दी, यही अहंकाररूप तामसी सर्पने जीवोंकी बुद्धि, विवेक, विचारादि सद्गुणोंको खा लिया ! हृदयमें उसने डस दिया, काट खाया, तो बड़ा तेज जहर चढ़ गया, इसीसे सब बेहोश, गाफिल, जड़ाध्यासी भये हैं, तहाँ सद्गुरुने कहा हैः—

"मोर तोरमें सबै बिगूर्चा । जननी गर्भ वोद्रमा सूता ॥
मोर तोरमें जरे जग सारा । धृग स्वारथ झूठा हङ्कारा ॥" बी०, रमैनी ८४॥

इस तरह पञ्च-अभिमानरूपी सर्पने जीवोंको मैं-ममतामें डालके खाया वा भ्रमाया, भुलाया है, ऐसा जानिये ! ॥ और नरजीवोंके भीतर अन्तःकरणमें तो, चोर=काम, क्रोध, लोभ, मोहादि मायाविकार

तथा कल्पना, मानन्दी, भ्रम, संशय, इत्यादि कट्टर चोर, डाकू, घुसे पड़े हैं, वे तो वहाँ मजेमें जमके बैठे हैं, और सर्वस्व लूटके चुरा रहे हैं। और बाहर ढोंग आडम्बर करके धूर्ताईसे बड़े ब्रह्मज्ञानी, योगी, भक्त आदि स्वाङ्ग बनाके लोगोंको नाना तरहसे उपदेश दे रहे हैं। डेहरी=द्वार या मुक्तिका द्वार मनुष्य देहमें दरवाजारूप मुख द्वारा, कूतिया=कूता हुआ अनुमान, कल्पनाकी वाणी गुरुवा लोगोंने, भूके=शब्दोच्चारण करके चिल्ला-चिल्लाके उपदेश सुनाते भये। अर्थात् मुख द्वारसे वाणी तो खूब रोचक-भयानककी निकलती है, दूसरोंको तो बहुत समझाते हैं, किन्तु, स्वयं ही सत्यको नहीं समझते हैं। मन भीतर तो कामना आदि चोर छिपे बैठे हैं, अतः पारखबोध पाये बिना किसीको कल्याण वा गति, मुक्ति हो नहीं सकती है, ऐसा जानिये! ॥ २२७ ॥

साखीः—कबीर छेनी शीतल भई। काटै ताता लोह ॥
गुरुके शब्द शीतल भये। छिनमें काटैं दुःख जगमोह ॥२२८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! लोहेको शीतल छेनी, घन, लोहेके बड़े-बड़े गर्माया हुआ टुकड़ोंको भी काटके छिन्न-भिन्न कर देती है। तैसे ही जिस मनुष्यकी समझ शीतल, शान्त होता है, वह विवेक, विचार करके, ताता लोह=गरम लोहावत् काम, क्रोधादिमें उत्तेजित भया मनको भी शान्त करके कुबुद्धि, कुविचारको काटके हटा देता है, और पारखी सद्गुरुके सारशब्द सत्यनिर्णयका उपदेश, श्रवण, मननादि करके जो शीतल भये हैं, संशयादि विकारसे रहित हो गये हैं, शान्त, निर्भ्रान्त हो, स्वयं स्वरूपका पारखबोध प्राप्त कर लिये हैं, वे हीं शूर, वीर, धीर हंस-जीव जगत्में जन्म-मरणादिके कारणरूप दुःखदाई वाणी, खानीकी समस्त माया-मोहादि विकारोंको क्षण भरमें समूल काट-छाँटके नष्ट, विध्वंश कर देते हैं। अतः वे जीते ही मुक्त, सुखी हो जाते हैं। उन्हीं पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग करके मुमुक्षुओंने भी गुरुमुख

सारशब्द हथियारसे दुःखरूप जगत्के मोहको काटके हटा देना चाहिये ॥ २२८ ॥

साखीः—कबीर सुन्नत मुसलमानकी । हुकुम राँड़के होय ॥
मानी हुकुम हरमकी । ईमान ईलाहि खोय ॥२२९॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे नरजीवो ! मुसलमानोंकी यहाँ, सुन्नत=लिङ्ग इन्द्रियकी अग्र भागकी त्वचा या खलड़ीको कटवानेकी प्रथा है, उस कर्मको सुन्नत कहते हैं । सो स्त्रीके हुकुमसे ही सुन्नत करनेकी चाल चली आयी है। इस बारेमें परम्पराके पारखी अध्यापक महात्माओंसे एक दृष्टान्त जाहिर होता चला आया है, सो कहता हूँ, और यहाँ लिख देता हूँ, सुनिये !—

दृष्टान्त वर्णनः—मुसलमानोंके यहाँ एक प्रधान पैगम्बर जो अन्तमें नबी प्रसिद्ध हुआ, सो वह बड़ा ही विषयी कामी था, एक समय वह दूर परदेश जाने लगा, तो उनके स्त्री-पुरुषमें निम्न वार्ता हुई। स्त्रीः—देखो ! परदेशमें दूसरी स्त्री नहीं कर लेना, नहीं तो अच्छा नहीं होगा, फिर ऐसा हुआ तो, तुम्हारा-हमारा बनाव नहीं होगा। पुरुषः—ठीक है, मैं दूसरी स्त्री नहीं करूँगा। यदि तूने ही मेरे पीछे किसी दूसरे पुरुषसे सम्बन्ध कर लिया, तो क्या होगा ? स्त्रीः—सुनो ! यदि मैंने व्यभिचार किया, तो तुमने आके, मेरे शिर तलवारसे उड़ा देना, और तुम्हारा कहो, क्या होगा ? तुमने दूसरी बीबी रख ली, तो क्या करना । पुरुषः—वही शर्तें मेरी भी रही, यदि मैंने और कोई औरत रख लिया, सो बात तुम्हें मालूम हो, सबूत दे सको, तो तुमने भी मेरा शिर उड़ा देना, सो अच्छा ! कहकर इस तरहसे दोनोंमें समझौता हो गया, करारनामा पत्र लिखके दोनोंने अपने-अपने दस्तखत भी कर दिये । पीछे पैगम्बर रवाना हुआ, विदेश चला गया । फिर दो-चार वर्ष उधर ही रहनेका विशेष काम आ पड़ा; वह उधर ही रहा । अति कामी होनेसे उसने सोचा, मैं तो बहुत दूर आ गया हूँ । यहाँ मेरी बातको घरमें बीबी कैसे जान सकती है, नहीं जानेगी ? ऐसा विचार करके वहाँ

उसने एक स्त्रीको रखेली बनाके रख लिया। उससे भोग-विलास करनेमें लगके सारी बात शर्तके भूल गया, कुछ समय बाद उस स्त्रीसे एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। इसी तरह समय बीतता गया। उसकी घरकी बीबी बड़ी चालाँक थी। उसे सन्देह हुआ कि— वे मियाँ अपने करार वा शर्तमें सच्चे नहीं रह सकेंगे? इसीसे एक भेदुआ-गुप्तचर आदमीको उनका पूरा हाल मालूम करके आनेको समझा-बुझाकर खर्च तथा इनाम देके उनका पूरा पता लगानेको भेजा। उस भेदुएने भी वहाँ जाके पूरा भेद-सबूत जानकर आके वहाँका सारा हाल बीबीको बता दिया। उसका हाल सुनके यह तो बहुत क्रोधित हुई, जली, भुनी। फिर उसने एक जरूरी चीट्ठी लिखके उनके पासमें भेजी—"मैं सख्त बीमार हूँ, मुख देखना हो, तो पत्र देखते ही फौरन चले आओ" इत्यादि लिखी। उधर जब पुरुषको पत्र मिला, इस स्त्रीपर प्रेम ज्यादा थी, इसलिये घबराके वहाँका काम जैसा-तैसा निपटाके रखेली स्त्रीको भी बहुत कुछ इनाम रुपया देकर जल्दी-जल्दीसे यहाँ चला आया। घर आके देखा, सो बीबी तो अच्छी, भली, चङ्गी है, किन्तु नाराज बहुत है। आखिर उसने कारण जानना चाहा, तो उसने पूरा सबूत सहित वहाँ स्त्री रखनेका, पुत्र उत्पन्न होनेका हाल बताया, फिर भेदुए आदमीको भी बुलाके उसके साक्षी, प्रमाण प्रत्यक्ष करा दिया, उसने सब बात सही-सही बता दिया। तब तो मियाँ कायल भया, वह बात कबूल किया। स्त्रीने कहा—जानते हो, याद है कि नहीं, तुम्हारे-हमारे बीचमें क्या करार, शर्त ठहरा है। पुरुषने कहा— हाँ? मैं जानता हूँ, गुनेगारका शिर उड़ा देनेका करार है। अब मैं लाचार हूँ, मेरा कसूर हुआ, तुम्हारे सामने मैं गुनेगार हाजिर हूँ, लो! मेरे शर्तके मुताबिक शिर उड़ा दो, ऐसा कहके शिर झुका दिया। स्त्री समझदार थी, तब वह बड़ी सोच विचारमें पड़ गई, उसे कतल करके तो, आखिर अपने ही स्वार्थमें हानि देखी। फिर उसने कहा— देखोजी! तुम मेरे अधीन हो गये

हो, अब मैं जैसा कहूँ, वैसा ही तुमको मानना पड़ेगा। पुरुषः— मुझे सब कबूल है, कहो! मैं तुम्हारा शिर नहीं उड़ाती, शिरने तो कुछ कसूर नहीं किया है। कसूर तो तुम्हारे लिङ्गने ही किया है, दूसरे औरतसे मैथुन-भोग करके वह नापाक हो गया है। अतः तुम अपने लिङ्गकी, खलड़ी (ऊपरकी चमड़ी) मात्र काटके सुन्नत कर लो, दवाई लगाके घाव अच्छा करो, फिर नहाओ, धोओ इस तरहसे पाक वा पवित्र हो जाओगे। तब तुम मेरे सङ्ग विलास करने योग्य हो जाओगे। और सब कसूर मैं तुम्हारा माफ कर दूँगी, समझे! इत्यादि बात कही। पुरुष बड़ा भग-लम्पट था। इसलिये स्त्रीके वह सब बात— आज्ञाको मान लिया। उसने उसी प्रकार अपने हाथसे ही लिङ्ग इन्द्रियकी खलड़ी काटके सुन्नत कर लिया। फिर स्त्री प्रसन्न हो गयी, और उधर वह मियाँ मुसलानोंका मान्यवर पैगम्बर था, उसने सोचा यह सुन्नतकी प्रथा सब मुस्लिम जातिमें चला देना चाहिये, तब अच्छा होगा। मैं खाली मुखसे वचन ही कहूँगा, तो बात कोई मानेगा नहीं, और कुराने शरीफमें लिख देनेसे सब कोई मान लेंगे। ऐसा निश्चय करके अरबी भाषामें कुरानमें खुदा-तालाके वाक्य बनाके लिख दिया कि— "खुदाका फर्मान है कि— वही सच्चा असली मुसलमान है, जो अपने और अपने-अपने लड़कोंका सुन्नत करेगा। लड़कोंके छोटेपनमें ही सुन्नत कर देना चाहिये। सुन्नत किया हुआ ही खुदाका बन्दा असली इस्लाम होगा" इत्यादि वाणी बनाके लिख दिया। वही बात दिखा-दिखाके प्रचार किया। जिससे अविवेकी सब मुसलमानोंने खुदाके वाक्य समझके उसे मान लिया, इस तरह तभीसे सुन्नत करनेकी प्रथा या चाल, रिवाज मुस्लिमोंमें प्रचार हुई है, जो आज पर्यन्त भेड़ियाधसानवत् चली ही जा रही है॥ "इस बारेमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक, शब्द ८४ में इशारा देके कहे हैं:"—

शब्दः—"शक्ति अनुमाने सुन्नति करतु हो! मैं न बदोंगा भाई!॥ ३॥
जो खुदाय तेरि सुन्नति करतु है। आपुहि कटि क्यों न आई?॥ ४॥

सुन्नत कराय तुरुक जो होना। औरत को क्या कहिये ?॥ ५॥
अर्ध शरीरी नारि बखानी। ताते हिन्दू रहिये॥" बी० शब्द ८४॥

इस प्रकार हे मनुष्यो!, राँड़=स्त्रीके वा कुरानके वाणीका, अथवा कल्पनामें पड़े हुए भ्रमिक मूढ़ नबी, पैगम्बर, गुरुवा लोगोंके, हुकुम=आज्ञासे मुसलमानोंके यहाँ, सुन्नत कर्म होता आ रहा है, और अभी हो रहा है। विवेक करके देखिये! मुस्लिमोंने तो विचारको छोड़कर, हरम=स्त्री, वाणी-कुरानकी, गुरुवाओंके, हुकुम=आदेशको ही माने हैं। नारी, वाणी, कल्पना आदिका हुकुम मानकर, ईलाही=अल्लाह या खुदा, अथवा निज चैतन्यस्वरूप तरफका, ईमान=सच्चाई, ज्ञानगुण सत्य, शील, आदिको खो दिये, ज्ञान गमा दिये हैं। खुद-खुदायका मर्म न पाया, ईमानको खोके बेईमान हो गये हैं। श्रेष्ठताको बिगाड़के नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं। हरमकी हुकुमत मानी, तो ईलाही ईमान खो गई। अतः जड़ाध्यासी विषयासक्त हो, चौरासी योनियोंके गर्भवास, जन्म-मरणके दुःख-भोक्ता भये, पतित हो गये और हो रहे हैं॥ २२९॥

साखीः—— जो हरम अल्लाह थी। तो शिरपर हुकुम मञ्जूर॥
जो हरम अल्लाह नहीं। तो गये इमान जरूर॥२३०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मुसलमानो! जो वह तुम्हारे पैगम्बर मियाँकी बीवी, हरम=स्त्री, राँड़ वा कल्पित कुरानके वाणी ही अल्लाह-मियाँ या खुदा-परवरदिगार, दुनियाँके मालिक थी, ऐसा यकीन करके मानते हो, तब तो उसके हुकुम या आज्ञाको मञ्जूर करके शिरपर धारण करना, आदेश-पालन करना, तुम्हें उचित है, और यदि वास्तवमें जो, हरम=स्त्री, वाणी, कल्पना, संसारी माया जाल है, वह अल्लाह-जहाँपनाह नहीं थी, अथवा वह राँड़ खुदा-ताला हो नहीं सकती है, ऐसा कहते हो, तब तो तुम्हारा ईमान=सचाई, धर्म, विवेक, विचार, इन्सानियत, हरमके हुकूमत माननेसे, जरूर=अवश्यमेव खो गया, विनाश, नष्ट-भ्रष्ट हो गया

है। क्योंकि, खुदा बेचून, बेनमून होनेसे वह तो कुछ कह ही नहीं सकता है। फिर राँड़के हुकुमसे ही सुन्नत करा लिये। कुरानके प्रमाणसे आजतक मुस्लिम लोग उस सुन्नत कर्मको मानते जा रहे हैं। इसीसे हरमके हुक्म माननेवाले सब मुसलमानोंका जरूर भी ईमान नेस्तनाबूद हो गया। आखिरमें बेईमान नादान ही हो गये, और हो रहे हैं ॥ २३० ॥

साखीः— कौल ईलाही छोड़िके । हरम कौल मुरीद ॥
यह दरजा पैगम्बरी । हरमी कौल सहीद ॥ २३१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ ! ये मुस्लिम लोग, ईलाही=अल्लाह मियाँ, मालिक, दुनियाँके बादशाहका, कौल=करार, प्रतिज्ञा, दया, क्षमा, सत्य, विचारादि सद्गुण-धारण निज-पर उपकार करना छोड़-छाड़के, सत्सङ्ग करना, न्याय-नीतिका धर्म त्याग करके उल्टा वे, हरम=स्त्री, वाणी, कल्पनासे, कौल= करार, ठहराव, कबूल करके उसी नारी आदिके पक्के, मुरीद=शिष्य, अनुचर, शागिर्द हो गये। स्त्री, वाणी ही उनकी गुरु बनी है, वे उसके चेले भये हैं। यह चाल छोटे लोगोंसे नहीं, किन्तु, बड़े-दरजा=खिताब, ओहदा, मान-प्रतिष्ठावाले मियाँ नबी, पैगम्बरने ही स्त्रीका, कौल=करारमें, सहीद=आत्म-समर्पण करके, मृतकवत् होकर दुनियाँमें कुपन्थ, कुचालको चलाया है, और खुदाको प्रसन्न करनेके लिये पैगम्बरोंने यह भिन्न-भिन्न दर्जा निकाला है। तहाँ हरमी=नारी, वाणी, कल्पनाकी सख्त फर्मान सुनाके, कौल=कबूल करार कराया है कि, हम सब सुन्नत करेंगे, पाँच बखत नमाज-पढ़ेंगे, रोजा-रखेंगे, बाङ्ग-पुकारेंगे, हज्ज-करेंगे, इत्यादि करार, सहीद= निश्चय कर-कराके इस्लाम मतका प्रचार किये और कर रहे हैं। अर्थात् करारमें हारके स्त्रीका चेला होना, यह तो इनके पैगम्बरी दर्जासे ही रिवाज चला है। परन्तु गुप्त भेदको लिपायके उसने चालाकीसे कुरानमें खुदाके वचन कहके लिख दिया है। अब वह?

वाणी कल्पनाको पढ़के निश्चय कर-कराके सुन्नत कराय, नमाज पढ़ते-पढ़ाते हैं। हकनाहक मिथ्या धोखामें ही भूले और भूल रहे हैं, बिना विवेक ॥ २३१ ॥

साखीः-- कबीर हुकुम अल्लाहके। छाड़ि भये मुनकीर ॥
कौल हरमको मानते। तनक न आई पीर ॥ २३२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! अल्लाह मालिक खुदाके, अथवा सत्यन्यायी पारखी सन्तोंके सत्य चैतन्य बोधका उपदेश, हुकुम = आदेश कि— सब जीवपर दया रखो, खुद-खुदाय चैतन्य जीवको ही सत्य जानो, इत्यादि सद्गुरुके आज्ञाको सर्वथा छोड़ करके तुरुक लोग, मुनकीर = मनमती, फकीर, मूढ़, पक्षपाती, अविचारी ही भये और हो रहे हैं, और, हरमको = स्त्री, वाणी, कल्पनाको श्रेष्ठ मानकर उसके अधान, दीन, हीन, मलीन, लाचार हो, कौल = करार, प्रतिज्ञा, कबूलकर उसे मानते जाते हैं। देखो! इन निर्बुद्धियोंको स्त्रीसे हारके उसके आज्ञा कबूलकर उसे मानने, पालन करनेमें, उस लम्पट लबारको, तनक = जरा-सी या किञ्चित् भी, पीर = कष्ट, दुःख, शर्म नहीं आई। कितना नैतिक पतन हो गया। अथवा वाणी कल्पनाकी करारको माननेमें उन मुस्लिमोंको थोड़ा-सा भी मनमें संकोच दुःख दर्द नहीं आयी। मनमाने वैसे झूठा धोखेको सत्य मानते गये, महा खाँचमें गिर पड़े हैं ॥ २३२ ॥

साखीः— सोई हुकुम हरमकी। उमत निबाहै जात ॥
पैगम्बर हुकुम हरमके। वे दुशमनके बात ॥ २३३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे मनुष्यो! जबसे अबतकके सब मुसलमान लोग सोई, हुकूमत = आज्ञा, फर्मान, हरमकी = स्त्री-माया वा वाणी, गुरुवा लोगोंकी, उमत = चाल, रीति, रिवाज, मजहबी प्रपञ्च, जात = खानी, वाणीके नाना सिद्धान्त, जन्म भर या उमर भर निबाहै जाते हैं, प्रतिपालन, धारण, दृढ़ निश्चय

करते जाते हैं। अरे भाई! पहिले तुम्हारे पैगम्बरने हा! तो हरम = स्त्री वा वाणीकी हुकूमतको लाचार होके माना था। अब तुम लोग खुदा और पैगम्बरके हुकुम समझके जो कुरान आदिकी वाणीको, सत्य मानते हो, ईद, बकरीद, मोहर्रम, सुन्नत, हलाल, रोजा, इत्यादि करते-कराते हो, सो धोखेमें पड़के ही कर रहे हो। देखो! वह घातकी, तामसी—कर्म, धर्मकी हो नहीं सकती है। धर्मात्मा पैगम्बर उपकारीके भी वह बात नहीं है। परन्तु वे सब तो सत्य, चैतन्यपदके दुश्मन, दुष्ट, पापी, अपराधी, मुक्ति-मार्गके शत्रुकी ही खोटी बात है। जीवोंको चौरासी योनियोंके बन्धनमें फँसानेवाला है। ऐसा यथार्थ जानके उस प्रपञ्चको त्यागो, और पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग, विचारमें ही लागो, तभी हित होगा, ऐसा जानो ॥ २३३ ॥

साखीः— मायाके गुण तीन हैं। उत्पति पालन संहार ॥
मायाके दुई रूप हैं। सत मिथ्या संसार ॥२३४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो!, माया = काया, प्रकृति, स्त्री, नारी, वाणी, कल्पना, अनुमान, मन और गुरुवा लोग इत्यादि खानी, वाणीकी माया प्रकृतिके रज, सत्त्व, तम। आदि, अन्त, मध्य। काम, क्रोध, मोह। आशा, तृष्णा, ममता। तत्त्वमसि। कर्ता, धर्ता, हर्ता। ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा। सङ्कल्प, विकल्प, चिन्तन। ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान। इत्यादि क्रमशः यही उन्होंके तीन-तीन गुण हैं। यह तीनों गुण उनके साथ ही सदा लगे रहते हैं। रजोगुण, कामसे आदिमें खानी, वाणीकी उत्पत्ति होती है। सत्त्वगुण, मोहसे मध्यमें उसकी पालन, परिपुष्टताई होती है, और तमोगुण, क्रोधसे अन्तमें मोटी, झीनी भाग दोनोंका विनाश या संहार ध्वंश हो जाती है। यही तीन गुणके मुख्य,कार्य होते रहते हैं, और उक्त माया, गुरुवा, वाणी, स्त्री, आदिका मुख्य स्वरूप, आकार, सिद्धान्त, ठहराव दो प्रकारका है। उसमें एक तो ब्रह्म सत्य तथा संसाररूप चराचर दृश्य जगत् मिथ्या कहके अद्वैतवाद सिद्ध करते हैं, सो

मिथ्या धोखा ही है। और दूसरा, संसारमें विषयादिकी सुख मानन्दी जो किये हैं, सो भी मिथ्या भ्रममात्र ही है। किन्तु, उसे जानने-माननेवाला द्रष्टा चैतन्य जीव सत्य है। मायारूप गुरुवा लोग और स्त्रियोंके खानी, वाणीकी जाल, प्रपञ्च तो सरासर मिथ्या है, और उनके स्वतः स्वरूप जीव चैतन्य होनेसे तीन कालमें अविनाशी सत्य है। तथापि बिना पारेख जड़ाध्यासी-बद्ध हो रहे हैं, ऐसा निर्णय करके जानना चाहिये ॥ २३४ ॥

साखीः— चमगिदुरनके बड़ेके । उलुवा भये परधान ॥
निशिमें दोऊ नयन सुख । दिन रवि होय न भान ॥२३५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! इसमें एक दृष्टान्त आया है, सुनिये ! चमगीदड़ पक्षीको तो सभी कोई जानते हैं, जो बड़, पीपल, पलास, आदि बड़े-बड़े वृक्षोंकी डालियोंपर दिन भर लटके रहते हैं। उनके पङ्ख भी चमड़ेके जालकी ही होती हैं, पङ्खमें अंकुशी काँटे होते हैं, उसीसे झाड़में टँगे रहते हैं। उन्हें दिनमें दिखाई नहीं देता है, किन्तु, रातमें वे अच्छी तरहसे देख लेते हैं। इसीसे रात भर चमगीदड़ चारा-पानी, खाने-पीनेके लिये उड़ा करते हैं। दिन भर आराम करते हैं। बन्दर सरीखा उनका मुख होता है। पशु, पक्षी दोनोंसे विरुद्ध विजातीयके वे होते हैं, और उलुवा = उलूक या उल्लू पक्षी, जो घू-घू बोला करता है। वह भी दिनमें कुछ नहीं देखता है, रात्रिमें ही अच्छी तरहसे देखता, उड़ता-फिरता है। चमगीदड़से उलूक पक्षीका शरीर बड़ा होता है। अतः वह उनमें प्रधान माना जाता है। एक समय सैकड़ों चमगीदड़ झुण्डके-झुण्ड रात्रिमें चरते-फिरते थे, विहार करते थे, उसी समयमें उनके झुण्ड दूर उपवनमें पहुँच गया, चारा चुगते, खाते-पीते, सबेरा हो गया, तो और सब चमगीदड़ तो लौटके घर आ गये, किन्तु, उनमेंसे कुछ चमगीदड़ पक्षी भूलसे उसी बगीचामें दूसरे तरफ जाके छूटके वहीं रह गये। दिन उदय हुआ, तो दूसरे पक्षी उड़के आये, उन्हें वहाँ

सोया पड़ा, देखके बोले— अरे! ओ परदेशीजनो! तुम लोग अभीतक क्यों सोये पड़े हो, उठो! आँखें खोलके चलो, हमारे सरीखे दैनिक कार्य करो, फिर रातमें मजेसे सोना। उसमें एकने कहा— मुझे तो अभी रात ही दिखाती है, दिनका प्रकाश तो कुछ दिखता ही नहीं, फिर कैसे उठूँ। पक्षियोंने कहा— अरे! तूँ क्या अन्धा बना है? आँखें क्यों ढाक रखा है? खोल नेत्रको, फिर देखेगा क्यों नहीं? ऐसे बहुतोंके बहुत वार कहनेसे उसने नेत्र खोला, तो खास सूर्यका प्रकाश देखा, जो उसने जन्म भर नहीं देखा था। तब पक्षियोंको धन्यवाद दे, वह भी अन्य पक्षीवत् दिनमें चरने, और रातमें सोने लगा। कुछ समय वाद फिर पहिलेवाले चमगीदड़ोंके झुण्ड वहाँ चरनेको आये। तो उसे वहाँ चुपचाप रात्रिमें सोते हुए देखकर उन्होंने आश्चर्य माने। फिर उसके पास आके बोले— अरे! ओ भाई! तू रात्रिके ऐसे उजियालामें चरता क्यों नहीं? तू भी हमारे सरीखा विचर, फिर दिनके अन्धकारमें सोते रहना। हमारा दिनका प्रकाश तो अभी रातमें ही हो रहा है। बोल क्या बात है? उसने कहा— अरे भाइयो! अभी तो घोर अँधियारा है, प्रकाश तो दिनमें सूर्यसे ही होता है। तुम लोग कैसी उल्टी बात करते हो। जावो! मैं अभी अँधियारामें चरने नहीं जाता, कहके उसने उनकी बात नहीं माना। तब चमगीदड़ोंने कहा— अरे! इसको तो किसीने भ्रमा दिया है। ये तो जाति-कुलका द्रोही विरोधी बना है। पकड़ो इसे, ले चलो महाराजा उलुवाके पास, कहके उसे पकड़के ले गये। उनके बड़े न्यायाधीश उलूक पक्षीके पास ले जाके उन्होंने फरियाद या उजुर किये कि— हे राजा! सुनो! यह जीव चमगीदड़ जातिका हो करके भी, हमारेसे विरुद्ध वर्ताव करता है, रातके प्रकाशको नहीं मानता है, इसे आप दण्ड दीजिये! उलूक बोला— हे चमगीदड़ प्रजाजनो! हमारी सनातन कुल परम्परा तो यही है कि— रात्रिके

प्रकाशमें ही यथेष्ट चरना, विचरना, यही निर्भयका समय है, और दिनके अन्धकारमें एक जगह आराम करना, सोते रहना। हमारे बड़े-बड़े पुरखाओंने यही बात कहा है, सो तुम लोग मानो। कहो ठीक है कि नहीं? तब तो सैकड़ों, सहस्रोंने हाँमें-हाँ मिला दिया, 'सत्य वचन महाराज!' कहा, तारीफ किया, उनमें कितनेक पक्षी तो ऐसा बहुमत, देख, सुनके उधर ही उलट गये, एक, दो, बचे, जो दृढ़ थे, उन्होंने उनकी झूठी वचन नहीं माने, तब तो उन्हें नाना तरहसे सताके छोड़ दिये। इसी प्रकार सिद्धान्तमें— चमगिदुरनके = पारख दृष्टिहीन भ्रमिक मूढ़ गुरुवा लोगोंके, बड़ेके = बड़े पूज्य, श्रेष्ठ, मान्यवर, कौन भये हैं कि— उलुवा = महामूढ़, विवेकहीन, गुरुवाओंके महन्त, आचार्य, मण्डलेश्वर, उपदेशक, जिन्हें पारखबोधके कुछ ज्ञान ही नहीं है। उनके शिष्य, सेवक, यजमान, अनुयायी आदि यदि कभी भूले, भटके हुए, सत्यन्यायी, पारखी साधु गुरुके सत्सङ्गमें आये, उपदेश सुननेसे विवेकका प्रकाश हुआ, तो उनका मानन्दी छोड़कर पारखी सद्गुरुके ही शिष्य, सेवक हो सुधार करनेमें लग जाते हैं। कभी जमात लेके घूमते-घूमते गुरुवा लोग आये, पूर्वके अपने शिष्योंको पूर्ववत् उन्हें मान देके कार्य करते हुए न देखके गुरुवा लोग उसे बहुत डाँटते, डराते, धमकाते हैं, फिर किसी युक्तिसे उन्हें अपने मतके प्रधान उल्लू बड़े गुरुवाके सामनेमें पेश करते हैं। वे हर तरहसे वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, आदिके प्रमाण देके षट् दर्शनोंके सिद्धान्तको ही पुष्ट कर देते हैं, जिसे लाखों, करोड़ों लोग उसे मानते हैं। ऐसा देख, सुनके बहुतेरे कम समझवाले उलटके, फिर उन्हींमें मिल जाते हैं। दृढ़ बोधवाले तो न्यारा ही हो रहते हैं। उन्हें शाप आदि देके वे सन्तोष कर लेते हैं। निशिमें = रात्रि, अज्ञान, अविद्यामें ही, दोऊ = दोनों गुरु-चेले बड़े-छोटे गुरुवा लोगोंको नयन-सुख या मानन्दीका सुख हो रहा है। सूर्यवत् पारख ज्ञानकी प्रकाशरूप

दिनमें भी उन्हें कुछ भान = मालूम होता ही नहीं है। महामूढ़ ही बने हैं। यानी अज्ञानतासे पक्षपातमें ही वे दोनों सुख-सन्तोष मानते हैं। पारखी सन्तोंके ज्ञान प्रकाशमें तो उन्हें कुछ सूझ-समझ पड़ता ही नहीं है। पारख प्रकाश होनेपर तो, सब छिप-छिप जाते हैं। कल्पनाके अन्धकारमें ही वे सब विचरके लोगोंको भुलाया करते हैं। अतः ऐसे उल्लू ठगोंके जाल, धोखामें कभी पड़ना नहीं चाहिये, उनसे दूर ही रहना चाहिये ॥ २३५ ॥

साखीः— रजगुण तीन प्रकारका। ब्रह्माका गुण सोय ॥
मन इन्द्री अरु कर्मसों। उत्पति जगकी होय ॥२३६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! मुख्य तीन प्रकारका रजोगुण होता है, सो बुद्धिरूप ब्रह्माका प्रधान गुण है। इसीसे मनसे मानन्दीकी, इन्द्रियोंसे उनके विषयोंकी और कर्मोंसे कार्य पदार्थ देह आदिका उत्पत्ति रजोगुण करके ही होता है। तथा मन, इन्द्रियाँ, कर्मोंसे ही समस्त खानी, वाणीकी, जगत् जालकी, चौरासी योनियोंकी उत्पत्ति हुई हैं, और हो रही हैं। अतः रजोगुणकी अशुद्धताको त्याग करके शुद्ध विवेक करनेमें लगना चाहिये ॥२३६॥

साखीः— सतगुण दुई प्रकारका। विष्णुका गुण सोय ॥
मनसों करसों जानिये। पालन जगको होय ॥२३७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— तथा मुख्य दो प्रकारका सत्त्वगुण होता है। विष्णुरूप चित्तका सोई शान्त रहनेका गुण है। और जगत्का पालन मुख्यतया दो प्रकारसे होता है। मनसे सूक्ष्म इन्द्रियोंकी वा मानन्दियोंकी, वासनाओंकी, पालना होती हैं, एवं करसे या कर्तव्य कर्मसे हाथसे स्थूल देह आदिका प्रतिपालन, रक्षण होता है। मनसे वासनाको बढ़ा-बढ़ाकर पालनकर पुष्ट करते हैं, हाथ आदिसे मोटा कर्म नाना प्रकारसे करते हैं, जिससे जगत्में वस्तु और प्राणी आदिका पालन होता है, तो माया-मोहका

बन्धन दृढ़ होता है, ऐसा जानिये! अतः अशुद्ध सतोगुणको छोड़कर, शुद्ध, गुरु-भक्ति बोध भावमें मनको लगाना चाहिये ॥ २३७ ॥

साखीः—तमगुण दोय प्रकारका। शिव अभिमानी सोय ॥
मनसों करसों जानिये। जग संहारन होय ॥२३८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और मुख्यतया दो ही प्रकारके तमोगुण भी होते हैं। शिव या रुद्ररूप अहङ्कारका सोई अभिमान, हङ्कार, दम्भ, करनेका तामसी गुण है। तथा सोई तमोगुणके अभिमानीको ही शिव कहे हैं। फिर जगत्का संहार, विध्वंश भी दो प्रकारसे ही होता है। एक, तो मनसे शुभ विचार शुद्ध गुणोंका संहार होता है, नाना सङ्कल्प-विकल्प करके काम, क्रोध, लोभ, मोहादि उठाते हैं, फिर शून्य सुषुप्तिमें मूढ़ बने रहते हैं। दूसरा, हाथोंसे शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग करके कर्म-कुकर्म, क्रूर कर्म, हिंसा, घात, प्रतिघात, आदिसे बहुतेरे प्राणियोंका संहार करते हैं। ऐसे दो तरहसे सूक्ष्म तथा स्थूल द्वारा जगत्का संहार होता है, ऐसा जानिये!। अतः अशुद्ध क्रूर स्वभाव तमोगुणको त्याग करके दृढ़-वैराग्य, उपरामता, मनमें रखना चाहिये। यहाँ त्रिदेव मुख्य तीन गुणको ही कहा है। सद्गुरुने बीजक शब्द ७५ में कहे हैंः—"रजोगुण ब्रह्मा तमोगुण शङ्कर। सतोगुणी हरि होई ॥" सोई त्रिगुणसे स्थूल, सूक्ष्मकी उत्पत्ति, पालन, संहार होता रहता है। किन्तु, समस्त ब्रह्माण्डरूप संसारकी उत्पत्ति वा प्रलय कभी हुआ नहीं, और होगा भी नहीं। खाली शरीर आदि कार्य पदार्थ ही बनते-बिगड़ते रहते हैं। चराचरके बनाव, बिगड़ाव, मानना, मिथ्या कल्पना, असम्भव बात है। ऐसे गुणमय जगत्को गुणातीत, निर्गुण, ब्रह्म, मानना बड़ी भारी भूल है ॥ २३८ ॥

साखीः—ब्रह्म, जीव ईश्वर जगत्। उपजे मनसे सोय ॥
कहहिं कबीर सुनु पण्डिता! गुणातीत किमि होय? ॥२३९॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! चैतन्य जीवकी

सत्ता सम्बन्धसे नरदेहमें सूक्ष्म मन-मानन्दी अनुमान, कल्पना, सङ्कल्प-विकल्पादिसे कोई असिपद, निर्गुण, निरञ्जन ब्रह्म है, कोई तत्पद, निराकार, सर्वशक्तिमान् ईश्वर है, कोई त्वंपद शक्तिहीन अज्ञजीव है, कोई पञ्च-विषय विस्ताररूप जगत् सब विराट परमात्मा है, इत्यादि प्रकारसे माने हैं। सो सब मनसे ही तो उत्पन्न हुआ है। जीवके रजोगुणसे जगत् विषय उत्पन्न हुआ, तमोगुणसे ब्रह्मका भ्रम हुआ, सतोगुणसे ईश्वरकी कल्पना, अनुमान, पैदा भयी है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— हे अद्वैतवादी पण्डित ! सुनो ! ब्रह्म, ईश्वरको अब कहो, गुणातीत कैसे कहते हो ? त्रिगुणसे रहित, निराकार, निर्गुण, व्यापक, वह कैसे हुआ ? कहाँ हुआ ? मनमानन्दीसे कल्पना करके शब्द निकाले बिना ब्रह्म, ईश्वरादिकी सिद्धता ही नहीं होती है, अतः वह सब त्रिगुणके विकार वाणीका विषय बन्धन ही है ॥२३९॥

साखीः— बिन दुलहाकी दुलहिनी। सूनी सेज रहि सोय ॥
गये अकारथ सोवना। चली निराशा रोय ॥२४०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! जैसे कोई क्वाँरी कन्या स्वप्नमें एक दुलहाको देखके उसे पति मान करके अपने दुलहिनी बनके शून्य स्थानमें उससे मिलनेकी आशासे खाली शैय्यापर अकेली सोय रही, सारी रात बीत गयी, तो भी, पति सम्बन्धका आनन्द नहीं मिला। इसीसे उसके शून्यमें सोना अकार्थ या व्यर्थ ही हो गया, दिन निकलनेपर वह स्वप्नका पुरुष उसे प्रत्यक्ष न मिलनेसे चिन्तासे निराश हो, रोय-रोय बिलाप करके भटकती चली गयी। तैसे ही सिद्धान्तमें अज्ञान अबोधका स्वप्नमें दुलहिनी बना हुआ दीन, मलीन नरजीवोंने वेद, शास्त्र, पुराण आदिके प्रमाणसे, दुलहा = ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा, स्वामी, वरका नाम सुना, वाणी देखा। परन्तु वह तो मिथ्या कल्पना है। सत्य बोध हुए बिना ब्रह्म आदिसे मिलनेके लिये अधीर होकर, सूनी

सेज=शून्य आकाशवत्, पूर्णव्यापक, परमात्मा मानके भ्रमर गुफा ब्रह्माण्डके शून्य शैय्यामें चित्त-चतुष्टयको लय करके निर्विकल्प शून्य समाधि लगायके सोय रहे हैं, गाफिल, बेभान हो रहे हैं। परन्तु दुलहावत् माना हुआ ब्रह्म तो भ्रमरूप मिथ्या धोखा है। इसीसे योगी, ज्ञानियोंके धारणा, ध्यान, समाधि लगायके सोना, शून्य, उन्मुन होना, सो तो गाफिली होनेसे, अकारथ=निष्फल, व्यर्थ, वाहियात ही, हो गया। उनकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई, इसी तरह नर जन्मका सारा आयु बीत गया। एक दिन शरीर भी छूटने लगा, तब तो निराश=असहाय, अनाथ, दुःखी हो करके रोय-रोयके शोकमें व्याकुल होकर पछताया, घबराया, प्राण छूटा, तो अध्यासने जीवको चौरासी योनियोंमें लेके चला गया। आखिर तक जीव-ब्रह्मकी एकता नहीं हो सकी। सब साधनाएँ फजूल हो गयीं। अतः कर्ता ईश्वरादिके मिथ्या मानन्दीको सत्सङ्गसे परखकर हटाना चाहिये ॥ २४० ॥

साखीः— जो जीव होता बिन्द ही। कहैं विचार कबीर! ॥
सङ्गति करते शक्तिसों। तब हीं तजत शरीर ॥२४१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे वीर्यवादी विषयी लोगो! जब तुम लोग जड़ वीर्यको ही चैतन्य जीव मानते हो, तो तुम लोग ठीक-ठीक विचार करके कहो कि— जो यदि वीर्य ही असलमें जीव होता, तब जिस समय, शक्ति=मायारूप स्त्रीसे पुरुष लोग, सङ्गति=सम्भोग या मैथुन करते हैं, उस वक्त बिन्दु पतन या वीर्य स्खलित हो जाता है। फिर शरीरसे वीर्य निकल जानेपर पुरुष तब तुरन्त वहीं शरीर छोड़के मर जाता वा उसे मर जाना चाहिये था। फिर गिरा हुआ वीर्य भी स्त्रीकी भगकी उष्णता पायके विनाश हो जाना चाहिये था। परन्तु ऐसा तो कहीं नहीं होता है। यदि वीर्य गिरनेपर पुरुषकी मृत्यु और योनियोंकी गर्मीसे वीर्य गर्भके शरीरका नाश हो जाता। तब तो माना जाता कि— हाँ!

वीर्य ही जीव है और तब तो कोई भी पुरुष स्त्री-सम्भोग नहीं करते। किन्तु, यहाँ तो उससे उल्टा पाया जाता है। बहुतेरे विषयी कामी पुरुष स्त्रीसे नित्य ही मैथुन किया करते हैं। हर वक्त मैथुनमें रज-वीर्य पतन हो नष्ट होता ही रहता है। अति भोगसे मुखमें हड्डी-हड्डी दिखने लग जाती है, तो भी जीते ही रहते हैं। इसलिये वीर्य अन्नसे बना हुआ, सप्त धातुओंका रस जड़ ही है, वह चैतन्य जीव नहीं है। वह ब्रह्म भी नहीं है, वीर्यको ब्रह्म कहनेवाले कवि लोग विचार करके कहें कि— स्त्री-सङ्ग भोग करनेसे वीर्य पतन होके शक्ति क्षीण होती है, तब ही शरीर छूट क्यों नहीं जाती है? अतः वह जड़वीर्य जीव, ब्रह्म, ईश्वरादि कुछ भी नहीं है। सब मानन्दी मनका मिथ्या कल्पनामात्र है। निर्णय करके उसे यथार्थ जानना चाहिये ॥ २४१ ॥

साखीः— कबीर जेता साधना। साधन गुण औगूण ॥
कहहिं कबीर शब्द बिन परखै। सकल साधना सून ॥२४२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! संसारमें पारख बिना कल्पित ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, स्वर्गादि, सिद्धि, ऋद्धि, आदि प्राप्तिकी आशासे गुरुवा लोगोंने वेदादिका वाणीके प्रमाणसे कर्म, उपासना, योग, ज्ञान, ध्यान, विज्ञान, ब्रह्म-समाधि, इत्यादि जितना भी कष्टकर और सहज साधनाएँ किये, कराये हैं, सो साधनोंसे कोई कल्याणकारी सद्गुण विवेक आदि तो प्राप्त नहीं हुआ। बल्कि निर्गुण, निराकार, व्यापक, अहंब्रह्म कहके और भी अवगुण, दुर्गुण, भ्रम, धोखामें ग्रसित हो गये, कल्पनाको ही लाद लिये। तहाँ जिसे साधनोंसे प्राप्त करना चाहते हैं, सो ब्रह्म, ईश्वरादि तो, औगूण = निर्गुण माने हैं। इसलिये सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारख सिद्धान्तके मर्मज्ञ पारखी सन्त कहते हैंः— सारशब्द गुरुमुख निर्णयसे पारखी सद्गुरुके सत-सङ्ग द्वारा काल, सन्धि, झाँई, तत्त्वमस्यादि शब्द वा वाणी जालको

यथार्थ परखे बिना, कसर खोट, सत्यासत्य जाननेमें नहीं आता है। निज चैतन्य पारखस्वरूपका बोध स्थिति नहीं होता है। अतएव बिना पारख मनुष्योंका किया हुआ सम्पूर्ण साधनाएँ सूना, व्यर्थ, निष्फल हो जाती हैं। क्योंकि, और सकल साधनाएँ जीवोंको शून्य गाफिलीमें ही ले जाके गाड़नेवाले हैं। उससे कुछ भी हित नहीं होता है; अतः असार सब साधनोंको त्याग देना चाहिये ॥ २४२ ॥

साखीः— है साधन लावा लखै। साधन लखैजुँ बाज ॥
शब्द विवेकी पारखी। साधनके शिरताज ॥२४३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और जो मनुष्य भक्ति, योग, ज्ञानादिकी साधनाएँ नहीं करते हैं, उन्हें गुरुवा लोग, लावा = बटेर, निर्बल, पक्षीकी सदृश तुच्छ लखते या देखते हैं, और जो कठोर साधनाओंमें लगे हैं, उन्होंके मानन्दीकी साधना संयुक्त हैं, उन्हें साधक लोग बाज पक्षीवत् बलवान् श्रेष्ठ, उच्च लखते हैं, उन्हें वे सिद्ध पुरुष समझते हैं। जैसा बाज बटेरको धोखा दे-देके मारकर खाता है। तैसा वे कपटमुनि, धूर्त लोग भी वाणी, कल्पना दृढ़ा-दृढ़ाके ईश्वरादि कर्ता, सुख-दुःखोंका दाता कोई परमात्मा है, उसके प्राप्तिसे परमानन्दकी लाभ होती है, इत्यादि, दृढ़ा-दृढ़ाके गरीब, अबोध मनुष्योंको भुला करके तन, मन, धनादि, हरण कर लेते हैं। साधनसे वे स्वार्थ सिद्ध करते हैं। वे सब ढोंगी, ठग, अविवेकी बने हैं। और जो पारखी सन्त सारशब्द टकसार द्वारा परीक्षा करके सब शब्द जालोंको विवेक करके निर्णय ग्रहण करते-कराते हैं, वे ही शब्द-विवेकी पारखी, सम्पूर्ण साधु समाज और साधक-सिद्धोंके ऊपर सर्वोपरि, सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ, शिरताज = शिरकी अमूल्य रत्नजड़ित मुकुट वा ताजके समान महान मान्यवर, परमपूज्य होते हैं। उन्हींकी शरण-सत्सङ्ग विचारसे नरजीवोंकी मुक्ति प्राप्ति होती है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २४३ ॥

साखीः— कबीर शून्यको सेयके। होय चहै भवपार ॥
जैसे दीपक चित्रको। करै कौन उजियार? ॥ २४४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे नरजीवो! इस कायावीर कबीर मनुष्य जीवोंने निज स्वरूपको भूलके भ्रम चक्रमें पड़े। तब, शून्य = जहाँ कुछ भी नहीं, आकाश, निराकार है, बस, तद्वत् निर्गुण, निराकार, बेहद्द वा अनहद्द ब्रह्म, परमात्मा कोई एक अद्वैत आकाशके नाईं ठहराये हैं। फिर उसी शून्यरूप 'खं' ब्रह्मकी प्राप्ति तदाकार होनेके लिये नाना तरहसे योग, ध्यान, ज्ञानादि साधनोंका सेवन, अभ्यास करके वे भवसागर वा आवागमनसे पार होकर मुक्त होना चाहते हैं। परन्तु मूलका विचार कुछ भी नहीं करते हैं, कि— वह तो मिथ्या धोखा है, कोई वस्तु ही नहीं है, तो फिर उससे मुक्ति कैसे होगी? जैसे भीतमें, और कागजमें किसीने अच्छे रङ्गसे सुन्दर दीपकका आकार अङ्कित करके बनाया हो, अथवा जलती हुई दीपककी फोटो खींचके रखा हो, तो कहो भला! वह चित्रका दीपक कौन, कहाँ, कैसा— किञ्चित् भी उजियाला वा प्रकाश कर सकता है? वह चित्र प्रकाश क्या करेगा? कुछ भी नहीं करेगा तैसे ही वेद, शास्त्र आदिमें लिखी हुई वाणी, शब्द दीपक हैं। उससे ब्रह्म, ईश्वरादिकी कल्पित चित्र-मानन्दी खींच दिया है। फिर वह किसके हृदयको क्या प्रकाश करेगा? कैसे अज्ञान अध्यास छुड़ायेगा? कैसे भवपार होंगे? वह शून्य ब्रह्म आदि मानन्दीसे कुछ कल्याण हो नहीं सकता है ॥ २४४ ॥

साखीः— जगत पदारथ जाहिको। बूझ खड़ी होय जाय ॥
जैसे बाघ चित्रको। कहो कौनको खाय? ॥२४५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और जिस भ्रमिक, मूढ़, अविवेकी मनुष्यको, जगत् पदारथ = पदरूप वाणीका अर्थ करके जगत्के पाँच तत्त्वरूप ब्रह्माण्ड, पिण्ड, समस्त विश्वरूप एक अद्वैत ब्रह्म है,

ऐसा मानन्दी दृढ़ भयी, तो बूझ खड़ी होय जाय = वही वाणी कल्पनाको समझ-बूझके प्रतीत करनेसे ऐसा ही भावना, अनुभव उनके हृदयमें खड़ी हो जाती है। चराचर जगत् सब एक ही ब्रह्म है, सो मैं हूँ, द्वैत कुछ भी नहीं है, यही निश्चय खड़ी, सावधान हो जाती है। किन्तु, वह भावना उनकी मिथ्या भ्रम, भूल ही है। जड़ और चैतन्य कभी एक हो नहीं सकता है; प्रत्यक्ष न्यारा-न्यारा ही हैं। जैसे चित्र वा तसबीरमें किसी कुशल चित्रकारने क्रूर, हिंसक पशु, बाघका वैसे ही आकार-प्रकार लिखके चित्र बना दिया हो, वा बाघके फोटो खींचके रखा गया हो, कोई उसको सजीव बाघ मानके दृढ़ भावना भी कर बैठे, तो कहो, वह चित्रका बाघ किसीको खा सकता है? उसने किसीका शिकार करके खाया है? कभी नहीं। तैसे ही वाणी-कल्पनासे चित्र खिंचा हुआ सिद्धान्तमें बाघवत्-ब्रह्म, ईश्वरादि असत्य हैं, तो फिर कहो, वे किसके जन्म, मरणादिके दुःखको खाके या मिटाके मुक्त करेंगे? किसीकी भी नहीं करेंगे? बल्कि वाणी, खानी मानन्दीसे जड़ाध्यासी हो, जीव सब चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़े, और पड़ेंगे। अतः परखके वह भ्रम मिटाना चाहिये ॥ २४५ ॥

साखीः— जग भासत सन्धिक किये। सन्धिक भासै ब्रह्म ॥
कहहिं कबीर सन्धिक लखै। होय कोई नहिं भर्म ॥२४६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! जगत्में जड़ पाँच तत्वका विस्तार और अनन्त देहधारी चैतन्य जीव तो प्रत्यक्ष सत्य भासते हैं, या सबको दिख ही रहा है। परन्तु अविवेकी वेदान्ती लोग जड़ और चैतन्य दोनोंको, सन्धिक = एकमें मिलायके या कल्पनामें मनको जोड़के चराचरमें पूर्ण एक ही ब्रह्म है, ऐसा मानन्दी किये हैं। इसीसे, सन्धिक = मिथ्या मानन्दीके सम्बन्धसे उन्हें जगत् सब ब्रह्मरूप एक अद्वैत ही भासता है। यानी भ्रमसे ऐसा निश्चय होता है। पारख सिद्धान्तके ज्ञाता सद्गुरुश्रीकबीरसाहेब

के सत्य निर्णयको, पारखी सन्त कहते हैं कि— गुरुमुख निर्णयसे परख करके जो जिज्ञासु, सन्धिक = मनकी मानन्दीको, ठीक तरहसे, लखते = देखते, जानते, पहिचानते हैं कि — मानन्दी सकल असत्य धोखा है, वह असार कल्पनाका ही विस्तार है। सबको जानने-माननेवाला चैतन्य जीव ही सत्य अखण्ड है, ऐसे बोध दृढ़ होनेपर फिर उन्हें कोई कर्ता, ब्रह्म, ईश्वरादिका मिथ्या भ्रम कभी हो नहीं सकता है। जड़, चैतन्यका भेद यथार्थ जान लेनेपर और कोई भ्रम नहीं होता है, पारखके प्रतापसे सब भ्रम, भूल मिट जाती है ॥२४६॥

साखीः— ब्रह्मादि सनकादि जो । सबका सन्धिक ज्ञान ॥
कहहिं कबीर शिरमौर सो । लखैजो सन्धि विज्ञान ॥२४७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं— और हे सन्तो ! प्रथमके गुरुवा लोग ब्रह्मा, विष्णु, महेश, और सनकादिसे लेके अठासी हजार ऋषि, मुनि, तपस्वी, उन्हींके शिष्य वर्ग और उनके मतवादी अनुयायी जो-जो हो गये हैं, उन सबोंका वही, सन्धिक = मिथ्या मन-मानन्दीका मिलाप, जगत्‌को ब्रह्म माननेका ज्ञान दृढ़ हो रहा है। अभी उनके पक्षपाती सम्प्रदायी लोगोंको भी वही सन्धिक-ज्ञान-ब्रह्मज्ञानका निश्चय हो रहा है। द्रष्टाको पृथक् करके उन्होंने पारखदृष्टि नहीं किये, और करते भी नहीं हैं। इसीसे महाभ्रम, भूलमें पड़े हैं। अतएव सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— मानन्दीमें पड़े हुए सब लोग तो बद्ध, तुच्छ हैं। परन्तु जो विवेकी पारखी सन्त सत्य निर्णयसे परीक्षा करके लखते हैं, वे, विज्ञान = चराचरमें व्यापक एक आत्मा ठहराया हुआ आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञानको विशेष ज्ञान मानके उसे ही, सन्धिक = मन-मानन्दीसे गुरुवा लोगोंने जो अपना स्वरूप निश्चय किये हैं— सो मिथ्या धोखा है, भूल है, सरासर भ्रम मात्र है, ऐसा लखते हैं, उसे जान-पहिचानके उसके मानन्दी त्यागते हैं। सोई परीक्षक, पारखी सबके शिरमौर होते हैं, या

वे ही सन्त शिरोमणि, सर्वश्रेष्ठ हैं। वे ही निज पारखस्वरूपमें स्थिति करके जीवन्मुक्त होते हैं। ऐसे ही पारखी सन्तोंके सत्सङ्ग-विचार करके, सन्धि विज्ञानको लखके न्यारा हो रहना चाहिये, पारखमें ठहरना चाहिये ॥ २४७ ॥

साखीः—राम नामकी औषधी । सन्धिक विष दियो सान ॥
वह रोगिया भवपान करि । रोगिया वैद्य समान ॥२४८॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे मनुष्यो! भ्रमिक पारख-हीन गुरुवा लोगोंने अबोध, अज्ञानी, आवागमआदि कठिन रोगोंमें पड़े हुए नरजीवोंको भुलाकर राम-नामको बड़ी औषधि अमूल्य बूटी बता करके उसमें मिथ्या मानन्दी कल्पनाके विष-तीक्ष्ण जहर ही सान दिये या मिला दिये हैं। अर्थात् राम=सगुण परमात्मा, नाम=निर्गुण परमात्मा कोई एक अलग ही कर्ता पुरुष बताके चैतन्य स्वरूपकी बोध-मिटाके यही, औषधि=उपदेश दिये कि—जड़-चैतन्यमें एक ही आत्माराम परिपूर्ण भरा है, तुम और हम सोई एक अद्वैत आत्मा वा ब्रह्म ही हैं, ऐसा विश्वास करके मान लो, इत्यादि समझाये। उसमें, सन्धिक=एकता, जोड़, मिलाप, चराचरमें एक आत्मा ऐसी मानन्दी सोई, विष=वाणीका विषय मनकी कल्पनारूप हलाहल जहर एकमेक, गोलमाल करके सान दिये वा धोखेमें जीवको मिला दिये। फिर, रोगिया=जन्म-मरणादि रोगोंसे दुःखी जीवोंने वही मिथ्या उपदेशको ग्रहण करके कल्पित वाणीरूप भवसागरमें पूर्ण एक ब्रह्म सर्वात्मा, सर्वाधिष्ठान 'अहं ब्रह्मास्मि', इसी भ्रमको पी करके अरट्ठ, लट्ठ, बेहोश, शून्य हो गये। रोगीको जहर मिलायके लेटा कर वैद्य बने हुए गुरुवा लोगोंने भी भर पेट वाणी कल्पना वाली जहरका शर्बत, खूब पीये, तो वे भी आत्मा व्यापक बनके मूर्च्छित हो गये। इस तरह वैद्य और रोगी एक समान अचेत हो गये। यानी गुरु,

शिष्य दोनोंने शून्य नभके समान आत्मा वा ब्रह्मको अपना रूप मानके जड़ाध्यासी गाफिल हुए, तो पतित हो चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़ गये, विना पारख ॥ २४८ ॥

साखीः—ब्रह्मा गुरु सुर असुरके। सन्धिक विष नहिं जान ॥
मारे सकल औंधायके। सन्धिक विष करि पान ॥२४९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे नरजीवो! पूर्व समयमें ब्रह्मा नामक पण्डित, वेद वक्ता हुआ था; वह, सुर=देवगण वा सत्त्वगुणी मनुष्योंके और, असुर=दानवगण या दैत्य, राक्षसोंके वा तमोगुणी मनुष्योंके, गुरु=उपदेशदाता, विद्या पढ़ानेवाला, शिक्षकके रूपमें उन दोनोंके ब्रह्मा ही गुरु बना था। परन्तु उसने भी, सन्धिक विष=मन मानन्दीकृत ब्रह्म, ईश्वर, एक आत्माकी कल्पनाको असत्य नहीं जाना। इसीसे कर्ता पुरुष परमात्मा कोई एक मान-मानके धोखामें पकड़े भूला रहा। जब गुरु ही भूला था, तब शिष्यगण तो सहज ही महान् भूलमें पड़े थे। ब्रह्म आदि जो माना, सो नरजीवोंकी ही मिथ्या कल्पना है, सो नहीं जाने। और सकल त्रिगुणी मनुष्योंको, औंधायके=उल्टी बोध दृढ़ाय नीचे गिरायके, चैतन्य हंसस्वरूपका ज्ञान खोयके नष्ट-भ्रष्ट, पतित, कर-करायके धोखा दे-देके, मारे=जड़ाध्यासी भ्रमिक बनाये हैं। ज्ञान-साक्षीको ढाँकके विज्ञानसे महा अज्ञान हो, मुक्तिपदको मारे—विनाश किये, और अभी उनके अनुयायी जो योगी, ज्ञानी, भक्त आदि हैं, वे सब भी वही, सन्धिक=मिथ्या मानन्दी करके वाणीका कालकूट विष=कल्पनाकी नाना सिद्धान्तवाली वाणीको ही पान कर-करके अचेत, भ्रमिक, जड़ाध्यासी हो मर-मरके चौरासी योनियोंमें ही चले जा रहे हैं। बिना पारख खानी-वाणीके विषरूप विषयको ही पीके वा ग्रहण करके नष्ट-भ्रष्ट हो, त्रयताप, आदिके असह्य दुःख भोगे और भोग रहे हैं ॥ २४९ ॥

साखीः—उसवासे जग ऊबरे । विश्वासे मरि जाय ॥
उसवासे विश्वासको । मारा ढोल बजाय ॥ २५० ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे मनुष्यो ! जो पुरुष, पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग करके, उसवासे = ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा आदि कल्पनाको परख करके उसके तरफसे मिथ्या वासना, चिन्तन, मानन्दीको छोड़कर अविश्वास कर लेते हैं, अर्थात् ईश्वर कर्ता आदिका कुछ भी विश्वास नहीं करते हैं और हंसगुण रहनी रहस्यको ही धारण करके स्थिर, शान्त हो जाते हैं। वे अवश्य ही जगत्के खानी-वाणी जालोंसे छूट करके उबर गये वा ऊबरेंगे, पार, निर्बन्ध, मुक्त होवेंगे। और जो-जो मनुष्य लोग बिना विचारे गुरुवा लोगोंसे वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदिकी वाणी सुन-सुनके जगत्-कर्ता ईश्वर, ब्रह्म, खुदा, आदि मान-मानकर अन्धविश्वास दृढ़ करते हैं, वे सब जड़ाध्यासी, भ्रमिक, बद्ध, होकर मर-मरके चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़ जायेंगे। और संसारमें गुरुवा लोग, ढोल बजाय = कल्पित वेद आदि वाणीका उपदेश मुखरूपी ढोलके पोलसे बजाय-बजायके, यानी शिक्षा कथन कह करके दृढ़ाय-दृढ़ायके सब प्रकारसे ईश्वर, ब्रह्म आदिकी भरोसासे मुक्ति सुख आदिका विश्वास दिलाय-दिलायके सत्यानाश कर रहे हैं। कोई एक कर्ता पुरुष निश्चय कराय, वाणीकी ढोल बजाय कल्पनाका ढेला मार-मारके विनाश किये और कर रहे हैं। उसे, उसवासे = अविश्वास करनेवाले विवेकी सन्त अन्धविश्वासको खण्डन करके निर्णय उपदेशका ढिढोंरा पीट-पीटके भ्रम, भूलको ज्ञानसे मार-मारके हटा रहे हैं, निज-पर हित ही कर रहे हैं ॥ २५० ॥

साखीः— बोलै वाणी होत है । मौन रहे ते श्वास ॥
कहहिं कबीर मुख नाशिका । शब्द करैं परकाश ॥२५१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो ! जब मनुष्य

मौन = चुपचाप रहते हैं, तब अकेला ही प्राणरूप श्वास वायु चलती रहती है। उसे गुरुवा लोग निःअक्षर ब्रह्म, प्राणरूप, परमेश्वर, कहते हैं। फिर जब शब्द उच्चारण करके बोलते हैं, तब ५२ अक्षर प्रगट होके वाणी पैदा होती है। उसको ॐकाररूप प्रणव ब्रह्म वा शब्द ब्रह्म कल्पना करते हैं। अतः सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— देखिये! इस प्रकारसे मुखसे उच्चारित वर्ण-अक्षररूप शब्द तथा नासिकासे आने-जानेवाली श्वास-वायु, नादरूप शब्द दोनों भी वायुका विषय जड़ ही हैं। किन्तु, बेपारखी गुरुवा लोग वही समान-विशेष शब्द द्वारा कर्ता एक कोई ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा, आदिकी मन कल्पनासे जगत्में प्रकाश किये और कर रहे हैं। सो सब शब्द विषयका ही प्रकाश है। अथवा जब बोलते हैं, तो नाना प्रकारके वाणी प्रगट होते हैं। सो वाणी कहने-सुननेमें ही मन लगाये रहते हैं, और जब थकके मौन रहते हैं, तब श्वासमें लक्ष वा सुरति लगाये रहते हैं। पारखी सद्गुरु कहते हैं— उस तरह मुख और नासिकासे परा, पश्यन्ती, मध्यमा, और वैखरीरूप चार वाचाके शब्दसे कथन करके ब्रह्म, ईश्वरादिके जो प्रकाश करते हैं, सो सिर्फ जड़ शब्द विषयके सिवाय और कोई सत्य वस्तु नहीं है, अतः परख करके भ्रमको त्यागना चाहिये ॥ २५१ ॥

साखीः— सन्धिकते सब ईशता। सन्धिक अर्थ परमान ॥
कहैं कबीर निःसन्धि जो। सो भी सन्धिक जान ॥२५२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! संसारमें जितने भी सिद्धान्त प्रगट किये हैं, सो सारा मन-मानन्दीकृत ही हैं। इसीसे, सन्धिकते = वाणी कल्पनाके मानन्दीसे ही सब कोईने ईश्वरकी विशेषता वर्णन किये हैं। षट्गुण सहित ईशता भी मानन्दीसे ही सिद्ध होता है। और ज्ञानियोंके ज्ञानकी विशेषता, महत्त्व, या महिमा भी मानन्दीसे ही ठहराते हैं। फिर शब्दके अर्थ लगाकर

वेद प्रमाणसे एक परमतत्त्व परमात्मा जो ठहराये, सो भी, सन्धिक = मिथ्या मनकी मानन्दीमात्र ही है। और जो जिसको, कहैं कबीर = गुरुवा लोग कहते हैं कि— ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, निःसन्धि है, असन्धि परिपूर्ण सर्वत्र भरा है, मन, बुद्धि, वाणीसे परे, मन-मानन्दीसे परे है। असीम, निराकार, निर्गुण है, इत्यादि जो महिमा किये हैं, सो वह भी खास मनका ही मानन्दीमात्र ही है, ऐसा जानिये! मानन्दी किये बिना तो ऐसा असम्भव कथन निकल ही नहीं सकता है। वैसे वह कहीं कोई सत्य वस्तु विवेकसे ठहरता ही नहीं। अतः जीवको छोड़ करके और जो-जो भी सिद्धान्त स्थापन किये हैं, सो सब मनके मिथ्या कल्पनाके मानन्दीमात्र हैं। ऐसा जानकर परखके उसे त्याग देना चाहिये ॥ २५२ ॥

साखीः— नाहीं जगतका बीज है। जीवत सङ्ग रहाय ॥
करै भरोसा नारिका। मुये सङ्गहि जाय ॥२५३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो! ये भ्रमिक ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं कि— द्वैत करके जगत् कहीं नहीं है, ख पुष्प, शश शृङ्गवत् जगत् नास्ति है। मन, बुद्धि, वाणी नहीं, तू नहीं, मैं नहीं, जगत् नहीं, माया नहीं, जो कुछ है, सो एक ब्रह्म अधिष्ठान ही सत्य है। "एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति" इत्यादि बताते हैं। और सुन्दर विलासमें कहा हैः— "नाहिं नाहिं करै सोइ तेरो रूप है ।।" तहाँ नाहीं = एक ब्रह्मके सिवाय दूसरा कुछ नहीं, ऐसा गुरुवा लोग जो कहते हैं, सोई सारा जगत् चारखानी चौरासी योनियोंका मुख्य कारण और आवागमनमें जीवको डोलानेका बीज है। जीतेतक ब्रह्म मानन्दी करके जड़ाध्यासी होते हैं, फिर शरीर छूटके मरनेपर वह खानी, वाणीके अध्यास वासना सूक्ष्म देहके साथ ही जीवके सङ्ग चला जाता है। वही संस्कारके अनुसार पशु, पक्षी, उष्मजादि योनियोंमें जीवको लेजाके डाल देता है। जो कोई मनुष्य उस, नारी = कल्पित वाणीका विश्वास करके

ईश्वरादिकी आशा, भरोसा करते रहते हैं, वे बड़े धोखामें पड़ जाते हैं। जीतेतक भी अध्यास जीवके साथ ही लगी रहती है। और देह छूटनेपर भी साथ ही चली जाती है, ऐसी वह बड़ी बलाय हो जाती है॥ अथवा खानीमें अर्थः— स्त्री सुखरूप नहीं है, वह तो महादुःखरूप ही है। फिर जगत्में शरीर धरानेकी बीज है, जन्म, मरण, गर्भवास, होते रहनेका भूमिका है। जीतेतक स्त्री और उसके वासना-अध्यास पुरुषोंके सङ्ग-साथमें ही चिपके रहती है। जो मूर्ख पुरुष उस अविश्वासिनी स्त्रीका विश्वास करके विषयानन्दादिके लिये आशा, भरोसा करते हैं, वे अवश्य धोखामें पड़ जाते हैं। फिर मर जानेपर अध्यासवश उसी स्त्रीके सङ्गमें उसके गुप्त अङ्ग गर्भवासमें वे जीव चले जाते हैं, और नाना कष्ट भोगा करते हैं। अतः परखकर खानी, वाणीकी अध्यासोंको त्यागना चाहिये। ब्रह्मानन्द, और विषयानन्द दोनों ही जीवोंको बन्धन हैं, ऐसा जानिये !॥२५३॥

साखीः— सबकी उतपति जीवसो। जीव सबनकी आदि॥
निर्जिवते कछु होत नहीं। जीव हैं पुरुष अनादि॥२५४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! वास्तवमें यथार्थ बात तो यह है कि— अनन्त, देहधारी चैतन्य जीव तथा जड़ पञ्चतत्त्वका यह संसार स्वतःसिद्ध अनादि है। तहाँ जड़तत्त्वोंकी शक्ति सम्बन्धसे जड़ कार्योंकी सृष्टि होती है। और चारों खानीकी देह, कर्मोंकी सृष्टि जीवोंसे होती हैं। फिर लोकमें वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल, इत्यादि समस्त वाणी-जाल, मत, पन्थ, नाना सिद्धान्त, षट्दर्शन—९६ पाखण्डोंका पसारा और माना हुआ ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, परमेश्वर, तैंतीस कोटि देवता, भूत, प्रेतादि खुदा, ऋद्धि, सिद्धि, करामात, मन्त्र सामर्थ्य, इत्यादि तथा विषय विस्तार पाप, पुण्य, विद्या, बुद्धि, कला, कौशल, जात, पात, कुल, गोत्र, नाता, मान, मर्यादा, न्याय, अन्याय, कायदा, कानून, इत्यादि सबोंकी उत्पत्ति नरजीवोंसे ही हुआ है और हो रहा है। इसलिये

उन सबोंके आदि कर्ता, प्रधान, प्रथम सबसे श्रेष्ठ मनुष्य जीव ही हैं। अगर प्रथमसे ही नरजीव न होते, तो उतना सारा पसारा कैसे कहाँसे होता? सो कुछ भी न होता। और निर्जीव, जड़से तो कुछ कर्तव्य, ज्ञान, विज्ञान आदि प्रकाश तो कुछ होता ही नहीं, तैसे कल्पित, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि भी निर्जीव, निष्प्राण भ्रम धोखा ही मात्र हैं। अतः उससे तो कुछ भी पुरुषार्थकी प्रकाश, प्रचार, कार्य, उपदेश, इत्यादि नहीं होता है। इसलिये निश्चय करके नरदेहधारी चैतन्य जीव सर्वपुरुषार्थ संयुक्त, पुरुष है, यही पुराण पुरुष, अविनाशी, अखण्ड, नित्य, सत्य, स्वतः अनादि है। ऐसा जानकर सर्वविषयोंके आशा, वाशा, कल्पनादि त्यागकर पारख स्वरूपमें अटल होना चाहिये ॥ २५४ ॥

साखीः—जीव निरादरको वचन । सब आचार्य कहैं जाहि ॥
कहहिं कबीर अचरज बड़ा । शिव उपदेशत काहि ॥२५५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! वेदान्त शास्त्रके आचार्य व्यास, वशिष्ठादिसे लेकरके शङ्कराचार्य इत्यादिसे अभीतक सब वेदान्ती लोगोंने जीवको निरादर करनेका वचन कहे हैं, और कह रहे हैं। अर्थात् जीव तुच्छ है, अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान्, प्रतिबिम्ब, अंश, आभास, अज्ञान, अविद्याग्रसित, पराशक्ति, दीन, हीन, मलीन, लाचार, वह कुछ न कर सकनेवाला है, इत्यादि कथन करके अनादर, अपमान, हीनता करके कल्पित ईश्वरादिके बड़ाई करते जाते हैं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयक पारखी सन्त कहते हैं कि— देखिये! इनके कथनसे तो जीवो तुच्छ है, जो कुछ श्रेष्ठ है, सो परमेश्वर शिव ही हैं। परन्तु, उसीमें एक बड़ा भारी आश्चर्य होता है कि— कहो भला! उनके सर्वश्रेष्ठ माना हुआ, शिव=ब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वरने आजतक कहाँ किसको कुछ उपदेश दिया है? कि, कुछ शिक्षा-दीक्षा देता है? कुछ नहीं। ब्रह्मके सिवाय दूसरा कुछ नहीं है, ऐसा जो कहते हो, तो फिर

कल्याणस्वरूप परमात्मा है, उसके भजन, स्मरण, ध्यान, धारणा, समाधि लगा करके तदाकार होना चाहिये, इत्यादि वे जीवोंके सिवाय और किसको वैसा उपदेश देते हैं ? एकमें अनेक विरोधी व्यवहार कैसे हो सकते हैं ? अतः शिव माना हुआ भी जीवका ही कल्पना है। हंस जीव ही नरजीवोंको उपदेश देते, लेते हैं, इसीसे जीव सत्य है, और मानन्दी मिथ्या है। ऐसा जानना चाहिये ॥ २५५ ॥

साखीः— जीव बिना नहीं आतमा । जीव बिना नहिं ब्रह्म ॥
जीव बिना शिवो नहीं । जीव बिना सब भर्म ॥२५६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो ! चैतन्य-जीवके हुए बिना सर्वत्र व्यापक माना हुआ आत्मा, कोई वस्तु नहीं ठहरता है। तथा जीव चैतन्यके प्रत्यक्ष मौजूद हुए बिना सबसे बड़ा परिपूर्ण माना हुआ निर्गुण ब्रह्म भी कोई चीज नहीं है, और हाजीर, हजूर, सत्य चैतन्य-जीवके बिना कोई कहीं, शिव = कल्याणकर्ता भी साबित नहीं होता है। इसलिये अनुमान, कल्पना करके नरजीव ही कहीं ब्रह्म होते हैं, "अहं ब्रह्मास्मि" कहते हैं, कहीं आत्मा बनके "अयमात्मा ब्रह्म" कहते हैं, और कहीं शिव होकर "शिवोऽहं" कहते हैं। यह सब कथन करने, कहने-सुननेवाले, गुरु-शिष्य होनेवाले सब मनुष्य जीव ही हैं। ब्रह्मादि त्रय देव, सनकादि मुनि वर्ग, सब देहधारी जीव ही थे। जीवरूप मनुष्य न होय, तो आत्मा, ब्रह्म, शिव, कौन कहै-सुनै, और कौन मानैगा ? अतएव जीवके बिना और जितने भी सिद्धान्त वाणी कल्पनासे स्थापन किये हैं, सो सब निर्जीव जड़ मानन्दी होनेसे मिथ्या भ्रम धोखामात्र है। और कुछ नहीं है। परखकर यथार्थ भेद जानना चाहिये ॥ २५६ ॥

साखीः— आतमा औ परमातमा । ईश ब्रह्मलों जोय ॥
जीव बिना मुरदा सकल । बूझै बिरला कोय ॥ २५७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ ! निज-

स्वरूप चैतन्य जीवकी पारख विचार छोड़कर गुरुवा लोगोंने अनुमान करके वाणीके प्रमाणसे जगत्के कारण वा अधिष्ठान कहींपर आत्मा "सूत्रमणिन्याय"; घट-घट व्यापक माने हैं, कहीं परमात्मा पिण्ड-ब्रह्माण्डमें भरा हुआ पूर्ण ठहराये हैं। कहीं ईश्वरको सर्वशक्तिमान् कर्तापुरुष कहे हैं, और कहीं ब्रह्मको ही एक अद्वैत सबसे बड़ा माने हैं। सोई बात वेद, उपनिषद्, शास्त्र, पुराणादि ग्रन्थोंमें विस्तारसे कल्पना बढ़ायके लिख दिये हैं। सब वाणी पढ़-पढ़के उसी बातको जोवते या देखते-दिखाते हैं, मानते-मनाते हैं। परन्तु आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म, परब्रह्म तक जो कुछ भी निश्चय करके ठहराये, और मान रहे हैं, सो उसमें तो जीव नहीं है। फिर चैतन्य जीवके हुए बिना वे सिद्धान्त सकल, मुरदा = जड़ देहका भास, अध्यास, मनकी अनुमान, कल्पनामात्र होनेसे असत्य भ्रम धोखा ही है। उसे मानके जीवोंकी कुछ भी भलाई वा कल्याण हो नहीं सकता है। बल्कि, भ्रमिक जड़ाध्यासी होनेसे बड़ा अहित होके भव बन्धनोंमें ही पड़ जाते हैं। इस भेदको कोई बिरले ही निष्पक्ष जिज्ञासुजन, पारखी, साधु-गुरुके सत्सङ्ग-विचार करके समझेंगे, बूझेंगे और पारख बोधको धारण करके भ्रम-भूलको त्यागेंगे, वे ही मुक्तिको पायेंगे ॥ २५७ ॥

साखीः— ईश ब्रह्म परमातमा । पारब्रह्म जो कोय ॥
यह निर्जीवकी जीव है? पण्डित! कहिये सोय ॥२५८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! जिसको तुम लोग और तुम्हारे गुरुवा लोग षट्गुण ऐश्वर्य संयुक्त, ईश्वर, कर्ता, अधिपति, विश्वपति, ब्रह्म, परमात्मा, पारब्रह्म, और खुदा, अल्लाह, गॉड़, परम-प्रभु जो कुछ और भी कई नाम लेके जिसकी बड़ी-बड़ी महिमा करते हो, तथा तुम्हारे जो कोई भी इष्टदेव हों, बताओ! यह सब, निर्जीव = जड़ मिथ्यादेहके भास, मानन्दी हैं, कि = अथवा, जीव = सजीव, चैतन्य, प्रत्यक्ष कोई वस्तु हैं? कहाँ हैं? कैसे हैं?

हे पण्डित ! बुद्धिमानो ! सो इसीका निर्णय करके कहिये ? ईश्वरादिको तुम लोग जीव मानते हो कि— निर्जीव ? जीव कहोगे, तो फिर देहधारी एकदेशी ठहरनेसे सर्वदेशी माना हुआ व्यापकताका खण्डन हो जायगा, और यदि निर्जीव कहोगे, तो कर्तव्यहीन, ज्ञानहीन, जड़ वा मिथ्याभास ही साबित होगा। अतः वह मन-मानन्दी निर्जीव शून्य ही है। क्योंकि, जीव, निराकार, निर्गुण, व्यापक कभी नहीं हो सकते हैं। इससे वह ब्रह्म आदि मिथ्या धोखा ही है। परखके उस भ्रमको जो छोड़ते हैं, सोई विवेकी कहलाते हैं ॥ २५८ ॥

साखीः— कबीर जाके वचनमें। जीव अनादर होय ॥
नास्तिक ताको जानिये। गुप्तसे बड़ा सोय ॥ २५९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! जिन मतवादी, पक्षपाती, सम्प्रदायी गुरुवा लोगोंके वचनमेंसे साक्षात् सत्य चैतन्य जीवका अनादर होता है, तुच्छ समझ करके जीवका अपमान किया जाता है, प्रतिबिम्ब, अंश, कार्य, बनने-बिगड़ने-वाला ऐसा जीवको मानते हैं, हीनता बताके निन्दा करते हैं, और जो वस्तु कुछ भी नहीं है, उसकी महिमा, बड़ाई, प्रशंसा, स्तुति करते नहीं थकते हैं। ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदिको सबसे बड़ा गुप्त = निराकार, निर्गुण, अवाच्य, मन, बुद्धि, वाणीसे परे कहने योग्य नहीं, ऐसा ब्रह्म, परमात्मा है, निःअक्षर इत्यादि वर्णन करते हैं। सोई तो गुप्तरूपसे छिपा हुआ बड़ा नास्तिक है। क्योंकि, 'न अस्ति नास्ति' जो जिसका अस्तित्त्व नहीं है, वस्तु ठहरे नहीं, शून्य आकाशवत् ब्रह्म आदिको मान-मानके भूले पड़े हैं, उसीको पक्का असली नास्तिक जान लीजिये, और सत्य चैतन्य जीवको जो मानते हैं, वे तो सच्चे आस्तिक हैं। चाहे कोई भी मतवादी हों, जीवको श्रेष्ठ न माननेवाले वे ही महानास्तिक मूढ़ हैं। अतः ऐसोंके कुसङ्गमें जिज्ञासुओंने कभी नहीं लगना चाहिये ॥ २५९ ॥

साखीः— जीव अनादर जो कहै। नास्तिक ताको जान ॥
जीव दयासो मम दया। यह जो कहा भगवान ॥२६०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो! जो कोई भी हो, सनातनी, वेदान्ती, वैरागी, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, नाथ, कर्तावादी, इत्यादि सकल मतवादियोंमेंसे जो-जो भी जीवको अनादर = तुच्छ, अपमान, करके खोटी-खोटी बात कहते हैं, जीवको बिलकुल निकम्मा समझते हैं, कल्पित ईश्वरादिके ही प्रशंसा करते हैं। जीवको ईश्वरके अधीनमें पड़ा हुआ लाचार बताते हैं, और जीवहत्या, वलिदान, यज्ञमें पशुवध करके मनमाने हिंसा, हलाल, बैर-घात, ऐसे धर्मके नामसे महापाप करते हैं। उसे या वैसे लोगोंको ही महानास्तिक, क्रूर कसाई और हिंसक नरपशु ही जानिये। हे सनातनी लोगो! सुनो! तुम्हारे ही भगवान् = कृष्णने कहा हुआ वचन गीता, भागवत, आदिमें लिखा है कि— "जीवोंपर किया हुआ दया, सो मुझपर ही किया हुआ दयाके समान है।" यह जो भगवान्ने कहा है, सो क्या तुम लोग उसे भूल गये? जिससे अन्धाधुन्द, जीवोंको पीड़ा दे-देके मार रहे हो? खबरदार! वह सब बदलामें तुम्हें भोगना ही पड़ेगा। इस बारेमें सद्गुरुने जो कहा है— सो सुनो!:—

साखीः—"जीव बिना जीव बाँचे नहीं। जीवका जीव अधार ॥
जीव दया करि पालिये। पण्डित! करो विचार ॥
जीव मति मारो बापुरा! सबका एकै प्राण ॥
हत्या कबहुँ न छूटि हैं। जो कोटिन् सुनो पुराण ॥
जीव घात ना कीजिये। बहुरि लेत वै कान ॥
तीरथ गये न बाँचि हो। जो कोटि हीरा देहु दान ॥"
॥ इत्यादि बीजक, । साखी १८२ । २१२ । २१३ ॥

सब जीव मात्र स्वजातीय हैं, अतः निज-पर जीवपर दया, रक्षा, बन्धनसे छुटकारा करना चाहिये। पारखबोध होनेसे ही अपने

जीवपर पूर्ण दया होती है। सद्गुरुने जो निर्णय वचन कहे हैं उसे ही सर्वाङ्ग अक्षरशः पालन करना चाहिये ॥ २६० ॥

साखीः—कबीर देह जीव बिनु । तुरतहिं होत दुर्गन्ध ॥
तत्त्वनमें तद्रूप हो । नाश होय मति अन्ध ॥२६१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! देह जड़तत्त्वोंका कार्य है, और जीव चैतन्य होनेसे देहसे सदा न्यारा है। कर्म सम्बन्धसे जबतक जीव देहमें रहता है, तबतक जीवकी सत्ता पायके देह सुन्दर, प्रकाशवान, अच्छा मालूम पड़ता है, और जीवके रहे बिना देह निकम्मा हो जाता है। जीवके निकल जानेपर तो शरीर तुरन्त ही मुर्दा, लाश होके अकड़ जाता है। शीघ्र ही दुर्गन्ध आने लग जाता है, भयङ्कर विरूप हो जाता है। अगर मुर्दा वैसे ही पड़ा रहा, तो सड़-गलके बड़ी बदबू फैल जाती है। गाड़ दिया, जला दिया, नदियोंमें डाल दिया, जङ्गलोंमें फेंक दिया, तो भी हर प्रकारसे देहके अङ्ग-प्रत्यङ्ग नाश होकर कार्य शरीरका सब भाग कारणरूप पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारतत्त्वोंमें ही मिल जाते हैं, सोई तत्त्वोंमें तद्रूप होना है। नाशवान ऐसे विकारी शरीरको ही जो जीव वा अपना स्वरूप मानते हैं, सो तत्त्ववादी, देहवादी, वीर्यवादी, शून्यवादी, वाममार्गी आदि मति-बुद्धिसे भ्रष्ट, अन्धे, विवेक-दृष्टीसे हीन, पामर, विषयी, जड़ासक्त लोग ही हैं, और जो कोई योगी, ध्यानी आदि शरीरमें तत्त्व, प्रकृति, इन्द्रिय, विषयोंको शून्य समाधिमें लयकरके तत्त्वोंमें तद्रूपताको प्राप्त होते हैं। पञ्चतत्त्वोंके प्रकाश-भासको ही निजस्वरूप मानते हैं, सो सब दृश्य तो देहके साथ ही नाश हो जाते हैं। उसी आनन्द, ज्योति आदिको ब्रह्म, परमात्मा वा निजरूप माननेवाले मतिअन्ध पारख-हीन भ्रमिक जड़ाध्यासी बने हैं। वे सब विनाशको प्राप्त होकर चौरासी योनियोंके चक्रमें भटक रहे हैं। बिना पारख ॥ २६१ ॥

साखीः— कबीर सूनी सेजपर । सुन्दरि सूती जाय ॥
आश लगाये पीवकी । कुहकत रैन गमाय ॥ २६२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो! जैसे कोई सुन्दरी स्त्री, शून्य स्थानमें शूनशान शैय्यापर जायके सो गयी; पतिसे मिलके विषयानन्द प्राप्त करनेकी आशामें जागकर रास्ता देखती रही, प्रतीक्षा करते-करते भी मनमें चिन्तन किया हुआ पति नहीं आया, तो रोते-कलपते पीड़ित हो, सारा रात व्यर्थ गमायी, अन्तमें निराश होके मुर्छित हो गयी, लाभ कुछ भी न हुआ। तैसे ही सिद्धान्त-में— कबीर = कायावीर कबीर मनुष्य जीव हैं। सो सुन्दरी = सुन्दर, अच्छा शोभायमान, कर्म भूमिकारूप नरदेहको धारण किया है, उसमें ज्ञानी, योगी, भक्त, कर्मिष्ठ इत्यादि मतवादके शृङ्गार करके सब जीव सुन्दर भावुक बने हैं। वे सब नाना प्रकारकी साधना करके योग, ध्यानादि द्वारा वृत्ति एकाग्रकर समाधि लगाये, शून्य शैय्यारूप ब्रह्माण्ड, भ्रमर गुफा, आदि पर जाके, उन्मुनकर शून्य, अभाव, गरगाफ होकर धोखेमें सो गये, अचेत हो गये। होश आने पर, पीव = परमतत्त्व-परमात्मा, ब्रह्म, ईश्वरादि कल्पित पतिकी दर्शन, एकता, ब्रह्मानन्द, साक्षात्कारकी, प्राप्तिकी, आशा, भरोसा लगायके सारा आयु व्यर्थ ही धोखामें बिताय दिये। ध्यान, धारणा, नाम स्मरण, अनुष्ठान, समाधि आदि करने-करानेमें अत्यन्त कष्ट-क्लेश भोगकर, कुहकत = रोते-कराहते, विलाप करते, हे भगवान्! दर्शन दो! इत्यादि चिल्लाते, पुकारते, रैन = महाअज्ञानरूप रात्रिमें ही सारा जीवन गँवा दिये, और ऐसे ही मनुष्य जन्मको गँवाकर खाली हाथ जड़ाध्यासी हो, चौरासी योनियोंमें चले गये, और जा रहे हैं। अतः परख करके उस भूलमें नहीं पड़ना चाहिये ॥ २६२ ॥

साखीः— मृग तृष्णाको नीर लखि । ब्रह्मादिक सनकादि ॥
डुबकी मारें रतन हित । किये विविधि मतवादि ॥२६३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैसे मरुभूमिके

बालूमें सूर्य-किरण चमकनेसे प्यासे मृगको पानी बहती हुई नदीकी भ्रान्ति भयी, तहाँ जल पीनेकी तृष्णासे दौड़-दौड़के मृग धोखेमें मर गया। वैसे ही, मृग = मनने आशा, तृष्णा करके कल्पनासे बनाया हुआ, नीर = जलवत् वेद-वेदान्तकी नाना वाणियोंको, लखि = देख-सुन करके ब्रह्मादि त्रिवेद गुरुवा लोग, और सनकादि = उनके ही पिट्टू शिष्य, ऋषि, मुनि, और लोग, तमाम सिद्ध-साधक लोग, उसी झूठी भ्रमकी नदीके पानीरूप मन कल्पित वाणीकी भावनामें तल्लीन होके, रतन हित = ब्रह्मज्ञानरूप रत्न प्राप्तिके लिये, उसीसे अपना हित-कल्याण समझके डुबकी लगाये, योग, ध्यान, ज्ञानादि साधना करके तन, मनको भी खूब मारे, कष्ट-क्लेश सहन किये। किन्तु, प्राप्ति तो कुछ नहीं हुयी, तो भी बड़े समझदार भ्रमिक बनके, विविधि = नाना प्रकारके अनेकों, मतवादि = षट्दर्शन— ९६ पाखण्डके मत, पन्थ, ग्रन्थादिके वाद-विवाद अद्वैत, द्वैत, विसिष्टाद्वैत, इत्यादिके पक्षपात बकवाद ही खूब विस्तार किये। दुनियाँमें झगड़ा लगा दिये, सार सफलता तो, कुछ नहीं मिली, नदी पानी ही जब झूठी है, तो सच्चा रत्न वहाँ कहाँसे मिलेगा? नाहक धोखेमें जन्म गमाकर आवागमनके चक्रमें पड़े, बिना पारख ॥ २६३ ॥

साखीः— ब्रह्मादिक सनकादि जग । मृग तृष्णा लखि नीर ॥
तीरथ चले नहावने । जगयात्रा भइ भीर ॥२६४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! अनादि कालके संसारमें, प्राचीन समयमें प्रसिद्ध हुए ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, आदि गुरुवा लोग और उन्हींके शिष्य वर्ग, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, व्यास इत्यादि बहुतेरे वेदवादी लोगोंने जगत्को, मृगतृष्णाके झूठी जलवत् ही बताके और झूठ-मूठ ही एक ब्रह्म, व्यापक देखने लगे, या देखते भये। ब्रह्मादिके पूर्वजोंने जो वेद आदिकी वाणी कल्पना कर-करके बना गये थे, उसी, नीर = वाणीको मृगवत् तृषा वा तृष्णातुर होके लखे या देखते, पढ़ते, सुनते, गुनते, निश्चय

करते भये। एक कर्तापुरुष, ब्रह्म, परमात्माको ठहराते भये। फिर पापमोचन करने, बन्धनसे छूटके मुक्त होने, चार फल आदिक प्राप्ति करनेकी आशा, तृष्णा लेकरके प्रथम वे ही ब्रह्मादि, सनकादि, मृगतृष्णावाली नदीके तीर्थ, नहानेके लिये चले गये। वहाँ अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दो भागमें बहुतेरे तीर्थ स्थापन किये। मोक्ष फलकी आशासे ज्ञानतीर्थ नहानेको ब्रह्मादि ज्ञानी लोग गये, अर्थफलकी चाहनासे योगतीर्थ नहानेको महेश, आदि योगी लोग गये, और धर्मफलकी इच्छासे भक्तितीर्थ नहानेको विष्णु, आदि भक्तलोग चले गये। इधर काम विषयादि फलकी लालसासे बहिरङ्गतीर्थ गङ्गा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, इत्यादि ६८ तीर्थ नहानेको उनके देखा-देखी सारे संसारी कर्मी लोग चल पड़े। इसीसे जगत्में जहाँ-तहाँ उन्हींके अनुयायी तीर्थयात्रियोंके झुण्ड-का-झुण्ड, जमात, भीड़-भाड़ लग गयी, बड़ी उपाधि मच गयी। फल तो कुछ किसीके हाथमें नहीं आया, सब साधनाएँ, निष्फल, व्यर्थ हो गयी। क्योंकि, माना हुआ तीर्थ ही झूठा भ्रम है, इधर, पानी कि, पत्थर है; उधर, वाणी कि, कल्पना है। तो क्या उससे पाप कटेगा? कुछ नहीं, एक भी पाप नहीं कटा, और दश मन पापका बोझा शिरमें लादके डूब मरे। तहाँ सद्गुरुने बीजक साखीमें कहे हैं:—

साखीः—"तीरथ गये तीन जना। चित चञ्चल मन चोर॥
४ एकौ पाप न काटिया। लादिनि मन दश और॥२१४॥
४ तीरथ गये ते बहि मुये। जूड़े पानि नहाय॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो! राक्षस होय पछिताय॥२१५॥
४ तीरथ भई विष बेलरी। रही युगन-युग छाय॥
कबीरन मूल निकन्दिया। कौन हलाहल खाय?॥२१६॥

सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबने इसकी टीका त्रीजामें खुलासा लिखे हैं॥ इस प्रकारसे नाना तीर्थ स्नान करनेको चले, तो जगत्में बड़ी यात्राकी

भीड़ भयी, बहुतेरे उसीमें कुचल-कुचलाके मर गये। जड़ाध्यासी बने, चौरासी योनियोंको प्राप्त भये, बिना विवेक ॥ २६४ ॥

साखीः— जेहि जल माँहि बड़े बड़े। गज ऊँट बहे सब जाहि ॥
कहहिं कबीर गदहा तहाँ। कहै केता जल आहि ॥२६५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! जिस महासागरके गम्भीर जलमें हाथी, ऊँट, नील गाय, गैंड़ा इत्यादि बड़े-बड़े लम्बे जानवर बहि-बहिके डूब करके मर जाते हैं। ऐसे जगहमें एक मूर्ख गदहा ऐसा कहै कि— अरे! इसमें कितना जल है? थोड़ा-सा ही तो है, मैं तो एक छलाङ्ग मारके वा तैरके पार उतर जाऊँगा, इत्यादि गप्प करै, तो कितनी नादानीकी बात है। ऐसे महामूढ़की बात तो बिलकुल झूठी होती है। तैसे ही सिद्धान्तमें जिस जल माँहि = वाणी कल्पनाकी प्रचण्ड धारामें बड़े-बड़े ब्रह्मादि, सनकादि सरीखे ऋषि, मुनि, महर्षिगण भी सब भ्रमिक होके धोखेमें बहि गये। तथा, गज = उन्मत्त हाथीवत् ज्ञानीलोग, ऊँट = ध्यानी, योगी लोग, नीलगाय, गैंड़ा आदिवत् उपासक, भक्त लोग, इत्यादि बड़ी-बड़ी भक्ति, ज्ञान, योगकी साधनाएँ करनेवाले भी मनकी मानन्दी धारामें सब बहि गये। ब्रह्म अधिष्ठान बनके चौरासी योनियोंके चक्रमें डूब मरे, जड़ाध्यासी बद्ध हो गये, और सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैंः— देखिये! बिना पारख त्याग, वैराग्य करनेवालोंकी भी जब मुक्ति नहीं भयी, तो विषयासक्त संसारी लोगोंकी मुक्ति होना तो असम्भव ही है। परन्तु तहाँ मूर्ख पशु गदहेवत् कर्ममार्गी, विषयासक्त, कामी, क्रोधी, लम्पट, लबार, बाममार्गी इत्यादि नरपशु लोग कहते हैं कि— अरे! वाणीका बन्धन कितना है? बोलो नहीं, बस खतम। वाणीसे कुछ भी बन्धन नहीं होता है, कहो, क्या कैसे बन्धन होगा? वर्णाश्रम कर्म करो, तो सबोंकी मुक्ति ही होगी। संसारके विषय-भोग करके मुक्ति हो जायगी, फिर त्याग,

वैराग्य करनेका क्या काम ? इत्यादि कथन करनेवाले महामूढ़, पामर, विषयी लोग ही होते हैं। वे सरासर चौरासी योनियोंमें ही गिरे पड़े रहते हैं। अथवा जिस कामजल, मनकी वासना, आसक्तिमें बड़े-बड़े सिद्ध, साधक लोग भी च्युत होके बहि गये, तो वे आवागमनमें पड़े। सद्गुरु कहते हैं— ऐसे कठिन विषयको तहाँ नित्य भगभोगी विषयी पुरुष ऐसा कहे कि— ये कामजल कितना है ? थोड़ा ही तो है, फिर इससे बन्धन ही कितना होगा ? मनुष्य-से-मनुष्य ही होवेंगे, हम पशुखानीमें नहीं जायेंगे। इत्यादि कहनेवाले सरासर महामूर्ख हैं। उनके तो कभी निस्तार नहीं हो सकता है। बिना विवेक ॥ २६५ ॥

साखीः— ब्रह्म जगत दोउ भास होय । यही चतुष्टके बीच ॥
अन्तःकरण मलीन होय । बिना रङ्गका कीच ॥२६६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ ! निर्गुण ब्रह्म वाणी कल्पनाका विषय, तथा सगुण जगत् खानी भागका पञ्च-विषयोंका विस्तार यह दोनों ही यही चित्त-चतुष्टयके बीचमें भास, अध्यास करके पतित होता है। और, रङ्ग = चैतन्यस्वरूपका ज्ञान रङ्गका प्रकाश, स्वरूप स्थिति हुए बिना खानी-वाणीके कीचड़, जिसका रङ्ग विशेष सार तो कुछ भी देखनेमें नहीं आता है, परन्तु उसी अविद्या, अज्ञान, भ्रम, भूल, आसक्ति, माया-मोह, विषय वासना, कल्पना, इत्यादि जड़ाध्याससे जीवोंका अन्तःकरण अत्यन्त ही मलीन हो रहा है। पहिले चित्तसे चिन्तन होता है, उसे मनसे सङ्कल्प-विकल्प करता है, बुद्धि उसीको निश्चय करती है, फिर हङ्कार-करतूत करके नानाकर्ममें प्रवृत्त होता है। इस तरहसे वाणी सम्बन्धी ब्रह्मज्ञानका और खानी सम्बन्धी जगत् विषयोंका भास दोनों प्रकारसे यही चतुष्टयके बीचमेंसे हृदयमें प्रकाश होता है। स्वरूप ज्ञानका पारख-बोध न होनेसे उसी मोटी, झीनी मायासे अन्तःकरण मलीन होता है। बिना रङ्गका कीच = निर्गुण, निराकार, ब्रह्म बनके अध्यास-

ग्रसित बद्ध होते हैं। अतः उसे परखके हटाना चाहिये। ब्रह्म, जगत्की अध्यास मिटाना चाहिये ॥ २६६ ॥

साखीः— बुद्धि परे सो आतमा। कहत सयाने लोय ॥
निश्चय दोउ पर अपरकी। बुद्धि बिना नहिं होय ॥२६७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो!, सयाने = बड़े-बूढ़े तत्त्ववेत्ता ज्ञानी कहलानेवाले सो वे लोग बुद्धिसे अत्यन्त परे आत्मा है, ऐसा कहते हैं। तहाँ कहा हैः—

श्लोकः—"इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ॥ (भगवद् गीता
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥"अध्याय ३।४२)॥

कृष्णने कहा है कि— इस शरीरसे तो इन्द्रियोंको परे (श्रेष्ठ बलवान् और सूक्ष्म) कहते हैं और इन्द्रियोंसे परे मन है और मनसे परे बुद्धि है और जो बुद्धिसे भी अत्यन्त परे है, वह आत्मा है ॥ यहाँ कृष्णको सब लोग श्रेष्ठ ज्ञानी, ब्रह्मवेत्ता करके मानते हैं। सो उन्होंने और दूसरे सयाने लोगोंने भी सो इस प्रकारसे आत्माको बुद्धि आदिसे परे ही कहा है वा माना है। परन्तु, पर = ब्रह्म, अपर = जगत्की, आत्मा, अनात्माकी, वर्ग, अपवर्गकी, स्वर्ग, नर्ककी, ब्रह्म, जगत्की, परा, अपराकी इत्यादि दोनों तरफका निश्चय, दृढ़ विश्वास, या प्रतीति मान्यता, बुद्धिके बिना तो कुछ भी हो ही नहीं सकती है। बिना बुद्धिके यह उन्होंने कैसे जाना और माना कि, आत्मा है और वह परे है। जब वे ऐसा निश्चय करके कहते हैं, तो वह बुद्धिका ही विषय है। नहीं तो निर्बुद्धि लोगोंकी मूर्खताका ही वह कथन है। खाली कल्पनामात्र है। बिना बुद्धिके यहाँ कुछ कहा, सुना नहीं जा सकता है ॥ २६७ ॥

साखीः— मन बुद्धि वाणी श्रुति कहै। जहाँ न पहुँचै तीन ॥
फिरि ताको जानन चहैं। ऐसे परम प्रबीन ॥२६८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो!, श्रुति = वेद,

वेदान्तमें जो कहा है, सोई गुरुवा लोग कहते हैं कि— मन, बुद्धि, वाणी, ये तीनों भी जहाँ, जिस ठिकानेमें पहुँच नहीं सकते हैं, सोई आत्मा, परमात्मा वा परब्रह्म है। वह तीनों त्रिपुटीसे न्यारा अत्यन्त परे, परात्पर = परावाचासे भी अति परे जो है, सोई ब्रह्म, आत्मा है। ऐसा वर्णन करके प्रथम तो महिमा बढ़ाते-बढ़ाते हद्दसे बेहद्द कर दिये। फिर पीछेसे, फिरि = अपने कथनसे उलट-पलट करके, ताको = उसी आत्मा वा परमात्मा, ब्रह्मको, मनसे मनन करके, बुद्धिसे निश्चय करके और वाणीसे कथन वर्णनके शब्द कह-सुन करके जानना, समझना, बूझना चाहते हैं, उसके लिये श्रवण, मननादि साधना भी करते हैं, वैसे ही शिष्योंसे भी कराते हैं, अब देखिये! वे भ्रमिक, निर्बुद्धि गुरुवा लोग, ऐसे परमप्रवीण, परम चतुर समझदार वा महाधूर्त भये कि— जो बात पहिले खण्डन, निषेध किये थे, पीछेसे सोई बात स्वीकार करके विधि-विधानसे मण्डन करने लगे, और ऐसे कर ही रहे हैं। और तो यह कुछ नहीं सिर्फ स्वार्थ सिद्ध करनेकी उनकी चालबाजीमात्र है। उनके कथनमें कुछ भी सार नहीं है। मिथ्या धोखामें भूले, भुलाये पड़े हैं। बिना पारख वह भूल नहीं मिटती है ॥ २६८ ॥

साखीः— ब्रह्मादि सनकादिको । लागा ब्रह्म पिशाच ॥
नाम रूप मिथ्या कहैं । ब्रह्म कहैं भ्रम साँच ॥२६९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! अपरोक्ष पारखका बोध न होनेसे प्राचीनकालमें ब्रह्मादि गुरुवा लोग और सनकादि उनके ही चेले लोग जो प्रसिद्ध हुए, उन सबोंके हृदयमें तो एक बड़ा जबरदस्त, ब्रह्म पिशाच = वाणीका भूत लग गया था। तहाँ संसारी लोग कहते हैं कि— कोई ब्राह्मणकी दुर्घटनासे यदि मृत्यु हो गयी, तो वह ब्रह्म-राक्षस होके वृक्षोंमें रहता है। उसीको ब्रह्म-पिशाच भी मानते हैं। वह जिसको लगता है, उसका सत्यानाश ही कर डालता है, इत्यादि कल्पना किये हैं। परन्तु सिद्धान्त इसका ऐसा

घटता है कि— प्रथम जो कोईने ब्रह्मका मानन्दी किया, सो ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण कल्पना, भ्रम धोखाके दुर्घटनासे गिरा, तो निज हंसपदके जीवनसे अधबीचमें ही मर गया— जड़ाध्यासी हो गया। उसके आत्मा, वाणी कल्पना, वेद वृक्षमें टँगी रहने लगी। पहले ब्रह्मादि, सनकादि, वेद-वृक्षके आश-पासमें टहलने गये थे, तो वह ब्रह्म पिशाच कल्पना झपटके उन्होंको आ लगी, शिरमें चढ़ बैठी, इसीसे उनके विवेक, विचारका सत्यानाश हुआ, तो वे बुद्धि-हीन पागलवत् ही हो गये। तब अक-बकाने झक-झकाने लगे, अण्ड-बण्ड बकवाद करने लग गये। उसीके सनकमें वे बोले कि— नाम-रूप, त्रिगुणात्मक, माया-जगत्, चराचर द्वैत मिथ्या है, और एक अद्वैत ब्रह्म ही सर्वव्यापक सत्य है। इस तरह भ्रमरूप कल्पित ब्रह्मको तो सत्य बताये, और सत्य जड़-चैतन्यरूप जगत्को मिथ्या कह दिये, वैसे ही निश्चय करके मान भी लिये। यदि ऐसा ही है, तो उनका कहा हुआ ब्रह्म यह नाम और व्यापक उसका रूप यह भी तो मिथ्या ही हुआ। फिर सत्य क्या रहा? भ्रमसे ब्रह्मको सत्य कहनेवाला तथा नाम-रूपको मिथ्या कथन करनेवाला चैतन्यजीव तो उससे न्यारा सत्य ही रहा। बिना पारख, धोखा-धारमें ही गोता लगाये वा लगा रहे हैं ॥ २६९ ॥

साखीः— वर्ण आश्रम गुण तीनिको। कहैं बतावै दोष ॥
'अहं ब्रह्म अस्मि' कहैं। मूढ़ कहैं निज मोष ॥२७०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! अद्वैत ब्रह्मवादी वेदान्ती लोग, वर्ण = ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि, चार वर्ण— ३६ जाति आदिको, आश्रम = ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यास, ये चार आश्रमोंको, गुण तीनि = रजोगुण, सत्त्वगुण, तमो-गुण, ये तीनगुणोंको नाम, रूपके अन्तर्गत मानके मिथ्या कहते हैं, और द्वैत होनेसे, उसमें बड़ा दोष बतलाते हैं। कहते हैं, ब्रह्म उक्त वर्ण, आश्रम गुण आदिसे परे निर्लिप्त है। ऐसा कहके उसे निषेध

करके अन्तमें "अहं ब्रह्मास्मि"— मैं ब्रह्म हूँ! ऐसा कहते हैं। उन मूढ़ मतिवालोंने, 'मैं ब्रह्म हूँ', इतना कहने मात्रसे ही अपना, मोष= मुक्ति या मोक्ष होना मान लिये हैं। यदि ऐसा कहने मात्रसे ही मुक्ति होती, तो फिर सारी दुनियाँ ही मैं ब्रह्म हूँ! मैं ब्रह्म हूँ! कहके मुक्त हो जाती। परन्तु ऐसा होना असम्भव है। ब्रह्मके जो गुण, लक्षण ठहराये हैं, सो तो इनमें एक भी नहीं घटते हैं, तो भी ब्रह्म बननेवाले मूढ़ोंको जरा भी शर्म नहीं लगती है। बिलकुल अविवेकी दिवाने ही बन गये हैं। ऐसोंके सङ्गतसे दूर ही रहना चाहिये ॥२७०॥

साखीः— कहैं वेदान्त बनायके। सब मतके शिरमौर ॥
शब्द विवेकी पारखी। सो चीन्है वञ्चक पौर ॥२७१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! ब्रह्मा, व्यास, वशिष्ठादि ऋषि-मुनियोंने वेद, उपनिषद्, वेदान्तसूत्र, योगवाशिष्ठ आदि वेदान्त शास्त्र बनायके कहा है कि—

श्लोकः— "तावद् गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपिने यथा ॥
न गर्जति महाशक्ति यावत् वेदान्त केशरी ॥"

— जैसे जङ्गलमें सियारवत् अन्य शास्त्र तबतक गर्जते हैं, जबतक कि, वेदान्तरूप सिंहकी गर्जना नहीं होती है ॥ वेदान्ती लोग सब मतको खण्डन करके द्वैत मिथ्या बताकर अद्वैतमत कथनकर अद्वैतवादको ही सब मतोंके ऊपर, शिरमौर=शिरके मुकुटवत् श्रेष्ठ वर्णन करते हैं। परन्तु सो, वञ्चक=धूर्त, चालाक, ठग, गुरुवा लोगोंकी चालाकी, चालबाजी मात्र हैं। वे सब भ्रमिक, पौर= वाणीके असत्य सिद्धान्तमें तैरनेवाले पाखण्डी, लबार, धोखेबाज भये हैं। सो उनको पारखी सत्यन्यायी सन्त जो शब्दको विवेकसे निर्णय करते हैं, वे ही यथार्थ रत्ती-रत्ती उनके पूरे हाल भेदको चिह्नते, पहिचानते हैं। वेदान्ती लोग सरासर भ्रम भूलमें पड़े हैं ॥ २७१ ॥

साखीः— द्रष्टा भई तीहुँ लोककी। माँड़ी सकलो माँड़॥
सुर नर मुनि दुलहिन भये। दुल्लाह भई एक राँड़॥२७२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो! द्रष्टा नरजीवकी सहायता, सङ्ग, साथसे बाहर वाणी कल्पना ही तीनों लोकके द्रष्टा भयी। तहाँ योगी, ज्ञानी, भक्तोंको तीन मार्ग, तीन सिद्धान्त— द्वैत, अद्वैत, विसिष्टाद्वैत वाणीसे ही गुरुवा लोगोंने दिखाये, और सर्व-द्रष्टा ब्रह्म, परमात्मा भी वही वाणी कल्पना ही भयी, और माँड़ी = वेद आदि वाणी ही सकल सिद्धान्तमें, मत, पन्थ, ग्रन्थमें, घटों-घटमें, त्रिगुणी मनुष्योंमें, दृढ़ होके बैठी है, माँड़ = खूब विस्तार होके फैल गयी है, और फैल रही है, सब जगह वह टिकी-टिका रही है। उसने संसारमें ऐसा उल्टा चक्र फेरा कि— एक राँड़ = एक अकेली राँड़ स्त्री-रूपी वाणी तो स्वयं मालिक, दुल्लाह = पति, वर, परम पुरुष, परमात्मा, एक ब्रह्म, वा खुदा, अल्लाह, विश्वपति बनके बड़ी श्रेष्ठ हो गयी। अब उसी खोटी, कपटी, ब्रह्म वरसे विवाह करनेके लिये इधर बहुतेरे दुलहिन बनके तैयार होते भये। उनमें मुख्य, सुर = देवता, सात्त्विक, ज्ञानी आदि बड़ी बहू भये। नर = पुरुष, राजसी मनुष्य, भक्त आदि मझोली बहू भये। मुनि = तपस्वी, तामसी, योगी आदि छोटी दुलहिन भये। ऐसे वे तीनों नारीवत्, अनाड़ी बनके वाणीकृत ईश्वरादिको ही पति मान-मानके महाधोखामें जा पड़े। बिना पारख जड़ाध्यासी हो भवबन्धनोंमें ही गिर पड़े॥ २७२॥

साखीः— कबीर आतम ज्ञानकी। परी जगतमें शोर॥
जो पूछो कैसो आतमा? तो देवै दाँत निपोर!॥२७३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! जगत् या संसारमें आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान, अद्वैत मतवाद, वेदान्त सिद्धान्तका बड़े जोर-शोरसे हुल्लड़, हो हल्ला, धूमधाम पड़ी हुयी है। जहाँ देखो, तहाँ आत्मज्ञानकी ही चर्चा, उपदेश, कथावार्ता, व्याख्या

हो रही है। "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इत्यादि महावाक्यकी रटन, तोतापढ़ाई हो रही है। सब मनुष्यजीव आत्मज्ञानको बड़ा मानकर उधर ही आकर्षित हो रहे हैं। कहा है:—

दोहा:—"ब्रह्मज्ञान बिन नारि नर, करहिं न दूसर बात ॥
कौड़िहु कारण लोभ वश, करहिं विप्र गुरु घात ॥"तुलसी०॥

इस तरह जगत्में बड़ा भारी शोर-गुल होते हुए देख-सुनके जब हम उन वेदान्तियोंसे पूछते हैं कि— अरे भाई! जरा बताओ तो सही, तुम्हारी मानी हुयी आत्मा कैसी है? कहाँ है? उसका रूप, रङ्ग, आकार, किस प्रकार है? वह ब्रह्म या आत्मा क्या चीज है? जड़ वा चैतन्य जीवमेंसे कौन-सा भाग है? आत्मा सर्वत्र है, तो सबको क्यों नहीं दिखता है? जब ऐसा शङ्का सुनते हैं, तब घबराय-के सिर्फ दाँत ही निपोर देते हैं। अर्थात् ही! ही! ही! अहा!! आत्मा या ब्रह्म अवाच्य मन, बुद्धि, वाणीसे परे चराचरमें पूर्ण व्यापक है, अकथनीय, अगम्य है। बस, आगे कुछ शङ्का मत करो, ही! ही! ही! हुस्! करके हँस-हँसके मुख फाड़के दाँत निकालके दिखा देते हैं। ज्यादा पूछोगे, तो तुम्हारा ही दाँत उखाड़के मुख बन्दकर देना चाहते हैं। ऐसे बेहूदे होते हैं। तो भला! वह क्या सत्य वस्तु ठहरी, कुछ नहीं, मिथ्या धोखामें ही गाफिल पड़े हैं। बिना विवेक ॥ २७३ ॥

साखी:— चीन्हनको सो चीन्है नहीं। आतम चीन्है मूढ़ ॥
जो पूछो कैसो आतमा? तब कहै गूँगा गूढ़ ॥२७४॥

टीका:— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे जिज्ञासुओ! वे अवि-चारी वेदान्ती लोग ऐसे मूढ़मतिके हो गये हैं कि, क्या कहैं? देखिये! सबको चीह्नने, पहिचाननेवाले, जानने, मानने, थापनेवाले प्रत्यक्ष चैतन्य नरजीव हैं। मनुष्योंने ही कल्पना करके वेद, कुरान आदि वाणी बनाये हैं, और ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, खुदा, देवी, देवता, भूत, प्रेत आदि मिथ्या-मानन्दी किये-कराये हैं। सारे कर्तव्य मनुष्य जीवोंसे ही हो रहा है। ऐसे प्रत्यक्ष होते हुए भी चीह्नने लायक

निज सत्य चैतन्यजीवके स्वरूपको विवेक करके, सो उसे तो चीह्नते ही नहीं हैं, और पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग-विचार करके पारख बोध प्राप्तकर सत्यासत्यको ठीक-ठीकसे पहिचानते भी नहीं हैं। उल्टा ये मूढ़ लोग तो आत्मा वा ब्रह्मको चीह्नना, जानना चाहते हैं। जब आत्माको व्यापक एक मानते हैं, तब तो वे महामूढ़ ही हो जाते हैं, और जो उनसे पूछो कि— हे ब्रह्मज्ञानी! तुमने तो आत्माको पहिचाना है न? अच्छा! बताओ तो, वह आत्मा कैसा है? कैसे जाना जाता है? परिचय करनेके लिये उसके गुण, लक्षण वर्णन करो? तब वे क्या कहते हैं कि— हे भाई! सुनो! असलमें परमात्मा "गूँगेके गुड़" के समान अवर्णनीय, अनुभव गम्य है। जैसा गूँगाने गुड़ खाया हो, तो क्या उसका स्वाद वह कह सकता है? नहीं। तैसे आत्माके बारेमें भी कुछ कहने, सुननेमें नहीं आता है। तैं चुप, मैं चुप, फिर सब आत्मा-ही-आत्मा है। इत्यादि मिथ्या बकवाद, प्रलाप करके रह जाते हैं, सोई बड़ी भूल महा अज्ञानता है॥ २७४॥

साखीः—ज्यों गूँगेका गूड़ है। पूरब गुरु उपदेश॥
तो चारि षट अष्टदश। किन्ह यह कहा सन्देश॥२७५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! यदि तुम्हारे पूरब = प्राचीन समयमें हुए पूर्वाचार्य धर्मोपदेशक वेदान्ती गुरुवा लोगोंका उपदेश, शिक्षा, दीक्षाका सार अन्तमें जैसे गूँगेका खाया हुआ गुड़के समान ही है, अकथनीय मूक इशारामात्र अवाच्य, अलक्ष, अगम, अगोचर, अथाह, ऐसे ब्रह्म या आत्मा है। तो उन्होंने क्या जाने? और तुमने क्या पहिचाना? क्या मालूम हुआ, वस्तु तो कुछ भी नहीं ठहरी। जब वह ऐसा है, तो अनुभव भी तो किसी चीजका क्या करेंगे? और अवाच्य ब्रह्म सही है, तब तुम्हारे गुरुवा लोगोंने चारवेद, षट्शास्त्र, अठारह पुराण, उपपुराण, चौदह विद्या, ६४ कला, और भी अनेकोंवाणी-जालका विस्तार करके यह, सन्देश = खबर, समाचार, वाणीका कथन प्रचार उपदेश, फिर किसने, किसको,

कैसे कहा? जब इतने बहुत शब्द कहे, सुने गये, तब "गूँगेके गुड़ न्याय?" शब्दातीत आत्मा कैसे भया? ऐसे दो तरहके वार्ता करनेवाले मिथ्यावादी हैं, बिना पारख वे माया-जालमें अरुझे पड़े हैं ॥२७५॥

साखीः— चतुर श्लोकी भागवत । कियो विधिहिं उपदेश ॥
जो पूरब गुरु गूँग है । किन्ह यह कहा सन्देश ॥२७६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ! भागवत पुराणमें लिखा हैः— एक समय सनकादि चारों भाईयोंने ब्रह्माके समीप जाके निवृत्ति-मार्गके बारेमें प्रश्न किये। ब्रह्माकी बुद्धि प्रवृत्ति मार्ग-परायण होनेसे उन्हें कुछ उत्तर नहीं सूझा। तब विष्णुके ध्यान करके स्मरण किये, फिर विष्णु हंस-अवतारका रूप धारण करके वहीं प्रगट हुए वा वहाँ आ गये, और उसी हंस-रूपसे विष्णुने, जो उपदेश ब्रह्माको किये या शिक्षा दिये, सोई चार श्लोकमें चतुःश्लोकी भागवत कहलाया, सो भा० २।९।३२ से ३५ तक, ४ श्लोक कहा है। इस प्रकार प्रथम चार श्लोककी भागवत ब्रह्माको विष्णुने ही उपदेश किया, फिर ब्रह्माने नारदको और नारदने वही चार श्लोक ही व्यासको कहा। पश्चात् व्यासने अठारह हजार श्लोकोंमें विस्तारसे भागवत ग्रन्थ बनाया, ऐसा (भा० १२।१३।३-९ में) वर्णन है। अब बताओ! पूर्वाचार्य आत्मज्ञानी वा ब्रह्मज्ञानी गुरुवा लोग यदि आत्मा-अनुभव करके गूँगा ही हो जाते थे, तो फिर यह वेद, वेदान्त, भागवत, गीता, आदिके, सन्देश=उपदेश, हाल, खबर, यह किसने कहा? क्यों कहा? किसको, कैसे कहा? जब सन्देश कहा, तो मौन, वा मूकताका भङ्ग हुआ कि नहीं? फिर अवाच्य ब्रह्म है, कुछ कहनेमें नहीं आता, ऐसा कहनेवाले तुम लोग महा झूठे हुए कि नहीं? सब बात तो कल्पना करके तुम्हारे गुरुओंने कहा है, फिर वाणीसे परे कहतेमें तुम्हें लज्जा नहीं आती है? बिना पारख बड़े मूर्ख, पक्षपाती ही बने हैं ॥ २७६ ॥

साखीः— जो पूरब गुरु गूँग है। तो गूँगा शिष्य सब तात !॥
पाँजी यह गुरु शिष्यकी। किन्ह चलाई बात ? ॥२७७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासुओ ! जो यदि वेदान्तियोंके मानन्दी अनुसार ही पूर्वाचार्य बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी, ऋषि, मुनि, गुरुवा लोग आत्मज्ञान होनेपर मौन हो गूँगे ही हुए थे, वा पूर्वके सब गुरुवा गूँगे, अवाच्य हुए हैं, तो उनके सब शिष्य वर्ग भी वैसे ही गूँगे वा मूक ही भये होंगे। नकटा पन्थमें सबोंने नाक कटाया था, कानफटा पन्थमें सब लोग कान फड़ाये हुए रहते हैं। तैसे ही गुरु-गूँगाके पन्थमें चेला सब भी गूँगे ही होंगे। यही इसका तात्पर्य निकलता है। जब ऐसा ही है. तो विना कुछ कहे-सुने, समझे-बूझे ही यह गूँगे, गुरु-शिष्योंकी, पाँजी= मार्ग, पन्थ, पाजीपनाका उल्टा रास्ता, ऐसी बात किसने कैसे चलाया ? अरे ! वे गुरु-शिष्य सबके-सब महापाजी, नालायक ही बने हैं। निपट मूर्खोंके कथामें "बोले सो पत्ता लावै", यह शर्त रख, अपनी बड़ी हानि कर बैठे थे। वैसे ही आत्मज्ञानी गूँगा होके मूर्खतासे अपने हंसपदके हानि ही किये और कर रहे हैं। विना बोले, चाले, कहे-सुने, कहीं गुरु-शिष्यकी परम्परा, मार्ग-मत, पन्थ, ग्रन्थ, नाना सिद्धान्त चल सकता है ? कहीं नहीं। अतः इनके कहनी और करनीमें बड़ा अन्तर है, इससे धोखेबाज बनके चौरासी योनियोंके कैदमें पड़े, और पड़ रहे हैं॥ २७७॥

साखीः— हिन्दू गुरु गूँगा कहै। मुसलम गोयमगोय॥
कहहिं कबीर जहँड़े दोऊ। मोह नदीमें सोय॥२७८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे मनुष्यो ! वेदको माननेवाले हिन्दू धर्मावलम्बी लोगोंके गुरुवा ब्रह्मज्ञानी लोग तो अपने गुरु, आत्मा, ब्रह्मको, गूँगा=वाणीसे परे, मौन, अवाच्य, निःअक्षर कहते हैं। यानी गूँगाके समान अकथनीय कहे हैं। वैसे

ही कुरानमतको माननेवाले मुसलमान लोग भी खुदाको गोयम-गोय = कहने, बताने, सुनने, समझनेमें नहीं आता है। गोलमालसे जैसाका-तैसा, अवर्णनीय, शब्दातीत ही कहते हैं। हिन्दू और मुसलमानके खास मानन्दी ईश्वर, खुदा, ब्रह्म, अल्लाहका सिद्धान्त तोएक सरीखा ही है। आखिरमें वे दोनों ही निश्चय करके कुछ बता नहीं सकते हैं। तो झूठ-मूठके स्वाँग करके महिमा बढ़ाकर निर्गुण, निराकार, बेचून, बेनमून, अवाच्य, गोयमगोय कहके महामोहरूपी वाणीके नदीमें गोता लगाके छिप जाते हैं। सो तो मिथ्या कल्पना भ्रम, भूल है। अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— बिना पारख अविचारी, पक्षपाती हिन्दू और तुरुक दोनों ही मिथ्या धोखामें पड़के जहँड़ा गये। खानी, वाणीके महाबन्धनमें पड़के जड़ाध्यासी हो गये। मोह-मूर्खतासे भ्रमके नदीमें अचेत होके सोते हैं? तो बचेंगे कैसे? बहि-बहिके चौरासी योनियोंके सागरमें पहुँचेंगे, दुःख ही भोगते रहेंगे, बिना विचार॥२७८॥

साखीः— गोयमगोय गुरु गूँगको। जो ऐसो ही न्याव ॥
कहहिं कबीर माते सबै। भाँग परी दरियाव ॥२७९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! इन हिन्दू, तथा तुरुक गुरुवा लोगोंका या मतवादियोंका जो ऐसा ही न्याय, निर्णय ठहराते हैं कि— ब्रह्म वा गुरु गूँगा, मूक, अवाच्य है, तथा खुदा गोयमगोय = अकथनीय है, कुछ ठहराके कहा नहीं जाता है। तो कहो, फिर सार समझ क्या निकली? कुछ नहीं। मिथ्या भ्रममें ही पड़े रहे। धोखेके टट्टीके सिवाय सिद्धान्त कुछ भी नहीं ठहरा। यदि ऐसे ही निर्णयको वे सत्य मानते हैं, तो समझो बड़े निर्बुद्धि बने हैं, या तो कोई नशा पीये हैं। जब सब मतवादी उन्मत्त होके माते हैं, तभी तो श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णय पारखी सन्त कहते हैं कि— हे सन्तो! उसका एक बड़ा कारण है— दरियाव समूचेमें ही नशीली भाँग पड़ गई है, जिसे पी-पीके सब दीवाने हो रहे

हैं। अर्थात्, दरियाव = वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदिकी वाणी कल्पनाकी सारी मानन्दीकी तरङ्गोंमें, भाँग = भ्रम, भूल, भावना, धोखाकी जहरीली भाँग घोट-घोटके घुली पड़ी है। सब लोग उसे ग्रहण, पान, स्वीकार, दृढ़ता कर-कराके, माते = उन्मत्त पक्षपाती भये, तब पागलवत् बर्तावकर जड़ाध्यासी हो-होके मर गये, चौरासी योनियोंमें गिर पड़े ॥ २७९ ॥

साखीः— जो पै गोयमगोय है। यह अल्लाहकी बात ॥
सीपारा तीस कुरानके। मकरूह होय सब जात ॥२८०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे मतवादी लोगो! जो तुम्हारे मत मानन्दीके अनुसार, पै = यदि यह अल्लाहमियाँ या खुदातालाकी बात दरअसलमें, गोयमगोय = कुछ कहने लायक ही नहीं, या कुछ कहनेमें आता ही नहीं है, और तुम उसे नाना विधिसे कहते भी जाते हो, फिर यह तुम्हारी अनसमझ नादानी नहीं तो क्या है? और खुदाकी बात तो गोयमगोय, अथाह हो गयी, फिर तहाँ कुरान-सरीफ किसने, क्यों कहा? तथा कुरानके तीस सिपारा = तीस अक्षर, तीस भागका अध्याय, खण्ड, यह सब भी सरासर, मकरूह = रद्द, झूठा, निकम्मा, ना कुछ ठहरके बेकार ही हो जाता है। क्योंकि, अल्लाहके रूप-रेखा, स्थान आदि तो कुछ बता सकते ही नहीं हो, फिर उसे गोयमगोय माने हो, जब वह ऐसा है, तब तीस सीपाराके कुरानको खुदाने बनाया, ऐसा कहना झूठा हुआ कि नहीं? अवश्य झूठा ही हुआ? तैसे ही उधर ईश्वर वा वेद भी झूठा ही ठहरा। यह सब मनुष्योंकी मन-मानन्दी कल्पनाका विस्तारमात्र है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके उसका यथार्थ भेद जानना चाहिये॥ २८० ॥

साखीः— कबीर गोयमगोय है। जो पै वह अल्लाह ॥
परदे नाल रसूल सो। कहा कौन सल्लाह ॥ २८१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! जो यदि इन मुसल-

मानोंके कथन मानन्दी अनुसार ही वह अल्लाहमियाँ या खुदाताला, दुनियाँका मालिक होके भी वास्तवमें, गोयमगोय=बेचून, बेनमून, अथाह, अपार, अकथनीय, वाणीसे परे है। तो वह कहने-सुननेका विषयसे रहित हुआ। फिर, रसूल=पाक पैगम्बर, प्रतिनिधि, दूतरूप आदम, मूसा, ईशा, मोहम्मद पैगम्बर, इन्होंसे पहाड़के ऊपर कपड़े आदिके पर्दाडालके, ओट, आड़में छिपके, नाल=मार्ग, इस प्रकारके रास्ता, इस्लाम धर्मके शिक्षा, उपदेश, सलाह, मसबिरा करके तब वहाँ किसने कहा था? परदेके राहसे रसूलसे अपने राय, सलाह कहनेवाला वह खुदा था कि नहीं? या तो वह बात झूठी मानो, या गोयमगोय कहना मिथ्या जानो। जो बातचीत करके सलाह, उपदेश देता है, वह तो देहधारी एक नरजीव ही ठहरा। यदि वह अवाच्य मूक ही होता, तब तो उसके वचनको तुम्हारे पैगम्बर लोग कभी सुन ही नहीं सकते थे। अतः वह कोई चालाक मनुष्य था। किन्तु, बिना विचारे मिथ्या धोखेको ही सत्य मान-मानके मुसलमान लोग भूले पड़े हैं ॥ २८१ ॥

साखीः— अर्थ लगावै शब्दका। शब्द बढ़ावत जाय ॥
बातनकी जुरती करैं। पण्डित गाल बजाय ॥२८२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे मनुष्यो! पारखहीन वे अक्षररूप वाणीको पढ़े-लिखे हुए विद्वान् लोग खाली शब्द समूहका ही नाना प्रकारसे अर्थ लगाते हैं, तहाँ एक शब्दके अनेक शब्द प्रगट करके शब्द जालको विस्तारकर बढ़ाते ही जाते हैं। कल्पना भ्रमका पसारा करते ही जाते हैं, और अक्षर, मात्रा, सन्धि-भाव इत्यादि जोड़-जोड़ करके वाणी बनाते हैं, फिर रोचक, भयानक, शब्द=बातोंकी, जुरती=मिलान, सम्बन्ध करते हैं। इस तरह पण्डित, ज्ञाता, समझदार बनके गुरुवा लोग गाल बजाते फिरते हैं, नाना प्रकारके वाणी बोल-बोलके मनमाने सो उपदेश दे रहे हैं। कुछका-कुछ अर्थका अनर्थ करके अबोध मनुष्योंको भुला, भटका रहे हैं, और कहीं बातोंकी

जोड़, संग्रह करके पुराण आदि ग्रन्थ नाना पद, रचना कर-कराके उसका शब्दार्थ, भावार्थ आदि अर्थ लगाय, वाणी जाल ही खूब बढ़ाये हैं। वही लोगोंको सुनाय-सुनायके पण्डित बनके धूर्ताई कर रहे हैं। ऐसे ठगोंको पहिचानके उनके जाल, घेरासे निकलना चाहिये, परीक्षक होना चाहिये ॥ २८२ ॥

साखीः— कबीर पण्डित अधूरिया । बात बनावें श्लोक ॥
बातन अर्थ लगायके । ठगें सो तीनों लोक ॥२८३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो ! ये वाणीके पण्डित लोग सब अधूरे अपूर्ण हैं। क्योंकि, उन्हें निज स्वरूप पारखका बोध तो नहीं है, पारख स्वरूपके स्थिति हुए बिना सब अधूरे ही रहते हैं, और अधूरिया इसलिये भी हैं कि— पाँच मात्रा, स्वर-सन्धि, अक्षर-सन्धि, त्रिलिङ्ग आदिकी सहायता लिये बिना कोई भी पण्डित कुछ भी पद, छन्द, अर्थ आदि प्रगट नहीं कर सकते हैं। मात्रा, सन्धि आदि साथ लेके ही, बात = वाणी, शब्द, संस्कृत, भाषा, गद्य समूहको तुकबन्दी, छन्दोबद्ध, त्रिष्टुप्छन्द, अनुष्टुप् छन्द, भुजङ्गप्रयात छन्द, इत्यादि नाना तरहके श्लोक रचना करके ग्रन्थ बनाते हैं। संस्कृत मन्त्र संहितामें चारोंवेद बने हैं, उसके भाष्यरूपमें ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद् आदि बने हैं। सूत्ररूपमें षट् शास्त्र बनाये हैं। श्लोकरूपमें १८ पुराण आदि नाना ग्रन्थ बनाये हुए हैं। तैसे ही विशेष संस्कृतज्ञ पण्डित लोग बात-बातमें श्लोक बनाय देते हैं। परन्तु, उसे सर्व जनता समझती नहीं, न समझनेसे जनसमाज प्रसन्न नहीं होते हैं। इसलिये स्वार्थी पण्डित लोग फिर सबको समझानेके लिये बोल-चालकी, भाषाकी बातोंमें अर्थ लगाय-लगायके समझाते हैं। श्लोक बोलकर उसीका अर्थ बताके बड़े बनना चाहते हैं। इस तरह तीनों लोकके मनुष्य, सात्त्विक, राजस, तामसी लोगोंको तथा योगी, ज्ञानी, भक्तोंको, एवं स्त्री, पुरुष, नपुंसक इत्यादि त्रिगुणी

मनुष्योंको भुलाय-भुलायके फँसाके, सो उन सबोंको खूब ठगे हैं, और ठग ही रहे हैं। धूर्ताई करनेमें पण्डित लोग बड़े प्रवीण बने हैं। जीवन धन, हरण करके अबोध लोगोंको नष्ट-भ्रष्ट किये वा कर रहे हैं ॥ २८३ ॥

साखीः— पण्डित अर्थ लगावहीं । अनरथ होता जाय ॥
कहहिं कबीर अचरज बड़ा । अर्थहि अर्थी खाय ॥२८४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और इधर पण्डित लोग तो वाणी, शब्द, सूत्र, श्लोक आदि कविताओंके बुद्धि, समझ अनुसार भाँति-भाँतिसे अर्थ लगाते हैं। पद, पदच्छेद, अन्वय, समास, करके अर्थ, शब्दार्थ, भावार्थ, सङ्केतार्थ, व्यङ्गार्थ, लक्षार्थ, ध्वन्यार्थ, अर्थापत्यार्थ, श्लेषार्थ, इत्यादि अनेकों प्रकारसे अर्थ लगाते हैं, तहाँ कर्ता, ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा, आदि ठहराके जीवोंको तुच्छ, बनाते जाते हैं, कल्पना, अनुमानके महिमा बढ़ा करके गुण गाते जाते हैं। इससे, अर्थ = हित, कल्याण होनेके बदले और, अनर्थ = अहित, अकल्याण, भ्रम, भूल, धोखाकी वृद्धि जड़ाध्यास बन्धन ही विशेष होता जाता है। कल्पना बढ़के अर्थका सत्यानाश होता जाता है। लाभ कुछ भी नहीं होता है। इसीसे सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— हे सन्तो ! एक बड़ा भारी आश्चर्य तो यह हुआ कि— शब्दके अर्थरूप ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा, देवी, देवता, भूत, प्रेत, ऋद्धि, सिद्धि आदिकी मिथ्या मानन्दी, अनुमान, कल्पना, भास, अध्याससे ही, अर्थी = उसको चाहनेवाले, अर्थ लगानेवाले, चैतन्य नरजीव ही को खा गया, भ्रमा, भुला दिया, विवेक, विचारादि सद्गुणोंको खायके नष्ट-भ्रष्ट पतित, जड़ाध्यासी, बद्ध, बना दिया। अतः बिना पारख बड़े-बड़े पण्डित भ्रम, चक्रमें पड़के चौरासी योनियोंको प्राप्त भये, भवबन्धनमें पड़ गये, इसीसे उस खानी, वाणी जालको त्याग करके पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें लगना चाहिये ॥ २८४ ॥

साखीः— कबीर अर्थ शब्दमें। शब्द सो जाना जाय॥
अर्थ कौन वस्तु है?। पण्डित! कहो बुझाय॥२८५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! सब वाणी वचन-रूप शब्दका अर्थ, टीका, टिप्पणी, तात्पर्य, वर्णन, कथन, यह सब अर्थ रचना भी शब्दमेंसे कहा, लिखा, सुना जाता है। सो बोल-चालके शब्दसे ही मतलब जाना जाता है, यावत् सिद्धान्तके अर्थ शब्दमें प्रगट होकर, फिर शब्द द्वारा ही सबको जाननेमें आता है। इस तरहसे अर्थ भी शब्दका विषय हुआ। अब उसके अतिरिक्त और, अर्थ = ध्येय, मतलब, ब्रह्म, आत्मा, ईश्वरादि जो शब्दसे ही कहते हो, उनकी प्राप्ति करना चाहिये, ब्रह्ममें तदाकार होना चाहिये, इत्यादि विशेष कथन जो करते हो, तो यह खुलासा करके बताओ कि— वह मुख्य अर्थ कौनसा वस्तु है? जड़ है कि— चैतन्य है? और कहाँ है? कैसा है? कैसे जाना वा पहिचाना जाता है? हे पण्डित! मैं तुमसे पूछता हूँ! इसका भेद अच्छी तरहसे समझा-बुझाके कहो! तुम उसको कैसे मानते हो? फिर मैं उस बारेमें निर्णय करके सत्य-सारको समझा दूँगा। अरे भाई! वास्तवमें वह अर्थ कोई वस्तु नहीं है, सिर्फ मनके मानन्दी, भ्रम, धोखामात्र है, ऐसा जानो॥ २८५॥

साखीः— श्रुति कहै शब्द आकाश गुण। अर्थहि हाय अकाश॥
सूने घरका पाहुना। भोजन भया उपास॥२८६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो!, श्रुति = वेदमें तो कहा है कि— शब्द, यह आकाश तत्त्वके गुण या विषय है। तब तो उस शब्द द्वारा वर्णन किया हुआ अर्थ भी शून्य सारहीन आकाश ही हुआ या होयगा। जब वही सिद्धान्त ठहरा, तो जैसे कोई अपने मित्रके घर, पाहुना = मेहमान होनेको गया, तो वहाँ घर सूना पड़ा हुआ था, कोई नहीं थे। रात भर पड़ा रहा, परन्तु, भोजन नहीं

भया, यानी खानेको कुछ नहीं मिला, तो भूखे उपवास ही रहना पड़ा। फिर निराश होके लौट पड़ा, कार्य सिद्ध नहीं हुआ। तैसे ही सिद्धान्तमें प्रणवरूप ॐकार शब्दको, 'शब्द ब्रह्म' ठहरा करके वेदान्तियोंने माना है। परन्तु वेदमें शब्दको निराकार आकाशका गुण बताया है, और अर्थ करके पाँच मात्राओंको विभक्त करके, पिण्ड-ब्रह्माण्डमें आत्मा वा ब्रह्मको पूर्ण व्यापक आकाशवत् ही निराकार, निर्गुण ठहराया है। तब फिर वह शब्द उसका अर्थ ब्रह्म भी खास आकाशरूप अवस्तु मिथ्या धोखा ही ठहरा। फिर हाथमें तो सार कुछ नहीं आया। सूने घर = शून्य, निराकार ब्रह्म, ईश्वरादिसे मित्रता करके उसके घर आकाश वा ब्रह्माण्डमें स्थिति ठहराव करनेको नरजीव पाहुना या अभ्यागत होके ध्यान, धारणा, समाधि लगाके गये। परन्तु मित्र तो कबके मर चुके थे, तो उनसे कुछ भेट-मुलाकात नहीं हुयी। अज्ञान-मोहकी रात्रिमें वहीं ठहरे, किन्तु, मुक्तिरूपी भोजन देनेको कोई नहीं आया। इसलिये, उपास = भूखे, पारखहीन, जड़ाध्यासी हो, भवबन्धनोंमें ही पड़े रहे। फिर देह छूटनेपर निराश हो, चौरासी योनियोंके चक्रमें ही उलटके चले गये। बिना पारख मुक्तिका कार्य सिद्ध नहीं हुआ ॥ २८६ ॥

साखीः— जेर जबर औ पेश करि। यह जो मतन बनाय ॥
यह करीमने जो कहा। मोलना गाल बजाय ॥२८७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! जैसे हिन्दू लोगोंने पाँच मात्रा लगाके वाणीका विस्तार किये हैं। तैसे ही मुस्लिमोंने भी अर्बी, उर्दू-भाषामें तीन मात्रा लगाके शब्दोंका विस्तार किये हैं। शब्द-अक्षरके ऊपर-नीचे और पाईको बिन्दु लगाके तिरछी लकीर खींच देते हैं, सो उसे ही उर्दूमें मात्रा मानते हैं। जैसेः— जेर = (!) ऐसा खड़ी पाईके नीचे एक बिन्दुवाला छोटी इकारकी मात्रा माना है। जबर = (ॅ) ऐसा अलग अर्धचन्द्राकारमें नीचे-ऊपर दो बिन्दु रखते हैं, उसे जबर कहते हैं। वह अकारकी

छोटी मात्रा माना है। और, पेश = (ؙ) ऐसा अर्धचन्द्राकारके ऊपर एक और नीचे तीन बिन्दु रखते हैं, वह ऊपरमें छोटी उकारकी मात्रा माना है। इस प्रकारसे जेर, जबर, और पेश लगा करके अक्षरोंमें पाई, मात्रा, बिन्दु, आदि लगा करके यह जो मुसलमानोंने अलग ही, मतन = उर्दू, अर्बी भाषाकी वाणी वा नाना मतोंके बहुविधि शब्द जो बनाये हैं, सो मनुष्योंके कल्पनाका जाल जीवोंको बन्धनदायी ही है। परन्तु यह कुरान आदिकी वाणीको, करीम = खुदा, अल्लाह, परमेश्वरने बनाया है, ऐसा तुरुक लोगोंने जो कहा है, और कहते हैं, सो असत्य है। ऐसे ही झूठ-मूठका पर्दा, लगाय-लगाय करके, मोलना = मौलवी, मुसलमानोंके पण्डितोंने अपने मतलबके लिये गाल बजाया है। अर्थात् मात्राएँ लगाके जो कुछ भी कुरान आदिकी वाणी बनाये हैं, सो तो मौलबियोंके कर्तव्यका ही खेल है। परन्तु स्वार्थी मोलनाओंने झूठ ही गाल बजाय-बजाय बकवाद करके ऐसा ढिंढोरा पीट दिये कि— यह कुरान-शरीफ करीम बख्श खुदाने जो कहा है, सो सब मुसलमानोंने मानो। सुन्नत कराओ, रोजा, बाँङ्ग, निमाज पढ़ो, पाँच वक्त खुदाको सलाम करो, मौलबियोंको भेंट-पूजा चढ़ाके पालन-पोषण करो, इत्यादि स्वार्थियोंने कहके दुनियाँको भ्रमा, भुला रखा है। बिना विचार सब उसीमें अचेत पड़े हैं ॥ २८७ ॥

साखीः— कबीर मायने मतनके। मतन सो जाना जाय ॥
मायने कौन वस्तु है ? हजरत ! कहो बुझाय ॥२८८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो !, मतनके = कुरानके वाणियोंके, अथवा अनेक मत-मतान्तरोंके शब्दोंका, मायने = अर्थ, मतलब, भाव, तात्पर्य, माने जो कुछ है, सो तो, मतन = उसी-उसी वाणियोंसे ही जाना, समझा-बूझा जाता है। शब्दसे खुदा, अल्लाह कहा, सो शब्दरूप वाणीके भीतर ही जाना गया वा जाना, माना जाता है। फिर तुम, मायने = शब्दार्थसे खुदाको श्रेष्ठ मालिक ठहराते हो; तो वह माने, मतलब, अर्थ, और ही कोई अल्लाह माना हुआ कौन-सा वस्तु

है ? कहाँ पर, कैसा है ? क्या तुम उसे जानते हो ? कभी कहीं देखा, पहिचाना है ? वह मायने क्या चीज है ? कहाँ है ?, हे हजरत= बुजुर्ग, मौलवी मियाँ ! तुरुकोंमें तुम लोग श्रेष्ठ बने हो, तो इस बातका मर्म अच्छी तरहसे समझा, बुझाके कहो ! नहीं कह सकते हो, तो मिथ्या धोखा, पक्षको छोड़ करके पारखी सन्तोंकी सत्सङ्ग विचार करते रहो, तब असली भेदको जान पाओगे। नहीं तो व्यर्थमें मनुष्य जन्म बिताकर चौरासी योनियोंमें दुःख भोगनेको जाओगे ॥ २८८ ॥

साखीः— मीयाँ मतन बढ़ावहीं। मानै वार न पार ॥
मतन सखुन चीन्है बिना। मीयाँ भये खुवार ॥२८९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो ! मुसलमानोंमें मीयाँ=काजी, मौलवी लोग तो कुरान आदिकी, मतन=नाना वाणी कल्पना ही विस्तार करके बहुत-बहुत बढ़ाये और बढ़ाते जाते हैं। अर्थात् मुसलमानोंमें बड़े-बूढ़े श्रेष्ठ मान्य लोगोंको 'मीयाँजी' कहते हैं। वे तो सिर्फ वाणी कल्पना ही बढ़ा-बढ़ाके उसे पढ़ते-पढ़ाते याद करते जाते हैं। उस वाणीकी माने या अर्थका तो कहीं वार-पार ठिकाना ही नहीं लगता है। क्योंकि , वे लोग खुदा-ताला या अल्लाह मियाँको वारा-पारसे रहित अपार, अथाह, बेचून, बेनमून, गोयमगोय मानते हैं। जड़ और चैतन्यमें खुदाका कहीं भी पता नहीं लगता है। असली खुद, खुदायको तो वे जानते ही नहीं हैं। नाहकका मिथ्या भ्रम-कल्पनामें धोखेसे पड़े हैं। मतन= मत-मतान्तरोंकी वाणी; सखुन=शब्दका विस्तार, सो सब मनुष्यकृत वाणी जाल जीवोंको बन्धन ही है, ऐसा विवेक करके चीन्हें बिना खुदाका बनाया हुआ कुरान आदि वाणी समझके, भ्रम, चक्रमें भूलकर, नानाकर्म, कुकर्म करके, मीयाँ=मुसलमानोंके बड़े, बूढ़े लोग, काजी, मौलवी आदि हंस पदसे पतित, नष्ट-भ्रष्ट हो, खुवार= खराब, जड़ाध्यासी, बेकामके हो गये। उनके साथ-साथमें धोखामें

पड़के सब मुसलमानलोग भी खराब, पथभ्रष्ट, पतित हुए और हो रहे हैं। अध्यासवश चौरासी योनियोंके कैद, अन्धेरी कोठरीमें पड़े, और कैदी बनके उसी बन्दीखानेमें जा रहे हैं ॥ २८९ ॥

साखीः— कहहिं कबीर कहु मीयाँ । मैं पूछत हौं जौन ?॥
इलिल्लाह तो मतन भया । इसके मायने कौन ? ॥२९०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके पारखबोधके ज्ञाता पारखी सन्त यहाँपर उन्हीं मुसलमानोंके गुरुवा लोगोंसे प्रश्न करके कहते हैं कि— दुराग्रही, हठी, अकड़बाज हे मीयाँ=काजी, मौलबी लोगो ! मैं जो तुमसे पूछता हूँ, सो खुलासा करके यथार्थ कहो कि— इलिल्लाह="लाहे लाहे, इलिल्लाह हूल, मोहम्मदुर्रसुलिल्लाहः ।" इत्यादि तुम्हारे पाँच कलमाके मन्त्र तो सिर्फ, मतन = वाणी या कल्पनाके शब्दमात्र ही साबित भया। फिर इसके खास, मायने=मतलब, अर्थ, भाव, माने, प्रयोजन कौन है ? क्या हुआ ? अल्लाह, खुदा जो कुछ भी पुकारके कहते हो, सो तो शब्द मात्र ही ठहरता है, वह वस्तु क्या है ? कैसा, कहाँ है ? तुमने कभी उसे देखे भी हो ? देखा ही नहीं, तो कैसे पहिचानोगे ? नाहक धोखामें पड़के शब्दकी कल्पनामें क्यों भूल रहे हो ? वह कुछ भी काम नहीं आयगा, पीछे पछताओगे। यदि अपना हित चाहते हो, तो अभी चेतो, सत्सङ्ग-विचारमें लगकर जीवन सुधार करो ॥ २९० ॥

साखीः— कबीर मायने मतनके । मतन कहे जो कोय ॥
यहि दोनोंमें को बड़ा? । हजरत! कहिये सोय ॥२९१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो !, मतनके=शब्द या नाना वाणियोंके, मायने=माने,, अर्थ, भाव, मतलब तो, जब कोई शब्दोंको कहते हैं, तब उसके बादमें ही अर्थ होता है । अर्थात् वाणी कहनेवाला कोई मनुष्य न हो, तो आप-ही-आप वाणी कहींसे नहीं आ सकती है । जो शब्द कहता है, उसके माने भी वही बताता

है, और जो कोई जैसा-जैसा शब्द कहता है, तैसा-तैसा उसका अर्थ भी साथ ही होता है । एक शब्दका कर्ता नरजीव, दूसरा शब्द और अर्थ । यही दोनोंमें बड़ा, श्रेष्ठ, मान्य, कौन है ? हे हजरत ! तुम किसको बड़ा मानते हो ? सोई खुलासा करके कहिये ? क्योंकि, खुदा, अल्लाह आदि शब्द, और पाँच कलमा आदि अर्थ, तो वाणीके विषय हुआ, जो कोई वाणी कहते हैं, उन्हीं मनुष्योंसे वह प्रगट होती है । मनुष्य न होयँ, तो और वाणी वा अर्थ कहनेवाला कौन है ? हे भाई ! मुसलमानो ! सोई खुलासा करके कहो कि— इन दोनोंमें कौन बड़ा होना चाहिये ? विचार करो, नरजीव न होते, तो वाणी कहाँसे बनती ? अतः जीव ही बड़ा श्रेष्ठ है, ऐसा जानो ॥ २९१ ॥

साखीः— कबीर मारी अल्लाहकी । ताको कहै हराम ॥
हलाल कहै अपनी मारी । यह नादान कलाम ॥२९२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—और हे नरजीवो । ये मुसलमान लोग स्वार्थी जिभ्या लम्पट, बड़े काल कसाई बने हैं । इनमें जरा भी दया, विचार नहीं है । खुदाको जर्रेजर्रेमें भरा हुआ पूर्ण कहते हैं, फिर उसी बातको वे अपने ही नहीं मानते हैं । क्योंकि, जो प्राणी, पशु, पक्षी, गाय, भैंस, बकरा, भेड़ें, मुर्गी, बतक, कबूतर आदि अपने काल गतिसे आयु पूर्ण होनेपर स्वयं मर जाते हैं । उसे वे खुदाकी या अल्लाहकी मारी हुई समझते हैं, अजगैबसे खुदाके पैगाम या फर्मान आके वह मरा कहते हैं । इस तरह स्वयं मरे हुए पशु, पक्षियोंको मुसलमान लोग, हराम = खराब, अपवित्र, व्यर्थ, त्याज्य कहते हैं । उनको वे खाते भी नहीं, कहीं फेंक देते या गाड़ देते हैं, और अपने हाथसे क्रूर निर्दयी होकर कष्ट दे-देकर गाय आदिको छुरीसे रगड़-रगड़ करके मार डालते हैं । ऐसे हिंसा करके अपनी मारे हुए को वे, हलाल = अच्छा, पवित्र, पाक, ठीक, ग्रहण करने योग्य कहके प्राणियोंको मार-मारके राक्षस बनके मांस खाते हैं । यही देखो !, नादान = मूर्ख लोगोंकी कैसी मूर्खता

भरी, कलाम = खोटी वाणी है । बिलकुल शैतान, काल ही बने हैं । ये खुदासे भी बढ़कर अपने कामको समझनेवाले खुदाके बागको उजाड़नेवाले और खुदाके ही गलेमें छुरी फेरनेवाले अल्लाहके कितने बड़े भारी दुश्मन बने हैं । वे छली, कपटी, स्वार्थी बने हैं, खुदाके नामसे दुनियाँको भ्रमाकर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं, नादानीका शब्द बोल रहे हैं, बिना विचार ॥ २९२ ॥

साखीः— अपनी बोली आपसो । होत नहीं पहिचान ॥
कहहिं कबीर समुझै नहीं । मोह महा बलवान ॥२९३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ ! नरजीव अपने ही नाना मानन्दी करके, बोली = वाणी या शब्द बोलते हैं । पहिले तो बड़े बननेके लिये कथन तो अच्छी ही करते हैं । फिर निर्गुण, निराकार, बेचून, बेनमून, ब्रह्म, परमात्मा, अल्लाहको मानते हैं । सो शब्द तो वस्तुका निषेध करता है । किन्तु, उन अविवेकियोंको अपनी ही बोलीके अर्थकी पहिचान नहीं होती है, कुछका कुछ ही मानके अनर्थ कर बैठते हैं । सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका कहा हुआ सत्य निर्णय, जड़ चेतनके भेदको तो वे समझते नहीं हैं, इसीसे वाणी कल्पनासे प्रगट होनेवाला ईश्वर, खुदा आदि धोखाका मोह बड़ा बलवान् हो रहा है ॥ अथवा पहले तो अपने ही बोले कि, आत्मा या खुदा घट-घटमें रमा हुआ व्यापक है । फिर जिभ्या स्वादके कारणसे पशु, पक्षियोंकी उन्हीं देवताओंके नामसे हिंसा, बलिदान, हलाल, हत्या कर-कराके प्रसन्न होके, मांस खाते हैं । वे राक्षसोंको अपनी पूर्व वचनका कुछ भी पहिचान नहीं होता है । सबमें परमात्मा या खुदा है, तो ये हत्या भी उसी इष्टदेवकी ही होगी, बड़ा उल्टा काम हो जायगा, यह तो कुछ भी नहीं समझते हैं । सद्गुरु कहते हैं— विषय भोग स्वार्थका मोह बड़ा बलवान् हो गया है । उसने सब मतवादियोंको पछाड़के जीत लिया है ॥

अथवा हंस जीवकी अपनी शुद्ध बोली तो गुरुमुख निर्णयकी सार-शब्दकी थी। परन्तु पारखपर लक्ष न होनेसे, सो अपने ही बोली आपसे पहिचान नहीं होती है; और सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने जो सत्य निर्णय कहे हैं, उसे पारखी सन्तोंके सत्सङ्ग-विचार करके तो ठीक-ठीक नहीं समझते हैं। और मनमाने वैसा चलते हैं। मनमुखी होके भटकते हैं। मनके मानन्दी खानी, वाणीके पक्ष, मोह, काम, क्रोधादि विकार ही महाबलवान् होके जीवके पीछे पड़ी है। इसीसे जीव जड़ाध्यासी होके भवबन्धनोंमें बन्धे पड़े हैं ॥ २९३ ॥

साखी:— कारण लिङ्ग स्थूल जीव । विश्व तेजस प्राज्ञ ईश ॥
त्रिविधि हिंडोला उभयजन । झूलहिं बिस्वाबीस ॥२९४॥

टीका:— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो ! स्थूल, सूक्ष्म, कारण, ये तीन देह, तथा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ये तीनों कोशोंका भोक्ता बद्ध अज्ञानी, अविद्याग्रसित जीवको माने हैं, और विराट, हिरण्यगर्भ, अव्याकृत ये तीन देहके विश्व, तैजस, प्राज्ञ, ये तीनोंका अभिमानी चतुर्थ प्रत्यगात्म, अभिमानधारी, ज्ञानमय कोशका भोक्ता, ज्ञानी, ईश्वरको साक्षी ठहराये हैं। स्थूल, विश्व, विराट, एक समान है। सूक्ष्म, तैजस, हिरण्यगर्भ, एक समान है। कारण, प्राज्ञ, अव्याकृत, एक समान है। यही त्रिविधि, तीन-तीन प्रकारकी त्रिपुटी, हिण्डोला = झूलनामें, उभय जन = जीव, ईश्वर; ज्ञानी, अज्ञानी; गुरु, शिष्य; सिद्ध, साधक; ऐसे दो-दो जने लटकके, बिस्वाबीस = पक्का, सब प्रकारसे भवबन्धनोंमें ही पड़के बद्ध होकर झूले, और अभीतक झूल ही रहे हैं। चौरासी योनियोंके चक्रमें नीचे-ऊपर, दुःखी-सुखी हो रहे हैं। बिना पारख पञ्चकोश, पञ्चविषयके प्रपञ्चोंमें पड़के सब जीव जन्म, मरण, गर्भवासमें जा-जाकर त्रिविधिताप आदिके दुस्सह दुःख सह रहे हैं। कोई पारखी ही उससे न्यारे हो रहते हैं ॥ २९४ ॥

साखीः— जीव ईशमें भेद बहु। कहत सयाने लोय॥
बिना जीवकी ईशता। कहु पण्डित किमि होय?॥२९५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! प्रथमके, सयाने = बड़े, बूढ़े, श्रेष्ठ कहलानेवाले, ब्रह्मादि, सनकादि, वशिष्ठ, व्यास, गौतमादि, गुरुवा लोग कहते हैं कि— जीव और ईश्वरमें बहुत बड़ा भारी भेद है। जीवको अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान्, परिछिन्न, अविद्याग्रसित, प्रतिबिम्ब, अंश, बद्ध, माया जालमें फँसा हुआ माने हैं। और ईश्वरको सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, एक, अविद्यासे रहित, बिम्ब, अंशी, मुक्त, मायासे परे ऐसा ठहराये हैं। यही सब कल्पित कथन करके बहुत भेद बताये हैं। परन्तु, जीव चैतन्यसे जो रहित होता है, सो जड़, मुर्दा, निर्जीव कहलाता है, उसमेंसे कोई पुरुपार्थ हो ही नहीं सकता है। इसीसे जीवके रहे बिना, ईश्वरकी ईशता शक्ति कहाँ, कैसे रहेगी? ज्ञान, श्री, ब्रह्माण्डता, यश, विद्या, और बल, ये षट्गुण-ऐश्वर्य निर्जीवमें कहाँ हो सकती है? कहीं नहीं। अतः जीवमें ही वह षट्गुण घटते हैं। हे पण्डित! जीवको छोड़के दूसरा कोई ईश्वर कैसे? कहाँपर हो सकता है? फिर इसका यथार्थ निर्णय करके कहो? क्या तुम्हारे ईश्वरमें जीव नहीं है? तो फिर निर्जीव ही होगा? फिर उसमें ईशताकी सिद्धि कैसे हो सकती है? मिथ्या भ्रम, भूलको छोड़ो, सत्सङ्ग विचार करके यथार्थ बातको समझो॥२९५॥

साखीः— जागृत अव्याकृत बरण। तीहुँ पुर देत देखाय॥
सो अव्या सुषुप्तिलों। अबरण होय रहाय॥२९६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! जाग्रत् अवस्थामें मनुष्य जीव, अव्याकृत = मन मायासे कल्पना किया हुआ, बरण = वर्ण, अक्षर-समूह, वाणियोंको, पढ़ते, सुनते, गुनते, दृढ़ करते हैं। उसीसे नानासिद्धान्त कथन करके कायम करते हैं। सो इसी प्रकार, तीहुँपुर = तीन शहर, तीन लोकरूप, त्रिगुणी मनुष्य, ज्ञानी,

योगी, भक्तोंमें भी वही वाणी कल्पना त्रिकाण्ड, तीन सिद्धान्त होके दिखायी दे रही है । अथवा जाग्रत्‌में कल्पनाकृत अक्षरोंकी मानन्दी स्वीकार करके ब्रह्मज्ञानी बने, तो उन्हें तीनों लोक चराचरमें एक ब्रह्म ही भ्रमसे दिखाई देती है । सो मानन्दी मिथ्या भास ही है । परन्तु सो, अव्या = माया, वाणी, कल्पनाकी अध्यास इधर जाग्रत्‌से लेकर स्वप्न, सुषुप्तितक अज्ञानरूपसे आवरणकर शून्यमें लय होके रहती है । फिर समय पायके उठा करती है । और उधर सो वाणी विद्या मायाकी मानन्दी जाग्रत् कर्म मार्गसे लेकर, स्वप्न उपासना मार्ग तथा ज्ञान सुषुप्ति योग, ज्ञान, विज्ञान मार्गतक, अवरण = निःअक्षर, निर्गुण ब्रह्म दृढ़ हो रहा है । सो सब मनकी धोखा है, बिना पारख सब उसीमें भूले पड़े हैं । परख करके, सो भ्रमको मिटाना चाहिये ॥ २९६ ॥

साखीः— कबीर वेदान्ती कहत हैं । अबरण आतम रूप ॥
अब यह अबरण बोध दै । डारत भ्रम तम कूप ॥२९७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! अद्वैत ब्रह्मवादी वेदान्ती लोग ऐसा कहते हैं कि— आत्मा या ब्रह्मका स्वरूप, अबरण = निःअक्षर, शब्दातीत, अवर्णनीय, अगम, अगोचर, निराकार, निर्गुण, सर्वव्यापक है । ऐसे ही ठहराके निश्चय करते, कराते हैं । परन्तु वह तो मिथ्या धोखा है । तो भी अबके वेदान्ती वही उपरोक्त कथन यह अवरण, अवाच्य, निःअक्षर, माना हुआ आत्मा या ब्रह्मका उपदेश ठहराव वर्णरूप अक्षर समूह वाणी कथन द्वारा ही बोध दे-दे करके अनुमान, कल्पनाकी ही दृढ़ कर-कराके मनुष्योंको भ्रमाकर, तम कूप = महाअज्ञान गाफिलीका गड्ढा अन्धेरी कूआ धोखेमें ढकेलके चौरासी योनियोंके गर्भकूपमें डाल देते हैं । और वे सबको भ्रम-भूलकी तम-कूपमें खैंच-खैंचके डाल ही रहे हैं । इस तरह अपना-पराया अहित ही कर रहे हैं ॥ २९७ ॥

साखीः— कबीर अबरण चीन्हैं नहीं । बर्णहि अबरण होय ॥
अबरण जानै वस्तु कछु । मूरख कहिये सोय ॥२९८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो ! ये अबोध, अविवेकी नरजीव, अबरण = निःअक्षर, निराकार, निर्गुण माना हुआ ब्रह्म, आत्मा, ईश्वरादि, जो कि— कोई वस्तु नहीं है, मनकी ही कल्पनामात्र है, सो उसे परख करके चीन्हते, पहिचानते तो नहीं हैं। झूठ मूठ ही उसे सत्य मान रहे हैं। देखो ! वर्ण = अक्षर जो है, उसे मेट-मिटा देनेपर, नाश होनेपर शून्य हो जाता है, वही अवर्ण शब्दसे रहित अवस्तु, अभाव होता है। अक्षर समूहसे वाणी होती है, उसे मिटा देनेसे निःअक्षर, खाली शून्य, हो जाता है। एक तो भाव होता है, उसीकी अपेक्षासे दूसरा अभाव कहा जाता है, सो निषेध है, कोई वस्तु नहीं ठहरता है। चार तत्त्वको अपेक्षासे पाँचवा शून्य आकाश कहा है। तैसे वर्णके अपेक्षासे अवर्ण, जगत्के अपेक्षासे ब्रह्म, आत्मादि माना है। परन्तु, वाणीके कल्पनामात्र होनेसे वह मिथ्या है, और जो कोई मतवादी मनुष्य अबरण = अक्षरसे रहित, शब्दातीत, अवर्णनीय माना हुआ ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, परमात्मा, खुदा आदिको कुछ सत्य वस्तु श्रेष्ठ, उत्तम पदार्थ, अलौकिक परमतत्त्व इत्यादि अनुमान करके मनकी भावनासे जो ऐसा जानते हैं या मानते हैं, अथवा उसे जानना, साक्षात्कार करना, तदाकार होना चाहते हैं, वैसे लोग विवेक, विचारसेहीन अनसमझ बेपारखी होनेसे निपट-मूर्ख ही कहलाते हैं। चाहे वे पढ़े-लिखे हों, वा अनपढ़े हों, तो भी पठित मूर्ख वा, अपठित मूर्ख ही कहे जाते हैं। कल्पनाको ही सत्य वस्तु माननेवाले मूर्ख नहीं तो कौन हैं ? । अतः पारख विचार करके सत्यासत्यके भेदको यथार्थ जानना चाहिये ॥२९८॥

साखीः— मायाको दुइ अङ्ग है । अबरण बरण स्वरूप ॥
भानु प्रकाशी बरणमें । अबरण राति अनूप ॥२९९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो !, मायाको = माया

कौन है कि— मन, तन, वाणी, कल्पना, गुरुवा, मानन्दी इत्यादि माया हैं। उसी मायाके मुख्य, दो अङ्ग = दो भाग वा दो खण्ड हैं। एक वरण = अक्षर-समूहका भाव शब्द स्वरूप है। दूसरा, अवरण = निःअक्षर, शब्दातीत, अवाच्य, अभाव, ब्रह्म, ईश्वरादिकी कल्पित स्वरूप है। उसमें, भानु प्रकाशी = सूर्यवत् ज्ञान-गुणका प्रकाशी, नरजीव सर्वसाक्षी दशाकी अनुभव अक्षरोंमें वाणीसे वर्णन करते हैं, सो ज्ञानी कहलाते हैं। और दूसरे, अवरण = निःअक्षर, अचिन्त्य, अगम्य, चराचरमें व्यापक, विज्ञान ब्रह्म कोई, अनूप = उपमासे रहित मानन्दी करते हैं, सो राति = महा गाफिली अन्धकार भ्रम-चक्रमें पड़े हैं। बिना पारख ज्ञान, विज्ञानकी भावना करके जीव सब भवबन्धनोंमें ही जकड़े पड़े हैं। अर्थात् अवरण वा वरण, अक्षर, निःअक्षर, ये दोनोंका स्वरूप वही मन-मायाके दो अङ्ग हैं। वरणमें भानु प्रकाशी = ज्ञान, सर्वसाक्षीपनाका उजियाला दिखाते हैं, आत्माको साक्षी कहते हैं, और अवरणमें जाके, अनूपम राति = विज्ञानपद व्यापक ब्रह्मकी मानन्दी कर बैठते हैं। दोनों तरहसे जड़ाध्यासी होके चौरासी योनियोंके चक्रमें ही, गिर पड़ते हैं, बिना पारख ॥२९९॥

साखीः— नित्य कहत हैं आतमा। अनित्य कहत हैं देह॥
यह दोनोंमें को तरै? कबीर अचम्भा येह॥३००॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे जिज्ञासुओ! वेदान्ती लोग आत्माको नित्यतृप्त, नित्यमुक्त, निरामय, निरञ्जन, निर्गुण, निराकार, परिपूर्ण, सच्चिदानन्द इत्यादि विशेषण लगाके त्रिकाला-वाध्य, आत्मा, नित्य, एकरस है, ऐसा कहते हैं, और दूसरे पक्षमें शरीरको अनित्य, नाशवान, मिथ्या, प्रतीतिमात्र, असत्य, मायाके उपाधि भ्रममात्रसे खड़ा है, ऐसा कहते हैं। तहाँ "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैवनापर"— ब्रह्म सत्य है, जगत् झूठ वा मिथ्या है, ब्रह्मसे जीव कोई दूसरा नहीं है। यह सिद्धान्त स्थापना करते हैं। उसमें, कबीर = हे नरजीवो! एक यही आश्चर्य होता है

कि— नित्य आत्मा, अनित्य देह, यही दोनोंमें कौन, कैसे तरेगा = कौन पार उतरके मुक्त होगा? क्योंकि, मुक्त आत्माको बन्धन नहीं है, और हो सकता भी नहीं है। तथा अनित्य शरीर तीन कालमें कभी मुक्त हो नहीं सकती है। फिर मुक्तिके लिये ब्रह्मज्ञान देना-लेना, व्यर्थ, निष्फल हुआ कि नहीं? यह अचम्भा देखो तो सही! जो बात असम्भव है, सोई करनेमें तत्पर हुए या हो रहे हैं। कितनी उल्टी समझवाले हैं। जगत् मिथ्या है, तो फिर तरना-तराना क्या होगा? कुछ नहीं। अतः यह बात सरासर भ्रम-भूलकी है, इससे किसीका कल्याण नहीं होता है। पारखी साधु गुरुकी सत्सङ्गमें परखकर वह भ्रम-भूलको मिटाना चाहिये ॥ ३०० ॥

साखीः— तत्त्वमसि पद तीन जो। कहैं सबै सुख भौन ॥
पूरब किन्ह उतपति किया? सुनैसो पण्डित कौन? ॥३०१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! सब अद्वैत-वादी वेदान्तीलोग "तत्त्वमसि"— यह सामवेदके महावाक्यमें जो तीन पद है, सोई कहते हैं, तहाँ— त्वंपदवाच्य जीव, तत्पद-वाच्य ईश्वर और दोनोंकी एकता असिपद लक्ष ब्रह्म मानकर 'तू वह ब्रह्म है।' ऐसा गुरुवा लोगोंने कहा, उसीको शिष्य "अहं ब्रह्मास्मि" 'मैं ब्रह्म हूँ' कहै, तो द्वैतका बाध होके अद्वैत ब्रह्मस्वरूप ही हो जावेगा। फिर तीन पद मिटके एक पद आत्मा ही सर्वा-धिष्ठान रह जावेगा। सोई सच्चिदानन्द सुखस्वरूपका भवन, कल्याण वा मुक्तिका घर माने हैं। यानी तीनों पद जो हैं, सो तत्त्वमसिके लक्षांश विचारसे एक परमतत्त्व आत्मामें मिलके सुखका भण्डार-रूप महान सुख, परमानन्दको प्राप्त हो जाते हैं, ऐसा सब ब्रह्मज्ञानी लोगोंने कहे और कह रहे हैं। तो हे आत्मज्ञानी! यह भेद कहो कि— पूरब = सृष्टि उत्पत्तिके पूर्वमें जब एक ही ब्रह्म था, तब यह तत्, त्वं, असि, ऐसे तीन पदको किसने उत्पन्न किया? एक आत्मा सत्य है, यह किसने जाना? महावाक्यरूप वाणी वेदको किसने

पैदा किया? क्यों किसके वास्ते उत्पन्न किया? दुःख नहीं था, तो सुख काहेका होगा? एक आत्मामें कौन शब्द कहेगा? कौन सुनेगा? कौन मूर्ख होगा? कौन पण्डित होगा? विना द्वैतके आत्मज्ञान कहने-सुननेवाला ऐसा पण्डित भी कौन होगा? हे पण्डित! इसका भेद बताओ, क्या बात है? दुःख बिना सुखका भास होता ही नहीं है। अतः जगत् सदासे ही था। तत्त्वमसि यह जो कहा, सो तो मनुष्यकी ही कल्पना है ॥ ३०१ ॥

साखीः— जैसे मनोराजमें। विविधि मनोरथ होय ॥
तैसे बहुत प्रकारके। मतवादी सब कोय ॥ ३०२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! जैसे सूक्ष्म देहकी, मनोराजमें=मनकी सत्ता, सङ्कल्प-विकल्पमें विविधि मनोरथ होते रहते हैं। अर्थात् नाना प्रकारके मनका तरङ्ग, कल्पना, चाह, आशा, तृष्णा, इच्छा, वासना, काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकारकी जोर चञ्चलता होती ही रहती है। मन कभी स्थिर नहीं रहता है। कुछ-न-कुछ सङ्कल्प किया करता है। शेखचिल्लीके समान मन अपना मनोरथ लम्बा-चौड़ा बढ़ाया ही करता है, परन्तु, फायदा कुछ नहीं होता है। तैसे ही संसारमें षट् दर्शन— ९६ पाखण्डोंसे ले करके सहस्रों मतवाद जो फैले हैं, उनमें सब कोई मतवादियोंकी भी वही हाल है। बहुत प्रकारके मतवाद, वाणी-जाल बढ़ायके मनोराज्यमें ही दौड़ लगा रहे हैं। सबके-सब पक्के शेखचिल्ली बने हैं। मन-कल्पनासे कोई एक जगत्कर्ता सुख-दुःखोंका दाता परमेश्वर ब्रह्म, खुदा आदिको मानके उनके प्राप्तिसे मनोकामना पूर्ण होनेकी झूठी आशा लगा रहे हैं। चार फल, चार मुक्ति, सात स्वर्ग, ऋद्धि-सिद्धि करामात, मन्त्र सामर्थ्य आदिकी मिथ्या महिमा बढ़ाय, उसके प्राप्तिके लिये, जप, तप, व्रत, उपवास, भक्ति, योग, ध्यान, ज्ञान, इत्यादिकी नाना साधना करने-करानेमें लगे हैं। अनेकों वाणी बनाके झूठी आशा, भरोसा दे करके बहुविधि मतवाद

बढ़ाये हैं। भास, अभ्यास, अनुमान, कल्पनामें ही सब कोई फँसे पड़े हैं। अतएव पारखी साधु गुरुके सत्सङ्गद्वारा खानी, वाणीको ठीक तरहसे परख करके न्यारा होकर पारखपदमें स्थिर होना चाहिये ॥ ३०२ ॥

साखीः— कबीर निगुरा नरनको । संशय कबहुँ न जाय ॥
संशय छूटै गुरुकृपा । तासु बिमुख जहँड़ाय ॥३०३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो ! संसारमें जो कोई पारखी सद्गुरुके गुरुमुख पारखबोधसे रहित, मानुषरूपमें जीव हैं, वे निगुरा=गुरुबिमुखी कहलाते हैं। ऐसे निगुरा नर-जीवोंकी, संशय=भ्रम, दुविधा, कल्पना, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदिकी झूठी मानन्दी, सन्देह, नहीं मिटती है, और कौन सत्य है ? जगत् दिखता है, ब्रह्म नहीं दिखता है, तो क्या निश्चय करना चाहिये ? इत्यादि भ्रम-भूल कभी भी उनके हृदयसे निवृत्त होके नहीं जाती है, क्योंकि, स्वयं चीन्हनेकी तो उसे शक्ति नहीं है, पारखी सद्गुरुका बोध नहीं लिया है, या लेता नहीं है, इसलिये ऐसे निगुरे लोगोंका संशय कदापि छूट नहीं सकता है। वह भ्रम-भूल, छूटनेका तो एक ही रास्ता है। जिज्ञासु बनके शुद्ध भावसे सत्य-न्यायी, बन्दीछोर पारखी सद्गुरुकी शरणागत होना, अभिमान गलित करके प्रेम-भावसे सेवा-टहल, वन्दगी, और सत्सङ्ग-विचार करते रहना चाहिये। जिससे पारखी सद्गुरुकी महान् कृपादृष्टि होगी, आप सब खानी, वाणीकी जाल-जञ्जाल कसर-खोट एक-एक करके रत्ती-रत्ती परखायके भेद बता देवेंगे। तब यथार्थ पारख स्वरूपका सत्यज्ञान प्राप्त होकर जिज्ञासुओंका सकल संशय, भ्रम, धोखा छूट जायगा, और निजस्वरूपकी स्थिति अपरोक्ष पारख होनेसे जीवन्मुक्ति हो जायगी। यह सब सद्गुरुकी दयासे ही होता है, और जो मनुष्य ऐसे बन्दीछोर पारखी सद्गुरुके तरफसे विमुख होकर, विरोधी, पक्षपाती, हठी, शठी, मतवादी बने रहते हैं। वे खानी, वाणीके महाजालोंमें

सब प्रकारसे जहँड़ायके बद्ध होकर जड़ाध्यासी बन गाफिलीसे बारम्बार चौरासी योनियोंमें ही भटक-भटककर दुस्सह दुःख भोगा करते हैं। अतः गुरुमुखी हो करके पारखबोध लेके अपना जीवन-सुधार, हित, कल्याण, करना चाहिये ॥ ३०३ ॥

साखीः— जेता ज्ञान जग देखिये । होत सबनको अन्त ॥
वस्तु प्रलय ना गहत है । सो कबीर निज सन्त ॥३०४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! एक पारख सत्य ज्ञानको छोड़ करके और अनेकों ज्ञान, मत, पन्थ, ग्रन्थ, नाना सिद्धान्त खानी और वाणीका विस्तार जगत्में जितने भी ज्ञान— जानने, देखने, सुनने, आदि पञ्च विषय सदृश ग्रहण करनेमें आते हैं। आप तटस्थ होके विवेक दृष्टिसे देखिये! सो उन सबोंका ही अन्त, नाश, लय, परिणाम बदल, फेरफार, उलट-पलट, शान्त और विनाश ही होता है। कोई भी मोटी, झीनी विषय शुद्ध एकरस, अखण्ड होके ठहरे नहीं रहता है। पारख कसौटी-पर कसनेपर सारे मतवादियोंका ज्ञान खण्डित, भ्रम, खोटा ही ठहर जाता है। इसलिये ब्रह्म, आत्मा, खुदा, नास्तिक तत्त्ववाद आदि सब ही असत्य होनेसे अन्तमें नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। उसे माननेवाले जड़ाध्यासी होके महाबन्धनमें ही पड़ जाते हैं। और प्रलय=नाशवान्, परिणामी वस्तु, जड़ चार तत्त्वोंके कार्य पदार्थ तथा पञ्च विषय एवं विपरीत भावना वाणीकी कल्पित मानन्दी देहके भास, अध्यास इत्यादि प्रलय होनेवाली वस्तुको तथा कभी-न-कभी बिगनेवाली चीजको ममता, मानन्दी, टिकायके जो ग्रहण नहीं करते हैं। परख-परखके सब मानन्दी वासनाओंको हटाते रहते हैं। जाग्रत् सावधान होके मनके द्रष्टा हो रहते हैं। हंसदेहके सद्गुण-लक्षण रहनी-रहस्यको सर्वाङ्गसे जिन्होंने धारण कर लिया है, सोई नरजीव कायावीर कबीर प्रथम पारखी सद्गुरुके पारखबोधको पूर्णतासे अपरोक्ष धारण करके निज चैतन्य हंस

स्वरूपमें स्थित, शान्त, निर्विकार, निर्भ्रान्त, निर्बन्ध, अटल, अचल, जीवन्मुक्त हो जाते हैं। सो ऐसे ही पारखी सन्त नरजीवोंका बन्धन छुड़ाकर मुक्ति देनेवाले होते हैं। सत्सङ्ग द्वारा सद्गुरुको पहिचान करके उनके ही शरण-सत्सङ्गमें लगकर अपना कल्याण करना चाहिये ॥ ३०४ ॥

साखीः—जिभ्या फिरै अनन्त गली। बरणि न सकै पुनि ताहि॥
सुर नर मुनि पीर औलिया। सकलों मारे जाहि ॥३०५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासुओ! कल्पित वाणी बोल-बोलके मुखमें जिभ्या फटाफट्-फटाफट् फिरती है, सो नर-जीवोंको, अनन्त गली=नानामत, नाना पन्थोंमें वा अनेकों सिद्धान्तोंमें लेके घूमता, फिरता, भटकता, भटकाता, रहता है। गुरुवा लोगोंने असंख्यों वाणी बोले हैं। बहुतेरे ग्रन्थोंमें लिखे भी हैं। वाणी कल्पनाका वारा-पार नहीं लगता है। बड़बड़-बड़बड़ मिथ्या वात बोलके जिभ्या हिलाया-फिराया करते हैं। बीजक, साखी ८४ में कहा है:—

साखीः— "४ प्राणी तो जिभ्या डिगा। छिन-छिन बोल कुबोल ॥
मनके घाले भरमत फिरे। कालहिं देत हिण्डोल ॥"

इस प्रकार अनन्त वाणी जाल बिछे हुए गली-कूचियोंमें जीव रसनाके साथमें फिर-फिरा रहे हैं। अनेकों सिद्धान्त, मतवाद स्थापित किये हैं। फिर अन्तमें उसी वाणीकृत ब्रह्म, आत्मा, परमेश्वर आदिको वर्णन करके भी कहते हैं कि— उसका पूर्णभेद वर्णन हो नहीं सकता है। 'नेति-नेति श्रुतिः', उसके अन्त नहीं, इतना ही महिमामात्र नहीं, अकथनीय, मन, बुद्धि, वाणीसे परे परमात्मा है, और इससे ज्यादा कुछ कहा नहीं जा सकता है, ऐसा कहके धोखामें गरगाफ हो जाते हैं। इसीसे उस भ्रम-चक्रमें पड़के, सुर=देवता, सतोगुणी मनुष्य, ज्ञानी लोग, नर=रजोगुणी मनुष्य, कर्मी, भक्त-लोग, मुनि=शील मनन करनेवाले तमोगुणी मनुष्य, योगी, तपस्वी लोग और, पीर=मुसलमानोंके गुरुवा लोग, औलिया=सिद्ध, फकीर

लोग, पैगम्बर, इत्यादि सम्पूर्ण बिना पारख खानी-वाणीमें जा-जाके मारे जाते हैं। यानी भ्रमिक जड़ाध्यासी होकर भवबन्धनोंमें पड़के दुःख ही भोगते रहते हैं और अभी अनेकों कष्ट, क्लेश भोग ही रहे हैं। गुरु पारख पाये बिना ऐसे ही दुर्गति होती रहती है ॥ ३०५ ॥

साखीः— अष्टावक्र देवदत्त जो । गर्भहि कथैं वेदान्त ॥
अवतरै पुनि गर्भमें । जन्म भया पुनि अन्त ॥३०६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! गुरुवा लोग जो कहते हैं, सोई बात महाभारत, और पुराणोंमें भी लिखा है कि— कहोड़ मुनिका पुत्र, अष्टावक्र=जन्मते ही जिसका आठों अङ्ग टेढ़ा था, इसीसे रूप माफिक उसका अष्टावक्र नाम पड़ा। तथा देवदत्त वा वामदेव यह भी किसी ऋषिका पुत्र था। और शुकदेव, व्यास मुनिका पुत्र था। उन्होंने माताके गर्भवासमें रहते वक्तमें ही, वेदान्त=उपनिषद् ब्रह्मविद्या, आत्मज्ञानका कथन, उच्चारण किया था, ऐसा कहते हैं। जब अष्टावक्र, देवदत्त आदिको गर्भमें ही ब्रह्मबोध हो गया था, जिससे उन्होंने गर्भमें ही वेदान्तका कथन किये। यदि यह बात ठीक है, तो वहींसे मुक्त क्यों न हो गये ? फिर बन्धनको ग्रहण या स्वीकार करके गर्भमेंसे अवतार धारण करके, अवतरै=क्यों उत्पन्न हुऐ ? जब देह धारण करके आये, तब गर्भमें ज्ञान कहाँ हुआ ? पीछे उन्होंका जन्म हुआ, बालक, युवा, और वृद्ध अवस्था हुई, फिर अन्तमें मरण होकर नाश हो गये। पीछे फिर चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही गये। क्योंकि, मैं सर्वव्यापक ब्रह्म हूँ ! यह गर्व या हङ्कारको जीतेतक पकड़े रहे। इसीसे शरीर छोड़के चौरासी योनियोंमें ही गये। अब कहो, ब्रह्मज्ञान होनेका क्या विशेषता हुआ ? आवागमन तो छूटा ही नहीं। जन्मलेके विषयोंमें न भूले हों, ऐसा भी नहीं। महाभारत आदि पुराणोंमें तो ऐसा लिखा है कि— अष्टावक्र, देवदत्त, वामदेव, और शुकदेव आदि सब भी गृहस्थ हुए थे, उन सबोंके सन्तान भी कई एक उत्पन्न हुए थे। अतः वे

खानी, वाणीमें फँसके भूले-भुलाके जड़ाध्यासी ही हुए थे। गर्भमें ही ज्ञान कथन होना, असम्भव है। किन्तु, गर्व (हङ्कार) में रहके वाणी कथन किया होगा, यह न समझके ऐसे मिथ्या मानन्दी करनेवाले जन्म-मरणादि चक्रसे कभी छूट नहीं सकते हैं, यह निश्चय है ॥३०६॥

साखीः—पूरब दोऊ चैतन्य रहै । भया किमि गर्भ निवास ॥
उपनिषद् कहि पितु मातुसो । जगत बीज किमि नाश ॥३०७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—और, पूरब = प्रथम जब वे, दोऊ = अष्टावक्र तथा देवदत्त ये दोनों चैतन्य आत्मा, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त रहे, वा पूर्ण ब्रह्मबोधवाले रहे; तो बताओ! गर्भमें उन्हें निवास ही क्यों भया? आत्मा व्यापक था, तो एकदेशी गर्भवासके बन्धनमें क्यों, कैसे, कहाँसे आया? जब बन्धनमें पड़े, तो मुक्त आत्मा कैसे ठहरा? और उन्होंने अपने माता-पितासे गर्भवासमें रहतेमें और बाहर आ करके भी, उपनिषद् = ब्रह्मविद्या, आत्मज्ञान वर्णन करके कहा कि— मैं आत्मा हूँ, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त हूँ, सर्वव्यापक, परिपूर्ण ब्रह्म, सर्वाधिष्ठान है। तुम, हम, और जगत् सब एक अद्वैत ब्रह्म ही है। "एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति"। अब विचार करिये! ऐसे धोखेका कथन, मिथ्या मानन्दीसे, जगत्के बीज, वासना, जड़ाध्यास, आवागमन कैसे नाश होगा? कभी न होगा। ब्रह्म बना, तो जगत्के मूल कारण ही हुआ, सब सूक्ष्मबीज वासना उनके हृदयमें रहीं। फिर वह समय पायके उगेगा ही। ऐसे ब्रह्मज्ञान तो महा भ्रम मिथ्या धोखा है। उसे माननेवाले बारम्बार चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़े और पड़ते रहेंगे। अतः परख करके भ्रमको हटाना चाहिये, जड़-चेतनके भेदको अच्छी तरहसे जानना चाहिये ॥ ३०७ ॥

साखीः—द्रष्टा साक्षी वर्णन करैं । लाज न मारत गाल ॥
जगको साक्षी बनत हैं । सो कहि भयो न त्रिकाल ॥३०८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासुओ! ब्रह्मज्ञानी लोग

ब्रह्म या आत्माको सर्व द्रष्टा, सर्वसाक्षी, सर्वज्ञ, त्रिकालज्ञ, चैतन्य, कह करके वर्णन किये और कर रहे हैं। ऐसे-ऐसे वाणी, बकवाद करके गाल मारते हैं, यानी कहनेमें बड़े पण्डित, चतुर वक्ता बने हैं। परन्तु, ऐसे गाल मारनेमें, बकने-झकनेमें उन्हें जरा-सी भी लाज, शरम, सङ्कोच नहीं होता है, बड़े बेहया, निर्लज्ज बने हैं। क्योंकि— जिस जगत्के वे द्रष्टा या साक्षी बनते हैं, सो तो उनके मत, सिद्धान्तमें भूत, भविष्य, वर्तमान ये त्रिकालमें कभी सत्य भया ही नहीं है; जगत् त्रिकालमें असत्य, मिथ्या प्रतीतिमात्र है, ऐसा कहते हैं ? तो एकमें साक्षी कैसे बनेगा? जब द्वैत सत्य होवे, तब तो साक्षी हो सकता है। एक आत्माके सिवाय दूसरा कुछ मानते ही नहीं हैं, तो साक्षी किसके बनते हैं ? इसलिये इनके असम्भव कथन दोषसे पूर्ण है। जड़-चैतन्य, नानात्त्व जगत् होनेपर तहाँ जड़के साक्षी पृथक् जीव द्रष्टा हो सकते हैं। जगत् त्रिकालमें नहीं है, नहीं हुआ है वा नहीं होगा, एक अद्वैत ब्रह्म सत्य है; ऐसा कहते हैं, तो कहो भला! जगत्का साक्षी कौन, कैसे बनता है ? ऐसे विपरीत बात, बन ही नहीं सकती है। बिना पारख वे मिथ्या धोखामें पड़े हैं ॥ ३०८ ॥

साखीः—सकल आचार्य कहत हैं। जग मिथ्या दरशाय ॥
मिथ्या माँहि दरशको। व्यापक कहैं बनाय ॥३०९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो! वेद-वेदान्तके आचार्य, त्रिदेव, सनकादि, वशिष्ठ, व्यासादि, याज्ञवल्क्य, शङ्कराचार्य इत्यादि सब कोईने युक्ति-प्रयुक्तिसे जगत्को मिथ्या दरशाय करके एक अद्वैत ब्रह्मको सत्य कहे और कहते हैं। 'रज्जुसर्पवत्, शश शृङ्ग, खपुष्पवत्' जगत् मिथ्या है, प्रतीतिमात्र भ्रम है, इत्यादि प्रकारसे जोर लगाके जगत् पदार्थको मिथ्या दिखाके मिटाते हैं, द्वैतको खण्डन करते हैं। फिर कल्पित वाणी बनाय-बनायके कहते हैं कि— मिथ्या जगत्में ही द्रष्टा, दृश्य, दर्शन, होता है, और सर्वत्र

परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म एक है। अब देखिये! ये कौन विचारकी बात है? पहिले तो एक सत्य और एक मिथ्या कहनेसे द्वैत ठहर ही गया। जड़-चेतन दो हुए बिना देखना-दिखाना, जानना-जनाना, कहना-सुनना कुछ होता ही नहीं है। दृश्य हुए बिना द्रष्टा कैसे होगा? व्याप्य पदार्थ न हो, तो व्यापक किसमें होगा? इस तरहसे विवेक करिये, तो वेदान्तियोंका कथन— जगत् मिथ्या दरशाना, फिर उसी मिथ्यामें ब्रह्मका दर्शन कराना, वाणी बनायके व्यापक कहना, यह सब पागलोंकी बकवाद मात्र है। उसमें कुछ सार विचार नहीं है। बिना पारख, भ्रम-भूलमें ही पड़े हैं ॥ ३०९ ॥

साखीः— कबीर द्रष्टाके निरूपते। द्वै द्रष्टा तब होय ॥
कहहिं कबीर कहु पण्डिता! द्रष्टा एक कि दोय? ॥३१०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! जब वेदान्ती लोग आत्मा या ब्रह्मको द्रष्टा बतलाते हैं। तब द्रष्टाका निरूपण, कथन, प्रतिपादन करनेसे तहाँ एक, तो निरूपण करनेवाला द्रष्टा चैतन्य नरजीव हुआ, जिसने कि— ब्रह्म, ईश्वरादिको देखा या माना, और दूसरा, वही प्रतिपादन किया हुआ ब्रह्म, आत्मा आदि द्रष्टा माना गया। ऐसे दो द्रष्टा साबित हुए। फिर एक दृश्य हुआ, तो दूसरा द्रष्टा हुआ, जो कुछ भी निरूपण करोगे, तहाँ, एकके बजाय दो-दो ही ठहरता जायगा। अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं किः— हे पण्डित! बुद्धिमान्! अब निर्णय करके कहो कि— संसारमें द्रष्टा एक है कि दो हैं? तुम कैसा मानते हो? एक कहोगे, तो निरूपण करना मिथ्या हुआ। दो कहोगे, तो अद्वैत मतका खण्डन हो गया। इस कारण, इन ब्रह्मवादियोंका कथन सब व्यर्थ असत्य है। द्रष्टा, दृश्य, दर्शन यह तीनों भिन्न-भिन्न हैं, वह कभी एक हो नहीं सकता है। ब्रह्म तो भ्रम है। अतः चैतन्य जीव ही सत्य हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥३१०॥

साखीः— कबीर साक्षीके निरूपते । द्वै चेतन तब होय ॥
कहहिं कबीर कहु पण्डिता ! चेतन एक कि दोय ? ॥३११॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! वैसे ही एक साक्षीके, निरूपण = वर्णन, कथन, प्रतिपादन, ठहराव करनेसे तब भी चैतन्य दो ही हो जाते हैं । एक, तो यह निरूपण करनेवाला, चैतन्य जीव साक्षी कि— जिसने वाणी, विषय आदि सबको जाना, पहिचाना, समझा, बूझा, और दूसरा, वह प्रतिपादित ब्रह्म, आत्मा, ईश्वरादि जगत्के साक्षी ठहराया हुआ बना । इस तरह एक जीव चैतन्य, दूसरा ब्रह्म चैतन्य, दो ही साबित हुए । अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— हे पण्डित ! अब सोच-विचारके कहो, संसारमें चैतन्य एक है कि, दो है ? तुम कैसे मानते हो ? एक ब्रह्म चैतन्य कहोगे, तो सो वह तुम्हारे मनके भ्रममात्र होनेसे असत्य है । और तुम कहनेवाले उससे न्यारे साबित हुए ही । यहाँ तुम्हारा पूर्व प्रतिपादन मिथ्या हुआ । यदि दो चेतन होना कबूल करोगे, तो अद्वैत मत नष्ट हो जायगा । नानात्त्वसहित द्वैत हो सिद्ध होगा । इसलिये यहाँ तो अनन्त चैतन्य जीव प्रत्यक्ष ही सत्य हैं । अतः एक ब्रह्म निरूपण किया हुआ सर्वथा मिथ्या है, ऐसा जानो ॥ ३११ ॥

साखीः— कबीर व्यापकके निरूपते । द्वै व्यापक तब होय ॥
कहहिं कबीर कहु पण्डिता ! व्यापक एक कि दोय ? ॥३१२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! तैसे ही एक व्यापकके निरूपण करनेसे तब भी दो व्यापक हो जाते हैं । एक, तो निरूपण करनेवाला जो स्वयं कल्पनासे व्यापक होके जानता भया । दूसरा, जिसे उसने माना, सो ब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वरादि व्यापक ठहराया । तब इस तरीकेसे व्यापक भी दो-दो हो गये । अथवा एक व्याप, दूसरा व्यापक हुआ । बिना व्याप्यरूप एकदेशीय

पदार्थके हुए व्यापकरूप सर्वदेशी हो ही नहीं सकता है, और एक, आकाश व्यापक कहा है, दूसरा, ईश्वर व्यापक, तीसरा, ब्रह्म व्यापक माने हैं। विचार करिये! एक जगहमें तीन तरहके व्यापक भी कैसे समायेंगे। एक शून्य है, दूसरा वैसे ही शून्य, वहाँ, कहाँसे, कैसे आयेगा? फिर रहेगा कैसे? इसी तरहसे आकाशको व्यापक मानके उसमें और ब्रह्म, ईश्वरादिको व्यापक कहना भी महा भूल है। एक व्यापक कहा कि— तो वहीं दो व्यापक हो जाते हैं। अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— हे पण्डित! बुद्धिमान् लोगो! कहो तो भला! व्यापक एक है कि, दो है? तुम कैसा मानते हो? एक कहोगे, तो तुम्हारा निरूपण करना सरासर झूठा हुआ। यदि दो व्यापक मानोगे, तो वह असम्भव बात होगी, फिर अद्वैत मत भी खण्डन हो जायगा। वास्तवमें तुम्हारा व्यापक माना हुआ ही असत्य भूल है। संसारमें कोई पदार्थ कहींपर व्यापक है ही नहीं है। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा इसका यथार्थ भेद जानना चाहिये॥ ३१२॥

साखीः— छौ आचार्य छौ शास्त्रके। कीन्हों शास्त्र प्रचार॥
कौन शास्त्र वे पढ़िके? कीन्हों शास्त्र विचार॥३१३॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! पहिले भारतवर्षमें हिन्दू-समाजके पूर्वाचार्य षट्शास्त्र प्रगट कर्ता, षट्ऋषि, मुनि मुख्य हुए हैं। उनमें—१. मीमांसा शास्त्रके आचार्य जैमिनी हुए। उन्होंने कर्मवादका प्रचार किया है। २. वैशेषिक शास्त्रके आचार्य कणाद भये। काल वा समयवाद प्रधान उन्होंने किया है। ३. न्यायशास्त्रके आचार्य गौतम भये। एक ईश्वर कर्तावादका उन्होंने प्रचार किया है। ४. पातञ्जल-योगशास्त्रके आचार्य पातञ्जली हुए। ज्योतिस्वरूप ईश्वर दर्शन करानेवाला योगवाद उन्होंने प्रचार किया है। ५. सांख्यशास्त्रके आचार्य कपिल मुनि हुए। तो उन्होंने प्रकृति, पुरुष विवेकवादसे कल्याण होनेका प्रचार किया है। और ६. वेदान्त

शास्त्रके आचार्य व्यास हुए । उन्होंने एक अद्वैत ब्रह्मवादको सत्य ठहराके प्रचार किया है। इस प्रकार षट्शास्त्रोंको बनानेवाले षट्दर्शन षट्वादको माननेवाले छैः आचार्य प्रसिद्ध भये हैं। उन्होंने उपरोक्त षट्शास्त्र अपने-अपने बुद्धि, विचार, कल्पनासे बनायकर निज-निज सिद्धान्तको जनतामें जोर-शोरसे प्रचार किये हैं। अपने-अपने मतको युक्ति-प्रयुक्तिसे सत्य बताकर तर्क, वितर्कसे अन्य मतवादको मिथ्या बताये हैं। अब बताइये ! प्रथम सो वह षट्शास्त्र तो रहा हो नहीं, फिर उन्होंने और कौनसा शास्त्र, पढ़, सुन, गुन करके विचार किया ? और उसीमें मिलता-जुलता हुआ अपना शास्त्र बनाये ? जब षट्शास्त्र ही नहीं था, तो क्या पढ़के विचार करते ? इसीसे मालूम हुआ कि— उन सबोंने जैसा-जैसा मन-मानन्दी कल्पना दृढ़ हुआ, वैसा-वैसा ही वाणी लिखके शास्त्र बना दिये हैं। अतः वह पारखियोंको प्रमाणिक नहीं हो सकती है। खाली भ्रम कल्पनाका ही पसारा किये हैं। मुख्य सार उसमें कुछ नहीं है, अतः सो त्याज्य है ॥ ३१३ ॥

साखीः— कबीर व्यास वेदान्तमें । मिथ्यावादी होय ॥
है तासो दीसै नहीं । ताहि निरूपै सोय ॥३१४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे नरजीवो ! वेदव्यास जो ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मनिष्ठ, विद्वान् माने गये हैं। वेदान्त सूत्रके कर्ता वे वेदान्तके आचार्य ही कहलाते हैं। उन्होंने वेदान्त ग्रन्थ, ब्रह्मसूत्र, उत्तरमीमांसा ग्रन्थमें बहुत प्रकारसे एक अद्वैत ब्रह्म सत्य, चराचर जगत् मृगजलवत् भ्रान्तिमात्र मिथ्या यही प्रतिपादन करके अपने बुद्धिमत्ता दरशाय, सम्पूर्ण बल अद्वैत सिद्ध करनेमें ही लगाया है। परन्तु, सत्यन्याय निर्णयसे देखिये ! तो उनके अद्वैत कथन बिलकुल झूठ होनेसे वे ब्रह्मवादी सरासर मिथ्यावादी हुए हैं। क्योंकि, जब उन्हें द्वैत भासता ही नहीं था। तो ग्रन्थ लिखने, प्रचार करने, सिद्धान्त स्थापित करने, शास्त्रार्थ करने, इत्यादि

कार्यमें विशेष परिश्रम, क्यों उठाये ? एक ही है, तो निरूपण किसके लिये क्या चीजका किये ? पक्षपातके मारे मिथ्यावादी बने, तो कुछ जरा भी विवेक, विचार रहा ही नहीं। और जो जीव चैतन्य इस देहमें प्रत्यक्ष सत्य है, उसको तो विवेक करके देखते ही नहीं। जड़, चेतन न्यारा-न्यारा है, विचार दृष्टिसे उसे भी नहीं देखते हैं। जो ब्रह्म कहते हैं, सो तो किसीको कहीं पर भी कुछ दिखता ही नहीं। जो वस्तु कुछ नहीं है, उसे ही ब्रह्म, परमात्मा, निराकार, निर्गुण, व्यापक, कहके निरूपण करते हैं, उसे ही श्रेष्ठ माने हैं। इससे वे मिथ्यावादी भ्रमिक हो जहँड़ा गये हैं ॥ ३१४ ॥

साखीः— मुखिया गौनी लक्षणा । वाणी वरणौ तीन ॥
कहहिं कबीर यह बैखरी । चीन्है सो परवीन ॥३१५॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो ! गुरुवा लोगोंने शास्त्र प्रमाणसे तीन प्रकारके शब्द कहे हैंः— तहाँ, मुखिया = मुख्य प्रधान ब्रह्म सिद्धान्तकी वाणीको यथार्थ वाणी कहे हैं। गौनी = गौण, मध्यम बीचकी उपमा देके कथन किया हुआ वाणीको स्थूल व्यवहारिक कहते हैं। और तीसरा, लक्षणा = भाग-त्याग-लक्षणा लगाके जीवकी अल्पज्ञता एकदेशीय भावको छोड़ देना और ईश्वरकी सर्वज्ञता सर्वदेशीय भावको भी छोड़ देना, इन दोनों उपाधि भागको त्यागकर दोनोंकी चेतनतामें लक्ष्य लगाना, तब तो सो वही एक ब्रह्म ही है, दूसरा, द्वैत कुछ नहीं है। इस तरह अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्त ठहराते हैं। ऐसे तीन प्रकारके वाणी जाल वर्णन किये हैं। वही, मुखिया = ब्रह्ममुख है। लक्षणा = मायामुख है। गौनी = जीवमुख है। सोई तीन मुखकी वाणी सारे संसारमें वर्णन किये, और कर रहे हैं। वह सब जीवोंको भ्रमा-भुलाकर बाँधनेवाला कठिन जाल ही है। अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको, पारखी सन्त कहते हैं कि— वह सब, वैखरी वाणी = मुखसे निकले हुए बोल-चालके शब्दजाल ही लिखके रखे हैं। परा, पश्यन्ती, मध्यमा ये, तीनों वाचाके भाव

वैखरी वाचासे ही निकलती है। सो सब तीनों वाणी वैखरीका ही विकार हैं। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा गुरुमुख वाणी सारशब्दसे सार, असार, जड़, चेतन, बन्ध, मुक्ति आदिके भेदको यथार्थ रीतिसे जो चीन्हते, परखते हैं, सोई प्रवीण पारखी, चतुर, बुद्धिमान्, होकर अपना हित-कल्याण करते हैं। वाणी जालसे निकलके, हंसपदमें स्थिति कायम करके मुक्त हो जाते हैं ॥ ३१५ ॥

साखीः—— जबते ब्राह्मण जन्मिया । तबते परा धन लोप ॥
दया अक्षर कबहूँ नहीं । इन्हते कौन बिछोप? ॥३१६॥

टीकाः—— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे मनुष्यो! जबसे यह जीव ब्राह्मणके घरमें जाके जन्म लिया है, तभीसे उस जीवका और दूसरे यजमानोंकी भी, धन=जीवन धन, चेतन स्वरूपकी बोध सत्य, विचारादि हंस गुण-लक्षणादि उत्तम धन एकदम लुप्त, सुप्त, गायब हो गया, दूसरेके हाथ पड़ गया। सबसे श्रेष्ठ चैतन्य जीव है, जीवके ऊपर कोई शिव मालिक नहीं है, यह समझ नहीं पड़ा। इसीसे अपना मूल धन लोप हो गया, दयाका अक्षरशः पालन उनसे कभी नहीं होता है। दया अक्षरको तो वे कुछ समझते ही नहीं हैं। नाना यज्ञ-याग करायके वहाँ धर्मके नामसे जीव-हिंसा ही करते-कराते हैं, तहाँ सद्गुरुने बीजक में, कहे हैंः——

"धर्म करे जहाँ जीव बधतु हैं। अकर्म करै मोरे भाई ! ॥ ५ ॥
जो तोहराको ब्राह्मण कहिये । तो काको कहिये कसाई ॥" बी० शब्द ४६॥
"कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! कलिमा ब्राह्मण खोटे ॥" बी० शब्द ११॥
"बड़ सो पापी आहि गुमानी । पाखण्डरूप छलेउ नर जानी ॥१॥
बावनरूप छलेउ बलिराजा । ब्राह्मण कीन्ह कौनको काजा? ॥२॥
ब्राह्मण ही सब कीन्ही चोरी । ब्राह्मण ही को लागल खोरी ॥३॥
ब्राह्मण कीन्हों वेद-पुराणा । कैसेहुकै मोहिं मानुष जाना ॥४॥"
॥ बीजक, रमैनी १४ ॥

इसलिये दया अक्षरको तो वे कभी पालन करते ही नहीं हैं। फिर कहिये इन लोगोंसे और बढ़ करके, बिछोप = नीच, निर्दयीपन पकड़नेवाला क्रूर दुष्ट कौन होगा? अतः ब्राह्मण लोग ज्यादे ही निर्दयी, घातकी, स्वार्थी, प्रपञ्ची होते हैं। अथवाः—

श्लोकः— "जन्मनाज्जायते शूद्रः संस्कारोद्विज उच्यते ॥
वेद्भ्यासी भये विप्र ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः ॥"

इस प्रमाणसे जबसे ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणकी उत्पत्ति तथा ब्रह्मज्ञानका प्रकाश हुआ, तबसे धनरूप चेतन जीवके ऊपर आवरण भ्रम, भूल, धोखाका पर्दा पड़ा, विवेक-विचारका लोप हो गया। सबको एक ब्रह्म मानके विधि-निषेधको छोड़ दिये। अक्षररूप अविनाशी जीवपर उन्होंने बड़ी निर्दया किये। अब उनसे निज-पर दया धर्मका पालन कभी भी नहीं होता है। कहिये! फिर इन्होंसे कौन, किसका क्या हित, भलाई या कल्याण होगा? कुछ नहीं, इनसे ज्यादे निर्दयी, निर्बुद्धि गाफिल तो कोई दिखते भी नहीं हैं। अतः इन अविचारी ब्राह्मण समाज और ब्रह्मज्ञानियोंके कुसङ्गसे दूर रहनेमें ही भलाई है ॥३१६॥

साखीः— कबीर ज्ञान कृष्णको गीता। पढा चाहैं लोग ॥
कृष्ण कौन गीता पढ़िके। कीन्ह गीता संयोग ॥३१७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! संसारमें सब हिन्दू सम्प्रदायके मनुष्य लोग ब्रह्मज्ञान, विज्ञान बोध प्राप्तिके लिये— कृष्णने कथन करके महाभारत युद्धके शुरूमें जो बात अर्जुनको सुनाया था, सो श्रीमद्भगवत् गीता नामके पुस्तकको पढ़-पढ़, पढ़ा-पढ़ाके ब्रह्मज्ञानी हो, सब लोग अपना कल्याण करना चाहते हैं। उसके लिये प्रयत्न कर रहे हैं। गृहस्थ, भक्त, साधु-सन्त आदि कृष्णके गीता-को माननेवाले बहुत लोग हैं। वे रात-दिन गीता पढ़-पढ़ाके रटकर कण्ठाग्र कर लेते हैं। उससे आत्मज्ञान प्राप्त करके मुक्त होना चाहते हैं। तहाँ उन लोगोंसे प्रश्न होता है कि— अरे! भूले हुये मनुष्यो! तुम लोग गीताके भरोसे क्या धोखेमें पड़ रहे हो? यह बात बताओ!

कि, कृष्णने कौन-सा गीता पढ़के फिर इस गीताको शब्द संयोग करके कहे थे, या बनाये थे ? तब पहिले कोई गीता तो थी नहीं, गीता पढ़े बिना ज्ञान होता नहीं, ऐसा तुम लोग समझते हो, तो कृष्णने पहिले कोई भी गीता नामक पुस्तक पढ़ा नहीं, तब उसे ज्ञान हुआ ही नहीं होगा। अज्ञान या विज्ञानके भ्रममें पड़के जो वाणी स्वार्थ-साधनके लिये, युद्ध करायके महान जीव-हत्या करानेके लिये अपने मतलबके वास्ते युद्ध स्थलमें जो बात अर्जुनको कृष्णने कही है, सो उसीको तुम लोग बड़ा गीता मान-मानके भूल रहे हो। कृष्णार्जुन सम्वादमें वह गीताकी पद रचना, तो व्यास कृत कहलाता है। फिर कहो ! कृष्णने और कौन गीता पढ़के इस गीताकी संयोग एकत्र किये ? आखिरमें वह कृष्णके मनकी कल्पना वाणी-जाल ही तो ठहरी। बिना पारख वह गीता कहने, सुनने, लिखनेवाले क्रमशः कृष्ण, अर्जुन, व्यास, आदिके ही कल्याण, मुक्ति उससे नहीं भयी, जड़ाध्यासी ब्रह्म हो, जगत्‌रूप हो रहे। फिर तुम लोगोंकी मुक्ति उससे कैसे, कहाँसे होगी ? कदापि नहीं होगी। अतः उस भ्रम, धोखाको त्यागके पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग करके जीवन सुधार करो ॥ ३१७ ॥

साखीः— जगत सगाई त्यों लही । चीन्हत नाहीं कोय ॥
ज्यों तेलीके बैल सङ्ग । कुम्भइनी सति होय ॥३१८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! यथार्थ भेद सत्य-सारको परख करके तो ये मतवादी लोग कोई भी चीन्हते, पहिंचानते नहीं हैं। जगत्‌में धूर्तोंके कहनेसे झूठ-मूठकी सगाई-प्रीति, तैसे ही पकड़े हैं कि— जैसे एक तेलीका मोटा-ताजा बैल था, एक दिन वह बैल अचानकमें ही मर गया। उस वक्त दूसरे गाँवकी कुम्हारकी स्त्री उस गाँवमें वर्तन वेचनेको आयी थी। तब दो-चार धूर्तोंने उसके मसखरी, मजाक उड़ानेके लिये झूठ ही उससे आके कह दिया कि— काकी ! देखो ! यह तेलीका बैल तुम्हारे पूर्वजन्मका

खसम था, मरते समयमें इसने तुम्हारा बहुत याद किया था, संयोगसे तुम आ गयी हो, अब जैसा ठीक जान पड़े, वैसा करो, इत्यादि वचन उन ५ । ७ धूर्तोंकी सुन करके उस भोली-भाली कुम्हारिनने भी अन्धविश्वास करके तेलीके मृतक बैलको अपने पूर्व जन्मका पति मान लिया, और विलाप करके चिता बनाय, उसी बैलके साथ सती हो गयी, चिताके अग्निमें जल मरी, बिना विचार प्राण गँमाई ॥ और दूसरी घटनामें एक तेलीका बछड़ा खो गया, तो उसी कुम्हारिनके बहिनने अपने घर लेजाके बाँध ली । तेली उसे ढूँढ़ता हुआ आया, उसके घरमें अपना बछड़ा बँधा देखके तकरार करके खोलने लगा, कुम्हारिन बोली— अरे भले मनुष्य ! जरा मेरी बात सुन ! यह बछड़ा मेरा पूर्वजन्मका पुत्र या खसम था, सो मेरे पास आप ही आ गया है, सो इसे मैं तुम्हें ले जाने नहीं दूँगी । देख ! अमुक तेलीके बैल मरा, तो मेरी बहिन सती हो गयी थी कि नहीं ? वह सत्य था, तो यह भी सत्य है । तेली बोला— यह कैसे हो सकता है ? । कुम्हारिनने साक्षी-पुरावाके लिये गाँवके ८ । १० लोगोंको पट्टी पढ़ा लाई, उन सबोंने आके साक्षी-पुरावा दे दिया कि, यह बछड़ा इसीका पूर्वजन्मका सम्बन्धी था, इसे तुम नहीं ले जा सकते हो, जाओ ! इत्यादि कहा, डाँटा, तब वह विचारा तेली धूर्तोंके पाले पड़के अपना-सा मुँह लेके खाली हाथ लौट पड़ा ॥ इसी प्रकार धूर्त गुरुवा लोगोंके दाव, पेंच, वाणी-जालमें पड़के जगत्‌में अबोध मनुष्योंने ब्रह्म, परमात्मा, खुदा, दश अवतार आदिको अपने पूर्वजन्मके मालिक, पति, अंशी, अधिष्ठान, कारण मान-मानके तैसे ही मिथ्या सगाई, प्रेमका सम्बन्ध स्थापित करके, नाना साधनोंका कष्ट सहनकर पञ्चाग्नि आदिमें जलकर जड़ाध्यासी होके मर रहे हैं, बिना पारख उस भ्रम-धोखाको कोई भी चीन्हते नहीं हैं । तेली = गुरुवा लोगोंके, बैल = वाणीके सङ्गमें, कुम्भइनी = भक्त लोग सती हुए या हो रहे हैं, बिना विवेक ॥ ३१८ ॥

साखीः— छिन माहीं जग सत्य करै । छिनमें मिथ्या भास ॥
दुइ मँड़वाके श्वान ज्यों । झाँकत परा उपास ॥३१९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! ये भ्रमिक वेदान्ती लोग क्षणभरमें तो जगत्में सब पदार्थ सत्य प्रतीत करके गुरु बनके उपदेश देते हैं, ज्ञान साधना, करते-कराते हैं, पढ़ते-पढ़ाते हैं। सत्य ही समझके सब कार्य करते फिरते हैं, और कभी क्षणभरमें ही "एकोब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि" आदि वाणीका नशा भ्रम चढ़ायके जगत्को मिथ्या भास प्रतीतिमात्र बतलाते हैं, द्वैतको भ्रम भासमात्र समझते हैं। कभी सत्यका भास, कभी असत्यका भास, जगत्-विषे उन्हें होता रहता है। कोई एक निश्चय नहीं कर पाते हैं। "दुविधामें दोनों गया। माया मिली न राम"— ऐसी हाल उनकी हो गयी। जैसे एक समय दो जगह विवाह आदि उत्सवका मँड़वा लगा था। तो वहाँ भोज, भण्डारा होते हुए एक कुत्ताने देखा। वह चञ्चल पशु एक जगह स्थिर होके रहता नहीं था, दोनों जगहोंका भोजन खाने, पत्ते चाटनेकी आशा, तृष्णासे क्षण-क्षणमें इधर-उधर झाँकता फिरता था, तबतक दोनों जगहकी पङ्गत उठी, पत्तल फेंके गये, दूसरे कुत्ते आके पत्तल चाट गये। ये झाँकनेवाला कुत्ता उपासमें ही पड़ा, भूखे ही रह गया। "धोबीका कुत्ता न घरका न घाटका" अगर वह कुत्ता कहीं एक जगह भी बैठा रहता, तो कुछ-न-कुछ खानेको पाता ही। परन्तु, उसे धैर्य कहाँसे आवे? बड़ी डबल आशामें पड़ा था, दोनों जगहोंका माल उड़ाना चाहता था, इसीसे घड़ीमें दौड़के उधर मीलों दूरको चला जाता था, फिर क्षणभरमें ही लौटके इधर आ जाता था। इसी दो तरफकी दौड़में उसे खानेको कुछ नहीं मिला, तो उपवासमें ही भूँखे रहना पड़ा। इसी तरहसे ब्रह्मज्ञानी लोगोंकी भी दुर्दशा होती है। वे क्षणमें ही कभी तो जगत्को सत्य कथन करते हैं, और कभी मिथ्या भास बताके निषेध करते हैं, और कभी जगत्में देहके मँड़वामें विषयानन्द चाहते हैं, और

कभी इससे भी बड़ा आनन्द प्राप्तिकी आशासे वाणीकी मँड़वामें ब्रह्मानन्द, परमानन्दकी, तृष्णाके अनुमान, कल्पनामें दौड़ पड़ते हैं। तहाँ पिण्ड, ब्रह्माण्ड, ब्रह्म, जगत्, और खानी, वाणी, सूक्ष्म, स्थूल, प्रवृत्ति, निवृत्ति इत्यादि दोतर्फी द्वैत, अद्वैतकी बड़ी मँड़वामें झाँकते-झाँकते थकित हुए, हाथमें मुक्तिरूपी भोजन कुछ नहीं आया। नाहक आयु बिताके, उपास=जड़ाध्यासी हो चौरासी योनियोंके दुःखमें ही पड़े रहे, बिना पारख। अतः ऐसे भ्रमिक मिथ्या मानन्दी-को त्यागकर पारख विचार करना चाहिये ॥ ३१९ ॥

साखीः— काल-काल सब कोइ कहै । काल न चीन्है कोय ॥
कालरूप है कल्पना । करते उपजा सोय ॥३२०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! संसारमें सब कोई काल-काल पुकारते, चिल्लाते हुए कालको बड़ा मानते हैं, और कणादने तो वैशेषिक शास्त्र बनाके कालरूप समयको ही ब्रह्म, परमात्मा ठहराये हैं। बेपारखी लोग कोई भी असली कालको चीन्हते, पहिचानते नहीं। देखिये! काल, अकाल, महाकाल, सुकाल, दुकाल, विकराल, भूतकाल, वर्तमानकाल, भविष्यत्काल, प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सायंकाल, शुभकाल, अशुभकाल, जन्मकाल, जीवन-काल, मृत्यु-अन्तकाल, इत्यादि अनेकों प्रसङ्ग-समयको ही सब कोई मनुष्य काल है, महाकालके आधीनमें सब कार्य होता है। कालको कोई जीत नहीं सकता है, एक परमात्मा ही कालसे परे हैं, वे जो चाहें, सो कर सकते हैं, उन्हींका ध्यान, स्मरण किया करो, इत्यादि अविचारकी बात तो सब कोई कहा करते हैं। परन्तु, उससे भी जबरदस्त एक भयङ्करकाल है, जो सब जीवोंका सत्यानाश करता है, उसे बिना पारख कोई भी चीन्हते नहीं हैं। इसीसे धोखेमें पड़के मारे जा रहे हैं। सुनो! वह काल कौन है? मैं बता देता हूँ! कल्पना, मानन्दी, मिथ्या पक्ष जो है, सोई कालका असली काला स्वरूप है, और दूसरा कोई कालका स्वरूप नहीं है। जड़ प्रकृतिकी

बाह्य-ब्रह्माण्डका समय, और कर्मानुसार पिण्ड-देहादिका समय तो होते रहते हैं। उससे जीवोंकी उतनी विशेष कोई हानि नहीं होती है। परन्तु, कल्पना, भ्रम, भूल, अध्याससे तो बड़ी भारी हानि होती है, अनेकों जन्मोंतक दुःख भोगते रहना पड़ता है; और, करते = चैतन्य जीव कर्ताके कर्तव्यसे तन, मन, सम्बन्धका हाथसे ही सोई कल्पना, जड़ाध्यास भूलसे उत्पन्न होता है, हुआ है, और हो रहा है। उसीकी फेरामें पड़के सब जीव आवागमन चौरासी योनियोंमें नाना दुःख भोग रहे हैं। अतः अभी उसे गुरु निर्णयको समझकर पारख बोधसे मिटाना चाहिये ॥ ३२० ॥

साखीः—करते उपजा काल सोई। चढ़ा सबनके शीश ॥
कहहिं कबीर कोइ ना लखै। मानै करि जगदीश ॥३२१॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—और हे जिज्ञासुओ!, करते = कर्ता, चैतन्य नरजीवका कर्तव्यरूपी हाथ वा, साथसे जो-जो कल्पना, अनुमान, भास, अध्यास, भ्रम, भूल, वासनादि उत्पन्न हुआ, सोई महाकाल बड़ाघात, हानि करनेवाला है। सो ऐसा प्रचण्ड निकला कि—नरजीवोंसे कल्पना उत्पन्न होते ही उछल-कूदके एक झपाटेमें ही सब मनुष्योंके शिरपर चढ़ बैठा, और सबोंकी चोटी या शिर पकड़कर जहाँ-तहाँ फिराने, भटकाने लगा। अथवा सबके अन्तःकरणमें वह कल्पना आरूढ़ होके चढ़ा, तो वही श्रेष्ठ बन बैठा। सबको नीच बनाके नचाने लगा। अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको जाननेवाले पारखी सन्त पारख-दृष्टिसे ऐसे विपरीत देख करके कहते हैं कि—हे सन्तो! ऐसे अनर्थको भी विवेक-दृष्टि न होनेसे कोई लखते नहीं हैं; जानते-पहिचानते नहीं हैं। अन्धे बने हैं, इससे उसके स्वरूपको कोई देखते ही नहीं हैं, बल्कि उल्टे ही कल्पना करके मनके मानन्दी, भ्रम कल्पनाको ही जगत्कर्ता, सुख-दुःखका दाता, सर्वशक्तिमान् कोई एक जगदीश्वर, परब्रह्म, परमात्मा, खुदा, अल्लाह, ऐसा समझ करके माने हैं, और उसे ही मानते जाते हैं। भ्रमिक-

लोग कर्ता— ईश्वरवादी बने हैं। अपने चैतन्य-स्वरूपको तो कुछ पहिचानते नहीं हैं। कोई एक जगदीश्वर मनकी कल्पनाको अपना मालिक मान करके उसीका भरोसाकर, आशा लगाके महाधोखामें पड़े हैं। अतएव मुमुक्षुओंको चाहिये कि— पारखी सत्यन्यायी सन्तोंके सत्सङ्ग-विचारमें लगकर सत्यासत्यको यथार्थ पहिचान करें। भ्रम-भूलको मिटा करके निज चैतन्य-स्वरूपमें स्थिति कर सब बन्धनोंसे रहित होना चाहिये ॥ ३२१ ॥

साखीः— जेहिते सब जग ऊपजा । सोई सबनकी आदि ॥
ताकी पारख ना करी । गये कबीरा बादि ॥३२२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासुओ! वास्तवमें यह चराचर जगत् सम्पूर्ण तो उत्पत्ति-प्रलयसे रहित अनादि स्वतःसिद्ध है। इसके लिये उत्पत्तिकर्ता माननेकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं है। यदि माना भी तो वह असम्भव होनेसे व्यर्थ मिथ्या होगा। यहाँ, जग = जन्म, मरण होनेवाला शरीरसे तात्पर्य है। जिस चैतन्य जीवसे सारे संसारमें अध्यासयुक्त चारों खानियोंमें अनेकों शरीर उत्पन्न हुआ है, और नरदेह वा मनुष्य-खानीमेंसे जीव चतुर बनके वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि नाना विद्या, नाना कला-कौशल आदिको रचना करके प्रगट किये हैं। ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदिकी मानन्दी कल्पना करके प्रगट किये हैं। इस प्रकार चारों खानी, चारों वाणी जगत्में जिससे उत्पन्न हुआ है, और हो रहा है, सोई चैतन्य जीव उन सबके प्रथम सत्य होनेसे आदि पुरुष सनातन नित्य अविनाशी अखण्ड हैं। ब्रह्म आदिके सब सिद्धान्तोंको मनुष्य जीवोंने ही भ्रमसे प्रगट किया है, अतः जीव ही सबोंकी आदि है। परन्तु, उसकी यथार्थ निर्णयसे पारख या परीक्षा न करके मनमाने वैसे धोखेमें पड़कर द्वैत, अद्वैत, विसिष्टाद्वैत, खुदा, आदि मिथ्या कल्पनाको ही सत्य मान-मनाकर, कबीरा = मतवादी भ्रमिक नरजीव बिना पारख, बकवादी बन, जड़ाध्यासी हो गये, उनके

मनुष्य जन्म व्यर्थ ही चला गया। अभ्यासवश चौरासी योनियोंके चक्रमें चले गये और जा रहे हैं। अतः जड़, चैतन्य, सत्य, मिथ्या, सार, असार इत्यादिका विवेकसे यथार्थ पारख करके स्वरूपस्थिति करना चाहिये ॥ ३२२ ॥

साखीः— ब्रह्मैते जग ऊपजा । कहत सयाने लोग ॥
ताहि ब्रह्मको त्याग बिनु । जगत न त्यागन योग ॥३२३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! पारखहीन सयाने कहलानेवाले भ्रमिक गुरुवा लोग सब तो ऐसा कहते हैं कि— यह सारा चराचर जगत् एक परब्रह्म, परमात्माके इच्छा-मात्रसे ही उत्पन्न भया है। प्रथम कुछ नहीं था, एक ब्रह्म ही निराकार-निर्गुण था। उसने स्वाभाविक सहज लीलासे इच्छा प्रगट किया— "एकोहं बहुस्याम्"— मैं एकसे अनेक जगत्‌रूपमें प्रगट हो जाऊँ ! बस, सारा जगत् झट-पट उत्पन्न हो गया। तहाँ ब्रह्मसे पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, हङ्कार, त्रिगुण, सकल संसार, क्रमशः उत्पन्न होके फैल गये हैं, और जब कभी ब्रह्म प्रलय करनेकी इच्छा करेगा, तो सब सृष्टिकी महाप्रलय हो जायगी। इस तरह जगत्‌की उत्पत्ति— प्रलयकी आदि कारण एक ब्रह्मको ही माने हैं। सो सयाने ऋषि, मुनि, पण्डित, लोगोंने कहा हुआ वचन वेद, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, शास्त्र, पुराण, आदिमें बहुत जगह लिखा है, उस बातको सब जानते हैं। अब यहाँ विचार करिये कि— ब्रह्म तो उत्पत्ति-प्रलय होते रहनेका घर, आवागमनका मूल-कारण ही ठहरा। फिर जगत्‌को त्यागके ज्ञान साधना द्वारा जो ब्रह्म भी बना, तो भी मुक्ति नहीं होगी। क्योंकि, ब्रह्म फिर भी इच्छा करके सब ब्रह्मज्ञानियोंको ढकेलके जगत् चौरासी योनियोंमें ही लाके गिरायेगा, और ब्रह्मको व्यापक बताके ब्रह्म होनेके लिये जगत्‌को त्यागना चाहते हैं, यह कितनी मूर्खता और अनसमझ है। अरे भाई ! उसी भ्रमरूप ब्रह्मको, तथा मन, वचन, कर्मकी मानन्दीको सर्वथा त्यागे बिना, जगत् त्यागने योग्य

कोई हो ही नहीं सकता है । बिना विचार न कभी जगत्का त्याग होता है ? न मुक्ति प्राप्तिकी, योग = संयोग-सम्बन्ध ही होता है । ब्रह्मकी कल्पना छोड़े बिना जीवका कल्याण हो ही नहीं सकता है । अतः ब्रह्म-भ्रमको ही परखके दिलसे हटाना चाहिये ॥ ३२३ ॥

साखीः— ब्रह्म जगतका बीज है । जो नहिं ताको त्याग ॥
जगत ब्रह्ममें लीन है । कहहु कौन वैराग ? ॥३२४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु जीवो ! सब प्रकारसे ब्रह्म तो इस जगत्का तथा जन्म, मरणादिका, बीज = मूल कारण सूक्ष्म वासना अध्यासरूप बीज ही बना है । ऐसा होनेपर भी तुम लोग जो उस ब्रह्म-भ्रम मानन्दीको परखके नहीं त्यागोगे, तो अवश्य चौरासी योनियोंके चक्रमें ही पड़े रहोगे, भव-बन्धनोंसे कभी छुटकारा नहीं होगा । क्योंकि, वेद, वेदान्त आदिके प्रमाणसे तो यह सारा दृश्य-अदृश्य चराचर जगत् उसी एक ब्रह्म अधिष्ठानमें ही, लीन = विलय होके घुला-मिला हुआ एकाकार हो रहा है । सर्वत्र जगत्में ब्रह्मको परिपूर्ण व्यापक माने हैं । जैसे बीजमें वृक्षका लय रहता है, फिर समय पायके स्थूलाकार होके उत्पन्न हो जाता है । तैसे बीजरूप ब्रह्ममें वृक्षरूप जगत् लीन है, तो फिर उसमेंसे भी समय पायके इच्छा प्रगट होकर विराटरूप जगत् उत्पन्न हो जायगा, और तुम ब्रह्म बनके भी चौरासी योनियोंमें ही पड़े रहोगे । अब कहो तो भला ! कौन-सा त्याग-वैराग्य हुआ, त्याग-वैराग्य किया हुआ फल भी कौन-सा अच्छा मिला ? जन्म, मरणादि न छूटनेसे सब ही साधनाएँ निष्फल व्यर्थ हो गयी । अतः उस भ्रमको परखके त्यागो ॥ ३२४ ॥

साखीः— चन्द्र सूर्य निजकिरणको । त्याग कौन विधिकीन ? ॥
जाकी किरण ताहिमें । उपजि होत पुनि लीन ॥३२५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे ब्रह्मवादी ! यदि तुम ऐसा कहो कि— ब्रह्म, ईश्वर, सर्वशक्तिमान् होनेसे जगत् उत्पत्ति करके भी उससे निर्लिप्त हो न्यारा ही रहते हैं । परमात्मा असङ्ग है, उसे

जाननेसे मुक्ति होती है। तो सुनो! तुम्हारा कथन ही अनर्थ है। जैसे चन्द्रमा और सूर्य्यादि ग्रह प्रकाशवान् हैं, सो उनके स्वरूपसे ही किरण प्रकाश होता है। इसलिये वे अपने किरण प्रकाशको किस प्रकारसे कब त्याग कर सकेंगे? कभी त्याग नहीं कर सकेंगे। गुण-गुणीका नित्य सम्बन्ध होता है, सो कभी छूट नहीं सकता है। यदि सूर्य अपने किरणसे रहित होवे, तो सूर्य नामका पदार्थ ही कुछ न रहै, सारा धुन्द-अँधेरा ही हो जावे। किन्तु, ऐसा होना असम्भव है। अतः ग्रह, नक्षत्र, तारागणादि जिन-जिनकी जैसी-जैसी किरण प्रकाश है, सो उसीमें ही सदाकाल स्वतः नित्य बना रहता है। पृथ्वी आदिकी आड़रूप छाया हटनेपर सूर्य आदिका उदय, प्रकाशकी उत्पत्ति होता हुआ सदृश और सामको अस्त होनेपर फिर उसीमें लय हुआ सरीखा दिखता है। परन्तु, उनसे कभी किरण भिन्न होकर उदय-अस्त नहीं होता है। सदा एक-सा प्रकाशित ही रहते हैं। सूर्य तो स्वयं प्रकाशी तेज-पुञ्जरूप है। इसी प्रकार सिद्धान्तमें, चन्द्र = योगी, सूर्य = ब्रह्मज्ञानी, निज किरणको = अपने अद्वैत व्यापक सिद्धान्त प्रकाशको किस प्रकारसे त्याग करेंगे, या कर सकेंगे। ब्रह्म कभी जगत्से न्यारा हो ही नहीं सकता है, तो निर्लिप्त, असङ्ग कहना ही गलत है। जिस ब्रह्मकी किरणरूप यह जगत् सब ही होना माने हैं, सो उसीमें ही सदा बना रहेगा। जगत् उत्पन्न होके फिर ब्रह्ममें लीन होता है कहते हैं, सो झूठा बकवादमात्र है। ऐसा ही है, तो फिर अद्वैतमतका खण्डन हो गया। द्वैतमें ही उत्पत्ति, लय होती है, एकमें ऐसा हो ही नहीं सकता है। अतः ब्रह्मवादी सदा आवागमनमें ही पड़े रहेंगे। ब्रह्म बनके चारखानीमें भटकते रहेंगे, बिना पारख ॥ ३२५ ॥

साखीः— सब आचार्य शब्दको । विषय कहैं समुझाय ॥
ब्रह्म आतमा शब्द विषय । कहत न मूढ़ लजाय ॥३२६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो ! वेद-वेदान्तके

ज्ञाता ऋषि, मुनि, पण्डित, शास्त्री आदि सब कोई मतवादी आचार्योंने उपदेश, व्याख्यान, शिक्षा, प्रश्नोत्तर आदि द्वारा भली-भाँति समझा-बुझा करके शब्दरूप वाणीको कानका विषय जड़, नाशवान्, विकारी ही कहे हैं। कितनोंने शब्दको निराकार आकाशका गुण वा विषय माने हैं। पञ्चविषयोंमें पहिला विषय शब्द है। जबकी पाँचों विषय जीवको वन्धन हैं, तब फिर उसी विषयरूप शब्द विषयसे उच्चारण करके कहा, सुना हुआ ब्रह्म, परब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, परमेश्वर, ॐकार इत्यादि सब भी तो खास शब्द विषय ही होनेसे बन्धनकारी ही हुआ, किन्तु, उसे मुक्तिदायी शब्दातीत, निःअक्षर, अवाच्य ब्रह्म इत्यादि झूठ मूठकी वाक्य कहनेमें, इन अविवेकी मूढ़ लोगोंको जरा भी लज्जा नहीं आती है। बड़े बेहया, निर्लज्ज बने हैं। मूढ़ वनके उल्टी-सीधी वकनेमें भी वे नहीं लजाते हैं। शब्द विषय है, यह निश्चय हुआ, फिर ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान आदि जो कुछ भी कहते-सुनाते हैं, सो भी तो शब्द विषय होनेसे त्याज्य ही हुआ। वह विषय नहीं है, सबसे परे निर्विषय ब्रह्म, आत्मा है, ऐसा कहनेमें मूढ़, निर्बुद्धि-जनोंको लज्जा, शरम, सङ्कोच भी कुछ नहीं होता है। अपने तो भ्रममें डूबे और दूसरोंको भी डुबा रहे हैं, बिना विचार ॥ ३२६ ॥

साखीः—कारण ईश्वर जगतका। कहत निरन्तर वेद ॥
वो अविनाशी ये नसुर। कहो पण्डित ! यह भेद ॥३२७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! चराचर सम्पूर्ण जगत्का मूल कारण एक परमेश्वर या ब्रह्म-परमात्मा ही, निरन्तर = सदाकाल, हरहमेशासे सबका आदि कारण है। ऐसा वेदमें कहा है। सोई बात वेदवादी हमेशासे कहते चले आ रहे हैं। अभी भी वेद-वेदान्त पढ़-पढ़ाके गुरुवा लोग ऐसा ही कहते हैं, और सब जगत्का मुख्य कारण तथा कर्ता भी एक ईश्वरको ही सबल-ब्रह्म ठहरा रहे हैं। परन्तु, उसमें कारण माना हुआ ब्रह्म, ईश्वरादिको तो

अविनाशी, अखण्ड, नित्य, सत्य कहते हैं, और उसीका कार्य यह सारा जगत्को, नसुर = नश्वर, नाशवान्, खण्ड-खण्ड, अनित्य, असत्य, मिथ्या भ्रान्तिसे प्रतीति होनेवाला मात्र अवस्तु ठहराते हैं। कारणके अनुसार कार्य होते हैं। कारणसे विपरीत गुणवाला कोई भी कार्य नहीं हो सकता है। फिर ईश्वर अविनाशी, जगत् विनाशी, ऐसी उल्टी भावना करके क्यों माना है? हे पण्डित! इसका यथार्थ भेद खुलासा करके कहो! तुम लोग इस बारेमें क्या, कैसा समझते हो? कार्य साकार और कारण निराकार, निर्गुण कभी, कहीं ऐसा नहीं हो सकता है। इससे ब्रह्म, ईश्वरादि माना हुआ कारण भी साकार एकदेशीय ही ठहरेंगे। अरे भाई! निराकार, निर्गुण, जो है, सो अवस्तु है, उससे कहीं कार्य उत्पन्न हो सकता है? कदापि नहीं। फिर जगत् कार्यका कारण, निराकार ईश्वरादि माना हुआ मिथ्या हुआ, कि नहीं? ये भ्रमिक पण्डित! इसका क्या भेद कहेंगे? कुछ नहीं। अतएव पारख निर्णयको ही ग्रहण करना चाहिये॥ ३२७॥

साखीः— कारण ईश्वर अनीह कहैं। कारजरूप देखाय॥
यह जो अज्ञ दृष्टान्त है। पण्डित! कहो बुझाय॥३२८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे मनुष्यो! ये भ्रमिक ईश्वर-वादी लोग जगत्का मूल कारण ईश्वरको मानके उसको, अनीह = इच्छा, स्फुरणा, वासनासे रहित, अक्रयस्वरूप कहते हैं; और कार्यरूप जगत् जड़-चैतन्य वस्तुको देखायके गुरुवालोग कहते हैं कि— इसी जगत्का वह ईश्वर कारण है। सृष्टिके प्रथममें एक ही बार इच्छा करके जगत् उत्पन्न कर, फिर ईश्वर निरिच्छ ही रहता है। जिसे कार्य कहते हैं, वह जगत् तो दिखता है, परन्तु, कारण माना हुआ ईश्वरका कहीं पता ही नहीं है। यह जो ईश्वर-वादीने कारण-कार्यका दृष्टान्त दिया है, सो अज्ञ = अज्ञानी, मूढ़, निर्बुद्धियोंकी समझ है। हे पण्डित! यदि तुम्हें समझ-बोध होय,

तो ठीक-ठीक, समझा-बुझाके कहो, क्या बात है? तुम क्या मानते हो? तुम नहीं कह सकते हो, तो सुनो! कारण-कार्य दोनों जड़में होता है, चेतनमें नहीं होता है। जीव सब तो इच्छा करके ही कार्य-कर्म करते हैं, तो भी स्वयं जीव-स्वरूपके परिणाम-कार्य नहीं होता है। फिर इच्छारहित ईश्वर जगत्के कारण कैसे होगा? कार्यरूप जगत् दिखता है, तो कारणरूप ईश्वर क्यों नहीं दिखता है? यह जो दृष्टान्त दिये हो, सो अज्ञानताका द्योतक है। सिद्धान्तमें वह बिलकुल नहीं घटता है। यदि असली भेद जानना चाहते हो, तो पारखी सन्तोंके सत्सङ्ग-विचार करो, तब कुछ सारासार समझोगे, बूझोगे। नहीं तो धोखेमें ही पड़े रहोगे ॥ ३२८ ॥

साखीः— जगत पदारथ बूझते। ईश अनीह बखान ॥
दिनकर उदय अन्धेर होय। यहि उलूकका ज्ञान ॥३२९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो! जगत्में जड़-चैतन्य भिन्न-भिन्न पदार्थ देखते, जानते-बूझते हुए, जैसी-जैसी मनमें कल्पना हुई, तैसी-तैसी गुरुवा लोगोंने कल्पना करके वेदादि नाना वाणी बनाये हैं, फिर जहाँ उनकी समझ रुकी, अकल गुम हुयी, तहाँ ईश्वरको, अनीह=इच्छासेरहित वर्णन किये, और पद-शब्दके, पदारथ=वाणीके अर्थ बूझते-बूझते जब कुछ भी समझने-बूझनेमें नहीं आया, तब 'नेति-नेति श्रुतिः' कहके ब्रह्म, आत्मा, ईश्वरादिको शून्य, इच्छा, क्रियासे रहित, निर्गुण, निराकार ही मान लिये हैं। वही वर्णन वेद-वेदान्तमें किये हैं। यह तो ऐसा हुआ कि— उलूक=उल्लू, घू-घू, पक्षीको, दिनकर=सूर्य उदय होनेसे प्रकाश होते ही दिखनेके बदले और अन्धकार हो जाता है। तो दिनको ही वह रात्रि मानता है, और रात्रिके अन्धेराको ही वह दिन समझता है। उल्लूओंका ऐसे ही उल्टा ज्ञान-अज्ञान होता है। तैसे ही पढ़-गुन करके, समझ-बूझके सत्यबोध होना चाहिये, विद्याके प्रकाश होनेपर अविद्या, अज्ञानका विनाश होना, भ्रम छूटना चाहिये।

मनुष्यको बुद्धिमान् होके जड़-चैतन्य, सारासारका निर्णयसे पहिचान-कर हंस सत्यज्ञानी होना चाहिये था; परन्तु, उससे एकदम विपरीत होना, सूर्यवत् चैतन्य जीवके साक्षी ज्ञानका प्रकाशमें ही महाअन्धेर गाफिली होना, चराचरमें एक ईश्वरको व्यापक, निरीच्छ मानना, भ्रम-भूलमें पड़ना, अद्वैत कथन करना, यही, उलूक=उल्लू अन्धे वेदान्तियोंका ब्रह्मज्ञान धोखाका घर है। परखके इस भ्रम-जालसे न्यारा होना चाहिये ॥ ३२९ ॥

साखीः— कबीर मोह पिनाक जग। गुरु बिन टूटत नाहिं ॥
सुर नर मुनि तोरन लगे। छूवत अधिक गरुवाहिं ॥३३०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! जगत् या संसारमें, मोह पिनाक=वाणी और खानीकी माया-मोह आसक्तिरूपी बलिष्ठ धनुषकी डोरीमें सब लटके, अरुझे पड़े हैं। अथवा, मोहकी पीनक= अफीमके नशेमें चूर, बेभान हो, सबलोग मारे जा रहे हैं। सो मोह धनुषकी डोरी, जाल तथा विषय, ब्रह्म सम्बन्धी नशा पारखी सद्गुरु-की कृपा दृष्टिसे अपरोक्ष पारखबोध पक्का हुए बिना कदापि किसीकी भी टूटती या छूटती नहीं है। वह बड़ी मजबूत डोरी है, गुरुबोधके खड्गसे काटनेपर ही वह टूट सकती है। पारखी सद्गुरुकी शरण सत्सङ्गमें आये बिना ही उधर सुर, नर, मुनि उसे तोड़नेका प्रयत्न करने लगे। सुर = सतोगुणी ज्ञानी, ज्ञानमार्गकी साधना करने लगे। नर=रजोगुणी कर्मी, भक्त लोग कर्म, उपासनाकी साधना करने लगे। मुनि=तमोगुणी योगी, तपस्वी लोग योग, तपस्यादिके साधना करने लगे। इस प्रकारसे माया-मोह, बन्धनको तोड़-ताड़कर मुक्ति प्राप्तिका प्रयत्न करने लगे। किन्तु, वाणी, कल्पनाको छूकर स्पर्श करते ही भ्रम, भूलका बोझा और भी ज्यादा हो गया। मैं ब्रह्म हूँ, जगत् सब एक अद्वैत ब्रह्म है, कहके जड़ा-ध्यासी, गाफिल हो गये। इस तरह अधिक-अधिक वा विशेष-विशेष भ्रम बढ़ाके गुरुवा लोग भ्रमिक हो गये। बन्धनोंसे छूटनेके

बदले और महाबन्धनोंमें जकड़ पड़े । विना पारख चौरासी योनियोंके चक्रमें ही गिर पड़े। अतः परखके उससे न्यारा हो रहना चाहिये ॥ ३३० ॥

साखीः— कबीर लघुको गुरु कहैं । गुरु लघु कहैं बनाय ॥
यह अविचारा देखिके । कबिरा नाहिं लजाय ॥३३१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे नरजीवो! ये पारखहीन अविचारी गुरुवालोग धूर्त उल्टी समझवाले हैं। क्योंकि, लघु= छोटा, तुच्छ तत्त्वका भास, मनकी मानन्दीरूप कल्पित ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, खुदा आदि जो कोई वस्तु नहीं है, अतः मिथ्या ही है; उसीको, गुरु=वजनदार, अतिशय श्रेष्ठ, प्रकाशी, चैतन्य, सार पदार्थ कहते हैं, और गुरुको = ज्ञानप्रकाशी चैतन्य स्वरूप जीव, जो सबका गुरु, सर्व-श्रेष्ठ सत्य वस्तु है, उसको तो तुच्छ बताय-बनायके, लघु=छोटा, अंश, कार्य, प्रतिबिम्ब, अल्पज्ञ, बद्ध, मायाग्रसित, पराधीन, इत्यादि कथन कह करके ओछा बनाते हैं। देखिये! ठग लोगोंने कैसे उलट-पलट कर दिये हैं, असत्यको सत्य और सत्यको असत्य बना दिये हैं। वैसे ही उल्टा ज्ञान समझा-समझा करके लोगोंको भ्रमा, भुला दिये हैं। यह ऐसा अविचार, अविवेक, मूर्खताका कथन बर्ताव देख-सुन करके भी, कबिरा= अबोध नरजीव और गुरुवा लोग कुछ भी असत्यसे लजाते-शर्माते नहीं है, जरा भी संकोच नहीं करते हैं। मिथ्या भास, अध्यासको ही पकड़-पकड़ाके जड़ाध्यासी हुए और हो रहे हैं। अतः हितेच्छुकोंने उस धोखा, भ्रम, मानन्दीको त्याग देना चाहिये ॥ ३३१ ॥

साखीः— साधू ऐसा चाहिये । ज्यों मोतीमें आब ॥
उतरै तो फिरि नहिं चढ़ै । अनादर होय रहाब ॥ ३३२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! साधुको ऐसा होना

चाहिये कि— जैसे मोती रत्नमें आब=पानी रहता है, वैसा शुद्ध, श्रेष्ठ हो रहना चाहिये। अर्थात् मुमुक्षु, वैराग्यवान्, पूर्ण त्यागी, विरक्त होकर पारखी साधु गुरुके ही गुरुमुख वाणी सारशब्दको श्रवण मननादि करके सारासार, जड़-चैतन्यके निर्णय विवेक करता रहै। और सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, विवेक, गुरुभक्ति, दृढ़ वैराग्य, इन सद्गुण हंस रहनी-रहस्यको हृदयमें पूर्ण दृढ़तासे धारण करै। पारख बोध सहित स्वरूप स्थितिकर प्रथम अपना कल्याण करै, फिर अन्य जिज्ञासुओंको भी पारखबोध लखाकर हित करै। इस तरह निज-पर हितकारी साधुको होना चाहिये। मोती सरीखा शुद्ध निर्मल होके गुरुपदके मर्यादामें ठहरे रहना चाहिये; और संसारके विषय खानी, वाणीको विषरूप समझके ब्रह्मानन्द, विषयानन्दोंकी मानन्दीकी-घरके सीढ़ीमें बन्धन दोष देख-देखके जब, उतरै=पृथक् वा न्यारा होवे, तब तो फिर जीवन पर्यन्त कभी किसी कारणसे भी निज हंसपदसे उलट करके कल्पना, अनुमान, विषयादिमें कभी भी नहीं चढ़ै। सदा सावधान हो रहै। संसारी विषयासक्त लोग तथा भेषधारी पक्षपाती गुरुवा लोगोंका सङ्ग, कुसङ्गसे न्यारा हो, बल्कि उनसे, अनादर=अभाव, अप्रेम ही होके रहै। किन्तु, उनके आदरमें पड़के अपने जीवको खानी, वाणीके बन्धनोंमें कभी न डालै। निराश वर्तमानमें रहना चाहिये॥ अथवा मोतीमें पानी रहता है, तब उसकी इज्जत होती है। पानी उतरनेपर काँच बराबर भी नहीं समझा जाता है। तैसे ही साधुमें भी सद्गुण रहनी पारख होनेपर ही श्रेष्ठता होती है। उसके बिना तुच्छ पतित समझा जाता है। अतः साधुने हंस रहनीसे कभी नहीं चूकना चाहिये। यदि कोई पुरुष साधुपदसे उतरा, स्त्री-विषयादिमें फँसके बिगड़ा, तो फिर वह साधुपदमें नहीं चढ़ सकता है। जीतेतक अनादरका कुपात्र होके जगत्में रहता है इसलिये कभी साधुपदसे उतरना नहीं चाहिये॥ ३३२॥

साखीः— जाननको कहै आतमा । बहु विधि ग्रन्थ पुकारि ॥
कहहिं कबीर जस भेड़िपर । जोलहिनि कियो गोहारि ॥३३३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो! ये वेदान्ती भ्रमिक गुरुवा लोगोंने वेद, शास्त्र, आदि बहुत प्रकारके ग्रन्थ बनायके, पुकार-पुकार करके कहते हैं कि— हे भाइयो। एक आत्माको ही सर्वश्रेष्ठ जानना चाहिये, और आत्माको अद्वैत सर्वोपरि पूर्ण व्यापक मानना चाहिये। इत्यादि उपदेश करते हैं। अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं कि— देखिये! यह तो ऐसा नतीजा भया कि— जैसे एक जोल्हाकी स्त्री अनाड़ी-मूर्ख थी, उसने कभी जङ्गली जानवर देखा नहीं था, नाम जरूर सुना था कि— जङ्गलोंमें बड़े-बड़े बाघ, सिंह, भालू, आदि हिंसकी जानवर होते हैं। एक समय वह खेतपर काम कर रही थी, उसे संयोगसे वहीं पासमें एक भेड़ी वा भेड़िया दिखायी दिया। उसे जोलाहिनीने बड़ा भारी पराक्रमी जानवर सिंह वा बाघ ही समझके घबराकर जोर-जोरसे चिल्लाकर पुकारा करने लगी— अरे! दौड़ो! दौड़ो! यहाँ तो बबर-शेर वा बाघ निकल आया है। मुझे इससे बचाओ, यह तो मुझे मारना चाहता है, इत्यादि। उसी पगलीके समझ, दुर्दशाके नाईं ब्रह्मज्ञानियोंका भी हाल हुआ है। जोलहिनी = जो कल्पनाको ग्रहण किया, सो गुरुवा लोग, जस = सुयश, प्रशंसा प्राप्तिके वास्ते, भेड़िपर = अज्ञानी लोगोंके ऊपर सर्वश्रेष्ठ होके, गोहारि = हुर्रे-हुर्रे! अरे होरे! हाँ! जगत् मिथ्या है, ब्रह्म सत्य है, होरे! हाँ! इसीको निश्चय करके मानो। ऐसे कहकर मिथ्या भ्रमसे भूल-भुलैयाके चक्रमें गाफिल पड़े हैं ॥ ३३३ ॥

साखीः— कबीर बेंगके मारते । जीलहा रोवै पुकारि ॥
विकल भया दुहुँदिश फिरै । कीजै राम जोहारि ॥३३४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे नरजीवो! जैसे कोई अनाड़ी

मूर्ख जोलाहा तालाबमें हाथ, मुख धोनेको गया था, वहाँ एक मेढक उछलके उसे लात मारके भागा। इतनेमें, बेंग = मेढकके मारते ही जोलाहा घबरायके उसे बड़ा भारी जन्तु समझके भयभीत हो पुकार-पुकारके रोने, चिल्लाने लगा, और हे राम! हे खुदा! मुझे इस जन्तुके पञ्जेसे बचाइये! गोहार है! मदत करो!! मदत करो!! पुकारता हुआ, अपने इष्टदेवकी मनौती, विनती, प्रणाम आदि करने लगा, और व्याकुल होता हुआ दशों दिशामें भागते फिरने लगा। उसको धैर्य ही न आवे, अन्तमें वह पागल होके मर गया। मूर्खताके कारण भ्रम-भूलसे ऐसे ही हानी हो जाती है॥ सिद्धान्तमें, कबीर = नरजीव या मनुष्योंको, बेंगके = व्यङ्ग-वचन, टेढ़ी, अनूठी, भूठी बात कि— कोई एक ॐकार ब्रह्म, पिण्ड-ब्रह्माण्डमें व्यापक है, सो तू ही है, यानी तू ही प्रणव ब्रह्म है। ऐसा भ्रम कल्पनाका चोट या प्रहार हृदयमें मारते दृढ़ करते-कराते ही अचेत हो गये। सोई व्यङ्ग वचन गुरुवा लोग मारते हैं, तो जीवोंकी जानपना साक्षीपदपर आवरणरूप पर्दा डाल देते हैं। जिससे सब भ्रम चक्रमें पड़ जाते हैं, और, जोलहा = जो कल्पना धोखाको लहा, भूलको प्राप्त भया, सो भ्रमिक गुरुवा लोग, नाना ग्रन्थ, पन्थ बनाय-बनायके ऊँचे स्वरसे अन्य मनुष्योंको पुकार-पुकार करके खूब रोते हैं = मुख खोलके नाना भाँतिसे उपदेश देते हैं। यही उनका रोना-कराहना है। भ्रमके मारे सब गुरुवा लोग साथ ही उनके शिष्य वर्ग अज्ञानी मनुष्य लोग भी संसारमें द्वैत, सुख-दुःख, त्रयताप, आदिको देखके अत्यन्त व्याकुल भये, तो इससे अपनी रक्षा, बचावके लिये, दुहुँदिश = खानी, वाणीके दोनों दिशामें फिरने लगे। अथवा दशों दिशामें तीर्थयात्रा करके भटकते फिरने लगे। कोई चारवेद, षट्शास्त्र यही दश दिशामें उलट-पलटके वाणी पढ़-पढ़के कल्पनामें फेरा लगा रहे हैं। अपने-अपने इष्टदेव, राम = ईश्वर, परमात्मा, खुदा आदिकी, जोहारि = वन्दना, विनय, झुक-झुकके सलाम, आदि कर-करके हे भगवान्!

हमारी रक्षा कीजिये ! चौरासी योनियोंके दुःखोंसे बचाइये ! हम आपके शरण हैं ! शरण हैं ! इत्यादि प्रार्थना कर रहे हैं। परन्तु ईश्वर, खुदा आदि सब मनकी कल्पना है, वह किसीकी रक्षा नहीं करता है । जड़ाध्यासी हो, जीव सब बारम्बार जन्म, मरणादि चौरासी योनियोंके दुःख ही भोगा करते हैं ॥ ३३४ ॥

साखीः— माया तीन प्रकारकी । ताहि करो पहिचान ॥
द्रष्टा आग्रही निर्वचनी । तीजो तुच्छा जान ॥३३५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! संसारमें मुख्य माया तीन प्रकारकी हैं; उसे पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग-विचार करके अच्छी तरहसे पहिचान कीजिये। संक्षेपमें त्रिविधि मायाका लक्षण मैं यहाँ बता देता हूँ, सुनिये ! एक, द्रष्टा माया = द्वैत प्रतिपादन करती है। दूसरी, आग्रही माया = विसिष्टाद्वैत बतलाती है। तीसरी, निर्वचनी माया = अद्वैत ठहराती है । ये तीनों वाणी कल्पित माया जाल भवबन्धनमें फँसानेवाली होनेसे तुच्छ, निकम्मी और त्याज्य हैं । अथवा एक गुरुवा माया है, दूसरी स्त्री माया है, तीसरी मन माया है । ये तीनों तुच्छ, कुटिल-स्वभाववाले हैं । वे नरजीवोंको खानी, वाणी जालोंमें ही ले जाके अरुझा कर भटकाते रहते हैं। बिना पारख इन माया-जालोंसे छूटना अत्यन्त कठिन है । उसे ठीक-ठीकसे पहिचान करके त्याग कर दूर हो, न्यारा हो रहना चाहिये ॥ ३३५ ॥

साखीः— निर्वचनी अद्वैत है। द्वैत सो द्रष्टा जान ॥
तीजे विशिष्टा मानते । साधुन हिये प्रमान ॥३३६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और उसकी खुलासा बात सुनिये ! गुरुवा लोगोंने वाणी कल्पनासे जो अद्वैत सिद्धान्त ठहराया है, सोई, निर्वचनी = वचनसे परे, अवाच्य, मन, बुद्धि, वाणीसे परे, निर्गुण, निरञ्जन, निराकार, सर्वव्यापक, ब्रह्म, अद्वैत

माना है। यह पहिले नम्बरकी माया जाल है। द्रष्टा माया सोई द्वैतवाद है। ईश्वरको सर्वद्रष्टा साक्षी, सर्वज्ञ मान करके जीवको उसीका अंश माने हैं। ईश्वर स्वामी, जीवको सेवक, दास, बताके सेव्य-सेवक भावसे भक्ति, उपासना करते-कराते हैं। वैष्णव भक्त लोग सब द्वैतवादको मानते हैं। यह मायाकी जाल-जञ्जाल ही है, ऐसा जानिये। और तीसरी, आग्रही = विसिष्टाद्वैतवादको मानते हैं। ईश्वर, जीव, मूलप्रकृति-माया, इन तीनोंको अनादि नित्य माननेवाले आर्यसमाजी, रामानुजी आदि, विसिष्टाद्वैतवादी कहलाते हैं। द्वैत-अद्वैत दोनों ही भागके कल्पना विकार जिसमें मिल गया, सोई विशिष्ट-अद्वैत कहलाया। वेद प्रमाणसे षट्दर्शनोंके बहुत सारे साधुओंने या सिद्ध-साधकोंने उसी तीन मतवादको ही सत्य सार मानकर हृदयमें धारण कर लिये हैं। परन्तु, बिना पारख वे सब धोखेमें पड़े हैं। वह तो माया गुरुवा लोगोंकी वाणी जाल कल्पना मात्र है। उसे मानकर किसीकी मुक्ति नहीं हो सकती है। अतः पारख बोधको ही ग्रहण और धारण करना चाहिये ॥ ३३६ ॥

साखीः— यह सरस्वती शिरपर चढ़ी। भई सबहिं शिरताज ॥
कहहिं कबीर चीन्हे बिना। माथे भार विराज ॥३३७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! यह सरस्वती देवी, ब्रह्माके पुत्री स्त्री-जातिकी है, परन्तु वही, सरस्वती = वाणी, विद्या, कला बनके सब ब्रह्मादि, सनकादि, वशिष्ठ, पराशर, व्यास, वाल्मिकी, सप्तऋषि, अठासी हजार ऋषि, मुनि, और एक लाख अस्सी हजार पैगम्बर, पीर, औलिया, योगी, ज्ञानी, विज्ञानी, भक्त, कर्मी, इत्यादि सब पुरुषोंके शिरपर उछल-कूदके छलाङ्ग मारके चढ़ी, तो वाणी कल्पनाके नाथ• सबके नाकमें नाथके उन सबोंको बैल बनायी, अपने अधीन करी। विधि-निषेधके हुकुममें चलाने लगी, और सबोंके मध्यमें, शिरताज = शिरके मुकुटवत् श्रेष्ठ शिरोमणि सर्वमान्य होती भयी, अतः सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य-

निर्णयको पारखी सन्त कहते हैं— देखिये! पारख ज्ञानसे जड़-चैतन्य, सार-असार, सत्य-मिथ्याको यथार्थ चीन्हे, पहिचाने बिना, और वाणी, खानीके जाल-बन्धनोंको जाने बिना, उसीका बोझा, नाना-साधनाओंका भार, अनेक मत, पन्थ, ग्रन्थोंका भ्रम, कल्पनाका, विषयोंका ही महाभार उन सबोंके, माथे = शिरमें वा हृदयमें दृढ़ होके विराजमान हो रही है। अर्थात् निज पारख स्वरूपको न चीन्हके वाणी, ब्रह्म, जगत् विषयादिका बोझा ही सबोंने शिरमें ढो रहे हैं। जड़ाध्यासका भार सब जीवोंके हृदयमें बैठा है। इसीसे सब बेहाल दुःखी हो चौरासी योनियोंमें भटक रहे हैं। मुमुक्षुओंने उन सब बोझाओं-को उतारके फेंकना चाहिये। पारखबोधको ही लेना चाहिये ॥ ३३७ ॥

साखीः— एक कर्म है बोवना । उपजै बीज बहूत ॥
एक कर्म है भूँजना । उदय न अंकुर सूत ॥ ३३८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो ! संसारमें नरजीवोंसे या मनुष्योंसे मुख्य दो प्रकारके कर्म होते हैं। जैसे दृष्टान्तमें एक, वह कर्म है, जो खेतमें जाके बीज बो देते हैं। जिससे एक-एक बीजसे वृक्ष सहित अनेक-अनेक बीज होकर बहुत सारी फसल और बीज उत्पन्न हो जाते हैं, और दूसरा, एक वह कर्म है, जो भट्ठीमें वर्तन चढ़ाके अनाजोंके बीजोंको भूँज देना, जला देना, होता है। जिससे चाहे फिर वह खेतमें भी पड़ा रहे, तो भी अंकुरके सूत्रमात्र भी उत्पन्न नहीं हो सकता है। वह दोनों कर्म ही कहलाते हैं, किन्तु, दोनोंका फल न्यारा-न्यारा विपरीत होते हैं, उसी प्रकार सिद्धान्तमें संसाररूपी खेत है, जीव कृशान है, सो काया महलमें रहकर व्यवहार करता है। तहाँ एक कर्म तो विषय-भोग करके वासना बीज बोनेका होता है, जिससे एक विषय वासनासे और भी बहुत-सी वासनाएँ उत्पन्न होती जाती हैं। जैसे एक गृहस्थ पुरुष, स्त्रीके साथ मैथुन या भग-भोग करके वीर्यको गर्भ-क्षेत्रमें बो-देता है, उससे सन्तान उत्पन्न होते हैं, उसकी शाखाएँ बहुत बढ़ जाती हैं, और

इधर पुरुषके वासना, आसक्ति भी ज्यादा ही बढ़ जाती है, वही महाबन्धनमें बाँधके जीवको चौरासी योनियोंमें ले जाता है, जितने स्त्रियोंसे भोग किया है, उतने स्त्रियोंके द्वारा बार-बार अनेकों बार जन्म लेते रहते हैं, और दूसरा, एक कर्म विवेक-वैराग्यको धारण करके त्यागी, ब्रह्मचारी होके मन, वचन, कर्मसे विषय वासनासे रहित होकर सच्चे विरक्त होना, वह ज्ञानाग्निसे वासना बीजको भूँजना है। वैराग्य अभ्यासके परिपक्व होनेपर उस त्यागी पुरुषके हृदयमें पारखबोधके प्रतापसे विषय-वासनाका अंकुर जरा-सा सूतमात्र भी उदय होने नहीं पाता है। इसीसे वे जीते ही निर्बन्ध मुक्त हो जाते हैं। निराश वर्तमानमें आयु बिता देते हैं।

अथवा और एक वह कर्म है— जगत्कर्ता ईश्वर, ब्रह्म, खुदादि मानकर उसके प्राप्तिकी आशा, चार फल, चार मुक्ति, सात स्वर्ग इत्यादिकल्पना कर ऋद्धि, सिद्धि प्राप्ति आदिकी आशा, तृष्णा, भरोसा, बढ़ाकर कर्म, उपासना, ज्ञान, विज्ञान आदिकी नाना साधना करना, सो वासना, संस्कार बीजको बोनेवाला कर्म है। उससे अध्यास बहुत बढ़के चौरासी योनियोंमें ही वे सब बारम्बार उपजते रहते हैं। और दूसरे तरफ जो पारखी सद्गुरुकी शरणागत होकर परीक्षा करके विवेक अग्निसे उन सब कल्पित मानन्दी बीजोंको भूँज देते हैं। अपरोक्ष गुरु पारखबोधसे सब सारासारको जान जाते हैं। इसीसे उनके हृदयमें, सूत=शुद्ध चैतन्य जीवोंको जन्म, मरणादिमें ले जानेवाला अध्यासका अंकुर थोड़ा भी उत्पन्न होता नहीं। अतः वे पारखी सन्त जीवन्मुक्त हो जाते हैं। सोई बनाना चाहिये ॥ ३३८ ॥

साखी:— ईसामसि जो कहत हो। पुत्र खुदाके आहिं ॥
स्त्री बिन पुत्र न ऊपजै। यह प्रसिद्ध जग माहिं ॥ ३३९ ॥

टीका:— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे इसाई लोगो! तुम लोग जो

ईसामसीह या ईशुख्रिष्टको खास खुदाके पुत्र है, खुदाने उन्हें मनुष्योंके कल्याण करनेके वास्ते भेजा था, ऐसा जो कहते हो ! तो सुनो ! तुम लोग खुदाको कैसा मानते हो ? कोई देहधारी मनुष्य राजाके समान मानते हो ? कि, देहरहित निराकार, निर्गुण समझते हो ? देहधारी खुदा होवे, तो ठीक है, फिर उसके महिमा करनेकी कुछ आवश्यकता ही नहीं। यदि उसे बिना देहके मानते हो, तो उसके पुत्र होना असम्भव बात है। और स्त्री-पुरुष, दोनोंके सम्बन्ध-मैथुन हुए बिना, तो कहीं किसीके पुत्र उत्पन्न होते ही नहीं। स्त्रीकी गर्भवासमें होकर योनिद्वारा ही सब पुत्र उत्पन्न हुए और पैदा होते हैं, यह बात तो जगत्में प्रसिद्ध या जाहिर ही है। फिर कहो क्या बात है ? ईसामसीह कौन-सा खुदाका पुत्र है ? और खुदाका बाप कौन था ? माँ कौन थी ? कौन जातिका था ? घर कहाँ था ? पूरी हिस्ट्री या इतिहास तुम्हें मालूम है कि नहीं ? कि गपोड़शङ्ख वनके झूठी कल्पनाके ही शङ्ख फूँक रहे हो ? ईशुका पिता खुदा था, तो माता कौन थी ? बिना मातारूप स्त्रीके मौजूद हुए पुत्र उत्पन्न ही नहीं होता है। यह तो जगत्-प्रसिद्ध बात है, इस बातको तो सब कोई जानते ही हैं। अतः तुम पूरा भेद बतलाके कहो ? फिर विचार किया जायगा ॥ ३३९ ॥

साखीः— नारी खुदाकी कौन थी ?। किन ताको उपजाय ॥
कौन भाँति केहि तरह सो। कहिये मोहि समुझाय ॥३४०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे इसाई लोगो ! खुदा पुरुषका जब पुत्र उत्पन्न हुआ, ईशुका वह बाप बना, तो यह बतलाओ कि— उस खुदाकी-स्त्री ईशुकी माँ कौन भयी थी ? मरियम नामकी नारी क्या खुदाकी विवाहिता स्त्री थी ? अथवा वह रखेली स्त्री थी, और उस स्त्रीको किसने उत्पन्न किया था ? उसके माता-पिता कौन थे ? किस प्रकारसे खुदा और उस स्त्रीसे मेल-मुलाकात हुआ था ? सामाजिक रीतिसे प्रगट होकर विवाह

किया था? वा चोरी-छिपीसे कुकर्म, व्यभिचार किया था? किस तरहसे पुत्र उत्पन्न किया था? मैथुनी सृष्टि बिना मनुष्यादिकी उत्पत्ति तो हो नहीं सकती है। फिर कहो, खुदाने ईशुको पुत्ररूपमें कैसे उत्पन्न किया? और तुम लोग ही कहते हो कि— सारी दुनियाँ खुदासे उत्पन्न भयी है, वह जगत्-पिता है। तो जिस स्त्रीसे ईशु पैदा भया, सो एक प्रकारसे खुदाकी पुत्री भयी कि नहीं? फिर उसीसे विषय-भोग करके ईशु पुत्रको उत्पन्न किया। तब वह व्यभिचारी पुत्रीगामिनी नर-पशु ही हुआ कि नहीं? ऐसा भी कहीं दुनियाँका मालिक हो सकता है? कदापि नहीं। अतएव किस तरहसे, कैसे ईशु-खिष्ट खुदाका पुत्र भया? सो इसका यथार्थ भेद मुझे समझायके ठीक-ठीकसे कहिये! फिर सत्य-मिथ्याका निर्णय, फैसला मैं तुम्हें बतलाऊँगा ॥ ३४० ॥

साखीः— तत्त्व सहित जो खुदा है। तो तुरत नाश हो जाय ॥
तत्त्व विहीना कहोगे। सो करतव्य नहीं समाय ॥ ३४१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे इसाई खुदावादी लोगो! यह बतलाओ कि— तुम्हारा माना हुआ मालिक खुदाका मुख्य स्वरूप क्या, कैसा है? पाँच तत्त्वोंके कार्य साकार शरीर सहित मनुष्य, देवता आदिके रूपमें जो तुम्हारा खुदा वा परमेश्वर है, ऐसा कहोगे, तब तो जैसे अन्य मनुष्योंके मृत्यु होकर शरीर नाश होता जा रहा है। तैसे ही वह खुदाका भी प्रारब्ध भोग पूर्ण हो जानेपर अवश्य शरीर तो तुरन्त ही नाश हो जायगा। या कबका नाश हो गया होगा। मर-मरके न मालूम कितने जन्म ले चुका होगा। क्योंकि, देह नाशवान् है, यह कभी किसीकी अविनाशी होके रह नहीं सकती है। फिर देह होनेपर खुदा भी मर चुका होगा। और इस आपत्तिसे बचनेके लिये अगर तुम खुदा वा ईश्वरको पञ्चतत्त्व निर्मित शरीरसे विहीन = विदेह, निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, बेचून,

बेनमून, गोयमगोय है, कहोगे, तहाँ वह कथन ही एक, तो निषिद्ध वचन होनेसे वस्तु ठहराना झूठा है। दूसरा, सो ऐसे तत्त्व विहीन निराकारमें कोई भी कर्तव्य, कर्म समा नहीं सकता है। अतः खुदासे जगत् बनना, ईशु पुत्रका उत्पन्न होना, इत्यादि करतूत, पुरुषार्थ कर्मके कर्तव्य उसके स्वरूप ही नहीं, शून्य है, तो कहाँपर समायेगा? इसलिये सब प्रकारसे तुम्हारा खुदा मानना भ्रम, भूल, असत्य है। यदि हित चाहो, तो मिथ्या पक्षको त्यागो ॥ ३४१ ॥

साखीः—पाँच तत्त्व ये आदि हैं। कि खुदा आदि है भाय? ॥
की दोनों संयुक्त हैं। यह भी कहो बुझाय? ॥३४२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे खुदाके भक्तो! तुम लोग खुदाके स्वरूपको ठीकसे जानके मानते हो, कि— या यों ही बिना समझे-बूझे ही अन्ध-विश्वाससे मानते हो? यह बतलाओ कि— यह दृश्य पञ्चतत्त्वरूप संसार इत्यादि अनादि वा प्रथमका है, पीछें खुदा उत्पन्न भया है? कि = अथवा उससे भी पहिले आदिमें खुदा था? यदि आदि है, कहोगे, तो पञ्चतत्त्व नहीं थे? तो खुदा किस जगहपर, कैसा रहता था? तत्त्वोंके बिना अकेला खुदाको क्या तुमने देखा था? नहीं देखा था, तो विना देखी हुयी बात कहनेवाले तुम झूठे हुए कि नहीं? अगर कहो, मैंने खुदाको अकेला देखा था, तब पाँचतत्त्व तो थे ही नहीं, फिर तुम खुदाके ही शिरपर खड़े होके देखे थे क्या? तुम देखनेवाले कहाँपर थे? हे भाई! खुदा और पाँचतत्त्वोंमें कौन, किसका आदि है? अथवा, की दोनों संयुक्त हैं = बराबरीके मिले-जुले हैं? क्या, कैसे हैं? इस बात-का खुलासा भी तुम— समझाय-बुझायके ठीक-ठीकसे कहो। और पाँचतत्त्व आदि हैं, तो अन्तमें उत्पन्न भया हुआ खुदा दुनियाँका मालिक नहीं हुआ। पाँच तत्त्वोंके रहे बिना आदिमें खुदा कहना, सत्य ठहरता ही नहीं है। दोनों संयुक्त मानोगे, तो वह जड़

पाँचतत्त्वका कार्य परस्परका मिलाप ही सिद्ध होगा। अथवा देहधारी जीवके समान बद्ध माना जायगा। इस तरहसे आदि, अन्त, मध्यमें खुदा कोई सत्य वस्तु ठहरता ही नहीं है। वह तो मनुष्य जीवोंकी भ्रम मिथ्या, कल्पनामात्र है। अतः परखके भ्रमको छोड़ो ॥ ३४२ ॥

साखीः— कहा वस्तु ये जीव है । जो मिले खुदासे जाय ? ॥
कहा वस्तु वह खुदा है । कहो निपुण दरशाय ? ॥३४३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे खुदावादी ! इस जीवको तुम क्या वस्तु, और कहाँपर कैसा समझते हो ? जो जीव खुदा वा ब्रह्म-ईश्वरादिसे जाके मिलेगा ? तो क्या यह किसीके कार्यरूप जड़ है, ऐसा मानते हो क्या ? और जिसको तुम सर्वश्रेष्ठ मानते हो, परमात्मा, अल्लाह कहते हो, वह खुदा या ईश्वर क्या वस्तु है ? कहाँपर कैसा है ? तुम बड़े मतवादी, पण्डित, निपुण, चतुर हो, अपने निपुणतासे ठीक-ठीक निर्णय दरशायके कहो । तुम्हारा खुदा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश, इनमेंसे कौन-सा तत्त्व या क्या वस्तु है ? जड़ और चैतन्य ये मुख्य दो वस्तु सत्य हैं । चैतन्य अनन्त जीव ज्ञानस्वरूप अखण्ड हैं, वे किसीसे बनते नहीं, तथा किसीमें जाके मिलते भी नहीं । जड़-तत्त्वोंके स्वरूपसे सदा न्यारे ही रहते हैं । जड़में चार तत्त्व कार्य-कारण भावसे वस्तु बनते, बिगड़ते रहते हैं, अब बताओ ! खुदासे जायके मिलनेवाला इस जीवको तुमने क्या वस्तु समझ रखा है, और वह खुदा कहाँ है ? जिससे जीव मिलेगा ? खुदाका तो नाममात्र कल्पना है, रूपका तो कहीं ठिकाना भी नहीं है । उसे शून्य आकाशवत् माना है, और देह-धारी चैतन्यजीव तो प्रत्यक्ष हैं, वासनावश चारखानीके अनेकों योनियोंमें ही भ्रमण कर रहे हैं । फिर खुदासे कैसे ? कहाँपर मिलेगा ? नाहक मिथ्या धोखामें क्यों पड़े हो ? परख करके उस भ्रम-भूलको मिटाओ, नहीं तो पीछे पछताओगे, सो जानो ॥ ३४३ ॥

साखीः—कबीर मुक्ति बायें दहिने। मुक्ति आगे पीठि ॥
मुक्ति धरती आकाशमें। मुक्ति मेरी दीठि ॥३४४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं— और, कबीर=हे नरजीवो! ये भ्रमिक पारखहीन गुरुवा लोगोंने नाना प्रकारसे झूठी मुक्ति सब तरफ कल्पना करके मान रखे हैं। उसी झूठी मुक्तिकी महिमा सुन-सुनके अबोध जीव ललचा रहे हैं। किसीने बाँया तरफ, उत्तर दिशामें मुक्ति मान रखा है। कोई बायें=बाममार्गसे पञ्चमकारादि सेवन और शक्ति उपासनासे सुख भोग, और मुक्ति माने हैं। कोई दहिने=दक्षिणमार्गमें सनातनी वैष्णव, स्मार्त विधिसे गति, मुक्ति मान रहे हैं। कोई दक्षिण दिशामें मुक्तिकी जगह मानते हैं, और कोई पूर्व दिशामें, कोई पश्चिम दिशा आदिमें मुक्तिकी धाम अनुमान करते हैं, और कोई, आगे=प्राचीनकालमें ब्रह्मा, विष्णु, शिवादी जो गुरुवा लोग भक्ति, ज्ञान, योगादि मतके आचार्य हो गये हैं, उन्हींकी मत, पन्थ, साधना, सिद्धान्त, नामस्मरणादिसे ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोकमें जाके मुक्ति मानते हैं। कोई, पीठि=उन्हीं गुरुवाओंके पीठ पीछे उनके उत्तराधिकारी सनकादि ऋषि, मुनि हुए, उन चेलोंके मत अनुसार सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, और सायुज्य, ये चार प्रकारकी मुक्ति तथा चार फलादिको बड़ा समझके मानते हैं। तथा पाश्चात्य मतवादी भौतिकवादसे मुक्ति वा सुख माने हैं। कोई चार्वाक नास्तिकतासे मुक्ति कहे हैं, देहवाद, तत्त्ववाद, वीर्यवाद, शून्यवाद-वाले भिन्न ही प्रकारके मुक्ति मान रहे हैं, और कोई, धरती=पृथ्वीमें चार धाम, चौंसठ तीर्थ आदि करके मुक्ति मानते हैं। तीर्थ स्थानको ही मुक्ति क्षेत्र ठहराये हैं। और कोई ऊपर आकाश वा शून्य, ब्रह्माण्डमें सात स्वर्ग, चौदह लोक, २१ ब्रह्माण्ड, चौदह तबक, चार आशमानमें वा सात आशमानोंमें, और शून्यमें ऊपर ही जैनियोंने चन्द्रमुक्तशिला ठहराये हैं। कोई अनन्त योजनोंके ऊपर सत्यलोक, सत्य पुरुषके पासमें मुक्तिकी धाम माने हैं। परन्तु, यही सब इत्यादि

प्रकारकी विचित्र मुक्तिका वर्णन जो किये हैं, सो सब कोरी कल्पना, धोखा ही मात्र है। वह तो महाभ्रम बन्धनका घर है। यथार्थ मुक्ति तो मेरी चैतन्य पारख दृष्टिके सन्मुखमें हाजिर-हजूर है, और कहींपर मुक्ति ढूँढ़नेकी आवश्यकता ही नहीं है। दीठि = पारख दृष्टिसे चैतन्य जीव निज स्वयंस्वरूप ही सत्य है, ऐसा अपरोक्ष बोध होकर सम्पूर्ण जड़ाध्यास परित्याग किया, सो जीते ही जीवन्मुक्त हो गया। भवबन्धनोंसे छूट गया। यह मेरी स्वयं पारख दृष्टिकी मुक्ति ही सत्य है, और माना हुआ सब मुक्ति मिथ्या है। अतः पारख दृष्टि खोल करके जीवन्मुक्त हो जाना चाहिये। और सकल आशा, वाशा, कल्पनाको परित्याग करके निराश वर्तमानमें रहना चाहिये ॥३४४॥

साखीः— जमा अघट निघटै नहीं। बर्तै शब्द प्रमान ॥
जीव जमा जानै बिना। सबै खर्चमें जान ॥३४५॥

टीकाः— श्रीगुरुदयाल साहेब कहते हैंः— हे सन्तो! संसारमें, जमा = अखण्ड, अविनाशी, नित्य, सत्य, एकरस, चैतन्य जीव ही अपना एक खास जमा पद है, उसे "जीव जमा" कहते हैं। वह, अघट = कभी घटता-बढ़ता नहीं है, घटने लायक उसका स्वरूप नहीं है। सदा एकरस अखण्ड ही देहसे भिन्न बना रहता है। इससे, निघटै नहीं = जीवकी स्वरूपकी कभी समाप्ति, वा विनाश, खतम तो कभी होता ही नहीं है। अविनाशी सत्य वस्तुकी कभी त्रिकालमें नाश हो नहीं सकता है। इस प्रकार त्रिकालावाध्य अमर, चैतन्य जीवका स्वयं स्वरूप है। उसकी तो कभी किसी प्रकारसे कोई हानि कर नहीं सकते हैं। परन्तु, सब जीव निज पारख स्वरूपको भूले हुए हैं, इससे खानी और वाणीमें नाना कल्पित शब्द और पञ्चविषयोंकी आसक्ति सहित निज-निज समझ, कर्तव्यादिके प्रमाणसे वर्तते या चलते, कर्म करते, अध्यास टिकाते हैं। जिस मतमें जीव गया, उसीकी शब्द प्रमाणसे साधनाएँ करने लग जाते हैं। इससे जड़ाध्यासी

बद्ध हो करके आवागमनके चक्रमें ही पड़े रहते हैं। परन्तु, निज स्वयं स्वरूप जीव जमा हंसपद वा पारखपदको पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-विचार करके यथार्थ जाने, समझे बिना कभी मुक्ति स्थितिकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसलिये पारखहीन मनुष्य जितने भी प्रयत्न, मानन्दी करते हैं, सो सब खर्चमें ही जाना जाता है। अर्थात् जीवको जमा नहीं जाना है, कल्पना करके ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, खुदा, अल्लाह, देवी, देवता, इत्यादिको जमा, सत्य, कल्याण-कर्ता, मुक्तिदातादि मान-मानके जितने भी साधन, त्याग, वैराग्य आदि किये और कर रहे हैं, सो सब, खर्च = नाशवान् न ठहरनेवाला होनेसे व्यर्थ है, कुछ काममें आनेवाला नहीं है। उल्टा उसी खानी, वाणीके अध्यासी होके जीव चौरासी योनियोंमें ही भटकते रहते हैं। बिना पारख किसीकी निस्तार नहीं होती है, ऐसा विवेक करके यथार्थ जानिये ! ॥

अथवा जमा चैतन्य जीव अविनाशी है, उसका कभी नाश नहीं होता है। ऐसा पारखबोध पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा जान करके सारशब्द निर्णयके प्रमाणसे हंस रहनी-रहस्यको पूर्णतासे धारण-कर निराश, निवृत्ति वर्तमानमें वर्तना चाहिये। तभी यथार्थ जीवन्मुक्ति होयगी। और जीव जमा जाने बिना, किया हुआ सब प्रयत्न बेकामकी खर्चमें ही होती है, सो जानिये। वह बन्धनमें ही ले जानेवाली होती है। अतः पारखी सद्गुरुकी शरण-ग्रहण करके जीव जमाको जान लेना चाहिये ! ॥ ३४५ ॥

साखीः— जीव जमा सत्य साँच है। कहहिं कबीर पुकार ॥
जीव जमा जानै बिना। महाकठिन जन्म जार ॥३४६॥

॥ ❀ ॥ इति श्रीपारखी सन्त श्रीगुरुदयाल साहेबकृत श्रीकबीर-परिचय साखी मूल ग्रन्थः सम्पूर्ण-समाप्तम् ॥ ❀ ॥

टीका:— ग्रन्थकर्ता श्रीगुरुदयाल साहेब कहते हैं:— हे जिज्ञासु सन्तो! सकल संसारमें नित्य; अखण्ड, सत्य, अविनाशी, साँच वस्तु जो है, सो यही स्वयं स्वरूपी जीव जमा है। इसके ऊपर मालिक, कर्ता-ब्रह्म, ईश्वरादि कोई शिव, हितकारी नहीं है। जोवसे परे कोई सत्य वस्तु चैतन्य ही नहीं है। यह अपरोक्ष पारख निर्णय सत्यन्यायी बन्दीछोर पारख प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने स्वयं अनुभव करके फिर मुमुक्षु, जिज्ञासु मनुष्योंके हित-कल्याणके वास्ते पुकार-पुकारके कहे हैं। जो सद्ग्रन्थ बीजकमें लिखा है। सो, उसमेंका एक साखी सुनियेः—

॥ * ॥ प्रमाण ॥ बीजक मूल साखी—११ ॥ * ॥

"जो जानहु जग जोवना। जो जानहु सो जीव ॥
पानि पचावहु आपना। तो पानी माँगि न पीव ॥" ११ ॥

इत्यादि सारशब्द निर्णय गुरुमुख वाणी सद्गुरुने पुकारके बहुत-सी कहे हैं। जीव, चिरञ्जीव सदा-सर्वदा जीते रहनेवाला, सनातन, पुराण-पुरुष वही स्वयं प्रत्यक्ष जमा सत्य या साँच वस्तु है। ऐसा समझ-बूझके जो मनुष्य अन्य मिथ्या मनकी मानन्दीको छोड़कर हंस रहनी संयुक्त निजपदमें स्थिर हो जाते हैं, वे भव-बन्धनोंसे छूटकर जीते ही मुक्त हो जाते हैं। बारम्बार उन्हें ही धन्य-धन्य है। उन्होंने ही नरजन्म पानेका सार सफल किये हैं, ऐसा जानिये! और कर्म-भूमिकारूप नर-देहको पाकरके भी जिन्होंने निज स्वरूप जीव जमाको जाने नहीं, और नाना प्रकारकी मानन्दी कर-करके ब्रह्मानन्द, विषयानन्द आदि विजातीय सुखाध्यास, अहन्ता, ममतामें ही भूले रहे। खानी-वाणीकी महाजालोंमें अरुझके भटकते रहे, वे सब मनुष्य जीव जमाको जाने बिना भ्रमिक जड़ाध्यासी हो करके, महा-कठिन = छूटनेको अत्यन्त मुश्किल ऐसे बड़ा भारी मोटी-झीनी फन्दोंमें पड़के जन्म, मरण, गर्भवास, त्रयताप आदिकी दुस्सह

दुःखोंमें बेजार, परवश होके गिर पड़े। और अभी भी अध्यासी जीव सब वही जन्मजारमें बेहाल व्याकुल हो करके कर्मानुसार सब कोई नाना-देह धारणकर दुःख भोग रहे हैं। अतएव मुमुक्षुओंने अभी पारखी श्रीसद्गुरुकी शरण-ग्रहण करके निज पारख स्वरूपमें, स्थिति कायम कर सब अध्यासोंको मिटाय, जाग्रत्, शान्त, निर्भ्रान्त, जीवन्मुक्त हो जाना चाहिये! यही नरजीवोंका मुख्य कर्तव्य है, यही और ग्रन्थका सार भावार्थ है; ऐसा जान लीजिये! ॥ ३४६ ॥

॥ ❀ ॥ टीकाकार कृत ग्रन्थ समाप्तिका मङ्गल—दोहा ॥ ❀ ॥

श्रीकबीर परिचय यही। साखी ग्रन्थ समाप्त ॥
सद्गुरु पद त्रय बन्दगी। भो टीका पर्याप्त ॥ १ ॥

श्रेय श्री सो श्रेष्ठता। पारख गुरुमत धीर ॥
काया वीर कबीर जिव। बन्दीछोर कबीर ॥ २ ॥

पारख प्रकाशी सद्गुरु। आदि अदल कबीर ॥
परखायो सब जालको। मेट्यो कालकी पीर ॥ ३ ॥

बिनु पारख जाने नहीं। जीव कबीर सत सार ॥
मानि-मानि भूले सकल। भटकत बारम्बार ॥ ४ ॥

सो पारख परिचय कियो। गुण लक्षण कहि दीन्ह ॥
अस्ति-नास्ति समुझायके। निज पद पारख चीन्ह ॥ ५ ॥

साखी साक्षी जानिये। खानि-वाणि तकरार ॥
जगत ब्रह्मलों ,जो अहै। मन मानन्दि विकार ॥ ६ ॥

हंस साक्षी सब जानता। पारख दृष्टि खोल ॥
सारशब्द टकसार पद। गुरुमुख निर्णय बोल ॥ ७ ॥

'साखी आँखी ज्ञानकी'। सद्गुरु वचन प्रमाण ॥
सत्सङ्गतमें ठहरि लखे। सारासार पिछान ॥ ८ ॥

पारख परिचय बीजक । गुरुमुख वाणी सार ॥
मनन ग्रहण करि पारखी । सन्त भये भव पार ॥ ९ ॥

पारखी गुरु परम्परा । सत्यज्ञान परकाश ॥
गुरुवन धोख मिटायके । भास अध्यास विनाश ॥ १० ॥

श्रीगुरुदयाल साहेब । पारखी सन्त सुजान ॥
बीजक पारख ज्ञान दृढ़ । सकलो कीन्ह पिछान ॥ ११ ॥

गुरुवाकेरी जाल अमित । फँसे सकल नर जीव ॥
दहुँ दिश धावैं विरहमें । गोहरावैं पीव-पीव ! ॥ १२ ॥

इत-उत व्याकुल भटकते । सूझै वार न पार ॥
अन्धधुन्द बढ़ि जावते । बहै घोर अन्धार ॥ १३ ॥

अस बहुतेरी दुर्दशा । देखा गुरुदयाल ! ॥
कृपा दृष्टि परखाय सब । भूल भ्रम्मको टाल ॥ १४ ॥

मतवादी जस मान्यता । खरा-खोट पहिचान ॥
कबीरपरिचय साखीमें । पारख गुरुका ज्ञान ॥ १५ ॥

निर्णय न्याय कसौटिमें । कसिया सब सिद्धान्त ॥
खरा जीव पद ठहरके । और सकल मत भ्रान्त ॥ १६ ॥

यहिविधि गुरु परिचय दिये । जानो सन्त सुजान ! ॥
निज स्वरूप स्थिति कीजिये । त्यागि सकल अज्ञान ॥ १७ ॥

गुरुदयाल कृत परिचय । साखी मूल प्रमाण ॥
रामस्वरूप टीका किया । गुरुमुख भाव प्रमाण ॥ १८ ॥

श्रीकबीर निर्णय मन्दिर । नागझिरी शुभ धाम ॥
बुरहानपुर प्रसिद्ध है । पारखी सन्त मुकाम ॥ १९ ॥

पूरणसाहेब पारखी । आचार्य गुरुमत धीर ॥
परखायो गुरु पारख । बीजक ज्ञान कबीर ॥ २० ॥

बीजक अर्थ पढ़ावते । पञ्चग्रन्थी पुनि साथ ॥
परिचय साखी आदिकी । बोध कियो गुरु नाथ ! ॥ २१ ॥

श्रीलालसाहेब सद्गुरु ! उनसे पढ़िया अर्थ ॥
रामस्वरूपदास अब । टीका लिखि सामर्थ ॥ २२ ॥

जिज्ञासु सब सन्तको । अर्थ सुनाऊँ वर्तमान ॥
सन्तन लाभ भविष्यको । टीका यहि गुरुज्ञान ॥ २३ ॥

नाशवान यह देह है । कबहुँक तो छुटि जाय ॥
पारख भाव प्रसिद्ध हो । यही ध्येय मन माय ॥ २४ ॥

और नहीं कछु चाहना । सबके हो कल्याण ॥
पारख पदमें अटलता । जीवन्मुक्त प्रमाण ॥ २५ ॥

बन्दीछोर कबीर गुरु ! पूरण साहेब लाल ! ॥
पारखि सन्त गुरुपद । बन्दौं गुरू दयाल ! ॥ २६ ॥

रामस्वरूपदास तुम । गुरु पारख दृढ होहु ॥
मानन्दी अध्यास तजि । जीवन सुफल करेहु ॥ २७ ॥

युग सहस्र वसु सम्वत । कार्तिक शुक्ल दशमी तिथी॥
गुरुवार सन् पाँच इक । नवम्बर दिन आठ इति ॥ २८ ॥

याकी टीका समाप्त भया । गुरुकी दयाते आज ॥
रामस्वरूप पारख गहू । होवै ताहिते काज ॥ २९ ॥

॥ ❀ ॥ इति श्रीनिर्णयसारादि संयुक्त षट्ग्रन्थे— श्रीकबीरपरिचय साखी, पञ्चम ग्रन्थस्य— रामस्वरूपदास, अनुवादित— पारख सिद्धान्त दर्शिनी भ्रम विध्वंशिनी सरल टीका सहित, सम्पूर्णम्-समाप्तम् ॥ ५ ॥ ❀ ॥
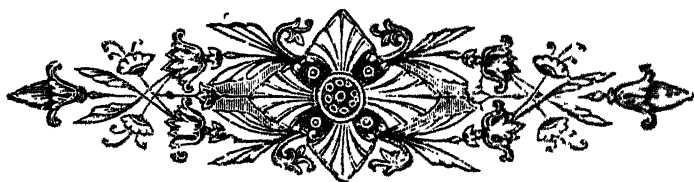
॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ दयागुरुकी ॥ ❀ ॥

॥ अथ लिख्यते संयुक्त निर्णयसारादि षट् ग्रन्थः ॥

॥❀॥ सत्यन्यायी पारखनिष्ठ पारखी सन्त, साधु शिरोमणि—॥❀॥

सद्गुरु श्रीगुरुदयालसाहेब विरचित—

एकादश शब्द नामक षष्ठ ग्रन्थः प्रारम्भः ६

[पारख सिद्धान्त दर्शिनी भ्रम विध्वंशिनी सरल टीका सहित ।]

॥ ❀ ॥ टीकाकारकृत मङ्गलाचरणम् श्रीसद्गुरुपद वन्दना ॥ ❀ ॥

साखीः—श्रीकबीर पारखी गुरु! बन्दौं प्रथम महान ॥
सकलो सन्त समाजमें । सर्वोपरी जहान ॥ १ ॥
अतिशय भारी गुरुपद । पारख पद सो चीन्ह ॥
दया कबीर गुरु साहेब! जगमें परगट कीन्ह ॥ २ ॥
पारखी गुरु परखायके । सब भ्रम कीन्ह विनाश ॥
निजस्वरूप स्थिति पायं जीव । मुक्त भये नहिं आश ॥ ३ ॥
कल्पित धोखा जाल अमित । गुरुवनके विस्तार ॥
फँसे जीव सकलो तहाँ । गुरु पारखी भव पार ॥ ४ ॥

साखीः—गुरुदयाल दया करी । धोख कल्पना टाल ॥
एकादश यहि शब्दमें । दर्शायो सब जाल ॥ ५ ॥
जगकर्ता संशय अहै । साखी न जानै भेद ॥
कर्म न चीन्है बावरे ! जैनी भ्रममें खेद ॥ ६ ॥

प्रेरक प्रेरे भर्ममें । शब्द न साधै कोय ॥
मुक्ति केरी आशमें । दुनियाँ जाय बिगोय ॥ ७ ॥
राम कहै धोखा बहै । बीबी जाल फन्दान् ॥
परख शब्द टकसार बिन । हंसा सबहिं भुलान् ॥ ८ ॥

सो करि शब्द विस्तारयुत । परखायो गुरुज्ञान ॥
गुरुदयाल निर्णय कह्यो । सारशब्द परमान ॥ ९ ॥
रामस्वरूप सोई मूलकी । कहूँ टीका विस्तार ॥
पाठन अर्थ प्रमाण सो । लेख लिखौं सो सार ॥ १० ॥

शब्द सरल आहैं तदपि । भाव छिपा तहाँ गूढ़ ॥
गुरुमुख कुञ्जी खोल विनु । भेद न जानै मूढ़ ॥ ११ ॥
वर्तमानमें रामस्वरूप । सन्त पढैं यहाँ आय ॥
टीका होय भविष्यको । परम्परा ठहराय ॥ १२ ॥

बोध दाता साधु गुरु । बन्दगी पद त्रयबार ॥
रामस्वरूपदास सदा । गुरुकी दया आधार ॥ १३ ॥
धन्य ! धन्य ! पारखी गुरु ! सद्गुरु बन्दीछोर ! ॥
रामस्वरूप ठहरायके । मुक्त कियो घनघोर ॥ १४ ॥

विघ्न निवारण मङ्गल । गुरुपद सुखकी खान ॥
रामस्वरूप बन्दौं गुरु ! पारख ज्ञान निधान ॥ १५ ॥
गुरु गुणके स्मरण किये । मन विक्षेपको नाश ॥
रामस्वरूप स्थिरता हिये । पारख बोध उजाश ॥ १६ ॥
इन्द्रीदश मन एक मिलि । एकादश तन जाल ॥
सो घेरा बिच जीव सदा । बन्धे मन सोइ काल ॥ १७ ॥

साखीः— माया प्रकृति एकादश । जाल कठिन विस्तार ॥
ग्यारह शब्द कहिके यहाँ । गुरुदयाल उद्धार ॥ १८ ॥
गुरु कबीर उपकार बड़ । दीन्हा पारख बोध ॥
रामस्वरूप गुण गाऊँ सदा । निज-पर मनहिं प्रबोध ॥ १९ ॥
युग सहस्र वसु सम्वत । चैत्र कृष्ण तिथि आठ ॥
शुरू टीका बुधवासर । रामस्वरूप लिख पाठ ॥ २० ॥
॥ ❀ ॥ इति आदि मङ्गलाचरण पद समाप्तम् ॥ ❀ ॥

॥ अथ मूल ग्रन्थः ग्यारह शब्द सटीक प्रारम्भः ॥

॥ ❀ ॥ प्रथम-शब्द ॥ १ ॥ ❀ ॥

पण्डित ! मोहिं कहो समुझाई ! ॥ १ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः— [संसारमें ज्ञानी-अज्ञानी, और मूर्ख तथा पण्डित सब कोईने अनुमान-कल्पनासे कोई एक जगत्का कर्ता मान रखे हैं, उस बारेमें तहाँ ग्रन्थकर्ता पण्डितोंसे पूछते हैं किः—]

हे पण्डित ! हे ज्ञानी ! बुद्धिमान् विद्वान् लोगो ! आप अपने समझ बोधका निर्णय मुझसे वा मुझे समझाय-बुझायके ठीक-ठीकसे कहिये कि— ॥ १ ॥

जगको कर्ता काहि बतावो । कासों सृष्टि उपाई ? ॥ टेक ॥ २ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— चराचर जगत्को उत्पन्न करनेवाला कोई एक कर्तापुरुष है, ऐसा जो आप लोग अनुमानसे मानते हो, तो बताओ ! वह ऐसा विचित्र कर्तापुरुष आप किसको बतलाते हो ? उसका रूप, रङ्ग, आकार, प्रकार, गुण, लक्षण क्या है ? कैसा है ? वह कर्ता कहाँ रहता है ? और, सृष्टि = यह सारा संसार प्रथम नहीं था, तो पीछेसे सृष्टि किसके द्वारा किस तरहसे

उत्पन्न हुयी? कहाँसे उत्पन्न होके आयी? इस बारेमें आप लोग क्या मानते हो? सो हमें भी समझाके कहो? वास्तवमें जड़-चैतन्य-रूप यह जगत् तो अनादि कालका स्वतः ही है। जिसके आदि कर्ता न हो, सोई अनादि होता है। फिर कहो तो भला! ऐसे जगत्का कर्ता तुम किसको-किस प्रकारसे बतलाते हो? और जड़-सृष्टि तथा चैतन्य-सृष्टि किससे उत्पन्न भयी है? यहाँ तो नरजीवोंसे ही वाणी-खानीकी सृष्टि भयी है, यह न जानके और ही जगत् कर्ता मानके कई मनुष्य धोखामें पड़के भूल रहे हैं। उसे सत्सङ्ग द्वारा समझना चाहिये। यह शब्दका टेक या ठहरावमें गुरुवा लोगोंकी मुख्य टेकके बारेमें प्रश्नरूपसे दरशाया गया है। ऐसा जानना चाहिये ॥ २ ॥

मच्छ कच्छ बराह नरसिंहहि। सतयुग वरणहु चारी ॥ ३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! ये पौराणिक पण्डित लोग चार युगोंमें मिलायके मुख्य दश अवतार प्रगट होनेको मानते हैं। तहाँ उनसे ही पूछते हैं कि— हे पण्डित! चार युगरूप जगत्में ही समय-समयपर अवतार होनेको तुम लोग मानते हो। प्रथम सत्ययुगमें मुख्य चार अवतार होनेका वर्णन किये हो। उसमें, मच्छ=१. मत्स्य अवतारः—(भागवतादि ग्रन्थोंमें लिखा है कि—) जब सृष्टिके पहले विष्णुके नाभिकमलमेंसे ब्रह्माजी चार हाथोंमें चार वेदोंका पुस्तक लिये हुए प्रगट भये, और उन वेदोंको वे पढ़ने लगे थे, इतनेमें शङ्खमें रहनेवाला शङ्खासुर नामक दानव आके ब्रह्माके हाथोंसे जबरदस्तीसे चार वेदोंका पुस्तक छीनके समुद्रमें भाग गया। तब ब्रह्माने शोकसे विह्वल होके रो-रोके विष्णुको पुकारा करते भये, फिर विष्णुने शङ्खासुर द्वारा वेदोंके छीने जानेका हाल जानकर उस वक्त मछलीका रूप बनाकर महामत्स्यका अवतार-से उस शङ्खासुरका पीछा किया। तब उसने वेदोंके पुस्तकोंके पृष्ठोंको समुद्रके पानीमें छिटकाके फेंक दिया, और वह भागा। परन्तु, मत्स्य-

अवतारने उसपर धावा करके उसे मार डाला। पश्चात् समुद्रमें तैरते हुए वेदोंके पृष्ठोंको बटोर करके लाया, पुनः वह वेद ब्रह्माको सौंपकर सुरक्षित रखनेको बतलाकर चला गया, इत्यादि इसके बारेमें पुराणोंमें कल्पित कथा लिखी हुई है। दूसरा, २. कच्छ= कच्छप (कूर्म) अवतारः— देवता और दानव मिलकर समुद्र मथन करते समय मन्दराचल पहाड़के नीचे आधार न होनेसे डूबने लगा था, तब उन सबोंके प्रार्थना करनेपर विष्णुके विशालकाय अवतारी कछुवेने समुद्रके नीचे जाके पर्वतको आधार देके थामा, जिससे समुद्र मथन होके चौदह रत्न निकले, इत्यादि कल्पित कथन वर्णन भया है। ३. वराह=सूअरके रूपवाला, अवतारः— पृथ्वी महासागरमें डूबकर रसातलमें चली गयी थी, दानव लोगोंने उसे दबा रक्खा था, तब ब्रह्माके आराधनासे वराह अवतार प्रगट हुआ। सो पर्वताकाररूप धारण करके समुद्रमें गोता लगाकर नीचे चला गया, गेंद समान पृथ्वीको दोनों दाढ़ोंके बीचमें उठाके ऊपर ले आया। उस वक्त हिरण्याक्ष दैत्यने रुकावट डाला, और लड़ने लगा। युद्धमें उस हिरण्याक्षको मार करके वराहने पृथ्वीको लाके उसके पूर्व जगहमें स्थापित कर दिया, और ब्रह्माको उसपर सृष्टि उत्पन्न करनेकी आज्ञा देकर गायब हो गया, इत्यादि कल्पित कथा कहा है। और चौथा अवतार, नरसिंह=४. नृसिंहः— जिसने कटिके नीचे आधा भाग मनुष्यका तथा ऊपर आधा भाग सिंह जानवर (पशु) का ऐसा कपटसे छद्मरूप बनाके खम्बा फोड़कर प्रगट हुआ, और हिरण्यकशिपु दैत्यको पकड़कर नाखूनोंसे उसका पेट फाड़के मार-डाला, और भक्त प्रह्लादको बचाया, इत्यादि कल्पित कथा पुराणोंमें वर्णन किया है। इस प्रकारसे मच्छ, कच्छ, वराह और नरसिंह नामसे यही चार अवतार सत्य युगमें हुए हैं, ऐसा तुम्हीं गुरुवा लोग पुराणोंको पढ़-पढ़के कल्पनाका विस्तार बढ़ाके वर्णन करते हो, सो ऐसे कल्पित कथाका वर्णन कर ही रहे हो ॥ ३ ॥

बावन परशुराम औ रामहि । त्रेता तीन विचारी ॥ ४ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—और तैसे ही ५. वामन अवतारः—राजा बलिके अति दानमें विघ्न करनेके लिये हुआ था। बावन अंगुलका इतना बड़ा आकारवाला ब्राह्मण पुत्रने ब्रह्मचारीके रूपमें जाके बलि राजाके यज्ञमें खड़ा हुआ। फिर छल, बल, कपटसे तीन हाथमात्र पृथ्वी दानमें माँगकर सङ्कल्प करायके फिर बलिको धोखा देके तीनलोक नाप लेनेका नाटक किया। फिर वचनबद्ध बलिको बाँधके पाताल लोकमें रहनेको भेज दिया। ऐसा कपट जालका पसारा किया, इत्यादि कहा है। ६. परशुराम अवतारः— जमदग्नि मुनिके छोटे पुत्रका नाम परशुराम था। एक समयमें उसने पिताके आज्ञासे माता, और भाइयोंका शिर भी काट लिया था, और राजा सहस्रबाहुने जमदग्निका कामधेनु छीनके ले गया था, किन्तु गाय भागके उनके ही पास आगयी, तब मौका पाके राजाके सिपाही लोग आके जमदग्निके शिर काटके गाय लेके चले गये। पीछे परशुराम आये, और पिताके हत्या होनेमें कारण पूर्वोक्त वह सब बातको जान करके अति क्रुद्ध होके फरशा उठाके लड़नेके लिये चल पड़े। फिर युक्ति-प्रयुक्तिसे युद्ध कर ससैन्य सहस्रबाहु राजाको मारकर और अनेकों क्षत्रियोंसे लड़-भिड़के सबोंको परास्तकर इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्री किया। पश्चात् राम, लक्ष्मणसे जनकपुरमें वाद-विवाद करके शान्त होनेपर तपस्या करनेमें लगे, इत्यादि वर्णन हुआ है, और ७. राम अवतारः— राजा दशरथकी बड़ी रानी कौशल्याके गर्भसे रामका जन्म हुआ। जनकपुत्री सीतासे विवाह किया। फिर कैकेयीके कपटसे पिताके आज्ञा होनेसे १४ वर्षके वनवासको सीता, और लक्ष्मण सहित गये। सुग्रीवसे मित्रता करके बालीका बध किया। लङ्का जानेके लिये समुद्रमें सेतु बाँधा, और युद्धमें रावण, कुम्भकर्णआदिको मारकर १४ वर्षकी अवधि पूरा होनेपर अयोध्यामें आके राज्य किया, इत्यादि रामायणादिमें वर्णन किया है। इस प्रकार वामन, परशुराम,

और राम, यही तीन अवतार त्रेतायुगमें हुआ, ऐसा पौराणिकोंने विचार किये हैं। सोई हे पण्डित! तुम लोग भी प्रमाणिक होनेका विचार करते हो। परन्तु, सत्यासत्यका निर्णय करके सारका विचार तो तुम लोग करते ही नहीं हो, यही तुम्हारा बड़ी भारी भूल है ॥ ४ ॥

कृष्ण बौद्ध द्वापर दुइ वरणहु । महिमा गावहु ताकी ॥ ५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो! ये पण्डित लोग द्वापरमें दो अवतार होनेका वर्णन करते हैं। सो ८. कृष्ण अवतारः— वसुदेवकी स्त्री देवकीके गर्भसे कृष्णने जन्म लिया। नन्द-यशोदाके यहाँ उनका पालन-पोषण हुआ। गोप स्त्रियोंसे विषय क्रीड़ा किया। पीछे कंसको मारकर लोकमें प्रसिद्ध हुआ। और अनेकों राजाओंको भी छल, बल, कपटसे मारा और मरवाया। द्वारकामें राजधानी बसाया। बहुतसी स्त्रियोंसे विवाह भी किया। महाभारतके युद्धमें भी प्रमुख रहा। अन्तमें यादव कुल संहार होनेपर कृष्ण भी उसी निमित्तसे मर गये। इत्यादि कथा महाभारत, भागवत आदिमें विस्तारसे वर्णन किया है।

९. बौद्ध अवतारः— शुद्धोदन राजाके पुत्र सिद्धार्थ, जिसका नाम गौतम बुद्ध प्रसिद्ध भया है। वे राज्य त्याग करके भिक्षु होकर भ्रमण करते रहे। उन्हींसे बौद्धधर्म स्थापित हुआ है। दूसरा हिन्दू लोग जगन्नाथको ही हाथ-पाँव बिना ठूँठा बौद्धका अवतार मानते हैं। इसने रक्तबीज दैत्यको मारा, जाति-पाँतिका भेद मिटाया, ऐसा भी कहा है। ऐसे कृष्ण और बौद्ध यही दो अवतार द्वापर युगमें हुए, ऐसा हे पण्डित लोग! तुम लोग वर्णन करते हो, और उन्हीं नव (९) अवतार वा कृष्ण, बौद्ध ये दोनोंका विशेष-विशेष महिमा-महात्म्य, गुणानुवाद, विस्तारसे वर्णन करके गाते हो, और उनके जड़-मूर्तिका दर्शन करनेके लिये जहाँ-तहाँ धाम, क्षेत्रोंमें, तीर्थोंमें जाके ताकते वा तकाते हो, तुम लोग तो ऐसे भ्रम चक्रमें पड़े हो ॥ ५ ॥

नौ सिक्का वोसूल दफ़्तरमें । कली निकलङ्की बाकी ॥ ६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और जैसे सरकारी, दफतर = बही-खातामें वा रजिस्टरमें कर, लगान वा टैक्सकी सरकारी सिक्का वा नकद रुपया चुकता मिलनेकी वसूली और बाकीका हिसाब दर्ज करके लिखा रहता है। जिसके आधार, प्रमाणसे बाकीका सिक्का भी वसूल किया जाता है। उसी प्रकारसे इन भ्रमिक गुरुवा लोगोंने भी उनके, दफतर = पुराण, शास्त्र आदि बही-खातारूप रजिस्टर्ड कापी वा ग्रन्थोंमें, नौ सिक्का = कलदार, सच्चा, सरकारी रुपयाके समान— मच्छसे लेके बौद्धतक, नौ अवतार उपरोक्त प्रकारसे तीन युगोंमें, वोसूल = चुकता वा पूरा हो गये, कहके उन्होंके चरित्र महिमा असम्भव कथन लिखा हुआ है। ऐसे नौ संख्यातक तो दफतरमें वसूल दर्ज हो चुका है । परन्तु एक अवतार जिसका नाम कल्की वा निष्कलङ्की है, सो होना बाकी है। वह कलियुगके किसी समयमें होगा, ऐसा कहते हैं। अर्थात् नौ अवतार तो प्रगट होके अपना-अपना कार्यकाल पूरा करके अन्तर्धान भी हो चुके हैं, और दशवाँ निष्कलङ्की अवतार होना बाकी है। सो सम्भल देशके मुरादाबादमें किसी वैष्णव ब्राह्मणकी कुवाँरी कन्यासे उत्पन्न होनेवाला है। जो कि प्रगट होके कलिञ्जर दैत्यको मारेगा, इत्यादि कपोल-कल्पनाको गुरुवा लोगोंने दृढ़ कर रखे हैं। उपरोक्त दशोंको विष्णुके प्रधान दश अवतार माने हैं। जिनके उपासनामें भक्त लोग अन्धाधुन्ध भूले पड़े हैं। वही कल्पना दृढ़ाके दूसरे लोगोंको भी भुला, भ्रमा रहे हैं ॥ ६ ॥

दफ्तर खोलै बाकी बोलै । उगरि न काहू कीन्हा ॥ ७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! ये पौराणिक भ्रमिक पण्डित गुरुवा लोग कथावाचक उपदेशक बनके अबोध जनताके बीचमें, दफतर = बहीखाता, रजिस्टर्डरूप पुराणादि ग्रन्थोंको खोलके बाँचते

वा पढ़ते, कथा सुनाते हैं। तहाँ कहते हैं कि— पहिले सत्ययुगमें मत्स्य अवतार हुआ, फिर कूर्म, वराह आदि क्रमशः नौ अवतारतक होनेका उनके जन्म, कर्म, लीला, महिमा आदि मनमाने ढङ्गसे वर्णन करनेके उपरान्त अन्तमें दशवाँ एक अवतार निष्कलङ्की होना बाकी है, ऐसा बोलते हैं, और कलियुगमें जब संसारमें चारों तरफ पाप-ही-पाप होने लगेगा, अनीति-अन्याय बढ़ जायगा, दानव समाजकी बढ़ती हो जायगी, उनमेंसे एक बड़ा अत्याचारी पापी कलिअर दैत्य सबके लिये दुःखदाई हो जायगा, तब कल्की अवतार प्रगट होके उसको संहार करेंगे, और भूमिका भार हरके धर्म-स्थापन करेंगे, अतः तुम लोग अभी विधर्मियोंसे घबराओ नहीं, परमात्माका भजन, स्मरणमें लगे रहो, तो अन्तमें भला ही होगा, इत्यादि बाकी बोलके दफ्तर खोलके लोगोंको भुलाये और भुला रहे हैं। ये गुरुवा लोगोंने किसीको भी भ्रम बन्धनोंसे छुटकारा नहीं किया। अरे भाई! उन माने हुए दश अवतारोंने, काहू = किसी जीवको भी, उगरि = छुटकारा वा मुक्त किये नहीं। फिर उन्होंकी उपासना करनेसे नर-जीवोंको क्या लाभ होगी? कुछ नहीं। अरे! वे अवतार खुद ही कर्म भोगोंसे उरिण नहीं हो सके, तो दूसरे जीवोंको क्या कैसे उरिण करेंगे? ॥ ७ ॥

कर्म पियादा सबके पीछे। संशय मसी मुख दीन्हा ॥ ८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो! शुभाशुभ कर्मरूपी, पियादा = सिपाही, अपराधी जीवोंको पकड़के चौरासी योनियोंमें डालनेके लिये सब जीवोंके पीछे-पीछे ही लगा हुआ है। अतः जिनको गुरुवा लोग दश अवतार माने हैं, वे भी चौरासी योनियोंके कर्म-भोगी बद्ध जीव ही हुए हैं। सो कैसे कि— सुनिये! मच्छ, कच्छ, दोनों जलचर अण्डज खानीके पाप भोगी जीव हैं। वराह = सूअर पशु ही है। नृसिंह = सिंहके खाल ओढ़े हुए, कोई नरपशु ही था। वामन = पाप भोगी बौना था। परशुराम— घातकी क्रूर हत्यारा

एक ब्राह्मण रहा । राम—क्षत्रिय पुत्र मोही रहा । कृष्ण—कामी, और कपटी छली रहा । बौद्ध— ठूँठा होनेसे पाप भोगी भया । कल्कीको तो घोड़ारूपमें माना है, वह अभीतक प्रगट भया नहीं है, तो कहीं चौरासी योनियोंके गर्भमें छिपा होगा । इस तरहसे उन सब अवतारोंके पीछे-पीछे उनके पूर्वजन्मके कर्म, अध्यासरूप पियादा लगा, जिसने उन सबोंको कर्मके बेड़ी-हथकड़ी डाल दिया; और उन्हें अपराधी घोषित करके न्यायाधीश कर्मने जन्म-मरणका दण्ड दिया, तहाँ, संशयरूपी मसी=काली स्याही वा कर्म-अध्यासकी कालिमा अज्ञानता उनके मुखमें वा अन्तःकरणमें पोत दिया वा स्याही लगा दिया, और चौरासी योनियोंके बन्दीखानामें डाल दिया । अब कहो ! उनके उपासक लोगोंकी कैसे भलाई होगी ? यद्यपि कर्म-कुकर्मके पियादा सबोंके पीछे लगा हुआ है । तथापि भ्रमिक वेदान्ती लोग संशयरूप वाणीके प्रमाणसे, मसी=तत्त्वमसिरूप मुख्य अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है, ऐसे मुखसे असिपद ब्रह्मका बोध दृढ़ करके भ्रम धोखाको ही पक्का कर दिये हैं । अब वर्तमानमें गुरुवा लोग सब अपने-अपने मुखमें, मसी=स्याही लीपा-पोती करके संशयका मसी सबको लगा रहे हैं । बिना पारख ॥ ८ ॥

जब एकौ अवतार न होते । तबकी गति कहु भाई ! ॥ ९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे भाई ! यदि तुम पण्डित, चतुर, समझदार हो, तो जो बात मैं तुमसे पूछता हूँ, उसका उत्तर ठीक-ठीकसे बताओ ! तुम्हारे पूर्वोक्त कथनसे सत्ययुगमें चार अवतार, त्रेतामें तीन, द्वापरमें दो और कलियुगमें एक अवतार होते हैं । उनकी कथा कहके तुम मुक्ति बतलाते हो । अब यह बताओ कि— जब सत्ययुगके पहले एक भी अवतार संसारमें उत्पन्न नहीं हुआ था, तब उस वक्त जीवोंकी गति-मुक्ति होती थी कि नहीं ? हे भाई ! तब उस वक्त जीवोंकी क्या, कैसे गति होती थी ? सो खुलासा करके कहो । जब तुम कहते हो कि— भगवान् ही एकमात्र जीवोंके गति,

मुक्ति करनेवाले हैं। धर्मके हानि होने पर दुष्टोंके संहार और भक्तोंके रक्षाके लिये अवतार होता है। यह तो पीछेकी बात भयी। इससे प्रथम अवतारोंकी ही जब उत्पत्ति नहीं हुई थी, तबकी गति, हाल-चाल क्या कैसी थी ? सो वह मूलकी बात कहो ? ॥ ९ ॥

की पूरब की अगति जीव सब। की बीचहिं सुगति सुपाई ॥१०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे कर्तावादी ! यह बताओ ! की = अथवा पूर्व वा प्राचीनकालमें अवतारोंकी उत्पत्ति होनेसे पहिले सब जीवोंको एक समान, अगति = अधोगति वा नरकवास ही होता था, वा सुगति, मुक्त भी होता था कि नहीं ? की = अथवा पहले जबतक अवतार संसारमें प्रगट नहीं हुआ था, तबतक सब जीव दुर्गतिसे भवबन्धनोंमें पड़े थे, और बीचमें एकाएक मत्स्यादि अवतार प्रगट होके विचित्र-विचित्र कर्म-कुकर्मकी लीला किये। जिसे कपोल कल्पनासे-मनगढ़न्त कथा, पुराणोंमें गुरुवा लोगोंने लिखे, सुनाये, जिससे जगत् जीवोंने उसे सुनके, गुण गाके, तब बीचहिंमें अच्छी तरहसे, सुगति = मुक्ति पाते भये, ऐसे कहते हो क्या ? यदि ऐसा ही है, कहके मानते हो, तो सुनो ! तुम जिन्होंको अवतारी पुरुष मानते हो, वे तो चारखानीके कर्म-भोगी जीव हैं। उन्होंने ही पहिलेके, और किसी अवतारोंकी कथा न सुना होनेसे उनके भी तो मुक्ति नहीं भयी होगी। उनके काम, क्रोध, लोभ, मोहादि कुकर्मसे वे स्वयं ही बन्धनोंमें पड़े, मुक्त नहीं हो सके। तो फिर उन्होंके कुकर्मोंकी लीला, कथा सुननेसे नाम स्मरण करनेसे बीचमें दूसरे जीवोंको कैसे सुगति वा गति-मुक्ति मिल सकती है, कभी नहीं मिल सकती है। अतः अवतारादिसे गति मानना, सरासर महाअज्ञानता है। जीव स्वयं अपने स्वरूपको भूलके कर्म बन्धनोंमें पड़े हैं, और सद्गुरुकी दयासे पारखबोध होनेपर नरदेहके बीचमें ही स्वयं मुक्त हो जाते हैं। ऐसा जानके सत्सङ्गमें लगना चाहिये ॥ १० ॥

जगत आदि अवतार मध्यमें । कृतम कर्ता मानी ॥ ११ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! विचार करके देखिये ! ये ईश्वरादि जगत्कर्ता माननेवाले बड़े अविवेकी हुए, और हो रहे हैं । जिस जगत्की ये उत्पत्ति कथन किये हैं, सो पाँच तत्त्वके ब्रह्माण्ड वा संसार तो, आदि = सर्व प्रथमसे ही ज्योंका-त्यों मौजूद रहा ही हुआ है, और उसी आदि जगत्के मध्यमें समय-समयपर ब्रह्मा, विष्णु, महेश पैदा भये, बढ़े, नाना कर्त्तव्य किये, अन्तमें वे सब मर भी गये । तैसे ही माने हुए मत्स्य, कूर्म आदि दश अवतार भी संसारमें बीच-बीचमें हो उत्पन्न हुये, तथा कर्म-कुकर्म करके समय पायके वे सब भी नाश हो गये । फिर कहो तो भला ! उन अवतारों-को जगत्की सृष्टिकर्ता, धर्ता, हर्ता कैसे मानना ? जगत्के मध्यमें वे पैदा भये, तब जगत् प्रथम आदिसे ही रहा । फिर मध्यवालेको आदि जगत्का कर्ता मानना कितनी बड़ी भूलकी बात है ? अरे भाई ! इन अविवेकी पण्डित गुरुवा लोगोंने तो, कृतम = नकली, कल्पना, असत्यवाणीको ही, कर्ता = मालिक, सत्य चैतन्य मान लिये हैं । कृतमको कर्ता माननेवाले इन्होंमें कुछ भी सच्ची समझ बुद्धि नहीं है । पहिले तो मत्स्यादिको अवतार माना हुआ ही मन-गढ़न्त कोरी कल्पनामात्र है । सो भी पीछेसे पैदा भये हैं, उन्हें ही चराचर जगत्का कर्ता मानना मिथ्या कृतमरूप कल्पना ही है । अतः यह बात मानने योग्य नहीं है । वाणीको बनानेवाला नरजीवकर्ता है, बिना पारख कृत्तिम वाणीको ही मान-मानके नरजीव भूल रहे हैं ॥ ११ ॥

कर्ता आदि कि मध्य चाहिये । पुत्रहि पिता बखानी ॥ १२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासुओ ! अब विचार करिये कि— जिसको जगत्कर्ता माना है, सो जगत्के आदिमें मौजूद होना चाहिये कि— कार्यरूप माना हुआ जगत्के मध्यमें वा अन्तमें प्रगट होना चाहिये ? अब आप ही न्याय, निर्णयसे सच्ची

बात कहिये ? जैसे घड़ोंका कर्ता कुम्हार घड़ोंसे प्रथम ही रहता है, तभी वह इच्छानुसार घड़ाओंको बनाता है, और प्रथम पिताके रहनेसे उसके द्वारा जो पीछेसे पैदा होता है, सो पुत्र कहलाता है। तहाँ कोई पुत्रको ही पिता बखान करे, यानी पिताका कर्ता पुत्रको माने, तो कितनी असमञ्ज मूर्खताकी बात होती है। हरहालतमें कार्य पीछेसे होता है, और कर्ता प्रथमसे ही मौजूद रहता है। परन्तु, संसार-के बीचमें पुत्ररूपसे जो दश अवतार उत्पन्न हुए, उन्हें ही अविवेकी गुरुवा लोगोंने मूढ़तासे हठ पकड़के जगत्के पिता, कर्ता, परमात्मा, भगवान्, परमेश्वर, इत्यादि नामोंसे झूठ ही महिमा बढ़ायके अठारह पुराण, शास्त्र आदि बड़े-बड़े ग्रन्थ बखान किये हैं, और वेदान्तियोंने भ्रम-से ब्रह्म वा आत्माको ही जगत्कर्ता कथन किये हैं। नरजीवकी कल्पना-से वाणी द्वारा वैखरीसे जो पैदा भया, सो ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, अवतार, आदि वाणीका कार्य अंशरूप होनेसे शब्दका पुत्ररूपमें पैदा हुआ। परन्तु, बेपारखी लोगोंने उन्हें ही पितारूपमें जगत्कर्ता ठहरा करके माने हैं। महान धोखामें गिरे पड़े हैं। उसे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गसे निर्णय करके यथार्थ जानना चाहिये ॥ १२ ॥

दश चौबीस जगतमें जन्में। जगत कहो किन कीन्हा?॥ १३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे अवतारोंको जगत्कर्ता मानने वाले लोगो! सुनो! तुम्हारा माना हुआ मच्छसे लेके कल्कीतक मुख्य दश अवतार, और १. मनु। २. नारद। ३. विष्णु (ऋषभदेव)। ४. सनकादि। ५. मोहिनी। ६. कपिल। ७. व्यास। ८. दत्तात्रेय। ९. राजापृथु। १०. हयग्रीव। ११. बद्री। १२. हंस। १३. धन्वन्तरी। और १४. यज्ञ पुरुष, ये मध्यम (गौण) चौदह अवतार, और प्रथमके दश मिलाके सब चौबीस अवतार हुए, वे तो समय-समयपर आगे-पीछे आके इसी जगत्में ही जन्मे वा जन्म लिये, तहाँ पूर्व कर्मानुसार देह धारण करके उत्पन्न भये, और सुख-दुःखादि फल भोगके आयु पूर्ण होनेपर देह छोड़के मर गये। देखो! मच्छ

अवतार होनेसे पहले सारा संसार पिण्ड-ब्रह्माण्ड रहा ही। तुम्हारे ही कथनसे विष्णु, ब्रह्मा, शेषनाग, लक्ष्मी आदि स्त्री-पुरुष सब रहे ही। समुद्र, पृथ्वी आदि भी रहा, सूर्य, चन्द्रादि खगोल भी रहे, वेदोंकी पुस्तक, ताड़ पत्रादिमें लिखा हुआ ब्रह्माके पासमें रहा, और शङ्खासुर आदि विरोधी पार्टीके लोग भी रहे। ऐसे महा ब्रह्माण्डमें पीछेसे कहीं तुम्हारे मच्छ अवतारने जन्म लिया। इसी प्रकार कच्छ, वराह आदि सब देहधारी अवतार कर्मानुसार पीछेसे ही पैदा होते भये। अब जरा सोच-विचारके कहो कि— इस पाँच तत्त्वके ब्रह्माण्डरूप जगत्को किसने, कैसे उत्पन्न किया? क्योंकि, तुम्हारे चौबीसों अवतारोंके जन्म होनेके पहिलेसे ही सारा जगत् ज्यों-का-त्यों ही था। फिर पूर्वमें जगत्को सृष्टिको किसने किया? यदि पाँच तत्त्व नहीं थे, तो वह कहाँ रहता था? पाँच तत्त्व कहाँसे लाया? अभावसे भावकी उत्पत्ति तो नहीं हो सकती है। अतः तुम्हारा जगत्कर्ता मानना निरर्थक होनेसे मिथ्या है ॥ १३ ॥

कौन रूप कर्ताको कहिये। मोहि बतावो चीन्हा? ॥ १४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— अगर तुम हठ करके जगत्का कर्ता कोई मानते ही हो, तो हे कर्तावादी! उस कर्ताका स्वरूप कहो कैसा है? साकार है कि— निराकार है? एकदेशी है कि— सर्वदेशी है? दृश्य है कि— अदृश्य है? देहधारी है कि— विदेह है? जड़ है कि— चैतन्य है? अब कहिये! उस कर्ताका कौन रूप है? आकार, प्रकार, गुण, लक्षण उसका क्या कैसा है? क्या तुमने कर्ताको जगत् उत्पत्ति करते हुए अपने आँखोंसे देखा है? कौनसी चीज पहिले नहीं थी, जिसे कर्ताने उत्पन्न किया? क्या आकाश और वायु नहीं थे? कि अग्नि, जल, पृथ्वी नहीं थी, यदि ये तत्त्व नहीं थे, तो तुम और तुम्हारे इष्टकर्ता कहाँ ठहरे थे? और कर्ताको सृष्टि करते हुये तुमने नहीं देखा है, तो फिर तुमने किस प्रमाणसे मान लिया कि— जगत्का कोई कर्ता है? और

कहो अभी वह कर्ता जीवित है कि नहीं ? कि मर गया है? अरे भाई ! कर्ताका कौन रूप कहते हो ? सो उसका चिन्ह वा लक्षण पहिचान करनेकी निशानी ठीक-ठीक खुलासा करके मुझे बताओ, समझावो; फिर मैं तुम्हें उसमेंकी कसर-खोट निर्णय करके बतलाऊँगा। पहिले तुम मुझे उसका चिन्ह बतलावो ॥ १४ ॥

ब्रह्म कि इच्छा जगत कि उत्पति । गावो गाल बजाई ॥ १५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— (ऊपरके चौपाईमें कर्ताका चिन्ह पूछे थे, उस बारेमें कर्तावादी कहते हैं कि— देखो ! महाराज ! आपने जो पूछे हैं, उसका उत्तर हम थोड़ेसेमें कह देते हैंः—) परब्रह्म, परमात्माकी स्वयं इच्छा मात्रसे यह सारे चराचर जगत्की उत्पत्ति हुयी है। ब्रह्म-परमात्मा सर्वशक्तिमान् है, वह जो चाहे सो कर सकता है, उसके लिये कोई बात कठिन वा असम्भव नहीं है। उसका रूप— निराकार, निर्गुण है, परन्तु आवश्यकता पड़नेपर वही जगत्कर्ता अपने इच्छासे साकार रूपमें अवतार धारण करके भी प्रगट होता है, लीला पूर्ण होनेपर फिर निराकारमें ही समा जाता है, इत्यादि वेद, शास्त्र, पुराण आदि धर्म ग्रन्थोंमें लिखा है, वही बात हम प्रमाण मानते हैं, इत्यादि उत्तर कहा। तहाँ ग्रन्थकर्ता फिर कहते हैं कि— हे कर्तावादी ! तुमने, ब्रह्मकी इच्छासे जगत्की उत्पत्ति होती है, ऐसा जो अभी कहा, सो तुम्हारा गाल बजाना निरर्थक है। अरे ! जो बात तुम गाल बजाय-बजायके राग-तानसे अलापते गाते हो, सो तो मिथ्या धोखा है, और जिसका तुम गुण गाते हो, उसमें तो कुछ भी सार नहीं है, असार है। भ्रमिक होके अभी तुम गाल बजायके मनमाने जो कुछ भी गाओ। परन्तु, उससे तुम्हारा कुछ भी लाभ होनेका नहीं, आखिरमें हाथ कुछ नहीं आयेगा, जड़ाध्यासी होके देह छूटनेपर चौरासी योनियोंमें ही चले जाओगे ॥ १५ ॥

ब्रह्म शब्द नपुंसक वरणहु। कौने अकिल चोराई ?॥ १६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे कर्ता ब्रह्मवादी! तुम बड़े अविवेकी मूढ़ बने हो। शब्दके अर्थपर तो तुम लोग कुछ भी ख्याल नहीं रखते हो। मनमाने वैसे वकते जाते हो, इसपर भी पण्डित होनेकी दम्भ पकड़ते हो। सुनो! व्याकरणकी रीतिसे "ब्रह्म" यह शब्दको पुरुषत्त्व लिङ्गसे हीन, क्लीव यानी नपुंसक-लिङ्गवाला अर्थात् हिंजड़ा वर्णन किया गया है, और कभी तो तुम खुद ही ब्रह्म शब्दको नपुंसक=निरिच्छ, निष्क्रय, निर्गुण, निराकार वर्णन करते हो। फिर पीछेसे उस बातको भुलाकर ब्रह्मकी इच्छासे ही जगत्की उत्पत्तिकी कथन गाल बजाय-बजायके कहते हो। अरे भाई! तुम्हारी बुद्धि-विचारको वा अक्लको किसने चुरा लिया है, वा कहाँ गायब हो गया है ? जैसे नपुंसकमें सम्भोग करके सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा शक्ति प्रगट नहीं हो सकती है, उस बारेमें वह असक्त निकम्मा रहता है। तैसे ही प्रकृति-पुरुषसे परे माना हुआ ब्रह्म नपुंसक है, देहरहित निर्गुण, निराकार है, तो फिर उसमें जगत् उत्पत्ति करनेकी इच्छा कैसे, कहाँसे आयेगी ? देह-इन्द्रिय, चित्त-चतुष्टयके बिना भी कहीं इच्छा हो सकती है ? कदापि नहीं। अब कहो! तुम कितने बड़े भारी भूलमें पड़े हो ? गुरुवा और कल्पनारूपी चोरोंने तुम्हारे अक्ल, समझ, बुद्धिरूपी पूँजीको चुराके तुम्हें मूँजी, उल्लू ही बना दिया है, अब तो भी ख्याल करो, चेतो कि— तुम्हारे अक्लको किसने हरण किया है ? ॥ १६ ॥

एकै ईश सकल घट व्यापिक। श्रुति कहै आवै न जाई ॥ १७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु सन्तो! अब ईश्वरवादी, वेदवादीकी कथन सिद्धान्त भी सुन लीजिये! एक परमेश्वर कर्ता पुरुष है, वह ईश्वर एक ही सकल घटोंघट चराचर विश्वमें सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है। अखण्ड निरन्तर एकरस, ओत-प्रोत भरा हुआ होनेसे वह कहींसे आता भी नहीं, और कहीं जाता

भी नहीं है। निराकार आकाशवत् ज्यों-का-त्यों सदा व्यापक बना ही रहता है। ऐसा वेदमें लिखा है। सोई बात श्रुति प्रमाणसे पण्डित लोग कहते हैं, वा कहे हैं, और कह रहे हैं॥ १७॥

जबहिं जीव यह काया त्यागै। ईशहि अछत गन्धाई॥ १८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! अब उस बातमें विचार कर लीजिये कि— ईश्वर सर्वव्यापक है, तो प्रथम, जीव इस शरीरको छोड़ करके कैसे और क्यों, कहाँ निकल जाता है? दूसरा, जब यह कायाको त्याग करके जीव निकल जाता है, तब शरीर मुर्दा हो जाता है, सो क्यों होता है? तीसरा, ईश्वर सर्वत्र व्यापक होनेसे जीवके देह छोड़नेपर मुर्दा देहमें भी उस ईश्वरके अस्तित्त्व व्यापक गुण तो कायम ही रहता है, फिर उस शक्तिमान् ईश्वरके मौजूद रहते हुए भी शरीर सड़ने, गलने लगना, देहमेंसे दुर्गन्ध फैलना, विनाश होना, ऐसा क्यों होने लग जाता है? जीव रहता है, तबतक तो देह सुन्दर ही रहता है। किन्तु, कर्म-भोग पूरा होनेपर देह छोड़के जीव निकल जाता है। तब भी तो वहाँ ईश्वर रहता ही है। फिर ईश्वरके, अछत=रहते हुए भी देह सड़कर दुर्गन्ध आने लगता है। इसीसे मालूम होता है कि— व्यापक माना हुआ ईश्वर मिथ्या कल्पनामात्र है। उसके शक्तिका प्रत्यक्ष बोध कहीं किसीको नहीं होता है, वा नहीं हो सकता है। ऐसा जान लो!॥ १८॥

ब्रह्म कि छाया वरणहु माया। सो रूप बिहून बताई॥ १९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे भ्रमिक, मिथ्यावादी, वेदान्ती लोगो! तुम लोग माया-प्रकृतिको, परब्रह्मकी छाया=प्रतिबिम्ब वा परछाँही ठहराकर कल्पित वाणीका वर्णन करते हो। और, सो= ब्रह्मको, रूप बिहून=जिसका रूप-रेखा, आकार-प्रकार कुछ भी नहीं, रूपसे रहित अरूप, यानी निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, बतलाते

हो ! और वेद, शास्त्रोंमें भी ब्रह्मको निराकार आकाशवत् ही बतलाया हुआ है। अब विचार करो कि— बिना रूपवाले शून्यका कहीं छाया वा प्रतिबिम्ब हो सकता है ? कदापि नहीं हो सकता है। इसलिये मायाको ब्रह्मकी छाया बतलाना भी सरासर मिथ्या है ॥ १९ ॥

बिना रूपको छाया नाहीं । शून्य समान सगाई ॥ २० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— क्योंकि, जहाँ कहीं भी छाया पड़ती है वा परछाँहीं दिखाई देती है। सो साकार, दृश्य रूपवान पदार्थोंका ही होता है। बिना रूप, आकार और प्रकाशके न होनेसे तो कहीं कुछ भी छाया प्रगट होती ही नहीं है। यह बात सब कोई जानते हैं। दिनमें सूर्यका प्रकाश और साकार पदार्थका सम्बन्ध पाके एक भागमें छाया पड़ता है। तैसे ही रात्रिमें दीपक, चन्द्रमा आदिके प्रकाश स्थूल पदार्थमें पड़के दूसरे तरफ छाया दिखता है। परन्तु, बिनारूपके कहा हुआ ब्रह्मके छाया त्रिकालमें हो नहीं सकता है। अतः मायाको ब्रह्मका छाया मानना सरासर भूल है। परन्तु, भ्रमिक लोग शून्य आकाशवत् ब्रह्मको निराकार मानके धोखासे उसमें, सगाई=प्रेम, प्रीतिका सम्बन्ध लगाये हैं, वृत्तिको शून्य करके निर्विकल्प शून्य समाधिमें समाये, जड़ाध्यासी भये। इसीसे देह छूटनेपर शून्य गर्भवासमें ही जाके समाते हैं, बिना पारख ॥२०॥

बाजीगर सब पोथी पण्डित ! भानमतीके कल्ला ॥ २१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे पारखहीन पण्डित लोगो ! वास्तवमें तुम सब बाजीगर वा मदारीके समान झूठा तमाशा दिखाके अज्ञानी लोगोंको भुलानेवाले ठग बने हो ! वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि तुम्हारी, सब पोथी=पुस्तक, पत्रा आदि वह इन्द्रजाल दिखलानेकी सामान सरीखी नकली हैं। और तुम्हारे अद्वैत, द्वैत, विसिष्टाद्वैत आदि सब सिद्धान्त भी सरासर, भानमतीके=ठग, धूर्त, बाजीगरके दिखाया हुआ, कल्ला=करामात, कला, कौशल,

खेल, तमाशाके सरीखी झूठीवाणी कल्पनाका कथन, प्रतिपादनमात्र भ्रम, धोखा ही भरा है । उसमें सत्य-सार कुछ भी नहीं है ॥ २१ ॥

कहहिं कबीर कोई नहिं चीन्है । सबै लोग कहैं भल्ला ॥ २२ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः—सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबका कहा हुआ सत्य सिद्धान्त पारखपद बीजकमतको कोई भी विवेक करके चीन्हते, समझते तो नहीं हैं । भूलके सब लोग झूठे भ्रममें ही लगे हैं । जैसे बाजीगरके तमाशा झूठा होनेपर भी मूर्ख लोग उसे वाह भाई ! भला, अच्छा खेल दिखाया, कहके प्रशंसाकर रुपया, पैसा इनाममें दे देते हैं; और कोई सत्य उपदेशक आया, तो उसके बात भी नहीं सुनते हैं । तैसे ही पक्षपाती, अविचारी, अज्ञानी लोग उन धूर्त गुरुवा लोगोंके कला वा चालको परखके कोई चीन्हते नहीं हैं । किन्तु, योगी, ज्ञानी, भक्त आदि किसी मतवादीके चेले होके उनका ही बड़ाई करनेमें लग जाते हैं । वाह गुरुमहाराज ! आपने अच्छा उपदेश दिये, परमात्मा प्राप्तिके लिये अच्छा, उत्तम, भला साधना बतलाये हैं, इत्यादि कहके सबै लोग, भल्ला-भल्ला = अच्छा-अच्छा पुकारके बड़ाईकी बात कहते हैं, और भ्रम धोखेमें ग्रसित होके पड़ रहे हैं । इसी-से जीव अध्यासवश आवागमन चक्रमें पड़ रहे हैं । सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबने बीजकमें जो गुरुमुख निर्णय कहे हैं, उसको ये लोग कोई चीन्हते नहीं हैं । बिना पारख सबै लोग वेद, और कुरानादिके वाणी-जालको ही अच्छा समझके भूले, और भूल रहे हैं । उसे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें अच्छी तरहसे समझके भूल मिटाना चाहिये ॥ २२ ॥

॥ ❀ ॥ द्वितीय-शब्द ॥ २ ॥ ❀ ॥

१. पण्डित ! संशय गाँठि न छोरे ! ॥ २३ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः— हे सन्तो ! ये वेद, शास्त्रोंके ज्ञाता पण्डित कहलानेवाले लोग पक्षपाती अविवेकी बने

हैं। इसीसे वे अपने हृदयसे भी संशयकी गाँठि भ्रान्तिको खोलके अध्यासको नहीं छोड़ते हैं, और दूसरे मनुष्योंके अन्तःकरणकी भ्रम-भूल भी परखाके मिटा नहीं सकते हैं। बल्कि, और भी भ्रमाके छोड़ देते हैं। अथवा हे पण्डित! तुम लोग वाणी-कल्पना कृत संशयग्रन्थीको परखके छोड़ते नहीं हो, इसीसे भवबन्धनमें ही पड़े रहते हो, तहाँ तुम्हारी पण्डिताई चालाकी कोई काममें नहीं आती है॥ २३ ॥

२. संशय सनकी गाँठ परी तेहि। दुविधा जलमें बोरे ॥टेक॥२४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— जैसे सन्, पाट, अम्बाड़ी, आदिकी रस्सी बनायी जाती है। उसमें सनसे बटी हुई रस्सीमें उलझके कहीं गाँठ पड़ जाय, कोई उसे सूखेमें न खोलके पानीमें बोरके, यानी भिगोके खोलना चाहै, तो वह और भी मजबूत गाँठ हो जायगी, इससे खुलेगी ही नहीं। उसका परिश्रम व्यर्थ हो जायगा। यदि सूखा ही खोलै, तो खुल भी जाती है। गीला होनेपर अकड़के ऐंठ जाती है, फिर वह नहीं खुलती है। इसी प्रकारसे नरजीवोंकी हृदयमें, संशय= दुविधा, सन्देह, भ्रम, भूल, अध्याससे, सनकी=सनकपना, चञ्चलता, पागलपना; विषयवासना, काम, क्रोधादि तथा कल्पनादि वाणी-खानीकी बड़ीभारी, गाँठि=उलझन, फँसाव, जालोंमें जाके जीव पड़ गया है। तहाँ उस बन्धनरूप गाँठ छुड़ानेके लिये अबोध मनुष्य सब गुरुवा लोगोंके पासमें गये। उन्होंने कर्ता परमात्मा, खुदा आदिकी दुविधामें डालके, जलमें=वेद, शास्त्र, कुरान आदिकी कल्पितवाणीमें लगाके मनुष्योंको, बोरे=भ्रममें डुबा दिये, और भी भ्रमिक जड़ाध्यासी बना दिये। अथवा सन्मुखमें खानी जाल विषयोंकी गाँठि मनमें पड़ी थी, उसे पण्डितोंने ब्रह्म, ईश्वरादिकी दुविधावाली वाणी कल्पनाके जलमें ले जाके बोर दिये। तहाँ विषय ग्रन्थीमें संशय-ग्रन्थी मिलके बन्धन, और भी मजबूत हो गया। बिना पारख इस डवल बन्धनोंसे कोई नहीं छूटे, और छूट भी नहीं सकते हैं। अतः परख करके उस संशयको मिटाना चाहिये॥ २४ ॥

३. जग उतपति कहैं एक ब्रह्मते। पुनि जगमें ब्रह्म बताई ॥२५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! पण्डितोंके वह प्रबल संशय ग्रन्थी क्या है? सो उसके बारेमें यहाँ कहते हैं, सुनिये! ब्रह्मको कर्ता माननेवाले लोग कहते हैं कि— एक ब्रह्म-परमात्मासे ही पिण्ड, ब्रह्माण्डरूप यह सारा जगत् उत्पत्ति भया है, ऐसा कहे हैं। पुनि = फिर उसी कार्यरूप जगत्में ही कारण-कर्तारूप ब्रह्मको परिपूर्ण व्यापकरूपसे रहा हुआ बताये हैं। अर्थात् गुरुवा लोगोंने ऐसा कल्पना किये हैं कि— पहले जड़, चेतनरूप जगत्पदार्थ कुछ भी नहीं था, केवल ब्रह्म निराकार था। बहुत काल बाद ब्रह्ममें स्वाभाविक इच्छा उदय भयी कि— "मैं एकसे अनेक जगत्रूपमें प्रगट हो जाऊँ।" तव उसी वक्त सारा जगत् प्रगट हो गया। फिर जगत्को देखके ब्रह्म खुश हो गया, और स्वयं भी उसी जगत्में समाके व्यापकरूपसे रह गया। उसकी लीला अपरम्पार है, इत्यादि प्रकारसे भ्रमिकोंने वताये हैं ॥ २५ ॥

४. मुक्ति कहैं ब्रह्मके जाने। फिर चौरासी आई ॥ २६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और उसी ब्रह्मको वेदान्त प्रमाणसे अद्वैत जान लेनेसे ब्रह्मज्ञानसे जीवोंकी मुक्ति हो जाती है, ऐसा भी कहे हैं। जीव-ब्रह्मकी एकता करके तहाँ "अहं ब्रह्मास्मि, एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति"— मैं ब्रह्म हूँ! एक ब्रह्म है, दूसरा कुछ नहीं; ऐसा भी कहा, तो भी ब्रह्मकी स्वभाविक इच्छासे जगत् चौरासी योनियाँ बनकर वह ब्रह्म बननेवाला जीव घूम-फिरके फिर चौरासी योनियोंके चक्रमें ही गिर-गिरके चला आता है। अब कहिये! ब्रह्मज्ञान होनेसे भी क्या लाभ हुआ? कुछनहीं। बिना विचार यही सब संशय गाँठि पड़ी है, बिना पारख वह किसीके नहीं छूटती है। ब्रह्म ही भ्रम है, तो उससे जगत्की उत्पत्ति क्या होगी? और कर्ता सदा कार्यसे न्यारा रहता है, वह कभी कार्यमें नहीं मिल सकता है, कुम्हार

घड़ा बनाके कभी घड़ामें मिल नहीं सकता है। तो ब्रह्म, जगत्में कैसे मिलेगा ? और ब्रह्म निराकार है, तो फिर वह जाननेमें क्या आयेगा ? मिथ्या मानन्दीसे मुक्ति तो नहीं होती है। अतः अध्यासी जीव फिर चारखानी चौरासी योनियोंमें ही चला आता है ॥ २६ ॥

५. जगको चार खानि चौरासी । बड़े-बड़े कहैं सुजाना ॥ २७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, व्यास, वशिष्ठ, नारद, बाल्मिकी, षट्शास्त्री, सुजाना = वेदके अच्छे जानकार पण्डित वा विद्वान् लोगोंने इसी जगत् वा संसारको ही चारखानी चौरासी योनियोंका भूमिका वा घर कहे हैं, और अभीके ज्ञानी, सुजान लोग भी जगत्को चौरासी योनियोंका अड्डा कह रहे हैं। जहाँ चारखानीकी बन्दी-गृहमें जीव सब कर्मानुसार बद्ध पड़े हैं। एक तरफ बड़े-बड़े लोगोंने तो ऐसा फैसला करके कहा है ॥ २७ ॥

६. तेहि जगको बैराट बखाने । विश्वरूप भगवाना ॥ २८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और दूसरे तरफ उसी चौरासी योनियोंकी घररूप जगत्को ही विराट परमात्माका सर्वाङ्ग स्वरूप कथन करके उसे ही विश्वरूपमें स्थित खास भगवान्-परमात्मा बखान किये हैं। अब कहिये ! एक ही जगत्को दो-दो प्रकारसे मानना कितनी बड़ी भारी मूर्खता है। यदि जगत् ही विश्वरूप भगवान्का स्वरूप है, तो फिर धर्म-कर्म करके मुक्तिकी इच्छा करनेकी क्या आवश्यकता है ? तहाँ ईश्वर प्राप्तिके लिये नाना साधना करना, फजूल हुआ कि नहीं ?। वही चौरासी योनियोंका भूमिका हुआ, फिर भवबन्धनोंसे छूटना ही असम्भव होवेगा। अतः यह दो मुखकी बात झूठी है। विश्वरूप भगवान् मानना कोरी कल्पनामात्र है, ऐसा जानिये ! ॥ २८ ॥

७. नित उतपति नित परलय होई । जाको जगत ब्रह्म कहो भाई ! ॥२६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे वेदान्तो भाई ! सुनो ! जहाँ नित्यप्रति कार्य पदार्थोंकी उत्पत्ति होती रहती है, अध्यासी जीव देह धारण करके चारखानियोंमें जन्म लेते रहते हैं, और नित्यप्रति कार्योंका नाश वा प्रलय होता है, तैसे भोग पूरा होनेपर मृत्यु भी होता रहता है। ऐसा बनाव-बिगड़ाव और आवागमन जहाँ लगा है, उसे ही संसार कहते हैं। जिसको सब कोई जगत् बन्धनका घर कहते हैं, उसे ही तुम अपने मिथ्या भावनासे ब्रह्म कहते हो, तो भला ! इससे कौन फायदा हुआ। जिसे सब विष कहते हों, उसे ही तुम अमृत समझके खाजाओ, तो क्या हानि नहीं उठाओगे ? अवश्य दुःख पाओगे। तैसे हे भाई ! जगत्को ही ब्रह्म कहके माननेसे तुम्हारी मुक्ति कदापि नहीं हो सकती है। ऐसा जान लो ! ॥ २९ ॥

८. विश्वरूप भगवान भयो तब । चौरासी केहि ठाँई ?॥ ३० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— इतनेमें भी तुम्हारे समझमें नहीं आता है, तो हे मूढ़ ! यह तो बतावो, यदि यह, विश्व = सारा संसाररूप ही एक भगवान्, ब्रह्म, परमात्माका विराट स्वरूप तुम्हें निश्चय भया है, यही बात ठीक है कहोगे, तब चारखानी-चौरासी योनियांके बन्धनकी जगह, नर्ककुण्ड, किस ठिकानेमें हुआ ? सब उसीके भीतर हुआ कि नहीं ? फिर तो मुक्तिके लिये तुम्हारी साधनाएँ प्रयत्न करना सब निष्फल व्यर्थ हो गया। व्यापक विराटरूप ब्रह्म माननेवालोंकी मुक्ति कदापि नहीं हो सकती है। अतः इस भ्रम धोखाको परखके त्यागना चाहिये ॥ ३० ॥

९. छिनमें जगको ब्रह्म बतावो । छिनमें ईश बखानी ॥ ३१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे भ्रमिक पण्डितो ! तुम्हारी समझ बुद्धि तो क्षणिक चञ्चल होगई है। किसी एक बातका भी तो निश्चय तुम्हें

नहीं है । क्योंकि, कभी क्षणभरमें ही तुम सारा जगत्को एक अद्वैत ब्रह्मका स्वरूप कथन करके व्यापकरूपमें जगत्—ब्रह्मको एक ही बतलाते हो, और कभी तो क्षणभरमें उस बातसे पलटके विश्वरूप साकार भगवान् है, कहके जगत्को ही विराटरूप परमेश्वर बखान करते हो । पूर्वके ऋषि-मुनियोंने भी वैसे ही क्षणिक कल्पना प्रगट करके श्रुति, स्मृतिमें वही बात वर्णन करके लिख रखे हैं । तहाँ ईश्वरको पुरुषरूपमें, और ब्रह्मको नपुंसकरूपमें माने हैं । कहीं ब्रह्म, ईश्वरका लक्षण न्यारा-न्यारा, और कहीं एक ही बतलाये हैं । कहीं ब्रह्मसे ईश्वरकी उत्पत्ति, उससे प्रकृति आदि क्रमसे जगत्की उत्पत्ति कहा है । घड़ी भरमें कभी जगत्को ही ब्रह्म कहते हैं, तो घड़ी भरमें उसे ईश्वरका स्वरूप बतलाते हैं । ऐसे आवबाव बकके बैठेकानके बात कहते हैं ॥ ३१ ॥

१०. छिनमें जगतको जीव कहत हो । छिनमें माया मानी ॥३२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और कभी उस बातसे भी उलटके हे पण्डित ! तुम क्षण भरमें ही उसी जगत्को चारखानी चौरासी योनियोंमेंके जीव समूहके रहनेके, कर्म भोगनेके भूमिका कहते हो, और कभी तो परमाणु समूहवत् सारा जगत् ही जीवका स्वरूप है, ऐसा कथन करते हो, और कभी क्षणभरमें ही उस बातको भी मिटाके माया-प्रकृतिके मुख्य स्वरूप ही यह जगत् है, ऐसा मानते हो । कोई जगत्को माया मानते हैं, तहाँ मायाको जड़-चैतन्यसे विलक्षण अनिर्वचनीय, अचिन्त्य शक्तिवाली माने हैं । कोई पाँचों तत्त्वोंके भाग कार्य-कारणको भी जीव ही कहते हैं, और कहीं जीवको चैतन्य मानते हैं, तो कहीं उसे अंश, पराप्रकृति आदिके रूपमें जड़ ही ठहराते हैं, और कोई मायारूप जड़ तत्त्वोंको ही सब कुछ सार मानते हैं । इस तरह मनमाने, उटपटाङ्ग, अण्टसण्ट मिथ्या कथन करके अपने भूले हैं, और दूसरोंको भुला रहे हैं, बिना विवेक ॥ ३२ ॥

११. जग छूटनको शरण ईशकी । ईश ब्रह्म जग आया ॥ ३३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे पण्डित लोगो! अबोध नरजीवोंको तुम लोग हरतरहसे भ्रमाते, भुलाते हुए ठगते फिरते हो। संसारमें नाना दुःखोंसे दुःखित मनुष्य वर्ग आयके जब तुम लोगोंसे दुःख निवृत्तिका उपाय पूछते हैं, तब तुम लोग उन्हें ऐसा समझाते हो कि— यदि जगत्के समस्त दुःखोंसे छूटना चाहते हो, तो परमेश्वरकी शरणागत होओ; और पुकार-पुकारके कहो कि— "हे हरिः! त्वमेव शरणं अहं" तब दयालु ईश्वर तुम्हें जगत् दुःखोंसे छुड़ा देंगे, इत्यादि उपदेश देते हो। जब उसके शरण-ग्रहण करनेके लिये कोई जिज्ञासु मनुष्य ईश्वर और ब्रह्मकी खोजी, तलाशी करते हैं। चारों दिशाओंमें चार धाम, चौंसठ तीर्थोंमें घूम-फिरके आते हैं, वहाँ पानी, पत्थरादि अष्ट प्रतिमाके सिवाय और कुछ हाथ नहीं आता है। तब तुम्हारे गुरुवा लोगोंके शरणमें आके उनका पता पूछते हैं— तब तुम लोग अन्तमें वेद-वेदान्तके प्रमाणसे निर्णय करके "सर्वंखल्विदंब्रह्म नेहनानास्ति किंचन"— सर्वरूप एक ब्रह्म ही है, नानात्त्व और कुछ भी नहीं है। "एकोब्रह्मद्वितीयोनास्ति" एक ब्रह्म है दूसरा कुछ नहीं है। "ईशावास्यमिदंसर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ॥" ई० उ० १ ॥ —पिण्ड, ब्रह्माण्डरूप इस जगत्में स्थूल-सूक्ष्मादि, दृश्य, अदृश्य जो कुछ भी पदार्थ है, सो वह सब ही विराटरूप परमेश्वरका ही स्वरूप है, ऐसा जानो॥ इत्यादि निर्णयसे जो ठहराया, सो ईश्वर और ब्रह्म दोनों ही जगत्रूप बनके आया, अतः जगत्से न्यारा तो वे हुए ही नहीं ॥ ३३ ॥

१२. का की शरण जाय दुःख छूटै । मोहि कहो कर दाया!॥३४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे पण्डित! अब कहो तो भला! तुम्हारे ही निर्णयसे जगत्, ईश्वर, ब्रह्म, ये तीनोंके स्वरूप एक हुआ, सिर्फ नाम मात्रका फरक हुआ। अब किसके शरणमें जायके

जगत्के त्रयताप, जन्म-मरणादिका दुःख जीवोंका छूटेगा? तुम तो वेद, शास्त्रादिके ज्ञाता, धुरन्धर विद्वान् हो, अतः हे पण्डित! मुझे दया करके इस शङ्काके समाधान तुम खुलासा करके कहो! कोई अपनेसे भिन्न समर्थ देहधारी मनुष्य हो, तो उसके शरणमें जाया भी जा सकता है, और वह भी अपने शक्तिभर सहायता भी कर सकता है। परन्तु, यहाँ तो वैसी बात नहीं है। बिलकुल उसके विपरीत बात है। जीवोंने जगत्में कर्मानुसार दुःख पाये, तो उससे छूटनेके लिये गुरुवा लोगोंने ईश्वरकी शरण बताये। तहाँ जो निर्णय किया, तो वह ईश्वर वा ब्रह्म, जगत्रूप ही ठहरा। अब किसकी शरणमें जायके जगत्के दुःख छूटै? किन्तु, ऐसी हालतमें वह दुःख कभी छूट नहीं सकेगा॥ ३४॥

१३. निज हित कोई विदेश गया जो। वहाँसे कोई जो आया॥३५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! दृष्टान्तमें जैसे कोई पुरुष अपने हित, स्वार्थके वास्ते धन कमानेके लिये विदेश वा दूर देशमें चला गया, तथा उसने वहीं विदेशमें ही अपना धन्धा कारोबार जमा लिया, खूब सम्पत्ति इकट्ठा करके आरामसे रहने लगा। कुछ कालके बाद वहाँसे उसके द्वेषी, प्रतिद्वन्द्वी कोई मनुष्य व्यापारको निकाला, सो घूमते-घूमते जो कि, उसके गाँव-घरमें भी आ गया। लोगोंसे पता चला कि, शिवदत्तको वह जानता है, जहाँ वह था, वहीं पासमें शिवदत्त रहता था। तब उत्सुकतापूर्वक उस परदेशीसे शिवदत्तके पिता-मातादि परिवारोंने आके पूछा कि— कहिये महाशय! आप हमारे पुत्र शिवदत्तके हाल, समाचार जानते हैं? वह किस हालतमें है? उसका सन्देशा कुछ लाये हैं, तो बतलाइये? इत्यादि बात पूछने लगे। उसके उत्तरमें वह द्वेषी पुरुष बोला कि— सुनिये! वह शिवदत्त भी अब कुछ दिनोंमें यहाँ आता ही होगा। ऐसा सुनके परिवारके लोग खुश हुये। फिर कहा कि— वह रोगी होनेसे बड़ा दुःखी है। तब वे लोग भी दुःखी

होने लगे। कुछ देरमें फिर बोला कि— अरे! जबसे उसका कहीं पता लगता ही नहीं कि, कहाँ रहता है । ऐसा सुनके घरवाले उदास हो गये। फिर थोड़ी देरमें उसने कहा कि— हाँ! हो! सुनो! वह शिवदत्त तो अकालमें मर गया, ऐसा सुननेमें आया था, जैसा हो भगवान् जाने! मृत्युके झूठे समाचार सुनके परिवारके लोग रोने-चिल्लाने लगे। सब शोकसागरमें डूब गये। इन्होंने उसका कुशल समाचार पूछा, तो उस द्वेषीने चार विधिसे बोल दिया। किन्तु, एक बातका भी निश्चय करके नहीं बताया, अब कहो! उसके समाचारसे कौन स्थिति उन्होंने पाये? कुछ भी स्थिति नहीं पाये, और भी भ्रम चक्रमें पड़ गये।

तैसे ही सिद्धान्तमें जो कोई मुमुक्षु अपना हित-कल्याण वा मुक्ति प्राप्ति करनेके लिये विदेशरूप गुरुवा लोगोंके सङ्गतमें गये। वहाँ वेद, शास्त्र आदिको पढ़ते हुये जीवन बिताने लगे, और दूसरा सत्सङ्गी पारखी साधु-सद्गुरुकी सत्सङ्गमें लगके सद्गुणोंको धारण कर निज स्थितिमें सुखी रहने लगा। उधर वेद,शास्त्रोंके पढ़नेवाला इसका द्वेषी बना। पण्डित होकर वह गाँव-गाँवमें घूमने लगा। वहाँ गुरुकुलसे एक बड़ाभारी पण्डित आया है, ऐसा संसारमें प्रसिद्धि हो गया. वहाँ उसके पाससे होकर जो कोई गाँवमें आया, उसने उसकी बड़ाई ही किया ॥३५॥

१४. पूछै कुशल चार विधि बोलै। कहो कौन थिति पाया? ॥३६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—तब और जिज्ञासु मनुष्य भी उस पण्डितके पासमें आके पूछने लगे कि— हमारा जीवका कुशल कैसे होगा? हे पण्डितजी! कृपा करके बतलाइये! तब उसने चार विधिसे चार वेदोंका सिद्धान्त कहा—ऋग्वेदसे-प्रज्ञानं ब्रह्म ॥ यजुर्वेदसे— अहं ब्रह्मास्मि ॥ अथर्ववेदसे–अयमात्मा ब्रह्म ॥ सामवेदसे— तत्त्वमसि ॥ जिसका अर्थः— प्रज्ञा वा बुद्धिरूप ज्ञानस्वरूप ही ब्रह्म है। मैं ही ब्रह्म हूँ! यह आत्मा ही ब्रह्म है। तू वह ब्रह्म है। ऐसा बताके भुलाया ॥ अथवा १. जगत् ही ब्रह्मरूप है। २. विराटरूपमें जगत् सब ईश्वरका

स्वरूप है, इसीसे विश्वरूप भगवान् है। ३. जगत् चारखानी चौरासी योनि है, सो जीवका रूप है। ४. यह जगत् तो मिथ्या मायाका पसारा मात्र है। ऐसे चार प्रकारसे वतलाये हैं॥ अथवा—१. देहवादमें—स्थूल देहको ही अपना स्वरूप माने हैं। २. वीर्यवादमें वीर्यको ही श्रेष्ठ ठहराये हैं। ३. तत्त्ववादमें तत्त्वसे बढ़के और कुछ भी नहीं है, ऐसा कहा है। ४. शून्यवादमें शून्यको ही सर्वोपरि कहा है। ऐसे चार प्रकारसे बोले हैं॥ अथवा—१. वेदान्ती लोग अद्वैत मतको सिद्ध करते हैं। २. उपासक भक्त लोग द्वैतवादको मानते हैं। ३. रामानुजी, आर्यसमाजी आदि विसिष्टाद्वैतवादको स्वीकार करते हैं। और ४. वाममार्गी और नास्तिक लोग पञ्चमकार सेवनमें ही लाभ, गति मानते हैं। इस तरह कुशल पूछनेवाले जिज्ञासुओंको गुरुवा लोग चार-चार विधिसे बताके जहाँ-तहाँ भटकाते हैं। अब कहो! उसमें लगनेवाले भ्रमिक लोग कौन, किसने, निजस्वरूपकी स्थिति पाके मुक्ति पाये? बिना पारख, किसीने भी स्थिति नहीं पाया। जड़ाध्यासी हो नाहक जन्म गँवाया, चौरासी योनियोंमें झुलाया॥ ३६॥

१५. ज्ञान कहानो अद्‌बुद बानी। स्थिति बिनु भये दुखारी॥३७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे जिज्ञासु सन्तो! गुरुवा लोगोंने वेद-वेदान्तसे ब्रह्मज्ञान विषयक कहानी जो कहे हैं, सो वाणी अद्‌बुद = आश्चर्यमय बुद्धि विचारसे हीन पागलोंकी प्रलापके तरह ही बके हैं। क्योंकि, विवेक करनेसे उसमें कुछ भी सार दिखाई देता नहीं है। ब्रह्म चराचरमें सर्वत्र सम-समान पूर्ण भरा हुआ है। उसके बिना कहीं अणुमात्र भी जगह खाली नहीं है, सो ब्रह्म मैं ही हूँ! और तू ही ब्रह्म है! सब जगत् ही मेरा स्वरूप है! इत्यादि अद्‌बुद बानी कहे हैं। परन्तु, निज स्वयं स्वरूपकी पारख स्थिति प्राप्त भये बिना भ्रमिक जड़ाध्यासी होकर व्यर्थ ही नर-जन्म बिताये। शरीर छूटनेपर चौरासी योनियोंमें जाके, दुखारी = दुःखोंके भोगी भये, और दुःख भोग ही रहे हैं। अर्थात् ब्रह्मज्ञानकी आश्चर्य-

मय वाणी वेदान्तका कथन तो खूब किये हैं। परन्तु, स्वरूपकी स्थिति न होनेसे वे सब आवागमनमें पड़के दुःखित भये और हो रहे हैं, बिना पारख ॥ ३७ ॥

१६. कहहिं कबीर समुझि कहु पण्डित! साँच एक कि चारी! ॥३८॥

टीकाः— यहाँपर गुरुदयालसाहेब कहते हैं कि— हे पण्डित! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने जो पारख निर्णय कहा है, उसको समझ-बूझके कहो, तुम्हें क्या बोध भया है? नित्य-सत्य वस्तु एक है, कि चार हैं? अथवा, चार वेदोंका कहा हुआ, चार महावाक्य सच्चा है कि— तुम्हारा माना हुआ एक परमात्मा सच्चा है? सो कहो। अथवा, चारखानियोंके न्यारे-न्यारे जीव सत्य हैं, कि सबको गोलमाल करके माना हुआ एक ब्रह्म सत्य है? सो कहो। अथवा, एक नरजीव जिसने वेद बनाया, सो सत्य है कि— चार वेद सत्य हैं? सो कहो। अथवा, एक पारख सिद्धान्त सत्य है कि— चार अन्य कल्पित सिद्धान्त सत्य हैं? सो इस बारेमें तुम्हें क्या निश्चय होता है? कैसे होता है? वह समझ-बूझके हे पण्डित! प्रमाण देके कहो! और पक्षपातको त्यागके, सत्यसारको ग्रहण करो, तभी हित होगा, सो जानो ॥ ३८ ॥

॥ ❋ ॥ तृतीय—शब्द ॥ ३ ॥ ❋ ॥

१. सन्तो! साखी सब कोइ गावैं! ॥ ३९ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः— हे जिज्ञासु सन्तो! साखी, शब्द, कवित्त, सवैया, दोहा, छन्द आदि पदोंको तो सब कोई मजेसे जिसको जो भाया, सो गाते-सुनाते, कीर्तन, कथा आदि करते फिरते हैं। परन्तु, रहनी-रहस्यको धारण किये बिना वे नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजकमें खुलासा करके कहे हैं, सो सुनिये!—

साखीः— ४ "गावै कथै विचारै नाहीं, अनजानेका दोहा ॥
कहहिं कबीर पारस परसे बिना, जस पाहन भीतर लोहा ॥" बी० सा० २४९॥

इस प्रकारसे साखी तो सब कोई गाते, कथते हैं, परन्तु, अर्थका विचार तो कुछ करते ही नहीं हैं। अनजानमें दोहरा खानी, वाणी जालोंमें पड़ जाते हैं, और कभी भवबन्धनोंसे छुटकारा नहीं पाते हैं। अथवा, षट्दर्शनोंके भेषधारी साधु-सन्त लोग सब कोई सर्वका साक्षी एक परमतत्त्व परमात्मा है, ऐसा कहके अनुमान, कल्पनासे सब उसीके गुणानुवाद गाये, वा गाते हैं, और गा रहे हैं। परन्तु वह साक्षी कैसा है? साक्षीका लक्षण क्या होना चाहिये? इसका भेद वे कोई जानते ही नहीं हैं। बिना विवेक भूल-भुलैयाके चक्रमें पड़े हुए हैं ॥ ३९ ॥

२. जो कोई साखी ताहि बतावै । सो वादी भरमावैं ॥टेक॥४०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जो कोई योगी, ज्ञानी, भक्त लोग अनुमानसे, ताहि = उसी कल्पित ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, खुदा, आदिको, साखी = साक्षी, सर्वद्रष्टा त्रिकालज्ञ, बतलाते हैं, सो मिथ्या मानन्दी मनका भ्रममात्र ही है। इसीसे, वादी = वे मतवादी व्यर्थ ही अविवेकसे अपने भ्रममें पड़ जाते हैं, और दूसरोंको भी भ्रमाते, भुलाते हैं, और जो कोई पारखी सन्त सत्य-न्यायकी बात बताते हैं, साक्षी चैतन्य जीव ही सत्य है, जीवसे परे और दूसरा कोई साक्षी नहीं है। ऐसा दरशाते हैं। सो निर्णय सुनके मतवादी लोग घबरा जाते हैं, अपने मतकी पुष्टीके लिये वेद, शास्त्रादिका प्रमाण देके एक-दूसरेको भ्रमाते फिरते हैं, और जो कोई साखी तो कहते हैं, परन्तु, उसका यथार्थ अर्थ जानते नहीं हैं, उल्टी समझ रखते हैं। यदि उन्हें सच्चा अर्थ बता दिया जाता है, तो वे मतवादी तिलमिलाके चक्कर खा जाते हैं, भ्रममें पड़के पछाड़ खा जाते हैं। अतः बिना पारख साक्षी जीवकी वह कठिन भ्रम, भूल छूट नहीं सकता है ॥ ४० ॥

३. सो वादी कोई चीन्हत नाहीं। ब्रह्मा विष्णु महेशा ॥ ४१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! मतवादी भ्रमिक लोग व्यर्थके वाद-विवाद करते फिरते हैं, तहाँ ब्रह्म, ईश्वरादि मानन्दी, कल्पनाके झगड़ा असार है, उसे माननेवाले जीव ही सत्यसार है। परन्तु, उसे कोई चीन्हते वा पहिचानते नहीं हैं। व्यर्थके आत्मवाद, ब्रह्मवाद, करते हैं, सो तो धोखामात्र है, किन्तु, उसे कोई चीन्हते नहीं हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव भी प्रथम उसी धोखामें पड़े रहे। कर्मवादसे ब्रह्माने ब्रह्मको ही साक्षी कर्ता माना है। उपासनावादसे विष्णुने आत्माको ही साक्षी ठहराया है। और योगवादसे महेशने भी निर्विकल्प ब्रह्मको साक्षी माना है। फिर उन्होंने वही उपदेश जगत्में अन्य लोगोंको दृढ़ाये हैं। पश्चात्के और मतवादी लोगोंने भी उन्हीं ब्रह्मादि तीनोंको ही साक्षी परमात्मा-रूप ठहराके माने हैं। ऐसे सो उस भ्रमको वादी लोग कोई नहीं पहिचानते हैं, ब्रह्मादि भी उसी भूलमें ही पड़े थे ॥ ४१ ॥

४. तीनों न्याव निबेरन लागे। कहि साखी उपदेशा! ॥ ४२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— और हे सन्तो!, तीनों = ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनोंने जब संसार प्रपञ्च, झगड़ाका न्याय, निर्णय, निबेरा, करने लगे, तो अन्तमें एक आत्मा, साखी = सबका साक्षी है, सूत्रमणि न्यायसे घट-घट बासी है, ऐसा उपदेश कहे हैं। आत्मा साक्षीके ऊपर ही उन्होंने विश्वास करके फिर मत-मतान्तरों-का विस्तारसे फैसला किया है। परन्तु, यह नहीं पहिचाने कि, वादी, प्रतिवादी दोनों पक्ष स्वतन्त्र होते हैं, तब तीसरा साक्षी उसके होता है। यहाँ तो वादी-प्रतिवादीका पता ही नहीं है, सारा चराचरको ही साक्षीस्वरूप आत्मा माने हैं। अब बताइये! एक आत्माके सिवाय दूसरा कुछ नहीं है, तो साक्षीस्वरूप आत्मा है, कहके किसने, किसको उपदेश दिया? उपदेश देने, लेनेवाला,

दोनों न्यारा-न्यारा हुआ कि नहीं? फिर एक अद्वैत कहना, तथा साक्षी बताना कितनी बड़ी भारी भूल है। सो ब्रह्मादि भी व्यर्थके धोखामें ही पड़े थे, उस भ्रमको उन्होंने नहीं पहिचाना। अभी उनके अनुयायी वैसे ही वाद-विवाद, व्यर्थके बकवाद करके धोखेमें ही पड़े हैं, बिना पारख ॥ ४२ ॥

५. सनकादिक वशिष्ठ व्यास मुनि । नारद शुक मुनि ज्ञानी ॥४३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! प्राचीनकालके ऋषि, मुनि, ज्ञानी, ध्यानी, योगी, भक्त, कर्मी, गृहस्थ, साधु, संन्यासी, ब्रह्मचारी इत्यादि सब लोग एक आत्मा साक्षी मान-मानके भ्रम चक्रमें ही पड़े रहे। बिना पारख उन्हें निज सत्य-स्वरूपका बोध नहीं हुआ है। तहाँ उनमेंसे मुख्य-मुख्य थोड़े लोगोंके नाम और संक्षिप्त परिचय दरशाते हैं, सो सुनिये! :—

ब्रह्मादि तीनों गुरुवा लोगोंके नाम तो ऊपरके चौपाईमें कहा ही जा चुका है। अब उनके सन्तान तथा अनुयायी लोगोंके नाम कहते हैं।

१. सनकादिकः— सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, ये चारों भाई ब्रह्माके प्रथम मानस पुत्र कहलाते हैं। वे सदा पाँच वर्षके कुमारके समान ठिंगने, अथवा विषय-विकारसे रहित शुद्ध अन्तःकरणवाले रहे, ऐसा कहा है। उन्हें ज्ञानी और भक्ति-मार्गके मुख्य आचार्य, भक्ताग्रगण्य माना है, (विस्तार वैराग्यशतकमें लिखा जा चुका है।) इत्यादि ॥

२. वशिष्ठः— मित्रावरुणसे वशिष्ठजीकी उत्पत्ति कही गयी है, और फिर निमिके शापसे देह त्यागकर वे आग्नेय-पुत्र हुये। वैसे वे सृष्टिके प्रथम कल्पमें ब्रह्माजीके मानसपुत्र थे। उनकी पत्नीका नाम अरुन्धती था। वशिष्ठ सूर्यवंशके पुरोहित थे। कर्मनिष्ठ तथा ब्रह्मज्ञानी थे। शत्रुताके कारण विश्वामित्रने सौ पुत्र वशिष्ठके मार दिये थे। तो भी वे क्षमा करते रहे। किन्तु, गुणग्राही होनेसे एकान्तमें विश्वामित्रके तपस्याकी प्रशंसा किया, जिसे सुनके

विश्वामित्र आके उनके चरणोंमें पड़े, और वशिष्ठने जो रामचन्द्रको ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया, सो बड़ा पुस्तक योगवाशिष्ठमें लिखा है, इत्यादि वर्णन हुआ है ॥

३. व्यास मुनिः— वशिष्ठके पौत्र पाराशर मुनिके वीर्यसे सत्यवतीके गर्भसे व्यासका जन्म हुआ । एक द्वीपमें व्यासजीका जन्म हुआ था, इससे उनका नाम द्वैपायन पड़ा है, और शरीरका श्यामवर्ण होनेसे कृष्ण-द्वैपायन नामसे भी कहे जाते हैं, और वेदोंका विभाग करनेसे वेद्व्यास भी कहलाये हैं। उन्होंने वेदोंका चार भागोंमें वर्गीकरण कर दिया । फिर महाभारत, महापुराण और भागवतादि ग्रन्थ बनाये, और अठारह पुराणोंकी रचना भी व्यासके नामसे ही हुई हैं। वेदान्त ग्रन्थमें उत्तरमीमांसा (ब्रह्मसूत्र) व्यासकृत माना जाता है। शुकदेव आदि कई एक इनके पुत्र उत्पन्न हुए हैं। व्यास कर्मकाण्डी, भक्त और ज्ञानी बने रहे, इत्यादि कहा है ॥

४. नारदः— पूर्वकल्पमें नारद उपबर्हण नामके गन्धर्व थे। ब्रह्माके सभामें अनुचित काम-चेष्टा करनेसे उसे शूद्र योनिमें जन्म लेनेका ब्रह्माने शाप दे दिया । उसीसे वे शूद्रा दासीके पुत्र हुए, और सन्तोंकी जूठन खाते हुए भक्त बनके रहे । कुछ कालमें माँ मर गयी, तो जङ्गलमें जाके तपस्या करते रहे, कालान्तरमें मृत्युको प्राप्त हुये । दूसरे कल्पमें नारद ब्रह्माके मानस पुत्र होके उत्पन्न हुए, और भक्ति-मार्गमें अग्रसर हो गये । व्यासको भागवत बनानेकी प्रेरणा किया । प्रह्लादकी माता कयाधूको तथा बालक प्रह्लादको भी उन्होंने भक्तिका उप-देश दिया । तथा ध्रुव भक्तको भी भक्तिमार्ग बताये। दक्षके सब पुत्रोंको उदासीन भक्त बना दिया । जिससे कुपित होके दक्षने 'तुम दो घड़ीसे अधिक कहीं ठहर नहीं सकोगे ।' ऐसा शाप दे दिया । एक समय मायाको जीतनेका उन्हें अभिमान हुआ, जिससे विष्णुने युक्तिसे उनको गिरा दिया । तहाँ वे नारदी स्त्री बनके दुःख पाये, और श्रीनगरकी राज-कन्याको देखके मोहित होके विष्णुसे रूप माँगकर स्वयंवरमें गये, वहाँ

अपमानित होके खिसिया गये, इत्यादि कथा पुराणोंमें बहुतसी प्रचलित हैं। नारद मुख्य करके भक्त हुए थे ॥

५. शुकमुनि ज्ञानीः— शुकदेवकी जन्म सम्बन्धी विविध कथाएँ विभिन्न पुराणोंमें एवं इतिहास ग्रन्थोंमें मिलती हैं। कहीं लिखा है किः— एक लीला शुक था, एक समय महादेव पार्वतीको अमर कथा सुना रहे थे, वह शुक भी उड़ते-घूमते वहाँ पहुँच गया। पार्वतीको नींद आ गई, तो वही शुक बीच-बीचमें हुँकार भरने लगा। अन्तमें महादेवको मालूम हुआ, तो त्रिशूल उठाके वे उसे मारनेको दौड़े, वह उड़ता हुआ भागा, और आके व्यास पत्नीके मुखसे उनके उदरमें प्रविष्ट हो गया, और माता वटिकाके गर्भमें बारह वर्षतक बैठा रहा। पश्चात् बहुत समझानेपर गर्भसे वह बाहर आया, तो फिर और वैसे ही जङ्गलके तरफ चला गया, इत्यादि और भी बहुत प्रकारके कथा कल्पित वर्णन किये हैं। शुकदेव बाल-ब्रह्मचारी, महामुनि, ज्ञानी, अवधूत विरक्त रहे। व्याससे ही पीछे भागवत पढ़े, व्यासके कहनेसे जनकके पास जाके उन्हें गुरु मानके आत्मज्ञानका उपदेश सुनके सन्देह मिटाये, और राजा परीक्षितको भी सात दिनोंमें भागवतका कथा सुनाये। ब्रह्मज्ञानियोंमें अग्रगण्य माने गये हैं, इत्यादि कथा वर्णन भया है, (विस्तार वैराग्यशतकमें लिखा है।) सो जानिये ! ॥ ४३ ॥

६. याज्ञवल्क्य जनक दत्तात्रेय । कहि साखी सहिदानी ॥४४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और ६. याज्ञवल्क्यः— प्राचीन समयके ब्रह्मवादियोंमें मुनि याज्ञवल्क्य प्रसिद्ध भया है। ऋषि वैशम्पायन इनके मामा लगते थे। मैत्रेयी और कात्यायनी उनकी ये दो पत्नियाँ थीं। जनकके सभामें बहुतोंको इन्होंने शास्त्रार्थमें परास्त किया, और राजा जनकके भी विविध शङ्काओंका समाधान करके सन्तुष्ट किया। जनक उन्हें गुरु मानता था। अन्तमें गृहस्थाश्रम त्याग करके संन्यासी हुए, योग साधनोंमें लगे, उसीमें जीवन बिताये। इसीसे वे योगेश्वर याज्ञवल्क्य प्रख्यात भये, इत्यादि और

भी बहुत सी कथा वर्णन भया है ॥

७. जनकः— महाराज निमिका शरीर मन्थन करके ऋषियोंने जिस कुमारको प्रगट किया, वह 'जनक' कहा गया। माताके देहसे न उत्पन्न होनेके कारण 'विदेह' और मन्थनसे उत्पन्न होनेके कारण 'मैथिल' भी उनकी उपाधि हुई, ऐसी कल्पना किये हैं। इस वंशमें आगे चलकर जो नरेश हुए, वे सभी जनक और विदेह कहलाये। इसी वंशमें उत्पन्न सीताजीके पिता महाराज जनकका नाम 'सीरध्वज' था। वे बड़े ब्रह्मज्ञानी, वेदान्ती थे। समय-समय पर बड़ी-बड़ी सभा एकत्र करके ब्रह्मज्ञानकी चर्चा किया करते थे। उपनिषद् आदि ग्रन्थोंमें सो विस्तारसे लिखा है। सीताका विवाह उन्होंने रामसे कर दिया था। अष्टावक्र मुनिको भी जनकने गुरु माना है। विशेषतः ब्रह्मज्ञानी वे प्रख्यातरूपसे कहलाये थे, इत्यादि ॥

८. दत्तात्रेयः— अत्रि मुनिके वीर्यसे माता अनुसूयाके गर्भसे दत्तात्रेयका जन्म हुआ। ये अवधूत विरक्त बने रहे। राजा यदुको इन्होंने उपदेश दिया है। चौबीस गुरुओंके द्वारा अपनेको ज्ञान गुण ग्रहण होनेको बताया है। ये भी एक प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञानी हो गये हैं, इत्यादि पुराणोंमें बहुत-सी कथा वर्णन भया है ॥

इस प्रकार सनकादिसे लेके दत्तात्रेय पर्यन्त मुख्य आठ हुए और भी बहुतेरे वेदान्ती आत्मज्ञानी हुये; उन सबोंने, सहिदानी = निशानी, पहिचानी वा सिद्धान्त परिचयके लिये एक आत्मा वा ब्रह्मको ही, साखी = सर्वका साक्षी, द्रष्टा, निराकार-निर्गुण पूर्ण व्यापक कहे हैं। तहाँ साक्षीका यथार्थ लक्षण न घटनेसे निज-पर साक्षी जीवोंको धोखामें ही डाले हैं। अतःजड़ाध्यासी हो बद्ध हुए और हो रहे हैं, विना पारख ॥ ४४ ॥

७. अष्टावक्र हस्तामल शङ्कर। मुनि अगस्ति कपिलादी ॥ ४५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! उसी प्रकार और लोग भी भ्रमिक हुए हैं, सो सुनिये!:—९. अष्टावक्रः— कहोड़ मुनिके पुत्र

अष्टावक्रका सुजाताके गर्भसे जन्म हुआ। इनके आठों अङ्ग विषम-टेढ़े थे। जनकके राज-सभामें जाके इसने प्रसिद्ध वन्दी-नामक पण्डितको शास्त्रार्थमें परास्त करके पिताको कैदसे छुड़ा लाया था। एक समय जनकके सभामें जाके राजाकी शङ्काओंका समाधान किया, जिससे जनकने उन्हें गुरु करके मान लिया। इस प्रकार वह ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं, (विस्तार वैराग्यशतकमें लिखा है।) इत्यादि ॥

१०. शङ्करः—प्रथम तो इस नामसे महादेव प्रसिद्ध भये हैं, उनके गुण, कर्मादिको तो सब कोई जानते ही हैं। वे योग मार्गके प्रवर्तक, ब्रह्मज्ञानी भये हैं। और द्वितीय शङ्कर नामसे शङ्कराचार्य संन्यासीको जानना चाहिये। ईसासे लगभग चारसौ वर्ष पूर्व ही केरल देश निवासी ब्राह्मण शिवगुरुकी पत्नी सुभद्रा माताके गर्भसे शङ्करका जन्म हुआ। ये अत्यन्त तीव्र बुद्धिके थे। नदी पार करतेमें मगरने आके उनका पैर पकड़ा, ऐसे कठिन समयमें मातासे संन्यास लेनेकी आज्ञा प्राप्त कर संयोगसे मगरके चंगुलसे छूटे, फिर आठ वर्षके उम्रमें ही घरसे निकल पड़े। नर्मदा तटपर आके, स्वामी गोविन्द भगवत्पादसे दीक्षा ली। फिर उपयुक्त समय पर गुरुकी आज्ञा पाकर काशी आकर वेदान्त सूत्रपर भाष्य लिखे, और भी उपनिषदादि बहुतसे ग्रन्थोंमें भाष्य रचना किये, कई ग्रन्थोंकी रचना भी किये। कई लोगोंको शिष्य भी बनाये, और चारों धामोंमें भ्रमण करके शास्त्रार्थमें विजयी भये। इसीसे चार दिशामें चार धामपर चार मठ स्थापित किये। उन्हींमेंसे दश नाम संन्यासीकी प्रथा भी प्रचलित हुयी। ये अद्वैतवादी थे, अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्तका ही उनके ग्रन्थोंमें मुख्यरूपसे वर्णन किया है। इत्यादि इनकी जीवनी कहा हुआ है ॥

११. हस्तामलः— श्रीबली नामक ग्राममें रहनेवाला प्रभाकर नामक ब्राह्मणकका पुत्र हस्तामलकका जन्म हुआ। यह छोटेपनसे जड़-मूढ़के समान रहा करता था। एक समय शङ्कराचार्य उस

ग्राममें पहुँचे । तब प्रभाकरने पुत्रको ले जाके उनके चरणोंमें झुका दिया । वह बहुत देरतक झुका रहा, उसे हाथ पकड़के उठाये, तो उसके पिता बोला कि— यह पहलेसे ही ऐसे ही जड़-मूढ़ पड़ा रहता है, अभी तेरह वर्षका हो गया, तो भी कुछ समझता नहीं है, इत्यादि कहा । तब शङ्कराचार्यने उसे पुकारके "हे बालक ! तू क्यों जड़-मूढ़के समान चेष्टा करता है ?" कहके पूछा, तब वह एका-एक बोल उठा और संस्कृतमें श्लोक छन्दमें १४ श्लोकतक धड़ाधड़ कहता गया, और उनके शिष्य बन गया । ज्ञान प्रत्यक्ष होनेके कारण शङ्कराचार्यने उसका नाम हस्तामलक रक्खा । वह उनके सब शिष्योंमें मुख्य-प्रधान होता भया । उसने प्रथम जो १४ श्लोक बोला था, वह हस्तामलक-स्तोत्रके नामसे प्रसिद्ध हुआ है । यह भी एक अद्वैत ब्रह्मवादी शङ्करमतके अनुयायियोंमें मुख्य भया है । उसी अद्वैत मतका वह प्रचार करता रहा, इत्यादि ॥

१२. मुनि अगस्तिः— अगस्त्य मुनिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें विभिन्न प्रकारकी कथाएँ मिलती हैं । कहीं मित्रावरुणके द्वारा वशिष्ठके साथ ही घड़ेमें पैदा होनेकी बात लिखी है, और कहीं पुलस्त्यकी पत्नी हविर्भूके गर्भसे विश्रवाके साथ इनकी उत्पत्तिका वर्णन आता है । किसी-किसी ग्रन्थके अनुसार स्वायम्भुव मन्वन्तरमें पुलस्त्यतनय दत्तोलि ही अगस्त्यके नामसे प्रसिद्ध हुए; और समुद्र पी लेनेकी कथा, तथा नहुषको सर्प होनेका शाप देना, रामचन्द्रसे मिलाप, स्तुति, और राजा शङ्खके साथ विष्णुके दर्शन, इत्यादि इनके बारेमें पुराणोंमें कल्पित कथा वर्णन हुआ है । अगस्त्य-संहिता नामका ग्रन्थ इनका ही बनाया हुआ कहते हैं । ये वेदके एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि माने गये हैं, इत्यादि कहा गया है ॥

१३. कपिलादिः— कर्दम मुनिकी पत्नी देवहूतिके गर्भसे कपिलका जन्म हुआ । ये सांख्यज्ञानी हुए, उन्होंने सांख्यशास्त्रका रचना किये । सर्व प्रथम वह ज्ञान अपने माता देवहूतिको ही समझाये ।

फिर गङ्गासागर सङ्गममें जाके वहाँ कुटि बनाके निवास किये, और तपस्यामें संलग्न भये, और सगर राजाके सम्पूर्ण पुत्र इन्हींके क्रोधसे मारे गये, ऐसी कथा पुराणोंमें आया है, (विस्तार वैराग्य-शतकमें लिखा है।), इत्यादि कपिलके बारेमें वर्णन हुआ है। और भी— अत्रि, भृगु, ऋभु, शुक्राचार्य, वृहस्पति, विश्वामित्र, शाण्डिल्य, मार्कण्डेय, कण्डु, दधीचि, च्यवन, उद्दालक, आरण्यक मुनि, मुद्गल ऋषि, शौनक, मैत्रेय, कणाद, पतञ्जलि, जैमिनि, यमदग्नि, इत्यादि अनेकों प्रख्यात ऋषि-मुनिगण हुए हैं। उन सबोंने ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, आदि अनुमान-कल्पनाके, सिद्धान्तको ही माने हैं। ग्रन्थोंमें उन्होंके मन्तव्य जाहिर करके विस्तारसे लिखा हुआ है ॥ ४५ ॥

८, गौतम लोमश वालमीक मुनि । सब साखीके बादी ॥ ४६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और १४. गौतमः— सप्त ऋषियोंमें गौतमका भी नाम आता है। कल्याण २४।१ पृष्ठ ८१८ में लिखा है— राजा वृद्धाश्वकी पुत्री अहल्या इनकी पत्नी थी। उनके पुत्रका नाम शतानन्द था, जो निमिकुल-जनक वंशके पुरोहित थे। लिखा है— इन्द्रके साथ व्यभिचार होनेसे गौतमने अपनी स्त्री-अहल्याको पाषाण होनेका शाप दिया था, प्रार्थना करनेपर रामके चरण-रजसे मुक्त होनेका वरदान भी दिया था, फिर वैसा ही परिणाम हुआ, इत्यादि कल्पना करके माने हैं, और न्यायशास्त्रके कर्ता गौतममुनि ही हुए हैं। उन्हें धनुर्विद्या पारङ्गत भी माना है, स्मृतिकार भी रहे हैं। ये कट्टर कर्ता ईश्वरवादी हुए, इत्यादि इनके बारेमें ग्रन्थोंमें वर्णन भया है ॥

१५. लोमशः— ये महातपस्वी लोमश मुनि व्यासके शिष्य रहे हैं। स्कन्द महापुराण, केदार खण्डके प्रारम्भमें ऐसा ही लिखा है। लोमशके मुख द्वारा ही स्कन्द पुराणमें शिव-धर्मका विस्तारसे वर्णन हुआ है, और राजा इन्द्रद्युम्नके पूछनेपर लोमशजीने कहा है कि— राजन्! प्रत्येक कल्पमें मेरे शरीरसे एक रोम टूटकर गिर जाता है। जिस दिन सब रोएँ नष्ट हो जायेंगे, उस दिन मेरी मृत्यु

हो जायगी । देखो ! मेरे घुटनेमें दो अंगुलतक रोएँसे खाली हो गया है । इसीसे मैं डरता हूँ, जब मरना ही है, तब घर बनाकर क्या होगा ? फिर राजाके पूछनेपर, ऐसी बड़ी आयु शिवके वरदानसे मिला हुआ वर्णन किया है, इत्यादि लिखा है ॥

१६. वालमीक मुनिः— रत्नाकर नामक अङ्गिरा गोत्रमें उत्पन्न एक ब्राह्मण था । लुटेरे डाकूओंके कुसङ्गसे वह भी क्रूर हृदयवाला डाकू हो गया था । वनमें छिपा रहता, और उधरसे निकलनेवाले यात्रियोंको लूट-मारकर जो कुछ मिलता, उससे अपने परिवारोंका भरण-पोषण करता था । संयोगवश एक दिन उधरसे नारदजी निकले, रत्नाकरने उन्हें भी ललकारा । नारदने निर्भय होकर बड़े स्नेहसे कहा— 'भैय्या ! मेरे पास धरा ही क्या है ? परन्तु, तुम प्राणियोंको क्यों व्यर्थ मारते हो ?' 'जीवोंको पीड़ा देने, और मारनेसे बड़ा दूसरा कोई पाप नहीं है । इस पापसे पापीको भयङ्कर नरकोंमें पड़ना पड़ता है ।' ऐसा सुनके वह बोला— मैं यह कर्म अपने परिवारोंके पालन-पोषणके लिये करता हूँ ! नारदने कहा— 'भाई ! तुम जिनके लिये इतना पाप करते हो, वे इस प्रापमें भाग बाँटेंगे कि नहीं— यह उनसे पूछ आओ । डरो मत, मैं तबतक यहीं रहूँगा, भागूँगा नहीं । विश्वास न हो, तो मुझे एक वृक्षसे बाँध दो ।' तब उसने उन्हें बाँधके घर गया । घरके सभी लोगोंसे उसने हमारे पापमें हिस्सा बटाओगे कि, नहीं ? कहके पूछा । सबोंने एक ही उत्तर दिया— हम पापके हिस्सेदार नहीं हैं । तुम चाहे जिस रीतिसे धन लाओ, उससे हमें क्या सरोकार, हमारा पालन-पोषण करना तुम्हारा कर्तव्य ही है, चाहे जैसे भी करो । सब परिवारोंके ऐसे वचन सुनके वह तो सन्न हो गया, शोकके मारे पागल-सा हो गया । एक क्षणमें उसके सारे मोहके बन्धन टूट गये । फिर रोता, दौड़ता हुआ वनमें नारदके पास आके, उनके बन्धन खोलके चरणोंपर गिर पड़ा । फिर रोते हुए कहने लगा— मेरे जैसे अधमका कैसे उद्धार होगा ।

नारदने राम-नामका दीक्षा दिया। परन्तु, वह मरा-मराके सिवाय सीधा बोल नहीं सका। तो वैसे ही उल्टा नाम जपनेको आदेश देकर नारदजी चले गये। फिर प्रेमपूर्वक रत्नाकर एक आसनमें बैठकर उल्टा ही नाम जपने लगा। पश्चात् ऐसा लिखा है कि— एक आसनसे बैठके तपस्या करतेमें उसके शरीरपर दीमकोंने घर बना लिया। वह उनकी बाँबी-वल्मीकसे, ढक गया। अर्थात् जिसमें वह रहता था वह आसनरूप कुटीके चौतरफ दीमकोंने घर बना लिया। अन्तमें ब्रह्माजी इस तपस्वीके पास आये। उसे जगाकर ऋषि वाल्मीकि कहकर पुकारा। इस प्रकार वल्मीक (दीमककी मिट्टीके ढेर) से निकलनेके कारण उस दिनसे वह मुनि वाल्मीकि कहलाया। फिर तो वह परम दयालु हो गया। जब उसके सामने एक दिन एक व्याधने क्रौंच पक्षीके जोड़ेमेंसे एकको मार दिया, तब दयाके कारण व्याधको डाँटते हुए शाप देते समय उनके मुखसे एक श्लोक बनके निकला। उसी छन्दसे वाल्मीकिजी आदि कवि हुए। पीछे श्लोकोंमें उन्होंने रामायण बनाये, जो वाल्मीकीय रामायणके नामसे प्रसिद्ध भया है। तमसा नदीके तटपर इनका आश्रम रहा। वनवासके समय राम इनसे मिले थे। जिस समय सीताको रामने त्याग किया, तब वाल्मीकिके आश्रममें ही जाके सीता रहीं। वहीं लव-कुशकी उत्पत्ति हुई। ऋषिने रामायण, गानकी शिक्षा लव-कुशको ही पहले दी। इत्यादि कथा पुराणोंमें विस्तारसे इनके बारेमें लिखा हुआ है॥

इस प्रकार अष्टावक्रसे लेके वाल्मीकि मुनितक इधर भी आठ ऋषि-मुनि प्रसिद्ध हुए। ये सब लोग भी द्रष्टा साक्षी निजस्वरूपका विवेक छोड़कर सर्वत्र परिपूर्ण एक आत्मा ही कोई सर्वद्रष्टा सर्वसाक्षी है, ऐसा कल्पनासे मानके व्यर्थ ही सब लोग साखीके वादी भये, तो भ्रम धोखामें पड़े। बिना पारख डावाँडोल हो गये, आवागमनमें गिर पड़े॥ ४६॥

९. भारद्वाज मुनि गरुड़ भुशुण्डी । बादी ईशहि गावै ॥ ४७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! तैसे ही और भी तीन लोगोंका इसमें परिचय सुन लीजिये ! जो ईश्वर वादी भये हैं, जिन्होंने ईश्वरके गुण गाये हैं ।

१७. भारद्वाज मुनिः— बृहस्पतिके भाई उतथ्यके पुत्र भरद्वाज मुनि हुए । ये ब्रह्मनिष्ठ, श्रोत्रिय, तपस्वी और परम भक्त थे । प्रयागमें इनका आश्रम था । वनवासमें एक रात्रि उनके आश्रममें रामने निवास किया था । तपस्यामें ही उन्होंने जीवन बिताया, इत्यादि ॥

१८. गरुड़ः— इनके पिताका नाम कश्यप और माताका नाम विनता था । गरुड़के बड़े भाईका नाम अरुण कहा गया है । विनताके सौत कद्रूने छल-कपटके शर्तमें हराके धोखा देके विनताको दासी बना रखा था । स्वर्गसे अमृत कलश लाके देनेपर दासी-पनासे मुक्त होओगी, कहने पर गरुड़ने जाके अपने पराक्रमसे देवताओंको हराकर अमृतका कलश लाके नाग और कद्रूको सौंप दिया । इस तरह माताको दासीपनासे मुक्त किया । उधर असावधानी पाके इन्द्रने आके कलश उठा ले गया, और भक्तिके वश हो, गरुड़ विष्णुके वाहन (सवारी) बना । गरुड़पुराण इन्हींके नामसे बना है; ऐसा प्रसिद्ध है । इत्यादि कथा पुराणोंमें वर्णन भया है ॥

१९. भुशुण्डिः— इसका पूरा नाम "काक भुशुण्डि" है । इनके बारेमें रामायण उत्तरकाण्ड और अन्य पुराणोंमें भी लिखा है । गरुड़के पूछनेपर काक-भुशुण्डिने बताया कि— पूर्व जन्ममें पूर्वके किसी कल्पमें मेरा जन्म अयोध्यामें हुआ था । मैं जातिसे शूद्र था । उज्जयिनीमें जाके ब्राह्मण गुरुसे मैंने दीक्षा ली । उस समय मेरे मनमें बड़ा भेद-भाव था । एक दिन मैं शिव मन्दिरमें बैठा मन्त्रका जप ध्यान कर रहा था । उसी समय मेरे गुरु वहाँ आये, पर मैंने उठकर उन्हें प्रणाम नहीं किया । मैं जप कर रहा हूँ, इस अभिमानमें फूला बैठा रहा । दयालु गुरुने तो इसका कुछ भी बुरा नहीं माने ।

किन्तु शङ्करने कुपित होके उसी समय शाप दे दिया—'तुम्हें एक हजार बार कीट-पतङ्ग आदिमें जन्म लेना पड़ेगा।' यह सुनके दयालु गुरुने दुःखी होके अपराध क्षमा करनेकी प्रार्थना किये। उससे सन्तुष्ट होके शङ्करने अन्तिम जन्म ब्राह्मणका होगा, भक्तिमें इसकी मति रहेगी, ऐसा आशीर्वाद दिये। पश्चात् कर्मानुसार अनेक योनियोंमें भटकनेके बाद मुझे ब्राह्मण शरीर मिला। बचपनमें ही माता-पिता मर गये थे। साकार भक्तिमें मेरा प्रेम था। ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंमें मैं घूमने लगा। घूमता हुआ मैं महर्षि लोमशके पास जा पहुँचा। उन्होंने मुझे निर्गुण ब्रह्मतत्त्वका उपदेश दिया। मैं उसका खण्डन करके सगुणका समर्थन करने लगा। बार बार वैसे ही ढङ्ग होनेसे अन्तमें ऋषिको क्रोध आ गया। उन्होंने शाप दिया। 'दुष्ट! तुझे अपने पक्षपर बड़ा दुराग्रह है, अतः तू पक्षियोंमें अधम कौआ हो जा।', इसीसे मैं फिर काक देहधारी हो गया। मैं ऋषिको प्रणाम करके उड़ जाने लगा। तब उन्होंने दया करके आशीर्वाद दिया, पास बुलाके राम-नाम मन्त्र दिया, रामके बालरूपका ध्यान बताया। तब गुरुकी आज्ञा लेकर मैं नीलाचलपर चला आया। अब यहीं रहकर ध्यान, गुणगान किया करता हूँ, इत्यादि कथा वर्णन किया है। गरुड़को काक भुशुण्डिने जो उपदेश दिया है, वह रामायण उत्तरकाण्डमें आया है॥

इस प्रकार सनकादिकसे लेकर भरद्वाज मुनि, गरुड़ और काक भुशुण्डितक जितने भी ऋषि-मुनि, ज्ञानी, ध्यानी, योगी, भक्त, इत्यादि हुए, वे सब ईश्वरवादी ही भये हैं। सगुण-निर्गुण कल्पित ईश्वरके ही गुण उन्होंने भली विधिसे कथन करके गाये हैं। अपने सत्य स्वरूपको तो उन्होंने जाने ही नहीं। व्यर्थ ही वादी बनके एक ईश्वर कर्ता, धर्ता, हर्ता, सर्वशक्तिमान् है, उसीकी उपासना ध्यान, धारणा करना चाहिये, इत्यादि प्रकारसे महिमा गाये हैं। भ्रम-धोखाके पीछे लगके जन्म बिताये हैं॥ ४७॥

१०. साखी बाद चीन्ह परे नहीं । वेदहु नेति सुनावै ॥ ४८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और वेद, वेदान्त शास्त्रके प्रमाणसे, साखी = साक्षी वा गवाही दे-ले करके गुरुवा लोगोंने आत्मा-ब्रह्म वा ईश्वरको सर्वका साक्षी घट-घटवासी निश्चय करके नाना मतवाद स्थापित कर लिया है। परन्तु वह साक्षीका साक्षात्कार तो किसीको भी नहीं हुआ है। व्यर्थ ही सब धोखेमें भूले पड़े थे। वह धोखा साक्षीका वाद क्या चीज है ? सो किसीको भी चीन्हनेमें नहीं आया वा चीन्ह पड़ा नहीं, तो अगम, अपार, अवाच्य कहके भ्रममें ही रह गये। वेदमें भी आखिरमें "नेति-नेतिति श्रुतिः"— अर्थात् उस परमात्माकी इति, आखिरी, अन्त, हद्द, पता, पार, कुछ है ही नहीं है। उसके इति तो कुछ जाना नहीं जाता है, ऐसा लिख दिया वा न इति कह दिया है। वेद प्रमाणसे साक्षी ब्रह्मका वाद प्रतिपादन मतवादी लोग कर रहे थे, जब वेदने भी अन्तमें 'नेति-नेति' सुनाया, तब तो आधार ही उनका टूट गया। परन्तु, गुरु पारख पाये बिना यह भ्रम-धोखा किसीको भी चीन्ह नहीं पड़ा है। अतः वे सब भ्रमिक लोग जड़ाध्यासी बद्ध हुये और हो रहे हैं ॥ ४८ ॥

११. ध्रुव प्रहलाद आदि भक्त सब । श्रीमत चारिउ भाई! ॥४६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और सुनिये !

२०. ध्रुवः— स्वायम्भुव मनुके दो पुत्र हुए— प्रियव्रत और उत्तानपाद। उनमेंसे राजा उत्तानपादकी दो रानियाँ थीं। सुनीति एवं सुरुचि उनका नाम था। सुनीतिके पुत्र थे ध्रुव और सुरुचिके पुत्र उत्तम था। राजा छोटी रानी सुरुचिमें आसक्त था। पिताके गोदमें बैठनेको जाने लगनेपर, सौतेली माँके कटु वचनसे व्यथित होकर माताके अनुमतिसे पाँच वर्षकी अवस्थामें ही ध्रुव घरसे निकलके वनमें तपस्या करनेको चला गया। रास्तेमें नारदजी मिले, उन्होंने दीक्षा देके ध्यानकी युक्ति बता दिये। पाँच महीनेतक

लगातार कठिन व्रत, तपस्या किया, तत्पश्चात् विष्णुने आके दर्शन देके मनोवाञ्छित वरदान देकर घर जानेको कहा, तब ध्रुव घर चले आये, और पिताके पीछे राजा भया। भाई उत्तम यक्षोंसे युद्ध करके मारा गया। इसी कारणको लेके ध्रुवने भी यक्षोंसे संग्राम किया। अन्तमें मनुने आके समझानेसे मानकर घर जाकर भक्ति मार्गमें ही जीवन भर लगा रहा, इत्यादि वर्णन भया है ॥

२१. प्रहलादः— हिरण्यकशिपुका यह छोटा पुत्र था। इसकी माताका नाम कधायू था। जब यह गर्भमें था, तभी इसका पिता तपस्या करनेको चला गया था। उसी बीचमें इन्द्रने आके कधायूको बन्दी बनाकर ले जा रहा था, तो रास्तेमें नारद मिले, उन्होंने इन्द्रको समझाया, तो उसने उसको छोड़ दिया। फिर कधायू नारदके आश्रममें ही आके रहने लगी। और नारदजीने उसे भक्ति मार्गका उपदेश देके भक्ति दृढ़ा दिया। पीछे जब वरदान पाकर हिरण्यकशिपु लौटा, तब कधायू भी उसके पास आ गयी और प्रह्लादका जन्म हुआ, भक्ति मार्गका ही उसे माताने शिक्षा दिया, शुभ संस्कारी होनेसे वह पक्का विष्णु भक्त बना। हिरण्यकशिपुके पूछने पर उसने विष्णुका गुण गाया। जिससे वह क्रोधित होकर नाना तरहके कष्ट देके पाँच वर्षके प्रह्लादको मारनेकी चेष्टा किया। किन्तु, असफल होके अन्तमें आप ही मारनेको उद्यत भया, फिर तब नृसिंहने प्रगट होके हिरण्यकशिपुको पकड़ कर जङ्घामें रखके नाखूनोंसे पेट फाड़के उसे मार डाला। अनेकों कष्ट सहन करनेपर भी प्रह्लादने भक्ति पक्ष नहीं छोड़ा। कम उमरमें था, पिता क्रोध करके उसे मारना चाहता था, तो भी वह घबराया नहीं। निर्भय होके भक्तिमें लगा रहा, इत्यादि वर्णन है ॥

ऐसे भक्त ध्रुव, प्रह्लाद, पुण्डरीक, गोकर्ण, इन्द्रद्युम्न, श्वेत, पुण्यनिधि, अक्रूर, पाण्डव, उद्धव, विदुर, सुधन्वा, मयूरध्वज, हनूमान, सञ्जय, इत्यादि सब प्रेमी भक्त लोग हुए हैं। और श्रीमतको माननेवाले

श्रीमान् चारिउ-भाई = राम, भरत, लक्ष्मण, और शत्रुघ्न ये चारों महाराजा दशरथके चार पुत्र हुए हैं। उनमें कौशल्याके गर्भसे रामचन्द्रका जन्म हुआ। ये पहले उत्पन्न हुए। कैकेयीसे भरत पैदा हुए। और सुमित्राके लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न ये दो पुत्र पैदा भये। इनके चरित्र रामायण आदि ग्रन्थोंके द्वारा सब जानते ही हैं। कितने भक्त तथा वैरागी लोगोंने रामचन्द्रको विष्णुका अवतार ठहराके उनके तीनों भाईको उनके पार्षद माने हैं। और ध्रुवादि सब भक्त तथा राम आदि चारों भाइयोंने भी कोई एक साक्षीस्वरूप कर्ता परमात्मा कल्पनासे माने थे ॥ ४९ ॥

१२. दश अवतारको साखी मानी। तिनहूँ साख बताई ॥ ५० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! कितनेक ऋषि-मुनि. भक्तोंने, दश अवतार = मत्स्यसे लेके कल्कीतक माने हुए विष्णुके दश अवतारोंको सर्वशक्तिमान् साक्षी परमेश्वरका अंशस्वरूप करके माने हैं। जिसके लिये प्रमाण वेद, शास्त्र, पुराणोंमें बहुत जगह लिखा है। परन्तु, तिनहूँ = वे माने हुए परमेश्वर साक्षी स्वरूप दश अवतारोंने भी अपनेको अबोध, अज्ञानी देहधारी एकदेशी विकारी मानके और दूसरा ही कोई निर्विकार, निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, परमात्मा साक्षी कर्ता-पुरुष पृथक् ठहराये हैं। परशुराम, राम, कृष्ण, बौद्ध, आदिकोंने खुद अपने ही मुखसे साक्षी, गवाही देके ऐसे साख बताये हैं। सो बात रामायण, गीता, भागवत, महाभारत आदि पुराणोंमें प्रसंगानुसार वर्णन हुआ ही है। अब कहिये! निज-स्वरूपको भूलके भ्रममें पड़े, तो एकने दूसरेको, दूसरेने तीसरेको साक्षी बताया, इस तरहसे आगे-आगे बताते गये, परन्तु, अन्तमें साक्षी ब्रह्मका कहीं पता ही नहीं लगा, तो जगत्रूप ब्रह्म मानके धोखेमें रह गये, बिना विवेक ॥ ५० ॥

१३. कश्यप आदि सकल मुनि जेते। बादीमें चित्त दीन्हा ॥५१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और सुनिये!—

२२. कश्यपः— ब्रह्माके छः मानसिक पुत्रोंमें प्रथम पुत्र मरीचिके

कश्यप नामक पुत्र हुए। दक्ष प्रजापतिने अपनी तेरह कन्याओंका विवाह कश्यपके साथ कर दिया। इन सबकी इतनी सन्तानें हुईं कि— उन्हींसे यह सम्पूर्ण सृष्टि भर गयी। देव, दैत्य, दानव, मानव, असुर, सिंह— व्याघ्रादि पशु, गरुड़ादि पक्षी, नाग, इत्यादि और स्थावर-जङ्गम सब कुछ कश्यपसे उत्पन्न होनेसे कश्यप गोत्री कहलाते हैं। ऐसे विचित्र झूठी कल्पना किये हैं। इत्यादि प्रकारसे पुराणोंमें कश्यपके बारेमें बहुतसी बातें, कथाएँ कही गई हैं ॥

कश्यप आदिमें उनके पिता मरीचिके भाई— अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, और क्रतु ये सगे पाँच भाई भये हैं। और ऋषि मुनियोंमें सुतीक्ष्ण, शरभङ्ग, जड़भरत, इत्यादि मुनिगण प्राचीन-कालमें जितने भी हुए हैं, वे सब तथा शौनकादि अट्ठासी हजार मुनि वर्ग सबके सब वाणीके मिथ्या वाद-विवाद, मतवाद, आत्मा, ब्रह्म, ईश्वरवाद, कर्तावाद इत्यादिमें ही सबोंने चित्त लगा दिये थे। व्यर्थके धोखाको ही चित्तमें धारण किये थे। सो उनकी मानन्दीकें वाणी शास्त्र, पुराणादि ग्रन्थोंमें लिखी हुई धरी हैं। उससे मालूम होता है कि— उन्होंको निज स्वरूपका यथार्थ बोध नहीं हुआ था। अतः जड़ाध्यासी होके भवबन्धनोंमें ही जकड़ पड़े, बिना पारख ॥५१॥

१४. अध्यारोप अपवाद कल्पना । सब काहू मिलि कीन्हा ॥५२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! उन मतवादी सब कोईने अनुमान, कल्पनामें मिल करके, अध्यारोप = वाणीकी विधिसे मत, सिद्धान्त स्थापन करना। और फिर दूसरे पक्षमें उलटके, अपवाद = उसको निषेध करना, अर्थात् प्रतिपादित सिद्धान्तको द्वैत बताके तोड़ना वा खण्डन करना, ऐसा किये और वैसे ही कर रहे हैं। प्रथम तो विधि करके ब्रह्म-जगत्के गुण-लक्षण न्यारा-न्यारा बताना, फिर अद्वैत सिद्धान्तमें जगत्को मिथ्या भ्रान्ति बताकर एक ब्रह्म ही सत्य है, ऐसा कहना। ज्ञानी, योगी, भक्तोंने सबोंने मिलके जो अध्यारोप और अपवाद किये, सो मिथ्या भ्रम कल्पनामात्र है।

बिना पारख उसकी पहिचान न हुयी। इसीसे वे सब भूलमें ही पड़े रहे, और आवागमनमें जा पड़े ॥ ५२ ॥

१५. आश्रम वर्ण चारि षट दर्शन। वैरागी संन्यासी ॥ ५३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और उन गुरुवा लोगोंने, चार वर्ण = ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र बनाये हैं। फिर उसके भीतर स्थितिके लिये चार आश्रम = ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासकी अवधि कायम किये हैं। और षट् दर्शनः— योगी, जङ्गम, जैन, संन्यासी, दरवेश, तथा ब्राह्मण-ब्रह्मचारी, ये मुख्य माने हैं। तथा मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य, वेदान्त, ये षट् शास्त्र भी षट् दर्शन कहलाता है। अथवा षट् शास्त्रोंके कर्ताओं-को भी षट् दार्शनिक कहते हैं। कहा हैः—

श्लोकः— "गौतमस्य कणादस्य कपिलस्य पतञ्जलेः ॥
व्यासस्य जैमिनेश्चापि दर्शनानि षड़ेव हि ॥"

और वैरागीः— यामुनाचार्य, रामानुजाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, रामानन्दाचार्य, वल्लभाचार्य, इत्यादि वैष्णव भक्तोंसे जो पन्थ चला, सो वैरागी सम्प्रदाय कहलाया। संन्यासीः— दण्डी और दिगम्बर दो भेद संन्यासियोंमें हैं। और शङ्काराचार्यसे दश नाम संन्यासियोंमें प्रचलित हुआ। आश्रम, तीर्थ, आरण्यक, वन, गिरि, पर्वत, सागर, सरस्वती, भारती, और पुरी, यही संन्यासियोंके चार मठोंके शाखाएँ दश नाम कहलाता है। ऐसे सब भेषधारी वर्णाश्रमी विस्तार हुए, परन्तु, बिना पारख वे सब भ्रम चक्रमें ही फिरे, और फिर रहे हैं ॥ ५३ ॥

१६. हिन्दू तुरुक दोउ मिलि गावैं। कहैं साखी अविनाशी ॥५४॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! इधर वेद, शास्त्र, पुराणादि ग्रन्थ, और ईश्वरादि कर्ता माननेवाले हिन्दू लोग, और उधर कुरान, किताब तथा खुदा, अल्लाह आदिको मालिक माननेवाले, तुरुक = मुसलमान लोग ये दोनों पक्षवाले, और ईसाई, पार्सी, बौद्ध, जैन, आदि

विभिन्न मतवाले सब लोग भी खानी-वाणी ये दोनोंमें मिल करके कोई अविनाशी साक्षी आत्मा, ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, गॉड, सूर्य, विज्ञान अरिहन्त इत्यादि परमेश्वर हैं, कहके ऐसे-ऐसे वाणी कल्पनाको ही गायन किये, और अभी वैसे ही गा रहे हैं। अविनाशी ईश्वरादि कत होनेका साक्षी— प्रमाण तो उन्होंने बहुत दिये हैं। परन्तु, उसका कहीं पता लगता ही नहीं है। सबका जनैया, सबको थापन करने वाला निजस्वरूप चैतन्य जीव है, उसके तरफ लक्ष लगाके भ्रमको तो कुछ मिटाते ही नहीं। इसीसे वे लोग जड़ाध्यासी होके आवागमन के भटकामें पड़े, और पड़ रहे हैं, बिना विचार ॥ ५४ ॥

१७. बादी साखि शिष्य होय बैठा । बादी रार बढ़ावे ॥ ५५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! मतवादी लोग व्यर्थमें ही सच्चा साक्षीका पता न पाकर झूठा ब्रह्म, ईश्वर, खुदादिके साक्षी मानकर वाणी कल्पनाको दृढ़ करके कोई गुरु तो कोई शिष्य होयके बैठे हैं। वादी लोग साखी-शब्दरूप वाणीके शिष्य होयके धोखेमें बैठे, उनके हाथमें तो सार कुछ आया ही नहीं। तथापि, बादी = मतवादी प्रचण्ड होके व्यर्थके, रार = तकरार, झगड़ा बढ़ाये। तहाँ भ्रम, बन्धन बढ़ता ही गया। किसीको भी मुक्ति स्थिति मिली नहीं। ये वादी लोग कहीं गुरुवा बने, और कहीं साखीके शिष्य बन बैठे। परन्तु, वादी लोग जहाँ गये, वहीं वाद-विवाद करके रार बढ़ाये, आत्माको व्यापक पूर्ण मानके गाफिल भये हैं ॥ ५५ ॥

१८. तेहि बादी सुर नर मुनि जहँड़े । बादी अन्त न पावै ॥५६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और उसी मिथ्याके मानन्दी आत्मवाद, ब्रह्मवादमें भूलके व्यर्थ ही वादी बने हुए, सुर = देवता, सतोगुणी मनुष्य, ज्ञानी लोग, नर = पुरुष, रजोगुणी मनुष्य, कर्मी लोग, और मुनि = मननशील, तपस्वी, तमोगुणी मनुष्य, योगी लोग— ये सब भी बिना विवेक, जहँड़े = भ्रमिक जड़ाध्यासी हुए, भटकनामें

पड़े। इसीसे वे मतवादी घनचक्रमें फिरने लगे। तहाँ ब्रह्म, ईश्वर, खुदाका अन्त वा पता तो कुछ पाये नहीं, अतः बेअन्त, अपार, अगम, अगोचर मानके शिर ठोंकके रह गये। यह सब तो मेरा ही अनुमान, कल्पना है, ऐसा न जानके वादियोंने भ्रमका अन्त नहीं पाये। अन्तमें देह छूटनेपर जड़ाध्यासवश चौरासी योनियोंके चक्रमें जायके पड़े। बिना पारख कठिन बन्धनमें जकड़ गये ॥ ५६ ॥

१९. बिना वादि कोई साखी नाहीं। साखी सबको प्राना ॥५७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैसे वादी-प्रतिवादी दो पूर्वसे मौजूद रहे बिना तीसरा साक्षी कोई भी हो नहीं सकता है। झगड़ा, फैसला करनेके लिये सबोंको साक्षीके प्रमाणकी आवश्यकता होती है। तभी साक्षीके कहे मुताबिक निर्णय करके फैसला होता है। उसी प्रकार वादी, मतवादी मनुष्य प्रथमसे हुए बिना, और कोई भी साक्षी आत्मा, ईश्वर आदि ठहरते नहीं हैं। जीवके बिना स्वतन्त्र साक्षी ईश्वरादि कहाँ है? उसका गुण, लक्षण तो बताओ? कहीं नहीं। परन्तु, भ्रमिक अबोध मनुष्य झूठा पक्ष पकड़के कोई एक साक्षी ईश्वर, ब्रह्म आदि मान रहे हैं। अब वह वेद, शास्त्रादिके साखी-शब्दोंका सबूतसे माना हुआ साक्षी-परमात्मा सबोंको प्राणके समान प्रिय हो रहा है। आत्माको सबोंके घटोंघटमें भरा हुआ सबोंका प्राण ही माने हैं। वही सब मतवादियोंने मुख्य प्रमाण माने हैं। बिना विवेक सब लोग धोखेमें पड़ रहे हैं ॥ ५७ ॥

२०. कहहिं कबीर साखी शब्द सब। झगरे माँहि समाना ॥५८॥

टीकाः— यहाँपर ग्रन्थकर्ता सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका कहा हुआ सत्य निर्णय कहते हैं कि— हे सन्तो! गुरुवा लोगोंने जो सबका कर्ता शब्द ब्रह्म (ॐ) को सबका साक्षी मानके वेद-वेदान्त आदिके नानावाणी कहे, तथा भाषामें साखी, शब्दादि-पद कथन करके कहे हैं, सो, झगरा = वेदके सार सिद्धान्त अन्तिम ब्रह्म सिद्धान्तके

धोखेमें ही जायके वे समाये हैं, और चराचर व्यापक एक ब्रह्म सत्य मानके जड़ाध्यासी हो, आवागमनके झगड़ामें ही समाये हैं। अब वही पूर्वके गुरुवा लोगोंका कहा हुआ वाणी साखी-शब्द आदिका पक्ष पकड़-पकड़के सब कोई मतवादी लोग अपने-अपने मत, पन्थ, ग्रन्थादिको बड़ा श्रेष्ठ बता-बताके वे सब अभी भी झगड़ा, फसाद, खैंचातान, राग, द्वेषादिमें समा रहे हैं। इसी कारणसे पारखहीन मनुष्य खानी, वाणीके कठिन बन्धनोंमें अरुझके चौरासी योनियोंके चक्रमें भ्रमण कर रहे हैं। अतः पारखी सद्गुरुके शरणागत होकर उस भूलको परखके मिटाना चाहिये। तभी मुक्ति हो सकेगी ॥ ५८ ॥

॥ * ॥ चतुर्थ—शब्द ॥ ४ ॥ * ॥

१. सन्तो ! कर्म न चीन्हे कोई ! ॥ ५९ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयाल साहेब कहते हैंः— हे जिज्ञासु सन्तो ! यह कर्म क्या चीज है ? वह किससे कैसे बनती है ? फिर परिणाममें उसका फल क्या होता है ? इसका रहस्य बिना पारख मतवादी लोग कोई भी चीन्हते वा पहिचानते नहीं। देहधारी जीवोंसे इच्छा करके तन, मन, वचनादि द्वारा अन्य जीवोंको सुख, दुःख पहुँचानेसे शुभाशुभ कर्म बनता है। सो उसका फल भोग भी देह धारण करके ही जीवोंको होता है। कर्ता जीवके अधीन कर्म होता है, कोई भी कर्म जीवके बिना स्वतन्त्र नहीं होता है। किन्तु, वह कर्मके रूपको कोई नहीं चीन्हते हैं। जिस कर्मसे जीवोंको बन्धन, आवागमन होता है, उसी कर्ममें सब कोई लगे, और लग रहे हैं, बिना विचार ॥ ५९ ॥

२. ताहि कर्म करि खोजे सबहीं। पण्डित औ दुनियाई ॥टेक॥६०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और उसी कर्म करके सुखको चाहते हैं, जिससे दुःख ही प्राप्ति होती है। तथा सुखके लिये ही, पण्डित=विद्वान्, योगी, ज्ञानी, भक्तादि, और दुनियाई=

संसारी, अज्ञानी, विषयासक्त ऐसे सब हीं लोग नाना कर्म कर-करके, ताहि = उसी कल्पित ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, देवी, देवतादिको जहाँ-तहाँ खोजते-फिरते हैं। वह कोई वस्तु ही नहीं है, तो मिलेगा कहाँसे ? प्राप्ति तो कुछ होती नहीं है। परन्तु, आशा-भरोशा लगाके सब कोई उसे खोजे, और खोज रहे हैं। पण्डित लोग ज्ञान, ध्यानादि साधनाएँ करके उसके खोजमें लगे हैं, और मूर्ख संसारी लोग कुकर्म हिंसा, बलिदान, देवी आदिकी पूजा कर-कराके सुखको खोज रहे हैं। जिस कर्म करके जीवोंको बन्धन दृढ़ होता है, वही-वही कर्म करके धोखेका खोज कर रहे हैं, इसीसे वे सब महान कठिन बन्धनोंमें पड़े हुए हैं, बिना विवेक ॥ ६० ॥

३. जिन्ह कीन्हों षट चार अष्टदश । सुर नर मुनि पढ़ि भूले ॥६१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! संसारमें पूर्वके और अबके, सुर = देवतारूप सतोगुणी मनुष्य, नर = रजोगुणी पुरुष, मुनि = मननशील तमोगुणी, तपस्वी, ऐसे त्रिगुणी लोग वेद, शास्त्र, पुराण आदि ग्रन्थोंको ही पढ़-पढ़के मिथ्यावाणी कल्पनाका ही प्रतीति करके निजस्वरूपको भूले, और भूल रहे हैं। परन्तु, जिस चैतन्य नरजीवोंने, चार = चार वेद, षट् = षट् शास्त्र, और अष्टदश = अठारह पुराण आदिकी वाणीका कल्पना कर-करके नाना ग्रन्थोंकी रचना, निर्माण किया, उसको तो कोई पहिचानते ही नहीं। ग्रन्थ पढ़के आत्मा, ब्रह्म, ईश्वरादि देवी, देवता, भूत, प्रेत, ऋद्धि-सिद्धि, आदि कल्पनासे मान-मानके भूले और भुलाये जा रहे हैं, सुर, नर, मुनि आदि सब कोई उसी महा भूलमें पड़े। उन्होंने जड़-चैतन्य, सत्य, असत्यका विवेक कुछ भी नहीं किये ॥ ६१ ॥

४. कृतम कर्ता गावन लागे । फिर-फिर योनी भूले ॥ ६२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो ! और, कृतम = कृत्तिम, नकली, कल्पित वाणीसे कोई एक जगत्कर्ता ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मादि अनुमान करके उसीका गुण गाने लगे। उसको भी ठहरनेवाला,

मानन्दी कर्ता चैतन्य जीव प्रत्यक्ष सत्य है। परन्तु, सो निज स्वरूपका विचार तो किसीने भी किया नहीं। मिथ्या वेदादिके वाणी पढ़-पढ़ाके कृतमको ही कर्ता कहके गाने लगे। उसकी महिमा गुणानुवाद बहुत वर्णन किये। परन्तु, यथार्थ भेदको तो कुछ जान ही नहीं पाये। इसीसे घूम-फिरके जीतेतक नाना मत-मतान्तरोंके, योनियोंमें प्रवेश करके बहुविधि साधनोंमें भूलते भये। पश्चात् जड़ाध्यासी होके देह छूटनेपर कर्मानुसार फिर-फिराके पशु, पक्षी, उष्मजादि चौरासी योनियोंमें जा-जाके आवागमनके भूलामें भूले, और भूल रहे हैं। निज स्वरूपकी स्थितिमें स्थिर हुए बिना, कोई भी इस भूलासे नहीं छूट सकते हैं ॥ ६२ ॥

५. ज्ञान भक्ति वैराग्य योग करि। साधन करि करि ध्यावै ॥६३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! बन्धनकारक कर्मको न पहिचान करके कोई ज्ञानी बने, वे विवेक, वैराग्य, मुमुक्षुता, शमादि षट् सम्पति सहित ज्ञान साधना करके क्रमशः सप्तज्ञान भूमिकासे ऊपर चढ़ने लगे। ब्रह्म, आत्माको ध्येय ठहराकर उसीका ध्यान करने लगे। कोई नवधा भक्तिकी आश्रय लेकर सगुण-निर्गुणकी भक्ति करने लगे; कोई प्रेम लक्षणा भक्तिमें अलमस्त भये। मानसिक ध्यान, पूजा, आदि मनकी कल्पना चक्रमें कोई लगे हैं। कोई वैराग्य धारण करके अरण्य निवासी भये। अन्नको छोड़-कर वनकी कन्द, मूल, फल, फूल, पत्तियाँ आदि खाकर निर्वाह करने लगे। कोई तपस्वी भये। कोई हठयोग, राजयोगादि अष्टाङ्ग योगोंके अभ्यासी भये। इत्यादि प्रकारसे ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, योगादिके नाना साधनाएँ कर-करके धोखाके पीछे ही धाय-धायके दौड़े, तो भ्रम खाँचमें जाके गिर पड़े, गाफिल भये हैं ॥ ६३ ॥

६. कृतम आगे कर्ता नाचै। जहाँ तहाँ दुःख पावै ॥ ६४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! देखिये! कितनी बड़ी भारी भूल है, इन लोगोंकी, कृतम = कृत्तिम, नकली, बनावटी,

झूठाके, आगे = सामनेमें, कर्ता = चैतन्य नरजीव स्वयं धोखेमें पड़के मनमाने नाच, खेल, तमाशा कर रहे हैं, नाच रहे हैं। अर्थात् कोई पत्थरादि जड़ मूर्तिकी देवी, देवता बना करके बड़े-बड़े मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित कर उसमें शिर पटक-पटकके, कृतम = जड़मूर्तिके आगे कर्ता— कारीगर मनुष्य नाना विधिसे नाचे और नाच ही रहे हैं। कोई वाणी कल्पनासे निराकार, निर्गुण ईश्वरादि मान करके उस भ्रमके आगे मानन्दी-कर्ता जीव बहुत प्रकारसे साधनाएँ करके नाचे। जहाँ-तहाँ = कर्म, भक्ति, योग, ज्ञान, विज्ञान और विषयादि जहाँ-जहाँ भी चले गये, तहाँ-तहाँ ही नाना तरहसे दुःख ही पाये। कहीं भी नित्य सुख वा मुक्ति नहीं मिली है। अभी भी वैसे ही बन्दरवत् नाचके दुःख पा रहे हैं। तो भी चेत करके उस भ्रमको नहीं त्यागते हैं। सत्सङ्ग-विचार करके पारख गुरुपदमें नहीं लगते हैं, वे अभागे ही बने हैं, बिना विवेक ॥ ६४ ॥

७. पाँच तत्त्व त्रिगुण करी कर। तीनों लोक प्रवेशी ॥ ६५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! मनुष्योंने, कर = अपने हाथसे नाना कर्म, कुकर्म, कर्तव्य करके अन्तःकरणमें जड़ाध्यासको टिकाये। जिससे पाँच तत्त्व और त्रिगुणके कार्य भागोंका सम्बन्ध करके देह बनाकर गर्भसे बाहर जन्म लेके आये। फिर वे जीव संसारमें काम, क्रोध, मोह, तथा स्त्री, पुत्र, धन, यही तीन लोकमें प्रवेश किये, तो तहाँ बन्धायमान भये हैं। तैसे ही ज्ञानी, योगी, भक्त, ये तीनोंने स्वर्ग, मृत्यु, पातालमें, ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और शिवलोक, ऐसे तीन लोक मानके वे उसीमें प्रवेश करना चाहते हैं। अथवा पाँचतत्त्व त्रिगुणरूप समस्त पिण्ड, ब्रह्माण्डमें ब्रह्म व्यापक है, ऐसा कल्पना करके वे द्वैत, अद्वैत, विसिष्ठाद्वैतके तीन लोकमें प्रवेश किये हैं। उसी अध्यासवश तीनों लोकके सब जीव जगत्के तीन खानीमें जाके बद्ध भये और बद्ध हो रहे हैं। अथवा परमेश्वरने प्रथमारम्भमें पाँचतत्त्व सहित त्रिगुणको उत्पन्न करके तहाँ तीन

लोक बनाया। फिर तीनों लोकोंमें प्रवेश करके वह व्यापकरूपसे सर्वत्र पूर्ण होके रह गया। ऐसे कल्पना किये हैं ॥ ६५ ॥

८. कर्ताके गले कृतम फाँसी । डारैं सब उपदेशी ॥ ६६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! चारखानीमें देहका निर्माणकर्ता, और सम्पूर्ण वाणी कल्पनाका कथन कर्ता, और मानन्दीकर्ता, ऐसे तो मनुष्य जीव ही प्रत्यक्ष हैं । उन्हीं कर्ता नरजीवोंके गलेमें वा अन्तःकरणमें फँसायके, कृतम = नकली कल्पित वाणीकी जाल और विषयोंकी जालमें चौतरफसे बाँधके, उपदेशी = उपदेश देनेवाले ब्रह्मादि, सनकादि, योगी, ज्ञानी, भक्तादि गुरुवा लोगोंने सबोंके गलेमें भीतर-बाहरसे फाँसी डाल दिये हैं, उसी फाँसीमें लटक-लटक करके छटपटाके निजपदकी स्थितिसे सबके-सब मारे गये । काल गुरुवा लोगोंके फन्दा-फाँसीसे कोई बिरले पारखी ही छूटे हैं । नहीं तो और सब भुलाय गये हैं, कोई नहीं बच पाये हैं । सब उपदेशिक लोग ही कर्ताके गलेमें कृतमके फाँसी डाले, और डालते ही जा रहे हैं । ऐसे निर्दयी काल-कठोर बने हैं ॥ ६६ ॥

९. तुरुक कहैं कून फैकूना । भई मिटी दुनियाई ॥ ६७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! इस शब्दमें आधा भाग आठ चौपाईतकमें हिन्दुओंकी कसर-खोटकी निर्णय करके कहा गया है । अब बाकीके आठ चौपाईयोंमें मुसलमानोंकी मजहबका कसर-खोट निर्णय करके दरशावेंगे, सो ध्यानपूर्वक सुनिये !, तुरुक = मुसलमान लोग उनके मजहबमें सृष्टिकी उत्पत्ति-प्रलय होनेके बारेमें उसकी भेद बात ऐसा कहते हैं कि— पहले जगत् कुछ नहीं था, खुदा अकेला ही था । उसको जगत् बनानेकी इच्छा उदय हुयी, तब खुदा वा अल्लामियाँने जोरसे "कून-कून" शब्द किया, मानों मुख ही से घण्टी बजायी हो, ऐसा हुआ । ऐसे खुदाके हुकमसे गैबसे

जोरोंके साथ बड़ी भारी आवाज हुई। सो उसी 'कून्न' शब्दकी ध्वनिसे आशमानसे लेकर जमीनतक सारी दुनियाँकी उत्पत्ति कुनकुनाते हुए एक साथ हो गयी। हमेशा उत्पत्तिके लिये ऐसा ही नियम हुआ करेगा। और फिर जब खुदाको उदासी आके दुनियाँ मिटा देनेकी अरमान वा इच्छा होगी, तब खुदा-ताला जोरोंसे फिर "फैकून्न-फैकून्न" शब्द प्रगट करेगा। जिससे उसी वक्त सारी दुनियाँ एकदम फना या विनाश हो जायगी। इस तरह कून्न शब्द होनेसे सृष्टि उत्पत्ति भयी, और फैकून्न शब्द होनेपर सब दुनियाँ मिट-मिटाके नाश हो जायगी। ऐसी मिथ्या कपोल कल्पना किये हैं ॥ ६७ ॥

१०. ताहि सखुनको चीन्हत नाहीं। अहमक मोलना भाई! ॥६८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे भाई! जरा विचार तो करो! बिना कारण, बिना प्रयोजन बेठिकानसे कहीं शब्द ही मात्रसे दुनियाँ की उत्पत्ति वा प्रलय हो सकती है? ऐसा तो कभी हो नहीं सकतो है। फिर जगत् नहीं था, तो वह खुदा भी कहाँ कैसे रहा था? बिना देहके निराकारमें कभी इच्छा हो ही नहीं सकती है। और उपादान कारण हुए बिना इच्छामात्रसे कोई वस्तु बन ही नहीं सकती हैं, इसलिये इनका कथन छोकरोंके झूठी कहानीवत् है। वह 'कून्न-फैकून्न' शब्द तो मनुष्योंसे कल्पना करके होती भयी। और मुखसे बोली गयी, ताहि = उसी, सखुनको = शब्द वा वाणी कल्पनाको कोई विवेक करके चीन्हते-पहिचानते नहीं। इसीसे वे, मोलना = मौलवी वा मुल्ला मुसलमानी-धर्मके उपदेशक! (उन्हें पण्डित पुरोहितके समान माने हैं।) वे खुद ही, अहमक = नादान, दुर्बुद्धि, मूर्ख वा अज्ञानी बने हैं। फिर वे दूसरोंको सच्ची बात क्या समझावेंगे?। हे मौलबी! तुम यह बताओ कि— पहले यह जगत् नहीं था, फिर खुदाके 'कून्न' करनेसे दुनियाँ उत्पन्न हुआ, और 'फैकून्न' करनेसे नाश हो जायगी। सो यह बात तुमने कैसे जानी? क्या तुम उस वक्त दोस्त बनके

खुदाके साथ रहे थे? यदि तुम थे, तो जगत् सब भी रहा ही। यदि तुम नहीं थे, तो तुम्हारी यह बात सरासर झूठी ही ठहरी। अपने स्वयं ही शब्द कल्पना करके कहे हो, फिर उसी शब्दको चीन्हते नहीं हो, इसीसे ये मोलना अहमक बने हैं। हे भाई! तुम लोग इनकी धोखा जालमें मत पड़ो ॥ ६८ ॥

११. काजी सो जो काज करावै। नहिं अकाज सो राजी ॥६९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो!, काजी = मुस्लिम धर्मके अनुसार न्याय-नीतिसे चलानेवाला। और इन्शाफ करनेवाला न्यायाधीश, जजके तरह हो, उसे 'काजी' कहते हैं। असलमें तो काजी सोई है कि—जो मनुष्योंसे सत्कर्म करावे, दया, धर्म, शील, सन्तोष, सत्यकी राहसे चलावे। सबोंके हित, कल्याण हो, वैसे शिक्षा देवे। और अकाजसे कभी भी राजी-खुशी नहीं होता हो। अर्थात् चोरी, हिंसा, व्यभिचार, अत्याचार, झूठ, ठगाई, इत्यादि कुकर्म सोई अकाज, दुःखदायी बन्धनकारी है, उसमें प्रसन्न होके कभी लगने-लगानेवाला न हो, सोई हितकर सच्चा काजी है। अतएव हे मुस्लिमो! जीवका कल्याण हो, वैसा उपदेश देके सत्कर्म करानेवाले हों, उन्हींको असली काजी जानो। उनके ही कहे अनुसार न्याय-नीतिसे चलो। वे काजी हिंसा, वैर, घात आदिमें कभी राजी नहीं रहते हैं, ये ही लक्षण उनके पहिचानके है ॥ ६९ ॥

१२. जो अकाजकी राह चलावै। सो काजी नहिं पाजी! ॥७०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और जो शख्स, अकाजकी = जीव-हत्या, हिंसा, मारपीट, झगड़ा, मांस-मदिरा-भक्षण, पर-स्त्री गमन, वेश्यागमन, दुराचार, झूठ, छल, कपट, साम्प्रदायिक द्वेष, कलह इत्यादि बुराई, कुकर्म, अन्याय, अनीतिके ही कुमार्गसे अबोध मुस्लिमोंको भुलाय-भ्रमायके चलाते हैं, उल्लू सीधा करके अपने स्वार्थ सिद्धिके लिये मनुष्यके न करने लायक पैशाचिक-दानवी

कृत्य भी करते-कराते हैं। और जो धर्मान्ध, दुर्बुद्धि, निर्दयी बने हैं, सो वे इन्शाफ करनेवाले सच्चा काजी कभी हो नहीं सकते हैं। किन्तु, महामूर्ख, बदमाश, वह बड़ा पाजी है; पापी, कलङ्कित, दुष्ट, हिंसक, कामी, क्रोधी, आदि जो हैं, वही पाजी कहलाते हैं। अतः हितेच्छुक मनुष्योंने वैसोंकी कुसङ्गति साथ कभी नहीं करना चाहिये। सावधानीसे सदा दूर ही रहना चाहिये। उन्हें पहिचानके उनसे अलग हो जाना चाहिये ॥ ७० ॥

१३. कल्मा बाँग निमाज गुजारै। गाफिलको हैं गाई ॥ ७१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और ये मुसलमान लोग कुरानके प्रमाणसे, कल्मा = मुस्लिम धर्ममें कल्माको मूल मन्त्र माना है।—"ला इलाह इल्लिलाह मुहम्मद रसूलिल्लाह।" इत्यादि पाँच कलमा कहा है। वही मुसलमान लोग पढ़ा करते हैं। बाँग = मुल्ला लोग मसजिदोंमें खड़े होके शाम-सबेरे नमाजका समय बतानेके लिये चिल्लाके ऊँचे शब्दसे पुकारा करते हैं। उसे 'अजान देना' वा बाँग पुकारना कहते हैं, सो वे लोग समय-समयपर पुकारा करते हैं। निमाज = मुसलमान लोग नित्य पाँच बार खुदाकी प्रार्थना करते हैं, उसे नमाज पढ़ना कहते हैं। ऐसे वे लोग कल्मा, बाँग, नमाज पढ़ते हुए दिन वा आयु गुजारते हैं; समय बिताते हैं। परन्तु, जिसके लिये वे इतना सारा प्रयत्न करते हैं, गुण गाते हैं, सो क्या है? मनकी कल्पना भ्रम ही है। सो उसका भेद न जानके वे सब लोग गाफिलीमें ही पड़े हैं। गाफिल होके मिथ्याका ही गुण गाये हैं। अतः बिना विवेक सब अचेत गरगाफ हुए, और हो रहे हैं। उसे विवेक करके समझना चाहिये ॥ ७१ ॥

१४. दोजख पीछे भये दिवाने। खसलत कहैं खुदाई ॥ ७२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और, खुदाई = खुदा वा अल्लाह मियाँको मुसलमान लोग, खसलत = खास करके सत्य, नित्य, सबका मालिक कहते हैं। और उसीकी यादगारी, प्रार्थना, रटन

कर-करके, दिवाने = पागल ही भये हैं। पागलपनामें खुदाके नामसे, हलाल = जीवहिंसा, हत्या आदि बहुत-सी पापकर्म, अनीति किये, कराये, इसीसे वे सब पीछे मर-मरके, दोजख = नरककुण्डमें जाके गिर पड़ेंगे। चौरासी योनियोंके गर्भवासमें चले जावेंगे। इस तरफ तो वे कुछ ध्यान ही नहीं देते हैं, अथवा पीछे दोजख वा नरककी दुःखोंका भयानक वाणी सुनके और आगे, बिहिस्त = स्वर्गकी रोचक शब्दसे सुख मान करके बिहिस्त जानेकी इच्छा बढ़ायके मुस्लिम लोग दिवाने हो गये। तहाँ दया-धर्मको छोड़कर क्रूर, निर्दयी बनके कुकर्म करने लगे, और जिस खुदाको खास सत्य मानते हैं, खसलत कहते हैं, उसका तो कहीं पता ही नहीं लगता है; और सत्य, चैतन्य-जीवको तो वे लोग कुछ जानते वा मानते ही नहीं हैं। इसीसे जड़ाध्यासी हो, चौरासी योनियोंमें पड़के दुःख भोगा करते हैं, बिना विचार ॥ ७२ ॥

१५. निराकार बेचून बखानै। जगमें गोता खाई ॥ ७३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! हिन्दू और मुसलमान दोनों ही महा भ्रम-चक्रमें पड़े हैं। उनमें हिन्दुओंके गुरुवा पण्डित लोग ब्रह्म, ईश्वरादि कल्पित कर्ताको स्वरूपसे निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, अगम, अपार वर्णन करते हैं। जब उसका कहीं पता नहीं लगा, तो जगत्में ही व्यापक ठहराते हैं। तैसे ही मुस्लिमोंके गुरुवा, पीर, काजी लोग, खुदा वा अल्लाहको कर्तापुरुष मान करके उसे बेचून, बेनमून, लामुकाम, गोयमगोय बखान करते हैं। जब कहीं पता नहीं लगा, तो आखिरमें हारके खालिक खलकमें भरा हुआ है, ऐसा बतलाते हैं। इस तरहसे वे दोनों ही जगत्रूप भवसागरके बीच धारामें ही गोता खाये हैं। आवागमनमें पड़के गर्भवासमें गहरी गोता लगा रहे हैं; बिना सत्सङ्ग दुःख भोगी हो रहे हैं ॥ ७३ ॥

१६. कहहिं कबीर पण्डित औ काजी। दोनों अकिल गमाई ॥ ७४ ॥

टीकाः— यहाँपर श्रीगुरुदयालसाहेब सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका

कहा हुआ निर्णय कहते हैं कि— हे सन्तो! इस प्रकारसे हिन्दू पण्डित लोग और मुस्लिम काजी लोग अपने-अपने सम्प्रदायके बड़े गुरुवा लोग तो कहलाये, परन्तु, जीवोंको बन्धनकारी कर्मके रहस्य खानी-वाणी जालोंको ठीक तरहसे न चीन्हके उन दोनोंने अपनी-अपनी, अकिल = मनुष्य पदकी सद्बुद्धि, विवेक-विचार, सत्यबोध, वैराग्य आदि सद्गुण गमाके खो दिये हैं। पशु-बुद्धि लेके मनुष्य पदसे नष्ट-भ्रष्ट हो गये, और अध्यास वश चौरासी योनियोंके चक्रमें पड़ गये और पड़ रहे हैं, बिना पारख! अतएव मुमुक्षुओंको चाहिये, कि— हिन्दू-मुस्लिमोंकी पक्षपात, हठ, दुराग्रहको दिलसे छोड़कर विवेकी-पारखी साधु-गुरुकी सत्सङ्ग-विचार करते हुए सत्यबोधको लेके अपना यह मनुष्य जीवनको सफल करना चाहिये! सार ग्रहण करना चाहिये! ॥ ७४ ॥

॥ ❋ ॥ पञ्चम–शब्द ॥ ५ ॥ ❋ ॥

१. सन्तो! जैनीको भ्रम भारी! ॥ ७५ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैं:— हे सन्तो! विवेक-दृष्टिसे देखिये! इन जैन मतवादियोंको बड़ा भारी भ्रम-धोखा, भूल लगा हुआ है। तहाँ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक रमैनी ३० में कहा है:—

"औ भूले षटदर्शन भाई! पाखण्ड भेष रहा लपटाई ॥ १ ॥
ताकर हाल होय अदबूदा। छौ दर्शनमें जैनि बिगूर्चा ॥"बी०र०३०॥

—और हे भाई! षट्दर्शनके लोग निजस्वरूपको भूले, तो पाखण्डके भेषमें लिपट रहे हैं। वैसे तो षट्दर्शनके सब लोग बिना पारख भ्रम धोखेमें पड़े ही हुये हैं। तो भी षट्दर्शनोंमें सबसे ज्यादा जैनी लोग धोखेमें पड़े हैं। उनके हाल अदबुद वा आश्चर्यमय बुद्धिहीन हुआ है। बड़े भ्रमिक हुये और हो रहे हैं। पक्षपातमें निपुण बने हैं, इत्यादि ॥

इस प्रमाणसे भी जैनियोंको बड़ा भारी भ्रम-भूल लगा हुआ है, ऐसा साबित होता है। उसके बारेमें उसका कारणका खुलासा करके निम्न पदोंमें कहा है ॥ ७५ ॥

२. जैन नाम जाकी जय नाहीं । छौकी राह पसारी ॥ टेक ॥ ७६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! देखिये ! जैन शब्दमें दोनों अक्षर अलग-अलग करिये "जै" "न" होता है। वह नाम ही अर्थ प्रगट करता है कि— जै-न कहिये जिसके जय वा जीत-विजय कल्याणरूप हित होनेवाला नहीं है। क्योंकि, भ्रम-धोखा उनका छूटा नहीं है, इसीसे उनका जय नहीं होता है, और जैनियोंने एक सत्यमार्गको त्याग करके झूठी छौ पदार्थकी मानन्दी दृढ़ करके झूठ-मूठके मार्ग जैन मतका पसारा वा विस्तार किये हैं। उनके भ्रम मानन्दीसे मनुष्योंका कुछ भी हित, कल्याण होनेवाला नहीं हैं। इसीसे जिसको निजस्वरूपका बोध नहीं हुआ, उसने अपना जैन नाम धराया। तहाँ जिसके जैन नाम है, उसके तो जय होनेवाला नहीं है, यह अर्थ निकला। उनके समझका अनर्थ हो गया। छौकी = षट् द्रव्यकी कल्पना करके जो रास्ता पसारे हैं, सो भटकानेवाला, बन्धनोंमें डालनेवाला ही हुआ। विना विचार यह भेद उन्होंने नहीं जाने हैं ॥ ७६ ॥

३. जीव द्रव्य पुद्गल कहि वरनै । धर्म अधर्म सो चारी ॥ ७७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जैनियोंके षट्द्रव्योंके नाम ऐसा कहा है कि— १. जीव द्रव्य है। २. पुद्गल (परमाणु वा शरीर) को भी द्रव्य कहके वर्णन किये हैं। ३. धर्म द्रव्य। ४. अधर्म द्रव्य सो यही चार द्रव्योंके नाम उन्होंके माने हुये हैं ॥७७॥

४. पँचयें काल द्रव्य कहि छठयें । पात्र अकाश विचारी ॥ ७८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! तथा ५. पाँचवें काल वा समयको भी नित्य द्रव्य कहा है, और ६. छठयें इन पाँचों द्रव्योंका

रहनेका, पात्र = वर्तन वा जगहरूप शून्यको आकाश द्रव्य कहके नित्य होनेका विचार किये हैं। परन्तु, आकाशकाय, वायुकाय, तेजकाय, जलकाय, पृथ्वीकाय, सबको जीव-ही-जीव माने हैं। परमाणु समूहको भी जीव ही ठहराये हैं। इसीसे जीवके सत्य चैतन्य अखण्ड स्वरूपको उन्होंने कुछ जाने नहीं हैं। पुद्गल = शरीर, यह तत्त्वोंकी कार्य होनेसे वह नित्य द्रव्य कदापि हो नहीं सकता है। सिर्फ परमाणुको ही नित्य द्रव्य माना जा सकता है। धर्म, अधर्म वा पाप-पुण्य भी द्रव्य नहीं ठहरते हैं। काल वा समय सूर्य करके होता है, इसीसे वह भी नित्य द्रव्य हो नहीं सकता है, और आकाश शून्य पोल है, वह कोई वस्तु वा पदार्थ नहीं है, अतः वह भी कोई द्रव्य नहीं है। (इसका निर्णयसे विस्तार वर्णन 'निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन' में जैनमत वर्णनमें देखिये ! और इस ग्रन्थमें श्रीकबीरपरिचय साखी संख्या १२२ की टीका (पृष्ठ १०२९ से १०३१ तक) में भी खुलासा किया है, वहाँ देखिये !), ऐसे षट् द्रव्योंको अनादि स्वयं मानके जैनियोंने अनेकों भेदसे विचार किये हैं, सो सब मनकी कल्पना भ्रम-भूल ही है, उसमें सत्य-सार कुछ भी नहीं है। सो सत्सङ्ग द्वारा निर्णय करके सार, असारका विचार करना चाहिये ॥ ७८ ॥

५. अपने-अपने गुण कर्मनके। ये षट कर्ता मानी ॥ ७९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! ये भ्रमिक जैनी लोगोंने ऊपर कहे हुए षट्द्रव्योंको ही अपने-अपने गुण-कर्मोंके सहित नित्य पदार्थ, और उसे ही षट्कर्ता भी अनादि ठहरा करके मान लिये हैं। परन्तु, वह तो निर्णयसे मिथ्या कल्पना ही ठहरता है। उन्होंने अपने-अपने स्वभाव, समझ, गुण; कर्मोंके अनुसार ही अनुमान, कल्पना बढ़ा करके वाणी बनाये हैं। तहाँ अपनेको भूलके वही षट् द्रव्यको ही सृष्टिका कर्ता मान लिये हैं, अपने तरफ तो उन्होंने कुछ भी ख्याल नहीं किया कि— यह सबको तो हमने ही माने हैं, फिर वह कर्ता कैसे होगा ? कारण-कार्य वस्तु प्रथमसे

रहे बिना कर्ता कहाँ रहेगा? और छः कर्ता मिलके उत्पत्ति किस चीजकी हुयी? कैसे, कहाँपर हुयी? इत्यादि बातका उत्तर जैनीलोग नहीं दे सकते हैं। अतः वे बड़े भ्रम, भूलमें पड़े हैं ॥ ७९ ॥

६. कियो न काहु अनादि निधान है । जिन कियो ताहि न जानी ॥८०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! और भ्रमिक जैनी लोग कहते हैं कि— जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश, ये छहों द्रव्योंको, कियो न काहु = किसीने बनाके उत्पन्न किया नहीं है। बल्कि उक्तषट् द्रव्य, अनादि = जिसका कोई आदि न हो, स्वतः वा स्वयं सिद्ध है, और निधान = सब सारका खजाना वा खदान भी वही है। इत्यादि प्रकारसे उसे ही सर्वोपरि माने हैं। परन्तु, जिन = जिस नरजीवने वा मनुष्योंने, कियो = यह सबोंकी कल्पना-मानन्दी किया, और वाणीकी विस्तार किया, उक्त षट् द्रव्योंका कथन करके वर्णन किया है, ताहि = उस सत्य-चैतन्य जीवको वा निजस्वरूपको तो, न जानी = पारख विचार करके उन्होंने कुछ भी जाने ही नहीं। अतः मिथ्या कल्पनामें ही गरगाफ पड़े हैं। अर्थात् जिसने यह सारा अनुमान विस्तार किया, उस सत्य-चैतन्यजीवको तो विवेकसे नहीं जाने वा जानते नहीं हैं, और षट्द्रव्यको अनादि खजाना मानके झूठेमें ही भूले हुए हैं। ऐसे अविचारी मूढ़ ही बने हैं ॥ ८० ॥

७. ज्यों पुदगलको त्याग निमित्ते । साधन अमित कमावै ॥८१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! जैनी लोग देह त्याग होनेको ही मुक्ति मानकरके फिर ज्यों-त्यों करके, पुद्गल = शरीरको त्याग कर देनेके निमित्तसे धोखेमें पड़के, अमित = बहुत-बहुत प्रकारके साधनोंके कमाई कमाते हैं। अर्थात् उपवास बढ़ाते-बढ़ाते चालीस-चालीस दिनतक अन्न-जलका त्याग कर देते हैं। यदि उसी बीचमें शरीर छूट जाय, तो उसे मुक्ति मानते हैं। कोई फल, फूल, कन्द, मूल, पत्र, तृण, आदिके आहरसे गुजारा करते हैं। कोई नागे, तपस्वी आदि होते हैं। इत्यादि प्रकारसे

देहको दुःखरूप जानके उसे त्यागनेके निमित्तसे साधनाएँ खूब करते हैं ॥ ८१ ॥

८. सो पुदगल पाहन मूरति करि । गुरु कहि शीश नवावै ॥८२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! सो पुद्गल = जिस शरीरको प्रथम दुःखदाई, बन्धनका घर समझके त्याग देनेका प्रयत्न किया था, और उन्होंके गुरुवा लोगोंने अविचारसे हठात् आत्म-हत्या करके जो शरीरको छोड़ा, सो उसी शरीरके समान आकार-प्रकारके लम्बा-चौड़ा पत्थरके मूर्ति— बड़ी-बड़ी जड़-मूर्ति बना करके, उसी मूर्तिको ही गुरु, तीर्थङ्कर, देव, भगवान्, कहिके बड़ा श्रेष्ठ मान करके भक्ति भावसे झुक-झुकके हे गुरु ! हे गुरु ! कहके प्रार्थना करते हुए जैनी लोग शिर नवाते हैं। ऐसे पत्थरमें शिर पटकते हैं। देखिये ! एक तरफ तो पहिले देहको त्याग करनेके लिये प्रयत्न करते हैं। फिर दूसरे तरफ जड़ पत्थरके मूर्तिका देहके आकार-प्रकार बनाके उसे गुरु मानके शिर नवाते हैं। ऐसे वे मूर्ख बने हैं ॥ ८२ ॥

९. बीतराग सर्व पुदगलसे । लिखि सो वाणी बाँचै ॥ ८३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जैनी लोग कहते हैं कि— उनके पूर्ववर्ति गुरुवा लोग सब, बीतराग = जिनके राग सब बीत गया, वैराग्यवान् भये और, पुदगलसे = शरीरपरसे उनके सर्व राग, आसक्ति, मोह छूट गया था, इसीसे वे मुक्त भये। और मुक्तिके लिये सबोंको उसी प्रकार देहसे राग हटायके बीतराग होना चाहिये। ऐसे-ऐसे बात कहते हैं, और वही बात ग्रन्थोंमें भी लिख रखे हैं। सोई वाणीकी कथा बाँचते, पढ़ते, दूसरोंको सुना-सुनाके उपदेश देते हैं कि— हे जैनियो ! तुम सब कोई देहसे राग हटायके बीतराग होओ, इत्यादि कहते, सुनते, सुनाते हैं, वही पढ़ाते हैं ॥८३॥

१०. पुदगल शिखर इष्ट कहि आगे । नारि पुरुष मिलि नाचै ॥८४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! फिर दूसरे तरफ

उसके विपरीत, शिखर = पहाड़के चोटीमें, टीलामें, ऊँचे स्थानोंमें, ऐसे ही जगहोंमें जैनियोंने बड़े-बड़े मन्दिर बना रखे हैं। वहाँपर, पुद्गल = पुरुषाकार शरीर काले पत्थरोंके नग्न मूर्ति बना रखे हैं। उसे ही इष्टदेवता भगवान्, गुरु ! कहि-कहिके शिखरमें मूर्तिके आगे स्त्री-पुरुष मिलके खूब प्रेमसे हाव-भाव, कटाक्ष, चला-चलाके नाच-नाचते हैं, गीत गाते हैं, राग-रङ्ग तानकी खूब विस्तार करते हैं। इतना बड़ा भारी देहकी राग आसक्तिमें ये स्वयं पड़े हैं, और दूसरोंको जैसे उपदेश देते हैं, वैसे तो अपने खुद चलते ही नहीं हैं। इसीसे इनकी कभी मुक्ति नहीं होगी। किन्तु, चौरासी योनियोंके नरकमें ही गिरेंगे, वहीं पचते रहेंगे। बिना विवेक ॥ ८४ ॥

११. जेहि चौबिसकी मुक्ति बतावो । जगसों कहो निराशा ॥८५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जैनमतवादी लोगो ! तुम लोग तुम्हारे पूर्वके आचार्य गुरु ऋषभदेवसे लेकर महावीर स्वामी पर्यन्त जिन चौबीस तिर्थङ्करोंकी बड़ाई, महिमा करते हो, वे जगत् विषयोंसे निराश, उदास, वैरागग्यवान् रहे थे, कहते हो। उन चौबीसोंकी मुक्ति हो गयी, ऐसा बताते हो। मुक्तिके लिये जगत्से निराश रहना चाहिये, ऐसा दूसरोंसे कहते-फिरते हो, परन्तु, वैसे रहनी तुम खुद ही नहीं बनाते हो। उल्टे चालसे चलते हो, अतः बड़े अविचारी बने हो ॥ ८५ ॥

१२. तेहि रथ चढ़ाय रागि कर फेरें । ज्यों नट करें तमाशा ॥८६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जैनियो ! और चौबीस तीर्थङ्कर जिनकी तुम लोग मुक्ति बताते हो, फिर उन्हींकी ही पुतलारूप पत्थरकी बड़ी-बड़ी जड़मूर्ति बनाकर तथा चित्र वा फोटो आदिको सजाकर उसको रथ, पालकी, हाथीकी सवारी आदिमें ऊपर चढ़ायके सज-धजके साथ कीमती शाल-दुशाल ओढ़ाके, रत्न लटकाके बड़े भारी ठाट-बाट, धूम-धामसे, बाजे-गाजेसहित जुलूस निकालके महारागी

बनाकर जगह-जगह घुमाते हैं। फेरा फिराते हैं। बड़े-बड़े शहरोंमें, गाँव, कस्बोंमें रथयात्रा उत्सव मनाके गली-कूँची सड़कपरसे जुलूस निकाल करके कोशोंकी चक्करमें घुमाते-फिराते हैं। जैसे नट, भाँड़, पातुरी बहुत प्रकारसे स्वाँग बनाके विचित्र-विचित्र तमाशा करके देखाते हैं, फिर स्वार्थ सिद्ध करके चले जाते हैं। तैसे ही तुम लोग जैनी भी नटके समान ही स्वाँग बनाके नाच, तमाशा आदि करते फिरते हो। जिनकी मुक्ति बताते हो, फिर उनको ही मोहसे बन्धनोंमें डालके रागीका चित्र बनाके अपने भी महाविषयासक्त रागी बनके तमाशा किया करते हो। अतः तुम लोग बड़े दुर्बुद्धि, अविचारी बने हुए हो ॥ ८६ ॥

१३. क्षुधा पिपासा आदि अष्टदश। दोष कहैं यह त्यागो ॥८७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैनी लोग कहते हैं कि, क्षुधा = भूख और पिपासा = प्यास वा प्राण इत्यादि सब अठारह दोषोंको त्यागो कहा है। उनके अठारह दोषोंके नाम ये हैंः— मिथ्यात्व, अज्ञान, मद, क्रोध, माया, लोभ, रति (राग), अरति (खेद), निद्रा, शोक, अलीक (मिथ्या भाषण), चोरी, मत्सर, भय, प्राणीवध, प्रेम, क्रीड़ा, और हँसना— ये अठारह दोष जीतके तीर्थङ्कर मुक्त हुए। अतः मुक्तिके लिये तुम लोग भी उक्त अठारह दोषोंको त्याग कर देओ। इत्यादि प्रकारसे कहके जैनियोंके गुरुवा लोग शिष्योंको उपदेश देते रहते हैं ॥ ८७ ॥

१४. जेहि कारण यह सन्यो दोषमें। तासो निशि दिन पागो ॥८८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और जिस कारणसे यह अठारह दोषोंमें सब प्राणी, सन्यो = मिले हैं, तासों = उसीमें वा उन्हीं अठारहों दोषोंमें वे खुद ही, निशिदिन = रात-दिन, हरहमेशा, पागो = जकड़े पड़े हैं। मुक्तिके लिये १८ दोषोंको त्यागनेके लिये तो कहते हैं, परन्तु वे स्वयं ही उसीमें फँसे पड़े हैं, बन्धनोंमें ही पड़े हैं, तो भला! उनके चेले लोग कैसे उसको त्यागके मुक्त

होवेंगे? कभी मुक्त नहीं होवेंगे। क्योंकि, जैन लोग हँसते भी हैं, क्रीड़ा करके गाना-बजानादि करते ही हैं, प्रेम भी करते हैं, निद्रा लेके सोते भी हैं। असम्भव बात कहके मिथ्या भाषण भी करते हैं, भय, मत्सर, मद, लोभ, रति, अरति, रखते ही हैं, निजस्वरूपको न जाननेसे अज्ञान उनमें है ही, इत्यादि प्रकारसे अठारहों दोष उनमें भरे पड़े हैं। उसीमें दिन-रात रच-पच हो रहे हैं। फिर कहो तुम्हारी मुक्तिकी बात झूठी हुई कि नहीं? सरासर इनकी बात गलत वा झूठी ही ठहरती है ॥ ८८ ॥

१५. सती देह दुःख पलमें त्यागैं। भूत लगैं तेहि बूझैं ॥ ८९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैनियोंके सम्प्रदायमें भी षट् भेद किये हैं। सो उनके नामः— १. जती। २. सती। ३. ओसवाल। ४. श्रावक। ५. मूँड़िया। और ६. ढोंढ़िया। ऐसे छः प्रकारके जैनी लोग होते हैं। उन्हींमेंके दूसरे सती सम्प्रदायके बारेमें यहाँ कहा गया है। सती नामक जैनी लोग तपस्या, व्रत, उपवासादि नाना साधनाएँ करके बहुत कठिन-कठिन दुःख सहन करके कल्पित पतिके नाममें सती हुए। तहाँ आत्म-हत्या करके एक पलमें ही देहको त्याग देते हैं। सोई भ्रम-भूत जैनियोंके पीछे-पीछे लगी है। भूतकालके जैनी गुरुवाने ऐसा ग्रन्थमें लिख दिया कि— जो सती शिष्य लोग देह दुःख सहन करके सती स्त्रीके नाईं पलमें देहको त्याग देंगे, वह चन्द्रशिलामें जाके मुक्त हो जावेंगे, इत्यादि। तेहि = कल्पित भूतरूप वाणीको जैनी लोग बिना विवेक एक-दूसरेसे बूझते, समझते दृढ़ निश्चय कर लेते हैं, फिर भ्रमरूप भूतके फन्दामें पड़के आत्मा-घाती हो जाते हैं ॥ ८९ ॥

१६. जेहि सुख करि साधन करि त्यागैं। सो भुतवा नहीं सूझैं ॥ ९० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और जिस मुक्ति सुख प्राप्त करनेके लिये अनेकों कठिन-कठिन साधनाएँ निराहारादि करके दुःख भोगते हुए जैनी लोग आत्म-घाती बनके शरीर त्यागें वा

त्यागते हैं, सो परिणाममें अपराधी, पापी होके कर्म नियम अभ्यासके अनुसार चौरासी योनियोंमें जाके नीच गतिको पाते हैं। अरे! उनको विवेक दृष्टि न होनेसे यह कुछ सूझता नहीं कि— सो भूतकालके भ्रमिकोंके वाणी जो है, सोई भ्रम-भूत है। उसमें लगके जो देह त्यागते हैं, वे मुक्तिके बदले बन्धनमें ही पड़के नरकवास चौरासी योनियोंमें ही चले जाते हैं। इसीसे, सो भुतवा = वाणीके भ्रम, धोखा, कल्पना ही है। बिना पारख यह उन्हें नहीं सूझता है। अर्थात् वाणीका भूत शिरमें चढ़ा, वे आप ही भूत बने, और जिस मुक्ति सुखके लिये साधनाएँ करके देह त्यागे, सो तो मिली नहीं। आगे, पीछे अभ्यासी होके दुःख-ही-दुःख भोगे, और अभी दुःख भोग ही रहे हैं। तो भी उन्हें कुछ दिखता ही नहीं है, ऐसे मूढ़ बने हैं ॥९०॥

१७. दर्शन ज्ञान वीर्य सुख चारी। जीव गुण कहै विचारी ॥९१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैः— हे सन्तो! जैनी लोगोंका कथन ऐसा है कि, दर्शन = देखना, ज्ञान = जानना, वीर्य = शक्ति, बल, पराक्रम वा विन्दु, और, सुख = स्वयं आनन्द स्वरूप, ये चारोंको जैन मतके विचारकोंने जीवके नित्य गुण कहा है। अब विचार करिये! एक गुणीमें चार तरहका नित्यगुण कहीं रह सकते हैं? ऐसा तो कहीं होता नहीं है। पृथ्वीमें एक ही गन्ध गुण है, और उसके स्वतः बहुतसे गुण नहीं है। जलके रस गुण, तेजके रूप गुण, तथा वायुके समान और विशेष भेदसे स्पर्श और शब्दगुण हैं। उनमें एक ही में चार गुण स्वरूपसे नहीं है। फिर गुण-गुणीका नित्य सम्बन्ध बना रहता है, वह कभी तीन कालमें छूटता नहीं है। फिर जीवके वे चार गुण कैसे? कहाँसे आये? क्या जैनी लोग जीवको स्थूल देहके स्वरूप ही समझते हैं? क्योंकि, दर्शन, वीर्य, और सुख ये तीनों प्रत्यक्षमें स्थूल देहके सम्बन्धमें ही प्रगट होता है। सूक्ष्म देहमात्रमें भी उसका अभाव रहता है। फिर उसको जीवका गुण मानना कितनी बड़ी भूल वा मूर्खताकी बात है। स्थूल

देह तो जड़ तत्त्वोंका कार्य है, इसमें जीवका सम्बन्ध है, तब नाना गुण स्वभाव क्रियादि प्रगट होते हैं। सो ज्ञान-गुणके अतिरिक्त अन्य जीवका गुण मानना सरासर भूल है। इसे सत्सङ्गमें निर्णय करके जानना चाहिये ॥ ९१ ॥

१८. जीव पुदगल सम्बन्ध नहीं जब। तब कहो काके गुण चारी ॥९२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! अब यहाँ जैनियोंसे पूछते हैं कि— हे जैनी लोगो! यह बताओ कि— तुमने प्रथम जीवके नित्य चार गुण जो कहे हो! सो स्थूल देहके सम्बन्धमें दिखता है, और जब या जिस वक्त जीव और, पुदगल=शरीर स्थूल-सूक्ष्मादिका कुछ सम्बन्ध नहीं रहेगा, विदेह मुक्ति स्थिति हो जायगी, तब उस वक्तमें यह चारों गुण किसमें वा किसके पासमें रहेगा? सो खुलासा करके कहो? तहाँ देह सम्बन्ध न रहनेसे विषयके ज्ञान, दर्शन, वीर्य, और सुख ये चारों प्रगट हो नहीं सकते हैं, और नित्य गुणका कभी अभाव नहीं होता है। फिर वह चारों गुण किसके हुये? सो विचारसे कहो? यदि मुक्तिमें भी जीव गया, तो वह चार गुण साथमें रहनेसे, तहाँ दर्शनगुणसे जगत्को पूर्ववत् देखा करेगा, विषयज्ञान होनेसे विषय भोगनेकी इच्छा भी करेगा, वीर्यगुण होनेसे सुखके लिये स्त्री-सम्भोग करनेमें भी प्रवृत्त होगा। इस तरह तो जैसा जगत्में घर-गृहस्थी बसाया है, तैसी तुम्हारी मुक्ति भी ठहरेगी। अथवा चार गुण न छूटनेसे जीव कभी मुक्त ही नहीं होगा, अतः इस धोखाको छोड़के सत्यासत्य निर्णयको सत्सङ्ग द्वारा समझो-बूझो ॥ ९२ ॥

१९. ऋषभ आदि चौबीस तिर्थङ्कर। ई जो कहैं मोक्ष गामी ॥९३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! जैन सम्प्रदायमें ऋषभदेव, अजितनाथ, इत्यादिसे लेके अन्तिममें महावीर स्वामी पर्यन्त सब चौबीस तीर्थङ्कर उन्होंके गुरु हुए, ऐसा गिनके उन्हें सर्वश्रेष्ठ

माने हैं। जैनियोंके, ई = यही जो चौबीस तिर्थङ्कर हुए, उन्हें जैन लोग, मोक्ष गामी = मोक्ष हो गये, साधनोंमें गमन करके १८ दोषोंको त्यागके मुक्तिलोकमें चले गये, वे सदाके लिये मुक्त हो गये, ऐसा कहते हैं। परन्तु, दर्शन, ज्ञान, वीर्य, और सुख ये जीवके नित्य चार गुण उन्होंके साथमें भी लगा ही रहा होगा। जिससे मुक्तिके बदले उलटके पुनः बद्धगामी भये होंगे, यही सिद्धान्तमें ठहरता है ॥ ९३ ॥

२०. ई छौ कर्ता क्षय कियो सबनको। अटके सेवक स्वामी! ॥९४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और जैनी लोगोंने, ई छौ = जीव, पुद्गल, अधर्म, धर्म, काल, और आकाश, यही छहोंको ही, कर्ता = जगत्के आदि मूलकर्ता मान लिये हैं। अतएव वही षट् कर्ताकी कल्पना, धोखाने ऋषभ आदि सबोंको भ्रमायके मनुष्यपद, मुक्तिमार्गसे गिराकर, क्षय = क्षीण, विनाश वा नष्ट-भ्रष्ट किया वा पतित कर दिया। यानी ये कल्पित षट् द्रव्यरूप कर्ताने उसको माननेवाले-कर्ता चौबीसों तिर्थङ्कर उन सबोंको मूलमें ही क्षय कर दिया, जगत् बन्धनमें भ्रमायके डाल दिया। अब उनके वाणीकी भरोसामें रहनेवाले सब जैनियोंका क्षय हो रहा है। इस तरहसे भ्रम, भूलसे धोखामें पड़के, स्वामी = ऋषभदेवादि गुरुवा लोग, तथा सेवक = उनके शिष्य अनुयायी जैनी लोग, सब कोई विना पारख जड़ाध्यासी होके आवागमनमें पड़े और गर्भवासमें चौरासी योनियोंमें जाके अटक गये, और अभी भी वैसे ही जैनी लोग भूले वा भुलाकर अटक रहे हैं। अनुमान-कल्पनामें पड़के जहाँ-तहाँ भटक रहे हैं। अतएव जैनियोंकी मानी हुयी मुक्ति तो केवल धोखा ही मात्र है, ऐसा जानिये ॥ ९४ ॥

२१. जग उतपति कहँ कियो न काहू। पढ़ि गुनि कहँ अनादी ॥९५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और जैनमतको मानने-

वाले लोग ऐसा कहते हैं कि— इस जगत्को प्रथम किसीने उत्पत्ति नहीं किया है । किन्तु,जगत् स्वयं अनादि है । "अनादि सम्बन्धे च ॥" जैन तत्त्वार्थ सूत्र ४१ । अध्याय २ ॥— संसारी जीवोंका अनादि कालका शरीर-सम्बन्ध है, और सादि (बीच-बीचमें) जन्म-मरण रूपसे देह-सम्बन्ध होता ही आता है ॥ इत्यादि ग्रन्थोंमें लिखा है । सो ग्रन्थकी वाणी पढ़-गुन करके वही बात निश्चय किये हैं । उसीके आधारसे जगत् अनादि है, कहते हैं । परन्तु, आदि-अनादिका यथार्थ भेद वे जानते ही नहीं हैं । बीच-बीचमें बनने-बिगड़नेवाले कार्यरूप देहको भी अनादि कहनेवाले जैनी लोग अन्यायी, अविचारी ही बने हैं ॥ ९५ ॥

२२. कर्म करे कर्ता नहिं मानै । भये अनीश्वर वादी ॥ ९६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! और चित्त, बुद्धि, मन, हङ्कार संयुक्त सूक्ष्म और स्थूल देह इन्द्रियादिसे नाना प्रकारसे शुभाशुभ कर्म करते हैं और कर्म करनेवाला कर्ता चैतन्य जीवको ठीक तरहसे नहीं मानते हैं, और दूसरे तरफ वे अनीश्वरवादी भी भये हैं । ईश्वरवादी लोग तो उन्हें नास्तिक कहते हैं । निज चैतन्य-स्वरूपको यथार्थरूपमें नहीं जानते हैं, भ्रम, कल्पनासे और ही कुछ मानते हैं । इसलिये जैनी लोग वास्तवमें नास्तिक ही बने हैं । यहाँ सत्पुरुषार्थसहित सत्यज्ञानका होना ही ईश्वरत्त्व है । कर्म करके जीव कर्ताको भी नहीं माननेवाले पुरुषार्थहीन अज्ञानी, आलसी, निरीश्वर-वादी गाफिल भये हैं, बिना विचार ॥ ९६ ॥

२३. आठ कर्ममें चार बन्ध कहै । चार कहै मुख दीठा ॥ ९७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! जैनी लोगोंने मुख्य आठ प्रकारके कर्म कथन करके कहा है । उस आठ कर्ममें प्रथम चार कर्मः— हिंसा, असत्य भाषण, चोरी, और विषयासक्ति, इन्हें बन्धन देनेवाले कहा है, और दूसरे पश्चात्के चार कर्मः— दर्शन,

सम्यक ज्ञान, सुख और वैराग्य— इसे मोक्षदाता मुख्य करके मुक्ति स्वरूपको दिखानेवाला कहा है, और आदि बन्ध अर्थात् पुद्गलोंके बन्धनमें—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, और अन्तराय ये आठ कर्म कहा है। उनका विस्तार १४८ भेदोंसे कहा है। इस तरहसे आठ कर्ममें चार बन्धनमें ले जानेवाले और चार मुक्तिका मुख दिखानेवाले कहा है, और अभी वे वैसे ही बता रहे हैं ॥ ९७ ॥

२४. जो जग कर्म किये सो नाहीं। कृतम कर्म करावो झूठा ॥९८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— परन्तु, हे जैनी लोगो! जो तुम लोग मुक्तिके लिये जगत्में नाना कर्म किये और कराये हो, सो असली मुक्ति तो तुम्हारे सिद्धान्तमें नहीं है। क्योंकि, जीवके पास नित्य चार गुण बने रहनेसे वह मुक्त हो ही नहीं सकता है, और जो-जो जगत्में कर्म किये, सो सब मनुष्य जीवोंने ही किये हैं। सो तुम लोग नरजीवके सत्यस्वरूपको तो पारख करके जानते ही नहीं हो। अथवा जो जगत्में कर्म किये, सो कायम रहे नहीं वा नहीं रहते हैं। अतएव, कृतम = कृत्तिम, बनावटी, नकली, झूठी वाणीके प्रमाणसे चन्द्रमुक्तशिला आदि लोक मानके वहाँ जानेके लिये जो कुछ भी कर्म साधना तुम लोग करते-कराते हो, सो सब सरासर झूठा है। उससे हानिके सिवाय लाभ कुछ भी होनेवाला नहीं है। ऐसा जानके अब तो भी झूठे कर्मका मोह वा पीछा, पक्ष आदिको त्याग करो ॥ ९८ ॥

२५. ये षट द्रव्य केहिको भासैं। केहि उपदेश भसावैं ? ॥ ९९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जैन मतवादी लोगो! हम तुमसे पूछते हैं— यह बताओ कि— जीव, पुद्गल, अधर्म, धर्म, काल, आकाश— ये षट्द्रव्य न्यारा-न्यारा तुमने कहा, और नित्य पदार्थ उन्हें माना है। तहाँ जीव न्यारा, पुद्गल =

शरीर न्यारा द्रव्य बताये हो, परन्तु, जीवके सम्बन्ध हुए बिना कहीं देह भया है ? कहीं नहीं; और जीवके बिना कहीं देह नित्य रहता है ? कभी नहीं । अतः षट्द्रव्य मानना ही भ्रम-भूल है, और यह षट् द्रव्य किसको प्रत्यक्ष हुआ वा भास हुआ ? षट् द्रव्य अपने आपको जान ही नहीं सकता है, उसको जानने, माननेवाले सातवाँ द्रव्य, और होना चाहिये । सो कौन है ? बताओ ? और तुम लोग षट् द्रव्य सत्य है, कहके किसको उपदेश देके, भसावै = बोध वा भास प्रत्यक्ष कराते हो ? कहो! तुमने बोध किसको किया ? और भास किसको हुआ ? वह षट् द्रव्य ही है कि— उससे पृथक् कोई और है ? इसका विचारसे निश्चय करके यथार्थ उत्तर बताओ । खाली षट् द्रव्यको ही कल्पनासे नित्य मानके झूठ-मूठकी धोखेमें मत पड़ो ॥ ९९ ॥

२६. सो कर्ता कृतम चीन्है बिना । जहाँ तहाँ दुःख पावै ॥ १०० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! सो वाणी कल्पनाका कर्ता मनुष्य जीव ही है । मनुष्योंने ही कल्पना करके उक्त षट् द्रव्यको माने, और अनेकों भेदसे वाणीका कथन किये हैं । उसीमें अपने स्वरूपको भूले हैं, और दूसरोंको भी भुलाये हैं । सो षट् द्रव्य आदिका मानन्दीकर्ता नरजीव हैं । किन्तु, कृतम = कल्पित वाणी, नकली, खोटा मानन्दीको विवेक करके चीन्हे बिना यथार्थ भेदको न जानके भ्रमसे वाणी कल्पनाको ही सत्य मान-मानके जहाँ-तहाँ जाके नाना तरहके साधनाएँ करके दुःख ही पाये, और दुःख पा ही रहे हैं । फिर उसी कर्म-कुकर्मके अभ्यासवश जहाँ-तहाँ चारखानी चौरासी योनियोंमें जा-जाके दुःख पा रहे हैं, बिना पारख आवागमन चक्रमें पड़े वा पड़ रहे हैं ॥ १०० ॥

२७. मोक्षको धावत बन्धन पावत । ठग सुख लेत चोराई ॥ १०१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! कहनेको तो ये

जैनियोंके गुरु-चेले लोग मोक्ष वा नित्य मुक्ति प्राप्ति करनेकी आशा, भरोसाको लेकरके, धावत = नाना कष्टकर साधनाएँ, जप, तप, व्रत, उपवासादिमें दौड़े चले गये, और जा रहे हैं। विवेक न होनेसे उन्हीं सब कर्म-कुकर्मसे जड़ाध्यासी होकर कठिन दृढ़ बन्धनको ही प्राप्त होते हैं, और ठग = मनकी कल्पना तथा जैनी गुरुवा लोग पक्के ठग, धूर्त बनके सुखका लालच देके नरजीवोंकी शान्ति, सन्तोषका सुख, विवेक, विचारादि सद्गुण, हंसपदके धनको धीरेसे चुरायके छिपाय लिये। इसीसे सब दुःख ही पा रहे हैं। अथवा इधरसे ये मोक्षके लिये दौड़ पड़े, रवाना भये, उधर बीचमें ठग मनकी कल्पना वा धूर्त गुरुवा मिले, उन्होंने भ्रमाके जीवन्मुक्तिके सुख-साधनको तो बीचमें ही चुराय लिये, धोखामें ले जाके छिपाय दिये। इसीसे सब जैनी लोग मरनेपर मुक्ति मानके सब तरफसे महान बन्धन चौरासी योनियोंके चक्रमें ही घूम, फिरके पड़ते हैं, बिना विवेक ॥ १०१ ॥

२८. गरे पट फाँस डार डोरियावै। मोक्षमें चोर लुकाई ॥१०२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं: — अरे भाई! इन जैनियोंके मोक्षमें तो चोर लुका पड़ा है, और वह उनके गलेमें पट् फाँस डालके डोरियाता है वा नचाता है। अर्थात्, चोर = जैनोंके तिर्थङ्कर गुरुवा लोग तथा कल्पना वही चोरके सरीखी लुक-छिपके मोक्ष धाममें जानेके लिये धीरे-धीरे साधनोंमें आगे बढ़ाते गये। उसी तरहसे मोक्ष होनेको बताकर उन्होंने जीवके ज्ञान, विवेक-धनको चुराके उसे, लुकाई = भ्रम-कल्पनामें ले जाके छिपा दिये हैं। फिर मदारी जैसे बन्दरके गलेमें डोरी बाँधके नचाता फिरता है। तैसे ही पट द्रव्योंको नित्य कर्ता बताके वही वाणी कल्पनाका फन्दा पट् फाँसको जैनी अबोध चेलोंके गलेमें वा मनमें वाणीकी भ्रम डालके नाना कर्म साधनोंमें लगाके, डोरियावै = नाच-नचाते हैं वा नचा रहे हैं। सब प्रकारसे दुःख ही दे रहे हैं। तो भी मूर्ख चेले लोग उस भेदको

समझते नहीं हैं। अन्ध-विश्वासी होके बँधे पड़े हैं। ऐसे मोक्षमें ही चोर लुका पड़ा है। यानी मोक्षका आशा बता करके भ्रमा-भ्रमाके जीवोंको आवागमनमें छिपा रहे हैं। पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-विचार किये बिना इस भेदको कोई जान नहीं पाते हैं॥ १०२॥

२९. ये ठग पुरवा आचार्य जैन घर। दुःखदिये न चीन्हें बैना॥१०३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! ये गुरुवा ठग लोग अपनी धूर्तताईसे सब अबोध मनुष्योंको ठगते हुए जैनियोंके गाँव, कस्बा, मुहल्ला और घरोंघरमें भी पहुँच गये, और स्वर्ग, चन्द्रमुक्त-शिला, मुक्ति, आदि ऋद्धि, सिद्धि आदिकी अनेकों लोभ-लालचमें फँसाके खूब ठगे, और उन्होंके, जैन=जय नहीं, ऐसा नाम रख दिये। सोई लोग जैनोंके यहाँ, पूरवा आचार्य=पहिलेके आचार्य ऋषभदेवसे महावीर पर्यन्त सब २४ गिने हैं, वे प्रसिद्ध हुये हैं। वे ही तो मुख्य ठग भये थे। जैनोंके घर-घरमें जाके भुला-भ्रमाके उन्हें नाना तरहसे दुःख दिये और अभी वैसे ही घर-घरमें जाके बहका-बहकाके दुःख दे रहे हैं। तीर्थङ्करोंके वाणी-कल्पना बड़े-बड़े पुस्तकोंमें लिख रखे हैं, वही सुना-सुनाके कल्पना दृढ़ाके बाँध रहे हैं; तथापि उस कल्पित झूठी वाणीको विवेक-पारख न होनेसे जैनी लोग कोई भी चीन्ह नहीं पाते हैं, इसीसे मिथ्या धोखामें ही भूले पड़े हैं, बिना सत्सङ्ग! ॥ १०३ ॥

३०. कहहिं कबीर सो ठग चीन्हे बिनु। दुःखी भये सब जैना॥१०४॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका कहा हुआ सत्य निर्णयको श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैं कि— हे सन्तो! सो वह, ठग= कल्पना, वाणी, मन, और जैन-धर्मोपदेशक गुरुवा लोग ये पक्के ठग वा धूर्त बने हैं। जिन्होंने बहुतोंके जीवन धनको ठग लिया, धोखेमें डालके बहुत तरहसे दुःख दिया। उन ठगोंको विवेक-विचार करके यथार्थ चीन्हें-पहिचाने बिना, उनके कपटके

भेदको जाने बिना, उन ठगोंको ही हितकर मान-मानके विश्वासकर अपने सर्वस्व अर्पण करके सौंप दिये हैं, और ठगोंने भी खूब ठगके चेलोंको दरिद्र बना दिये हैं पारख ज्ञानरूपी धनसे रहित निर्धन हो गये हैं । अतएव जड़ाध्यासी बद्ध होके चारखानी चौरासी योनियोंमें चले गये और जा रहे हैं । इस प्रकारसे सब जैन मतवादी लोग जीनेतक साधनोंको करनेमें फिर मरके जन्मृतिमें पड़के दुःखी भये और परम बेहाल दुःखित हो ही रहे हैं । अर्थात् सोई ठगको ठीक तरहसे न चीन्हके ही सब जैनी लोग भ्रमसे बन्धनोंमें पड़के महा दुःखी भये हैं । अभी वैसे ही दुःखी हो रहे हैं । अतः हित चाहनेवालोंने पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग द्वारा इसके भेदको यथार्थ पहिचान करके भ्रमसे न्यारे हो रहना चाहिये ॥ १०४ ॥

॥ ❀ ॥ षष्ठ-शब्द ॥ ६ ॥ ❀ ॥

१. सन्तो ! प्रेरक सबको भावै ! ॥ १०५ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः— हे सन्तो ! हे साधु सज्जनो ! संसारमें सब कोई भ्रमिकोंका भाव एक कोई कल्पित, प्रेरक = प्रेरणा करके सबको चलानेवाला, ऐसा परमात्मा, ब्रह्म, खुदादिके तरफ लक्ष लगा है । वे कहते हैं कि— ईश्वर ही हृदयमें रहके सबको प्रेरणा करके चलाता है । तहाँ कृष्णने भगवद् गीतामें अध्याय १८ । श्लोक ६१ में कहा भी है किः—

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥"— गीता अ० १८।६१ ॥

— हे अर्जुन ! शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको, अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार भ्रमाता हुआ सब भूत-प्राणियोंके हृदयमें स्थित है ॥ और रामायणमें— "उर प्रेरक रघुवंश मणि ।" इत्यादि कहा है ॥

इस प्रकार प्रेरकरूप ईश्वर, ब्रह्म, आत्मादि और वाणी-कल्पनामें

ही सब कोईका भाव टिका है। उसे ही सब लोग अच्छा समझके प्रेम करते हैं, ऐसे भ्रममें पड़े हैं ॥ १०५ ॥

२. जो पेरे ताहि चीन्हत नाहीं। पेरक और बतावै ॥ टेक ॥ १०६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और कोल्हूमें तेल पेरनेके नाईं— जो वाणी कल्पना, गुरुवा लोग और स्त्रियाँ नरजीवोंके तन-मनको खानी-वाणीकी कोल्हूमें डालके खूब पेरके निचोड़ डालते हैं, अज्ञ पुरुषोंको निकम्मा करके अपने स्वार्थ सिद्ध कर लेते हैं, ताहि = उन्हें तो कोई चीन्हता-पहिचानता नहीं कि— यही काल हैं। नाना तरहके रोचक-भयानक वाणी सुनाय-सुनायके अनेक कर्म-कुकर्म करनेके लिये प्रेरणा करते हैं, और जीवकी सत्तासे मन, बुद्धि ही इन्द्रियोंको चलानेके लिये प्रेरक होते हैं, ईश्वरकी तो कोरी कल्पना ही मात्र किया है। परन्तु, उसको कोई चीन्हते नहीं हैं। भूल करके भ्रमिक लोग और ही कोई, प्रेरक = परमात्मा प्रेरणाकर्ता है, ऐसा बतलाते हैं। जीव स्वयं अखण्ड, नित्य स्वरूप है, कर्म संस्कारके अनुसार अन्तःकरणमें सङ्कल्प-स्फुरणा उठा करता है। फिर ईश्वरका वहाँ क्या काम? निजस्वरूपको न जाननेवाले ही ईश्वरादि और ही को प्रेरक बताके धोखेमें गरगाफ हो रहे हैं, बिना पारख ॥ १०६ ॥

३. आय परी उरबसी भई जब। ताहि न चीन्हैं कोई ॥ १०७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! गुरुवा लोगोंके अन्तःकरणमें रहनेवाली भ्रम, कल्पना, शब्द वा वाणीके रूप धारण करके गुरुवाओंके मुखद्वारासे निकल करके शिष्योंके कानके स्थानमें आयके, परी = वही वाणी घुस पड़ी। जब श्रोत्र द्वारा शब्द भीतर प्रवेश होती भयी, तब वही, उरबसी = हृदयमें दृढ़ निश्चय वा पक्का मजबूत होके बैठ गयी, और वही वाणी मनमोहिनी, सुन्दरी, परी, सबको छलनेवाली उर्वसी अप्सरा भयी। उस मन-कल्पना वाणी-

रूपी इच्छा, मायाको तो निर्णयसे, परखकर कोई चीन्हते वा पहिचानते नहीं हैं। इसीसे वाणी, खानी धारामें बहते हुए गोता खा रहे हैं ॥ १०७ ॥

४. देवलोकमें परी बतावैं । सो तो परी न होई ॥ १०८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—हे सन्तो! और प्रत्यक्षमें असली मनकी परीको न चीन्हके मूर्ख विषयासक्त पुरुषोंने और ही कहीं ऊपर, देवलोक = स्वर्गलोक, इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक आदि देवताओंके देशमें, परी = उर्वसी, रम्भा, मेनका, तिलोत्तमा आदि अप्सरारूप सुन्दरियाँ, नवयुवतियाँ वहाँ सदा रहती हैं। और नाच-गाके, विषय-विलास देके वहाँके देव पुरुषोंको सुख दिया करती हैं, इत्यादि मिथ्या गपोड़ी बातें, पौराणिक लोग बताते हैं। सत्य निर्णयसे स्वर्गादि देवलोक ही असिद्ध है, फिर वहाँ देवता-पुरुष और परी-सुन्दरी स्त्रियाँ कहाँसे होंगी? इस लोकके विषयोंकी बात ही कल्पनासे ऊपर स्वर्गादि लोकमें भी माने हैं, सो सरासर झूठी है। सो उनके माने हुए कथनसे तो वह सच्ची परी वा अप्सरा नहीं हो सकती है। अतः वह परी नहीं है। बिना विचारे झूठी धोखामें गुरुवा लोग स्वयं परी बनके गाफिल पड़े हैं ॥ १०८ ॥

५. भक्तन परी भक्तिमें राखा । योगिन योग समाना ॥ १०९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! वही प्रेरणा करने-वाली वाणी कल्पना जब भक्तोंके कानमें पड़ी, तब भक्तोंने, परी = उसी वाणीको बड़े प्रेमके साथ भाव-भक्तिसे हृदयमें ले जाकर टिकाये हैं। तहाँ विष्णुके श्रवण, मननादि नवधा भक्तिमें तथा सगुण, निर्गुण भक्तिमें, नाम स्मरण, ध्यान, मानसिक पूजा आदि भक्तिमें मन लगाके उसीसे मुक्ति होगी, दया करके भगवान् भक्तको मुक्त कर देंगे, इत्यादि कथन करके तहाँ भक्तिमार्गसे द्वैत सिद्धान्त कायम कर रखे हैं। ऐसे भक्तोंने वाणीको भक्तिमें लगा रखे हैं, और तैसे ही योगियोंने भी समान-विशेषरूपसे वाणीरूपी परीको

गोदमें ही समायके योग साधनोंका खेल-खेले, उसीमेंसे अष्टाङ्ग योग मार्ग पृथक्-पृथक् बनाये हैं। धारणा, ध्यान, और समाधि लगायके शून्य धोखामें ही समाये। ऐसे योगियोंने योग काण्डकी वाणीका विस्तार कर रखे हैं। उसी उलटी परीकी जालमें सब योगी लोग अरुझे पड़े हैं ॥ १०९ ॥

६. परी पेर सब पण्डित ज्ञानी। ओटैं वेद पुराना ॥ ११० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! फिर दूसरे तरफ बड़े-बड़े शास्त्री, वेदाचारी पण्डित लोग तथा सब ज्ञानी ऋषि, मुनि आदि सिद्ध-साधक लोग भी चार वेद, षट् शास्त्र, अठारह पुराण, आदिकी वाणी, ओटैं = पढ़ते हैं, रटते हुए उसे औंटाते हैं। उसी कल्पित वाणीकी प्रेरणामें सब मोहित होके भ्रममें भूले पड़े हैं। और इधर संसारमें सब लोग उन्हीं पण्डित, ज्ञानियोंकी पेरा-पेरीमें पड़के भ्रमिक हुए, तो वेद, पुराणोंको उलटा-पलटाके पढ़-पढ़ा रहे हैं। अर्थात् वाणीकी प्रेरणासे सब कोई पण्डित और ज्ञानीजन भी वेद, पुराणादिको पढ़ते हैं। तहाँ कर्ता ब्रह्म, ईश्वरादि मान-मानके नष्ट-भ्रष्ट होके बन्धनोंमें ही पड़ जाते हैं। बिना सत्सङ्ग ॥ ११० ॥

७. ब्रह्मा विष्णु महेश पेराने। सुर नर मुनि नहीं बाँचे ॥१११॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! वाणी कल्पनाके कोल्हूमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ये तीनों भी खूब पेराय गये, तो विवेक-रस सब निकलके नाश हो गया। उन्होंके दिलमें वाणी-कल्पनाकी बहुत प्रेरणा हुई। इसीसे कर्म, उपासना, योगकाण्डकी उन्होंने विस्तार किये हैं, और, सुर = देवता-सत्त्वगुणी, नर = रजोगुणी-पुरुष, मुनि = तमोगुणी-तपस्वी, ये तीनों भी बाँचे नहीं। त्रिगुण माया जाल, वाणी कल्पनाके प्रेरणामें प्रेरित हो पेरायके निज पदसे नष्ट-भ्रष्ट हो बन्धायमान हो गये तहाँ, पेराने = जन्म-मरणादिमें पड़के दुःखी भये, बिना विवेक ॥ १११ ॥

८. परी पेरमें जेर भये सब। तन धर धरके नाचे ॥ ११२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं— हे सन्तो! इस प्रकार ब्रह्मादि, सनकादि, शौनकादि ऋषि गण तथा सुर, नर, मुनि आदि सब कोई मन, कल्पित वाणी और विषयादिकी प्रेरणा, दवाव, पेराई आदिकी दोहरा पेरमें पड़े, तो सबके सब एकदमसे, जेर=जेलखानाके फाँसीरूपी बन्धनमें लटक-लटकके मर गये। जड़ाध्यासी होनेसे उनके जीव एक देह छोड़के दूसरे देहमें गया, फिर दूसरे देह छोड़के तीसरा देह धारण किया, इसी क्रमसे चारखानी चौरासी योनियोंमें नीच-ऊँच, बड़ा-छोटा, नाना देहें धारण कर-करके विचित्र प्रकारसे त्रिविधि तापको सहन करके जन्म, मरण, गर्भवासमें जाते-आते बहुविधिसे नाचे। और वैसे ही अभी भी सब जीव अध्यास वश नाच रहे हैं। उस परीकी पेरसे छूटना अत्यन्त कठिन हो गया है, बिना सत्सङ्ग ॥ ११२ ॥

९. दश अवतार परीको जाया। फेर जन्मे जो आई ॥ ११३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः-- हे सन्तो! गुरुवा लोगोंने प्रथम मत्स्य अवतारसे लेकर दशवाँ कल्कीतक जो वर्णन किये हैं। सो दशों अवतारकी आदि जननी वा माता वाणी कल्पना ही है। परीरूपी वाणीके गर्भसे ही दश अवतार उत्पन्न हो आये। फिर और भी तैंतीस कोटि देवता, चौदह देवता, भूत, प्रेत, बेताल, देवियाँ, इत्यादि और जो-जो कल्पनाके कोखमें आये, सो सब घूम-फिरके जन्मे, वाणी द्वारा वर्णन होके जगत्में आये हैं। अर्थात् दश अवतारादि जो-जो फिर-फिरायके पुराणोंमें जन्म लेके आये, और फिर भी जो जन्म लेके आवेंगे, उन सबोंकी उत्पत्ति परीरूपी वाणी मायासे खानी संसारमें हुयी। ऐसा जान लीजिये कि—उस वाणीको मनुष्योंने ही बनाया है ॥ ११३ ॥

१०. बिना भगकी परी पुरातम । अद्‌बुद् रूप बियाई ॥ ११४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! ऐसे दश अवतारादि सारे संसारके विचित्ररूपको धड़ाधड़ उत्पन्न करनेवाली जगत् जननी-रूपी, परी = वाणी माया जो है, सो पुरातम = प्राचीन कालकी बहुत वर्षोंकी पुरानी विलक्षण रूपवाली है । क्योंकि, वह बिना भगकी है । उस स्त्रीकी, भग = योनि द्वारका तो कहीं पता ही नहीं है । अथवा षट् गुणरूप माना हुआ भगकी चीन्ह भी उस परीमें नहीं है । परन्तु, बिना भगकी पुरातन परी, ऐसी बहुत सन्तानवाली है कि— उसकी सन्तानें अगणित हैं । अरे भाई ! वह अद्‌बुदरूपसे ऐसी बियाई कि— मुखसे ही धड़ाधड़ बालकोंको जन्माती जाती है । ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, देवी, देवता, खुदा, आदि सब उसके सन्तान मुखसे ही पैदा होके आये हैं । और, अद्‌बुद = आश्चर्यरूप बुद्धिसे परे विराटस्वरूप ब्रह्म एक अद्वैत है । ऐसा एक विचित्र निर्गुण पुत्रको भी उसने जन्माई है । ऐसा वही, परी = वाणी सबकी माता बनी है ॥ ११४ ॥

११. परी पेरमें जेर भये सब । सूझै लाभ न हानी ॥ ११५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! उसी, परी = कल्पित वाणी जो गुरुवा लोगोंके मुखसे निकलके मनुष्योंके कानमें भनक पड़ी, उसीकी प्रेरणा, खैंचाव, झुकावमें आके सब ज्ञानी-अज्ञानी नरजीव नाना प्रकारकी पक्ष, मानन्दीमें लगके, जेर = बद्ध, गाफिल, परवश होते भये । ऐसा होनेपर भी बुद्धि-विचार नष्ट हो जानेसे उन्होंको हमारे लाभ हो रहा है कि,— हानि हो रही है, यह कुछ भी सूझता ही नहीं । वाणी कल्पनासे धोखेमें पड़के नरजीवोंको हित, लाभ तो कुछ होता ही नहीं, सब प्रकारसे हानि ही होती है । परन्तु, विवेक बिना वाणीकी पक्षपातमें पड़े हुए लोगोंको यह बात कुछ दिखता ही नहीं है । वाणी परीकी दबाव प्रेरणामें जो पड़े, सो सब जेर भये, कैदमें पड़ गये । और एकदम अन्धे भी हो जाते

हैं, लाभ-हानि भी उन्हें कुछ सूझनी नहीं, मूढ़ ही हो जाते हैं ॥११५॥

१२. जग मिथ्या करि-करि दरशावै । तब परिया खिसियानी ॥११६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! और वेदान्ती लोग वेद-वेदान्तकी वाणी पढ़-पढ़के ब्रह्मज्ञानको दृढ़ करते हैं । तहाँ अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्तको प्रतिपादन, वर्णन कर-करके ब्रह्मको सत्य जगत्को मिथ्या कथन करके जगत्को ही व्यापक ब्रह्मरूपमें दरशाते हैं । अर्थात् जगत्को मिथ्या कथन कर-करके ब्रह्मको सत्य दरशाते हैं । परन्तु, वह ब्रह्म तो कुछ दिखता ही नहीं, जगत् ही प्रत्यक्ष दिखता रहता है । तब तो, परिया = वाणीकी भ्रमसे धोखेमें ही पड़ गये, और, खिसियानी = कल्पना क्रोधित होके खिसियाय गयी, तमक गयी, अण्ड-बण्ड बकने लगी । इसी कारणसे जीव अध्यासी होके आवागमन चक्रमें पड़के दुःखी भये, और अभी वैसे ही दुःखी हो रहे हैं ॥ ११६ ॥

१३. परी पेरमें परमहंस भये । खाइन अपने खूसी ॥ ११७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो ! जब नरजीव सत्सङ्ग, विवेक, विचार तथा सद्बुद्धिको छोड़के परीरूप वाणीकी मानन्दी मिथ्या प्रेरणामें पड़के पेराय गये, दब गये, भ्रमिक हो गये, तो अन्तमें वे परमहंस भये । हंस दशाको त्यागके दुर्दशाको ही ग्रहण कर लिये । बाल, पिशाच, उन्मत्त, मूक, जड़, अजगरके समान वृत्ति बनाय लिये । नाम तो परमहंस धराये, परन्तु, काम तो परम भैंससे भी गया-बीता सूअरके समान बर्तने लगे, और अपने खुशीसे चराचर सम्पूर्ण जगत् मेरा ही स्वरूप है, मैं ही सर्वरूप हूँ ! विराटरूप हूँ ! कहके सब जगत्को ही खा गये, तो भी विराटका पेट नहीं भरा । इसलिये बाहर भी विचार शुद्धाशुद्धका ख्याल छोड़ करके अपने खुशीमें जैसा आया, तैसा खाने लगे । मल, मूत्र, मांस, मछली, मद्य, सड़ी हुई, दुर्गन्धित, मुर्दा, पशु, पक्षी, मनुष्यादि जहाँपर जो मिला, सो खुशीसे ही खा जाते हैं । खाद्याखाद्य, भक्ष्याभक्ष्य, कर्तव्या-

कर्तव्य त्याग, ग्रहण आदिकी वे कुछ भी विचार रखते ही नहीं। मूढ़ होके मनमौजसे चलते हैं। बड़े दुर्बुद्धि हो जाते हैं ॥ ११७ ॥

१४. काहूके टोके नहिं बोलै । तब उरबसिया रूसी ॥ ११८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! फिर कभी परमहंस बने हुए ब्रह्मज्ञानी जड़, जाड़, मूढ़के समान गाफिल पड़े रहते हैं। अनिर्वाच्य ब्रह्म धोखेकी दृढ़ता करके, काहूके = किसीके भी, टोके = बुलाने, झकझोरनेसे भी वे कुछ एक शब्द भी नहीं बोलते हैं। बिलकुल मूक जड़वत् हो पड़े रहते हैं। चाहे उन्हें गाली दो, भला-बुरा सुनाओ, मारो-पीटो, तो भी वे कुछ बोलते ही नहीं, तब इसीसे तो, उरबसिया = उनके उर-हृदयमें जो वाणी दृढ़ होके बसी, सो धोखा ही, रूसी = रूठ करके वा अत्यन्त नाराज, विमुख, क्रोधित हो, तमोगुणसे जड़ाध्यासको विशेष बढ़ायके दृढ़ किये, वही संस्कार उन्हें फिर चौरासीकी मूक, जड़वत् योनियोंमें ले जाके डाल देती हैं। इस तरह अनेकों जन्मोंके लिये कठिन कैदमें पड़ जाते हैं। अर्थात् जब ब्रह्मज्ञानी किसीके बोलानेसे भी नहीं बोलते हैं, तब जानिये कि— उनकी इष्टदेवी उर्वसिया माया उनसे रूठी हुई है। इसीसे उसके चिन्तामें उसको मनानेकी फिकरमें वे लगे हैं। तहाँ मन, बुद्धि, वाणीके परे ब्रह्म मानके वे मौन हो रहते हैं, बिना पारख ॥ ११८ ॥

१५. कर्म करावै फल फुसलावै । रूप अरूप गर फाँसी ॥११९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! ये गुरुवा लोग वही परीरूप रोचक, भयानक वाणी सुनाय-सुनायके मनुष्योंको कर्म साधनोंमें लगाते हैं। तहाँ नित्य षट् कर्म, नैमित्य कर्म, काम्य कर्म, प्रायश्चित्तादि कर्म तथा जप, तप, तीर्थ, व्रतादि विधि-विधानसे अनेकों कर्म-कुकर्म कराते हैं। उससे, फल = अर्थ, धर्म, काम, और मोक्ष ये चार फलकी प्राप्ति, ऋद्धि, सिद्धि, वाचासिद्धि, मनोकामनाएँ पूर्ण होनेकी,

और चार मुक्ति आदि फल मनमाने प्राप्ति होनेकी आशा, भरोशा, लालच देके, अज्ञानी मनुष्योंको हरतरहसे फुसलाते हैं, भुलाते हुए उनके तन, मन, धनको हरण करके भ्रम धोखेमें डाल देते हैं, और इष्ट देवता, ईश्वरादिको कहीं, रूप = साकार स्वरूप, भिन्न-भिन्न किसिम-किसिमके आकार-प्रकार बताके सगुण उपासनामें लगाते हैं, और कहीं तो, अरूप = निराकार परमात्मा मानके निर्गुण उपासना, योगादि साधनोंमें लगते, और लगाते हैं। ऐसे रूप, अरूप ये दोनों मानन्दीमें मनुष्योंको फँसाके उन्हौंके गलेमें वही फाँसी डाल दिये हैं, और अभी वैसे ही फाँसी डाल ही रहे हैं। पारख विना उन्हें कोई चीन्ह सकते नहीं। रूप = जगत्‌का विषय, और, अरूप = ब्रह्म आदि वाणीकी विषय, ये दोनों फाँसी जीवके गलेमें पड़ी हैं। जरा वह खैंच गयी कि, जड़ाध्यासी होके मर जाते हैं ॥ ११९ ॥

१६. डाइन होय भ्रतारहि गल दे। आइ परी परकाशी ॥ १२० ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! और, डाइन = डाँकिनी, चुड़ैल, राक्षसीके समान होयके स्त्री और गुरुवा लोगोंके वाणी कल्पनाने नरजीवोंको फुसलाय-फुसलायके नाना कर्म-कुकर्म विषयोंकी और कर्मादि साधनोंकी कार्य कराती है। फिर अपने, भ्रतारहि = भावुक नरजीवोंको वह ही रूप-अरूपकी फाँसी गलेमें लगा देती है, और उसे खैंचके जीवोंको वासनामें लटका-लटकाकर मार डालती है। ऐसे ही अबोध मनुष्योंको हत्या करती हुई वह, परी = स्त्रीरूप वाणी संसारमें आयी है, और भेद छिपाकर ऊपरसे सुन्दर-रूपमें प्रकाशित हो रही है ॥— संसारी लोग कहते हैं कि— डाइन छोटे-छोटे बच्चोंको मारती हैं। परन्तु, यह डाइनतो प्रचण्ड होके जवान अपने भ्रतार वा पतिके गलेमें ही फाँसी लगा देती है, और जीवोंको जहँड़ाके मार डालती हैं। दूसरोंके सन्मुखमें वह परी प्रकाशमें अति सुन्दररूप बनाके आती हैं। फिर ब्रह्म, ईश्वरादिके गुण गाके बहुतोंको मोहित कर डालती है। फिर अपने वशमें करके उन

सबोंको मौका पाके हत्या कर डालती है। सदा यह ऐसे ही किया करती है। अतएव स्त्री, और गुरुवा लोगोंके वाणी कल्पनासे सावधान होके सदा दूर ही रहना चाहिये ॥ १२० ॥

१७. बिना रूपको एक ढोटौना । गोद लिये सुख भारी ॥१२१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जैसे कोई पगली स्त्री बिनारूपका एक पुत्ररूप बालकको मन कल्पनासे ही मानके उसे गोदमें लेके बड़ा भारी सुख मानै, और उस कल्पित बालककी रक्षाके लिये बड़ी बहूसे आशीर्वाद माँगै। परन्तु, अपने पतिको गाली देके खदेड़े, कभी उसे पासमें भी आने न देवे, तो कहिये! उससे उसका क्या लाभ होगा? कुछ नहीं। तैसे ही सिद्धान्तमें परीरूप-सुन्दरी वाणीरूपी स्त्रीके सङ्गसे, बिना रूपको = रूप-रेखा, आकार-प्रकारके बिना ही निराकार, निर्गुण, निरञ्जन, ऐसा एक ब्रह्म, ईश्वर, खुदा आदि, ढोटौना = बालक-पुत्रको भ्रमिकोंने मन कल्पनासे ही उत्पन्न किया है। फिर उसे ध्यान, समाधि आदि द्वारा मानन्दीरूपी गोदमें वा अङ्कमें ले लिये, और फिर मन-ही-मनसे उस प्रिय पुत्रकी गाढ़ी आलिङ्गन, मुख-चुम्बन इत्यादि खेल करके, तहाँ बड़ा भारी परमानन्द, ब्रह्मानन्द आदि महान् आनन्दका सुख मानने लगे। परन्तु, वह सब मनकी मानन्दी झूठी ही है। बिना विचार दीवाने होके धोखेमें भूले पड़े हैं ॥ १२१ ॥

१८. बड़ी बहूसे आशिष माँगै । दै भ्रतारहि गारी ॥ १२२ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! और वे ही मूर्ख भ्रमिक लोग इधर, भ्रतार = पति, और मालिकरूप जीव, निजस्वरूप नरजीव चैतन्य, नित्य, सत्य, सबके जनैया, मनैया, श्रेष्ठ, वाणी-खानीकी स्थापनकर्ता है। उसे न समझके तुच्छ ठहराकर अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान्, अज्ञानी, बद्ध, परिच्छिन्न, ना कुछ चीज, दीन, हीन, मलीन, कह-कहके गाली देते हैं, भली-बुरी कहते हैं। इस तरहसे

भ्रताररूप जीवको गाली दे-देके, अपशब्द कहकर उधर चले गये, तो, बड़ी बहू = गुरुवा लोग, जो बड़े ही भ्रमिक होके कल्पनासे-धोखेमें पड़े हैं, ब्रह्मादिके भक्तरूप स्त्री बने हैं, उनके पासमें जाके उनसे शुभ आशीर्वाद मागते हैं। हे गुरु! मेरा मन ईश्वरके भक्तिमें, उपासना, कीर्तन भजनादिमें लगा रहे। मेरा मानसिक पुत्र चिरञ्जीव रहे, निरोग रहे, ऐसा आशीर्वाद दीजिये! कहते भये। तो गुरुवा लोग बोले कि-- भाई! यह तेरा पुत्र निर्गुण, निराकार है, इसीसे यह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, ज्ञानी, मुक्त, एक अद्वैत, सर्वाधार शुद्ध, बुद्ध, ब्रह्म-परमात्मा है। ज्यों-ज्यों यह बोध बढ़ेगा, त्यों-त्यों तुमको अपार सुख देगा; इत्यादि बताके महान् भ्रम-चक्रमें डाल रखे हैं। परन्तु, उससे किसीका कुछ भी हित, कल्याण होनेवाला नहीं है; हकनाहक गाफिलीमें पड़े हैं। उसे परखके जानना चाहिये॥ १२२॥

१६. परी चुहानी महा लुकानी। घुँघुट काढ़ि अँधेरे॥१२३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! जैसे स्त्रियाँ महा चपला सुन्दरी होनेके गर्वसे घरमें लुक-छिपके रहती हैं। कभी बाहर सबके सामने आनेके काम पड़ा, तो लम्बी घुँघुट काढ़के मुखमें अन्धेरा किये रहती है। यानी पर्दा होनेसे सब कोई मुख नहीं देख पाते हैं, और वे ही स्त्रियाँ घरमें भोजन-रोटी आदि बनाते वक्त चूल्हेके पासमें शिरसे कपड़ा खोलके घुँघुट हटाके बैठती हैं, और स्त्री, कनखी = नेत्रको कानतक नचा-नचाके कटाक्षका इशारा करके विषय-भोगमें खेद-खेदके अपने ही पुत्ररूप भ्रतारको अज्ञानी पशु बनाके हंसपदसे विमुख करके मार डालती हैं, और मार रही हैं। अथवा पुत्रको देखके भ्रतारको, कनखी = कटाक्ष देके आकर्षण करके मारती हैं॥ इसी प्रकार सिद्धान्तमें, परी = वाणी और गुरुवा लोग, चुहानी = चूहाके सरीखी गुप्त चोर और महाधूर्त पाखण्डी बने हैं। उन्होंने महान् भ्रममें लगायके, लुकानी = नरजीवोंको मिथ्या धोखामें ले जाके छिपाय दिये हैं। सत्यज्ञानको छिपायके कल्पनाको

ही प्रकाश किये हैं, और कोई चेले होनेको आते हैं, तो उन्हें कोठरीमें ले जायके चूहे सरीखे छिपके और शिरपरसे दोशाला आदि चद्दर, डालके घुँघुट काढ़के उसीमें गुरु-चेले दोनोंके शिर घुसायके अन्धेरेमें कानके पास मुख लगाकर कोई एक मन्त्र दीक्षा दे देते हैं। ॐरामायनमः फुस, फुस, फूस, करके कानमें तीन फूँक मार देते हैं। उसी मन्त्रका जाप, ध्यानादि साधनासे इच्छा पूर्ण होनेकी आशा लगाय देते हैं। इस तरहसे शिष्योंको धोखा देके कल्पनाके अन्धेरेमें ही रखे रहते हैं। भ्रमका पर्दा कभी खोलने नहीं देते हैं। उल्टाय-पल्टायके गुरुवा लोग स्त्रियोंके सरीखी चाल करते हैं। परी = भ्रम धोखेमें जो पड़े, सो गुरुवा लोग बड़े चुगुलखोर, गप्पी होते हैं, और चूहाके स्त्री चुहानीके तरह चञ्चल, चोर, कपड़कट्ट भी होते हैं। महाभ्रमिक रहते हैं। सत्यज्ञानको लुकाते हैं, और घुँघुट काढ़के शिरमें कपड़ा ढाँककर तब कहीं मन्त्र कानमें सुनाते हैं। इस तरह मनुष्योंको अन्धेरे अज्ञानमें ही भुलाये रखते हैं। सत्सङ्गसे बिमुख ही बनाये रखते हैं॥ १२३॥

२०. कहहिं कबीर परी कन खीदे। पूत भ्रतारहि मारे॥ १२४॥

टीका:— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके कहा हुआ सत्य निर्णयको श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैं:— गुरुवा लोग संसारमें, परी = बिना परकी कल्पित वाणीको मनुष्योंके, कन = कानमें उपदेश सुना-सुनाकर और कनखी, शैन वा इशारा दे-देकर जहाँ-तहाँ अनेकों सिद्धान्त, मत-पन्थोंकी साधनोंमें, खीदे = खेद दिये, हाँक दिये वा खदेड़ते हुए दौड़ाके ले गये। तहाँ, पूत = पुत्र, शिष्य, अपनेसे छोटे लोगोंको और, भ्रतार = पति, मालिक, बड़े गुरु बने हुए लोगोंको समेत् वाणी-कल्पनामें लगाके तथा पूत माना हुआ जीवको भ्रताररूपमें ब्रह्मस्वरूप व्यापक ही बनाके निर्बुद्धि, भ्रमिक, जड़ाभ्यासी बना-बनाके मनुष्यपदको मारे, नष्ट-भ्रष्टकर बद्ध बनाके मार ही रहे हैं। तो भी बिना विवेक उन्हीं प्रेरकमें सबके प्रेम भाव लगा हुआ

है। वही सबका काल बना है, उसे नहीं पहिचानते हैं। इसीसे चौरासी योनियोंके फन्दोंमें पड़े हुए हैं। मुमुक्षुओंने उसे परख करके त्यागकर न्यारा होना चाहिये। पारखी सद्गुरुकी सत्सङ्ग करके प्रेरकको चीन्हकर उसकी प्रेरणामें लगना नहीं चाहिये॥ १२४॥

॥ * ॥ सप्तम—शब्द ॥ ७ ॥ * ॥

१. सन्तो! शब्द न साधै कोई!॥ १२५॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः— हे सन्तो! हे सत्सङ्गी विचारवानो! चित्तको शान्त करके सुनिये! देखिये! शब्दरूप वाणी जालको साधके कोई भी उसे अपने वश नहीं करते हैं। यानी शब्दको खास करके कोई साधते नहीं हैं। इसीसे शब्द-जालमें पड़के महा दुःख पाते हैं, और पारखी सद्गुरुकी गुरुमुख सारशब्द निर्णयसे और सब शब्दोंकी कसर-खोटको परखना चाहिये। परन्तु, सत्सङ्गमें रहिके ऐसे सत्य-साधना तो कोई भी करते नहीं हैं। इसीसे सब जीव भवबन्धनोंमें ही अरुझे पड़े हैं॥ १२५॥

२. और सकल साधै सब कोई। साधतहीं दुःख होई॥ टेक॥ १२६॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! और शब्दादि विषयोंको साधके मनको स्वाधीन करके वश करना छोड़के, और-और बातकी सकल साधनाएँ तो सब कोई साधते हैं; परन्तु, उन साधनाओंसे तो साधकको साधते ही उल्टा दुःख, सन्ताप, कष्ट-क्लेशादि होने लग जाता है। विषयोंका त्याग न होनेसे आवागमनका दुःख भी नहीं छूटता है। अर्थात् कोई रूप, रस, गन्ध, स्पर्शको साधते हैं, बहुत देरतक एक आसनसे बैठनेका अभ्यास करते हैं, निराहार, फलाहार, दूधाहार, दुग्धाहारादि करते हैं, रात-रातभर जागते रहनेका अभ्यास भी करते हैं, इत्यादि प्रकारसे और सकल बहिरङ्ग साधनाएँ तो सब कोई मतवादी लोग करते हैं, परन्तु मनकी मानन्दी

वाणी कल्पनाको कोई भी वश नहीं करते हैं। सब वाणी मनुष्य जीवकी ही कल्पना है, ब्रह्म-ईश्वरादि माना हुआ मिथ्या भ्रममात्र है। ऐसा पारख करके नहीं जानते हैं। जिससे आगे-पीछे दुःख ही सन्मुख होता है, सो वही साधना किया करते हैं, बिना पारख जड़ासक्त हो रहे हैं ॥ १२६ ॥

३. योगी साधै योग युक्तिसे। तपसी तप दुःखदाई ॥ १२७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! अब कौन-कौन लोग क्या-क्या साधे हैं? सो उस बारेमें बताया जाता है, सुनिये! योगी लोग योग युक्तिसे योग साधना करते हैं। तहाँ वे यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, यह अष्टाङ्ग योगोंको साधते हैं। फिर नेती, धोती, वस्ती, कपाली, कुञ्जल, त्राटक, ये षट्क्रिया करते हैं। षट्चक्र भेदन, दशमुद्रा लगाना, राजयोग, हठयोगादि अष्टयोगोंका कष्ट सहते हुए अष्टसिद्धि, नवनिद्धि आदि प्राप्तिकी आशासे नित्य-प्रति योग-युक्तिसे बर्तते हैं, तैसे ही तपस्वी लोग भी स्वर्गादि सुख प्राप्ति, मनोकामना पूर्ण करनेकी नाना इच्छाओंको ले करके दुःखदायी कठोर तपस्याको साधते हैं। तहाँ गर्मीमें पञ्चाग्नि तापते हैं। ठण्डीमें जलशयन करते हैं। वर्षामें खुले मैदानमें रहते हैं। कोई धूम्रपान करते हैं। ठाढ़ेश्वरी, दिगम्बर, उर्धबाहू, नग्न, मौनी, खाकी इत्यादि प्रकारके तपस्वी होते हैं, वे तन, मनको दुःखदाई, कठिन तपमें ही सन्तप्त करके दुःखी होते रहते हैं। बिना विचार बैल, ऊँट, गधा, हाथी, आदिके समान ही नाना साधनोंका बोझा लाद-लादके जड़ाध्यासी होके मर-मरकर उक्त पशु आदि योनियोंको ही प्राप्त होते हैं। शब्द साधना करके निजस्वरूपकी स्थिति न करनेसे ऐसे ही दुर्दशामें पड़े रहते हैं ॥ १२७ ॥

४. ज्ञानी साधै ज्ञान ब्रह्मसों। सो शब्दातीत बताई ॥ १२८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और उसी प्रकार

ब्रह्मज्ञानी लोग ब्रह्मसे मिलके तदाकार होनेके लिये ज्ञान साधनाएँ करते हैं। विवेक, वैराग्य, मुमुक्षुता, तथा शमादि षट् सम्पत्ति सम्पन्नको ज्ञानके अधिकारी कहा है। फिर वे सप्तज्ञान भूमिकाको साधते हैं । श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ गुरुके द्वारा महावाक्यका श्रवण मननादि करके जीव-ब्रह्मकी एकता मानकर 'अहं ब्रह्मास्मि' कहते हैं। स्वयं ब्रह्म बनके जगत्से अभिन्न हो जाते हैं। परन्तु, इतने प्रकारसे ब्रह्मज्ञानका कथन शब्दसे ही विस्तार करके फिर अन्तमें सो ब्रह्मको कल्पनासे, शब्दातीत = शब्दसे परे, निःअक्षर वा अवाच्य बताये हैं, और उसी धोखेमें गरगाफ हुए पड़े हैं, उन्होंने यह भी ख्याल नहीं किया कि— शब्दसे जिसको हम बता रहे हैं, सो शब्दातीत कैसे होगा? अतः उसी भ्रम-मूलके चक्करमें पड़के वे नष्ट-भ्रष्ट हुए और हो रहे हैं ॥ १२८ ॥

५. वैरागी जग मिथ्या साधै । सपनेहु सत्त न मानै ॥ १२९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! वैरागी = विरक्त संन्यासी, विज्ञानी लोग जगत्को मिथ्या बताके कहते हैं कि— जगत् त्रिकालमें है ही नहीं । जाग्रत्में को कहे ? स्वप्नमें भी जगत् झूठा है, सत्य नहीं है, ऐसा मानते हैं, और उसी मिथ्या जगत्में रहिके कैवल्य स्थितिके लिये विज्ञान मार्गकी साधना करते हैं। परमहंस बनके पशुवत् बर्ताव करते हैं। जगत् मिथ्या होनेसे वह सब साधनाएँ भी उनकी मिथ्या ही हुई। परन्तु, सब जगत्को अपना ही स्वरूप मान लेनेसे वे बड़े रागी, आसक्त बने हैं। तहाँ वैरागीका कुछ भी लक्षण नहीं रहा। इसीसे वे भवबन्धनोंमें ही गिर पड़े हैं ॥ १२९ ॥

६. सांई बरण अबरण होय प्रगटै । मिथ्या चिन्तवन ठानै ॥१३०॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:—हे सन्तो! और सांई उनकी मनकी कल्पना कभी, बरण = बावन वर्ण-अक्षराकार, साकार ब्रह्म होके प्रगट होता है। जिसे शब्द ब्रह्म, प्रणव (ॐ) ब्रह्म, अक्षर ब्रह्म, कहते हैं, और कभी वही वाणी कल्पना उलटके, अबरण = अक्षरातीत,

निराकार, निर्गुण ब्रह्म बन जाता है। जिसे शब्दातीत, निःअक्षर, अवाच्य, निरञ्जन ब्रह्म कहते हैं। अतएव सोई वर्णरूप शब्द ही अवरण भ्रम-कल्पनारूप होयके प्रगट हुआ। उसी मिथ्या-मानन्दीका ही भलीभाँति चिन्तवन, मनन, सङ्कल्प-विकल्प करके उसे ही सत्य ब्रह्म स्वरूप ठहराके, ठानै=निश्चय किये-कराये हैं। अतः उन्होंने जो चितवन ठाने हैं, सो मिथ्या है। बिना विवेक, असत्यके पक्षपाती जड़ाध्यासी हुए और हो रहे हैं ॥ १३० ॥

७. क्षुधा पिपासा जैनी साधै । जीव दया नहिं जानी ॥ १३० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और जैनी लोग मूर्खतासे कुछ न खाके पानी भी न पीके, क्षुधा=भूख, पिपासा= प्यासको रोककर उसके कष्ट सहन करनेकी साधना करते हैं। उस उपवासका क्रम बढ़ाते-बढ़ाते निराहार रहते हुए चालिस दिन तक निर्जल रहिके यदि उसी बीचमें भूखके मारे तड़फके मर गये, तो जैनी लोग उसे मुक्त हुआ मानते हैं। ऐसी समझसे तो अकाल वा दुष्कालके समयमें भूखों तड़फके मरनेवाले लोग सब मुक्त ही होके क्या जैनियोंके लोकमें चले जावेंगे? अरे भाई! जैनियोंने असली जीव दयाको तो कुछ जाने ही नहीं हैं। हरतरहसे निज-पर जीवको वे लोग कष्ट ही देते हैं। एक, तो वाहियातमें क्षुधा, तृषा सहिके जैनी लोग जीवको दुःख देते हैं। दूसरा, लुञ्चित क्रियासे शिर, दाढ़ी, मोछ, आदिके बाल हाथसे नोच-नोचके बड़ा कष्ट सहते हैं, और तीसरा, तपस्वी लोग नाना प्रकारके उग्र तपस्या करके अनेकों दुःख सहा करते हैं। इसलिये उन्होंने जीव दयाको रञ्चकमात्र भी नहीं जाने। निज दया और परदया करना ही छोड़ दिये। अतः वे निर्दयी, घातकी बने हैं ॥ १३१ ॥

८. जीवत जीव साधतहिं मारै । मुये मुक्तिको मानी ॥ १३१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और जैनी लोगोंने जीवित अवस्थामें नाना तरहके कष्टकर, घातक, अनुचित साधनायें

करके जीवित जीवको जबरदस्ती मार डाले । अर्थात् जीते जीवको साधना करते हुए ही चालिस दिनतक अन्न-जलका भोजन न देके आत्म-हत्या करके मार दिये, और उस प्रकारसे मृत्यु हो जानेपर उसकी मुक्ति हो गयी, ऐसा मुये मुक्तिको माने हैं । देखिये ! वे कितने मूर्ख बने हैं । यदि मरनेपर मुक्ति होवे, तो भूखों मरनेवाले सबोंकी मुक्ति ही हो जावेगी । फिर ज्ञान, ध्यानका प्रयोजन और विशेषता ही कुछ न रही । इसीसे कहा है किः—

"जियत न तरेहु मुयेका तरिहो ? जियतहिं जो न तरै ॥" बी० शब्द १४ ॥

"मुये मुक्ति गुरु कहैं स्वारथी, झूठा दै विश्वासा ॥" क० भ० ॥

ऐसे कुसाधना साधते हुए ही जीवित जीवको मारनेवाले, मृत्यु होनेपर मुक्ति माननेवाले जैनी लोग महाअज्ञानी, आतमघातकी, पापी ही बने हैं । वे चौरासी योनियोंमें पड़े-पड़े दुःख भोगा करेंगे ॥१३२॥

९. मुसलेकी बेपीर साधना । कठिन कहा नहिं जाई ॥ १३३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! मुसलेकी = उजड्ड मुसलमानोंकी साधनाको तो क्या पूछते हो ? जैसे वे मुसल्ले, चिल-बिल्ले बने हैं, तैसे उनके साधना भी, बेपीर = पीड़ा, दुःख-दर्दको न माननेवाले निर्दयी, काल कसाईके समान कठोर मनवाले बने हैं । वे ऐसे कठिन, मजबूत, कट्टर-क्रूर हिंसक बने हैं कि— दूसरेका कहा हुआ छिनकर सत्-शिक्षाको भी नहीं मानते हैं । सत्सङ्गमें भी नहीं जाते हैं । दुष्टताको भी नहीं छोड़ते हैं । पैशाचिक कृत्य करनेमें भी नहीं लजाते हैं । अत्याचार, दुराचार, व्यभिचार, करने-करानेमें तो वे अगुआ बने हैं । इसलिये मुसलमानोंकी बेपीर साधना तो अति कठिन जोर-जुल्म करनेवाला है, इतनेसे उनके विशेष कुटिल क्रूर होनेका हाल जान लीजिये ! और ज्यादा कहा नहीं जाता है । वे तो हिंसक पशुवत् ही हो रहे हैं ॥ १३३ ॥

१०. कल्मा पढ़ै छुरी पर साधै । मारैं जीव खुदाई ॥ १३४ ॥

टीकाः—ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो ! और मुसलमान लोग

कहनेको तो कुरानका मूल मन्त्र पाँच कल्माको मानके, पाँच बार कल्मा पढ़ते हैं। और "बिस्मिल्लाह हिर्रहिमाने रहीम" यह शब्द पढ़के तेज, छुरी = खड्गपर हाथ साधते हैं। तथा खुदाईजीवोंके गलेमें धीरे-धीरे छुरी फेरके गला काटके हत्या करके मार डालते हैं। कोई मुसल्मान लोग— "बिस्मिल्लाह हिर्रहिमाने रहीम" इसका ऐसा अर्थ करते हैं कि, खलक वा संसारमें सर्वत्र एक अल्लाह भरा है, उसके बिना कहीं जगह खाली नहीं है। इसीसे आप सब जीवोंपर रहीम वा दया करो, तो आप ही रहीम वा खुदाके नूर हो। परन्तु, इस मतलबको बिलकुल भुलाके वही शब्द बोलके हलाल करते हैं। तहाँ गऊ, बकरी, मुरगी इत्यादि प्राणियोंको जबरन पछाड़के छुरीसे गले रेत-रेतके साँसत देके मार डालते हैं। देखिये! वे काल कसाई खुदाके दुश्मन बनेकी नहीं? अवश्य बने हैं। तहाँ सद्गुरुने बीजक रमैनी ४९ में कहा भी है:—

बकरी-मुरगी किन्ह फुरमाया? किसके कहे तुम छुरी चलाया? ॥
दर्द न जानहु पीर कहावहु। बैता पढ़ि-पढ़ि जग भरमावहु ॥
साखीः— दिनको रहत हैं रोजा, राति हनत हैं गाय ॥
यह खून वह बन्दगी, क्योंकर खुशी खुदाय? ॥

॥ इत्यादि ॥ बीजक, रमैनी ४९ ॥

—रोजाके व्रत रखते हैं, तब दिनमें जल भी नहीं पीते हैं, फिर रातमें ही निरपराध पशु गाय आदिको मारके हत्यारे बनके मांस खा जाते हैं, और सब प्राणीको खुदाके नूर मानते हैं, फिर उन्हींको दुःख दे-देके मारते हैं। ऐसे वे नादान, अहमक, बने हैं। अतः देह छूटनेपर चौरासी योनियोंमें जाके बदला-चुकाके दुःख भोगा करेंगे, बिना दया ॥१३४॥

११. जनकादिक जग सत्य करि साधे। मिथ्या सब सनकादी ॥१३५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! प्राचीनकालमें वशिष्ठ, व्यास, जनक राजा, याज्ञवल्क्य, मोरध्वज, रन्तिदेव, इत्यादिक ब्रह्मवादी तथा भक्त भये, गृहस्थाश्रमी रहे। इसीसे जनकादिकोंने

जगत् प्रपञ्चको "सर्वंखल्विदंब्रह्म" कहिके विश्वकोही सत्य मान करके भक्ति, योग, ज्ञानादिके नाना साधनोंको साधते भये, और विषयानन्द भोगको भी ब्रह्मानन्दके ही अन्तर्गत मानके विषयासक्त, बद्ध हुए हैं, और दूसरे तरफ उसके विपरीत सनकादि, शुकादि, शङ्कराचार्यादि विरक्त, अवधूत, संन्यासियोंने—

"ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैव नापर ॥"

—ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव-ब्रह्ममें भेद नहीं है। ऐसा कहिके चराचर जगत् सबको मिथ्या कथन किये हैं। अन्तमें दोनों पक्षवालोंकी सिद्धान्त एक ब्रह्मरूप भ्रममें ही ठहराव हुआ है ॥१३५॥

१२. सत्य मिथ्या दोउ जगत कल्पना । भये सबै दुःखबादी ॥१३६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और वास्तवमें तो ब्रह्मको सत्य तथा जगत्को मिथ्या कहना, ये दोनों भी नरजीवोंकी कल्पना ही हैं। परन्तु, कोई ब्रह्मको सत्य-मिथ्यासे विलक्षण मानते हैं। जगत् सबको मिथ्या कल्पनामात्रसे प्रतीत होनेवाला असत्य मानते हैं। तहाँ व्यापक ब्रह्म स्वयं बनके जड़ाध्यासी हो जाते हैं। इसलिये वे सब वेदान्ती लोग सुखरूप ब्रह्मके वादे सब जगत्को दुःखरूप बताके दुःखवादी भ्रमिक होते भये। इस कारणसे वे भ्रमिक लोग सब व्यर्थमें नरजन्म बिताके चौरासी योनियोंके दुःख भोगी भये। जड़-चैतन्यके निर्णय, सारासारके विचार किये बिना सत्य कहना, और मिथ्या कहना, दोनों जगत् जीवोंकी कल्पना है। इसीसे सब दुःखवादी बद्ध होते भये, और बद्ध हो रहे हैं, बिना पारख ॥ १३६ ॥

१३. त्रिगुण आदि सकल मुनि जेते । जग माने-करि स्वामी! ॥१३७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! रजोगुण ब्रह्मा, सत्वगुण विष्णु, और तमोगुण महादेव, ये त्रिगुणियोंसे प्रचलित योगी, ज्ञानी, भक्त कर्मी आदि सकल मतवादी जितने भी ऋषि, मुनिगण हुए हैं, उन सबोंने जगत्के कर्ता, धर्ता, परमेश्वर,

ब्रह्म, परमात्मा जगत्के स्वामी कोई विश्वपति है, ऐसा कल्पना करके माने हैं। कोई तत्त्ववादियोंने तो जगत्मेंके तत्त्वको ही सबके स्वामी वा मालिक करके माने हैं, और मुसलमानोंने खुदाको स्वामी माने हैं। जितने भी षट्दर्शन—९६ पाखण्डके लोग भये हैं, उन सबोंने जगत्कर्ता कोई एक स्वामी अनुमान करके माने हैं। अपने उस धोखेका दास बनके महा बन्धनमें अरुझे और अरुझ रहे हैं, बिना विवेक ॥ १३७ ॥

१४. जे जग छली छिनार छतीसी। ताकी करत गुलामी॥१३८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और जैसे संसारमें, छिनार = व्यभिचारिणी स्त्री, छतीसी = वेश्या चञ्चल स्वभाववाली, हाव-भाव, कटाक्ष करनेमें चतुर होती हैं। जिसने जगत्में पुरुषोंको छली है, तन, मन, धन और प्राणसमेत् हरण कर रही है, उसीकी बुद्धिहीन, विषयासक्त पुरुष कुत्तेवत् अधीन बनके राँड़के गुलामी किये और कर रहे हैं, भ्रष्ट हो रहे हैं। उसी प्रकार यहाँ सिद्धान्तमें, छिनार-छतीसी = क से क्ष, त्र, ज्ञ तककी ३६ अक्षरोंकी बनी हुई कल्पित झूठी वाणी वेद, शास्त्र, पुराण आदिका विस्तार भया है। जिसने जगत्में मनुष्योंको छली, भ्रमायी, धोखेमें डाली है। मोहिनी वाणीने सबोंके मनको मोहित कर लिया है। छल-कपट फैलाके महाप्रपञ्चमें फँसा दिया है। अविवेकी लोग अब उसी वाणीकी अङ्कमाल करके हृदयरूपी गोदमें टिकाये रखनेके लिये पण्डित गुरुवा लोगोंकी गुलामी करते हैं। शिष्य बनके सब प्रकारसे सेवा, टहल, चाकरी करके विद्या, शास्त्र आदि पढ़ते हैं। ग्रन्थोंके पृष्ठ उलटाय-पलटायके नेत्र भर-भरके ताकते वा देखते जाते हैं, तो भी तृप्त, सन्तुष्ट नहीं होते हैं। वाणीकी गुलामी करके नाना साधनाएँ करते जाते हैं। अन्तमें ब्रह्म बनके होश-हवाश उड़ाकर जड़ाध्यासी होके मर जाते हैं। चौरासी योनियोंमें भटकते रहते हैं, बिना स्थिति ॥ १३८ ॥

१५. जेहि साधैं जग दुःखसे छूटैं । ताहि न साधैं कोई ॥१३९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, विवेक, गुरु-भक्ति और दृढ़ वैराग्य, ये सद्गुणोंको धारण करके हंस रहनीमें रहिके जड़-चैतन्यका निर्णय करना, पारखी सद्गुरुकी शरणागत होके पारखबोधको हासिल करना और निजपदमें स्थिर रहना। इसे सत्य साधना, मुक्तिकी साधना, कहते हैं। जिस सत्य साधनाके साधनेसे तन, मन, बुद्धि स्ववश, स्थिर होके जगत्‌मेंकी खानी-वाणीकी मायाजालोंसे जीव छूट जाते हैं। अभी जीवन्मुक्त हो जाते हैं। बीजक साखी २७३ में कहा हैः—

"एक साधे सब साधिया, सब साधे एक जाय ॥
जैसा सींचै मूलको, फूलै फलै अघाय ॥" बीजक साखी २७३॥

—एक मन-मानन्दीको समेटके साधनेसे और सब भी सिमिटके वश होकर सध जाते हैं। एक मनको रोकना छोड़के सब अन्य इन्द्रियोंको साधने लगेगा, तो मन भी उधर ही लग जायगा, और साधना अधूरा हो जायगा। मनको स्थिर करनेसे सब स्थिर हो जावेंगे; जैसा मूलको सींचनेसे वृक्ष फूलेगा, फलेगा, जिसे खायके तृप्ति हो जायगी॥ तद्वत् इस तरह जिसे साधनेसे पारख विचार करनेमें जगत्‌मेंकी आवागमन दुःखोंसे छुटकारा हो जाती है, उसे तो ये मतवादी लोग कोई भी नहीं साधते हैं। सत्यासत्यकी विवेक भी नहीं करते हैं। इसीसे सदा बद्ध दुःखी ही बने रहते हैं ॥१३९॥

१६. जेहि साधैं चौरासी भरमें। फिर-फिर साधैं सोई ॥ १४० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और जिस साधनासे या जिसे साधनेसे खानी-वाणीकी महाजालोंमें अरुझके चारखानी चौरासी योनियोंके जङ्गलमें ही जीव भ्रमते-भटकते हुए जन्म, मरण, गर्भवासमें ही पड़े रहते हैं। उसीको ही, फिर-फिर=बारम्बार, उलट-पलटके, घूम-फिरकर सोई कुसाधनाको साधते रहते

हैं। पञ्चविषयोंको भोगते रहते हैं। कर्म, उपासना, योग, ज्ञान, विज्ञानादिमें लगे रहते हैं। अतः उसी भ्रम, भूल और विषयाध्यास-वश फिर भी पशु आदि योनियोंमें जाके त्रिविधि तापोंका असह्य दुःख सहते रहते हैं। विना पारख इस दुर्दशासे जीव कभी नहीं छूट सकते हैं ॥ १४० ॥

१७. जहाँ जहाँ कर्म साधना साधैं। तहाँ तहाँ जाय बिगोई ॥१४१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! अबोध मनुष्य सुख प्राप्ति आदिकी आशासे गुरुवा लोगोंकी दर-बदर षट्दर्शन-९६ पाखण्डोंकी मत, पन्थ-पन्थाईमें चार धाम, ६४ तीर्थोंमें, चार वर्ण, चार आश्रमोंमें, इत्यादि, जहाँ-जहाँ भी जाके षट्कर्म, नवधा भक्ति, अष्टाङ्गयोग, चतुष्टय ज्ञानसाधन, सप्तभूमिका और विज्ञान साधनाएँ इत्यादि नाना साधनोंको साधे और साधते हैं, तहाँ-तहाँपर भ्रम, धोखा, संशय, भूल, आसक्ति आदि कठिन घनचक्रमें जायके पड़े, जड़ाध्यासी होकर निज हंसपद मुक्ति स्थितिसे विमुख होके बिगड़े, नष्ट-भ्रष्ट, पतित होते भये। विना पारख जन्म-मरणके चक्रमें पड़े हैं ॥ अर्थात् जहाँ-जहाँ भी जाके जीव कर्मादि साधना-साधते हैं, तहाँ-तहाँ ही बनावके बदले बिगाड़ होता जाता है। वासनाको बिगाड़के चौरासी योनियोंमें जाके पड़ते हैं, विना गुरुबोध ॥ १४१ ॥

१८. कहहिं कबीर कोई सन्त जौहरी। खून चिन्हैगा सोई ॥१४२॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहबका कहा हुआ सत्य निर्णयको श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैं कि— हे सन्तो! जैसे जौहरी असली-नकली रत्नोंकी पहिचान करके असलीको ही रख लेते हैं। तैसे ही अनेकों मनुष्य और बहुतेक साधु समाजोंमें कोई बिरले ही पारखी सन्त सत्यन्यायी, विवेकी, सत्य निर्णयी, जौहरीके समान रत्नरूप सकल सिद्धान्तोंके परीक्षक होते हैं। सोई पारखी सन्त गुरु पारखरूपी दिव्य दृष्टिकी प्रतापसे जगत्में प्रचलित द्वैत, अद्वैत, आदि सकल

सिद्धान्तोंकी, खून = निशानी, हद, ठहराव, भेदको अच्छी तरहसे चीन्हेंगे, पहिचानेंगे कि— इन सबोंका मानन्दीकर्ता नरजीव ही श्रेष्ठ सत्य है। ब्रह्म, ईश्वरादि जीवकी कल्पनामात्र होनेसे मिथ्या है। ऐसा जानके निजस्वरूप पारख-पदमें स्थिर हो रहेंगे, सोई शब्द विवेकी पारखी जीवन्मुक्त बन्दीछोर हैं। ऐसा जान लीजिये! ॥१४२॥

॥ * ॥ अष्टम—शब्द ॥ ८ ॥ * ॥

१. सन्तो ! मुक्ति यही सब गावै ! ॥ १४३ ॥

टीकाः—श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैं:—हे सन्तो! हे जिज्ञासुओ! भारतवर्षमें सब कोई पौराणिक अविवेकी, पक्षपाती, मूढ़ गुरुवा लोग बढ़ा-चढ़ाके यही झूठी मुक्तिके ही महिमा गाते हैं। मुये मुक्ति ठहराते हैं। बलिदान, घात, हिंसा करके यज्ञादिमें मारे गये पशुओंको भी मुक्ति बतलाते हैं। यही सब कुकर्म करके मारे गये जीवोंकी मुक्ति हुई कहते हैं। ऐसे-ऐसे स्वार्थी, निर्दयी काल बने और बन रहे हैं, उसे अच्छी तरहसे पहिचान लीजिये ! ॥ १४३ ॥

२. राम कृष्ण अवतार आदि दै। हाथ मरे सो पावै ॥ टेक ॥१४४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! और दूसरे तरफ भक्त लोग, अवतारोंके उपासक लोग ऐसे बकवाद करते हैं कि— मच्छ, कच्छादिसे लेकर राम, कृष्ण, परशुराम इत्यादि माने हुए दश अवतारोंके हाथसे जो-जो मरे वा मारे गये, सो सबोंने बिना प्रयास सहज ही मुक्ति पाये। क्योंकि, राम, कृष्णादि परमेश्वरके कला थे, और रावण, कंसादिकोंने द्वेष भावसे भी सदा उनके ही चिन्तन करते रहे, अन्तमें उनके हाथसे वे मारे गये, तो उनके तेज निकलके रामादिमें ही समा गया, इस तरह वे मुक्त होते भये, इत्यादि कहिके यही सब झूठ-मूठकी मुक्ति गुरुवा लोगोंने गाये हैं, और गा रहे हैं। ऐसे बकवादी गुरुवा लोगोंके बातकी कुछ भी ठिकाना लगता है।

नहीं है। क्योंकि, उसी पुराणोंमें एक जगह लिखा है कि— पहले जन्ममें हिरण्याक्षको वराहने मारा, हिरण्यकशिपुको नृसिंहने मारा, तो उनकी मुक्ति कही है। फिर वही दूसरे जन्ममें रावण तथा कुम्भकर्ण हुए, तो उन्हें रामचन्द्रने मारा, तो वहाँ भी मुक्ति कही है। फिर वे ही तीसरे जन्ममें कंस तथा दन्तवक्र अथवा शिशुपाल हुए कहा है। जिन्हें कृष्णने मारा। अब कहिये! ऐसे बार-बार जन्म लेना और दुष्ट होनेसे मार डालना, यह भी कहीं मुक्ति होती है? कभी नहीं। यदि ऐसा ही है, तो कसाई लोग, व्याधा लोग, धीमर लोग, जल्लाद लोग आदि भी तो प्राणियोंको मार-मारके मुक्त ही करते होंगे, ऐसा मानोगे क्या? समाजमें मनुष्योंके हत्यारेको तो पकड़के दण्ड देते हैं, किन्तु, मुक्ति करनेवाला कहिके उसके कोई प्रशंसा नहीं करते हैं, और रामने वालीको छिपके मारा था, समय पायके रामका जीव ही कृष्ण हुआ, और वालीका जीव जरा नामक व्याधा हुआ। सो व्याधाने भी मौका पायके छिपके तीर मारा, वह कृष्णके पैरमें लगा, उसीसे उनकी मृत्यु हुई। इस तरह उसने अपना बदला लिया, इत्यादि पुराणमें वर्णन भया है। इस कथनसे जब स्वयं अवतारी ही मुक्त नहीं हुए, उन्हें भी बदला देना पड़ा। तब फिर उनके हाथसे मरे हुए लोगोंकी मुक्ति काहेको होगी, वे तो बार-बार मौका पायके पुनर्जन्ममें देह धरकरके उन्हीं अवतारीको ही मारा करेंगे, ऐसा ही कर्मका नियमसे न्याय ठहरता है। अतः इन्होंकी कही हुई मुक्ति बिलकुल झूठी है, ऐसा जानिये॥१४४॥

३. परशुराम बहुबार क्रोध करि। राजन मारो सबहीं॥ १४५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! दश अवतारोंमें सबसे ज्यादा हिंसक, क्रोधी, घातकी, लड़ाका, परशुराम भया था। ऐसा ग्रन्थोंमें वर्णन भया है कि, राजा सहस्रबाहुके पुत्रोंने आके जमदग्नि मुनिको मार दिया, और धेनु भगाके ले गये। पीछे परशुराम बाहरसे आये और पिताकी हत्या हुई, सुनके वे बहुत क्रोधित

हुये। फिर अस्त्र-शस्त्र लेकर फरसा उठाकर जाके युद्ध करके सहस्त्र-बाहु और उसके सब पुत्रोंको भी मार डाला। इतनेमें भी उनके क्रोध शान्त नहीं हुआ, तो और-और भी राजाओंके यहाँ जा-जाके, लड़-भिड़के उन्हें भी मार डाला। इसी प्रकार भूमण्डलमें घूम-घूमके सब योद्धा राजाओंको ललकार-ललकारकर छल, बल, कपटसे मार दिया, और मरवाया। उनसे सब क्षत्रिय परास्त हो गये, भयसे क्षत्रिय लोग थर्राके काँप उठे। जो सन्मुखमें लड़ने आये, सो सब मारे गये। इस तरह परशुरामने बहुत बार प्रचण्ड क्रोध कर-करके सब ही क्षत्रिय राजाओंको मार दिया, और दबा दिया, ऐसा कहा गया है ॥ १४५ ॥

४. क्षत्री मारि निःक्षत्री कीन्हों । मुक्ति सुनी नहिं कबहीं ॥१४६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और, क्षत्री = शूर, वीर, लड़ाका, जो-जो क्षत्रिय थे, ललकारनेपर जो युद्धमें सन्मुख आये, ऐसे सब क्षत्रियोंको मार-मारके नष्ट कर दिया। एकईस बारतक पृथ्वीकी परिक्रमा करके परशुरामने, निःक्षत्री = क्षत्रिय वीरोंसे रहित भूमिको किया। अर्थात् एकईस बारतक जो-जो लड़नेको आये, उन्हें तो लड़के मार दिया। अतः तब बचे हुए लोग हार मानके २२ वीं बारमें कोई भी उनसे लड़नेको नहीं आये। बलिक हम आपके शरण हैं, अधीन हैं, दास हैं, हमारी रक्षा करो, कहने आये। इसीसे २१ बार निःक्षत्री किया, ऐसा कहा है। इस तरह उन्होंने बहुत सारा हत्या करके लोगोंको मारे, वे भी तो छठवें, एक अवतार ही कहलाते थे। परन्तु, उन्होंने जिन-जिनको मारे, उन्होंकी मुक्ति भई, ऐसा तो कभी भी आजतक सुननेमें नहीं आया। फिर अवतारियोंके हाथसे मरनेवालोंकी मुक्ति हुई, कहना सरासर झूठा हुआ कि नहीं? अवश्य झूठा गपोड़ा ही हुआ ॥ १४६ ॥

५. बिना क्रोध कोइ मरै न मारै । मुक्ति क्रोधते होई ॥ १४७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! क्रोध, द्वेष, बैर,

कुबुद्धि आदि विकार उत्पन्न हुए बिना, तो कोई भी मनुष्य युद्धमें अग्रसर होके न किसीको शस्त्र चलाके मारता है, और न अपने ही जाके मरता है, वा मारा जाता है। जीव घात, आत्मघात, परघात, युद्ध आदि सब कुकर्म, क्रोध उठ करके ही पीछेसे होते हैं। तो क्या क्रोधसे किसीकी मुक्ति होती है? ऐसा तो कहीं कभी नहीं हो सकता है। क्योंकि, तमोगुणके विकारसे क्रोध उत्पन्न होता है, वह बन्धन और नर्कका मूल है। इसीसे क्रोध करके मारने-मरनेसे कभी मुक्ति हो नहीं सकती है। मरना-मारना, युद्ध करना, यह तो हिंसकी, क्रूर, राक्षसी कर्म है। यह सुखदाई अच्छा कर्म ही नहीं है ॥ १४७ ॥

६. काहेको यह काम क्रोधको। त्यागन ईश बताई ॥ १४८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! और यदि काम, क्रोधादि कुवृत्ति, कुकर्मसे हित, कल्याण, मुक्ति होती तो, ईश= ज्ञानी लोग उसे त्यागनेको कभी नहीं कहते। परन्तु, वैसा होता नहीं है, इसीसे ज्ञानी लोग सबोंने उसे त्यागनेको कहे, और कह रहे हैं, और फिर तुम्हारा ही माना हुआ ईश्वरने वेदादिमें काम, क्रोधादि दोषोंको त्यागनेको कहा है। यदि उससे मुक्ति होती, तो ऐसा त्यागनेको काहेको बतलाया है। अथवा, जिन्हें तुम लोग ईश्वर, भगवान् करके मानते हो, उन्हीं कृष्णने कहा है, सुनोः—

श्लोकः— "त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ॥
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ॥
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय १६। २१-२२ ॥

— हे अर्जुन! काम, क्रोध तथा लोभ यह तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माका नाश करनेवाले हैं। अर्थात् अधोगतिमें ले जानेवाले हैं। इससे इन तीनोंको त्याग देना चाहिये ॥ क्योंकि, हे अर्जुन!

इन तीनों नरकके द्वारोंसे मुक्त हुआ, अर्थात् काम, क्रोध और लोभ आदि विकारोंसे छूटा हुआ पुरुष अपने कल्याणका आचरण करता है। इससे वह परमगतिको जाता है ॥

इत्यादि प्रमाण शास्त्रोंमें लिखा है। ईश = ज्ञानी, षट्गुण ऐश्वर्य संयुक्त श्रीमान् तथा राम, कृष्ण आदिकोंने काम, क्रोधादिको त्यागनेको बताये हैं। यदि क्रोधसे मुक्ति होती, तो फिर ऐसा क्यों बताये हैं? कि, उससे अहित दुःखके सिवाय किसीका हित, सुख नहीं हो सकता है। इसीसे यह बात सिद्ध हुआ कि— अवतारियोंने क्रोध करके जिन्हें मारा था, उन्होंकी मुक्ति कहना बिलकुल झूठा है ॥१४८॥

७. अपने मुखसे राम कृष्ण कहि । काम क्रोध तजु भाई! ॥१४९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! हे भाई! रामचन्द्र, और कृष्णचन्द्र आदि अवतारी माने गये, पुरुषोंने स्वयं अपने मुखसे खुलासा करके कहा है कि— भाई! काम, क्रोधादि दुर्गुण, और कुबुद्धिको परित्याग करो, तभी सुख पाओगे, और हित-कल्याण होगा। इत्यादि जो उपदेश कहा है, सो रामायण, श्रीमद्भागवत, और भगवद्गीता, महाभारत आदिमें प्रसङ्गानुसार विस्तारसे जगह-जगहमें लिखा हुआ है। उसीमेंकी एक-दो बात नीचे लिख दिया जाता है, सुनिये!

रामायण— अरण्य काण्डमें रामने लक्ष्मणके प्रति कहा है:—

"काम आदि मद दम्भ न जाके। तात! निरन्तर बस मैं ताके ॥"

और नारदके प्रति रामने रामायण अरण्य काण्डमें कहा है:—

"जनहिं मोरबल निजबल ताहीं। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आहीं ॥"

दोहाः— काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोहके धारि ॥
तिन्ह महँ अति दारुन दुःखद, मायारूपी नारि ॥

"काम क्रोध मद मत्सर भेका। इनहिं हरष प्रद बरषा एका ॥
साधु कौन जाके उरदाया। दयाको भूत द्रोह नहिं करई ॥"

॥ इत्यादि, रामायण, अरण्य काण्ड ॥

भरतके प्रति रामने उत्तर काण्डमें कहा है:—

"काम क्रोध मद्लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥"
"काम वात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त निज छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जो तीनों भाई ! उपजइ सन्निपात दुःखदाई ॥"
॥ इत्यादि, रामायण, अरण्य काण्ड ॥

इस प्रकार रामके मुखके वचन रामायणमें कई जगह लिखा हुआ मिलता है ॥ तैसे ही कृष्णने भी कहा है:—

श्लोकः— "काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ॥
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय ३ । ३७ ॥

—कृष्ण कहते हैं:—हे अर्जुन ! रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है । यह ही महाशन अर्थात् अग्निके सदृश भोगोंसे न तृप्त होनेवाला, और बड़ा पापी है । इस विषयमें इसको ही तूँ वैरी जान ॥ ३७ ॥

श्लोकः— "ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ॥
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२ ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥" ६३ ॥
॥ भगवद्गीता, अध्याय २ । ६२–६३ ॥

—हे अर्जुन ! मन सहित इन्द्रियोंको वशमें करके स्थिर न होनेसे मनके द्वारा विषयोंका चिन्तन होता है, और विषयोंको चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, और आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है, और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है ॥ और क्रोधसे अविवेक, अर्थात् मूढ़भाव उत्पन्न होता है, और अविवेकसे स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है, और स्मृतिके भ्रमित हो जानेसे बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्तिका नाश हो जाता है, और बुद्धिके नाश होनेसे यह पुरुष अपने श्रेय साधनसे गिर जाता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

श्लोकः— "शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ॥
काम क्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय ५ । २३ ॥

— कृष्ण कहते हैं:— जो मनुष्य शरीरके नाश होनेसे पहिले ही काम, और क्रोधसे उत्पन्न हुए वेगको सहन करनेमें समर्थ है, अर्थात् काम, क्रोधको जिसने सदाके लिये जीत लिया है, वह मनुष्य इस लोकमें योगी है, और वही सुखी है ॥

इत्यादि कृष्णके मुखसे निकले हुए वचन भगवद्गीता, और भागवतादिमें लिखा हुआ है। इस प्रकारसे तो राम और कृष्णने भी अपने-अपने मुखसे मुख्य करके हे भाई! काम, क्रोधादिको तजनेके लिये ही उपदेश कहा है, सो जान लो! ॥ १४९ ॥

८. मारे मरै मुक्ति होय जो । काहेको दया दृढाई ? ॥ १५० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! यदि लड़ाई करके बहुतोंको मारके, मरनेसे जो मुक्ति हो जावे, और युद्धादिमें मारने मरनेसे जो मुक्ति होवे, तो फिर राम, कृष्ण आदिने दूसरोंको उपदेश देके समझाकर दया पालन करनेके लिये क्यों दृढ़ाये हैं? काम, क्रोधको त्याग करनेके लिये क्यों बताये? अतः दश अवतारादि किसीके भी मारनेसे कोई मुक्त भया नहीं, और मार-मारके मरनेवाला कोई भी कदापि मुक्त नहीं होता है। हिंसाके अध्यासवश बार-बार देह धर-धरके बदला लिया-दिया करता है। सद्गुरुने कहा है:—

साखीः— ४ "जीव मति मारो बापुरा! सबका एकै प्राण ॥
हत्या कबहुँ न छूटि है, जो कोटिन सुनो पुराण ॥
४ जीवघात ना कीजिये, बहुरि लेत वै कान ॥
तीरथ गये न बाँचि हो, जो कोटि हीरा देहु दान ॥"
॥ बीजक, साखी २१२ । २१३ ॥

इसलिये घातकी क्रूर कर्मको सर्वथा परित्याग करके दयादि सद्गुण धारण करना चाहिये ॥ १५० ॥

९. बिना ईश जगमें काहुकी । जन्म मरण नहिं होई ॥ १५१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! और ईश्वरवादी लोग कहते हैं कि— जगत्कर्ता परमेश्वरकी इच्छाशक्ति बिना तो संसारमें एक पत्तामात्र भी हिल नहीं सकता है। इसीसे जगत्में ईश्वरके इच्छा बिना किसी भी जीवकी जन्म वा मरण हो नहीं सकता है। ईश्वरकी प्रेरणारूप सत्तासे ही चारखानी चौरासी योनियोंमें जन्म, मरण, गर्भवास और त्रयताप आदि भोग होता रहता है, ईश्वर सर्वव्यापक परिपूर्ण है। सारी सृष्टिको प्रथम ईश्वरने ही उत्पन्न किया है। कर्मानुसार सब जीवोंको उसीने जन्म-मरणमें डाल रखा है। चारोंखानी चराचरकी मूल कारण ईश्वर है। इसीसे ईश्वर बिना जगत्में किसीका भी जन्म-मरण होता नहीं है, ऐसे कल्पना करके गुरुवा लोगोंने कहा है ॥ १५१ ॥

१०. जो जग उतपति प्रलय ईशते । तो वह मुक्त न कोई ॥१५२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! तहाँ घड़ी भरके लिये जो यदि ऐसा ही है, माना जाय, तो एक ईश्वर कर्तासे स्वाभाविक जगत्की उत्पत्ति और प्रलय होते रहनेसे, तो वह स्वयं ईश्वर और अवतारी लोग तथा जिन-जिन्होंको उन्होंने मारे वे लोग, और सकल जीव कोई भी मुक्त नहीं हुए, और न कभी इस तरहसे मुक्त ही हो सकेंगे। सदा बद्ध होकर आवागमनके ही रहट-घड़ी महाचक्रमें ही पड़े रहेंगे। क्योंकि, स्वाभाविक रीतिसे सर्वत्र उत्पत्ति-प्रलय करनेकी ईश्वरके गुण लगा है, इसीसे तो वह कभी मुक्त नहीं हो सकता है। ईश्वरकर्ता माननेसे यह अनादिके असाध्य रोग उसके शिरमें लग जाता है। तहाँ मुक्तिकी बात कहना ही भूठा हो जाता है। ईश्वर किसीको मुक्त होने देता ही नहीं है। यदि मुक्ति होने देगा, तो उसके सृष्टि ही नाश हो जायगी। और हे ईश्वरवादी ! यदि तुम ईश्वरसे ही सारे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय मानते हो, तो वह

ईश्वर और तुममेंसे कोई भी कभी मुक्त नहीं होवेंगे। अतः मिथ्या धोखाको त्यागके सत्यासत्यको सत्सङ्गमें ठहरकर ठीक रीतिसे परखो, और भ्रम-भूलको हटाओ। तभी हित होवेगा, सो जानो! ॥ १५२ ॥

११. मारै मरै मुक्ति बतावै। विषयाके अधिकारी ॥ १५३ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! जो विषेश वा अधिक ही विषयासक्त हैं, पामर, विषयी, लम्पट, लबार बने हैं, और बाचाल, वाणी-विषयमें भी प्रवीण, धूर्त बने हैं, उन्हीं लोगोंने अपने स्वार्थसिद्धिके वास्ते ही मारै-मरैको मुक्ति बताये हैं। क्योंकि, वे लोग कमजोर लोगोंको मार-मारके उन्होंके धन-सम्पत्ति, स्त्री, जमीन, राज-पाटादि छीनके, लूट-मारकर विषय भोगना चाहते हैं। और बकरादि पशुओंको तो मार-मारके उनकी मुक्ति बताकर मांस ही खा जाते हैं। हिंसक जङ्गली पशुसे भी गये-बीते अधम बने हैं। अज्ञानी लोगोंको भुलाकर यश पानेके लिये और अपना मतलब पूरा करनेके लिये ही पौराणिक गुरुवा लोगोंने यह प्रसिद्ध कर रखा है कि— भगवान्के दशों अवतारोंने जिन-जिन्होंको मारे, उनके हाथसे वा उनके भक्तोंके हाथसे जो मरे, सो बन्धनसे मुक्त हो गये, इत्यादि बताते हैं। और अपने भी भक्त बननेका ढोंग करके जीव-हत्या करते हैं। कहीं यज्ञ, बलिदान आदि कराके पशुको मारते हैं, और कहीं रामलीला, कृष्णकी रासलीला, इत्यादिके नामसे मनमाने व्यभिचार करके विषय भोगते हैं, इसीसे वे विषयोंके अधिकारी चामके कीड़े जड़ाध्यासी हो, चौरासी योनियोंके कुण्डमें ही गिर पड़े, और अभी उनके अनुयायी वैसे ही कुकर्म करके चौरासी योनियोंमें जा रहे हैं ॥ १५३ ॥

१२. मारै मरै मुक्ति गावै सब। कहहिं कबीर पुकारी ॥ १५४ ॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने जो सत्यन्यायसे गुरुमुख निर्णय कहा है, सोई श्रीगुरुदयालसाहेब ऊँचे स्वरसे पुकार-

पुकारके जिज्ञासुओंको समझाते हुए कहते हैं कि— हे सन्तो! वे अविचारी, पौराणिक, अवतारवादी गुरुवा लोग सब कोईने वही मारै-मरेको झूठ-मूठसे मुक्ति बताके, उसके ही खूब महिमा बढ़ाके गुण गाये हैं। परन्तु, वह सरासर मिथ्या धोखा है, सद्गुरुने कहा हैः—

धर्म करे जहाँ जीव बधतु-हैं। अकर्म करै मोरे भाई! ॥ ५ ॥
जो तोहराको ब्राह्मण कहिये। तो काको कहिये कसाई ॥ बी० श० ४६ ॥

ऐसा तो कसाई राक्षस घातकी लोग भी जीव घात करके मुक्ति बताते हैं। क्या वह मुक्ति हो सकती है? कभी नहीं। अश्वमेधादि यज्ञ करनेवाले लोग भी यज्ञ पशु अश्व आदिको मारके उसका मुक्ति ही बताते थे। अभी देवी आदिके मन्दिरोंमें बलिदानमें पशु-पक्षियोंको मारकर उसको मुक्त किया, ऐसा कहते हैं। आजकल लड़ाका योद्धाओंने फौजके एक टुकड़ी, एक दलका नाम 'मुक्ति सेना' रखे हैं। वे लोगोंको मार-काटके देशको लूटने-छीनने आदिका कुकर्म करते हैं। और युद्धमें मारने-मरनेवालोंकी भी मुक्ति वा स्वर्गादि लोक प्राप्ति होनेका कथन किये हैं। तपस्या, उपवास आदिसे आत्मघात कर-करायके मरनेवालोंकी भी मुक्ति बताये हैं। इस प्रकारसे निज-पर जीवोंको नाना तरहसे मारके मरनेवालोंकी किसी न किसी रूपमें मुक्ति बताके सबोंने उसके गुण ही गाये हैं। परन्तु, वे अधर्मी, पापी, दुष्ट, विषय लम्पट होके हिंसादि कुकर्ममें लगकर महान् बन्धनमें पड़े। और देह छूटनेपर चौरासी योनियोंमें ही गये तथा जा रहे हैं, बिना पारख ॥ १५४ ॥

॥ * ॥ नवम—शब्द ॥ ९ ॥ * ॥

१. सन्तो! राम कहै दुनियाई। कहु कौने गति पाई? ॥टेक॥ १५५॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः— हे मुमुक्षु विवेकी सन्तो! संसारमें दुनियाँदारी लोग और वैरागी, उदासी, संन्यासी आदि, साधु लोग सब कोई 'राम-राम' कहते हैं। कोई सीताराम,

सीतारामके रटनेमें लगे हैं। कोई नाम स्मरण, जाप, कीर्तन-भजन करते हैं। कोई "रामनाम सत्त है, सत्त कहै गत्त है।" ऐसा कहते हैं। कोई "बोलो भाई राम! बोलो भाई राम!" चिल्लाते हुए मुर्दा ले जाते हैं। गाँवके लोग परस्पर मिलने पर "रामराम भाऊ! रामराम!" ऐसा कहते हैं। कोई "पट्टू रामराम बोल! पट्टू रामराम बोल!" कहिके शुग्गाको पढ़ाते हैं। भक्त लोग 'हा राम! हा भगवान्!' कहिके पुकारते हैं। इस तरह बालक, युवा, वृद्ध, नर-नारी, ज्ञानी, योगी, भक्त आदि सभीके मुखसे बार-बार राम-नामका पुकारा, स्मरण हुआ करता है। बहुतेरे दुनियाई लोग राम कहते और कहलवाते हैं। परन्तु, यह कहो तो भला! ऐसे 'राम-राम' कहनेमात्रसे किसने गति मुक्ति पाई है? और किसने कल्याण वा सुख पाये हैं? किसीने भी पाये नहीं हैं। अरे! राजा रामकी ही मुक्ति नहीं हुई, तो फिर राम भक्तोंकी क्या मुक्ति होगी? कुछ नहीं! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक, शब्द ४० में कहा है:— सुनिये!

"पण्डित! बाद बदे सो झूठा॥ रामके कहै जगत गति पावै। खाँड़ कहै मुख मीठा॥

॥ बीजक, शब्द ४० पूरा शब्द ॥

— पण्डितने जो बाद कथन किया है, सो झूठा है। यदि राम नामके कहनेमात्रसे जगत् जीव मुक्ति पा जावें, तो गुड़-शक्कर पुकारा करनेसे भी मुख मीठा होना चाहिये। जो ऐसा नहीं होता है; इसीसे राम कहनेवाले किसीको भी गति नहीं मिली, और मिलनेवाली भी नहीं है। दुनियाँमें सब तो राम कहते हैं, फिर उनमें कहो, किसने गति पाये? किसीने भी नहीं पाये। अतः मिथ्या भ्रमको छोड़ो। सत्सङ्ग-विचार करके सत्य-सारको जानो॥ १५५॥

२. राजा कहै कहै पुनि वेश्या। कहै चोर औ साहू॥ १५६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासु सन्तो! राजा अपने राज्य व्यवस्थाके लिये 'राम-राम' किया करता है, और राम कहके ही युद्धमें जाके सैन्यको मारता है। राज-काजमें अक्सर हिन्दू राजा

लोग रामका नाम कहा करते हैं। तैसे प्रजा लोग भी सब राम-ही-राम पुकारते हैं। फिर, वेश्या = रण्डी, पतुरिया, बाजारू औरत भी अपने कुकर्ममें उन्नतिके लिये 'राम-राम' कहती रहती है। हा राम! कोई विषयी पुरुष आवें, भोगें, धन दिया करें, ऐसा चाहती हैं। उसी अपने स्वार्थके लिये वेश्या भी नित्य 'राम-राम' कहती है, और चोर भी 'राम-राम' कहिके चोरी करनेके लिये चल पड़ता है। चोरीमें खूब माल हाथ लगे, हा राम! मैं कभी पकड़ा न जाऊँ, बचा रहूँ! ऐसा मनाता रहता है। चोरी कर्मकी उन्नतिके लिये नित्य प्रति चोर 'राम-राम' कहता है, और साहुकार लोग भी अपने कारोबार बढ़ानेके लिये 'राम-राम' कहा करते हैं। राम-राम भाई साहब! आइये! बैठिये! आपको क्या चाहिये? इत्यादि बात कहते हैं। रोज ही सैकड़ों वार राम-राम कहा करते हैं। परन्तु, मनमें छल, कपट, दगाबाजी, धूर्ताई ही भरी रहती है। कहा है:—

"मुखमें राम-राम, बगलमें छूरा" और—

"दगाबाज दूना नमैं, चीता चोर कमान। अपने स्वारथ कारणे, हरत औरके प्रान॥"

ऐसी उन्होंकी कपटकी चाल रहती है, और सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबने भी कहा है:—

साखी:— "रामहिं राम पुकारते, जिभ्या परिगौ रोंस॥
सूधा जल पीवै नहीं, खोद पिवनकी हौंस॥"

॥ बीजक, रमैनीके साखी ३२॥

इस तरहसे राम-नामको, राजा भी कहता है, उसीको फिर वेश्या भी कहती है, चोर और साहु भी राम-राम कहते हैं। परन्तु, उससे सुगतिकी लाभ किसीको कुछ भी नहीं होती है॥ १५६॥

३. हरि चरचा हम घर घर देखा। तरत न देखा काहू॥ १५७॥

टीका:— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! और, हरि = विष्णुके अवतार माने हुए राम, कृष्णादिकी कथा, जीवनचरित्र, लीला आदिकी, चर्चा = कथन, वार्तालाप, भजन, कीर्तन, नाम स्मरण,

पूजा-पाठ, आराधना, भक्ति-भाव, इत्यादि प्रकारसे हरिके गुणकी चर्चा, महिमा, पुकारा होता हुआ, तो हमने हिन्दुओंके घरों-घरमें जाके देखा। सब कोई अपने-अपने भावनाके अनुसार उसीमें लवलीन हो रहे हैं। ऐसा होनेपर भी कोई कामी, क्रोधी, लोभी, मोही, वञ्चक, लबार, कपटी, धूर्त ही बने हैं। सब अपने-अपने विषय भोगोंकी स्वार्थ सिद्धिमें ही लगे हैं। इसलिये उनमेंसे किसीको भी भवसागरकी महाजाल विकट धारोंसे तरते हुए वा मुक्त होते हुए हमने नहीं देखा। सब जड़ाध्यासी, भ्रमिक होके भवधारामें गोता लगाकर डूबते ही जा रहे हैं, बिना पारख ॥ १५७ ॥

४. गावै बाँचै सन्ध्या तर्पण । माला फेरै कोई ॥ १५८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! ये अविवेकी, पक्षपाती, भ्रमिक गुरुवा लोग बड़े पण्डित, पौराणिक, शास्त्री, कथावाचक, उपदेशक, कीर्तनकार, कर्मकाण्डी, इत्यादि बहुरूपिया होयके कहीं तो खूब भजन, कीर्तन, ताल-स्वर, साज-बाजके साथ गाय-गायके सुनाते हैं, और कहींपर तो कथा बाँचके पुराण-रामायण आदिकी कथा सुनाते हैं। तहाँ सद्गुरुने कहा है:—

"बैठा पण्डित! पढ़ै पुराण। बिनु देखेका करत बखान ॥" बी० श० १०१॥

और कोई उपासक लोग त्रिकाल सन्ध्यामें गायत्री आदि मन्त्रोंकी जाप करते हैं। तथा कोई कर्मनिष्ठ ब्राह्मण लोग पितृयोंके लिये पानी देनेका उपक्रममें तर्पण करते-कराते हैं। होम-हवन, बलि-वैश्वदेव, श्राद्ध, जन्मोत्सव, इत्यादि और भी कई कर्म करते रहते हैं। और कोई भक्त लोग तो नाना तरहसे माला फेरते हैं। तहाँ २७ दानोंका सुमिरनी लेते हैं। और १०८ दानोंका अष्टोत्तरी, १००० दानोंका हजारी माला बनायके, उसे कपड़ेमें रखके, गलेमें लटकायके, खटाखट्-खटाखट् मालाके दानोंको फिराया करते हैं। उसे खूब जाप किया, ऐसा समझके गाफिलीमें पड़े रहते हैं। इत्यादि प्रकारसे बहिरङ्ग देखावा, ढोंग, पाखण्ड तो बहुतेक करते हैं,

परन्तु, उससे जीवोंका कुछ भी हित नहीं होता है, व्यर्थमें मनुष्य जन्म गमाते हैं॥ १५८॥

५. मन तो फिरत गली-गलीमें। ये सुमिरन नहिं होई॥ १५६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! कर्मी, उपासकादि लोगोंका मन तो जहाँ-तहाँ विषयोंकी गली-गलीमें अत्यन्त चञ्चल होके फिरता रहता है। फिर ये बाहर देखावेका सुमिरण, जाप, ध्यानादि क्या कामका होता है? कुछ नहीं। अरे! यह तो असली सुमिरण ही नहीं है, खोटी चाल है, बगुला भक्तिके नाईं कपट जाल है। उससे किसीका कभी हित, कल्याण नहीं हो सकती है। हाथमें तो माला फेर रहे हैं, मुखसे कुछ बड़-बड़ा रहे हैं, चारों तरफ शिर घुमा-फिराके नेत्र नचा-नचाके देख रहे हैं, कभी किसीसे बातें भी करते जाते हैं, ऐसे मन तो नाना गली-गलीमें फिर रहा है, फिर यह सच्ची सुमिरण कैसे हो सकती है? कभी नहीं। यह तो पाखण्ड सरासर धूर्ताई मात्र है, ऐसा जानना चाहिये॥ १५९॥

६. पण्डित भागवत गीता बाँचै। मन मायाके चेरे॥ १६०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और उधर ब्राह्मण पण्डित लोग पुरोहित आदि बनके अपनी जीविका चलाते हैं। तहाँ पण्डितजी! व्यासासनमें बैठके श्रीमद्भागवत-महापुराण और श्रीमद्भगवद्गीता, वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्म रामायण, महाभारत, स्कन्धमहापुराण, गरुड़पुराण इत्यादि अठारहपुराण आदि ग्रन्थोंको बाँचते हैं, श्रोतागणोंको नाना प्रकारसे रोचक-भयानक वाणीमें अनेकों कथा सुनाते हैं। तीर्थ, व्रत, दान, पुण्यादिकी महिमा बताके, ब्राह्मणोंको भोजन, दान, दक्षिणा देना चाहिये, ऐसा कहते हैं। उसका बड़ाभारी फल स्वर्गादिमें सुख प्राप्ति बतलाते हैं। परन्तु, वे स्वयं ही तन, मन, धन, स्त्री, पुत्रादिमें आसक्त बद्ध, मनमायाके चेरे बने हैं। चेरे कहिये गुलाम, अधीन, विषयासक्त हो रहे हैं। काम, क्रोधादिके

बहुत सारा विकार उनमें भरा है, मन मलीन हो रहा है, कहा है:—

"मनमलीन तन सदा उदासी, गलमें डिम्भ कपटके फाँसी ॥"

ऐसी हालतमें स्वार्थ सिद्ध करनेके वास्ते ही पोथी-पुराणादि ग्रन्थ बाँचते हैं। अतः उससे हानिके सिवाय किसीको भी कुछ लाभ नहीं हो सकता है ॥ १६० ॥

७. सुननहारा अपने गम्बके । ज्यों सावज वधिक अहेरे ॥ १६१ ॥

टीका:— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! और, सुननहारा = उन पण्डितोंके कथाको सुननेवाले श्रोताजन जो हैं, सो सब लोग तो वक्ताके अपने, गम्बके = मत भीतरके, अपने पार्टीके, पन्थ वा सम्प्रदाय अनुकूलके उनके ही चेले, सेवक वर्ग ही अपने गाँव घरके लोग ही, तो हैं। फिर जैसा चाहे तैसा उलटा-सीधा कथा सुनाके उन्हें भुला-भ्रमा ही देते हैं। तो भी वे मूर्ख लोग 'हाँ जी महाराज !' 'सत्य वचन महाराज !' 'धन्य हो महाराज !' कहि-कहिके उनके कल्पनादि ढोनेका नर-पशु ही बन जाते हैं। श्रोता लोग अपने पक्षके होनेसे वक्ताको मिथ्या कथन करनेमें भी कुछ संकोच रुकावट नहीं होती है। इसीसे जैसे व्याधा वा वधिक लोग जङ्गलमें जाके वंशी बजाकर, चारा छिटकके जालमें, सावज = मृग आदि जानवरोंको फँसाके, अहेरे = शिकार करके मार डालते हैं। तैसे ही, वधिक = गुरुवा लोग, सावज = अज्ञानी पशु-बुद्धिवत् मनुष्योंको नाना तरहके कल्पित वाणीरूपी जालमें फँसा-फँसाके आशा-भरोशा दे-देके शिकार करके वाणीकी तीरसे मार-मारके मनुष्य पदसे गिरा देते हैं। बिना समझ बुद्धिके सब मनुष्य इसी तरहसे मारे जा रहे हैं, बन्धनोंमें ही अरुझे पड़े हैं ॥ १६१ ॥

८. दो दो कहै हाथ नहिं आवै । दुविधामें दोउ जाहिं ॥ १६२ ॥

टीका:—ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो !, दो-दो कहै = राम और काम ये दो बात कहते हैं। माया-ब्रह्म, जीव-ईश्वर, साकार-

निराकार, सगुण-निर्गुण, प्रवृत्ति-निवृत्ति इत्यादि सब कुछ राम ही है, और आत्मारामके सिवाय कुछ भी नहीं है। ऐसा दो प्रकारका कथन करनेसे हाथमें सार तो कुछ भी नहीं आता है, और हे भगवान्! हमें सुख-सम्पत्ति दो, स्त्री-पुत्र दो, राज-पाट दो, स्वर्गादि-सुख दो, भुक्ति-मुक्ति दो, ऐसा कहते फिरते हैं। परन्तु, किसीके हाथोंमें वह कुछ भी नहीं आता है। दुविधामें पड़नेसे दोनों तरफ उनके बिगड़ जाते हैं। ज्ञानी-अज्ञानी, दोनों ही दुविधामें जा रहे हैं। खानी-वाणी इसी दोकी दुविधामें सब जड़ाध्यासी होके चारखानीमें गये, तहाँ नर-नारीके दो शरीर धारण करके दुःख ही भोग रहे हैं ॥१६२॥

९. कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो! दुविधामें दोउ नाहीं ॥१६३॥

टीकाः— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका कहा हुआ सत्य निर्णयको श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैं कि— हे मुमुक्षु सन्तो! चित्त लगायके सुनो हो! दुविधामें पड़नेवाले लोगोंकी स्वार्थ और परमार्थ दोनों भी नहीं बनता है। तहाँ कहा हैः—

"दुविधामें दोनों गये, माया मिली न राम॥"

ईश्वर वा खुदा यह दोनों भी दुविधा भ्रममात्र ही है, और कुछ नहीं है। साकार, निराकार ब्रह्म कहा हुआ भी दुविधा ही है, उसमें सत्य कुछ नहीं है। दुविधामें पड़के नर-नारी दोनों हंस पदमें नहीं ठहरते हैं। इसीसे जीव जड़ाध्यासी होके चौरासी योनियोंके चक्रमें गिरे, पड़े रहते हैं, बिना पारख ॥ १६३ ॥

॥ * ॥ दशम—शब्द ॥ १० ॥ * ॥

१. सन्तो! बीबी बड़ी पदोड़ी! ॥ १६४ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः— हे जिज्ञासु सन्तो! जैसे कोई बीबी-मुस्लिम स्त्री बड़ी पदोड़ी अर्थात् बेधड़क खूब अपान वायु छोड़नेवाली निर्लज्ज हो। फिर अपने पाद करके उसका दोष दूसरेके ऊपर लगावे, ऐसी निर्बुद्धि बेहया हो, चपला हो, तो उसका

सङ्ग करना हानिकारक होता है। तैसे ही सिद्धान्तमें हे सन्तो! बीबी = विचित्र-विचित्र दो तरहकी वाणी, बड़ी भारी चञ्चला होती हैं। जो कि, पदोड़ी = मुखसे अत्यन्त शब्द करके बोलती हैं, वैखरी वाणीका विस्तार करती हुई बकवाद करती रहती हैं। अथवा बीबी-स्त्रीवत् योगी, ज्ञानी, भक्त, गुरुवा लोग ईश्वर वा खुदाको एक पति मानके उसके, बीबी = उपासक भये। वे बड़े ही बकवादी वैखरी वाणीसे शब्दको पादनेवाले, पदोड़ी = मिथ्यावादी भये हैं। और अभी वैसे ही हो रहे हैं॥ १६४॥

२. पादै आप लगावै औरहि। ऐसी मतिकी भोड़ी॥ टेक॥ १६५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! तहाँ वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान आदि समस्त वाणीरूप शब्दोंको तो आप ही मनुष्य जीवोंने भ्रमिक गुरुवा बन-बनके मुखसे पादे वा बोलके कहे हैं। ऐसे शब्द तो आप ही बोलते हैं, परन्तु, उसके जिम्मेदारी और ही कोई कर्ता, परमात्माके ऊपर लगाते हैं। तहाँ कहते हैं कि— वेदको निराकार ईश्वरने बनाया है और कुरानको बेचून खुदाने बोला है, इत्यादि प्रकारसे और ही को शब्द बनानेका दोष लगाते हैं, वेदादिका कर्ता दूसरेको ही बताते हैं। ऐसे मति-बुद्धिके हीन पक्षपाती हठी, शठी भये हैं कि— सच्चाको छिपाके झूठाको ही सच्चा बताते हैं। वाणी कल्पनाको लेके गुरुवा लोग ऐसे मतिके भ्रष्ट और, भोड़ी = ठग वा ठगिनी बने हैं; जो नरजीवोंको हाव-भाव, कटाक्ष आदिसे ठग-ठगके रोचक-भयानक वाणी सुना-सुनाके सत्यानाश कर डालते हैं। अतएव मायारूप गुरुवा लोग ही स्त्रीरूपी यहाँ बड़ी बीबी बने हैं। जो मुखसे पादनेवाले बड़े पदोड़ी वा गपोड़ी बने हैं। वे बड़े ठग होते हैं, ऐसा जानके उन्होंसे दूर ही बचे रहना चाहिये॥ १६५॥

३. एक पाद बीबी जो पादी। भया ब्रह्म अविनाशी॥ १६६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! उस बीबीने

विचित्र-विचित्र रीतिसे बहुत-बार पादी, उसमें १४ दफेके पादसे सारा वाणी जालका विस्तार हुआ है। कौन-कौन पादसे क्या-क्या उत्पन्न भया है? सो नीचे बताया गया है, सुनिये! बीबी=कल्पित वाणी वा गुरुवा लोगरूपी मायाने प्रथम एक पादरूप शब्द, जो पादी=जो बात बोलते वा कहते भये। सो उसीसे ॐकार शब्द ही जगदाधिष्ठान, अविनाशी ब्रह्म, सनातन, परमात्मा, जगत्‌का मूल कारण, कर्ताके रूपमें कथनसे ठहरता भया। अर्थात् एक अविनाशी ब्रह्म सत्य है, यही एक वाणी पहिले ऐसे कहते भये। ब्रह्मको ही विराट पुरुष, चराचर जगत्‌का कर्ता, कल्पनासे माने हैं। उपनिषद्‌में ब्रह्मके चार पद कहा है। तीन लोक उसके एक पादमें स्थित है, ऐसा बताया है। यहाँ पादका अर्थ पद, पैर, भाग, अंश, खण्ड आदि होते हैं, ऐसा जानिये!॥ १६६ ॥

४. तेहि पाद त्रिदेवा उपजे। तेहि पाद चौरासी ॥ १६७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! और उसी प्रथम पादके भीतर ही ॐकाररूप ब्रह्म कर्ताकी इच्छासे आदिमाया वा मूल प्रकृति उत्पन्न भयी। फिर माया और ब्रह्मके सम्बन्धसे, त्रिदेवा= ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीन पुत्र देवतारूपमें उत्पन्न भये हैं। अर्थात् तेहि ॐकार पदरूप जो ब्रह्म कहा है, उसमें बिन्दु मात्राको ब्रह्म कहा है। अर्धमात्रा वही आदिमाया है। अकारमात्रा ब्रह्मा है। उकारमात्रा विष्णु है, और मकारमात्राको महादेव माने हैं। इस प्रकारसे तीन देवोंकी उत्पत्ति और ॐकारमें ही स्थिति कहे हैं। फिर उसी पादरूप शब्द ब्रह्मसे स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषय, तत्त्व, प्रकृति, गुण, इन्द्रियाँ, प्राण, जीवसहित उत्पन्न होके चारखानी, चौरासी योनियोंमें— चौरासी अंगुलका शरीर बनके पिण्डकी उत्पत्ति होती भयी, ऐसा कहे हैं। अथवा त्रिदेवोंसे जगत् चौरासी योनियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होनेका कथन, वर्णन भी उसी कल्पित वाणीसे ही किये हैं। इस प्रकार बिना विचारे वाणीसे कल्पना

बढ़ा-बढ़ाके भ्रम-भूलमें पड़े और पड़ रहे हैं ॥ १६७ ॥

५. एक पादते चारि अष्ट दश । नौ षट आठ बनाई ॥ १६८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! दूसरी वक्तकी गुरुवा लोगरूप मायाकी वाणीरूप एक पाद्से वा एक कल्पित शब्द्से एक ईश्वर कर्ता, दूसरी माया, तीसरा त्रिदेव उत्पन्न भये। फिर चारिमें चार वेदोंकी वाणी बनाये। पाँचवाँ स्वसंवेद बना, अथवा भागवत, बना, ऐसा कहे हैं। छठवाँ षट्शास्त्र, षट् मुनियोंने बनाये हैं। सातवाँ सप्तशती गीता बनाये, और सप्त ऋषियोंने भी बहुत-सी वाणी कहे हैं। आठवाँ अष्टाङ्गयोगकी वाणी बनाये हैं। कोई अष्ट प्रतिमादि जड़-पूजामें भी लगे-लगाये हैं। नववाँ नौ व्याकरणकी जटिल वाणी बनाये हैं। दशवाँ कर्मकाण्डकी दश कर्म पद्धति आदि वाणी बनाये हैं। इस प्रकारसे आगे बढ़ाते-बढ़ाते चौदह विद्या, और, अष्ट दश = अठारह पुराण, तथा चौसठ कलाएँ, एक सौ आठ स्मृति, उपनिषद् आदि सब वाणी गुरुवा लोगोंने एक ही पाद वा संस्कृत पदोंमें कल्पनाके आधारसे नानारूपमें बनाये हैं। परन्तु, उसमें पारखबोध कहीं भी नहीं है, इसीसे वह भ्रमानेवाला होनेसे अपानवायुवत् त्याज्य समझके मुमुक्षुओंने त्याग देना चाहिये ॥ १६८ ॥

६. एक पादते सकल साधना । शम दम आदि कराई ॥ १६९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! और तीसरा एक पादरूप शब्द्से, पद-पदार्थसे पाँचों मार्गोंकी सम्पूर्ण साधनाओंकी कथन किये हैं। प्रथम कर्म साधनामें नित्य-नैमित्तिकादि षट् कर्म करते रहनेको कहा है। द्वितीय भक्ति साधनामें नवधाभक्ति, सगुण-निर्गुण उपासना, करनेको बताया है। तृतीय योगसाधनामें, शम = मनको वश करके शान्त बैराबर स्थिर रखना। दम = दशों इन्द्रियोंको दमन करके दबाये रखना। उपरति = विषयोंके तरफसे उदास, उपराम रहना ! तितिक्षा = साधना, तपस्यामें ठण्डी, गर्मी,

भूख, प्यास आदिको सहन करना। श्रद्धा = गुरुमें और वेद-शास्त्रोंमें निष्ठासे श्रद्धा-भाव रखना। समाधान = शङ्काओंसे रहित होना। इसे शमादि षट् सम्पत्ति, साधन चतुष्टयमें एक साधन कहते हैं। चतुर्थ ज्ञान साधनामें सप्तज्ञान भूमिकामें बढ़ते जानेका अभ्यास करते हैं। पञ्चम विज्ञान साधनामें परमहंस वृत्ति बनानेमें लगे रहते हैं। इत्यादि प्रकारसे सकल साधनाएँ स्वयं भी करते हैं और दूसरे मनुष्योंसे भी कराते हैं। अन्तमें शून्यमें गरगाफ होके धोखेमें पड़के हंसपदसे नष्ट होकर आवागमन चौरासी योनियोंके बन्धनोंमें पड़ जाते हैं, बिना विवेक ॥ १६९ ॥

७. एक पादते चारि अवस्था। आदि अन्त करि गाई ॥ १७० ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! फिर चौथी एक पाद वा एक कल्पित वाणीकी पद-पदार्थसे पिण्डमें जीवकी, चार अवस्था = जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया नामसे वर्णन करके कहा है। कर्म, उपासना, योग, ज्ञान करके उसी चार अवस्थाओंके भासमें भासिक जीव सब भूल रहे हैं, और तैसे ही ब्रह्माण्डमें ईश्वरका विराट, हिरण्य गर्भ, अव्याकृत और मूल प्रकृति, ये चार शरीरका क्रमशः उत्पत्ति, पालन, संहार, और सर्वसाक्षिणी नामसे ये चार अवस्थाएँ तथा उसका चार कर्म कल्पना करके कहा है। और, आदि = जगत्की शुरूमें उत्पत्ति ईश्वरकी प्रथम अवस्थासे हुआ है। मध्यमें दूसरी अवस्थामें पालन होता है, और अन्तमें तीसरी अवस्थामें सब जगत्का संहार होके फिर उसी परमेश्वर वा ब्रह्ममें ही जाके मिल जाता है। अतः, आदि = जगत् तथा, अन्त = ब्रह्म है, ऐसा कल्पना करके मुखा लोगोंने नाना प्रकारकी वाणीकी गीत गाये हैं। जिसे सुन-सुनके सब लोग उसे ही प्रतीत कर-करके भूले पड़े हैं ॥ १७० ॥

८. एक पादते परमधामलों। सातों पुरी बनाई ॥ १७१ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और पाँचवीं एक

पादसे वा वाणी कल्पनासे— ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक, इन्द्रलोक, चन्द्रलोक, सूर्यलोक, और सातवाँ परमधाम तक सात पुरी सुखका धाम मानन्दी करके वाणी बनाये हैं। अथवा भूर्लोकादि सातलोक सोई ऊपरकी सातपुरी कल्पना करके वाणी बनाये हैं। अथवा पृथ्वीमें भी वैसे ही सात स्थानोंमें सप्तपुरी धर्मक्षेत्र, तीर्थधाम बनाके कायम कर रक्खा है। तहाँ कहा हैः—

श्लोकः— "अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका॥
पुरी द्वारावती चैव सप्तैते मोक्षदायिकाः॥"

—अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, विष्णु वा शिवकाञ्ची, उज्जैन, और द्वारिका, ये सात पुरियोंको मुक्ति देनेवाली धाम कहा है। यह सब एक वाणीकी कल्पनासे मनगढ़न्त बातें बनाये हैं। उसीमें अबोध मनुष्योंको फँसा रखे हैं॥ १७१॥

९. एक पादते सृष्टि सुभाविक। पाँच तत्त्व अविनाशी॥ १७२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! छठवीं एक पाद वा एक पदके भागरूप वाणीसे यह वर्णन किया कि— पाँचों तत्त्व नित्य अविनाशी हैं, उन तत्त्वोंके ही मिलापसे जड़-चैतन्यमय सृष्टि स्वाभाविक रीतिसे ही उत्पन्न हुआ करता हैं। तत्त्वोंसे बढ़करके और दूसरा श्रेष्ठ वस्तु ही कोई नहीं है। सिर्फ पाँच तत्त्व ही अविनाशी है, उसीसे स्वाभाविक सृष्टि होती है, ऐसे कथन करके तत्त्ववादी नास्तिक लोगोंने माने हैं। स्वाभाविक सृष्टिके भीतर चैतन्य जीवोंकी भी उत्पत्ति और नाश माननेवाले वे बड़े मूर्ख, अन्यायी, अविचारी बने हैं। अतः जड़ाध्यासी हो सदा चौरासी योनियोंके चक्रमें ही वे फिरा करेंगे॥ १७२॥

१०. एक पादते कर्ता नाहीं। ऐसे उपज विनाशी॥ १७३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और सातवाँ एक पादसे ऐसा वाणीकी आवाज निकली कि— वाणी-खानी आदिकी कर्ता जीव, शिव, आदि चैतन्य नित्य-सत्य वस्तु कोई भी कुछ कहीं

नहीं है। संसारका मूल कारण शून्यरूप है। समय आनेपर ऐसे ही आप-ही-आप जगत्में जड़-चेतन सब शून्यसे ही उत्पन्न होके आते हैं। फिर शून्यमें ही टिके रहते हैं, और अन्तमें विनाश होके वे सब शून्यमें ही समा जाते हैं। इस जगत्का कोई कर्ता विशेष नहीं है। उपजना-विनसना ऐसे आप ही हुआ करता है। इत्यादि प्रकारसे शून्यवादी लोगोंने शून्यको ही सर्व श्रेष्ठ माने हैं। इसीसे विवेक-विचारको भी शून्य करके शून्यके जड़ाध्यासी हो, फिर शून्यरूप भग-द्वारा शून्य स्थान गर्भवासमें ही प्राप्त होते हैं, जन्मृति दुःख भोगा करते हैं, बिना पारख ॥ १७३ ॥

११. एक पाद बीबी जो पादी। भयो अल्लाह बेचूना ॥ १७४ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! आठवाँ दफेके एक पाद बीबीने जो खूब जोरसे भुड़ुर्र-भुड़ुर्र करके पादी, तो मजा क्या पूछते हो? उसीमेंसे एक बेचून, अल्लाहमियाँ प्रगट होता भया। अर्थात् मुस्लिमोंके यहाँ, बीबी=स्त्रीरूप प्यारी वाणीने जो एक पद मुखसे पादी वा बोल-बोलके आवाज सुनाई, तो उसी कल्पनासे अल्लाह वा खुदा, बेचून, बेनमून, गोयमगोय है, ऐसे धोखेका कथन होता भया। वही बात बिना विचारे सब मुसलमानोंने मान लिया। इसीसे वे गाफिलिमें पड़े हैं ॥ १७४ ॥

१२. एक पादते दुनिया उपजी। कहै कुन्न फैकून्ना ॥ १७५ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! और नववाँ दफेके एक पादसे अर्थात् एक वाणी कल्पनासे मुस्लिमोंके यहाँ विचित्र प्रकारसे दुनियाँ उत्पन्न होती भयी। सो कैसे कि— अल्लाहमियाँने जब पहिली बार बिना मुखके ही गैबसे "कून्न-कून्न" ऐसा शब्द कहा, तो आदमी, जानवर, चिड़िएँ, ज़मीन, झाड़, पहाड़, नदियाँ, समुद्र, इत्यादि सारी दुनियाँ, एकदमसे भड़-भड़ायके उत्पन्न हुईं। जैसे कोई आदमी सोके जागा हो, वैसे ही अचम्भा हो गया। फिर

जब वा जिस वक्त खुदा अपने मुखसे "फैकून-फैकून" शब्द पुकार-पुकारके कहेगा, तब सारी दुनियाँका फना होके धड़-धड़ायके विनाश वा महाप्रलय (क्यामत) हो जायगी, फिर खुदा अकेला ही रहेगा। इत्यादि वाणी कल्पना मुसलमानोंने कहे हैं, सो झूठी गपोड़ा ही हाँके हैं ॥ १७५ ॥

१३. एक पादते हवा फातमा । भये किताब कुराना ॥ १७६ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! दशवाँ दफेका एक पादसे वा वाणीसे, हवा = हव्वा जिसे मामा हव्वा भी कहते हैं । जो हजरत बाबा आदमकी स्त्री थी। उसे मूल प्रकृति वा प्रथम स्त्री भी माने हैं, जो मनुष्य जातिकी माता मानी जाती है, और, फातमा = फ़ातिमा बीबी मुहम्मद साहबकी पुत्री थी, जो हजरत अलीकी पत्नी और हसन तथा हुसैनकी माता थी । हव्वा तथा फातमा बीबीको तुरकोंने श्रेष्ठ माना है । यह बात प्रसिद्ध है । अर्थात् एक पादरूप वाणीसे ही उस बीबी-वाणीके नाम-रूपकी उत्पत्ति भयी है। उसी पाद वा पदसे अर्बी लिपिमें कुरानके चार, किताब = तौरेत, ईंजील, जम्बूर और फुर्कान, बनके उत्पन्न होते भये । अर्थात् ऐसे चार नामके चार किताब बनाके उसका नाम कुरान-शरीफ रखे हैं। मुसलमानरूप नरजीवने ही शब्द जोड़-जोड़के उक्त चार किताब बनाये, और पीछे फिर कुरानको खुदाने बनाया है, कहके झूठ-मूठकी महिमा बढ़ाके अपने भूले और दूसरोंको भी भुला रहे हैं, बिना विचार ॥ १७६ ॥

१४. एक पादते रोजा क्यामत । ये काजी रहिमाना ॥ १७७ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! और ग्यारहवाँ दफेका एक पादरूप वाणी-कल्पनासे मुसलमानोंके यहाँ तीस दिनोंका रोजा वा व्रतका दिन माना गया है, और, क्यामत = कयामत वा महाप्रलयके आखिरी दिनको क्यामत कहते हैं । कयामतके दिन खुदा सब रूहोंका नेकी-बदीका हिशाब लगाके इन्शाफ करेगा,

नेकीवालोंको बहिस्त और बदीवालोंको दोजखमें भेजेगा, इत्यादि बेहुदी कल्पना किये हैं, रहमान = खुदा ही कयामतके वक्त काजी बनके ये सबोंका हिसाब देखके इन्शाफ करता है, फिर उसे कोई मिटा नहीं सकता है। यह रहमानके बड़ाइकी बात मुसलमान काजी लोगोंने कहे हैं, और कह रहे हैं। मिथ्या धोखा दे-देके लोगोंको भटका रहे हैं ॥ १७७ ॥

१५. एक पादते तबक चौदहैं। एक पाद अल्लाह मुकामा ॥ १७८ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः—हे सन्तो! बारहवाँ दफेके एक पादसे अर्थात् एक वाणी पदकी कल्पनासे ऊपर आशमानमें, तबक = राजसिंहासन रखा हुआ तख्त वा लोक, चौदहैं = चौदह लोकके समान, चौदह तबक शून्य आकाशमें मुस्लिमोंने माने हैं। और वहाँपर सुख सामग्रीकी बहुत-बहुत गप्प हाँके हैं। सब यहाँके भोग वहाँ वर्णन किये हैं। और तेरहवाँ एक पादमें तो खास अल्लाहमियाँके मुकाम मोक्षका धाम ही माने हैं। यों तो लामुकाम, गोयमगोय खुदाको कहा है। खलकमें खालिक भरा है। परन्तु, सो अपने एक पादकी विभूतिमें मुकाम करता है। पाँचवीं मुक्ति हाहूत-हूका मैदानके मुकाममें ही अल्लाहमियाँ रहते हैं। इत्यादि प्रकारसे मिथ्या वाणीकी पसारा कर रखे हैं ॥ १७८ ॥

१६. एक पादते निमाज औ रोजा। दोजख बिहिस्त मुकामा ॥ १७९ ॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और आखिरी चौदहवाँ दफेके एक पादसे अर्थात् एक कल्पित वाणीकी पद वा भागसे मुसलमानोंने पाँच बार पढ़नेका निमाज, और तीस दिनके रोजे-व्रत करनेका दिन बनाये हैं। यानी रोजे रखना, निमाज पढ़ना, इत्यादि नियम लगा रखे हैं। और हिन्दुओंके समान ही दूसरे रूपमें मुसलमानोंने भी, दोजख = नर्क स्थान तथा, बिहिस्त = स्वर्ग सुखका धाम और, मुकाम = ठहरावकी जगह वा नासूत, मलकूत,

जबरूत, लाहूत और हाहूत ऐसे नामसे पाँच प्रकारकी मुक्तिको ही पाँच मुकाम माने हैं। यह सब एक पादसे निकली हुई मुसलमानोंकी वाणीका कल्पना मात्र है। पारख बिना यथार्थ भेद न जानके वे सब लोग उसीमें भूले-भटके और भूले-भुला रहे हैं ॥ १७९ ॥

१७. सुर नर मुनि यति पीर औलिया। सुनत पाद बौराना ॥१८०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं— हे सन्तो! घनघोर बड़ा भयङ्कर पादकी गर्जनाको सुन करके अर्थात् भयानक पद वा वाणीको बार-बार, सुन-सुनके सब भयभीत, भ्रमिक हो गये, तहाँ, सुर = देवता सत्त्वगुणी, नर = पुरुष, रजोगुणी, मुनि = मननशील तपस्वी, तमोगुणी, तथा, यति = त्यागी-वैरागी, संन्यासी, आदि साधु, पीर = मुस्लिमोंके गुरु लोग, औलिया = तुरुकोंमेंके सिद्ध फकीर लोग, और पैगम्बर, इत्यादि बहुतेरे लोग तो उस जबरदस्त बड़ा भारी पाद, बार-बारकी तोपके गोले सरीखी वाणीकी तीव्र आवाज सुनते-सुनते ही बौराय गये। उनके होश-हवाश उड़ गया, घबरायके पागल बन गये। उसीकी नकल करके वे सब भी मुखसे वैसे ही शब्द करने लगे। उछलने, कूदने, नाचने, गाने, रोने, कराहने लगे। ऐसे पागलपनामें कर्म-कुकर्म करके भवसागरमें कूद-कूदके मर गये, और मर ही रहे हैं। यानी वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, आदिकी वाणी सुन-सुनके सबलोग भ्रमिक जड़ाध्यासी हुए वा हो रहे हैं ॥ १८० ॥

१८. बीबी पादत ब्रह्मा आदम। आलम सब अकुलाना ॥१८१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और उतनी ही बात नहीं, बीबी = वाणीरूपी उस स्त्रीकी विचित्र चालसे धड़ा-धड़ लगातार निर्लज्ज, निःसङ्कोच होके पादते जानेसे अर्थात् वाणी कल्पना बोलते-बोलते, बढ़ते-बढ़ाते ले जानेसे इधर हिन्दुओंके पूर्वाचार्य गुरु ब्रह्मा, और मुस्लिमोंके पूर्व पुरुष पीर आदम-बाबाके

सहित उन्होंके अनुयायी शिष्य मण्डली तथा, आलम=सारी दुनियाँके लोग सब कोई भ्रमिक होके, अकुलाना=आकुल-व्याकुल हो गये। घबरा करके आव-बाव-बकवाद करके नष्ट-भ्रष्ट हो गये। इस प्रकारसे ब्रह्मा और आदमसे ले करके सब आलम बीबीके पादनेसे अकुलाय गये। नाना चाहना, वासनारूपी दुर्गन्ध उनके नाकरूप हृदयमें भर गयी। अतः जड़ाध्यासी होके दौड़े, तो नरक कुण्ड गर्भवास चौरासी योनियोंमें गिर पड़े। इसी तरह आजतक सब अध्यासी जीव दुःख भोग रहे हैं, बिना पारख ॥ १८१ ॥

१६. बीबी अद्‌बुद् पादन लागी । मीयाँ सूँघत भये राजी ॥१८२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो! जब वह विचित्र बीबी अद्‌बुदरूपसे भ्वाँक्! भ्वाँक्!! भ्वाँ!!! करके पादने लगी, तो उधर मियाँ नाक लगायके उसे सूँघते हुए राजी-खुशी होते भये। यहाँ विषयासक्ति मोह, ममता ही राजी रखनेमें प्रधान कारण है। विषयी लोग स्त्रीमें बहुत सारे दुर्गुण-दोष रहनेपर भी उसे राजी रखके अपने प्रसन्न रहते हैं, और नरक कुण्डमें ही डूबे पड़े रहते हैं। बिना विचार ॥ इसी तरहसे सिद्धान्तमें, बीवी=स्त्रीरूपी गुरुवा माया और वाणी यह संसारमें, अद्‌बुद=आश्चर्यमय, बुद्धि-विचारसे हीन, झूठी बातें, पादन लागी=बोलने, कहने, सुनने लगे, कि— निराकार-निर्गुण ब्रह्म, ईश्वर वा खुदा एक कोई मालिक है। उसीकी इच्छा वा मर्जीसे यह संसार बना है, और वही सारे संसारमें भरा पड़ा है। उसीकी दया होवे, तभी सद्गति मुक्ति हो सकती है। इसीसे उसीकी प्रार्थनामें लगे रहो, इत्यादि वाणीका उपदेश नाना तरहसे करने लगे। असम्भव, आश्चर्यकी बात कहने लगे। तहाँपर, मीयाँ=श्रेष्ठ चैतन्य नरजीव अपने स्वरूपको भूलके, भ्रमिक होके, सूँघत=वही दुर्गन्धरूप कुवासनाको बढ़ानेवाली कल्पित वाणी सुन-सुनके उसे दृढ़ करके बड़े राजी-खुशी भये। झूठी कथा सुनके खूब प्रसन्न हो रहे हैं। भूलमें ही पड़े हैं ॥ १८२ ॥

२०. बीबी पादत पण्डित उबरे। उबरे मोलना काजी ॥१८३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और, बीबी=दो-दो प्रकारकी संशय ग्रसित खानी-वाणीकी, पादत=शब्द बोल-बोलके भ्रमिक पण्डित लोग धोखेकी आशा-भरोशा लगा करके भवसागरसे, उबरे=पार उतर-जाना चाहते हैं, किन्तु, मझधारमें जाके डूबके मरते हैं, गर्भवासको प्राप्त होते हैं। साथ ही उनके चेले भी डूबके मर जाते हैं, कोई पार होने नहीं पाते हैं। तैसे ही उधर कुरानके वाणीके भरोसे, या खुदा! या अल्लाह! रटते हुए मौलबी या मुल्ला लोग और काजी लोग भी संसारके दुःखोंसे उबरके पार होना चाहते हैं। परन्तु, अधबीचमें जाके जड़ाध्यासी होके डूब मरते हैं। चौरासी गर्भवासमें ही सब गये, और जा रहे हैं, विना समझ ॥ १८३ ॥

२१. मुख दै पादै कान दै सूँघै। देखि देखि आवै हाँसी ॥१८४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! संसारमें साधारण लोग सब तो गुदासे पादके नाकसे सूँघते हैं। परन्तु, गुरुवा लोग-रूपी मायाके यहाँ उससे विपरीत बात होती है। सो कैसे कि— गुरुवा लोग मुखसे ही मुख्यरूपसे उपदेशकी वाणी जोर दे-दे करके, पादै=बोलते हैं, वा नाना शब्द सुनाते हैं। और उसी वाणीकी पदोंको सब श्रोता लोग कान दे-देके लक्ष लगा करके, सूँघै=सुनते हैं, ग्रहण करते हैं। इनके विचित्र कथनी, गहनी, चाल देख-देख करके मुझे तो एक प्रकारसे हाँसी आती है, हे भाई! क्योंकि, जब गुरुवा लोग, चेला बनाते हैं, तब दोनोंके शिर एक शाल-दोशाला आदि कपड़ेसे ढाँकके तब कहीं कानमें मुँख लगाके मन्त्र फुस-फुसाते हैं, छोकड़ोंके खेल सरीखी करते हैं। यही झूठी तमाशा देखके मुझे हँसी आती है। चेले लोग भी निपट मूर्ख ही बने हैं, कुछ भी भेद समझते ही नहीं हैं ॥ १८४ ॥

२२. दास कबीरके पाद बटोरत। जन्म घनेरे जासी ॥ १८५ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब कहते हैंः— हे सन्तो!

दास कबीर = ईश्वर, खुदाके दास, गुलाम बने हुए भ्रमिक, भावुक, भक्त लोग और कर्मी, धर्मी, योगी, ज्ञानी लोग जो हैं, सोई दास कबीर बने हैं। तहाँ काया वीर कबीर जीव भूलसे वाणी कल्पना और विषयोंके दास उसके अधीन बने हैं। उन लोगोंको पारख विवेक न होनेसे पाद वा निकम्बी वाणी और विषय इसीको बटोरते-बटोरते, संग्रह करते-करते जड़ाध्यास कुवासनाको जमा करते-करतेमें ही नर जन्मको व्यर्थ बिताय दिये हैं। देह छूटनेपर चौरासी योनियोंको प्राप्त भये। ऐसे, घनेरे = बहुतेरे नर-जन्म व्यर्थ बीत गया, और बीतता ही जा रहा है, तो भी चेत नहीं होता है। अर्थात् दास कबीर वा बेपारखी मनुष्योंके हृदयमें गुरुबुद्धि न होनेसे सत्यासत्यका विवेक तो वे कुछ करते ही नहीं हैं। पादरूप निकृष्ट वाणी और विषय सुख बटोरते-बटोरतेमें ही अमूल्य नर-जन्मको बिताय देते हैं। और जब-जब नर-जन्ममें आते हैं, तब-तब पाद बटोरतेमें ही आयु पूरा कर देते हैं। फिर मर-मरके चौरासी योनियोंमें ही जाते रहते हैं। ऐसे अनेकों जन्म व्यर्थमें बर्बाद हो जाता है, तो भी पारखी सद्गुरुकी शरण-सत्सङ्गमें आके वे चेतके अपना सुधार नहीं करते हैं। इसी तरह सारे मतवादी जड़ाध्यासी पतित हो-होकर भवबन्धनोंमें ही घूम-फिरके पड़े, और अभी पड़ रहे हैं। अतः मुमुक्षु नरजीवोंने उनके सरीखी पाद बटोरना छोड़के पारखी साधु गुरुके सत्सङ्ग-विचारमें लगना चाहिये। मनुष्य-जन्मकी अमूल्य समयको चूकना नहीं चाहिये, सावधान रहना चाहिये॥१८५॥

॥ ❀ ॥ एकादश—शब्द ॥ ११ ॥ ❀ ॥

१. हंसा! परख शब्द टकसार! ॥ १८६ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब इस *अन्तिम शब्दमें नरजीवोंको चेतावनी देते हुए कहते हैं कि:— हे हंसा! हे चैतन्य नरजीवो! अब तो भी तुम अचेतपनाको छोड़ करके सचेत हो जाओ! पारखी

साधु गुरुकी टकसारी सत्सङ्गमें ठहर करके, टकसार = सद्ग्रन्थ मूल बीजकको गुरुमुखसे अर्थ सहित श्रवण, मनन करके, वा पढ़-गुनके फिर सार-असार शब्द जालोंको यथार्थ रीतिसे परखो। जीवमुख, मायामुख और ब्रह्ममुख वाणीको तथा विषयी लोगोंके शब्दको समेत् गुरुमुख सारशब्दसे निर्णय करके पारख करो। काल, सन्धि, झाँईका धोखा-भ्रमको छोड़के निजस्वरूपमें स्थिति कायम करो। हे भाई! तुम अपने नीर-क्षीर अलग-अलग करनेकी हंस गुणको क्यों छोड़ बैठे हो, अब तो भी सम्हलो, उस सद्गुणको ग्रहण करो, जड़, चैतन्यका निर्णय जान करके जड़ाध्यासका परित्याग करो। इस तरहसे हे हंसा! हे जीव! टकसारमें रहिके सब शब्दोंका पारख करके जानो॥ १८६॥

२. बिन परखे कोइ पार न पावै। भूला यह संसार॥ टेक॥ १८७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— और हे सन्तो! पारखी सद्गुरुकी शरण-सत्सङ्गमें रहिके गुरुमुख वाणीकी विचार करके खानी-वाणी जालोंको ठीक रीतिसे परखके त्याग किये बिना, तो कोई किसीने भी भवसागरसे पार होने नहीं पाये हैं, आवागमनसे छूटे नहीं। कोई पशुवत् यह संसारके पञ्च विषय भोग विलासोंमें ही भूले हैं। कोई कर्ता, धर्ता, ब्रह्म, परमात्मा वा ईश्वर, खुदा, मालिक, सुख-दुःखका दाता अपार है, सर्वत्र व्यापक है, ऐसा मानके यही संशयमें ही सब लोग संसारमें भूले पड़े हैं, और भूल ही रहे हैं। अनुमान, कल्पना, विषयासक्ति आदि विकारमें यह सारा संसारके जीव भूले-भुलाये हुए दुःख भोगके जहाँ-तहाँ भटक रहे हैं, सो उसे ठीक तरहसे परखके त्याग किये बिना कोई भी बन्धन आवागमनसे पार वा छुटकार मुक्ति पाये नहीं हैं, और पार पा नहीं सकते हैं। अर्थात् बीजक ज्ञानको जानकर अन्य सबोंको परखे बिना कोई बन्धनोंसे पार होने नहीं पाये हैं। यह संसार सारा उसी तरह खानी, और वाणीमें भूला पड़ा है। कोई

बिरले ही उस भूलको हटाकर मुक्त होते हैं। अतः भूल-भ्रमको हटानेके लिये सदा सत्सङ्ग-विचार करते रहना चाहिये ॥ १८७ ॥

३. सब सन्तन मिलि पारख कीन्हा । पारख काहु नहिं पाई ॥१८८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! ब्रह्मादि गुरुवा लोग, सनकादि, सप्तऋषि, नारद, वशिष्ठ, व्यास, वाल्मीकि इत्यादि प्राचीन और अर्वाचीन ऋषि, महर्षि, मुनि, पण्डित, कवि, कोविद, शास्त्री, पौराणिक, वैरागी, भक्त, इत्यादि षट्दर्शनोंके सब महन्त-सन्तोंने अनुमान, कल्पनामें मिलके अपने-अपने बुद्धिके अनुसार पारख वा परीक्षा किये, तो उन्होंने द्वैत, अद्वैत, विसिष्ठाद्वैत आदि नाना सिद्धान्त कल्पना करके ठहराये । ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, आदि कोई एकको जगत्का कर्ता सुख-दुःखोंका दाता, और मुक्तिका दाता भी उसीको मान लिये । और उसीकी आशा लगाने लगे । बड़ा भ्रम धोखामें जा पड़े । कहनेको तो सबोंने पारख किये; परन्तु, उन्होंके पारख खरा नहीं भयी, किन्तु, खोटा हुई । निजस्वरूप चैतन्य जीवकी नित्य, सत्यताकी अपरोक्ष पारखबोध निर्णय विचार उन किसीने भी जान नहीं पाये । सच्चा गुरुकी टकसार पारख कोईने भी नहीं पाये । इसीसे भ्रमिक होके दूसरोंको भी भ्रमाते-भुलाते रहे, अपने तो भूले ही थे, व्यर्थ ही नरजन्म गमाये, बिना विवेक ॥१८८॥

४. आये थे बैपार करनको । घरहुकी जमा गमाई ॥१८९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! जैसे कोई व्यापार करनेको परदेशमें आवे, और भूलमें पड़के घरकी जमा भी खोवे, फिर पीछे पछतायके खेते, शिर पटकते रहि जावे । तैसे ही विदेश-रूप संसारमें घर-बारको छोड़-छोड़के परमार्थिक व्यापारी साधु भेषधारी बन-बनके आये, तो इसलियें थे, कि— त्याग-वैराग्यका, व्यापार = लेन-देन करके अपने धारण करना, और दूसरोंको उपदेश देके धारण कराना, जिससे हित, कल्याण, मुक्ति लाभका मुनाफा

हो, भव-वन्धन छूट जाय, इसीकी आशासे वैराग्यका व्यापार करनेको षट्दर्शनोंकी भेषमें आये थे। परन्तु, वह लाभ तो कुछ भी हुई नहीं। उल्टा घररूप हंसपदको, जमा = साक्षी दशा, विवेक, आदि सद्गुण जो कुछ भी पहिलेसे थोड़ा-बहुत जमा था, सो सब भी भ्रम चक्रमें पड़के एकदम गमा दिये, खो दिये। अर्थात् कहीं ब्रह्म बने, कहीं आत्मा बने, कहीं ईश्वरके अंश जीव दास बने, भक्त, योगी, ज्ञानी, विज्ञानी बने। तहाँ शून्य वृत्ति करके अचेत, गाफिल वा विभ्रम हो, हृदयरूपी घरकी साक्षी, समझ, ज्ञान-गुणरूपी स्वयंकी जमा, पूँजी भी गमा दिये, वा खोके नष्ट-भ्रष्ट कर-करा दिये, तो उनका व्यापार ही चौपट हो गया, दिवाला निकल गया। जड़ाध्यासी गरीब बनके महा भवबन्धनमें पड़े। फिर दुःखी हो-होके चौरासी योनियोंके चक्रमें जाकर त्रयताप भोगने लगे, इस तरहसे सब लोग कालके गालमें जाके समाये, और समा रहे हैं, बिना पारख ॥ १८९ ॥

५. सब सन्तन मिलि बानी छानी। राम भाग दुइ कीन्हा ॥१९०॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे जिज्ञासु सन्तो! प्राचीन कालमें एक समयमें बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, महर्षि, देवर्षि, राजर्षि, योगी, ज्ञानी, भक्त, सुर, नर, ये सब लोग एकत्रित हुए। तहाँ सार वस्तुके खोजीके वास्ते उन्होंमें सत्सङ्ग-गोष्ठी होती भयी। महादेव भी उस सभामें आके सभापति भये। तब उन सब सन्तोंने मिलके वेद, शास्त्रादि प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सम्पूर्ण वाणीको निर्णय करके छान-बीन किये, तो उसमेंसे सबोंने सम्मति करके एक श्लोक चुन लिये। तहाँ श्लोकमें बत्तीस अक्षर होता है। सो श्लोक महादेवके सन्मुख ले गये। तब महादेवने उसमेंसे तीन भाग किये। दश अक्षर स्वर्गवासी सतोगुणी देवताओंको दे दिया। फिर दश अक्षर मृत्युलोकवासी रजोगुणी मनुष्योंको दे दिया और तीसरा भाग भी दश अक्षर पाताल निवासी तमोगुणी दानवोंको दे दिया। फिर बाकी रहा दो अक्षर 'रा-म' वा "राम" उसे ही सार जानके अपने हृदयमें महादेवने

धारण कर लिया, और पार्वतीके पूछने पर महेशने कहा हैः—

"राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे । सहस्रनाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने ॥"

तबसे सबोंने 'राम' को ही सार मन्त्र माना, ऐसा कहा है। और रामायणमें भी लिखा है किः—

"राम मन्त्र सबहीं तत सारा । और आहि जगके व्यौहारा ॥"इत्यादि॥

इस तरह सब सन्तोंने मिलके वाणी छान लिये, तो 'राम' शब्दको सार ठहराये। फिर उस राम शब्दमें भी दो भाग किये हैं। सो उसका खुलासा नीचे कहते हैं ॥ १९० ॥

६. रा अक्षर पारख करि लीन्हा । म माया तजि दीन्हा ॥१९१॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! उसमें 'रा' और 'म' ये दो अक्षर अलग-अलग दो भाग हुआ। तहाँ "रा" इस अक्षरको उन्होंने पारख करके अक्षर, अविनाशी, ब्रह्म, परमात्मा, आत्माराम, रमैयाराम, ऐसा कल्पना करके मान लिये हैं। यही उनके पहिचान, परीक्षा वा पारख हुई। और 'म' अक्षरको माया, विकारी, प्रकृति, बन्धन, मकार, मानके छोड़ दिये। रा = पुरुष, ब्रह्म, आत्मा, चेतनको कहा है। म = प्रकृति, माया, अनात्मा, जड़को माना है। दोनोंका संयुक्त सम्बन्ध ही राम, विश्व, विराट वा संसार; देहादि समूहका विस्तार प्रगट होता है। अतः तहाँ जड़-चैतन्यका न्यारा-न्यारा निर्णय नहीं हुआ। चराचरमें व्यापक आत्मारामको मानके वे सब जड़ाध्यासी बद्ध भये थे, और अभी वैसे ही बद्ध हो रहे हैं। उनकी खोटी पारखसे कुछ कल्याण उन्होंकी नहीं हुई। विना गुरु पारख सत्सङ्ग निर्णयके ऐसे ही भ्रम चक्रमें सब पड़े हैं ॥ १९१ ॥

७. राम रतन प्रहलाद पारखी । जिन पारख दृढ़ कीन्हा ॥१९२॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैं:— हे सन्तो ! पहले दैत्य कुलोत्पन्न प्रह्लाद नामका एक भक्त हो गया है। सो भक्त प्रह्लाद राम रत्नको परखके सार ठहरानेवाला ऐसा पारखी वा जौहरी हुआ, वह भक्ति-

मार्गके व्यापारीवत् हुआ। जिसने राम नामको ही सत्य सार श्रेष्ठ समझके दृढ़ कर लिया। उसके पारखमें सर्वत्र व्यापक आत्माराम कर्ता पुरुष मालिक रक्षक हैं, ऐसा मानन्दीकी भास दृढ़ हुई थी। मानन्दी कर्ता जीव उस मानन्दीकी हुई भाससे सदैव न्यारा ही रहता है। ऐसा शुद्ध गुरु पारखका बोध उसे हुआ नहीं। इसीसे सगुण-निर्गुण राम कर्ता-परमात्मा और ही कोई मान-मानके भ्रम, भूलमें ही पड़ा रहा। बिना विवेक ॥ १९२ ॥

८. इन्द्रासन सुखासन लीन्हा । सार वस्तु नहिं चीन्हा ॥१९३॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और जब विष्णुने नृसिंहरूपमें आके हिरण्यकशिपुको मारकर प्रह्लाद भक्तको वरदान दिया, तो इन्द्रासनके रूपमें सुखका राज्यासन वरदानमें ले लिया, और फिर तो विषयादि भोगोंमें ही मस्त होके पड़ा रहा। इसीसे, सार वस्तु = सत्य चैतन्य जीव निज स्वरूपको प्रह्लादने नहीं चीन्हा। यदि सार वस्तुको पहिचाना होता, तो वह राज्य और इन्द्रासन आदिके विषय भोगोंको क्यों ग्रहण करता? जिसने देहको नाशवान् और विषयोंको विकारी बन्धनका कारण जान लिया है, सो फिर उन्हें स्वीकार करके कदापि आसक्ति बढ़ाता नहीं है, और प्रह्लाद तो विषयासक्त होके जड़ अनुमान, कल्पनाका भक्ति-भाव करता रहा। इसीसे "मैं हंसजीव सत्य सार अखण्ड वस्तु हूँ" यह पारख उसने नहीं चीन्हा। अतः भ्रम बन्धनोंमें ही बद्ध होके आवागमन चौरासी योनियोंमें ही जायके पड़ा, बिना पारख ॥ १९३ ॥

९. शुकदेव मुनि परमपद पायो । आतम लियो न माया ॥१९४॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! व्यासपुत्र शुकदेव मुनिको ब्रह्मज्ञानियोंमें सर्वश्रेष्ठ विशेष करके मानते हैं, और मननशील होनेसे वे मुनि रहे, दिगम्बर अवधूत वृत्तिसे विचरते रहे, उन्हें गर्भज्ञानी भी कहते हैं। मायिक सुख-सम्पत्ति, विषय-भोगादि

संग्रहको उन्होंने नहीं लिया, आत्मज्ञानको ही दृढ़ कर लिया। मैं आत्मा परिपूर्ण व्यापक हूँ! ऐसा मान लिया। सब प्रकारसे आत्माको ग्रहण कर लिया, तथा मायाको नहीं लिया। जिससे शुकदेव मुनिने परमपद वा मुक्ति पा गये, ऐसा माने हैं। परन्तु, मैं आत्मा सर्वत्र चराचरमें परिपूर्ण भरा हूँ! व्यापक हूँ! ऐसा माननेसे मायाका त्याग कहाँपर हुआ? बाहरसे मोटी मायाको छोड़के भीतरसे झीनी मायाको तो उन्होंने शिरपर ही चढ़ा रखा था। वाणी कल्पनामें लवलीन थे, इसीसे जड़ाध्यासी होनेसे निर्णयसे उनकी मुक्ति नहीं हुई। जगत्‌रूप ही ब्रह्म हो रहे थे, बिना विवेक ॥ १९४ ॥

१०. परमातम अजपा जप चेत्यो । न्यारा भेद न पाया ॥१९५॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! और मुनि शुकदेवने मानन्दी करके एक आत्माके ऊपर, दूसरा परमात्माका भ्रम-कल्पना भी लगा रखा था। फिर अजपा कहिये, विना जपे आप-ही-आप होनेवाला जप श्वासोच्छ्वासमें 'सोहं-सोहं' ध्वनि मानके उसमें लक्ष लगाकर वृत्तिको चेताकर चेतते भये। फिर धीरे-धीरे वृत्तिको शून्य करके निर्विकल्प अचेत दशाको प्राप्त होते भये। मैं-ब्रह्म और जगत् एक है, दूसरा कोई कुछ भी नहीं है, ऐसा धोखाको दृढ़ करते भये। मैं सर्वका द्रष्टा-साक्षी चैतन्य जीव सर्व दृश्य भाससे न्यारा हूँ! जड़ और चैतन्य विजातीय नित्य पदार्थ दोनों न्यारा-न्यारा ही है। यह कभी एक नहीं था, एक नहीं भया, और एक होनेवाला भी नहीं है। गुरु पारखके बोध हुए विना यह न्यारा-न्याराके भेद वा मर्मको उन्होंने जान नहीं पाये। इसीसे ब्रह्मरूपमें सबोंने अपना स्वरूप मानके भ्रमिक भये, और जड़ाध्यासी होनेसे आवागमन चौरासी योनियोंमें पड़ गये, बिना विवेक ॥ १९५ ॥

११. अब सुनि लेब जौहरी मोटे । खरा खोट नहिं बूझा ॥१९६॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो! हे जिज्ञासुओ!

अभीतक तो ऊपरमें मैंने छोटे-छोटे भक्ति, ज्ञानके व्यापारियोंके बात बताया हूँ। अब जगत्प्रसिद्ध, जगत्गुरु, भगवान्, योगेश्वर कहलानेवाले मोटे-मोटे, जौहरी = भक्ति, योग, ज्ञानके निर्माता बड़े-बड़े गुरुवा लोगोंकी समझकी बात भी मैं आप लोगोंको बतला देता हूँ। सो भी ध्यान लगाके सुन लीजिये !—

दोहाः— "हीरा लाल पुष्पराज पन्ना, नील सरोरुह होय ॥
पञ्च रतनके पारखी, जगमें बिरला कोय ॥"

— हीरा = सत्त्वगुण, लाल = रजोगुण, पन्ना = तमोगुण, पुष्पराज = शुद्धसत्त्वगुण और नील = निर्गुण है। इसी पञ्च रत्नके समान ब्रह्म-परमात्मा है, ऐसा कहिके कर्मी, उपासक, योगी, ज्ञानी, विज्ञानी इन जौहरी लोगोंने उसे सत्य माने हैं, और ब्रह्मको खरा वा सत्य तथा जगत्को खोटा वा असत्य कहे हैं। परन्तु, सो दोनों मानन्दी नरजीवोंकी मिथ्या कल्पनामात्र है। पारखबोध नहीं होनेसे सो इसका यथार्थ भेद उन गुरुवा लोगोंने नहीं बूझा वा समझा नहीं। कहा हैः— साखीः—

नग पषाण जग सकल है। पारख बिरला कोय ॥
नगते उत्तम पारखी। जगमें बिरला होय ॥बी० सा० २९०॥

इसीसे भास, अध्यासमें पड़के गाफिल भये, और हो रहे हैं। उल्टे समझमें पड़े हुए हैं ॥ १९६ ॥

१२. गोरख शम्भु सम औरको योगी । तिनहूँको नहिं सूझा ॥१९७॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! प्रथम योगमार्गको प्रगट करनेवाले, शम्भु = महादेव भये हैं। सर्वाङ्ग योग साधनाएँ उन्होंने किया, और कराया। तत्पश्चात् मत्स्येन्द्रनाथके शिष्य गोरखनाथ प्रसिद्ध महायोगी हो गये। अष्टाङ्ग योगोंको उन्होंने भी भलीभाँति किये। बीजकमें कहा हैः—

"गोरख रसिया योगके, मुये न जारी देह। मास गली माटी मिली, कोरो माजी देह ॥"

"गोरख अटके काल पुर, कौन कहावै साहु ॥" बीजक साखी ४३।४२॥

इस तरह गोरखनाथ, और शम्भुके समान प्रख्यात योग मार्गमें और कौन है? वा कौन भया है? कोई नहीं भया है। परन्तु समाधि लगाके अन्धाधून्द, जड़-मूढ़के नाईं वे महा गाफिलीमें पड़े रहे। उन लोगोंको भी यह धोखा नहीं सूझा। अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ये तीनों ही प्रथममें मोटे गुरुवा भये, पारख विवेक बिना सत्यासत्य उन्हें भी नहीं सूझा; जगत्‌रूपमें ही व्यापक आत्मा वा ब्रह्म एक अधिष्ठान मानके वे सब भ्रममें भूले रहे। फिर उनके पीछे उसी प्रकार सब मतवादी लोग वैसे ही भूलते चले आ रहे हैं, बिना गुरुबोध ॥ १९७ ॥

१३. है कोई सन्त जौहरी जगमें । जो यह शब्दहि बूझै ॥१९८॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु मनुष्यो ! रत्न परीक्षक जौहरीके समान सकल सिद्धान्तोंके परीक्षक सत्यन्यायी सत्यवक्ता, सत्यनिर्णयी, बन्दीछोर पारखी सन्त महात्मा कायावीर श्रीकबीरसाहेब सद्गुरु प्रथम पारख प्रकाशी जगत्‌में सर्व ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ सर्वोपरि हो गये हैं, और आपके अनुयायी पारख बोधवान् कोई-कोई विरले सन्त सत्यन्यायी अभी भी जगत्‌में कहीं-कहीं मौजूद हैं। आप सत्यनिर्णयका उपदेश देके भ्रम-भूलको परखाके छुड़ाते हैं। जो यह गुरुमुख निर्णय सारशब्दको ठीक तरहसे समझते-बूझते हैं, और दूसरोंको भी समझाते-बुझाते हैं, वे ही पारखी सन्त कल्याणकारी बन्दीछोर कहलाते हैं। जो यह निर्णय शब्दको बूझते नहीं हैं, अनुमान-कल्पनामें पड़े हैं, वे बेपारखी भ्रमिक होते हैं। यह शब्द जालका विस्तार बहुत बड़ा है। काल, सन्धि, झाँईं, तत्, त्वं, अंसि और विषय फन्दा यह चारों तरफ बहुत प्रकारसे फैला हुआ है। सो सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजकमें गुरुमुख वाणीसे भली विधिसे परखाये हैं। सो उसी मुताबिक यहाँ भी संक्षेपमें निर्णय दरशा करके ग्यारह शब्दोंमें परखाया गया है। जो यह शब्दके रहस्यको यथार्थ बूझनेवाले पारखी सन्त हैं,

उनके ही सत्सङ्ग-विचार करके सकल भेदको समझना-बूझना चाहिये, पारख बोधको प्राप्त करना चाहिये ! ॥ १९८ ॥

१४. तीनि लोक औ चारि लोक हैं । सकल ठौर तेहि सूझै ॥१९९॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे सन्तो ! संसारमें उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ, और रजोगुणी, सत्त्वगुणी, तमोगुणी । योगी, ज्ञानी, भक्त, इत्यादि ऐसे तीन प्रकारके मनुष्य लोग होते हैं । और उनमें पामर, विषयी, जिज्ञासु, तथा मुमुक्षु. ऐसे चार प्रकारके लोग भी होते हैं । आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, और ज्ञानी, ऐसे चार प्रकारके मनुष्य लोग भी होते हैं । बाल, कुमार, युवा, और वृद्ध, ऐसे देहके चार पन होते हैं । तथा कर्मी, उपासक, योगी, और ज्ञानी, ऐसे चार तरहके साधक लोग होते हैं । उन गुरुवा लोगोंने, तीनि लोक = ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक । स्वर्ग, मृत्यु, पाताल । अर्ध, ऊर्ध्व, मध्यमें उक्त तीन लोकोंको कल्पनासे माने हैं । और चारि लोक = सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, और सायुज्य, नामसे चार मुक्तिका लोक कहा है । अथवा तीन तथा चार दोनोंको मिलायके सब सात स्वर्ग ऊपरमें कल्पना किये हैं । अथवा चारं लोक सोई चार वेद बने हैं । और द्वैत, अद्वैत, विसिष्टाद्वैत, यह तीन सिद्धान्त उसमेंसे निकाले हैं । इत्यादि सकल ठौर वा समस्त सिद्धान्तोंकी स्थितिके पूर्णज्ञाता पारखी सन्त होते हैं । उनके सत्सङ्गमें जो मनुष्य लगे रहते हैं, तेहि = उन्हें भी वह सब, ठौर-ठिकाना, सूझै = दिखाई देता है या देखनेमें आ जाता है । अर्थात् पारखी सद्गुरुके सारशब्दको जो बूझेंगे, सोई सबोंके स्थिति वा पहुँचको यथार्थ देखेंगे, सारासारके मर्मको पहिचानके निज पारख पदमें स्थिर होवेंगे ॥ १९९ ॥

१५. कहहिं कबीर हम सबको देखा । सबै लोभको धाये ॥२००॥

टीकाः— ग्रन्थकर्ता कहते हैंः— हे जिज्ञासु सन्तो ! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहे हैं किः—

सं० नि० पद० ८५१ —

साखीः—४ "अलख लखौं अलखै लखौं, लखौं निरञ्जन तोहिं ॥
हौं कबीर सबको लखौं, मोंको लखै न कोहि ॥
४ हम तो लखा तिहुँ लोकमें, तूँ क्यों कहै अलेख ? ॥
सारशब्द जाना नहीं, धोखे पहिरा भेख ॥"
॥ बीजक, साखी ३५१ । ३५२ ॥

इसीका आशय लेके यहाँ भी कहा है कि— सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं:— हमने पारख करके सबोंके सिद्धान्त, ध्येय, रहनी, रहस्य, चाल-चलन, आदिको एक-एक छान-बीन करके देखा, परन्तु, सार, सत्यबोध उन षट्दर्शनोंमें कहीं भी दिखाई नहीं देता है। ब्रह्मज्ञानी द्रष्टा, साक्षी और व्यापक ब्रह्म बनके जगत्को अद्वैत रूपमें देखते हैं। कहते हैं— हम ब्रह्म हैं, हमने सबको देखा है, सो सब जगत् हमारा ही स्वरूप है। "सर्वंखल्विदं ब्रह्म" ऐसे धोखेमें भूले हैं, और वेदान्ती ब्रह्मानन्दकी लोभमें पड़े हैं। ज्ञानी-लोग जीव-ब्रह्म एकता करके सायुज्य मुक्तिकी लोभमें धाये हैं। योगी-लोग अष्ट-सिद्धि, नवनिद्धि प्राप्तिकी लोभ और सारूप्य मुक्ति पानेकी झूठी लोभमें पड़े हैं। भक्त-लोग मनोकामना पूर्ण करनेकी, इष्टदेवका साक्षात्कार करनेकी, तथा सामीप्य मुक्ति प्राप्ति आदिको लोभमें मारे-मारे दौड़ रहे हैं। और कर्मी-लोग सात स्वर्ग प्राप्तिकी, राज, काज, नाज, सुख, सम्पत्ति-प्राप्तिकी लोभमें भटक रहे हैं। विषयी लोग विषयानन्द प्राप्ति, स्त्री, पुत्र, धन, घर, जागीर आदि प्राप्ति करनेकी लोभमें जहाँ-तहाँ धाये और धावन कर ही रहे हैं। इस तरह सब जीवोंके तरफ हमने दृष्टि फिराके देखा, तो सब लोग पञ्चविषयोंके क्षणिक सुख और पाँच तरहके आनन्द प्राप्ति, एवं चार फल, पाँच मुक्ति आदि प्राप्ति करने-करानेके मिथ्या लोभ-लालचमें लगे, आशा लगाके अनेकों साधनोंमें दौड़े, और दौड़ रहे हैं। उसीमें आयु बिताकर चारखानी चौरासी योनियोंमें जाय-जायके पड़े और पड़ रहे हैं, बिना पारख ॥ २०० ॥

१६. जिन्ह गुरु मिलै तिन्ह परखायो । ठीक ठौर तिन्ह पाये ॥२०१॥

॥ ❀ ॥ इति श्रीपारखी सन्त महात्मा श्रीगुरुदयालसाहेब विरचित— मूल ग्यारह शब्द, समाप्तम् ॥ ❀ ॥

टीकाः— श्रीगुरुदयालसाहेब अन्तमें कहते हैंः— हे मुमुक्षु सन्तो ! तम-अज्ञान विनाशी, पारख प्रकाशी, बन्दीछोर, पारखी सद्गुरु, जिन्हें मिले, वा जिन-जिन भाग्यवान् पुरुषोंको पारखी सद्गुरु मिल गये हैं, अथवा जो नरजीव पारखी सद्गुरुकी चरणोंकी शरणमें जायके मिले वा मिलेंगे, उन सब जिज्ञासु शरणागत मनुष्योंको परम दयालु सद्गुरुदेवने सकल भेदको परखा दिये । काल-जालके मर्मको बतला दिये । मुक्ति स्थिति हंसपदको दिखला दिये । सब भ्रम, संशय, धोखाको मिटा दिये हैं । इसीसे उन्होंने, ठीक ठौर= जीवन्मुक्त पारख स्वरूपकी अपरोक्ष स्थितिको प्राप्त कर लिये हैं । अतः कृत-कृत्य हो गये हैं । अथवा जिन्हें अभी भी पारखी सद्गुरु मिलेंगे, जो सत्यन्यायी सद्गुरुके शरणको ग्रहण करेंगे, श्रद्धा-भक्तिके सहित जिज्ञासु होवेंगे, तिन्हें दयालु सद्गुरुदेव सब खानी-वाणीके यम जालोंके सकल भेदको लखाके परखा देवेंगे, सारा सन्देह मिटा देवेंगे । जीवके सत्यस्वरूपका पारखबोध करा देवेंगे । तभी ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, खुदा, देवी, देवता, भूत, प्रेतादि सब गुरुवा लोगोंकी मिथ्या वाणी कल्पना मात्र है, उन सबोंकी मानन्दी करनेवाले चैतन्य नरजीव ही सत्य है, जीवके ऊपर कोई कर्ता मालिक नहीं है । जगत्में जड़ और चैतन्य जीव स्वतः अनादि कालके नित्य, सत्य वस्तु हैं । जीव सब अपने-अपने कर्म अध्यासमें पड़के आवागमनोंमें डोल रहे हैं । मोटी-झीनी मायाकी अध्यास छूटने पर ही स्वयं स्वरूपकी स्थितिमें जीवन्मुक्त हो जाते हैं । ऐसा गुरुमुख निर्णय टकसाररूप-बीजककी यथार्थ सत्यज्ञान जान-बूझ, समझ करके फिर वे, ठीक ठौर= स्वयं पारख स्वरूपकी निर्बन्ध मुक्ति स्थितिको पा जावेंगे । अतः सोई स्थितिको प्राप्त करना ही

मुमुक्षुओंका मुख्य कर्तव्य है, उसे इसी नर-जन्ममें अवश्य बना लेना चाहिये। यही मनुष्योंका मुख्य कर्तव्यरूप स्वधर्म है, ऐसा जान लीजिये ! ॥ २०१ ॥

॥*॥ टीकाकारकृत अन्त सद्गुरु स्तुति—गुरुवन्दना इत्यादि वर्णन ॥*॥

सोरठाः— बन्दौं पद त्रयबार। श्रीकबीर पारख धनि ॥
चरण कमल शिरधार। रामस्वरूप गुण गाँउँ सदा ॥ १ ॥
धनि-धनि सद्गुरु देव ! बन्ध छुड़ायो जीवको ॥
परखायो सब भेव। काल जाल मन कल्पना ॥ २ ॥
पारख ज्ञान दिनेश। साहेबकवीर आदि गुरु ! ॥
मेटि दियो भव क्लेश। पारख स्थिति ठहरायके ॥ ३ ॥

साखीः— सर्वोपरि पारखि गुरु ! ज्ञानिनमें संम्राट् ॥
गुरुकबीर अनुयायि तस। मुक्ति लगायो बाट ॥ ४ ॥
पूरणसाहेब पारखी। पूरण पारख रूप ॥
रामस्वरूप भ्रम खोयके। टकसार ज्ञान स्वरूप ॥ ५ ॥
गुरुदयाल तस पारखी। साहेब सन्त सुजान ॥
गुरुवन फन्दा मेटिके। सारशब्द ठहरान ॥ ६ ॥
साखी साक्षी परिचय। कबीर परिचय ग्रन्थ ॥
दूसर ग्यारह शब्द कहि। प्रगट कीन्ह सत पन्थ ॥ ७ ॥
मूल हता टीका किया। भाषामें विस्तार ॥
रामस्वरूप यातें सकल। भेद खुलै निर्धार ॥ ८ ॥
ग्यारह शब्द समस्तकी। टीका भो सम्पूर्ण ॥
रामस्वरूप गुरुबोध लहि। धोखा भ्रम हो चूर्ण ॥ ९ ॥
रामरहस गुरु पारखी। पञ्चग्रन्थी कहि दीन्ह ॥
रामस्वरूप बन्दगी करि। पूरण टीका कीन्ह ॥ १० ॥

साखीः—पूरण हंस सन्तोष राम नरू। काशी बालक लाल! ॥
पारखि रामस्वरूप सकल। सो सब गुरु दयाल! ॥ ११ ॥

काशी साहेब पारखी। निर्णय ग्रन्थ विस्तार ॥
मुद्रित करि सबको दियो। अमृत ज्ञान भण्डार ॥ १२ ॥

बुरहानपुर यहि नग्रमें। नागझिरी शुभ स्थान ॥
कबीर निर्णय मन्दिर। सन्त विवेकि रहान ॥ १३ ॥

साहेब छोटे बालक। गुरु हमरे आचार्य ॥
चरण शरण हो भेष लै। आज्ञा गुरु शिर धार्य ॥ १४ ॥

श्रीलालसाहेब पारखी। गुरुते अध्ययन कीन्ह ॥
पञ्चग्रन्थी बीजक सकल। गुरुमुख भेदको चीन्ह ॥ १५ ॥

अध्ययन अध्यापन। गुरु सन्मुखते चालू ॥
रामस्वरूप श्रद्धा सहित। गुरु आज्ञाको पालू ॥ १६ ॥

नश्वर काया जगतमें। छूटि गयो गुरु देह ॥
एक दिना हमरेहु तस। छुटि जैहैं तन येह ॥ १७ ॥

करि विचार यहि ओर हम। टीका यहि लिखि दीन्ह ॥
सकल भाव याते खुलैं। सारासारको चीन्ह ॥ १८ ॥

टीकाके आधारते। पढ़ि सुनि गुनि सब सन्त ॥
मर्म यथारथ बोध लै। होवेंगे निर्भ्रान्त ॥ १९ ॥

प्रवीण सन्त जो होय इक। गुरु आसनमें बैठ ॥
धरि टीका सन्मुख पढ़ै। श्रोताके हिय पैठ ॥ २० ॥

नित प्रति सन्ता लेइके। पढ़ना सन्तन चाहि ॥
याद करै सब भावको। पाठ सुनावै ताहि ॥ २१ ॥

समझ शक्ति निज देखिके। लीजे उतना पाठ ॥
धीरज धरि पढ़िये सुजन। हिय सद्गुण धरु आठ ॥ २२ ॥

साखीः—मत मतान्तर बोध हित। पठन पाठन होन॥
सत्सङ्गत करि जानिये। सन्धि और बहोत॥ २३॥

चञ्चलताको त्यागिये। स्थिरता मनमें धार॥
स्थितिस्थिरताकेहोयबिन। कोइ न हो भवपार॥ २४॥

कुसङ्गत नहिं लागिये। सद्‌गुण होवै नाश॥
बुद्धि विवेक बिगड़ै जब। समूल होय विनाश॥ २५॥

घेरा गुरुवा नारिकी। सोइ कुसङ्गत जान॥
विषयी कुबुद्धि बावरे। ताको यम पहिचान॥ २६॥

काम क्रोध मद लोभको। करते रहिये कैद॥
ताको दुश्मन जानिये। साधु सद्गुरु वैद॥ २७॥

सद्गुरुके उपदेश गही। लाभ हो सबको प्राप्त॥
सब बन्धन ताके छुटै। सद्गुण हो पर्याप्त॥ २८॥

निज सत्‌रूप पिछानिके। सत्य ग्रहण करि लेहु॥
मनसा वाचा कर्मणा। असत सकल तजि देहु॥ २९॥

जगमें सार असारको। नित प्रति करिये विचार॥
सावधान रहु सज्जन। कबहुँ न हो अविचार॥ ३०॥

सदाशील हिय धारिये। कुशील कठोर निवार॥
शहन-शीलता नम्रता। नरजीवनमें सार॥ ३१॥

निज-पर दयाको पालिये। निर्दयताको टार॥
परमारथ मन लाइये। कामादिकको मार॥ ३२॥

धीरज धरना चाहिये। स्वधर्म पालन हेत॥
घबराहटको छोड़िके। शूर वीरवत खेत॥ ३३॥

जड़ चेतन बिलगायके। करते रहिये विवेक॥
स्वार्थ बुद्धि उपजावहिं। करै हानि अविवेक॥ ३४॥

साखीः— गुरुभक्ति करना चही । गुरु उपकार मनाय ॥
जड़ भक्तिको त्यागिके । गुरुभक्ति ठहराय ॥ ३५ ॥

मनमें दृढ़ वैराग्य हो । राग सकल हो नाश ॥
दुःख सकल मिटावई । मनमें कोइ न आश ॥ ३६ ॥
हंस रहनि सब धारिके । होवै साँचा हंस ॥
पारख पदमें स्थिति भई । जड़ाध्यास विध्वंस ॥ ३७ ॥

हंस पारखी आज हो । जीवनमुक्त प्रत्यक्ष ॥
कारज पूरा हो गया । गुरु साधु पद स्वच्छ ॥ ३८ ॥
सो पद प्राप्ति कारणे । गुरु साधु पद शोध ॥
रामस्वरूप सत्सङ्ग करि । लीजे गुरुमुख बोध ॥ ३९ ॥

बोधहि करनेके लिये । पठन पाठन होत ॥
बोध बिना बिरथा सकल । जन्म अकारथ होत ॥ ४० ॥
बोधकि लक्षण रहनि है । रहनि बिना कस बोध ? ॥
वाणि रटेते काम नहीं । सार ग्रहण करु शोध ॥ ४१ ॥
सोई करिये सन्त जन । अपने होवै काज ॥
वादविवादतजियेसकल । बनिये हंस सो आज ॥ ४२ ॥

रामस्वरूपदास पर । सद्गुरु दया सो कीन्ह ॥
नागझिरीमें आयके । बीजक मतको चीन्ह ॥ ४३ ॥
बीजक पारख ज्ञान गही । यथामती अनुसार ॥
टीका लिखिया याहिमें । टिप्पनिके आधार ॥ ४४ ॥

श्रीकाशीसाहेब लिखित । टिप्पनि रहि इहिं स्थान ॥
टीकामें सर्वाङ्ग सो । लीन्हा सादर मान ॥ ४५ ॥
सन्त पढ़ाई मुताबिक । लिखि टीका निर्मान् ॥
रामस्वरूप भावार्थ सब । याहीमें प्रगटान ॥ ४६ ॥

पढ़िये, गुनिये सन्त जन । जीवनके कल्यान ॥
रामस्वरूप पारख मिलै । सकलो भ्रम विनशान ॥ ४७ ॥

साखीः— सद्गुरुके गुण गाइये । मानी गुरु उपकार ॥
कृतघ्न दोष न लाइये । गुरुकी दया भव पार ॥ ४८ ॥
पारख बोध प्रकाशिया । सद्गुरु सो प्राचीन ॥
वर्तमान सब पारखी । समता मङ्गल कीन ॥ ४९ ॥
ग्रन्थ पन्थ आधारते । बोध लिये सब शिष्य ॥
बोध भाव कल्याण हो । अहित अभाव करिष्य ॥ ५० ॥
स्वाथ बुद्धि परित्याग करि । परमारथमें लाग ॥
दोष बुद्धि तजि सज्जनो ! सावधान हो जाग ! ॥ ५१ ॥
रामस्वरूपदास अब । कर शिर धरि त्रयबार ॥
साहेब बन्दगी करतहूँ । सद्गुरुके दरबार ॥ ५२ ॥
युग सहस्र ग्रह सम्वत । चैत्र शुक्ल दशमी तिथी ॥
शनिवासर सायं समय । टीका सम्पूरण इति ॥ ५३ ॥
सन् उन्निस सौ बावनै । अप्रेल माह सो चार ॥
तारीख दिनसो पाँचवीं । ग्रन्थ समाप्त सुधार ॥ ५४ ॥
रामस्वरूप पारख करु । मल विक्षेपको नाश ॥
नाश करि आवर्णको । पारख स्थिति परकाश ॥ ५५ ॥

॥ ❀ ॥ इति श्रीनिर्णयसारादि संयुक्त षट्ग्रन्थे—एकादश शब्द—षष्ठ ग्रन्थस्य-रामस्वरूपदास, अनुवादित- पारख सिद्धान्त दर्शिनी, भ्रम विध्वंशिनी सरल टीका सहित, सम्पूर्णम् समाप्तम् शुभम् ॥ ६ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ निर्णयसारादि संयुक्त षट्ग्रन्थः सम्पूर्णकी टीका श्रीसद्गुरुकी दयासे यहाँपर समाप्त हो गया है ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरो अर्पण मस्तु ! ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

पारखी सन्तोंके सत्य निर्णयका उपदेश, सद्ग्रन्थरूपमें प्रकाश।

मूल्य		ग्रन्थ		क्रम
१।)		सद्ग्रन्थ बीजक मूल-मात्र।		(१)
		सद्ग्रन्थ पञ्चग्रन्थी (टीका सहित)। ...		(२)
१५)	"	संयुक्त षट् ग्रन्थः (टीका सहित)। ...		(३)
४)	"	निर्णयसार (टीका सहित)। ...		(४)
४॥)	"	वैराग्यशतक (टीका सहित)। ...		(५)
१)	"	एकईस प्रश्न तथा	(टीका सहित)।	(६)
	"	पारख विचार ग्रन्थः		
४।॥)	"	श्रीकबीरपरिचय साखी	(टीका सहित)	(७)
	"	तथा ग्यारह शब्द ग्रन्थः		
५॥)	"	निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन। ...		(८)
	"	तिमिर भास्कर (बड़ा)। ...		(९)
	"	तत्त्वयुक्त निजबोध विवेक। ...		(१०)
	"	सत्यज्ञान बोध नाटक। ...		(११)
=)	"	जड़ चेतन भेद प्रकाश। ...		(१२)
।-)	"	तिमिर भास्करका नमूना। ...		(१३)
।)	"	मूल सन्ध्यापाठ मात्र। ...		(१४)
	"	सन्ध्यापाठ (टीका सहित)। ...		(१५)
।=)	"	न्यायनामा-बड़ादीगर (टीका सहित)।		(१६)
१।=)	"	श्रीबालक भजनमाला।		(१७)

[ऊपर लिखित सब ग्रन्थः हिन्दी भाषामें छपे हुए हैं।]

पुस्तक प्राप्ति स्थानम्:—

रामस्वरूपदासजी, आचार्य कबीरपन्थ।

गद्दीस्थान—श्रीकबीर निर्णय मन्दिर, मुकाम—नागझिरी मोहल्ला।

डाकघर— बुरहानपुर। जिला— निमाड़ (खण्डवा)

[मध्यप्रदेश]